Yoga Vasishtha, Book 5 — Upaśama

Dissolution. Sanskrit with English and Hindi.

From yogavasishtha.com — edition of 28 September 2026. The Sanskrit is in the public domain. The English and Hindi translations were made with a language model and have not been reviewed by a Sanskrit scholar: read them as a study aid, not as an authority. Each verse gives the Sanskrit in Devanagari and IAST, then the English, then the Hindi.

Chapter 1

5.1.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ स्थितिप्रकरणादनन्तरमिदं शृणु । उपशमप्रकरणं ज्ञातं निर्वाणकारि यत् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atha sthitiprakaraṇādanantaramidaṃ śṛṇu | upaśamaprakaraṇaṃ jñātaṃ nirvāṇakāri yat || 1 ||

Sri Vasishtha said, now listen to this, coming right after the chapter on steadiness. It is the chapter on quiet, known to bring liberation.

श्री वशिष्ठ ने कहा, अब स्थिरता के प्रकरण के ठीक बाद यह सुनो। यह शांति का प्रकरण है, जिसे मुक्ति देने वाला माना जाता है।

5.1.2

श्रीवाल्मीकिरुवाच । शरत्तारकिताकाशस्तिमितायां सुसंसदि । कथयत्येवमाह्लादि वसिष्ठे पावनं वचः ॥ २ ॥

śrīvālmīkiruvāca | śarattārakitākāśastimitāyāṃ susaṃsadi | kathayatyevamāhlādi vasisthte pāvanaṃ vacaḥ || 2 ||

Sri Valmiki said, in that fine assembly, still as an autumn sky full of stars, Vasishtha was speaking on, his words delightful and pure.

श्री वाल्मीकि ने कहा, उस सुंदर सभा में, जो तारों से भरे शरद के आकाश जैसी शांत थी, वशिष्ठ यह आनंद देने वाली और पवित्र करने वाली वाणी बोल रहे थे।

5.1.3

श्रवणार्थित्वमौनस्थपार्थिवे संसदन्तरे । निर्वात इव निस्पन्दकमले कमलाकरे ॥ ३ ॥

śravaṇārthitvamounasthapārthive saṃsadantare | nirvāta iva nispandakamale kamalākare || 3 ||

In that assembly the king sat silent, wanting only to listen, and it was as still as a windless pond whose lotuses do not stir.

उस सभा में राजा चुपचाप बैठे थे, बस सुनना चाहते थे, और सभा वैसे ही शांत थी जैसे बिना हवा के तालाब में कमल बिना हिले पड़े रहते हैं।

5.1.4

विलासिनीषु संशान्तमदमोहबलासु च । शममन्तः प्रयान्तीषु चिरप्रव्रजितास्विव ॥ ४ ॥

vilāsinīṣu saṃśāntamadamohabalāsu ca | śamamantaḥ prayāntīṣu cirapravrajitāsviva || 4 ||

There the graceful women too had let go of their passion and pride, sinking into a quiet within, as if they had long ago become wandering renouncers.

वहाँ की सुंदर स्त्रियाँ भी अपने मद और मोह को छोड़कर भीतर ही भीतर शांत हो गई थीं, मानो वे बहुत पहले से घर छोड़कर तप करने वाली संन्यासिनी हों।

5.1.5

कराम्भोरुहहंसेषु लीनेषु श्रवणादिव । मुक्तघुर्घुरवादेषु वायसेषु तराविव ॥ ५ ॥

karāmbhoruhaahaṃseṣu līneṣu śravaṇādiva | muktaghuṛghuravādeṣu vāyaseṣu tarāviva || 5 ||

The swan-shaped ornaments resting on their lotus-like hands had gone still, as if they too were listening, and the hush was like crows in a tree who had stopped their harsh calling.

उनके कमल जैसे हाथों पर टिके हंस के आकार के गहने भी वैसे ही स्थिर हो गए थे, मानो वे भी सुन रहे हों, और वह सन्नाटा ऐसा था जैसे पेड़ पर बैठे कौवे अपनी कर्कश आवाज़ बंद कर दें।

5.1.6

नासाग्रपरिविश्रान्ततर्जन्यङ्गुलिकोटिषु । विचारयत्सु विज्ञानकलां तज्ज्ञेषु राजसु ॥ ६ ॥

nāsāgrapariviśrāntatarjanyaṅgulikōṭiṣu | vicārayatsu vijñānakalāṃ tajjñeṣu rājasu || 6 ||

And the kings there, who understood these matters, sat with the tips of their forefingers resting at the tip of the nose, turning over in their minds a piece of that wisdom.

और वहाँ के राजा, जो इन बातों को समझते थे, अपनी तर्जनी उंगली की नोक नाक की नोक पर टिकाए बैठे थे, और मन ही मन उस ज्ञान के एक अंश पर विचार कर रहे थे।

5.1.7

रामे विकासमायाते प्रभात इव पङ्कजे । परित्यक्ततमः पीठे सूर्योदय इवाम्बरे ॥ ७ ॥

rāme vikāsamāyāte prabhāta iva paṅkaje | parityaktatamaḥ pīṭhe sūryoday iva ambare || 7 ||

Rama's face had brightened like a lotus opening at dawn, and on his seat the darkness had lifted, like sunrise filling the sky.

राम का चेहरा वैसे ही खिल उठा था जैसे भोर में कमल खिलता है, और उनके आसन पर अंधकार वैसे ही मिट गया था जैसे सूर्योदय से आकाश भर जाता है।

5.1.8

आकर्णयति वासिष्ठीर्गिरो दशरथे रसात् । कलापिनीव जीमूतनिर्ह्रादान्मुक्तवर्षणात् ॥ ८ ॥

ākarṇayati vāsiṣṭhīrgiro daśarathe rasāt | kalāpinīva jīmūtanirhrādānmmuktavarṣaṇāt || 8 ||

Dashratha listened to Vasishtha's words with great relish, like a peahen listening to thunder clouds that have begun to pour down rain.

दशरथ वशिष्ठ की वाणी को बड़े चाव से सुन रहे थे, ठीक वैसे ही जैसे मोरनी बरसते हुए गरजते बादलों की गरज सुनकर मगन हो जाती है।

5.1.9

आहृत्य सर्वभोगेभ्यो मनो मर्कटचञ्चलम् । श्रवणं प्रति यत्नेन सारेण मन्त्रिणि स्थिते ॥ ९ ॥

āhṛtya sarvabhogebhyo mano markaṭacañcalam | śravaṇaṃ prati yatnena sāreṇa mantriṇi sthite || 9 ||

The minister sat there too. He had pulled his mind, restless as a monkey, back from every pleasure, and with real effort had fixed it firmly on listening.

मंत्री भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने अपने मन को, जो बंदर की तरह चंचल था, सारे सुखों से हटाकर पूरी मेहनत से सुनने में लगा दिया था।

5.1.10

वसिष्ठोक्त्या परिज्ञातस्वात्मनीन्दुकलामले । लक्ष्मणे विलसल्लक्ष्ये शिक्षावलविचक्षणे ॥ १० ॥

vasiṣṭhoktyā parijñātasvātmanīndukalāmale | lakṣmaṇe vilasallakṣye śikṣāvalavicakṣaṇe || 10 ||

Lakshmana too was there. Through Vasishtha's words he had come to know his own self, spotless like the crescent moon, his brightness shone forth clearly, and he was skilled in strict discipline.

लक्ष्मण भी वहाँ थे। वशिष्ठ की वाणी से उन्होंने अपने आत्मा को जान लिया था, जो चाँद की कोर की तरह निर्मल थी, उनकी चमक साफ झलक रही थी, और वे कठोर अनुशासन में निपुण थे।

5.1.11

शत्रुघ्ने शत्रुदलने चेतसा पूर्णतां गते अलमानन्दमायाते राकाचन्द्रोपमे स्थिते ॥ ११ ॥

śatrughne śatrudalane cetasā pūrṇatāṃ gate alamānandamāyāte rākācandropame sthite || 11 ||

And Shatrughna, the destroyer of enemies, was there, his mind grown full, having reached deep bliss, sitting there shining like the full moon.

और शत्रुघ्न भी थे, शत्रुओं का नाश करने वाले, जिनका मन पूर्ण हो चुका था, जो गहरे आनंद को पा चुके थे, और पूर्णिमा के चाँद जैसे चमकते हुए बैठे थे।

5.1.12

सुमित्रे मित्रतां याते मानसे दुःखशीलिते विकासिहृदये जाते तत्काल इव पंकजे ॥ १२ ॥

sumitre mitratāṃ yāte mānase duḥkhaśīlite vikāsihṛdaye jāte tatkāla iva paṅkaje || 12 ||

And Sumitra was there too. A mind that used to bring him sorrow had now become his true friend, and his heart had opened like a lotus at that very hour.

और सुमित्र भी वहाँ थे। जो मन कभी उन्हें दुख देता था, वह अब उनका सच्चा मित्र बन गया था, और उनका हृदय ठीक उसी क्षण कमल की तरह खिल उठा था।

5.1.13

तत्रस्थेषु तथान्येषु तदा मुनिषु राजसु सुधौतचित्तरत्नेषु प्रोल्लसत्स्विव चेतसा ॥ १३ ॥

tatrasthēṣu tathānyēṣu tadā muniṣu rājasu sudhautacittaratnēṣu prollasatsviva cetasā || 13 ||

The other sages and kings present there had minds like well-polished jewels, and their hearts seemed to shine with an inner joy.

वहाँ उपस्थित बाकी मुनियों और राजाओं के मन अच्छी तरह मांजे हुए रत्नों के समान थे, और उनके हृदय मानो भीतर के आनंद से चमक रहे थे।

5.1.14

उदभूत्पूरयन्नाशाः कल्पाभ्ररवमांसलः अथ मध्याह्नशंखानामब्धिघोषसमः स्वनः ॥ १४ ॥

udabhūtpūrayannāśāḥ kalpābhra-ravamāṃsalaḥ atha madhyāhnaśaṅkhānāmabdhighoṣasamaḥ svanaḥ || 14 ||

Then a sound arose, filling every direction, as thick as the roar of the clouds at the end of an age. It was the sound of the noon conches, like the roar of the ocean.

तभी एक आवाज़ उठी, जो हर दिशा में भर गई, और वह प्रलय के बादलों की गरज जितनी घनी थी। यह दोपहर के शंखों की आवाज़ थी, ठीक समुद्र की गरज जैसी।

5.1.15

महता तेन शब्देन तिरोधानं मुनेर्गिरः ययर्जलदनादेन कोकिलध्वनयो यथा ॥ १५ ॥

mahatā tena śabdena tirodhānaṃ munergiraḥ yayarjaladanādena kokiladhvanayo yathā || 15 ||

By that great sound Vasishtha's words went out of hearing and were lost, just as the calls of cuckoos are lost in the roar of a rain cloud.

उस भारी आवाज़ से वशिष्ठ के शब्द सुनाई देने बंद हो गए और खो गए, ठीक वैसे ही जैसे बरसते बादल की गरज में कोयल की बोली खो जाती है।

5.1.16

मुनिरन्तरयांचक्रे स्वां वाचमथ संसदि । जितसारो गुणः केन महता समुदीर्यते ॥ १६ ॥

munirantarayāṃcakre svāṃ vācamatha saṃsadi | jitasāro guṇaḥ kena mahatā samudīryate || 16 ||

The sage then stopped speaking there in the assembly, thinking, what great noise is this, that has overpowered my words and beaten down their worth.

तब मुनि ने सभा में अपनी वाणी वहीं रोक दी, यह सोचकर कि यह कैसी बड़ी आवाज़ है, जिसने मेरे शब्दों को दबा दिया है और उनका महत्व मिटा दिया है।

5.1.17

मुहूर्तमात्रं विश्रम्य श्रुत्वा मध्याह्ननिःस्वनम् । घने कोलाहले शान्ते रामं मुनिरुवाच ह ॥ १७ ॥

muhūrtamātraṃ viśramya śrutvā madhyāhnaniḥsvanam | ghane kolāhale śānte rāmaṃ muniruvāca ha || 17 ||

He rested for just a moment, listening to that noon sound, and once the loud uproar had quieted down, the sage spoke to Rama.

वे बस एक पल के लिए रुके, उस दोपहर की आवाज़ को सुनते रहे, और जब वह तेज़ शोर शांत हो गया, तब मुनि ने राम से कहा।

5.1.18

रामाद्यतनमेतावदाह्निकं कथितं मया । प्रातरन्यत्तु वक्ष्यामो वक्तव्यमरिमर्दन ॥ १८ ॥

rāmādyatnametāvadāhṇikaṃ kathitaṃ mayā | prātaranyattu vakṣyāmo vaktavyamarimardana || 18 ||

Rama, this much of today's portion I have told you. Tomorrow morning I will tell the rest that needs to be said, destroyer of enemies.

राम, आज का इतना हिस्सा मैंने तुम्हें बता दिया है। बाकी जो कहना है, वह कल सुबह बताऊँगा, हे शत्रुओं का नाश करने वाले।

5.1.19

इदं नियतितः प्राप्तं कर्तव्यं तद्विजन्मनाम् । मध्याह्नमुपपन्नं यत्कर्तव्यं नावसीदति ॥ १९ ॥

idaṃ niyatitaḥ prāptaṃ kartavyaṃ tadvijanmanām | madhyāhnamupapannaṃ yatkartavyaṃ nāvasīdati || 19 ||

This midday duty comes by fixed rule for brahmins. A duty like this must never be let slip.

यह दोपहर का कर्तव्य ब्राह्मणों के लिए तय नियम से आया है। ऐसे कर्तव्य को कभी टालना नहीं चाहिए।

5.1.20

त्वमप्युत्तिष्ठ सुभग समस्ताचारसत्क्रियाम् । आचराचारचतुरस्नानदानार्चनादिकाम् ॥ २० ॥

tvamapyuttiṣṭha subhaga samastācārasatkriyām | ācarācāracatursnānadānārcanādikām || 20 ||

You too, rise now, fortunate one, and carry out all the proper rites, bathing, giving, worship and the rest, exactly as custom requires.

तुम भी अब उठो, हे भाग्यशाली, और सारे उचित कर्म करो, स्नान, दान, पूजा आदि, ठीक वैसे ही जैसे परंपरा में तय है।

5.1.21

इत्युक्त्वा मुनिरुत्तस्थौ समं दशरथः प्रभुः । ससदाः सेन्दुरादित्य उदयाद्रितटादिव ॥ २१ ॥

ityuktvā muniruttasthau samaṃ daśarathaḥ prabhuḥ| sasadāḥ sendurāditya udayādritaṭādiva || 21 ||

Having said this, the sage rose, and with him rose lord Dasharatha and the whole assembly - like the sun rising together with the moon from the slope of the eastern mountain.

यह कहकर मुनि उठ खड़े हुए, और उनके साथ राजा दशरथ और पूरी सभा भी उठ खड़ी हुई - जैसे सूरज चाँद के साथ उदय पर्वत की ढलान से उगता है।

5.1.22

तयोरुत्तिष्ठतो सर्वा सभोत्थातुमकम्पत । मन्दवातपरामृष्टा नलिनीवालिलोचना ॥ २२ ॥

tayoruttiṣṭhato sarvā sabhotthātumakampata| mandavātaparāmṛṣṭā nalinīvālilocanā || 22 ||

As the two of them stood up, the whole assembly stirred as if to rise too, touched by a soft breeze, its eyes moving like bees over a bed of lotuses.

जब वे दोनों उठे, तो पूरी सभा भी उठने के लिए हिल उठी, हल्की हवा से छू ली गई, उसकी आँखें भौंरों की तरह कमल की क्यारी पर घूम रही थीं।

5.1.23

उत्तस्थौ सावतंसोत्थभृंगमण्डलमण्डिता । करिसेनेव सन्ध्याद्रावालोलकरपुष्करा ॥ २३ ॥

uttasthau sāvataṃsotthabhṛṅgamaṇḍalamaṇḍitā| kariseneva sandhyādrāvālolakarapuṣkarā || 23 ||

It rose up, decked with a swarm of bees that had flown up from the flowers in people's hair - like a herd of fine elephants on a mountain glowing red at dusk, tails swinging, trunks lifted like lotuses.

वह उठ खड़ी हुई, लोगों के बालों के फूलों से उड़े भौंरों के झुंड से सजी हुई - जैसे शाम की लाली से रंगे पहाड़ पर बढ़िया हाथियों का झुंड हो, जिनकी पूँछ हिल रही हो और उठी हुई सूँड़ें कमल जैसी लगें।

5.1.24

परस्परांगसंघट्टचूर्णितांगदमण्डली । रत्नपूर्णारुणाम्भोदसन्ध्यासमयसूचनी ॥ २४ ॥

parasparāṃgasamghaṭṭacūrṇitāṃgadamaṇḍalī| ratnapūrṇāruṇāmbhodasandhyāsamayasūcanī || 24 ||

As their bodies pressed against each other, their armbands rubbed and broke apart - it looked like a red cloud full of jewels, announcing that evening had come.

जब उनके शरीर एक-दूसरे से टकराए, तो उनके बाजूबंद रगड़ खाकर टूटने लगे - यह वैसा ही लगा जैसे रत्नों से भरा लाल बादल शाम आने की खबर दे रहा हो।

5.1.25

पतदुत्तंसविभ्रान्तभृंगोपहितघुंघुमा । मुकुटोद्दामविद्योतशक्रचापीकृताम्बरा ॥ २५ ॥

pataduttaṃsavibhrāntabhṛṅgopahitaghuṃghumā| mukuṭodddāmavidyotaśakracāpīkṛtāmbarā || 25 ||

Flowers fell from their headdresses, and confused bees buzzed around; the flashing light from their crowns turned the sky into a rainbow.

उनके सिर के गहनों से फूल गिर रहे थे, और घबराए हुए भौंरे भिनभिना रहे थे; उनके मुकुटों की चमक ने आकाश को इंद्रधनुष बना दिया।

5.1.26

कान्तालताहस्तदलचारुचामरमंजरी वनलेखेव विक्षुब्धवरवारणमण्डला ॥ २६ ॥

kāntālatāhastadalacārucaamaramañjarī vanalekheva vikṣubdhvaravāraṇamaṇḍalā || 26 ||

The lovely hands of the women, soft like vines, waved fine fans like clusters of flowers - it was like the edge of a forest shaken by a herd of great elephants passing through.

स्त्रियों के सुंदर हाथ, लताओं जैसे कोमल, फूलों के गुच्छों जैसे सुंदर पंखे हिला रहे थे - यह वैसा ही लगा जैसे बड़े हाथियों के झुंड के गुजरने से जंगल का किनारा हिल उठा हो।

5.1.27

कचत्कटकभारक्तीकृतान्योन्यतताम्बरा वातव्याधूतपुष्पेव मन्दारवनमालिका ॥ २७ ॥

kacatkaṭakabhāraktīkṛtānyonyatatāmbarā vātavyādhūtapuṣpeva mandāravanaamālikā || 27 ||

Their gleaming bracelets filled the space around them as they pressed close together - like a garland of coral-tree flowers in a forest, scattered by the wind.

उनके चमकते कंगन आसपास की जगह को भर रहे थे, जब वे एक-दूसरे के करीब आ गए - जैसे जंगल में मंदार पेड़ के फूलों की माला हवा से बिखर गई हो।

5.1.28

कर्पूरकणनीहाररचितामलवारिदा शरहिक्तटमालेव प्रसृताशेषभूमिका ॥ २८ ॥

karpūrakaṇanīhāraracitāmalavāridā śarahiktatamāleva prasṛtāśeṣabhūmikā || 28 ||

A clean cloud made of camphor-dust and mist spread over the whole ground - like a line of frost on a riverbank in the cold season.

कपूर के कणों और कोहरे से बना एक साफ बादल पूरी ज़मीन पर फैल गया - जैसे जाड़े में नदी के किनारे पाले की एक रेखा बिछी हो।

5.1.29

लोलमौलिमणिप्रान्तपाटलाम्बरकोटरा संध्येवाफुल्लनीलाला कार्यसंहारकारिणी ॥ २९ ॥

lolamaulimaṇiprāntapāṭalāmbarakoṭarā saṃdhyevāphullanīlālā kāryasaṃhārakāriṇī || 29 ||

The swaying jewels on their crowns tinted the air pink at the edges - it was like the evening sky freshly streaked with blue, showing that the day's work was ending.

उनके मुकुटों की हिलती मणियों से आसपास की हवा किनारों पर गुलाबी हो उठी - यह वैसी ही लगी जैसे शाम का आकाश नीली धारी से ताज़ा रंगा हो, यह दिखाते हुए कि दिन का काम खत्म हो रहा है।

5.1.30

रत्नांशुसलिलापूरमुखपद्मनिरन्तरा पद्मिनीवालिवलिता नूपुरारवसारसा ॥ ३० ॥

ratnāṃśusalilāpūramukhapadmanirantarā padminīvālivaliatā nūpurāravasārasā || 30 ||

It was full everywhere with faces like lotuses, as if flooded with the light of jewels turned to water, ringed all around by rows of lotus plants, the sound of anklets like the call of cranes.

वह हर तरफ कमल जैसे चेहरों से भरी थी, मानो रत्नों की चमक पानी बनकर बह निकली हो, चारों ओर कमल की कतारों से घिरी हुई, पायलों की आवाज़ सारस पक्षियों की बोली जैसी थी।

5.1.31

संतता सा सभोत्तस्थौ भूभृच्छतसमाकुला। भूतसंततिसंभ्रान्ता सृष्टिर्नवमिवोदिता ॥ ३१ ॥

santatā sā sabhottasthau bhūbhṛcchatasamākulā | bhūtasaṃtatisaṃbhrāntā sṛṣṭirnavamivoditā || 31 ||

The whole assembly rose, crowded with a hundred kings, its mass of people astir - like a new creation just come into being.

पूरी सभा उठ खड़ी हुई, सैकड़ों राजाओं से भरी हुई, लोगों की भीड़ हलचल कर रही थी - जैसे कोई नई सृष्टि अभी-अभी बनी हो।

5.1.32

प्रणम्याथ नृपं भूपा निर्ययुर्नृपमन्दिरात् । शक्रचापीकृता रत्नैरम्बुधेरिववीचयः ॥ ३२ ॥

praṇamyātha nṛpaṃ bhūpā niryayurnṛpamandirāt | śakracāpīkṛtā ratnairambudherivavīcayaḥ || 32 ||

Then the kings bowed to the king and went out from the palace - their jewels making them shine like rainbows, like waves of the sea.

फिर राजाओं ने राजा को प्रणाम किया और महल से बाहर निकल गए - उनके रत्न उन्हें इंद्रधनुष जैसा चमका रहे थे, जैसे समुद्र की लहरें हों।

5.1.33

सुमन्त्रो मन्त्रिणश्चैव वसिष्ठमथ भूमिपम् । प्रणम्य जग्मुः स्नानाय रसविज्ञानकोविदाः ॥ ३३ ॥

sumantro mantriṇaścaiva vasiṣṭhamatha bhūmipam | praṇamya jagmuḥ snānāya rasavijñānakovidāḥ || 33 ||

Sumantra and the other ministers, wise in judging what was right, bowed to Vasishtha and then to the king, and went to bathe.

सुमंत्र और बाकी मंत्री, जो सही बात परखने में समझदार थे, वसिष्ठ को और फिर राजा को प्रणाम करके नहाने चले गए।

5.1.34

वामदेवादयश्चान्ये विश्वामित्रादयस्तथा । वसिष्ठं पुरतः कृत्वा तस्थुरावर्जनोन्मुखाः ॥ ३४ ॥

vāmadevādayaścānye viśvāmitrādayastathā | vasiṣṭhaṃ purataḥ kṛtvā tasthurāvarjanonmukhāḥ || 34 ||

Vamadeva and the others, and Vishvamitra and the others too, put Vasishtha in front and stood there, bowing toward him.

वामदेव और बाकी लोग, और विश्वामित्र और बाकी लोग भी, वसिष्ठ को आगे करके वहीं खड़े रहे और उनकी ओर झुके रहे।

5.1.35

राजा दशरथस्तत्र पूजयित्वा मुनिव्रजम् । तद्विसृष्टो जगामाथ स्वकार्यार्थमरिन्दमः ॥ ३५ ॥

rājā daśarathastatra pūjayitvā munivrajam | tadvisṛṣṭo jagāmātha svakāryārthamarindamaḥ || 35 ||

There King Dasharatha, who conquered his enemies, honoured the group of sages, and once they let him go, he went off to attend to his own work.

वहाँ राजा दशरथ ने, जो अपने शत्रुओं को जीतने वाले थे, मुनियों के समूह का सम्मान किया, और उनसे विदा मिलते ही अपने काम में लग गए।

5.1.36

वनं वनास्पदा जग्मुर्व्योम व्योमनिवासिनःनगरं नागराश्चैव प्रातरागमनाय ते ॥ ३६ ॥

vanaṃ vanāspadā jagmurvyoma vyomanivāsinaḥnagaraṃ nāgarāścaiva prātarāgamanāya te || 36 ||

Those who lived in the forest went back to the forest, those who lived in the sky went back to the sky, and those who lived in the city went back to the city - all of them, to return again in the morning.

जो जंगल में रहते थे वे जंगल लौट गए, जो आकाश में रहते थे वे आकाश लौट गए, और जो नगर में रहते थे वे नगर लौट गए - वे सब सुबह फिर आने के लिए गए।

5.1.37

महीपतिवसिष्ठाभ्यां प्रणयात्प्रार्थितः प्रभुःवसिष्ठसद्मनि निशां विश्वामित्रोऽत्यवाहयत् ॥ ३७ ॥

mahīpativasiṣṭhābhyāṃ praṇayātprārthitaḥ prabhuḥvasiṣṭhasadmani niśāṃ viśvāmitro'tyavāhayat || 37 ||

The king and Vasishtha lovingly asked him to stay, so lord Vishvamitra spent that night at Vasishtha's house.

राजा और वसिष्ठ ने प्रेम से आग्रह करके उन्हें रोक लिया, इसलिए विश्वामित्र ने वह रात वसिष्ठ के घर पर बिताई।

5.1.38

वसिष्ठः सह विप्रेन्द्रैः पार्थिवैर्मुनिभिस्तथाउपास्यमानो रामाद्यैः सर्वैर्दशरथात्मजैः ॥ ३८ ॥

vasiṣṭhaḥ saha viprendraiḥ pārthivairmunibhistathāupāsyamāno rāmādyaiḥ sarvairdaśarathātmajaiḥ || 38 ||

Vasishtha was attended by the foremost brahmins, by kings and sages, and by Rama and all the other sons of Dasharatha.

वसिष्ठ की सेवा श्रेष्ठ ब्राह्मण, राजा, मुनि और राम सहित दशरथ के बाकी सभी पुत्र कर रहे थे।

5.1.39

जगाम स्वाश्रमं श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतःअनुयातः सुरौघेन ब्रह्मलोकमिवाब्जजः ॥ ३९ ॥

jagāma svāśramaṃ śrīmānsarvalokanamaskṛtaḥanuyātaḥ suraughena brahmalokamivābjajaḥ || 39 ||

Then the glorious one, honoured by the whole world, went to his own hermitage, followed by a crowd of gods - like Brahma, the lotus-born, going to his own heaven.

फिर वह तेजस्वी पुरुष, जिसे पूरी दुनिया सम्मान देती थी, देवताओं की भीड़ के साथ अपने आश्रम को गए - जैसे कमल से जन्मे ब्रह्मा अपने लोक को जाते हैं।

5.1.40

तस्मात्प्रदेशाद्रामादीन्पुनर्दशरथात्मजान्सर्वान्विसर्जयामास पादोपान्ते नतानसौ ॥ ४० ॥

tasmātpradeśādrāmādīnpunardaśarathātmajānsarvānvisarjayāmāsa pādopānte natānasau || 40 ||

From that place, he then sent off Rama and all the other sons of Dasharatha, who had bowed at his feet.

उस जगह से, उन्होंने फिर राम और दशरथ के बाकी सभी पुत्रों को विदा किया, जो उनके पैरों में झुके हुए थे।

5.1.41

नभश्चरान्धरणिचरानधश्चरान्विसृज्य संस्तुतगुणगोचरांश्च तान्। यथाक्रमं स्वगृहमुदारसत्त्ववांश्चकार तां द्विजजनवासरक्रियाम् ॥ ४१ ॥

nabhaścarāndharaṇicarānadhaścarānvisṛjya saṃstutaguṇagocarāṃśca tān | yathākramaṃ svagṛhamudārasattvavāṃścakāra tāṃ dvijajanavāsarakriyām || 41 ||

Having sent away the sky-dwellers, the earth-dwellers, and the underworld-dwellers - beings whose good qualities had been duly praised - each to their own home in turn, the noble-hearted one then carried out the day's duties proper to a brahmin.

आकाश में रहने वालों, धरती पर रहने वालों और धरती के नीचे रहने वालों को - जिनके अच्छे गुणों की भरपूर तारीफ हुई थी - हर एक को क्रम से उसके घर भेजकर, उस उदार मन वाले व्यक्ति ने फिर ब्राह्मण के दिन के कर्तव्य पूरे किए।

Chapter 2

5.2.1

श्रीवाल्मीकिरुवाच ते समेत्य गृहं गत्वा राजपुत्राः शशित्विषः । चक्रुः सर्वमशेषेण स्वसद्मसु दिनक्रमम् ॥ १ ॥

śrīvālmīkiruvāca te sametya gṛhaṃ gatvā rājaputrāḥ śaśitviṣaḥ | cakruḥ sarvamaśeṣeṇa svasadmasu dinakramam || 1 ||

The revered Valmiki said: The princes, radiant as the moon, came together and went to their homes, where they carried out the whole day's routine without leaving anything out.

श्री वाल्मीकि बोले चाँद जैसे तेजस्वी राजकुमार सब साथ मिलकर अपने-अपने घर गए और वहाँ दिन के सारे काम पूरी तरह निभाए।

5.2.2

वसिष्ठो राघवश्चैव राजानो मुनयो द्विजाः । इति चक्रुः स्वकार्याणि तथा स्वगृहवीथिषु ॥ २ ॥

vasiṣṭho rāghavaścaiva rājāno munayo dvijāḥ iti cakruḥ svakāryāṇi tathā svagṛhavīthiṣu || 2 ||

Vasishtha, Rama, the kings, the sages, and the brahmins all did their own tasks in this way, each in the lanes of his own home.

वसिष्ठ, राम, राजा लोग, मुनि और ब्राह्मण, सब इसी तरह अपने-अपने काम अपने-अपने घर की गलियों में करते रहे।

5.2.3

सस्नुः कमलकह्लारकुमुदोत्पलहारिषु । जलाशयेषु चक्राह्वहंससारसराजीषु ॥ ३ ॥

sasnuḥ kamalakahlārakumudotpalahāriṣu jalāśayeṣu cakrāhvahaṃsasārasarājiṣu || 3 ||

They bathed in ponds bright with lotuses, white water-lilies, night-lotuses, and blue lotuses, ponds lined with rows of ruddy geese, swans, and cranes.

वे उन तालाबों में नहाए जो कमल, सफ़ेद कुमुदिनी, रात में खिलने वाली कुमुदिनी और नीले कमल से सुंदर लगते थे, और जिनमें चकवा पक्षी, हंस और सारस पंक्तियों में थे।

5.2.4

गोभूतिलहिरण्यानि शयान्यासनानि च । ददुर्दानानि विप्रेभ्यो भाजनान्यंशुकानि च ॥ ४ ॥

gobhūtilahiraṇyāni śayanānyāsanāni ca dadurdānāni viprebhyo bhājanānyaṃśukāni ca || 4 ||

They gave gifts to the brahmins: cows, land, sesame seeds, gold, beds, seats, vessels, and cloth.

उन्होंने ब्राह्मणों को गाय, ज़मीन, तिल, सोना, पलंग, आसन, बर्तन और कपड़े दान में दिए।

5.2.5

हेमरत्नविचित्रेषु स्वेषु चामरसद्मसु । आनर्चुरच्युतेशानहुताशार्कादिकान्सुरान् ॥ ५ ॥

hemaratnavicitreṣu sveṣu cāmarasadmasu ānarcuracyuteśānahutāśārkādikānsurān || 5 ||

In their own shrines, bright with gold and jewels, they worshipped the gods, Vishnu, Shiva, Agni, Surya, and the rest.

वे अपने-अपने मंदिरों में, जो सोने और रत्नों से सजे थे, विष्णु, शिव, अग्नि, सूर्य आदि देवताओं की पूजा करते रहे।

5.2.6

पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबन्धुमित्रगणैः सह । तत आस्वादयामासुर्भोजनान्युचितानि वै ॥ ६ ॥

putrapautrasuhṛdbhṛtyabandhumitragṇaiḥ saha | tata āsvādayāmāsurbhojanānyucitāni vai || 6 ||

Then, together with their sons, grandsons, friends, servants, relatives, and companions, they ate fitting meals.

फिर वे अपने बेटों, पोतों, मित्रों, नौकरों, रिश्तेदारों और साथियों के साथ मिलकर उचित भोजन खाने लगे।

5.2.7

एतस्मिन्समये चास्मिन्नगरे दिवसोऽभवत् । तनुरष्टाङ्गशेषत्वादृष्टो न च मनोहरः ॥ ७ ॥

etasminnasmaye cāsminnagare divaso'bhavat | tanuraṣṭāṅgaśeṣatvāddṛṣṭo na ca manoharaḥ || 7 ||

At that time, in that city, the day had grown thin, for only its eighth part was left, and it no longer looked lovely.

उसी समय उस नगर में दिन पतला पड़ गया था, क्योंकि उसका बस आठवाँ हिस्सा बचा था, और वह अब सुंदर नहीं लग रहा था।

5.2.8

सायन्तनदिनान्तं ते तत्कालोचितचेष्टया । अनयन्नंशुभिः सार्धं यावदस्तं ययौ रविः ॥ ८ ॥

sāyantanadināntaṃ te tatkālocitaceṣṭayā | anayannaṃśubhiḥ sārdhaṃ yāvadastaṃ yayau raviḥ || 8 ||

With actions fit for that hour, they carried the evening close of the day along with the sun's rays, until the sun set.

उस समय के अनुसार काम करते हुए वे सूरज की किरणों के साथ शाम का बचा हुआ दिन बिताते रहे, जब तक सूरज डूब नहीं गया।

5.2.9

संध्यां ववन्दिरे सुष्टु जेपुश्चैवाघमर्षणम् । पेठुः स्तोत्राणि पुण्यानि जगुर्गाथा मनोहराः ॥ ९ ॥

saṃdhyāṃ vavandire suṣṭu jepuścaivāghamarṣaṇam | peṭhuḥ stotrāṇi puṇyāni jagurgāthā manoharāḥ || 9 ||

They duly performed the twilight prayers, recited the Aghamarshana hymn, chanted sacred hymns of praise, and sang lovely songs.

उन्होंने ठीक से संध्या-वंदन किया, अघमर्षण मंत्र जपा, पवित्र स्तोत्र पढ़े और सुंदर गीत गाए।

5.2.10

ततश्चाभ्युदिता श्यामा कामिनीशोकहारिणी । क्षीरोदादिव माहेन्द्री चन्द्रावश्यायदायिनी ॥ १० ॥

tataścābhyuditā śyāmā kāminīśokahāriṇī | kṣīrodādiva māhendrī candrāvaśyāyadāyinī || 10 ||

Then dark night rose in the east, like the goddess born from the ocean of milk. She took away the sorrow of women parted from their lovers, and brought the moon and the dew.

फिर पूरब में काली रात उगी, जैसे क्षीरसागर से देवी उठी हों। उसने प्रेमियों से बिछड़ी स्त्रियों का दुख हर लिया, और चाँद तथा ओस लेकर आई।

5.2.11

शनैरास्तीर्णपुष्पेषु कीर्णकर्पूरमुष्टिषु । दीर्घेन्दुबिम्बरम्येषु तस्थुस्तल्पेषु राघवाः ॥ ११ ॥

śanairāstīrṇapuṣpeṣu kīrṇakarpūramuṣṭiṣu | dīrghendubimbaramyeṣu tasthustalpeṣu rāghavāḥ || 11 ||

Slowly the Raghava princes lay down on beds strewn with flowers and scattered with handfuls of camphor, beds made lovely by the tall disc of the moon.

राघव राजकुमार धीरे-धीरे उन पलंगों पर लेट गए जो फूलों से बिछे थे, कपूर की मुट्ठियों से भरे थे, और ऊँचे चाँद की चमक से सुंदर लग रहे थे।

5.2.12

अथ रामादृतेऽन्येषां तत्र तद्व्यवहारिणी । व्यतीयाय शनैः श्यामा मुहूर्त इव शोभना ॥ १२ ॥

atha rāmādṛte'nyeṣāṃ tatra tadvyavahāriṇī | vyatīyāya śanaiḥ śyāmā muhūrta iva śobhanā || 12 ||

Then, for everyone there except Rama, that lovely dark night, busy with their affairs, passed swiftly, gone like a single moment.

फिर राम को छोड़कर वहाँ बाकी सबके लिए, वह सुंदर काली रात, जो उनके कामों में लगी थी, एक पल की तरह जल्दी बीत गई।

5.2.13

तस्थौ रामस्तु तामेव वासिष्ठीं वचनावलीम् । चिन्तयन्मधुरोदारां करिणीं कलभो यथा ॥ १३ ॥

tasthau rāmastu tāmeva vāsiṣṭhīṃ vacanāvalīm | cintayanmadhurodārāṃ kariṇīṃ kalabho yathā || 13 ||

But Rama stayed awake, thinking over that same string of words Vasishtha had spoken, sweet and noble, like a young elephant calf thinking of its mother.

पर राम जागते रहे, वसिष्ठ के कहे उन्हीं मीठे और गहरे वचनों को सोचते हुए, जैसे हाथी का बच्चा अपनी माँ को याद करता है।

5.2.14

किमिदं नाम संसारभ्रमणं किमिमे जनाः । भूतानि च विचित्राणि किमायान्ति प्रयान्ति किं ॥ १४ ॥

kimidaṃ nāma saṃsārabhramaṇaṃ kimime janāḥ | bhūtāni ca vicitrāṇi kimāyānti prayānti kiṃ || 14 ||

What is this whirling of the world? What are these people? What are these strange beings? Why do they come, why do they go?

यह संसार का चक्कर क्या है? ये लोग क्या हैं? ये तरह-तरह के जीव क्या हैं? ये क्यों आते हैं, क्यों जाते हैं?

5.2.15

मनसः कीदृशं रूपं कथं चैतत्प्रशाम्यति । मायेयं सा किमुत्था स्यात्कथं चैव निवर्तते ॥ १५ ॥

manasaḥ kīdṛśaṃ rūpaṃ kathaṃ caitatpraśāmyati | māyeyaṃ sā kimutthā syātkathaṃ caiva nivartate || 15 ||

What is the true shape of the mind? And how is it stilled? Where does this illusion come from, and how does it end?

मन का असली रूप क्या है? और यह कैसे शांत होता है? यह माया कहाँ से आती है, और कैसे खत्म होती है?

5.2.16

निवृत्तयानया कः स्याद्गुणो दोषोऽथ वा भवेत् । कथमात्मनि चैवायं तते संकोच आगतः ॥ १६ ॥

nivṛttayānayā kaḥ syādguṇo doṣo'tha vā bhavet | kathamātmani caivāyaṃ tate saṃkoca āgataḥ || 16 ||

If this illusion should stop, what good would come of it, or what harm? And how has this shrinking come into the self, though the self stretches everywhere?

अगर यह माया रुक जाए, तो इससे क्या फ़ायदा होगा, या क्या नुकसान? और आत्मा में, जो हर जगह फैली हुई है, यह सिकुड़न कैसे आ गई?

5.2.17

किमुक्तं स्याद्भगवता मुनिना मनसः क्षये । किं चेन्द्रियजये प्रोक्तं किमुक्तमथवात्मनि ॥ १७ ॥

kimuktaṃ syād bhagavatā muninā manasaḥ kṣaye | kiṃ cendriyajaye proktaṃ kimuktam athavātmani || 17 ||

What has the blessed sage said about ending the mind? What did he teach about mastering the senses? Or what did he say about the self?

पूज्य मुनि ने मन के खत्म होने के बारे में क्या कहा है? इंद्रियों को जीतने के बारे में क्या बताया? या आत्मा के बारे में क्या कहा?

5.2.18

जीवश्चित्तं मनो मायेत्येवमादिभिराततैः । रूपैरात्मैव संसारं तनोतीममसन्मयम् ॥ १८ ॥

jīvaścittaṃ mano māyetyevamādibhirātatraiḥ | rūpairātmaiva saṃsāraṃ tanotīmamasanmayam || 18 ||

Through such far-reaching forms as the living soul, the mind-stuff, the mind, illusion, and more, the self alone spreads out this world that is not real.

जीव, चित्त, मन, माया जैसे कई फैले हुए रूपों के ज़रिए, आत्मा अकेली ही इस झूठे संसार को फैलाती है।

5.2.19

एभिरेवं मनोमात्रतन्तुबद्धैः क्षयं गतैः । दुःखोपशान्तिरेतानि सुचिकित्स्यानि नः कथम् ॥ १९ ॥

ebhirevaṃ manomātratantubaddhaiḥ kṣayaṃ gataiḥ | duḥkhopaśāntiretāni sucikitsyāni naḥ katham || 19 ||

When these things, tied only by the thread of the mind, come to an end, suffering is stilled. But how are we to cure them properly?

जब ये चीज़ें, जो सिर्फ़ मन के धागे से बँधी हैं, खत्म हो जाती हैं, तो दुख शांत हो जाता है। पर हम इनका सही इलाज कैसे करें?

5.2.20

भोगाभ्रमालावलयां धीबलाकामिमां कथम् । पृथक्करोमि पयसो धारां हंस इवाम्भसः ॥ २० ॥

bhogābhramālāvalayāṃ dhībalākāmimāṃ katham | pṛthakkaromi payaso dhārāṃ haṃsa ivāmbhasaḥ || 20 ||

This mind of mine is like a crane caught inside a ring of clouds made of worldly pleasures. How can I pick it out, the way a swan picks out milk from water?

मेरा यह मन बादलों की माला के बीच फँसे सारस जैसा है, जो सांसारिक सुखों से बना है। मैं इसे कैसे अलग करूँ, जैसे हंस पानी से दूध अलग कर लेता है?

5.2.21

भोगास्त्यक्तुं न शक्यन्ते तत्त्यागेन विना वयम् । प्रभवामो न विपदामहो संकटमागतम् ॥ २१ ॥

bhogāstyaktuṃ na śakyante tattyāgena vinā vayaṃ | prabhavāmo na vipadāmaho saṃkaṭamāgatam || 21 ||

Pleasures cannot be given up, yet without giving them up we cannot get past our troubles. What a fix we have fallen into.

भोग छोड़े नहीं जा सकते, और उन्हें छोड़े बिना हम मुसीबतों से पार नहीं पा सकते। हाय, हम कैसी मुसीबत में फंस गए हैं।

5.2.22

मनोमात्रमिदं प्राप्यं तथैवेदं प्रयोजनम् । संपन्नं नो गिरिगुरु मौर्ख्याद्यक्षः शिशोरिव ॥ २२ ॥

manomātramidaṃ prāpyaṃ tathaivedaṃ prayojanam | sampannaṃ no giriguru maurkhyādyakṣaḥ śiśoriva || 22 ||

This prize we want to reach is only a thing of the mind, and this task before us is the same. Out of sheer foolishness it has grown as heavy as a mountain for us, the way a ghost looks huge to a child.

जो चीज़ हमें पानी है, वह सिर्फ मन की बात है, और यह जो काम करना है, वह भी वैसे ही मन की बात है। हमारी अपनी मूर्खता से यह हमें पहाड़ जैसा भारी लगने लगा है, जैसे किसी बच्चे को भूत बहुत बड़ा दिखता है।

5.2.23

परमां शान्तिमागत्य गतसंसारसंभ्रमा । बालेव लब्धदयिता कंचित्प्राप्स्यति नो मतिः ॥ २३ ॥

paramāṃ śāntimāgatya gatasaṃsārasaṃbhramā | bāleva labdhadayitā kaṃcitprāpsyati no matiḥ || 23 ||

Our mind, once the confusion of this world has left it and it has come to supreme peace, will reach some state, the way a young girl does on finding her beloved.

जब संसार का यह भ्रम मिट जाएगा और हमारी बुद्धि परम शांति को पा लेगी, तब वह किसी दशा को पा लेगी, बिलकुल वैसे जैसे कोई युवती अपने प्रियतम को पाकर पाती है।

5.2.24

कदोपशान्तसंरम्भं विगताशेषकौतुकम् । अपापमात्मविश्रान्तं मम स्यात्पावनं मनः ॥ २४ ॥

kadopaśāntasaṃrambhaṃ vigatāśeṣakautukam | apāpamātmaviśrāntaṃ mama syātpāvanaṃ manaḥ || 24 ||

When will my mind, its turmoil calmed, all its restless curiosity gone, free of wrongdoing, resting in the self, become pure?

मेरा मन कब पवित्र होगा, जब उसकी सारी हलचल शांत हो जाएगी, उसकी बेचैन उत्सुकता खत्म हो जाएगी, वह पाप से मुक्त होकर आत्मा में विश्राम पाएगा?

5.2.25

कलाकलापसंपूर्णाच्छशाङ्कादपि शीतले । पदे सुरूढं विश्रम्य भ्रमिष्यामि कदा जगत् ॥ २५ ॥

kalākalāpasampūrṇācchaśāṅkādapi śītale | pade surūḍhaṃ viśramya bhramiṣyāmi kadā jagat || 25 ||

When, having settled firmly into a state cooler than the moon at its very fullest, will I go wandering through the world?

जब मैं पूरे चांद से भी ज़्यादा ठंडी उस अवस्था में मज़बूती से टिककर विश्राम पा लूंगा, तब मैं संसार में कब घूमूंगा?

5.2.26

कलनापेलवं रूपमुत्सृज्यालीनमात्मनि कदैष्यति मनः शान्तिमम्भसीव तरङ्गकः ॥ २६ ॥

kalanāpelavaṃ rūpamutsṛjyālīnamātmani kadaiṣyati manaḥ śāntimambhasīva taraṅgakaḥ || 26 ||

When, having given up its fragile shape of restless activity and merged into the self, will the mind come to rest, the way a small wave settles into the water?

जब मन अपना वह कमज़ोर, बेचैन रूप छोड़कर आत्मा में लीन हो जाएगा, तब वह कब शांत होगा, जैसे पानी में एक छोटी लहर शांत हो जाती है?

5.2.27

तृष्णातरङ्गाकुलितमाशामकरमालिनम् कदा संसारजलधिं तीर्त्वा स्यामहमज्वरः ॥ २७ ॥

tṛṣṇātaraṅgākulitamāśāmakaramālinam kadā saṃsārajaladhiṃ tīrtvā syāmahamajvaraḥ || 27 ||

When, having crossed the ocean of this world, churned by waves of craving and ringed with the crocodiles of hope, will I be free of this burning fever?

जब मैं तृष्णा की लहरों से उथल-पुथल और आशा रूपी मगरमच्छों से भरे इस संसार-सागर को पार कर लूंगा, तब मैं इस जलन भरे बुखार से कब मुक्त होऊंगा?

5.2.28

कदोपशमशुद्धासु पदवीषु विचक्षणाः मुमुक्षूणां निवत्स्यामो निःशोकं समदर्शनाः ॥ २८ ॥

kadopaśamaśuddhāsu padavīṣu vicakṣaṇāḥ mumukṣūṇāṃ nivatsyāmo niḥśokaṃ samadarśanāḥ || 28 ||

When, made wise and seeing all things alike, free of sorrow, will we come to dwell on the paths of those who seek freedom, paths purified by peace?

जब हम बुद्धिमान बनकर, सब कुछ एक समान नज़र से देखते हुए, शोक-रहित होकर, मुक्ति चाहने वालों के उन रास्तों पर बसेंगे जो शांति से शुद्ध हैं?

5.2.29

संतापितसमस्ताङ्गः सर्वधातुभयंकरः संसृतिज्वर आदीर्घः कदा नाशमुपैष्यति ॥ २९ ॥

saṃtāpitasamastāṅgaḥ sarvadhātubhayaṃkaraḥ saṃsṛtijvara ādīrghaḥ kadā nāśamupaiṣyati || 29 ||

This fever of worldly life, which burns every limb, which is a terror to every part of the body, and which has run on so long, when will it come to its end?

यह संसार का बुखार, जो हर अंग को झुलसाता है, जो शरीर के हर हिस्से के लिए डरावना है, और जो इतने लंबे समय से चला आ रहा है, वह कब खत्म होगा?

5.2.30

निर्वातदीपलेखेव कदा चित्तं गतव्यथम् शममेष्यति हे बुद्धे सुप्रकाशघनान्तरम् ॥ ३० ॥

nirvātadīpalekheva kadā cittaṃ gatavyatham śamameṣyati he buddhe suprakāśaghanāntaram || 30 ||

O Intellect, when will my mind, its pain gone, come to a stillness that shines steady and full within, the way the flame of a lamp stays still where there is no wind?

हे बुद्धि, मेरा मन अपना सारा दुख छोड़कर कब ऐसी शांति पाएगा जो भीतर से भरपूर रोशनी से चमके, जैसे बिना हवा वाली जगह में दीये की लौ स्थिर रहती है?

5.2.31

कदेन्द्रियाणि दुःखेभ्यः संतरिष्यन्ति हेलया । दुरीहादग्धदेहानि गरुत्मन्त इवार्णवान् ॥ ३१ ॥

kadendriyāṇi duḥkhebhyaḥ saṃtariṣyanti helayā | durīhādagdhadehāni garutmanta ivārṇavān || 31 ||

When will the senses, their bodies scorched by wrong desire, cross over their sorrows with ease, the way Garuda flies over the oceans?

जब इंद्रियां, जिनका शरीर गलत इच्छा से जला हुआ है, अपने दुखों को उतनी ही आसानी से पार कर लेंगी, जैसे गरुड़ समुद्रों को पार कर जाता है?

5.2.32

अयं सोऽहं रुदन्मूढ इति व्यर्थाहितो भ्रमः । शरदीवासितो मेघः कदा नाशमुपैष्यति ॥ ३२ ॥

ayaṃ so'haṃ rudanmūḍha iti vyarthāhito bhramaḥ | śaradīvāsito meghaḥ kadā nāśamupaiṣyati || 32 ||

This delusion, this one is that one, I am he, I am weeping, I am a fool, set up for nothing, when will it come to an end, the way a dark cloud fades away in autumn?

यह भ्रम कि यह वह है, मैं वही हूं, मैं रो रहा हूं, मैं मूर्ख हूं, जो बेकार ही बैठा हुआ है, वह कब मिटेगा, जैसे शरद ऋतु में काला बादल छंट जाता है?

5.2.33

मन्दारवनलेखासु या मतिः सा तृणायते । याचे तत्पदमात्मीयं संप्राप्स्यामः कदा वयम् ॥ ३३ ॥

mandāravanalekhāsu yā matiḥ sā tṛṇāyate | yāce tatpadamātmīyaṃ saṃprāpsyāmaḥ kadā vayam || 33 ||

The mind that prizes rows of mandara trees in heaven comes, in that state, to seem no more than grass. I beg for that state which is my very own, when will we reach it?

जो मन मंदार के पेड़ों की कतारों को कीमती समझता है, वह भी उस अवस्था में तिनके जैसा तुच्छ लगने लगता है। मैं अपने उस असली पद को मांगता हूं, हम उसे कब पाएंगे?

5.2.34

वीतरागजनप्रोक्ता निर्मला ज्ञानदृष्टयः । कच्चित्पदं त्वयि मनः करिष्यन्तीति मे वद ॥ ३४ ॥

vītarāgajanaproktā nirmalā jñānadṛṣṭayaḥ | kaccitpadaṃ tvayi manaḥ kariṣyantīti me vada || 34 ||

Tell me, will the pure insights of knowledge, taught by those free of desire, ever settle my mind firmly on you?

मुझे बताओ, क्या इच्छाओं से मुक्त लोगों की सिखाई ये निर्मल ज्ञान की दृष्टियां कभी मेरे मन को तुझमें स्थिर कर पाएंगी?

5.2.35

हा तात मातः पुत्रेति गिरामासामहं पुनः । भाजनं चित्त माभूवं भोजनं दुःखभोगिनाम् ॥ ३५ ॥

hā tāta mātaḥ putreti girāmāsāmahaṃ punaḥ | bhājanaṃ citta mābhūvaṃ bhojanaṃ duḥkhabhoginām || 35 ||

Oh mind, let me not become again the vessel for cries of oh father, oh mother, oh son, the meal for those who feed on sorrow.

हे मन, मैं फिर से हाय पिता, हाय मां, हाय बेटा जैसी पुकारों का बर्तन न बनूं, उन लोगों का निवाला न बनूं जो दुख खाते हैं।

5.2.36

हे बुद्धे भगिनि भ्रातुरर्थितां पूरयाशु मे । आवयोर्दुःखमोक्षाय विचारय मुनेर्गिरः ॥ ३६ ॥

he buddhe bhagini bhrāturarthitāṃ pūrayāśu me | āvayorduḥkhamokṣāya vicāraya munergiraḥ || 36 ||

O Intellect, my sister, fulfill your brother's plea quickly. Think through the sage's words, so both of us may be freed from sorrow.

हे बुद्धि, हे बहन, अपने भाई की यह विनती जल्दी पूरी कर। हम दोनों के दुख से छुटकारे के लिए मुनि के वचनों पर विचार कर।

5.2.37

त्वां पादपतितः प्रीत्या याचे सति सुते मते । तेन भव्ये भवोच्छेदभूतये सुस्थिरा भव ॥ ३७ ॥

tvāṃ pādapatitaḥ prītyā yāce sati sute mate | tena bhavye bhavocchedabhūtaye susthirā bhava || 37 ||

Falling at your feet, I beg you with love, good one, my daughter, my mind, stand firm for this, good lady, so as to cut off this life of coming and going.

तेरे पैरों पर गिरकर मैं प्रेम से तुझसे विनती करता हूं, हे सती, हे बेटी, हे मन, इसी के लिए, हे भद्रे, तू दृढ़ हो जा, ताकि यह जन्म-मरण का सिलसिला कट जाए।

5.2.38

वसिष्ठमुनिना प्रोक्ता विरक्ताः प्रथमं गिरः । ततो मुमुक्षोराचार उत्पत्तीनां क्रमस्ततः ॥ ३८ ॥

vasiṣṭhamuninā proktā viraktāḥ prathamaṃ giraḥ | tato mumukṣorācāra utpattīnāṃ kramastataḥ || 38 ||

First came the words on dispassion spoken by the sage Vasishtha. Then came the conduct of the seeker of freedom. Then, after that, the order of how things come into being.

पहले वैराग्य की बातें आईं, जो मुनि वसिष्ठ ने कहीं। फिर मुक्ति चाहने वाले के आचरण की बात आई। और उसके बाद चीज़ों की उत्पत्ति का क्रम आया।

5.2.39

ततः स्थितिप्रकरणं समं दृष्टान्तसुन्दरम् । विज्ञानगर्भसुलभं यथावत्स्मर हे मते ॥ ३९ ॥

tataḥ sthitiprakaraṇaṃ samaṃ dṛṣṭāntasundaram | vijñānagarbhasulabhaṃ yathāvatsmara he mate || 39 ||

Then, O mind, remember rightly the chapter on how things are sustained, just as beautiful with its examples, and just as rich with the wisdom held inside it.

फिर, हे मन, स्थिति वाले उस प्रकरण को ठीक से याद कर, जो पहले जैसा ही उदाहरणों से सुंदर है और भीतर के ज्ञान से उतना ही भरपूर है।

5.2.40

कृतमतिं शतशो विचारितं यद्यदि तदुपैति न मानसस्य बुद्धिः । भवति तदफलं शरद्घनाभं सततमतो मतिरेव कार्यसारः ॥ ४० ॥

kṛtamatiṃ śataśo vicāritaṃ yadyadi tadupaiti na mānasasya buddhiḥ | bhavati tadaphalaṃ śraddhanābhaṃ satatamato matireva kāryasāraḥ || 40 ||

Whatever is turned over and settled a hundred times, if the mind's understanding does not truly take it up, it always comes to nothing, the way a cloud in autumn does. So a firm, settled mind is the one true essence of any task.

जिस बात पर सौ बार सोच-विचार करके निश्चय किया गया हो, अगर मन की समझ उसे सचमुच अपना न ले, तो वह हमेशा शरद ऋतु के बादल की तरह बेकार साबित होता है। इसलिए दृढ़ निश्चय ही किसी भी काम का असली सार है।

Chapter 3

5.3.1

श्रीवाल्मीकिरुवाच । तस्यैवंप्रायया तत्र ततयोदारचिन्तया । सा व्यतीयाय रजनी पद्मस्येवार्ककाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

śrīvālmīkiruvāca | tasyaiavaṃprāyayā tatra tatayodāracintayā | sā vyatīyāya rajanī padmasyevārkakāṅkṣiṇaḥ || 1 ||

Sri Valmiki said: there, lost in such deep and noble thoughts, Rama passed that night the way a lotus passes the night longing for the sun.

श्री वाल्मीकि ने कहा कि वहाँ राम ऐसे ही गहरे और ऊँचे विचारों में डूबे रहे, और वह रात उनकी वैसे ही बीती जैसे कमल के लिए रात सूरज की चाह में बीतती है।

5.3.2

किंचित्तमःकडारासु किंचिदप्यरुणासु च । नभोविरलतारासु दिक्षु संमार्जितास्विव ॥ २ ॥

kiñcittamaḥkaḍārāsu kiñcidapyaruṇāsu ca | nabhoviralatārāsu dikṣu saṃmārjitāsviva || 2 ||

The directions had turned a little dark still, a little red with the coming dawn, and the stars in the sky had thinned out, as if the sky itself had been swept clean.

दिशाएँ अभी थोड़ी काली थीं, थोड़ी लाल होने लगी थीं सुबह के रंग से, और आकाश के तारे कम हो गए थे, जैसे आकाश को साफ करके बुहार दिया गया हो।

5.3.3

प्रभाततूर्यघोषेण सममिन्दुसमाननः । उत्तस्थौ राघवः श्रीमान्पद्मः पद्मकरादिव ॥ ३ ॥

prabhātatūryaghoṣeṇa samamindusamānanaḥ | uttasthau rāghavaḥ śrīmānpadmaḥ padmakarādiva || 3 ||

Together with the sound of the dawn drums, Rama rose, glorious and moon-faced, like a lotus opening at the touch of the sun.

सुबह के नगाड़ों की आवाज़ के साथ ही राम उठे, तेजस्वी और चाँद जैसे मुखवाले, जैसे सूरज के छूते ही कमल खिल उठता है।

5.3.4

प्रातःस्नानविधिं कृत्वा संपाद्य भ्रातृभिः पुनः । प्रहितालपपरीवारो वसिष्ठसदनं ययौ ॥ ४ ॥

prātaḥsnānavidhiṃ kṛtvā saṃpādya bhrātṛbhiḥ punaḥ | prahitālpaparīvāro vasiṣṭhasadanaṃ yayau || 4 ||

After finishing the morning bath along with his brothers, and taking only a small group with him, he went to Vasishtha's house.

अपने भाइयों के साथ सुबह का स्नान करने के बाद, वे थोड़े से लोगों को साथ लेकर वसिष्ठ के घर गए।

5.3.5

समाधिसंस्थमेकान्ते मुनिमात्मपरायणम् । दूर एवाननामासौ रामो विनतकन्धरः ॥ ५ ॥

samādhisansthaṃ ekānte munimātmaparāyaṇam | dūra evānanāmāsau rāmo vinatakandharaḥ || 5 ||

He saw the sage sitting alone, deep in meditation, absorbed in himself, and Rama bowed his head to him from a distance.

उन्होंने ऋषि को अकेले बैठे देखा, गहरे ध्यान में, अपने ही भीतर लीन, और राम ने दूर से ही सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया।

5.3.6

तं प्रणम्याङ्गणे तस्थुस्तस्मिंस्ते विनयान्विताः । यावत्तमः समालूनं व्यक्तं दिङ्मुखमण्डलम् ॥ ६ ॥

taṃ praṇamyāṅgaṇe tasthustasmins te vinayānvitāḥ | yāvattamaḥ samālūnaṃ vyaktaṃ diṅmukhamaṇḍalam || 6 ||

Bowing to him, they stood there in the courtyard with respect, until the darkness had fully lifted and the whole sky around had become clear.

उन्हें प्रणाम करके, वे सब आदर से आँगन में खड़े रहे, जब तक अंधेरा पूरी तरह छँट नहीं गया और चारों ओर का आकाश साफ नहीं हो गया।

5.3.7

राजानो राजपुत्राश्च ऋषयो ब्राह्मणास्ततः । आययुः सदनं मौनं ब्रह्मलोकमिवामराः ॥ ७ ॥

rājāno rājaputrāśca ṛṣayo brāhmaṇāstataḥ | āyayuḥ sadanaṃ maunaṃ brahmalokamivāmarāḥ || 7 ||

Kings and princes, sages and Brahmins then came to the house, silent, like gods coming to Brahma's world.

फिर राजा और राजकुमार, ऋषि और ब्राह्मण चुपचाप उस घर में आए, जैसे देवता ब्रह्मा के लोक में आते हैं।

5.3.8

तद्वसिष्ठस्य सदनं बभूव जनसंकुलम् । हस्त्यश्वरथसंबाधं पार्थिवाचारशोभनम् ॥ ८ ॥

tadvasiṣṭhasya sadanaṃ babhūva janasankulam | hastyaśvarathasambādhaṃ pārthivācāraśobhanam || 8 ||

Vasishtha's house filled up with people, crowded with elephants, horses and chariots, and it shone with the customs of royal ceremony.

वसिष्ठ का घर लोगों से भर गया, हाथी-घोड़े और रथों से भर गया, और राजसी रीति-रिवाज़ से चमक उठा।

5.3.9

क्षणाद्वसिष्ठो भगवान्विरराम समाधितः । आचारेणोपचारेण जग्राह प्रणतं जनम् ॥ ९ ॥

kṣaṇādvasiṣṭho bhagavānvirarāma samādhitaḥ | ācāreṇopacāreṇa jagrāha praṇataṃ janam || 9 ||

In a moment the blessed Vasishtha came out of his meditation, and with proper manner and courtesy he received the people who had bowed to him.

एक ही पल में पूजनीय वसिष्ठ अपने ध्यान से बाहर आए, और उचित रीति और शिष्टाचार से उन लोगों का स्वागत किया जिन्होंने उन्हें प्रणाम किया था।

5.3.10

तथानुयातो मुनिभिर्विश्वामित्रान्वितो मुनिः । आरुरोह रथं श्रीमान्सहसाब्जमिवाब्जजः ॥ १० ॥

tathānuyāto munibhirviśvāmitrānvito muniḥ | āruroha rathaṃ śrīmānsahasābjamivābjajaḥ || 10 ||

Then, followed by the sages and accompanied by Vishvamitra, the glorious sage suddenly mounted the chariot, like Brahma, who was born from a lotus, mounting a lotus.

फिर ऋषियों के साथ और विश्वामित्र को लेकर, वे तेजस्वी ऋषि अचानक रथ पर चढ़ गए, जैसे कमल से जन्मे ब्रह्मा किसी कमल पर बैठ जाते हैं।

5.3.11

ययौ गृहं दाशरथं सैन्येन महता वृतःब्रह्मेव शक्रनगरं समस्तसुरमालितः ॥ ११ ॥

yayau gṛhaṃ dāśarathaṃ sainyena mahatā vṛtaḥbrahmeva śakranagaraṃ samastasuramālitaḥ || 11 ||

Surrounded by a great army, he went to Dasharatha's house, like Brahma going to Indra's city, attended by all the gods.

एक बड़ी सेना से घिरे हुए, वे दशरथ के घर गए, जैसे ब्रह्मा सारे देवताओं के साथ इंद्र की नगरी जाते हैं।

5.3.12

विवेशावनतां तत्र रम्यां दाशरथीं सभाम्हंसयूथानुवलितो राजहंस इवाब्जिनीम् ॥ १२ ॥

viveśāvanatāṃ tatra ramyāṃ dāśarathīṃ sabhāmhaṃsayūthānuvalito rājahaṃsa ivābjinīm || 12 ||

There he entered Dasharatha's lovely assembly hall, where everyone bowed down before him, like a royal swan entering a lotus pond, followed by a flock of swans.

वहाँ वे दशरथ की सुंदर सभा में गए, जहाँ सब उनके सामने झुक गए, जैसे राजहंस हंसों के झुंड के साथ किसी कमल-तालाब में उतरता है।

5.3.13

त्रीणि तत्र पदान्याशु तदा दशरथो नृपःनिर्जगाम महावीरः सिंहासनसमुत्थितः ॥ १३ ॥

trīṇi tatra padānyāśu tadā daśaratho nṛpaḥnirjagāma mahāvīraḥ siṃhāsanasamutthitaḥ || 13 ||

There King Dasharatha, that great hero, rose quickly from his throne and went forward three steps.

वहाँ महावीर राजा दशरथ तुरंत अपने सिंहासन से उठे और आगे तीन कदम चले।

5.3.14

विविशुस्तत्र ते सर्वे नृपा दशरथादयःवसिष्ठाद्याश्च मुनयो ऋषयो ब्राह्मणास्तथा ॥ १४ ॥

viviśustatra te sarve nṛpā daśarathādayaḥvasiṣṭhādyāśca munayo ṛṣayo brāhmaṇāstathā || 14 ||

There all of them entered - the kings headed by Dasharatha, and the sages, seers and Brahmins headed by Vasishtha.

वहाँ वे सब अंदर आए - दशरथ के साथ बाकी राजा, और वसिष्ठ के साथ बाकी मुनि, ऋषि और ब्राह्मण।

5.3.15

मन्त्रिणश्च सुमन्त्राद्याः सौम्याद्याश्च विपश्चितःराजपुत्राश्च रामाद्या मन्त्रिपुत्राः शुभादयः ॥ १५ ॥

mantriṇaśca sumantrādyāḥ saumyādyāśca vipaścitaḥrājaputrāśca rāmādyā mantriputrāḥ śubhādayaḥ || 15 ||

And the ministers headed by Sumantra, the wise counsellors headed by Saumya, the princes headed by Rama, and the ministers' sons headed by Shubha.

और सुमंत्र के साथ बाकी मंत्री, सौम्य के साथ बाकी बुद्धिमान सलाहकार, राम के साथ बाकी राजकुमार, और शुभ के साथ बाकी मंत्री-पुत्र।

5.3.16

अमात्याद्याः प्रकृतयः सुहोत्राद्याश्च नागराः। मालवाद्यास्तथा भृत्याः पौराद्याश्चैव मालिनः ॥ १६ ॥

amātyādyāḥ prakṛtayaḥ suhotrādyāśca nāgarāḥ| mālavādyāstathā bhṛtyāḥ paurādyāścaiva mālinaḥ || 16 ||

The officers of state, with the ministers first, the townsfolk headed by Suhotra, the servants headed by Malava, and the garland-bearers headed by Paura.

मंत्रियों से शुरू करके राज्य के सारे अधिकारी, सुहोत्र के साथ बाकी नगरवासी, मालव के साथ बाकी सेवक, और पौर के साथ बाकी माली।

5.3.17

अथ तेषूपविष्टेषु स्वेषु स्वेष्वासनेषु च । सर्वेष्वेवोपविष्टेषु वसिष्ठोन्मुखदृष्टिषु ॥ १७ ॥

atha teṣūpaviṣṭeṣu sveṣu sveṣvāsaneṣu ca| sarveṣvevopaviṣṭeṣu vasiṣṭhonmukhadṛṣṭiṣu || 17 ||

Then, once all of them were seated, each in his own seat, and all sat there with their eyes turned up toward Vasishtha,

फिर जब वे सब अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए, और सब वसिष्ठ की ओर आँखें उठाए बैठे थे,

5.3.18

सभाकलकले शान्ते मौनसंस्थेषु बन्दिषु । वृत्तासु स्थितिवार्तासु सौम्ये तस्मिन्सभान्तरे ॥ १८ ॥

sabhākalakale śānte maunasaṃstheṣu bandiṣu| vṛttāsu sthitivārtāsu saumye tasmin sabhāntare || 18 ||

when the noise of the assembly had quieted down, when the heralds had fallen silent, and the usual words of greeting had been exchanged, in that calm hall,

जब सभा का शोर शांत हो गया, जब उद्घोषक भी चुप हो गए, और हाल-चाल पूछने की सामान्य बातें हो चुकी थीं, उस शांत सभा में,

5.3.19

स्फुरत्पवनमालासु विशत्स्वम्भोजकोटरात् । परागेषु विलोलेषु मुक्तादामसु चञ्चलम् ॥ १९ ॥

sphuratpavanamālāsu viśatsvambhojakoṭarāt| parāgeṣu viloleṣu muktādāmasu cañcalam || 19 ||

the wind stirred the garlands, and pollen streamed out of the hollow of the lotuses, drifting and trembling among the strings of pearls.

हवा से मालाएँ हिल रही थीं, और कमलों के भीतर से पराग बिखरकर मोतियों की लड़ियों के बीच काँपता हुआ उड़ रहा था।

5.3.20

बृहत्कुसुमदोलाभ्यः प्रसृताभ्यः समंततः । वाति मांसलमामोदमादाय मधुरानिले ॥ २० ॥

bṛhatkusumadolābhyaḥ prasṛtābhyaḥ samaṃtataḥ| vāti māṃsalamāmodamādāya madhurānile || 20 ||

From the great flower-swings spread out on every side, a sweet breeze blew, carrying with it a rich fragrance.

चारों ओर फैले बड़े-बड़े फूलों के झूलों से एक मीठी हवा बह रही थी, जो अपने साथ एक गहरी खुशबू लाती थी।

5.3.21

वातायनेषु मृदुषु कुसुमाकीर्णभूमिषु पर्यङ्केषूपविष्टासु पश्यन्तीषु पुरंध्रिषु ॥ २१ ॥

vātāyaneṣu mṛduṣu kusumākīrṇabhūmiṣu paryaṅkeṣūpaviṣṭāsu paśyantīṣu puraṁdhṛṣu || 21 ||

At the soft windows, on couches spread with flowers, noble women sat and watched.

मुलायम खिड़कियों के पास, फूलों से बिछे हुए पलंगों पर, कुलीन स्त्रियाँ बैठी देख रही थीं।

5.3.22

जालागतार्ककरलोलविलोचनासु रत्नप्रभानिकरपिङ्गलकोमलासु संत्यक्तचापललवं चपलासु तासु मौनस्थितासु सितचामरधारिणीषु ॥ २२ ॥

jālāgatārkakaralolavilocanāsu ratnaprabhānikarapiṅgalakomalāsu saṁtyaktacāpalalavaṁ capalāsu tāsu maunasthitāsu sitacāmaradhāriṇīṣu || 22 ||

Their eyes flickered with the sunlight falling through the lattice-windows, and their skin glowed soft and golden in the mass of light thrown off by the jewels. Restless as they were, they had set their restlessness aside, standing silent and holding white fly-whisks.

जाली वाली खिड़कियों से आती धूप से उनकी आँखें चमक रही थीं, और गहनों की चमक से उनकी त्वचा सुनहरी और मुलायम दिख रही थी। चंचल होते हुए भी उन्होंने अपनी चंचलता एक तरफ रख दी थी, और वे चुपचाप खड़ी सफेद चँवर लिए हुए थीं।

5.3.23

मुक्ताफलप्रतिफलप्रतिमार्करश्मिरागोदरास्वजिरभूमिषु पुष्पकौघम् नासादयत्यभिनवातपबिम्बबुद्ध्या भ्रान्ते भ्रमत्यलिकुले नभसीव मेघे ॥ २३ ॥

muktāphalapratiphalapratimārkaraśmirāgodarāsvajirabhūmiṣu puṣpakaugham
nāsādayatyabhinavātapabimbabuddhyā bhrānte bhramatyalikule nabhasīva megha || 23 ||

The courtyard floor shone with the color of sunlight reflected in pearls. Bees swarmed there in confusion, mistaking that gleam for real sunlight, and could not find the heap of flowers, wandering about like a cloud adrift in the sky.

आँगन का फर्श मोतियों में झलकती धूप जैसे रंग से चमक रहा था। वहाँ भौंरे उलझन में भटक रहे थे, उस चमक को असली धूप समझकर, और फूलों के ढेर को ढूँढ नहीं पा रहे थे - वे आकाश में उड़ते बादल की तरह इधर-उधर भटक रहे थे।

5.3.24

पुण्यैर्वसिष्ठवदनप्रसृतं श्रुतं यत्तत्संततिप्रसृतविस्मयमार्यलोके सत्संगमे
मृदुपदाक्षरमुग्धवाक्यमन्योन्यमीप्सितमनल्पगुणाभिरामम् ॥ २४ ॥

puṇyairvasiṣṭhavadanaprasṛtaṁ śrutaṁ yattatsaṁtatiprasṛtavismayamāryaloke satsaṅgame
mṛdupadākṣaramugdhavākyamanonyamīpsitamanalpaguṇābhirāmam || 24 ||

Because of their merit, people heard the words that flowed from Vasishtha's mouth. That speech spread wonder from one person to the next among the good and noble gathered there; in that meeting of good people it was gentle in word and sound, charming, wished for by everyone, and pleasing with countless good qualities.

अपने पुण्य के कारण ही लोगों ने वसिष्ठ के मुख से निकले वे वचन सुने। वह वाणी वहाँ जुटे भले और श्रेष्ठ लोगों में एक से दूसरे तक अचरज फैलाती गई; उन भले लोगों की उस सभा में वह वाणी शब्दों और स्वर में कोमल थी, मनमोहक थी, सब उसे चाहते थे, और अनगिनत अच्छे गुणों से भरी होने के कारण मन को भाती थी।

5.3.25

दिग्भ्यः पुराच्च गगनाच्च वनाच्च सिद्धविद्याधरार्यमुनिविप्रगणे वसिष्ठम् मौनप्रप्राणमभितः प्रविशत्यशब्दं सोपांशु गौरववता सह जातवाक्ये ॥ २५ ॥

digbhyaḥ purācca gaganācca vanācca siddhavidyādharāryamunivipragane vasishthaṁ
maunapraprāṇamabhitaḥ praviśaty aśabdaṁ sopāṁśu gauravavatā saha jātavākye || 25 ||

From the city, from the sky, and from the forest, a crowd of Siddhas, Vidyadharas, noble sages and Brahmins pressed close around Vasishtha on every side. A hush fell; then, softly and without noise, words began to be spoken, full of respect.

नगर से, आकाश से, और वन से, सिद्धों, विद्याधरों, श्रेष्ठ मुनियों और ब्राह्मणों की भीड़ चारों ओर से वसिष्ठ के पास आकर जुट गई। सब पर सन्नाटा छा गया; फिर धीरे-धीरे, बिना शोर के, आदर भरे शब्द बोले जाने लगे।

5.3.26

उन्निद्रकोकनदकोमलकोशकृष्टमग्नालिजालमकरन्दसुवर्णरागैः। आपिङ्गले मरुति वाति
विलोलघण्टाटांकारगीतविनिपीतनिशान्तगीते ॥ २६ ॥

unnidrakokanadakomalakośakṛṣṭamagnālijālamakarandasuvarṇarāgaiḥ| āpiṅgale maruti vāti vilolaghaṇṭāṭāṅkāragītavinipītanishāntagīte || 26 ||

The breeze blew reddish-gold, rich with the color of the honey that bees, buried deep in the soft cups of blooming red lotuses, had drawn out. In that breeze, the songs of daybreak were drowned by the tinkling of swaying bells.

हवा लाल-सुनहरे रंग की बह रही थी, उस शहद के रंग से भरी हुई जिसे भौंरों ने खिले हुए लाल कमलों की मुलायम पंखुड़ियों में गहरे धँसकर निकाला था। उसी हवा में सुबह के गीत हिलती हुई घंटियों की टुनटुनाहट में दब गए थे।

5.3.27

अगुरुतगरधूमे चन्दनामोदमिश्रे सरसकुसुमदामोद्दामगन्धाङ्किताभ्रे। सरति सति वितानाम्भोरुहामोदलेशैश्चलकुसुमरजोङ्के शब्दविज्ञातभृङ्गम् ॥ २७ ॥

agurutagaradhūme candanāmodamiśre sarasakusumadāmoddāmagandhāṅkitābhre| sarati sati vitānāmbhoruhāmodaleśaiścalakusumarajoṅke śabdavijñātabhṛṅgam || 27 ||

The smoke of aloe-wood and tagara incense, mixed with the scent of sandalwood, drifted through air streaked with the wild fragrance of fresh flower garlands. Carrying with it faint traces of the lotus-scent from the canopy above, it drifted over ground scattered with fluttering flower-pollen, where bees could be told apart only by the sound of their humming.

अगर और तगर की धूप का धुआँ, चंदन की खुशबू में मिलकर, ताज़े फूलों की तेज़ महक से भरी हवा में बहता रहा। ऊपर के मंडप के कमलों की हल्की खुशबू लिए हुए, वह उस ज़मीन पर बहा जहाँ फूलों के पराग बिखरे और उड़ रहे थे, और जहाँ भौंरों को सिर्फ उनकी गुनगुनाहट की आवाज़ से ही पहचाना जा सकता था।

Chapter 4

5.4.1

श्रीवाल्मीकिरुवाच । मेघगम्भीरया वाचा विश्रब्धपदसुन्दरम् । इदं दशरथो वाक्यमुवाच मुनिनायकम् ॥ १ ॥

śrīvālmīkiruvāca | meghagambhīrayā vācā viśrabdhopadasundaram | idaṃ daśaratho vākyamuvāca munināyakam || 1 ||

Valmiki said: In a voice deep as a cloud, calm and beautiful in its words, Dasharatha spoke these words to the chief of sages.

वाल्मीकि जी बोले, बादल जैसी गंभीर आवाज़ में, शांत और सुंदर शब्दों के साथ, दशरथ ने ऋषियों के प्रधान से यह बात कही।

5.4.2

भगवन्ह्यस्तनेन त्वं वाक्यसंदर्भजन्मना । कच्चिन्मुक्तोऽसि खेदेन तपःकार्श्यातिशायिना ॥ २ ॥

bhagavanhyastanena tvaṃ vākyasaṃdarbhajanmanā | kaccinmukto'si khedena tapḥkārśyātiśāyinā || 2 ||

Lord, are you now free from the weariness born of yesterday's long speech, a weariness greater than even the hardship of your austerities?

हे भगवन, क्या आप कल के लंबे भाषण से हुई उस थकान से अब मुक्त हैं, जो आपकी तपस्या के कष्ट से भी बड़ी थी?

5.4.3

ह्यस्तनोक्तो य आनन्दी विविक्तो वचसां गणः । अमृतावर्षणेनेव तेनैवाश्वासिता वयम् ॥ ३ ॥

hyastanokto ya ānandī vivikto vacasāṃ gaṇaḥ | amṛtāvarṣaṇeneva tenaivāśvāsitā vayam || 3 ||

The joyful, clear stream of words you spoke yesterday comforted us, as if with a rain of nectar.

कल आपने जो आनंद देने वाले और साफ़ शब्द कहे थे, उन्होंने हमें अमृत की बारिश जैसी राहत दी।

5.4.4

चन्द्रांशव इवोत्सार्य तमांस्यमृतनिर्मलाः । अन्तःशीतलयन्त्येता महताममला गिरः ॥ ४ ॥

candrāṃśava ivotsārya tamāṃsyamṛtanirmalāḥ | antaḥśītalyantyetā mahatāmamalā giraḥ || 4 ||

Pure as nectar, like moonbeams driving away the dark, these clean words of great men cool us inside.

जैसे चांदनी अंधेरे को दूर भगा देती है, वैसे ही बड़े लोगों के ये साफ़ शब्द, जो अमृत जैसे शुद्ध हैं, हमें भीतर से ठंडक पहुंचाते हैं।

5.4.5

अपूर्वाह्लाददायिन्य उच्चैस्तरपदाश्रयाः । अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महीयसाम् ॥ ५ ॥

apūrvāhlādadāyinya uccaiḥstarapadāśrayāḥ | atimohāpahāriṇyaḥ sūktayo hi mahīyasām || 5 ||

The sayings of great people give a joy never felt before, they rest on lofty words, and they take away deep delusion.

बड़े लोगों की ये अच्छी बातें ऐसी खुशी देती हैं जो पहले कभी महसूस नहीं हुई, ऊंचे शब्दों का सहारा लेती हैं, और गहरे मोह को मिटा देती हैं।

5.4.6

आत्मरत्नावलोकैकदीपिका सरसात्मिकायमाद्युक्तिलतोदेति स वन्द्यः सुजनद्रुमः ॥ ६ ॥

ātmaratnāvalokaikadīpikā sarasātmikāyamādyuktilatodeti sa vandyaḥ sujanadrumaḥ || 6 ||

The good are a tree worthy of worship. On that tree climbs this sweet creeper of first, true words, the one lamp by which we see the jewel of the self.

अच्छे लोग एक पूजनीय पेड़ जैसे हैं। उसी पेड़ पर यह मीठी, आरंभिक सच्ची बातों की बेल चढ़ती है, जो आत्मा के रत्न को देखने का इकलौता दीया है।

5.4.7

दुरीहितं दुर्विहितं सर्व सज्जनसूक्तयःप्रमार्जयन्ति शीतांशोस्तमःकाण्डमिवाङ्घ्रयः ॥ ७ ॥

durīhitaṃ durvihitaṃ sarva sajjanasūktayaḥpramārjayanti śītāṃśostamaḥkāṇḍamivāṅghrayaḥ || 7 ||

Just as the moon's rays wipe away every mass of darkness, so the good words of good people wipe away every bad wish and every bad deed.

जैसे चांद की किरणें अंधेरे के हर हिस्से को मिटा देती हैं, वैसे ही अच्छे लोगों की अच्छी बातें हर बुरी इच्छा और हर बुरे काम को मिटा देती हैं।

5.4.8

तृष्णालोभादयोऽस्माकं संसारनिगडा मुनेतवोक्त्या तनुतां याताः शरदीवासिताम्बुदाः ॥ ८ ॥

tṛṣṇālobhādayo'smākaṃ saṃsāranigaḍā munetavoktyā tanutāṃ yātāḥ śaradīvāsitāmbudāḥ || 8 ||

Sage, our chains of rebirth, craving, greed and the rest, have grown thin from your words, like dark clouds thinning away in autumn.

हे मुनि, आपकी बातों से हमारे संसार के बंधन, यानी लालसा, लोभ वगैरह, उसी तरह पतले हो गए हैं, जैसे शरद ऋतु में काले बादल पतले होकर छंट जाते हैं।

5.4.9

संप्रवृत्ता वयं द्रष्टुमात्मानमपकल्मषम्रसाञ्जनानीतदृशो जात्यन्धा इव काञ्चनम् ॥ ९ ॥

saṃpravṛttā vayaṃ draṣṭumātmānamapakalmaṣamrasāñjanānītadṛśo jātyandhā iva kāñcanam || 9 ||

We have set out to see the self free of all stain, our sight opened by a magic salve, like people born blind who can now see gold.

हम अब निर्मल आत्मा को देखने चले हैं, मानो हमारी आंखों में वह जादुई अंजन लग गया हो, जिससे जन्म के अंधे लोग भी सोना देख लेते हैं।

5.4.10

संसारवासनानाम्नी मिहिका हृदयाम्बरेप्रवृत्ता तनुतां गन्तुं त्वदुक्तिशरदेव नः ॥ १० ॥

saṃsāravāsanānāmnī mihikā hṛdayāmbarepravṛttā tanutāṃ gantuṃ tvaduktiśaradeva naḥ || 10 ||

Your words are an autumn to us, and because of them the mist named worldly craving, spread across the sky of our hearts, has begun to thin and clear.

आपकी बातें हमारे लिए मानो शरद ऋतु हैं, और इसी से हमारे दिल के आकाश में फैली सांसारिक चाहत नाम की धुंध पतली होकर छंटने लगी है।

5.4.11

मुने मन्दारमञ्जर्यस्तरङ्गा वामृताम्भसः । न तथा ह्लादयन्त्यन्तर्यथोदारधियां गिरः ॥ ११ ॥

mune mandāramañjaryastaraṅgā vāmṛtāmbhasaḥ | na tathā hlādayantyantaryathodāradhiyāṃ giraḥ || 11 ||

Sage, neither the blossoms of the mandara tree nor the waves of the water of life delight us within as much as the words of noble minds do.

हे मुनि, न मंदार वृक्ष के फूल और न अमृत जल की लहरें हमें भीतर से उतना सुख देती हैं, जितना बड़े दिल वालों की बातें देती हैं।

5.4.12

यद्यद्राघव संयाति महाजनसपर्यया । दिनं तदिह सालोकं शेषास्त्वन्धा दिनालयः ॥ १२ ॥

yadyadrāghava saṃyāti mahājanasaparyayā | dinaṃ tadih sālokaṃ śeṣāstvandhā dinālayaḥ || 12 ||

Rama, any day that passes in the service of great people is, in this world, a day with true light. All the other days are blind, they are nothing but empty stretches of time.

हे राम, जो भी दिन बड़े लोगों की सेवा में बीतता है, वही यहां सच्चे उजाले वाला दिन है। बाकी सब दिन अंधे हैं, वे बस खाली समय हैं।

5.4.13

राम राजीवपत्राक्ष प्रकृतार्थमिहाव्ययम् । मुनिमाबोधय पुनः प्रसादे समवस्थितम् ॥ १३ ॥

rāma rājīvapatrākṣa prakṛtārthamihāvyayam | munimābodhaya punaḥ prasāde samavasthitam || 13 ||

Rama, lotus-eyed one, the sage is now settled again in a calm and gracious mood, remind him of the lasting subject we were on.

हे राम, कमल जैसी आंखों वाले, मुनि अब फिर से शांत और प्रसन्न बैठे हैं, उन्हें उस सदा बने रहने वाले विषय की याद दिलाओ जिस पर हम बात कर रहे थे।

5.4.14

इत्युक्तो भूभृता तत्र रामाभिमुखमास्थितः । उवाचेदमुदारात्मा वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ १४ ॥

ityukto bhūbhṛtā tatra rāmābhimukhamāsthitaḥ | uvācedamudārātmā vasiṣṭho bhagavānmuniḥ || 14 ||

Thus addressed by the king, the venerable, noble-hearted sage Vasishtha turned to face Rama and said this.

राजा दशरथ के ऐसा कहने पर, बड़े दिल वाले पूजनीय मुनि वसिष्ठ ने राम की ओर मुंह करके यह कहा।

5.4.15

श्रीवसिष्ठ उवाच । राघव स्वकुलैकेन्दो यन्मयोक्तं महामते । कच्चित्स्मरसि वाक्यार्थं पूर्वापरविचारितम् ॥ १५ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | rāghava svakulaikendō yanmayōktaṃ mahāmatē | kaccitsmarasi vākyārthaṃ pūrvāparavicāritam || 15 ||

Vasishtha said: Rama, sole moon of your family, great-minded one, do you remember the meaning of what I said, thought through fully from beginning to end?

वसिष्ठ जी बोले, हे राम, अपने कुल के इकलौते चांद, हे बुद्धिमान, क्या तुम्हें मेरी कही बात का वह मतलब याद है, जिस पर हमने शुरू से आखिर तक सोच-विचार किया था?

5.4.16

उत्पत्तीनां विचित्राणां सत्त्वादिगुणभेदतः । कच्चित्स्मरसि सर्वासां विभागमरिमर्दन ॥ १६ ॥

utpattīnāṃ vicitrāṇāṃ sattvādiguṇabhedataḥ | kaccitsmarasi sarvāsāṃ vibhāgamariumardana || 16 ||

Crusher of enemies, do you remember how all the many kinds of births are divided by the difference of their qualities, sattva and the rest?

हे शत्रुओं को कुचलने वाले, क्या तुम्हें याद है कि सत्त्व आदि गुणों के फ़र्क़ से हर तरह की अलग-अलग उत्पत्तियां कैसे बंटी हुई हैं?

5.4.17

कश्चित्सर्वमसर्वं च सदसच्च सदोदितम्। रूपं स्मरसि वेत्स्येव विविक्तं परमात्मनः ॥ १७ ॥

kaścitsarvamasarvaṃ ca sadasaccasadoditam | rūpaṃ smarasi vetsyeva viviktaṃ paramātmanaḥ || 17 ||

Do you truly remember and truly know the special form of the highest self, that it is everything and yet nothing at all, that it is being and non-being, and that it is always present?

क्या तुम्हें सचमुच याद है और क्या तुम जानते हो परमात्मा के उस विशेष रूप को, कि वह सब कुछ है और फिर भी कुछ नहीं है, कि वह सत् भी है और असत् भी है, और कि वह सदा विद्यमान है?

5.4.18

यथेदमुदितं विश्वं विश्वेशादेव चेश्वरात्। कच्चित्स्मरसि तत्साधो साधुवादैकभाजन ॥ १८ ॥

yathedamuditaṃ viśvaṃ viśveśādeva ceśvarāt | kaccitsmarasi tatsādho sādhuvādaikabhājana || 18 ||

Do you remember, good man, worthy alone of praise, how this universe arose from the lord of the universe, from Ishvara himself?

क्या तुम्हें याद है, हे साधु पुरुष, जो अकेले प्रशंसा के योग्य हो, कि यह सारा विश्व स्वयं ईश्वर से, विश्व के स्वामी से उत्पन्न हुआ है?

5.4.19

रूपं कच्चिदविद्याया बलाद्भङ्गुरमाततम्। अनन्तमन्तवच्चैव सम्यक्स्मरसि सन्मते ॥ १९ ॥

rūpaṃ kaccidavidyāyā balādbhaṅguramātatam | anantamantavaccaiava samyaksamarasi sanmate || 19 ||

Do you rightly remember, truthful one, the form of ignorance, spread out wide yet easily broken, without end and yet having an end?

हे सत्यनिष्ठ, क्या तुम्हें ठीक से याद है अविद्या का वह रूप, जो दूर तक फैला हुआ है फिर भी बलपूर्वक तोड़ा जा सकता है, जो अनंत है और फिर भी जिसका अंत है?

5.4.20

चित्तमेव नरो नान्यदिति यत्प्रतिपादितम्। लक्षणादिविचारेण कच्चित्स्मरसि साधु तत् ॥ २० ॥

cittameva naro nānyaditi yatpratipāditam | lakṣaṇādivicāreṇa kaccitsmarasi sādhu tat || 20 ||

Do you remember well what was taught, that a person is nothing but mind and nothing else, shown by examining its signs and its nature?

क्या तुम्हें अच्छी तरह याद है जो सिखाया गया था, कि मनुष्य केवल मन है और कुछ नहीं, जो उसके लक्षणों और स्वभाव की जांच से सिद्ध हुआ?

5.4.21

वाक्यार्थश्चाखिलः कच्चित्त्वया राम विचारितः। ह्यस्तनस्य विचारस्य रात्रौ हृदि निवेशितः ॥ २१ ॥

vākyārthaścākhilaḥ kaccittvayā rāma vicāritaḥ| hyastanasya vicārasya rātrau hṛdi niveśitaḥ || 21 ||

Rama, have you thought over the whole meaning of these words? Have you kept yesterday's thinking settled in your heart through the night?

हे राम, क्या तुमने इन वचनों का पूरा अर्थ सोच लिया है? क्या तुमने कल के विचार को रात भर अपने हृदय में बसाए रखा?

5.4.22

भूयोभूयः परामृष्टं हृदये सुनियोजितम्। प्रयोजनं फलत्युच्चैर्न हेलाहतसंस्थितेः ॥ २२ ॥

bhūyobhūyaḥ parāmṛṣṭaṃ hṛdaye suniyojitam| prayojanaṃ phalatyuccairna helāhatasaṃsthiteḥ || 22 ||

Something thought over again and again, and firmly placed in the heart, brings great benefit. Something left in a state of careless neglect does not.

जिसे बार-बार सोचा जाए और हृदय में अच्छी तरह बिठाया जाए, वही बड़ा लाभ देता है। जिसे लापरवाही से छोड़ दिया जाए, वह नहीं देता।

5.4.23

भाजनं त्वं विविक्तानां वचसां शुद्धिशालिनाम्। विविक्तहृदयः कण्ठे मुक्तानामिव राघव ॥ २३ ॥

bhājanaṃ tvaṃ viviktānāṃ vacasāṃ śuddhiśālinām| viviktahṛdayaḥ kaṇṭhe muktānāmiva rāghava || 23 ||

Raghava, you are a vessel for pure, well-chosen words, your heart clear and discerning, like pearls strung at the throat.

हे राघव, तुम शुद्ध और सुविचारित वचनों के पात्र हो, तुम्हारा हृदय स्वच्छ और विवेकी है, जैसे गले में पिरोए हुए मोती।

5.4.24

श्रीवाल्मीकिरुवाच। कमलासनपुत्रेण मुनिना समहौजसा। एवं वितीर्णावसरो रामो वाक्यमुवाच ह ॥ २४ ॥

śrīvālmīkiruvāca| kamalāsana putreṇa muninā samahaujasā| evaṃ vitīrṇāvasaro rāmo vākyamuvāca ha || 24 ||

Sri Valmiki said. When the sage of great power, who was the son of Brahma seated on the lotus, had given Rama this chance to speak, Rama then spoke these words.

श्री वाल्मीकि ने कहा। जब महान तेजस्वी मुनि ने, जो कमल पर बैठने वाले ब्रह्मा के पुत्र थे, राम को इस प्रकार बोलने का अवसर दिया, तब राम ने ये वचन कहे।

5.4.25

श्रीराम उवाच। भगवन्सर्वधर्मज्ञ तवैवैतद्विजृम्भितम्। यदहं परमोदारो बुद्धवान्वचनं तव ॥ २५ ॥

śrīrāma uvāca| bhagavansarvadharmajña tavaivaitadvijṛmbhitam| yadahaṃ paramodāro buddhvānvacanaṃ tava || 25 ||

Sri Rama said. Lord, you who know all dharma, this is entirely your own doing, that I have become so uplifted and have understood your words.

श्री राम ने कहा। हे भगवन, समस्त धर्म के ज्ञाता, यह सब आपका ही किया हुआ है, कि मैं इतना उदार बन गया और आपके वचनों को समझ सका।

5.4.26

यदादिशसि तत्सर्वं तथैव न तदन्यथा। अपास्तनिद्रेण मया वाक्यार्थो हृदि चिन्तितः ॥ २६ ॥

yadādiśasi tatsarvaṃ tathaiva na tadanyathā | apāstanidreṇa mayā vākyārtho hṛdi cintitaḥ || 26 ||

Whatever you teach is exactly as you say, never otherwise. Setting aside sleep, I have thought over the meaning of your words in my heart.

आप जो भी बताते हैं, वह सब वैसा ही है, अन्यथा नहीं। नींद त्यागकर मैंने आपके वचनों के अर्थ पर हृदय में विचार किया है।

5.4.27

भवान्धकारक्षतये भवतोक्तिविवस्वता। ह्यः प्रसादितमाह्लादि वाग्रश्मिपटलं प्रभो ॥ २७ ॥

bhavāndhakārakṣataye bhavatoktivivasvatā | hyaḥ prasāditamāhlādi vāgraśmipataḷaṃ prabho || 27 ||

Lord, to destroy the darkness of this worldly existence, your words are like a sun. Yesterday you spread out that delightful mass of light-like speech.

हे प्रभु, संसार के अंधकार को नष्ट करने के लिए आपके वचन सूर्य के समान हैं। कल आपने वाणी की उन सुखद किरणों का वह समूह फैलाया।

5.4.28

तदतीतमदीनात्मन्सर्वमन्तःकृतं मया । रम्यं पुण्यं पवित्रं च रत्नवृन्दमिवान्वितम् ॥ २८ ॥

tadatītamadīnātman sarvamantaḥkṛtaṃ mayā | ramyaṃ puṇyaṃ pavitraṃ ca ratnavṛndamivānvitam || 28 ||

Noble one, I have taken in all of that past teaching within me, delightful, full of merit, and pure, joined together like a cluster of jewels.

हे उदार आत्मा, वह सब बीता हुआ उपदेश मैंने अपने भीतर धारण कर लिया है, मनोहर, पुण्यमय और पवित्र, मानो रत्नों के समूह की तरह गुँथा हुआ।

5.4.29

हितानुबन्धि हृद्यं च पुण्यमानन्दसाधनम् । शिरसा ध्रियते कैर्नो सिद्धैस्त्वदनुशासनम् ॥ २९ ॥

hitānubandhi hṛdyaṃ ca puṇyamānandasādhanam | śirasā dhriyate kairno siddhais tvadanuśāsanam || 29 ||

Your teaching brings good, delights the heart, is full of merit, and leads to bliss. Which of the wise does not carry it upon their head in honor?

आपका उपदेश कल्याणकारी है, हृदय को भाता है, पुण्यमय है और आनंद का साधन है। ऐसा कौन सिद्ध पुरुष होगा जो इसे सिर झुकाकर आदरपूर्वक न माने?

5.4.30

प्रतिक्षिपन्तः संसारमिहिकावरणं वयम् । प्रसन्नास्त्वत्प्रसादेन वर्षान्त इव वासराः ॥ ३० ॥

pratikṣipantaḥ saṃsāramihikāvaraṇaṃ vayam | prasannāstvatprasādena varṣānta iva vāsarāḥ || 30 ||

Casting off the fog that covers this world, we have become clear through your grace, like days growing clear at the end of the rainy season.

संसार को ढकने वाले कोहरे को हटाकर हम आपकी कृपा से वैसे ही निर्मल हो गए हैं जैसे वर्षा ऋतु के अंत में दिन साफ़ हो जाते हैं।

5.4.31

आपातमधुरारम्भं मध्ये सौभाग्यवर्धनम् । अनुत्तमफलोदर्कं पुण्यं त्वदनुशासनम् ॥ ३१ ॥

āpātamadhurārambhaṃ madhye saubhāgyavardhanam | anuttamaphalodarkaṃ puṇyaṃ tvadanuśāsanam || 31 ||

Your teaching is sweet at the beginning, brings growing good fortune in the middle, and gives its very best result at the end. It is truly good.

आपका उपदेश आरंभ में मीठा है, बीच में सौभाग्य बढ़ाता है, और अंत में सबसे उत्तम फल देता है। यह सचमुच पुण्यकारी है।

5.4.32

विकासिसितमम्लानमाह्लादितशुभाशुभम् । त्वद्वचःकुसुमं नित्यं श्रीमत्फलदमस्तु नः ॥ ३२ ॥

vikāsisiitamamlamāhlāditaśubhāśubham | tvadvacaḥkusumaṃ nityaṃ śrīmatphaladamastu naḥ || 32 ||

May the flower of your speech, ever blooming, white, unfading, delighting us in good times and bad, always give us its glorious fruit.

आपकी वाणी का पुष्प, सदा खिला हुआ, श्वेत, कभी न मुरझाने वाला, सुख और दुख दोनों में आनंद देने वाला, हमें सदा उत्तम फल दे।

5.4.33

सकलशास्त्रविचारविशारद प्रसृतपुण्यजलैकमहाह्रद। भज भृशं विततव्रत संप्रति प्रसृततां हतकिल्बिष संततिम्॥ ३३॥

sakalaśāstravicāravivishārada prasṛtapuṇyajalaikamahāhrada | bhaja bhṛśaṃ vitatavrata saṃprati prasṛtatāṃ hatakilbiṣa saṃtatim || 33 ||

You who are skilled in the study of all scriptures, you who are the one great lake whose sacred waters flow out to all, you who keep long vows, favor with all your strength, even now, this growing gathering whose sins are destroyed.

हे समस्त शास्त्रों के अध्ययन में निपुण, हे पवित्र जल के महान सरोवर, हे महाव्रती, हम पर अपनी पूरी कृपा बरसाइए, जिनके पाप नष्ट हो चुके हैं और जो निरंतर बढ़ रहे हैं।

Chapter 5

5.5.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इदमुत्तमसिद्धान्तसुन्दरं सुन्दराकृते । उपशान्तिप्रकरणं श्रृणुष्वावहितो हितम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | idamuttamasiddhāntasundaraṃ sundarākṛte | upaśāntiprakaraṇaṃ śrṇuṣvāvahito hitam || 1 ||

Sri Vasishtha said: O handsome one, listen carefully to this chapter on peace, beautiful with the highest truth, and good for you.

श्री वशिष्ठ ने कहा: हे सुंदर रूप वाले राम, ध्यान से सुनो यह शांति का प्रकरण, जो सबसे ऊँचे सिद्धांत से सुंदर है और तुम्हारे भले के लिए है।

5.5.2

दीर्घसंसारमायेयं राम राजसतामसैः । धार्यते जन्तुभिर्नित्यं सुस्तम्भैरिव मण्डपः ॥ २ ॥

dīrghasaṃsāramāyeyaṃ rāma rājasatāmasaiḥ | dhāryate jantubhirnityaṃ sustambhairiva maṇḍapaḥ || 2 ||

O Rama, this long illusion of the world is held up all the time by creatures full of passion and dullness, the way good pillars hold up a pavilion.

हे राम, संसार की यह लंबी माया राजसी और तामसी जीवों के सहारे हमेशा टिकी रहती है, जैसे अच्छे खंभे किसी मंडप को टिकाए रखते हैं।

5.5.3

सत्त्वस्यजातिभिर्धीरैस्त्वादृशैर्गुणबृंहितैः । हेलया त्यज्यते पक्वा मायेयं त्वगिवोरगैः ॥ ३ ॥

sattvasya jātibhir dhīraistvādṛśair guṇabṛṃhitaiḥ | helayā tyajyate pakvā māyeyaṃ tvagivoragaiḥ || 3 ||

But those who are born of goodness, steady men like you, full of good qualities, throw off this illusion easily once it is ripe, the way snakes shed their skin.

पर सत्त्व गुण से जन्मे, तुम्हारे जैसे धीर और गुणों से भरपूर लोग, इस पकी हुई माया को आसानी से त्याग देते हैं, जैसे सांप अपनी केंचुली उतार फेंकते हैं।

5.5.4

ये सत्त्वजातयः प्राज्ञास्तथा राजससात्त्विकाः । विचारयन्ति ते साधो जगत्पूर्वपरम्पराम् ॥ ४ ॥

ye sattvajātayaḥ prājñāstathā rājasasāttvikāḥ | vicārayanti te sādho jagatpūrvaparamparām || 4 ||

Those wise people who are born of goodness, and also those in whom passion and goodness are mixed, good man, think deeply about how this world has come down to us from long ago.

जो लोग सत्त्व गुण से जन्मे बुद्धिमान होते हैं, और जो राजस और सात्त्विक दोनों तरह के होते हैं, हे साधु, वे इस पर गहराई से विचार करते हैं कि संसार पुराने समय से किस तरह चला आ रहा है।

5.5.5

शास्त्रसज्जनसत्कार्यसङ्गेनोपहतैनसाम् । सारावलोकिनी बुद्धिर्जायते दीपिकोपमा ॥ ५ ॥

śāstrasajjanasatkāryasaṅgenopahatainasām | sārāvalokinī buddhirjāyate dīpikopamā || 5 ||

For those whose sins are worn away by contact with scripture, good people, and good actions, an understanding that sees what is essential is born in them, like a lamp lighting up.

जिनके पाप शास्त्र, सज्जनों और अच्छे कर्मों के संग से मिट जाते हैं, उनमें सार को देखने वाली बुद्धि पैदा हो जाती है, जैसे कोई दीपक जल उठे।

5.5.6

स्वयमेव विचारेण विचार्यात्मानमात्मना यावन्नाधिगतं ज्ञेयं न तावदधिगम्यते ॥ ६ ॥

svayameva vichāreṇa vichāryātmānamātmanā yāvannādhigataṃ jñeyaṃ na tāvadadhigamyate || 6 ||

Only by inquiring for yourself, examining the self by the self, can the thing that must be known be reached. Until you do this, it is not reached at all.

सिर्फ खुद जांच-पड़ताल करके, अपने आपको अपने आप से परखकर ही वह पाया जाता है जिसे जानना ज़रूरी है। जब तक ऐसा न किया जाए, तब तक वह नहीं पाया जाता।

5.5.7

प्रज्ञावतां नयवतां धीराणां कुलशालिनाम् जात्या राजससत्त्वानां मुख्यस्त्वं रघुनन्दन ॥ ७ ॥

prajñāvatāṃ nayavatāṃ dhīrāṇāṃ kulaśālinām jātyā rājasasattvānāṃ mukhyastvaṃ raghunandana || 7 ||

Among the wise, the fair-minded, the steady, those of good family, and those born with passion and goodness mixed together, you, joy of the Raghu clan, are the best of all.

बुद्धिमानों में, नीतिवानों में, धीर पुरुषों में, अच्छे कुल वालों में, और राजस-सात्त्विक स्वभाव से जन्मे लोगों में, हे रघुनंदन, तुम सबसे श्रेष्ठ हो।

5.5.8

स्वयमालोकय प्राज्ञ संसारारम्भदृष्टिषु किं सत्यं किमसत्यं वा भव सत्यपरायणः ॥ ८ ॥

svayamālokaya prājña saṃsārārambhadṛṣṭiṣu kiṃ satyaṃ kimasatyaṃ vā bhava satyaparāyaṇaḥ || 8 ||

Wise one, look for yourself at how the world seems to begin, and see what in it is true and what is false. Then hold fast to the truth.

हे बुद्धिमान, खुद देखो कि संसार की शुरुआत कैसी दिखती है, उसमें क्या सच है और क्या झूठ, और फिर सच को ही अपना सहारा बनाओ।

5.5.9

आदावन्ते च यन्नास्ति कीदृशी तस्य सत्यता आदावन्ते च यन्नित्यं तत्सत्यं नाम नेतरत् ॥ ९ ॥

ādāvante ca yannāsti kīdṛśī tasya satyatā ādāvante ca yannityaṃ tatsatyaṃ nāma netarat || 9 ||

A thing that is not there at the start and not there at the end, what truth can it have? Only what stays the same at the start and at the end is called true. Nothing else is.

जो चीज़ शुरुआत में भी नहीं होती और अंत में भी नहीं होती, उसमें सच्चाई कैसी? जो शुरुआत में भी और अंत में भी एक जैसी बनी रहती है, वही सच कहलाती है, और कुछ नहीं।

5.5.10

आद्यन्तासन्मये यस्य वस्तुन्यासज्जते मनः तस्य मुग्धपशोर्जन्तोर्विवेकः केन जन्यते ॥ १० ॥

ādyantāsanmaye yasya vastunyāsajjate manaḥ tasya mugdhapaśorjantorvivekaḥ kena janyate || 10 ||

If a person's mind clings to a thing that is unreal at the start and unreal at the end, that person is nothing but a bewildered animal. How can right understanding ever be born in him?

जिसका मन ऐसी चीज़ से चिपका रहता है जो शुरुआत में भी झूठी है और अंत में भी झूठी है, वह इंसान एक भरमाए हुए पशु जैसा है। उसमें सही समझ कैसे पैदा होगी?

5.5.11

सौजन्योपहितं चेतो यदा वैराग्यमागतम्। तदानुगम्या गुरवो विज्ञानगुरवोऽपि ये ॥ ११ ॥

saujanyopahitaṃ ceto yadā vairāgyamāgatam | tadānugamyā guravo vijñānaguravopi ye || 11 ||

When a mind that is kind and good has come to feel dispassion for the world, that is the time to follow teachers, even those who are teachers of true knowledge.

जब भलाई से भरा हुआ मन संसार से वैराग्य पा लेता है, तभी गुरुओं के पीछे चलना चाहिए, चाहे वे सच्चे ज्ञान के गुरु ही क्यों न हों।

5.5.12

श्रीराम उवाच। ज्ञातमेतन्मया ब्रह्मन्यथास्मिन्भुवनत्रये। मन एव हि संसारिजरामरणभाजनम्॥ १२ ॥

śrīrāma uvāca | jñātametanmayā brahmannyathāsminbhuvanatraye | mana eva hi saṃsārijarāmaraṇabhājanam || 12 ||

Sri Rama said: Brahmin, I have understood this, that in these three worlds it is the mind alone that carries old age and death in this life of samsara.

श्री राम ने कहा: हे ब्राह्मण, मैंने यह समझ लिया है कि इन तीनों लोकों में मन ही है जो संसार में बुढ़ापे और मृत्यु को भोगता है।

5.5.13

यस्तस्योत्तरणोपायस्तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्। हार्दं तमस्त्वयार्केण राघवाणां विनाश्यते ॥ १३ ॥

yastasyottaraṇopāyastanme brūhi suniścitam | hārdaṃ tamastvayārkeṇa rāghavāṇāṃ vināśyate || 13 ||

Tell me clearly the sure way to cross beyond it. You are like the sun that destroys the darkness in the heart of us Raghavas.

मुझे निश्चित रूप से बताओ कि इससे पार पाने का उपाय क्या है। तुम सूर्य के समान हो, जो हम रघुवंशियों के हृदय का अंधकार मिटा देते हो।

5.5.14

श्रीवसिष्ठ उवाच। पूर्वं राघव शास्त्रेण वैराग्येण परेण च। तथा सज्जनसङ्गेन नीयतां पुण्यतां मनः ॥ १४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | pūrvaṃ rāghava śāstreṇa vairāgyeṇa pareṇa ca | tathā sajjanasaṅgena nīyatāṃ puṇyatāṃ manaḥ || 14 ||

Sri Vasishtha said: Raghava, first let the mind be guided toward purity by scripture, by the highest dispassion, and by the company of good people.

श्री वशिष्ठ ने कहा: हे राघव, पहले मन को शास्त्र से, परम वैराग्य से, और सज्जनों के संग से पवित्रता की ओर ले जाना चाहिए।

5.5.16

ततस्तस्योपदिष्टेन कृत्वा ध्यानार्चनादिकम्। क्रमेण पदमाप्नोति तद्यत्परमपावनम्॥ १६ ॥

tatastasyopadiṣṭena kṛtvā dhyānārcanādikam | krameṇa padamāpnoti tadyatparamapāvanam || 16 ||

Then, following what the teacher has taught, and practicing meditation, worship, and the rest, a person reaches, step by step, that state which is the purest of all.

फिर, गुरु की सिखाई हुई बातों के अनुसार ध्यान, पूजा आदि करके, इंसान धीरे-धीरे उस सबसे पवित्र अवस्था को पा लेता है।

5.5.17

विचारेणावदातेन पश्यत्यात्मानमात्मना । इन्दुना शीतलेनान्तर्विश्वं खमिव तेजसा ॥ १७ ॥

vicāreṇāvadātena paśyatyātmānamātmanā | indunā śītalenāntarviśvaṃ khamiva tejasā || 17 ||

Through clear, pure inquiry, a person sees the self by the self, and within, sees the whole universe, the way the cool moon lights up the sky with its own glow.

शुद्ध विचार से इंसान अपने आपको अपने आप से देख लेता है, और भीतर पूरे संसार को उसी तरह देख लेता है जैसे शीतल चाँद अपनी रोशनी से आकाश को रोशन कर देता है।

5.5.18

तावद्भवमहाम्भोधौ जनस्तृणवदुह्यते । विचारतटविश्रान्तिमेति यावन्न चेतसा ॥ १८ ॥

tāvadbhava mahāmbhodhau janastṛṇavaduhyate | vicārataṭaviśrāntimeti yāvanna cetasā || 18 ||

Until then, a person is swept about like a piece of straw in the great ocean of worldly existence, until with the mind he reaches the shore of inquiry and rests there.

तब तक इंसान संसार के महासागर में एक तिनके की तरह इधर-उधर बहता रहता है, जब तक वह अपने मन से विचार के किनारे पर पहुंचकर विश्राम नहीं पा लेता।

5.5.19

विचारेण परिज्ञातवस्तुनोऽस्य जनस्य धीः । सर्वानधःकरोत्याधीन्सौम्याम्भ इव वालुकाः ॥ १९ ॥

vicāreṇa parijñātavastuno'sya janasya dhīḥ | sarvānadhaḥkarotyādhīnsaumyāmbha iva vālukāḥ || 19 ||

For a person who has fully understood the true nature of things through inquiry, the mind settles down all its inner troubles, the way calm water lets the sand sink to the bottom.

जिस इंसान ने विचार के द्वारा असली तत्व को पूरी तरह जान लिया है, उसकी बुद्धि सारी मन की पीड़ाओं को नीचे बिठा देती है, जैसे शांत पानी रेत को तल में बैठा देता है।

5.5.20

इदं रुक्ममिदं भस्म परिज्ञातमिति स्फुटम् । न यथा हेमकारस्य हेमज्ञानात्मनस्तथा ॥ २० ॥

idaṃ rukmamidaṃ bhasma parijñātamiti sphuṭam | na yathā hemakārasya hemajñānātmanastathā || 20 ||

People clearly say, this is gold, this is ash, but they do not know it the way a goldsmith knows it, whose very nature is the knowledge of gold.

लोग साफ-साफ कह देते हैं कि यह सोना है और यह राख है, पर वे इसे उस तरह नहीं जानते जैसे सुनार जानता है, जिसका पूरा स्वभाव ही सोने की पहचान है।

5.5.21

अक्षयोऽयं मनागात्मा स्वात्मन्यवगते चिरम् । भवतीति नरस्येह मोहस्यावसरः कुतः ॥ २१ ॥

akṣayo'yaṃ manāgātmā svātmanyavagate ciram | bhavatīti narasyeha mohasyāvasaraḥ kutaḥ || 21 ||

This self does not perish, not even a little. Once a person has known his own self clearly this way for a long time, where then, in this world, is there any room left for delusion?

यह आत्मा जरा भी नष्ट नहीं होती। जब इंसान लंबे समय तक अपनी आत्मा को इस तरह भलीभांति जान लेता है, तो फिर इस संसार में भ्रम के लिए जगह कहाँ बचती है?

5.5.22

अपरिज्ञातसारे हि मनोऽन्तर्यदि मुह्यते । ज्ञातसारे त्वसंदिग्धमसती किल मूढता ॥ २२ ॥

aparijñātasāre hi mano'ntaryadi muhyate | jñātasāre tvasaṃdigdhamasatī kila mūḍhatā || 22 ||

If the essence is not yet fully known, then yes, the mind inside can fall into delusion. But once the essence is fully known, delusion, without doubt, simply does not exist.

जब तक सार को पूरी तरह नहीं जाना गया हो, तब तक भीतर का मन भ्रमित हो सकता है। लेकिन जब सार पूरी तरह जान लिया जाए, तो निःसंदेह भ्रम रहता ही नहीं।

5.5.23

हे जना अपरिज्ञात आत्मा वो दुःखसिद्धये । परिज्ञातस्त्वनन्ताय सुखायोपशमाय च ॥ २३ ॥

he janā aparijñāta ātmā vo duḥkhasiddhaye | parijñātastvanantāya sukhāyopaśamāya ca || 23 ||

People, listen: when your own self is not known, it brings you nothing but suffering. But once it is known, it brings endless happiness and peace.

हे लोगों, सुनो: जब तक तुम अपनी आत्मा को नहीं जानते, तब तक वह तुम्हें सिर्फ दुख देती है। पर जब उसे जान लिया जाए, तो वह अनंत सुख और शांति देती है।

5.5.24

मिश्रीभूतमिवानेन देहेनोपहतात्मना । व्यक्तीकृत्य स्वमात्मानं स्वस्था भवत मा चिरम् ॥ २४ ॥

miśrībhūtamivānena dehenopahatātmanā | vyaktīkṛtya svamātmānaṃ svasthā bhavata mā ciram || 24 ||

As if it were mixed together with this body, its true nature hidden, make your own self clear and separate from the body, and settle firmly in yourselves. Do not wait any longer.

यह मानो इस शरीर के साथ घुल-मिलकर उलझ गई है और अपना असली रूप खो बैठी है, इसलिए अपने आपको शरीर से अलग करके साफ-साफ पहचानो, और तुम सब खुद में स्थिर हो जाओ। देर मत करो।

5.5.25

देहेनास्य न संबन्धो मनागेवामलात्मनः । हेम्नः पङ्कलवेनेव तद्गतस्यापि मानवाः ॥ २५ ॥

dehenāsya na saṃbandho manāgevāmalātmanaḥ | hemnāḥ paṅkalaveneva tadgatasyāpi mānavāḥ || 25 ||

People, this pure self has no real connection with the body, not even a little, even though it seems to sit inside it, just as gold has no real connection with a speck of mud, even when the gold is covered in that mud.

हे लोगों, यह निर्मल आत्मा शरीर से जरा भी नहीं जुड़ी है, भले ही वह उसके भीतर बैठी हुई लगे, जैसे सोना मिट्टी के एक कण से नहीं जुड़ा होता, भले ही वह उस मिट्टी में लिपटा हुआ क्यों न हो।

5.5.26

पृथगात्मा पृथग्देही जलपद्मलवोपमौ । ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ॥ २६ ॥

pṛthagātmā pṛthagdehī jalapadmalavopamau | ūrdhvabāhurvirau myeṣa na ca kaściśśṛṇoti me || 26 ||

The self is one thing, and the body is another, like water and a drop of lotus, separate even while touching. I cry this out with my arms raised, but no one listens to me.

आत्मा अलग है और देह अलग है, जैसे पानी अलग है और कमल की एक बूंद अलग है, दोनों छूते हुए भी अलग-अलग रहते हैं। मैं भुजाएं उठाकर यह पुकार रहा हूं, पर कोई मेरी नहीं सुनता।

5.5.27

जडधर्मि मनो यावद्गर्तकच्छपवत्स्थितम्। भोगमार्गवदामूढं विस्मृतात्मविचारणम्॥ २७॥

jaḍadharmi mano yāvadgartakacchapavatsthitam | bhogamārgavadāmūḍhaṃ vismṛtātmavicāraṇam || 27 ||

The mind, dull by nature, sits like a tortoise in a pit, confused by the pursuit of pleasure, and forgetful of inquiry into the self.

यह मन, जो स्वभाव से जड़ है, गड्ढे में बैठे कछुए की तरह पड़ा रहता है, भोग-विलास में उलझा हुआ और आत्म-विचार को भूला हुआ।

5.5.28

तावत्संसारतिमिरं सेन्दुनापि सवह्निना अर्कद्वादशकेनापि मनागपि न भिद्यते॥ २८॥

tāvatsaṃsāratimiraṃ sendunāpi savahninā arkadvādaśakenāpi manāgapi na bhidyate || 28 ||

Until then, the darkness of this world is not broken even a little, not by the moon together with fire, not even by twelve suns.

तब तक इस संसार का अंधेरा थोड़ा भी नहीं मिटता, न चाँद और आग मिलकर उसे मिटा सकते हैं, न बारह सूरज मिलकर भी।

5.5.29

संप्रबुद्धे हि मनसि स्वां विवेचयति स्थितिम्। नैशमर्कोदय इव तमो हार्दं पलायते॥ २९॥

saṃprabuddhe hi manasi svāṃ vivecayati sthitim | naiśamarkoday iva tamo hārdaṃ palāyate || 29 ||

But when the mind fully wakes up, it clearly sees its own true state, and the darkness in the heart runs away, just as the darkness of night runs away when the sun rises.

पर जब मन पूरी तरह जाग जाता है, तो वह अपनी असली स्थिति को साफ़ देख लेता है, और मन का अंधेरा वैसे ही भाग जाता है जैसे सूरज निकलते ही रात का अंधेरा भाग जाता है।

5.5.30

नित्यमुत्तमबोधाय योगशय्यागतं मनः। बोधयेद्भवभेदाय भवो ह्यत्यन्तदुःखदः॥ ३०॥

nityamuttamabodhāya yogśayyāgataṃ manaḥ | bodhayedbhava bhedāya bhavo hyatyantaduḥkhadaḥ || 30 ||

Always wake up the mind that rests on the bed of yoga, for the sake of the highest knowledge, so that worldly existence is cut through, for worldly existence brings nothing but the deepest suffering.

योग की सेज पर टिके मन को हमेशा जगाते रहो, ताकि सबसे ऊँचा ज्ञान मिले और यह संसार कट जाए, क्योंकि यह संसार सिर्फ़ गहरा दुख ही देता है।

5.5.31

यथा रजोभिर्गगनं यथा कमलमम्बुभिः। न लिप्यते हि संश्लिष्टैर्देहैरात्मा तथैव च॥ ३१॥

yathā rajobhirgagaṇaṃ yathā kamalamambubhiḥ | na lipyate hi saṃśliṣṭairdehairātmā tathaiva ca || 31 ||

Just as the sky is not stained by dust, and the lotus is not stained by water, in the same way the self is never stained by the bodies it is joined to.

जैसे आकाश धूल से नहीं रंगता और कमल पानी से नहीं भीगता, वैसे ही आत्मा उन शरीरों से कभी नहीं रंगती जिनसे वह जुड़ी होती है।

5.5.32

कर्दमादि यथा हेम्ना श्लिष्टिमेति पृथक्स्थितम्। नान्तःपरिणतिं याति जडो देहस्तथात्मना ॥ ३२ ॥

kardamādi yathā hemnā śliṣṭimeti pṛthaksthitam | nāntaḥpariṇatiṃ yāti jaḍo dehastathātmanā || 32 ||

Just as mud sticks to gold but stays a thing apart from it, and gold is not changed inside by it, in the same way the lifeless body, joined to the self, is not changed inside by the self.

जैसे कीचड़ सोने से चिपक जाता है पर फिर भी उससे अलग ही रहता है, और सोना अंदर से नहीं बदलता, वैसे ही यह निर्जीव शरीर आत्मा से जुड़कर भी अंदर से नहीं बदलता।

5.5.33

सुखदुःखानुभावित्वमात्मनीत्यवबुध्यते। असत्यमेव गगने बिन्दुताम्लानते यथा ॥ ३३ ॥

sukhaduḥkhānubhāvitvamātmanītyavabudhyate | asatyameva gagane bindutāmlānate yathā || 33 ||

The idea that the self feels pleasure and pain is understood to be simply untrue, like a speck that seems to appear and then fade away in the empty sky.

यह बात कि आत्मा सुख और दुख महसूस करती है, बस झूठी बात समझी जाती है, जैसे खाली आकाश में कोई बिंदु दिखकर मिट जाए।

5.5.34

सुखदुःखे न देहस्य सर्वातीतस्य नात्मनः। एते ह्यज्ञानकस्यैव तस्मिन्नष्टे न कस्यचित् ॥ ३४ ॥

sukhaduḥkhe na dehasya sarvātītasya nātmanaḥ | ete hyajñānakasyeva tasminnaṣṭe na kasyacit || 34 ||

Pleasure and pain do not belong to the body, nor to the self, which is beyond everything. They belong only to ignorance. When that ignorance is gone, they belong to no one.

सुख और दुख न तो शरीर के हैं, न उस आत्मा के जो सबसे परे है। ये दोनों सिर्फ़ अज्ञान के हैं। जब अज्ञान मिट जाता है, तो ये किसी के नहीं रहते।

5.5.35

न कस्यचित्सुखं किंचिद्दुःखं च नच कस्यचित्। सर्वमात्ममयं शान्तमनन्तं पश्य राघव ॥ ३५ ॥

na kasyacitsukhaṃ kiṃcidduḥkhaṃ ca na ca kasyacit | sarvamātmamayaṃ śāntamanantaṃ paśya rāghava || 35 ||

No pleasure at all belongs to anyone, and no pain belongs to anyone either. See, Raghava, that everything is made of the self, everything is peaceful and everything is endless.

किसी को भी कोई सुख नहीं मिलता, और किसी को कोई दुख भी नहीं मिलता। हे राघव, देखो, सब कुछ आत्मा से बना है, सब कुछ शांत है और सब कुछ अनंत है।

5.5.36

इमा याः परिदृश्यन्ते विततः सृष्टिदृष्टयः। पयसीव तरङ्गास्ते पिच्छं व्योम्नीव चात्मनि ॥ ३६ ॥

imā yāḥ paridṛśyante vitatāḥ sṛṣṭidṛṣṭayaḥ | payasīva taraṅgāste picchaṃ vyomnīva cātmani || 36 ||

These wide spread views of creation that are seen are like waves in water, and like a peacock feather in the sky, all within the self.

सृष्टि के ये फैले हुए जो नज़ारे दिखते हैं, वे पानी की लहरों जैसे हैं, और आकाश में मोरपंख जैसे हैं, और ये सब आत्मा के भीतर ही हैं।

5.5.37

यथा मणिर्ददात्यात्मच्छायाः स्वयमकारणम् तेजोमयीस्तथैवायमात्मा सृष्टीः प्रयच्छति ॥ ३७ ॥

yathā maṇirdadātyātmachchāyāḥ svayamakāraṇam tejomayīstathaivāyamātmā sṛṣṭīḥ prayacchati || 37 ||

Just as a jewel gives off its own bright reflections by itself, without any outside cause, in the same way this self brings forth its creations.

जैसे एक मणि अपने आप, बिना किसी बाहरी कारण के, अपनी चमकीली परछाइयाँ फेंकती है, वैसे ही यह आत्मा अपनी रचनाएँ खुद बनाती है।

5.5.38

आत्मा जगच्च सुमते नैकं न द्वैतमप्यसत् आभासमात्रमेवेदमित्थं संप्रति जृम्भते ॥ ३८ ॥

ātmā jagaccasumate naikam na dvaitamapyasat ābhāsamātramevedamittham saṃprati jṛmbhate || 38 ||

The self and the world, wise one, are not one, and their being two is not real either. All this is nothing but appearance, and that is how it is unfolding right now.

हे बुद्धिमान, आत्मा और यह जगत न तो एक हैं, और इनका दो होना भी सच नहीं है। यह सब सिर्फ़ एक दिखावा है, और यही अभी हो रहा है।

5.5.39

समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मैवमाततम् अहमन्यदिदं चान्यदिति भ्रान्तिं त्यजानघ ॥ ३९ ॥

samastam khalvidam brahma sarvamātmaivamātatam ahamanyadidam cānyaditi bhrāntim tyajānagh || 39 ||

All this, indeed, is Brahman. Everything is the self alone, spread through all things. Give up the delusion that I am one thing and this world is another, blameless one.

यह सब कुछ सच में ब्रह्म ही है। सब कुछ बस आत्मा है, जो हर जगह फैली है। यह भ्रम छोड़ दो कि मैं कुछ और हूँ और यह जगत कुछ और है, हे निष्पाप।

5.5.40

ततो ब्रह्मघने नित्ये संभवन्ति न कल्पनाः विच्छित्तयः पयोराशौ यथा राम न सन्मयाः ॥ ४० ॥

tate brahmaghane nitye saṃbhavanti na kalpanāḥ vicchittayaḥ payorāśau yathā rāma na sanmayāḥ || 40 ||

So in that dense, eternal Brahman, no imagined division ever truly happens, just as the ripples that break the surface of the ocean, Rama, are not made of anything apart from the water.

तो उस घने, सदा रहने वाले ब्रह्म में कोई कल्पना की हुई भिन्नता सच में नहीं होती, जैसे समुद्र की सतह पर उठने वाली लहरें, हे राम, पानी के अलावा और कुछ नहीं होतीं।

5.5.41

एकस्मिन्नेव सर्वस्मिन्परमात्मनि वस्तुनि द्वितीया कल्पना नास्ति वह्नौ हिमकणा यथा ॥ ४१ ॥

ekasminneva sarvasminparamātmani vastuni dvitīyā kalpanā nāsti vahnau himakanā yathā || 41 ||

In that one alone, the supreme self, the one reality that is everything, there is no second thing to even imagine, just as there is no snowflake in fire.

उस एक ही परम आत्मा में, जो सब कुछ है, कोई दूसरी चीज़ सोची भी नहीं जा सकती, जैसे आग में कोई बर्फ़ का कण नहीं होता।

5.5.42

भावयन्नात्मनात्मानं चिद्रूपेणैव चिन्मयम्। ऋजूज्ज्वलमये ह्यात्मा स्वयमात्मनि जृम्भते ॥ ४२ ॥

bhāvayannātmanātmānaṃ cidrūpeṇaiva cinmayam | ṛjūjjvalamaye hyātmā svayamātmani jṛmbhate || 42 ||

Contemplating itself by itself, as pure consciousness, made only of consciousness, in that simple, shining nature, the self unfolds within itself, all on its own.

खुद अपने आप को शुद्ध चेतना के रूप में देखते हुए, जो सिर्फ़ चेतना से बनी है, उस सीधी, चमकती हुई अवस्था में आत्मा अपने आप अपने भीतर फैलती है।

5.5.43

न शोकोस्ति न मोहोस्ति न जन्मास्ति न जन्मवान्। यदस्तीह तदेवास्ति विज्वरो भव राघव ॥ ४३ ॥

na śokostī na mohosti na janmāsti na janmavān | yadastīha tadevāsti vijvaro bhava rāghava || 43 ||

There is no grief, there is no delusion, there is no birth, and there is no one who is born. What exists here, that alone truly exists. Be free of fever, Raghava.

न कोई दुख है, न कोई मोह है, न कोई जन्म है, और न कोई जन्म लेने वाला है। जो यहाँ है, बस वही सच में है। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.44

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्। अद्वितीयो विशोकात्मा विज्वरो भव राघव ॥ ४४ ॥

nirdvandvo nityasattvastho niryogakṣema ātmavān | advitīyo viśokātmā vijvaro bhava rāghava || 44 ||

Be free from the pairs of opposites, always settled in your true being, free from worrying about gaining and keeping, self possessed, without a second, your self free of sorrow. Be free of fever, Raghava.

द्वंद्वों से मुक्त हो जाओ, हमेशा अपने असली स्वभाव में टिके रहो, पाने और बचाने की चिंता से मुक्त रहो, अपने आप में स्थिर रहो, अकेले रहो, अपने भीतर से दुख रहित हो जाओ। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.45

समः स्वस्थः स्थिरमतिः शान्तशोकमना मुनिः। मौनी वरमणिस्वच्छो विज्वरो भव राघव ॥ ४५ ॥

samaḥ svasthaḥ sthiramatiḥ śāntaśokamanā muniḥ | maunī varamaṇisvaccho vijvaro bhava rāghava || 45 ||

Be even toward all, at ease within yourself, steady in mind, a sage whose grief has calmed down, silent, and clear like a fine gem. Be free of fever, Raghava.

सबके प्रति समान रहो, अपने भीतर सहज रहो, मन से स्थिर रहो, ऐसे मुनि बनो जिसका दुख शांत हो चुका है, मौन रहो, और एक बढ़िया मणि जैसे साफ़ रहो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.46

विविक्तः शान्तसंकल्पो धीरधीर्विजिताशयः। यथाप्राप्तानुवर्ती च विज्वरो भव राघव ॥ ४६ ॥

viviktaḥ śāntasaṃkalpo dhīradhīrvijitāśayaḥ | yathāprāptānuvartī ca vijvaro bhava rāghava || 46 ||

Be discerning, your thoughts calmed, firm and wise in mind, your inner desires mastered, content with whatever comes to you on its own. Be free of fever, Raghava.

विवेक रखो, अपने विचारों को शांत करो, मन से दृढ़ और समझदार बनो, अपनी भीतरी इच्छाओं पर काबू रखो, जो अपने आप मिल जाए उसी में संतुष्ट रहो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.47

वीतरागो निरायासो विमलो वीतकल्मषः । नादाता न परित्यागी विज्वरो भव राघव ॥ ४७ ॥

vītarāgo nirāyāso vimalo vītakalmaṣaḥ | nādātā na parityāgī vijvaro bhava rāghava || 47 ||

Be free from desire, free from strain, pure, and free from all stain. Neither take hold of anything, nor give up anything. Be free of fever, Raghava.

इच्छा से मुक्त रहो, बिना मेहनत के रहो, शुद्ध रहो, हर दाग़ से मुक्त रहो। न किसी चीज़ को पकड़ो, न किसी चीज़ को छोड़ो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.48

विश्वातीतपदं प्राप्तः प्राप्तप्राप्तव्यपूरितः । पूर्णार्णववदक्षुब्धो विज्वरो भव राघव ॥ ४८ ॥

viśvātītapadaṃ prāptaḥ prāptaprāptavyapūritaḥ | pūrṇārṇavavadakṣubdho vijvaro bhava rāghava || 48 ||

Having reached the state beyond the whole universe, fulfilled, having gained all there is to gain, unshaken like a full ocean. Be free of fever, Raghava.

पूरे विश्व से परे उस स्थिति को पाकर, पूरी तरह तृप्त होकर, जो कुछ पाने लायक़ है वह सब पाकर, भरे हुए समुद्र जैसे अडिग रहो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.49

विकल्पजालनिर्मुक्तो मायाञ्जनविवर्जितः । आत्मनात्मनि तृप्तात्मा विज्वरो भव राघव ॥ ४९ ॥

vikalpajālanirmukto māyāñjanavivarjitaḥ | ātmanātmani tṛptātmā vijvaro bhava rāghava || 49 ||

Freed from the net of false ideas, free of the illusion smeared on your eyes, your self content in the self, by the self. Be free of fever, Raghava.

झूठे विचारों के जाल से मुक्त होकर, आँखों पर लगे भ्रम के काजल से मुक्त होकर, अपने आप में अपने आप से संतुष्ट रहो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.50

अनन्तापारपर्यन्तवपुरात्मविदांवर । धराधरशिरोधीरो विज्वरो भव राघव ॥ ५० ॥

anantāpāraparyantavapurātmavidāṃvara | dharādharaśirodhīro vijvaro bhava rāghava || 50 ||

Best among knowers of the self, whose true form has no end, no far shore, no limit, steady like the peak of the mountain that holds up the earth. Be free of fever, Raghava.

हे आत्मा को जानने वालों में सबसे श्रेष्ठ, जिसका असली रूप न कभी खत्म होता है, न उसका कोई किनारा है, न कोई सीमा, पृथ्वी को थामने वाले पर्वत की चोटी जैसे अडिग रहो। हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.51

यथाप्राप्तानुभवनात्सर्वत्रानभिवाञ्छनात् । त्यागादानपरित्यागाद्विज्वरो भव राघव ॥ ५१ ॥

yathāprāptānubhavanātsarvatrānabhivāñchanāt | tyāgādānaparityāgādvijvaro bhava rāghava || 51 ||

By experiencing only what comes to you on its own, by wanting nothing anywhere, by giving up both taking and renouncing, be free of fever, Raghava.

जो अपने आप मिल जाए बस उसी का अनुभव करके, कहीं भी कुछ न चाहकर, लेने और छोड़ने दोनों को छोड़कर, हे राघव, ज्वर से मुक्त हो जाओ।

5.5.52

आत्मन्येवात्मनौदार्यं भज पूर्णं इवार्णवः । आत्मन्येवात्मनाह्लादं भज पूर्णन्दुबिम्बवत् ॥ ५२ ॥

ātman yeva ātmanaudāryaṃ bhaja pūrṇaṃ ivārṇavaḥ | ātman yeva ātmanāhlādaṃ bhaja pūrṇandubimbavat || 52 ||

Within the self alone, by the self, hold on to fullness, like the brimming ocean. Within the self alone, by the self, hold on to joy, like the full round moon.

बस अपने भीतर, अपने ही द्वारा, भरापन धारण करो, जैसे भरा हुआ समुद्र। बस अपने भीतर, अपने ही द्वारा, आनंद धारण करो, जैसे पूरा गोल चाँद।

5.5.53

विश्वप्रपञ्चरचनेयमसत्यरूपा नासत्यरूपमनुधावति राम तज्ज्ञः । तज्ज्ञोऽसि शान्तकलनोऽसि निरामयोऽसि नित्योदितोऽसि भव सुन्दर शान्तशोकः ॥ ५३ ॥

viśvaprapañcaracaneyamasatyarūpā nāsatyarūpamanudhāvati rāma tajjñaḥ | tajjño'si śāntakalano'si nirāmayo'si nityodito'si bhava sundara śāntaśokaḥ || 53 ||

This shaping of the whole visible universe has an unreal form. One who knows this does not run after what is unreal, Rama. You are one who knows this. You are one whose mind's motion has gone still. You are free of all illness. You are ever risen, never setting. Be, beautiful one, at peace, your grief calmed.

इस पूरे दिखने वाले जगत की यह बनावट झूठी है। जो यह जानता है, वह झूठी चीज़ के पीछे नहीं भागता, हे राम। तुम यह जानने वाले हो। तुम्हारे मन की हलचल शांत हो चुकी है। तुम हर बीमारी से मुक्त हो। तुम हमेशा उगे हुए हो, कभी नहीं डूबते। हे सुंदर, शांत रहो, अपना दुख शांत करो।

5.5.54

एकातपत्रमवनौ गुरुणोपदिष्टं सम्यक्सुपालय चिरं समयेह दृष्ट्या । राज्यं समस्तगुणरञ्जितराजलोकस्त्वाशो न युक्तइह कर्मसु नापि रागः ॥ ५४ ॥

ekātapatramavanau guruṇopadiṣṭaṃ samyaksupālaya ciraṃ samayeha dṛṣṭyā | rājyaṃ samastaguṇarañjitarājalokastvāśo na yuktaih karmaṣu nāpi rāgaḥ || 54 ||

Rule well, for a long time, in keeping with the moment and with clear sight, the one sovereignty over the whole earth that your teacher has taught you, a kingdom whose people delight in your every virtue. But wanting has no place here in action, and neither does attachment.

अपने गुरु ने तुम्हें जो पूरी धरती पर अकेले राज करने की सीख दी है, उसे लंबे समय तक, सही समय पर, साफ़ नज़र से अच्छी तरह निभाओ, ऐसा राज्य जिसकी प्रजा तुम्हारे हर गुण से खुश रहे। पर यहाँ काम में चाहत की कोई जगह नहीं, न ही किसी लगाव की।

Chapter 6

5.6.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इमं विश्वपरिस्पन्दं करोमीत्यस्तवासनम् । प्रवर्तते यः कार्येषु स मुक्त इति मे मतिः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | imaṃ viśvaparispandaṃ karomītyastavāsanam | pravartate yaḥ kāryeṣu sa mukta iti me matiḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said, the person in whom the idea I make this whole universe move has died out, and who still works at his tasks, is free. This is what I think.

श्री वसिष्ठ बोले, जिस व्यक्ति के भीतर से यह खयाल मिट चुका है कि मैं ही इस पूरी दुनिया को हिलाता-डुलाता हूँ, और जो फिर भी अपने काम करता रहता है, वही मुक्त है। यही मेरा मानना है।

5.6.2

पौरुषीं तनुमाश्रित्य केचिदेतत्क्रियारताः । स्वर्गान्नरकमायान्ति स्वर्गं च नरकात्पुनः ॥ २ ॥

pauruṣīṃ tanumāśritya kecidetatkriyāratāḥ | svargānnarakamāyānti svargaṃ ca narakātpunaḥ || 2 ||

Taking on a human body, some people stay busy doing these very acts, and go from heaven down to hell, and then back again from hell up to heaven.

मनुष्य शरीर पाकर कुछ लोग इन्हीं कामों में लगे रहते हैं, और स्वर्ग से नरक में चले जाते हैं, फिर नरक से वापस स्वर्ग में आ जाते हैं।

5.6.3

केचित्त्वकर्मणि रता विरता अपि कर्मणः । नरकान्नरकं यान्ति दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम् ॥ ३ ॥

kecittvakarmaṇi ratā viratā api karmaṇaḥ | narakānnarakaṃ yānti duḥkhāddhuḥkhaṃ bhayādbhayam || 3 ||

But some people love doing nothing at all, and even after they stop acting, they go from one hell to another hell, from one sorrow to another sorrow, from one fear to another fear.

पर कुछ लोग कुछ भी न करने में ही मगन रहते हैं, और काम करना छोड़ देने के बाद भी वे एक नरक से दूसरे नरक में, एक दुख से दूसरे दुख में, एक डर से दूसरे डर में जाते रहते हैं।

5.6.4

केचित्स्ववासनातन्तुबद्धाः कर्मफलोदिताः । तिर्यक्त्वात्स्थावरतनुं यान्ति तिर्यक्तनुं ततः ॥ ४ ॥

kecitsvavāsanātantubaddhāḥ karmaphaloditāḥ | tiryaktvātsthāvaratanuṃ yānti tiryaktanuṃ tataḥ || 4 ||

Some are tied by the thread of their own desires, and pushed on by the fruit of their acts, they pass from an animal body into a fixed body, a plant, and from there go back into an animal body again.

कुछ लोग अपनी ही वासनाओं के धागे में बंधे होते हैं, और अपने कर्मों के फल से धकेले जाकर, पशु शरीर से पेड़-पौधे जैसे स्थिर शरीर में चले जाते हैं, और वहाँ से फिर पशु शरीर में लौट आते हैं।

5.6.5

केचिदात्मविदो धन्या विचारितमनोदृशः । विच्छिन्नतृष्णानिगडा यान्ति निष्केवलं पदम् ॥ ५ ॥

kecidātmavido dhanyā vicāritamanodṛśaḥ | vicchinnatṛṣṇānigaḍā yānti niṣkevalaṃ padam || 5 ||

But some are blessed knowers of the self. They have looked closely at their own minds, they have cut the chains of craving, and they reach the state that stands alone.

पर कुछ लोग भाग्यशाली आत्मज्ञानी होते हैं। उन्होंने अपने मन को गहराई से देख लिया है, उन्होंने तृष्णा की जंजीरें काट दी हैं, और वे उस अकेले, शुद्ध पद तक पहुँच जाते हैं।

5.6.6

पुरा कतिपयान्येव भुक्त्वा जन्मानि राघव । अस्मिञ्जन्मनि यो मुक्तस्तस्माद्राजससात्त्विकः ॥ ६ ॥

purā katipayānyeva bhuktvā janmāni rāghava | asmiñjanmani yo muktastasmādrājasasāttvikaḥ || 6 ||

O Raghava, one who has lived through only a few births before, and who becomes free in this very birth, is for that reason a person whose nature is both rajasic and sattvic.

हे राघव, जिसने पहले बहुत कम जन्म ही लिए हों, और जो इसी जन्म में मुक्त हो जाता है, वह इसी वजह से राजस और सात्विक दोनों गुणों वाला होता है।

5.6.7

जातोऽसौ वृद्धिमभ्येति पार्वणश्चन्द्रमा इव । कुटजं प्रावृषीवैनं सौभाग्यमनुगच्छति ॥ ७ ॥

jāto'sau vṛddhimabhyeti pārvaṇaścandramā iva | kuṭajaṃ prāvṛṣīvaainaṃ saubhāgyamanugacchati || 7 ||

Once born, he grows the way the moon grows to its fullness. Good fortune follows him the way it follows a kutaja tree in the rainy season.

जन्म लेते ही वह वैसे ही बढ़ता है जैसे चाँद बढ़कर पूरा हो जाता है। सौभाग्य उसका साथ वैसे ही देता है जैसे बरसात के मौसम में कुटज के पेड़ का साथ देता है।

5.6.8

यस्येदं जन्म पाश्चात्यं तमाश्वेव महामते । विशन्ति विद्या विमला मुक्ता वेणुमिवोत्तमम् ॥ ८ ॥

yasyedaṃ janma pāścātyaṃ tamāśveva mahāmate | viśanti vidyā vimalā muktā veṇumivottamam || 8 ||

For the one whose present birth is his last, o wise one, pure knowledge enters him very quickly, the way pearls enter a fine bamboo.

हे बुद्धिमान, जिसका यह जन्म आखिरी जन्म है, उसमें शुद्ध ज्ञान बहुत जल्दी समा जाता है, जैसे मोती किसी उत्तम बांस में समा जाते हैं।

5.6.9

आर्यता हृद्यता मैत्री सौम्यता करुणा ज्ञता । समाश्रयन्ति तं नित्यमन्तःपुरमिवाङ्गनाः ॥ ९ ॥

āryatā hṛdyatā maitrī saumyatā karuṇā jñatā | samāśrayanti taṃ nityamanataḥpuramivāṅganāḥ || 9 ||

Nobility, warmth, friendliness, calm, compassion, and wisdom, all of these always come and settle in him, the way women live in the inner rooms of a palace.

श्रेष्ठता, मन को भाने वाला स्वभाव, मित्रता, शांत स्वभाव, दया और ज्ञान, ये सब हमेशा आकर उसी में बस जाते हैं, जैसे स्त्रियाँ महल के भीतरी कमरों में रहती हैं।

5.6.10

यः कुर्वन्सर्वकार्याणि पुण्ये नष्टेऽथ तत्फले । समः सन्सर्वकार्येषु न तुष्यति न शोचति ॥ १० ॥

yaḥ kurvansarvakāryāṇi puṇye naṣṭe'tha tatphale | samaḥ sansarvakāryeṣu na tuṣyati na śocati || 10 ||

He does all his tasks, and even when his merit is destroyed, and its fruit too, he stays the same through all of it. He does not feel pleased, and he does not grieve.

वह अपने सारे काम करता है, और जब उसका पुण्य नष्ट हो जाए, और उसका फल भी, तब भी वह हर हाल में एक जैसा बना रहता है। न वह खुश होता है, न दुखी।

5.6.11

तमांसीव दिवा यान्ति तत्र द्वन्द्वानि संक्षयम्। शरदीव घनास्तत्र गुणा गच्छन्ति शुद्धताम्॥ ११॥

tamāṃsīva divā yānti tatra dvandvāni saṃkṣayam | śaradīva ghanāstatra guṇā gacchanti śuddhatām || 11 ||

In him the pairs of opposites melt away, the way darkness melts away in daylight. In him the inner qualities turn clear and pure, the way clouds clear away in autumn.

उसमें सुख-दुख जैसी जोड़ियाँ वैसे ही मिट जाती हैं जैसे दिन में अंधेरा मिट जाता है। उसमें गुण वैसे ही साफ और शुद्ध हो जाते हैं जैसे शरद ऋतु में बादल छंट जाते हैं।

5.6.12

पेशलाचारमधुरं सर्वे वाञ्छन्ति तं जनाः। वेणुं मधुरनिध्वानं वने वनमृगा इव॥ १२॥

peśalācāramadhuraṃ sarve vāñchanti taṃ janāḥ | veṇuṃ madhuranidhvānaṃ vane vanamṛgā iva || 12 ||

All people are drawn to him, gentle and sweet in his conduct, the way forest deer are drawn to the sweet sound of a flute in the woods.

सब लोग उसकी ओर खिंचे चले आते हैं, जो व्यवहार में कोमल और मीठा है, जैसे जंगल में हिरण बांसुरी की मीठी धुन की ओर खिंचे चले आते हैं।

5.6.13

नरं पाश्चात्यजन्मानमेवंप्राया गुणश्रियः। जातमेवानुधावन्ति बलाका इव वारिदम्॥ १३॥

naraṃ pāścātyajanmānamevaṃprāyā guṇaśriyaḥ | jātamevānudhāvanti balākā iva vāridam || 13 ||

Rich qualities of this kind chase after the man in his last birth the moment he is born, the way cranes fly after a rain cloud.

इस तरह के अच्छे गुण उस आखिरी जन्म वाले मनुष्य के जन्म लेते ही उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं, जैसे सारस बादल के पीछे उड़ते हैं।

5.6.14

ततोऽसौ गुणसंपूर्णो गुरुमेवानुगच्छति। स तमेवं विवेके वै नियोजयति पावने॥ १४॥

tato'sau guṇasaṃpūrṇo gurumevānugacchati | sa tamevaṃ viveke vai niyojayati pāvane || 14 ||

Then, full of good qualities, he follows a teacher. The teacher fixes him firmly in that purifying discernment.

फिर, अच्छे गुणों से भरा हुआ वह किसी गुरु का अनुसरण करता है। गुरु उसे उस शुद्ध करने वाले विवेक में मजबूती से लगा देता है।

5.6.15

विचारवैराग्यवता चेतसा गुणशालिना। देवं पश्यत्यथात्मानमेकरूपमनामयम्॥ १५॥

vicāravairāgyavatā cetasā guṇaśālinā | devaṃ paśyatyathātmānamekarūpamanāmayam || 15 ||

Then, with a mind full of good qualities, given to inquiry and free of craving, he sees the shining self, one single form, untouched by any trouble.

फिर, विचार और वैराग्य से भरे और अच्छे गुणों वाले मन से, वह उस दिव्य आत्मा को देखता है, जो एक ही रूप है और जिसमें कोई विकार नहीं।

5.6.16

तनोत्ययं विचारेण चारुणा शान्तचेतसा। प्रबोधनाय प्रथमं मनोमननमान्तरम्॥ १६॥

tanotyayaṃ vicāreṇa cāruṇā śāntacetasā | prabodhanāya prathamaṃ manomananamāntaram || 16 ||

With a fine, calm-minded inquiry, he first carries out, in order to wake up, an inward turning over of the mind.

वह शांत मन से की गई एक अच्छी खोज-बीन के जरिए, जागने के लिए, सबसे पहले मन का भीतरी मंथन करता है।

5.6.17

ये हि पाश्चात्यजन्मानस्ते हि सुप्तं मनोमृगम्। प्रबोधयन्ति प्रथमं गुणहीनं महागुणाः ॥ १७ ॥

ye hi pāścātyajanmānaste hi suptaṃ manomṛgam | prabodhayanti prathamaṃ guṇahīnaṃ mahāguṇāḥ || 17 ||

Those in their last birth are themselves rich in good qualities, and they are the first to wake the sleeping deer that is the mind, which on its own has no good qualities.

जो लोग अपने आखिरी जन्म में होते हैं, वे खुद बड़े गुणी होते हैं, और वे सबसे पहले मन रूपी सोए हुए हिरण को जगाते हैं, जिसमें अपने आप कोई गुण नहीं होता।

5.6.18

प्रथितगुणान्सुगुरून्निषेव्य यत्नादमलधिया प्रविचार्य चित्तरत्नम्। गतिममलामुपयान्ति मानवास्ते परमवलोक्य चिरं प्रकाशमन्तः ॥ १८ ॥

prathitaguṇānsugurūnnniṣevya yatnādamaladhiyā pravicārya cittaratnam | gatimamalāmupayānti mānavāste paramavalokya ciraṃ prakāśamantaḥ || 18 ||

Those people who serve teachers famed for their good qualities, and who work hard with a clear mind to closely examine the jewel that is their own mind, reach the pure state, after gazing for a long time, deep within themselves, at the highest light.

जो लोग अच्छे गुणों के लिए मशहूर गुरुओं की सेवा करते हैं, और मेहनत से, साफ बुद्धि के साथ अपने मन रूपी रत्न को गहराई से परखते हैं, वे उस निर्मल पद को पा लेते हैं, अपने भीतर बहुत देर तक उस सबसे ऊँचे प्रकाश को देखने के बाद।

Chapter 7

5.7.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एष तावत्क्रमः प्रोक्तः सामान्यः सर्वदेहिनाम् । इममन्यं विशेषं त्वं शृणु राजीवलोचन ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | eṣa tāvatkramḥ proktaḥ sāmānyaḥ sarvadehināṃ | imamanyaṃ viśeṣaṃ tvaṃ śṛṇu rājīvalocana || 1 ||

Vasishtha said: This is the method I have told you so far, the one common to all embodied beings. Now listen to this other, special one, lotus-eyed one.

वसिष्ठ ने कहा, यह तो मैंने अब तक की विधि बताई, जो सभी देहधारी जीवों के लिए सामान्य है। अब हे कमल-नयन, तुम यह दूसरी खास विधि सुनो।

5.7.2

अस्मिन्संसारसंरम्भे जातानां देहधारिणाम् । अपवर्गक्षमौ राम द्वाविमावुत्तमौ क्रमौ ॥ २ ॥

asmin saṃsārasaṃrambe jātānāṃ dehadhāriṇām | apavargakṣamau rāma dvāvimāvuttamau kramau || 2 ||

For embodied beings born into this turmoil of the world, Rama, these are the two best paths, and both can bring liberation.

इस संसार की उथल-पुथल में जन्मे देहधारी जीवों के लिए, हे राम, ये दोनों सबसे अच्छे मार्ग हैं, और दोनों ही मुक्ति दिला सकते हैं।

5.7.3

एकस्तावद्गुरुप्रोक्तादनुष्ठानाच्छनैः शनैः । जन्मना जन्मभिर्वापि सिद्धिदः समुदाहृतः ॥ ३ ॥

ekastāvadguruproktaādanuṣṭhānācchanaiḥ śanaiḥ | janmanā janmabhirvāpi siddhidaḥ samudāhṛtaḥ || 3 ||

The first is this: through the practice taught by a guru, followed slowly, step by step, it is said to bring success, whether in one birth or over many births.

पहला मार्ग यह है, गुरु द्वारा बताए गए अभ्यास से, धीरे-धीरे, चाहे एक जन्म में हो या कई जन्मों में, यह सफलता देने वाला कहा गया है।

5.7.4

द्वितीयस्त्वात्मनैवाशु किंचिद्व्युत्पन्नचेतसा । भवति ज्ञानसंप्राप्तिराकाशफलपातवत् ॥ ४ ॥

dvitīyastvātmanaivāśu kiṃcidvyutpannacetasā | bhavati jñānasamprāptirākāśaphalapātavat || 4 ||

The second, however, comes to one whose mind has already matured a little, by himself alone and quickly. The reaching of knowledge happens like a fruit falling from the sky.

दूसरा मार्ग यह है, जिसका मन थोड़ा परिपक्व हो चुका है, उसे अपने आप ही, बिना किसी और सहारे के, जल्दी ज्ञान मिल जाता है, जैसे आकाश से फल गिरना।

5.7.5

नभःफलनिपाताभज्ञानसंप्रतिपत्तये । तत्रेमं शृणु वृत्तान्तं प्राक्तनं कथयामि ते ॥ ५ ॥

nabhaḥphalanipātābha jñānasampratipattaye | tatremaṃ śṛṇu vṛttāntaṃ prāktanaṃ kathayāmi te || 5 ||

So that you understand this knowledge which is like a fruit falling from the sky, listen now to this old story. I will tell it to you.

आकाश से फल गिरने जैसे इस ज्ञान को समझने के लिए, अब यह पुरानी कथा सुनो, मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

5.7.6

शृणु सुभग कथां महानुभावा व्यपगतपूर्वशुभाशुभार्गलौघाः । खपतितफलवत्परं विवेकं चरमभवा विमलं समश्नुवन्ति ॥ ६ ॥

śr̥ṇu subhaga kathāṃ mahānubhāvā vyapagatapūrvaśubhāśubhārgalaughāḥ | khapatitaphalavatparaṃ vivekaṃ caramabhavā vimalaṃ samaśnuvanti || 6 ||

Listen to this story, fortunate one. Great souls, from whom the whole flood of past obstacles of good and bad deeds has gone, reach the highest, stainless discernment in their last birth, like a fruit falling from the sky.

हे भाग्यशाली, यह कथा सुनो। जो महान आत्माएँ अपने पिछले अच्छे-बुरे कर्मों की सारी रुकावटों से मुक्त हो चुकी हैं, वे अपने आखिरी जन्म में सबसे ऊँचा, निर्मल विवेक पाती हैं, जैसे आकाश से फल गिरना।

Chapter 8

5.8.1

अस्त्यस्तमितसर्वापदुद्यत्संपदुदारधीः । विदेहानां महीपालो जनको नाम वीर्यवान् ॥ १ ॥

astyastamitasarvāpadudyatsaṃpadudāradhīḥ | videhānāṃ mahīpālo janako nāma vīryavān || 1 ||

There is a king of Videha named Janaka, a strong man, generous in mind. All his troubles have set like the sun, and his fortune keeps rising.

विदेह देश का एक राजा है, जिसका नाम जनक है, वह बलवान और उदार मन वाला है। उसकी सारी मुसीबतें सूरज की तरह डूब चुकी हैं, और उसकी संपत्ति लगातार बढ़ रही है।

5.8.2

कल्पवृक्षोऽर्थिसार्थानां मित्रालानां दिवाकरः । माधवो बन्धुपुष्पाणां स्त्रीणां मकरकेतनः ॥ २ ॥

kalpavṛkṣo'rthisārthānāṃ mitrālānāṃ divākaraḥ | mādhavo bandhupuṣpāṇāṃ strīṇāṃ makaraketanaḥ || 2 ||

To crowds of people who came asking for help, he was like a wishing tree that gives whatever is asked. To his friends he was like the sun. To his kinsmen, who were like flowers, he was like spring, making them bloom. To women he was like the god of love.

मदद माँगने आई भीड़ के लिए वह उस कल्पवृक्ष जैसा था जो माँगो वही दे देता है। अपने मित्रों के लिए वह सूरज जैसा था। अपने रिश्तेदारों के लिए, जो फूलों जैसे थे, वह वसंत जैसा था, जो उन्हें खिला देता था। स्त्रियों के लिए वह प्रेम के देवता जैसा था।

5.8.3

द्विजकैरवशीतांशुर्द्विपत्तिमिरभास्करः । सौजन्यरत्नजलधिर्भुवं विष्णुरिवास्थितः ॥ ३ ॥

dvijakairavaśītāṃśurdvipattimirabhāskaraḥ | saujanyaratnajaladhirbhuvam viṣṇurivāsthitaḥ || 3 ||

To the brahmins he was like the moon to the night lily, opening them wide. To his enemies he was like the sun to darkness, burning it away. He was an ocean holding the jewel of kindness. And he stood over the earth like Vishnu.

ब्राह्मणों के लिए वह चाँद जैसा था, जो रात में खिलने वाले कमल को पूरा खोल देता है। अपने शत्रुओं के लिए वह सूरज जैसा था, जो अंधेरे को जला देता है। वह भलाई के रत्न से भरा समुद्र था। और वह धरती पर विष्णु की तरह खड़ा था।

5.8.4

प्रफुल्लवाललतिके मञ्जरीपुञ्जपिञ्जरे । स कदाचिन्मधौ मत्ते कोकिलालापलासिनि ॥ ४ ॥

praPhullavālalatike mañjarīpuñjapiñjare | sa kadācinmadhau matte kokilālāpalāsini || 4 ||

Once, when spring was at its fullest and most restless, the young creepers had burst into flower, golden with thick clusters of blossoms, and the air rang with the calls of cuckoos.

एक बार, जब वसंत अपने पूरे उफान पर था, नई लताएँ पूरी तरह खिल चुकी थीं, फूलों के गुच्छों से सुनहरी हो गई थीं, और हवा में कोयल की आवाज़ गूँज रही थी।

5.8.5

यया कुसुमिताभोगंसुविलासलताङ्गनम्। लीलयोपवनं कान्तं नन्दनं वासवो यथा ॥ ५ ॥

yayau kusumitābhogaṃsuvilāsalatāṅganam | līlayopavanaṃ kāntaṃ nandanaṃ vāsavo yathā || 5 ||

He went playfully into that lovely pleasure garden, full of blossoms, its ground covered with gracefully swaying creepers, just as Indra goes to his garden Nandana.

वह खेलते हुए उस सुंदर उपवन में गया, जो फूलों से भरा था और जिसकी ज़मीन सुंदर लहराती लताओं से ढकी थी, ठीक वैसे ही जैसे इंद्र अपने नंदन वन में जाते हैं।

5.8.6

तस्मिन्वरवने हृद्ये केसरोद्धाममारुते। दूरस्थानुचरः सानुकुञ्जेषु विचचार ह ॥ ६ ॥

tasminvaravane hṛdye kesaroddāmamārute| dūrasthānucaraḥ sānukuñjeṣu vicacāra ha || 6 ||

In that excellent, heart-pleasing forest, where the breeze blew wild with the scent of kesara blossoms, he wandered among the bowers on the hillside, leaving his attendants far behind.

उस सुंदर, मन को भाने वाले जंगल में, जहाँ हवा केसर के फूलों की खुशबू से भरकर बेरोक बह रही थी, वह पहाड़ी की ढलानों पर बने कुंजों में घूमने लगा, और अपने साथियों को बहुत पीछे छोड़ दिया।

5.8.7

अथ शुश्राव कस्मिंश्चित्तमालवनगुल्मके। सिद्धानामप्रदृश्यानां स्वप्रसङ्गादुदाहृताः ॥ ७ ॥

atha śuśrāva kasmiṃścittamālavanagulmake| siddhānāmapradṛśyānāṃ svaprasaṅgādudāhṛtāḥ || 7 ||

Then, in a certain thicket of tamala trees, he heard these verses, spoken by Siddhas he could not see, as they talked among themselves.

तभी, तमाल के पेड़ों के एक झुरमुट में, उसने ये श्लोक सुने, जो उन सिद्धों ने कहे थे जो उसे दिखाई नहीं दे रहे थे, जब वे आपस में बातें कर रहे थे।

5.8.8

विविक्तवासिनां नित्यं शैलकन्दरचारिणाम्। इमाः कमलपत्राक्ष गीता गीतात्मभावनाः ॥ ८ ॥

viviktavāsināṃ nityaṃ śailakandaracāriṇām| imāḥ kamalapatrākṣa gītā gītātmabhāvanāḥ || 8 ||

O lotus-eyed one, these were the songs of those who always live apart, who wander in mountain caves, songs about the true nature of the self.

हे कमल जैसी आँखों वाले, ये उन लोगों के गीत थे जो हमेशा अकेले रहते हैं और पहाड़ों की गुफाओं में घूमते हैं, ये गीत आत्मा के असली स्वरूप के बारे में थे।

5.8.9

सिद्धा ऊचुः। द्रष्टृदृश्यसमायोगात्प्रत्ययानन्दनिश्चयः। यस्तं स्वमात्मतत्त्वोत्थं निःस्पन्दं समुपास्महे ॥ ९ ॥

siddhā ūcuḥ| draṣṭṛdṛśyasamāyogātpratyayānandaniścayaḥ| yastaṃ svamātmatattvotthaṃ niḥspandaṃ samupāsmahe || 9 ||

The Siddhas said: a sure joy of knowing arises when the one who sees meets the thing seen. We worship that joy as the one unmoving being, born from one's own true self.

सिद्धों ने कहा कि जब देखने वाला और जो देखा जाता है, ये दोनों मिलते हैं, तब जानने का एक पक्का आनंद पैदा होता है, और हम उस आनंद को उस एक अडिग सत्ता के रूप में पूजते हैं, जो अपने ही असली स्वरूप से पैदा होती है।

5.8.10

अन्ये ऊचुः । द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रथमाभासमात्मानं समुपास्महे ॥ १० ॥

anye ūcuḥ| draṣṭṛdarśanadṛśyāni tyaktvā vāsanayā saha| darśanaprathamābhāsamātmānaṃ samupāsmahe || 10 ||

Others said: we set aside the seer, the act of seeing, and the thing seen, together with the desires tied to them, and we worship the self as the very first flash of seeing itself.

दूसरों ने कहा कि हम देखने वाले को, देखने के काम को, और जो देखा जाता है उसे, इनसे जुड़ी इच्छाओं के साथ छोड़ देते हैं, और आत्मा को देखने की सबसे पहली चमक के रूप में पूजते हैं।

5.8.11

अन्ये ऊचुः । द्वयोर्मध्यगतं नित्यमस्तिनास्तीति पक्षयोः । प्रकाशनं प्रकाश्यानामात्मानं समुपास्महे ॥ ११ ॥

anye ūcuḥ | dvayormadhyagataṃ nityamastināstīti pakṣayoḥ | prakāśanaṃ prakāśyānāmātmānaṃ samupāsmahe || 11 ||

Others said: we worship the self, which always stands between the claim that it exists and the claim that it does not. It is the light that lights up everything that can be seen.

दूसरों ने कहा कि हम उस आत्मा को पूजते हैं, जो हमेशा 'यह है' और 'यह नहीं है' इन दो बातों के बीच खड़ी रहती है, और जो वह रोशनी है जो हर उस चीज़ को रोशन करती है जिसे देखा जा सकता है।

5.8.12

अन्ये ऊचुः । यस्मिन्सर्वं यस्य सर्वं यतः सर्वं यस्मायिदम् । येन सर्वं यद्धि सर्वं तत्सत्यं समुपास्महे ॥ १२ ॥

anye ūcuḥ | yasmin sarvaṃ yasya sarvaṃ yataḥ sarvaṃ yasmāyidam | yena sarvaṃ yaddhi sarvaṃ tatsatyaṃ samupāsmahe || 12 ||

Others said: we worship that one truth. Everything rests in it. Everything belongs to it. Everything comes from it. This whole world exists for it. Everything happens by it. And it itself is everything.

दूसरों ने कहा कि हम उस एक सत्य को पूजते हैं। सब कुछ उसी में टिका है, सब कुछ उसी का है, सब कुछ उसी से आता है, यह पूरी दुनिया उसी के लिए है, सब कुछ उसी के ज़रिए होता है, और वह खुद ही सब कुछ है।

5.8.13

अन्ये ऊचुः । अशिरस्कं हकारान्तमशेषाकारसंस्थितम् । अजस्रमुच्चरन्तं स्वं तमात्मानमुपास्महे ॥ १३ ॥

anye ūcuḥ | aśiraskaṃ hakārāntamaśeṣākārasaṃsthitam | ajasramuccaranataṃ svaṃ tamātmānamupāsmahe || 13 ||

Others said: we worship that self, headless, ending in the sound ha, present in every shape there is, forever uttering itself.

दूसरों ने कहा कि हम उस आत्मा को पूजते हैं, जिसका कोई सिर नहीं है, जो 'ह' ध्वनि पर खत्म होती है, जो हर रूप में मौजूद है, और जो लगातार खुद को ही बोलती रहती है।

5.8.14

अन्ये ऊचुः । संत्यज्य हृद्गुहेशानं देवमन्यं प्रयान्ति ये । ते रत्नमभिवाञ्छन्ति त्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥ १४ ॥

anye ūcuḥ | saṃtyajya hṛdguheśānaṃ devamanyaṃ prayānti ye | te ratnamabhivāñchanti tyaktahastasthakauṣtubhāḥ || 14 ||

Others said: those who abandon the lord living in the cave of the heart and turn to some other god are like a man who throws away the Kaustubha jewel already resting in his hand, and then goes off wanting a jewel.

दूसरों ने कहा कि जो लोग दिल की गुफा में रहने वाले भगवान को छोड़कर किसी और देवता के पास जाते हैं, वे उस आदमी जैसे हैं जो अपने हाथ में पहले से रखे कौस्तुभ मणि को फेंक देता है, और फिर कहीं और मणि ढूँढने निकल पड़ता है।

5.8.15

अन्ये ऊचुः । सर्वाशाः किल संत्यज्य फलमेतदवाप्यते । येनाशाविषवल्लीनां मूलमाला विलूयते ॥ १५ ॥

anye ūcuḥ | sarvāśāḥ kila saṃtyajya phalametadavāpyate | yenāśāviṣavallīnāṃ mūlamālā vilūyate || 15 ||

Others said: give up every desire, and this is the reward you get, it tears out, roots and all, the poison vine that is desire.

दूसरों ने कहा कि सारी इच्छाएँ छोड़ दो, और यही फल मिलता है कि यह इच्छा रूपी ज़हरीली बेल को जड़ से उखाड़ देता है।

5.8.16

अन्ये ऊचुः । बुद्ध्वाप्यत्यन्तवैरस्यं यः पदार्थेषु दुर्मतिः । बध्नाति भावनां भूयो नरो नासौ स गर्दभः ॥ १६ ॥

anye ūcuḥ | buddhvāpyatyantavairasyaṃ yaḥ padārtheṣu dumatiḥ | badhnāti bhāvanāṃ bhūyo naro nāsau sa gardabhaḥ || 16 ||

Others said: a dull-minded man who, even after seeing that things give no real pleasure, ties his mind to them again, he is not a man, he is a donkey.

दूसरों ने कहा कि जो मूर्ख आदमी यह जान लेने के बाद भी कि चीज़ों में कोई असली सुख नहीं है, फिर से अपना मन उन्हीं में बाँध लेता है, वह आदमी नहीं, गधा है।

5.8.17

अन्ये ऊचुः । उत्थितानुत्थितानेतानिन्द्रियाहीन्पुनः पुनः । हन्याद्विवेकदण्डेन वज्रेणेव हरिर्गिरीन् ॥ १७ ॥

anye ūcuḥ | utthitānutthitānetānindriyāhīnpunaḥ punaḥ | hanyādvivekadaṇḍena vajreṇeva harirgirīn || 17 ||

Others said: one should strike down these snakes that are the senses, again and again, whether roused or still, with the rod of good judgment, just as Indra struck the mountains with his thunderbolt.

दूसरों ने कहा कि इंद्रियों रूपी इन साँपों को, चाहे वे जागी हुई हों या शांत, बार-बार सही-गलत परखने की समझ रूपी डंडे से मार देना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे इंद्र ने पहाड़ों को अपने वज्र से मारा था।

5.8.18

अन्ये ऊचुः । उपशमसुखमाहरेत्पवित्रं सुशमवतः शममेति साधुचेतः । प्रशमितमनसः स्वके स्वरूपे भवति सुखे स्थितिरुत्तमा चिराय ॥ १८ ॥

anye ūcuḥ | upaśamasukhamāharetpavitraṃ suśamavataḥ śamameti sādhucetaḥ | praśamitamanasaḥ svake svarūpe bhavati sukhe sthitiruttamā cirāya || 18 ||

Others said: seek the clean joy that comes from a quiet mind. When a person is truly calm, a good mind grows peaceful. Once the mind is fully calmed, a person comes at last to rest in their own true nature, in joy, and that rest is the highest one, lasting a long time.

दूसरों ने कहा कि शांत मन से मिलने वाला वह शुद्ध सुख पाओ। जब कोई सचमुच शांत हो जाता है, तो उसका अच्छा मन भी पूरी तरह शांत हो जाता है। जब मन पूरी तरह शांत हो जाता है, तो आदमी आखिरकार अपने ही असली स्वरूप में, आनंद में टिक जाता है, और यह स्थिति सबसे ऊँची होती है, जो लंबे समय तक बनी रहती है।

Chapter 9

5.9.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति सिद्धगणोद्गीता गीताः श्रुत्वा महीपतिः । विषादमाजगामाशु भीरू रणरवादिव ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti siddhagaṇodgītā gītāḥ śrutvā mahīpatiḥ | viṣādamājagāmāśu bhīrū raṇaravādiva || 1 ||

Sri Vasishtha said: hearing these very songs sung together by the group of Siddhas, the king suddenly fell into despair, like a timid man who hears the sound of battle.

श्री वसिष्ठ बोले, सिद्धों के समूह ने मिलकर जो गीत गाए, उन्हें सुनकर राजा अचानक उदास हो गया, जैसे कोई डरपोक आदमी युद्ध की आवाज़ सुनकर घबरा जाता है।

5.9.2

जगाम परिवारं स्वमाकर्षन्स्वगृहं प्रति । स्वतीरवृक्षानुगतः सरिदोघ इवार्णवम् ॥ २ ॥

jagāma parivāraṃ svamākarṣansvagṛhaṃ prati | svatīravṛkṣānugataḥ saridogha ivārṇavaṃ || 2 ||

He went toward his own house, drawing his whole retinue after him, like a river in flood carrying along the trees on its banks as it rushes toward the sea.

वह अपने पूरे लाव-लश्कर को साथ खींचते हुए अपने घर की ओर चला, जैसे बाढ़ में उफनती नदी अपने किनारों के पेड़ों को समुद्र की ओर बहा ले जाती है।

5.9.3

परिवारमशेषेण विसृज्य स्वं स्वमालयम् । एक एवारुरोहाग्र्यं गृहमर्क इवाचलम् ॥ ३ ॥

parivāramaśeṣeṇa visṛjya svaṃ svamālayaṃ | eka evārurohāgryaṃ gṛhamarka ivācalaṃ || 3 ||

Having sent away his entire retinue, each man to his own home, he alone climbed up into his splendid palace, like the sun climbing alone over a mountain.

अपने पूरे लाव-लश्कर को विदा करके, हर आदमी को उसके अपने घर भेजकर, वह अकेला ही अपने शानदार महल में चढ़ गया, जैसे सूरज अकेला किसी पहाड़ पर चढ़ता है।

5.9.4

तत्र प्रोड्डयनालोलखगपक्षतिचञ्चलाः । आलोकयंल्लोकगतीर्विललापेदमाकुलः ॥ ४ ॥

tatra proḍḍayanālolakhagapakṣaticañcalāḥ | ālokayanlokagatīrvilalāpedamākulaḥ || 4 ||

There he watched the ways of the world, restless as the flickering wings of birds taking flight, and in his distress he began to lament like this.

वहाँ बैठकर वह दुनिया की चाल-ढाल देखने लगा, जो उड़ते हुए पंछियों के फड़फड़ाते पंखों की तरह बेचैन थी, और दुखी होकर वह इस तरह विलाप करने लगा।

5.9.5

हा कष्टमतिकष्टासु लोकलोलदशास्वयम् । पाषाणेष्विव पाषाणा आलुठामि बलादहम् ॥ ५ ॥

hā kaṣṭamatikaṣṭāsu lokaloladaśāsvayam | pāṣāṇeṣviva pāṣāṇā āluṭhāmi balādaham || 5 ||

Alas, what suffering. In these utterly painful, ever-shifting conditions of the world, I am tossed about helplessly, like one stone among stones.

हाय, कितना दुख है। दुनिया की इन बेहद दुखदायी और लगातार बदलती हालतों में मैं बेबस होकर इधर-उधर पटकता हूँ, जैसे पत्थरों के बीच एक पत्थर।

5.9.6

अपर्यन्तस्य कालस्य कोऽप्यंशो जीव्यते मया। तस्मिन्भावं निबध्नामि धिङ्मामधमचेतनम्॥ ६॥

aparyantasya kālasya ko'pyaṃśo jīvyate mayā | tasminbhāvaṃ nibadhnāmi dhiṅmāmadhamacetanam || 6 ||

Of time without end I live only some tiny fragment, yet I fix my heart on that fragment. Shame on this base, foolish mind of mine.

इस अनंत समय का बस एक छोटा-सा टुकड़ा मैं जीता हूँ, फिर भी उसी टुकड़े में अपना मन लगाए बैठा हूँ। धिक्कार है मेरे इस नीच और मूर्ख मन पर।

5.9.7

कियन्मात्रमिदं नाम राज्यमाजीवितं मम। किमेतेन विना दुःखं तिष्ठामि हतधीर्यथा॥ ७॥

kiyanmātramidaṃ nāma rājyamājīvitaṃ mama | kimetenavinā duḥkhaṃ tiṣṭhāmi hatadhīryathā || 7 ||

How much, after all, is this kingdom of mine, which lasts only as long as my life? Without it, would I really go on grieving, as if my reason were destroyed?

आखिर मेरा यह राज्य है ही कितना, जो बस मेरी जिंदगी भर के लिए है? क्या इसके बिना मैं सचमुच ऐसे दुखी होता रहूँगा जैसे मेरी अक्ल ही मारी गई हो?

5.9.8

आदावन्तेऽप्यनन्तोऽहं मध्ये पेलवजीवितः। बालश्चित्रेन्दुनेवाहं किं मुधा धृतिमास्थितः॥ ८॥

ādāvante'pyananto'haṃ madhye pelavajīvitaḥ | bālaścitrendunevehaṃ kiṃ mudhā dhṛtimāsthitaḥ || 8 ||

At the beginning and at the end I am without end; only in the middle is my life feeble. Like a child charmed by a painted moon, why do I go on foolishly holding fast to this?

शुरुआत में भी और अंत में भी मैं अनंत हूँ, बस बीच में मेरी जिंदगी कमज़ोर है। जैसे कोई बच्चा किसी चित्र में बने चाँद को देखकर मोहित हो जाता है, वैसे ही मैं क्यों इस पर व्यर्थ अड़ा हुआ हूँ?

5.9.9

प्रपञ्चरहितेनाहमिन्द्रजालेन जालिना। हा कष्टमतिमुह्यामि केनास्मि परिमोहितः॥ ९॥

prapañcarahitenāhamindrajālena jālinā | hā kaṣṭamatimuhyāmi kenāsmi parimohitaḥ || 9 ||

There is nothing real at all in this juggler's magic show, yet by it I am utterly deluded. Alas, what suffering. By what have I been so completely fooled?

इस जादूगर के जादू के खेल में कुछ भी असली नहीं है, फिर भी मैं इससे पूरी तरह मोहित हो गया हूँ। हाय, कितना दुख है। मैं आखिर किसके धोखे में इतना पड़ गया?

5.9.10

यद्वस्तु यच्च वा रम्यं यदुदारमकृत्रिमम्। किंचित्तदिह नास्त्येव किंनिष्ठेह मतिर्मम॥ १०॥

yadvastu yacca vā ramyaṃ yadudāramakṛtrimam | kiṃcittadihanāstyeva kiṃniṣṭeha matirmama || 10 ||

Whatever is a real thing, whatever is delightful, whatever is great and not false, none of that exists here at all. On what, then, should my mind take its stand?

जो भी असली चीज़ है, जो भी सुंदर है, जो भी बड़ा और नकली नहीं है, ऐसा यहाँ कुछ भी नहीं है। तो फिर मेरा मन किस चीज़ पर टिके?

5.9.11

दूरस्थमप्यदूरस्थं यन्मे मनसि वर्तते । इति निश्चित्य बाह्यार्थभावनां संत्यजाम्यहम् ॥ ११ ॥

dūrasthamapyadūrasthaṃ yanme manasi vartate | iti niścitya bāhyārthabhāvanāṃ saṃtyajāmyaham || 11 ||

Whatever exists in my mind, even if it seems far away, is not really far. Having settled this for certain, I give up believing that anything is truly outside me.

जो कुछ भी मेरे मन में है, वह दूर दिखने पर भी सच में दूर नहीं है। यह पक्का समझकर मैं यह मानना छोड़ देता हूँ कि कुछ भी सचमुच मुझसे बाहर है।

5.9.12

लोकाजवं जवीभावः सलिलावर्तभङ्गुरः । दृष्टोऽद्यापि हि दुःखाय केयमास्था सुखं प्रति ॥ १२ ॥

lokājavam javībhāvaḥ salilāvartabhaṅguraḥ | dṛṣṭo'dyāpi hi duḥkhāya keyamāsthā sukhaṃ prati || 12 ||

The world's headlong rush, this restless hurrying, is as fragile as a whirlpool in water. I have seen it, even now, bring only suffering. So what is this trust of mine in happiness?

दुनिया की यह तेज़ भाग-दौड़, यह बेचैन जल्दबाज़ी, पानी के भँवर जितनी ही कमज़ोर है। मैंने आज तक इसे बस दुख ही देते देखा है। तो फिर सुख पर मेरा यह भरोसा किस बात का है?

5.9.13

प्रत्यब्दं प्रतिमासं च प्रत्यहं च प्रतिक्षणम् । सुखानि दुःखपिण्डानि दुःखानि तु पुनः पुनः ॥ १३ ॥

pratyabdaṃ pratimāsaṃ ca pratyahaṃ ca pratikṣaṇam | sukhāni duḥkhapiṇḍāni duḥkhāni tu punaḥ punaḥ || 13 ||

Every year, every month, every day, and every moment, pleasures are only lumps of pain, but pains come again and again.

हर साल, हर महीने, हर दिन और हर पल, सुख तो बस दुख के ढेर होते हैं, पर दुख बार-बार आते ही रहते हैं।

5.9.14

परामृष्टं विशिष्टं हि दृष्टं नष्टं न भावितम् । अत्रस्थं न तदस्तीह सतां यत्रास्तु संस्थितिः ॥ १४ ॥

parāmṛṣṭaṃ viśiṣṭaṃ hi dṛṣṭaṃ naṣṭaṃ na bhāvitam | atrasthaṃ na tadastīha satāṃ yatrāstu saṃsthitiḥ || 14 ||

Whatever seems special, once seen, is already gone; it never truly lasts. Nothing here stands fixed enough for good things to have a firm place to rest.

जो चीज़ खास लगती है, वह देखते ही देखते खत्म हो जाती है, वह कभी सच में टिकती नहीं। यहाँ कुछ भी इतना स्थिर नहीं कि अच्छी चीज़ों को टिकने की पक्की जगह मिल सके।

5.9.16

अरज्जुरेव बद्धोऽहमपङ्कोऽस्मि कलङ्कितः । पतितोस्म्युपरिस्थोपि हा ममात्मन्हता स्थितिः ॥ १६ ॥

arajjureva baddho'ham apaṅko'smi kalaṅkitaḥ | patito'smi uparistho'pi hā mamātman hatā sthitiḥ || 16 ||

I am bound though there is no rope at all. I am stained though there is no mud on me. I have fallen though I am still standing on high. Alas, my very state is ruined.

बिना किसी रस्सी के भी मैं बँधा हुआ हूँ। बिना किसी कीचड़ के भी मैं दागदार हूँ। ऊँचाई पर खड़े रहते हुए भी मैं गिरा हुआ हूँ। हाय, मेरी हालत ही बर्बाद हो गई है।

5.9.17

अद्य ये महतां मूर्ध्नि ते दिनैर्निपतन्त्यधः । हतचित्तमहत्तायां कैषा विश्वस्तता वत ॥ १७ ॥

adya ye mahatāṃ mūrdhni te dinairnipatantyadhaḥ | hatacittamahattāyāṃ kaiṣā viśvastatā vata || 17 ||

Those who stand today at the very top among the great fall down within a few days. What is this trust, alas, in a greatness whose end is a ruined mind?

जो लोग आज बड़ों में सबसे ऊपर खड़े हैं, वे कुछ ही दिनों में नीचे गिर जाते हैं। हाय, ऐसी बड़ाई पर यह भरोसा किस बात का, जिसका अंत बर्बाद मन में होता है?

5.9.18

क इमे मे महाभोगाः क इमे मम बान्धवाः । बालो भूतमयेनेव संकेतेनाहमाकुलः ॥ १८ ॥

ka ime me mahābhogāḥ ka ime mama bāndhavāḥ | bālo bhūtamayeneva saṃketenāhamākulaḥ || 18 ||

What are these great pleasures of mine? What are these kinsmen of mine? Like a child troubled by a made-up game of ghosts, I am thrown into confusion.

ये मेरे बड़े-बड़े भोग-विलास आखिर क्या हैं? ये मेरे रिश्तेदार आखिर क्या हैं? जैसे कोई बच्चा भूतों के बनावटी खेल से घबरा जाता है, वैसे ही मैं भी घबराया हुआ हूँ।

5.9.19

स्वयमेव निबध्नामि जरामरणरागिणीम् । किमिमामहमेतेषु धृतिमुद्वेगकारिणीम् ॥ १९ ॥

svayameva nibadhnāmi jarāmaraṇarāgiṇīm | kimimāmahameteṣu dhṛtimudvegakāriṇīm || 19 ||

I myself bind myself with this attachment, tied to old age and death. Why, among all these things, do I go on holding to a devotion that only breeds anxiety?

मैं खुद ही अपने आपको इस मोह में बाँधता हूँ, जो बुढ़ापे और मौत से जुड़ा हुआ है। इन सब चीज़ों के बीच मैं क्यों उस लगाव को पकड़े रहता हूँ, जो सिर्फ बेचैनी ही देता है?

5.9.20

यातु तिष्ठतु वा सम्यङ् ममैतां प्रति को ग्रहः । बुद्बुदश्रीरिवैषा हि मिथ्यैवेत्थमुपस्थिता ॥ २० ॥

yātu tiṣṭhatu vā samyaṅ mamaetāṃ prati ko grahaḥ | budbudashrīrivaiṣā hi mithyaivetthamupasthitā || 20 ||

Whether it leaves entirely or stays entirely, what claim do I really have on it? It is just like the beauty of a bubble, appearing here only as a falsehood.

यह पूरी तरह चला जाए या पूरी तरह टिका रहे, मेरा इस पर सच में क्या हक़ है? यह तो बस बुलबुले की चमक जैसा है, जो यहाँ सिर्फ झूठ बनकर सामने आया है।

5.9.21

ते महाविभवा भोगास्ते सन्तः स्निग्धबान्धवाः । सर्वं स्मृतिपथं प्राप्तं वर्तमानेऽपि का धृतिः ॥ २१ ॥

te mahāvibhavā bhogāste saṃtaḥ snigdhabāndhavāḥ | sarvaṃ smṛtipathaṃ prāptaṃ vartamāne'pi kā dhṛtiḥ || 21 ||

Those magnificent pleasures, those loving and devoted kinsmen, all of it has now become nothing but memory. Even in what is present now, what trust can there be?

वे शानदार भोग-विलास, वे प्यार करने वाले अपने रिश्तेदार, यह सब अब बस याद बनकर रह गए हैं। जो अभी सामने है, उस पर भी क्या भरोसा किया जाए?

5.9.22

क्व धनानि महीपानां ब्रह्मणः क्व जगन्ति वा । प्राक्तनानि प्रयातानि केयं विश्वस्तता मम ॥ २२ ॥

kva dhanāni mahīpānāṃ brahmaṇaḥ kva jaganti vā | prāktanāni prayātāni keyaṃ viśvastatā mama || 22 ||

Where now are the riches of kings? Where are even the worlds of Brahma? The old ones have all passed away. What is this trust of mine?

अब राजाओं की दौलत कहाँ है? ब्रह्मा के लोक तक कहाँ हैं? पुराने सब बीत चुके हैं। तो फिर मेरा यह भरोसा किस बात का है?

5.9.23

गिलितानीन्द्रलक्षाणि बुद्बुदानीव वारिणि । मां जीवितनिबद्धास्थं विहसिष्यन्ति साधवः ॥ २३ ॥

gilitānīndralakṣāṇi budbudānīva vāriṇi | māṃ jīvitanibaddhāsthaṃ vihasiṣyanti sādhavaḥ || 23 ||

Hundreds of thousands of Indras have been swallowed up like bubbles in water. Good people will laugh at me for still clinging to the hope of staying alive.

इंद्र जैसे लाखों-करोड़ों देवता पानी के बुलबुलों की तरह मिट चुके हैं। अच्छे लोग मुझ पर हँसेंगे, जो अब भी जीने की उम्मीद से चिपका हुआ हूँ।

5.9.24

ब्रह्मणां कोटयो याता गताः सर्गपरम्पराः । प्रयाताः पांसुवद्भूपाः का धृतिर्मम जीविते ॥ २४ ॥

brahmaṇāṃ koṭayo yātā gatāḥ sargaparamparāḥ | prayātāḥ pāṃsuvadbhūpāḥ kā dhṛtirmama jīvite || 24 ||

Crores of Brahmas have come and gone, along with their whole chains of creation. Kings have vanished like dust. What confidence can I have in my own life?

करोड़ों ब्रह्मा आए और चले गए, उनकी बनाई सारी सृष्टियाँ भी खत्म हो गईं। राजा धूल की तरह उड़ गए। तो फिर मुझे अपनी जिंदगी पर क्या भरोसा हो सकता है?

5.9.25

संसाररात्रिदुःस्वप्ने चेत्ये देहमये भ्रमे । आस्थां चेदनुबध्नामि तत्रेमां तु धिगस्थितिम् ॥ २५ ॥

saṃsārarātriduḥsvapne cetye dehamaye bhrame | āsthāṃ cedanubadhnāmi tatremāṃ tu dhigasthitim || 25 ||

This life in the world is a bad dream in a long night, and this body is only a delusion that we merely perceive. If I still place my trust in it, then shame on such a state of mine.

यह सांसारिक जीवन एक लंबी रात का बुरा सपना है, और यह शरीर बस एक भ्रम है जिसे हम सिर्फ देखते भर हैं। अगर मैं फिर भी इस पर भरोसा करूँ, तो मेरी इस हालत पर धिक्कार है।

5.9.26

अयं सोऽहमिति व्यर्थकल्पनाऽसत्स्वरूपिणी । अहंकारपिशाचेन किमज्ञवदहं स्थितः ॥ २६ ॥

ayaṃ so'hamiti vyarthakalpanā'satsvarūpiṇī | ahaṃkārapiśācena kimajñavadahaṃ sthitaḥ || 26 ||

The thought 'this one is I' is a useless fancy, false in its very nature. Why do I still stand here like a fool, held by the demon of ego?

'यह मैं हूँ' — यह सोच बस एक बेकार कल्पना है, जो अपने आप में झूठी है। मैं अभी भी अहंकार के भूत से पकड़ा हुआ मूर्ख की तरह क्यों खड़ा हूँ?

5.9.27

हतं हतमिदं कस्मादायुराततयानया । पश्यन्नपि न पश्यामि सूक्ष्मया काललेखया ॥ २७ ॥

hataṃ hataṃ idaṃ kasmād āyur ātata yānayā | paśyannapi na paśyāmi sūkṣmayā kālalekhayā || 27 ||

This life is struck down, struck down again and again — why? By its own constant passing. Time cuts it with a line so fine that even while watching, I do not see it happen.

यह जीवन बार-बार मारा जा रहा है — किस वजह से? अपने ही लगातार बीतते जाने से। समय इसे इतनी बारीक रेखा से काटता है कि देखते हुए भी मुझे यह होता हुआ नहीं दिखता।

5.9.28

पादपीठे कृतेशानाः शार्ङ्गिक्रीडनकन्दुकाः । कालकापालिकाग्रस्ताः किमास्थे मयि वल्गसि ॥ २८ ॥

pādapīṭhe kṛteśānāḥ śārṅgikrīḍanakandukāḥ | kālakāpālikāgrastāḥ kimāsthe mayi valgasī || 28 ||

Kings who once made other lords their footstool, who were only playthings tossed about in Vishnu's game, have now been seized by Death, who carries a skull. Why, then, do you still linger in me, dancing?

जिन राजाओं ने कभी दूसरे राजाओं को अपने पैरों की चौकी बना लिया था, जो विष्णु के खेल की बस एक गेंद थे, अब उन्हें खोपड़ी लिए हुए मौत ने पकड़ लिया है। फिर तू मुझमें अब भी क्यों टिकी है, नाचती हुई?

5.9.29

अजस्रमुपयान्त्येते यान्ति चाद्यापि वासराः । अविनष्टैकसद्वस्तुर्दृष्टो नाद्यापि वासरः ॥ २९ ॥

ajasramupayāntyete yānti cādyāpi vāsarāḥ | avinaṣṭaikasadvasturdṛṣṭo nādyāpi vāsaraḥ || 29 ||

Days keep coming without end, and they keep going, even today. But not even one day has yet come when I saw the one real, unchanging thing.

दिन लगातार आते रहते हैं और आज भी जाते रहते हैं। पर आज तक ऐसा एक भी दिन नहीं आया जब मैंने उस एक सच्ची, अविनाशी चीज़ को देखा हो।

5.9.30

सारसाः सरसीवैते सर्वस्मिञ्जनचेतसि । भोगा एव स्फुरन्त्यन्तर्न तु स्वपददृष्टयः ॥ ३० ॥

sārasāḥ sarasīvaita sarvasmiñjanacetasi | bhogā eva sphurantyantar na tu svapadadṛṣṭayaḥ || 30 ||

In the mind of every person, pleasures flicker in and out like cranes upon a lake — never a glimpse of one's own true place.

हर इंसान के मन में सुख-भोग झील पर बैठे सारस पक्षियों की तरह बस चमकते-बुझते रहते हैं — अपनी असली जगह की एक झलक कभी नहीं मिलती।

5.9.31

कष्टात्कष्टतरं प्राप्तो दुःखाद्दुःखतरं गतः । अद्यापि न विरक्तोस्मि हा धिङ्मामधमाशयम् ॥ ३१ ॥

kaṣṭātkaṣṭataraṃ prāpto duḥkhāddhuḥkhataraṃ gataḥ | adyāpi na virakto'smi hā dhiṅmāmadhamāśayam || 31 ||

I have gone from hardship to greater hardship, from sorrow to greater sorrow. Even today I have not turned away from desire. Alas, shame on me and my base mind.

मैं एक कष्ट से बड़े कष्ट में गया, एक दुख से बड़े दुख में गया। फिर भी आज तक मेरी इच्छाएँ खत्म नहीं हुईं। हाय, मुझ पर और मेरे नीच मन पर धिक्कार है।

5.9.32

येषु येषु दृढा बद्धा भावना भव्यवस्तुषु । तानि तानि विनष्टानि दृष्टानि किमिहोत्तमम् ॥ ३२ ॥

yeṣu yeṣu dṛḍhā baddhā bhāvanā bhavyavastuṣu | tāni tāni vinaṣṭāni dṛṣṭāni kimihottamam || 32 ||

Whatever fine things I fixed my heart firmly on, I have seen every one of them destroyed. So what is there here that is truly the best?

जिन-जिन अच्छी चीज़ों पर मैंने अपना मन कसकर बाँधा, मैंने उन सबको नष्ट होते देखा। तो फिर यहाँ ऐसा क्या है जो सचमुच सबसे अच्छा हो?

5.9.33

यन्मध्ये यच्च पर्यन्ते यदापाते मनोरमम् । सर्वमेवापवित्रं तद्विनाशामेध्यदूषितम् ॥ ३३ ॥

yanmadhye yacca paryante yadāpāte manoramam | sarvamevāpavitraṃ tadvināśāmedhyadūṣitam || 33 ||

Whatever seems pleasing at the start, in the middle, or at the end — all of it is unclean, spoiled by the filth of its own destruction.

जो चीज़ शुरू में, बीच में या आखिर में सुंदर लगती है — वह सब गंदी है, अपने ही विनाश की गंदगी से खराब हो चुकी है।

5.9.34

येषु येषु पदार्थेषु धृतिं बध्नाति मानवः । तेषु तेष्वेव तस्यायं दृष्टो नाशोदयो भृशम् ॥ ३४ ॥

yeṣu yeṣu padārtheṣu dhṛtiṃ badhnāti mānavaḥ | teṣu teṣveva tasyāyaṃ dṛṣṭo nāśodayo bhṛśam || 34 ||

Whatever things a person places his trust in — in those very things his ruin is seen rising up, strong and clear.

इंसान जिन-जिन चीज़ों पर भरोसा करता है, उन्हीं चीज़ों में उसका नाश उठता हुआ साफ दिखाई देता है।

5.9.35

श्वःश्वः पापीयसीमेष श्वःश्वः क्रूरतरामपि । श्वःश्वः स्वेदकरीमेति दशामिह जडो जनः ॥ ३५ ॥

śvaḥśvaḥ pāpīyasīmeṣa śvaḥśvaḥ krūratarāmapi | śvaḥśvaḥ svedakarīmeti daśāmiha jaḍo janaḥ || 35 ||

Day by day, this dull person sinks into a worse state; day by day, into a crueler one; day by day, into one that leaves him sweating.

यह मूर्ख इंसान रोज़-रोज़ और बुरी हालत में जाता है, रोज़-रोज़ और क्रूर हालत में, रोज़-रोज़ ऐसी हालत में जो उसे पसीने-पसीने कर दे।

5.9.36

अज्ञानैकहतो बाल्ये यौवने मदनाहतः । शेषे कलत्रचिन्तार्तः किं करोति कदा जडः ॥ ३६ ॥

ajñānaikahato bālye yauvane madanāhataḥ | śeṣe kalatracintārtaḥ kiṃ karoti kadā jaḍaḥ || 36 ||

In childhood he is struck down only by ignorance; in youth he is struck by lust; in what is left of life he is tormented by worry over his wife and family. What does this dull man ever really do, and when?

बचपन में वह सिर्फ अज्ञान से मारा जाता है, जवानी में वासना से मारा जाता है, और बची हुई ज़िंदगी में पत्नी और घर-परिवार की चिंता से परेशान रहता है। यह मूर्ख आदमी आखिर करता क्या है, और कब करता है?

5.9.37

आगमापायि विरसं दशावैषम्यदूषितम्। असारसारं संसारं किं तत्पश्यति दुर्मतिः ॥ ३७ ॥

āgamāpāyi virasaṃ daśāvaiṣamyadūṣitam | asārasāraṃ saṃsāraṃ kiṃ tatpashyati durmatiḥ || 37 ||

This worldly life comes and goes, has no real taste, and is spoiled by all its uneven ups and downs; at its core it has no substance at all. Does a foolish mind ever really see this?

यह सांसारिक जीवन आता-जाता रहता है, इसमें कोई असली स्वाद नहीं है, और इसके उतार-चढ़ाव इसे खराब करते रहते हैं; इसके भीतर कोई सार ही नहीं है। क्या मूर्ख मन कभी इसे सचमुच देख पाता है?

5.9.38

राजसूयाश्वमेधाद्यैरिष्ट्वा यज्ञशतैरपि। महाकल्पान्तमप्यंशं स्वर्गं प्राप्नोति नाधिकम्॥ ३८ ॥

rājasūyāśvamedhādyairiṣṭvā yajñashatairapi | mahākalpāntamapyañśaṃ svargaṃ prāpnoti nādhikam || 38 ||

Even by performing hundreds of sacrifices — the Rajasuya, the Ashvamedha, and the rest — one gains only a part of heaven, lasting no longer than the end of one great cosmic age. Nothing more.

राजसूय, अश्वमेध और ऐसे सैकड़ों यज्ञ करके भी इंसान को स्वर्ग का बस एक हिस्सा मिलता है, जो एक महाकल्प के अंत तक ही टिकता है। इससे ज़्यादा कुछ नहीं मिलता।

5.9.39

कोऽसौ स्वर्गोऽस्ति भूमौ वा पाताले वा प्रदेशकः। न यत्राभिभवन्त्येता दुर्भ्रमर्य इवापदः ॥ ३९ ॥

ko'sau svargo'sti bhūmau vā pātāle vā pradeśakaḥ | na yatrābhibhavantyetā durbramarya ivāpadaḥ || 39 ||

Is there any place at all — in heaven, on earth, or in the underworld — where troubles do not swarm over a person like a cloud of angry bees?

क्या कहीं भी कोई ऐसी जगह है — स्वर्ग में, धरती पर, या पाताल में — जहाँ मुसीबतें इंसान पर गुस्सैल मधुमक्खियों के झुंड की तरह न टूट पड़ें?

5.9.40

निजचेतोविलव्यालाः शरीरस्थलपल्लवाः। आधयो व्याधयश्चैते निवार्यन्ते कथं किल ॥ ४० ॥

nijacetovilavyālāḥ śarīrasthlapallavāḥ | ādhayo vyādhayaścaita nivāryante kathaṃ kila || 40 ||

These mental worries and bodily diseases are like snakes living in the pit of one's own mind, feeding on the tender shoots of the body. How can they ever really be kept away?

ये मानसिक चिंताएँ और शारीरिक बीमारियाँ अपने ही मन के बिल में रहने वाले साँपों जैसी हैं, जो शरीर की कोमल कोंपलों को खाती रहती हैं। इन्हें सचमुच कैसे रोका जा सकता है?

5.9.41

सतोऽसत्ता स्थिता मूर्ध्नि मूर्ध्नि रम्येष्वरम्यता। सुखेषु मूर्ध्नि दुःखानि किमेकं संश्रयाम्यहम्॥ ४१ ॥

sato'sattā sthitā mūrdhni mūrdhni ramyeṣvaramyatā | sukheṣu mūrdhni duḥkhāni kimekaṃ saṃśrayāmyaham || 41 ||

Unreality sits right on the crown of what seems real; ugliness sits right on the crown of what seems beautiful; sorrow sits right on the crown of every joy. So which one thing should I take as my refuge?

जो सच लगता है, उसके सिर पर ही झूठ बैठा है; जो सुंदर लगता है, उसके सिर पर ही बदसूरती बैठी है; हर सुख के सिर पर ही दुख बैठा है। तो फिर मैं किस एक चीज़ का सहारा लूँ?

5.9.42

जायन्ते च म्रियन्ते च प्राकृताः क्षुद्रजन्तवः । धरा तैरेव नीरन्ध्रा दुर्लभाः साधुसाधवः ॥ ४२ ॥

jāyante ca mriyante ca prākṛtāḥ kṣudrajantavaḥ | dharā taireva nīrandhrā durlabhāḥ sādhusādhavaḥ || 42 ||

Common, petty creatures are born and die endlessly — the earth is crammed full with just them. Truly good people are hard to find.

आम, तुच्छ जीव पैदा होते और मरते रहते हैं — धरती बस इन्हीं से भरी पड़ी है। सचमुच अच्छे लोग मिलना मुश्किल है।

5.9.43

नीलोत्पलालिनयनाः परमप्रेमभूषणाः । हासायैव विलासिन्यः क्षणभङ्गितया स्थिताः ॥ ४३ ॥

nīlotpalālinayanāḥ paramapremabhūṣaṇāḥ | hāsāyaiva vilāsinyaḥ kṣaṇabhaṅgitayā sthitāḥ || 43 ||

Women with eyes like blue lotuses full of bees, whose only ornament is deep love, are made just to raise a laugh; they last only a moment before they break.

जिन स्त्रियों की आँखें भँवरों से भरे नीले कमल जैसी हैं, जिनका सबसे बड़ा गहना गहरा प्रेम है, वे बस हँसाने के लिए हैं; वे एक पल में ही टूट जाती हैं।

5.9.44

येषां निमेषणोन्मेषैर्जगतां प्रलयोदयौ । तादृशाः पुरुषाः सन्ति मादृशां गणनैव का ॥ ४४ ॥

yeṣāṃ nimeṣaṇonmeṣairjagatāṃ pralayodayau | tādṛśāḥ puruṣāḥ santi mādṛśāṃ gaṇanaiva kā || 44 ||

There are men whose mere blink makes whole worlds end and begin again. When such men exist, what is the counting of someone like me?

ऐसे पुरुष हैं जिनकी सिर्फ पलक झपकने से पूरी दुनिया मिट जाती है और फिर से बन जाती है। जब ऐसे लोग हैं, तो मेरे जैसे की गिनती ही क्या है।

5.9.45

सन्ति रम्यतराद्रम्याः सुस्थिरादपि सुस्थिराः । चिन्तापर्यवसानेयं पदार्थश्रीः किमीहसे ॥ ४५ ॥

santi ramyatarādramyaḥ susthirādapi susthirāḥ | cintāparyavasāneyaṃ padārthaśrīḥ kimīhasē || 45 ||

There are things more beautiful than the most beautiful, more lasting than the most lasting. But the glory of things ends in a mere thought. What are you chasing after?

ऐसी चीज़ें हैं जो सबसे सुंदर चीज़ से भी सुंदर हैं, सबसे टिकाऊ चीज़ से भी टिकाऊ हैं। पर चीज़ों की यह शोभा एक विचार में ही खत्म हो जाती है। तू किसके पीछे भाग रहा है।

5.9.46

संपदश्च विचित्रा यास्ताश्चेच्चित्तेन संमताः । तत्ता अपि महारम्भा हन्त मन्ये महापदः ॥ ४६ ॥

saṃpadaśca vicitrā yāstāścecchittena saṃmatāḥ | tattā api mahārambhā hanta manye mahāpadaḥ || 46 ||

There are many wonderful kinds of wealth. If the mind welcomes them, then, alas, I think even these things, however great the effort behind them, are great troubles.

तरह-तरह की अनोखी संपत्तियाँ होती हैं। अगर मन उन्हें अपना ले, तो हाय, मुझे लगता है कि इतनी मेहनत से पाई ये चीज़ें भी बड़ी मुसीबतें ही हैं।

5.9.47

आपदोऽपि विचित्रा यास्ताश्चेन्मनसि संमताः । तत्ता अपि महारम्भा मन्ये मनसि संपदः ॥ ४७ ॥

āpadō'pi vicitrā yāstāścennamanasi saṃmatāḥ | tattā api mahārambhā manye manasi saṃpadaḥ || 47 ||

There are many strange misfortunes too. If the mind welcomes them, then those very things, however great the effort behind them, become, I think, wealth in the mind.

और तरह-तरह की अजीब मुसीबतें भी होती हैं। अगर मन उन्हें अपना ले, तो वही चीज़ें, चाहे कितनी भी बड़ी क्यों न हों, मन में मुझे संपत्ति जैसी ही लगने लगती हैं।

5.9.48

मनोमात्रविवर्तेऽस्मिञ्जगत्यब्धीन्दुभङ्गुरे । ममेदमित्यपूर्वेयं कुतस्त्याऽक्षरमालिका ॥ ४८ ॥

manomātravivarte'smiñjagatyabdhīndubhaṅgure | mamedamityapūrveyaṃ kutastyā'kṣaramālikā || 48 ||

This world is only a shape the mind takes, as fragile as the moon's reflection on the sea. So where does this strange, never-heard-before word, this is mine, come from?

यह दुनिया मन का ही एक बदलता रूप है, समुद्र में चाँद की परछाई जैसी नाज़ुक। फिर यह अनोखी, पहले कभी न सुनी बात, यह मेरा है, आती कहाँ से है।

5.9.50

इयत्ताच्छिन्नतप्तासु सुखनाम्नीषु दृष्टिषु । कास्वेतास्वनुरक्तोऽस्मि पतङ्गोऽग्निशिखास्विव ॥ ५० ॥

iyattācchinnataptāsu sukhanāmnīṣu dṛṣṭiṣu | kāsvetāsvanurakto'smi pataṅgo'gnisikhāsviva || 50 ||

Why am I caught up in any of these things called pleasure, things that are limited and burning, like a moth caught in the tip of a flame?

ये तथाकथित सुख सीमित भी हैं और जलाने वाले भी। फिर मैं इनमें से किसी में क्यों उलझा हुआ हूँ, जैसे पतंगा आग की लौ में उलझ जाता है।

5.9.51

वरमेकान्तदाहेषु लुठनं रौरवाग्निषु । नत्वालूनविवर्तासु स्थितं संसारवृत्तिषु ॥ ५१ ॥

varamekāntadāheṣu luṭhanaṃ rauravāgniṣu | natvālūnavivartāsu sthitaṃ saṃsāravṛttiṣu || 51 ||

It is better to roll in fires that do nothing but burn, in the fires of the hell called Raurava, than to stay caught in the round of this world, where everything is cut down as soon as it turns.

रौरव नरक की उन आगों में लोटना बेहतर है जो सिर्फ जलाती हैं, बजाय इसके कि संसार के उस चक्र में फँसे रहें जहाँ हर चीज़ बनते ही कट जाती है।

5.9.52

संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते । तन्मध्यपतिते देहे सुखमासाद्यते कथम् ॥ ५२ ॥

saṃsāra eva duḥkhānāṃ sīmānta iti kathyate | tanmadhyapatite dehe sukhamāsādyate katham || 52 ||

This world is itself called the outer edge of all sorrows. When the body has fallen right into the middle of it, how can it find happiness?

इस संसार को ही सारे दुखों की सबसे बाहरी सीमा कहा जाता है। जब शरीर इसके बीचोंबीच जा गिरा है, तो उसे सुख कैसे मिल सकता है।

5.9.53

अकृत्रिममहादुःखे संसारे ये व्यवस्थिताः। त एतेऽन्यानि दुःखानि जानते मधुराण्यलम्॥ ५३॥

akṛtrimamahāduḥkhe saṃsāre ye vyavasthitāḥ| ta ete'nyāni duḥkhāni jānate madhurāṇyalam || 53 ||

Those who live in this world, which is itself a real and great sorrow, find every other sorrow quite sweet by comparison.

जो लोग इस संसार में रहते हैं, जो खुद एक सच्चा और बड़ा दुख है, उन्हें बाकी सारे दुख उसके आगे मीठे ही लगते हैं।

5.9.54

अहमप्यधमोत्कृष्टकाष्ठलोष्टसमस्थितिः। अज्ञैरेवागतः साम्यं परमामृष्टवस्तुभिः॥ ५४॥

ahamapyadhamotkṛṣṭakāṣṭhaloṣṭasamasthitiḥ| ajñairevāgataḥ sāmyaṃ paramāmṛṣṭavastubhiḥ || 54 ||

I too am no different from a piece of wood or a clod of earth, whether poor or fine. Only the ignorant see this sameness, people who have never touched the highest truth.

मैं भी लकड़ी के किसी टुकड़े या मिट्टी के ढेले से अलग नहीं हूँ, चाहे वह घटिया हो या बढ़िया। यह समानता वही अज्ञानी लोग देखते हैं, जिन्होंने परम सत्य को कभी छुआ ही नहीं।

5.9.55

संकल्पमेव तन्मन्ये संकल्पोपशमेन तत्। शोषयामि यथा शोषमेति संसारपादपः॥ ५५॥

saṃkalpameva tanmanye saṃkalpopaśamena tat| śoṣayāmi yathā śoṣameti saṃsārapādapaḥ || 55 ||

I think all of this is nothing but a thought. By calming that thought I am drying it up, so that the tree of this world withers away.

मुझे लगता है कि यह सब कुछ एक विचार भर है। उस विचार को शांत करके मैं इसे सुखा रहा हूँ, ताकि संसार रूपी यह पेड़ मुरझा जाए।

5.9.57

आकारमात्ररम्यासु मनोमर्कटवृत्तिषु। परिज्ञातास्विहाद्यैव न रमे नाशनीष्वहम्॥ ५७॥

ākāramātraramyāsu manomarkaṭavṛttiṣu| parijñātāsvihādyaiva na rame nāśanīṣvaham || 57 ||

In the antics of the mind, that monkey, there are things pleasant only to look at. Now that I have understood them fully, from today I take no pleasure in these things that pass away.

मन रूपी बंदर की उछल-कूद में कुछ चीज़ें सिर्फ देखने में सुंदर लगती हैं। अब जब मैं इन्हें अच्छी तरह समझ चुका हूँ, तो आज से मैं इन नाशवान चीज़ों में कोई आनंद नहीं लेता।

5.9.58

आशापाशशतप्रोताः पातोत्पातोपतापदाः। संसारवृत्तयो भुक्ता इदानीं विश्रमाम्यहम्॥ ५८॥

āśāpāśaśataprotāḥ pātotpātopatāpadāḥ| saṃsāravṛttayo bhuktā idānīṃ viśramāmyaham || 58 ||

Strung through with a hundred ropes of desire, bringing falls, troubles, and pain, the ways of this world, I have lived through them all. Now I rest.

आशा की सैकड़ों रस्सियों में बँधी हुई, गिरावट, मुसीबत और पीड़ा देने वाली संसार की इन बातों को मैं भोग चुका हूँ। अब मैं आराम करता हूँ।

5.9.59

हा हतोऽस्मि विनष्टोऽस्मि मृतोऽस्मीति पुनःपुनः। शोचितं गतमेवाहमिदानीं नानुरोदिमि॥ ५९॥

hā hato'smi vinaṣṭo'smi mṛto'smīti punaḥpunaḥ | śocitaṃ gatamevāhamidānīṃ nānurodimi || 59 ||

Oh, I am struck down, I am ruined, I am dead, this I grieved over, again and again. That is past now. I do not weep for it anymore.

हाय, मैं मारा गया, मैं बर्बाद हो गया, मैं मर गया, ऐसा सोचकर मैं बार-बार दुखी होता रहा। अब वह बीत चुका है। अब मैं उसके लिए नहीं रोता।

5.9.60

प्रबुद्धोऽस्मि प्रहृष्टोऽस्मि दृष्टश्चोरोऽयमात्मनः । मनो नाम निहन्म्येनं मनसास्मि चिरं हतः ॥ ६० ॥

prabuddho'smi praḥṛṣṭo'smi dṛṣṭaścoro'yamātmanaḥ | mano nāma nihanmyenaṃ manasāsmi ciraṃ hataḥ || 60 ||

I am awake, I am overjoyed. I have caught sight of this thief who steals from the self, the one called mind. Now I will destroy it. For so long it is this mind that has struck me down.

मैं जाग गया हूँ, मैं बहुत खुश हूँ। मैंने आत्मा से चुराने वाले उस चोर को देख लिया है, जिसका नाम मन है। अब मैं इसे नष्ट कर दूँगा। इतने लंबे समय से इसी मन ने मुझे मारा है।

5.9.61

एतावन्तमिमं कालं मनोमुक्ताफलं मम । अविद्धमासीदधुना विद्धं तु गुणमर्हति ॥ ६१ ॥

etāvantamimaṃ kālaṃ manomuktāphalaṃ mama | aviddhamāsīdadhunā viddhaṃ tu guṇamarhati || 61 ||

All this long time, the pearl that is my mind lay with no hole bored through it. Now it is pierced, and being pierced, it is fit to be strung.

इतने लंबे समय तक मेरा मन एक ऐसा मोती था जिसमें कोई छेद नहीं था। अब यह छिद गया है, और छिदने के बाद यह माला में पिरोने लायक हो गया है।

5.9.62

मनस्तुषारकणिका विवेकार्कातपेन मे । चिरप्रवृत्तये नूनमचिराल्लयमेष्यति ॥ ६२ ॥

manastuṣārakaṇikā vivekārkātapena me | cirapravṛttaye nūnamacirāllayameṣyati || 62 ||

My mind is a tiny drop of dew. Under the heat of the sun that is my clear understanding, even though it has lasted a long time, it will surely melt away soon.

मेरा मन ओस की एक छोटी बूँद है। मेरी स्पष्ट समझ रूपी सूरज की गर्मी से, यह भले ही बहुत समय से बनी हुई है, पर यह निश्चय ही जल्दी पिघल जाएगी।

5.9.63

विविधैः साधुभिः सिद्धैरहं साधु प्रबोधितः । आत्मानमनुगच्छामि परमानन्दसाधनम् ॥ ६३ ॥

vividhaiḥ sādhubhiḥ siddhairahaṃ sādhu prabodhitaḥ | ātmānamanugacchāmi paramānandasādhanam || 63 ||

Many good and perfected people have taught me well. Now I follow the self, the means to the highest joy.

अनेक भले और सिद्ध लोगों ने मुझे भली-भाँति समझाया है। अब मैं आत्मा का अनुसरण करता हूँ, जो सबसे बड़े आनंद का साधन है।

5.9.64

आत्मानं मणिमेकान्ते लब्ध्वैवालोकयन्सुखम् । तिष्ठाम्यस्तमितान्येहः शारदीवाचलेऽम्बुदः ॥ ६४ ॥

ātmānaṃ maṇimekānte labdhvaivālokayansukham | tiṣṭhāmyastamitānyehaḥ śāradīvācale'mbudaḥ || 64 ||

Having found the self, a jewel, alone in a quiet place, and looking at it happily, I stay still, all my other wants set like the sun, like an autumn cloud resting on a mountain.

एकांत में आत्मा रूपी मणि को पाकर, उसे सुख से देखते हुए, मैं शांत बैठा रहता हूँ। मेरी बाकी सारी चाहें डूबते सूरज की तरह बुझ चुकी हैं, जैसे शरद ऋतु का बादल किसी पहाड़ पर थमा रहता है।

5.9.65

अयमहमिदमाततं ममेति स्फुरितमपास्य बलादसत्यमन्तः । रिपुमतिबलिनं मनो निहत्य प्रशममुपैमि नमोऽस्तु ते विवेक ॥ ६५ ॥

ayamahamidamātataṃ mameti sphuritamapāsya balādasatyamantaḥ | ripumatibaliñaṃ mano nihatya praśamamupaimi namo'stu te viveka || 65 ||

I have forced away the false, flickering thought inside me, I am this, all this spread out before me is mine. I have killed the mind, my strongest enemy, and now I come to peace. Hail to you, clear understanding.

मैंने अपने भीतर के उस झूठे, चमकते विचार को ज़बरदस्ती हटा दिया है, मैं यह हूँ, यह सब फैला हुआ मेरा है। मैंने मन को, जो मेरा सबसे बलवान दुश्मन था, मार डाला है, और अब मैं शांति को पा रहा हूँ। हे स्पष्ट समझ, तुझे प्रणाम।

Chapter 10

5.10.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति चिन्तयतस्तस्य पुरः संप्रविवेश ह । प्रतीहारः परो भानोः स्यन्दनाग्र इवारुणः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti cintayatastasya puraḥ saṃpraviveśa ha | pratīhāraḥ paro bhānoḥ syandanāgra ivāruṇaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: as he was thinking this, a great chamberlain came in before him, red like Aruna who rides at the front of the sun's chariot.

श्री वसिष्ठ बोले, वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसके सामने एक बड़ा प्रतिहारी आ गया, वह उतना ही लाल था जितना सूरज के रथ के आगे चलने वाला अरुण होता है।

5.10.2

प्रतीहार उवाच । देव दोःस्तम्भविश्रान्तसमस्तवसुधाभर । संपादयोत्तिष्ठ दिनव्यापारं नृपतोचितम् ॥ २ ॥

pratīhāra uvāca | deva doḥstambhaviśrāntasamastavasudhābhara | saṃpādayottisththa dinavyāpāraṃ nṛpatochitam || 2 ||

The chamberlain said: my lord, on whose pillar-like arms the burden of this whole earth rests, get up and do the day's work that is fitting for a king.

प्रतिहारी बोला, हे राजन, जिनकी खंभे जैसी भुजाओं पर इस पूरी धरती का बोझ टिका हुआ है, उठिए और राजा के लिए ठीक ऐसा दिन का काम कीजिए।

5.10.3

एताः कुसुमकर्पूरकुङ्कुमाम्बुघटाः स्त्रियः । स्नानभूमौ स्थिताः सज्जा नद्यो मूर्तियुता इव ॥ ३ ॥

etāḥ kusumakarpūrakuṅkumāmbughaṭāḥ striyaḥ | snānabhūmau sthitāḥ sajjā nadyo mūrtiyutā iva || 3 ||

These women, holding pots of water mixed with flowers, camphor and saffron, are standing ready at the bathing place, like rivers that have taken on a body.

ये स्त्रियाँ फूल, कपूर और केसर मिले पानी के घड़े लिए स्नान की जगह पर तैयार खड़ी हैं, जैसे नदियाँ शरीर धारण करके खड़ी हो गई हों।

5.10.4

एताः कमलकह्लारकाननभ्रान्तषट्पदाः । कृताः कमलिनीपाशरचितांशुकमण्डपाः ॥ ४ ॥

etāḥ kamalakahlārakānanabhrāntaṣaṭpadāḥ | kṛtāḥ kamalinīpāśaracitāṃśukamaṇḍapāḥ || 4 ||

Bees are wandering over these women as if they were groves of lotus and white water lily, and canopies of cloth have been set up amid the clusters of lotus plants.

इन स्त्रियों पर भौंरे ऐसे मंडरा रहे हैं मानो ये कमल और कुमुद के वन हों, और कमल के पौधों के बीच कपड़े के मंडप खड़े किए गए हैं।

5.10.5

एताः कमलिनीतीरभुवश्छत्रैः प्रपूरिताः । सचामररथेभाश्वैः स्नानावसरसेविनाम् ॥ ५ ॥

etāḥ kamalinītīrabhuvaschatraiḥ prapūritāḥ | sacāmararathebhāśvaiḥ snānāvasarasevinām || 5 ||

This ground on the bank of the lotus pond is filled with umbrellas, and with the fly whisks, chariots, elephants and horses of those who have come here for their bath.

कमल के तालाब के किनारे की यह जगह छतरियों से भरी है, और साथ ही यहाँ स्नान करने आए लोगों के चंवर, रथ, हाथी और घोड़ों से भी भरी है।

5.10.6

समग्रसुमनःपूर्णैरन्नौषधिपूरिप्लुतैः । सज्जीकृताः पटलकैर्देवार्चनगृहास्तथा ॥ ६ ॥

samagrasumanaḥpūrṇairannaauṣadhipūriplutaiḥ | sajjīkṛtāḥ paṭalakairdevārcanagṛhāstathā || 6 ||

And the temples for the worship of the gods have also been made ready, with trays full of every kind of flower, and filled with food and herbs.

और देवताओं की पूजा के मंदिर भी तैयार किए जा चुके हैं, हर तरह के फूलों से भरी थालियों के साथ, और अनाज और जड़ी-बूटियों से भरे हुए।

5.10.7

स्नातः पवित्रहस्तश्च परिजप्याघमर्षणः । त्वामेव प्रेक्षते देव दक्षिणार्हो द्विजव्रजः ॥ ७ ॥

snātaḥ pavitrahastaśca parijapyāghamarṣaṇaḥ | tvāmeva prekṣate deva dakṣiṇārho dvijavrajaḥ || 7 ||

The crowd of brahmins, having bathed and purified their hands, having quietly said the Aghamarshana prayer, deserve their gift and are looking only at you, my lord.

स्नान करके, हाथ पवित्र करके, और अघमर्षण मंत्र धीरे-धीरे बोलकर, ब्राह्मणों की भीड़ दक्षिणा पाने की हकदार है और सिर्फ आपकी ओर देख रही है, हे राजन।

5.10.8

लसच्चामरहस्ताभिः पाल्यते परमेश्वर । सज्जीकृतास्ते कान्ताभिः शीता भोजनभूमयः ॥ ८ ॥

lasaccāmarahastābhiḥ pālyate parameśvara | sajjīkṛtāste kāntābhiḥ śītā bhojanabhūmayaḥ || 8 ||

Great lord, beautiful women have made the cool eating places ready, and they are looking after them with shining fly whisks in hand.

हे परमेश्वर, सुंदर स्त्रियों ने ठंडी भोजन की जगहें तैयार कर दी हैं, और वे चमकते चंवर हाथ में लेकर उनकी देखभाल कर रही हैं।

5.10.9

शीघ्रमुत्तिष्ठ भद्रं ते नियतं कार्यमाचर । न कालमतिवर्तन्ते महान्तः स्वेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

śīghramuttiṣṭha bhadraṃ te niyataṃ kāryamācara | na kālamativartante mahāntaḥ sveṣu karmasu || 9 ||

Get up quickly, may good come to you, do the work that is fixed for you; great men do not let time pass by in their own duties.

जल्दी उठिए, आपका भला हो, अपना तय किया हुआ काम कीजिए; बड़े लोग अपने कामों में समय को यूँ ही जाने नहीं देते।

5.10.10

प्रतीहारपतावित्थमुक्तवत्यथ पार्थिवः । तथैव चिन्तयामास चित्रां संसारसंस्थितिम् ॥ १० ॥

pratīhārapatāvitthamuktavatyatha pārthivaḥ | tathaiva cintayāmāsa citrāṃ saṃsārasaṃsthitim || 10 ||

When the chief chamberlain had said this, the king then thought again, as before, about the strange state of this world.

जब प्रधान प्रतिहारी ने ऐसा कह दिया, तब राजा ने फिर पहले की तरह इस संसार की अजीब हालत के बारे में सोचा।

5.10.11

कियन्मात्रमिदं नाम राज्यं सुखमिति स्थितम्न प्रयोजनमेतेन ममेह क्षणभङ्गिना ॥ ११ ॥

kiyanmātramidaṃ nāma rājyaṃ sukhamiti sthitamna prayojanametena mameha kṣaṇabhaṅginā || 11 ||

How much, after all, is this thing called a kingdom, this happiness that stands here before me? I have no need here for something that breaks apart in a moment.

आखिर यह जो राज्य है, यह जो सुख सामने खड़ा दिख रहा है, है ही कितना? पल भर में टूट जाने वाली इस चीज़ से मुझे यहाँ कोई मतलब नहीं है।

5.10.12

सर्वमेव परित्यज्य मिथ्याशम्बरडम्बरमेकान्त एव तिष्ठामि संशान्त इव वारिधिः ॥ १२ ॥

sarvameva parityajya mithyāśambaraḍambaramekānta eva tiṣṭhāmi saṃśānta iva vāridhiḥ || 12 ||

Giving up this whole false and showy pomp, I will stay alone, quiet, like a calmed sea.

इस पूरे झूठे और दिखावटी ठाट-बाट को छोड़कर, मैं अकेला, शांत होकर रहूँगा, जैसे शांत हुआ समुंदर।

5.10.13

अलमेभिरसत्प्रायैर्मम भोगविजृम्भितैःत्यक्त्वा सर्वाणि कर्माणि सुखं तिष्ठामि केवलम् ॥ १३ ॥

alamebhirasatprāyairmama bhogavijṛmbhitaiḥtyaktvā sarvāṇi karmāṇi sukhaṃ tiṣṭhāmi kevalam || 13 ||

Enough of these mostly unreal displays of my pleasure. Giving up all my duties, I will stay happy, alone.

मेरे सुख-भोग के ये ज़्यादातर झूठे तमाशे अब बहुत हो गए। अपने सारे काम छोड़कर मैं अकेला खुश रहूँगा।

5.10.14

चित्त चातुर्यमेतस्माद्भोगाभ्यासकुसंभ्रमात्त्यज जन्मजराजाड्यजालजम्बालशान्तये ॥ १४ ॥

citta cāturyametasmādbhogābhyāsakusaṃbhramāttyaja janmajarājāḍyajālajambālaśāntaye || 14 ||

O mind, be wise, give up this bad confusion that comes from the habit of pleasure, so that this muddy net of birth, old age and dullness may finally grow quiet.

हे मन, समझदार बन, सुख भोगने की आदत से पैदा हुई इस बुरी उलझन को छोड़ दे, ताकि जन्म, बुढ़ापे और जड़ता के इस कीचड़ भरे जाल को आखिरकार शांत किया जा सके।

5.10.15

दशासु स्वासु यास्वेव संभ्रमं चित्त पश्यसिताभ्य एवाभिरचितं परमं दुःखमेष्यसि ॥ १५ ॥

daśāsu svāsu yāsveva saṃbhramaṃ citta paśyasitābhya evābhiracitaṃ paramaṃ duḥkhameṣyasi || 15 ||

O mind, whichever of your own states excites you, from that very state a very great sorrow, made by it, will come to you.

हे मन, अपनी जिस-जिस अवस्था में तुझे उत्तेजना होती है, उसी अवस्था से बना हुआ बहुत बड़ा दुख तुझे मिलेगा।

5.10.16

प्रवृत्तं सन्निवृत्तं सद्भूयोभूयश्चिरंचिरम् । भोगभूमिषु सर्वासु चित्तं तृप्तिं न गच्छति ॥ १६ ॥

pravṛttaṃ sannivṛttaṃ sadbhūyobhūyaścirañciram | bhogabhūmiṣu sarvāsu cittaṃ tṛptiṃ na gacchati || 16 ||

Going out and coming back, again and again, for a very long time, the mind never reaches satisfaction in any field of pleasure.

बार-बार आगे जाकर और पीछे लौटकर, बहुत लंबे समय तक, मन किसी भी सुख-भोग की जगह में तृप्ति नहीं पाता।

5.10.17

तस्मात्पापालमनया तुच्छया भोगचिन्तया । भवत्यकृत्रिमा तृप्तिर्येनाभिपत तं ततः ॥ १७ ॥

tasmātpāpālamanayā tucchayā bhogacintayā | bhavatyakṛtrimā tṛptiryenābhipata taṃ tataḥ || 17 ||

So, wicked mind, enough of this small worry over pleasure; go instead toward that from which comes a satisfaction that is not false.

इसलिए, हे पापी मन, सुख-भोग की इस छोटी सी चिंता को अब छोड़ दे; उस ओर जा, जिससे मिलने वाली तृप्ति झूठी नहीं होती।

5.10.18

इति संचिन्त्य जनकस्तूष्णीमेव बभूव ह । शान्तचापलचेतस्त्वाल्लिपिकर्मार्पितोपमः ॥ १८ ॥

iti saṃcintya janakastūṣṇīmeva babhūva ha | śāntacāpalacetastvāllipikarmārpitopamaḥ || 18 ||

Thinking this, Janaka fell completely silent, his restless mind now calm, like a figure drawn in a painting.

यह सोचकर जनक बिल्कुल चुप हो गए, उनका चंचल मन शांत हो चुका था, मानो वे किसी चित्र में बनाई गई कोई आकृति हों।

5.10.19

प्रतीहारोऽपि नोवाच गौरवेण भयेन च । पुनर्वाक्यं महीपानां चित्तवृत्तिषु शिक्षितः ॥ १९ ॥

pratīhāro'pi novāca gauraveṇa bhayena ca | punarvākyaṃ mahīpānāṃ cittavṛttiṣu śikṣitaḥ || 19 ||

The chamberlain too said nothing more, out of respect and fear, for he was well trained in reading the moods of kings.

प्रतिहारी ने भी आदर और डर के मारे फिर कुछ नहीं कहा, क्योंकि वह राजाओं के मन की चाल पहचानने में माहिर था।

5.10.20

तूष्णीमथ क्षणं स्थित्वा जनको जनजीवितम् । पुनः संचिन्तयामास मनसा शमशालिना ॥ २० ॥

tūṣṇīmatha kṣaṇaṃ sthitvā janako janajīvitam | punaḥ saṃcintayāmāsa manasā śamaśālinā || 20 ||

Then, after staying silent for a moment, Janaka, his mind full of calm, thought once again about the life that people live.

फिर एक पल चुप रहकर, शांति से भरे मन के साथ जनक ने फिर एक बार लोगों के जीवन के बारे में सोचा।

5.10.21

किमुपादेयमस्तीह यन्नात्संसाधयाम्यहम् । कस्मिन्वस्तुनि बध्नामि धृतिं नाशविवर्जिते ॥ २१ ॥

kimupādeyamastīha yatnātsaṃsādhayāmyaham | kasminvastuni badhnāmi dhṛtiṃ nāśavivarjite || 21 ||

What is there here worth reaching for, that I should work hard to get it? On what thing that is free from destruction should I fix my resolve?

यहाँ ऐसा क्या है जिसे पाने के लिए मैं मेहनत करूँ? मैं अपना मन किस ऐसी चीज़ पर टिकाऊँ जो नाश से बची हो?

5.10.22

किं मे क्रियापरतया किं मे निष्क्रिययापि वा । न तदस्ति विनाशेन वर्जितं यत्किलोदितम् ॥ २२ ॥

kiṃ me kriyāparatayā kiṃ me niṣkriyayāpi vā | na tadasti vināśena varjitaṃ yatkilo'ditam || 22 ||

What good is it to me to keep myself busy with action, or equally, to be without action? There is nothing that is ever said to be free from destruction.

मुझे काम में लगे रहने से क्या फ़ायदा है, या काम न करने से ही क्या फ़ायदा है? इस दुनिया में जो भी कहा जाता है, कोई भी चीज़ नाश से बची हुई नहीं है।

5.10.23

क्रियावानक्रियो वास्तु कायोऽयमसदुत्थितः । समस्थितस्य शुद्धस्य चितः का नाम मे क्षतिः ॥ २३ ॥

kriyāvān akriyo vāstu kāyo'yamasadutthitaḥ | samasthitasya śuddhasya citaḥ kā nāma me kṣatiḥ || 23 ||

Let this body, which rose up out of the unreal, act or not act — what loss is it to me, whose awareness stays pure and steady?

यह शरीर, जो असत् से उठा है, चाहे काम करे या न करे, मुझे इससे क्या नुकसान है, जिसकी चेतना शुद्ध और स्थिर बनी रहती है?

5.10.24

नाभिवाञ्छाम्यसंप्राप्तं संप्राप्तं न त्यजाम्यहम्। स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे ॥ २४ ॥

nābhivāñchāmyasaṃprāptaṃ saṃprāptaṃ na tyajāmyaham | svastha ātmani tiṣṭhāmi yanmamāsti tadastu me || 24 ||

I do not wish for what I have not gotten, and I do not throw away what I have gotten. Resting easy in myself, I stay as I am; whatever is mine, let it stay mine.

जो मुझे नहीं मिला, उसकी मुझे चाह नहीं है, और जो मिल गया है, उसे मैं छोड़ता भी नहीं। अपने आप में आराम से टिका रहता हूँ; जो मेरा है, वह मेरा ही रहे।

5.10.25

न ममेह कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन। क्रियया ऽक्रियया वापि यत्प्राप्तं तदसन्मयम् ॥ २५ ॥

na mameha kṛtenārtho nākṛteneiha kaścana | kriyayā'kriyayā vāpi yatprāptaṃ tadasanmayam || 25 ||

Here I have no use for what is done, nor for what is left undone. Whatever is gained, whether by acting or by not acting, is made of the unreal.

यहाँ मुझे न किए हुए काम से कोई मतलब है, न बिना किए हुए से। काम करने से या न करने से जो भी मिलता है, वह सब असत् से बना है।

5.10.26

अकुर्वतः कुर्वतो वा युक्तायुक्ताः क्रिया मम। नाभिवाञ्छितमस्तीह यदुपादेयतां गतम् ॥ २६ ॥

akurvataḥ kurvato vā yuktāyuktāḥ kriyā mama | nābhivāñchitamastīha yadupādeyatāṃ gatam || 26 ||

Whether I do not act or act, my actions may turn out right or wrong; there is nothing here that I long for that is worth reaching for.

मैं काम करूँ या न करूँ, मेरे काम सही निकलें या गलत, यहाँ ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे मैं चाहता होऊँ और जो पाने लायक हो।

5.10.27

तदुत्थाय क्रमप्राप्तां कायोऽयं प्रकृतां क्रियाम्। करोत्वस्पन्दिताङ्गस्तु किमयं साधु शुष्यति ॥ २७ ॥

taduttāya kramaprāptāṃ kāyo'yaṃ prakṛtāṃ kriyām | karotvaspanditāṅgastu kimayaṃ sādhu śuṣyati || 27 ||

So let this body get up and do the natural task that duly comes to it; otherwise, with its limbs left unmoving, why should it simply waste away?

इसलिए यह शरीर उठकर वह स्वाभाविक काम करे जो क्रम से इसके सामने आया है; नहीं तो अंग हिलाए बिना यह यूँ ही क्यों सूखता रहे?

5.10.28

स्थिते मनसि निष्कामे समे विगतरञ्जने। कायावयवजौ कार्यौ स्पन्दास्पन्दौ फले समौ ॥ २८ ॥

sthite manasi niṣkāme same vigatarañjane | kāyāvayavajau kāryau spandāspandau phale samau || 28 ||

When the mind stands free of desire, even, and free of any attachment, then moving or staying still, both being acts of the body's limbs, bring the same result.

जब मन इच्छा से मुक्त, बराबर और किसी लगाव से रहित होकर स्थिर रहता है, तब शरीर के अंगों का हिलना और न हिलना, दोनों काम बराबर फल देते हैं।

5.10.29

कर्मजासु फलश्रीषु मनसा कर्तृभोक्तृते । तस्मिन्प्रशान्तिमायाते कृतमप्यकृतं नृणाम् ॥ २९ ॥

karmajāsu phalaśrīṣu manasā kartṛbhoktṛte | tasminpraśāntimāyāte kṛtamapyakṛtaṃ nṛṇām || 29 ||

When the mind's feeling of being the doer and the enjoyer, in the rich fruits born of action, has grown calm, then even what a person has done becomes as good as undone.

जब कर्मों से मिलने वाले फलों को भोगने में मन का यह भाव, कि मैं ही करने वाला हूँ और मैं ही भोगने वाला हूँ, शांत हो जाता है, तब मनुष्य का किया हुआ काम भी न किए हुए के बराबर हो जाता है।

5.10.30

यो निश्चयोऽन्तः पुरुषस्य रूढः क्रियास्वसौ तन्मयतामुपैति । अनामयं मे पदमाहता धीरधीरतामन्तरलं त्यजामि ॥ ३० ॥

yo niścayo'ntaḥ puruṣasya rūḍhaḥ kriyāsvasau tanmayatāmupaiti | anāmayaṃ me padamāhatā dhīradhīratāmantaralaṃ tyajāmi || 30 ||

The resolve that becomes firmly fixed within a person, in his actions, comes to be one with him. Having reached this untroubled state of mine, I now give up the gap between firmness and wavering.

जो निश्चय किसी मनुष्य के भीतर उसके कामों में दृढ़ हो जाता है, वह उसी के साथ एक हो जाता है। अपनी इस निर्विकार अवस्था को पाकर, अब मैं दृढ़ता और डगमगाहट के बीच के इस फ़ासले को छोड़ता हूँ।

Chapter 11

5.11.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्तां क्रियामसौ । असक्तः कर्तुमुत्तस्थौ दिनं दिनपतिर्यथा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti saṃcintya janako yathāprāptāṃ kriyāmasau | asaktaḥ kartumuttasthau dinaṃ dinapatiryathā || 1 ||

Sri Vasishtha said: thinking this, Janaka got up to carry out the task before him, free of attachment, just as the sun rises to bring on the day.

श्री वसिष्ठ बोले, यह सोचकर जनक बिना किसी मोह के अपने सामने आए काम को करने के लिए उठ खड़े हुए, जैसे सूरज दिन लाने के लिए उगता है।

5.11.2

इष्टानिष्टाः परित्यज्य चेतसा वासनाः स्वयम् । यथाप्राप्तं चकारासौ जाग्रत्येव सुषुप्तवत् ॥ २ ॥

iṣṭāniṣṭāḥ parityajya cetasā vāsanāḥ svayam | yathāprāptaṃ cakārāsau jāgratyeva suṣuptavat || 2 ||

Giving up, in his own mind, both liked and disliked desires, he did whatever task came to him, awake yet as if in deep sleep.

अपने मन से पसंद और नापसंद, दोनों तरह की इच्छाएँ छोड़कर, वे जो भी काम सामने आता वही करते रहे, जागते हुए भी मानो गहरी नींद में हों।

5.11.3

संपाद्य तदहःकार्यमार्यावर्जनपूर्वकम् । अनयच्छर्वरीमेकस्तयैव ध्यानलीलया ॥ ३ ॥

saṃpādya tadahaḥkāryamāryāvarjanapūrvakam | anayaccharvarīmekastayaiva dhyānalīlayā || 3 ||

Having finished that day's work, after first honoring the venerable ones, he alone spent the night in that same play of meditation.

उस दिन का काम पूरा करके, पहले बड़े और आदरणीय लोगों का सम्मान करके, वे अकेले उसी ध्यान के खेल में रात बिताते रहे।

5.11.4

मनः समरसं कृत्वा संशान्तविषयभ्रमम् । शर्वर्यां क्षीयमाणायामित्थं चित्तमबोधयत् ॥ ४ ॥

manaḥ samarasaṃ kṛtvā saṃśāntaviṣayabhramam | śarvaryāṃ kṣīyamāṇāyāmitthaṃ cittamabodhayat || 4 ||

Making his mind calm and even, its confusion about the objects of the senses fully stilled, as the night was ending he spoke thus to teach his own mind.

अपने मन को शांत और एक-सा करके, इंद्रियों के विषयों को लेकर होने वाला भ्रम पूरी तरह मिटाकर, जब रात खत्म हो रही थी तब उन्होंने अपने मन को समझाने के लिए ऐसा कहा।

5.11.5

चित्त चञ्चल संसार आत्मनो न सुखाय ते । शममेहि शमाच्छान्तं सुखं सारमवाप्यते ॥ ५ ॥

citta cañcala saṃsāra ātmano na sukhāya te | śamamehi śamācchāntaṃ sukhaṃ sāramavāpyate || 5 ||

O restless mind, this world is not for your own happiness. Come to peace. From peace comes calm happiness, the true essence one gains.

अरे चंचल मन, यह संसार तेरी अपनी खुशी के लिए नहीं है। शांति की ओर आ जा। शांति से ही शांत सुख मिलता है, यही असली सार पाया जाता है।

5.11.6

यथा यथा विकल्पौघान्संकल्पयसि हेलया । तथा तथैति स्फारत्वं संसारस्तव चिन्तया ॥ ६ ॥

yathā yathā vikalpaughānsaṅkalpayasi helayā | tathā tathaiti sphāratvaṃ saṃsārastava cintayā || 6 ||

The more you carelessly build up floods of thoughts and imaginings, the more this world of yours keeps growing and spreading through your own worrying.

तू जितने ज़्यादा खयाल और कल्पनाएँ बेफिक्री से बनाता जाता है, उतना ही तेरा यह संसार तेरी अपनी चिंता से और फैलता और बढ़ता जाता है।

5.11.7

शतशाखत्वमायाति सेकेन विटपी यथा । अनन्ताधित्वमायासि शठभोगेच्छया तथा ॥ ७ ॥

śataśākhatvamāyāti sekena viṭapī yathā | anantādhitvamāyāsi śaṭhabhogecchayā tathā || 7 ||

Just as a tree grows a hundred branches when it is watered, so you fall into endless torment through your craving for deceitful pleasures.

जैसे पानी देने से पेड़ की सैकड़ों डालियाँ फूट आती हैं, वैसे ही धोखा देने वाले भोगों को पाने की चाह से तुझे अंतहीन दुख मिलता है।

5.11.8

चिन्ताजालविलासोत्था जन्मसंसारसृष्टयः । तस्मात्त्यक्त्वा विचित्रां त्वं चिन्तामुपशमं व्रज ॥ ८ ॥

cintājālavilāsotthā janmasaṃsārasṛṣṭayaḥ | tasmāttyaktvā vicitrāṃ tvaṃ cintāmupaśamaṃ vraja || 8 ||

Births and worlds are creations that arise from the play of this web of thoughts. So give up your restless, many-colored thinking, and go to peace.

जन्म और संसार, ये सब इसी सोच के जाल के खेल से पैदा होते हैं। इसलिए अपनी यह रंग-बिरंगी, बेचैन सोच छोड़ दे और शांति की ओर चला जा।

5.11.9

संसारसृष्टितरलामिमां तुलय सुन्दर । अस्यां चेत्सारमाप्नोषि तदेतामेव संश्रय ॥ ९ ॥

saṃsārasṛṣṭitaralāmimāṃ tulaya sundara | asyāṃ cetsāramāpnoṣi tadetāmeva saṃśraya || 9 ||

Weigh this unsteady creation of the world, O good mind. If you find any real substance in it, then hold on to that very thing.

अरे अच्छे मन, इस डगमगाती हुई सांसारिक रचना को तौलकर देख। अगर तुझे इसमें कोई असली सार मिले, तो उसी को पकड़ ले।

5.11.10

आस्थां यस्मात्परित्यज्य दृश्यदर्शनलालसात् । मैतद्गृहाण मा मुञ्च स्वेच्छया विहरेच्छया ॥ १० ॥

āsthāṃ yasmātparityajya dṛśyadarśanalālasāt | maitadgṛhāṇa mā muñca svecchayā viharecchayā || 10 ||

Since your attachment comes from the eagerness to see the visible world, give up that attachment. Yet do not grasp this world, and do not let it go either. Move through it exactly as you wish, at your own will.

चूँकि तेरा मोह इस दिखने वाली दुनिया को देखने की उतावली से पैदा होता है, इसलिए वह मोह छोड़ दे। पर इसे न तो पकड़ और न ही छोड़, अपनी मर्ज़ी से, अपनी इच्छा के मुताबिक इसमें घूमता रह।

5.11.11

इदं दृश्यमसत्सद्वाप्युदेत्वस्तमुपैतु वा । साधो विषमतां गच्छ मैतदीयैगुणागुणैः ॥ ११ ॥

idaṃ dṛśyamasatsadvāpyudetvastamupaitu vā | sādho viṣamatāṃ gaccha maitadīyaiguṇāguṇaiḥ || 11 ||

Whether this visible world is real or unreal, whether it appears or disappears, O good one, do not let its good and bad qualities throw you off balance.

यह दिखने वाली दुनिया सच हो या झूठ, चाहे यह बने या मिटे, अरे भले मन, इसके अच्छे या बुरे गुणों से अपना संतुलन मत खो।

5.11.12

मनागपि न संबन्धस्तव दृश्येन वस्तुना । अविद्यमानरूपेण संबन्धः कोऽयमीदृशः ॥ १२ ॥

manāgapi na saṃbandhastava dṛśyena vastunā | avidyamānarūpeṇa saṃbandhaḥ ko'yamīdṛśaḥ || 12 ||

You do not have even the slightest connection with any visible thing. What kind of connection could there even be with something whose very form does not exist?

तेरा किसी भी दिखने वाली चीज़ से रत्ती भर भी नाता नहीं है। जिस चीज़ का रूप ही असल में है नहीं, उससे भला कैसा नाता हो सकता है।

5.11.14

असदेतत्तु सच्चेत्त्वं तथापि किल सुन्दर । सङ्गः सदसतोः कीदृग्वद त्वं मर्त्यजीवयोः ॥ १४ ॥

asadetattu saccettvaṃ tathāpi kila sundara | saṅgaḥ sadasatoḥ kīdṛgvad tvaṃ martyajīvayoḥ || 14 ||

But even if this world is unreal and you, O good mind, are real, tell me, what kind of tie could there be between the real and the unreal, between the mortal and the living self?

पर अगर यह संसार झूठा है और तू, अरे अच्छे मन, सच्चा है, तो तू ही बता, सच और झूठ का, यानी नाशवान शरीर और जीव आत्मा का, कैसा नाता हो सकता है।

5.11.15

असत्त्वमेतच्च न सद्व्योरेवासतोः सतोः । संबन्ध इति चित्रेयमपूर्वैवाक्षरावली ॥ १५ ॥

asattvametacca na sadvyorevāsatoḥ satoḥ | saṃbandha iti citreyamapūrvaivākṣarāvalī || 15 ||

Non-existence itself is not something that exists. So to speak of a connection between these two, the unreal and the real, is a strange, truly unheard-of string of words.

जो है ही नहीं, वह खुद कोई असली चीज़ नहीं है। इसलिए इन दोनों में, यानी झूठ और सच में, कोई नाता बताना अजीब और सचमुच एक अनसुनी बात है।

5.11.16

तस्मान्महाधिं मुञ्च त्वं मूकमुल्लासमाहर । संक्षुब्धाम्बुधिमाविष्टां त्यजाभव्यामिमां स्थितिम् ॥ १६ ॥

tasmānmahādhiṃ muñca tvaṃ mūkamullāsamāhara | saṃkṣubdhāmbudhimāviṣṭāṃ tyajābhavyāmimāṃ sthitim || 16 ||

So let go, O mind, of your great anguish, and take up a quiet joy instead. Give up this wretched state, caught as it is in a churning sea.

इसलिए अरे मन, अपना बड़ा दुख छोड़ दे और चुपचाप खुशी अपना ले। इस बुरी हालत को छोड़ दे, जो एक उमड़ते हुए समुद्र में फँसी हुई है।

5.11.17

कन्दुकालातवद्व्यर्थमात्मनैव परिज्वलन्। मा मोहमलमासाद्य मन्दतां गच्छ सन्मते ॥ १७ ॥

kandukālātavadvyarthamātma naiva parijvalan | mā mohamalamāsādya mandatāṃ gaccha sanmate || 17 ||

Blazing pointlessly all on your own, like a tossed ball, like a whirled firebrand, do not fall into the stain of delusion and sink into dullness, O right-minded one.

अरे सही सोच वाले मन, तू फेंकी हुई गेंद और घुमाई हुई मशाल की तरह अपने आप बेकार में जलता रहता है। भ्रम के इस मैल में मत फँस और सुस्ती में मत डूब।

5.11.18

न तदिहास्ति समुन्नतमुत्तमं व्रजसि येन परां परिपूर्णताम्। तदवलम्ब्य बलादतिधीरतां जहिहि चञ्चलतां शठ रे मनः ॥ १८ ॥

na tadihāsti samunnatamuttamaṃ vrajasi yena parāṃ paripūrṇatām | tadavalambya balādatidhīratāṃ jahihi cañcalatāṃ śaṭha re manaḥ || 18 ||

There is nothing here so great that through it you could reach complete and highest fullness. Relying on just this, hold firm with all your strength, and give up your restlessness, O deceitful mind.

यहाँ ऐसी कोई ऊँची चीज़ नहीं है जिससे तुझे पूरी और सबसे बड़ी परिपूर्णता मिल जाए। बस इसी बात को थामकर, पूरी ताकत से अटल हो जा और अपनी बेचैनी छोड़ दे, अरे धोखेबाज़ मन।

Chapter 12

5.12.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवं विचारयंस्तत्र स्वराज्ये जनको नृपः । चकाराखिलकार्याणि न मुमोह च धीरधीः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ vicārayaṃstatra svarājye janako nṛpaḥ | cakārākhilakāryāṇi na mumoha ca dhīradhīḥ || 1 ||

Vasishtha said, thinking in this way, king Janaka carried out all his royal duties in his own kingdom, and being firm of mind, he was never confused.

वसिष्ठ ने कहा, इस तरह विचार करते हुए राजा जनक ने अपने राज्य में अपने सारे काम किए, और स्थिर बुद्धि होने के कारण वह कभी मोहित नहीं हुआ।

5.12.2

न मनः प्रोल्लासास्य क्वचिदानन्दवृत्तिषु । केवलं सुषुप्तसंस्थं सदैव व्यवतिष्ठत ॥ २ ॥

na manaḥ prollalāsāsya kvacidānandavṛttiṣu | kevalaṃ suṣuptasaṃsthaṃ sadaiva vyavatiṣṭhat || 2 ||

His mind never leapt up with joy at any pleasurable feeling. It simply stayed settled, always, as if in deep sleep.

उसका मन कभी किसी सुख की अनुभूति में उछलकर आनंदित नहीं हुआ। वह बस हमेशा गहरी नींद की तरह शांत होकर स्थिर रहता था।

5.12.3

ततःप्रभृत्यसौ दृश्यं नाजहार न वात्यजत् । केवलं विगताशङ्क वर्तमाने व्यवस्थितः ॥ ३ ॥

tataḥprabhṛtyasau dṛśyaṃ nājahāra na vātyajat | kevalaṃ vigatāśaṅka vartamāne vyavasthitaḥ || 3 ||

From then on, he neither grasped the world he saw nor threw it away. Completely free of doubt, he simply stayed settled in the present.

उस दिन से वह न तो दिखने वाले संसार को पकड़ता था और न ही उसे त्यागता था। हर तरह के संदेह से मुक्त होकर वह बस वर्तमान क्षण में स्थिर रहता था।

5.12.4

अनारतविवेकेन तेन सद्यः सनातनम् । पुनः कलङ्कं नैवाप्तमम्बरेणेव राजसम् ॥ ४ ॥

anāratavivekena tena sadyaḥ sanātanam | punaḥ kalaṅkaṃ naivāptamambareṇeva rājasam || 4 ||

Through his ceaseless discernment, he reached the eternal state at once, and no stain could ever touch him again, just as the sky is never stained by the redness of dusk.

अपने निरंतर विवेक के कारण वह तुरंत ही सनातन तत्व को प्राप्त हो गया, और उसके बाद कोई मैल उसे कभी नहीं छू सका, ठीक वैसे ही जैसे आकाश शाम की लाली से कभी रंगीन नहीं होता।

5.12.5

स्वविवेकानुसंधानादिति तस्य महीपतेः । सम्यग्ज्ञानमनन्ताभमलं विमलतां ययौ ॥ ५ ॥

svavivekānusandhānāditi tasya mahīpateḥ | samyajjñānamanantābhamalaṃ vimalatāṃ yayau || 5 ||

In this way, through the king's own constant inquiry into discernment, his right knowledge, infinite in its radiance, became completely pure.

इस प्रकार अपने विवेक की निरंतर खोज से राजा का सच्चा ज्ञान, जो अनंत तेज से भरा था, पूरी तरह निर्मल हो गया।

5.12.6

अनामृष्टविकल्पांशुश्चिदात्मा विगतामयः । उदियाय हृदाकाशे तस्य व्योम्नीव भास्करः ॥ ६ ॥

anāmṛṣṭavikalpāṃśuścidātmā vigatāmayaḥ | udiyāya hṛdākāśe tasya vyomnīva bhāskaraḥ || 6 ||

The conscious self, its rays untouched by any doubt, free of all sickness, rose up in the sky of his heart, like the sun rising in the sky.

वह चेतन आत्मा, जिसकी किरणें किसी भी शंका से अछूती थीं, हर रोग से मुक्त होकर, उसके हृदय के आकाश में यूँ उदय हुई जैसे आकाश में सूरज उगता है।

5.12.7

स ददर्शाखिलान्भावांश्चिच्छक्तौ समवस्थितान् । आत्मभूताननन्तात्मा सर्वभूतात्मकोविदः ॥ ७ ॥

sa dadarśākhilānbhāvāṃścicchaktau samavasthitān | ātmabhūtānanantātmā sarvabhūtātmakovidaḥ || 7 ||

He saw all things resting in the power of consciousness, as one with his own self. His self was infinite, and he knew himself as the self within all beings.

उसने सारी चीज़ों को चेतना की शक्ति में टिकी हुई देखा, मानो वे उसकी अपनी आत्मा ही हों। उसकी आत्मा अनंत थी, और वह स्वयं को सब प्राणियों की आत्मा के रूप में जानता था।

5.12.8

प्रहृष्टो न बभूवासौ क्वचिन्न च सुदुःखितः । प्रकृतेर्व्यवहारत्वात्सदैव सममानसः ॥ ८ ॥

prahṛṣṭo na babhūvāsau kvacinnaca suduḥkhitaḥ | prakṛtervyavahāratvātsadaiva samamānasaḥ || 8 ||

He was never overjoyed, and never deeply sorrowful, because he knew joy and sorrow are only the workings of nature. He always kept an even mind.

वह कभी अत्यधिक हर्षित नहीं हुआ और न कभी बहुत दुखी हुआ, क्योंकि वह जानता था कि यह सब प्रकृति का ही व्यवहार है। वह सदा समान चित्त वाला बना रहा।

5.12.9

जीवन्मुक्तो बभूवासौ ततःप्रभृति मानदः । जनको जरठज्ञानी ज्ञातलोकपरावरः ॥ ९ ॥

jīvanmukto babhūvāsau tataḥprabhṛti mānadaḥ | janako jaraṭhajñānī jñātalokaparāvaraḥ || 9 ||

From then on, Janaka, the giver of honor, became liberated while still alive. His knowledge was fully ripened, and he knew both the highest truth and the ordinary world.

उस समय से जनक, जो सबको सम्मान देने वाला था, जीवित रहते हुए भी मुक्त हो गया। उसका ज्ञान पूरी तरह पक चुका था, और वह परम सत्य और सांसारिक जगत दोनों को जानता था।

5.12.10

राज्यं कुर्वन्विदेहानां जनको जनजीवितम् । नैव हर्षविषादाभ्यां सोऽवशः परितप्यते ॥ १० ॥

rājyaṃ kurvanvidehānāṃ janako janajīvitam | naiva harṣaviṣādābhyāṃ so'vaśaḥ paritapyate || 10 ||

Janaka, who was the very life of his people, ruled the kingdom of Videha, but he was never tormented by joy or sorrow. They had no power over him.

जनक, जो अपनी प्रजा का सहारा था, विदेह के राज्य पर शासन करता था, पर हर्ष और शोक उस पर कभी काबू नहीं पा सके और उसे कभी सताया नहीं।

5.12.11

नास्तमेति न चोदेति गुणदोषविचेष्टितैः ॥ ११ ॥

nāstameti na codeti guṇadoṣaviceṣṭitaiḥ || 11 ||

He does not set and he does not rise through the workings of virtue and fault.

गुण और दोष के कामों से वह न तो डूबता है और न ही उगता है।

5.12.12

अर्थानर्थैः स राज्योत्थैर्न ग्लायति न हृष्यति । कुर्वन्नपि करोत्येष न किंचिदपि कुत्रचित् । स तिष्ठत्येव सततं सर्वदैवान्तरे चितः ॥ १२ ॥

arthānarthaiḥ sa rājyotthairna glāyati na hṛṣyati | kurvannapi karotyeṣa na kiṃcidapi kutracit | sa tiṣṭhatyeva satataṃ sarvadaivāntare citḥ || 12 ||

He is not troubled and not overjoyed by the gains and losses that come from ruling the kingdom. Even while acting, he truly does nothing at all, anywhere. He always remains, forever, aware within.

राज्य से मिलने वाले लाभ और हानि से वह न दुखी होता है और न प्रसन्न होता है। कर्म करते हुए भी वह वास्तव में कहीं कुछ नहीं करता। वह सदा, हमेशा, भीतर से सजग बना रहता है।

5.12.13

सुषुप्तावस्थितस्यैव जनकस्य महीपतेः । भावनाः सर्वभावेभ्यः सर्वथैवास्तमागताः ॥ १३ ॥

suṣuptāvasthitasyaiva janakasya mahīpateḥ | bhāvanāḥ sarvabhāvebhyaḥ sarvathaivāstamāgatāḥ || 13 ||

For king Janaka, who remained as if in deep sleep, all mental notions about every object had completely come to rest.

राजा जनक, जो गहरी नींद जैसी अवस्था में स्थिर था, उसके लिए हर वस्तु के प्रति उठने वाले सारे मानसिक भाव पूरी तरह शांत हो चुके थे।

5.12.14

भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ । वर्तमाननिमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते ॥ १४ ॥

bhaviṣyaṃ nānusaṃdhattē na atītaṃ cintayatyasau | vartamānanimēṣaṃ tu hasannēvānuvartatē || 14 ||

He does not dwell on the future, and he does not think about the past. He simply lives out the present moment, smiling.

वह न भविष्य के बारे में सोचता है और न बीते हुए समय के बारे में विचार करता है। वह बस वर्तमान क्षण को मुस्कुराते हुए जीता है।

5.12.15

स्वविचारवशेनैव तेन तामरसेक्षण । प्राप्तं प्राप्यमशेषेण राम नेतरयेच्छया ॥ १५ ॥

svavicāravashenaiva tena tāmaraśekṣaṇa | prāptaṃ prāpyamaśeṣeṇa rāma netarayecchayā || 15 ||

O lotus-eyed Rama, it was through the power of his own inquiry alone that he fully reached what was to be reached, not through any other wish.

हे कमल-नयन राम, अपने ही विवेक की शक्ति से उसने जो पाने योग्य था, उसे पूरी तरह पा लिया, किसी और इच्छा से नहीं।

5.12.16

तावत्तावत्स्वकेनैव चेतसा प्रविचार्यते । यावद्यावद्विचाराणां सीमान्तः समवाप्यते ॥ १६ ॥

tāvattāvatsvakenaiva cetasā pravicāryate | yāvadyāvadvicārāṇāṃ sīmāntaḥ samavāpyate || 16 ||

One should keep inquiring with one's own mind, again and again, until the very end of that inquiry is reached.

अपने ही मन से तब तक बार-बार विचार करते रहना चाहिए, जब तक विचार की अंतिम सीमा तक न पहुंच जाए।

5.12.17

न तद्गुरोर्न शास्त्रार्थान्न पुण्यात्प्राप्यते पदम् । यत्साधुसङ्गाभ्युदिताद्विचारविशदाद्धृदः ॥ १७ ॥

na tadgurorn na śāstrārthānna puṇyātprāpyate padam | yatsādhusaṅgābhyuditādvicāraviśadāddhṛdaḥ || 17 ||

That state is not attained from a guru, nor from the teachings of scripture, nor from merit. It comes only from a heart made clear through inquiry, a heart that has grown through the company of good people.

वह अवस्था न गुरु से मिलती है, न शास्त्रों की बातों से, न पुण्य कर्मों से। वह तो केवल उस हृदय से मिलती है, जो अच्छे लोगों की संगति से पनपा हो और विचार करने से निर्मल हुआ हो।

5.12.18

सुन्दर्या निजया बुद्ध्या प्रज्ञयेव वयस्यया । पदमासाद्यते राम न नामक्रिययान्यया ॥ १८ ॥

sundaryā nijayā buddhyā prajñayeva vayasyayā | padamāsādyate rāma na nāmakriyayānyayā || 18 ||

That state is reached, Rama, only by one's own fine understanding, with wisdom beside it like a close friend, never by any other action done merely in name.

हे राम, वह अवस्था केवल अपनी उत्तम बुद्धि से मिलती है, जिसके साथ प्रज्ञा एक करीबी सहेली की तरह होती है, किसी और नाम मात्र की क्रिया से नहीं।

5.12.19

यस्योज्ज्वलति तीक्ष्णाग्रा पूर्वापरविचारिणी । प्रज्ञादीपशिखा जातु जाड्यान्ध्यं तं न बाधते ॥ १९ ॥

yasyojjvalati tīkṣṇāgrā pūrvāparavicāriṇī | prajñādīpaśikhā jātu jāḍyāndhyaṃ taṃ na bādhate || 19 ||

For the one in whom the sharp-tipped flame of the lamp of wisdom blazes, examining what comes before and what follows, dullness and blindness never trouble him.

जिस व्यक्ति में प्रज्ञा रूपी दीपक की तेज नोकवाली लौ जलती है, जो आगे-पीछे की हर बात को परखती है, उसे कभी भी मूर्खता और अंधापन नहीं सताते।

5.12.20

दुरुत्तरा या विपदो दुःखकल्लोलसंकुलाः । तीर्यते प्रज्ञया ताभ्यो नावापद्भ्यो महामते ॥ २० ॥

duruttarā yā vipado duḥkhakallolasankulāḥ | tīryate prajñayā tābhyo nāvāpadbhyo mahāmate || 20 ||

Misfortunes that are hard to cross, crowded with waves of sorrow, are crossed by wisdom, as if by a boat, O great-minded one.

जो विपत्तियाँ पार करना कठिन होती हैं, जो दुख की लहरों से भरी होती हैं, उन्हें प्रज्ञा रूपी नाव से पार किया जाता है, हे महाबुद्धिमान।

5.12.21

प्रज्ञाविरहितं मूढमापदल्पापि बाधते । पेलवाचानिलकला सारहीनमिवोलपम् ॥ २१ ॥

prajñāvirahitaṃ mūḍhamāpadalpāpi bādhate | pelavācānilakalā sārahīnamivolapam || 21 ||

A fool with no wisdom is troubled even by a small misfortune, the way a faint gust of wind troubles a limp, pithless blade of grass.

जिसके पास समझ नहीं है, वह मूर्ख आदमी छोटी सी मुसीबत से भी घबरा जाता है, जैसे हल्की सी हवा किसी सूखे, दम-रहित तिनके को हिला देती है।

5.12.22

प्रज्ञावानसहायोऽपि विशास्त्रोऽप्यरिमर्दन । उत्तरत्येव संसारसागराद्राम पेलवात् ॥ २२ ॥

prajñāvānasahāyo'pi viśāstro'pyarimardana | uttaratyeva saṃsārasāgarādrāma pelavāt || 22 ||

Rama, crusher of enemies, a man who has wisdom crosses over the ocean of the world with ease, even without a helper and even without learning, for him it becomes a small, thin thing.

हे शत्रुओं को कुचलने वाले राम, जिसके पास समझ है, वह बिना किसी मदद के और बिना पढ़ाई के भी संसार-सागर को आसानी से पार कर जाता है, उसके लिए वह सागर छोटा और हल्का बन जाता है।

5.12.23

प्रज्ञावानसहायोऽपि कार्यान्तमधिगच्छति । दुष्प्रज्ञः कार्यमासाद्य प्रधानमपि नश्यति ॥ २३ ॥

prajñāvānasahāyo'pi kāryāntamadhigacchati | duṣprajñaḥ kāryamāsādya pradhānamapi naśyati || 23 ||

A man who has wisdom finishes his work even without help; a man of poor wisdom, even if he is important, gets ruined the moment he takes up the work.

समझदार आदमी बिना किसी मदद के भी अपना काम पूरा कर लेता है, लेकिन नासमझ आदमी चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, काम हाथ में लेते ही बरबाद हो जाता है।

5.12.24

शास्त्रसज्जनससर्गैः प्रज्ञां पूर्वं विवर्धयेत् । सेकसंरक्षणारम्भैः फलप्राप्तौ लतामिव ॥ २४ ॥

śāstrasajjanasasargaiḥ prajñāṃ pūrvaṃ vivardhayet | sekasaṃrakṣaṇārambhaiḥ phalaprāptau latāmiva || 24 ||

By studying and by keeping company with good people, one should first make one's wisdom grow, the way a vine is grown for its fruit, by watering it, guarding it, and tending it from the start.

पढ़ाई करके और अच्छे लोगों की संगति से पहले अपनी समझ को बढ़ाना चाहिए, जैसे बेल को फल पाने के लिए पानी देकर, उसकी रखवाली करके और शुरू से ही उसकी देखभाल करके बड़ा किया जाता है।

5.12.25

प्रज्ञाबलबृहन्मूलः काले सत्कार्यपादपः । फलं फलत्यतिस्वादु भासो बिम्बमिवैन्दवम् ॥ २५ ॥

prajñābalabṛhanmūlaḥ kāle satkāryapādapaḥ | phalaṃ phalatyatisvādu bhāso bimbamivaaindavam || 25 ||

The tree of good work, deep rooted in the strength of wisdom, in time bears fruit that is very sweet and shines like the disc of the moon.

अच्छे काम का पेड़, जिसकी जड़ें समझ की ताकत से गहरी होती हैं, समय आने पर बहुत मीठा फल देता है, जो चाँद के गोले जैसा चमकता है।

5.12.26

य एव यत्नः क्रियते बाह्यार्थोपार्जने जनैः । स एव यत्नः कर्तव्यः पूर्वं प्रज्ञाविवर्धने ॥ २६ ॥

ya eva yatnaḥ kriyate bāhyārthopārjane janaiḥ | sa eva yatnaḥ kartavyaḥ pūrvaṃ prajñāvivardhane || 26 ||

The very effort that people put into gathering outer wealth, that same effort should be put, first of all, into growing one's wisdom.

लोग बाहरी धन-दौलत जमा करने में जितनी मेहनत करते हैं, उतनी ही मेहनत सबसे पहले अपनी समझ बढ़ाने में करनी चाहिए।

5.12.27

सीमान्तं सर्वदुःखानामापदां कोशमुत्तमम् । बीजं संसारवृक्षाणां प्रज्ञामान्द्यं विनाशयेत् ॥ २७ ॥

sīmāntaṃ sarvaduḥkhānāmāpadāṃ kośamuttamam | bījaṃ saṃsāravṛkṣāṇāṃ prajñāmāndyaṃ vināśayet || 27 ||

Dullness of wisdom is the outer edge of all sorrows, the richest storehouse of misfortunes, the seed of the trees of this world, destroy it.

समझ की सुस्ती सारे दुखों की आखिरी सीमा है, मुसीबतों का सबसे बड़ा खज़ाना है, और संसार के पेड़ों का बीज है, इसे मिटा दो।

5.12.28

स्वर्गाद्यद्यच्च पातालाद्राज्याद्यत्समवाप्यते । तत्समासाद्यते सर्वं प्रज्ञाकोशान्महात्मना ॥ २८ ॥

svargādyadyacca pātālādrājyādyatsamavāpyate | tatsamāsādyate sarvaṃ prajñākośānmahātmanā || 28 ||

Whatever is gained from heaven, from the underworld, or from a kingdom, a great soul gets all of it from the storehouse of wisdom.

स्वर्ग से, पाताल से या राज्य से जो कुछ भी मिलता है, वह सब एक महान आत्मा समझ के खज़ाने से पा लेता है।

5.12.29

प्रज्ञयोत्तीर्यते भीमात्तस्मात्संसारसागरात् । न दानैर्न च वा तीर्थैस्तपसा नच राघव ॥ २९ ॥

prajñayottīryate bhīmāttasmātsaṃsārasāgarāt | na dānairna ca vā tīrthais tapasā naca rāghava || 29 ||

It is by wisdom alone that one crosses that terrible ocean of the world, Raghava, not by gifts, not by pilgrimages, and not by penance.

हे राघव, उस भयानक संसार-सागर को केवल समझ से ही पार किया जाता है, न दान से, न तीर्थों से, न तपस्या से।

5.12.30

यत्प्राप्ताः संपदं दैवीमपि भूमिचरा नराः । प्रज्ञापुण्यलतायास्तत्फलं स्वादु समुत्थितम् ॥ ३० ॥

yatprāptāḥ saṃpadaṃ daivīmapi bhūmicharā narāḥ | prajñāpuṇyalatāyāstatphalaṃ svādu samutthitam || 30 ||

That men who walk this earth have gained even the fortune of the gods, that is the sweet fruit grown from the vine of wisdom's merit.

इस धरती पर चलने वाले लोग जो देवताओं जैसी संपत्ति भी पा लेते हैं, वह समझ की पुण्य-बेल से उगा हुआ मीठा फल है।

5.12.31

प्रज्ञया नखरालूनमत्तवारणयूथपाः । जम्बुकैर्विजिताः सिंहाः सिंहैर्हरिणका इव ॥ ३१ ॥

prajñayā nakharālūnamattavāraṇayūthapāḥ | jambukairvijitāḥ siṃhāḥ siṃhairhariṇakā iva || 31 ||

By wisdom, jackals conquer lions, lions that tear apart the leaders of rutting elephant herds with their claws, just as lions conquer deer.

समझ की ताकत से गीदड़ शेरों को हरा देते हैं, वही शेर जो अपने पंजों से मस्त हाथियों के झुंड के सरदार को चीर डालते हैं, ठीक वैसे ही जैसे शेर हिरणों को हरा देते हैं।

5.12.32

सामान्यैरपि भूपत्वं प्राप्तं प्रज्ञावशान्नरैः स्वर्गापवर्गयोग्यत्वं प्राज्ञस्यैवेह दृश्यते ॥ ३२ ॥

sāmānyairapi bhūpatvaṃ prāptaṃ prajñāvaśānnaraiḥ svargāpavargayogyatvaṃ prājñasyaiveha dṛśyate || 32 ||

Even ordinary men have become kings through the power of wisdom; only the wise man is seen here to be fit for heaven and for final freedom.

समझ की ताकत से साधारण लोग भी राजा बन गए हैं, यहाँ स्वर्ग और मोक्ष के लायक सिर्फ समझदार आदमी ही दिखता है।

5.12.33

प्रज्ञया वादिनः सर्वे स्वविकल्पविलासिनः । जयन्ति सुभटप्रख्यान्नरानप्यतिभीरवः ॥ ३३ ॥

prajñayā vādinaḥ sarve svavikalpavilāsinaḥ | jayanti subhaṭaprakhyānnarānapyatibhīravaḥ || 33 ||

By wisdom, all debaters who delight in their own clever arguments defeat men famous as great warriors, even though they themselves are very timid.

समझ की ताकत से, अपनी ही दलीलों में मगन रहने वाले सारे वाद-विवाद करने वाले लोग बड़े-बड़े योद्धा कहलाने वाले आदमियों को भी हरा देते हैं, चाहे वे खुद कितने भी डरपोक क्यों न हों।

5.12.34

चिन्तामणिरियं प्रज्ञा हृत्कोशस्था विवेकिनः । फलं कल्पलतेवैषा चिन्तितं संप्रयच्छति ॥ ३४ ॥

cintāmaṇiriyam prajñā hṛtkosasthā vivekinaḥ | phalaṃ kalpalatevaeṣā cintitaṃ saṃprayacchati || 34 ||

This wisdom, sitting in the treasure chest of the discerning man's heart, is a wish granting jewel; like a wish granting vine, it gives him whatever he thinks of.

यह समझ, विवेकी आदमी के दिल के खज़ाने में बैठी हुई, एक इच्छा पूरी करने वाली मणि है, एक इच्छा पूरी करने वाली बेल की तरह यह उसे वही देती है जो वह सोचता है।

5.12.35

भव्यस्तरति संसारं प्रज्ञयापोह्यतेऽधमः । शिक्षितः पारमाप्नोति नावा नाप्नोत्यशिक्षितः ॥ ३५ ॥

bhavyastarati saṃsāraṃ prajñayāpohyate'dhamaḥ | śikṣitaḥ pāramāpnoti nāvā nāpnotyaśikṣitaḥ || 35 ||

The noble man crosses over the world by wisdom; the base man is turned back. The one trained in a boat reaches the far shore; the untrained one does not.

भला आदमी समझ से संसार को पार कर जाता है, नीच आदमी वापस लौटा दिया जाता है। नाव चलाना जानने वाला दूसरे किनारे पहुँच जाता है, न जानने वाला नहीं पहुँच पाता।

5.12.36

धीः सम्यग्योजिता पारमसम्यग्योजिताऽऽपदम् । नरं नयति संसारे भ्रमन्ती नौरिवार्णवे ॥ ३६ ॥

dhīḥ samyagyojitā pāramasamyagyojitā''padam | naraṃ nayati saṃsāre bhramantī naurivārṇave || 36 ||

Understanding, rightly used, leads a man to the far shore; wrongly used, it leads him to disaster in this world, like a boat wandering on the ocean.

समझ का सही इस्तेमाल आदमी को दूसरे किनारे तक पहुँचा देता है, गलत इस्तेमाल उसे इस संसार में मुसीबत में डाल देता है, जैसे समुद्र में भटकती हुई कोई नाव।

5.12.37

विवेकिनमसंमूढं प्राज्ञमाशागणोत्थिताः । दोषा न परिबाधन्ते सन्नद्धमिव सायकाः ॥ ३७ ॥

vivekinamasammūḍhaṃ prājñamāśāgaṇotthitāḥ | doṣā na paribādhante sannaddhamiva sāyakāḥ || 37 ||

Faults that rise up out of a crowd of desires do not touch the discerning, unconfused, wise man, just as arrows do not touch one wearing armor.

ढेर सारी इच्छाओं से उठने वाले दोष उस विवेकी, बिना भ्रम वाले, समझदार आदमी को नहीं छूते, जैसे तीर कवच पहने हुए आदमी को नहीं छूते।

5.12.38

प्रज्ञयेह जगत्सर्वं सम्यगेवाङ्ग दृश्यते । सम्यग्दर्शनमायान्ति नापदो नच संपदः ॥ ३८ ॥

prajñayeha jagatsarvaṃ samyagevāṅga dṛśyate | samyagdarśanamāyānti nāpado naca saṃpadaḥ || 38 ||

Dear one, by wisdom the whole world here is seen exactly as it is. To one who sees it rightly, neither misfortune nor good fortune comes.

प्रिय, समझ से यहाँ पूरी दुनिया जैसी है वैसी ही सही-सही दिखती है। जो सही देखता है, उसके पास न मुसीबत आती है, न अच्छा भाग्य।

5.12.39

पिधानं परमार्कस्य जडात्मा विततोऽसितः । अहंकाराम्बुदो मत्तः प्रज्ञावातेन बाध्यते ॥ ३९ ॥

pidhānaṃ paramārkasya jaḍātmā vitato''sitaḥ | ahaṃkārāmbudo mattāḥ prajñāvātena bādhyate || 39 ||

The cloud of ego, dull, spread wide, dark, and wild, covers the supreme sun; the wind of wisdom drives it away.

अहंकार का बादल, सुस्त, दूर तक फैला हुआ, काला और उन्मत्त, सबसे ऊँचे सूरज को ढक लेता है, समझ की हवा उसे उड़ा देती है।

5.12.40

पदमतुलमुपैतुमिच्छतोच्चैः प्रथममियं मतिरेव लालनीया । फलमभिलषता कृषीवलेन प्रथमतरं ननु कृष्यते धरैव ॥ ४० ॥

padamatulamupaitumicchato''ccaiḥ prathamamiyaṃ matireva lālanīyā | phalamabhilaṣatā kṛṣīvalena prathamataraṃ nanu kṛṣyate dharaiva || 40 ||

One who wishes to rise to the highest, matchless place must first cherish and nurture this understanding, just as a farmer who wants a harvest first plows the earth itself.

जो सबसे ऊँचे, बेजोड़ स्थान तक पहुँचना चाहता है, उसे पहले अपनी इस समझ को सँभालना और बढ़ाना चाहिए, जैसे फसल चाहने वाला किसान सबसे पहले धरती को ही जोतता है।

Chapter 13

5.13.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवं जनकवद्राम विचार्यात्मानमात्मना । पदं विदितवेद्यानामविघ्नेनाधिगच्छसि ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ janakavadrāma vicāryātmānamātmanā | padaṃ viditavedyānāmaviṅhnenādhigacchasi || 1 ||

Sri Vasishtha said, thus, Rama, examining yourself by yourself like Janaka did, you will reach, without any obstacle, the state of those who have known what is to be known.

श्री वसिष्ठ बोले, हे राम, इस तरह जनक की तरह अपने आप को अपने आप से जांचकर, तुम बिना किसी रुकावट के उन लोगों की स्थिति पा लोगे जिन्होंने जानने लायक को जान लिया है।

5.13.2

ये हि पाश्चात्यजन्मानः प्राज्ञा राजससात्त्विकाः । प्राप्नुवन्ति स्वयं प्राप्यं ते जना जनका इव ॥ २ ॥

ye hi pāścātyajanmānaḥ prājñā rājasasāttvikāḥ | prāpnuvanti svayaṃ prāpyaṃ te janā janakā iva || 2 ||

Those wise people born in later times, whether their nature leans to passion or to purity, attain by themselves what is to be attained. Such people are like Janaka.

जो बुद्धिमान लोग बाद के समय में जन्म लेते हैं, चाहे उनका स्वभाव रजोगुणी हो या सतोगुणी, वे खुद अपने बल पर वह पा लेते हैं जो पाने लायक है। ऐसे लोग जनक जैसे होते हैं।

5.13.3

तावत्तावद्विजित्यारीनिन्द्रियाख्यान्पुनःपुनः । यावदात्मात्मनैवायमात्मन्येव प्रसीदति ॥ ३ ॥

tāvattāvadvijityārīnindriyākhyānpunaḥpunaḥ | yāvadātmātmanaivāyamātmanyeva prasīdati || 3 ||

Conquer, again and again, more and more, the enemies called the senses, until this self becomes calm within itself, by itself alone.

इंद्रियों नाम के शत्रुओं को बार बार, ज़्यादा से ज़्यादा जीतते जाओ, जब तक यह आत्मा खुद अपने आप से, अपने ही भीतर शांत न हो जाए।

5.13.4

प्रसन्ने सर्वगे देवे देवेशे परमात्मनि । स्वयमालोकिते सर्वाः क्षीयन्ते दुःखदृष्टयः ॥ ४ ॥

prasanne sarvage deve deveśe paramātmani | svayamālokite sarvāḥ kṣīyante duḥkhadṛṣṭayaḥ || 4 ||

When the all-pervading god, the lord of gods, the supreme self, grows calm and is seen by oneself, all the views that bring suffering come to an end.

जब सब जगह फैला हुआ देवता, देवों का स्वामी, परमात्मा शांत हो जाता है और खुद अपने आप से देख लिया जाता है, तब दुख देने वाली सारी सोच खत्म हो जाती है।

5.13.5

मुष्टयो मोहबीजानां वृष्टयो विविधापदाम् । कुदृष्टयः क्षयं यान्ति दृष्टे तस्मिन्परावरे ॥ ५ ॥

muṣṭayo mohabījānāṃ vṛṣṭayo vividhāpadām | kudṛṣṭayaḥ kṣayaṃ yānti dṛṣṭe tasminparāvare || 5 ||

When that highest being, who is both the farthest and the nearest, is seen, the handfuls of delusion's seeds, the showers of many troubles, and all wrong ways of seeing come to an end.

जब वह परम तत्व, जो सबसे दूर भी है और सबसे पास भी, देख लिया जाता है, तो मोह के बीजों की मुट्ठियां, तरह तरह की मुसीबतों की बरसातें, और गलत नज़रिए, सब खत्म हो जाते हैं।

5.13.6

सदा जनकवद्राम सर्वारम्भवदात्मना । प्रज्ञयात्मानमालक्ष्य लक्ष्मीवानुत्तमो भव ॥ ६ ॥

sadā janakavadrāma sarvārambhavadātmanā | prajñayātmānamālakṣya lakṣmīvānuttamo bhava || 6 ||

Always, Rama, like Janaka, carry on all your work as before, but watch yourself through your own understanding, and become the best, truly prosperous.

हे राम, हमेशा जनक की तरह, अपने सारे काम पहले जैसे ही करते रहो, पर अपनी समझ से खुद को देखते रहो, और सबसे श्रेष्ठ बनो, सच्ची समृद्धि के साथ।

5.13.7

नित्यमन्तर्विचारस्य पश्यतश्चञ्चलं जगत् । जनकस्येव कालेन स्वयमात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥

nityamantarvicārasya paśyataścañcalaṃ jagat | janakasyeva kālena svayamātmā prasīdati || 7 ||

For one who always looks within and sees this world as restless, the self, like Janaka's, in time grows calm by itself.

जो हमेशा अपने भीतर देखता रहता है और इस संसार को चंचल देखता है, उसकी आत्मा भी जनक की आत्मा की तरह, समय के साथ खुद ही शांत हो जाती है।

5.13.8

न दैवं नच कर्माणि न धनानि न बान्धवाः । शरणं भवभीतानां स्वप्रयत्नादृते नृणाम् ॥ ८ ॥

na daivaṃ naca karmāṇi na dhanāni na bāndhavāḥ | śaraṇaṃ bhavabhītānāṃ svaprayatnādṛte nṛṇām || 8 ||

Neither fate, nor rituals, nor wealth, nor relatives are a refuge for people afraid of this world, except their own effort.

न भाग्य, न कर्मकांड, न धन, न रिश्तेदार, संसार से डरे हुए लोगों के लिए कोई सहारा नहीं है, सिवाय उनकी अपनी मेहनत के।

5.13.9

ये दैवनिष्ठाः कृत्यादौ कुविकल्पपरायणाः । तेषां मन्दा मतिस्तात नानुगम्या विनाशनी ॥ ९ ॥

ye daivanisthāḥ kṛtyādau kuvikalpaparāyaṇāḥ | teṣāṃ mandā matistāta nānugamyā vināśanī || 9 ||

Those who, in their work, rely on fate and cling to wrong ideas have a dull mind, dear child. It is destructive, and it should not be followed.

जो लोग अपने काम में भाग्य पर भरोसा करते हैं और गलत विचारों को पकड़े रहते हैं, बेटा, उनकी बुद्धि मंद है। यह विनाश करने वाली है, इसका अनुसरण मत करो।

5.13.10

विवेकं परमाश्रित्य विलोक्यात्मानमात्मना । धिया विरागोद्धुरया संसारजलधिं तरेत् ॥ १० ॥

vivekaṃ paramāśritya vilokyātmānamātmanā | dhiyā virāgoddhurayā saṃsārajaladhiṃ taret || 10 ||

Taking refuge in the highest understanding, watching yourself by yourself, with a mind lifted high by dispassion, one should cross the ocean of this world.

सबसे ऊंची समझ का सहारा लेकर, खुद को खुद से देखकर, वैराग्य से ऊंची उठी हुई बुद्धि के साथ, संसार रूपी समुद्र को पार कर लेना चाहिए।

5.13.11

एषा सा कथिता राम नभःफलनिपातवत् सुखदा ज्ञानसंप्राप्तिरज्ञानतरुशातनी ॥ ११ ॥

eṣā sā kathitā rāma nabhaḥphalanipātavat sukhadā jñānasaṃprāptirajñānataruśātanī || 11 ||

This is what has been told to you, Rama, the gaining of knowledge, which gives happiness like a fruit falling from the sky, and which cuts down the tree of ignorance.

हे राम, यही तुम्हें बताया गया है, ज्ञान की प्राप्ति, जो आकाश से गिरे फल की तरह सुख देती है, और अज्ञान के पेड़ को काट गिराती है।

5.13.12

जनकस्येव सद्बुद्धेः स्वयमेव विलोकिनः विकासमेत्ययं देही देवः प्रातरिवाम्बुजम् ॥ १२ ॥

janakasyeva sadbuddheḥ svayameva vilokinaḥ vikāsametyayaṃ dehī devaḥ prātarivāmbujam || 12 ||

Like Janaka, whose understanding was pure and who looked within by himself, this embodied being, the shining self, blossoms like a lotus at dawn.

जनक की तरह, जिनकी समझ शुद्ध थी और जो खुद अपने भीतर देखते थे, यह देही, यह चमकती हुई आत्मा, सुबह के कमल की तरह खिल उठती है।

5.13.13

संसारमननं चित्रं विचारेण विलीयते गलद्वशीकृतस्पर्शमातपेन हिमं यथा ॥ १३ ॥

saṃsāramananaṃ citraṃ vicāreṇa vilīyate galadvashīkṛtasparśamātapena himaṃ yathā || 13 ||

This strange churning of thoughts about the world melts away through inquiry, just as frost melts and loses its cold touch under the heat of the sun.

संसार को लेकर मन में चलने वाला यह अजीब मंथन, जांच पड़ताल से पिघल जाता है, जैसे बर्फ धूप की गर्मी से पिघलकर अपनी ठंडक खो देती है।

5.13.14

अयमेवाहमित्यस्या निशाया उदिते क्षये स्वयं सर्वगतः स्फारः स्वालोकः संप्रवर्तते ॥ १४ ॥

ayamevāhamityasyā niśāyā udite kṣaye svayaṃ sarvagataḥ sphāraḥ svālokaḥ saṃpravartate || 14 ||

When the night of thinking I am only this comes to an end, a vast light of one's own, spreading everywhere, rises by itself.

जब यह रात, यानी मैं बस यही हूं सोचने की रात, खत्म हो जाती है, तो अपने आप एक विशाल रोशनी, जो हर जगह फैल जाती है, जाग उठती है।

5.13.15

अयमेवाहमित्यस्मिन्संकोचे विलयं गते अनन्तभुवनव्यापी विस्तार उपजायते ॥ १५ ॥

ayamevāhamityasminsaṃkoce vilayaṃ gate anantabhuvanavyāpī vistāra upajāyate || 15 ||

When this narrowness of thinking I am only this dissolves, a vastness spreading through endless worlds is born.

जब यह तंगी, यानी मैं बस यही हूं सोचने की सीमा, मिट जाती है, तो असंख्य लोकों में फैला हुआ विस्तार पैदा होता है।

5.13.16

जनकेन परित्यक्ता यथाहंकारवासना । तथा त्वमपि सद्बुद्धे विचार्यान्तः परित्यज ॥ १६ ॥

janakena parityaktā yathāhaṃkāravāsanā | tathā tvamapi sadbudhhe vicāryāntaḥ parityaj || 16 ||

Just as Janaka gave up the pull of ego, so you too, whose mind is pure, think it through, and give it up from within.

जिस तरह जनक ने अहंकार के झुकाव को छोड़ दिया था, उसी तरह तुम भी, हे शुद्ध बुद्धि वाले, सोच विचार करके इसे भीतर से छोड़ दो।

5.13.17

अहंकाराम्बुदे क्षीणे चिद्व्योम्नि विमले तते । नूनं संप्रौढतामेति स्वालोको भास्करः परः ॥ १७ ॥

ahaṃkārāmbude kṣīṇe cidvyomni vimale tate | nūnaṃ saṃprauḍhatāmeti svāloko bhāskaraḥ paraḥ || 17 ||

When the cloud of ego has thinned away and the sky of awareness spreads out clear, the great sun of one's own light surely grows to its full brightness.

जब अहंकार का बादल छंट जाता है और चेतना का आकाश साफ फैल जाता है, तो अपनी ही रोशनी का वह बड़ा सूरज ज़रूर पूरी तरह चमक उठता है।

5.13.18

एतावदेवातितमो यदहंभावभावनम् । तस्मिंश्च शममानीते प्रकाश उपजायते ॥ १८ ॥

etāvadevātitamo yadahaṃbhāvabhāvanam | tasmīṃśca śamamānīte prakāśa upajāyate || 18 ||

This alone is the deepest darkness, the feeling of I. And when that feeling is brought to rest, light is born.

बस यही सबसे घना अंधेरा है, मैं हूं का यह भाव। और जब यह भाव शांत हो जाता है, तो रोशनी पैदा होती है।

5.13.19

नाहमस्ति न चान्योस्ति नच नास्तीति भावितम् । मनः प्रशान्तिमायातं नोपादेयेषु मज्जति ॥ १९ ॥

nāhamasti na cānyosti naca nāstīti bhāvitam | manaḥ praśāntimāyātaṃ nopādeyeṣu majjati || 19 ||

I do not exist, nor does another exist, nor does not existing exist either. Thinking this, the mind that has come to peace does not sink into things it wants to grab.

न मैं हूं, न कोई और है, और न ही यह न होना है। ऐसा सोचकर, जो मन शांति को पा चुका है, वह पाने लायक चीज़ों में नहीं डूबता।

5.13.20

उपादेयानुपतनं हेयैकान्तविवर्जनम् । यदेतन्मनसो राम तद्बन्धं विद्धि नेतरत् ॥ २० ॥

upādeyānupatanam heyaikāntavivarjanam | yadetanmanaso rāma tadbandhaṃ viddhi netarat || 20 ||

Running after things to grab, and staying completely away from things to reject, whatever this is in the mind, Rama, know that to be bondage, nothing else.

पाने लायक चीज़ों के पीछे भागना, और छोड़ने लायक चीज़ों से पूरी तरह दूर रहना, मन की यह जो हरकत है, हे राम, इसी को बंधन समझो, और कुछ नहीं।

5.13.21

मा खेदं भज हेयेषु नोपादेयपरो भव । हेयादेयदृशौ त्यक्त्वा शेषस्थः स्वच्छतां व्रज ॥ २१ ॥

mā khedaṃ bhaja heyēṣu nōpādēyaparō bhava | hēyādēyadṛśau tyaktvā śēṣasthaḥ svacchatāṃ vraja || 21 ||

Do not feel upset about things to reject, and do not be devoted to things to grab. Give up both, the view that rejects and the view that grabs, and stay in what is left, moving toward clearness.

छोड़ने लायक चीज़ों से दुखी मत हो, और पाने लायक चीज़ों के पीछे मत पड़ो। छोड़ने और पाने, दोनों नज़रियों को छोड़कर, जो बचा रहता है उसी में टिके रहो, और निर्मलता की ओर बढ़ो।

5.13.22

येषामिदमुपादेयमिदं हेयमिति स्थितिः । विलीना ते न वाञ्छन्ति त त्यजन्तीह किंचन ॥ २२ ॥

yēṣāmidamupādēyamidaṃ hēyamiti sthitiḥ | vilīnā tē na vāñchanti ta tyajantīha kiñcana || 22 ||

Those for whom the belief this is to be grabbed, this is to be rejected has dissolved no longer want anything, nor do they give up anything here.

जिनके लिए यह पाने लायक है, यह छोड़ने लायक है, यह धारणा मिट चुकी है, वे न कुछ चाहते हैं, न यहां कुछ छोड़ते हैं।

5.13.23

हेयोपादेयकलने क्षीणे यावन्न चेतसः । न तावत्समता भातिसाभ्रे व्योम्नीवचन्द्रिका ॥ २३ ॥

hēyōpādēyakalanē kṣīṇē yāvanna cētasaḥ | na tāvatsamatā bhātisābhrē vyōmnīvacandrikā || 23 ||

As long as the mind's idea of what to reject and what to grab has not faded, equanimity does not shine, just as moonlight does not shine in a sky covered with clouds.

जब तक मन में यह छोड़ने लायक है, यह पाने लायक है, यह धारणा खत्म नहीं होती, तब तक समता नहीं चमकती, जैसे बादलों से ढके आकाश में चांदनी नहीं चमकती।

5.13.24

अवस्त्विदमिदं वस्तु यस्येति लुलितं मनः । तस्मिन्नोदेति समता शाखोट इव मञ्जरी ॥ २४ ॥

avastvidaṃidaṃ vastu yasyēti lulitaṃ manaḥ | tasminnodēti samatā śākhōṭa iva mañjarī || 24 ||

The mind of someone who thinks this is false, this is real is left tossing about, and in that mind calm does not rise, just as no blossom rises on a shakhota tree.

जो व्यक्ति यह झूठा है, यह सच्चा है सोचता रहता है, उसका मन उथल पुथल में ही रहता है, और उसमें शांति नहीं उभरती, जैसे शाखोट के पेड़ पर फूल नहीं खिलता।

5.13.25

युक्तायुक्तैषणा यत्र लाभालाभविलासिनी । समता स्वच्छता तत्र कुतो वैराग्यभासिनी ॥ २५ ॥

yuktāyuktaiṣaṇā yatra lābhālābhavilāsinī | samatā svacchatā tatra kuto vairāgyabhāsinī || 25 ||

Where there is craving for the right and the wrong, and delight over gain and loss, how could the equanimity and clearness that shine through dispassion be there at all?

जहां सही और गलत की चाह हो, और लाभ हानि में मगन रहना हो, वहां वैराग्य से चमकने वाली समता और निर्मलता भला कहां से आएगी?

5.13.26

एकस्मिन्ब्रह्मतत्त्वेऽस्मिन्विद्यमाने निरामये । नानाऽनानातया नित्यं किमयुक्तं क्व युक्तता ॥ ॥ २६ ॥

ekasminbrahmatattve'sminvidyamāne nirāmaye | nānā'nānātayā nityaṃ kimayuktaṃ kva yuktatā || 26 ||

When this one reality of Brahman, always free of any flaw, alone truly exists, whether it shows itself as many or as not many, what then is wrong, and where then is anything right?

जब यह एक ब्रह्म तत्व, जो हमेशा दोष रहित है, ही असल में मौजूद है, चाहे वह कई रूपों में दिखे या एक रूप में, तो गलत क्या है, और सही कहां है?

5.13.27

ईप्सितानीप्सिताशङ्के मर्कट्यौ चित्तपादपे । चञ्चले स्फुरतो यस्मिन्कुतस्तस्येह सौम्यता ॥ ॥ २७ ॥

īpsitānīpsitāśaṅke markaṭyau cittapādape | cañcale sphurato yasmin kutastasyeha saumyatā || 27 ||

On the restless tree of the mind, where the two monkeys of wanting and not wanting jump about anxiously, how can there be calm here?

मन के इस चंचल पेड़ पर, जहां चाहत और नफरत के ये दो बंदर बेचैनी से उछल कूद करते रहते हैं, वहां शांति भला कहां से आएगी?

5.13.28

निराशता निर्भयता नित्यता समता ज्ञता । निरीहता निष्क्रियता सौम्यता निर्विकल्पता ॥ ॥ २८ ॥

nirāśatā nirbhayatā nityatā samatā jñatā | nirīhatā niṣkriyatā saumyatā nirvikalpatā || 28 ||

There is freedom from wanting, freedom from fear, steadiness, equanimity, true knowing, freedom from striving, freedom from action, gentleness, and freedom from all fixed ideas.

चाहत से मुक्ति, डर से मुक्ति, स्थिरता, समता, सच्चा ज्ञान, कोशिश से मुक्ति, कर्म से मुक्ति, कोमल स्वभाव, और हर तरह की पक्की धारणा से मुक्ति, ये सब होते हैं।

5.13.29

धृतिर्मैत्री मतिस्तुष्टिर्मृदुता मृदुभाषिता । हेयोपादेयनिर्मुक्ते ज्ञे तिष्ठन्त्यपवासनम् ॥ ॥ २९ ॥

dhṛtirmaitrī matistuṣṭirmṛdutā mṛdubhāṣitā | heyopādeyanirmukte jñe tiṣṭhantyapavāsanam || 29 ||

Steadiness, friendliness, good sense, contentment, softness, and gentle speech remain, with no leftover trace, in the knower who is free from both what is to be rejected and what is to be grabbed.

धैर्य, दोस्ताना भाव, अच्छी समझ, संतोष, कोमलता, और मीठी बोली, ये सब उस ज्ञानी में बिना किसी बचे हुए संस्कार के टिके रहते हैं, जो छोड़ने और पाने, दोनों से मुक्त हो चुका है।

5.13.30

धावमानमधोभागे चित्तं प्रत्याहरेद्बलात् । प्रत्याहारेण पतितमधो वारीव सेतुना ॥ ॥ ३० ॥

dhāvamānamadhobhāge cittaṃ pratyāharedbalāt | pratyāhāreṇa patitamadho vārīva setunā || 30 ||

When the mind runs toward low, base things, pull it back by force. Held back like this, it stops falling, the way a dam holds back water.

जब मन नीच, तुच्छ चीज़ों की तरफ़ दौड़े, तो उसे ज़बरदस्ती खींच लाओ। इस तरह रोके जाने पर वह नीचे गिरने से रुक जाता है, जैसे बांध पानी को रोक देता है।

5.13.31

बाह्यानर्थानिमांस्त्यक्त्वा तिष्ठन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् । सर्वथा सर्वदा सर्वानान्तरांश्च विचारय ॥ ३१ ॥

bāhyānarthānimāṃstyaktvā tiṣṭhangacchansvapanśvasan | sarvathā sarvadā sarvānāntarāṃśca vicāraya || 31 ||

Let go of these outer things, whether you are standing, walking, sleeping, or just breathing, and at all times, in every way, look closely at everything inside you.

इन बाहरी चीज़ों को छोड़ दो, चाहे तुम खड़े हो, चल रहे हो, सो रहे हो, या बस सांस ले रहे हो, हर तरह से, हमेशा, अपने भीतर की हर चीज़ को ध्यान से देखो।

5.13.32

गृहीततृष्णाशफरि वासनाजालमाविलम् । संसारवारिप्रसृतं चिन्तातन्तुभिराततम् ॥ ३२ ॥

gṛhītatṛṣṇāśaphari vāsanājālamāvilam | saṃsāravāriprasṛtaṃ cintātantubhirātatam || 32 ||

This tangled net of desire has trapped the fish called craving. It spreads through the waters of worldly life, woven thick with threads of worry.

यह इच्छाओं का उलझा जाल तृष्णा नाम की मछली को पकड़े हुए है। यह संसार के पानी में फैला है, और चिंता के धागों से बुना हुआ है।

5.13.33

अनया तीक्ष्णया तात च्छिन्धि बुद्धिशलाकया । वात्ययेवाम्बुदं काले वहन्त्या विततते पदे ॥ ३३ ॥

anayā tīkṣṇayā tāta cchindhi buddhiśalākayā | vātyayevāmbudaṃ kāle vahantyā vitate pade || 33 ||

My son, cut it with this sharp needle of your reason, the way a storm wind, rising in its season, tears a cloud apart across the open sky.

हे बेटे, इसे अपनी बुद्धि की इस तेज़ सुई से काट दो, जैसे मौसम में उठी आंधी खुले आकाश में बादल को तितर-बितर कर देती है।

5.13.34

अस्य संसारवृक्षस्य मूलं दोषाङ्कुरास्पदम् । भव्यधीरेण धैर्येण प्रोद्धरोद्धुरया धिया ॥ ३४ ॥

asya saṃsāravṛkṣasya mūlaṃ doṣāṅkurāspadam | bhavyadhīreṇa dhairyeṇa proddurodhurayā dhiyā || 34 ||

Uproot the root of this tree of worldly life, the very place where the seedling of every fault grows, with steady courage and a strong, firm mind.

संसार रूपी इस पेड़ की जड़ को उखाड़ फेंको, यही वह जगह है जहां हर दोष का अंकुर उगता है, स्थिर धैर्य और मज़बूत, दृढ़ मन के साथ।

5.13.35

मनसैव मनश्छित्त्वा कुठारेणेव पादपम् । पदं पावनमासाद्य सद्य एव स्थिरो भव ॥ ३५ ॥

manasaiva manaśchittvā kuṭhāreṇeva pādapam | padaṃ pāvanamāsādya sadya eva sthiro bhava || 35 ||

Cut the mind with the mind itself, the way an axe cuts down a tree, and having reached that pure state, become still at once.

मन से ही मन को काट दो, जैसे कुल्हाड़ी पेड़ को काटती है, और उस शुद्ध अवस्था को पाकर तुरंत ही स्थिर हो जाओ।

5.13.36

मनसैव मनच्छित्त्वा विस्मृत्या चरमं मनः । वर्तमानमपि च्छित्त्वा च्छिन्नसंसारतां व्रज ॥ ३६ ॥

manasaiva manacchittvā vismṛtyā caramaṃ manaḥ | vartamānamapi cchittvā cchinnasaṃsāratāṃ vraja || 36 ||

Cut the mind with the mind. Forget the mind-moment that has just passed, cut away the mind-moment that is now, and reach the state where the cycle of worldly life is cut off.

मन से ही मन को काट दो। जो मन-क्षण अभी बीता उसे भूल जाओ, जो मन-क्षण अभी है उसे भी काट दो, और उस अवस्था को पाओ जहां संसार का चक्र कट जाता है।

5.13.37

मोहो विस्मृत्य संसारं न भूयः परिरोहति । चित्तं विस्मृत्य संसारो न भूयः परिरोहति ॥ ३७ ॥

moho vismṛtya saṃsāraṃ na bhūyaḥ parirohati | cittaṃ vismṛtya saṃsāro na bhūyaḥ parirohati || 37 ||

Once worldly life is forgotten, delusion does not grow back again. Once the mind is forgotten, worldly life does not grow back again.

जब संसार भुला दिया जाता है, तो मोह फिर से नहीं उगता। जब मन भुला दिया जाता है, तो संसार फिर से नहीं उगता।

5.13.38

तिष्ठन्गच्छन्स्वपञ्जाग्रन्निवसन्नुत्पतन्पतन् । असदेवेदमित्यन्तर्निश्चित्यास्थां परित्यज ॥ ३८ ॥

tiṣṭhangacchansvapañjāgrannivasannutpatanpatan | asadevedamityantarniścityāsthāṃ parityaja || 38 ||

Whether you are standing, walking, sleeping, awake, staying still, rising, or falling, settle it firmly within yourself that all this is unreal, and let go of your regard for it.

चाहे तुम खड़े हो, चल रहे हो, सो रहे हो, जाग रहे हो, टिके हुए हो, उठ रहे हो, या गिर रहे हो, अपने भीतर यह पक्का निश्चय कर लो कि यह सब झूठा है, और इसके प्रति अपना लगाव छोड़ दो।

5.13.39

समतामलमाश्रित्य संप्राप्तं कार्यमाहरन् । अचिन्तयंस्तथाऽप्राप्तं विहरेह हि राघव ॥ ३९ ॥

samatāmalamāśritya saṃprāptaṃ kāryamāharan | acintayanstatprāptaṃ vihareha hi rāghava || 39 ||

Rely fully on a calm, even mind. Do whatever task comes to you, and do not worry about what you have not gotten. Live this way here, Raghava.

पूरी तरह एक शांत, समान मन का सहारा लो। जो भी काम सामने आए उसे कर दो, और जो नहीं मिला उसकी चिंता मत करो। हे राघव, यहां इसी तरह जियो।

5.13.40

यथा शर्वोऽपि लिङ्गानि न बिभर्ति बिभर्ति च । त्वमेवमिह कार्याणि कुरु मा कुरु चानघ ॥ ४० ॥

yathā śarvo'pi liṅgāni na bibharti bibharti ca | tvamevamihi kāryāṇi kuru mā kuru cānagha || 40 ||

Just as Shiva himself sometimes wears his signs and sometimes does not, so too, here, you should do things, and also not do them, blameless one.

जैसे शिव भी कभी अपने चिन्ह धारण करते हैं और कभी नहीं करते, वैसे ही तुम भी यहां काम करो, और कभी मत करो, हे निष्पाप।

5.13.41

त्वमेव वेत्ता त्वमजस्त्वमात्मा त्वं महेश्वरः । आत्मनोऽव्यतिरिक्तः संस्त्वयेत्थमिदमाततम् ॥ ४१ ॥

tvameva vettā tvamajastvamātmā tvaṃ maheśvaraḥ | ātmano'vyatiriktaḥ saṃstvayetthamidamātatam || 41 ||

You alone are the one who knows. You are the unborn. You are the self. You are the great lord. Since nothing is separate from your own self, all this is spread out by you, just as it is.

तुम ही जानने वाले हो। तुम अजन्मा हो। तुम आत्मा हो। तुम महेश्वर हो। चूंकि कुछ भी तुम्हारे अपने आत्मा से अलग नहीं है, यह सब तुम्हारे द्वारा ही इस तरह फैला हुआ है।

5.13.42

येनात्मदृश्यसद्भावादभितो भावनोज्झिता । स न संगृह्यते दोषैर्हर्षामर्षविषादजैः ॥ ४२ ॥

yenātmadṛśyasadbhāvādabhito bhāvanonjñitā | sa na saṃgṛhyate doṣhairharṣāmarṣaviṣādajaiḥ || 42 ||

The person who, by seeing the true nature of the seer and the seen, has let go of every notion of separateness on all sides, is never caught by the faults that come from joy, anger, and sorrow.

जो व्यक्ति देखने वाले और दिखने वाली चीज़ के असली स्वरूप को जानकर हर तरफ़ से भेद-भावना छोड़ चुका है, वह हर्ष, क्रोध और दुःख से उपजे दोषों में कभी नहीं फंसता।

5.13.44

स यत्करोति यद्भुङ्क्ते यद्ददाति निहन्ति यत् । तत्र मुक्तधियस्तस्य समता सुखदुःखयोः ॥ ४४ ॥

sa yatkaroti yadbhuṅkte yaddadāti nihanti yat | tatra muktadhiyastasya samatā sukhaduḥkhayoḥ || 44 ||

Whatever he does, whatever he enjoys, whatever he gives, whatever he destroys, in all of it, for the one whose mind is free, pleasure and pain are the same.

वह जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी भोगता है, जो कुछ भी देता है, जो कुछ भी नष्ट करता है, इन सबमें, जिसका मन मुक्त हो चुका है, उसके लिए सुख और दुःख एक समान होते हैं।

5.13.45

प्राप्तं कर्तव्यमेवेति त्यक्तेष्टानिष्टभावनः । प्रवर्तते यः कार्येषु न स मज्जति कुत्रचित् ॥ ४५ ॥

prāptaṃ kartavyameveti tyakteṣṭāniṣṭabhāvanaḥ | pravartate yaḥ kāryeṣu na sa majjati kutracit || 45 ||

Whatever comes to me is simply to be done, thinking this, and having dropped all ideas of what is pleasant or unpleasant, the one who takes up his tasks in this way never sinks, no matter where.

जो भी सामने आए, बस उसे कर देना है, ऐसा सोचकर, और अच्छे-बुरे के सारे विचार छोड़कर, जो व्यक्ति इस भाव से अपने काम करता है, वह कहीं भी नहीं डूबता।

5.13.46

चित्सत्तामात्रमेवेदमिति निश्चयवन्मनः । त्यक्तभोगाभिमननं शममेति महामते ॥ ४६ ॥

citsattāmātramevedamiti niścayavanmanaḥ | tyaktabhogābhimananaṃ śamameti mahāmate || 46 ||

All this is nothing but pure consciousness, with the mind certain of this, and having stopped dwelling on its own enjoyments, the mind comes to rest, wise one.

यह सब कुछ केवल चेतना मात्र है, ऐसा मन में पक्का निश्चय करके, और अपने भोगों पर से ध्यान हटाकर, मन शांत हो जाता है, हे बुद्धिमान।

5.13.47

मनः प्रकृत्यैव जडं चित्तत्त्वमनुधावति । मांसगर्धेन मार्जारो वने मृगपतिं यथा ॥ ४७ ॥

manaḥ prakṛtyaiva jaḍaṃ cittattvamanudhāvati | māṃsagardhena mārjāro vane mṛgapatiṃ yathā || 47 ||

The mind is by its own nature lifeless, yet it runs after the reality of consciousness, the way a cat, craving meat, follows a lion through the forest.

मन अपने स्वभाव से ही जड़ है, फिर भी वह चेतना के तत्व के पीछे भागता है, जैसे मांस के लालच में एक बिल्ली जंगल में शेर के पीछे-पीछे चलती है।

5.13.48

सिंहवीर्यवशाल्लब्धं मांसं भुङ्क्तेऽनुगो हरेः । चिद्वीर्यवशतः प्राप्तं दृश्यमाश्रयते मनः ॥ ४८ ॥

siṃhavīryavaśāllabdhaṃ māṃsaṃ bhuṅkte'nugo hareḥ | cidvīryavaśataḥ prāptaṃ dṛśyamāśrayate manaḥ || 48 ||

The follower of the lion eats the meat it gets through the lion's own strength; in the same way, the mind clings to the visible world it gets through the strength of consciousness.

शेर का पिछलग्गू शेर की ही ताकत से मिला मांस खाता है; उसी तरह मन चेतना की ताकत से मिली इस दिखने वाली दुनिया से चिपका रहता है।

5.13.49

मन एवमसत्कल्पं चित्प्रसादेन जीवति । भावयन्विश्वमेवैकं चिन्तामेत्य चिदप्युत ॥ ४९ ॥

mana evamasatkalpaṃ citprasādena jīvati | bhāvayanviśvamevaikaṃ cintāmetya cidapyuta || 49 ||

The mind, being no more than unreal, lives only by the grace of consciousness. It imagines the whole universe as a single thing, since consciousness itself, indeed, has entered into this thinking.

मन, जो असल में लगभग झूठा ही है, केवल चेतना की कृपा से जीता है। यह पूरे विश्व को एक ही चीज़ मानकर सोचता है, क्योंकि चेतना स्वयं ही इस सोच में उतर आई है।

5.13.50

जडं यत्किल निर्हीनं चिता दीपिकयौजसा । तन्मनः शवसंकाशमचिदुत्तिष्ठते कथम् ॥ ५० ॥

jaḍaṃ yatkila nirhīnaṃ citā dīpikayaujasā | tanmanaḥ śavasaṃkāśamaciduttiṣṭhate kathaṃ || 50 ||

That which is truly lifeless, without the light and force of consciousness, how can that mind, looking just like a corpse, with no consciousness in it, ever get up and act?

जो सचमुच जड़ है, चेतना के प्रकाश और शक्ति के बिना, वह मन, जो एक लाश जैसा है, बिना चेतना के, आख़िर कैसे उठकर काम कर सकता है?

5.13.51

चित्स्वभावपरामृष्टा स्पन्दशक्तिरसन्मयी । कल्पना चित्तमित्युक्त्या कथ्यते शास्त्रदृष्टिभिः ॥ ५१ ॥

citsvabhāvaparāmṛṣṭā spandaśaktirasanmayī | kalpanā cittamityuktā kathyate śāstradṛṣṭibhiḥ || 51 ||

A power of movement that has touched the nature of consciousness, yet is made of the unreal, this imagining is what the seers of scripture speak of using the word mind.

चेतना के स्वभाव से छुई हुई, फिर भी झूठ से बनी हुई, हलचल की यह शक्ति, इसी कल्पना को शास्त्र देखने वाले चित्त शब्द से कहते हैं।

5.13.52

यश्चित्तफणिकूत्कारः सैवेयं कलनोच्यते । चिदेवाहमिति ज्ञात्वा सा चित्तामेव गच्छति ॥ ५२ ॥

yaścittaphanikūtkāraḥ saiveyaṃ kalanocyate | cidevāhamiti jñātvā sā cittāmeva gacchati || 52 ||

That hissing sound of the mind-serpent is what is called this thought-forming. Once it knows, I am consciousness alone, that thought-forming passes into consciousness itself.

मन रूपी सांप की वह फुफकार ही यह बनावट कहलाती है। जब उसे यह पता चल जाता है, मैं केवल चेतना हूं, तो वह बनावट चेतना में ही लीन हो जाती है।

5.13.53

चेत्येन रहिता यैषा चित्तद्ब्रह्म सनातनम् । चेत्येन सहिता यैषा चित्सेयं कलनोच्यते ॥ ५३ ॥

cetyena rahitā yaiṣā cittadbrahma sanātanam | cetyena sahitā yaiṣā cittaseyaṃ kalanocyate || 53 ||

This consciousness, when free of anything known, is the eternal Brahman itself. This same consciousness, when joined with something known, is what is called this thought-forming.

यह चेतना जब किसी भी जाने गए विषय से रहित होती है, तभी वह सनातन ब्रह्म है। यही चेतना जब किसी जाने गए विषय से जुड़ जाती है, तब उसे यह बनावट कहा जाता है।

5.13.54

किंचिदामृष्टरूपं यद्ब्रह्म तच्च स्थिरं मनः । कल्पना सत्सदैवैतत्सदिवोपस्थिता हृदि ॥ ५४ ॥

kiñcidāmṛṣṭarūpaṃ yadbrahma tacca sthiraṃ manaḥ | kalpanā satsadaivaitatsadivopasthitā hṛdi || 54 ||

Brahman, having taken on the slightest touch of form, is itself the fixed mind. This imagining is real, it always sits in the heart as if it were real.

ब्रह्म, जब उसमें थोड़ा सा भी रूप छू जाता है, वही स्थिर मन बन जाता है। यह कल्पना सच है, यह हमेशा हृदय में मानो सच होकर बैठी रहती है।

5.13.55

चित्तमित्येव रूढेयं यदैव कलनोदिता । तदैव चित्त्वं विस्मृत्य सा जडेव व्यवस्थिता ॥ ५५ ॥

cittamityeva rūḍheyaṃ yadaiva kalanoditā | tadaiva cittvaṃ vismṛtya sā jaḍeva vyavasthitā || 55 ||

It comes to be called mind exactly when this thought-forming arises. At that very moment, forgetting its own nature as consciousness, it stands there as if it were lifeless.

यह चित्त नाम तभी पाता है जब यह बनावट उठती है। ठीक उसी क्षण, अपने चेतना-स्वभाव को भूलकर, यह मानो जड़ बनकर रह जाती है।

5.13.56

संपन्ना कलनानाम्नी संकल्पानुविधायिनी । अवच्छेदवती वाग्रा हेयोपादेयधर्मिणी ॥ ५६ ॥

saṃpannā kalanānāmnī saṃkalpānuvidhāyinī | avacchedavatī vāgrā heyaopādeyadharmiṇī || 56 ||

Having come into being, it is named this thought-forming. It follows every intention, carries division within it, stands at the root of speech, and has the nature of accepting some things and rejecting others.

इस तरह उत्पन्न होकर, इसे यह बनावट कहा जाता है। यह हर संकल्प का अनुसरण करती है, अपने भीतर भेद लिए रहती है, वाणी की जड़ में खड़ी रहती है, और कुछ को अपनाने व कुछ को छोड़ने का स्वभाव रखती है।

5.13.57

सैषा चिदेव जगतामागतेव स्वशक्तितः । न संप्रबोधिता यावद्रूपं तावन्न बुध्यते ॥ ५७ ॥

saiṣā cideva jagatāmāgateva svaśaktitaḥ| na saṃprabodhitā yāvadrūpaṃ tāvanna budhyate|| 57||

This thought-forming is nothing but consciousness itself, which has, so to speak, come forth into all these worlds through its own power. As long as it is not woken up, it does not know its own true nature.

यह बनावट और कुछ नहीं, बल्कि चेतना ही है, जो मानो अपनी ही शक्ति से इन सब लोकों में उतर आई है। जब तक इसे जगाया नहीं जाता, तब तक यह अपना असली रूप नहीं जान पाती।

5.13.58

अतः शास्त्रविचारेण वैराग्येण परेण च । निग्रहेणेन्द्रियाणां च बोधयेत्कलनां स्वयम् ॥ ५८ ॥

ataḥ śāstravicāreṇa vairāgyeṇa pareṇa ca| nigraheṇendriyāṇāṃ ca bodhayetkalanāṃ svayam|| 58||

So, through study and reflection on the scriptures, through the deepest freedom from craving, and through control of the senses, one should wake this thought-forming up by oneself.

इसलिए शास्त्रों के मनन से, सबसे गहरी इच्छा-मुक्ति से, और इंद्रियों को वश में रखने से, इस बनावट को स्वयं जगाना चाहिए।

5.13.59

कलना सर्वजन्तूनां विज्ञानेन शमेन च । प्रबुद्धा ब्रह्मतामेति भ्रमतीतरथा जगत् ॥ ५९ ॥

kalanā sarvajantūnāṃ vijñānena śamena ca| prabuddhā brahmatāmeti bhramatītarathā jagat|| 59||

In all living beings, this thought-forming, once awakened through true knowledge and inner calm, reaches the state of Brahman. Otherwise, the world just wanders on and on.

सभी जीवों की यह बनावट, जब सच्चे ज्ञान और मन की शांति से जग जाती है, तो ब्रह्म की अवस्था को पा लेती है। नहीं तो, यह संसार यूं ही भटकता रहता है।

5.13.60

व्यामोहमदिरामत्तां लुठितां विषयावटे । आत्मावेदनसंसुप्तां कलनामेव बोधयेत् ॥ ६० ॥

vyāmohamadirāmattāṃ luṭhitāṃ viṣayāvaṭe| ātmāvedanasansuptāṃ kalanāmeva bodhayet|| 60||

One should wake up this same mind - drunk on the wine of delusion, rolling around in the pit of the senses, fast asleep from not knowing the self.

इसी मन को जगाना चाहिए - जो मोह की शराब में डूबा है, विषयों के गड्ढे में लोट रहा है, और खुद को न जानने की वजह से गहरी नींद में सोया हुआ है।

5.13.61

अप्रबुद्धा यदा ह्येषा न किंचिदवबुध्यते । संकल्पकलनेवान्तर्दृश्यमानाप्यसन्मयी ॥ ६१ ॥

aprabuddhā yadā hyeṣā na kiñcidavabudhyate| saṃkalpakalanevāntardṛśyamānāpyasanmayī|| 61||

When this mind, not yet awake, knows nothing at all, then even though it looks from inside like an act of imagining, it is made of nothing real.

जब यह मन अभी जागा नहीं होता, तब उसे कुछ भी पता नहीं होता - और भीतर से देखने पर भले ही यह कल्पना करते हुए जैसा लगे, पर असल में यह किसी असली चीज़ से नहीं बना है।

5.13.62

तया परमया दृष्ट्या कलनैषान्तरस्थया । मञ्जरी गन्धशक्त्येव पदार्थेषु विराजते ॥ ६२ ॥

tayā paramayā dṛṣṭyā kalanaiṣāntarasthayā | mañjarī gandhaśaktyeva padārtheṣu virājate || 62 ||

Through that highest way of seeing, this mind, sitting within, shines out among all things - the way the scent of a flower cluster shines out among the things around it.

उस सबसे ऊँची दृष्टि से देखने पर, यह मन, जो भीतर बैठा है, हर चीज़ में वैसे ही चमकता है जैसे फूलों के गुच्छे की खुशबू आसपास की चीज़ों में फैलकर चमक उठती है।

5.13.63

तनुः संकल्पिता यैषा कलनेति जगत्त्रये । सा हि किंचिद्विजानाति नित्यं ज्ञानैकधर्मिणी ॥ ६३ ॥

tanuḥ saṃkalpitā yaiṣā kalaneti jagattraye | sā hi kiṃcidvijānāti nityaṃ jñānaikadharmiṇī || 63 ||

This subtle form, which people imagine to exist through the three worlds and call the mind, does know a little - because deep down it is always nothing but pure knowing.

यह सूक्ष्म रूप, जिसे लोग तीनों लोकों में मौजूद मानकर 'मन' कहते हैं, थोड़ा-बहुत जानता तो है - क्योंकि गहरे में यह हमेशा से बस शुद्ध जानने की ही प्रकृति का है।

5.13.64

चेतनेन जडा राम कलनोपलरूपिणी। पद्मिनीवातपेनासौ परेणैव प्रबोध्यते ॥ ६४ ॥

cetanena jaḍā rāma kalanopalarūpiṇī | padminīvātapenāsau pareṇaiva prabodhyate || 64 ||

O Rama, this mind, though as lifeless as a stone, is woken only by the conscious, supreme self - the way a bed of lotuses is woken by the heat of the sun.

हे राम, यह मन पत्थर जैसा निर्जीव होते हुए भी, जागता तो बस उस चेतन और सबसे बड़ी आत्मा से ही है - जैसे कमलों की क्यारी सूरज की गर्मी से जागती है।

5.13.65

यथा शिलामयी कन्या चोदितापि न नृत्यति तथा इयं कलना देहे न किंचिदवबुध्यते ॥ ६५ ॥

yathā śilāmayī kanyā coditāpi na nṛtyati tatheyaṃ kalanā dehe na kiṃcidavabudhyate || 65 ||

Just as a stone statue of a girl does not dance even when someone tells it to, so this mind, sitting in the body, knows nothing at all on its own.

जैसे पत्थर की बनी लड़की की मूर्ति, कहने पर भी नाचती नहीं, वैसे ही यह मन शरीर में रहते हुए भी अपने आप कुछ नहीं जानता।

5.13.66

लिपिकर्मनृपैर्युद्धं क्व कृतं घर्घरारवम्। क्वचिन्न चन्द्रकिरणैरोषध्यः प्रतिबोधिताः ॥ ६६ ॥

lipikarmnṛpairyuddhaṃ kva kṛtaṃ ghargharāravam | kvacinnna candrakiraṇairoṣadhyaḥ pratibodhitāḥ || 66 ||

Where has a battle with its harsh roaring noise ever been fought by kings who are only pictures drawn by a scribe's hand? And nowhere are plants ever woken into bloom by moonbeams.

भला किसी लेखक की कलम से बने चित्र वाले राजा कभी घमासान और गरजती हुई लड़ाई लड़ पाए हैं? और कहीं भी चाँद की किरणों से पौधे खिलकर जागे नहीं हैं।

5.13.67

असृगालिप्तगात्रैश्च शवैः क्व परिवल्गितम्। क्व गीतं मधुरध्वानं वनपाषाणखण्डकैः ॥ ६७ ॥

asṛgāliptagātraiśca śavaiḥ kva parivalgitam| kva gītaṃ madhuradhvānaṃ vanapāṣāṇakhaṇḍakaiḥ || 67 ||

Where do corpses smeared with blood get up and leap about? Where do broken pieces of forest rock sing out sweet music?

क्या खून से लथपथ लाशें उठकर उछलती-कूदती हैं? क्या जंगल के टूटे हुए पत्थर मीठा गीत गाते हैं?

5.13.68

क्व पुंसा विहितैरर्कैः क्षपितं यामिनीतमः। क्व संकल्पमयैश्छाया क्रियते व्योमकाननैः ॥ ६८ ॥

kva puṃsā vihitairarkaiḥ kṣapitaṃ yāminītamaḥ| kva saṃkalpamayaiśchāyā kriyate vyomakānanaiḥ || 68 ||

Where does a sun made by human hands ever burn away the darkness of night? Where does an imagined forest in the sky ever cast a shadow?

क्या इंसान का बनाया हुआ सूरज कभी रात के अंधेरे को मिटा सका है? क्या आकाश में कल्पना किए गए जंगल कभी छाया दे पाए हैं?

5.13.69

क्व जडैरुपलाकारैर्मिथ्याभ्रमभरोत्थितैः। मृगतृष्णामयैरेभिर्मनोभिः क्रियते क्रिया ॥ ६९ ॥

kva jaḍairupalākārairmithyābhramabharotthitaiḥ| mṛgatṛṣṇāmayairebhirmanobhiḥ kriyate kriyā || 69 ||

How can real action ever be done by a mind like this - lifeless, shaped like a stone, born out of a great false confusion, made only of mirage water?

फिर ऐसा मन, जो निर्जीव है, पत्थर जैसा है, बड़े भ्रम से पैदा हुआ है और मृगतृष्णा के पानी जैसा है, भला असली काम कैसे कर सकता है?

5.13.70

यथातपे क्षते स्फारे मृगतृष्णातरङ्गिणी । कलना तद्वदेवेयं स्फुरत्यात्मनि सत्यलम् ॥ ७० ॥

yathātape kṣate sphāre mṛgatṛṣṇātaraṅgiṇī| kalanā tadvadeveyaṃ sphuratyātmani satyalam || 70 ||

Just as, in the wide, blazing heat, a river of mirage-water seems to flow, so this same mind flashes forth within the self, seeming just as real.

जैसे तेज़ धूप की गर्मी में मृगतृष्णा की नदी बहती हुई दिखाई देती है, वैसे ही यह मन आत्मा में उतना ही असली दिखते हुए चमकता है।

5.13.71

यदेतत्स्पन्दितं नाम तन्मनोऽधिगतं शठैः । मरुतां विद्धि तां शक्तिमन्तः प्राणशरीरिणीम् ॥ ७१ ॥

yadetatspanditaṃ nāma tanmanoadhigataṃ śaṭhaiḥ| marutāṃ viddhi tāṃ śaktimanataḥ prāṇaśarīriṇīm || 71 ||

This trembling movement that fools call 'the mind' - know it instead to be the power of the life-winds, the very power whose body is the breath, moving within.

जिस हलचल को मूर्ख लोग 'मन' कहते हैं, उसे प्राण-वायु की शक्ति समझो, वह शक्ति जिसका शरीर ही साँस है और जो भीतर चलती रहती है।

5.13.72

येषां संविदनाक्रान्ता संकल्पलवनिश्चयैः । अनाक्षिप्तरसाकारा प्रभैषा पारमात्मिकी ॥ ७२ ॥

yeṣāṃ saṃvidanākrāntā saṃkalpalavaniśścayaiḥ | anākṣiptarasākārā prabhaiṣā pāramātmikī || 72 ||

In those whose awareness has not been touched even by the smallest bit of imagining and its fixed ideas, and whose very shape has not been drawn into the taste of the world, this light is the light of the highest self alone.

जिन लोगों की चेतना कल्पना और उसकी छोटी-छोटी धारणाओं से भी नहीं छुई गई, और जिनका रूप संसार के स्वाद में नहीं खिंचा, उनके लिए यह रोशनी सिर्फ सबसे बड़ी आत्मा की ही रोशनी है।

5.13.73

अयं सोऽहमिदं तन्म इति या कलनाविला । प्राणात्मतत्त्वयोस्तस्याः संज्ञा जीवेति कथ्यते ॥ ७३ ॥

ayaṃ so'hamidaṃ tanma iti yā kalanāvilā | prāṇātmatattvayostasyāḥ saṃjñā jīveti kathyate || 73 ||

This murky mind - which thinks 'this is that,' 'I,' and 'this is mine' - sits between the two, the breath and the self, and its name is spoken as 'the living being.'

यह धुंधला मन, जो सोचता है 'यह वह है', 'मैं', और 'यह मेरा है', साँस और आत्मा के बीच में बैठा रहता है, और इसी का नाम 'जीव' कहा जाता है।

5.13.74

धीश्चित्तं जीव इत्येताः संकल्पस्यासतो मताः । संज्ञाः संकल्पितास्तज्ज्ञैर्न राम परमार्थतः ॥ ७४ ॥

dhīścittaṃ jīva ityetāḥ saṃkalpasyāsato matāḥ | saṃjñāḥ saṃkalpitāstajjñairna rāma paramārthataḥ || 74 ||

Understanding, mind, and the living being - Rama, these are only names that those who understand this have given to imagining itself, which has no real existence; in the highest truth, they are not real at all.

बुद्धि, मन और जीव - हे राम, ये सब बस वे नाम हैं जो इसे समझने वालों ने कल्पना को दिए हैं, जिसका खुद कोई असली अस्तित्व नहीं है; सबसे बड़े सच में ये बिलकुल असली नहीं हैं।

5.13.75

मनो नो न मतिर्नापि धीरेषा न शरीरकम्। अस्तीह परमार्थेन स्वात्मैवेहास्ति सर्वदा ॥ ७५ ॥

mano no na matirnāpi dhīreṣā na śarīrakam | astīha paramārtheṇa svātmaivehāsti sarvadā || 75 ||

In truth, there is here no mind, no thought, no understanding, and no body at all - only one's own self exists here, always.

सच में यहाँ न कोई मन है, न कोई विचार, न कोई बुद्धि और न कोई शरीर - यहाँ हमेशा से बस अपनी आत्मा ही है।

5.13.76

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मा कालक्रमस्तथा। स चाकाशादच्छतरो नास्तीवास्त्येव चामलः ॥ ७६ ॥

ātmaiveḍaṃ jagatsarvamātmā kālakramastathā | sa cākāśādacchataro nāstīvāstyeva cāmalaḥ || 76 ||

The self alone is this whole world; the self alone is also the passing of time. And that self, clearer than the open sky, seems as if it were nothing - yet, pure and stainless, it truly exists.

आत्मा ही यह पूरी दुनिया है; आत्मा ही समय का बीतना भी है। और वह आत्मा, जो खुले आकाश से भी ज़्यादा साफ है, ऐसी लगती है जैसे कुछ है ही नहीं - फिर भी वह शुद्ध और निर्मल होकर सचमुच है।

5.13.77

अच्छत्वादसदाभासः संविद्रूपतया तु सत्। आत्मा सर्वपदातीतः स्वानुभूत्यानुभूयते ॥ ७७ ॥

acchatvādasadābhāsaḥ saṃvidrūpatayā tu sat| ātmā sarvapadātītaḥ svānubhūtyānubhūyate || 77 ||

Because it is so clear, it seems to shine like something unreal; but because it is pure awareness, it is real. The self is beyond every word, and it can only be known by experiencing it for oneself.

इतनी साफ होने की वजह से यह किसी झूठी चीज़ की तरह चमकती दिखती है, पर शुद्ध चेतना होने के कारण यह असली है। आत्मा हर शब्द से परे है, और इसे सिर्फ खुद अनुभव करके ही जाना जा सकता है।

5.13.78

मनस्तत्र परिक्षीणं यत्र संवित्परात्मनः। अन्धकारक्षयस्तत्र यत्रालोकः प्रवर्तते ॥ ७८ ॥

manastatra parikṣīṇaṃ yatra saṃvitparātmanaḥ| andhakārakṣayastatra yatrālokaḥ pravartate || 78 ||

The mind wears away wherever there is awareness of the highest self; darkness is destroyed wherever light comes forth.

जहाँ भी सबसे बड़ी आत्मा का बोध होता है, वहाँ मन घुल जाता है; जहाँ भी रोशनी आती है, वहाँ अंधेरा मिट जाता है।

5.13.79

यत्रात्मसंविदोऽच्छायाः संकल्पोत्थतया मताःतत्रात्मनो विस्मरणं स्मरणं चित्तजन्मनः ॥ ७९ ॥

yatrātmasaṃvido'cchāyāḥ saṃkalpotthatayā matāḥtatrātmano vismaraṇaṃ smaraṇaṃ cittajanmanaḥ || 79 ||

Wherever the self's own pure awareness comes to be seen as something born from imagining, there the self is forgotten - and what gets remembered instead is only the birth of the mind.

जहाँ भी आत्मा के अपने शुद्ध बोध को कल्पना से पैदा हुई चीज़ मान लिया जाता है, वहाँ आत्मा भुला दी जाती है - और उसकी जगह जो याद रहता है, वह बस मन का जन्म है।

5.13.80

परस्य पुंसः संकल्पमयत्वं चित्तमुच्यते । अचित्तत्वमसंकल्पान्मोक्षस्तेनाभिजायते ॥ ८० ॥

parasya puṃsaḥ saṃkalpamayatvaṃ cittamucyate| acittatvamasaṃkalpānmokṣastenābhijāyate || 80 ||

When the supreme self takes on the nature of imagining, that is called 'the mind.' When there is no imagining, there is no mind at all - and that is how freedom is born.

जब सबसे बड़ी आत्मा कल्पना का रूप ले लेती है, तो उसे 'मन' कहा जाता है। जब कोई कल्पना नहीं होती, तो मन भी नहीं होता - और इसी से मुक्ति पैदा होती है।

5.13.81

एतावच्चेतसो जन्म बीजं संसारभूतये । संकल्पोन्मुखतां यातः संविदो वा किलात्मनः ॥ ८१ ॥

etāvaccetaso janma bījaṃ saṃsārabhūtaye| saṃkalponmukhatāṃ yātaḥ saṃvido vā kilātmanaḥ || 81 ||

This much is the birth of the mind: it is the seed that grows into the round of rebirth - when the self's own awareness turns and faces toward imagining.

मन का जन्म बस इतना ही है: जब आत्मा का अपना बोध कल्पना की ओर मुड़ जाता है, तो वही जन्म-मरण के चक्र का बीज बन जाता है।

5.13.82

निर्विकल्पाच्चितः सत्ता संकल्पाङ्ककलङ्किता । कलनेत्युच्यते तेन पुंस्त्ववद्बुद्ध्यते मनः ॥ ८२ ॥

nirvikalpāccitaḥ sattā saṃkalpāṅkakalaṅkitā | kalanetyucyate tena puṃstvavadbuddhyate manaḥ || 82 ||

The being of pure consciousness, free of all thought, when marked with the stain of imagining, is called the mind. Because of this, the mind comes to be understood as if it were a person in its own right.

शुद्ध चेतना का वह होना, जो हर विचार से खाली है, जब कल्पना के दाग से रंग जाता है, तो उसे 'मन' कहा जाता है। इसी वजह से मन को मानो एक अलग व्यक्ति की तरह समझ लिया जाता है।

5.13.83

प्राणशक्तौ निरुद्धायां मनो राम विलीयते । द्रव्यच्छायानु तद्द्रव्यं प्राणरूपं हि मानसम् ॥ ८३ ॥

prāṇaśaktau niruddhāyāṃ mano rāma vilīyate | dravyacchāyānu taddravyaṃ prāṇarūpaṃ hi mānasam || 83 ||

O Rama, when the power of the breath is checked and held still, the mind dissolves away - the way a shadow follows its object - because the mind, in truth, is nothing but a form the breath takes.

हे राम, जब साँस की शक्ति को रोककर स्थिर कर दिया जाता है, तो मन घुल जाता है - जैसे परछाई अपनी चीज़ के पीछे चलती है - क्योंकि मन असल में साँस का ही एक रूप है।

5.13.84

देशान्तरानुभवनं प्राणो वेत्ति हृदि स्थितम् । स्पन्दवेदनतो यत्तन्मन इत्यभिधीयते ॥ ८४ ॥

deśāntarānubhavanaṃ prāṇo vetti hṛdi sthitam | spandavedanato yattatmana ityabhidhīyate || 84 ||

The breath, seated in the heart, is what experiences things happening in another place. What arises from feeling that movement is what people call 'the mind.'

हृदय में बैठी हुई साँस ही दूसरी जगह होने वाली चीज़ों को अनुभव करती है। उस हलचल को महसूस करने से जो पैदा होता है, उसी को लोग 'मन' कहते हैं।

5.13.85

वैराग्यात्कारणाभ्यासाद्युक्तितो व्यसनक्षयात्। परमार्थावबोधाच्च रोध्यन्ते प्राणवायवः ॥ ८५ ॥

vairāgyātkāraṇābhyāsādyuktito vyasanakṣayāt | paramārthāvabodhācca rodhyante prāṇavāyavaḥ || 85 ||

The life-breaths are brought under control through dispassion, through practicing the right causes, through sound method, through ending one's bad habits, and through understanding the highest truth.

प्राण-वायु को वैराग्य से, सही कारणों के अभ्यास से, सही तरीके से, बुरी आदतों को खत्म करने से, और सबसे बड़े सच को समझने से काबू में लाया जाता है।

5.13.86

दृषदो विद्यते शक्तिः कदाचिच्चलनैधसाम्। न पुनर्मनसामस्ति शक्तिः स्पन्दावबोधने ॥ ८६ ॥

dṛṣado vidyate śaktiḥ kadāciccalanaidhasām | na punarmanasāmasti śaktiḥ spandāvabodhane || 86 ||

A stone sometimes has the power to move when something else stirs it, but the mind never has, on its own, the power to feel that movement.

पत्थर में कभी-कभी हिलने की ताकत आ जाती है जब कोई और चीज़ उसे हिलाए, पर मन में अपने आप उस हलचल को महसूस करने की ताकत कभी नहीं होती।

5.13.87

स्पन्दः प्राणमरुच्छक्तिश्चलद्रूपैव सा जडा चिच्छक्तिः स्वात्मनः स्वच्छा सर्वदा सर्वगैव सा ॥ ८७ ॥

spandaḥ prāṇam arucchaktiścaladrūpaiva sā jaḍā cicchaktiḥ svātmanaḥ svacchā sarvadā sarvagaiva sā || 87 ||

Vibration is the breath, the power of the winds - it is lifeless, nothing but a moving shape. But the power of consciousness that belongs to one's own self is always clear, and it alone is present everywhere, always.

हलचल तो साँस है, हवाओं की शक्ति है - वह निर्जीव है, बस हिलती हुई एक शक्ल भर है। पर अपनी आत्मा की चेतना की शक्ति हमेशा साफ रहती है, और वही हमेशा हर जगह मौजूद रहती है।

5.13.88

चिच्छक्तेः स्पन्दशक्तेश्च संबन्धः कल्प्यते मनः मिथ्यैव तत्समुत्पन्नं मिथ्या ज्ञानं तदुच्यते ॥ ८८ ॥

cicchakteḥ spandaśakteśca saṃbandhaḥ kalpyate manaḥ mithyaiva tatsamutpannaṃ mithyā jñānaṃ taducyate || 88 ||

The mind is only imagined as the link between the power of consciousness and the power of vibration. What is born out of that link is completely false - that is what is called false knowledge.

मन तो बस चेतना की शक्ति और हलचल की शक्ति के बीच कल्पना किया हुआ एक जोड़ है। इस जोड़ से जो पैदा होता है, वह पूरी तरह झूठा है - इसी को झूठा ज्ञान कहा जाता है।

5.13.89

एषा ह्यविद्या कथिता मायैषा सा निगद्यते परमेतत्तदज्ञानं संसारादिविषप्रदम् ॥ ८९ ॥

eṣā hyavidyā kathitā māyaiṣā sā nigadyate parametattadajñānaṃ saṃsārādiviṣapradam || 89 ||

This same thing is called ignorance, and this same thing is called maya. This same thing, in the highest sense, is that not knowing which gives out the poison of worldly life and all that comes with it.

इसी को अज्ञान कहा गया है, और इसी को माया कहा जाता है। यही, असल में, वह न-जानना है जो संसार आदि का ज़हर देता है।

5.13.90

चिच्छक्तेः स्पन्दशक्तेश्च सङ्गे संकल्पकल्पनम् न कृतं चेत्परिक्षीणास्तदिमा भवभीतयः ॥ ९० ॥

cicchakteḥ spandaśakteśca saṃge saṃkalpakalpanam na kṛtaṃ cetparikṣīṇāstadimā bhavabhītayaḥ || 90 ||

If, in the meeting of the power of consciousness and the power of movement, this building up of thought is not done, then these fears of worldly existence would come to an end.

अगर चेतना की शक्ति और गति की शक्ति के मिलन में यह विचार गढ़ना न किया जाए, तो संसार के ये सब डर मिट जाएँ।

5.13.91

वायुतः स्पन्दशक्तिर्या सा चिता चेत्यते यदा सचेत्या चित्तदैवान्तः संकल्पाद्याति चित्तताम् ॥ ९१ ॥

vāyutaḥ spandaśaktiryā sā citā cetayate yadā sachetyā cittadaivāntaḥ saṃkalpādyāti cittatām || 91 ||

The power of movement that rises from the breath, when it is perceived by consciousness, then, being made an object of awareness, turns inward and, through this same false thought, becomes the mind.

साँस से उठने वाली गति की शक्ति को जब चेतना जान लेती है, तब जाना हुआ यह वही, भीतर की ओर मुड़कर, इसी झूठी कल्पना से मन बन जाता है।

5.13.92

चित्ततैषा चितो मिथ्या कल्पिता बालयक्षवत् अखण्डमण्डलाकारस्पन्दरूपा चिदेव यत् ॥ ९२ ॥

cittatāiṣā cito mithyā kalpitā bālayakṣavat akhaṇḍamaṇḍalākāraspandarūpā cideva yat || 92 ||

This state of being mind is nothing but consciousness falsely imagined, like a child imagining a ghost. What has the form of whole, unbroken movement is consciousness itself, and nothing else.

यह मन होने की अवस्था और कुछ नहीं, बस चेतना की झूठी कल्पना है, जैसे कोई बच्चा भूत गढ़ लेता है। जो अखंड, बिना टूटी हुई गति का रूप है, वह चेतना ही है, और कुछ नहीं।

5.13.93

सैषा चित्ता तदन्येन केन संबाध्यते किल अखण्डशक्तेरिन्द्रस्य केन स्यात्सह संगरः ॥ ९३ ॥

saiṣā cittā tadanyena kena saṃbādhyate kila akhaṇḍaśakterindrasya kena syātsaha saṃgaraḥ || 93 ||

This same mind, then, by what else could it really be troubled? Who could go to war with an Indra whose power is one and undivided?

यही मन आख़िर और किससे परेशान किया जा सकता है? जिसकी शक्ति अखंड है, ऐसे इंद्र से भला किसका युद्ध हो सकता है?

5.13.94

अतः संबन्धिनोऽभावात्संबन्धोऽत्र न विद्यते संबन्धेन विना कस्य सिद्धं तत्कीदृशं मनः ॥ ९४ ॥

ataḥ saṃbandhino'bhāvātsaṃbandho'tra na vidyate saṃbandhena vinā kasya siddhaṃ tatkīdṛśaṃ manaḥ || 94 ||

So, because there is nothing there for a relation to hold between, no relation exists here at all. Without a relation, what could be established, and belonging to what? What kind of thing, then, is this mind?

इसलिए, जब जुड़ने वाली कोई चीज़ ही नहीं है, तो यहाँ कोई संबंध है ही नहीं। बिना संबंध के क्या और किसका होना सिद्ध होगा? तो फिर यह मन है ही क्या चीज़?

5.13.95

चित्स्पन्दयोरेकतायां किं नाम मन उच्यते का सेना हयमातङ्गसङ्गसंघट्टनं विना ॥ ९५ ॥

citsvandayorekatāyāṃ kiṃ nāma mana ucyate kā senā hayamātaṅgasaṅghaṭṭanaṃ vinā || 95 ||

When consciousness and movement are truly one, what indeed is this thing called the mind? What army is there apart from horses and elephants clashing together?

जब चेतना और गति असल में एक ही हैं, तो इसे 'मन' किस बात के नाम पर कहा जाता है? घोड़ों और हाथियों की टक्कर के बिना कोई सेना कहाँ होती है?

5.13.96

तस्मान्नास्त्येव दुष्टात्म चित्तं राम जगत्त्रये सैषा सम्यक्परिज्ञानाच्चेतसो जायते क्षतिः ॥ ९६ ॥

tasmānnāstyeva duṣṭātma cittaṃ rāma jagattraye saiṣā samyakparijñānācetaso jāyate kṣatiḥ || 96 ||

So, Rama, this evil-natured mind does not exist anywhere in the three worlds. Through the complete and right knowledge of this very fact, the mind is destroyed.

इसलिए, हे राम, यह दुष्ट मन तीनों लोकों में कहीं है ही नहीं। इसी बात को पूरी तरह सही ढंग से जान लेने से मन नष्ट हो जाता है।

5.13.97

मुधा मैवमनर्थाय मनः संकल्पयानघ । मनो मिथ्यासमुदितं नास्त्यत्र परमार्थतः ॥ ९७ ॥

mudhā maivamanarthāya manaḥ saṃkalpayānagha| mano mithyāsamuditaṃ nāstyatra paramārthataḥ || 97 ||

So do not, sinless one, needlessly go on building up the mind like this, to your own harm. The mind, which has risen only out of a false idea, does not exist at all, in ultimate truth.

इसलिए, हे निष्पाप, बेकार में इस तरह मन को अपने ही नुकसान के लिए मत गढ़ो। जो मन झूठी कल्पना से पैदा हुआ है, वह सबसे बड़े सत्य में है ही नहीं।

5.13.98

मा त्वमन्तः क्वचित्किंचित्संकल्पय महामते । मनः संकल्पकं राम यस्मान्नास्तीह कुत्रचित् ॥ ९८ ॥

mā tvamantaḥ kvacitkiñcitsaṃkalpaya mahāmate| manaḥ saṃkalpakaṃ rāma yasmānnāstīha kutracit || 98 ||

Do not, wise one, form any thought within yourself, about anything, anywhere. For, Rama, the mind that imagines does not exist here, anywhere at all.

हे बुद्धिमान, अपने भीतर कहीं भी, किसी भी बात की कल्पना मत करो। क्योंकि, हे राम, कल्पना करने वाला यह मन कहीं भी नहीं है।

5.13.99

असम्यग्ज्ञानसंभूता कल्पना मृगतृष्णिका । हृन्मरौ तव संशान्ता सम्यगालोकनान्मुने ॥ ९९ ॥

asamyagjñānasambhūtā kalpanā mṛgatṛṣṇikā| hṛnmarau tava saṃśāntā samyagālokanānmune || 99 ||

This fancy, born of wrong knowledge, is a mirage. In the desert of your heart, sage, it will be stilled the moment you see truly.

गलत समझ से पैदा हुई यह कल्पना एक मृगतृष्णा है। हे मुनि, तुम्हारे हृदय के रेगिस्तान में यह सही तरह से देखने पर शांत हो जाएगी।

5.13.100

जडत्वान्निःस्वरूपत्वात्सर्वदैव मृतं मनः। मृतेन मार्यते लोकश्चित्रेयं मौर्ख्यचक्रिका ॥ १०० ॥

jaḍatvānniḥsvarūpatvātsarvadaiva mṛtaṃ manaḥ| mṛtena māryate lokaścitreyam maurkhyacakrikā || 100 ||

The mind is dull matter with no true nature of its own, so it is always already dead. And by this dead thing the world is killed. What a strange, spinning wheel of foolishness this is.

मन जड़ है और उसका अपना कोई असली स्वरूप नहीं है, इसलिए वह हमेशा से मरा हुआ है। और इसी मरे हुए मन से यह दुनिया मारी जाती है। मूर्खता का यह कैसा अनोखा घूमता हुआ चक्र है।

5.13.101

यस्य नात्मा न देहोऽस्ति नाधारो नापि चाकृतिः। तेनेदं भक्ष्यते सर्वं चित्रेयं मौर्ख्यवागुरा ॥ १०१ ॥

yasya nātmā na deho'sti nādhāro nāpi cākṛtiḥ| tenedaṃ bhakṣyate sarvaṃ citreyam maurkhyavāgurā || 101 ||

By this thing that has no self, no body, no support, and no shape at all, everything here is devoured. What a strange snare of foolishness this is.

जिसका न कोई आत्मा है, न शरीर, न कोई सहारा, न कोई आकार, उसी से यह सब कुछ निगल लिया जाता है। मूर्खता का यह कैसा अनोखा जाल है।

5.13.102

सर्वसामग्र्यहीनेन हन्यते मनसापि यः नीलोत्पलदलाघातैर्मन्ये दलितमस्तकम् ॥ १०२ ॥

sarvasāmagryahīnena hanyate manasāpi yaḥ nīlotpaladalāghātairmanye dalitamastakam || 102 ||

Whoever is killed even by the mind, a thing with no means at all to kill anyone, that person's head, I think, has been split open by blows of blue lotus petals.

जो व्यक्ति उस मन से मारा जाता है, जिसके पास मारने का कोई साधन ही नहीं है, मुझे तो लगता है कि उसका सिर नीले कमल की पंखुड़ियों की चोट से फूटा है।

5.13.103

जडेन मूकेनान्धेन निहतो मनसापि यः मन्ये स दह्यते मूढः पूर्णचन्द्रमरीचिभिः ॥ १०३ ॥

jaḍena mūkenāndhena nihato manasāpi yaḥ manye sa dahyate mūḍhaḥ pūrṇacandramarīcibhiḥ || 103 ||

Whoever is struck down even by the mind, which is itself dull, mute and blind, that fool, I think, is being burned by the rays of the full moon.

जो मूर्ख उस मन से मारा जाता है, जो खुद जड़, गूँगा और अंधा है, मुझे तो लगता है कि वह पूर्णिमा के चाँद की किरणों से जल रहा है।

5.13.104

विद्यमानोऽपि यः शूरो लोकस्तेनाभिभूयते अविद्यमानमेवेदं हन्यते मुग्धतोदिता ॥ १०४ ॥

vidyamāno'pi yaḥ śūro lokastenābhibhūyate avidyamānamevedaṃ hanyate mugdhatoditā || 104 ||

There is a real hero, one who truly exists, by whom the world can be overpowered. But this mind, which does not exist at all, destroys it too, and this happens only through delusion.

एक असली वीर, जो सचमुच है, दुनिया को हरा सकता है। पर यह मन, जो बिल्कुल है ही नहीं, फिर भी दुनिया को मार देता है, और यह सब केवल भ्रम के कारण होता है।

5.13.105

मिथ्यासंकल्पकलितं मिथ्यावस्थितिमागतम् अन्विष्टमपि नो दृष्टं का तस्य किल शक्तता ॥ १०५ ॥

mithyāsaṃkalpakalitaṃ mithyāvasthitimāgatam anviṣṭamapi no dṛṣṭaṃ kā tasya kila śaktatā || 105 ||

This mind is put together by false thinking, and it stands only in a false way. Even when you search for it, it is never found. So what real power could it have?

यह मन झूठी सोच से बना है, और झूठे ढंग से ही टिका है। ढूँढ़ने पर भी यह कभी नहीं दिखता। तो फिर इसमें सचमुच कौन-सी ताक़त हो सकती है?

5.13.106

अहो नु खलु चित्रेयं मायामयविधायिनी चेतसाप्यतिलोलेन लोकोऽयमभिभूयते ॥ १०६ ॥

aho nu khalu citreyam māyāmayavidhāyinī cetasāpyatilolena loko'yamabhibhūyate || 106 ||

How strange it truly is, this maker built entirely out of illusion. This world is overpowered by nothing but the mind, which is itself so restless and fickle.

सचमुच कितनी अजीब बात है, यह पूरी तरह माया से बनी हुई रचने वाली शक्ति। यह दुनिया केवल इस बेचैन, चंचल मन से हारी जाती है।

5.13.107

मौर्ख्यं यदापदान्विष्टः का हि नापदजानतः । पश्य मौर्ख्यादियं सृष्टिरज्ञानेनैव जन्यते ॥ १०७ ॥

maukhyam yadāpadānvishṭaḥ kā hi nāpadajānataḥ | pashya maukhyādiyam sṛshtirajñānenaiava janyate || 107 ||

When foolishness itself goes looking for trouble, what trouble is there that does not come from not knowing? Look, this whole creation is born out of foolishness, out of ignorance alone.

जब मूर्खता ख़ुद मुसीबत को बुलाती है, तो कौन-सी मुसीबत है जो न-जानने से पैदा नहीं होती? देखो, यह पूरी सृष्टि मूर्खता से, यानी अज्ञान से ही पैदा होती है।

5.13.108

हा कष्टमपि दुर्बुद्धेः सृष्टिर्मौर्ख्यवशं गता । असतैव यदेतेन जीवेनाप्युपपाद्यते ॥ १०८ ॥

hā kaṣṭamapi durbuddheḥ sṛshtirmaukhyavashaṃ gatā | asataiva yadetena jīvenāpyupapādyate || 108 ||

Alas, how sad it is, the creation of a foolish mind has fallen completely under the sway of foolishness. Because this same living being makes even what does not exist at all seem real.

हाय, कितने दुख की बात है, मूर्ख बुद्धि की यह सृष्टि पूरी तरह मूर्खता के वश में चली गई है। क्योंकि यही जीव उस चीज़ को भी सच बना देता है जो है ही नहीं।

5.13.109

मन्ये मौर्ख्यमयी सृष्टिरियमत्यन्तपेलवा । वास्तरङ्गप्रवाहेण कणशः परिशीर्यते ॥ १०९ ॥

manye maukhyamayī sṛshtiriyamatyantapelavā | vāstarangapravāheṇa kaṇaśaḥ pariśīryate || 109 ||

I think this creation made of foolishness is utterly fragile. It crumbles away, grain by grain, in the flowing current of water's waves.

मुझे तो लगता है कि मूर्खता से बनी यह सृष्टि बेहद कमज़ोर है। यह पानी की लहरों की धारा में कण-कण करके घुल जाती है।

5.13.110

नीलाञ्जनालवालेन यन्त्रेणैव विचूर्ण्यते । इन्दोराभोगपूर्णस्य करस्पर्शेन मुह्यति ॥ ११० ॥

nīlāñjanālavālena yantreṇaiva vicūrṇyate | indorābhogapūrṇasya karasparshena muhyati || 110 ||

It is ground to powder by a mere little trough of black collyrium. It faints at just the touch of the full moon's soft rays.

यह तो काजल की एक छोटी-सी नली जैसी चीज़ से ही चूर-चूर हो जाती है। पूर्णिमा के चाँद की किरणों के हल्के-से स्पर्श से ही यह मूर्छित हो जाती है।

5.13.111

रिपुभिर्नयनोन्मुक्तैर्दृष्टः सूत्रैर्निबध्यते । संकल्पकृतया शूरसेनया परिभूयते ॥ १११ ॥

ripubhirnayanonmuktairdṛshtaḥ sūtrairnibadhyate | saṃkalpakṛtayā śūrasenayā paribhūyate || 111 ||

The moment enemies simply lay open eyes on it, it is bound with mere threads. It is beaten by an army of warriors that is nothing but imagined.

दुश्मन बस आँख खोलकर इसे देख भर लें, तो यह धागों से बँध जाती है। यह सिर्फ़ कल्पना से बनी वीरों की सेना से भी हार जाती है।

5.13.112

तस्मात्किलेयं मनसा न स्थितेनैव कुत्रचित् । कल्पितेन मुधान्येन कृपणेन निहन्यते ॥ ११२ ॥

tasmātkileyaṁ manasā na sthitenaiva kutracit| kalpitena mudhānyena kṛpaṇena nihanyate || 112 ||

So this is never destroyed by any mind that truly and really exists anywhere. It is destroyed by a mind that is merely imagined, not real at all, poor and useless.

इसलिए, यह किसी सचमुच मौजूद मन से कभी नष्ट नहीं होती। यह तो सिर्फ़ कल्पना किए हुए, असल में न होने वाले, बेकार और दयनीय मन से ही नष्ट होती है।

5.13.113

मूर्खलोकमयी सृष्टिर्मन एवासदुत्थितम् । यः शक्तो न वशीकर्तुं नासौ रामोपदिश्यते ॥ ११३ ॥

mūrkhalokamayī sṛṣṭirmama evāsadutthitam| yaḥ śakto na vaśīkartuṁ nāsau rāmopadiśyate || 113 ||

This creation made up of foolish people is nothing but the mind, which itself has risen up as something unreal. Whoever cannot master this mind, Rama, cannot be taught at all.

मूर्खों से भरी यह सृष्टि और कुछ नहीं, बस मन ही है, जो खुद झूठा होकर उठ खड़ा हुआ है। हे राम, जो इस मन पर काबू नहीं पा सकता, उसे कुछ भी सिखाना बेकार है।

5.13.114

अभिजाताऽस्वरूपैषा प्रज्ञा क्षोदेषु न क्षमा । नोपदेशगिरां योग्या परिपूर्णेव संस्थिता ॥ ११४ ॥

abhijātā'svarūpaiṣā prajñā kṣodeṣu na kṣamā| nopadeśagirāṁ yogyā paripūrṇeva saṃsthitā || 114 ||

This so-called understanding, though it looks well-bred, has no true nature of its own. It cannot bear close examination. It is not fit to carry real teaching, yet it stands there as if it were whole and complete.

यह तथाकथित समझ, भले ही कुलीन लगे, इसका कोई असली स्वरूप नहीं है। यह गहरी जाँच में टिक ही नहीं पाती। यह सच्ची शिक्षा देने लायक भी नहीं है, फिर भी यह ऐसे खड़ी रहती है जैसे पूरी तरह सम्पूर्ण हो।

5.13.115

विभेत्येषापि वीणायास्तन्त्रीगुणतनुध्वनेः। बन्धोरपि सनिद्रस्य विभेति वदनद्युतेः ॥ ११५ ॥

vibhetyeṣāpi vīṇāyāstantṛguṇatanudhvaneḥ| bandhorapi sanidrasya vibhetyvadanadyuteḥ || 115 ||

This same thing is scared even of the faint sound a lute's strings make. It is scared even of the glow on the face of a sleeping friend.

यही चीज़ वीणा के तारों की हल्की-सी आवाज़ से भी डर जाती है। यह किसी सोए हुए मित्र के चेहरे की चमक से भी डर जाती है।

5.13.116

असतोऽपि जनादुच्चैर्गीताद्भीता पलायते। स्वेनैव मनसाप्यज्ञा किलैषा विवशीकृता ॥ ११६ ॥

asato'pi janāduccairgītādbhītā palāyate| svenaiva manasāpyajñā kila eṣā vivashīkṛtā || 116 ||

It runs away in fear even from a loud song sung by someone who does not exist at all. This ignorant thing is defeated by nothing but its own mind.

यह तो उस व्यक्ति के ज़ोर से गाए गीत से भी डरकर भाग जाती है जो है ही नहीं। यह नादान चीज़ अपने ही मन से हार जाती है।

5.13.117

सुखलवविवशा द्विषेव तप्ता हृदयगतेन निजेन चेतसैवविधुरितधिषणा न वेत्ति सत्यं तदपि कथं परिमोहितो मूढैव ॥ ११७ ॥

sukhalavavivaśā dviṣeva taptā hṛdayagatena nijena cetasaivavidhuritadhiṣaṇā na vetti satyaṃ tadapi kathaṃ parimohito mudhaiva || 117 ||

Overpowered by just a scrap of pleasure, burning as if scorched by an enemy, its own understanding thrown into distress by the very thought sitting inside its own heart, it does not know the truth. And yet, how is it so completely fooled. It is simply a fool.

सुख के एक टुकड़े से बेबस होकर, मानो किसी दुश्मन से जली हुई, अपने ही दिल में बैठे विचार से अपनी समझ को परेशान किए हुए, यह सच्चाई को नहीं जानती। फिर भी, यह इतनी भ्रमित कैसे है। यह बस मूर्ख ही है।

Chapter 14

5.14.1

श्रीवसिष्ठ उवाच संसारसागरासारकल्लोलैरुह्यमाना । मातर्मानद मूकत्वं यया जनतयार्जितम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca saṃsārasāgarāsārakallolairuhyamānayā matermānada mūkatvaṃ yayā janatayārjitam || 1 ||

Sri Vasishtha said: Rama, people's understanding is swept along by the pointless waves of the ocean of this world, and that is why the whole mass of them has gained nothing but dumbness.

श्री वसिष्ठ जी ने कहा, हे राम, लोगों की समझ संसार रूपी समुद्र की बेकार लहरों में बहती रहती है, और इसी वजह से सारे लोगों ने बस गूंगापन ही पाया है।

5.14.2

आत्मलाभमयोदारकलाभिरिह सा मया विचारोक्तिभिरेताभिः शास्त्रेऽस्मिन्नुपदिश्यते ॥ २ ॥

ātmalābhamayodārakalābhiriha sā mayā vicāroktibhiretābhiḥ śāstre'sminnupadiśyate || 2 ||

That same understanding, built from the noble ways of reaching the Self, is what I am now teaching here, in this book, through these words of reasoning.

वही समझ, जो अपने आप को पाने के भले तरीकों से बनी है, अब मैं इस ग्रंथ में इन्हीं विचार भरी बातों के ज़रिए यहाँ सिखा रहा हूँ।

5.14.3

न पश्यत्येव योऽत्यर्थं तस्य कः खलु दुर्मतिः विचित्रमञ्जरी चित्रं संदर्शयति काननम् ॥ ३ ॥

na paśyatyeva yo'tyarthaṃ tasya kaḥ khalu durmatiḥ vicitramañjarī citraṃ saṃdarśayati kānanam || 3 ||

Who is foolish enough to show a picture of a forest full of wonderful flower clusters to a man who cannot see anything at all?

जो आदमी बिलकुल देख ही नहीं सकता, उसे रंग-बिरंगे फूलों के गुच्छों वाले जंगल की तस्वीर कौन मूर्ख दिखाएगा?

5.14.4

कः कुष्ठघर्घरघ्राणं नानामोदविचारणे मूर्खमात्मोपदेशेन प्रमाणीकुरुतेऽमतिḥ ॥ ४ ॥

kaḥ kuṣṭhaghargharaghrāṇaṃ nānāmodavicāraṇe mūrkhamātmopadeśena pramāṇīkurute'matiḥ || 4 ||

What foolish person would trust, on his own word, a fool whose nose is blocked and rattling from leprosy, to judge different smells?

जिसकी नाक कोढ़ के कारण बंद और घर्र-घर्र करती है, उस मूर्ख की बात मानकर अलग-अलग खुशबुओं को परखने में उसे सही कौन मूर्ख मानेगा?

5.14.5

विपर्यस्तेन्द्रियं मत्तं मदीराघूर्णितेक्षणम् धर्मनिर्णयसाक्षित्वे कः प्रमाणीकरोत्यधीः ॥ ५ ॥

viparyastendriyaṃ mattaṃ madirāghūrṇitekṣaṇam dharmanirṇayasākṣitve kaḥ pramāṇīkarotyadhīḥ || 5 ||

What unwise person would accept as a witness, in deciding a matter of law, someone whose senses are deranged, who is drunk, and whose eyes roll from wine?

जिसकी इंद्रियाँ बिगड़ी हों, जो नशे में हो, और शराब से जिसकी आँखें घूम रही हों, उसे धर्म के किसी मामले में गवाह मानकर कौन नासमझ भरोसा करेगा?

5.14.6

कः शवं वा श्मशानस्थं समवायकथाशतम् । परिपृच्छति संदेहे कश्च मूर्खं प्रशास्ति च ॥ ६ ॥

kaḥ śavaṃ vā śmaśānasthaṃ samavāyakathāśatam | paripṛcchati saṃdehe kaśca mūrkhaṃ praśāsti ca || 6 ||

Who asks a corpse lying in the cremation ground a hundred questions about worldly matters, when in doubt? And who tries to teach a fool?

श्मशान में पड़ी लाश से कोई शक होने पर सांसारिक बातों के सौ सवाल कौन पूछता है? और मूर्ख को समझाने कौन जाता है?

5.14.7

येनाशयबिलस्थोऽपि मूकोन्धोऽपि न निर्जितः । मनोव्यालः सदुर्बुद्धिः कथं नामोपदिश्यते ॥ ७ ॥

yenāśayabilstho'pi mūkondho'pi na nirjitaḥ | manovyālaḥ sadurbuddhiḥ kathaṃ nāmopadiśyate || 7 ||

Since this snake-like mind, driven by wrong understanding, has not been conquered even though it lives in the very hole of one's own heart, and even though it is mute and blind, how indeed can it be taught?

यह मन रूपी साँप, जो गलत समझ के कारण चलता है, अपने ही दिल के बिल में रहते हुए भी और गूंगा-अंधा होते हुए भी अब तक जीता नहीं जा सका, तो फिर इसे कैसे सिखाया जाए?

5.14.8

जितमेव मनो विद्धि वस्तुतो यन्न विद्यते । निकटात्सा चिरास्तैव या शिला नैव विद्यते ॥ ८ ॥

jitameva mano viddhi vastuto yanna vidyate | nikaṭātsā cirāsteva yā śilā naiva vidyate || 8 ||

Know that the mind is already conquered, because in truth it does not exist at all, like a rock that seems to have long stood close by, but which is not there at all.

जान लो कि मन तो पहले से ही जीता हुआ है, क्योंकि असल में वह है ही नहीं, ठीक उस चट्टान की तरह जो पास में बहुत दिनों से खड़ी लगती है, पर होती ही नहीं।

5.14.9

मनो न विजितं राम येनासदपि दुर्धिया । तेनाग्रस्तविषेणैव म्रियते विषमूर्च्छया ॥ ९ ॥

mano na vijitaṃ rāma yenāsadapi durdhiyā | tenāgrastaviṣeṇaiva mriyate viṣamūrcchayā || 9 ||

Rama, the mind does not really exist, yet whoever fails, through twisted understanding, to conquer it, dies from the swoon of a poison he never even swallowed.

हे राम, मन असल में है ही नहीं, फिर भी जो अपनी उलटी समझ के कारण उसे नहीं जीत पाता, वह उस जहर की बेहोशी से मर जाता है जो उसने कभी खाया ही नहीं।

5.14.10

ज्ञः पश्यति सदैवात्मा स्पन्दने प्राणशक्तयः । इन्द्रियाणि स्वधर्मेषु मनो राम किमुच्यते ॥ १० ॥

jñaḥ paśyati sadaivātmā spandane prāṇaśaktayaḥ | indriyāṇi svadharmeṣu mano rāma kimucyate || 10 ||

The knower, the Self, always sees only this: the life-force vibrating, and the senses at their own work. So Rama, what is this thing called the mind?

जानने वाला, यानी आत्मा, हमेशा बस इतना ही देखता है, प्राण-शक्ति का हिलना-डुलना और इंद्रियों का अपना-अपना काम करना। तो हे राम, इसे मन क्या कहा जाता है?

5.14.11

प्राणानां स्पन्दनी शक्तिर्ज्ञानशक्तिः परात्मनः । इन्द्रियाणां निजा शक्तिरेकः कोऽत्र निबध्यते ॥ ११ ॥

prāṇānāṃ spandanī śaktirjñānaśaktiḥ parātmanaḥ | indriyāṇāṃ nijā śaktirekaḥ ko'tra nibadhyate || 11 ||

The power to move belongs to the life-breaths; the power to know belongs to the highest Self; the senses have their own powers. So which single thing here is ever really bound?

हिलने-डुलने की ताकत प्राणों की है, जानने की ताकत सबसे ऊँची आत्मा की है, और इंद्रियों की अपनी-अपनी ताकत है। तो यहाँ आखिर कौन एक चीज़ बंधी हुई है?

5.14.12

सर्वास्तदंशवस्तस्य सर्वशक्तेः किलात्मनः । पृथक्ता वाच्यता चेयं कुतो नाम तवोत्थिता ॥ १२ ॥

sarvāstadāṃśavastasya sarvaśakteḥ kilātmanaḥ | pṛthaktā vācyatā ceyaṃ kuto nāma tavotthitā || 12 ||

All these are only parts of that all-powerful Self. So where has this idea of separateness, and of talking about them as separate, come from in you?

ये सब उसी सब-शक्तिमान आत्मा के हिस्से भर हैं। फिर यह अलग होने का और अलग-अलग कहने का खयाल तुम्हारे भीतर कहाँ से आ गया?

5.14.13

किं नाम जीव इत्युक्तं येनेहान्धीकृतं जगत् । चित्तं चैवासदेव त्वं विद्धि का तस्य शक्तता ॥ १३ ॥

kiṃ nāma jīva ityuktaṃ yenehāndhīkṛtaṃ jagat | cittaṃ caivāsadeva tvaṃ viddhi kā tasya śaktatā || 13 ||

What indeed is this thing people call the soul, by which the world has been made blind? And know that the mind, too, simply does not exist. What power, then, could it have?

यह जो चीज़ 'जीव' कहलाती है, जिसकी वजह से दुनिया अंधी हो गई है, वह है क्या? और यह भी जान लो कि मन भी है ही नहीं, तो उसमें ताकत कहाँ से आएगी?

5.14.14

मनोनिर्दग्धदृष्टीनां दृष्ट्वा दुःखपरम्पराम् । मतिर्मे करुणाक्रान्ता राम मुग्धेव तप्यते ॥ १४ ॥

manonirdagdhadṛṣṭīnāṃ dṛṣṭvā duḥkhaparamparām | matirmekaruṇākrāntā rāma mugdheva tapyate || 14 ||

Rama, having seen the endless chain of sufferings of people whose sight has been burnt by their own minds, my understanding, full of pity, burns like someone bewildered.

हे राम, जिन लोगों की नज़र उनके अपने मन से जल चुकी है, उनके दुखों की लंबी कड़ी देखकर मेरी समझ दया से भर गई है और किसी घबराए हुए इंसान की तरह तड़प रही है।

5.14.15

कः किलात्र कुतः खेदो यन्मूर्खः परितप्यते । दुःखायैव हि जायन्ते करभाः प्राकृतास्तथा ॥ १५ ॥

kaḥ kilātra kutaḥ khedo yanmūrkhaḥ paritapyate | duḥkhāyaiva hi jāyante karabhāḥ prākṛtāstathā || 15 ||

What is there to grieve over, that a fool suffers? Camels are born only for suffering, and so are ordinary people.

इस बात का दुख मनाने से क्या फायदा कि कोई मूर्ख दुखी है? ऊँट तो दुख भोगने के लिए ही पैदा होते हैं, और आम लोग भी वैसे ही।

5.14.16

विनाशायैव जायन्ते जडा देहेष्वबुद्धयः । अनारतोदयाः पापा बुद्बुदा जलधेरिव ॥ १६ ॥

vināśāyaiva jāyante jaḍā deheṣvabuddhayaḥ | anāratodayāḥ pāpā budbudā jaladheriva || 16 ||

Dull, unthinking, sinful creatures are born in body after body only to perish, like bubbles endlessly rising on the ocean.

मूर्ख, बिना समझ वाले, पापी जीव बार-बार शरीर में सिर्फ मिट जाने के लिए पैदा होते हैं, ठीक समुद्र में लगातार उठते बुलबुलों की तरह।

5.14.17

कियन्तः पश्य पशवः प्रत्यहं प्रतिमण्डलम् । सूनावद्भिर्निहन्यन्ते कैवात्र परिदेवना ॥ १७ ॥

kiyantaḥ paśya paśavaḥ pratyahaṃ pratimaṇḍalam | sūnāvadbhirnihaṇyante kaivātra paridevanā || 17 ||

See how many animals, every day, region after region, are killed by butchers, yet what lament is there over this?

देखो, हर रोज़, हर इलाके में, कितने पशु कसाइयों के हाथों मारे जाते हैं, फिर भी इस पर कौन रोता है?

5.14.18

अर्बुदान्यनिलो हन्ति क्षमाजातेषु चान्वहम् । दंशानां मशकानां च कैवात्र परिदेवना ॥ १८ ॥

arbudānyanilo hanti kṣamājāteṣu cānvaham | daṃśānāṃ maśakānāṃ ca kaivātra paridevanā || 18 ||

Every day the wind kills hundreds of millions of earth-born creatures, biting flies and mosquitoes, yet what lament is there over this?

हर रोज़ हवा धरती पर पैदा हुए करोड़ों जीवों को मार डालती है, जैसे काटने वाली मक्खियाँ और मच्छर, फिर भी इस पर कौन रोता है?

5.14.19

दिशं प्रति गिरीन्द्रेषु पुलिन्दाद्या वने वने । निघ्नन्ति मृगलक्षाणि कैवात्र परिदेवना ॥ १९ ॥

diśaṃ prati girīndreṣu pulindādyā vane vane | nighnanti mṛgalakṣāṇi kaivātra paridevanā || 19 ||

In every direction, on the great mountains, in forest after forest, hunters like the Pulindas kill hundreds of thousands of deer, yet what lament is there over this?

हर दिशा में, बड़े-बड़े पहाड़ों पर, जंगल-जंगल में, पुलिन्द जैसे शिकारी लाखों हिरणों को मार डालते हैं, फिर भी इस पर कौन रोता है?

5.14.20

जले जलचरव्यूहान्सूक्ष्मान्स्थूलो निकृन्तति । ग्रासार्थं निर्दयो मत्स्यः कैवात्र परिदेवना ॥ २० ॥

jale jalacaravyūhānsūkṣmānsthūlo nikṛntati | grāsārthaṃ nirdayo matsyaḥ kaivātra paridevanā || 20 ||

In the water, the big merciless fish tears apart swarms of tiny water creatures just for a mouthful, yet what lament is there over this?

पानी में बड़ी और निर्दयी मछली सिर्फ एक निवाले के लिए छोटे-छोटे जल-जीवों के झुंड को चीर डालती है, फिर भी इस पर कौन रोता है?

5.14.21

लिक्षामणुकणक्षामां क्षुधा खादति मक्षिका । तां कोशकारः क्षुधितो दंशस्तमपि चञ्चलम् ॥ २१ ॥

likṣāmaṇukṇakṣāmāṃ kṣudhā khādati makṣikā | tāṃ kośakāraḥ kṣudhito daṃśastamapi cañcalam || 21 ||

The fly hungrily eats the nit, tiny as a speck of dust; the spider eats that fly; and the hungry, restless gadfly eats that spider too.

मक्खी भूख से धूल के कण जैसी छोटी जूँ को खा जाती है, मकड़ी उस मक्खी को खा जाती है, और भूखा, बेचैन डाँस उस मकड़ी को भी खा जाता है।

5.14.22

तं दंशं दर्दुरो भुङ्क्ते व्यालस्तमपि दर्दुरम्। सर्पमुग्रं खगो हन्ति बभ्रुश्चैनं निकृन्तति ॥ २२ ॥

taṃ daṃśaṃ darduro bhuṅkte vyālastamapi darduram | sarpamugraṃ khago hanti babhruścainaṃ nikṛntati || 22 ||

The frog eats that gadfly; the snake in turn eats the frog; the bird kills the fierce snake, and the mongoose tears that snake apart too.

मेंढक उस डाँस को खा जाता है, फिर साँप उस मेंढक को खा जाता है, चिड़िया उस खतरनाक साँप को मार डालती है, और नेवला उस साँप को भी चीर डालता है।

5.14.23

बभ्रुं हिनस्ति मार्जारो मार्जारं श्वा निकृन्तति। ऋक्षः कौलेयकं हन्ति ऋक्षं व्याघ्रो निकृन्तति ॥ २३ ॥

babhruṃ hinasti mārjāro mārjāraṃ śvā nikṛntati | ṛkṣaḥ kauleyakaṃ hanti ṛkṣaṃ vyāghro nikṛntati || 23 ||

The cat kills the mongoose, the dog tears apart the cat, the bear kills the dog, and the tiger tears apart the bear.

बिल्ली नेवले को मार डालती है, कुत्ता बिल्ली को फाड़ डालता है, भालू कुत्ते को मार डालता है, और बाघ भालू को फाड़ डालता है।

5.14.24

सिंहोऽभिभवति व्याघ्रं शरभः सिंहमत्ति च। शरभो नाशमायाति मत्तमेघविलङ्घने ॥ २४ ॥

siṃho'bhibhavati vyāghraṃ śarabhaḥ siṃhamatti ca | śarabho nāśamāyāti mattameghavilaṅghane || 24 ||

The lion overpowers the tiger, and the sharabha kills the lion. But the sharabha itself dies while trying to leap over a raging storm cloud.

शेर बाघ को हरा देता है, और शरभ शेर को मार डालता है। पर शरभ खुद एक भयंकर तूफानी बादल को लांघने की कोशिश में मर जाता है।

5.14.25

मेघा वातैर्विधूयन्ते वायवो गिरिभिर्जिताः। गिरयो वज्रनिष्पिष्टाः शक्रस्य वशगः पविः ॥ २५ ॥

meghā vātairvidhūyante vāyavo giribhirjitāḥ | girayo vajraniṣpiṣṭāḥ śakrasya vaśagaḥ paviḥ || 25 ||

The wind scatters the clouds. The mountains defeat the wind. The thunderbolt smashes the mountains. And the thunderbolt obeys Indra.

हवा बादलों को तितर-बितर कर देती है। पहाड़ हवा को हरा देते हैं। वज्र पहाड़ों को चूर-चूर कर देता है। और वज्र इंद्र के अधीन है।

5.14.26

विष्णुना क्रियते शक्रो विष्णुर्गच्छति जन्तुताम्। सुखदुःखदशामेतां जरामरणपालिताम् ॥ २६ ॥

viṣṇunā kriyate śakro viṣṇurgacchati jantutām | sukhaduḥkhadaśāmetāṃ jarāmaraṇapālitām || 26 ||

Vishnu creates Indra, and Vishnu himself becomes a mere creature, falling into this condition of pleasure and pain, kept under the rule of old age and death.

विष्णु इंद्र को बनाते हैं, और विष्णु खुद एक साधारण जीव बन जाते हैं, सुख-दुख की इस दशा में पड़कर, बुढ़ापे और मौत के अधीन।

5.14.27

जन्तवोऽपि महाकाया अपि विद्यायुधान्विताः। लिक्षाभिरङ्गलग्नाभिरुपजीव्यन्त एव हि ॥ २७ ॥

jantavo'pi mahākāyā api vidyāyudhānvitāḥ | likṣābhiraṅgalagnābhirupajīvyanta eva hi || 27 ||

Even creatures with huge bodies, even those armed with weapons and magical powers, are fed upon by the lice clinging to their skin.

बड़े से बड़े शरीर वाले जीव भी, हथियार और जादुई ताकत रखने वाले जीव भी, अपनी त्वचा से चिपकी जुओं का ही भोजन बन जाते हैं।

5.14.28

अजस्रमेवमालूनविशीर्णं भूतजङ्गलम्। परस्परमलं मोहाद्यते रक्ष्यतेऽपि च ॥ २८ ॥

ajasram evam ālūnaviśīrṇaṃ bhūtajaṅgalam | parasparamalaṃ mohād adyate rakṣyate'pi ca || 28 ||

So, endlessly, this whole jungle of living creatures is cut down and scattered. Out of delusion, creatures devour each other again and again, and yet they also protect each other.

इस तरह जीवों का यह पूरा जंगल बार-बार काटा और बिखेरा जाता है। मोह के कारण जीव एक-दूसरे को बार-बार खा जाते हैं, और फिर भी एक-दूसरे की रक्षा भी करते हैं।

5.14.29

अनारतं विनश्यन्ति विविधा भूतजातयः। अनारतं च जायन्ते लिक्षायूकापिपीलिकाः ॥ २९ ॥

anārataṃ vinaśyanti vividhā bhūtajātayaḥ | anārataṃ ca jāyante likṣāyūkāpipīlikāḥ || 29 ||

Many kinds of creatures die without end, and without end nits, lice, and ants are born.

अनगिनत तरह के जीव लगातार मरते रहते हैं, और लगातार लीखें, जूँ और चींटियाँ जन्म लेती रहती हैं।

5.14.30

जलकोशेषु जायन्ते मत्स्येभमकरादयः। भूमावन्तः प्रजायन्ते कीटौघा वृश्चिकादयः ॥ ३० ॥

jalakośeṣu jāyante matsyebhamakarādayaḥ | bhūmāvantaḥ prajāyante kīṭaughā vṛścikādayaḥ || 30 ||

In pools of water are born fish, sea-elephants, crocodiles, and other such creatures. Within the earth are born swarms of insects, scorpions, and other such creatures.

पानी के गड्ढों में मछलियाँ, समुद्री हाथी, मगरमच्छ और ऐसे ही जीव जन्म लेते हैं। धरती के भीतर कीड़ों के झुंड, बिच्छू और ऐसे ही जीव जन्म लेते हैं।

5.14.31

अन्तरिक्षेऽपि जायन्ते आकाशविहगादयः। वनवीथिषु जायन्ते सिंहव्याघ्रमृगादयः ॥ ३१ ॥

antarikṣe'pi jāyante ākāśavihagādayaḥ | vanavīthiṣu jāyante siṃhavyāghramṛgādayaḥ || 31 ||

In the sky too are born birds of the air and other such creatures. In the paths of the forest are born lions, tigers, deer, and other such creatures.

आकाश में भी उड़ने वाले पक्षी और ऐसे ही जीव जन्म लेते हैं। जंगल के रास्तों में शेर, बाघ, हिरण और ऐसे ही जीव जन्म लेते हैं।

5.14.32

प्राण्यङ्गेष्वपि जायन्ते विचित्राः ककुभं प्रति। स्थावरेष्वपि जायन्ते घुणा जघनकादयः ॥ ३२ ॥

prāṇyaṅgeṣvapi jāyante vicitraḥ kakubhaṃ prati | sthāvareṣvapi jāyante ghuṇā jaghanakādayaḥ || 32 ||

Even in the bodies of living creatures, strange creatures are born, differing from place to place. Even in things that cannot move, wood-worms and other such grubs are born.

जीवित प्राणियों के शरीर में भी अजीब-अजीब जीव जन्म लेते हैं, जो जगह-जगह अलग होते हैं। न हिलने वाली चीज़ों में भी लकड़ी के कीड़े और ऐसे ही अन्य कीड़े जन्म लेते हैं।

5.14.33

शिलान्तरेषु जायन्ते कीटभेकघुणादयः। विष्ठायामपि जायन्ते नानाकीटगणास्तथा ॥ ३३ ॥

śilāntareṣu jāyante kīṭabhekaghuṇādayaḥ | viṣṭhāyāmapi jāyante nānākīṭagaṇāstathā || 33 ||

Within rocks are born insects, frogs, wood-worms, and the like. In dung too, in the same way, are born many kinds of insects.

पत्थरों के भीतर कीड़े, मेंढक, लकड़ी के कीड़े और ऐसे ही जीव जन्म लेते हैं। गोबर में भी, उसी तरह, कई तरह के कीड़े जन्म लेते हैं।

5.14.34

एवमेतेष्वसंख्येषु जन्मस्वपचयेषु च । अजस्रं करुणावन्तो नन्दन्तु प्ररुदन्तु वा ॥ ३४ ॥

evameteṣvasaṃkhyeṣu janmasvapacayeṣu ca | ajasraṃ karuṇāvanto nandantu prarudantu vā || 34 ||

So, among these countless births and endless losses, let the compassionate go on and on, either rejoicing or weeping.

तो इन अनगिनत जन्मों और अनंत विनाशों के बीच, दयालु लोग चाहे हमेशा खुश होते रहें या रोते रहें।

5.14.35

अनारतमृतावस्मिन्ननारतसमुद्भवे । संसारसंभ्रमे युक्ता न तुष्टिर्न च दुःखिता ॥ ३५ ॥

anāratamṛtāvasminnanāratasamudbhave | saṃsārasaṃbhrae yuktā na tuṣṭirna ca duḥkhitā || 35 ||

In this endless dying and endless arising, in the whirl of this cycle of rebirth, someone whose mind is disciplined feels neither joy nor sorrow.

इस लगातार मरने और लगातार जन्म लेने में, संसार के इस भंवर में, जिसका मन वश में है, उसे न खुशी होती है न दुख।

5.14.36

पङ्क्तयस्त्वेवमेवेमा वृक्षपर्णगणैः समाःउत्पत्योत्पत्य लीयन्ते भूतानां भूरिसंभवाः ॥ ३६ ॥

paṅktayastvevamevemā vṛkṣaparṇagaṇaiḥ samāḥutpatyotpatya līyante bhūtānāṃ bhūrisaṃbhavāḥ || 36 ||

These rows of the many births of creatures, like clusters of leaves on a tree, spring up again and again, and then dissolve away.

जीवों के इन अनगिनत जन्मों की ये पंक्तियाँ, पेड़ के पत्तों के झुंड की तरह, बार-बार उगती हैं और फिर मिट जाती हैं।

5.14.37

यः प्रवृत्तः कुबुद्धीनां दयावान्दुःखमार्जनेस्वगतच्छत्रनिर्मृष्टसूर्यांशु खिद्यते नभः ॥ ३७ ॥

yaḥ pravṛttaḥ kubuddhīnāṃ dayāvānduḥkhamārjanesvagatacchatranirmṛṣṭasūryāṃśu khidyate nabhaḥ || 37 ||

Someone full of compassion who sets out to wipe away the suffering of fools is like a person trying to block the sun with just his own umbrella, and even the sky grows weary of it.

जो व्यक्ति दया के कारण मूर्खों का दुख मिटाने में जुट जाता है, वह मानो अपनी ही छतरी से सूरज को ढकने की कोशिश करता है, और इससे आकाश भी थक जाता है।

5.14.38

न तिर्यक्समधर्माण उपदेश्या नरा भुविकथार्थकथनेनार्थः कः स्थाणुनिकटे वने ॥ ३८ ॥

na tiryaksamadharmāṇa upadeśyā narā bhuvikathārthakathanenārthaḥ kaḥ sthāṇunikaṭe vane || 38 ||

Men who behave no differently from animals should not be taught. What good is it to tell them a meaningful teaching. It is like telling it to a tree stump in the forest.

जो लोग पशुओं जैसा ही बर्ताव करते हैं, उन्हें सिखाना बेकार है। उन्हें कोई मतलब की बात कहने से क्या फायदा। यह जंगल में किसी ठूंठ से बात करने जैसा है।

5.14.39

किं किल स्फारमनसां पशूनां च विशेषणम्कृष्यन्ते पशवो रज्ज्वा मनसा मूढचेतसः ॥ ३९ ॥

kiṃ kila sphāramanasāṃ paśūnāṃ ca viśeṣaṇamkṛṣyante paśavo rajjvā manasā mūḍhacetasaḥ || 39 ||

What, after all, sets apart dull-witted animals? Animals are dragged along by a rope. Foolish-minded men are dragged along by their own mind.

आखिर मंदबुद्धि जानवरों में ऐसी क्या खास बात है? जानवर रस्सी से खींचे जाते हैं। मूर्ख मन वाले लोग अपने ही मन से खींचे जाते हैं।

5.14.40

स्वचित्तपङ्कमग्नानां स्वनाशारब्धकर्मणाम्मूर्खाणामापदं दृष्ट्वा प्ररुदन्त्युपला अपि ॥ ४० ॥

svacittapaṅkamagnānāṃ svanāśārabdhakarmaṇāmmūrkhāṇāmāpadaṃ dṛṣṭvā prarudantyupalā api || 40 ||

Seeing the misfortune of fools who are sunk in the mud of their own minds, who have taken up actions that destroy themselves, even stones weep.

अपने ही मन के दलदल में डूबे हुए, अपने विनाश की ओर ले जाने वाले काम करने वाले मूर्खों की दुर्दशा देखकर, पत्थर भी रो पड़ते हैं।

5.14.41

अनिर्जितात्मचित्तानां समन्ताद्दुःखदा दशाः। तन्मार्जनं कृतप्रज्ञो नाऽतः संप्रतिपद्यते ॥ ४१ ॥

anirjitātmacittānāṃ samantāddukhadā daśāḥ| tanmārjanaṃ kṛtaprajño nā'taḥ saṃpratipadyate || 41 ||

For those who have not conquered their own minds, every condition brings suffering from every side. Knowing this, a truly wise person does not set about trying to wipe such suffering away.

जिन्होंने अपने मन पर काबू नहीं पाया, उनके लिए हर हाल हर तरफ से दुख ही देता है। यह जानकर, सच में बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा दुख मिटाने की कोशिश में नहीं लगता।

5.14.42

विनिर्जितात्मचित्तानां दुःखानि रघुनन्दन। सुविचार्याणि तेनात्र ज्ञातज्ञेयः प्रवर्तताम् ॥ ४२ ॥

vinirjitātmacittānāṃ duḥkhāni raghunandana| suvicāryāṇi tenātra jñātajñeyaḥ pravartatām || 42 ||

Raghunandana, one should look closely at the sufferings of those who have conquered their own minds. Then, having known what there is to know, let a person act accordingly.

हे रघुनंदन, जिन्होंने अपने मन पर काबू पा लिया है, उनके दुखों पर भी गौर से ध्यान देना चाहिए। फिर, जो जानने योग्य है उसे जानकर, व्यक्ति उसी के अनुसार आगे बढ़े।

5.14.43

मनो नास्ति महाबाहो मा मुधोप प्रकल्पय। अनेन कल्पितेन त्वं वेतालेनेव हन्यसे ॥ ४३ ॥

mano nāsti mahābāho mā mudhopa prakalpaya| anena kalpitena tvaṃ vetāleneva hanyase || 43 ||

There is no such thing as mind, mighty-armed one. Do not needlessly imagine it. By this thing you have imagined, you are being destroyed as if by an evil spirit.

मन नाम की कोई चीज़ होती ही नहीं, हे बलवान। इसे यूं ही मत गढ़ो। तुमने जो यह चीज़ गढ़ ली है, उसी से तुम एक बुरी आत्मा की तरह मारे जा रहे हो।

5.14.44

यावद्विस्मृतवानात्मतत्त्वं मूढो भवद्भवान्। तावत्तव मनोव्यालो बभूवाभ्युदितस्ततः ॥ ४४ ॥

yāvadvismṛtavānātmatattvaṃ mūḍho bhavadbhavān| tāvattava manovyālo babhūvābhyuditastataḥ || 44 ||

As long as you, in confusion, forgot the truth of the self, so long the serpent of your mind kept rising up because of that.

जब तक तुम, मोह में पड़कर, अपने असली स्वरूप को भूले रहे, तब तक तुम्हारे मन का यह सांप उसी वजह से उठता रहा।

5.14.45

इदानीं भवता ज्ञातं यथाभूतमरिंदम । संकल्पाद्वर्धते चित्तं तदेवाशु परित्यज ॥ ४५ ॥

idānīṃ bhavatā jñātaṃ yathābhūtamarindama| saṃkalpādvardhate cittaṃ tadevāśu parityaja || 45 ||

Now you have understood it as it truly is, conqueror of your enemies. The mind grows out of imagining; give up that imagining at once.

अब तुमने इसे इसके असली रूप में समझ लिया है, हे शत्रुओं को जीतने वाले। मन कल्पना करने से बढ़ता है; उस कल्पना को अभी छोड़ दो।

5.14.46

दृश्यमाश्रयसीदं चेत्तत्सचित्तोऽसि बान्धवान् । दृश्यं संत्यजसीदं चेत्तत्सचित्तोसि मोक्षवान् ॥ ४६ ॥

dṛśyamāśrayasīdaṃ cettatsacitto'si bāndhavān | dṛśyaṃ saṃtyajasīdaṃ cettatsacittosi mokṣavān || 46 ||

If you cling to this visible world, then, mind and all, you are tied to your kin. If you give up this visible world, then, mind and all, you are set free.

अगर तुम इस दिखने वाले संसार को पकड़े रहते हो, तो अपने मन सहित तुम अपने रिश्तेदारों से बंधे रहते हो। अगर तुम इस दिखने वाले संसार को छोड़ देते हो, तो अपने मन सहित तुम मुक्त हो जाते हो।

5.14.47

अयं गुणसमाहारो बन्धायैव समाश्रितः । संत्यक्तो भव मोक्षाय यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४७ ॥

ayaṃ guṇasamāhāro bandhāyaiva samāśritaḥ | saṃtyakto bhava mokṣāya yathecchasi tathā kuru || 47 ||

This bundle of qualities exists only to bind you. Give it up, and be free. Do as you wish.

गुणों का यह जमावड़ा केवल बांधने के लिए ही है। इसे छोड़ दो और मुक्त हो जाओ। जैसा चाहो वैसा करो।

5.14.48

नाहं नेदमिति ध्यायंस्तिष्ठ त्वमचलाचलः । अनन्ताकाशसंकाशहृदयो हृदयेश्वरः ॥ ४८ ॥

nāhaṃ nedamiti dhyāyāṃstiṣṭha tvamacalācalaḥ | anantākāśasaṃkāśahṛdayo hṛdayeśvaraḥ || 48 ||

Thinking, I am not this, this is not mine, stay still and unmoving like a mountain. Your heart is as wide as the endless sky, and you are the ruler of the heart.

यह सोचते हुए कि मैं यह नहीं हूं, यह मेरा नहीं है, पहाड़ की तरह अडिग और स्थिर रहो। तुम्हारा हृदय अनंत आकाश जैसा है, और तुम ही हृदय के स्वामी हो।

5.14.49

आत्मनो जगतश्चास्य त्वमङ्ग कलनामलम् । राम द्वित्वमयीं त्यक्त्वाशेषस्थः सुस्थिरो भव ॥ ४९ ॥

ātmano jagataścāsya tvamaṅga kalanāmalam | rāma dvitvamayīṃ tyaktvāśeṣasthaḥ susthiro bhava || 49 ||

Dear one, give up the impure idea that the self and this world are different from each other. Rama, give up this sense of two, and rest steady, whole and complete.

प्रिय, इस मैले खयाल को छोड़ दो कि आत्मा और यह संसार एक-दूसरे से अलग हैं। राम, दो होने के इस भाव को छोड़ दो, और पूरी तरह स्थिर होकर रहो।

5.14.50

आत्मनो जगतश्चान्तर्द्रष्टृदृश्यदशान्तरे । दर्शनाख्ये स्वमात्मानं सर्वदा भावयन्भव ॥ ५० ॥

ātmano jagataścāntardraṣṭṛdṛśyadaśāntare | darśanākhye svamātmānaṃ sarvadā bhāvayanbhava || 50 ||

Within both the self and the world, in the space between the one who sees and the thing seen, the space called seeing itself, always keep dwelling on your own self there. Be that always.

आत्मा और संसार दोनों के भीतर, देखने वाले और दिखने वाली चीज़ के बीच की उस जगह में जिसे देखना कहते हैं, वहां हमेशा अपने आप को ही सोचते रहो। हमेशा ऐसे ही बने रहो।

5.14.51

स्वाद्यस्वादकसंत्यक्तं स्वाद्यस्वादकमध्यगम् । स्वादनं केवलं ध्यायन्नित्यमात्ममयो भव ॥ ५१ ॥

svādyasvādakasaṃtyaktaṃ svādyasvādakamadhyagam | svādanaṃ kevalaṃ dhyāyannityamātmamayo bhava || 51 ||

Think always only of the tasting itself. It is free from both the taster and the tasted, yet it stands between them. Always be full of the self.

हमेशा सिर्फ चखने पर ही ध्यान दो। यह चखने वाले और चखी गई चीज़ दोनों से अलग है, फिर भी दोनों के बीच में है। हमेशा आत्मा से भरे रहो।

5.14.52

रामानुभवनीयस्य तथानुभवितुः स्वयम् । अवलम्ब्य निरालम्बं मध्यं मध्ये स्थिरो भव ॥ ५२ ॥

rāmānubhavanīyasya tathānubhavituḥ svayam | avalambya nirālambaṃ madhyaṃ madhye sthiro bhava || 52 ||

Rama, between the thing experienced and the one who experiences it, lean on that middle ground which needs no support of its own, and stay steady right there in the middle.

राम, अनुभव की जाने वाली चीज़ और अनुभव करने वाले के बीच, उस बीच वाली जगह का सहारा लो जिसे खुद किसी सहारे की ज़रूरत नहीं, और उसी बीच में स्थिर रहो।

5.14.53

भवभावनया हीनं भावाभावदशोज्झितम् । भावयन्नेवमात्मानमात्मसंस्थः स्वयं भव ॥ ५३ ॥

bhavabhāvanayā hīnaṃ bhāvābhāvadaśojjhitam | bhāvayannevamātmānamātmasaṃsthaḥ svayaṃ bhava || 53 ||

Think of your self as free from every idea of becoming, free from both being and not being. Thinking of yourself this way, rest in your own self and be yourself.

अपने आप को हर तरह के होने के खयाल से मुक्त मानो, और है तथा नहीं है दोनों दशाओं से भी परे मानो। इस तरह अपने आप को सोचते हुए, अपने आप में टिके रहो और खुद अपने आप बन जाओ।

5.14.54

आत्मसत्तां त्यजन्नेतां चेत्यं भावयसि स्वयम् । यदा राम तदा यासि चित्ततामतिदुःखदाम् ॥ ५४ ॥

ātmasattāṃ tyajannetāṃ cetyaṃ bhāvayasi svayam | yadā rāma tadā yāsi cittatāmatiduḥkhadām || 54 ||

Rama, when you give up this being that you truly are, and start seeing things yourself as separate objects of thought, then you fall into the state of mind that brings great suffering.

राम, जब तुम अपने असली आत्म-स्वरूप को छोड़कर चीज़ों को खुद अपने अलग विचार के रूप में देखने लगते हो, तब तुम मन की उस दशा में गिर जाते हो जो बहुत दुख देती है।

5.14.55

चित्ततां शृङ्खलामेतां स्वरूपज्ञानयुक्तितः । बिलाच्चित्तान्महाबाहो स्वात्मसिंहं विमोचय ॥ ५५ ॥

cittatāṃ śṛṅkhalāmetāṃ svarūpajñānayuktitaḥ | bilāccittānmahābāho svātmasiṃhaṃ vimocaya || 55 ||

Mighty-armed one, with the knowledge of your true nature, break this chain called mind, and set the lion that is your own self free from the cave of the mind.

हे महाबाहो, अपने असली स्वरूप के ज्ञान से मन नाम की इस जंजीर को तोड़ दो, और अपने आत्मा रूपी सिंह को मन की गुफा से आज़ाद कर दो।

5.14.56

परमात्मदशां त्यक्त्वा चेत्यं परिपतन्नलम्यदा गच्छसि संकल्पं चेत्यं संपश्यसे तदा ॥ ५६ ॥

paramātmadaśāṃ tyaktvā cetyaṃ paripatannalamyadā gacchasi saṃkalpaṃ cetyaṃ saṃpaśyase tadā || 56 ||

When you leave the state of the highest self and fall completely into what your own mind pictures, going into imagining, then you see only that pictured thing.

जब तुम परम आत्मा की अवस्था छोड़कर पूरी तरह अपने मन की बनाई हुई चीज़ में गिर जाते हो, और कल्पना में उतर जाते हो, तब तुम्हें सिर्फ वही कल्पना की हुई चीज़ दिखती है।

5.14.57

आत्मनो व्यतिरिक्तं सच्चित्तमित्यङ्ग संविदामनः संपद्यते दुःखि क्षीयते त्यक्तया तया ॥ ५७ ॥

ātmano vyatiriktaṃ saccittamityaṅga saṃvidāmanaḥ saṃpadyate duḥkhi kṣīyate tyaktayā tayā || 57 ||

Dear one, the thought that the mind truly exists apart from the self is what fills the mind with suffering. Give up that thought, and the mind wastes away.

प्रिय, यह खयाल कि मन आत्मा से अलग सचमुच है, यही मन को दुखी बना देता है। इस खयाल को छोड़ दो, तो मन खुद घुलकर खत्म हो जाता है।

5.14.58

आत्मैवेदं जगत्सर्वमित्यन्तः संविदोदयेक्व चेता क्वच वा चित्तं किं चेत्यं चेतनं च किम् ॥ ५८ ॥

ātmaivedaṃ jagatsarvamityantaḥ saṃvidodayekva cetā kvaca vā cittaṃ kiṃ cetyaṃ cetanaṃ ca kim || 58 ||

When inside you the realization dawns that this whole world is nothing but the self, then where is the one who perceives, where is the mind, what is left to think about, and who is left to think it.

जब तुम्हारे भीतर यह बोध जाग उठे कि यह सारा संसार सिर्फ आत्मा ही है, तब देखने वाला कहां रहता है, मन कहां रहता है, सोचने के लिए कोई चीज़ कहां बचती है, और सोचने वाला कौन बचता है।

5.14.59

अहमात्मेति जीवोऽस्मीत्येतावच्चित्तकं विदुःअनेनेत्थमनाद्यन्तं दुःखं राघव तन्यते ॥ ५९ ॥

ahamātmeti jīvo'smītyetāvaccittakaṃ viduḥanenetthamanādyantaṃ duḥkhaṃ rāghava tanyate || 59 ||

I am the self, and I am this living being, that much alone is what people call the mind. Because of this, Rama, endless suffering without beginning or end keeps spreading.

मैं आत्मा हूं और मैं यह जीव हूं, बस इतना ही तो मन कहलाता है। राम, इसी की वजह से बिना शुरुआत और बिना अंत का दुख फैलता रहता है।

5.14.60

अहमात्मा न जीवाख्याः सत्ताः सन्तीतराः क्वचिदित्येव चित्तोपशमः परमं सुखमुच्यते ॥ ६० ॥

ahamātmā na jīvākhyāḥ sattāḥ santītarāḥ kvacidityeva cittopaśamaḥ paramaṃ sukhamucyate || 60 ||

When you know, I am the self, and nowhere are there other beings called separate living souls, the mind grows still, and that stillness is called the highest happiness.

जब तुम जान लेते हो कि मैं आत्मा हूं, और कहीं भी अलग-अलग जीव नाम की कोई और चीज़ नहीं है, तब मन शांत हो जाता है, और यही शांति सबसे बड़ा सुख कहलाती है।

5.14.61

आत्मैवेदं जगदिति जाते राघव निश्चये । असत्ता चेतसो जाता भवत्येव न संशयः ॥ ६१ ॥

ātmaivedaṃ jagaditi jāte rāghava niścaye | asattā cetaso jātā bhavatyeva na saṃśayaḥ || 61 ||

Rama, once the certainty arises that this whole world is nothing but the self, the mind then truly stops existing. There is no doubt about this.

राम, जब यह निश्चय हो जाता है कि यह सारा संसार सिर्फ आत्मा ही है, तो मन का होना सचमुच खत्म हो जाता है। इसमें कोई शक नहीं।

5.14.62

एवं सत्यावबोधेन स्वात्मैवेदमिति स्थितिः । मनः सुगलितं विद्धि सूर्यभासा तमो यथा ॥ ६२ ॥

evaṃ satyāvabodhena svātmaivedamiti sthitiḥ | manaḥ sugalitaṃ viddhi sūryabhāsā tamo yathā || 62 ||

Know that through this true understanding, that this is truly my own self, held steady, the mind melts away completely, the way darkness melts away in the light of the sun.

जान लो कि इस सच्ची समझ से, कि यह सब मेरा ही आत्मा है, जब यह समझ स्थिर हो जाती है, तो मन पूरी तरह पिघल जाता है, जैसे सूरज की रोशनी से अंधेरा मिट जाता है।

5.14.63

मनःसर्पः शरीरस्थो यावत्तावन्महद्भयम् । तस्मिन्नुत्सारिते योगाद्भयस्यावसरः कुतः ॥ ६३ ॥

manaḥsarpaḥ śarīrastho yāvattāvanmahadbhayam | tasminnutsārite yogādbhayasyāvasaraḥ kutaḥ || 63 ||

As long as the snake of the mind lives in the body, there is great fear. Once it is driven out through yoga, what chance is left for fear.

जब तक मन रूपी सांप शरीर में रहता है, तब तक बड़ा डर बना रहता है। योग के ज़रिए जब उसे बाहर निकाल दिया जाता है, तो डर की कोई गुंजाइश ही नहीं बचती।

5.14.64

भ्रान्तिमात्रोत्थितश्चित्ते वेतालोऽतिबलोऽनघसम्यग्ज्ञानेन मन्त्रेण प्रसभं विनिपात्यताम् ॥ ६४ ॥

bhrāntimātrotthitaścitte vetālo'tibalo'naghasamyagjñānena mantreṇa prasabhaṃ vinipātyatām || 64 ||

Blameless one, this very powerful zombie-demon has risen in the mind out of nothing but confusion. Strike it down hard with the spell of true knowledge.

हे निष्पाप, यह बहुत ताकतवर जोंबी-दानव सिर्फ भ्रम से मन में उठ खड़ा हुआ है। सच्चे ज्ञान के मंत्र से इसे ज़ोर से गिरा दो।

5.14.65

देहगेहाद्गते चित्तयक्षे बलवतां वरे। निराधिर्विगतोद्वेगस्तिष्ठ नास्ति भयं तव ॥ ६५ ॥

dehagehādgate cittayakṣe balavatāṃ vare | nirādhirvigatodvegastiṣṭha nāsti bhayaṃ tava || 65 ||

Best of the strong, once the spirit that is your mind has left the house of your body, stay free from worry, free from restlessness. There is no more fear for you.

हे बलवानों में श्रेष्ठ, जब मन रूपी भूत तुम्हारे शरीर रूपी घर से निकल जाए, तो बिना किसी चिंता और बिना किसी बेचैनी के रहो। अब तुम्हें कोई डर नहीं है।

5.14.66

नीराग एव निरुपार्जन एव चास्मीत्येतावतैव गलिता तव चित्तसत्तानिर्दुःखमुत्तमपदं परमं गतोऽसि तिष्ठोपशान्तपरमैषण एवमन्तः ॥ ६६ ॥

nīrāga eva nirupārjana eva cāsmītyetāvataiva galitā tava cittasattānirduḥkhamuttamapadaṃ paramaṃ gato'si tiṣṭhopaśāntaparamaiṣaṇa evamantaḥ || 66 ||

Just by knowing, I am free of desire, and I want nothing to gain, your mind dissolves completely, and you reach the highest state free of all sorrow. Stay this way, with even your deepest longing calmed within.

बस यह जानने भर से कि मैं इच्छा से मुक्त हूं, और मुझे कुछ पाने की चाह नहीं है, तुम्हारा मन पूरी तरह घुल जाता है, और तुम सबसे ऊंची, दुख-रहित अवस्था को पा लेते हो। इसी तरह बने रहो, भीतर की सबसे गहरी चाह भी शांत करके।

Chapter 15

5.15.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एतामनुसरन्राम चित्तसत्तामपावनीम् । संसारबीजकणिकां जीवबन्धनवागुराम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | etāmanusaranrāma cittasattāmapāvanīm | saṃsārabījakaṇikāṃ jīvabandhanavāgurām || 1 ||

Sri Vasishtha said: Rama, the self follows this unclean thing called the mind — the tiny seed of the whole world, the trap that ties down every living being.

श्री वसिष्ठ बोले, राम, आत्मा इस गंदी चीज़ के पीछे चलती है जिसे मन कहते हैं। यही मन पूरी दुनिया का सबसे छोटा बीज है, और हर जीव को बांधने वाला जाल भी यही है।

5.15.2

आत्मा त्यक्तात्मरूपाभो मलिनामाप तद्दृशम् । चित्तं समनुसंधत्ते धत्ते च कलनामलम् ॥ २ ॥

ātmā tyaktātmarūpābho malināmāpa taddṛśam | cittaṃ samanusaṃdhatte dhatte ca kalanāmalam || 2 ||

It gives up the light of its own true form and turns impure, taking on that same impure look. Then it holds fast to the mind and carries the stain of false imagining.

वह अपने असली रूप की चमक छोड़ देती है और गंदी हो जाती है, और वैसी ही गंदी शक्ल अपना लेती है। फिर वह मन को कसकर पकड़ लेती है और झूठी कल्पना का दाग अपने ऊपर ले लेती है।

5.15.3

वर्धमानमहामोहदायिनी भयकारिणी । तृष्णा विषलतारूपा मूर्च्छामेव प्रयच्छति ॥ ३ ॥

vardhamānamahāmohadāyinī bhayakāriṇī | tṛṣṇā viṣalatārūpā mūrcchāmeva prayacchati || 3 ||

Craving is a poison vine. It grows bigger and bigger, giving greater and greater delusion. It causes fear. It gives nothing but fainting.

तृष्णा एक ज़हरीली बेल है। यह बढ़ती जाती है और भ्रम को और बड़ा करती जाती है। यह डर पैदा करती है। यह बस बेहोशी देती है, और कुछ नहीं।

5.15.4

यदा यदोदेति तदा महामोहप्रदायिनी । तृष्णा कृष्णानिशेवेयमनन्तात्मविकारिणी ॥ ४ ॥

yadā yadodeti tadā mahāmohapradāyinī | tṛṣṇā kṛṣṇāniśevayamanantātmavikāriṇī || 4 ||

Whenever it rises, it brings great delusion. This craving is dark, like a night, endlessly disturbing the self.

जब भी यह उठती है, यह बड़ा भ्रम ले आती है। यह तृष्णा एक अंधेरी रात जैसी है, जो आत्मा को हमेशा परेशान करती रहती है।

5.15.5

कल्पानलशिखादाहं सोढुं शक्ता हरादयः । तृष्णानलशिखादाहं सोढुं शक्ता न केचन ॥ ५ ॥

kalpānalaśikhādāhaṃ soḍhuṃ śaktā harādayaḥ | tṛṣṇānalaśikhādāhaṃ soḍhuṃ śaktā na kecana || 5 ||

Shiva and others like him can bear the burning of the flame that ends the world at the end of an age. But no one at all can bear the burning of the flame of craving.

शिव जैसे लोग युग के अंत में दुनिया को जलाने वाली आग की तपिश सह सकते हैं। लेकिन तृष्णा की आग की तपिश कोई नहीं सह सकता।

5.15.6

तीक्ष्णा कृष्णा सुदीर्घा च वहत्यङ्गं सदा निजम्। शीतलैवासुखोदर्का घोरा तृष्णाकृपाणिका ॥ ६ ॥

tīkṣṇā kṛṣṇā sudīrghā ca vahatyangaṃ sadā nijam| śītalai vāsukhodarkā ghorā tṛṣṇākṛpāṇikā|| 6||

The dagger of craving is sharp, dark, and very long, and it always stays inside one's own body. It feels cold, but its result is only unhappiness. It is a terrible thing.

तृष्णा का यह छुरा तेज़, काला और बहुत लंबा है, और यह हमेशा अपने ही शरीर के अंदर रहता है। छूने में यह ठंडा लगता है, पर इसका नतीजा सिर्फ दुख होता है। यह बहुत भयानक चीज़ है।

5.15.7

यान्येतानि दुरन्तानि दुर्जराण्युन्नतानि च। तृष्णावल्ल्याः फलानीह तानि दुःखानि राघव ॥ ७ ॥

yānyetāni durantāni durjarāṇyunnatāni ca| tṛṣṇāvallyāḥ phalānīha tāni duḥkhāni rāghava|| 7||

Rama, whatever fruits the creeper of craving bears here are endless, hard to digest, and piled up high — those fruits are nothing but sorrows.

राम, तृष्णा की बेल पर जो भी फल यहां लगते हैं, वे कभी खत्म नहीं होते, पचते नहीं, और ढेर सारे होते हैं। वे फल दुख के सिवा कुछ नहीं हैं।

5.15.8

अदृश्यैवात्ति मांसास्थिरुधिरादि शरीरकात्। मनोबिलविलीनैषा तृष्णावनशुनी नृणाम् ॥ ८ ॥

adṛśyaivātti māṃsāsthirudhirādi śarīrakāt| manobilavilīnaiṣā tṛṣṇāvanaśunī nṛṇām|| 8||

Unseen, she eats the flesh, bone, and blood from the body. She is the wild dog of the forest of craving, hidden in the hole of the mind, feeding on men.

बिना दिखे, वह शरीर से मांस, हड्डी और खून खा जाती है। वह तृष्णा के जंगल की जंगली कुतिया है, जो मन के बिल में छिपी रहती है और लोगों को खाती रहती है।

5.15.9

क्षणमुल्लासमायाति क्षणमायाति शून्यताम्। जडा विदलयत्याशु तृष्णाप्रावृट्तरङ्गिणी ॥ ९ ॥

kṣaṇamullāsamāyāti kṣaṇamāyāti śūnyatām| jadā vidalayatyāśu tṛṣṇāprāvṛttarāṅgiṇī|| 9||

One moment it swells up with joy, the next moment it turns to nothing. Unfeeling, it tears everything apart at once — this is the flooding river of craving, full of waves.

एक पल में यह खुशी से भर जाती है, अगले ही पल कुछ नहीं रह जाती। बिना कुछ महसूस किए, यह तुरंत सब कुछ तोड़ डालती है, यह तृष्णा की बाढ़ वाली नदी है, जो लहरों से भरी है।

5.15.10

दृष्टदैन्यो हतस्वान्तो हतौजा याति नीचताम्। मुह्यते रौति पतति तृष्णयाभिहतो जनः ॥ १० ॥

dṛṣṭadainyo hatasvānto hataujā yāti nīcatām| muhyate rauti patati tṛṣṇayābhihato janaḥ|| 10||

A person struck by craving shows his misery to everyone. His heart is broken, his strength is gone, and he sinks low. He grows confused, he cries out, he falls down.

तृष्णा से मारा हुआ इंसान अपनी बदहाली सबको दिखा देता है। उसका दिल टूट जाता है, उसकी ताकत खत्म हो जाती है, और वह नीचे गिर जाता है। वह घबरा जाता है, चिल्लाता है, और गिर पड़ता है।

5.15.11

न स्थिता कोटरे यस्य तृष्णाकृष्णभुजङ्गमो ।तस्य प्राणानिलाः स्वस्थाः पुंसो हृदयरन्ध्रगाः ॥११ ॥

na sthitā koṭare yasya tṛṣṇākṛṣṇabhujaṅgamo|tasya prāṇānilāḥ svasthāḥ puṃso hṛdayarandhragāḥ||11||

If the dark snake of craving does not live in the hollow of a man's heart, then the breath of life moving through that heart stays healthy and at ease.

अगर तृष्णा का काला सांप किसी आदमी के दिल के खोखले हिस्से में नहीं रहता, तो उस दिल में बहने वाली जीवन की सांस स्वस्थ और चैन से रहती है।

5.15.12

नूनमस्तंगतो यत्र तृष्णाकृष्णनिशाक्रमः ।पुण्यानि तत्र वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवेन्दवः ॥१२ ॥

nūnamastaṅgato yatra tṛṣṇākṛṣṇaniśākramaḥ|puṇyāni tatra vardhante śuklapakṣa ivendavaḥ||12||

Where the dark night of craving has truly set, good deeds grow there, just as the moon grows bigger night after night in the bright half of the month.

जहां तृष्णा की अंधेरी रात सचमुच ढल जाती है, वहां अच्छे कर्म बढ़ते हैं, ठीक वैसे ही जैसे महीने के उजले पखवाड़े में चांद रात-दर-रात बड़ा होता जाता है।

5.15.13

यो न तृष्णाघुणावल्ल्या क्षतः पुरुषपादपः ।पुण्यप्रसूनैः स सदा दशां याति विकासिनीम् ॥१३ ॥

yo na tṛṣṇāghuṇāvallyā kṣataḥ puruṣapādapaḥ|puṇyaprasūnaiḥ sa sadā daśāṃ yāti vikāsinīm||13||

The tree that is a man, if not eaten away by the termite-vine of craving, always comes into full bloom, flowering with good deeds.

इंसान रूपी पेड़, अगर तृष्णा की दीमक जैसी बेल उसे खा न जाए, तो हमेशा पूरी तरह खिल उठता है, और अच्छे कर्मों के फूलों से भर जाता है।

5.15.14

अनन्ताकुलकल्लोला विवर्तावर्तसंकुला ।प्रवहत्याशयारण्ये तृष्णान्धानां नदी नृणाम् ॥१४ ॥

anantākulakallolā vivartāvartasaṅkulā|pravahatyāśayāraṇye tṛṣṇāndhānāṃ nadī nṛṇām||14||

In the forest of men's hearts blinded by craving, a river keeps flowing — full of endless tangled waves, crowded with whirlpools and eddies.

तृष्णा से अंधे हुए लोगों के दिल के जंगल में एक नदी लगातार बहती रहती है, जिसमें अनगिनत उलझी हुई लहरें हैं, और जो भंवरों से भरी है।

5.15.15

तृष्णयेमे जनाः सर्वे सूत्रयन्त्रपतत्रिवत् ।भ्राम्यन्ते प्रविशीर्यन्ते संह्रियन्ते च भूरिशः ॥१५ ॥

tṛṣṇayeme janāḥ sarve sūtrayantrapatatrivat|bhrāmyante praviśīryante saṃhriyante ca bhūriśaḥ||15||

Because of craving, all these people are whirled around again and again, like a bird tied by a string to a machine. They wear away and are dragged back, over and over.

तृष्णा के कारण, ये सारे लोग बार-बार घुमाए जाते हैं, जैसे कोई चिड़िया धागे से किसी मशीन में बंधी हो। वे बार-बार घिसते हैं और वापस खींचे जाते हैं।

5.15.16

मूलान्यपि सुसूक्ष्माणि कठिनाशयकर्कशा । तृष्णा परशुधारेव वल्गन्ति विनिकृन्तति ॥ १६ ॥

mūlānyapi susūkṣmāṇi kaṭhināśayakarkaśā | tṛṣṇā paraśudhāreva valganti vinikṛntati || 16 ||

Even the finest, most hidden roots tremble before it. Craving is harsh and hard-hearted; like the sharp edge of an axe, it cuts them clean away.

इसके आगे सबसे बारीक और छिपी हुई जड़ें भी कांप जाती हैं। तृष्णा कठोर और निर्दयी है, कुल्हाड़ी की तेज़ धार की तरह, यह उन्हें पूरी तरह काट देती है।

5.15.17

निपतत्यवटे मूढस्तृष्णामनुसरज्जनः । नीलामनुपतञ्छ्वभ्रतृणशाखां यथैणकः ॥ १७ ॥

nipatatyavaṭe mūḍhas tṛṣṇāmanusarajjanaḥ | nīlāmanupatañchvabhraṭṛṇaśākhāṃ yathaiṇakaḥ || 17 ||

A foolish man who runs after craving falls into a pit — just like a deer that chases a green branch of grass hanging over a pit, and falls in.

जो मूर्ख इंसान तृष्णा के पीछे भागता है, वह गड्ढे में गिर जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हिरण गड्ढे के ऊपर लटकती हरी घास की डाल के पीछे भागकर उसी में गिर जाता है।

5.15.18

नोन्मत्तापि जरा चक्षुस्तथा जरयति क्षणात् । यथा जरयति क्षामा तृष्णा हृदयरूपिका ॥ १८ ॥

nonmattāpi jarā cakṣustathā jarayati kṣaṇāt | yathā jarayati kṣāmā tṛṣṇā hṛdayarūpikā || 18 ||

Not even wild old age can age the eye as fast as craving does. Thin and wasting, taking the very shape of the heart, craving ages the eye in an instant.

बुढ़ापा चाहे कितना भी भयंकर क्यों न हो, वह आंख को उतनी तेज़ी से बूढ़ा नहीं करता जितनी तेज़ी से तृष्णा करती है। दुबली और घुलती हुई, दिल का ही रूप लेकर, तृष्णा आंख को पल भर में बूढ़ा कर देती है।

5.15.19

तृष्णयाशयकौशिक्या हृद्यमङ्गलभूतया । रूढया भगवानेष विष्णुर्वामनतां गतः ॥ १९ ॥

tṛṣṇayāśayakauśikyā hṛdyamaṅgalabhūtayā | rūḍhayā bhagavāneṣa viṣṇurvāmanatāṃ gataḥ || 19 ||

It is this craving — a cunning trick that feels sweet to the heart but is truly harmful, and deeply rooted — that brought even Lord Vishnu himself down to the form of a dwarf.

यही तृष्णा है, मन की एक चालाक चाल, जो दिल को मीठी लगती है पर असल में नुकसानदेह है, और गहरी जड़ जमाए हुए है, जिसने खुद भगवान विष्णु को भी बौने का रूप धरा दिया।

5.15.20

कयाचिदेव दैविक्या हृदि ग्रथितयानया । तृष्णया भ्राम्यते व्योम्नि रज्ज्वेवार्कोऽन्वहं किल ॥ २० ॥

kayācideva daivikyā hṛdi grathitayānayā | tṛṣṇayā bhrāmyate vyomni rajjvevārko'nvahaṃ kila || 20 ||

By some strange, divine craving, tied fast in its heart, the sun is made to wander across the sky every single day, as if pulled by a rope — so it is said.

किसी अनोखी, दिव्य तृष्णा के कारण, जो उसके दिल में कसकर बंधी है, सूरज हर रोज़ आकाश में घूमता रहता है, मानो किसी रस्सी से खींचा जा रहा हो, ऐसा कहा जाता है।

5.15.21

सर्वदुःखमयाकारां जगतीजीवनच्छिदम् । तृष्णां परिहरेत्क्रूरामुरगीमिव दूरगः ॥ २१ ॥

sarvaduḥkhamayākārāṃ jagatījīvanacchidam| tṛṣṇāṃ pariharetkrūrāmuragīmiva dūragaḥ|| 21 ||

One should stay away from craving, whose entire form is sorrow, and which cuts off the life of every creature on earth. It is cruel. Avoid it as a traveler stays far away from a snake.

तृष्णा से दूर रहना चाहिए, जो पूरी तरह दुख से बनी है, और जो धरती के हर जीव की जान ले लेती है। यह निर्दयी है। इससे वैसे ही दूर रहो जैसे कोई राहगीर सांप से दूर रहता है।

5.15.22

तृष्णया वायवो वान्ति शैलास्तिष्ठन्ति तृष्णया । तृष्णयैव धरा धात्री त्रैलोक्यं तृष्णया धृतम् ॥ २२ ॥

tṛṣṇayā vāyavo vānti śailāstiṣṭhanti tṛṣṇayā| tṛṣṇayaiva dharā dhātrī trailokyaṃ tṛṣṇayā dhṛtam|| 22 ||

By craving the winds blow. By craving the mountains stand still. By craving alone the earth, the nurse of all, holds firm. By craving the three worlds are held together.

तृष्णा के कारण हवाएं चलती हैं। तृष्णा के कारण पहाड़ स्थिर खड़े रहते हैं। तृष्णा के कारण ही धरती, जो सबको पालती है, टिकी रहती है। तृष्णा के कारण ही तीनों लोक थमे हुए हैं।

5.15.23

सर्वैव लोकयात्रेयं प्रोता तृष्णावरत्रया । रज्जुबन्धाद्विमुच्यन्ते तृष्णाबन्धान्न केचन ॥ २३ ॥

sarvaiva lokayātreyaṃ protā tṛṣṇāvaratrayā| rajjubandhādvimucyante tṛṣṇābandhānna kecana|| 23 ||

This entire business of the world is strung together on the rope of craving. People can be freed from the tie of a rope, but no one is freed from the tie of craving.

दुनिया का यह सारा कामकाज तृष्णा की रस्सी में पिरोया हुआ है। लोग रस्सी के बंधन से तो छूट जाते हैं, पर तृष्णा के बंधन से कोई नहीं छूटता।

5.15.24

तस्माद्राघव तृष्णां त्वं त्यज संकल्पवर्जनात् । मनस्त्वकल्पनं नास्ति निर्णीतमिति युक्तितः ॥ २४ ॥

tasmādrāghava tṛṣṇāṃ tvaṃ tyaja saṃkalpavarjanāt| manastvakalpanaṃ nāsti nirṇītamiti yuktitaḥ|| 24 ||

So, Rama, give up craving by giving up willful thinking. Reason has settled this: without such thinking, there is no mind at all.

इसलिए, राम, जानबूझकर की गई सोच को छोड़कर तृष्णा को छोड़ दो। तर्क से यह तय हो चुका है कि ऐसी सोच के बिना मन का कोई वजूद ही नहीं है।

5.15.25

अयं त्वमहमित्येव प्रथमं तावदाशये । मां दुराशां महाबाहो संकल्पय तमोमयीम् ॥ २५ ॥

ayaṃ tvamahamityeva prathamaṃ tāvadāśaye| māṃ durāśāṃ mahābāho saṃkalpaya tamomayīm|| 25 ||

The very first thought is this: 'this is you, this is I.' Mighty-armed one, in that very thought you shape me — the evil craving, made wholly of darkness.

सबसे पहला विचार यही होता है, 'यह तुम हो, यह मैं हूं।' हे बलशाली, इसी विचार में तुम मुझे गढ़ते हो, यानी बुरी तृष्णा को, जो पूरी तरह अंधकार से बनी है।

5.15.26

एतां दुःखप्रसविनीमनात्मन्यात्मभावनाम् । न भावयसि चेद्राम तदा तज्ज्ञेषु गण्यसे ॥ २६ ॥

etāṃ duḥkhaprasavinīmanātmanyātmabhāvanām | na bhāvayasi cedrāma tadā tajjñeṣu gaṇyase || 26 ||

Rama, if you do not fall into this — the habit of seeing the self in what is not the self, which breeds only sorrow — then you will be counted among those who truly know.

राम, अगर तुम इसमें नहीं फंसते, यानी जो आत्मा नहीं है उसमें आत्मा को देखने की इस आदत में, जो सिर्फ दुख पैदा करती है, तो तुम्हें उन लोगों में गिना जाएगा जो सच में जानते हैं।

5.15.27

एतामहंभावमयीमपुण्यां छित्त्वानहंभावशलाकयैव । स्वभावनां भव्य भवान्तभूमौ भवाभिभूताखिलभूतभीतिः ॥ २७ ॥

etāmahaṃbhāvamayīmapuṇyāṃ chittvānahaṃbhāvaśalākayaiva | svabhāvanāṃ bhavya bhavāntabhūmau bhavābhibhūtākhilabhūtabhītiḥ || 27 ||

Cut away this impure notion of 'I', your own self-made imagining, with the very needle of the sense of 'not-I'. Good Rama, on the ground where all becoming ends, you are one overwhelmed by existence, fearing every living being.

अपनी बनाई हुई इस गंदी 'मैं' वाली धारणा को 'मैं नहीं हूं' वाले भाव की सुई से काट डालो। हे भले राम, जहां सारा जन्म-मरण खत्म होता है उस जगह पर, तुम वह हो जो सांसारिक जीवन से दबा हुआ है और हर जीव से डरता है।

Chapter 16

5.16.1

श्रीराम उवाच । स्वभावगम्भीरमेतद्भगवन्वचनं तव । यदहंकारतृष्णां त्वं मा गृहाणेति वक्षि माम् ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | svabhāvagambhīrametadbhagavanvacanaṃ tava | yadahaṃkāratṛṣṇāṃ tvaṃ mā gṛhāṇeti vakṣi māṃ || 1 ||

Rama said: Lord, this teaching of yours is deep by its very nature. You tell me, do not hold on to the craving for the ego.

राम बोले, हे भगवन, आपकी यह बात अपने आप में बहुत गहरी है। आप मुझसे कहते हैं कि मैं अहंकार की चाहत को मत पकड़ूं।

5.16.2

यद्यहंकारसंत्यागं करोमि तदिदं प्रभो । त्यजामि देहनामानं संनिवेशमशेषतः ॥ २ ॥

yadyahaṃkārasaṃtyāgaṃ karomi tadidaṃ prabho | tyajāmi dehanāmānaṃ saṃniveśamaśeṣataḥ || 2 ||

If I give up the ego completely, my lord, then I would be giving up this whole arrangement called the body, completely, with nothing left over.

यदि मैं अहंकार को पूरी तरह छोड़ दूं, हे प्रभु, तो मैं इस शरीर नाम की पूरी बनावट को भी पूरी तरह छोड़ दूंगा, बिना कुछ बचाए।

5.16.3

जानुस्तम्भेन महता धार्यते सुतरुर्यथा । अहंकारेण देहोऽयं तथैव किल धार्यते ॥ ३ ॥

jānustambhena mahatā dhāryate sutaruryathā | ahaṃkāreṇa deho'yaṃ tathaiva kila dhāryate || 3 ||

Just as a great tree is held up by a strong prop, so this body, indeed, is held up by the ego.

जैसे एक बड़ा पेड़ किसी मजबूत टेक के सहारे खड़ा रहता है, वैसे ही यह शरीर अहंकार के सहारे टिका रहता है।

5.16.4

अहंकारक्षये देहः किलावश्यं विनश्यति । मूले क्रकचसंलूने सुमहानिव पादपः ॥ ४ ॥

ahaṃkārakṣaye dehaḥ kilāvaśyaṃ vinaśyati | mūle krakacasaṃlūne sumahāniva pādapaḥ || 4 ||

When the ego is destroyed, the body too must certainly perish, like a great tree when its root is sawn through.

जब अहंकार नष्ट हो जाता है, तो यह शरीर भी अवश्य नष्ट हो जाता है, जैसे किसी विशाल पेड़ की जड़ को आरी से काट देने पर वह गिर जाता है।

5.16.5

तत्कथं संत्यजाम्येनं जीवामि च कथं मुने । एनमर्थं विनिश्चित्य वद मे वदतां वर ॥ ५ ॥

tatkathaṃ saṃtyajāmyenaṃ jīvāmi ca kathaṃ mune | enamarthaṃ viniścitya vada me vadatāṃ vara || 5 ||

Then how can I give up this ego and still live, sage? Think this through and tell me clearly, best of speakers.

तो फिर मैं इस अहंकार को कैसे छोड़ूं और फिर जीऊं कैसे, हे मुनि? इस बात को अच्छी तरह सोचकर मुझे साफ-साफ बताइए, हे सबसे अच्छे वक्ता।

5.16.6

श्रीवसिष्ठ उवाच । सर्वत्र वासनात्यागो राम राजीवलोचन । द्विविधः कथ्यते तज्ज्ञैर्ज्ञेयो ध्येयश्च मानद ॥ ६ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | sarvatra vāsanātyāgo rāma rājīvalocana | dvividhaḥ kathyate tajjñairjñeyo dhyeyaśca mānada || 6 ||

Vasishtha said: Rama, lotus-eyed one, those who know this say that giving up desire is, in every case, of two kinds, one to be known and one to be practiced, giver of honor.

वशिष्ठ बोले, हे राम, हे कमलनयन, इसके जानकार कहते हैं कि वासना का त्याग हमेशा दो तरह का होता है, एक जानने योग्य और एक अभ्यास करने योग्य, हे मान देने वाले।

5.16.7

अहमेषां पदार्थानामेते च मम जीवितम् । नाहमेभिर्विना कश्चिन्न मयैते विना किल ॥ ७ ॥

ahameṣāṃ padārthānāmete ca mama jīvitam | nāhamebhirvinā kaścinnamayaita vinā kila || 7 ||

I belong to these things, and they are my life. Without them I am nothing at all, and without me, they are nothing either.

मैं इन चीज़ों का हूं, और ये मेरा जीवन हैं। इनके बिना मैं कुछ भी नहीं हूं, और मेरे बिना ये भी कुछ नहीं हैं।

5.16.8

इत्यन्तर्निश्चयं कृत्वा विचार्य मनसा सह । नाहं पदार्थस्य न मे पदार्थ इति भाविते ॥ ८ ॥

ityantarniścayaṃ kṛtvā vicārya manasā saha | nāhaṃ padārthasya na me padārtha iti bhāvite || 8 ||

Having made this decision within, and thought it over with the mind, one realizes, I do not belong to any object, and no object belongs to me.

मन से भलीभांति विचार करके, भीतर ही भीतर यह निश्चय कर लेने पर यह अनुभव होता है कि मैं किसी चीज़ का नहीं हूं, और कोई चीज़ मेरी नहीं है।

5.16.9

अन्तःशीतलया बुद्ध्या कुर्वत्या लीलया क्रियाम् । यो नूनं वासनात्यागो ध्येयो राम स कीर्तितः ॥ ९ ॥

antaḥśītalayā buddhyā kurvatyā līlayā kriyām | yo nūnaṃ vāsanātyāgo dhyeyo rāma sa kīrtitaḥ || 9 ||

When the mind stays cool inside while it goes on doing its everyday work as if in play, that giving up of desire, Rama, is truly called the kind to be practiced.

जब मन भीतर से शांत और ठंडा रहता है और वह अपने रोज़ के काम खेल की तरह करता रहता है, तो वासना के उस त्याग को ही, हे राम, अभ्यास करने योग्य त्याग कहा गया है।

5.16.10

सर्वं समतया बुद्ध्वा यं कृत्वा वासनाक्षयम् । जहाति निर्ममो देहं ज्ञेयोऽसौ वासनाक्षयः ॥ १० ॥

sarvaṃ samatayā buddhvā yaṃ kṛtvā vāsanākṣayam | jahāti nirmamo dehaṃ jñeyo'sau vāsanākṣayaḥ || 10 ||

When someone understands everything with the same even mind, and through this destroys desire completely, and then, holding nothing as his own, gives up the body, that ending of desire is the kind to be known.

जब कोई इंसान हर चीज़ को एक ही नज़र से देखता है, और इस तरह अपनी सारी वासना मिटा देता है, और फिर बिना किसी चीज़ को मेरा माने अपना शरीर छोड़ देता है, तो वासना के इस अंत को ही जानने योग्य त्याग कहते हैं।

5.16.11

अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः । तिष्ठति ध्येयसंत्यागी जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ११ ॥

ahaṃkāramayīṃ tyaktvā vāsanāṃ līlayaiva yaḥ | tiṣṭhati dhyeyasaṃtyāgī jīvanmuktaḥ sa ucyate || 11 ||

Whoever gives up the desire built from ego, and lives on playfully, keeping up this kind of giving up, he is called free while still alive.

जो व्यक्ति अहंकार से बनी वासना को छोड़कर, खेल की तरह इस त्याग को बनाए रखते हुए जीता है, उसे ही जीवनमुक्त कहा जाता है।

5.16.12

निर्मूलकलनां त्यक्त्वा वासनां यः शमं गतः । ज्ञेयत्यागमयं विद्धि मुक्तं तं रघुनन्दन ॥ १२ ॥

nirmūlakalanāṃ tyaktvā vāsanāṃ yaḥ śamaṃ gataḥ | jñeyatyāgamayaṃ viddhi muktaṃ taṃ raghunandana || 12 ||

Whoever gives up desire completely, down to its very root, and reaches peace, know him, descendant of Raghu, to be freed through the giving up of the kind called to be known.

जो व्यक्ति वासना को उसकी जड़ सहित पूरी तरह छोड़कर शांति को प्राप्त हो जाता है, हे रघुनंदन, उसे जानने योग्य त्याग से मुक्त हुआ जानो।

5.16.13

ध्येयं तं वासनात्यागं कृत्वा तिष्ठन्ति लीलया । जीवन्मुक्ता महात्मानः सुजना जनकादयः ॥ १३ ॥

dhyeyaṃ taṃ vāsanātyāgaṃ kṛtvā tiṣṭhanti līlayā | jīvanmuktā mahātmānaḥ sujanā janakādayaḥ || 13 ||

Having carried out that giving up of desire which must be practiced, they go on living playfully, great and good souls who are free while alive, Janaka and others like him.

उस अभ्यास करने योग्य वासना-त्याग को पूरा करके वे खेल की तरह जीते रहते हैं, जीवनमुक्त महापुरुष, भले लोग, जनक और उन जैसे अन्य।

5.16.14

ज्ञेयं तु वासनात्यागं कृत्वोपशममागताः । विदेहमुक्तास्तिष्ठन्ति ब्रह्मण्येव परावरे ॥ १४ ॥

jñeyaṃ tu vāsanātyāgaṃ kṛtvopaśamamāgatāḥ | videhamuktāstiṣṭhanti brahmaṇyeva parāvare || 14 ||

But those who complete the giving up of desire that is to be known, and reach complete stillness, become freed without a body. They remain only in Brahman, which is both the farthest and the nearest.

परन्तु जो लोग जानने योग्य वासना-त्याग को पूरा करके पूर्ण शांति को प्राप्त होते हैं, वे बिना शरीर के मुक्त हो जाते हैं। वे केवल ब्रह्म में ही स्थित रहते हैं, जो सबसे दूर भी है और सबसे निकट भी।

5.16.16

युक्तायुक्तमती स्वासे केवलं विमलेऽनघ । एकः स्थितः स्फुरद्देहः शान्तदेहः स्थितोऽपरः ॥ १६ ॥

yuktāyuktamatī svāse kevalaṃ vimale'nagha | ekaḥ sthitaḥ sphuraddehaḥ śāntadehaḥ sthito'paraḥ || 16 ||

Whether such a person's mind is engaged in action or free of it, within, in the one pure self, there is no difference, sinless one. One of them remains with the body still active, the other remains with the body come to rest.

चाहे ऐसे व्यक्ति का मन काम में लगा हो या न लगा हो, भीतर, उस एक शुद्ध आत्मा में कोई फ़र्क़ नहीं है, हे निष्पाप। उनमें से एक शरीर के सक्रिय रहते हुए स्थित रहता है, और दूसरा शरीर के शांत हो जाने पर स्थित रहता है।

5.16.17

एकः सदेहो निर्मुक्तस्तिष्ठत्यपगतज्वरः । त्यक्तदेहो विमुक्तोऽन्यो वर्ततेऽज्ञेयवासनः ॥ १७ ॥

ekaḥ sadeho nirmuktastiṣṭhatyapagatajvaraḥ | tyaktadeho vimukto'nyo vartate'jñeyavāsanaḥ || 17 ||

One stays alive in his body, freed, his inner burning gone. The other has given up the body and is freed, existing in a state beyond all trace of desire, beyond knowing.

एक व्यक्ति शरीर में रहते हुए ही मुक्त होकर, अपनी भीतरी जलन से मुक्त होकर जीता रहता है। दूसरा शरीर को त्यागकर मुक्त हो जाता है, और ऐसी अवस्था में रहता है जहां वासना का कोई निशान नहीं बचता, जिसे जाना नहीं जा सकता।

5.16.18

आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतम् । न हृष्यति ग्लायति यः स मुक्त इति होच्यते ॥ १८ ॥

āpatatsu yathākālaṃ sukhaduḥkheṣvanāratam | na hṛṣyati glāyati yaḥ sa mukta iti hocyate || 18 ||

When pleasure and pain keep coming, one after another, in their own time, the one who neither rejoices in them nor is worn down by them, he indeed is called free.

जब सुख और दुख अपने समय पर लगातार आते रहते हैं, तो जो व्यक्ति न तो उनसे खुश होता है और न ही उनसे दुखी या कमज़ोर होता है, उसे ही मुक्त कहा जाता है।

5.16.19

ईप्सितानीप्सिते न स्तो यस्येष्टानिष्टवस्तुषु । सुषुप्तवच्चरति यः स मुक्त इति कथ्यते ॥ १९ ॥

īpsitānīpsite na sto yasyeṣṭāniṣṭavastuṣu | suṣuptavaccarati yaḥ sa mukta iti kathyate || 19 ||

The one for whom, among things liked and disliked, there is no longer any wanted or unwanted, who goes through life as if in deep, dreamless sleep, he is called free.

जिसके लिए पसंद और नापसंद चीज़ों में अब कोई चाहा हुआ या न चाहा हुआ नहीं रह जाता, और जो गहरी नींद में सोए हुए व्यक्ति की तरह जीवन में चलता-फिरता है, उसे ही मुक्त कहा जाता है।

5.16.20

हेयोपादेयकलने ममेत्यहमिहेति च । यस्यान्तः संपरिक्षीणे स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २० ॥

heyopādeyakalane mametyahamihaiti ca | yasyāntaḥ saṃparikṣīṇe sa jīvanmukta ucyate || 20 ||

The one within whom the very sense of to be rejected and to be accepted, of this is mine and here I am, has completely worn away, he is called free while alive.

जिसके भीतर यह छोड़ने योग्य है, यह अपनाने योग्य है, यह मेरा है और मैं यहां हूं, ये सब भाव पूरी तरह मिट चुके हैं, उसे ही जीवनमुक्त कहा जाता है।

5.16.21

हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः । न परामृश्यते योऽन्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २१ ॥

harṣāmarṣabhayakrodhakāmakārpaṇyadṛṣṭibhiḥ | na parāmṛśyate yo'ntaḥ sa jīvanmukta ucyate || 21 ||

The one who, within, is not gripped by joy, resentment, fear, anger, desire, or a mean and needy outlook, he is called free while alive.

जो व्यक्ति भीतर से न तो खुशी से, न गुस्से या असहनशीलता से, न डर से, न क्रोध से, न इच्छा से, और न ही दीन-हीन नज़रिए से पकड़ में आता है, उसे ही जीवनमुक्त कहा जाता है।

5.16.22

सुषुप्तवत्प्रशमितभाववृत्तिना स्थितं सदा जाग्रति येन चेतसा। कलान्वितो विधुरिव यः सदा मुदा निषेव्यते मुक्त इतीह स स्मृतः॥ २२॥

suṣuptavatpraśamitabhāvavṛttinā sthitaṃ sadā jāgrati yena cetasā | kalānvito vidhuriva yaḥ sadā mudā niṣevyate mukt itīha sa smṛtaḥ || 22 ||

He whose mind has gone completely calm inside, so that he stays as if in deep sleep even while wide awake at all times, who is whole, like the moon with all its phases, and whom everyone always delights to see, he, here, is remembered as the free one.

जिसका मन भीतर से पूरी तरह शांत हो चुका है, इसलिए वह हमेशा जागते हुए भी गहरी नींद में सोए जैसा रहता है, जो चांद की तरह पूरा और सम्पूर्ण है, और जिसे देखकर सब हमेशा खुश होते हैं, उसे ही यहां मुक्त कहा जाता है।

5.16.23

श्रीवाल्मीकिरुवाच। इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगाम। स्नातुं सभा कृतनमस्करणा जगाम श्यामाक्षये रविकरैश्च सहाजगाम॥ २३॥

śrīvālmīkiruvāca | ityuktavatyatha munau divaso jagāma sāyantanāya vidhaye'stamino jagāma | snātuṃ sabhā kṛtanamaskaraṇā jagāma śyāmākṣaye ravikaraiśca sahājagāma || 23 ||

Valmiki said: When the sage had finished speaking, the day came to an end. The sun went down to keep the evening rites. The assembly bowed in respect and went to bathe, and returned as the daylight faded away together with the sun's last rays.

वाल्मीकि बोले, मुनि के यह कह चुकने पर दिन बीत गया। सूरज संध्या-पूजा के लिए डूब गया। सभा ने प्रणाम करके स्नान के लिए प्रस्थान किया, और जैसे-जैसे सूरज की आख़िरी किरणों के साथ दिन का उजाला ढलता गया, वे लौट आए।

Chapter 17

5.17.1

श्रीवसिष्ठ उवाचविदेहमुक्ता ये राम ते गिरामिह गोचरेनैव तिष्ठन्ति तस्मात्त्वं जीवन्मुक्तिमिमां शृणु ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvācavidehamuktā ye rāma te girāmiha gocarenaiva tiṣṭhanti tasmāttvaṃ jīvanmuktimimāṃ śṛṇu || 1 ||

Sri Vasishtha said: Rama, those who are freed without a body do not fall within the reach of words here. So listen now to this teaching about being freed while still alive.

श्री वसिष्ठ ने कहा, राम, जो लोग शरीर के बिना मुक्त हो चुके हैं, वे यहाँ शब्दों की पहुँच में नहीं आते। इसलिए अब तुम जीते जी मुक्त होने की यह बात सुनो।

5.17.2

प्राकृतान्येव कर्माणि यया वर्जितवाञ्छयाक्रियन्ते तृष्णयेमानि तां जीवन्मुक्ततां विदुः ॥ २ ॥

prākṛtānyeva karmāṇi yayā varjitavāñchayākriyante tṛṣṇayemāni tāṃ jīvanmuktatāṃ viduḥ || 2 ||

When these same ordinary actions are done, but done free of wanting and free of craving, the wise call that state living liberation.

जब यही सामान्य काम बिना किसी चाह और बिना किसी लालच के किए जाते हैं, तो उस अवस्था को जीते जी मुक्ति कहते हैं।

5.17.3

या स्थितिस्तृष्णया जन्तोर्बाह्यार्थे बद्धभावयातां बन्धमाहुराचार्याः संसारनिगडं दृढम् ॥ ३ ॥

yā sthitistṛṣṇayā jantorbāhyārthe baddhabhāvayātaṃ bandhamāhurācāryāḥ saṃsāranigaḍaṃ dṛḍham || 3 ||

When a being's craving binds his feelings to outer things, teachers call that state bondage, the firm chain of this world.

जब किसी जीव की चाहत उसके मन को बाहरी चीज़ों से बाँध देती है, तो गुरुजन उस अवस्था को बंधन कहते हैं, संसार की मज़बूत बेड़ी।

5.17.4

नूनमुज्झितसंकल्पा हृदि बाह्ये विहारिणीवासना योदिता सेह जीवन्मुक्तशरीरिणी ॥ ४ ॥

nūnamujjhitasaṃkalpā hṛdi bāhye vihāriṇīvāsanā yoditā seha jīvanmuktaśarīriṇī || 4 ||

Truly, when a person's wishes come and go freely, in the heart and in the world outside, without any scheming behind them, that itself is what makes a person free while still alive, right here in this body.

सच तो यह है कि जब मनुष्य की इच्छाएँ बिना किसी योजना के मन में और बाहर दुनिया में स्वतंत्र रूप से आती जाती हैं, तो यही बात मनुष्य को जीते जी, इसी शरीर में, मुक्त बना देती है।

5.17.5

बाह्यार्थव्यसनोच्छूना तृष्णा बद्धेति राघवसर्वार्थव्यसनोन्मुक्ता तृष्णा मुक्तेति कथ्यते ॥ ५ ॥

bāhyārthavyasanocchūnā tṛṣṇā baddheti rāghavasarvārthavyasanonmuktā tṛṣṇā mukteti kathyate || 5 ||

Rama, craving that is swollen with obsession for outer things is called bound craving. Craving that is free from obsession for anything at all is called free craving.

राम, जो चाहत बाहरी चीज़ों की लत से फूली रहती है, उसे बंधी हुई चाहत कहते हैं। और जो चाहत किसी भी चीज़ की लत से मुक्त होती है, उसे मुक्त चाहत कहते हैं।

5.17.6

पूर्वं यस्यास्तु तृष्णाया वर्तमानेऽपि शाश्वती । निर्दुःखता निष्कलता सा मुक्तेति बुधैः स्मृता ॥ ६ ॥

pūrvaṃ yasyāstu tṛṣṇāyā vartamāne'pi śāśvatī | nirduḥkhatā niṣkalatā sā mukte ti budhaiḥ smṛtā || 6 ||

A person whose craving was there before, but who now, even in the present, always stays free of pain and stays whole and undivided, that person the wise call free.

जिस व्यक्ति की चाहत पहले भी थी, पर जो अब भी हमेशा दुख से मुक्त रहता है और भीतर से पूरी तरह अखंड बना रहता है, ज्ञानी लोग उसे मुक्त कहते हैं।

5.17.7

इदमस्तु ममेत्यन्तर्यैषा राघव भावना । तां तृष्णां शृङ्खलां विद्धि कलनां च महामते ॥ ७ ॥

idamastu mametyantaryaiṣā rāghava bhāvanā | tāṃ tṛṣṇāṃ śṛṅkhalāṃ viddhi kalanāṃ ca mahāmate || 7 ||

Rama, the thought inside you that says let this be mine, know that this craving is a chain, wise one, and it is what breaks you into pieces.

राम, भीतर उठने वाला यह भाव कि यह मेरा हो जाए, जान लो कि यही चाहत एक जंजीर है, हे बुद्धिमान, और यही तुम्हें टुकड़ों में बाँट देती है।

5.17.8

तामेतां सर्वभावेषु सत्स्वसत्सु च सर्वदा । संत्यज्य परमोदारः परमेति महामनाः ॥ ८ ॥

tāmetāṃ sarvabhāveṣu satsvasatsu ca sarvadā | saṃtyajya paramodāraḥ parame ti mahāmanāḥ || 8 ||

A great and generous soul who gives up this craving completely, toward everything, whether real or unreal, reaches the highest state.

जो महान और उदार व्यक्ति इस चाहत को हर चीज़ के प्रति पूरी तरह छोड़ देता है, चाहे वह चीज़ सच हो या झूठी, वह सबसे ऊँची अवस्था को पा लेता है।

5.17.9

बन्धाशामथ मोक्षाशां सुखदुःखदशामपि । त्यक्त्वा सदसदाशां च तिष्ठाक्षुब्धमहाब्धिवत् ॥ ९ ॥

bandhāśāmatha mokṣāśāṃ sukhaduḥkhadaśāmapi | tyaktvā sadasadāśāṃ ca tiṣṭhākṣubdhamahābdhivat || 9 ||

Give up the wish for bondage and also the wish for freedom. Give up the states of pleasure and pain, and give up hoping for what is real or what is unreal. Stay still, like a great ocean that no wave disturbs.

बंधन की चाह छोड़ दो, और मुक्ति की चाह भी छोड़ दो। सुख और दुख की अवस्थाओं को भी छोड़ दो, और जो सच है या झूठ है उसकी चाह भी छोड़ दो। उस विशाल समुद्र की तरह शांत बने रहो, जिसमें कोई लहर नहीं उठती।

5.17.10

अजरामरमात्मानं दृष्ट्वा बुद्धिमतां वर । जरामरणशङ्काभिर्मा मनः कलुषं कृथाः ॥ १० ॥

ajarāmarāmātmānaṃ dṛṣṭvā buddhimatāṃ vara | jarāmaraṇaśaṅkābhirmā manaḥ kaluṣaṃ kṛthāḥ || 10 ||

Best of the wise, once you see that the self never grows old and never dies, do not let fears of old age and death trouble your mind.

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, जब तुम देख लो कि आत्मा कभी बूढ़ी नहीं होती और कभी मरती नहीं, तो बुढ़ापे और मौत के डर से अपने मन को परेशान मत करो।

5.17.11

पदार्थतत्त्वं नेदं ते नायं त्वमसि राघव । किंचित्तदन्यदेवेदमन्य एवासि राघव ॥ ११ ॥

padārthatattvaṃ nedaṃ te nāyaṃ tvamasi rāghava | kiṃcittadanyadevedamanya evāsi rāghava || 11 ||

Rama, this world of things is not really yours, and you are not this body. This world is something entirely different from you, and you, Rama, are someone entirely different from it.

राम, यह चीज़ों की दुनिया सचमुच तुम्हारी नहीं है, और तुम यह शरीर नहीं हो। यह दुनिया तुमसे बिलकुल अलग है, और राम, तुम भी इससे बिलकुल अलग हो।

5.17.12

असदभ्युदिते विश्वे सतीवासति संस्थिते । त्वयि तत्तामतिगते तृष्णायाः संभवः कुतः ॥ १२ ॥

asadabhyudite viśve satīvāsati saṃsthite | tvayi tattāmatigate tṛṣṇāyāḥ saṃbhavaḥ kutaḥ || 12 ||

The world that is not truly real has arisen looking as if it were real, though it is not. Once you have gone beyond being any such fixed thing yourself, how could craving even arise?

यह दुनिया जो असल में सच नहीं है, सच जैसी दिखने लगी है, पर है नहीं। जब तुम खुद किसी निश्चित चीज़ होने की सीमा से आगे निकल जाते हो, तो फिर चाहत कहाँ से पैदा होगी?

5.17.13

अन्यच्च राम मनसि पुरुषस्य विचारिणः । जायते निश्चयः साधो स्फाराकारश्चतुर्विधः ॥ १३ ॥

anyacca rāma manasi puruṣasya vicāriṇaḥ | jāyate niścayaḥ sādho sphārākāraścaturvidhaḥ || 13 ||

And there is something else, Rama. In the mind of a person who thinks and looks closely, a firm conviction arises, good man, and it takes a wide form of four kinds.

और राम, एक बात और है। जो व्यक्ति सोच विचार करता है, उसके मन में एक पक्का विश्वास पैदा होता है, हे साधु, और वह विश्वास चार तरह का, बहुत व्यापक रूप में होता है।

5.17.14

आपादमस्तकमहं मातापितृविनिर्मितः । इत्येको निश्चयो राम बन्धायासद्विलोकनात् ॥ १४ ॥

āpādamastakamahaṃ mātāpitṛvinirmitaḥ | ityeko niścayo rāma bandhāyāsadvilokanāt || 14 ||

From my feet to the top of my head, I am made by my mother and father, this is the first conviction, Rama, and it leads to bondage, because it comes from looking at what is not real.

पैर से लेकर सिर तक, मैं अपनी माँ और पिता से बना हूँ, यह पहला विश्वास है, राम, और यह बंधन की ओर ले जाता है, क्योंकि यह झूठी चीज़ को सच मानकर देखने से पैदा होता है।

5.17.15

अतीतः सर्वभावेभ्यो वालाग्रादप्यहं तनुः । इति द्वितीयो मोक्षाय निश्चयो जायते सताम् ॥ १५ ॥

atītaḥ sarvabhāvebhyaḥ vālāgrādapyahaṃ tanuḥ | iti dvitīyo mokṣāya niścayo jāyate satām || 15 ||

I am beyond all things, finer than even the tip of a hair, this is the second conviction, and it arises in good people for the sake of liberation.

मैं सब चीज़ों से परे हूँ, बाल की नोक से भी बारीक हूँ, यह दूसरा विश्वास है, और यह अच्छे लोगों के मन में मुक्ति के लिए पैदा होता है।

5.17.16

जगज्जालपदार्थात्मा सर्वमेवाहमक्षयः । तृतीयो निश्चयश्चेत्थं मोक्षायैव रघूद्वह ॥ १६ ॥

jagajjālapadārthātmā sarvamevāhamakṣayaḥ | tṛtīyo niścayaścetthaṃ mokṣāyaiva raghūdvaha || 16 ||

I am the very self of this whole web of the world and all its things, I am everything, and I never perish, this is the third conviction, Rama, and it too is for liberation.

मैं इस पूरी दुनिया के जाल का और उसकी सब चीज़ों का सार हूँ, मैं सब कुछ हूँ, और मेरा कभी नाश नहीं होता, यह तीसरा विश्वास है, राम, और यह भी मुक्ति के लिए ही है।

5.17.17

अहं जगद्वा सकलं शून्यं व्योमसमं सदा । एवमेष चतुर्थोऽन्यो निश्चयो मोक्षसिद्धये ॥ १७ ॥

ahaṃ jagadvā sakalaṃ śūnyaṃ vyomasamaṃ sadā | evameṣa caturtho'nyo niścayo mokṣasiddhaye || 17 ||

I, and this whole world too, are empty, always just like open space, this is the fourth conviction, and it also leads to liberation.

मैं और यह पूरी दुनिया, दोनों खाली हैं, हमेशा आकाश जैसे, यह चौथा विश्वास है, और यह भी मुक्ति की ओर ले जाता है।

5.17.18

निश्चयेषु चतुर्ष्वेषु बन्धाय प्रथमः स्मृतः । त्रयो मोक्षाय कथिताः शुद्धभावनयोत्थिताः ॥ १८ ॥

niścayeṣu caturṣveṣu bandhāya prathamaḥ smṛtaḥ | trayo mokṣāya kathitāḥ śuddhabhāvanayotthitāḥ || 18 ||

Of these four convictions, the first is said to lead to bondage. The other three are said to lead to liberation; they arise from a pure understanding.

इन चार निश्चयों में से पहला निश्चय बंधन की ओर ले जाता है, ऐसा कहा गया है। बाकी तीन मुक्ति की ओर ले जाते हैं, ये शुद्ध समझ से पैदा होते हैं।

5.17.19

एतेषां प्रथमः प्रोक्तस्तृष्णाया बन्धयोग्यता । शुद्धतृष्णास्त्रयः स्वच्छा जीवन्मुक्तविलासिनः ॥ १९ ॥

eteṣāṃ prathamaḥ proktastṛṣṇāyā bandhayogyatā | śuddhatṛṣṇāstrayaḥ svacchā jīvanmuktavilāsinaḥ || 19 ||

Of these, the first is said to be capable of binding through craving. The other three are free of craving and clear — they are the joys of those who are liberated while still alive.

इनमें से पहला निश्चय लालसा के कारण बांधने में सक्षम बताया गया है। बाकी तीन लालसा से मुक्त और निर्मल हैं, ये जीते-जी मुक्त हो चुके लोगों के आनंद हैं।

5.17.20

सर्वमात्माहमेवेति निश्चयो यो महामते । तमादाय विषादाय न भूयो याति मे मतिः ॥ २० ॥

sarvamātmāhameveti niścayo yo mahāmate | tamādāya viṣādāya na bhūyo yāti me matiḥ || 20 ||

The conviction that everything is my own self — o wise one, once I hold on to it, my mind never turns back to sorrow.

यह निश्चय कि सब कुछ मेरा ही आत्मा है — हे बुद्धिमान, जब मैं इसे थाम लेता हूं तो मेरा मन फिर कभी दुख की ओर नहीं जाता।

5.17.21

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमात्मनः । सर्वमात्मेति तेनान्तर्निश्चयेन न बध्यते ॥ २१ ॥

tiryagūrdhvamadhastācca vyāpako mahimātmanaḥ | sarvamātmeti tenāntarniścayena na badhyate || 21 ||

The greatness of the self spreads across, above, and below, everywhere. Through this inner conviction that everything is the self, one is not bound.

आत्मा की महिमा आर-पार, ऊपर और नीचे, हर जगह फैली हुई है। यह भीतरी निश्चय कि सब कुछ आत्मा ही है, इसी से मनुष्य बंधन में नहीं पड़ता।

5.17.22

शून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि । शिवः पुरुष ईशानो नित्य आत्मैव कथ्यते ॥ २२ ॥

śūnyaṃ tatprakṛtirmāyā brahmavijñānamityapi | śivaḥ puruṣa īśāno nitya ātmaiva kathyate || 22 ||

That same reality is called the void, nature, maya, brahman-knowledge — also Shiva, the person, the ruling lord, the eternal. All of these are said to be nothing but the self.

उसी को शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म-ज्ञान कहा जाता है — और शिव, पुरुष, ईश्वर, नित्य भी कहा जाता है। ये सब असल में आत्मा को ही कहा जाता है।

5.17.23

सदा सर्वं सदेवेदं नेह द्वित्वान्यते क्वचित् । विद्येते विद्यया व्याप्तं जगन्नेतरया धिया ॥ २३ ॥

sadā sarvaṃ sadevedaṃ neha dvitvānyate kvacit | vidyete vidyayā vyāptaṃ jagannetarayā dhiyā || 23 ||

All this is always real, nothing but real — here there is no twoness, no otherness at all. This world exists filled with true knowledge, not with any other kind of thought.

यह सब हमेशा सत्य है, बस सत्य है — यहां कुछ भी दो या अलग नहीं है। यह जगत सच्चे ज्ञान से भरा हुआ है, किसी और तरह की सोच से नहीं।

5.17.24

आपातालमनन्तात्मा पूरितोऽम्भोधिरम्बुभिः । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगदापूर्णमात्मना ॥ २४ ॥

āpātālamanantātmā pūrito'mbhodhirmabubhiḥ | ābrahmastambaparyantaṃ jagadāpūrṇamātmanā || 24 ||

Just as the ocean, right down to the underworld, is completely filled with water, so this whole world, from Brahma down to a blade of grass, is completely filled with the infinite self.

जैसे समुद्र पाताल तक पानी से पूरी तरह भरा है, वैसे ही यह पूरा जगत, ब्रह्मा से लेकर एक तिनके तक, अनंत आत्मा से पूरी तरह भरा हुआ है।

5.17.25

अतः सत्यमृतं नित्यं नानृतं विद्यते क्वचित् । वार्येव सकलाम्भोधिर्न तरङ्गादयः क्वचित् ॥ २५ ॥

ataḥ satyamṛtaṃ nityaṃ nānṛtaṃ vidyate kvacit | vāryeva sakalāmbhodhirna taraṅgādayaḥ kvacit || 25 ||

So everything is true, real, and everlasting; nothing false exists anywhere. The whole ocean is nothing but water; the waves and everything else are nothing apart from it.

इसलिए सब कुछ सच्चा, वास्तविक और शाश्वत है; कहीं भी झूठ नहीं है। पूरा समुद्र पानी ही पानी है; लहरें वगैरह पानी से अलग कुछ भी नहीं हैं।

5.17.26

पृथक्कटककेयूरनूपुरादि नकाञ्चनात् । भिन्नास्तरुतृणाकारकोटयश्चैव नात्मनः ॥ २६ ॥

pṛthakkaṭakakeyūranūpurādi nakāñcanāt | bhinnāstarutṛṇākārakoṭayaścaiva nātmanaḥ || 26 ||

Bangles, armlets, anklets, and other ornaments are not different from gold. In the same way, the countless forms appearing as trees and grass are not different from the self.

कंगन, बाजूबंद, पायल और दूसरे गहने सोने से अलग नहीं हैं। उसी तरह, पेड़-पौधों और घास के रूप में दिखने वाले असंख्य रूप आत्मा से अलग नहीं हैं।

5.17.27

द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्जगन्निर्माणलीलया । परमात्ममयी शक्तिरद्वैतैव विजृम्भते ॥ २७ ॥

dvaitādvaitasamudbhedairjagannirmāṇalīlayā | paramātmamayī śaktiradvaitaiva vijṛmbhate || 27 ||

Through the divisions of the many and the one, and through the play of shaping the world, the one power made of the highest self — itself without a second — unfolds and expands.

अनेकता और एकता के भेदों के जरिए, और जगत को रचने के खेल के जरिए, परम आत्मा से बनी वह शक्ति, जो खुद एक ही है, फैलती और खुलती है।

5.17.28

आत्मीये परकीये च सर्वस्मिन्नेव सर्वदा । नष्टे वोपचिते कार्ये सुखदुःखे गृहाण मा ॥ २८ ॥

ātmīye parakīye ca sarvasminneva sarvadā | naṣṭe vopacite kārye sukhaduḥkhe gṛhāṇa mā || 28 ||

In your own affairs and in another's, in everything, at all times, whether some work is lost or it prospers, do not take hold of pleasure or pain over it.

अपने काम में हो या दूसरे के, हर चीज़ में, हमेशा — चाहे कोई काम बिगड़ जाए या बन जाए — उसके सुख या दुख को मत पकड़ो।

5.17.29

भावाद्वैतमुपाश्रित्य सत्ताद्वैतमयात्मकः । कर्माद्वैतमनादृत्य द्वैताद्वैतमयो भव ॥ २९ ॥

bhāvādvaitamupāśritya sattādvaitamayātmakaḥ | karmādvaitamanādṛtya dvaitādvaitamayo bhava || 29 ||

Take shelter in oneness in your feeling, and let your very being be made of oneness alone — but do not hold to oneness in your actions. Become one who holds both the many and the one together.

अपने भाव में एकता का सहारा लो, और अपने अस्तित्व को केवल एक ही रहने दो — लेकिन अपने कर्मों में एकता की जिद मत करो। ऐसे बनो जो अनेकता और एकता दोनों को साथ लेकर चले।

5.17.30

भवभूमिषु भीमासु भावभावनवात्यया । मा पतोत्पातपूर्णासु दरीष्वन्तः करी यथा ॥ ३० ॥

bhavabhūmiṣu bhīmāsu bhāvabhāvanavātyayā | mā patotpātapūrṇāsu darīṣvantaḥ karī yathā || 30 ||

Do not fall, driven by the storm-wind of feeling and imagining, into the fearful grounds of worldly existence, into chasms full of danger, the way an elephant falls into a pit.

भाव और कल्पना की आंधी में बहकर, संसार के डरावने मैदानों में, खतरों से भरी खाइयों में मत गिरो, जैसे कोई हाथी गड्ढे में गिर जाता है।

5.17.31

द्वैतं न संभवति चित्तमयं महात्मन्नात्मन्यथैक्यमपि न द्वितयोदितात्माद्वैतमैक्यरहितं सततोदितं सत्सर्वं न किंचिदपि चाहुरतः स्वरूपम्॥ ३१॥

dvaitaṃ na saṃbhavati cittamayaṃ mahātmannātmanyathaikyamapi na dvitayoditātmaadvaitamaikyarahitaṃ satatoditaṃ satsarvaṃ na kiṃcidapi cāhurataḥ svarūpam || 31 ||

Duality, great one, is only a thing of the mind — it does not truly exist. Oneness, too, does not truly hold for the self, since the self never arose as two. What is truly one is beyond even the idea of oneness. It is being that always is; it is everything, and yet it is nothing at all — that is what they call its true nature.

हे महान आत्मा, दो होने का भाव तो केवल मन की उपज है — यह सचमुच है ही नहीं। एक होने का खयाल भी आत्मा पर ठीक से लागू नहीं होता, क्योंकि आत्मा कभी दो के रूप में पैदा ही नहीं हुई। जो सचमुच एक है वह तो एक होने के खयाल से भी परे है। यह ऐसा सत्य है जो हमेशा से है; यह सब कुछ है, और फिर भी यह कुछ भी नहीं है — इसी को इसका असली स्वरूप कहा जाता है।

5.17.32

नैवाहमस्ति नच नाम जगन्ति सन्ति सर्वं च विद्यते इदं ननु निर्विकारम्विज्ञानमात्रमवभासत एव शान्तं नासन्न सज्जगदिदं च सदेति विद्धि॥ ३२॥

naivāhamasti naca nāma jaganti santi sarvaṃ ca vidyata idaṃ nanu nirvikāramvijñānamātramavabhāsata eva śāntaṃ nāsanna sajjagadidaṃ ca sadeti viddhi || 32 ||

I do not truly exist, and these worlds do not truly exist either — yet all this is here all the same. Only pure, changeless awareness is shining, at peace, neither unreal nor real. Know that this world, too, is real in that same way.

मैं खुद सचमुच नहीं हूं, और ये सारे लोक भी सचमुच नहीं हैं — फिर भी यह सब कुछ मौजूद है। बस शुद्ध, न बदलने वाली चेतना ही चमक रही है, शांत, न झूठी न सच्ची। जान लो कि यह जगत भी उसी तरह सच्चा है।

5.17.33

परममृतमनाद्यं भासनं सर्वभासामजरमजमचिन्त्यं निष्कलं निर्विकारम्विगतकरणजालं जीवनं जीवशक्तेः सकलकलनहीनं कारणं कारणानाम्॥ ३३॥

paramamṛtamanādyaṃ bhāsanaṃ sarvabhāsāmajaramajamacintyaṃ niṣkalaṃ nirvikāramvigatakaraṇajālaṃ jīvanaṃ jīvaśakteḥ sakalakalanahīnaṃ kāraṇaṃ kāraṇānām || 33 ||

It is the supreme immortal, without a beginning, the light behind all lights, ageless, unborn, unthinkable, without parts, unchanging, free of the whole net of the senses. It is the life of life itself, beyond all reckoning, the cause of causes.

यह परम अमृत है, जिसका कोई आरंभ नहीं, यह सब रोशनियों के पीछे की रोशनी है, यह बिना बुढ़ापे के, बिना जन्म के, अकल्पनीय, बिना हिस्सों के, अपरिवर्तित है, और इंद्रियों के पूरे जाल से मुक्त है। यह जीवन का भी जीवन है, हर हिसाब-किताब से परे, और सब कारणों का कारण है।

5.17.34

सततमुदितमीशं व्यातते चित्प्रकाशे स्थितमनुभवबीजं स्वात्मभावोपदेश्यम्स्वदनमनुचितोऽन्तर्ब्रह्म सर्वं सदैव त्वमहमपि जगच्चेत्यस्तुते निश्चयोन्तः ॥ ३४ ॥

satatamuditamīśaṃ vyātate citprakāśe sthitamanubhavabījaṃ svātmabhāvopadeśyamsvadanamanucito'ntarbrahma sarvaṃ sadaiva tvamahamapi jagaccetyastute niścayontaḥ || 34 ||

The lord who always shines, resting in the spreading light of awareness, is the seed of all experience, to be shown as the very nature of your own self. This Brahman within cannot be tasted as something separate — it alone is always everything. Know that you, I, and this world too are that; let this be your conviction within.

जो प्रभु सदा चमकता रहता है, जो चेतना के फैले हुए प्रकाश में बसा है, वही हर अनुभव का बीज है, जिसे तुम्हारे अपने आत्मा के असली रूप के रूप में दिखाया जाना है। यह भीतर का ब्रह्म किसी अलग चीज़ की तरह चखा नहीं जा सकता — यही हमेशा सब कुछ है। जान लो कि तुम, मैं, और यह जगत भी वही है; यही तुम्हारा भीतरी निश्चय बने।

Chapter 18

5.18.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । युक्ताशयानां महतामहतानां कुदृष्टिभिः । स्वभावोऽयं महाबाहो लीलया चरतामिह ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yuktāśayānāṃ mahatāmahatānāṃ kudṛṣṭibhiḥ | svabhāvo'yaṃ mahābāho līlayā caratāmiha || 1 ||

Sri Vasishtha said: O mighty-armed one, this is the nature of great souls, their minds well composed, untouched by wrong views, as they move through this world at play.

श्री वसिष्ठ बोले, हे महाबाहु, जिनका मन शांत और स्थिर रहता है और जो गलत नज़रिए से कभी प्रभावित नहीं होते, ऐसे महापुरुषों का यही स्वभाव है कि वे इस संसार में खेल-खेल में विचरते हैं।

5.18.2

विहरन्नपि संसारे जीवन्मुक्तमना मुनिः । आदिमध्यान्तविरसा विहसेज्जागतीर्गतीः ॥ २ ॥

viharannapi saṃsāre jīvanmuktamanā muniḥ | ādimadhyāntavirasā vihasejjāgatīrgatīḥ || 2 ||

Even while living amid the world, the sage whose mind is free while still alive laughs at the ways of the world, which are without any real taste from beginning to middle to end.

संसार में रहते हुए भी, जीते-जी मुक्त मन वाला मुनि संसार की उन बातों पर हँसता है, जो शुरू से बीच तक और अंत तक बेस्वाद हैं।

5.18.3

सर्वप्रकृतकार्यस्थो मध्यस्थः सर्वदृष्टिषु । ध्येयं तं वासनात्यागमवलम्ब्य व्यवस्थितः ॥ ३ ॥

sarvaprakṛtakāryastho madhyasthaḥ sarvadṛṣṭiṣu | dhyeyaṃ taṃ vāsanātyāgamavalambya vyavasthitaḥ || 3 ||

Taking part in every ordinary activity, staying even-minded toward everything he sees, he remains firm, holding the giving up of desire as the one thing worth dwelling on in his mind.

वह हर सामान्य काम में लगा रहते हुए भी, जो कुछ देखे उस सबके प्रति एक-सा भाव रखता है, और वासनाओं को छोड़ना ही मन में रखने लायक मानकर दृढ़ बना रहता है।

5.18.4

सर्वत्र विगतोद्वेगः सर्वार्थपरिपोषकः । विवेकोद्द्योतदृष्टात्मा प्रबोधोपवनस्थितिः ॥ ४ ॥

sarvatra vigatodvegaḥ sarvārthaparipoṣakaḥ | vivekodyotadṛṣṭātmā prabodhopavanasthitiḥ || 4 ||

Free from agitation everywhere, he supports every true purpose; his self is seen in the light of clear discernment, and he lives as if resting in a garden of full awakening.

वह हर जगह बिना विचलित हुए, हर सच्चे प्रयोजन को सहारा देता है; विवेक के उजाले में उसकी आत्मा दिखती है, और वह मानो जागरण के बगीचे में बसा हुआ है।

5.18.5

सर्वातीतपदालम्बी पूर्णेन्दुशिशिराशयः । नोद्वेगी नच तुष्टात्मा संसारे नावसीदति ॥ ५ ॥

sarvātītapadālambī pūrṇenduśiśirāśayaḥ | nodvegī na ca tuṣṭātmā saṃsāre nāvasīdati || 5 ||

Resting on the state that is beyond everything, his mind cool like the full moon, neither anxious nor pleased with himself, he does not sink down in this world.

वह हर चीज़ से परे उस अवस्था का सहारा लेकर, पूर्णिमा के चाँद जैसे शीतल मन वाला होकर, न कभी घबराता है और न अपने पर इतराता है, इसलिए संसार में डूबता नहीं है।

5.18.6

सर्वशत्रुषु मध्यस्थो दयादाक्षिण्यसंयुतः । प्राप्तकर्मकरोऽग्र्याणां संसारे नावसीदति ॥ ६ ॥

sarvaśatruṣu madhyastho dayādākṣiṇyasaṃyutaḥ | prāptakarmakaro'gryāṇāṃ saṃsāre nāvasīdati || 6 ||

Staying fair even toward all his enemies, full of kindness and courtesy, he does whatever task comes to him the way the best of men do, so he does not sink down in this world.

वह अपने सभी शत्रुओं के साथ भी निष्पक्ष रहता है, दया और शिष्टाचार से भरा रहता है, और जो भी काम सामने आए उसे श्रेष्ठ पुरुषों की तरह निभाता है, इसलिए संसार में दुखी नहीं होता।

5.18.7

नाभिनन्दति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । मौनस्थः प्रकृतारम्भी संसारे नावसीदति ॥ ७ ॥

nābhinandati na dveṣṭi na śocati na kāṅkṣati | maunasthaḥ prakṛtārambhī saṃsāre nāvasīdati || 7 ||

He does not celebrate, does not hate, does not grieve, does not crave. Staying quiet, doing only the ordinary things that need doing, he does not sink down in this world.

वह न खुशी में उछलता है, न नफ़रत करता है, न शोक करता है, न कुछ चाहता है। चुप रहते हुए बस ज़रूरी सामान्य काम करते हुए, वह संसार में दुखी नहीं होता।

5.18.8

पृष्टः सन्प्रकृतं वक्ति न पृष्टः स्थाणुवत्स्थितः । ईहितानीहितैर्मुक्तः संसारे नावसीदति ॥ ८ ॥

pṛṣṭaḥ sanprakṛtaṃ vakti na pṛṣṭaḥ sthāṇuvatsthitaḥ | īhitānīhitairmuktaḥ saṃsāre nāvasīdati || 8 ||

Asked, he says what fits the moment; not asked, he stays still like a post. Free from both what is wanted and what is not wanted, he does not sink down in this world.

पूछे जाने पर वह उचित बात कहता है; न पूछे जाने पर खंभे की तरह चुपचाप खड़ा रहता है। चाही और अनचाही दोनों बातों से मुक्त होकर वह संसार में दुखी नहीं होता।

5.18.9

सर्वस्याभिमतं वक्ता चोदितः पेशलोक्तिमान् । आशयज्ञश्च भूतानां संसारे नावसीदति ॥ ९ ॥

sarvasyābhimataṃ vaktā coditaḥ peśaloktimān | āśayajñaśca bhūtānāṃ saṃsāre nāvasīdati || 9 ||

When urged to speak, he says what pleases everyone, in gentle words, and because he knows what is in the hearts of all beings, he does not sink down in this world.

बुलाए जाने पर वह सबको भाने वाली बात मीठे शब्दों में कहता है, और सब प्राणियों के मन की बात जानता है, इसलिए संसार में दुखी नहीं होता।

5.18.10

युक्तायुक्तदृशा ग्रस्तमाशोपहतचेष्टितम् । जानाति लोकदृष्टान्तं करकोटरबिल्ववत् ॥ १० ॥

yuktāyuktadṛśā grastamāśopahataceṣṭitam | jānāti lokadṛṣṭāntaṃ karakoṭarabilvavat || 10 ||

With an eye that tells right from wrong, he sees that the world is caught in craving and its actions are ruined, just as clearly as a fruit resting in the hollow of the hand is seen.

सही-गलत को पहचानने वाली नज़र से वह देखता है कि संसार लालच में जकड़ा हुआ है और उसके काम बरबाद हो चुके हैं, ठीक वैसे ही साफ़-साफ़ जैसे हथेली में रखा बेल का फल दिखता है।

5.18.11

परं पदमुपारूढो भङ्गुरां जागतीं स्थितिम्। अन्तःशीतलया बुद्ध्या हसन्निव निरीक्षते ॥ ११ ॥

param padamupārūḍho bhaṅgurāṃ jāgatīṃ sthitim | antaḥśītalyā buddhyā hasanniva nirīkṣate || 11 ||

Having risen to the highest state, he looks at this crumbling worldly life with a mind cool and calm within, almost smiling.

परम पद पर पहुँचकर, वह इस टूटते-बिखरते सांसारिक जीवन को भीतर से शांत मन से देखता है, मानो मुस्करा रहा हो।

5.18.12

जितचित्ता महात्मानो ये हि दृष्टपरावराः। स्वभाव ईदृशस्तेषां कथितस्तव राघव ॥ १२ ॥

jitacittā mahātmāno ye hi dṛṣṭaparāvarāḥ | svabhāva īdṛśastēṣāṃ kathitastava rāghava || 12 ||

Great souls who have conquered their minds, who have seen both the higher and the lower truths, such, Raghava, is their nature, as I have told you.

जिन महात्माओं ने अपने मन को जीत लिया है, जिन्होंने ऊँची और नीची दोनों सच्चाइयाँ देख ली हैं, हे राघव, यही उनका स्वभाव है, जो मैंने तुम्हें बताया।

5.18.13

वयं तु वक्तुं मूर्खाणामजितात्मीयचेतसाम्। भोगकर्दममग्नानां न विद्मोऽभिमतं मतम् ॥ १३ ॥

vayaṃ tu vaktuṃ mūrkhāṇāmajitātmīyacetasām | bhogakardamamagnānāṃ na vidmo'bhimataṃ matam || 13 ||

But as for us, we do not know how to describe the thinking that fools prefer, fools whose own minds are unconquered and who are sunk in the mud of pleasure.

परन्तु हम उन मूर्खों की मनचाही सोच को बताना नहीं जानते, जिनका अपना मन ही वश में नहीं है और जो भोग-विलास के कीचड़ में डूबे हुए हैं।

5.18.14

तेषामभिमता नार्यो भावाभावविभूषिताः। ज्वालानरकवह्नीनां यास्ताः कनकरोचिषः ॥ १४ ॥

teṣāmabhimatā nāryo bhāvābhāvavibhūṣitāḥ | jvālānarakavahnīnāṃ yāstāḥ kanakarociṣaḥ || 14 ||

The women they desire, decked out in charms both real and false, are nothing but the golden flames of hell-fire.

वे जिन स्त्रियों को चाहते हैं, जो सच्चे-झूठे शृंगार से सजी हैं, वे असल में नरक की आग की सुनहरी लपटें हैं।

5.18.15

अनर्थगहनाश्चार्था व्यर्थानर्थकदर्थनाः। दिशन्तो दुःखसंरम्भमभितः प्रहितापदः ॥ १५ ॥

anarthagahanāścārthā vyarthānarthakadarthanāḥ | diśanto duḥkhasaṃrambhamabhitaḥ prahitāpadaḥ || 15 ||

Their goals are thick with disaster, useless, harmful, and full of torment, pointing the way to a rush of suffering and sending misfortune on every side.

उनके लक्ष्य विपत्ति से भरे होते हैं, बेकार, नुकसानदेह और कष्टदायक, जो दुख की बाढ़ की ओर ले जाते हैं और चारों तरफ़ मुसीबत भेजते हैं।

5.18.16

फलसंधीनि कर्माणि नानाचारमयानि च। सुखदुःखावपूर्णानि तानि वक्तुं न शक्नुमः ॥ १६ ॥

phalasaṃdhīni karmāṇi nānācāramayāni ca | sukhaduḥkhāvapūrṇāni tāni vaktuṃ na śaknumaḥ || 16 ||

We are not able to describe their actions, which are tied to results, made up of every kind of conduct, and filled with pleasure and pain.

जो काम फल की चाह से बँधे हैं, तरह-तरह के आचरण से बने हैं और सुख-दुख से भरे हैं, उन्हें हम बता नहीं सकते।

5.18.17

पूर्णां दृष्टिमवष्टभ्य ध्येयत्यागविलासिनीम्। जीवन्मुक्ततया स्वस्थो लोके विहर राघव ॥ १७ ॥

pūrṇāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya dhyeyatyāgavilāsinīm | jīvanmuktatayā svastho loke vihara rāghava || 17 ||

Hold firmly to that full vision, the one that delights in giving up any single thing to fix the mind on, and, being free while still alive, live at ease in the world, Raghava.

उस परिपूर्ण दृष्टि को दृढ़ता से थामे रहो, जो किसी एक ध्यान के विषय को छोड़ने में ही आनंद पाती है, और जीते-जी मुक्त होकर, चैन से इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.18

अन्तः संत्यक्तसर्वाशो वीतरागो विवासनः। बहिः सर्वसमाचारो लोके विहर राघव ॥ १८ ॥

antaḥ saṃtyaktasarvāśo vītarāgo vivāsanaḥ | bahiḥ sarvasamācāro loke vihara rāghava || 18 ||

Give up every desire within, be free of passion and free of every trace of old habit, while outwardly following all ordinary conduct, and so live in the world, Raghava.

भीतर से सब इच्छाएँ छोड़ दो, राग-रहित हो जाओ और पुराने संस्कारों से भी मुक्त हो जाओ, और बाहर से सब सामान्य व्यवहार करते हुए इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.19

उदारः पेशलाचारः सर्वाचारानुवृत्तिमान्। अन्तः सर्वपरित्यागी लोके विहर राघव ॥ १९ ॥

udāraḥ peśalācāraḥ sarvācārānuvṛttimān | antaḥ sarvaparityāgī loke vihara rāghava || 19 ||

Be generous and gentle in your conduct, following every custom, while giving up everything within, and live in the world, Raghava.

उदार और सौम्य आचरण वाले बनो, हर सामान्य व्यवहार का पालन करते हुए, पर भीतर से सब कुछ त्यागकर इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.20

प्रविचार्य दशाः सर्वा यदतुच्छं परं पदम्। तदेव भावेनालम्ब्य लोके विहर राघव ॥ २० ॥

pravicārya daśāḥ sarvā yadatucchaṃ paraṃ padam | tadeva bhāvenālambya loke vihara rāghava || 20 ||

Look closely at every condition of life, and then, holding with your whole heart to that supreme state which is no small thing, live in the world, Raghava.

जीवन की सभी अवस्थाओं को अच्छी तरह परखो, और फिर उस परम पद को, जो कोई छोटी बात नहीं है, पूरे मन से थामे हुए इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.21

अन्तर्नैराश्यमादाय बहिराशोन्मुखेहितः। बहिस्तप्तोऽन्तराशीतो लोके विहर राघव ॥ २१ ॥

antarnairāśyamādāya bahirāśonmukhehitaḥ | bahistapto'ntarāśīto loke vihara rāghava || 21 ||

Hold no craving within, while outwardly acting as if drawn toward desire; stay heated on the outside but cool within, and live in the world, Raghava.

भीतर से कोई इच्छा मत रखो, पर बाहर से इच्छा की ओर बढ़ते हुए-से दिखो; बाहर से तपते रहो और भीतर से शीतल रहो, और इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.22

बहिः कृत्रिमसंरम्भो हृदि संरम्भवर्जितः । कर्ता बहिरकर्तान्तर्लोके विहर राघव ॥ २२ ॥

bahiḥ kṛtrimasaṃrambho hṛdi saṃrambhavarjitaḥ | kartā bahirakartāntarloke vihara rāghava || 22 ||

Show a put-on eagerness on the outside, while your heart stays free of any real excitement; be a doer on the outside and no doer within, and live in the world, Raghava.

बाहर से बनावटी उत्साह दिखाओ, पर हृदय में किसी उत्तेजना से मुक्त रहो; बाहर से कर्ता बनो, भीतर से अकर्ता रहो, और इस संसार में विचरो, हे राघव।

5.18.23

ज्ञातवानसि सर्वेषां भावानां सम्यगन्तरम् । यथेच्छसि तथा दृष्ट्या लोके विहर राघव ॥ २३ ॥

jñātavānasi sarveṣāṃ bhāvānāṃ samyagantaram | yathecchasi tathā dṛṣṭyā loke vihara rāghava || 23 ||

You have understood clearly the difference between all things. See them however you wish, and live in the world that way, Raghava.

तुमने सभी चीज़ों के बीच का असली फ़र्क़ अच्छी तरह जान लिया है। अब जैसा चाहो वैसा देखो, और उसी तरह इस दुनिया में रहो, राघव।

5.18.24

कृत्रिमोल्लासहर्षस्थः कृत्रिमोद्वेगगर्हणः । कृत्रिमारम्भसंरम्भो लोके विहर राघव ॥ २४ ॥

kṛtrimollāsaharṣasthaḥ kṛtrimodvegagarhaṇaḥ | kṛtrimārambhasaṃrambho loke vihara rāghava || 24 ||

Live in the world, Raghava, with delight and joy that are only put on, with distress and blame that are only put on, and with effort and eagerness that are only put on.

राघव, दुनिया में ऐसे रहो कि तुम्हारी ख़ुशी और उमंग सिर्फ़ दिखावटी हो, तुम्हारा दुख और नाराज़गी भी सिर्फ़ दिखावटी हो, और तुम्हारी मेहनत और जोश भी सिर्फ़ दिखावटी हो।

5.18.25

त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमतिराकाशशोभनः । अगृहीतकलङ्काङ्को लोके विहर राघव ॥ २५ ॥

tyaktāhaṃkṛtirāśvastamatirākāśaśobhanaḥ | agṛhītakalaṅkāṅko loke vihara rāghava || 25 ||

Give up the feeling that you are the one doing everything, let your mind rest at ease, shine like the clear sky, take on no mark of stain, and live in the world this way, Raghava.

'मैं कुछ कर रहा हूँ' यह भाव छोड़ दो, मन को शांत और निश्चिंत रखो, आकाश जैसे साफ़ और सुंदर बनो, कोई दाग़ अपने ऊपर मत लगने दो, और इसी तरह दुनिया में रहो, राघव।

5.18.26

आशापाशशतोन्मुक्तः समः सर्वासु वृत्तिषु । बहिः प्रकृतिकार्यस्थो लोके विहर राघव ॥ २६ ॥

āśāpāśaśatonmuktaḥ samaḥ sarvāsu vṛttiṣu| bahiḥ prakṛtikāryastho loke vihara rāghava || 26 ||

Free yourself from the hundreds of ropes of desire, stay even minded in every state, keep doing the ordinary work of the world on the outside, and live in the world this way, Raghava.

इच्छाओं की सैकड़ों रस्सियों से आज़ाद हो जाओ, हर हाल में मन को एक-सा रखो, बाहर से दुनिया के सामान्य काम करते रहो, और इसी तरह दुनिया में रहो, राघव।

5.18.27

न बन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति देहिनः परमार्थतः। मिथ्येयमिन्द्रजालश्रीः संसारपरिवर्तिनी ॥ २७ ॥

na bandho'sti na mokṣo'sti dehinah paramārthathḥ| mithyeyamindrajālaśrīḥ saṃsāraparivartinī || 27 ||

In ultimate truth there is no bondage and no release for anyone who has a body. This turning wheel of the world, with all its splendor, is nothing but a false magic show.

जिस किसी को भी शरीर मिला है, उसके लिए सच में न कोई बंधन है, न कोई मुक्ति। यह घूमता हुआ संसार, अपनी सारी चमक-दमक के साथ, बस एक झूठा जादू का खेल है।

5.18.28

भ्रान्तिमात्रमिदं मोहाज्जगद्राघव दृश्यते। जनितप्रत्ययं स्फारं जलं तीव्रातपे यथा ॥ २८ ॥

bhrāntimātramidaṃ mohājjagadrāghava dṛśyate| janitapratyayaṃ sphāraṃ jalaṃ tīvrātape yathā || 28 ||

This world you see, Raghava, is nothing but delusion born of confusion, like the wide stretch of water that fierce sunlight makes you believe is there.

राघव, यह जो दुनिया दिखती है, वह बस भ्रम है जो मोह से पैदा हुआ है, जैसे तेज़ धूप में दूर तक फैला हुआ पानी दिखने लगता है।

5.18.29

अबद्धस्यैकरूपस्य सर्वगस्यात्मनः कथम्। बन्धः स्यात्तदभावे तु मोक्षः कस्य विधीयते ॥ २९ ॥

abaddhasyaikarūpasya sarvagasyātmanaḥ katham| bandhaḥ syāttadabhāve tu mokṣaḥ kasya vidhīyate || 29 ||

The self is never bound, it is one and the same everywhere, it reaches everywhere, so how could it ever be in bondage? And if there is no bondage, then for whom is liberation to be given?

आत्मा कभी बंधी नहीं होती, वह एक-सी है और हर जगह मौजूद है, तो उसे बंधन कैसे हो सकता है? और जब बंधन है ही नहीं, तो मुक्ति किसे दी जाए?

5.18.30

अतत्त्वज्ञानजातेयं संसारभ्रान्तिराततता। तत्त्वज्ञानात्क्षयं याति रज्ज्वामिव भुजङ्गधीः ॥ ३० ॥

atattvajñānajāteyaṃ saṃsārabhrāntirātatā| tattvajñānātkṣayaṃ yāti rajjvāmiva bhujaṅgadhīḥ || 30 ||

This vast delusion of the world is born only from not knowing the truth. Knowledge of the truth ends it, the way the thought of a snake ends when you see it is only a rope.

यह फैला हुआ संसार का भ्रम सच्चाई को न जानने से ही पैदा होता है। जैसे रस्सी को देखकर मन से साँप का ख़याल मिट जाता है, वैसे ही सच्चाई जान लेने से यह भ्रम मिट जाता है।

5.18.31

ज्ञातवानसि तत्त्वं स्वमेकया सूक्ष्मया धिया। जातोऽसि निरहंकारो व्योमवत्तिष्ठ निर्मलः ॥ ३१ ॥

jñātavānasi tattvaṃ svamekayā sūkṣmayā dhiyā | jāto'si nirahaṃkāro vyomavattitṣṭha nirmalaḥ || 31 ||

With one subtle act of understanding, you have come to know your own true nature. You have become free of the sense of I. Now stay pure, like the open sky.

एक सूक्ष्म समझ से तुमने अपने सच्चे स्वरूप को जान लिया है। तुम अहंकार से मुक्त हो चुके हो। अब आकाश की तरह निर्मल बने रहो।

5.18.32

ज्ञोऽसि त्वित्थं तदखिलाः सुहृद्बान्धववासनाः । संत्यजासत्स्वभावस्य का नाम किल भावना ॥ ३२ ॥

jño'si tvitthaṃ tadakhilāḥ suhṛdbāndhavavāsanāḥ | saṃtyajāsatsvabhāvasya kā nāma kila bhāvanā || 32 ||

You are indeed one who knows. So give up completely all your attachment to friends and family. Their true nature is unreal, so what, then, is the meaning of holding a feeling for them?

तुम सच में एक ज्ञानी हो। इसलिए दोस्तों और रिश्तेदारों का सारा मोह पूरी तरह छोड़ दो। उनका असली रूप ही झूठा है, फिर उनके लिए मन में कोई भाव रखने का क्या मतलब?

5.18.33

अपि चेत्थं तदन्यस्त्वं सत्त्ववाननुमीयसे । इदं प्रथमतः प्राप्तं परमादपि कारणात् ॥ ३३ ॥

api cetthaṃ tadanyastvaṃ sattvavānanumīyase | idaṃ prathamataḥ prāptaṃ paramādapi kāraṇāt || 33 ||

And even if, by this reasoning, you are taken to be someone else, a real, solid being, know that this too was first produced, and produced from a cause higher than itself.

और अगर इस तर्क से तुम्हें कोई और, एक ठोस-सा जीव मान भी लिया जाए, तो यह भी याद रखो कि यह भी सबसे पहले किसी ऊँचे कारण से ही पैदा हुआ था।

5.18.34

भोगबन्धुजगद्भावैः कर्मभिश्च शुभाशुभैः । आत्मनो नास्ति संबन्धः किमेताननुशोचसि ॥ ३४ ॥

bhogabandhujagadbhāvaiḥ karmabhiśca śubhāśubhaiḥ | ātmano nāsti saṃbandhaḥ kimetānanuśocasi || 34 ||

The self has no connection at all with pleasures, with kin, with the things of this world, or with good and bad deeds. Why then do you grieve over them?

आत्मा का सुख-भोगों से, रिश्तेदारों से, दुनिया की चीज़ों से, और अच्छे-बुरे कर्मों से कोई नाता नहीं है। फिर तुम इनके लिए दुखी क्यों होते हो?

5.18.35

आत्मतत्त्वेकसारोऽहमिति जातधियो भयैः । न ते रामास्ति संबन्धः किं बिभेषि जगद्भ्रमात् ॥ ३५ ॥

ātmatattvekasāro'hamiti jātadhiyo bhayaiḥ | na te rāmāsti saṃbandhaḥ kiṃ bibheṣi jagadbhramāt || 35 ||

For someone who has come to know that he is nothing but the one true self, fear has no hold at all, Rama. Why, then, are you afraid of this world, which is only a delusion?

जिसे यह समझ आ गई हो कि मैं बस एक ही सच्ची आत्मा हूँ, उसके लिए डर का कोई नाता नहीं रह जाता, राम। फिर तुम इस भ्रम भरी दुनिया से क्यों डरते हो?

5.18.36

अजातस्य सतो बन्धोर्बन्धुदुःखसुखभ्रमैः । कस्ते राघव संबन्धो यदेताननुशोचसि ॥ ३६ ॥

ajātasya satobandhorbandhuduḥkhasukhabhramaiḥ | kaste rāghava saṃbandho yadetānanuśocasi || 36 ||

You are unborn, and you truly exist as you are. What connection, then, can you have, Raghava, with these illusions of grief and joy over kinsfolk, that you should mourn for them?

तुम अजन्मे हो और अपने सच्चे रूप में हमेशा बने रहते हो। फिर रिश्तेदारों को लेकर उठने वाले दुख-सुख के इन भ्रमों से तुम्हारा क्या नाता, राघव, कि तुम इनके लिए शोक करते हो?

5.18.37

त्वं चेद्बभूविथ पुरा तथेदानीं भविष्यसि । अद्य चेह स्थितोऽसीति ज्ञातवानसि निश्चयम् ॥ ३७ ॥

tvaṃ cedbabhūvitha purā tathedānīṃ bhaviṣyasi | adya ceha sthito'sīti jñātavānasi niścayam || 37 ||

You existed before in exactly this way, you will exist now in the same way, and you know for certain that today, too, you stand here just as you are.

तुम पहले भी ऐसे ही थे, अभी भी वैसे ही हो, और यह भी पक्का जानते हो कि आज भी तुम यहाँ वैसे ही खड़े हो।

5.18.38

तदानन्तरगानन्यान्प्राणादीन्निकटस्थितान् । बन्धूनतीतान्सुबहून्कस्मात्त्वं नानुशोचसि ॥ ३८ ॥

tadānantaragānanyānprāṇādīnnikaṭasthitān | bandhūnatītānsubahūnkasmāttvaṃ nānuśocasi || 38 ||

Then why do you not grieve, too, for all those other kinsmen close to you, beginning with your own breath, who, in between, have passed away in such great numbers?

तो फिर तुम अपने बहुत-से और क़रीबी साथियों के लिए शोक क्यों नहीं करते, अपनी साँस से शुरू करके, जो बीच में इतनी बड़ी तादाद में गुज़र चुके हैं?

5.18.39

पूर्वमन्यस्तथेदानीं बभूविथ भविष्यसि । यदि राम तथापि त्वं सद्रूपं किं विमुह्यसि ॥ ३९ ॥

pūrvamanyastathedānīṃ babhūvitha bhaviṣyasi | yadi rāma tathāpi tvaṃ sadrūpaṃ kiṃ vimuhyasi || 39 ||

Even if, Rama, you were someone different before, are someone different now, and will become someone different again, through it all you are still real being itself. Why be confused?

राम, भले ही तुम पहले कोई और थे, अभी कोई और हो, और आगे भी कोई और बनोगे, फिर भी हर हाल में तुम्हारा असली रूप वही सत्य बना रहता है। फिर तुम भ्रमित क्यों होते हो?

5.18.40

पुरा भूत्वाद्य भूत्वा च भूयश्चेन्न भविष्यसि । तथापि क्षीणसंसारः किमर्थमनुशोचसि ॥ ४० ॥

purā bhūtvādya bhūtvā ca bhūyaścennabhaviṣyasi | tathāpi kṣīṇasaṃsāraḥ kimarthamanuśocasi || 40 ||

Having existed before, and existing today, even if you will not exist again after this, even then all that will have happened is that your round of rebirth has come to an end. Why grieve over that?

पहले भी थे, आज भी हो, और अगर आगे न भी रहो, तो भी बस इतना ही होगा कि तुम्हारा जन्म-मरण का चक्र ख़त्म हो गया। फिर इसके लिए दुख क्यों करना?

5.18.41

तस्मान्न दुःखिता युक्ता प्राकृते जागते क्रमे । तथैव मुदिता युक्ता युक्तं कार्यानुवर्तनम् ॥ ४१ ॥

tasmānna duḥkhitā yuktā prākṛte jāgate krame| tathaiva muditā yuktā yuktaṃ kāryānuvartanam || 41 ||

So it is not right to be sorrowful over the natural course of this world, and it is just as wrong to be overjoyed by it. What is right is only to carry on doing what needs to be done.

इसलिए दुनिया के इस स्वाभाविक क्रम पर दुखी होना ठीक नहीं, और वैसे ही बहुत ज़्यादा खुश होना भी ठीक नहीं। ठीक बस यही है कि अपना ज़रूरी काम करते रहो।

5.18.42

मा गच्छ दुःखितां राम सुखितामपि मा व्रज । समतामेहि सर्वत्र परमात्मा हि सर्वगः ॥ ४२ ॥

mā gaccha duḥkhitāṃ rāma sukhitāmapi mā vraja| samatāmehi sarvatra paramātmā hi sarvagaḥ || 42 ||

Rama, do not go toward sorrow, and do not go toward joy either. Come to a state of evenness in everything, for the highest self is present everywhere.

राम, न दुख की ओर जाओ, न सुख की ओर। हर जगह एक जैसे भाव में रहो, क्योंकि परम आत्मा हर जगह मौजूद है।

5.18.43

अनन्तः सत्स्वरूपस्त्वं खमिवाततितान्तरम् । प्रकाशो नित्यशुद्धस्त्वं ज्वालानामिव कोटरम् ॥ ४३ ॥

anantaḥ satsvarūpastvaṃ khamivātitatāntaram| prakāśo nityaśuddhastvaṃ jvālānāmiva koṭaram || 43 ||

You are without end, real by nature, your depths stretched out wide like the sky. You are light itself, forever pure, like a hollow tree trunk glowing with the flame inside it.

तुम अनंत हो, सत्य-स्वरूप हो, तुम्हारा भीतरी विस्तार आकाश जैसा फैला हुआ है। तुम प्रकाश हो, सदा निर्मल, जैसे किसी पेड़ की खोखल में जलती हुई लपटें।

5.18.44

जागतानां पदार्थानामदृष्टात्मतनुस्तनुः । हृत्स्थोऽसि हारमुक्तानामेकस्तन्तुरिवाततः ॥ ४४ ॥

jāgatānāṃ padārthānāmadṛṣṭātmatanustanuḥ| hṛtstho'si hāramuktānāmekastanturivātataḥ || 44 ||

You are the hidden, subtle self inside every thing in this world. You sit in the heart, running through them all like one thread strung through a string of pearls.

इस जगत की हर चीज़ के भीतर छिपी हुई सूक्ष्म आत्मा तुम्हीं हो। तुम हृदय में बसे रहते हो, और मोतियों की माला में पिरोए धागे की तरह सबके भीतर से गुज़रते हो।

5.18.45

संसारस्थितिरेवेयं यद्भूत्वा भूयते पुनः । अज्ञेनैव न तज्ज्ञेन ज्ञोऽसि राम सुखी भव ॥ ४५ ॥

saṃsārasthitireveyaṃ yadbhūtvā bhūyate punaḥ| ajñenaiva na tajjñena jño'si rāma sukhī bhava || 45 ||

This is simply the way this cycle of birth and death works: what has once become a thing becomes it again. Only the ignorant man is caught in this, not the one who knows. You are one who knows, Rama, so be happy.

जन्म मरण के इस चक्र की यही रीत है कि जो एक बार बन चुका, वह फिर से बनता है। यह उलझन सिर्फ अनजान आदमी के लिए है, जानने वाले के लिए नहीं। तुम जानने वाले हो, राम, इसलिए सुखी रहो।

5.18.46

स्वरूपमिदमस्यास्तु संसृतेः सततादिमत् । अज्ञानात्स्फारतामेति ज्ञातवानसि सन्मते ॥ ४६ ॥

svarūpamidamasyaastu saṃsṛteḥ satatādhimat | ajñānātsphāratāmeti jñātavānasi sanmate || 46 ||

This is the true nature of that cycle: it is always full of distress. It grows and spreads only through ignorance. You, wise one, have understood this.

इस चक्र का यही असली स्वरूप है, इसमें हमेशा दुख भरा रहता है। यह सिर्फ अज्ञान से बढ़ता और फैलता है। तुमने, हे बुद्धिमान, यह समझ लिया है।

5.18.47

रूपं किमन्यद्भवतु भ्रममात्रादृते भ्रमे । स्वप्नमात्रादृते स्वप्ने भवत्यन्यो हि कः क्रमः ॥ ४७ ॥

rūpaṃ kimanyadbhavatu bhramamātrādṛte bhrame | svapnamātrādṛte svapne bhavatyanyo hi kaḥ kramaḥ || 47 ||

In an illusion, what could its form be, other than the illusion itself? In a dream, what happens there, other than the dream itself?

भ्रम में भ्रम के सिवा और कोई रूप कहाँ होता है? सपने में सपने के सिवा और क्या घटित होता है?

5.18.48

सर्वशक्तेरियं शक्तिर्भ्रममात्रमयं तथा । राम दृश्यत एवेदमाभानमतिभास्वरम् ॥ ४८ ॥

sarvaśakteriyaṃ śaktirbhramamātramayaṃ tathā | rāma dṛśyata evedamābhānamatibhāsvaraṃ || 48 ||

This power of the all-powerful self is, in the same way, made only of illusion. Rama, this is only seen as a very bright appearance.

सर्वशक्तिमान की यह शक्ति भी वैसे ही केवल भ्रम से बनी है। राम, यह तो बस एक बहुत चमकीला दिखावा है, जो दिखता भर है।

5.18.49

सुबन्धुः कस्यचित्कः स्यादिह नो कश्चिदप्यरिः । सदा सर्वे च सर्वस्य सर्वं सर्वेश्वरेच्छया ॥ ४९ ॥

subandhuḥ kasyacitkaḥ syādih na kaścidapyariḥ | sadā sarve ca sarvasya sarvaṃ sarveśvarecchayā || 49 ||

Here, who is truly anyone's friend? And no one, either, is truly anyone's enemy. By the will of the Lord of all, everyone is everything to everyone, at all times.

यहाँ सच में किसी का कोई सच्चा मित्र नहीं, और कोई सच्चा शत्रु भी नहीं। सबके ईश्वर की इच्छा से, हर कोई हमेशा सबके लिए सब कुछ बन जाता है।

5.18.50

आलूनशीर्णमखिलमिदमन्योन्यसंश्रितम् । अनारतं याति जगत्तरङ्गौघ इवाम्भसः ॥ ५० ॥

ālūnaśīrṇamakhilamidamanyonyasaṃśritam | anārataṃ yāti jagattaraṅgaugha ivāmbhasaḥ || 50 ||

This whole world, each part leaning on the other, is endlessly cut down and worn away. It moves on and on, like a flood of waves in water.

यह पूरा जगत, जिसमें हर चीज़ दूसरी पर टिकी है, लगातार कटता और घिसता रहता है। यह वैसे ही बहता चला जाता है जैसे पानी में लहरों का रेला।

5.18.51

अध ऊर्ध्वत्वमायाति यात्यूर्ध्वत्वमधस्तथा । संसारस्य चलस्यास्य चक्रनेमिरिवाभितः ॥ ५१ ॥

adha ūrdhvatvamāyāti yātyūrdhvatvamadhastathā | saṃsārasya calasyāsya cakranemirivābhitaḥ || 51 ||

In this ever-turning world, what is low rises high, and what is high sinks low, all around, like the rim of a turning wheel.

इस सदा घूमते संसार में जो नीचे है वह ऊपर आ जाता है, और जो ऊपर है वह नीचे चला जाता है, चारों ओर वैसे ही जैसे घूमते पहिये की धार।

5.18.52

स्वर्गस्था नरकं यान्ति नारकाश्च त्रिविष्टपम्। योनेर्योन्यन्तरं यान्ति द्वीपाद्द्वीपान्तरं जनाः ॥ ५२ ॥

svargasthā narakaṃ yānti nārakāśca triviṣṭapam | yoneryonyantaraṃ yānti dvīpāddvīpāntaraṃ janāḥ || 52 ||

Those in heaven go to hell, and those in hell go to heaven. People pass from one womb to another, from one land to another.

स्वर्ग में रहने वाले नरक चले जाते हैं, और नरक में रहने वाले स्वर्ग चले जाते हैं। लोग एक योनि से दूसरी योनि में जाते हैं, और एक धरती से दूसरी धरती में।

5.18.53

धीराः कार्पण्यमायान्ति कृपणा यान्ति धीरताम्। परिस्फुरन्ति भूतानि पातोत्पातशतभ्रमैः ॥ ५३ ॥

dhīrāḥ kārpaṇyamāyānti kṛpaṇā yānti dhīratām | parisfuranti bhūtāni pātotpātaśatabhramaiḥ || 53 ||

The steady and brave become weak and wretched, and the weak and wretched become steady and brave. Beings are tossed about through hundreds of falls, upheavals, and wanderings.

जो दृढ़ और साहसी हैं वे कमज़ोर और दीन बन जाते हैं, और जो दीन हैं वे दृढ़ और साहसी बन जाते हैं। जीव सैकड़ों गिरावटों, उथल पुथल और भटकावों में इधर उधर हिचकोले खाते रहते हैं।

5.18.54

एकरूपस्थिरं चक्रं स्वच्छं संतापवर्जितम्। नेह संप्राप्यते किंचिदग्नौ हिमकणो यथा ॥ ५४ ॥

ekarūpasthiraṃ cakraṃ svacchaṃ saṃtāpavarjitam | neha saṃprāpyate kiṃcidagnau himakaṇo yathā || 54 ||

Nothing here keeps one same shape forever, calm and free of pain, not even the wheel of this world. It is as impossible as finding a snowflake sitting in fire.

यहाँ कुछ भी हमेशा एक जैसा, शांत और दुख से मुक्त नहीं रहता, यहाँ तक कि इस संसार का पहिया भी नहीं। यह वैसे ही असंभव है जैसे आग में बर्फ का एक कण मिल जाना।

5.18.55

ये ये नाम महाभागा बहवो बान्धवास्तथा। विनष्टा एव दृश्यन्ते ते ते कतिपयैर्दिनैः ॥ ५५ ॥

ye ye nāma mahābhāgā bahavo bāndhavāstathā | vinaṣṭā eva dṛśyante te te katipayairdinaiḥ || 55 ||

However great and fortunate people are, however many kinsmen and friends they have, all of them are seen to die within just a few days.

चाहे लोग कितने ही महान और भाग्यशाली क्यों न हों, चाहे उनके कितने ही सगे संबंधी हों, वे सब बस कुछ ही दिनों में मरते हुए दिख जाते हैं।

5.18.56

परतात्मीयतान्यत्वत्वत्वमत्त्वादिभावना। नेह सत्या महाबाहो द्विचन्द्रादिदृशो यथा ॥ ५६ ॥

paratātmīyatānyatvatvatvamattvādibhāvanā | neha satyā mahābāho dvicandrādidṛśo yathā || 56 ||

The ideas of other, mine, separate, you, and I are not real, strong-armed Rama. They are like seeing two moons instead of one.

यह पराया है, यह मेरा है, यह अलग है, तुम और मैं, ये सब विचार सच नहीं हैं, हे बलशाली राम। ये वैसे ही हैं जैसे एक चाँद को दो चाँद देख लेना।

5.18.57

अयं बन्धुः परश्चायमयं चाहमयं भवान् । इति मिथ्यादृशो राम विगलन्तु तवाधुना ॥ ५७ ॥

ayaṃ bandhuḥ paraścāyamayaṃ cāhamayaṃ bhavān | iti mithyādṛśo rāma vigalantu tavādhunā || 57 ||

This one is family, that one is a stranger, this is me, this is you. Rama, let these false ideas melt away from you now.

यह अपना है, वह पराया है, यह मैं हूँ, यह तुम हो। राम, तुम्हारे ये झूठे विचार अब पिघल जाएँ।

5.18.58

क्रीडार्थं व्यवहारस्थ एताभिर्हतदृष्टिभिः । आमूलमन्तश्छिन्नाभिर्बहिर्विहर हेलया ॥ ५८ ॥

krīḍārthaṃ vyavahārastha etābhirhatadṛṣṭibhiḥ | āmūlamantaśchinnābhirbahirvihara helayā || 58 ||

Stay in ordinary life only as if playing a game, now that these false ideas are destroyed and cut off at the root within you. Move through the outer world freely, with ease.

अब जब ये झूठे विचार जड़ से भीतर ही कट चुके हैं, तो सांसारिक जीवन में सिर्फ खेल की तरह बने रहो। बाहर की दुनिया में सहज और बेफिक्र होकर विचरण करो।

5.18.59

संसारसरणावस्यां तथा विहर सुव्रत । न यथैव श्रमश्रान्तो वासनाभारवानिव ॥ ५९ ॥

saṃsārasaraṇāvasyāṃ tathā vihara suvrata | na yathaiva śramśrānto vāsanābhāravāniva || 59 ||

So wander along this path of the world in that way, you who are true to your vows. Do not wander worn out with effort, as if weighed down by a load of desires.

इसलिए इस संसार के मार्ग पर उसी तरह विचरण करो, हे व्रतधारी। थके हारे होकर मत चलो, जैसे कोई वासनाओं का बोझ उठाए हो।

5.18.60

यथा यथैषा कार्याणि वासनाक्षयकारिणी । विचारणा तवोदेति संशाम्यन्ति तथा तथा ॥ ६० ॥

yathā yathaiṣā kāryāṇi vāsanākṣayakāriṇī | vicāraṇā tavodeti saṃśāmyanti tathā tathā || 60 ||

The more this inner inquiry grows in you, the kind that wears away desires, the more your outward tasks and cares settle down and grow quiet.

जितना जितना यह विचार मंथन, जो वासनाओं को मिटाने वाला है, तुम्हारे भीतर उठता जाएगा, उतना उतना तुम्हारे काम काज शांत होते जाएँगे।

5.18.61

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम् उदारचरितानां तु विगतावरणैव धीः ॥ ६१ ॥

ayaṃ bandhurayaṃ neti gaṇanā laghucetasām udāracaritānāṃ tu vigatāvaraṇaiva dhīḥ || 61 ||

This one is family, this one is not, only small-minded people count that way. But for people of noble, generous heart, the mind has thrown off its covering completely.

यह अपना है, यह पराया है, ऐसा हिसाब सिर्फ छोटी सोच वाले लोग रखते हैं। पर उदार और भले लोगों का मन हर तरह के परदे से पूरी तरह मुक्त होता है।

5.18.63

नास्तमेति न चोदेति यश्चिदाकाशवन्महान् सर्वं संपश्यति स्वस्थः स्वस्थो भूमितलं यथा ॥ ६३ ॥

nāstameti na codeti yaścidākāśavanmahān sarvaṃ saṃpaśyati svasthaḥ svastho bhūmitalaṃ yathā || 63 ||

The great awareness, as vast as open space, never rises and never sets. It sees everything while completely at ease, the way someone sitting calmly can see the ground right in front of them.

वह महान चेतना, आकाश जैसी विशाल, न उगती है न डूबती है। वह पूरी तरह सहज रहते हुए सब कुछ देख लेती है, जैसे कोई आराम से बैठा व्यक्ति अपने सामने की ज़मीन देख लेता है।

5.18.64

सर्वा एव हि ते भूतजातयो राम बन्धवः अत्यन्तासंयुता एतास्तव राम न काश्चन ॥ ६४ ॥

sarvā eva hi te bhūtajātayo rāma bandhavaḥ atyantāsaṃyutā etāstava rāma na kāścana || 64 ||

All these many kinds of beings, Rama, are truly your own kin, yet none of them, Rama, belongs to you at all; not one is truly tied to you.

राम, ये सभी तरह के जीव सचमुच तुम्हारे अपने हैं, फिर भी राम, इनमें से कोई भी सच में तुम्हारा नहीं है, कोई भी तुमसे बंधा हुआ नहीं है।

5.18.65

न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मम इति निर्णीय धीराणां विगतावरणैव धीः ॥ ६५ ॥

na tadasti na yatrāhaṃ na tadasti na yanmama iti nirṇīya dhīrāṇāṃ vigatāvaraṇaiva dhīḥ || 65 ||

There is no place where I am not, and there is nothing that is not mine. Once the wise understand this fully, their minds are completely free of any covering.

ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ मैं न होऊँ, और ऐसी कोई चीज़ नहीं जो मेरी न हो। यह पूरी तरह समझ लेने पर बुद्धिमानों का मन हर तरह के परदे से मुक्त हो जाता है।

5.18.66

विविधजन्मशताहितसंभ्रमे जगति बन्धुरबन्धुरितीक्षणम्भ्रमदशैव विवल्गति वस्तुतस्त्रिभुवनं चिरबन्धुरबन्ध्वपि ॥ ६६ ॥

vividhajanmaśatāhitasaṃbhrame jagati bandhurabandhuritīkṣaṇambhramadaśaiva vivalgati vastutastribhuvanaṃ cirabandhurabandhvapi || 66 ||

In this world, thrown into confusion by hundreds of different births, seeing someone as kin or not kin is just an unsteady flicker of delusion. In truth, throughout the three worlds, everyone is at once an old, long-standing friend and no relation at all.

सैकड़ों तरह के जन्मों से उलझे हुए इस संसार में, किसी को अपना और किसी को पराया समझना बस भ्रम की एक डगमगाती अवस्था है। सच तो यह है कि तीनों लोकों में हर कोई एक साथ पुराना अपना भी है और बिलकुल पराया भी।

Chapter 19

5.19.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । भ्रात्रोस्त्रिपथगातीरे संवादं मुनिपुत्रयोः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atraivodāharantīmamitihāsaṃ purātanam | bhrātrostripadhagātīre saṃvādaṃ muniputrayoḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: on this very point, people tell an old story, a conversation between two brothers, sons of a sage, on the bank of the river that flows by three paths.

श्री वशिष्ठ बोले, इसी बात पर लोग एक पुरानी कहानी सुनाते हैं, तीन रास्तों से बहने वाली नदी के किनारे एक ऋषि के दो बेटों और भाइयों के बीच हुई बातचीत की कहानी।

5.19.2

अयं बन्धुरयं नेति कथाप्रस्तावतः स्मृतम् । इतिहासमिमं पुण्यमाश्चर्यं श्रृणु राघव ॥ २ ॥

ayaṃ bandhurayaṃ neti kathāprastāvataḥ smṛtam | itihāsamimaṃ puṇyamāścaryaṃ śrṛṇu rāghava || 2 ||

Listen, Raghava, to this holy and wonderful old story, remembered from a conversation that began, this one is my kinsman, this one is not.

हे राघव, यह पवित्र और अद्भुत पुरानी कहानी सुनो, जो उस बातचीत से याद की जाती है जो इस बात से शुरू हुई थी कि यह मेरा अपना है, यह नहीं है।

5.19.3

अस्त्यस्य जम्बूद्वीपस्य कस्मिंश्चिद्गिरिकुञ्जके । वनव्यूहमहोत्तंसो महेन्द्रो नाम पर्वतः ॥ ३ ॥

astyasyajambūdvīpasya kasmiṃścidgirikuñjake | vanavyūhamahottṃso mahendro nāma parvataḥ || 3 ||

In this Jambudvipa, somewhere among wooded hills, there is a mountain named Mahendra, a great crown made of a whole array of forests.

इस जम्बूद्वीप में, कहीं जंगलों से भरी पहाड़ियों के बीच, महेंद्र नाम का एक पर्वत है, जो जंगलों की पूरी कतार से बना एक बड़ा मुकुट जैसा है।

5.19.4

कल्पद्रुमवनच्छायाविश्रान्तमुनिकिन्नरः । श्रृङ्गैराततमाकाशं जितवान्यः समुन्नतैः ॥ ४ ॥

kalpadrumavanacchāyāviśrāntamunikinnaraḥ | śṛṅgairātataṃmākāśaṃ jitavānyaḥ samunnataiḥ || 4 ||

Sages and kinnaras rest in the shade of its wish-granting-tree forests, and its tall peaks stretch up as if they had conquered the whole sky.

ऋषि और किन्नर उसके कल्पवृक्षों के जंगलों की छाया में आराम करते हैं, और उसकी ऊँची चोटियाँ इतनी फैली हुई हैं मानो उन्होंने पूरे आसमान को जीत लिया हो।

5.19.5

ब्रह्मलोकान्तरप्राप्तश्रृङ्गकन्दरचारिभिः । सामवेदप्रतिध्वानघुंघुमैर्गायतीव यः ॥ ५ ॥

brahmalokāntaraprāptaśṛṅgakandaracāribhiḥ | sāmavedapratidhvānaghughumairgāyatīva yaḥ || 5 ||

Its peaks and caves reach up into Brahma's world, and there the deep, humming echo of Sama-Veda chanting sounds, as if the mountain itself were singing.

उसकी चोटियाँ और गुफाएँ ब्रह्मा के लोक तक पहुँचती हैं, और वहाँ सामवेद के मंत्रों की गहरी, गूँजती हुई ध्वनि सुनाई देती है, जैसे पर्वत खुद गा रहा हो।

5.19.6

यः पयोमेदुरैर्मेघैर्लसितैः शृङ्गकोटिषुलताकुसुमसंप्रोतैः कुन्तलैरिव राजते ॥ ६ ॥

yaḥ payomedurairmeghairlasitaiḥ śṛṅgakoṭiṣulatākusumasaṃprotaiḥ kuntalairiva rājate || 6 ||

On the tips of its peaks, water-heavy clouds glisten, like hair braided with flowering vines.

उसकी चोटियों के सिरों पर पानी से भरे बादल चमकते हैं, जैसे फूलों वाली लताओं से गुँथे हुए बाल हों।

5.19.7

यस्तदोड्डयनोत्कानां शरभाणां विजृम्भितैःविस्फूर्जति गुहावक्रैः कल्पाभ्राणि हसन्निव ॥ ७ ॥

yastadoḍḍayanotkānāṃ śarabhāṇāṃ vijṛmbhitaiḥvisphūrjati guhāvakraiḥ kalpābhrāṇi hasanniva || 7 ||

When the sharabhas, eager to leap into the sky, stretch and roar, the sound rolls through the mountain's winding caves, as if it were laughing at the clouds of the end of the age.

जब शरभ आसमान में उड़ने की चाह में अंगड़ाई लेकर दहाड़ते हैं, तो वह आवाज़ पर्वत की घुमावदार गुफाओं में गूँजती है, जैसे पर्वत प्रलय के बादलों पर हँस रहा हो।

5.19.8

येन निर्झरनिर्ह्रादैः कन्दरान्तरचारिभिःसमुद्रजलकल्लोलविलासो विजितोऽभितः ॥ ८ ॥

yena nirjharanirhrādaiḥ kandarāntaracāribhiḥsamudrajalakallolavilāso vijito'bhitaḥ || 8 ||

The roar of its waterfalls, echoing through its caves, drowns out even the crashing play of ocean waves.

उसके झरनों की गरज, जो गुफाओं में गूँजती है, समुद्र की लहरों की खिलवाड़ भरी आवाज़ को भी दबा देती है।

5.19.9

तस्यैकदेशे विततते रत्नसानौ मनोरमेमुनिभिः स्नानपानार्थं व्योमगङ्गावतारिता ॥ ९ ॥

tasyaikadeśe vitate ratnasānau manoramemunibhiḥ snānapānārthaṃ vyomagaṅgāvatāritā || 9 ||

On one broad and beautiful jeweled plateau of that mountain, the sages brought the heavenly Ganga down, so they could bathe in it and drink from it.

उस पर्वत के एक चौड़े और सुंदर रत्न-जड़ित पठार पर, ऋषियों ने आकाश की गंगा को नीचे उतार लिया, ताकि वे उसमें नहा सकें और उसका पानी पी सकें।

5.19.10

तस्यास्त्रिपथगायास्तु तीरे विकसितद्रुमेरत्नाद्रिटविद्योते कचत्कनकपिञ्जरे ॥ १० ॥

tasyāstripathagāyāstu tīre vikasitadrumeratnādritaṭavidyote kacatkanakapiñjare || 10 ||

There, on the bank of that same three-path river, where the trees were all in flower, the slope of the jeweled mountain glittered, golden and shining.

वहाँ, उसी तीन रास्तों वाली नदी के किनारे, जहाँ पेड़ फूलों से लदे थे, रत्न-जड़ित पर्वत की ढलान सुनहरी और चमकती हुई थी।

5.19.11

आसीदभ्युदितज्ञानस्तपोराशिरुदारधीः । मुनिर्दीर्घतपा नाम तपो मूर्तमिवापरम् ॥ ११ ॥

āsīdabhyuditajñānastaporāśirudāradhīḥ | munirdīrghatapā nāma tapo mūrtamivāparam || 11 ||

There lived a sage named Dirghatapa. His wisdom had fully awakened. He was a great mass of austerity, noble minded, as if penance itself had taken on a body once again.

वहाँ दीर्घतपा नाम के एक ऋषि रहते थे। उनका ज्ञान पूरी तरह जाग चुका था। वे तपस्या के एक बड़े ढेर जैसे थे, बड़े मन वाले, मानो तपस्या ने एक बार फिर शरीर धारण कर लिया हो।

5.19.12

मुनेर्बभूवतुस्तस्य पुत्रौ द्वाविन्दुसुन्दरौ। पुण्यपावननामानौ द्वौ कचाविव वाक्पतेः ॥ १२ ॥

munerbabhūvatusya putrau dvāvindusundarau | puṇyapāvananāmānau dvau kacāviv vākpateḥ || 12 ||

That sage had two sons, both handsome as the moon, named Punya and Pavana, as lovely as two Kachas born to Brihaspati, the lord of speech.

उस ऋषि के दो बेटे थे, दोनों चाँद जैसे सुंदर, जिनका नाम पुण्य और पावन था, ठीक वैसे जैसे वाणी के स्वामी बृहस्पति के दो कच हों।

5.19.13

स ताभ्यां सह पुत्राभ्यां भार्यया च सहैकया। उवास सरितस्तीरे तस्मिन्सफलपादपे ॥ १३ ॥

sa tābhyāṃ saha putrābhyāṃ bhāryayā ca sahaikayā | uvāsa saritastīre tasminsaphalapādape || 13 ||

He lived there with his two sons and his one wife, on the riverbank, in that place full of fruit-bearing trees.

वे वहाँ अपने दोनों बेटों और अपनी एक पत्नी के साथ, नदी के किनारे, फल देने वाले पेड़ों से भरी उस जगह में रहते थे।

5.19.14

अथ काले तयोस्तस्य पुत्रयोर्ज्ञानवानभूत्। पुण्यो नाम च यो ज्येष्ठो गुणज्येष्ठश्च राघव ॥ १४ ॥

atha kāle tayostasya putrayorjñānavānabhūt | puṇyo nāma ca yo jyeṣṭho guṇajyeṣṭhaśca rāghava || 14 ||

Then, in time, Raghava, of his two sons the elder one, named Punya, who was also the finest in good qualities, became a man of true knowledge.

फिर, हे राघव, समय के साथ, उनके दोनों बेटों में से बड़ा बेटा, जिसका नाम पुण्य था और जो गुणों में भी सबसे बढ़कर था, सच्चे ज्ञान वाला बन गया।

5.19.15

पावनोर्धप्रबुद्धोऽभूत्पूर्वसंध्याम्बुजं यथा। मौर्ख्यादधिगतो नाप्तः पदे दोलायितः स्थितः ॥ १५ ॥

pāvanordhaprabuddho'bhūtpūrvasaṃdhyāmbujaṃ yathā | maurkhyādadhigato nāptaḥ pade dolāyitaḥ sthitaḥ || 15 ||

Pavana was only half awake to it, like a lotus half open at dawn twilight. Out of foolishness he had not fully reached that knowledge, and he remained standing in his place, wavering.

पावन इस ज्ञान के लिए सिर्फ आधा जागा हुआ था, जैसे भोर के समय आधा खिला हुआ कमल। अपनी नादानी के कारण वह उस ज्ञान तक पूरी तरह नहीं पहुँच पाया, और वह अपनी जगह पर ही डगमगाता हुआ खड़ा रह गया।

5.19.16

ततो वहत्यकलिते काले कलितकारणे। संवत्सरशते जीर्णदीर्घदेहलतायुषि ॥ १६ ॥

tato vahatyakalite kāle kalitakāraṇe | saṃvatsarśate jīrṇadīrghadehalatāyuṣi || 16 ||

Then, as time flowed on, unnoticed yet the known cause of everything, a hundred years passed, and the long vine of his body's life grew old and withered.

फिर समय बहता गया, ऐसा समय जो दिखता नहीं पर हर बदलाव का कारण होता है, सौ साल बीत गए, और उनके शरीर की लंबी बेल जैसी उम्र बूढ़ी और मुरझाई हुई हो गई।

5.19.17

अस्माद्भङ्गुरभूताढ्याद्वृत्तान्तशतभीषणात्। रतिमुत्सृज्य संसाराज्जराजर्जरजीवितः ॥ १७ ॥

asmādbhaṅgurabhūtāḍhyādvṛttāntaśatabhīṣaṇāt | ratimutsṛjya saṃsārājjarājarjarjīvitaḥ || 17 ||

He gave up delight in this world, this world so rich in things that break and pass away, so frightening with its hundreds of happenings, and his life was worn thin and shattered by old age.

उन्होंने इस संसार से मन हटा लिया, इस संसार से जो टूटने-बिखरने वाली चीज़ों से भरा है और सैकड़ों घटनाओं से डरावना है, और बुढ़ापे ने उनके जीवन को घिसकर चूर-चूर कर दिया था।

5.19.18

कलनापक्षिणी नीडं देहं दीर्घतपा मुनिः। जहौ गिरिगुहागेहे भारं वैवधिको यथा ॥ १८ ॥

kalanāpakṣiṇī nīḍaṃ dehaṃ dīrghatapā muniḥ | jahau giriguhāgehe bhāraṃ vaivadhiko yathā || 18 ||

In his home in the mountain cave, the sage Dirghatapa gave up his body, the nest of the bird called awareness, the way a porter sets down a heavy load.

पर्वत की गुफा में अपने घर में, ऋषि दीर्घतपा ने अपना शरीर त्याग दिया, वह शरीर जो चेतना नाम की चिड़िया का घोंसला था, ठीक वैसे जैसे एक मज़दूर अपना भारी बोझ नीचे रख देता है।

5.19.19

प्रशान्तकलनारम्भं चेत्यरिक्तचिदास्पदम्। पदं जगाम नीरागं पुष्पगन्ध इवाम्बरम् ॥ १९ ॥

praśāntakalanārambhaṃ cetyariktacidāspadam | padaṃ jagāma nīrāgaṃ puṣpagandha ivāmbaram || 19 ||

He passed into the state where all mental activity had fallen silent, the dwelling place of pure, undiminished consciousness, free of all passion, like the scent of a flower fading into the open sky.

वे उस अवस्था में चले गए जहाँ मन की हर हलचल शांत हो चुकी थी, शुद्ध और अखंड चेतना के निवास में, हर मोह-राग से मुक्त, जैसे किसी फूल की खुशबू खुले आसमान में विलीन हो जाती है।

5.19.20

अथ भार्या मुनेर्देहं प्राणापानविवर्जितम्। दृष्ट्वा विलुलितं भूमौ विनालमिव पङ्कजम् ॥ २० ॥

atha bhāryā munerdehaṃ prāṇāpānavivarjitam | dṛṣṭvā vilulitaṃ bhūmau vināmiva paṅkajam || 20 ||

Then the sage's wife saw his body lying crumpled on the ground, its breath gone, like a lotus torn from its stalk.

फिर ऋषि की पत्नी ने देखा कि उनका शरीर ज़मीन पर बिखरा पड़ा है, साँस जा चुकी है, जैसे डंठल से टूटा हुआ कमल।

5.19.21

चिरमभ्यस्तया योगयुक्त्या पतिवितीर्णया। तत्याज तनुमम्लानां षट्पदी पद्मिनीमिव ॥ २१ ॥

ciramabhyastayā yogayuktyā pativitīrṇayā | tatyāja tanumamlānāṃ ṣaṭpadī padminīmiva || 21 ||

With the yoga method she had practiced for a long time, the one her husband had given her, she gave up her body while it was still fresh, the way a bee leaves a lotus plant.

उस योग-विधि से, जिसका उसने बहुत समय से अभ्यास किया था और जो उसके पति ने उसे सिखाई थी, उसने अपने शरीर को उसी समय छोड़ दिया जब वह अभी ताज़ा ही था, जैसे भँवरा कमल के पौधे को छोड़ देता है।

5.19.22

भर्तारमेवानुययौ जनस्यादृष्टतां गता । प्रभागगनकोशस्थमस्तं यातमिवोडुपम् ॥ २२ ॥

bhartāramevānuyayau janasyādṛṣṭatāṃ gatā | prabhāgaganakośasthamastaṃ yātamivōḍupam || 22 ||

She followed only her husband, vanishing from the sight of people, like the moon that sets and leaves the bright sky where it had been.

वह केवल अपने पति के पीछे चली गई, लोगों की नज़रों से ओझल होकर, जैसे चाँद उस चमकीले आकाश को छोड़कर डूब जाता है जहाँ वह पहले था।

5.19.23

मातापित्रोस्तु गतयोरौर्ध्वदेहिककर्मणि । पुण्य एव स्थितोऽव्यग्रः पावनो दुःखमाययौ ॥ २३ ॥

mātāpitros tu gatayoraurdhvadehikakarmaṇi | puṇya eva sthito'vyagraḥ pāvano duḥkhamāyayau || 23 ||

But when the parents had died, at the time of the funeral rites, Punya alone stayed calm, while Pavana fell into sorrow.

पर जब माता-पिता की मृत्यु हो गई, अंतिम संस्कार के समय, पुण्य शांत बना रहा, जबकि पावन दुख में डूब गया।

5.19.24

शोकोपहतचित्तोऽसो भ्रमन्काननवीथिषु । ज्यायांसमनवेक्ष्यैव पावनो विललाप ह ॥ २४ ॥

śokopahatacitto'so bhramankānanavīthiṣu | jyāyāṃsam anavekṣyai va pāvano vilalāpa ha || 24 ||

With his mind crushed by grief, wandering through the forest paths, not seeing his elder brother anywhere, Pavana wept aloud.

दुख से टूटे मन के साथ, जंगल के रास्तों में भटकते हुए, अपने बड़े भाई को कहीं न देखकर, पावन ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

5.19.25

अथौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मातापित्रोरुदारधीः । आययौ विपिने पुण्यः पावनं शोकलालसम् ॥ २५ ॥

athaurdhvadehikaṃ kṛtvā mātāpitrorudāradhīḥ | āyayau vipine puṇyaḥ pāvanaṃ śokalālasam || 25 ||

Then, having finished the funeral rites for his parents, the noble-minded Punya came into the forest to Pavana, who was lost in grief.

फिर, माता-पिता का अंतिम संस्कार पूरा करके, बड़े मन वाला पुण्य जंगल में उस पावन के पास आया, जो दुख में डूबा हुआ था।

5.19.26

पुण्य उवाच । किं पुत्र घनतां शोकं नयस्यान्ध्यैककारणम् । वाष्पधाराधरं घोरं प्रावट्काल इवाम्बुजम् ॥ २६ ॥

puṇya uvāca | kiṃ putra ghanatāṃ śokaṃ nayasyāndhyaiakakāraṇam | vāṣpadhārādharaṃ ghoraṃ prāvaṭkāla ivāmbujam || 26 ||

Punya said: Why, my child, are you making your grief so heavy, the one thing that blinds a person? It is terrible, streaming with tears, like a lotus covered in rain in the monsoon season.

पुण्य ने कहा: बेटा, तू अपने दुख को इतना भारी क्यों बना रहा है, जो अकेला ही आँखों को अंधा कर देता है? यह डरावना है, आँसुओं की धार से भरा हुआ, जैसे बरसात के मौसम में कमल पानी की बूँदों से भर जाता है।

5.19.27

पिता तव महाप्राज्ञ गतः सार्धं त्वदम्बया। स्वामेव परमात्मात्मपदवीं मोक्षनामिकाम्॥ २७॥

pitā tava mahāprājña gataḥ sārdhaṃ tvadambayā | svāmeva paramātmātmāpadavīṃ mokṣanāmikām || 27 ||

Your father, wise one, has gone, together with your mother, to his own place, the place of the highest self, which is called liberation.

हे बुद्धिमान, तेरे पिता तेरी माता के साथ चले गए हैं, अपने ही उस स्थान की ओर, परम आत्मा के उस पद की ओर, जिसे मोक्ष कहा जाता है।

5.19.28

तत्स्थानं सर्वजन्तूनां तद्रूपं विजितात्मनाम्। स्वभावमभिसंपन्ने किं पितर्यनुशोचसि॥ २८॥

tatsthānaṃ sarvajantūnāṃ tadrūpaṃ vijitātmanām | svabhāvamabhisaṃpanne kiṃ pitaryanuśocasi || 28 ||

That is the place of all beings, the true form of those who have mastered themselves. Why do you grieve for a father who has reached his own true nature?

वह सभी प्राणियों का स्थान है, उन लोगों का असली रूप है जिन्होंने खुद पर विजय पा ली है। तू उस पिता के लिए क्यों दुखी होता है जो अपने असली स्वभाव को पा चुका है?

5.19.29

ईदृशी तु त्वया बद्धा भावनेह विमोहजा। संसारे यदशोच्योऽपि त्वया तातोनुशोच्यते॥ २९॥

īdṛśī tu tvayā baddhā bhāvaneha vimohajā | saṃsāre yadaśocyōpi tvayā tātonuśocyatē || 29 ||

This is the kind of thinking that has taken hold of you here, born out of confusion, that in this world you grieve for our father, even though he is not someone to be grieved for.

यही वह सोच है जो तूने यहाँ पकड़ रखी है, जो भ्रम से पैदा हुई है, कि तू इस दुनिया में हमारे पिता के लिए दुखी होता है, जबकि वे दुखी होने लायक नहीं हैं।

5.19.30

न सैव भवतो माता नासावेव पिता तव। न भवानेष तनयस्तयोर्निःसंख्यपुत्रयोः॥ ३०॥

na saiva bhavato mātā nāsāveva pitā tava | na bhavāneṣa tanayastayorniḥsaṃkhyaputrayoḥ || 30 ||

She was not really your mother, and he was not really your father, and you are not really the son of those two, who have had countless sons.

वह सच में तेरी माँ नहीं थी, और वे सच में तेरे पिता नहीं थे, और तू सच में उन दोनों का बेटा नहीं है, जिनके अनगिनत बेटे रह चुके हैं।

5.19.31

मातापितृसहस्राणि समतीतानि ते सुत। बहून्यम्बुप्रवाहस्य निम्नानीव वने वने॥ ३१॥

mātāpitṛsahasrāṇi samatītāni te suta | bahūnyambupravāhasya nimnānīva vane vane || 31 ||

My child, thousands of mothers and fathers have already passed away for you, many of them, like the many channels a flowing stream cuts, forest after forest.

बेटा, तेरे लिए हजारों माता-पिता पहले ही गुज़र चुके हैं, बहुत सारे, जैसे बहता हुआ पानी हर जंगल में कई-कई नाले बना देता है।

5.19.32

असंख्यपुत्रयोर्नैव भवानेव सुतस्तयोः। सरित्तरङ्गवत्पुत्र गताः पुत्रगणा नृणाम्॥ ३२॥

asankhyaputrayornaiava bhavāneva sutastayoḥ | sarittaraṅgavatputra gatāḥ putragaṇā nṛṇām || 32 ||

You are not the only son of those two who have had countless sons. My child, the sons of men come and go like the waves of a river.

तू उन दोनों का इकलौता बेटा नहीं है, जिनके अनगिनत बेटे रह चुके हैं। बेटा, आदमियों के बेटे नदी की लहरों की तरह आते हैं और चले जाते हैं।

5.19.33

अस्मत्पित्रोरतीतानि पुत्रलक्षाण्यनेकशः । पत्रकोरकवृन्तानि लताविटपयोरिव ॥ ३३ ॥

asmadpitroratītāni putralakṣāṇyanekaśaḥ | patrakorakavṛntāni latāviṭapayoriva || 33 ||

Hundreds of thousands of children have passed away for our parents, one after another, like the leaves, buds, and stems of a vine and a tree branch.

हमारे माता-पिता के लिए लाखों बच्चे एक के बाद एक बीत चुके हैं, जैसे किसी बेल और पेड़ की शाखा के पत्ते, कलियाँ और डंठल।

5.19.34

मित्रबान्धववृन्दानि जन्तोर्जन्मनि जन्मनि । ऋतावृतावतीतानि फलानीव महातरोः ॥ ३४ ॥

mitrabāndhavavṛndāni jantorjanmani janmani | ṛtāvṛtāvatītāni phalānīva mahātaroḥ || 34 ||

In birth after birth, crowds of friends and relatives pass away for every creature, season after season, like the fruit of a great tree.

हर जन्म में, हर प्राणी के दोस्तों और रिश्तेदारों के झुंड बीतते जाते हैं, हर मौसम में, जैसे किसी बड़े पेड़ के फल।

5.19.35

शोचनीया यदि स्नेहान्मातापितृसुताः सुत । तदतीता न शोच्यन्ते किमजस्रं सहस्रशः ॥ ३५ ॥

śocanīyā yadi snehānmātāpitṛsutāḥ suta | tadatītā na śocyante kimajasraṃ sahasraśaḥ || 35 ||

My child, if mothers, fathers, and sons are to be grieved for out of love, then why are those thousands who have passed away, one after another, not grieved for?

बेटा, अगर प्यार के कारण माँ, बाप और बेटों के लिए दुखी होना ज़रूरी है, तो फिर वे हज़ारों जो लगातार बीत चुके हैं, उनके लिए दुखी क्यों नहीं होते?

5.19.36

प्रपञ्चोऽयं महाभाग दृश्यते जागते भ्रमे । परमार्थेन ते प्राज्ञ नास्ति मित्रं न बान्धवाः ॥ ३६ ॥

prapañco'yaṃ mahābhāga dṛśyate jāgate bhrame | paramārthena te prājña nāsti mitraṃ na bāndhavāḥ || 36 ||

This whole world you see, fortunate one, is seen only within the error of the waking state. In the highest truth, wise one, you have no friend and no relative.

यह पूरी दुनिया जो तू देखता है, हे भाग्यशाली, जागने की अवस्था की भूल में ही दिखाई देती है। सबसे बड़े सच में, हे बुद्धिमान, तेरा न कोई दोस्त है, न कोई रिश्तेदार।

5.19.37

न नाश इव हि भ्रातः परमार्थेन विद्यते । महत्यपि चिरातप्ते मरावित्र पयोलवाः ॥ ३७ ॥

na nāśa iva hi bhrātaḥ paramārthena vidyate | mahatyapi cirātapte marāviva payolavāḥ || 37 ||

Brother, in truth there is no such thing as destruction at all, no more than there is water, even a few drops, in a vast desert scorched by the sun for a long time.

भाई, सच में विनाश जैसी कोई चीज़ है ही नहीं, ठीक वैसे ही जैसे बहुत देर से तपते हुए बड़े रेगिस्तान में पानी की एक बूँद भी नहीं होती।

5.19.38

एता याः प्रेक्षसे लक्ष्मीश्छत्रचामरचञ्चलाः । स्वप्न एव महाबुद्धे दिनानि त्रीणि पञ्च वा ॥ ३८ ॥

etā yāḥ prekṣase lakṣmīśchatracāmaracañcalāḥ | svapna eva mahābuddhe dināni trīṇi pañca vā || 38 ||

These riches you see, unsteady as a royal umbrella and a fly-whisk swaying in the wind, great one, are nothing but a dream lasting three or five days.

ये जो धन-दौलत तू देखता है, हवा में हिलते राजछत्र और चँवर जैसी अस्थिर, हे महान बुद्धि वाले, बस तीन-पाँच दिन का एक सपना है।

5.19.39

दृष्ट्या तु पारमार्थिक्या पुत्र सत्यं विचारय। नैव त्वं न वयं चैव भ्रान्तिमन्तः परित्यज॥ ३९॥

dṛṣṭyā tu pāramārthikyā putra satyaṃ vicāraya | naiva tvaṃ na vayaṃ caiva bhrāntimantaḥ parityaja || 39 ||

But look at the truth with the eye of the highest reality, my child. There is truly no you, and no us. Give up this confusion.

पर सबसे बड़े सच की नज़र से सच को देख, बेटा। सच में न तू है, न हम हैं। यह भ्रम छोड़ दे।

5.19.40

अयं गतो मृतश्चायमिति दुर्दृष्टयः पुरः। स्वसंकल्पोपतापोत्था दृश्यन्ते नतु सत्यतः॥ ४०॥

ayaṃ gato mṛtaścāyamiti durdṛṣṭayaḥ puraḥ | svasaṅkalpopatāpotthā dṛśyante natu satyataḥ || 40 ||

Thoughts like this one has gone or this one has died are wrong ways of seeing. They rise from the pain your own mind creates, and they are not true.

यह चला गया, यह मर गया, ऐसी सोच गलत तरीके से देखना है। ये तेरे अपने मन के दर्द से पैदा होती हैं, और सच नहीं हैं।

5.19.41

अज्ञानविस्तीर्णमरौ विलोलं शुभाशुभस्यन्दमयैस्तरङ्गैः। सवासनानाममरीचिवारि परिस्फुरत्येतदनन्तरूपम्॥ ४१॥

ajñānavistīrṇamarau vilolaṃ śubhāśubhasyandamayais taraṅgaiḥ | savāsanānāmamarīcivāri parisphuratyetadanantarūpam || 41 ||

This endless world flickers like a mirage in the desert made wide by ignorance. It trembles with waves made of the flow of good and bad. To those who still carry their old habits of mind, this water does not look like a mirage at all.

यह अनंत दुनिया अज्ञान से फैले हुए रेगिस्तान में मृगतृष्णा की तरह टिमटिमाती है। यह अच्छे और बुरे के बहाव से बनी लहरों से काँपती है। जो लोग अभी भी अपने मन में पुरानी आदतें लिए हुए हैं, उनके लिए यह पानी मृगतृष्णा जैसा नहीं दिखता।

Chapter 20

5.20.1

पुण्य उवाच कः पिता किं च वा मित्रं का माता के च बान्धवाः स्वबुद्ध्यैवावधूयन्ते वात्यया जनपांसवः ॥ १ ॥

puṇya uvāca kaḥ pitā kiṃ ca vā mitraṃ kā mātā ke ca bāndhavāḥ svabuddhyeva avadhūyante vātyayā janapāṃsavaḥ || 1 ||

Punya said: Who is a father? What is a friend? Who is a mother, and who are relatives? By one's own understanding alone, they are swept away, like dust raised by a crowd is scattered by a storm wind.

पुण्य ने कहा: पिता कौन है? दोस्त क्या है? माँ कौन है, और रिश्तेदार कौन हैं? अपनी ही समझ से ये सब उड़ जाते हैं, जैसे भीड़ की धूल तेज़ आँधी से उड़ जाती है।

5.20.2

बन्धुमित्रसुतस्नेहद्वेषमोहदशामयः स्वसंज्ञामात्रकेणैव प्रपञ्चोऽयं वितन्यते ॥ २ ॥

bandhumitrasutasnehadveṣamohadaśāmayaḥ svasaṃjñāmātrakeṇaiva prapañco'yaṃ vitanyate || 2 ||

This whole world of love, hate, and confusion about kin, friend, and son is spread out only by our own naming of things.

रिश्तेदार, दोस्त और बेटे को लेकर जो प्यार, नफ़रत और मोह बनता है, यह सारा संसार सिर्फ अपने नाम देने से ही फैलता है।

5.20.3

बन्धुत्वे भावितो बन्धुः परत्वे भावितः परः विषामृतदशेवेह स्थितिर्भावनिबन्धनी ॥ ३ ॥

bandhutve bhāvito bandhuḥ paratve bhāvitaḥ paraḥ viṣāmṛtadaśeveha sthitirbhāvanibandhanī || 3 ||

If you think of someone as family, he becomes family. If you think of him as a stranger, he becomes a stranger. Like poison and nectar, everything here depends only on what you think.

जिसे तुम अपना मान लो, वह अपना बन जाता है; जिसे पराया मान लो, वह पराया बन जाता है। ज़हर और अमृत की तरह, यहाँ हर हाल सिर्फ अपनी सोच पर टिका होता है।

5.20.4

एकत्वे विद्यमानस्य सर्वगस्य किलात्मनः अयं बन्धुः परश्चायमित्यसौ कलना कुतः ॥ ४ ॥

ekatve vidyamānasya sarvagasya kilātmanaḥ ayaṃ bandhuḥ paraścāyamityasau kalanā kutaḥ || 4 ||

The self is truly one, and it reaches everywhere. So where does this thought come from — this one is family, and this one is a stranger?

आत्मा तो सच में एक है और हर जगह मौजूद है। फिर यह सोच कहाँ से आती है कि यह अपना है, और यह पराया है?

5.20.5

रक्तमांसास्थिसंघाताद्देहादेवास्थिपञ्जरात् कोऽहं स्यामिति चित्तेन स्वयं पुत्र विचारय ॥ ५ ॥

raktamāṃsāsthisanghātāddehādevāsthipañjarāt ko'haṃ syāmiti cittena svayaṃ putra vicāraya || 5 ||

This body is only a heap of blood, flesh, and bone, a cage of bones. My son, think it over yourself, in your own mind: who am I?

यह शरीर तो बस खून, मांस और हड्डी का ढेर है, हड्डियों का एक पिंजरा है। बेटा, अपने मन से खुद सोचो कि मैं कौन हूँ।

5.20.6

दृष्ट्या तु पारमार्थिक्या न कश्चित्त्वं न वास्म्यहम्। मिथ्याज्ञानमिदं पुण्यः पावनश्चेति वल्गति ॥ ६ ॥

dṛṣṭyā tu pāramārthikyā na kaścit tvaṃ na vāsmyaham | mithyājñānamidaṃ puṇyaḥ pāvanaśceti valgati || 6 ||

But looked at truly, you are not anyone, and I am not anyone either. This is just false knowledge dancing about, calling itself Punya and Pavana.

पर सच में देखा जाए तो न तुम कोई हो, न मैं कोई हूँ। यह तो बस झूठा ज्ञान है जो पुण्य और पावन बनकर नाच रहा है।

5.20.7

कस्ते पिता कश्च सुहृत्का माता कश्च वा परः। खस्यानन्तविलासस्य किमस्वं किं स्वमुच्यताम् ॥ ७ ॥

kaste pitā kaśca suhṛtkā mātā kaśca vā paraḥ | khasyānantavilāsasya kimasvaṃ kiṃ svamucyatām || 7 ||

Who is your father? Who is your friend? Who is your mother, and who is a stranger? Tell me, for this endless open sky, what is not mine and what is mine?

तेरा पिता कौन है, तेरा दोस्त कौन है? तेरी माँ कौन है, और पराया कौन है? बता, जो आकाश जैसा अनंत है, उसके लिए क्या पराया है और क्या अपना है?

5.20.8

असि चेत्त्वं तदन्येषु यातेषु बहुजन्मसु। ये बन्धवो ये विभवाः किं तानपि न शोचसि ॥ ८ ॥

asi cet tvaṃ tadanyeṣu yāteṣu bahujanmasu | ye bandhavo ye vibhavāḥ kiṃ tānapi na śocasi || 8 ||

If you say I am this person, then think of your many earlier lives that have passed. Why do you not grieve, too, for the family and the wealth you had in them?

अगर तुम कहते हो कि मैं यही हूँ, तो अपने पिछले बहुत से जन्मों को याद करो जो बीत चुके हैं। उनमें जो रिश्तेदार थे, जो धन-दौलत थी, उनके लिए भी तुम क्यों नहीं दुखी होते?

5.20.9

बभूवुस्ते सुपुष्पासु स्थलीषु मृगयोनिषु। बहवो बन्धवो मार्गास्तान्कथं नानुशोचसि ॥ ९ ॥

babhūvus te supuṣpāsu sthalīṣu mṛgayoniṣu | bahavo bandhavo mārgās tān kathaṃ nānuśocasi || 9 ||

In lovely flowering meadows, you were born as a deer, and there you had many deer for kinsmen. Why do you not grieve for them?

फूलों से भरे मैदानों में तुम हिरण बनकर पैदा हुए थे, और वहाँ तुम्हारे बहुत से हिरण रिश्तेदार थे। उनके लिए तुम क्यों दुखी नहीं होते?

5.20.10

बभूवुस्ते सपद्मासु तटीष्वम्भोजिनीषु ते। हंसस्य बन्धवो हंसास्तान्कथं नानुशोचसि ॥ १० ॥

babhūvus te sapadmāsu taṭīṣvambhojinīṣu te | haṃsasya bandhavo haṃsās tān kathaṃ nānuśocasi || 10 ||

On lotus-covered banks, in ponds full of lotuses, you were born a swan, and had many swans for kinsmen. Why do you not grieve for them?

कमलों से भरे किनारों पर, कमल के तालाबों में, तुम हंस बनकर पैदा हुए थे, और वहाँ तुम्हारे बहुत से हंस रिश्तेदार थे। उनके लिए तुम क्यों दुखी नहीं होते?

5.20.11

बभूवुस्तेऽलमन्यत्र चित्रासु वनराजिषु । बहवो बन्धवो वृक्षास्तान्कथं नानुशोचसि ॥ ११ ॥

babhūvuste'lamanyatra citrāsu vanarājiṣu | bahavo bandhavo vṛkṣāstānkathaṃ nānuśocasi || 11 ||

In other wondrous forests, you were born as a tree, with many trees as your kinsmen. Why do you not grieve for them?

किसी और अनोखे जंगल में तुम पेड़ बनकर पैदा हुए थे, और वहाँ बहुत से पेड़ तुम्हारे रिश्तेदार थे। उनके लिए तुम क्यों दुखी नहीं होते?

5.20.12

बभूवुस्ते महोग्रेषु शिखरेषु महीभृताम् । बहवो बान्धवाः सिंहास्तान्कथं नानुशोचसि ॥ १२ ॥

babhūvuste mahogreṣu śikhareṣu mahībhṛtām | bahavo bāndhavāḥ siṃhāstānkathaṃ nānuśocasi || 12 ||

On the fierce, high peaks of mountains, you had many lions for kinsmen. Why do you not grieve for them?

पहाड़ों की ऊँची और डरावनी चोटियों पर तुम्हारे बहुत से शेर रिश्तेदार थे। उनके लिए तुम क्यों दुखी नहीं होते?

5.20.13

बभूवुस्ते स्रवन्तीषु सरःस्वम्भोजिनीषु च । बहवो बन्धवो मत्स्यास्तान्कथं नानुशोचसि ॥ १३ ॥

babhūvuste sravantīṣu saraḥsvambhojinīṣu ca | bahavo bandhavo matsyāstānkathaṃ nānuśocasi || 13 ||

In rivers, and in lakes full of lotuses, you had many fish for kinsmen. Why do you not grieve for them?

नदियों में, और कमलों से भरी झीलों में तुम्हारे बहुत से मछली रिश्तेदार थे। उनके लिए तुम क्यों दुखी नहीं होते?

5.20.14

बभूविथ दशार्णेषु कपिलो वनवानरः । राजपुत्रस्तुषारेषु पुण्ड्रेषु वनवायसः ॥ १४ ॥

babhūvitha daśārṇeṣu kapilo vanavānaraḥ | rājaputrastuṣāreṣu puṇḍ्reṣu vanavāyasaḥ || 14 ||

You were born in Dasharna as a brown wild monkey, in Tushara as a king's son, and in Pundra as a wild crow.

तुम दशार्ण देश में भूरे जंगली बंदर बने, तुषार देश में राजा के बेटे बने, और पुण्ड्र देश में जंगली कौआ बने।

5.20.15

हैहयेषु च मातङ्गस्त्रिगर्तेषु च गर्दभः । शाल्वेषु सरमापुत्रः पतत्री सरलद्रुमे ॥ १५ ॥

haihayeṣu ca mātaṅgastri garteṣu ca gardabhaḥ | śālveṣu saramāputraḥ patatrī saraladruma || 15 ||

Among the Haihayas you were an elephant, among the Trigartas a donkey, among the Shalvas a dog, and a bird in a pine tree.

हैहय देश में हाथी बने, त्रिगर्त देश में गधे बने, शाल्व देश में कुत्ते बने, और चीड़ के पेड़ पर एक पंछी बने।

5.20.16

विन्ध्याद्रौ पिप्पलो भूत्वा घुणो भूत्वा महावटे । मन्दरे कुक्कुटो भूत्वा विप्रो जातोऽसि कन्दरे ॥ १६ ॥

vindhyādrau pippalō bhūtvā ghuṇō bhūtvā mahāvaṭē | mandarē kukkuṭō bhūtvā viprō jātō'si kandarē || 16 ||

On the Vindhya mountains you were a peepal tree; in a great banyan tree, a wood-boring worm; on Mount Mandara, a rooster; and in a mountain cave, you were born a brahmin.

विंध्य पर्वत पर तुम पीपल का पेड़ बने; एक बड़े बरगद के पेड़ में लकड़ी खाने वाला कीड़ा बने; मंदार पर्वत पर मुर्गा बने; और एक पहाड़ी गुफा में ब्राह्मण बनकर पैदा हुए।

5.20.17

कोसलेषु द्विजो भूत्वा भूत्वा वङ्गेषु तित्तिरिः । अश्वो भूत्वा तुषारेषु जातस्त्वं ब्रह्मणोऽध्वरे ॥ १७ ॥

kōsalēṣu dvijō bhūtvā bhūtvā vaṅgēṣu tittiriḥ | aśvō bhūtvā tuṣārēṣu jātastvaṃ brahmaṇō'dhvarē || 17 ||

Among the Kosalas you were a brahmin; among the Vangas, a partridge; among the Tusharas you became a horse, born for a brahmin's sacrifice.

कोसल देश में तुम ब्राह्मण बने; वंग देश में तीतर बने; तुषार देश में घोड़ा बने, और एक ब्राह्मण के यज्ञ के लिए पैदा हुए।

5.20.18

यः कीटस्तालकन्दान्तर्मशको य उदुम्बरे । यः प्राग्बको विन्ध्यवने स त्वं पुत्र ममानुजः ॥ १८ ॥

yaḥ kīṭastālakandāntarmashakō ya udumbarē | yaḥ prāgbakō vindhyavanē sa tvaṃ putra mamānujaḥ || 18 ||

The worm that lived inside the root of a palm tree, the mosquito that lived in a fig tree, the crane that once lived in the Vindhya forest — that was you, my son, my younger brother.

ताड़ के पेड़ की जड़ में रहने वाला कीड़ा, अंजीर के पेड़ में रहने वाला मच्छर, विंध्य के जंगल में पहले रहने वाला बगुला — वह तुम ही थे, मेरे बेटे, मेरे छोटे भाई।

5.20.19

हिमवत्कन्दरे भूर्जतनुत्वग्ग्रन्थिकोटरे । पिपीलिको यः षण्मासान्सोऽयं त्वमनुजो मम ॥ १९ ॥

himavatkandarē bhūrjatanutvaggraṇṭhikōṭarē | pipīlikō yaḥ ṣaṇmāsānsō'yaṃ tvamanujō mama || 19 ||

In a Himalayan cave, in a hollow knot of thin birch bark, the ant that lived there for six months — that was you, my younger brother.

हिमालय की एक गुफा में, भोजपत्र के पेड़ की पतली छाल की एक गाँठ के खोखले में, छह महीने तक रहने वाली चींटी — वह तुम ही थे, मेरे छोटे भाई।

5.20.20

स्थितः सीमान्तकुग्रामगोमये यश्च वृश्चिकः । सार्धसंवत्सरं साधो सोऽयं त्वमनुजो मम ॥ २० ॥

sthitaḥ sīmāntakugrāmagōmayē yaśca vṛścikaḥ | sārdhasaṃvatsaraṃ sādhō sō'yaṃ tvamanujō mama || 20 ||

The scorpion that lived for a year and a half in cow-dung in a poor village on the border — good one, that was you, my younger brother.

सीमा के एक गरीब गाँव में गोबर में डेढ़ साल तक रहने वाला बिच्छू — हे साधु, वह तुम ही थे, मेरे छोटे भाई।

5.20.21

पुलिन्दीस्तनपीठेषु निलीनं येन कानने । षट्पदेनेव पद्मेषु सोऽयं त्वमनुजो मम ॥ २१ ॥

pulindīstanapīṭheṣu nilīnaṃ yena kānane | ṣaṭpadenaiva padmeṣu so'yaṃ tvamanujo mama || 21 ||

The bee that hid in a forest on the breasts of a Pulindi woman, as if hiding on lotus flowers — that was you, my younger brother.

जंगल में एक पुलिन्दी स्त्री के वक्ष पर छिपने वाला भौंरा, जैसे कमल के फूलों पर छिपता है — वह तुम ही थे, मेरे छोटे भाई।

5.20.22

एतास्वन्यासु बह्वीषु जनयोनिषु पुत्रक । जातोऽसि जम्बूद्वीपेऽस्मिन्पुरा शतसहस्रशः ॥ २२ ॥

etāsvanyāsu bahvīṣu janayoniṣu putraka | jāto'si jambūdvīpe'smiṃpurā śatasahasraśaḥ || 22 ||

In these and many other kinds of birth, my dear child, you were born here in Jambudvipa, hundreds of thousands of times in the past.

इन सब और ऐसी ही और भी बहुत तरह की योनियों में, मेरे प्यारे बच्चे, तुम इस जम्बूद्वीप में पहले भी लाखों बार जन्म ले चुके हो।

5.20.23

इत्थं तवात्मनश्चैव प्राक्तनं वासनाक्रमम्। पश्यामि सूक्ष्मया बुद्ध्या सम्यग्दर्शनशुद्धया ॥ २३ ॥

itthaṃ tavātmanaścaiva prāktanaṃ vāsanākramam | paśyāmi sūkṣmayā buddhyā samyagdarśanaśuddhayā || 23 ||

In this way I see the past course of the habits of your own mind, with a fine understanding made clear by right insight.

इस तरह मैं सही समझ से साफ़ हुई सूक्ष्म बुद्धि से तुम्हारे मन की पुरानी आदतों का सिलसिला देख रहा हूँ।

5.20.24

ममापि बह्व्यो बहुधा योनयो मोहमन्थराः। समतीताः स्मराम्यद्य ता ज्ञानोदितया दृशा ॥ २४ ॥

mamāpi bahvyo bahudhā yonayo mohamantharāḥ | samatītāḥ smarāmyadya tā jñānodayā dṛśā || 24 ||

I too remember today, with a sight that has risen from knowledge, my own many births of many kinds, all clouded by delusion, which have now gone by.

आज मुझे भी ज्ञान से जगी हुई नज़र से याद आ रहा है कि मैंने खुद कितने तरह-तरह के जन्म लिए, जो मोह में डूबे हुए थे और अब बीत चुके हैं।

5.20.25

त्रिगर्तेषु शुको भूत्वा भेको भूत्वा सरित्तटे। वनेषु लावको भूत्वा जातोऽहमिह कानने ॥ २५ ॥

trigarteṣu śuko bhūtvā bheko bhūtvā sarittaṭe | vaneṣu lāvako bhūtvā jāto'hamiha kānane || 25 ||

In Trigarta I was born as a parrot; on a riverbank I was born as a frog; in forests I was born as a quail; and now I have been born here in this forest.

त्रिगर्त में मैं तोता बनकर जन्मा, नदी के किनारे मेंढक बनकर जन्मा, जंगलों में बटेर बनकर जन्मा, और अब यहाँ इस जंगल में जन्मा हूँ।

5.20.26

भुक्त्वा पुलिन्दतां विन्ध्ये कृत्वा वङ्गेषु वृक्षताम्। उष्ट्रत्वमपि विन्ध्याद्रौ जातोऽहमिह कानने ॥ २६ ॥

bhuktvā pulindatāṃ vindhye kṛtvā vaṅgeṣu vṛkṣatām | uṣṭratvamapi vindhyādrau jāto'hamiha kānane || 26 ||

I lived as a Pulinda tribesman in the Vindhya hills, became a tree in Vanga, and even became a camel on the Vindhya mountain; and now I have been born here in this forest.

विंध्य में मैं पुलिंद बनकर रहा, वंग में पेड़ बनकर रहा, और विंध्य पर्वत पर ऊँट भी बना; और अब यहाँ इस जंगल में जन्मा हूँ।

5.20.27

यश्चातको हिमगिरौ यो राजा पौण्ड्रमण्डले। व्याघ्रो यः सह्यकुञ्जेषु स एवाहं तवाग्रजः ॥ २७ ॥

yaścātako himagirau yo rājā pauṇḍ्ramaṇḍale | vyāghro yaḥ sahyakuñjeṣu sa evāhaṃ tavāgrajaḥ || 27 ||

The one who was a chataka bird on the snowy mountain, who was a king in the land of Paundra, who was a tiger in the groves of Sahya - that very one am I, your elder brother.

जो हिमालय पर चातक पक्षी था, जो पौंड्र देश में राजा था, जो सह्य की घाटियों में बाघ था, वही मैं हूँ, तुम्हारा बड़ा भाई।

5.20.28

यो गृध्रो दशवर्षाणि यो ग्राहो मासपञ्चकम्। यः समानां शतं सिंहः स एवेह तवाग्रजः ॥ २८ ॥

yo gṛdhro daśavarṣāṇi yo grāho māsapañcakam | yaḥ samānāṃ śataṃ siṃhaḥ sa eveha tavāgrajaḥ || 28 ||

The one who was a vulture for ten years, who was a crocodile for five months, who was a lion for a hundred years - that very one is here, your elder brother.

जो दस साल गिद्ध रहा, जो पाँच महीने मगरमच्छ रहा, जो सौ साल शेर रहा, वही यहाँ तुम्हारा बड़ा भाई है।

5.20.29

आन्ध्रग्रामचकोरेण तुषारनृपराजिना । श्रीशैलाचार्यपुत्रेण दम्भवत्कथ्यते मया ॥ २९ ॥

āndhragrāmacakoreṇa tuṣāranṛparājinā | śrīśailācāryaputreṇa dambhavatkathyate mayā || 29 ||

I was a chakora bird in a village of Andhra, a king among the kings of Tushara, and the son of the teacher of Shrishaila. I tell you this now, though it may sound like boasting.

मैं आंध्र के एक गाँव में चकोर पक्षी था, तुषार के राजाओं में एक राजा था, और श्रीशैल के गुरु का बेटा था। यह मैं तुम्हें अभी बता रहा हूँ, भले ही यह घमंड जैसा लगे।

5.20.30

सर्वे विविधसंसारा विविधाचारचेष्टिताः । विलासा जन्मनो भ्रान्तेः स्मर्यन्ते प्राक्तना मया ॥ ३० ॥

sarve vividhasaṃsārā vividhācāraceṣṭitāḥ | vilāsā janmano bhrānteḥ smaryante prāktanā mayā || 30 ||

All these many kinds of worldly lives, full of all sorts of behavior and actions, are only the playthings of the confusion of being born - I now remember them as my own past.

ये सब तरह-तरह के सांसारिक जीवन, तरह-तरह के बर्ताव और कामों से भरे हुए, जन्म के भ्रम के खेल भर हैं, मुझे अब ये अपने बीते हुए जन्मों की तरह याद आते हैं।

5.20.31

एवं स्थिते जगज्जाता बान्धवाः शतशो गताः । पितरो मातरश्चैव भ्रातरः सुहृदस्तथा ॥ ३१ ॥

evaṃ sthite jagajjātā bāndhavāḥ śataśo gatāḥ| pitaro mātaraścaiva bhrātaraḥ suhṛdastathā || 31 ||

This being so, kinsmen born into the world have passed away by the hundreds - fathers, mothers, brothers, and friends alike.

ऐसा होने पर, दुनिया में जन्मे रिश्तेदार सैकड़ों की तादाद में चले गए, पिता, माता, भाई और मित्र भी।

5.20.32

कांस्तान्समनुशोचावो न शोचावश्च कानपि । बन्धूनिहातिशोचाव ईदृश्येव जगद्गतिः ॥ ३२ ॥

kāṃstānsamanuśocāvo na śocāvaśca kānapi| bandhūnihātiśocāva īdṛśyeva jagadgatiḥ || 32 ||

For which of them should we grieve, and for which should we not grieve? Let us not grieve too much for kinsmen here - such indeed is the way of the world.

हम उनमें से किसके लिए शोक करें और किसके लिए न करें? यहाँ रिश्तेदारों के लिए ज़्यादा शोक न करें, दुनिया की चाल ऐसी ही है।

5.20.33

अनन्ताः पितरो यान्ति यान्त्यनन्ताश्च मातरः । इह संसारिणां पुंसां वनपादपपर्णवत् ॥ ३३ ॥

anantāḥ pitaro yānti yāntyanantāśca mātaraḥ| iha saṃsāriṇāṃ puṃsāṃ vanapādapaparṇavat || 33 ||

Endless fathers pass away, and endless mothers pass away, for people caught up in this world - like the leaves of forest trees.

इस संसार में फँसे लोगों के लिए अनगिनत पिता चले जाते हैं और अनगिनत माताएँ भी चली जाती हैं, जैसे जंगल के पेड़ों के पत्ते झड़ते हैं।

5.20.34

किं प्रमाणमतः पुत्र दुःखस्यात्र सुखस्य च । तस्मात्सर्वं परित्यज्य तिष्ठावः स्वच्छतां गतौ ॥ ३४ ॥

kiṃ pramāṇamataḥ putra duḥkhasyātra sukhasya ca| tasmātsarvaṃ parityajya tiṣṭhāvaḥ svacchatāṃ gatau || 34 ||

So what proof is there, my child, of sorrow here, or of joy? Therefore, let us give up everything and remain in a state of clearness.

तो बेटा, यहाँ दुख का या सुख का क्या सबूत है? इसलिए हम सब कुछ छोड़कर एक साफ़ स्थिति में टिके रहें।

5.20.35

प्रपञ्चभावनां त्यक्त्वा मनस्यहमिति स्थिताम् । तां गतिं गच्छ भद्रं ते यां यान्ति गतिकोविदाः ॥ ३५ ॥

prapañcabhāvanāṃ tyaktvā manasyahamiti sthitām| tāṃ gatiṃ gaccha bhadraṃ te yāṃ yānti gatikovidāḥ || 35 ||

Give up the feeling of this world that sits fixed in the mind as 'I', and go to that place - good fortune to you - which those who know the true path go to.

मन में 'मैं' बनकर बैठी इस दुनिया की भावना को छोड़ दो, और उस राह पर जाओ, तुम्हारा भला हो, जिस पर सच्ची राह जानने वाले जाते हैं।

5.20.36

इहाजवं जवीभावं पतनोत्पतनात्मकम् । न च शोचन्ति सुधियश्चिरं वल्गन्ति केवलम् ॥ ३६ ॥

ihājavaṁ javībhāvaṁ patanotpatanātmakam | na ca śocanti sudhiyaściraṃ valganti kevalam || 36 ||

Here, in this endless coming and going, made up of falling and rising, wise people do not grieve; they simply carry on for as long as it lasts.

यहाँ इस बिना रुके चलते आने-जाने में, जो गिरने और उठने से बना है, समझदार लोग शोक नहीं करते, वे बस जब तक चले, चलते रहते हैं।

5.20.37

भावाभावविनिर्मुक्तं जरामरणवर्जितम् । संस्मरात्मानमव्यग्रो मा विमूढमना भव ॥ ३७ ॥

bhāvābhāvavinirmuktaṃ jarāmaraṇavarjitam | saṃsmarātmānamavyagro mā vimūḍhamanā bhava || 37 ||

Remember the self that is free from being and non-being, free from old age and death. Stay calm, and do not let your mind become confused.

उस आत्मा को याद करो जो होने और न होने से परे है, जो बुढ़ापे और मौत से मुक्त है। शांत रहो, और मन को उलझने मत दो।

5.20.38

न ते दुःखं न ते जन्म न ते माता न ते पिता । आत्मैवासि न सद्बुद्धे त्वमन्यः कश्चिदेव हि ॥ ३८ ॥

na te duḥkhaṃ na te janma na te mātā na te pitā | ātmaivaāsi na sadbudhhe tvamanyaḥ kaścideva hi || 38 ||

You have no sorrow, you have no birth, you have no mother, you have no father - you are the self alone, you who know the truth; you are surely nothing else.

तुम्हें कोई दुख नहीं, तुम्हारा कोई जन्म नहीं, तुम्हारी कोई माँ नहीं, तुम्हारा कोई पिता नहीं, तुम सच जानने वाले, सिर्फ़ आत्मा हो; तुम इसके सिवा और कुछ नहीं हो।

5.20.39

अस्यां संसारयात्रायां नानाभिनयदायिनः । अज्ञा एव नराः साधुरसभावसमन्विताः ॥ ३९ ॥

asyāṃ saṃsārayātrāyāṃ nānābhinayadāyinaḥ | ajñā eva narāḥ sādhurasabhāvasamanvitāḥ || 39 ||

In this journey through worldly life, which hands out many kinds of roles to play, only the ignorant, among men, are filled with the feeling that it is real and good.

इस सांसारिक जीवन की यात्रा में, जो तरह-तरह की भूमिकाएँ देती है, केवल अनजान लोग ही यह मानकर उलझ जाते हैं कि यह सच और अच्छा है।

5.20.40

मध्यस्थदृष्टयः स्वस्था यथाप्राप्तार्थदर्शिनः । तज्ज्ञास्तु प्रेक्षका एव साक्षिधर्मे व्यवस्थिताः ॥ ४० ॥

madhyasthadṛṣṭayaḥ svasthā yathāprāptārthadarśinaḥ | tajjñāstu prekṣakā eva sākṣidharme vyavasthitāḥ || 40 ||

But those who know the truth are impartial in their view, at ease within themselves, seeing things just as they come. They remain mere onlookers, standing firm as witnesses.

पर सच जानने वाले लोग निष्पक्ष नज़र रखते हैं, खुद में शांत रहते हैं, और जो सामने आए उसे वैसे ही देखते हैं। वे बस देखने वाले बनकर, गवाह की तरह डटे रहते हैं।

5.20.41

कर्तारोऽपि न कर्तारो यथा दीपा निशागमे । आलोककर्मणामेवं तज्ज्ञा लोकस्थितावि॒ह ॥ ४१ ॥

kartāro'pi na kartāro yathā dīpā niśāgame | ālokakarmaṇāmevaṃ tajjñā lokasthitāviha || 41 ||

Though they act, those who know the truth are not really the doers of their acts - just as lamps, when night falls, simply do the work of giving light. In just this way, those who know the truth go on living in the world.

सच जानने वाले लोग काम तो करते हैं, पर असल में करने वाले नहीं होते, जैसे रात होने पर दीये बस रोशनी देने का काम करते हैं। इसी तरह सच जानने वाले दुनिया में जीते रहते हैं।

5.20.42

प्रतिबिम्बे न दृश्यन्ते स्वात्मबिम्बगतैरपि । यथा दर्पणरत्नाद्यास्तथा कार्ये महाधियः ॥ ४२ ॥

pratibimbe na dṛśyante svātmabimbagatairapi | yathā darpaṇaratnādyāstathā kārye mahādhiyaḥ || 42 ||

A mirror or a jewel is not touched by the reflections that appear in it, even though those images belong to it. In the same way, the wise, though they act, are not touched by their actions.

आईने या मणि में जो परछाइयाँ दिखती हैं, उनसे आईना या मणि खुद नहीं बदलता, भले ही वे परछाइयाँ उसी की हों। इसी तरह समझदार लोग काम करते हुए भी अपने कामों से अछूते रहते हैं।

5.20.43

सर्वैषणामयकलङ्कविवर्जितेन स्वस्थात्मभावकलितेन हृदब्जमध्ये । पुत्रात्मनात्मनि महामुनिनामुनैव संत्यज्य संभ्रममलं परितोषमेहि ॥ ४३ ॥

sarvaiṣaṇāmayakalaṅkavivarjitena svasthātmabhāvakalitena hṛdabjamadhye | putrātmanātmani mahāmuninmāmunaiava saṃtyajya saṃbhramamalaṃ paritoṣamehi || 43 ||

My child, through your own self, seated in the middle of the lotus of the heart, and taught by this great sage himself, who is free from every trace of craving and rests calmly in his own being - give up all this confusion, no more of it, and come to true contentment.

बेटा, अपनी ही आत्मा के ज़रिए, हृदय-कमल के बीच में बैठी आत्मा में, और उस महामुनि की सिखाई बात से, जो हर तरह की चाह के दाग से मुक्त है और अपने आप में शांत टिका है, इस उलझन को छोड़ दो, बस अब बहुत हुआ, और सच्चे संतोष को पा लो।

Chapter 21

5.21.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवं प्रबोधितस्तेन तदा पुण्येन पावनः । प्रबोधमाप प्राकाश्यं प्रभात इव भूतलम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ prabodhitastena tadā puṇyena pāvanaḥ | prabodhamāpa prākāśyaṃ prabhāta iva bhūtalam || 1 ||

Sri Vasishtha said: Woken up in this way by Punya, Pavana became clear and bright, like the earth at dawn.

श्री वसिष्ठ बोले, इस तरह पुण्य के जगाने से पावन साफ़ और उजला हो गया, जैसे सुबह होते ही धरती उजली हो जाती है।

5.21.2

उभावपि ततः सिद्धौ ज्ञानविज्ञानपारगौ । विचेरतुर्वने तस्मिन्यावदिच्छमनिन्दितौ ॥ २ ॥

ubhāvapi tataḥ siddhau jñānavijñānapāragau | viceraturvane tasminyāvadicchamaninditau || 2 ||

Then the two of them, now fully accomplished, masters of both knowledge and its practice, wandered through that forest as they wished, free of any fault.

फिर वे दोनों, अब पूरी तरह सिद्ध, ज्ञान और उसके अभ्यास दोनों में निपुण होकर, उस जंगल में जैसे चाहें वैसे घूमते रहे, बिना किसी दोष के।

5.21.3

ततः कदाचित्कालेन निर्वाणपदमागतौ । तौ विदेहौ गतस्नेहौ दीपाविव शमं गतौ ॥ ३ ॥

tataḥ kadācitkālena nirvāṇapadamāgatau | tau videhau gatasnehaudīpāviva śamaṃ gatau || 3 ||

Then, after some time, the two of them reached the state beyond all becoming. Free of body and free of any bond of affection, they grew still, like two lamps going out.

फिर, कुछ समय बाद, वे दोनों उस दशा में पहुँच गए जो हर जन्म से परे है। शरीर से मुक्त और हर मोह-बंधन से मुक्त होकर, वे शांत हो गए, जैसे दो दीये बुझ जाते हैं।

5.21.4

एवं प्राग्भुक्तदेहानामनन्ता जनबन्धुता । आः कैः किं गृह्यते ताभ्यः किं वा संत्यज्यतेऽनघ ॥ ४ ॥

evaṃ prāgbhuktadehānāmanantā janabandhutā | āḥ kaiḥ kiṃ gṛhyate tābhyaḥ kiṃ vā saṃtyajyate'nagha || 4 ||

In this way, the ties of kinship among people who have worn bodies before are endless. So tell me, blameless one, what does anyone really gain by holding on to them, and what does anyone really lose by giving them up?

इस तरह जिन लोगों ने पहले भी शरीर धारण किए हैं, उनके बीच नाते-रिश्ते अनगिनत हैं। तो बताओ, हे निष्पाप, इन्हें पकड़कर आदमी को क्या मिलता है, और इन्हें छोड़ने से उसका क्या जाता है?

5.21.5

तस्मादासामनन्तानां तृष्णानां रघुनन्दन । उपायस्त्याग एवैको न नाम परिपालनम् ॥ ५ ॥

tasmādāsāmanantānāṃ tṛṣṇānāṃ raghunandana | upāyastyāga evaiko na nāma paripālanam || 5 ||

So, Rama, joy of the Raghu family, the only way to deal with these endless desires is to give them up. It is never right to nurse and protect them.

इसलिए, हे राम, इन अनगिनत इच्छाओं से निपटने का बस एक ही तरीका है, इन्हें छोड़ देना। इन्हें पाल-पोसकर रखना कभी सही नहीं है।

5.21.6

चिन्तनेनैधते चिन्ता त्विन्धनेनेव पावकः । नश्यत्यचिन्ततेनैव विनेन्धनमिवानलः ॥ ६ ॥

cintanenaidhate cintā tvindhaneneva pāvakaḥ | naśyatyacintyatenaiva vinenadhanamivānalaḥ || 6 ||

By dwelling on it, worry grows, just as fire grows with fuel. By not dwelling on it, it dies out, just as fire dies without fuel.

उसके बारे में सोचते रहने से चिंता बढ़ती है, ठीक जैसे ईंधन से आग बढ़ती है। उसके बारे में न सोचने से वह मिट जाती है, ठीक जैसे ईंधन के बिना आग बुझ जाती है।

5.21.7

ध्येयत्यागरथारूढः करुणोदारया दृशा । लोकमालोकयन्दीनमातिष्ठोत्तिष्ठ राघव ॥ ७ ॥

dhyeyatyāgarathārūḍhaḥ karuṇodārayā dṛśā | lokamālokayandīnamātiṣṭhottiṣṭha rāghava || 7 ||

Climb onto the chariot of giving up whatever your mind fixes on, and look at this suffering world with a wide, kind eye. Hold to this, and rise, Rama.

जिस पर मन टिकता है, उसे छोड़ने के रथ पर चढ़ जाओ, और इस दुखी संसार को बड़ी और दयालु नज़र से देखो। इस पर टिके रहो, और उठो, हे राम।

5.21.8

एषा ब्राह्मी स्थितिः स्वच्छा निष्कामा विगतामया । एनां प्राप्य महाबाहो विमूढोऽपि न मुह्यति ॥ ८ ॥

eṣā brāhmī sthitiḥ svacchā niṣkāmā vigatāmayā | enāṃ prāpya mahābāho vimūḍho'pi na muhyati || 8 ||

This is the state of Brahman: clear, free of desire, free of any sickness. Once you reach it, mighty-armed one, even a confused person stops being confused.

यही ब्रह्म की स्थिति है, साफ़, इच्छा से मुक्त, हर रोग से मुक्त। इसे पाकर, हे महाबाहु, भ्रमित आदमी भी भ्रमित नहीं रहता।

5.21.9

एकं विवेकं सुहृदमेकां प्रौढसखीं धियम् । आदाय विहरन्नेव संकटेषु न मुह्यति ॥ ९ ॥

ekaṃ vivekaṃ suhṛdam ekāṃ prauḍhasakhīṃ dhiyam | ādāya viharann eva saṃkaṭeṣu na muhyati || 9 ||

Take clear judgment as your one friend, and a steady, mature mind as your one companion. Simply by living with these two, you will not lose your way, even in danger.

साफ़ समझ को अपना एक दोस्त बनाओ, और स्थिर, परिपक्व मन को अपना एक साथी बनाओ। बस इन दोनों के साथ रहने से ही, खतरे में भी तुम भटकोगे नहीं।

5.21.10

विनिवारितसर्वार्थादपहस्तितबान्धवात् । न स्वधैर्यादृते कश्चिदभ्युद्धरति संकटात् ॥ १० ॥

vinivāritasarvārthād apahastitabāndhavāt | na svadhairyaādṛte kaścid abhyuddharati saṃkaṭāt || 10 ||

When every purpose is blocked and even one's own family turns away, nothing but one's own courage can pull a person out of danger.

जब हर मकसद रुक जाए और अपने ही घरवाले भी मुँह मोड़ लें, तब अपने ही साहस के सिवा कोई भी आदमी को खतरे से नहीं निकाल सकता।

5.21.11

वैराग्येणाथ शास्त्रेण महत्त्वादिगुणैरपि । यत्नेनापद्विघातार्थं स्वयमेवोन्नयेन्मनः ॥ ११ ॥

vairāgyeṇātha śāstreṇa mahattvādiguṇairapi | yatnenāpadvighātārthaṃ svayamevonnayenmanaḥ || 11 ||

Through detachment, through the teachings, and through qualities like true greatness, one should, by one's own effort, raise up one's own mind, in order to fend off misfortune.

वैराग्य से, शास्त्रों से, और सच्ची महानता जैसे गुणों से, आदमी को अपनी ही मेहनत से अपने मन को ऊपर उठाना चाहिए, ताकि मुसीबत को रोका जा सके।

5.21.12

न तत्त्रिभुवनैश्वर्यान्न कोशाद्रत्नधारिणः । फलमासाद्यते चित्ताद्यन्महत्त्वोपबृंहितात् ॥ १२ ॥

na tattribhuvanaiśvaryānna kośādratnadhāriṇaḥ | phalamāsādyate cittādyanmahattvopabṛṃhitāt || 12 ||

The reward that comes from a mind grown great is not gained by ruling the three worlds, nor from a treasury full of jewels.

जो फल एक महान बने हुए मन से मिलता है, वह तीनों लोकों पर राज करने से नहीं मिलता, न ही रत्नों से भरे खजाने से मिलता है।

5.21.13

तदेतस्मिञ्जगत्कुक्षौ पातोत्पातनदोलनैः । पतन्ति पुरुषा ये वै मनस्तेषां गतज्वरम् ॥ १३ ॥

tadetasmiñjagatkukṣau pātotpātanadolanaiḥ | patanti puruṣā ye vai manasteṣāṃ gatajvaram || 13 ||

So within the belly of this world, tossed about by the swings of rising and falling, men keep falling, yet their minds stay free of fever.

तो इस संसार के पेट के भीतर, उठने और गिरने के इन झूलों में हिलते हुए, आदमी गिरते ही रहते हैं, फिर भी उनका मन बुखार से मुक्त रहता है।

5.21.14

पूर्णे मनसि संपूर्णं जगत्सर्वं सुधाद्रवैः । उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मास्तृतैव भूः ॥ १४ ॥

pūrṇe manasi saṃpūrṇaṃ jagatsarvaṃ sudhādravaiḥ | upānadrūḍhapādasya nanu carmāstṛtaiva bhūḥ || 14 ||

When the mind is full and content, the whole world turns into streams of nectar for that person, just as for a man wearing sandals, the whole earth feels covered in leather.

जब मन भरा हुआ और संतुष्ट होता है, तो उस आदमी के लिए पूरी दुनिया अमृत की धाराओं जैसी हो जाती है, ठीक जैसे जूते पहने आदमी को लगता है कि पूरी धरती चमड़े से ढकी है।

5.21.15

वैराग्यात्पूर्णतामेति मनो नाशावशानुगम् । आशया रिक्ततामेति शरदेव सरोमलम् ॥ १५ ॥

vairāgyātpūrṇatāmeti mano nāśāvaśānugam | āśayā riktatāmeti śaradeva saramalam || 15 ||

Through detachment, the mind, which left to itself only heads toward ruin, becomes full. Through craving, it turns empty, the way a muddy pond dries up in autumn.

वैराग्य से मन, जो अपने हाल पर छोड़ दिया जाए तो बस बर्बादी की ओर जाता है, भर जाता है। लालसा से वह खाली हो जाता है, ठीक जैसे शरद ऋतु में एक कीचड़ भरा तालाब सूख जाता है।

5.21.16

हृदयं शून्यतामेति प्रकटीकृतकोटरम् । अगस्तिपीतार्णववदाशाविवशचेतसाम् ॥ १६ ॥

hṛdayaṃ śūnyatāmeti prakaṭīkṛtakoṭaram | agastipītārṇavavadāśāvivaśacetasām || 16 ||

For those whose minds are helpless in the grip of craving, the heart turns hollow, its cavity laid bare, like the ocean after the sage Agastya drank it dry.

जिनका मन लालसा की पकड़ में बेबस है, उनका हृदय खोखला हो जाता है, उसकी खाली जगह साफ़ दिख जाती है, ठीक जैसे ऋषि अगस्ति के पी जाने के बाद समुद्र खाली हो गया था।

5.21.17

यस्य चित्ततरौ स्फारे तृष्णाचपलमर्कटी । न वल्गति महत्तस्य राजते हृद्वनं ततम् ॥ १७ ॥

yasya cittatarau sphāre tṛṣṇācapalamarkaṭī | na valgati mahattasya rājate hṛdvanam tatam || 17 ||

When the restless monkey of craving does not leap about in the wide tree of the mind, that person's heart, spread out like a forest, shines bright.

जब मन के फैले हुए पेड़ पर लालसा का बेचैन बंदर उछल-कूद नहीं करता, तो उस आदमी का हृदय, जो जंगल की तरह फैला है, चमक उठता है।

5.21.18

पद्माक्षकोशं त्रिजगद्गोष्पदं योजनव्रजम् । निमेषार्धं महाकल्पः स्पृहारहितचेतसाम् ॥ १८ ॥

padmākṣakośaṃ trijagadgoṣpadaṃ yojanavrajam | nimeṣārdhaṃ mahākalpaḥ spṛhārahitacetasām || 18 ||

For minds free of longing, the three worlds fit in a lotus cup, a journey of many miles is no bigger than a cow's hoofprint, and half a blink of an eye lasts as long as a great cosmic age.

जिन मनों में कोई लालसा नहीं, उनके लिए तीनों लोक एक कमल के प्याले जितने हैं, कई मील की यात्रा गाय के खुर के निशान जितनी है, और आँख का आधा झपकना भी एक महाकल्प जितना लंबा है।

5.21.19

शीतता सा न शीतांशोर्न हिमाचलकन्दरे । न रम्भाचन्दनावल्यां निःस्पृहेषु मनःसु या ॥ १९ ॥

śītatā sā na śītāṃśor na himācalakandare | na rambhācandanāvalyāṃ niḥspṛheṣu manaḥsu yā || 19 ||

The coolness found in minds free of craving is not found in the cool-rayed moon, not in a cave in the Himalayas, not in rows of banana trees and sandalwood.

जो शीतलता लालसा-रहित मन में होती है, वह न तो शीतल किरणों वाले चाँद में है, न हिमालय की किसी गुफा में, न केले और चंदन की कतारों में।

5.21.20

न तथा भाति पूर्णेन्दुर्न पूर्णः क्षीरसागरः । न लक्ष्मीवदनं कान्तं स्पृहाहीनं यथा मनः ॥ २० ॥

na tathā bhāti pūrṇendur na pūrṇaḥ kṣīrasāgaraḥ | na lakṣmīvadanaṃ kāntaṃ spṛhāhīnaṃ yathā manaḥ || 20 ||

The full moon does not shine like this, the brimming ocean of milk is not this bright, and even the lovely face of the goddess Lakshmi does not shine like this. Only a mind free of craving shines this way.

पूरा चाँद भी ऐसा नहीं चमकता, दूध से भरा सागर भी इतना उज्ज्वल नहीं है, और देवी लक्ष्मी का सुंदर मुख भी ऐसा नहीं चमकता। ऐसे तो बस लालसा-रहित मन ही चमकता है।

5.21.21

यथाब्दलेखा शशिनं सुधालेपं मषी यथा । दूषयत्येवमेवान्तर्नरमाशापिशाचिका ॥ २१ ॥

yathābda-lekhā śaśinaṃ sudhālepaṃ maṣī yathā | dūṣayatyevam-evāntar-naramāśāpiśācikā || 21 ||

Just as a streak of cloud dims the moon, and just as a smear of soot dims something coated with nectar, in the same way, the demoness called craving corrupts a man from within.

जैसे बादल की एक धारी चाँद को धुंधला कर देती है, और जैसे कालिख का एक दाग अमृत से लिपे किसी चीज़ को धुंधला कर देता है, वैसे ही लालसा नाम की राक्षसी आदमी को भीतर से बिगाड़ देती है।

5.21.22

आशाख्याश्चित्तवृक्षस्य शाखाः स्थगितदिक्तटाः । तासु च्छिन्नास्वरूपत्वं याति चित्तमहाद्रुमः ॥ २२ ॥

āśākhyāścittavṛkṣasya śākhāḥ sthagitadiktaṭāḥ | tāsu chchinnāsvārūpatvaṃ yāti cittamahādrumaḥ || 22 ||

Craving forms the branches of the mind's tree, and they block out the horizon in every direction. When those branches are cut away, the great tree of the mind itself dissolves into formlessness.

लालसा ही मन के पेड़ की डालियाँ हैं, और वे हर दिशा में क्षितिज को ढक लेती हैं। जब वे डालियाँ काट दी जाती हैं, तो मन का वह विशाल पेड़ ही निराकार हो जाता है।

5.21.23

छिन्नतृष्णामहाशाखे चित्तस्थाणौ स्थितिं गते । एकरूपतया धैर्यं प्रयाति शतशाखताम् ॥ २३ ॥

chinnatṛṣṇāmahāśākhe cittasthāṇau sthitiṃ gate | ekarūpatayā dhairyaṃ prayāti śataśākhatām || 23 ||

When the stump of the mind, with its great branch of craving cut away, comes to rest, then steadiness, though it is one single thing, grows a hundred new branches.

जब मन का ठूँठ, जिसकी लालसा वाली बड़ी डाल कट चुकी है, शांत होकर टिक जाता है, तो स्थिरता, जो खुद एक ही है, सौ नई डालियों में फैल जाती है।

5.21.24

अनस्तमितधैर्येण तेन चित्ते क्षयं गते । तत्पदं प्राप्यते राम यत्र नाशो न विद्यते ॥ २४ ॥

anastamitadhairyeṇa tena citte kṣayaṃ gate | tatpadaṃ prāpyate rāma yatra nāśo na vidyate || 24 ||

Through that steadiness which never sets, once the mind itself has dissolved, one reaches that state, Rama, where nothing is ever lost.

उस स्थिरता के सहारे जो कभी नहीं ढलती, जब मन खुद घुल जाता है, तो आदमी उस दशा को पा लेता है, हे राम, जहाँ कुछ भी कभी नहीं खोता।

5.21.25

एतासां चित्तवृत्तीनामाशानामुत्तमाशयः न ददासि प्ररोहं चेत्तद्भयं नास्ति राघव ॥ २५ ॥

etāsāṃ cittavṛttīnāmāśānāmuttamāśayaḥna dadāsi prarohaṃ cettadbhayaṃ nāsti rāghava || 25 ||

Noble one, if you do not let these desires, these movements of the mind, take root and sprout, then there is nothing to fear, Rama.

हे उदार मन वाले, अगर तुम इन इच्छाओं को, मन की इन हरकतों को, जड़ पकड़ने और अंकुरित होने का मौका न दो, तो फिर डरने की कोई बात नहीं है, हे राम।

5.21.26

चित्तं वृत्तिविहीनं ते यदा यातमचित्तताम्तदा मोक्षमयीमन्तः सत्तामाप्नोषि तां ततामॄ ॥ २६ ॥

cittaṃ vṛttivihīnaṃ te yadā yātamacittatāmtadā mokṣamayīmantaḥ sattāmāpnoṣi tāṃ tatām || 26 ||

When your mind, empty of all its movements, reaches the state of no-mind, then you attain that vast inner reality which is liberation itself.

जब तुम्हारा मन, अपनी सारी हरकतों से खाली होकर, अ-मन की दशा में पहुँच जाता है, तब तुम्हें वह विशाल भीतरी सच्चाई मिलती है, जो मोक्ष ही है।

5.21.27

चित्तकौशिकपक्षिण्या तृष्णया क्षुभ्दयान्तरेअमङ्गलानि विस्तारमलमायान्ति राघव ॥ २७ ॥

cittakauśikapakṣiṇyā tṛṣṇayā kṣubdhayāntareamaṅgalāni vistāramalamāyānti rāghava || 27 ||

When craving, the owl-bird of the mind, grows restless within, misfortunes come pouring in without limit, Rama.

जब लालसा, जो मन का उल्लू-पक्षी है, भीतर बेचैन हो जाती है, तो दुर्भाग्य बिना किसी सीमा के उमड़ आता है, हे राम।

5.21.28

चिन्तनं वृत्तिरित्युक्तं वर्तते चित्तमाशयाचित्तवृत्तिमतो ह्याशां त्यक्त्वा निश्चित्ततां व्रज ॥ २८ ॥

cintanaṃ vṛttirityuktaṃ vartate cittamāśayācittavṛttimato hyāśāṃ tyaktvā niścittatāṃ vraja || 28 ||

Dwelling on something is what we call a movement of the mind, and the mind runs on hope and craving. Since the mind's movements come from this craving, give up craving and go to the state beyond mind.

किसी बात पर टिके रहना ही मन की हरकत कहलाती है, और मन आशा और लालसा के सहारे ही चलता है। चूँकि मन की हरकतें इसी लालसा से आती हैं, इसलिए लालसा को छोड़ो और मन से परे की दशा में चले जाओ।

5.21.29

यो यया वर्तते वृत्त्या स तयैव विना क्षयीअतश्चित्तोपशान्त्यर्थं तद्वृत्तिं प्रक्षयं नय ॥ २९ ॥

yo yayā vartate vṛttyā sa tayaiva vinā kṣayīataścittopaśāntyarthaṃ tadvṛttiṃ prakṣayaṃ naya || 29 ||

Whatever runs on some particular activity dies out the moment that activity stops. So, to bring the mind to rest, put an end to its activity completely.

जो भी किसी खास हरकत के सहारे चलता है, वह उस हरकत के रुकते ही मिट जाता है। इसलिए मन को शांत करने के लिए, उसकी हरकत को पूरी तरह खत्म कर दो।

5.21.30

प्रशमितसकलैषणो महात्मन्भव भवबन्धमपास्य मुक्तचित्तःमनसि निगडरज्जवः कदाशाः परिगलितासु च तासु को न मुक्तः ॥ ३० ॥

praśamitasakalaiṣaṇo mahātmanbhava bhavabandhamapāsya muktacittaḥmanasi nigaḍarajjavaḥ kadāśāḥ parigalitāsu ca tāsu ko na muktaḥ || 30 ||

Great soul, still every last craving in yourself. Cast off the bondage of worldly existence and set your mind free. The ropes and shackles in the mind are these bad desires. Once they have fallen away completely, who is not free?

हे महात्मा, अपनी हर आखिरी लालसा को शांत कर दो। सांसारिक बंधन को उतार फेंको और अपने मन को मुक्त कर लो। मन में जो रस्सियाँ और बेड़ियाँ हैं, वे यही बुरी इच्छाएँ हैं। जब ये पूरी तरह गिर जाती हैं, तो फिर कौन मुक्त नहीं है?

Chapter 22

5.22.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथवा रघुवंशाख्यनभःपूर्णनिशाकर । बलिवद्बुद्धिभेदेन ज्ञानमासादयामलम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | athavā raghuvaṁśākhyanabhaḥpūrṇaniśākara | balivadbuddhibhedena jñānamāsādayāmalam || 1 ||

Sri Vasishtha said: Or, you who are the moon filling the sky of the Raghu family, reach pure knowledge as Bali did, through a different turn of understanding.

श्री वसिष्ठ ने कहा: या फिर, तुम जो रघुवंश के आकाश को भरने वाले चाँद हो, बलि की तरह ही समझ के एक अलग रास्ते से शुद्ध ज्ञान पा लो।

5.22.2

श्रीराम उवाच । भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्वत्प्रसादान्मया हृदि । प्राप्तं प्राप्तव्यमखिलं विश्रान्तं चामले पदे ॥ २ ॥

śrīrāma uvāca | bhagavansarvadharmajña tvatprasādānmayā hṛdi | prāptaṃ prāptavyamakhilaṃ viśrāntaṃ cāmale pade || 2 ||

Sri Rama said: Lord, knower of every sacred duty, by your grace I have gained in my heart everything there was to gain, and my heart rests in the pure state.

श्रीराम ने कहा: भगवन, आप हर धर्म को जानने वाले हैं, आपकी कृपा से मैंने अपने मन में वह सब पा लिया है जो पाने योग्य था, और मेरा मन उस शुद्ध अवस्था में शांत होकर टिक गया है।

5.22.3

शरदीवाम्बरादभ्रमदभ्रं मम चेतसः । विभो व्यपगतं सर्वं तृष्णाख्यं तन्महातमः ॥ ३ ॥

śaradīvāmbarādabhramadabhraṃ mama cetasaḥ | vibho vyapagataṃ sarvaṃ tṛṣṇākhyam tanmahātamaḥ || 3 ||

As in autumn the thick clouds vanish from the sky, so, lord, that great darkness called craving has left my mind completely.

जैसे शरद ऋतु में घने बादल आकाश से हट जाते हैं, वैसे ही, हे प्रभु, तृष्णा नाम का वह बड़ा अंधकार मेरे मन से पूरी तरह मिट गया है।

5.22.4

अमृतापूरितः स्वस्थः शीतलात्मा महाद्युतिः । तिष्ठाम्यानन्दवानन्तः सायं पूर्णं इवोडुराट् ॥ ४ ॥

amṛtāpūritaḥ svasthaḥ śītalātmā mahādyutiḥ | tiṣṭhāmyānandavānantaḥ sāyaṃ pūrṇaṃ ivōḍurāṭ || 4 ||

Filled with nectar, at ease, cool at heart, greatly shining, I remain full of bliss within, like the full moon in the evening sky.

अमृत से भरा हुआ, सहज, मन से शीतल, तेज से भरपूर, मैं भीतर से आनंद से भरा हुआ हूँ, जैसे शाम के आकाश में पूरा चाँद।

5.22.5

अशेषसंशयाम्भोदशरत्समय किंत्वहम् । तृप्तिमेषां न गच्छामि वचसां वदतस्तव ॥ ५ ॥

aśeṣasaṃśayāmbhodasaratsamaya kintvaham | tṛptimeṣāṃ na gacchāmi vacasāṃ vadatastava || 5 ||

You are the autumn season that clears away every cloud of doubt, yet I am still not satisfied, I cannot get enough of the words you speak.

आप शरद ऋतु के समान हैं जो संदेह के हर बादल को साफ कर देते हैं, फिर भी मेरा मन नहीं भरता, आपके बोले हुए वचनों से मेरी तृप्ति नहीं होती।

5.22.6

बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिं पुनर्मद्बोधवृद्धये । विभो कथय खिद्यन्ते सन्तो नावनतं प्रति ॥ ६ ॥

baler vijñānasampāptiṃ punar madbodhavṛddhaye | vibho kathaya khidyante santo nāvanataṃ prati || 6 ||

Tell me again, lord, how Bali arrived at true knowledge, so that my own understanding may grow. Good people never grow weary of someone who bows before them.

हे प्रभु, फिर से बताइए कि बलि को सच्चा ज्ञान कैसे मिला, ताकि मेरी समझ और बढ़े। भले लोग उस पर कभी नहीं थकते जो उनके आगे झुकता है।

5.22.7

श्रीवसिष्ठ उवाच । शृणु राघव ते वक्ष्ये बलेर्वृत्तान्तमुत्तमम् । श्रुतेन येन तं तत्त्वबोधं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ७ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | śṛṇu rāghava te vakṣye baler vṛttāntamuttamam | śrutena yena taṃ tattvabodhaṃ prāpsyasi śāśvatam || 7 ||

Sri Vasishtha said: Listen, Rama, I will tell you the excellent story of Bali. By hearing it you will gain that lasting knowledge of the truth.

श्री वसिष्ठ ने कहा: सुनो राघव, मैं तुम्हें बलि की उत्तम कथा सुनाता हूँ। इसे सुनकर तुम्हें सत्य का वह स्थायी ज्ञान प्राप्त होगा।

5.22.8

अस्त्यस्मिञ्जगतः कोशे कस्मिंश्चिद्दिङ्निकुञ्जके । पातालमिति विख्यातो लोको भूमेरधः स्थितः ॥ ८ ॥

astyasmiñjagataḥ kośe kasmiṃścid diṅnikuñjake | pātālamiti vikhyāto loko bhūmer adhaḥ sthitaḥ || 8 ||

In this vast shell of the world, in some hidden corner of space, there is a world known as Patala, lying below the earth.

इस विशाल जगत के भीतर, दिशाओं के किसी छिपे हुए कोने में, पाताल नाम से मशहूर एक लोक है, जो धरती के नीचे स्थित है।

5.22.9

क्षीरोदार्णवजाताभिर्दिरधाभिरमृतांशुभिः । क्वचिद्दानवकन्याभिर्भाति निर्विवरान्तरः ॥ ९ ॥

kṣīrodārṇavajātābhir diradhābhir amṛtāṃśubhiḥ | kvacid dānavakanyābhir bhāti nirvivarāntaraḥ || 9 ||

In some part it shines, packed full, with demon maidens born from the ocean of milk, radiant like moonlight.

किसी भाग में यह क्षीरसागर से जन्मी दानव-कन्याओं से भरा हुआ चमकता है, जो चाँदनी की तरह उज्ज्वल हैं।

5.22.10

जिह्वागणोद्दामरवैर्विलोलरसनायुगैः । क्वचिद्भोगिभिरापूर्णः सहस्रशतमस्तकैः ॥ १० ॥

jihvāgaṇoddamaravair vilolarasanāyugaiḥ | kvacid bhogibhir āpūrṇaḥ sahasraśatamastakaiḥ || 10 ||

In some part it is filled with serpents that have hundreds of thousands of heads, hissing loudly from their many tongues, their forked tongues flickering.

किसी भाग में यह ऐसे सर्पों से भरा है जिनके सैकड़ों-हज़ारों सिर हैं, जो अपनी अनेक जीभों से ज़ोर से फुंकारते हैं, उनकी दो-दो जीभें कांपती रहती हैं।

5.22.11

देहाद्रिवलिताशेषविश्वोद्धरणघस्मरैः । क्वचिद्दनुसुतैर्व्याप्तश्चलद्भिरिव मेरुभिः ॥ ११ ॥

dehādrivalitāśeṣaviśvoddharaṇaghasmaraiḥ | kvaciddanusutairvyāptaścaladbhiriva merubhiḥ || 11 ||

In some part it is filled with the sons of Danu, mountain-bodied, hungry to hold up the whole universe coiled around them, like moving mountains of Meru.

किसी भाग में यह दनु के पुत्रों से भरा है, जिनके शरीर पर्वत जैसे हैं, जो अपने चारों ओर लिपटे हुए पूरे विश्व को धारण करने के लिए उतावले हैं, जैसे चलते हुए मेरु पर्वत।

5.22.12

कुम्भकूटाग्रविश्रान्तवसुधामण्डलोदरैः । क्वचिद्दिग्दन्तिभिर्दन्तद्रुमाद्रिभिरुपाश्रितः ॥ १२ ॥

kumbhakūṭāgraviśrāntavasudhāmaṇḍalodaraiḥ | kvaciddigdantibhirdaṇḍadrumādribhirupāśritaḥ || 12 ||

In some part it rests on the elephants that hold up the directions of the world. The whole circle of the earth rests on the crowns of their heads, and their tusks are like trees, like mountains.

किसी भाग में यह उन हाथियों पर टिका है जो दिशाओं को थामे हुए हैं। पूरी पृथ्वी का घेरा उनके सिर के ऊपरी हिस्से पर टिका है, और उनके दांत पेड़ों जैसे, पहाड़ों जैसे हैं।

5.22.13

महाकटकटाशब्दत्रस्तभूतपरम्परैः । क्वचिद्दुर्गन्धभूताभैरधोनारकमण्डलैः ॥ १३ ॥

mahākaṭakaṭāśabdatrastabhūtaparamparaiḥ | kvaciddurgandhabhūtābhairadhonārakamaṇḍalaiḥ || 13 ||

In some part there are the circles of hell below, foul-smelling, ghostly, their great crackling roar terrifying rows of beings.

किसी भाग में नीचे नरक के घेरे हैं, जिनमें से बदबू आती है, जो भूतों जैसे दिखते हैं, और जिनकी भारी कड़कड़ाती आवाज़ से जीवों की कतारें डर जाती हैं।

5.22.14

आभूतलमभिप्रोतसप्तपातालमण्डलैः । क्वचिद्रत्नाकरैर्व्याप्तः पातालैर्विवरैरिव ॥ १४ ॥

ābhūtalamabhiprotasaptapātālamaṇḍalaiḥ | kvacidratnākarairvyāptaḥ pātālairvivarairiva || 14 ||

Its seven circles are threaded together, reaching up to the surface of the earth. In some part it is filled with oceans, like hollow caverns of the underworld.

इसके सातों घेरे आपस में गुंथे हुए हैं और धरती की सतह तक पहुँचते हैं। किसी भाग में यह सागरों से भरा है, मानो पाताल की खोखली गुफाएँ हों।

5.22.15

सुरासुरशिरःसुप्तपादाम्भोरुहपांसुना । क्वचिद्भगवता तेन कपिलेन पवित्रितः ॥ १५ ॥

surāsurśiraḥsuptapādāmbhoruhapāṃsunā | kvacidbhagavatā tena kapilena pavitritaḥ || 15 ||

In some part it is made sacred by the lord Kapila himself, at whose lotus feet the heads of gods and demons come to rest, touching the dust there.

किसी भाग में इसे स्वयं भगवान कपिल ने पवित्र किया है, जिनके चरण-कमलों की धूल पर देवताओं और असुरों के सिर आकर टिकते हैं।

5.22.16

आसुरीसंभृतानन्तपूजनक्रीडनैषिणा । क्वचिद्भगवता तेन हाटकेशेन पालितः ॥ १६ ॥

āsurīsaṃbhṛtānantapūjanakrīḍanaiṣiṇā | kvacidbhagavatā tena hāṭakeśena pālitaḥ || 16 ||

In some part it is guarded by the lord Hatakesha, who delights in the endless worship and games the demon women offer him.

किसी भाग में इसकी रक्षा भगवान हाटकेश करते हैं, जो असुर स्त्रियों द्वारा की गई अनंत पूजा और लीलाओं में आनंद लेते हैं।

5.22.17

तस्मिन्नसुरदोस्तम्भधार्यमाणमहाभरे । बभूव दानवो राजा विरोचनसुतो बलिः ॥ १७ ॥

tasminnasuradostambhadhāryamāṇamahābhare | babhūva dānavo rājā virocanasuto baliḥ || 17 ||

There, in that world upheld by the pillar-like arms of the demons, lived the demon king Bali, son of Virochana.

वहाँ, उस लोक में जो असुरों की खंभे जैसी भुजाओं पर टिका हुआ है, दानवों का राजा बलि रहता था, जो विरोचन का पुत्र था।

5.22.18

साक्रन्देन समं सर्वैः सुरविद्याधरोरगैः । पादसंवाहनं यस्य सुरराजेन वाञ्छितम् ॥ १८ ॥

sākrandena samaṃ sarvaiḥ suravidyādharoragaiḥ | pādasanvāhanaṃ yasya surarājena vāñchitam || 18 ||

Amid the clamor of all the gods, vidyadharas, and serpents together, even the king of the gods himself longed to massage his feet.

देवताओं, विद्याधरों और नागों की मिली-जुली पुकार के बीच, देवताओं का राजा स्वयं भी उसके पैर दबाने की इच्छा रखता था।

5.22.19

कोशस्त्रैलोक्यरत्नानां पाता सर्वशरीरिणाम् । धर्ता भुवनधर्तृणां यस्य पालयिता हरिः ॥ १९ ॥

kośastrailokyaratnānāṃ pātā sarvaśarīriṇām | dhartā bhuvanadhartṛṇāṃ yasya pālayitā hariḥ || 19 ||

He was the treasury of all the jewels of the three worlds, protector of every living being, the support of those who uphold the world, and even Hari himself watched over him.

वह तीनों लोकों के सभी रत्नों का खज़ाना था, हर जीव का रक्षक था, संसार को थामने वालों का आधार था, और स्वयं हरि उसकी रक्षा करते थे।

5.22.20

ऐरावणस्य संशोषं यन्नाम्ना कटभित्तयः । केकयेवाहिहृन्नाड्यो जग्मुराजग्मुरार्तताम् ॥ २० ॥

airāvaṇasya saṃśoṣaṃ yannāmnā kaṭabhittayaḥ | kekayevāhihṛnnāḍyo jagmurājagmurārtatām || 20 ||

At the mere sound of his name, the temples of Airavata's head dried up, and, like the veins of a snake-catcher gripped by fear, fell into anguish.

उसके नाम की आवाज़ मात्र से ऐरावत के सिर की कनपटियाँ सूख जातीं, और सर्प पकड़ने वाले की नसों की तरह पीड़ा से भर उठतीं।

5.22.21

प्रतापोग्रोष्मभिर्यस्य कल्पकाल इवाब्धयः । ययुः शोषोन्मुखाः सप्त सप्ततां कुपिताकृतेः ॥ २१ ॥

pratāpogroṣmabhiryasya kalpakāla ivābdhayaḥ | yayuḥ śoṣonmukhāḥ saptā saptatāṁ kupitākṛteḥ || 21 ||

By the fierce heat of his power, the seven oceans, as if at the hour of cosmic dissolution, verged on drying up, their surface turning wild as if in rage.

उसके प्रताप की तेज़ गर्मी से सातों सागर, मानो प्रलय के समय हों, सूखने की कगार पर पहुँच गए, और उनका रूप मानो क्रोध से उग्र हो उठा।

5.22.22

यदध्वराग्र्यधूमाभ्रराजयो वलिताब्धयः । ब्रह्माण्डकोटरस्यास्य सदा कवचतां ययुः ॥ २२ ॥

yadadhvarāgryadhūmābhrajayo valitābdhayaḥ | brahmāṇḍakoṭarasyāsya sadā kavacatāṃ yayuḥ || 22 ||

The lines of cloud rising from the smoke of his splendid sacrifices, curling around like the oceans, always became a shield covering the whole shell of the universe.

उसके भव्य यज्ञों के धुएँ से उठी बादलों की रेखाएँ, सागरों की तरह चारों ओर लिपटकर, हमेशा पूरे ब्रह्मांड के खोल की ढाल बन जातीं।

5.22.23

यस्य दृष्टिदृढाघातनुन्नाधारकुलाचलाः । विनमन्ति दिशः सर्वा लताः फलनता इव ॥ २३ ॥

yasya dṛṣṭidṛḍhāghātanunnādhārakulācalāḥ | vinamanti diśaḥ sarvā latāḥ phalanatā iva || 23 ||

His gaze struck so hard that it pressed down the great mountains that hold up the earth in every direction, and all the directions bowed low, like vines bending under the weight of their fruit.

उसकी दृष्टि की चोट इतनी कड़ी थी कि उसने हर दिशा में धरती को थामने वाले बड़े पर्वतों को दबा दिया, और सभी दिशाएँ झुक गईं, जैसे फलों के भार से लताएँ झुक जाती हैं।

5.22.24

लीलाविजितनिःशेषभुवनाभोगभूषणः । दशकोटीः स वर्षाणि दैत्यो राज्यं चकार ह ॥ २४ ॥

līlāvijitaniḥśeṣabhuvanābhogabhūṣaṇaḥ | daśakoṭīḥ sa varṣāṇi daitya rājyaṃ cakāra ha || 24 ||

That demon, whose glory was to have conquered every world with ease, as if in play, ruled his kingdom for a hundred million years.

वह दानव, जिसकी शोभा यही थी कि उसने हर लोक को खेल-खेल में सहज ही जीत लिया था, सौ करोड़ वर्षों तक अपने राज्य पर शासन करता रहा।

5.22.25

अथ गच्छत्स्वनल्पेषु युगेष्वावर्तवृत्तिषु । सुरासुरमहौघेषु प्रोत्पतत्सु पतत्सु च ॥ २५ ॥

atha gacchatvanalpeṣu yugeṣvāvartavṛttiṣu | surāsuramahaughaṣu protpatatsu patatsu ca || 25 ||

Then, as many long ages went by, turning through their cycles, and as the great hosts of gods and demons rose up and fell, again and again,

फिर जैसे-जैसे कई लंबे युग बीतते गए, अपने चक्र में घूमते हुए, और जैसे देवताओं और असुरों के बड़े-बड़े समूह बार-बार जन्मते और मरते रहे,

5.22.26

अजस्रमतिभुक्तेषु त्रैलोक्योदारवृत्तिषु । भोगेष्वभजदुद्वेगं बलिर्दानवनायकः ॥ २६ ॥

ajasramatibhukteṣu trailokyodāravṛttiṣu| bhogeṣvabhajadudvegaṃ balirdānavanāyakaḥ || 26 ||

in pleasures enjoyed endlessly and to the full, generous across all three worlds, Bali, the lord of the demons, began to feel restless and troubled.

तीनों लोकों में फैले हुए, लगातार भरपूर भोगे गए सुखों में भी, दानवों के राजा बलि का मन बेचैन और परेशान होने लगा।

5.22.27

मेरुश्रृङ्गशिखारत्नकृतवातायनस्थितः । एकदा चिन्तयामास स्वयं संसारसंस्थितिम् ॥ २७ ॥

meruśṛṅgaśikhāratnakṛtavātāyanasthitaḥ| ekadā cintayāmāsa svayaṃ saṃsārasaṃsthitim || 27 ||

Standing once at a window set with jewels on the peak of Mount Meru, he began, on his own, to think about how the world is.

एक बार मेरु पर्वत की चोटी पर रत्नों से बने एक झरोखे में खड़े होकर, उसने अपने-आप संसार की स्थिति के बारे में सोचना शुरू किया।

5.22.28

कियन्तमिदमक्षुण्णशक्तिनैव मयाधुना । साम्राज्यमिह कर्तव्यं विहर्तव्यं जगत्त्रये ॥ २८ ॥

kiyantamidamakṣuṇṇaśaktinaiva mayādhunā| sāmrājyamih kartavyaṃ vihartavyaṃ jagattraye || 28 ||

How much longer must I, with this power of mine still unbroken, go on holding this empire here and ranging through the three worlds?

मेरी यह ताकत अभी तक कम नहीं हुई, फिर भी मुझे और कब तक यहाँ यह राज-पाट चलाना होगा और तीनों लोकों में घूमना-फिरना होगा?

5.22.29

महता मम राष्ट्रेण त्रैलोक्याद्भुतकारिणा । किं वा भवति भुक्तेन भूरिभोगातिहारिणा ॥ २९ ॥

mahatā mama rāṣṭreṇa trailokyādbhutakāriṇā| kiṃ vā bhavati bhuktena bhūribhogātihāriṇā || 29 ||

What, after all, comes of enjoying my own great kingdom, which works wonders across the three worlds and piles up pleasure upon pleasure?

आखिर मेरे इस बड़े राज-पाट को भोगने से क्या मिलता है, जो तीनों लोकों में अचरज पैदा करता है और ढेर सारे सुख इकट्ठा करता है?

5.22.30

आपातमात्रमधुरमावश्यकपरिक्षयम् भोगोपभोगमात्रं मे किं नामेदं सुखावहम् ॥ ३० ॥

āpātamātramadhuramāvaśyakaparikṣayam bhogopabhogamātraṃ me kiṃ nāmedaṃ sukhāvaham || 30 ||

Sweet only at the first taste, and bound to run out in time, this mere tasting and using of pleasures, what happiness can it really bring me?

पहले-पहल मीठा लगने वाला, और आखिर में खत्म हो जाने वाला यह सुखों का चखना-भोगना, इससे मुझे सच में क्या सुख मिल सकता है?

5.22.31

पुनर्दिनैककलनाशर्वरीसंस्थितिः पुनः पुनस्तान्येव कर्माणि लज्जायै नच तुष्टये ॥ ३१ ॥

punardinaikakalanāśarvarīsaṃsthitiḥ punaḥ punastānyeva karmāṇi lajjāyai na ca tuṣṭaye || 31 ||

Day comes again, then night takes its place; the same deeds again and again, this brings only shame, not contentment.

फिर दिन आता है, फिर रात होती है, फिर वही काम बार-बार होते हैं, इससे बस शर्म आती है, चैन नहीं मिलता।

5.22.32

पुनरालिङ्ग्यते कान्ता पुनरेव च भुज्यते सेयं शिशुजनक्रीडा लज्जायै महतामिह ॥ ३२ ॥

punarāliṅgyate kāntā punareva ca bhujyate seyaṃ śiśujanakrīḍā lajjāyai mahatāmih || 32 ||

Again the woman is embraced, and again she is enjoyed, this is a child's game, and here it brings shame to great men.

फिर वही औरत गले लगाई जाती है, फिर वही भोगी जाती है, यह तो बच्चों का खेल है, और बड़े लोगों के लिए यहाँ यह शर्म की बात है।

5.22.33

तमेव भुक्तविरसं व्यापारौघं पुनःपुनः दिवसे दिवसे कुर्वन्प्राज्ञः कस्मान्न लज्जते ॥ ३३ ॥

tameva bhukta-virasaṃ vyāpāraughaṃ punaḥpunaḥ divase divase kurvan prājñaḥ kasmānna lajjate || 33 ||

Doing this same flood of activities, already tasted and gone flat, day after day, why should a wise man not feel ashamed?

इन्हीं थके-मांदे कामों की भरमार को दिन-ब-दिन दोहराते हुए, एक समझदार आदमी को शर्म क्यों नहीं आती?

5.22.34

पुनर्दिनं पुना रात्रिः पुनः कार्यपरम्पराः पुनःपुनरहं मन्ये प्राज्ञस्येयं विडम्बना ॥ ३४ ॥

punardinaṃ punā rātriḥ punaḥ kāryaparamparāḥ punaḥpunarahaṃ manye prājñasyeyaṃ viḍambanā || 34 ||

Day again, night again, tasks again in a row, again and again, I think this is nothing but a mockery of the wise.

फिर दिन, फिर रात, फिर वही कामों की कतार, बार-बार, मुझे तो यह समझदार आदमी का मज़ाक ही लगता है।

5.22.35

ऊर्मितां पुनरासाद्य पुनरेति निरूर्मिताम् यथा जलं तथैवायं तां तामेति क्रियां जनः ॥ ३५ ॥

ūrmitāṃ punarāsādya punareti nirūrmitām yathā jalaṃ tathaivāyaṃ tāṃ tāmeti kriyāṃ janaḥ || 35 ||

Just as water rises into waves and then settles back to stillness, so too a person keeps moving from one act to another, again and again.

जैसे पानी लहरें बनकर फिर शांत हो जाता है, वैसे ही आदमी बार-बार एक काम से दूसरे काम में लगा रहता है।

5.22.36

उन्मत्तचेष्टिताकारा पुनःपुनरियं क्रिया । जनं हासयते प्राज्ञं बाललीलोपमा मुहुः ॥ ३६ ॥

unmattaceṣṭitākārā punaḥpunariyaṃ kriyā | janaṃ hāsayate prājñaṃ bālalīlopamā muhuḥ || 36 ||

This same activity, done again and again, looks like the behavior of a madman; like a child's game, it keeps making a wise man laugh.

बार-बार की जाने वाली यह हरकत पागल आदमी के व्यवहार जैसी लगती है; बच्चों के खेल जैसी यह हरकत समझदार आदमी को बार-बार हंसाती है।

5.22.37

कृतयाप्यनया नित्यं क्रियया कृतकार्यया । कोऽर्थः स्यात्तादृशो येन पुनः कर्म न विद्यते ॥ ३७ ॥

kṛtayāpyanayā nityaṃ kriyayā kṛtakāryayā | ko'rthaḥ syāttādṛśo yena punaḥ karma na vidyate || 37 ||

Even though this same act is done all the time and its task gets finished, what real gain is there of the kind that leaves no more act to be done?

यह काम हमेशा किया जाता है, और हर बार पूरा भी हो जाता है, फिर भी ऐसा कौन-सा फायदा है जिससे दोबारा कोई काम करने की ज़रूरत ही न रहे?

5.22.38

कियन्तमथवा कालमिदमाडम्वरं महत् । इहास्माभिरनुष्ठेयं किं तावत्समवाप्यते ॥ ३८ ॥

kiyantamathavā kālamidamāḍamvaraṃ mahat | ihāsmābhiranuṣṭheyaṃ kiṃ tāvatsamavāpyate || 38 ||

Or else, for how long must we go on keeping up this grand show here? What, in the end, is gained by it?

या फिर, हमें यह बड़ा तामझाम कब तक यहाँ चलाना होगा? आखिर इससे मिलता ही क्या है?

5.22.39

अनन्तेयं शिशुक्रीडा वस्तुशून्यैव वस्तुतः । आवृत्त्या क्रियते व्यर्थमनर्थप्रसरार्थिभिः ॥ ३९ ॥

ananteyaṃ śiśukrīḍā vastuśūnyaiva vastutaḥ | āvṛttyā kriyate vyarthamanarthaprasarārthibhiḥ || 39 ||

This child's game goes on without end, and in truth it has no substance at all; it is done again and again, uselessly, by those who are only chasing after more trouble.

बच्चों का यह खेल कभी खत्म नहीं होता, और सच में इसमें कोई दम नहीं है; इसे बार-बार बेकार में वे लोग करते हैं जो सिर्फ मुसीबतों के पीछे भागते हैं।

5.22.40

फलमेकं महोदारं नेह पश्यामि किंचन । कार्यमस्तीतरत्प्राप्ते यस्मिन्नाम न किंचन ॥ ४० ॥

phalamekaṃ mahodāraṃ neha paśyāmi kiṃcana | kāryamastītaratprāpte yasminnāma na kiṃcana || 40 ||

I do not see here even one great and worthy fruit; once one thing is reached, another task always remains, and in reaching it there is truly nothing gained.

मुझे यहाँ एक भी बड़ा और असली फल दिखाई नहीं देता; एक चीज़ मिलते ही दूसरा काम खड़ा हो जाता है, और उसे पाकर भी हाथ कुछ नहीं आता।

5.22.41

भोगादृते किमन्यत्स्यात्तद्भव्यमविनाशि यत् । एवं संचिन्तयाम्याशु दध्यौ मत्वेत्यसौ बलिः ॥ ४१ ॥

bhogādṛte kimanyatsyāttadbhavyamavināśi yat| evaṃ saṃcintayāmyāśu dadhyau matvetyasau baliḥ || 41 ||

Apart from pleasure, what else is there that could be truly good and never perishing? So Bali thought to himself, and no sooner had he thought this than he sank into deep reflection.

सुख के अलावा और क्या ऐसा है जो सचमुच अच्छा हो और कभी खत्म न हो? बलि ने मन ही मन यही सोचा, और सोचते ही वह गहरी सोच में डूब गया।

5.22.42

अथाभ्युवाचासुरराडाः संस्मृतमिति क्षणात् । स्वात्मन्येव मनस्यर्थं सभ्रूभङ्गं विमर्शयन् ॥ ४२ ॥

athābhyuvācāsurarāḍāḥ saṃsmṛtamiti kṣaṇāt| svātmanyeva manasyarthaṃ sabhrūbhaṅgaṃ vimarśayan || 42 ||

Then the king of the demons cried out, 'Ah, I remember!' in an instant, and, frowning, he turned the matter over in his own mind alone.

तभी दानवों के राजा ने अचानक कहा, अरे, याद आया! और भौंहें सिकोड़कर वह मन ही मन इस बात को सोचने लगा।

5.22.43

पुरा किलेह भगवान्पृष्टोऽभूत्स विरोचनः । पिता मयात्मतत्त्वज्ञो दृष्टलोकपरावरः ॥ ४३ ॥

purā kileha bhagavānpṛṣṭo'bhūtsa virocanaḥ| pitā mayātmatattvajño dṛṣṭalokaparāvaraḥ || 43 ||

Long ago, I had asked my father here, the revered Virochana, who knew the truth of the self and had seen the world's heights and depths, this:

बहुत पहले मैंने यहाँ अपने पिता, पूजनीय विरोचन से, जो खुद को जानते थे और दुनिया की ऊँच-नीच देख चुके थे, यह पूछा था:

5.22.44

यथा सकलदुःखानां सुखानां च महामते । यत्र सर्वे भ्रमाः शान्ताः कोऽसौ सीमान्त उच्यते ॥ ४४ ॥

yathā sakaladuḥkhānāṃ sukhānāṃ ca mahāmate| yatra sarve bhramāḥ śāntāḥ ko'sau sīmānta ucyate || 44 ||

O wise one, what is it that is called the final limit of all sorrows and of all joys, where every confusion comes to rest?

हे बुद्धिमान, उसे आखिरी सीमा क्या कहते हैं, जहाँ सारे दुख और सारे सुख की सारी उलझनें शांत हो जाती हैं?

5.22.45

कोपशान्तो मनोमोहः क्वातीताः सकलैषणाः । विरामरहितं कुत्र तात विश्रमणं चिरम् ॥ ४५ ॥

kopaśānto manomohaḥ kvātītāḥ sakalaiṣaṇāḥ| virāmarahitaṃ kutra tāta viśramaṇaṃ ciram || 45 ||

Where is anger stilled and the mind's delusion ended? Where have all desires gone? Father, where is that lasting rest that never breaks?

गुस्सा कहाँ शांत होता है और मन का मोह कहाँ खत्म होता है? सारी इच्छाएं कहाँ चली जाती हैं? पिताजी, वह लंबी शांति कहाँ है जो कभी टूटती नहीं?

5.22.46

किं प्राप्तेह समस्तेभ्यः प्राप्येऽस्मिंस्तृप्तिमान्पुमान् । किं दृष्ट्वा दर्शनं भूयो न तातोपकरोत्यलम् । ॥ ४६ ॥

kiṃ prāpteha samastebhyaḥ prāpye'smiṃstṛptimānpumān | kiṃ dṛṣṭvā darśanaṃ bhūyo na tātopakarotyalam | || 46 ||

What is it that, once reached, leaves a man fully satisfied beyond everything else that can be reached? What is it that, once seen, father, needs no seeing again?

ऐसा क्या है जिसे पाकर आदमी बाकी सब कुछ पाने से ज़्यादा संतुष्ट हो जाता है? ऐसा क्या है जिसे एक बार देख लेने के बाद, पिताजी, फिर दोबारा देखने की ज़रूरत ही नहीं रहती?

5.22.47

अत्यन्तबहवोऽप्येते भोगा हि न सुखावहाः । क्षोभयन्ति मनो मोहे पातयन्ति सतामपि । ॥ ४७ ॥

atyantabahavo'pyete bhogā hi na sukhāvahāḥ | kṣobhayanti mano mohe pātayanti satāmapi | || 47 ||

These pleasures, however many there are, do not really bring happiness; they stir up the mind and drag down even good people into delusion.

ये सुख चाहे जितने भी हों, सचमुच खुशी नहीं देते; ये मन को बेचैन कर देते हैं और अच्छे लोगों को भी मोह में गिरा देते हैं।

5.22.48

तत्तातविहतानन्दसुन्दरं किंचिदेव मे । तादृक्कथय यत्रस्थश्चिरं विश्रान्तिमेम्यहम् । ॥ ४८ ॥

tattātāvihatānandasundaraṃ kiṃcideva me | tādṛkkathaya yatrasthaściraṃ viśrāntimemyaham | || 48 ||

So, father, tell me of that one thing, beautiful with a joy that never breaks, resting in which I may find lasting peace.

तो पिताजी, मुझे उस एक चीज़ के बारे में बताइए, जो कभी न टूटने वाले आनंद से भरी हो, जिसमें टिककर मुझे लंबी शांति मिल सके।

5.22.49

इत्याकर्ण्य पुरा निशाकरकरस्पर्धालुगुच्छस्खलत्पुष्पापूरकृतावगुण्ठनपदस्योक्तं तले तेन मे। पित्रा स्वर्गहृतस्य सागरतरोः संरोपितस्याजिरे स्फाराकाररसायनासवसमं संमोहशान्त्यै वचः। ॥ ४९ ॥

ityākarṇya purā niśākarakaraspardhālugucchaskhalatpuṣpāpūrakṛtāvaguṇṭhanapadasyo'ktaṃ tale tena me | pitrā svargahṛtasya sāgarataroḥ saṃropitasya'jire sphārākārarasāyanāsavasamaṃ saṃmohaśāntyai vacaḥ | || 49 ||

Hearing this, long ago, my father spoke these words to me at the foot of that tree from the sea, brought down from heaven and planted in the courtyard, its base covered by heaps of fallen flowers that rivaled the light of the moon, words like a rich, restoring drink, to calm my confusion.

यह सुनकर, बहुत पहले, मेरे पिता ने मुझसे ये बातें कहीं, उस समुद्र वाले पेड़ के नीचे, जो स्वर्ग से लाकर आँगन में लगाया गया था, जिसकी जड़ें चाँद की रोशनी को मात देने वाले झरे हुए फूलों के ढेर से ढकी थीं, ऐसी बातें जो एक भरपूर, ताज़गी देने वाले रस जैसी थीं, मेरे मन का मोह मिटाने के लिए।

Chapter 23

5.23.1

विरोचन उवाच । अस्ति पुत्रातिविततो देशो विपुलकोटरः । त्रैलोक्यानां सहस्राणि यत्र मान्ति बहून्यपि ॥ १ ॥

virocana uvāca | asti putrātivitato deśo vipulakoṭaraḥ | trailokyānāṃ sahasrāṇi yatra mānti bahūnyapi || 1 ||

Virochana said: My son, there is a place, vast and hollow inside, where many thousands of the three worlds can fit.

विरोचन ने कहा: पुत्र, एक ऐसा स्थान है, बहुत विशाल और भीतर से बहुत खोखला, जहाँ तीनों लोकों के हज़ारों जगत समा जाते हैं।

5.23.2

यत्र नाम्भोधयो नापि सागरा वा न चाद्रयः । न वनानि न तीर्थानि न नद्यो न सरांसि च ॥ २ ॥

yatra nāmbhodhayo nāpi sāgarā vā na cādrayaḥ | na vanāni na tīrthāni na nadyo na sarāṃsi ca || 2 ||

There, there are no oceans, no seas, and no mountains. There are no forests, no holy bathing places, no rivers, and no lakes.

वहाँ न कोई सागर है, न कोई समुद्र, न कोई पहाड़। न कोई जंगल है, न कोई तीर्थ, न कोई नदी, न कोई तालाब।

5.23.3

न मही नापि चाकाशं न द्यौर्न पवनादयः । न चन्द्रार्कौ न लोकेशा न देवा नच दानवाः ॥ ३ ॥

na mahī nāpi cākāśaṃ na dyaur na pavanādayaḥ | na candrārkau na lokeśā na devā naca dānavāḥ || 3 ||

There is no earth, no sky, no heaven, no wind and nothing like it. There is no moon and sun, no guardians of the worlds, no gods, and no demons.

वहाँ न धरती है, न आकाश, न स्वर्ग, न हवा और न उस जैसी कोई चीज़। न चाँद और सूरज हैं, न लोकों के रखवाले, न देवता, न दानव।

5.23.4

न भूतयक्षरक्षांसि न गुल्मा न वनश्रियः । न काष्ठतृणभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ४ ॥

na bhūtayakṣarakṣāṃsi na gulmā na vanaśriyaḥ | na kāṣṭhatṛṇabhūtāni sthāvarāṇi carāṇi ca || 4 ||

There are no spirits, no yakshas, no rakshasas, no bushes, and no beauty of forests. There is no wood, no grass, no living beings, nothing standing still and nothing moving.

वहाँ न भूत हैं, न यक्ष, न राक्षस, न झाड़ियाँ, न जंगलों की सुंदरता। न लकड़ी है, न घास, न कोई जीव, न कुछ स्थिर है और न कुछ चलता-फिरता।

5.23.5

नापो न ज्वलनो नाशा नोर्ध्वं नाधो न विष्टपम् । न लोको नातपो नाहं न हरीन्द्रहरादयः ॥ ५ ॥

nāpo na jvalano nāśā nordhvaṃ nādho na viṣṭapam | na loko nātapo nāhaṃ na harīndraharaḥdayaḥ || 5 ||

There is no water, no fire, no directions, no up and no down, no heaven. There is no world, no sunlight, no I, and no Hari, Indra, Hara, or anyone like them.

वहाँ न पानी है, न आग, न दिशाएँ, न ऊपर है न नीचे, न स्वर्ग। न कोई लोक है, न धूप, न कोई मैं, और न हरि, इन्द्र, हर या उन जैसा कोई और।

5.23.6

एक एवास्मि सुमहांस्तत्र राजा महाद्युतिः । सर्वकृत्सर्वगः सर्वः स च तूष्णीं व्यवस्थितः ॥ ६ ॥

eka evāsmi sumahāṃstatra rājā mahādyutiḥ | sarvakṛtsarvagaḥ sarvaḥ sa ca tūṣṇīṃ vyavasthitaḥ || 6 ||

I alone am there, very great, a king of great splendor. I do everything, I go everywhere, I am everything, and I stay there in silence, without moving.

वहाँ मैं अकेला हूँ, बहुत महान, बड़ी चमक वाला राजा। मैं सब कुछ करता हूँ, मैं हर जगह जाता हूँ, मैं ही सब कुछ हूँ, और मैं वहाँ चुपचाप, बिना हिले-डुले बैठा रहता हूँ।

5.23.7

तेन संकल्पितो मन्त्री सर्वसन्मन्त्रणोन्मुखः । अघटं घटयत्याशु घटं विघटयत्यलम् ॥ ७ ॥

tena saṃkalpito mantrī sarvasanmantraṇonmukhaḥ | aghaṭaṃ ghaṭayatyāśu ghaṭaṃ vighaṭayatyalam || 7 ||

By me, a minister comes into being, ready with every good counsel. He quickly makes what does not exist come into being, and just as easily unmakes what already exists.

मुझसे ही एक मंत्री बनता है, जो हर अच्छी सलाह देने को तैयार रहता है। वह जो नहीं है उसे झट से बना देता है, और जो बना हुआ है उसे उतनी ही आसानी से मिटा देता है।

5.23.8

भोक्तुं न किंचिच्छक्नोति न च जानाति किंचन । राजार्थं केवलं सर्वं करोत्यज्ञोऽपि सन्सदा ॥ ८ ॥

bhoktuṃ na kiṃcicchaknoti na ca jānāti kiṃcana | rājārthaṃ kevalaṃ sarvaṃ karotyajño'pi sansadā || 8 ||

He cannot enjoy anything at all, and he does not know anything. He always does everything only for the king's sake, even though he himself is ignorant.

वह कुछ भी भोग नहीं सकता, और वह कुछ भी नहीं जानता। वह हमेशा सब कुछ केवल राजा के लिए करता है, हालाँकि वह खुद अज्ञानी है।

5.23.9

स एव सर्वकार्यैककर्ता तस्य महीपतेः । राजा केवलमेकान्ते स्वस्थ एवावतिष्ठते ॥ ९ ॥

sa eva sarvakāryaikakartā tasya mahīpateḥ | rājā kevalamekānte svastha evāvatiṣṭhate || 9 ||

He alone does all the work of that king. The king himself simply stays apart, at ease, alone.

वह अकेला ही उस राजा का सारा काम करता है। राजा खुद बस अलग, आराम से, अकेला बैठा रहता है।

5.23.10

बलिरुवाच । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः कः स देशो महामते । कथमासाद्यते चापि केन वाधिगतः प्रभो ॥ १० ॥

baliruvāca | ādhivyādhivinirmuktaḥ kaḥ sa deśo mahāmate | kathamāsādyate cāpi kena vādhigataḥ prabho || 10 ||

Bali said: What is that place, wise one, free from all mental pain and bodily illness? And how is it reached, lord, and by whom has it been found?

बलि ने कहा: हे बुद्धिमान, वह कौन सा स्थान है, जो हर मानसिक कष्ट और हर बीमारी से मुक्त है? हे स्वामी, वहाँ कैसे पहुँचा जाता है, और उसे किसने पाया है?

5.23.12

अपूर्वमेतदाख्यानं ममामरभयप्रद । कथयापनयास्माकं हृद्व्योम्नः संशयाम्बुदम् ॥ १२ ॥

apūrvametadākhyānaṃ mamāmarabhayaprada | kathayāpanayāsmākaṃ hṛdvyomnaḥ saṃśayāmbudam || 12 ||

This is an amazing story to me, terror of the immortals. Tell it, and clear the cloud of doubt from the sky of my heart.

मेरे लिए यह एक अद्भुत कथा है, हे अमरों को भय देने वाले। इसे कहिए, और मेरे हृदय के आकाश से संदेह का बादल हटा दीजिए।

5.23.13

कः स तादृग्विधो मन्त्री राजा चापि महाबलः । हेलालूनजगज्जालैर्योऽस्माभिरपि नो जितः ॥ १३ ॥

kaḥ sa tādṛgvidho mantrī rājā cāpi mahābalaḥ | helālūnajagajjālairyō'smābhirapi no jitaḥ || 13 ||

Who is that minister, and who is that very strong king, who has not been conquered even by us, by us who cut through the webs of the world as mere sport?

वह मंत्री कौन है, और वह इतना बलवान राजा कौन है, जिसे हमने भी नहीं जीता, हमने, जो संसार के जालों को खेल-खेल में काट देते हैं?

5.23.14

नासौ सहस्रनयनो न यमो न धनेश्वरः । नामरो नासुरो वापि यदि पुत्रक जीयते ॥ १४ ॥

nāsau sahasranayano na yamo na dhaneśvaraḥ | nāmaro nāsuro vāpi yadi putraka jīyate || 14 ||

My son, he cannot be conquered, not by the thousand-eyed one, not by Yama, not by the lord of wealth, not by any god, and not by any demon either.

पुत्र, उसे कोई नहीं जीत सकता, न हज़ार आँखों वाला इन्द्र, न यम, न धन का स्वामी, न कोई देवता, और न कोई दानव।

5.23.15

तत्रासिमुसलप्रासवज्रचक्रगदादयः । हेतयः कुण्ठतां यान्ति दृषदीवोत्पलाहतिः ॥ १५ ॥

tatrāsimuslaprāsavajracakragadādayaḥ | hetayaḥ kuṇṭhatāṃ yānti dṛṣadīvotpalāhatiḥ || 15 ||

There, weapons, sword, club, spear, thunderbolt, discus, mace, and the rest, all grow blunt, like a lotus struck against a stone.

वहाँ हथियार, तलवार, मूसल, भाला, वज्र, चक्र, गदा और बाकी सब, सब कुंद हो जाते हैं, जैसे कोई कमल पत्थर से टकराए।

5.23.16

गम्योऽसौ नास्त्रशस्त्राणां न भटोद्भवकर्मणाम् । तेन देवासुराः सर्वे सर्वदैव वशीकृताः ॥ १६ ॥

gamyo'sau nāstrasaśstrāṇāṃ na bhaṭodbhavakarmaṇāṃ | tena devāsurāḥ sarve sarvadaiva vaśīkṛtāḥ || 16 ||

He cannot be reached by weapons or arms, nor by the deeds of warriors. By him, all gods and demons have always been mastered.

उस तक न कोई अस्त्र पहुँच सकता है, न कोई शस्त्र, न योद्धाओं के किए काम। उसी ने सब देवताओं और दानवों को हमेशा अपने वश में रखा है।

5.23.17

अविष्णुनापि तेनेह हिरण्याक्षादयोऽसुराः । पातिताः कल्पवातेन मेरुकल्पद्रुमा इव ॥ १७ ॥

aviṣṇunāpi teneha hiraṇyākṣādayo'surāḥ | pātitāḥ kalpavātena merukalpadrumā iva || 17 ||

By him, though he is not Vishnu, the demons headed by Hiranyaksha were struck down here, like the wish-fulfilling trees of Mount Meru falling before the wind that ends an age.

उसी ने, विष्णु न होते हुए भी, यहाँ हिरण्याक्ष जैसे दानवों को गिरा दिया, जैसे मेरु पर्वत के कल्पवृक्ष प्रलय की आँधी में गिर जाते हैं।

5.23.18

नारायणादयो देवा अपि सर्वावबोधिनः । तेनाक्रम्य यथाकाममवटेषु निवेशिताः ॥ १८ ॥

nārāyaṇādayo devā api sarvāvabodhinaḥ | tenākramya yathākāmamavaṭeṣu niveśitāḥ || 18 ||

By him, the gods headed by Narayana, even though they know everything, were overpowered and thrown into pits, just as he pleased.

उसी ने नारायण जैसे देवताओं को, जो सब कुछ जानते हैं, फिर भी दबाकर, अपनी इच्छा के अनुसार गड्ढों में डाल दिया।

5.23.19

तत्प्रसादेन साटोपं पञ्चमात्रशरः स्मरः । त्रैलोक्यमिदमाक्रम्य सम्राडिव विवल्गति ॥ १९ ॥

tatprasādena sāṭopaṃ pañcamātraśaraḥ smaraḥ | trailokyamidamākramya samrāḍiva vivalgati || 19 ||

By his favor, Kama, who has only five arrows, struts about this triple world like a proud emperor, having overrun it all.

उसी की कृपा से, काम, जिसके पास केवल पाँच बाण हैं, इस तीनों लोक को जीत कर, एक घमंडी सम्राट की तरह घूमता है।

5.23.20

सुरासुरौघगृह्योऽपि गुणहीनोऽपि दुर्मतिः । दुराकृतिरपि क्रोधस्तत्प्रसादेन जृम्भते ॥ २० ॥

surāsuraughagṛhyo'pi guṇahīno'pi durmatiḥ | durākṛtirapi krodhas tatprasādena jṛmbhate || 20 ||

Anger, though it seizes hosts of gods and demons alike, though it has no virtue, though it is foul-minded and ugly in form, grows and spreads only by his favor.

क्रोध, जो देवताओं और दानवों के समूहों को भी पकड़ लेता है, जिसमें कोई गुण नहीं है, जो बुरे मन का है और रूप में कुरूप है, उसी की कृपा से बढ़ता और फैलता है।

5.23.21

देवासुरसहस्राणां संगरो यः पुनः पुनःतदेतत्क्रीडनं तस्य मन्त्रिणो मन्त्रशालिनः ॥ २१ ॥

devāsurasahasrāṇāṃ saṃgaro yaḥ punaḥ punaḥtadetatkrīḍanaṃ tasya mantriṇo mantraśālinaḥ || 21 ||

The war between thousands of gods and demons, which happens again and again, is nothing but the game of that minister who is so skilled in counsel.

देवताओं और दानवों के हज़ारों दलों के बीच जो युद्ध बार-बार होता है, वह उस सलाह में इतने कुशल मंत्री का महज़ एक खेल है।

5.23.22

स मन्त्री केवलं पुत्र तेनैव प्रभुणा यदि । जीयते तत्सुजेयोऽसावन्यथा त्वचलोपमः ॥ २२ ॥

sa mantrī kevalaṃ putra tenaiva prabhuṇā yadi | jīyate tatsujeyo'sāvanyathā tvacalopamaḥ || 22 ||

My son, that minister can be conquered only by that very lord. If so, he is easy to conquer; otherwise, he is like an unmoving mountain.

पुत्र, उस मंत्री को केवल वही स्वामी जीत सकता है। अगर वह जीते, तो यह मंत्री आसानी से जीता जा सकता है, नहीं तो वह एक अडिग पहाड़ जैसा है।

5.23.23

तस्यैव तत्प्रभोः काले जेतुं तं मन्त्रिणं निजमिच्छा संजायते तेन जीयतेऽसावयत्नतः ॥ २३ ॥

tasyaiva tatprabhoḥ kāle jetuṃ taṃ mantriṇaṃ nijamicchā saṃjāyate tena jīyate'sāvayatnataḥ || 23 ||

When, in time, that lord himself wishes to conquer his own minister, the minister is conquered without any effort at all.

जब वह स्वामी स्वयं, समय आने पर, अपने ही मंत्री को जीतने की इच्छा करता है, तब वह मंत्री बिना किसी मेहनत के जीत लिया जाता है।

5.23.24

त्रैलोक्यवलिनां मल्लमुच्छ्वासितजगत्त्रयम्। जेतुं चेदस्ति ते शक्तिस्तत्पराक्रमवानसि ॥ २४ ॥

trailokyavalināṃ mallamucchvāsitajagattrayam | jetuṃ cedasti te śaktistatparākramavānasi || 24 ||

If you have the strength to conquer that champion among the mighty of the three worlds, who gives breath to the three worlds themselves, then you are truly a man of power.

अगर तुझमें तीनों लोकों के बलवानों के उस पहलवान को जीतने की ताक़त है, जो तीनों लोकों को साँस देता है, तो तू सच में बलवान है।

5.23.25

तस्मिन्नभ्युदिते सूर्ये त्रैलोक्यकमलाकराः। इमे विकासमायान्ति विलीयन्तेऽस्तमागते ॥ २५ ॥

tasminnabhyudite sūrye trailokyakamalākarāḥ | ime vikāsamāyānti vilīyante'stamāgate || 25 ||

When that sun rises, these lotus-beds of the three worlds open into bloom; when it sets, they close again.

जब वह सूरज उगता है, तो तीनों लोकों के ये कमल-समूह खिल उठते हैं, और जब वह डूबता है, तो वे फिर से बंद हो जाते हैं।

5.23.26

तमेवमेकया बुद्ध्या व्यामोहपरिहीनया। यदि जेतुं समर्थोऽसि धीरस्तदसि सुव्रत ॥ २६ ॥

tamevamekayā buddhyā vyāmohaparihīnayā | yadi jetuṃ samartho'si dhīrastadasi suvrat || 26 ||

If, in this way, with a single understanding free of all confusion, you are able to conquer him, then you are truly wise, man of good vows.

अगर तू इस तरह, हर उलझन से मुक्त एक ही बुद्धि से, उसे जीत सके, तो तू सचमुच बुद्धिमान है, हे अच्छे व्रत वाले।

5.23.27

तस्मिञ्जिते जिता लोका भविष्यन्त्यजिता अपि। अजिते त्वजिता एते चिरकालजिता अपि ॥ २७ ॥

tasmiñjite jitā lokā bhaviṣyantyajitā api | ajite tvajitā ete cirakālajitā api || 27 ||

If he is conquered, the worlds will be conquered too, even those never conquered before. But if he is not conquered, these worlds remain unconquered, even if they have seemed conquered for a long time.

अगर वह जीता जाए, तो सब लोक जीत लिए जाएँगे, वे भी जो पहले कभी नहीं जीते गए। पर अगर वह न जीता जाए, तो ये लोक बिना जीते ही रह जाएँगे, चाहे वे लंबे समय से जीते हुए क्यों न लगें।

5.23.28

तस्मादनन्तसिद्ध्यर्थं शाश्वताय सुखाय च। तज्जये यत्नमातिष्ठ कष्टयापि हि चेष्टया ॥ २८ ॥

tasmādanantasiddhyarthaṃ śāśvatāya sukhāya ca | tajjaye yatnamātiṣṭha kaṣṭayāpi hi ceṣṭayā || 28 ||

So, for endless success and everlasting happiness, strive to conquer him, even if it takes hard and difficult effort.

इसलिए, अनंत सफलता और सदा की खुशी के लिए, उसे जीतने का प्रयास कर, चाहे इसके लिए कितनी भी कठिन मेहनत क्यों न करनी पड़े।

5.23.29

ससुरदनुजनागयक्षसंघं सनरमहोरगकिन्नरं समेतम्। त्रिजगदपि वशीकृतं समन्तादतिबलिना ननु हेलयैव तेन ॥ २९ ॥

sasuradanujanāgayakṣasaṃghaṃ sanaramahoragakinnaraṃ sametam | trijagadapi vaśīkṛtaṃ samantādatibalinā nanu helayāiva tena || 29 ||

The three worlds, together with all their hosts, gods, demons, serpents, yakshas, men, great serpents, and kinnaras, all gathered together, have been mastered on every side by that most powerful one, indeed with mere sport.

तीनों लोक, अपने सारे समूहों के साथ, देवता, दानव, नाग, यक्ष, मनुष्य, महानाग और किन्नर, ये सब मिलकर भी, उस सबसे बलवान ने हर तरफ से, बस खेल-खेल में ही वश में कर लिए हैं।

Chapter 24

5.24.1

बलिरुवाच । केनोपायेन बलवान्स तात परिजीयते । कोऽसावतिमहावीर्यः सर्वं प्रकथयाशु मे ॥ १ ॥

baliruvāca | kenopāyena balavāns tāta parijīyate | ko'sāvatimahāvīryaḥ sarvaṃ prakathayāśu me || 1 ||

Bali said: Father, by what means is that strong one defeated? Who is this being of such great power? Tell me everything, quickly.

बलि ने कहा: पिताजी, किस उपाय से वह बलवान जीता जाता है? यह अत्यंत बड़े पराक्रम वाला कौन है? मुझे सब कुछ जल्दी बताइए।

5.24.2

विरोचन उवाच । मन्त्रिणस्तस्य तनय नित्याजेयस्थितेरपि । श्रृणु वच्मि सुसाधत्वं येनासौ परिजीयते ॥ २ ॥

virocana uvāca | mantrīṇastasya tanaya nityājeyasthiterepi | śṛṇu vachmi susādhattvaṃ yenāsau parijīyate || 2 ||

Virochana said: Son, though that minister's position is always unconquerable, listen, I will tell you the sure method by which he is defeated.

विरोचन ने कहा: पुत्र, यद्यपि उस मंत्री का स्थान सदा अजेय रहता है, फिर भी सुनो, मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूँ जिससे वह जीता जाता है।

5.24.3

पुत्र युक्त्या गृहीतोऽसौ क्षणादायाति वश्यताम् । युक्तिं विना दहत्येष आशीविष इवोद्धतः ॥ ३ ॥

putra yuktyā gṛhīto'sau kṣaṇādāyāti vaśyatām | yuktiṃ vinā dahatyēṣa āśīviṣa ivoddhataḥ || 3 ||

Son, if he is caught with the right method, he comes under control in an instant. Without that method, he burns like an angry venomous snake.

पुत्र, यदि सही उपाय से उसे पकड़ा जाए, तो वह क्षणभर में वश में आ जाता है। उपाय के बिना यह क्रोधित विषैले सांप की तरह जला देता है।

5.24.4

बालवल्लालयित्वैनं युक्त्या नियमयन्ति ये । राजानं तं समालोक्य पदमासादयन्ति ते ॥ ४ ॥

bālavallālayitvaienaṃ yuktyā niyamayanti ye | rājānaṃ taṃ samālokya padamāsādayanti te || 4 ||

Those who coax him like a child and restrain him with the right method, once they see that king, reach his high state.

जो लोग उसे बालक की तरह पुचकार कर सही उपाय से वश में कर लेते हैं, वे उस राजा को देखकर उसका पद पा लेते हैं।

5.24.5

दृष्टे तस्मिन्महीपाले स मन्त्री वशमेति च । तस्मिंश्च मन्त्रिण्याक्रान्ते स राजा दृश्यते पुनः ॥ ५ ॥

dṛṣṭe tasminmahīpāle sa mantrī vaśameti ca | tasmiṃśca mantrīṇyākrānte sa rājā dṛśyate punaḥ || 5 ||

When that king is seen, the minister comes under control, and when the minister is overpowered, the king is seen again.

जब वह राजा दिखाई देता है, तब वह मंत्री वश में आ जाता है, और जब वह मंत्री वश में कर लिया जाता है, तब वह राजा फिर से दिखाई देता है।

5.24.6

यावन्न दृष्टो राजासौ तावन्मन्त्री न जीयते । मन्त्री च यावन्न जितस्तावद्राजा न दृश्यते ॥ ६ ॥

yāvanna dṛṣṭo rājāsau tāvanmantī na jīyate | mantī ca yāvanna jitas tāvadrājā na dṛśyate || 6 ||

As long as that king is not seen, the minister is not defeated. And as long as the minister is not defeated, the king is not seen.

जब तक वह राजा नहीं दिखता, तब तक वह मंत्री नहीं जीता जाता। और जब तक वह मंत्री नहीं जीता जाता, तब तक वह राजा नहीं दिखता।

5.24.7

राजन्यदृष्टे दुर्मन्त्री स दुःखाय फलत्यति । मन्त्रिण्यनिर्जिते राजा सोऽत्यन्तं यात्यदृश्यताम् ॥ ७ ॥

rājanyadṛṣṭe durmantrī sa duḥkhāya phalatyati | mantrinyanirjite rājā so'tyantaṃ yātyadṛśyatām || 7 ||

When the king is unseen, that wicked minister brings only great suffering. When the minister is unconquered, the king becomes utterly invisible.

जब राजा नहीं दिखता, तब वह दुष्ट मंत्री केवल बड़ा दुःख देता है। जब मंत्री जीता नहीं जाता, तब वह राजा पूरी तरह अदृश्य हो जाता है।

5.24.8

अभ्यासेनोभयं तस्मात्सममेव समारभेत् । राजसंदर्शनं तस्य मन्त्रिणश्च पराजयम् ॥ ८ ॥

abhyāsenobhayaṃ tasmātsamameva samārabhet | rājasandarśanaṃ tasya mantrinaśca parājayam || 8 ||

So, through practice, one should take up both together, seeing that king and defeating the minister.

इसलिए अभ्यास से दोनों काम एक साथ शुरू करने चाहिए, उस राजा को देखना और उस मंत्री को हराना।

5.24.9

पौरुषेण प्रयत्नेन स्वभ्यासेन शनैःशनैः । द्वयं संपाद्य यत्नेन देशमाप्नोषि तं शुभम् ॥ ९ ॥

pauruṣeṇa prayatnena svabhyāsena śanaiḥśanaiḥ | dvayaṃ saṃpādya yatnena deśamāpnoṣi taṃ śubham || 9 ||

By your own effort, your striving, and steady practice, little by little, accomplish both of these, and you will reach that good place.

अपने पुरुषार्थ से, अपने प्रयत्न से और अपने अभ्यास से, धीरे-धीरे, इन दोनों कामों को पूरा करके तुम उस शुभ स्थान को पा लोगे।

5.24.10

त्वमभ्यासे फलीभूते तं देशमभिगच्छसि । यदि दैत्येन्द्र तद्भूयो मनागपि न शोचसि ॥ १० ॥

tvamabhyāse phalībhūte taṃ deśamabhigacchasi | yadi daityendra tadbhūyo manāgapi na śocasi || 10 ||

When your practice bears fruit, you will reach that place, and, lord of the demons, once there, you will never grieve again, not even a little.

जब तुम्हारा अभ्यास फलित हो जाएगा, तब तुम उस स्थान पर पहुँच जाओगे, और हे दैत्यों के स्वामी, वहाँ पहुँचने के बाद तुम फिर कभी थोड़ा भी शोक नहीं करोगे।

5.24.11

संशान्तसकलायासा नित्यप्रमुदिताशयाः । साधवस्तत्र तिष्ठन्ति प्रशान्ताशेषसंशयाः ॥ ११ ॥

saṃśāntasakalāyāsā nityapramuditāśayāḥ | sādhavastatra tiṣṭhanti praśāntāśeṣasaṃśayāḥ || 11 ||

There the good live with all their weariness stilled, their hearts forever joyful, and every doubt of theirs completely calmed.

वहाँ साधु-पुरुष रहते हैं, जिनका सारा परिश्रम शांत हो चुका है, जिनका मन सदा प्रसन्न रहता है, और जिनके सारे संशय पूरी तरह शांत हो चुके हैं।

5.24.12

श्रृणु कः पुत्र देशोऽसौ सर्वं प्रकटयामि ते । देशनाम्ना मयोक्तस्ते मोक्षः सकलदुःखहा ॥ १२ ॥

śṛṇu kaḥ putra deśo'sau sarvaṃ prakaṭayāmi te | deśanāmnā mayoktaste mokṣaḥ sakaladuḥkhahā || 12 ||

Listen, son, to what that place is, I will show you everything. What I have called the place is liberation, which ends all sorrow.

पुत्र, सुनो वह स्थान क्या है, मैं तुम्हें सब कुछ प्रकट करता हूँ। जिसे मैंने स्थान कहा, वह मोक्ष है, जो सारे दुःखों को मिटा देता है।

5.24.13

राजा तु तत्र भगवानात्मा सर्वपदातिगः । तेन मन्त्री कृतः प्राज्ञो मनो नाम महामते ॥ १३ ॥

rājā tu tatra bhagavānātmā sarvapadātigaḥ | tena mantrī kṛtaḥ prājño mano nāma mahāmate || 13 ||

There the king is the blessed Self, which is beyond every state. He appointed a wise minister named Mind, O wise one.

वहाँ राजा वह भगवान आत्मा है, जो हर अवस्था से परे है। उसी ने मन नाम का बुद्धिमान मंत्री नियुक्त किया है, हे बुद्धिमान।

5.24.14

मनोनिष्ठतया विश्वमिदं परिणतिं गतम् । घटत्वेनेव मृत्पिण्डो धूमोऽम्बुदतयैव च ॥ १४ ॥

manoniṣṭhatayā viśvamidaṃ pariṇatiṃ gatam | ghaṭatveneva mṛtpiṇḍo dhūmo'mbudatayaiva ca || 14 ||

Because of the mind's constant activity, this whole universe has taken shape, just as a lump of clay turns into a pot, and smoke turns into a cloud.

मन की निरंतर क्रिया के कारण यह सारा विश्व बनकर सामने आया है, जैसे मिट्टी का पिंड घड़ा बन जाता है, और धुआं बादल बन जाता है।

5.24.15

तस्मिञ्जिते जितं सर्वं सर्वमासादितं भवेत् । दुर्जयं तद्विजानीयात्युक्त्यैव परिजीयते ॥ १५ ॥

tasmiñjite jitaṃ sarvaṃ sarvamāsāditaṃ bhavet | durjayaṃ tadvijānīyātyuktyaiva parijīyate || 15 ||

When the mind is conquered, everything is conquered, everything is gained. Know that it is hard to conquer, it is conquered only by the right method.

जब मन जीत लिया जाता है, तब सब कुछ जीत लिया जाता है, सब कुछ पा लिया जाता है। जान लो कि इसे जीतना कठिन है, यह केवल सही उपाय से ही जीता जाता है।

5.24.16

बलिरुवाचया युक्तिर्भगवंस्तस्य चित्तस्याक्रमणे स्फुटम्तां मे कथय तत्तावद्यथा जेष्यामि दारुणम् ॥ १६ ॥

baliruvācayā yuktirbhagavaṃstasya cittasyākramaṇe sphuṭamtāṃ me kathaya tattāvadyathā jeṣyāmi dāruṇam || 16 ||

Bali said: Lord, tell me clearly the method for overpowering that mind, so that I may conquer this terrible foe.

बलि ने कहा: हे भगवन, मुझे स्पष्ट रूप से वह उपाय बताइए जिससे उस मन पर आक्रमण किया जाता है, ताकि मैं इस भयंकर शत्रु को जीत सकूँ।

5.24.17

विरोचन उवाचविषयान्प्रति भोः पुत्र सर्वानेव हि सर्वथानास्था परमा ह्येषा सा युक्तिर्मनसो जये ॥ १७ ॥

virocana uvācaviṣayānprati bhoḥ putra sarvāneva hi sarvathāanāsthā paramā hyeṣā sā yuktirmanaso jaye || 17 ||

Virochana said: Son, complete indifference toward all sense objects, in every way, this alone is the supreme method for conquering the mind.

विरोचन ने कहा: पुत्र, सभी विषयों के प्रति, हर तरह से, पूर्ण उदासीनता, यही मन को जीतने का सबसे बड़ा उपाय है।

5.24.18

एषैव परमा युक्तिरनयैव महामदःस्वमनोमत्तमातङ्गो द्रागित्येवावदम्यते ॥ १८ ॥

eṣaiva paramā yuktiranayaiva mahāmadaḥsvamanomattamātaṅgo drāgityevāvadamyate || 18 ||

This alone is the supreme method, by this alone the greatly maddened elephant that is one's own mind is quickly tamed.

यही सबसे बड़ा उपाय है, इसी से अपने मन के अत्यंत उन्मत्त हाथी को शीघ्र ही वश में किया जाता है।

5.24.19

एषा ह्यत्यन्तदुष्प्रापा सुप्रापा च महामतेअनभ्यस्तातिदुष्प्रापा स्वभ्यस्ता प्राप्यते सुखम् ॥ १९ ॥

eṣā hyatyantaduṣprāpā suprāpā ca mahāmateanabhyastātiduṣprāpā svabhyastā prāpyate sukham || 19 ||

This is extremely hard to attain, wise one, yet also easy to attain. Without practice it is very hard to reach, with steady practice it is reached easily.

हे बुद्धिमान, यह अत्यंत कठिनाई से मिलती है, और फिर भी आसानी से मिल जाती है। बिना अभ्यास के इसे पाना बहुत कठिन है, अच्छी तरह अभ्यास करने पर यह सरलता से मिल जाती है।

5.24.20

क्रमादभ्यस्यमानैषा विषयारतिरात्मजसर्वतः स्फुटतामेति सेकसिक्ता लता यथा ॥ २० ॥

kramādabhyasyamānaiṣā viṣayāratirātmajasarvataḥ sphuṭatāmeti sekasiktā latā yathā || 20 ||

Son, this distaste for sense objects, practiced step by step, comes into full bloom on every side, just as a creeper blossoms fully when it is watered.

हे पुत्र, विषयों से यह अरुचि, धीरे-धीरे अभ्यास करने पर, चारों ओर पूरी तरह खिल उठती है, जैसे सिंचाई से सींची गई बेल खिल उठती है।

5.24.21

नासाद्यते ह्यनभ्यस्ता कांक्षतापि शठात्मना । पुत्र शालिरिवाव्युप्ता तस्मादेनां समाहर ॥ २१ ॥

nāsādyate hyanabhyastā kāṃkṣatāpi śaṭhātmanā | putra śālirivāvyuptā tasmādenāṃ samāhara || 21 ||

Without practice it is not attained, even by a lazy person who merely longs for it, like a rice crop that is never sown. So, son, take up this practice.

बिना अभ्यास के यह नहीं मिलती, चाहे कोई आलसी मन से इसकी कितनी भी इच्छा क्यों न करे, जैसे बिना बोया गया धान नहीं मिलता। इसलिए, पुत्र, इस अभ्यास को अपनाओ।

5.24.22

तावद्भ्रमन्ति दुःखेषु संसारावटवासिनः । विरतिं विषयेष्वेते यावन्नायान्ति देहिनः ॥ २२ ॥

tāvadbhramanti duḥkheṣu saṃsārāvaṭavāsinaḥ | viratiṃ viṣayeṣveteyāvannāyānti dehināḥ || 22 ||

Embodied beings who dwell in the pit of this world wander in sorrows for just as long as they do not turn away from sense objects.

जब तक ये देहधारी प्राणी, जो संसार रूपी गड्ढे में रहते हैं, विषयों से विरक्त नहीं होते, तब तक वे दुःखों में भटकते रहते हैं।

5.24.23

अभ्यासेन विना कश्चिन्नाप्नोति विषयारतिम्। अप्यत्यन्तबलो देही देशान्तरमिवागतिः॥ २३॥

abhyāsena vinā kaścinnaāpnoti viṣayāratim | apyatyantabalo dehī deśāntaramivāgatiḥ || 23 ||

Without practice, no one attains dispassion toward sense objects, however powerful that embodied being may be, just as someone with no way to travel does not reach a distant land.

बिना अभ्यास के कोई भी विषयों से विरक्ति नहीं पाता, चाहे वह देहधारी कितना ही बलवान क्यों न हो, जैसे बिना यात्रा के साधन वाला व्यक्ति किसी दूसरे देश में नहीं पहुँच पाता।

5.24.24

ध्येयत्यागमतोऽजस्रं ध्यायता देहधारिणा। भोगेष्वरतिरभ्यासाद्वृद्धिं नेया लता यथा॥ २४॥

dhyeyatyāgamato'jasraṃ dhyāyatā dehadhāriṇā | bhogeṣvaratirabhyāsādvṛddhiṃ neyā latā yathā || 24 ||

The embodied soul who meditates constantly, giving up the very thing he contemplates, should use practice to make his distaste for pleasures grow, the way a creeper is made to grow.

जो देहधारी जीव लगातार ध्यान करते हुए ध्यान की वस्तु को भी छोड़ने के भाव से रहता है, उसे अभ्यास से भोगों के प्रति अपनी अरुचि को उसी तरह बढ़ाना चाहिए जैसे एक बेल को बढ़ाया जाता है।

5.24.25

पुरुषार्थादृते पुत्र नेह संप्राप्यते शुभम्। क्रियाफलं परिप्राप्तुं हर्षामर्षविवर्जितम्॥ २५॥

puruṣārthādṛte putra neha saṃprāpyate śubham | kriyāphalaṃ pariprāptuṃ harṣāmarṣavivarjitam || 25 ||

Son, without effort nothing good is ever gained here; even the fruit of action, free from joy and anger, cannot be fully reached without effort.

पुत्र, पुरुषार्थ के बिना यहाँ कभी कुछ शुभ नहीं मिलता; हर्ष और क्रोध से रहित कर्म का फल भी पुरुषार्थ के बिना पूरी तरह नहीं मिलता।

5.24.26

दैवमित्युच्यते लोके न दैवं देहवत्क्वचित्। अवश्यं भवितव्याख्या स्वेहया नियतिश्च या॥ २६॥

daivamityucyate loke na daivaṃ dehavatkvacit | avaśyaṃ bhavitavyākhyā svehyā niyatiśca yā || 26 ||

Fate, so it is called in the world, but fate is nowhere a real thing the way a body is a real thing. What must inevitably happen is truly called necessity, and this necessity comes about through one's own effort.

भाग्य, संसार में इसे यही कहा जाता है, पर भाग्य शरीर की तरह कहीं कोई ठोस चीज़ नहीं है। जो अवश्य होकर रहता है उसे ही सच में नियति कहते हैं, और यह नियति व्यक्ति के अपने ही प्रयत्न से बनती है।

5.24.27

उच्यते दैवशब्देन सा नरैरेव नेतरैः। यद्यस्येह यदा यत्र संपन्नं समतां गतम्॥ २७॥

ucyate daivaśabdena sā narairēva netaraiḥ | yadyasyēha yadā yatra saṃpannaṃ samatāṃ gatam || 27 ||

Only ordinary people call it by the name fate; others do not. It is simply whatever has happened to someone, at some time, in some place, and has become a settled fact.

इसे भाग्य नाम से केवल सामान्य लोग ही पुकारते हैं, दूसरे नहीं। वह तो बस इतना है कि जो किसी के लिए, कभी, कहीं घटित होकर एक तय बात बन चुका है।

5.24.28

हर्षामर्षविनाशाय तद्दैवमिति कथ्यते । दैवं नियतिरूपं च पौरुषेणोपजीयते ॥ २८ ॥

harṣāmṛṣavināśāya taddaivamiti kathyate | daivaṃ niyatirūpaṃ ca pauruṣeṇopajīyate || 28 ||

That necessity is called fate only so as to put an end to joy and anger. Fate, in the form of necessity, is actually built up by one's own effort.

हर्ष और क्रोध को मिटाने के लिए ही उस नियति को भाग्य कहा जाता है। नियति के रूप में भाग्य वास्तव में मनुष्य के अपने ही पुरुषार्थ से बनता है।

5.24.29

सम्यग्ज्ञानविलासेन मृगतृष्णाभ्रमो यथा । यथा संकल्प्यते यद्यत्पौरुषेण तथैव तत् ॥ २९ ॥

samyagjñānavilāsena mṛgatṛṣṇābhramo yathā | yathā saṃkalpyate yadyatpauruṣeṇa tathaiva tat || 29 ||

Just as a mirage's illusion appears through the play of the mind's own awareness, so too, whatever is willed through effort turns out to be exactly that.

जैसे मृगतृष्णा का भ्रम मन की अपनी चेतना के खेल से प्रकट होता है, वैसे ही मनुष्य पुरुषार्थ से जो कुछ ठान लेता है, वह ठीक वैसा ही हो जाता है।

5.24.30

फलवत्तागृहीतत्वे फलवत्तासुखप्रदम् । कर्ता नो मन एवेह यत्कल्पयति तत्तथा ॥ ३० ॥

phalavattāgṛhītatve phalavattāsukhapradam | kartā no mana evēha yatkalpayati tattathā || 30 ||

Once the fruit of an act is accepted as real, it delivers the joy of that fruit. In this world the mind alone is the doer; whatever it conceives, that is exactly what comes to pass.

जब कर्मफल की वास्तविकता मान ली जाती है, तभी वह फल का सुख भी देता है। इस संसार में मन ही असली कर्ता है, वह जो कुछ भी कल्पना करता है, ठीक वैसा ही घटित होता है।

5.24.31

नियतिं यादृशीमेतत्संकल्पयति सा तथा । नियतानियतान्कांश्चिदर्थाननियतानपि ॥ ३१ ॥

niyatiṃ yādṛśīmetatsaṅkalpayati sā tathā | niyatāniyatānkāṃścidarthānaniyatānapi || 31 ||

Whatever kind of necessity this mind resolves upon, that is exactly the necessity that results. It makes some things both fixed and not fixed, and some things not fixed at all.

यह मन जिस प्रकार की नियति की कल्पना करता है, वैसी ही नियति बन जाती है। वह कुछ बातों को कुछ हद तक तय और कुछ हद तक अनिश्चित बना देता है, और कुछ बातों को पूरी तरह अनिश्चित बना देता है।

5.24.32

करोति चित्तं तेनैतच्चित्तं नियतियोजकम् । नियत्यां नियतिं कुर्वन्कदाचित्स्वार्थनामिकाम् ॥ ३२ ॥

karoti cittaṃ tenaitaccittaṃ niyatiyojakam | niyatyāṃ niyatiṃ kurvankadācitsvārthanāmikām || 32 ||

Because of this, the mind is the one that fastens necessity onto things. Within one necessity it sometimes makes another necessity, one that is called by the name of one's own interest.

इसी कारण यह मन ही नियति को चीज़ों से जोड़ता है। यह एक नियति के भीतर कभी-कभी दूसरी नियति बना देता है, जिसे अपने स्वार्थ के नाम से जाना जाता है।

5.24.33

स्फुरत्यस्मिञ्जगत्कोशे जीवो व्योम्नीव मारुतः । नियत्या विहितं कुर्वन्कदाचिन्नियतिं चरः ॥ ३३ ॥

sphuratyasmiñjagatkośe jīvo vyomnīva mārutaḥ | niyatyā vihitaṃ kurvankadācinniyatiṃ caraḥ || 33 ||

In this shell of the world, the living being throbs the way wind moves through the sky. Doing what necessity ordains, it sometimes simply moves along with necessity.

इस जगत रूपी खोल में जीव उसी तरह स्पंदित होता है जैसे आकाश में वायु बहती है। नियति ने जो तय किया है उसे करते हुए, वह कभी-कभी बस नियति के साथ-साथ चलता है।

5.24.34

संज्ञार्थं रूढनियतिशब्दः स्फुरति सानुवत् । तस्माद्यावन्मनस्तावन्न दैवं नियतिर्न च ॥ ३४ ॥

saṃjñārthaṃ rūḍhaniyatiśabdaḥ sphurati sānuvat | tasmādyāvanmanastāvanna daivaṃ niyatirna ca || 34 ||

The familiar word necessity exists only to give something a name, along with everything that name carries. So, in truth, all there is, is mind; there is no fate, and there is no necessity apart from it.

नियति यह जाना-पहचाना शब्द केवल किसी चीज़ को नाम देने के लिए है, अपने पूरे अर्थ के साथ। सच तो यह है कि जो कुछ है वह मन ही है, न कोई अलग भाग्य है, न कोई अलग नियति।

5.24.36

संकल्पयति लोकेऽस्मिंस्तत्तथा तस्य नान्यथा । पुरुषार्थादृते पुत्र न किंचिदिह विद्यते ॥ ३६ ॥

saṃkalpayati loke'smiṃstattathā tasya nānyathā | puruṣārthādṛte putra na kiṃcidiha vidyate || 36 ||

In this world, whatever the mind resolves upon, that is exactly what happens for it, never otherwise. Son, apart from effort, nothing at all exists here.

इस संसार में मन जो कुछ ठान लेता है, उसके लिए वही सच होता है, और कुछ नहीं। पुत्र, पुरुषार्थ के बिना यहाँ कुछ भी नहीं है।

5.24.37

परं पौरुषमाश्रित्य भोगेष्वरतिमाहरेत् । न भोगेष्वरतिर्यावज्जायते भवनाशनी ॥ ३७ ॥

paraṃ pauruṣamāśritya bhogeṣvaratimāharet | na bhogeṣvaratiryāvajjāyate bhavanāśanī || 37 ||

Relying wholly on effort, one should keep cultivating distaste for pleasures, until that distaste, the kind that ends rebirth, is born in oneself.

पूरी तरह पुरुषार्थ का सहारा लेकर भोगों के प्रति अरुचि उत्पन्न करते रहना चाहिए, जब तक वह अरुचि पैदा न हो जाए जो पुनर्जन्म को समाप्त कर देती है।

5.24.38

न परा निर्वृतिस्तावत्प्राप्यते जयदायिनी । विषयेषु रतिर्यावत्स्थिता संमोहकारिणी ॥ ३८ ॥

na parā nirvṛtistāvatprāpyate jayadāyinī | viṣayeṣu ratiryāvatsthitā sammohakāriṇī || 38 ||

The highest peace, the one that brings victory, is not attained as long as delight in sense objects, the kind that causes utter confusion, remains in place.

जब तक इंद्रिय-विषयों में वह लगाव बना रहता है जो पूरी तरह मोह पैदा करता है, तब तक वह परम शांति नहीं मिलती जो विजय दिलाती है।

5.24.39

मनस्यस्तंगते साधो यद्भवत्यस्तु तत्तथा । जीवो हि पुरुषो जातः पौरुषेण स यद्यथा ॥ ३९ ॥

manasyastagate sādho yadbhavatyastu tattathā | jīvo hi puruṣo jātaḥ pauruṣeṇa sa yadyathā || 39 ||

Good sir, once the mind has come to rest, whatever happens, let it happen, so be it. The soul truly becomes a person through effort; he is whatever his effort has made him, in whatever way.

हे सज्जन, जब मन शांत हो जाता है, तब जो कुछ भी हो, वह वैसे ही होने दो। जीव सच्चे अर्थ में पुरुष अपने ही पुरुषार्थ से बनता है, वह वैसा ही और उतना ही होता है जैसा उसका पुरुषार्थ उसे बनाता है।

5.24.40

भोगभोगिभरप्रोता कदाशा विनिवर्तते ॥ ४० ॥

bhogabhogibharaprotā kadāśā vinivartate || 40 ||

This hope, strung together with the burden of pleasures and the one who enjoys them, when will it turn back.

भोग और भोगी के बोझ से बँधी यह आशा कब लौटेगी।

5.24.41

बलिरुवाच भोगेष्वरतिरेवान्तः कथं सर्वासुरेश्वर । स्थितिमायाति जीवस्य दीर्घजीवितदायिनी ॥ ४१ ॥

baliruvāca bhogeṣvaratirevāntaḥ kathaṃ sarvāsureśvara | sthitimāyāti jīvasya dīrghajīvitadāyinī || 41 ||

Bali said: O lord of all the demons, how does distaste for pleasures alone, held within, come to remain steady in a person, the kind that grants long life?

बलि ने कहा: हे समस्त असुरों के स्वामी, केवल भोगों के प्रति भीतर की यह अरुचि जीव में स्थिर कैसे होती है, वह अरुचि जो दीर्घ जीवन देती है?

5.24.42

विरोचन उवाच । आत्मावलोकनलता फलिनी फलति स्फुटम् । जीवस्य भोगेष्वरतिं शरदीव महालता ॥ ४२ ॥

virocana uvāca | ātmāvalokanalatā phalinī phalati sphuṭam | jīvasya bhogeṣvaratiṃ śaradīva mahālatā || 42 ||

Virochana said: The vine of looking into oneself, once it bears fruit, clearly produces distaste for pleasures in the soul, the way a great vine bears fruit in autumn.

विरोचन ने कहा: आत्म-निरीक्षण की बेल जब फल देती है, तो वह जीव में भोगों के प्रति अरुचि को उतनी ही स्पष्टता से उत्पन्न करती है जितनी स्पष्टता से शरद ऋतु में कोई बड़ी बेल फल देती है।

5.24.43

आत्मावलोकनेनैषा विषयारतिरुत्तमा । हृदये स्थितिमायाति श्रीरिवाम्भोजकोटरे ॥ ४३ ॥

ātmāvalokanena eṣā viṣayārati ruttamā | hṛdaye sthitim āyāti śrī rivāmbhojakoṭare || 43 ||

Through looking into oneself, this highest distaste for sense objects comes to settle in the heart, the way Goddess Lakshmi settles in the hollow of a lotus.

आत्म-निरीक्षण के द्वारा ही विषयों के प्रति यह सबसे ऊँची अरुचि हृदय में उसी तरह बस जाती है जैसे लक्ष्मी देवी कमल की कोटर में बस जाती हैं।

5.24.44

तस्मात्प्रज्ञानिकाषेण विचारेणातिचारुणा। देवमालोकयेद्भोगाद्रतिं चावहरेत्समम्॥ ४४॥

tasmāt prajñānikāṣeṇa vicāreṇāticāruṇā | devam ālokayed bhogād ratiṃ cāvaharet samam || 44 ||

Therefore, using discernment as a touchstone, through the finest inquiry, one should behold the divine, and at the same time draw one's delight away from pleasure.

इसलिए विवेक की कसौटी पर, अत्यंत सुंदर विचार के द्वारा, परमात्मा को देखना चाहिए और साथ ही भोग से रति हटा लेनी चाहिए।

5.24.45

चित्तस्य भोगैर्द्वौ भागौ शास्त्रेणैकं प्रपूरयेत्। गुरुशुश्रूषया चैकमव्युत्पन्नस्य सत्क्रमे॥ ४५॥

cittasya bhogair dvau bhāgau śāstreṇaikaṃ prapūrayet | guruśuśrūṣayā caikam avyutpannasya satkramē || 45 ||

For someone not yet trained, in the proper way of practice, one should fill two parts of the mind with pleasures, one part with the study of scripture, and one part with serving the guru.

जो अभी अनुभवहीन है, उसके लिए सही क्रम यह है, मन के दो भाग भोगों से भरे जाएँ, एक भाग शास्त्र-अध्ययन से, और एक भाग गुरु की सेवा से।

5.24.46

किंचिद्व्युत्पत्तियुक्तस्य भागं भोगैः प्रपूरयेत्। गुरुशुश्रूषया भागौ भागं शास्त्रार्थचिन्तया॥ ४६॥

kiñcid vyutpattiyuktasya bhāgaṃ bhogaiḥ prapūrayet | guruśuśrūṣayā bhāgau bhāgaṃ śāstrārthacintayā || 46 ||

For one who has gained a little understanding, one part should be filled with pleasures, two parts with serving the guru, and one part with reflecting on the meaning of the scriptures.

जिसे थोड़ी समझ आ चुकी है, उसके लिए एक भाग भोगों से, दो भाग गुरु-सेवा से, और एक भाग शास्त्रों के अर्थ पर विचार करने से भरना चाहिए।

5.24.47

व्युत्पत्तिमनुयातस्य पूरयेच्चेतसोऽन्वहम्। द्वौ भागौ शास्त्रवैराग्यैर्द्वौ ध्यानगुरुपूजया॥ ४७॥

vyutpattimanuyātasya pūrayeccetaso'nvaham | dvau bhāgau śāstravairāgyairdvau dhyānagurupūjayā || 47 ||

For one who has become fully trained, each day one should fill two parts of the mind with scripture and dispassion, and two parts with meditation and worship of the guru.

जो पूरी तरह सध चुका है, उसके लिए हर दिन मन के दो भाग शास्त्र और वैराग्य से, और दो भाग ध्यान तथा गुरु की पूजा से भरने चाहिए।

5.24.48

साधुतामागतो जीवो योग्यो ज्ञानकथाक्रमे। निर्मलाकृतिरादत्ते पट उत्तमरञ्जनाम्॥ ४८॥

sādhutāmāgato jīvo yogyo jñānakathākramē | nirmalākṛtirādatte paṭa uttamaranjanām || 48 ||

The person who has become good, and so is fit for the teaching of knowledge, takes on the finest color, the way a spotless cloth takes the best dye.

जो जीव अच्छाई को प्राप्त हो चुका है और ज्ञान की चर्चा के योग्य है, वह उत्तम रंग को उसी तरह ग्रहण करता है जैसे एक निर्मल, दाग-रहित कपड़ा सबसे अच्छा रंग पकड़ लेता है।

5.24.49

शनैः शनैर्लालनीयं युक्तिभिः पावनोक्तिभिः । शास्त्रार्थपरिणामेन पालयेच्चित्तबालकम् ॥ ४९ ॥

śanaiḥ śanairlālanīyaṃ yuktibhiḥ pāvanoktibhiḥ | śāstrārthapariṇāmena pālayeccittabālakam || 49 ||

The mind is like a child. One should slowly and gently coax it, using reasoning and pure words, letting the meaning of the scriptures ripen in it little by little.

मन एक बच्चे के समान है। उसे धीरे-धीरे, तर्क और पवित्र वचनों से सहलाते हुए पालना चाहिए, और उसमें शास्त्रों के अर्थ को थोड़ा-थोड़ा करके पकने देना चाहिए।

5.24.50

परे परिणतं ज्ञाने शिथिलीभूतदुर्ग्रहम् । ज्योत्स्नाऽहीनस्फटिकवच्चेतः शीतं विराजते ॥ ५० ॥

parē pariṇataṃ jñānē śithilībhūtadurgraham | jyotsnā'hīnasphatikavaccetaḥ śītaṃ virājatē || 50 ||

When the mind ripens into the highest knowledge, its stubborn grip loosens, and it shines cool and calm, like a crystal glowing with moonlight.

जब मन परम ज्ञान में परिपक्व हो जाता है, तो उसकी हठी पकड़ ढीली पड़ जाती है, और वह चांदनी से भरे स्फटिक की तरह शीतल और शांत होकर चमकता है।

5.24.51

प्रज्ञया परया ऋज्व्या भोगानामीश्वरस्य च । सममेवाथ देहस्य रूपमाश्वलोकयेत् ॥ ५१ ॥

prajñayā parayā ṛjvyā bhogānāmīśvarasya ca | samamevātha dehasya rūpamāśvalokayet || 51 ||

Using the highest, most honest understanding, one should quickly look and see the true nature of pleasures, of the Lord, and of the body, seeing all three the same way.

सबसे ऊँची और सीधी समझ से, भोगों की, ईश्वर की, और शरीर की असली प्रकृति को जल्दी और एक ही तरह से देख लेना चाहिए।

5.24.52

प्रज्ञाविचारवशतः सममेव सदा सुत । आत्मावलोकनं तृष्णासंत्यागं च समाहरेत् ॥ ५२ ॥

prajñāvicāravaśataḥ samameva sadā suta | ātmāvalokanaṃ tṛṣṇāsaṃtyāgaṃ ca samāharet || 52 ||

By using wisdom and careful inquiry, one should always, in equal measure, my son, achieve both the seeing of one's own self and the giving up of craving.

बुद्धि और गहरी खोज की शक्ति से, हे पुत्र, हमेशा समान रूप से अपने आप को देखने और तृष्णा को छोड़ने का काम करना चाहिए।

5.24.53

परदृष्टौ वितृष्णत्वं तृष्णाभावे च दृक्परा । एते मिथः स्थिते दृष्टी तेजोदीपदशे यथा ॥ ५३ ॥

paradṛṣṭau vitṛṣṇatvaṃ tṛṣṇābhāve ca dṛkparā | ete mithaḥ sthite dṛṣṭī tejodīpadaśe yathā || 53 ||

The highest kind of seeing brings freedom from craving, and freedom from craving brings the highest kind of seeing. These two stand together, each holding up the other, like a lamp and its light.

सबसे ऊँची दृष्टि से तृष्णा से मुक्ति मिलती है, और जहाँ तृष्णा नहीं होती वहाँ सबसे ऊँची दृष्टि होती है। ये दोनों एक-दूसरे को सहारा देकर साथ खड़े रहते हैं, जैसे दीपक और उसकी रोशनी।

5.24.54

भोगपूगे गतास्वादे दृष्टे देवे परावरे । परे ब्रह्मणि विश्रान्तिरनन्तोदेति शाश्वती ॥ ५४ ॥

bhogapūge gatāsvāde dṛṣṭe deve parāvare | pare brahmaṇi viśrāntiranantodeti śāśvatī || 54 ||

When the taste for the pile of worldly pleasures fades, and the god who is both far and near is seen, an endless, everlasting rest arises in the highest Brahman.

जब भोगों के ढेर का स्वाद खत्म हो जाता है, और जो देवता दूर भी है और पास भी है, वह दिख जाता है, तब परम ब्रह्म में एक अनंत और शाश्वत विश्राम उठता है।

5.24.55

विषयाकलितानन्दमनन्तोदेति निर्वृतिः । न कदाचन जीवानामात्मविश्रवणादृते ॥ ५५ ॥

viṣayākalitānandamanantodeti nirvṛtiḥ | na kadācana jīvānāmātmaviśravaṇādṛte || 55 ||

A joy that does not come from the objects of the senses gives rise to an endless peace. For any living being, this never happens except by resting in one's own self.

जो आनंद इंद्रियों के विषयों से नहीं मिलता, उससे एक अनंत शांति उठती है। किसी भी जीव को यह कभी नहीं मिलती, सिवाय अपने आप में विश्राम पाने के।

5.24.56

यज्ञदानतपस्तीर्थसेवाभिर्जायते सुखम् । न तपोभिर्न दानेन न तीर्थैरपि जायते ॥ ५६ ॥

yajñadānatapastīrthasevābhirjāyate sukham | na tapobhirna dānena na tīrthairapi jāyate || 56 ||

Happiness is born from sacrifice, charity, austerity, and service at holy places. Yet it is not born from austerities, not from charity, and not even from holy places.

यज्ञ, दान, तप और तीर्थ-सेवा से सुख मिलता है। फिर भी यह सुख न तो तप से मिलता है, न दान से, न तीर्थ से।

5.24.57

भोगेषु विरतिर्जन्तोः स्वभावालोकनादृते । कयाचिदपि नो युक्त्या बुद्धिरात्मावलोकने ॥ ५७ ॥

bhogeshu viratirjantoḥ svabhāvālokanādṛte | kayācidapi no yuktyā buddhirātmāvalokane || 57 ||

A creature only becomes free from craving for pleasures by seeing its own true nature. And there is no other trick by which the mind can be turned to see the self.

कोई भी जीव भोगों की चाह से तभी मुक्त होता है जब वह अपने असली स्वभाव को देखता है। और आत्मा को देखने के लिए बुद्धि को मोड़ने की और कोई तरकीब नहीं है।

5.24.58

स्वप्रयत्नादृते पुंसः श्रेयसे संप्रवर्तते । भोगसंत्यागसंप्राप्तपरमार्थादृते सुत ॥ ५८ ॥

svaprayatnādṛte puṃsaḥ śreyase saṃpravartate | bhogasatyāgasamprāptaparamārthādṛte suta || 58 ||

A man's own good comes about only through his own effort, and only by reaching the highest truth that comes from giving up pleasures, my son.

पुरुष की भलाई केवल उसके अपने प्रयास से होती है, और तभी होती है जब वह भोगों को छोड़कर परम सत्य को पा लेता है, हे पुत्र।

5.24.59

न ब्रह्मपदविश्रान्तिसुखमासाद्यते परम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते जगत्यस्मिन्न कुत्रचित्॥ ५९॥

na brahmapadaviśrāntisukhamāsādyate param | ābrahmasthambaparyante jagatyaasminna kutracit || 59 ||

The supreme happiness of resting in the state of Brahman cannot be found anywhere in this world, in the whole range of beings from Brahma down to a blade of grass.

ब्रह्म में विश्राम का यह परम सुख इस संसार में कहीं नहीं मिलता, ब्रह्मा से लेकर घास के एक तिनके तक, कहीं भी नहीं।

5.24.60

तद्वदाश्वस्यते भाते परमे कारणे यथा। पौरुषं यत्नमाश्रित्य दैवं कृत्वा सुदूरतः॥ ६०॥

tadvadāśvasyate bhāte parame kāraṇe yathā | pauruṣaṃ yatnamāśritya daivaṃ kṛtvā sudūrataḥ || 60 ||

In the same way, a person gains confidence when the highest cause shines forth, by relying on his own effort and pushing fate far away.

उसी तरह, जब परम कारण प्रकट होता है, तब मनुष्य अपने ही प्रयास पर भरोसा करके और भाग्य को दूर हटाकर भरोसा पाता है।

5.24.61

भोगान्विगर्हयेत्प्राज्ञः श्रेयोद्वारदृढार्गलान्। प्रौढायां भोगगर्हायां विचार उपजायते॥ ६१॥

bhogānvigarhayetprājñaḥ śreyodvāradṛḍhārgalān | prauḍhāyāṃ bhogagarhāyāṃ vicāra upajāyate || 61 ||

A wise person should find fault with pleasures, since they are like strong bolts locking the door to the highest good. When this fault-finding with pleasures grows strong, inquiry is born from it.

बुद्धिमान व्यक्ति को भोगों में दोष देखना चाहिए, क्योंकि वे परम कल्याण के द्वार पर लगे मजबूत बोल्ट जैसे हैं। जब भोगों में यह दोष-दर्शन प्रबल हो जाता है, तब उससे गहरी खोज पैदा होती है।

5.24.62

वृद्धायां प्रावृषि श्रीमांशरत्काल इवामलः। विचारो भोगगर्हातो विचाराद्भोगगर्हणम्॥ ६२॥

vṛddhāyāṃ prāvṛṣi śrīmāṃśaratkāla ivāmalaḥ | vicāro bhogagarhāto vicārādbhogagarhaṇam || 62 ||

Just as the glorious, clear autumn comes when the rainy season has fully run its course, so inquiry is born from finding fault with pleasures, and from inquiry comes more fault-finding with pleasures.

जैसे वर्षा ऋतु के पूरी तरह बीत जाने पर वह सुंदर और निर्मल शरद ऋतु आती है, वैसे ही भोगों में दोष देखने से गहरी खोज पैदा होती है, और खोज से फिर भोगों में दोष-दर्शन पैदा होता है।

5.24.63

अन्योन्यमेते पूर्येते समुद्रजलदाविव। भोगगर्हाविचारश्च स्वात्मालोकश्च शाश्वतः॥ ६३॥

anyonyamete pūryete samudrajaladāviva | bhogagarhāvicāraśca svātmālokaśca śāśvataḥ || 63 ||

These two, the fault-finding with pleasure joined with inquiry, and the endless seeing of one's own self, fill each other, the way the ocean and the rain clouds fill each other.

ये दोनों, भोगों में दोष-दर्शन और गहरी खोज का यह जोड़ा, और अपने आप का यह शाश्वत दर्शन, एक-दूसरे को भरते हैं, जैसे समुद्र और बादल एक-दूसरे को भरते हैं।

5.24.64

अन्योन्यं साधयन्त्यर्थं सुस्निग्धाः सुहृदो यथा । पूर्वं दैवमनादृत्य पौरुषेण प्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

anyonyaṃ sādhayantyarthaṃ susnigdhāḥ suhṛdo yathā | pūrvaṃ daivamanādṛtya pauruṣeṇa prayatnataḥ || 64 ||

Just as close, loving friends help each other reach their goals, so these two help each other too, and this happens only when a person first sets fate aside and relies instead on his own effort.

जैसे घनिष्ठ और प्रेमी मित्र एक-दूसरे का काम पूरा करने में मदद करते हैं, वैसे ही ये दोनों भी एक-दूसरे की मदद करते हैं, और यह तभी होता है जब मनुष्य पहले भाग्य को नकारकर अपने ही प्रयास पर भरोसा करे।

5.24.65

दन्तैर्दन्तान्प्रसंपीड्य भोगेष्वरतिमाहरेत् । देशाचाराविरुद्धेन बान्धवैकमतेन च ॥ ६५ ॥

dantairdantānprasaṃpīḍya bhogeṣvaratimāharet | deśācārāviruddhena bāndhaivaikamatena ca || 65 ||

By gritting his teeth with firm resolve, a person should build up distaste for worldly pleasures, doing this in a way that does not go against local custom, and with the agreement of his relatives.

दांत भींचकर, दृढ़ संकल्प से, मनुष्य को भोगों के प्रति अरुचि पैदा करनी चाहिए, इस तरह कि यह न तो देश के रीति-रिवाज के विरुद्ध जाए, न रिश्तेदारों की सहमति के विरुद्ध।

5.24.66

पौरुषेण क्रमेणादौ धनानि समुपार्जयेत् । धनैरभ्याहरेद्भव्यान्सुजनान्गुणशालिनः ॥ ६६ ॥

pauruṣeṇa krameṇādau dhanāni samupārjayet | dhanairabhyāharedbhavhyānsujanānguṇaśālinaḥ || 66 ||

First, step by step, through his own effort, a person should earn wealth. With that wealth, he should bring close to him good, worthy people who are rich in good qualities.

पहले, कदम दर कदम, अपने प्रयास से धन कमाना चाहिए। उस धन से अच्छे, योग्य और गुणी लोगों को अपने पास लाना चाहिए।

5.24.67

प्रवर्तते समासङ्गात्तेषां भोगविगर्हणा ततो विचारस्तदनु ज्ञानं शास्त्रार्थसंग्रहः ॥ ६७ ॥

pravartate samāsaṅgāttteṣāṃ bhogavigarhaṇā tato vicārastadanu jñānaṃ śāstrārthasaṃgrahaḥ || 67 ||

By staying close to such people, a distaste for pleasures grows in him. From that comes inquiry. After that comes knowledge, and the grasp of what the scriptures mean.

ऐसे लोगों की संगति से उसमें भोगों के प्रति अरुचि पैदा होती है। उससे गहरी खोज पैदा होती है। उसके बाद ज्ञान पैदा होता है, और शास्त्रों के अर्थ की समझ पैदा होती है।

5.24.68

ततः क्रमेण परमपदप्राप्तिः प्रजायते यदा तूपरते काले विषयेभ्यो विरम्यसे ॥ ६८ ॥

tataḥ krameṇa paramapadaprāptiḥ prajāyate yadā tūparate kāle viṣayebhyo viramyase || 68 ||

Then, little by little, you come to reach the highest state, once the time is ripe and you turn away from the things the senses chase.

फिर, धीरे-धीरे, तुम्हें परम पद की प्राप्ति होती है, जब सही समय आ जाता है, और तुम इंद्रियों के विषयों से मुँह मोड़ लेते हो।

5.24.69

तदा विचारवशतः परमं पदमेष्यसि सम्यक्प्राप्स्यसि विश्रान्तिमात्मन्यत्यन्तपावने ॥ ६९ ॥

tadā vicāravasatḥ paramaṃ padameṣyasi samyakprāpsyasi viśrāntimātmanyatyantapāvane || 69 ||

Then, through the power of inquiry, you will reach the highest state. You will fully attain rest within your own self, which is completely pure.

तब, गहरी खोज की शक्ति से, तुम परम पद को प्राप्त करोगे। तुम अपने आप में, जो पूरी तरह पवित्र है, पूर्ण विश्राम पा लोगे।

5.24.70

न पुनः कल्पनापङ्के दुःखाय निपतिष्यसि स्थितापि नास्था ते शुद्ध नमस्तेऽस्तु सदाशिव ॥ ७० ॥

na punaḥ kalpanāpaṅke duḥkhāya nipatiṣyasi sthitāpi nāsthā te śuddha namaste'stu sadāśiva || 70 ||

You will never again fall, to suffer, into the mud of imagination. Not even a lingering attachment to it will remain in you, you who are pure. Salutations to you, the eternally auspicious one.

तुम फिर कभी दुख उठाने के लिए कल्पना के दलदल में नहीं गिरोगे। उसके प्रति तुम्हारे मन में हल्का सा भी लगाव नहीं बचेगा, तुम जो शुद्ध हो। तुम्हें प्रणाम है, हे नित्य-मंगलमय।

5.24.71

देशक्रमेण धनमल्पविगर्हणेन तेनाङ्ग साधुजनमर्जय मानपूर्वम् तत्संगमोत्थविषयाद्यवहेलनेन सम्यग्विचारविभवेन तवात्मलाभः ॥ ७१ ॥

deśakrameṇa dhanamalpavigarhaṇena tenāṅga sādhujanamarjaya mānapūrvam
tatsaṅgamotthaviṣayādyavahalanena samyagvicāravibhavena tavātmalābhḥ || 71 ||

Following the ways of your land, and earning wealth in a way that draws little blame, win the company of good people with respect, my dear friend. By setting aside the sense-pleasures and such things that come from being with them, and through the richness of right inquiry, you will gain your own self.

अपने देश की रीति के अनुसार, और ऐसा धन कमाकर जिसकी बहुत निंदा न हो, आदर के साथ अच्छे लोगों की संगति पाओ, हे प्रिय मित्र। उनकी संगति से उठने वाले भोग-विषयों आदि की उपेक्षा करके, और सही खोज की समृद्धि से, तुम्हें अपनी आत्मा की प्राप्ति होगी।

Chapter 25

5.25.1

बलिरुवाच एतन्मे कथितं पूर्वं पित्रा चारुविचारिणा इदानीं संस्मृतं दिष्ट्या संप्रबोधमहं गतः ॥ १ ॥

baliruvāca etanme kathitaṃ pūrvaṃ pitrā cāruvicāriṇā idānīṃ saṃsmṛtaṃ diṣṭyā saṃprabodhamahaṃ gataḥ || 1 ||

Bali said: My father, who reasoned about things clearly, told me this long ago. Now I have remembered it. By good fortune I have come fully awake.

बलि ने कहा: यह बात मुझे पहले मेरे पिता ने बताई थी, जो हर बात पर साफ-साफ सोचते थे। अब मुझे वह याद आ गई है। अच्छे भाग्य से मैं पूरी तरह जाग गया हूँ।

5.25.2

अद्येयं मम संजाता भोगान्प्रत्यरतिः स्फुटम् दिष्ट्या शमसुखं स्वच्छं विशाम्यमृतशीतलम् ॥ २ ॥

adyeyaṃ mama saṃjātā bhogānpratyartiḥ sphuṭam diṣṭyā śamasukhaṃ svacchaṃ viśāmyamṛtaśītalam || 2 ||

Today this clear dislike for pleasures has risen in me. By good fortune I am settling into the clear happiness of peace, cool as nectar.

आज मेरे मन में भोगों के लिए साफ-साफ अरुचि पैदा हो गई है। अच्छे भाग्य से मैं शांति के उस निर्मल सुख में उतर रहा हूँ, जो अमृत जैसा ठंडा है।

5.25.3

पुनरापूरयन्नाशां पुनरप्याहरन्धनम् पुनरावर्जयन्कातां खिन्नोऽस्मि विभवस्थितौ ॥ ३ ॥

punarāpūrayannāśāṃ punarapyāharandhanam punarāvarjayankātāṃ khinno'smi vibhavasthitau || 3 ||

Again and again filling up hope, again and again gathering wealth, again and again winning over the beloved, I am worn out by this life of prosperity.

बार-बार आशा को भरना, बार-बार धन इकट्ठा करना, बार-बार प्रिया को मनाना, इस वैभव भरे जीवन से मैं थक चुका हूँ।

5.25.4

अहो नु खलु रम्येयं शमभूः शीतलान्तरा सर्वा एव शमं यान्ति सुखदुःखदृशः शमे ॥ ४ ॥

aho nu khalu ramyeyaṃ śamabhūḥ śītalāntarā sarvā eva śamaṃ yānti sukhaduḥkhadṛśaḥ śame || 4 ||

Oh, how lovely is this ground of peace, cool inside. In peace, everything comes to peace, even the sight of pleasure and the sight of pain.

अहा, शांति की यह जगह कितनी सुंदर है, भीतर से कितनी ठंडी! शांति में तो सब कुछ शांत हो जाता है, सुख का दिखना भी और दुख का दिखना भी।

5.25.5

शाम्यामि परिनिर्वामि सुखमासे शमे स्थितः अयमन्तः प्रहृष्यामि चन्द्रबिम्ब इवार्पितः ॥ ५ ॥

śāmyāmi parinirvāmi sukhamāse śame sthitaḥ ayamanthaḥ prahṛṣyāmi candrabimba ivārpiataḥ || 5 ||

I am growing calm, I am becoming fully cool. I dwell happily, settled in peace. Within, I feel joy, like the orb of the moon set in the sky.

मैं शांत होता जा रहा हूँ, पूरी तरह ठंडा होता जा रहा हूँ। मैं शांति में टिककर सुख से रहता हूँ। भीतर ही भीतर मुझे खुशी होती है, जैसे आकाश में टिका हुआ चांद का गोला।

5.25.6

उत्ताण्डवन्मनोरंहःप्रोषितोरुशरीरकम्। अनारतपरिक्षोभं हा दुःखं विभवार्जनम्॥ ६॥

uttāṇḍavanmanoraṃhaḥproṣitoruśarīrakam | anāratapariksobhaṃ hā duḥkhaṃ vibhavārjanam || 6 ||

Alas, what suffering it is to earn wealth. It sets the mind dancing wildly, wastes away this great body, and keeps up ceaseless turmoil.

हाय, धन कमाना कैसा दुख है! यह मन को पागल होकर नचा देता है, इस बड़े शरीर को घिसकर कमज़ोर कर देता है, और लगातार हलचल बनाए रखता है।

5.25.7

अङ्गमङ्गेन संपीड्य मांसं मांसेन च स्त्रियः। पुराहमभवं प्रीतो यत्तन्मोहविजृम्भितम्॥ ७॥

aṅgamangeṇa saṃpīḍya māṃsaṃ māṃsena ca striyaḥ | purāhamabhavaṃ prīto yattanmohavijṛmbhitam || 7 ||

Pressing my body against a woman's body, flesh against flesh, long ago I used to take delight in this. That delight was only delusion in full bloom.

शरीर से शरीर को दबाकर, मांस से मांस को दबाकर, स्त्रियों के साथ, पहले मुझे इसमें मज़ा आता था। वह मज़ा केवल मोह का खुलकर फैलना था।

5.25.8

दृष्टान्तदृष्टयो दृष्टा भुक्तं भोक्तव्यमक्षतम्। आक्रान्तमखिलं भूतं जातं किमिव शोभनम्॥ ८॥

dṛṣṭāntadṛṣṭayo dṛṣṭā bhuktam bhoktavyamakṣatam | ākrāntamakhilaṃ bhūtaṃ jātaṃ kimiva śobhanam || 8 ||

I have clearly seen the examples. I have seen fully what I have already enjoyed and what is still left to enjoy. I have gone through the whole world of created things. What thing that is born is truly good?

मैंने मिसालों को साफ-साफ देख लिया है। जो भोगा जा चुका है और जो अभी भोगना बाकी है, वह सब मैंने पूरी तरह देख लिया है। मैंने पूरी दुनिया को नाप लिया है। जो भी जन्म लेता है, उसमें ऐसा अच्छा क्या है?

5.25.9

पुनस्तान्येव तान्येव तत्रेहान्यत्र वापि च। इतश्चेतश्च वस्तूनि नापूर्वं नाम किंचन॥ ९॥

punastānyeva tānyeva tatrehānyatra vāpi ca | itaścetśca vastūni nāpūrvaṃ nāma kiṃcana || 9 ||

Again and again the very same things, there, here, or elsewhere too. Things here and things there, nothing at all is new.

फिर वही चीज़ें, वही चीज़ें, वहाँ, यहाँ, या कहीं और भी। चीज़ें यहाँ की हों या वहाँ की, कुछ भी नया नहीं है।

5.25.10

सर्वमेव परित्यज्य परिहृत्य धिया स्वयम्। स्वस्थ एवावतिष्ठेऽहं पूर्णात्पूर्ण इवात्मनि॥ १०॥

sarvameva parityajya parihṛtya dhiyā svayam | svastha evāvatiṣṭhe'haṃ pūrṇātpūrṇa ivātmani || 10 ||

I have let go of everything. With my own mind I have set it all aside myself. Now I stand steady in myself, like fullness taken out of fullness, within the Self.

मैंने सब कुछ छोड़ दिया है। अपने ही मन से मैंने इसे खुद अलग कर दिया है। अब मैं अपने आप में टिककर खड़ा हूँ, जैसे पूरे में से निकाला गया पूरा, आत्मा के भीतर।

5.25.11

पाताले भूतले स्वर्गे स्त्रियो रत्नोपलादयः । सारं तदपि तुच्छेन कालेनाशु निगीर्यते ॥ ११ ॥

pātāle bhūtale svargē striyo ratnopalādayaḥ | sāraṃ tadapi tucchēna kālēnāśu nigīryatē || 11 ||

In the world below, on this earth, or in heaven, women, jewels, gems, and everything else, even the best part of them is soon swallowed up by time, though time itself is a small thing.

पाताल में हो, इस धरती पर हो, या स्वर्ग में, स्त्रियाँ, रत्न, पत्थर और बाकी सब कुछ, इन सबका सार भी तुच्छ समय के हाथों जल्दी ही निगल लिया जाता है।

5.25.12

एतावन्तमहं कालं भृशं बालोऽभवं पुरा । यः कुर्वन्द्वेषममरैस्तुच्छया जगदिच्छया ॥ १२ ॥

etāvantamahaṃ kālaṃ bhṛśaṃ bālo'bhavaṃ purā | yaḥ kurvandveṣamamarais tucchayā jagadicchayā || 12 ||

For all this time I was a great fool, making enmity with the gods out of a petty desire for the world.

इतने समय तक मैं बहुत बड़ा मूर्ख बना रहा, दुनिया की तुच्छ चाह के कारण देवताओं से दुश्मनी बांधता रहा।

5.25.13

मनोनिर्माणमात्रेण जगन्नाम्ना महाधिना । त्यक्तेनानेनकोऽर्थः स्यात्को नु रागोमहात्मनः ॥ १३ ॥

manonirmāṇamātreṇa jagannāmnā mahādhinā | tyaktenānēnako'rthaḥ syātkō nu rāgōmahātmanaḥ || 13 ||

This is nothing but a construction of the mind, a great torment called the world. Having let go of it, what use is it? What desire would a great soul have for it?

यह तो मन की एक रचना मात्र है, एक बड़ा दुख जिसे दुनिया कहते हैं। इसे छोड़ देने पर इससे क्या फायदा रह जाता है? किसी महान आत्मा को इसकी चाह ही क्यों हो?

5.25.14

कष्टं चिरतरं कालमनर्थोऽर्थधिया मया । अज्ञानमदमत्तेन कालेन स्वेन सेवितः ॥ १४ ॥

kaṣṭaṃ cirataraṃ kālamanartho'rthadhiyā mayā | ajñānamadamattena kālena svēna sēvitaḥ || 14 ||

For a very long time, painfully, I chased what was really harmful, thinking it was true wealth. My own life passed by, drunk with the pride of ignorance.

बहुत लंबे समय तक, दुख सहते हुए, मैंने उसे सच्चा धन समझकर वही अपनाया जो असल में नुकसानदेह था। मेरा अपना समय अज्ञान के नशे में डूबा हुआ बीत गया।

5.25.15

तरत्तरलतृष्णेन किमिवास्मिञ्जगत्त्रयम् । मया न कृतमज्ञेन पश्चात्तापाभिवृद्धये ॥ १५ ॥

tarattaralatṛṣṇena kimivāsmiñjagattrayam | mayā na kṛtamajñena paścāttāpābhivṛddhaye || 15 ||

Driven by a restless, unsteady craving, what did I, in my ignorance, leave undone in these three worlds, only to build up regret afterward?

बेचैन और डांवाडोल चाह से प्रेरित होकर, अपनी नादानी में मैंने इन तीनों लोकों में क्या नहीं किया, बस बाद में पछतावा ही बढ़ाने के लिए?

5.25.16

एतया तदलं मेऽस्तु तुच्छया पूर्वचिन्तया । पौरुषं याति साफल्यं वर्तमानचिकित्सया ॥ १६ ॥

etayā tadalaṃ me'stu tucchayā pūrvacintayā| pauruṣaṃ yāti sāphalyaṃ vartamānacikitsayā || 16 ||

Let this be enough now of this pointless dwelling on the past. Effort bears fruit only by working on the present.

अब बीते हुए पर यह बेकार सोच यहीं बस हो जाए। मेहनत तो वर्तमान पर काम करने से ही सफल होती है।

5.25.17

अद्यापरिमिताकारकारणैकतयात्मनि । सर्वतः सुखमभ्येति रसायनमिवार्णवे ॥ १७ ॥

adyāparimitākārakāraṇaikatayātmani| sarvataḥ sukhamabhyeti rasāyanamivārṇave || 17 ||

Now that I am one with the Self, whose form and cause have no limit, happiness comes to me from every side, like an elixir found in the ocean.

अब जब मैं उस आत्मा के साथ एक हो गया हूँ, जिसका रूप और कारण असीमित है, तो सुख मेरे पास हर तरफ से आता है, जैसे समुद्र में मिलने वाला अमृत।

5.25.18

कोऽयं तावदहं किं स्यादात्मेत्यात्मावलोकनम् । पृच्छाम्यौशनसं नाथं नूनमज्ञानशान्तये ॥ १८ ॥

ko'yaṃ tāvadahaṃ kiṃ syādātmētyātmāvalōkanaṃ| pṛcchāmyauśanasan nāthaṃ nūnamajñānaśāntaye || 18 ||

Who is this "I"? What could this self really be? Looking inward with this question, I ask my master Aushanasa, surely to calm my ignorance.

यह "मैं" कौन है? यह आत्मा असल में क्या हो सकती है? इसी सवाल के साथ भीतर की ओर देखते हुए, मैं अपने गुरु औशनस से पूछता हूँ, ताकि मेरा अज्ञान ज़रूर शांत हो जाए।

5.25.19

संचिन्तयामि परमेश्वरमाशु शुक्रमुद्यत्प्रसादमथ तेन गिरोपदिष्टे । तिष्ठाम्यनन्तविभवे स्वयमात्मनात्मन्यक्षीणमर्थमुपदेशगिरः फलन्ति ॥ १९ ॥

saṃcintayāmi paramēśvaramaśu śukramudyatprasādamatha tena giropadiṣṭe| tiṣṭhāmyanantavibhavē svayamātmanātmaniakṣīṇamarthamupadēśagiraḥ phalanti || 19 ||

I turn my mind to the great master Shukra, quick to show his grace. Once he had taught me with his words, I now stand by myself, in myself, in endless greatness. His teaching has borne fruit as a truth that never wears away.

मैं उस महान गुरु शुक्र का ध्यान करता हूँ, जो फौरन कृपा दिखाने वाले हैं। जब उन्होंने अपने शब्दों से मुझे सिखाया, तब से मैं खुद, अपने आप में, अनंत महानता में टिका हूँ। उनकी शिक्षा एक ऐसे सच के रूप में फली है जो कभी घटता नहीं।

Chapter 26

5.26.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति संचिन्त्य बलवान्बलिरामीलितेक्षणः । दध्यौ कमलपत्राक्षं शुक्रमाकाशमन्दिरम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti saṃcintya balavānbalirāmīlitekṣaṇaḥ | dadhyau kamalapatrākṣaṃ śukramākāśamandiram ||1||

Sri Vasishtha said: Thinking this, the powerful Bali closed his eyes and meditated on Shukra, the lotus-eyed one whose home is the sky.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह सोचकर बलवान बलि ने अपनी आँखें बंद कर लीं और कमल जैसी आँखों वाले शुक्र का ध्यान किया, जिनका घर आकाश में है।

5.26.2

सर्वस्थं चिन्तयानं तु नित्यध्यानोऽथ भार्गवः । चेतःस्थं ज्ञातवान् शिष्यं बलिं गुर्वर्थिनं पुरे ॥ २ ॥

sarvasthaṃ cintayānaṃ tu nityadhyāno'tha bhārgavaḥ | cetaḥsthaṃ jñātavān śiṣyaṃ baliṃ gurvarthinaṃ pure ||2||

Then Bhargava, who was always deep in meditation, knew that his disciple Bali, there in the city, troubled in mind and worried about everything, was inwardly longing for his guru.

तब भार्गव, जो हमेशा गहरे ध्यान में रहते थे, उन्होंने जान लिया कि उनका शिष्य बलि, नगर में, हर बात को लेकर मन में परेशान और चिंतित था, और भीतर ही भीतर अपने गुरु को चाह रहा था।

5.26.3

अथ सर्वगतानन्तचिदात्मा भार्गवः प्रभुः । आनिनाय स देहं स्वं रत्नवातायनं बलेः ॥ ३ ॥

atha sarvagatānantacidātmā bhārgavaḥ prabhuḥ | āninaya sa dehaṃ svaṃ ratnavātāyanaṃ baleḥ ||3||

Then Bhargava, the lord whose self is the infinite consciousness pervading everything, brought his own body to Bali's jeweled window.

तब भार्गव, जो प्रभु थे और जिनका स्वरूप हर जगह फैली अनंत चेतना था, अपना शरीर लेकर बलि की रत्नजड़ित खिड़की पर आए।

5.26.4

गुरुदेहप्रभाजालपरिमृष्टतनुर्बलिः । बुबुधे प्रातरर्कांशुसंबोधितमिवाम्बुजम् ॥ ४ ॥

gurudehaprabhājālaparimṛṣṭatanurbaliḥ | bubudhe prātararkāṃśusaṃbodhitamivāmbujam ||4||

Bali, his body touched by the web of light streaming from his guru's form, awoke like a lotus opened by the morning rays of the sun.

बलि का शरीर अपने गुरु के तेज की जाल जैसी किरणों से छू गया, और वह वैसे ही जाग उठा जैसे सुबह सूरज की किरणों से कमल खिल उठता है।

5.26.5

तत्र रत्नार्घ्यदानेन मन्दारकुसुमोत्करैः । पादाभिवन्दनैरेनं पूजयामास भार्गवम् ॥ ५ ॥

tatra ratnārghyadānena mandārakusumotkaraiḥ | pādābhivandanairenaṃ pūjayāmāsa bhārgavam ||5||

There he honored Bhargava with a jeweled offering, with heaps of mandara flowers, and with bows at his feet.

वहाँ उसने भार्गव का सम्मान रत्नों की भेंट देकर, मंदार फूलों के ढेर चढ़ाकर, और उनके चरणों में झुककर किया।

5.26.6

रत्नार्घ्यपरिपूर्णाङ्गं कृतमन्दारशेखरम्। महार्हासनविश्रान्तमथोवाच गुरुं बलिः ॥ ६ ॥

ratnārghyaparipūrṇāṅgaṃ kṛtamandāraśekharam | mahārhāsanaviśrāntamathovāca guruṃ baliḥ || 6 ||

Then Bali spoke to his guru, whose body was covered with the jeweled offering, who wore a crown of mandara flowers, and who was resting on a rich seat.

तब बलि अपने गुरु से बोला, जिनका शरीर रत्नों की भेंट से ढका था, जिन्होंने मंदार फूलों का मुकुट पहना था, और जो एक कीमती आसन पर विश्राम कर रहे थे।

5.26.7

बलिरुवाच। भगवंस्त्वत्प्रसादोत्था प्रतिभेयं पुरस्तव। नियोजयति मां वक्तुं कार्यं कर्तुमिवार्कभाः ॥ ७ ॥

baliruvāca | bhagavaṃstvatprasādottā pratibheyaṃ purastava | niyojayati māṃ vaktuṃ kāryaṃ kartumivārkabhāḥ || 7 ||

Bali said: Lord, this understanding that has risen from your grace, here before you, drives me to speak, the way the sun's rays move to do their work.

बलि ने कहा: हे भगवन, आपकी कृपा से जागी यह समझ, आपके सामने, मुझे बोलने के लिए प्रेरित करती है, जैसे सूरज की किरणें अपना काम करने के लिए बढ़ती हैं।

5.26.8

भोगान्प्रति विरक्तोऽस्मि महासंमोहदायिनः। तत्तत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि महासंमोहहारि यत् ॥ ८ ॥

bhogānprati virakto'smi mahāsaṃmohadāyinaḥ | tattattvaṃ jñātumicchāmi mahāsaṃmohahāri yat || 8 ||

I have grown detached from pleasures, which bring great delusion. I want to know that truth which takes away great delusion.

मैं उन सुखों में अब दिलचस्पी नहीं रखता, जो बड़ा मोह पैदा करते हैं। मैं वह सच्चाई जानना चाहता हूँ जो बड़े मोह को मिटा देती है।

5.26.9

कियन्मात्रमिदं भोगजालं किमयमेव वा। कोऽहं कस्त्वं किमेते वा लोका इति वदाशु मे ॥ ९ ॥

kiyanmātramidaṃ bhogajālaṃ kimayameva vā | ko'haṃ kastvaṃ kimetevā lokā iti vadāśu me || 9 ||

How big is this web of pleasures, or is it only this much? Who am I, who are you, and what are these worlds? Tell me this quickly.

यह सुखों का जाल कितना बड़ा है, या बस इतना ही है? मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, और ये लोक क्या हैं? यह मुझे जल्दी बताओ।

5.26.10

शुक्र उवाच। बहुनात्र किमुक्तेन खं गन्तुं यत्नवानहम्। सर्वदानवराजेन्द्र सारं संक्षेपतः शृणु ॥ १० ॥

śukra uvāca | bahunātra kimukthena khaṃ gantuṃ yatnavānham | sarvadānavarājendra sāraṃ saṃkṣepataḥ śṛṇu || 10 ||

Shukra said: Why say much? I am eager to go into the sky. O greatest king of all the demons, hear the essence in brief.

शुक्र ने कहा: ज्यादा कहने से क्या फायदा? मैं आकाश में जाने के लिए बेताब हूँ। हे सब दानवों के सबसे बड़े राजा, सार बात संक्षेप में सुनो।

5.26.11

चिदिहास्ति हि चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च । चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः ॥ ११ ॥

cidihāsti hi cinmātramidaṃ cinmayameva ca | cittvaṃ cidahamete ca lokāściditi saṃgrahaḥ || 11 ||

Here, only consciousness exists. This is nothing but consciousness, made only of consciousness. You are consciousness, I am consciousness, and these worlds are consciousness. This is the sum of it.

यहाँ केवल चेतना है। यह और कुछ नहीं, केवल चेतना है, चेतना से ही बनी है। तुम चेतना हो, मैं चेतना हूँ, और ये सब लोक चेतना हैं। यही सब का सार है।

5.26.12

भव्योऽसि चेत्तदेतस्मात्सर्वमाप्नोषि निश्चयात् । नो चेत्तद्वह्वपि प्रोक्तं त्वयि भस्मनि हूयते ॥ १२ ॥

bhavyo'si cet tadetasmātsarvamāpnoṣi niścayāt | no cet tadvahvapi proktaṃ tvayi bhasmani hūyate || 12 ||

If you are ready for it, then from this alone you will surely get everything. If you are not, then even much that is taught to you is like an offering poured into ashes.

अगर तुम इसके लायक हो, तो बस इतने से ही तुम्हें सब कुछ जरूर मिल जाएगा। अगर नहीं, तो तुम्हें जो भी बहुत कुछ बताया जाए, वह राख में डाली गई आहुति जैसा है।

5.26.13

चिच्चेत्यकलनाबन्धस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते । चिदचेत्याखिलात्मेति सर्वसिद्धान्तसंग्रहः ॥ १३ ॥

cicchetyakalanābandhaḥ tanmuktirmuktirucyate | cidacetyākhilātmeti sarvasiddhāntasaṃgrahaḥ || 13 ||

Bondage means treating consciousness as a thing that can be seen or known. Being free from this is what we call freedom. Consciousness cannot be seen as a thing, it is the self that lives inside everything. This sums up every true teaching.

बंधन का मतलब है चेतना को ऐसी चीज़ मान लेना जिसे देखा या जाना जा सके। इससे मुक्त होना ही मुक्ति कहलाता है। चेतना को चीज़ की तरह नहीं देखा जा सकता, वह हर चीज़ के भीतर बसी आत्मा है। यही हर सच्ची शिक्षा का सार है।

5.26.14

एनं निश्चयमादाय विलोकयसि हेलया । स्वयमेवात्मनात्मानमनन्तं पदमाप्स्यसि ॥ १४ ॥

enaṃ niścayamādāya vilokayasi helayā | svayamevātmanātmānamanantaṃ padamāpsyasi || 14 ||

Hold on to this certain truth, and you will see it easily. On your own, through yourself, you will reach your true self, the state that has no end.

इस निश्चित सत्य को थाम लो, और तुम इसे आसानी से देख लोगे। तुम खुद, अपने ही द्वारा, अपने सच्चे स्वरूप को पा लोगे, वह अवस्था जिसका कोई अंत नहीं।

5.26.15

खं व्रजाम्यहमत्रैव मुनयः सप्त संगताः । केनापि सुरकार्येण वस्तव्यं तत्र वै मया ॥ १५ ॥

khaṃ vrajāmyahamatraiva munayaḥ sapta saṃgatāḥ | kenāpi surakāryeṇa vastavyaṃ tatra vai mayā || 15 ||

I am going into the sky right now; seven sages have joined me. For some task of the gods, I must stay there.

मैं अभी आकाश में जा रहा हूँ; सात मुनि मेरे साथ जुड़ गए हैं। देवताओं के किसी काम के लिए मुझे वहाँ रुकना है।

5.26.16

राजन्यावदयं देहस्तावन्मुक्तधियामपि । यथाप्राप्तक्रियात्यागो रोचते न स्वभावतः ॥ १६ ॥

rājanyāvadayaṃ dehastāvanmuktadhiyāmapi | yathāprāptakriyātyāgo rocate na svabhāvataḥ || 16 ||

King, as long as the body lasts, even a person whose mind is free does not, by nature, like to give up the tasks that come along.

राजन, जब तक यह शरीर है, तब तक मुक्त मन वाला व्यक्ति भी स्वभाव से उन कामों को छोड़ना पसंद नहीं करता जो सामने आ जाते हैं।

5.26.17

इति कथितवताथ भार्गवेण स्फुटजलराशिपथा महाजवेन । प्लुतमलिशबले नभोन्तराले तरलतरङ्गवदाकुले ग्रहौघैः ॥ १७ ॥

iti kathitavatātha bhārgaveṇa sphuṭajalarāśipathā mahājavena | plutamaliśabale nabhontarāle taralataraṅgavadākule grahaughaiḥ || 17 ||

Having said this, Bhargava moved on very swiftly, his path a bright stretch of water, into the middle of the sky, thick with swarms of bees and crowded with a flood of planets like restless waves.

यह कहकर भार्गव बड़ी तेज़ी से आगे बढ़े, उनका मार्ग जल की एक चमकती धारा जैसा था, आकाश के बीचों-बीच, जहाँ भौंरों के झुंड भरे थे और बेचैन लहरों जैसे ग्रहों की भीड़ थी।

Chapter 27

5.27.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । सुरासुरसभाज्येष्ठे तस्मिन्भृगुसुते गते । मनसा चिन्तयामास बलिर्बुद्धिमतां वरः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | surāsurasabhājyeṣṭhe tasminbhṛgusute gate | manasā cintayāmāsa balirbuddhimatāṃ varaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: in that great assembly of gods and demons, when the son of Bhrigu had gone away, Bali, the best of the wise, reflected in his mind.

श्री वसिष्ठ ने कहा: देवताओं और असुरों की उस बड़ी सभा में जब भृगु के पुत्र वहाँ से चले गए, तब बुद्धिमानों में सबसे श्रेष्ठ बलि ने अपने मन में यह सोचा।

5.27.2

युक्तमुक्तं भगवता चिदेवेदं जगत्त्रयम् । चिदहं चिदिमे लोकाश्चिदाशाश्चिदियं क्रिया ॥ २ ॥

yuktamuktaṃ bhagavatā cidevedaṃ jagattrayam | cidahaṃ cidime lokāścidāśāścidiyam kriyā || 2 ||

What the venerable one said is right: these three worlds are nothing but consciousness. I am consciousness, these worlds are consciousness, the directions are consciousness, this very action is consciousness.

उस पूज्य महात्मा ने जो कहा वह ठीक ही कहा है कि ये तीनों लोक चेतना ही हैं। मैं चेतना हूँ, ये सब लोक चेतना हैं, ये दिशाएँ चेतना हैं, और यह हर क्रिया भी चेतना ही है।

5.27.3

सबाह्याभ्यन्तरं सर्वं चिदेव परमार्थतः । अस्ति चिद्व्यतिरेकेण नेह किंचन कुत्रचित् ॥ ३ ॥

sabāhyābhyantaraṃ sarvaṃ cideva paramārthataḥ | asti cidvyatirekeṇa neha kiñcana kutracit || 3 ||

In ultimate truth, everything, both outside and inside, is consciousness alone. Apart from consciousness, nothing exists anywhere at all.

परम सत्य में हर चीज़, बाहर भी और भीतर भी, केवल चेतना ही है। चेतना के अलावा कहीं भी कुछ भी नहीं है।

5.27.4

अयमादित्य इत्यर्को न चिता यदि चेत्यते । तदर्कतमसोर्भेदः क इहेवोपलभ्यते ॥ ४ ॥

ayamāditya ityarko na citā yadi cetayate | tadarkatamasonr bhedaḥ ka ihevopalabhyate || 4 ||

This is the sun—but if consciousness did not perceive that sun, what difference would there be between the sun and darkness?

यह सूरज है—लेकिन अगर चेतना उस सूरज को न जाने, तो सूरज और अंधेरे में क्या फ़र्क़ रह जाएगा?

5.27.5

इयं भूरिति भूरेषा चिता यदि न चेत्यते । भूमेः किं नाम भूमित्वं तद्भव्ये भव्यतां गतम् ॥ ५ ॥

iyaṃ bhūriti bhūreṣā citā yadi na cetayate | bhūmeḥ kiṃ nāma bhūmitvaṃ tadbhavaye bhavatāṃ gatam || 5 ||

This is the earth—but if consciousness did not perceive this earth, what would its earthness be? It would remain a mere possibility, never becoming real.

यह धरती है—लेकिन अगर चेतना इस धरती को न जाने, तो धरती का धरती होना क्या रह जाएगा? वह बस एक संभावना बनकर रह जाएगा, कभी सच्चाई नहीं बनेगा।

5.27.6

इमा दिशो दिश इति चेत्यन्ते न चिता यदि। तत्किं नाम दिशां दिक्त्वं शैलानां चापि काद्रिता ॥ ६ ॥

imā diśo diśa iti cetyan te na citā yadi | tatkiṃ nāma diśāṃ diktvaṃ śailānāṃ cāpi kādritā || 6 ||

These are the directions—but if consciousness did not perceive the directions, would they still be directions? Would the mountains still be mountains?

ये दिशाएँ हैं—लेकिन अगर चेतना इन दिशाओं को न जाने, तो क्या ये सच में दिशाएँ रह जाएँगी? और क्या पहाड़ सच में पहाड़ रह जाएँगे?

5.27.7

इदं जगज्जगदिति चिता यदि न चेत्यते। तत्किं जगत्त्वं जगतो नभस्त्वं नभसोऽथ किम् ॥ ७ ॥

idaṃ jagajjagaditi citā yadi na cetya te | tatkiṃ jagattvaṃ jagato nabhastvaṃ nabhaso'tha kim || 7 ||

This is the world—but if consciousness did not perceive it, would the world still be the world? Would the sky still be the sky?

यह संसार है—लेकिन अगर चेतना इसे न जाने, तो क्या संसार सच में संसार रह जाएगा? और क्या आकाश सच में आकाश रह जाएगा?

5.27.8

कायोऽयं पर्वताकारश्चिता यदि न चेत्यते। तत्किं नाम शरीरत्वं शरीरस्य शरीरिणाम् ॥ ८ ॥

kāyo'yaṃ parvatākāraścitā yadi na cetya te | tatkiṃ nāma śarīratvaṃ śarīrasya śarīriṇām || 8 ||

This body, huge as a mountain—if consciousness did not perceive it, would an embodied being's body still be a body?

यह शरीर, पहाड़ जैसा विशाल—अगर चेतना इसे न जाने, तो क्या देहधारी का शरीर सच में शरीर रह जाएगा?

5.27.9

चिदिन्द्रियाणि चित्कायश्चिन्मनश्चित्तदेषणा। चिदन्तश्चिद्बहिश्चित्खं चिद्भावाश्चिद्भवस्थितिः ॥ ९ ॥

cindriyāṇi citkāyaścinmanaścittadeṣaṇā | cidantaścidbahiścitkhaṃ cidbhāvāścidbhavasthitiḥ || 9 ||

The senses are consciousness, the body is consciousness, the mind is consciousness, its longing is consciousness. Consciousness is inside, consciousness is outside, consciousness is space, consciousness is every existing thing, consciousness is the state of being.

इंद्रियाँ चेतना हैं, शरीर चेतना है, मन चेतना है, उसकी चाहत भी चेतना है। भीतर चेतना है, बाहर चेतना है, आकाश चेतना है, हर मौजूद चीज़ चेतना है, और होने की अवस्था भी चेतना है।

5.27.10

चितैवैनमहं सर्वं स्पर्शनैषणपूर्वकम्। करोमि मात्रासंस्पर्शं शरीरेण न किंचन ॥ १० ॥

citai vainamahaṃ sarvaṃ sparśanaiṣaṇapūrvakam | karomi mātrāsaṃsparśaṃ śarīreṇa na kiṃcana || 10 ||

By consciousness alone I do everything, starting from the wish to touch; through the body I make only the slightest contact, I do nothing at all by means of the body.

चेतना के सहारे ही मैं यह सब करता हूँ, छूने की इच्छा से शुरू होकर आगे तक; शरीर से तो मैं बस हल्का सा स्पर्श करता हूँ, शरीर के द्वारा मैं कुछ भी नहीं करता।

5.27.11

किमनेन शरीरेण काष्ठलोष्टसमेन मे । अशेषजगदेकात्मा चिदहं चेतनात्मकः ॥ ११ ॥

kimanena śarīreṇa kāṣṭhaloṣṭasamen me | aśeṣajagadekātmā cidahaṃ cetanātmakaḥ || 11 ||

What use is this body of mine—it is just like a piece of wood or a lump of clay. I am consciousness, the one self of the whole world, made of pure awareness.

मेरे इस शरीर से क्या फ़ायदा—यह तो लकड़ी के टुकड़े या मिट्टी के ढेले जैसा ही है। मैं तो चेतना हूँ, पूरे जगत की एक ही आत्मा, शुद्ध चेतना के स्वरूप वाला।

5.27.12

अहं चिदम्बरे भानावहं चिद्भूतपञ्जरे । सुरासुरेषु चिदहं स्थावरेषु चरेषु च ॥ १२ ॥

ahaṃ cidambare bhānāvahaṃ cidbhūtapañjare | surāsureṣu cidahaṃ sthāvareṣu careṣu ca || 12 ||

I am consciousness in the sky, I am consciousness in the sun. I am consciousness in this cage of the elements. I am consciousness in gods and demons, in things that stand still and in things that move.

मैं आकाश में चेतना हूँ, मैं सूरज में चेतना हूँ। मैं तत्वों के इस पिंजरे में चेतना हूँ। मैं देवताओं और असुरों में चेतना हूँ, स्थिर चीज़ों में और चलने वाली चीज़ों में भी चेतना हूँ।

5.27.13

चिदस्तीह द्वितीया हि कल्पनैव न विद्यते । द्वित्वस्यासंभवाल्लोके कः शत्रुः कश्च वा सुहृत् ॥ १३ ॥

cidastīha dvitīyā hi kalpanaiava na vidyate | dvitvasyāsaṃbhavālloke kaḥ śatruḥ kaśca vā suhṛt || 13 ||

Here consciousness alone truly exists; a second thing is not even a real idea. Since there is no such thing as two, who in this world could be an enemy, and who a friend?

यहाँ सचमुच चेतना ही है, कोई दूसरी चीज़ तो कल्पना में भी नहीं है। जब दो होना ही संभव नहीं, तो संसार में कौन दुश्मन है और कौन दोस्त?

5.27.14

बलिनाम्नः शरीरस्य च्छिन्ने शिरसि भासुरे । चितः किं तद्भवेच्छिन्नं सर्वलोकावपूरणात् ॥ १४ ॥

balināmnaḥ śarīrasya cchinne śirasi bhāsure | citaḥ kiṃ tadbhavecchinnaṃ sarvalokāvapūraṇāt || 14 ||

If the shining head of this body named Bali were cut off, would consciousness itself be cut—when it fills every world completely?

अगर बलि नाम के इस शरीर का चमकता सिर भी काट दिया जाए, तो क्या चेतना कट जाएगी—जबकि वह तो समूचे संसार में भरी हुई है?

5.27.15

चिता संचेतितो द्वेषो द्वेषो भवति नान्यथा । तस्माद्द्वेषादयः सर्वे भावाभावाश्चिदात्मकाः ॥ १५ ॥

citā saṃcetito dveṣo dveṣo bhavati nānyathā | tasmāddveṣādayaḥ sarve bhāvābhāvāścidātmakāḥ || 15 ||

Hatred becomes hatred only when consciousness perceives it as such, not otherwise. So hatred and everything else, all things that exist and all that do not, are nothing but consciousness.

द्वेष तभी द्वेष बनता है जब चेतना उसे द्वेष के रूप में जाने, वरना नहीं। इसलिए द्वेष आदि सब कुछ, जो भी है और जो भी नहीं है, सब चेतना के ही रूप हैं।

5.27.16

न चितो व्यतिरेकेण प्रविचार्यापि किंचन । आसाद्यते किल स्फारादस्मात्त्रिभुवनोदरात् ॥ १६ ॥

na cito vyatirekeṇa pravicāryāpi kiṃcana | āsādyate kila sphārādasmāttribhuvanodarāt || 16 ||

Even after the closest examination, indeed nothing at all is found apart from consciousness, anywhere in this vast expanse that is the inside of the three worlds.

गहराई से जाँचने पर भी, सचमुच चेतना के अलावा कुछ भी नहीं मिलता, इस विशाल फैलाव में जो तीनों लोकों का भीतरी भाग है।

5.27.17

न द्वेषोऽस्ति न रागोऽस्ति न मनो नास्य वृत्तयः । चिन्मात्रस्यातिशुद्धस्य विकल्पकलना कुतः ॥ १७ ॥

na dveṣo'sti na rāgo'sti na mano nāsya vṛttayaḥ | cinmātrasyātiśuddhasya vikalpakalanā kutaḥ || 17 ||

There is no hatred, there is no attachment, there is no mind, and no workings of the mind. For consciousness alone, utterly pure, how could there be any making of distinctions?

न कोई द्वेष है, न कोई राग है, न मन है, न मन की कोई हलचल है। जो चेतना बिलकुल शुद्ध है, उसमें भेद बनाने की गुंजाइश ही कहाँ है?

5.27.18

चिदहं सर्वगो व्यापी नित्यानन्दमयात्मकः । विकल्पकलनातीतो द्वितीयांशविवर्जितः ॥ १८ ॥

cidahaṃ sarvago vyāpī nityānandamayātmakaḥ | vikalpakalanātīto dvitīyāṃśavivarjitaḥ || 18 ||

I am consciousness, present everywhere, all-pervading, made of everlasting bliss. I am beyond every distinction, without a trace of anything second to me.

मैं चेतना हूँ, हर जगह मौजूद, सब में व्याप्त, सदा के आनंद से बना हुआ। मैं हर भेद से परे हूँ, मुझमें किसी दूसरी चीज़ का लेशमात्र भी नहीं है।

5.27.19

चितश्चिदिति यन्नाम निर्नामाया न नाम तत् । शब्दात्मिकैषा चिच्छक्तिः परिस्फुरति सर्वगा ॥ १९ ॥

citaścidiyannāma nirnāmāyā na nāma tat | śabdātmikaiṣā cicchaktiḥ parisphurati sarvagā || 19 ||

The name we give it, consciousness, is not its true name, for it has no name at all. Yet this power of consciousness, which takes the form of words, shines forth everywhere.

हम इसे जो नाम देते हैं, चेतना, वह इसका असली नाम नहीं है, क्योंकि इसका कोई नाम है ही नहीं। फिर भी चेतना की यह शक्ति, जो शब्द का रूप लेती है, हर जगह चमकती है।

5.27.20

दृश्यदर्शननिर्मुक्तकेवलामलरूपवान् । नित्योदितो निराभासो द्रष्टास्मि परमेश्वरः ॥ २० ॥

dṛśyadarśananirmuktakevalāmalarūpavān | nityodito nirābhāso draṣṭāsmi parameśvaraḥ || 20 ||

My form is pure and stainless alone, free from both the seen and the act of seeing. Ever shining, without any reflected image, I am the seer, the highest lord.

मेरा रूप बिलकुल शुद्ध और निर्मल है, न दृश्य से बँधा है, न देखने की क्रिया से। मैं सदा प्रकाशमान हूँ, मुझमें कोई प्रतिबिंब नहीं है, मैं ही द्रष्टा हूँ, सबसे बड़ा ईश्वर हूँ।

5.27.21

कल्पनाविकलाकारः कालकान्तकलामयः । आभासमात्रमुदितो नित्याभासविवर्जितः ॥ २१ ॥

kalpanāvikalākāraḥ kālakāntakalāmayaḥ | ābhāsamātramudito nityābhāsavivarjitaḥ || 21 ||

My form leaves no room for imagination; I am made of the very phases that bring time to its end. I arise only as an appearance, yet I am free from any lasting appearance.

मेरे रूप में कल्पना के लिए कोई जगह नहीं; मैं उन्हीं चरणों से बना हूँ जो समय का अंत करते हैं। मैं केवल एक झलक की तरह उठता हूँ, फिर भी किसी स्थायी झलक से मुक्त हूँ।

5.27.22

भारूपैकस्वरूपेऽस्मिन्स्वरूपेण जयाम्यहम् । चेत्यरञ्जनरिक्ताय विमुक्ताय महात्मने ॥ २२ ॥

bhārūpaikasvarūpe'smin svarūpeṇa jayāmyaham | cetyarañjanariktāya vimuktāya mahātmane || 22 ||

I stand victorious, in my own true nature, within this single form that is pure light -- I, the great self, free of every trace of the knowable, wholly liberated.

मैं अपने ही असली स्वरूप में विजयी हूँ, इस एक प्रकाश-रूप में -- मैं वही महान आत्मा हूँ, जो जानी जाने वाली हर चीज़ के रंग से मुक्त और पूरी तरह स्वतंत्र है।

5.27.23

प्रत्यक्चेतनरूपाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते । चितये चेत्यमुक्ताय युक्त्या युक्ताय योग्यया ॥ २३ ॥

pratyakcetanarūpāya svarūpāya namo'stu te | citaye cetynamuktāya yuktyā yuktāya yogyayā || 23 ||

Salutations to you, whose true form is consciousness turned inward, whose nature is your own true self. Salutations to that consciousness, free from anything known as an object, established through fitting reason.

तुम्हें नमस्कार, जिसका असली रूप भीतर की ओर मुड़ी चेतना है, जिसका स्वभाव तुम्हारा अपना सच्चा स्वरूप है। उस चेतना को नमस्कार, जो किसी भी जानी जाने वाली वस्तु से मुक्त है और उचित तर्क से सिद्ध होती है।

5.27.24

सर्वावभासदीपाय मह्यमेव नमोऽस्तु ते । चेत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं विष्वग्विश्वावपूरकम् ॥ २४ ॥

sarvāvabhāsadīpāya mahyameva namo'stu te | cetyanirmuktacidrūpaṃ viṣvagviśvāvapūrakam || 24 ||

Salutations to you, the lamp that lights up every appearance -- to you, who are none other than myself. You are consciousness free from anything known as an object, filling this whole universe on every side.

तुम्हें नमस्कार, जो हर झलक को रोशन करने वाला दीपक है -- तुम्हें, जो मुझसे अलग नहीं, मैं ही हो। तुम वह चेतना हो जो किसी वस्तु से बँधी नहीं, जो इस पूरे विश्व को हर तरफ से भरती है।

5.27.25

संशान्तसर्वसंवेद्यं सच्चिन्मात्रमहं महत् । आकाशवदनन्तोऽहमप्यणोरणुराततः ॥ २५ ॥

saṃśāntasarvasaṃvedyaṃ saccinmātramahaṃ mahat | ākāśavadananto'hamapyaṇoraṇurātataḥ || 25 ||

I am the great reality in which everything knowable has fully come to rest -- pure being and consciousness alone. Like space, I am without end; yet I am also smaller than the smallest, while spreading through everything.

मैं वह महान सत्य हूँ जिसमें जानी जाने वाली हर चीज़ पूरी तरह शांत हो चुकी है -- केवल सत् और चित् मात्र। आकाश की तरह मैं अनंत हूँ; फिर भी मैं सबसे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हूँ, और साथ ही हर जगह फैला हुआ हूँ।

5.27.26

नासादयन्ति मामेताः सुखदुःखदशा दृशः। संवेदनमसंवेद्यमचेत्यं चेतनं ततम्॥ २६॥

nāsādayanti māmetāḥ sukhaduḥkhadaśā dṛśaḥ| saṃvedanamasavedyamacetyaṃ cetanaṃ tatam || 26 ||

These states of pleasure and pain that come with seeing do not touch me. I am awareness itself -- never an object to be known, never a thing to be thought of, yet conscious, and spread through everything.

देखने के साथ आने वाली सुख-दुख की ये अवस्थाएँ मुझे छूती नहीं। मैं स्वयं चेतना हूँ -- न कभी जानी जाने वाली कोई वस्तु, न कभी सोची जाने वाली कोई चीज़, फिर भी सचेत, और हर जगह फैली हुई।

5.27.27

न शक्ता मां परिच्छेत्तुं भावाभावा जगद्गताः। अथ चैते जगद्भावाः परिच्छिन्दन्तु मामिमम्॥ २७॥

na śaktā māṃ paricchettuṃ bhāvābhāvā jagadgatāḥ| atha caite jagadbhāvāḥ paricchindantu māmimam || 27 ||

The states of existence and non-existence found in the world cannot limit me. Then let these worldly states limit this very self.

संसार में पाई जाने वाली सत्ता और असत्ता की अवस्थाएँ मुझे सीमित नहीं कर सकतीं। तो फिर ये सांसारिक अवस्थाएँ इस मुझे सीमित करें।

5.27.28

यथाभिमतमेवैते मत्तो न व्यतिरेकिणः। यदि स्वभावभूतेन वस्तुना वस्तु नीयते॥ २८॥

yathābhimatamevaite mattona vyatirekiṇaḥ| yadi svabhāvabhūtena vastunā vastu nīyate || 28 ||

However one may imagine them, these are not separate from me -- even supposing one real thing could be produced by another thing that exists in its own right.

इन्हें चाहे जैसे भी समझा जाए, ये मुझसे अलग नहीं हैं -- भले ही मान लें कि एक असली चीज़ किसी दूसरी उतनी ही असली चीज़ से बनी हो।

5.27.29

ह्रियते दीयते वापि तत्किं कस्य किल क्षतम्। सर्वदा सर्वमेवाहं सर्वकृत्सर्वसंगतः॥ २९॥

hriyate dīyate vāpi tatkiṃ kasya kila kṣatam| sarvadā sarvamevāhaṃ sarvakṛtsarvasaṃgataḥ || 29 ||

Whether such a thing is taken away or given, what indeed is lost, and to whom? I am, always, everything itself -- the doer of all, joined with all.

चाहे ऐसी चीज़ छीनी जाए या दी जाए, आखिर किसका क्या नुकसान है? मैं ही सदा सब कुछ हूँ -- सबका करने वाला, सबसे जुड़ा हुआ।

5.27.30

चेत्यमस्म्यहमेवैतन्न किंचिदपि चोदितम्। किं संकल्पविकल्पाभ्यां चितं चिदियमेकिका॥ ३०॥

cetyamasmyahamevaitannakiṃcidapi coditam| kiṃ saṃkalpavikalpābhyāṃ citaṃ cidiyamekikā || 30 ||

I myself am the very thing to be known; this world is nothing that has come about apart from me. So what use are the mind's yes and no, its resolve and doubt? Once known, this consciousness stands alone, without a second.

मैं स्वयं ही वह चीज़ हूँ जिसे जाना जाता है; यह संसार मुझसे अलग होकर कहीं से पैदा नहीं हुआ। तो फिर मन के हाँ और ना, संकल्प और संदेह किस काम के? एक बार जान लेने पर, यह चेतना अकेली है, इसका कोई दूसरा नहीं।

5.27.31

संक्षोभयाम्यहं तावच्छाम्याम्यात्मनि पावने । इति संचिन्तयन्नेव बलिः परमकोविदः ॥ ३१ ॥

saṃkṣobhayāmyahaṃ tāvacchāmyāmyātmani pāvane | iti saṃcintayanneva baliḥ paramakovidaḥ || 31 ||

I stir myself into activity, yet I remain at peace within this purifying self. Thinking in this way, Bali, the wisest of the wise,

मैं स्वयं को हिलाता-डुलाता हूँ, फिर भी इस शुद्ध करने वाली आत्मा में शांत बना रहता हूँ। ऐसा सोचते हुए, बलि, जो परम विद्वान था,

5.27.32

ओंकारादर्धमात्रार्थं भावयन्मौनमास्थितः । संशान्तसर्वसंकल्पः प्रशान्तकलनागणः ॥ ३२ ॥

oṃkārādardhamātrārthaṃ bhāvayanmaunamāsthitaḥ | saṃśāntasarvasaṃkalpaḥ praśāntakalanāgaṇaḥ || 32 ||

He meditated on the meaning of the half-measure of the sound Om, and settled into silence. Every intention in his mind had come to rest; the whole working of his thoughts had grown calm.

वह ॐ शब्द की आधी मात्रा के अर्थ का ध्यान करते हुए मौन में स्थिर हो गया। उसके मन का हर संकल्प शांत हो चुका था; उसके विचारों की पूरी हलचल थम चुकी थी।

5.27.33

निःशङ्कमपि दूरास्तचेत्यचिन्तकचिन्तनः । ध्यातृध्येयध्यानहीनो निर्मलः शान्तवासनः ॥ ३३ ॥

niḥśaṅkamapi dūrāstacetyacintakacintanaḥ | dhyātṛdhyeyadhyānahīno nirmalaḥ śāntavāsanaḥ || 33 ||

Without any doubt, even the very thought of a thinker directed at some object had faded far off, like the sun going down. He was free of the meditator, the object meditated on, and the act of meditating itself -- pure, with every inner tendency now calmed,

बिना किसी संशय के, किसी सोचने वाले का किसी विषय की ओर सोचना भी दूर जाकर डूबते सूरज की तरह मिट चुका था। वह ध्यान करने वाले, ध्यान की वस्तु और ध्यान -- तीनों से मुक्त हो चुका था -- शुद्ध, जिसकी भीतरी वृत्तियाँ अब शांत हो चुकी थीं,

5.27.34

बभूवावातदीपाभो बलिः प्राप्तमहापदः । उपशान्तमनास्तत्र रत्नवातायने बलिः । अवसद्बहुकालं स समुत्कीर्ण इवोपले ॥ ३४ ॥

babhūvāvātadīpābho baliḥ prāptamahāpadaḥ | upaśāntamanāstatra ratnavātāyane baliḥ | avasadbahukālaṃ sa samutkīrṇa ivopale || 34 ||

Bali, who had fallen into a great disaster, became still like a lamp's flame in a windless place. His mind now fully at peace, Bali stayed there at a jewelled window, remaining for a long time like a figure carved into stone.

बलि, जो एक बड़ी विपत्ति में पड़ चुका था, हवा रहित जगह के दीये की लौ जैसा स्थिर हो गया। उसका मन पूरी तरह शांत हो चुका था, बलि वहीं एक रत्नजड़ित खिड़की में बैठा रहा, और लंबे समय तक पत्थर में तराशी गई मूर्ति जैसा बना रहा।

5.27.35

प्रशमितैषणया परिपूर्णया मननदोषदशोज्झितयैतया । बलिरराजत निर्मलसत्तया विघनमच्छतयेव शरन्नभः ॥ ३५ ॥

praśamitaiṣaṇayā paripūrṇayā mananadoṣadaśojjhitayaitayā | balirarājata nirmalasattayā vighnamacchhatayeva śarannabhaḥ || 35 ||

With his craving now stilled, made whole, having cast off the faulty state of restless thinking, Bali shone with a pure, stainless being -- like the autumn sky, free of clouds, shining through its own clearness.

उसकी हर इच्छा शांत हो चुकी थी, वह पूर्ण हो चुका था, और सोचने-विचारने की दोषभरी अवस्था को त्याग चुका था; बलि शुद्ध और निर्मल सत्ता के साथ चमक रहा था -- जैसे बादल रहित शरद ऋतु का आकाश अपनी ही स्वच्छता से चमकता है।

Chapter 28

5.28.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ ते दानवास्तत्र बलेरनुचरास्तदा । तद्गेहं स्फाटिकं सौधमुच्चैरारुरुहुः क्षणात् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atha te dānavāstatra baleranucarāstadā | tadgehaṃ sphāṭikaṃ saudhamuccairāruhuruḥ kṣaṇāt || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then those demons there, the followers of Bali, climbed up in an instant to his high crystal palace.

श्री वसिष्ठ ने कहा: तब वहाँ के वे दानव, जो बलि के अनुयायी थे, उसी पल में उसके ऊँचे स्फटिक महल पर चढ़ गए।

5.28.2

डिम्भाद्या मन्त्रिणो धीराः सामन्ताः कुमुदादयः । सुराद्याश्चैव राजानो वृत्ताद्या बलहारिणः ॥ २ ॥

ḍimbhaādyā mantrino dhīrāḥ sāmantāḥ kumudādayaḥ | surādyāścaiva rājāno vṛttādyā balahāriṇaḥ || 2 ||

Dimbha and the other steady-minded ministers, the chieftains headed by Kumuda, the kings headed by Sura, and the tribute-bringers headed by Vritta,

दिंभ और उसके जैसे अन्य समझदार मंत्री, कुमुद आदि सामंत, सुर आदि राजा, और वृत्त आदि कर लाने वाले,

5.28.3

हयग्रीवादयः सैन्याश्चाक्राजाद्याश्च बान्धवाः । लडुकाद्याश्च सुहृदो वलूकाद्याश्च लालकाः ॥ ३ ॥

hayagrīvādayaḥ sainyāścākrājādyāśca bāndhavāḥ | laḍukādyāśca suhṛdo valūkādyāśca lālakāḥ || 3 ||

the soldiers headed by Hayagriva and the kinsmen headed by Akraja, the friends headed by Laduka and the favorites headed by Valuka,

हयग्रीव आदि सैनिक और अक्राज आदि रिश्तेदार, लडुक आदि दोस्त और वलूक आदि चहेते,

5.28.4

कुबेरयमशक्राद्या उपायनकराः सुराः । यक्षविद्याधरा नागाः सेवावसरकाङ्क्षिणः ॥ ४ ॥

kuberayamaśakrādyā upāyanakarāḥ surāḥ | yakṣavidyādharā nāgāḥ sevāvasarakāṅkṣiṇaḥ || 4 ||

the gods headed by Kubera, Yama, and Shakra, bringing gifts with them, and the yakshas, vidyadharas, and nagas, eager for a chance to serve,

कुबेर, यम और शक्र आदि देवता भेंट लेकर आए, और यक्ष, विद्याधर तथा नाग सेवा का मौका पाने के लिए उत्सुक थे,

5.28.5

रम्भातिलोत्तमाद्याश्च चामरिण्यो वराङ्गनाः । सागराः सरितः शैला दिशश्च विदिशस्तथा ॥ ५ ॥

rambhātilottamādyāśca cāmariṇyo varāṅganāḥ | sāgarāḥ saritaḥ śailā diśaśca vidisaḥ tathā || 5 ||

and the beautiful women headed by Rambha and Tilottama, holding fly-whisks, the oceans, the rivers, the mountains, the directions, and the in-between directions too —

और रंभा व तिलोत्तमा आदि सुंदर स्त्रियाँ चंवर लिए हुए, समुद्र, नदियाँ, पहाड़, दिशाएँ और बीच की दिशाएँ भी —

5.28.6

सेवार्थमाययुस्तस्य तं प्रदेशं तदा बलेः । अन्ये च बहवः सिद्धास्त्रेलोक्योदरवासिनः ॥ ६ ॥

sevārthamāyayustasya taṃ pradeśaṃ tadā baleḥ | anye ca bahavaḥ siddhāstrelo kyodaravāsinaḥ || 6 ||

came then, to serve, to that place of Bali. And many other siddhas who live within the three worlds came too.

सेवा के लिए तब बलि के उस स्थान पर आए। और तीनों लोकों के भीतर रहने वाले कई और सिद्ध भी आए।

5.28.7

ध्यानमौनसमाधिस्थं चित्रार्पितमिवाचलम् । नमत्किरीटावलयो ददृशुर्बलिमादृताः ॥ ७ ॥

dhyānamounasamādhisthaṃ citrārpitamivācalaṃ | namatkirīṭāvalayo dadṛśurbalimādṛtāḥ || 7 ||

Still, seated in meditation, in silence, deep in samadhi, like a figure painted in a picture — they looked at Bali with their crowned heads bowed low, full of respect.

ध्यान में, मौन में, गहरी समाधि में बैठे, मानो चित्र में बने हों, ऐसे निश्चल — उन्होंने अपने मुकुट पहने सिर झुकाकर आदर से बलि को देखा।

5.28.8

तं दृष्ट्वा कृतकर्तव्यप्रणामास्ते महासुराः । विषादविस्मयानन्दभयमन्थरतां ययुः ॥ ८ ॥

taṃ dṛṣṭvā kṛtakartavyapraṇāmāste mahāsurāḥ | viṣādavismayānandabhayamantharatāṃ yayuḥ || 8 ||

Seeing him, those great demons paid him the respect that was due, and then, filled all at once with sorrow, wonder, joy, and fear, they grew still and slow.

उसे देखकर उन बड़े दानवों ने जो प्रणाम करना था वह किया, और फिर शोक, आश्चर्य, खुशी और डर से भरकर वे सुस्त और स्तब्ध हो गए।

5.28.9

मन्त्रिणः प्रविचार्यात्र किं प्राप्तमिति दानवाः । भार्गवं चिन्तयामासुर्गुरुं सर्वविदांवरम् ॥ ९ ॥

mantrīṇaḥ pravicāryātra kiṃ prāptamiti dānavāḥ | bhārgavaṃ cintayāmāsurguruṃ sarvavidāṃvaram || 9 ||

The ministers, those demons, thought among themselves, 'What has happened here?' and called to mind Bhargava, their guru, the foremost of all who know.

मंत्रियों ने, उन दानवों ने, आपस में सोचा, 'यहाँ यह क्या हो गया?' और अपने गुरु भार्गव को याद किया, जो सब जानने वालों में सबसे बड़े थे।

5.28.10

चिन्तनानन्तरं दैत्या भार्गवं भास्वरं वपुः । ददृशुः कल्पितं प्राप्तं गन्धर्वनगरं यथा ॥ १० ॥

cintanānantaraṃ daityā bhārgavaṃ bhāsvaraṃ vapuḥ | dadṛśuḥ kalpitaṃ prāptaṃ gandharvanagaraṃ yathā || 10 ||

As soon as they thought of him, those demons saw Bhargava, his body glowing with light, standing there just as they had imagined him, like a city of the Gandharvas in the sky.

याद करते ही उन दानवों ने भार्गव को देखा, जिनका शरीर चमक रहा था, वे ठीक वैसे ही वहाँ खड़े थे जैसे उन्होंने सोचा था, मानो आकाश में गंधर्वों का नगर हो।

5.28.11

पूज्यमानोऽसुरगणैर्निविष्टो गुरुविष्टरे । ददर्श ध्यानमौनस्थं भार्गवो दानवेश्वरम् ॥ ११ ॥

pūjyamāno'suragaṇairniviṣṭo guriviṣṭare | dadarśa dhyānamounasthaṃ bhārgavo dānaveśvaram || 11 ||

Honored by the whole crowd of demons, seated on the guru's seat, Bhargava looked at Bali, the lord of the demons, sitting in meditation and silence.

दानवों की पूरी भीड़ से सम्मान पाकर, गुरु के आसन पर बैठे भार्गव ने दानवों के स्वामी बलि को ध्यान और मौन में बैठा देखा।

5.28.12

विश्रम्य स क्षणमिव प्रेमवानवलोक्य च। बलिं विचारयन्दृष्ट्वा परिक्षीणभवभ्रमम्॥ १२॥

viśramya sa kṣaṇamiva premavānavalokya ca | baliṃ vicārayandṛṣṭvā parikṣīṇabhavabhramam || 12 ||

Resting for a moment, full of love, he looked at Bali and thought it over, and saw that his confusion about the world had faded away completely.

एक पल रुककर, प्रेम से भरकर, उन्होंने बलि को देखा और सोच-विचार करके पाया कि दुनिया को लेकर उनका भ्रम पूरी तरह मिट चुका था।

5.28.13

देहरश्मिशतैर्दत्तदीप्तिभिः क्षीरसागरम्। क्षिपन्निव सभामाह हसन्वाक्यमिदं गुरुः॥ १३॥

deharashmiśatairdattadīptibhiḥ kṣīrasāgaram | kṣipanniva sabhāmāha hasanvākyamidaṃ guruḥ || 13 ||

Hundreds of rays of light poured from his body, so bright they seemed to outshine the ocean of milk, and the guru, smiling, spoke these words to the gathering:

उनके शरीर से सैकड़ों किरणें फूट रही थीं, इतनी तेज़ कि मानो वे दूध के समुद्र को भी फीका कर दें, और गुरु ने मुस्कराते हुए सभा से यह बात कही:

5.28.14

अतिमात्रमिदं दैत्याः स्वविचारणयैव यत्। संप्राप्तविमलावासः सिद्धोऽयं भगवान्बलिः॥ १४॥

atimātramidaṃ daityāḥ svavicāraṇayaiva yat | saṃprāptavimalāvāsaḥ siddho'yaṃ bhagavānbaliḥ || 14 ||

This is beyond measure, demons: through his own thinking alone, this noble Bali has reached a pure place and become perfected.

यह तो बहुत ही हैरानी की बात है, दानवो: अपने ही चिंतन से इस पूजनीय बलि ने एक शुद्ध जगह पा ली है और सिद्ध हो गए हैं।

5.28.15

अयं तदेवमेवेह तिष्ठन्दानवसत्तमाः। स्वात्मनि स्थितिमाप्नोतु पदं पश्यत्वनामयम्॥ १५॥

ayaṃ tadevameveha tiṣṭhandānavasattamāḥ | svātmani sthitimāpnotu padaṃ paśyatvanāmayam || 15 ||

Best of the demons, let him stay just as he is, right here. Let him become steady in his own self, and let him see the state where there is no pain or affliction.

हे दानवों में सबसे श्रेष्ठ, उन्हें ऐसे ही यहाँ रहने दो। वे अपने आप में टिक जाएँ और वह अवस्था देखें जहाँ कोई दुख-तकलीफ़ नहीं है।

5.28.16

श्रान्तो विश्राममायातः क्षीणचित्तभवभ्रमः। शान्तसंसारनीहारो वाचनीयो न दानवाः॥ १६॥

śrānto viśrāmamāyātaḥ kṣīṇacittabhavabhramaḥ | śāntasaṃsāranīhāro vācanīyo na dānavāḥ || 16 ||

He is tired and has come to rest. The confusion about the world in his mind has faded away. The fog of this world has settled into stillness in him — do not call out to him, demons.

वे थक गए हैं और आराम करने आए हैं। उनके मन में दुनिया को लेकर जो भ्रम था वह मिट चुका है। उनके भीतर संसार का कोहरा शांत हो चुका है — हे दानवो, उन्हें मत पुकारो।

5.28.17

स्व एवालोक एतेन संप्राप्तोऽज्ञानसंकटे । शान्तेऽत्र संभ्रमे सौरो दिनेनेव करोत्करः ॥ १७ ॥

sva evāloka etena saṃprāpto'jñānasaṃkaṭe | śānte'tra saṃbhraṃe saurō dineneva karōtkaraḥ || 17 ||

Through this alone he has found the light of his own self, even in the middle of the danger of not knowing. Now that the confusion here has become calm, it is like the sun's rays coming with the day.

इसी से उन्होंने न जानने के इस खतरे के बीच भी अपनी ही रोशनी पा ली है। और अब जब यह उलझन यहाँ शांत हो चुकी है, तो यह वैसा ही है जैसे दिन के साथ सूरज की किरणें आती हैं।

5.28.18

स्वयमेव हि कालेन प्रबोधमयमेष्यति । बीजकोशात्स्वसंवित्त्या सुप्तमूर्तिरिवांकुरः ॥ १८ ॥

svayameva hi kālena prabodhamayameṣyati | bījakośātsvasaṃvittyā suptamūrtirivāṅkuraḥ || 18 ||

In time, he himself will surely wake up — like a sprout that still sleeps inside the seed's shell, breaking out through its own awareness.

समय आने पर वे खुद ही जाग जाएँगे — जैसे बीज के छिलके में सोया हुआ अंकुर अपनी ही चेतना से बाहर फूट पड़ता है।

5.28.19

कुरुध्वं स्वामिकार्याणि सर्वे दानवनायकाः । बलिर्वर्षसहस्रेण समाधेर्बोधमेष्यति ॥ १९ ॥

kurudhvaṃ svāmikāryāṇi sarve dānavanāyakāḥ | balirvarṣasahasreṇa samādherbodhameṣyati || 19 ||

All you leaders of the demons, carry out your master's work. Bali will wake up from his samadhi after a thousand years.

हे दानवों के सभी मुखियो, अपने स्वामी का काम करते रहो। बलि हज़ार साल बाद अपनी समाधि से जाग उठेंगे।

5.28.20

इत्युक्ता गुरुणा तत्र हर्षामर्षविषादजाम् । दैत्याश्चिन्तां जहुः शुष्कां मञ्जरीमिव पादपाः ॥ २० ॥

ityuktā guruṇā tatra harṣāmarṣaviṣādajām | daityāścintāṃ jahuḥ śuṣkāṃ mañjarīmiva pādapāḥ || 20 ||

When the guru had said this, the demons let go of their worry — the worry made of joy, anger, and sorrow all together — the way trees drop a dried-up cluster of flowers.

गुरु के यह कहने पर, दानवों ने अपनी वह चिंता छोड़ दी जो खुशी, गुस्से और शोक से मिलकर बनी थी — जैसे पेड़ सूखे हुए फूलों के गुच्छे को गिरा देते हैं।

5.28.21

वैरोचनिसभासंस्थां विधाय प्राग्व्यवस्थया । स्वव्यापारपरास्तस्थुः सर्वं एवासुरास्ततः ॥ २१ ॥

vairocanisabhāsaṃsthāṃ vidhāya prāgvyavasthayā | svavyāpāraparāstasthuḥ sarvaṃ evāsurāstataḥ || 21 ||

After putting the assembly of Vairochani back in its earlier order, all the demons then went about their own tasks.

वैरोचनि की सभा को पहले जैसी व्यवस्था में रखकर, सभी दानव फिर अपने-अपने काम में लग गए।

5.28.22

नरा मही महिपतयो रसातलं ग्रहा नभस्त्रिदशगणास्त्रिविष्टपम्। दिशोऽद्रयो दिक्पतयश्च कंदरान्वनेचरा गगनचराश्च खं ययुः ॥ २२ ॥

narā mahī mahipatayo rasātalaṃ grahā nabhastridaśagaṇāstriviṣṭapam | diśo'drayo dikpatayaśca kaṃdarānvanecharā gaganacarāśca khaṃ yayuḥ || 22 ||

Men went to the earth, kings to the world below, the planets to the sky, the hosts of gods to heaven, the directions, the mountains, and the lords of the directions to the caves, and the forest-dwellers and the sky-wanderers to the sky.

मनुष्य धरती पर गए, राजा पाताल को गए, ग्रह आकाश को गए, देवता स्वर्ग को गए, दिशाएँ, पहाड़ और दिशाओं के स्वामी गुफाओं को गए, और जंगल में रहने वाले तथा आकाश में उड़ने वाले आकाश को गए।

Chapter 29

5.29.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ वर्षसहस्रेण दिव्येनासुरपुङ्गवः । देवदुन्दुभिनिर्घोषैर्बुबुधे भगवान्बलिः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atha varṣasahasreṇa divyenāsurapuṅgavaḥ | devadundubhinirghoṣairbubudhe bhagavānbaliḥ ||1||

Sri Vasishtha said: Then, after a thousand years of the gods had passed, the illustrious Bali, greatest among the demons, woke up at the sound of the gods' drums.

श्री वसिष्ठ ने कहा: फिर देवताओं के हज़ार वर्ष बीतने पर, दानवों में सबसे बड़े और तेजस्वी बलि देवताओं के नगाड़ों की आवाज़ सुनकर जाग गए।

5.29.2

बलौ प्रबुद्धे तद्बालं विरेजे नगरं तदा । वैरिञ्च इव सूर्यौघ उदिते कमलाकरः ॥ २ ॥

balau prabuddhe tadbālaṃ vireje nagaraṃ tadā | vairiñca iva sūryaugha udite kamalākaraḥ ||2||

When Bali woke up, the city became young again and shone brightly then, like a lotus pond blooming when Brahma's sun rises.

बलि के जागते ही उस समय नगर फिर से जवान होकर चमक उठा, जैसे ब्रह्मा का सूरज उगने पर कमल का तालाब खिल उठता है।

5.29.3

बलिः प्रबुद्ध एवासौ यावन्नायान्ति दानवाः । तावत्संचिन्तयामास समाधिसदने क्षणम् ॥ ३ ॥

baliḥ prabuddha evāsau yāvannāyānti dānavāḥ | tāvatsaṃcintayāmāsa samādhisadane kṣaṇam ||3||

As soon as Bali woke, before the demons had come to him, he thought for a moment in his place of meditation.

बलि जागते ही, दानवों के आने से पहले, अपने ध्यान के कक्ष में एक पल के लिए सोचने लगे।

5.29.4

अहो नु रम्या पदवी शीतला पारमार्थिकी । अहमस्यां क्षणं स्थित्वा परां विश्रान्तिमागतः ॥ ४ ॥

aho nu ramyā padavī śītalā pāramārthikī | ahamasyāṃ kṣaṇaṃ sthitvā parāṃ viśrāntimāgataḥ ||4||

Ah, how lovely and cool is this path of ultimate truth. Having stood in it a moment, I have found supreme rest.

वाह, यह परम सत्य का रास्ता कितना सुंदर और शीतल है। इसमें एक पल खड़े रहकर ही मुझे सबसे बड़ी शांति मिल गई।

5.29.5

तदेतामेव पदवीमवलम्ब्य करोम्यहम् । भवतीहोपभुक्ताभिः किं मे बाह्यविभूतिभिः ॥ ५ ॥

tadetāmeva padavīmavalambya karomyaḥam | bhavatīhopabhuktābhiḥ kiṃ me bāhyavibhūtibhiḥ ||5||

So holding on to this very path, let me act from now on. What use to me are these outer riches that I have already enjoyed here?

तो अब इसी रास्ते को पकड़कर मैं काम करूँगा। यहाँ जिन बाहरी वैभवों को मैं भोग चुका हूँ, उनसे मुझे क्या लेना-देना।

5.29.6

ऐन्दवेष्वपि विश्वेषु न तथानन्दवीचयः । तोषयन्ति यथान्तर्मे संसिद्धिभवभूतयः ॥ ६ ॥

aindaveṣvapi viśveṣu na tathānandavīcayaḥ | toṣayanti yathāntarme saṃsiddhibhavabhūtayaḥ || 6 ||

Even in all the worlds of the moon, waves of joy do not please me as much as this rising fulfillment inside me does.

चाँद की सारी दुनियाओं में भी आनंद की लहरें मुझे उतना सुख नहीं देतीं, जितना यह मेरे भीतर उठ रही सिद्धि की खुशी देती है।

5.29.7

इति भूयोऽपि विश्रान्त्यै कुर्वाणं गलितं मनः । बलिमावारयामासुर्दैत्याश्चन्द्रमिवाम्बुदाः ॥ ७ ॥

iti bhūyo'pi viśrāntyai kurvāṇaṃ galitaṃ manaḥ | balimāvārayāmāsurdaityāścandramivāmbudāḥ || 7 ||

While his mind, grown still, was seeking rest once more like this, the demons surrounded Bali, as clouds surround the moon.

जब उनका मन शांत होकर फिर से इसी तरह विश्राम चाहने लगा, तभी दानवों ने बलि को घेर लिया, जैसे बादल चाँद को घेर लेते हैं।

5.29.8

तानालोक्य पुनर्दध्यौ तत्प्रणामाकुलेक्षणः । तैः कुलाचलसंकाशैः परिवीतवपुस्त्विदम् ॥ ८ ॥

tānālokya punardadhyau tatpraṇāmākulekṣaṇaḥ | taiḥ kulācalasaṃkāśaiḥ parivītavapustvidaṃ || 8 ||

Seeing them, with his eyes unsettled by their bowing and his body surrounded by them who looked like great mountains, he thought again like this.

उन्हें देखकर, उनके झुककर प्रणाम करने से जिनकी आँखें कुछ विचलित हो गईं, और जिनका शरीर बड़े पहाड़ों जैसे दिखने वाले उन दानवों से घिर गया था, बलि ने फिर से इस तरह सोचा।

5.29.9

चितः क्षीणविकल्पस्य किमुपादेयमस्ति मे । मनस्तदभिपातित्वाद्याति तद्रसतामलम् ॥ ९ ॥

citaḥ kṣīṇavikalpasya kimupādeyamasti me | manastadabhipātitvādyāti tadrastāmalam || 9 ||

My mind's flickering thoughts have faded, so what is left for me to want. Since my mind keeps falling toward that peace, it has become completely full of its joy.

मेरे मन के चंचल विचार अब मिट चुके हैं, तो मुझे और क्या चाहिए। मेरा मन उसी शांति की ओर बार-बार गिरता है, इसलिए वह पूरी तरह उसी के सुख से भर गया है।

5.29.10

मोक्षमिच्छाम्यहं कस्माद्बद्धः केनास्मि वै पुरा । अबद्धो मोक्षमिच्छामि केयं बालविडम्बना ॥ १० ॥

mokṣamicchāmyahaṃ kasmādbaddhaḥ kenāsmi vai purā | abaddho mokṣamicchāmi keyaṃ bālaviḍambanā || 10 ||

I want freedom, but from what? Who or what bound me before? If I was never bound, why do I want freedom? What kind of childish foolishness is this?

मैं मुक्ति चाहता हूँ, पर किससे? पहले मुझे किसने या किस चीज़ ने बाँधा था? अगर मैं बंधा ही नहीं था, तो मुक्ति क्यों चाहता हूँ? यह कैसी बचकानी मूर्खता है?

5.29.11

न बन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति मौर्ख्यं मे क्षयमागतम्किं मे ध्यानविलासेन किं वा ध्यानेन मे भवेत् ॥ ११ ॥

na bandhosti na mokṣosti maurkhyaṃ me kṣayamāgatamkiṃ me dhyānavilāsena kiṃ vā dhyānena me bhavet || 11 ||

There is no bondage and there is no freedom. My foolishness has come to an end. What use is the play of meditation to me? What would meditation even do for me?

न कोई बंधन है, न कोई मुक्ति है। मेरी मूर्खता अब खत्म हो चुकी है। ध्यान के इस खेल से मुझे क्या फायदा? ध्यान से मुझे मिलेगा ही क्या?

5.29.12

ध्यानाध्यानभ्रमौ त्यक्त्वा पुंस्त्वं स्वमवलोकयत् । यदायाति तदायातु न मे वृद्धिर्न वा क्षयः ॥ १२ ॥

dhyānādhyānabhramau tyaktvā puṃstvaṃ svamavalokayat | yadāyāti tadāyātu na me vṛddhirna vā kṣayaḥ || 12 ||

Giving up the confusion between meditating and not meditating, let the self look at itself. Let whatever comes, come. Nothing grows in me and nothing shrinks in me.

ध्यान करने और न करने के इस भ्रम को छोड़कर, यह मन अपने ही आप को देख ले। जो आए सो आए, मुझमें न कुछ बढ़ता है, न कुछ घटता है।

5.29.13

न ध्यानं नापि वाऽध्यानं न भोगान्नाप्यभोगिताम् । अभिवाञ्छामि तिष्ठामि सममेव गतज्वरः ॥ १३ ॥

na dhyānaṃ nāpi vā'dhānaṃ na bhogānnāpyabhogitām | abhivāñchāmi tiṣṭhāmi samameva gatajvaraḥ || 13 ||

I do not want meditation, nor its absence. I do not want enjoyment, nor the lack of it. I remain just the same, free of all restlessness.

न मुझे ध्यान चाहिए, न ध्यान का न होना। न मुझे भोग चाहिए, न भोग का न होना। मैं बस वैसा ही रहता हूँ, हर बेचैनी से मुक्त।

5.29.14

न मे वाञ्छा परे तत्त्वे न मे वाञ्छा जगत्स्थितौ । न मे ध्यानदशाकार्यं न कार्यं विभवेन मे ॥ १४ ॥

na me vāñchā pare tattve na me vāñchā jagatsthitau | na me dhyānadaśākāryaṃ na kāryaṃ vibhavena me || 14 ||

I have no wish for the highest truth, and no wish for the world to go on. I have no need for the state of meditation, and no need for wealth either.

मुझे न सबसे बड़े सत्य की चाह है, न इस दुनिया के बने रहने की चाह है। मुझे न ध्यान की अवस्था से कोई काम है, न धन-वैभव से कोई काम है।

5.29.15

नाहं मृतो न जीवामि न सन्नासन्न सन्मयः । नेदं मे नैव चान्यन्मे नमो मह्यमहं बृहत् ॥ १५ ॥

nāhaṃ mṛto na jīvāmi na sannāsanna sanmayaḥ | nedam me naiva cānyanme namo mahyamahaṃ bṛhat || 15 ||

I am not dead, and I am not alive. I am not something that exists, nor something that does not exist, nor am I made of existence. Nothing here is mine, and nothing else is mine either. I bow to myself. I am the vast one.

मैं न मरा हूँ, न जीवित हूँ। मैं न कुछ ऐसा हूँ जो है, न कुछ ऐसा हूँ जो नहीं है, न ही मैं उस होने से बना हूँ। यहाँ कुछ भी मेरा नहीं है, और कुछ और भी मेरा नहीं है। मैं खुद को प्रणाम करता हूँ, मैं ही वह विशाल हूँ।

5.29.16

इदमस्तु जगद्राज्यं तिष्ठाम्यत्र तु संस्थितः । नेह वास्तु जगद्राज्यं तिष्ठाम्यात्मनि शीतलः ॥ १६ ॥

idamastu jagadrājyaṃ tiṣṭhāmyatra tu saṃsthitaḥ | neha vāstu jagadrājyaṃ tiṣṭhāmyātmani śītalaḥ || 16 ||

Let this kingdom of the world be mine, I remain steady right here. Or let there be no kingdom of the world at all, I remain at peace within myself.

यह संसार का राज्य मेरा ही रहे, तो भी मैं यहीं स्थिर रहूँगा। या इस संसार का कोई राज्य ही न रहे, तो भी मैं अपने भीतर शांत रहूँगा।

5.29.17

किं मे ध्यानदृशा कार्यं किं राज्यविभवश्रिया । यदायाति तदायातु नाहं किंचन मे क्वचित् ॥ १७ ॥

kiṃ me dhyānadṛśā kāryaṃ kiṃ rājyavibhavaśriyā | yadāyāti tadāyātu nāhaṃ kiṃcana me kvacit || 17 ||

What use is the vision of meditation to me? What use is the glory of a kingdom's wealth? Let whatever comes, come. I am nothing, and nothing is mine, anywhere.

मुझे ध्यान की दृष्टि से क्या काम? राज्य के वैभव और शोभा से क्या काम? जो आए सो आए, मैं कहीं भी कुछ नहीं हूँ, और कुछ भी मेरा नहीं है।

5.29.18

न किंचिदपि कर्तव्यं यदि नाम मयाधुना । तत्कस्मान्न करोमीदं किंचित्प्रकृतकर्म वै ॥ १८ ॥

na kiṃcidapi kartavyaṃ yadi nāma mayādhunā | tatkasmānna karomīdaṃ kiṃcitprakṛtakarma vai || 18 ||

If there is truly nothing at all that I must do now, then why should I not do this, some ordinary task that is right before me.

अगर सच में अभी मुझे कुछ भी नहीं करना है, तो फिर मैं यह क्यों न करूँ, बस वही साधारण काम जो मेरे सामने है।

5.29.19

इति निर्णीय पूर्णात्मा बलिर्ज्ञानवतां वरः । दैत्यानालोकयामास पद्मानीव दिवाकरः ॥ १९ ॥

iti nirṇīya pūrṇātmā balirjñānavatāṃ varaḥ | daityānālokayāmāsa padmānīva divākaraḥ || 19 ||

Having decided this, Bali, whole and complete in himself, the best among the wise, looked upon the demons, as the sun looks upon lotuses.

यह निश्चय करके, अपने आप में पूर्ण और ज्ञानियों में श्रेष्ठ बलि ने दानवों की ओर देखा, जैसे सूरज कमलों की ओर देखता है।

5.29.20

दृष्टिपातविभागेन सर्वेषां दनुजन्मनाम् । शिरःप्रणामाञ्जग्राह पुष्पामोदानिवानिलः ॥ २० ॥

dṛṣṭipātavibhāgena sarveṣāṃ danujanmanām | śiraḥpraṇāmāñjagrāha puṣpāmodānivānilaḥ || 20 ||

Dividing his glance among all the demons, he took in their bowed heads, as the wind gathers the scent of flowers.

सब दानवों पर अपनी नज़र बाँटकर, उन्होंने उनके झुके हुए सिरों को स्वीकार किया, जैसे हवा फूलों की खुशबू को अपने में समेट लेती है।

5.29.21

अथ वैरोचनिस्तत्र ध्येयत्यागमयात्मनामनसा सकलान्येव राजकार्याणि संव्यधात् ॥ २१ ॥

atha vairocanistatra dhyeyatyāgamayātmanāmanasā sakalānyeva rājakāryāṇi saṃvyadhāt || 21 ||

Then Bali, son of Virochana, with a mind that had let go of anything to meditate on, carried out all the tasks of the kingdom.

फिर विरोचन के पुत्र बलि ने, ध्यान की हर वस्तु को छोड़ चुके मन से, राज्य के सारे काम पूरे किए।

5.29.22

द्विजान्देवान्गुरूंश्चैव पूजयामास पूजयासंमानयामास सुहृद्बन्धुसामन्तसज्जनान् ॥ २२ ॥

dvijāndevāngurūṃścaiva pūjayāmāsa pūjayāsaṃmānayāmāsa suhṛdbandhusāmantasajjanān || 22 ||

He worshipped the brahmins, the gods, and his teachers; and with respect he honored his friends, relatives, vassal kings, and good people.

उसने ब्राह्मणों, देवताओं और अपने गुरुओं की पूजा की, और आदर के साथ अपने मित्रों, रिश्तेदारों, सामंत राजाओं और भले लोगों का सम्मान किया।

5.29.23

अर्थेनापूरयामास भृत्यानर्थिगणांस्तथाललना लालयामास विचित्रविभवार्पणैः ॥ २३ ॥

arthenāpūrayāmāsa bhṛtyānarthigaṇāṃstathālalanā lālayāmāsa vicitravibhavārpaṇaiḥ || 23 ||

With wealth he satisfied his servants and all who came asking for help, and with gifts of many kinds of riches he pleased the women of his household.

उसने धन देकर अपने सेवकों और मदद माँगने आए सब लोगों को संतुष्ट किया, और तरह-तरह के बहुमूल्य उपहार देकर अपने घर की स्त्रियों को खुश किया।

5.29.24

इत्यसौ ववृधे तस्मिन्राज्ये सकलशासनेयज्ञं प्रति बभूवाथ मतिरस्य कदाचन ॥ २४ ॥

ityasau vavṛdhe tasminrājye sakalaśāsaneyajñaṃ prati babhūvātha matirasya kadācana || 24 ||

In this way he flourished in that kingdom, ruling over everything completely; then one day his mind turned toward performing a great sacrifice.

इस तरह वह उस राज्य में खूब फला-फूला और पूरी तरह राज करता रहा, फिर एक दिन उसका मन एक बड़ा यज्ञ करने की ओर मुड़ा।

5.29.25

तर्पिताशेषभुवनं देवर्षिगणपूजितम्सह शुक्रादिभिर्मुख्यैः स चकार महामखम् ॥ २५ ॥

tarpitāśeṣabhuvanaṃ devarṣigaṇapūjitamsaha śukrādibhirmukhyaiḥ sa cakāra mahāmakham || 25 ||

Together with Shukra and the other chief priests, he performed a great sacrifice that satisfied every world and was honored by hosts of gods and sages.

शुक्राचार्य और दूसरे प्रमुख पुरोहितों के साथ मिलकर उसने एक ऐसा महायज्ञ किया, जिसने सारे लोकों को तृप्त कर दिया और जिसे देवताओं और ऋषियों के समूहों ने सम्मान दिया।

5.29.26

बलिर्भोगभरस्यार्थी नेति निर्णीय माधवः । बलेरीहितसिद्ध्यर्थं सिद्धिदस्तन्मखं ययौ ॥ २६ ॥

balirbhogabharasyārthī neti nirṇīya mādhavaḥ | balerīhitasiddhyarthaṃ siddhidastanmakhaṃ yayau || 26 ||

Vishnu, the granter of every true wish, decided that Bali did not really want a heap of pleasures, and went to that sacrifice to bring about what Bali truly wanted.

विष्णु, जो हर सच्ची चाह को पूरा करने वाले हैं, यह तय करके कि बलि सुख-भोग के ढेर का इच्छुक नहीं है, उस यज्ञ में गए ताकि बलि की सच्ची चाह पूरी कर सकें।

5.29.27

भोगैककृपणायेदं जगज्जङ्गलखण्डकम्। दातुं शोच्याय शक्राय वयोज्येष्ठाय कार्यवित्॥ २७॥

bhogaikakṛpaṇāyedaṃ jagajjaṅgalakhaṇḍakam | dātuṃ śocyāya śakrāya vayojyeṣṭhāya kāryavit || 27 ||

His task, he knew, was to give this scrap of a wild world to Indra, a pitiable man, old in years, greedy only for pleasure.

वे जानते थे कि उनका काम इस जंगल जैसी छोटी दुनिया को इंद्र को देना है, एक दयनीय, उम्र में बड़ा, पर केवल भोग का लोभी व्यक्ति।

5.29.28

क्रममाणो बलेनात्र वञ्चयित्वा बलिं हरिः। बबन्ध पातालतले भूगेह इह वानरम्॥ २८॥

kramamāṇo balenātra vañcayitvā baliṃ hariḥ | babandha pātālatale bhūgeha iha vānaram || 28 ||

Advancing there with his mighty stride, Vishnu deceived Bali and bound him in the netherworld, in a dwelling within the earth.

अपने बड़े-बड़े कदमों से आगे बढ़ते हुए, विष्णु ने बलि को छल से हरा दिया और उसे पाताल में, धरती के भीतर एक घर में बाँध दिया।

5.29.29

अद्यासौ संस्थितो राम पुनरिन्द्रत्वहेतुना। जीवन्मुक्तवपुः स्वस्थो नित्य ध्यानविषण्णधीः॥ २९॥

adyāsau saṃsthito rāma punarindratvahetunā | jīvanmuktavapuḥ svastho nitya dhyānaviṣaṇṇadhīḥ || 29 ||

Now, Rama, he remains there, waiting to become Indra once again. He is free even while still alive, entirely at ease, his mind always sunk deep in meditation.

अब, हे राम, वह वहीं ठहरा है, फिर से इंद्र बनने की प्रतीक्षा में। वह जीते-जी ही मुक्त हो चुका है, पूरी तरह सहज और शांत है, और उसका मन सदा ध्यान में डूबा रहता है।

5.29.30

पातालकुहरे तिष्ठञ्जीवन्मुक्तमतिर्बलिः। आपदं संपदं दृष्ट्या समयैव स पश्यति॥ ३०॥

pātālakuhare tiṣṭhañjīvanmuktamatirbaliḥ | āpadaṃ saṃpadaṃ dṛṣṭyā samayaiva sa paśyati || 30 ||

Living in a cave in the netherworld, Bali, whose mind is liberated while he is still alive, looks upon misfortune and good fortune with the very same eyes.

पाताल की एक गुफा में रहते हुए बलि, जिसका मन जीते-जी ही मुक्त हो चुका है, विपत्ति और संपत्ति दोनों को एक ही नज़र से देखता है।

5.29.31

नास्तमेति न चोदेति तत्प्रज्ञा सुखदुःखयोः। समा स्थिरकरा चित्रलेख्या सूर्यावलिर्यथा॥ ३१॥

nāstameti na codeti tatprajñā sukhaduḥkhayoḥ | samā sthirakarā citralekhyā sūryāvaliryathā || 31 ||

In pleasure and in pain, his understanding neither sets nor rises. It stays even and steady, like a row of suns painted in a picture, their rays unmoving.

सुख और दुख में उसकी समझ न डूबती है, न उगती है। वह वैसी ही और स्थिर बनी रहती है, जैसे किसी चित्र में बनी सूर्यों की एक कतार, जिनकी किरणें कभी नहीं हिलतीं।

5.29.32

आविर्भावतिरोभावसहस्राणीह जीवताम्। तन्मनश्चिरमालोक्य भीमेषु विरतिं गतम्॥ ३२॥

āvirbhāvatirobhāvasahasrāṇīha jīvatām | tanmanaściramālokya bhīmeṣu viratiṃ gatam || 32 ||

Watching for a long time the thousands of births and deaths of living beings here, his mind has drawn back and turned away from all that is frightening.

यहाँ जीवों के हज़ारों जन्मों और मृत्युओं को लंबे समय तक देखकर, उसका मन डरावनी चीज़ों से पीछे हटकर उनसे विरक्त हो गया है।

5.29.33

दशकोटीश्च वर्षाणामनुशास्य जगत्त्रयम्। अन्ते विरक्ततां प्राप्तमुपशान्तं बलेर्मनः ॥ ३३ ॥

daśakoṭīśca varṣāṇāmanuśāsya jagattrayam | ante viraktatāṃ prāptamupaśāntaṃ balermanaḥ || 33 ||

After ruling the three worlds for a hundred million years, Bali's mind at last grew free of desire and became calm.

तीनों लोकों पर दस करोड़ वर्षों तक राज करने के बाद, आखिरकार बलि का मन वासना से मुक्त होकर शांत हो गया।

5.29.34

ऊहापोहसहस्राणि भावाभावशतानि च। बलिना परिदृष्टानि क्व समाश्वासमेत्यसौ ॥ ३४ ॥

ūhāpohasahasrāṇi bhāvābhāvaśatāni ca | balinā paridṛṣṭāni kva samāśvāsametyasau || 34 ||

Bali has looked closely at thousands of arguments for and against, and hundreds of things that come into being and pass away. Where among these could he now find any comfort?

बलि हज़ारों तर्क-वितर्क और सैकड़ों बनने-मिटने वाली चीज़ों को अच्छी तरह देख-परख चुका है। अब वह किसमें चैन पाए?

5.29.35

भोगाभिलाषं संत्यज्य बलिः संपूर्णमानसः। आत्मारामस्थितो नित्यं मध्ये पातालकोटरे ॥ ३५ ॥

bhogābhilāṣaṃ saṃtyajya baliḥ saṃpūrṇamānasaḥ | ātmārāmasthito nityaṃ madhye pātālakoṭare || 35 ||

Bali has given up all craving for pleasure. His mind is now completely at peace; he lives always delighting in himself alone, deep inside a hollow cave in the netherworld.

बलि ने सुख-भोग की सारी चाह छोड़ दी है। उसका मन अब पूरी तरह तृप्त है, वह सदा अपने ही भीतर आनंद पाते हुए, पाताल की एक गहरी गुफा के बीचोंबीच रहता है।

5.29.36

पुनरेतेन बलिना जगदिन्द्रतयाखिलमनुशास्यमिदं राम बहून्वर्षगणानिह ॥ ३६ ॥

punaretena balinā jagadindratayākhilamanuśāsyamidaṃ rāma bahūnvarṣagaṇāniha || 36 ||

This same Bali, Rama, will one day rule this whole world again as Indra, for many years to come.

यही बलि, हे राम, आगे चलकर फिर से इंद्र बनकर बहुत वर्षों तक इस पूरी दुनिया पर राज करेगा।

5.29.37

न तस्येन्द्रपदप्राप्त्या तुष्टिः समुपजायतेन तस्य स्वपदभ्रंशादुद्वेग उपजायते ॥ ३७ ॥

na tasyendrapadaprāptyā tuṣṭiḥ samupajāyatena tasya svapadabhraṃśādudvega upajāyate || 37 ||

He will feel no special joy from gaining the rank of Indra, and he will feel no distress from losing his own position either.

इंद्र का पद पाकर उसे कोई खास खुशी नहीं होगी, और अपना पद खोने पर भी उसे कोई बेचैनी नहीं होगी।

5.29.38

समः सर्वेषु भावेषु सर्वदैवोदिताशयःसंप्राप्तमाहरन्स्वस्थ आकाश इव तिष्ठति ॥ ३८ ॥

samaḥ sarveṣu bhāveṣu sarvadaivoditāśayaḥsaṃprāptamāharansvastha ākāśa iva tiṣṭhati || 38 ||

The same in every situation, always noble-hearted, he simply accepts whatever comes and rests within himself, untouched, like the sky.

हर हाल में एक-सा, सदा नेक-दिल, वह जो कुछ मिले उसे बस स्वीकार कर लेता है और अपने भीतर ही टिका रहता है, आकाश की तरह अछूता।

5.29.39

बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिरेषा ते कथिता मयाएतां दृष्टिमवष्टभ्य त्वमप्यभ्युदितो भव ॥ ३९ ॥

balervijñānasaṃprāptireṣā te kathitā mayāetāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya tvamapyabhyudito bhava || 39 ||

This is how Bali reached true understanding. I have told it to you; take hold of this same outlook yourself, and you too will rise to that height.

बलि ने सच्चा ज्ञान कैसे पाया, यह मैंने तुम्हें बता दिया। तुम भी यही नज़रिया अपनाकर ऊँचे उठो।

5.29.40

बलिवत्प्रविवेकेन नित्योऽहमिति निश्चयात्पदमासादयाद्वैतं पौरुषेणैव राघव ॥ ४० ॥

balivatpravivekena nityo'hamiti niścayātpadamāsādayādvaitaṃ pauruṣeṇaiva rāghava || 40 ||

So, Raghava, use your judgment as Bali did. Through the certainty 'I am eternal,' reach the state where there is no longer any two, by your own effort alone.

तो हे राघव, बलि की तरह अपनी विवेक-बुद्धि से काम लो। यह निश्चय करके कि 'मैं सदा रहने वाला हूँ', अपने ही पुरुषार्थ से उस अद्वैत अवस्था तक पहुँचो, जहाँ कोई दूसरा नहीं बचता।

5.29.41

द्वे चाष्टौ चैव वर्षाणां कोटीर्भुक्त्वा जगत्त्रयम्। अन्ते वैरस्यमापन्नो बलिरप्यसरोत्तमः ॥ ४१ ॥

dve cāṣṭau caiva varṣāṇāṃ koṭīrbhuktvā jagattrayam| ante vairasyamāpanno balirapyasarottamaḥ || 41 ||

Having enjoyed the three worlds for a hundred million years, in the end even Bali, greatest of demons, grew tired of it all.

तीनों लोकों को दस करोड़ वर्षों तक भोगने के बाद, आखिरकार असुरों में सबसे बड़ा बलि भी भोग से ऊब गया।

5.29.42

तस्मादवश्यवैरस्यं भोगभारमरिंदम। संत्यज्य सत्यमानन्दमवैरस्यं पदं व्रज ॥ ४२ ॥

tasmādavaśyavairasyaṃ bhogabhāramariṃdama| saṃtyajya satyamānandamavairasyaṃ padaṃ vraja || 42 ||

So, Rama, crusher of enemies, give up this heavy load of pleasure, which is bound to turn sour in the end, and go instead to that true joy which never turns sour.

इसलिए, हे शत्रुओं को कुचलने वाले, भोग के इस भारी बोझ को छोड़ दो, जो आखिर में खट्टा पड़ ही जाता है, और उस सच्चे आनंद की ओर बढ़ो जो कभी खट्टा नहीं पड़ता।

5.29.43

इमा दृश्यदृशो राम नानाकारविकारदाः। नेह कान्ततया ज्ञेया दूराच्छैलशिला इव ॥ ४३ ॥

imā dṛśyadṛśo rāma nānākāravikāradāḥ| neha kāntatayā jñeyā dūrācchailaśilā iva || 43 ||

Rama, these things seen by the eye, which take on so many changing shapes, should not be taken here as lovely and desirable, like mountain rocks that look beautiful only from far away.

हे राम, ये आँखों से दिखने वाली चीज़ें, जो इतने तरह-तरह के बदलते रूप दिखाती हैं, इन्हें सुंदर और मनचाहा मत मानो, जैसे पहाड़ की चट्टानें दूर से ही सुंदर दिखती हैं।

5.29.44

धावमानमिहामुत्र लुठितं लोकवृत्तिषु । संस्थापय निबद्ध्यैतच्चेतो हृदयकोटरे ॥ ४४ ॥

dhāvamānamihāmutra luṭhitaṃ lokavṛttiṣu| saṃsthāpaya nibaddhyaitacceto hṛdayakoṭare || 44 ||

This mind runs here and in the next world, rolling about in the ways of the world. Bind it and settle it in the hollow of your heart.

यह मन यहाँ और परलोक में दौड़ता रहता है, संसार के कामों में लोटता रहता है। इसे बाँधकर हृदय की गुफा में टिका दो।

5.29.45

चिदादित्यो भवानेव सर्वत्र जगति स्थितः । कः परस्ते क आत्मीयः परिस्खलसि किं मुधा ॥ ४५ ॥

cidādityo bhavāneva sarvatra jagati sthitaḥ| kaḥ paraste ka ātmīyaḥ pariskhalasi kiṃ mudhā || 45 ||

You alone are the sun of consciousness, present everywhere in the world. Who is a stranger to you, and who is your own? Why do you stumble about for nothing?

तुम ही चेतना के सूर्य हो, जो इस पूरी दुनिया में हर जगह मौजूद हो। तुम्हारे लिए कौन पराया है और कौन अपना है? तुम व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो?

5.29.46

त्वमनन्तो महाबाहो त्वमाद्यः पुरुषोत्तमः । त्वं पदार्थशताकारैः परिस्फूर्जसि चिद्वपुः ॥ ४६ ॥

tvamananto mahābāho tvamādyaḥ puruṣottamaḥ | tvaṃ padārthaśatākāraiḥ parisphūrjasi cidvapuḥ || 46 ||

You are infinite, mighty-armed one. You are the first, the highest being. Your very body is consciousness, and you shine out in the shapes of hundreds of things.

तुम अनंत हो, हे महाबली। तुम ही सबसे पहले हो, तुम सबसे श्रेष्ठ पुरुष हो। तुम्हारा शरीर चेतना ही है, और तुम सैकड़ों चीज़ों के रूप में चमकते हो।

5.29.47

त्वयि सर्वमिदं प्रोतं जगत्स्थावरजंगमम् । बोधे नित्योदिते शुद्धे सूत्रे मणिगणा यथा ॥ ४७ ॥

tvayi sarvamidaṃ protaṃ jagatsthāvarajaṅgamam | bodhe nityodite śuddhe sūtre maṇigaṇā yathā || 47 ||

In you, in your ever-risen and pure awareness, this whole world, everything that moves and everything that does not move, is strung together, just as gems are strung on a thread.

तुम में, तुम्हारी सदा जागी हुई शुद्ध चेतना में, यह पूरी दुनिया, जो कुछ चलता है और जो कुछ स्थिर है सब, वैसे ही पिरोई हुई है, जैसे धागे में मोती पिरोए जाते हैं।

5.29.48

न जायसे न म्रियसे त्वमजः पुरुषो विराट् । चिच्छुद्धा जन्ममरणभ्रान्तयो मा भवन्तु ते ॥ ४८ ॥

na jāyase na mriyase tvamajaḥ puruṣo virāṭ | cicchuddhā janmamaraṇabhrāntayo mā bhavantu te || 48 ||

You are not born and you do not die. You are unborn, the vast being who fills everything. You are pure consciousness. Do not let the delusions of birth and death touch you.

तुम न जन्मते हो, न मरते हो। तुम अजन्मा हो, वह विराट सत्ता हो जो सब में फैली है। तुम शुद्ध चेतना हो। जन्म और मृत्यु के भ्रम तुम्हें कभी न छुएँ।

5.29.49

समस्तजन्मरोगाणां प्रविचार्य बलाबलम् । तृष्णामुत्सृज्य भोगानां भोक्तैव भव केवलम् ॥ ४९ ॥

samastajanmarogāṇāṃ pravicārya balābalam | tṛṣṇāmutsṛjya bhogānāṃ bhoktaiva bhava kevalam || 49 ||

Look closely at how strong or weak each sickness of birth is. Let go of your craving for pleasures, and simply be the one who experiences them.

जन्म से आने वाले सारे रोगों की ताकत और कमज़ोरी को अच्छी तरह परख लो। भोगों की लालसा छोड़ दो, और बस उनका भोगने वाला भर बन जाओ।

5.29.50

त्वयि स्थिते जगन्नाथे चिदादित्ये सदोदिते । इदमाभासते सर्वं संसारस्वप्नमण्डनम् ॥ ५० ॥

tvayi sthite jagannāthe cidāditye sadodite | idamābhāsate sarvaṃ saṃsārasvapnamaṇḍanam || 50 ||

When you, the lord of the world, the sun of awareness that always shines, stand as the ground of everything, then this whole world appears only as the decoration of a dream, the dream of birth after birth.

जब तुम, जगत के स्वामी, सदा चमकते हुए चेतना के सूर्य, सबके आधार के रूप में स्थिर रहते हो, तब यह पूरा संसार जन्म-मृत्यु के सपने की सजावट मात्र बनकर दिखाई देता है।

5.29.51

मा विषादं कृथा व्यर्थं सुखदुःखैषणा न ते । शुद्धचित्तोऽसि सर्वात्मा सर्ववस्त्ववभासकः ॥ ५१ ॥

mā viṣādaṃ kṛthā vyarthaṃ sukhaduḥkhaiṣaṇā na te | śuddhacitto'si sarvātmā sarvavastvavabhāsakaḥ || 51 ||

Do not grieve for nothing. You have no craving for pleasure or pain. You are pure consciousness, the self in everyone, the one who lights up every single thing.

व्यर्थ ही शोक मत करो। सुख और दुःख की चाह तुम्हारी नहीं है। तुम शुद्ध चेतना हो, सबके भीतर का आत्मा हो, और हर चीज़ को रोशन करने वाले हो।

5.29.52

पूर्वमिष्टमनिष्टं त्वमनिष्टं चेष्टमित्यपि । परिकल्प्य तदभ्यासात्तत्ततोऽपि परित्यज ॥ ५२ ॥

pūrvamiṣṭamaniṣṭaṃ tvamaniṣṭaṃ ceṣṭamityapi | parikalpya tadabhyāsāttattato'pi parityaja || 52 ||

You have made a habit of thinking that what you once liked is now disliked, and what you once disliked is now liked. Let go of that habit as well.

तुम्हें यह आदत पड़ गई है कि जो पहले पसंद था उसे अब नापसंद मान लेते हो, और जो पहले नापसंद था उसे अब पसंद मान लेते हो। इस आदत को भी छोड़ दो।

5.29.53

इष्टानिष्टदृशोस्त्यागे समतोदेति शाश्वती । तया हृदयवर्तिन्या पुनर्जन्तुर्न जायते ॥ ५३ ॥

iṣṭāniṣṭadṛśostyāge samatodei śāśvatī | tayā hṛdayavartinyā punarjanturna jāyate || 53 ||

When you give up seeing things as liked or disliked, a lasting evenness of mind arises. Once that evenness settles in the heart, a person is not born again.

जब पसंद और नापसंद की यह दोनों नज़रें छूट जाती हैं, तब एक स्थायी समता उठ खड़ी होती है। जब यह समता हृदय में बस जाती है, तो प्राणी फिर से जन्म नहीं लेता।

5.29.54

येषु येषु प्रदेशेषु मनो मज्जति बालवत्। तेभ्यस्तेभ्यः समाहृत्य तद्धि तत्त्वे नियोजयेत्॥ ५४॥

yeṣu yeṣu pradeśeṣu mano majjati bālavat | tebhyastebhyaḥ samāhṛtya taddhi tattve niyojayet || 54 ||

Wherever the mind sinks in, the way a child sinks into its play, draw it back from each such place, and fix it firmly on the truth.

मन जिस-जिस जगह बच्चे की तरह डूब जाता है, उसे वहाँ-वहाँ से खींचकर वापस ले आओ, और उसे सच्चाई में टिका दो।

5.29.55

एवमभ्यागताभ्यासं मनोमत्तमतंगजम्। निबध्य सर्वभावेन परं श्रेयोऽधिगम्यते॥ ५५॥

evamabhyāgatābhyāsaṃ manomattamataṃgajam | nibadhya sarvabhāvena paraṃ śreyo'dhigamyate || 55 ||

In this way, having tied down with your whole being this mind, a mad elephant grown wild through habit, you reach the highest good.

इस तरह, अपने पूरे मन-प्राण से इस मन को बाँध दो, जो आदत से बना हुआ एक मस्त हाथी है, और तब सबसे बड़ा कल्याण प्राप्त होता है।

5.29.56

मा शरीरयथार्थज्ञैर्मिथ्यादृष्टिहताशयैःधूर्तैः संकल्पविक्रीतैर्विमूढैः समतां व्रज॥ ५६॥

mā śarīrayathārthajñairmithyādṛṣṭihatāśayaiḥdhūrtaiḥ saṃkalpavikrītairvimūḍhaiḥ samatāṃ vraja || 56 ||

Do not lower yourself to the level of people who think the body alone is the truth, whose minds are ruined by false views, who are cheats sold out to their own whims, and who are utterly deluded fools.

ऐसे लोगों के बराबर मत बनो जो शरीर को ही सच मानते हैं, जिनकी बुद्धि झूठी सोच से बिगड़ चुकी है, जो अपनी ही इच्छाओं के हाथों बिके हुए धूर्त हैं, और जो पूरी तरह मूर्ख और भ्रमित हैं।

5.29.57

अकिंचनात्स्वनिर्णीतौ लम्बमानात्परोक्तिषुन मौर्ख्यादधिको लोके कश्चिदस्तीह दुःखदः॥ ५७॥

akiṃcanātsvanirṇītau lambamānātparoktiṣuna maurkhyādadhiko loke kaścidastīha duḥkhadaḥ || 57 ||

In this world, nothing causes more suffering than the folly of a person who treats his own judgment as worthless and hangs instead on the words of others.

इस संसार में उस मूर्खता से बढ़कर कोई दुःख देने वाली चीज़ नहीं है, जिसमें आदमी अपने ही निर्णय को कुछ नहीं समझता और दूसरों की बातों पर लटका रहता है।

5.29.58

त्वमेतदविवेकाब्भ्रमुदितं हृदयाम्बरेविवेकपवनेनाशु दूरं नय महामते॥ ५८॥

tvametadavivekābbhramuditaṃ hṛdayāmbarevivekapavanenāśu dūraṃ naya mahāmate || 58 ||

This cloud of confusion has risen in the sky of your heart. Great one, drive it far away at once with the wind of clear understanding.

यह भ्रम का बादल तुम्हारे हृदय के आकाश में उठ खड़ा हुआ है। हे बुद्धिमान, विवेक की हवा से इसे तुरंत दूर उड़ा दो।

5.29.59

आत्मनैव प्रयत्नेन यावदात्मावलोकनेन कृतोऽनुग्रहस्तावन्न विचारोदयो भवेत् ॥ ५९ ॥

ātmanaiva prayatnena yāvadātmāvalokanena kṛto'nugrahastāvanna vicārodayo bhavet || 59 ||

Only your own effort, watching yourself, can do you this favor. Until you do that, true inquiry will never arise in you.

अपने ही प्रयास से, अपने आप को देख-परखकर ही तुम खुद पर यह कृपा कर सकते हो। जब तक तुम ऐसा नहीं करते, तब तक सच्ची जिज्ञासा तुम में कभी नहीं जागेगी।

5.29.60

वेदवेदान्तशास्त्रार्थतर्कदृष्टिभिरप्ययम्नात्मा प्रकटतामेति यावन्न स्वमवेक्षितम् ॥ ६० ॥

vedavedāntaśāstrārthatarkadṛṣṭibhirapyayamnātmā prakaṭatāmeti yāvanna svamavekṣitam || 60 ||

Even all the reasoning drawn from the Vedas, the Vedanta, and the scriptures cannot make this self clear, so long as you have not looked directly at yourself.

वेद, वेदांत और शास्त्रों के अर्थ पर किए गए तर्क-वितर्क से भी यह आत्मा स्पष्ट नहीं होता, जब तक तुमने खुद को नहीं देखा है।

5.29.61

त्वमात्मन्यात्मना राम प्रसादे समवस्थितः। प्राप्तोऽसि विततं बोधं मद्वचस्येव बुध्यसे ॥ ६१ ॥

tvamātmanyātmanā rāma prasāde samavasthitaḥ| prāpto'si vitatam bodham madvacasyeva budhyase || 61 ||

Rama, resting in yourself, by yourself, in a state of deep calm, you have gained a vast awakening. You are understanding it right now, in these very words I speak.

हे राम, तुम अपने ही सहारे अपने भीतर, एक गहरी शांति में टिके हुए हो, और तुमने एक विशाल जागृति पा ली है। तुम इसे अभी, मेरे इन्हीं शब्दों में समझ रहे हो।

5.29.62

विकल्पांशविहीनस्य त्वयैषा चिद्विवस्वतः। गृहीता वितता व्याप्तिर्मदुक्त्या परमात्मनः ॥ ६२ ॥

vikalpāṃśavihīnasya tvayaiṣā cidvivasvataḥ| gṛhītā vitatā vyāptirmaduktyā paramātmanaḥ || 62 ||

Through my words, you have now grasped the vast, all-pervading nature of the sun of consciousness, the supreme self that is utterly free of any doubt or imagination.

मेरे इन शब्दों से तुमने अब उस चेतना के सूर्य की विशाल, सब में फैली हुई सत्ता को समझ लिया है, वह परम आत्मा, जो किसी भी शंका या कल्पना से पूरी तरह मुक्त है।

5.29.63

विलीनसर्वसंकल्पः शान्तसंदेहविभ्रमः। क्षीणकौतुकनीहारो जातोऽसि विगतज्वरः ॥ ६३ ॥

vilīnasarvasaṃkalpaḥ śāntasaṃdehavibhramaḥ| kṣīṇakautukanīhāro jāto'si vigatajvaraḥ || 63 ||

All your mental constructs have dissolved, your doubt and confusion have settled, the mist of restless curiosity has thinned away, and you have become one whose fever is gone.

तुम्हारी सारी कल्पनाएँ घुल चुकी हैं, तुम्हारा संदेह और भ्रम शांत हो चुका है, तुम्हारी बेचैन जिज्ञासा की धुंध छँट चुकी है, और अब तुम ऐसे हो गए हो जिसका ताप उतर चुका है।

5.29.64

यदुपगच्छसि पासि निहंसि वा पिबसि विस्मयसे च विवर्धसे । तदपि तेन तदास्तु यदा मुने विगतबोधकलङ्कविशङ्कितः ॥ ६४ ॥

yadupagacchasi pāsi nihaṃsi vā pibasi vismayase ca vivardhase| tadapi tena tadāstu yadā mune vigatabodhakalaṅkaviśaṅkitaḥ || 64 ||

Whatever you approach, protect, destroy, or drink, whatever you wonder at and whatever you make grow, let all of this too happen through that same awareness, sage, once you stay ever watchful against even a trace of the stain of forgetting it.

तुम जिसके पास जाते हो, जिसकी रक्षा करते हो, जिसे नष्ट करते हो या पीते हो, जिस पर चकित होते हो और जिसे बढ़ाते हो, हे मुनि, यह सब भी उसी चेतना के सहारे हो, जब तुम उसे भूलने के हल्के से दाग से भी सदा सजग रहो।

Chapter 30

5.30.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथेमं परमं राम विज्ञानाभिगमे क्रमम् । शृणु दैत्येश्वरः सिद्धः प्रह्लादः स्वात्मना यथा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | athemaṃ paramaṃ rāma vijñānābhigame kramam | śṛṇu daityeśvaraḥ siddhaḥ prahrādaḥ svātmanā yathā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Now, Rama, hear this highest way to reach true knowledge, and how Prahlada, king of the demons, became accomplished through his own effort.

श्री वसिष्ठ ने कहा: अब राम, यह सुनो कि सच्चे ज्ञान तक पहुँचने का सबसे बड़ा तरीका क्या है, और दैत्यों का राजा प्रह्लाद अपने ही प्रयास से कैसे सिद्ध हुआ।

5.30.2

आसीत्पातालकुहरे विद्रावितसुरासुरः । हिरण्यकशिपुर्नाम नारायणपराक्रमः ॥ २ ॥

āsītpātālakuhare vidrāvitasurāsuraḥ | hiraṇyakaśipurnāma nārāyaṇaparākramaḥ || 2 ||

There lived in a cave of the underworld one who had driven away both gods and demons, named Hiranyakashipu, whose strength was like that of Narayana himself.

पाताल की एक गुफा में एक ऐसा राजा रहता था जिसने देवताओं और दैत्यों दोनों को भगा दिया था, उसका नाम था हिरण्यकशिपु, और उसकी ताकत नारायण जैसी थी।

5.30.3

आक्रान्तभुवनाभोगः स जहार हरेर्जगत् । षट्पदस्य बृहत्पत्रं राजहंस इवाम्बुजम् ॥ ३ ॥

ākrāntabhuvanābhogaḥ sa jahāra harerjagat | ṣaṭpadasya bṛhatpatraṃ rājahaṃsa ivāmbujam || 3 ||

Having conquered the whole extent of the world, he seized Hari's own realm too, the way a royal swan takes a great lotus away from a bee.

पूरी दुनिया को जीत लेने के बाद, उसने हरि यानी विष्णु का राज्य भी छीन लिया, ठीक वैसे ही जैसे एक राजहंस किसी भौंरे से बड़ा कमल छीन लेता है।

5.30.4

चकार जगतां राज्यं समाक्रान्तसुरासरः । दन्ती निरस्तहंसौघो नलिन्यामलिनामिव ॥ ४ ॥

cakāra jagatāṃ rājyaṃ samākrāntasurāsaraḥ | dantī nirastahaṃsaugho nalinyāmalināmiva || 4 ||

Having overrun both gods and demons, he made himself ruler of all the worlds, like an elephant that drives both the swans and the bees out of a lotus pond.

देवताओं और दैत्यों दोनों को हराकर, उसने सारे लोकों पर अपना राज कायम कर लिया, ठीक वैसे ही जैसे एक हाथी कमल के तालाब में घुसकर हंसों और भौंरों दोनों को भगा देता है।

5.30.5

तेऽवर्धन्ताचिरेणैव तेजस्यूर्जितबालकाः । दशार्कांशुशतानीव व्योमाक्रान्तिविलासिनः ॥ ५ ॥

te'vardhantācirēṇaiva tejasyūrjitabālakāḥ | daśārkāṃśuśatānīva vyomākrāntivilāsinaḥ || 5 ||

His strong sons grew quickly in brightness, like hundreds of rays from ten suns spreading and playing across the sky.

उसके बलवान बेटे बहुत जल्दी तेज में बढ़ने लगे, जैसे दस सूरजों की सैकड़ों किरणें आकाश में फैलकर चमकती हैं।

5.30.7

प्रह्लादनामा बलवान्प्रधानात्मा बभूव ह । तेषां मध्ये महार्हाणां मणीनामिव कौस्तुभः ॥ ७ ॥

prahraadanaamaa balavaanpradhaanaatmaa babhuva ha | teshaam madhye mahaarhaanaam maNiinaamiva kaustubhah || 7 ||

Among them there was one named Prahlada, strong and of the finest nature, like the Kaustubha jewel among precious gems.

उन बेटों में एक था जिसका नाम प्रह्लाद था, बलवान और सबसे बढ़िया स्वभाव वाला, ठीक वैसे ही जैसे कीमती रत्नों में कौस्तुभमणि सबसे अनोखी होती है।

5.30.8

तेनाराजत पुत्रेण हिरण्यकशिपुर्भृशम् । सर्वसौन्दर्ययुक्तेन वसन्तेनेव वत्सरः ॥ ८ ॥

tenaaraajata putrena hiraNyakashipurbhRsham | sarvasaundaryayuktena vasantenaiva vatsarah || 8 ||

Because of that son, who was full of every kind of beauty, Hiranyakashipu shone brightly, the way a whole year shines because of spring.

उस बेटे के कारण, जो हर तरह की सुंदरता से भरा था, हिरण्यकशिपु बहुत चमक उठा, ठीक वैसे ही जैसे बसंत ऋतु से पूरा साल चमक उठता है।

5.30.9

अथ पुत्रसहायोऽसौ बलकोशसमन्वितः । आजगाम मदं दैत्यस्त्रिगण्डगलितेभवत् ॥ ९ ॥

atha putrasahaayoasau balakoshasamanvitah | aajagaama madam daityastrigaNDagalitebhavat || 9 ||

Now, with his son at his side, and rich in strength and wealth, the demon grew full of pride, like a rutting elephant with fluid streaming from its three temples.

अब अपने बेटे के साथ, और ताकत तथा धन-दौलत से भरपूर, वह दैत्य घमंड से भर गया, ठीक वैसे ही जैसे मस्त हाथी की तीन कनपटियों से मद बहता रहता है।

5.30.10

तत्तापाक्रान्तितापेन त्रिजगन्ति विकासिना । कल्पान्तसूर्यगणवन्नवयैव करश्रिया ॥ १० ॥

tattaapaakraantitaapena trijaganti vikaasinaa | kalpaantasuuryagaNavannavayaiva karashriyaa || 10 ||

The heat of that burning pride spread over the three worlds and kept growing fresh, like the many suns that rise together to burn up the world at the end of an age.

उसके इस जलते घमंड की तपन तीनों लोकों में फैल गई और हर पल और ताज़ा होती गई, ठीक वैसे ही जैसे किसी युग के अंत में एक साथ निकलने वाले कई सूरज पूरी दुनिया को जला देते हैं।

5.30.11

अखिद्यन्तास्य तेनाथ सूर्येन्दुप्रमुखाः सुराः । दुर्विलासविलोलस्य बालस्येव स्वबन्धवः ॥ ११ ॥

akhidyantaasy tenaath suuryendupramukhaah suraah | durvilasavilolasya baalasyeva svabandhavah || 11 ||

Because of this, the gods, with the sun and the moon at their head, grew troubled and worn out, the way the family of a wild, unruly child grows tired of his misbehaviour.

इस वजह से सूर्य और चंद्रमा जैसे बड़े देवता भी परेशान और थके हुए हो गए, ठीक वैसे ही जैसे किसी शरारती और बेकाबू बच्चे के घर वाले उसकी शरारतों से थक जाते हैं।

5.30.12

प्रार्थयांचक्रिरेऽथाजं दैत्येन्द्रेभपतेर्वधेन क्षमन्ते महान्तोपि पौनःपुन्येन दुष्क्रियाम्॥ १२ ॥

prārthayāṃcakrire'thājaṃ daityendrebhapatervadhena kṣamante mahāntopi paunaḥpunyena duṣkriyām || 12 ||

Then they went and pleaded with Aja, the unborn Brahma, for the killing of the lord of the demons, since even great beings run out of patience with wrongdoing that keeps repeating.

तब वे सब ब्रह्मा यानी अज के पास गए और उस दैत्यराज को मार डालने की विनती की, क्योंकि बड़े से बड़ा व्यक्ति भी बार-बार होने वाली बुराई को सहते-सहते थक जाता है।

5.30.13

ततः प्रलयपर्यस्तजगद्धर्घरजृम्भितम्दिग्दन्तिदशनप्रख्यनखवज्रादिजृम्भितम्॥ १३ ॥

tataḥ pralayaparyastajagaddhargharajṛmbhitamdigdantidaśanaprakhyanakhavajrādijṛmbhitam || 13 ||

Then it opened wide with a roar that could overturn the world at its final dissolution, and it spread out claws like thunderbolts, resembling the tusks of the elephants that guard the directions.

फिर वह एक ऐसी दहाड़ के साथ फैला जो प्रलय में दुनिया को उलट सकती थी, और उसके पंजे बिजली जैसे चमक उठे, ठीक उन हाथियों के दाँतों जैसे जो दिशाओं की रखवाली करते हैं।

5.30.14

स्थिरविद्युल्लताजालभासुरद्विजमण्डलम्दशदिक्कोटरोद्भान्तज्वलज्ज्वलनकुण्डलम्॥ १४ ॥

sthiravidyullatājālabhāsuradvijamaṇḍalamdaśadikkoṭarodbhāntajvalajjvalanakuṇḍalam || 14 ||

Its rows of teeth shone like a web of unmoving lightning, and its earrings were burning flames that swept through the far corners of all ten directions.

उसके दाँतों की पंक्तियाँ ऐसे चमकती थीं जैसे बिजली का जाल थमा हुआ हो, और उसके कुंडल जलती हुई लपटें थीं जो दसों दिशाओं के कोने-कोने में फैल रही थीं।

5.30.15

समस्तकुलशैलेन्द्रपिण्डपीठोद्भटोदरम्दोर्द्रुमाधूतनिर्धूतस्फुरद्ब्रह्माण्डखर्परम्॥ १५ ॥

samastakulaśailendrapiṇḍapīṭhodbhaṭodaramdordrumādhūtanirdhūtasphuradbrahmāṇḍakharparam || 15 ||

Its body was as huge as if built from a mass of all the great mountains piled together, and its tree-like arms shook the very shell of the universe until it trembled and scattered.

उसका शरीर इतना विशाल था मानो सारे बड़े-बड़े पहाड़ों को एक साथ ढेर करके बनाया गया हो, और उसकी पेड़ जैसी भुजाओं ने पूरे ब्रह्मांड के खोल को हिलाकर बिखेर दिया।

5.30.16

वदनोदरनिष्क्रान्तवातोत्सारितपर्वतम्त्रिजगद्दहनोद्युक्तकोपकल्पाग्निगर्वितम्॥ १६ ॥

vadanodaraniṣkrāntavātotsāritaparvatamtrijagaddahanodyuktakopakalpāgnigarvitam || 16 ||

The wind rushing out of its open mouth blew mountains aside, and its fury burned proud like the fire that rises to burn up all three worlds at the end of time.

उसके खुले मुँह से निकलती हवा ने पहाड़ों को उड़ा दिया, और उसका गुस्सा उस आग की तरह धधक उठा जो समय के अंत में तीनों लोकों को जला देती है।

5.30.17

सटाविकटपीनांसस्पन्दप्रेरितभास्करम् । रोमकूपलसद्वह्निपुञ्जापिञ्जरपर्वतम् ॥ १७ ॥

saṭāvikaṭaṭapīnāṃsasapndapreritabhāskaram | romakūpalasadvahṇipuñjāpiñjaraparvatam || 17 ||

With its wild mane, the shudder of its huge, terrible shoulders seemed to shake the sun itself, and its mountain-like body glowed reddish brown from fire blazing out of every hair on its skin.

उसके बिखरे बालों और विशाल, डरावने कंधों के हिलने से मानो सूरज भी काँप उठा, और उसका पहाड़ जैसा शरीर उसके रोम-रोम से निकलती आग से लाल-भूरा चमक रहा था।

5.30.18

कुलाचलमहाकुड्यघटनोद्भटदिक्तटम् । सर्वावयवनिष्क्रान्तपट्टिशप्रासतोमरम् ॥ १८ ॥

kulācalamahākuḍyaghaṭanodbhaṭadiktaṭam | sarvāvayavaniṣkrāntapaṭṭiśaprāsatomaram || 18 ||

It was so vast that the far horizons seemed built like great walls out of the ancient mountains, and spears, lances and javelins burst out from every limb of its body.

वह इतना विशाल था कि दूर के क्षितिज मानो पुराने पहाड़ों से बनी बड़ी दीवारों जैसे लगते थे, और उसके शरीर के हर अंग से भाले, बरछे और बल्लम फूट पड़ते थे।

5.30.19

नारसिंहं वपुः कृत्वा माधवोऽहन्महासुरम् । लसत्कटकटारावं तुरङ्गमिव द्विपः ॥ १९ ॥

nārasiṃhaṃ vapuḥ kṛtvā mādhavao'hanmahāsuram | lasatkaṭakaṭārāvaṃ turagamamiva dvipaḥ || 19 ||

Taking on the body of Narasimha, the man lion, Madhava killed the great demon, whose gnashing teeth clattered and roared, the way an elephant tramples a horse.

नरसिंह यानी नर-सिंह का रूप लेकर, माधव ने उस महान दैत्य को मार डाला, जिसके दाँत पीसने की आवाज़ गूँज रही थी, ठीक वैसे ही जैसे कोई हाथी घोड़े को रौंद देता है।

5.30.20

पौरमासुरमुद्वान्तैददाहेक्षणवह्निभिः । स सर्वभूतकल्पान्ते जगज्जालमिवानलः ॥ २० ॥

pauraṃmāsuramudvāntaiddadāhekṣaṇavahṇibhiḥ | sa sarvabhūtakalpānte jagajjālamivānalaḥ || 20 ||

He burned the demon's people with the fire of his blazing eyes, the way the fire that consumes the whole web of the world burns everything when all beings dissolve at the end of an age.

उसने अपनी जलती आँखों की आग से दैत्य की प्रजा को जला डाला, ठीक वैसे ही जैसे युग के अंत में सारे प्राणियों के साथ पूरी दुनिया को जलाने वाली आग सब कुछ भस्म कर देती है।

5.30.21

नृसिंहमारुते तस्मिन्भृशं क्षोभमुपागते । विस्फूर्जितघनास्फोटैरेकार्णव इवाकुले ॥ २१ ॥

nṛsiṃhamārute tasminbhṛśaṃ kṣobhamupāgate | visphūrjitaghanāsphoṭairikārṇava ivākule || 21 ||

When that storm of Narasimha's fury grew violent, the world was thrown into turmoil by bursting claps like crashing thunderclouds, as if it had become one churning ocean.

जब नरसिंह के गुस्से का यह तूफान भड़क उठा, तो पूरी दुनिया गरजते बादलों जैसी तेज़ आवाज़ों से हिल गई, मानो वह एक ही उमड़ता हुआ समुद्र बन गई हो।

5.30.22

दुद्रुवुर्दानवौघास्ते दिग्ज्वलन्मशका इव उपाययुरदृश्यत्वं दीपा इव गतत्विषः ॥ २२ ॥

dudruvurdānavaughāste digjvalanmaśakā iva upāyayuradṛśyatvaṁ dīpā iva gatatviṣaḥ || 22 ||

The hordes of demons fled in every direction like gnats fleeing across a horizon in flames, and they vanished from sight like lamps whose light has gone out.

दैत्यों की भीड़ें हर तरफ ऐसे भागीं जैसे मच्छर जलते हुए क्षितिज से भागते हैं, और वे ऐसे गायब हो गईं जैसे बुझ चुके दीये।

5.30.23

अथ विद्रुतदैत्येन्द्रं दग्धान्तःपुरमण्डलम् बभूव पातालतलं कल्पक्षुण्णजगत्समम् ॥ २३ ॥

atha vidrutadaityendraṁ dagdhāntaḥpuramaṇḍalam babhūva pātālatalaṁ kalpakṣuṇṇajagatsamam || 23 ||

Then, with the lord of the demons put to flight and his palace grounds burned, the whole netherworld became like a world ground to ruin at the end of an age.

फिर, दैत्यों के राजा को भगा देने और उसके महल को जला देने के बाद, पूरा पाताल ऐसा हो गया जैसे युग के अंत में तबाह हुई दुनिया।

5.30.24

अकालकल्पान्तविधौ हत्वा दैत्यं शनैर्विभौ क्वापि याते समाश्वस्तसुरसंरम्भपूजिते ॥ २४ ॥

akālakalpāntavidhau hatvā daityaṁ śanairvibhau kvāpi yāte samāśvastasurasaṁrambhapūjite || 24 ||

After killing the demon like an untimely end of the world, and once the Lord had slowly gone away somewhere, honoured by the gods whose fear and frenzy were now calmed,

दैत्य को मार डालने के बाद, मानो समय से पहले ही दुनिया का अंत हो गया हो, और भगवान के धीरे-धीरे कहीं चले जाने के बाद, जिनकी उन देवताओं ने पूजा की जिनका डर और हड़बड़ी अब शांत हो चुकी थी,

5.30.25

मृतशिष्टा दनुसुताः प्रह्लादपरिपालिताः दग्धं तं देशमाजग्मुः सरः शुष्कमिवाण्डजाः ॥ २५ ॥

mṛtaśiṣṭā danusutāḥ prahrādaparipālitāḥ dagdhaṁ taṁ deśamājagmuḥ saraḥ śuṣkamivāṇḍajāḥ || 25 ||

the sons of Danu who were left alive, now cared for by Prahlada, came back to that burned land, like birds returning to a lake that has dried up.

दानु के बचे हुए बेटे, जिनकी देखभाल अब प्रह्लाद कर रहा था, उस जली हुई धरती पर लौट आए, ठीक वैसे ही जैसे पंछी सूख चुकी झील पर लौट आते हैं।

5.30.26

तत्र कालोचितां कृत्वा स्वनाशपरिदेवनामौर्ध्वदेहिकसत्कारं चक्रुः प्रेतेषु बन्धुषु ॥ २६ ॥

tatra kālocitāṁ kṛtvā svanāśaparidevanāmaurdhvadehikasatkāraṁ cakruḥ preteṣu bandhuṣu || 26 ||

There, after mourning their own ruin as was fitting for the time, they carried out the funeral rites for their dead kinsmen.

वहाँ, उस समय के हिसाब से अपनी बर्बादी पर शोक मनाने के बाद, उन्होंने अपने मरे हुए रिश्तेदारों का अंतिम संस्कार किया।

5.30.27

हतबन्धुजनं प्लुष्टबन्धुबान्धवमण्डलम् । शनैराश्वासयामासुर्मृतशिष्टं स्वकं जनम् ॥ २७ ॥

hatabandhujanaṁ pluṣṭabandhubāndhavamaṇḍalam | śanairāśvāsayāmāsurmṛtaśiṣṭaṁ svakaṁ janam || 27 ||

Slowly, they comforted their own surviving people, whose kinsmen had been killed and whose whole circle of relatives and friends had been burned.

धीरे-धीरे, उन्होंने अपने बचे हुए लोगों को सांत्वना दी, जिनके रिश्तेदार मारे जा चुके थे और जिनके सारे परिवार और दोस्त जल चुके थे।

5.30.28

चित्रार्पितोपमदुराकृतयो निरीहा दीनाशया हि महताम्बुरुहोपमानाः । शोकोपतप्तमनसोऽसुरनायकास्ते दग्धद्रुमा इव निरस्तविकारमासन् ॥ २८ ॥

citrārpitopamadurākṛtayo nirīhā dīnāśayā hi mahatāmburuhopamānāḥ | śokopataptamanaso'suranāyakāste dagdhadrumā iva nirastavikāramāsan || 28 ||

Their faces grim and still as figures fixed in a painting, without any will to act, their hearts wretched like great lotuses closed, those demon chiefs, their minds scorched by grief, went rigid and unmoving, like trees burnt to stillness.

उनके चेहरे तस्वीर में बनी आकृतियों जैसे कठोर और स्थिर हो गए थे, उनमें कुछ करने की कोई इच्छा नहीं बची थी, उनके मन उदास कमल की तरह मुरझाए हुए थे, वे दैत्यों के सरदार, जिनके मन दुख से जल रहे थे, ऐसे अकड़ गए और निश्चल हो गए जैसे जले हुए पेड़।

Chapter 31

5.31.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ दुःखपरीतात्मा हरिणा हतदानवे । प्रह्लादश्चिन्तयामास मौनी पातालकोटरे ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atha duḥkhaparītātmā hariṇā hatadānave | prahlādaścintayāmāsa maunī pātālakoṭare || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then, after Hari had killed the demon, Prahlada's heart was full of sorrow, and he sat silently thinking in a cave in Patala, the world beneath the earth.

श्री वसिष्ठ ने कहा: फिर, हरि के हाथों उस दानव के मारे जाने के बाद, प्रह्लाद का मन दुख से भर गया, और वह पाताल की एक गुफा में चुपचाप बैठा सोचने लगा।

5.31.2

कोन्वस्माकमुपायः स्याद्य एवेहासुराङ्कुरः । तीक्ष्णाग्रो जायते तं तं भुङ्क्ते शाखामृगो हरिः ॥ २ ॥

konvasmākamupāyaḥ syādya evehāsurāṅkuraḥ | tīkṣṇāgro jāyate taṃ taṃ bhuṅkte śākhāmṛgo hariḥ || 2 ||

What means could we have now? Whichever young demon grows up here, however sharp and strong, Hari eats him up, like a monkey plucking and eating young shoots one after another.

अब हमारे पास क्या उपाय बचा है? यहाँ जो भी नया दानव बड़ा होकर तेज़ और मज़बूत बनता है, हरि उसे खा जाता है, जैसे बंदर एक के बाद एक नई कोंपलें तोड़कर खा जाता है।

5.31.3

न कदाचन पाताले दैत्या दोर्दण्डशालिनः । स्थिरा बभूवुरुद्भिन्नाः पद्मा इव हिमाचले ॥ ३ ॥

na kadācana pātāle daityā dordaṇḍaśālinaḥ | sthirā babhūvuru dbhinnāḥ padmā iva himācale || 3 ||

The mighty, strong-armed demons of Patala have never stayed steady for long, no more than a lotus could bloom and last on a snow-covered mountain.

पाताल के बलशाली, मज़बूत भुजाओं वाले दानव कभी भी स्थिर नहीं रह पाए, ठीक वैसे ही जैसे कोई कमल बर्फ़ीले पहाड़ पर खिलकर टिक नहीं सकता।

5.31.4

उत्पत्त्योत्पत्त्य नश्यन्ति भासुराकारघर्घराः । क्षीणप्रस्फुरितारम्भास्तरङ्गा इव वारिधेः ॥ ४ ॥

utpattyoutpattya naśyanti bhāsurākāraghargharāḥ | kṣīṇaprasphuritārambhāstarangā iva vāridheḥ || 4 ||

They are born again and again, only to die, bright and roaring while they last, their sudden rise fading away like waves on the sea.

वे बार-बार जन्म लेते हैं और फिर मिट जाते हैं, कुछ देर के लिए चमकते और गरजते हैं, फिर उनका उठान समुद्र की लहरों की तरह बुझ जाता है।

5.31.5

सबाह्याभ्यन्तरं कष्टं समग्रालोकहारिणः । रिपवः प्रौढिमायाता अपूर्वतिमिरभ्रमाः ॥ ५ ॥

sabāhyābhyantaraṃ kaṣṭaṃ samagrālokahāriṇaḥ | ripaavaḥ prauḍhimāyātā apūrvatimirabhramāḥ || 5 ||

It is painful through and through: our enemies, grown powerful now, steal away all the light, like a darkness swirling in a way never seen before.

यह चारों ओर से दुखदायी है: हमारे शत्रु, जो अब शक्तिशाली हो गए हैं, सारा प्रकाश छीन लेते हैं, जैसे कभी न देखा गया कोई अंधकार घुमड़ रहा हो।

5.31.6

तमःप्रपूर्णहृदयाः संकुचत्पत्रसंपदः । सुहृदः खेदमायान्ति निशीथकमलाकराः ॥ ६ ॥

tamaḥprapūrṇahṛdayāḥ saṃkucatpatrasaṃpadaḥ | suhṛdaḥ khedamāyānti niśīthakamalākarāḥ || 6 ||

Our friends, their hearts filled with darkness and their splendor shrinking like closing petals, are sinking into sorrow, like a bed of lotuses that closes up at midnight.

हमारे मित्रों के मन अंधकार से भर गए हैं, उनकी शोभा मुरझाई हुई पंखुड़ियों की तरह सिकुड़ रही है, और वे दुख में डूब रहे हैं, जैसे आधी रात को कमल बंद हो जाते हैं।

5.31.7

तातस्य मलिनैर्नूनं पादपीठोपमर्दकैः । सुरैर्विषय आक्रान्तो मृगैरिव महावनम् ॥ ७ ॥

tātasya malinaiḥ nūnaṃ pādapīṭhopamardakaiḥ | surairviṣaya ākrānto mṛgairiva mahāvanam || 7 ||

Surely our land has been overrun by the filthy gods who trampled my father's footstool, just as a great forest is overrun by wild animals.

निश्चय ही, उन गंदे देवताओं ने हमारे राज्य पर धावा बोल दिया है, जिन्होंने मेरे पिता की पादपीठ को रौंद डाला, जैसे कोई बड़ा जंगल जंगली जानवरों से भर जाता है।

5.31.8

निरुद्यमा गतश्रीका दीनाः प्रकटिताशयाः । बान्धवा न विराजन्ते पद्माः प्लुष्टदला इव ॥ ८ ॥

nirudyamā gataśrīkā dīnāḥ prakaṭitāśayāḥ | bāndhavā na virājante padmāḥ pluṣṭadalā iva || 8 ||

Our kinsmen, drained of energy and glory, wretched, their true feelings laid bare, no longer shine, like lotuses whose petals have been scorched.

हमारे बंधु-बांधव, जिनकी शक्ति और शोभा जाती रही है, दुखी हैं, उनके मन की बात खुलकर सामने आ गई है, और वे अब वैसे नहीं चमकते, जैसे झुलसी हुई पंखुड़ियों वाला कमल नहीं चमकता।

5.31.9

स्फुरन्त्यसुरवीराणां गृहेष्वविरतानिलैः । धूसरा भस्मनीहारा धूपधूमभरा इव ॥ ९ ॥

sphurantyasuravīrāṇāṃ gṛheṣvaviratānilaiḥ | dhūsarā bhasmanīhārā dhūpadhūmabharā iva || 9 ||

In the houses of our demon warriors, gray mists of ash swirl in ceaseless winds, flickering like thick clouds of incense smoke.

हमारे दानव वीरों के घरों में, राख के धूसर बादल लगातार चलती हवाओं में उड़ते हैं, जैसे धूप के गाढ़े धुएँ के बादल हों।

5.31.10

हृतद्वारकपाटासु दैत्यान्तःपुरभित्तिषु । प्रभा मरकतस्येव जाता नवयवाङ्कुराः ॥ १० ॥

hṛtadvārakapāṭāsu daityāntaḥpurabhittiṣu | prabhā marakatasyeva jātā navayavāṅkurāḥ || 10 ||

On the walls of the demons' inner chambers, now stripped of their doors, green young shoots have sprung up, glowing like emerald light.

दानवों के अंतःपुर की दीवारों पर, जिनके दरवाज़े उखाड़ लिए गए हैं, नई हरी कोंपलें उग आई हैं, जो पन्ने की चमक जैसी दिखती हैं।

5.31.11

त्रिलोकीनाभिनलिनीमत्तेभा दानवा अपि । देववद्दैन्यमायाताः किमसाध्यमहो विधेः ॥ ११ ॥

trilokīnābhinalinīmattēbhā dānavā api | dēvavaddainyamāyātāḥ kimasādhyamaho vidhēḥ || 11 ||

Even the demons, once like mighty rutting elephants in the lotus pond at the center of the three worlds, have now fallen into misery, just as the gods once did. Ah, what can fate not do?

जो दानव कभी तीनों लोकों के बीचोंबीच स्थित कमल-सरोवर में मतवाले हाथियों जैसे थे, वे भी अब दुखी हो गए हैं, ठीक वैसे ही जैसे कभी देवता दुखी हुए थे। हाय, भाग्य के आगे क्या असंभव है?

5.31.12

मनाक्चलति पर्णेऽपि दृष्टारिभयभीतयः । वध्वस्त्रस्यन्ति विध्वस्ता मृग्यो ग्रामगता इव ॥ १२ ॥

manākcalati parṇē'pi dṛṣṭāribhayabhītayaḥ | vadhvastrasyanti vidhvastā mṛgyo grāmagatā iva || 12 ||

If even a single leaf stirs, our women, frightened at the mere sight of the enemy, tremble and panic, like deer that have strayed into a village.

अगर एक पत्ता भी हिल जाए, तो हमारी स्त्रियाँ, शत्रु को देखने भर के डर से, काँप उठती और घबरा जाती हैं, जैसे गाँव में भटक आए हिरण घबरा जाते हैं।

5.31.13

आसुरीकर्णपूरार्थ फुल्ला रत्नगुलुच्छकाः । नरसिंहकरालूनाः स्थाणुतामागता द्रुमाः ॥ १३ ॥

āsurīkarṇapūrārtha phullā ratnagulucchakāḥ | narasiṃhakarālūnāḥ sthāṇutāmāgatā drumāḥ || 13 ||

The trees that once bloomed with jeweled clusters for our demon women's ear ornaments have been torn off by Narasimha's hand and reduced to bare stumps.

जो पेड़ पहले हमारी दानव-स्त्रियों के कर्णफूलों के लिए रत्नों के गुच्छों से खिले रहते थे, उन्हें नरसिंह ने अपने हाथ से तोड़ डाला है, और अब वे केवल ठूँठ रह गए हैं।

5.31.14

दिव्याम्बरलतापत्रा रत्नस्तबकदन्तुराः । पुनरारोपितास्तत्र नन्दने कल्पपादपाः ॥ १४ ॥

divyāmbaralatāpatrā ratnastabakadanturāḥ | punarāropitāstatra nandane kalpapādapāḥ || 14 ||

The wish-granting trees, with leaves like heavenly silk and jagged clusters of jewels, have now been replanted in Nandana, the garden of the gods.

जो कल्पवृक्ष दिव्य रेशम जैसी लताओं के पत्तों और रत्नों के गुच्छों से भरे रहते थे, उन्हें फिर से देवताओं के बाग़ नंदन में लगा दिया गया है।

5.31.16

मन्ये दानमहानद्यः सुरेभकटभित्तिषु । प्रवृत्तास्ता भविष्यन्ति शैलसानुष्विवापगाः ॥ १६ ॥

manye dānamahānadyaḥ surebhakaṭabhittiṣu | pravṛttāstā bhaviṣyanti śailasānuṣvivāpagāḥ || 16 ||

I think the great streams of liquid flowing from the temples of the gods' elephants will now become like rivers pouring down mountain ridges.

मुझे लगता है कि देवताओं के हाथियों की कनपटी से बहने वाला रस अब इतना बहेगा कि वह पहाड़ की चोटियों से बहती नदियों जैसा हो जाएगा।

5.31.17

अस्माकमिभगण्डेषु दानदाहविभूतयः । लसन्ति मरुखण्डेषु संशुष्केष्विव धूलयः ॥ १७ ॥

asmākamibhagaṇḍeṣu dānadāhavibhūtayaḥ | lasanti marukhaṇḍeṣu saṃśuṣkeṣviva dhūlayaḥ || 17 ||

On our own elephants' temples, the once-glorious burning liquid now merely glimmers like dust in a dry, barren desert.

हमारे अपने हाथियों की कनपटी पर, जो जलता हुआ रस कभी शान की बात था, वह अब सूखे रेगिस्तान की धूल जैसा ही झिलमिलाता है।

5.31.18

विकासिसितमन्दारमकरन्दारुणानिलाः । ते मेरुशिखरैस्तुल्या दैत्या दुर्लभतां गताः ॥ १८ ॥

vikāsisiitamandāramakarandāruṇānilāḥ | te meruśikharaitulyā daityā durlabhatāṃ gatāḥ || 18 ||

Those demons, once like the peaks of Mount Meru, with breezes made red by the nectar of blooming white coral-tree flowers, have now become impossible to find.

जो दानव कभी मेरु पर्वत की चोटियों जैसे थे, जिनके आसपास की हवाएँ खिले हुए सफ़ेद मन्दार फूलों के मकरंद से लाल हो जाती थीं, वे अब कहीं ढूँढे नहीं मिलते।

5.31.19

सुरगन्धर्वसुन्दर्यो दानवान्तःपुरोचिताः । अद्य मेरौ स्थितिं याता मञ्जर्य इव पादपे ॥ १९ ॥

suragandharvasundaryo dānavāntaḥpurocitāḥ | adya merau sthitim yātā mañjarya iva pādape || 19 ||

The beautiful women of the gods and gandharvas, who once filled the demons' inner chambers, have today gone to live on Mount Meru, like clusters of blossoms on a tree.

देवताओं और गंधर्वों की सुंदर स्त्रियाँ, जो पहले दानवों के अंतःपुर में रहा करती थीं, आज मेरु पर्वत पर जाकर बस गई हैं, जैसे फूलों के गुच्छे किसी पेड़ पर शोभा देते हैं।

5.31.20

कष्टं तात पुरंध्रीणा शुष्काम्बुरुहनीरसाः । विलासाः सुरनारीभिर्भर्त्स्यन्ते लास्यलीलया ॥ २० ॥

kaṣṭaṃ tāta puraṃdhrīṇā śuṣkāmburuhanīrasāḥ | vilāsāḥ suranārībhirbhartsynte lāsyalīlayā || 20 ||

Alas, father, the charm of our women, dry and lifeless like withered lotuses, is mocked by the gods' women with their playful dancing.

हाय पिता, हमारी स्त्रियों का सारा साज-श्रृंगार अब मुरझाए हुए कमल जैसा सूखा और निर्जीव हो गया है, और देवताओं की स्त्रियाँ अपने नाच-गान से उसका मज़ाक उड़ाती हैं।

5.31.21

पूर्वं यैरेव मत्तातश्चामरैरुपवीजितः । सहस्रनयनः स्वर्गे कष्टं तैरेव वीज्यते ॥ २१ ॥

pūrvaṃ yaireva mattaścāmarairupavījitaḥ | sahasranayanaḥ svargē kaṣṭaṃ taireva vījyatē || 21 ||

Alas, the very fly-whisks that once fanned my father are now fanning the thousand-eyed Indra in heaven.

हाय, जिन चँवरों से कभी मेरे पिता को हवा की जाती थी, आज उन्हीं चँवरों से स्वर्ग में हज़ार आँखों वाले इंद्र को हवा की जा रही है।

5.31.22

इयमस्माकमप्यापदागता दैन्यदायिनी । तस्यैकस्य प्रसादेन दुष्पौरुषगतेर्हरिः ॥ २२ ॥

iyamaśmākamapyāpadāgatā dainyadāyinī| tasyaiakasya prasādena duṣpauruṣagaterhareḥ || 22 ||

This calamity too has fallen on us, bringing us low, all because of that one man alone, Hari, who showed his power in a foul way.

यह आपदा भी हम पर उसी एक व्यक्ति की वजह से आई है और हमें दयनीय बना गई है, उस हरि की वजह से, जिसने अपना बल दिखाने का तरीका ही गंदा अपनाया।

5.31.23

तद्दोर्वनघनच्छायालब्धविश्रान्तयः सुराः । न कदाचन तप्यन्ते हिमाद्रेरिव सानवः ॥ २३ ॥

taddorvanaghanacchāyālabdhaviśrāntayaḥ surāḥ| na kadācana tapyante himādreriva sānavaḥ || 23 ||

The gods, resting in the thick shade of his mighty arms as if in a forest, never suffer any torment, like the peaks of the snow mountain that are never scorched.

देवता उसकी मज़बूत भुजाओं की घनी छाया में, मानो किसी जंगल में, विश्राम पाकर कभी कष्ट नहीं भोगते, जैसे बर्फ़ीले पहाड़ की चोटियाँ कभी नहीं झुलसतीं।

5.31.24

शौरिशौर्याग्रशिखरसंश्रयेणाश्रितश्रियः । अस्मान्समुपरुन्धन्ति शुनः शाखामृगा इव ॥ २४ ॥

śauriśauryāgraśikharasaṃśrayeṇāśritaśriyaḥ| asmānsamuparundhanti śunaḥ śākhāmṛgā iva || 24 ||

By resting on the very peak of Shauri's courage, the gods who have won glory now torment us, the way monkeys torment dogs.

शौरि के साहस की सबसे ऊँची चोटी का सहारा लेकर, वैभव पा चुके देवता अब हमें उसी तरह सताते हैं जैसे बंदर कुत्तों को सताते हैं।

5.31.25

तेनासुरपुरन्ध्रीणां नित्यं मण्डनमण्डने । मुखपद्मे स्थितं बाष्पमब्जिनीनां हिमं यथा ॥ २५ ॥

tenāsurapurandhrīṇāṃ nityaṃ maṇḍanamaṇḍane| mukhapadme sthitaṃ bāṣpamabjinīnāṃ himaṃ yathā || 25 ||

Because of him, tears always stay on the faces of the demon women, faces that are lotuses and the finest ornament of all, the way frost settles on a bed of lotus flowers.

उसी के कारण असुरों की स्त्रियों के कमल जैसे मुख पर, जो सब गहनों में सबसे सुंदर गहना हैं, हमेशा आँसू ठहरे रहते हैं, जैसे कमलों की क्यारी पर पाला जम जाता है।

5.31.26

शीर्णभिन्नलुठद्भित्तिर्जगज्जरठमण्डपः । अयं नीलमणिस्तम्भैस्तद्भुजैरेव धार्यते ॥ २६ ॥

śīrṇabhinnaluṭhadbhittirjagajjaraṭhamaṇḍapaḥ| ayaṃ nīlamaṇistambhaistadbhujaireva dhāryate || 26 ||

This world is an old hall with crumbled, broken, fallen-in walls; only his arms hold it up, arms like pillars of blue gem.

यह संसार टूटी-फूटी, गिरी हुई दीवारों वाला एक पुराना मंडप है; इसे केवल उसकी भुजाएँ थामे हुए हैं, जो नीलमणि के खंभों जैसी हैं।

5.31.27

स धर्ता सुरसैन्यस्य मज्जतो विपदर्णवे । क्षीरोदोदरमग्नस्य मन्दरस्येव कच्छपः ॥ २७ ॥

sa dhartā surasainyasya majjato vipadarṇave | kṣīrododaramagnasya mandarasyeva kacchapḥ || 27 ||

He holds up the army of the gods as it sinks in the sea of disaster, the way the tortoise held up Mount Mandara when it sank deep into the ocean of milk.

वह देवताओं की सेना को विपत्ति के सागर में डूबते समय थामे रखता है, जैसे कच्छप ने क्षीरसागर की गहराई में डूबे मंदराचल को थाम लिया था।

5.31.28

एते तातादयः सर्वे तेनैवासुरसत्तमाः । पातिताः क्षुब्धकल्पान्तवातेनेव कुलाचलाः ॥ २८ ॥

ete tātādayaḥ sarve tenaivāsurasattamāḥ | pātitāḥ kṣubdhakalpāntavāteneva kulācalāḥ || 28 ||

All these, our father and the other finest of the demons, have been struck down by him alone, the way great mountains are felled by the raging wind at the end of an age.

हमारे पिता और अन्य श्रेष्ठ असुर, ये सब, अकेले उसी के हाथों गिरा दिए गए हैं, जैसे प्रलयकाल की भयंकर आँधी से बड़े-बड़े पर्वत गिर जाते हैं।

5.31.29

स एक एव संहारकर्मक्षमभुजानलः । सुरसार्थगुरुः श्रीमान्विषमो मधुसूदनः ॥ २९ ॥

sa eka eva saṃhārakarmakṣamabhujānalaḥ | surasārthaguruḥ śrīmānviṣamo madhusūdanaḥ || 29 ||

He alone, whose arm is a fire strong enough to destroy everything, the leader of the whole company of gods, glorious and formidable, is Madhusudana.

जिसकी भुजा सब कुछ नष्ट करने में समर्थ आग के समान है, जो देवताओं के पूरे समूह का स्वामी है, वैभवशाली और दुर्जेय, वही अकेला मधुसूदन है।

5.31.30

दैत्यदोर्दण्डपरशोस्तस्य वीर्येण वीर्यवान् । दानवान्बाधते शक्रो बालकानिव मर्कटः ॥ ३० ॥

daityadordaṇḍaparaśostasya vīryeṇa vīryavān | dānavānbādhate śakro bālakāniva markaṭaḥ || 30 ||

By the strength of him who is an axe to the club-like arms of the daityas, mighty Shakra now afflicts the danavas, as a monkey torments children.

जो दैत्यों की गदा जैसी भुजाओं के लिए फरसे के समान है, उसी के बल से बलवान शक्र दानवों को सताता है, जैसे बंदर बच्चों को सताता है।

5.31.31

दुर्जयः पुण्डरीकाक्षः प्रविमुक्तायुधोऽपि सन् । नासौ शस्त्रास्त्रविच्छेदैर्वज्रसारो विदीर्यते ॥ ३१ ॥

durjayaḥ puṇḍarīkākṣaḥ pravimuktāyudho'pi san | nāsau śastrāstravicchedairvajrasāro vidīryate || 31 ||

Pundarikaksha cannot be conquered. Even with his weapon laid down, he, whose core is as hard as a thunderbolt, is not torn apart by the cutting edge of any blade or missile.

पुण्डरीकाक्ष को कोई जीत नहीं सकता। हथियार रख देने पर भी वह, जिसका सार वज्र जैसा कठोर है, किसी शस्त्र या अस्त्र के प्रहार से चीरा नहीं जाता।

5.31.32

अभ्यस्ता बहवस्तेन मिथः प्रेरितपर्वताः । भीमाः समरसंरम्भाः सममस्मत्पितामहः ॥ ३२ ॥

abhyastā bahavastena mithaḥ preritaparvatāḥ | bhīmāḥ samarasaṃrambhāḥ samamasmadpitāmahaḥ || 32 ||

Along with our grandfather, he fought many terrible battles in which mountains were hurled at one another.

हमारे पितामह के साथ मिलकर उसने कई भयंकर युद्ध लड़े, जिनमें पर्वत एक-दूसरे पर फेंके जाते थे।

5.31.33

तासु तास्वतिघोरासु विततास्वतिराजिषु । यो न भीत इदानीं स भयमेष्यति का कथा ॥ ३३ ॥

tāsu tāsvatighorāsu vitatāsvatirājiṣu | yo na bhīta idānīṃ sa bhayameṣyati kā kathā || 33 ||

In all those very terrible, far-spreading battles, whoever felt no fear then will surely feel fear now; there is no question of it.

उन सब अत्यंत भयंकर और दूर तक फैले युद्धों में जो पहले नहीं डरा था, वह अब जरूर डरेगा, इसमें कोई शक नहीं।

5.31.34

उपायमेकमेवेमं हरेराक्रमणे स्फुटम् । मन्ये तद्व्यतिरेकेण विद्यते न प्रतिक्रिया ॥ ३४ ॥

upāyamekamevemaṃ harerākramaṇe sphuṭam | manye tadvyatirekeṇa vidyate na pratikriyā || 34 ||

I think this is clearly the one and only way to stop Hari's attack; apart from this, there is no other remedy.

मुझे लगता है कि हरि के आक्रमण को रोकने का यही एक स्पष्ट उपाय है; इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है।

5.31.35

सर्वात्मना सर्वधिया सर्वसंरम्भरंहसा । स एव शरणं देवो गतिरस्तीह नान्यथा ॥ ३५ ॥

sarvātmanā sarvadhiyā sarvasaṃrambharahasā | sa eva śaraṇaṃ devo gatirastīha nānyathā || 35 ||

With my whole being, my whole mind, and the whole force of my effort, he alone, the god, is my refuge; there is no other way here.

अपने पूरे अस्तित्व से, पूरी बुद्धि से और पूरे परिश्रम के वेग से, वही एक देवता मेरी शरण है; यहाँ कोई और राह नहीं है।

5.31.36

न तस्मादधिकः कश्चिदस्ति लोकत्रयान्तरे । प्रलयस्थितिसर्गाणां हरिः कारणतां गतः ॥ ३६ ॥

na tasmādadhikaḥ kaścidasti lokatrayāntare | pralayasthitisargāṇāṃ hariḥ kāraṇatāṃ gataḥ || 36 ||

No one is greater than him in all three worlds; Hari has become the cause of destruction, preservation, and creation.

तीनों लोकों में उससे बड़ा कोई नहीं है; हरि ही प्रलय, स्थिति और सृष्टि का कारण बन गया है।

5.31.37

अस्मान्निमेषादारभ्य नारायणमजं सदा । संप्रपन्नोऽस्मि सर्वत्र नारायणमयो ह्यहम् ॥ ३७ ॥

asmān nimeṣādārabhya nārāyaṇamajaṃ sadā | saṃprapanno'smi sarvatra nārāyaṇamayo hyaham || 37 ||

From this very moment, I have always taken complete refuge in Narayana, who is never born; truly, I am filled with Narayana everywhere.

इसी क्षण से मैंने सदा के लिए अजन्मा नारायण की पूरी शरण ले ली है; सच में, मैं हर जगह नारायण से भरा हूँ।

5.31.38

नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः । नापैति मम हृत्कोशादाकाशादिव मारुतः ॥ ३८ ॥

namo nārāyaṇāyeti mantraḥ sarvārthasādhakaḥ | nāpaiti mama hṛtkosādākāśādiva mārutaḥ || 38 ||

The mantra Salutation to Narayana, which fulfills every purpose, never leaves the chamber of my heart, just as wind never leaves the sky.

नारायण को नमस्कार, यह मंत्र जो हर काम को सिद्ध करता है, मेरे हृदय से कभी नहीं हटता, जैसे हवा आकाश से कभी नहीं हटती।

5.31.39

हरिराशा हरिर्व्योम हरिरुर्वी हरिर्जगत्। अहं हरिरमेयात्मा जातो विष्णुमयो ह्यहम्॥ ३९॥

harirāśā harirvyoma harirurvī harirjagat | ahaṃ harirameyātmā jāto viṣṇumayo hyaham || 39 ||

Hari is the directions, Hari is the sky, Hari is the earth, Hari is the world. I am Hari, whose self cannot be measured; I have become, truly, filled with Vishnu.

हरि ही दिशाएँ हैं, हरि ही आकाश है, हरि ही धरती है, हरि ही संसार है। मैं हरि हूँ, जिसका स्वरूप नापा नहीं जा सकता; मैं सच में विष्णु से भर गया हूँ।

5.31.40

अविष्णुः पूजयन्विष्णुं न पूजाफलभाग्भवेत्। विष्णुर्भूत्वा यजेद्विष्णुमयं विष्णुरहं स्थितः॥ ४०॥

aviṣṇuḥ pūjayanviṣṇuṃ na pūjāphalabhāgbhaved | viṣṇurbhūtvā yajedviṣṇumayaṃ viṣṇuraham sthitaḥ || 40 ||

One who is not Vishnu gains no fruit from worshipping Vishnu. Only after becoming Vishnu should one worship him who is filled with Vishnu; I stand as Vishnu.

जो विष्णु नहीं है, वह विष्णु की पूजा करके भी उसका फल नहीं पाता। विष्णु बनकर ही विष्णु से भरे हुए विष्णु की पूजा करनी चाहिए; मैं विष्णु के रूप में स्थित हूँ।

5.31.41

हरिः प्रह्लादनामा यो मत्तो नान्यो हरिः पृथक्। इति निश्चयवानन्तर्व्यापकोऽहं च सर्वतः॥ ४१॥

hariḥ prahrādanāmā yo mattona nānyo hariḥ pṛthak | iti niścayavānantarvyāpako'haṃ ca sarvataḥ || 41 ||

That Hari who bears the name Prahlada is none other than me; there is no separate Hari besides me. Being sure of this, I am also the one who fills everything from within, on every side.

जो हरि प्रह्लाद नाम से जाना जाता है, वह मुझसे अलग नहीं है; मेरे सिवा कोई और हरि नहीं है। यह निश्चय करके, मैं भी वही हूँ जो भीतर से हर ओर व्याप्त है।

5.31.42

अनन्तमिदमाकाशमापूर्य विनतासुतः। कनकाङ्गो ममाङ्गानामयमासनतां गतः॥ ४२॥

anantamidamākāśamāpūrya vinatāsutaḥ | kanakāṅgo mamāṅgānāmayamāsanatāṃ gataḥ || 42 ||

Having filled this endless sky, the son of Vinata, golden of limb, has become the seat for my body.

इस अनंत आकाश को भरकर, विनता का पुत्र, जिसके अंग सोने के समान हैं, मेरे शरीर का आसन बन गया है।

5.31.43

करशाखैकविश्रान्तसर्वहेतिविहंगमाः। नखांशुमञ्जरीकीर्णा महामरकतद्रुमाः॥ ४३॥

karashākhaikaviśrāntasarvahētivihangamāḥ | nakhāṃśumañjarīkīrṇā mahāmarakatadrumāḥ || 43 ||

They are like great emerald trees, covered with clusters of light from my nails, and on their single branch, the hand, every weapon rests like a bird.

वे मानो बड़े पन्ने के वृक्ष हैं, मेरे नाखूनों की किरणों के गुच्छों से ढके हुए, और उनकी एक ही डाल, हाथ पर, हर हथियार पक्षी की तरह टिका रहता है।

5.31.44

इमे ते मृदुमन्दारदामदिग्धांसमण्डलाः । मन्दराघृष्टकेयूराश्चत्वारो मम बाहवः ॥ ४४ ॥

ime te mṛdumandāradāmadigdhāṃsamaṇḍalāḥ | mandarāghṛṣṭakeyūrāścatvāro mama bāhavaḥ || 44 ||

These, their shoulders coated with soft garlands of mandara flowers, their armbands worn smooth from rubbing against Mount Mandara, are my four arms.

ये, जिनके कंधे कोमल मंदार-फूलों की मालाओं से लिपे हुए हैं और जिनके बाजूबंद मंदार पर्वत से रगड़ खाकर घिस गए हैं, मेरी चार भुजाएँ हैं।

5.31.45

चलच्छशिकलापूरचारुचामरधारिणी । इयं मे पार्श्वगा लक्ष्मीः क्षीरोदकुहरोत्थिता ॥ ४५ ॥

calacchashikalāpūrachāruchāmaradhāriṇī | iyaṃ me pārśvagā lakṣmīḥ kṣīrodakuharotthitā || 45 ||

This is Lakshmi, standing beside me. She holds a lovely fan that moves like slivers of moonlight, and she rose long ago from the depths of the ocean of milk.

यह मेरे पास खड़ी लक्ष्मी हैं। उनके हाथ में चांदनी की लहर जैसा सुंदर चंवर है, और वे बहुत पहले दूध के सागर की गहराई से निकली थीं।

5.31.46

हेलाविलुब्धभुवना त्रैलोक्यतरुमञ्जरी । इयं मे पार्श्वगा कीर्तिरचलामलभासिनी ॥ ४६ ॥

helāvilubdhabhuvanā trailokyatarumañjarī | iyaṃ me pārśvagā kīrtiracalāmalabhāsinī || 46 ||

This is Fame, standing beside me. She wins over the whole world with ease, like the flower on the tree of the three worlds. She never moves, she is pure, and she shines.

यह मेरे पास खड़ी कीर्ति हैं। वे बड़ी आसानी से पूरी दुनिया को जीत लेती हैं, जैसे तीनों लोकों रूपी पेड़ का फूल हों। वे अटल हैं, निर्मल हैं, और चमकती हैं।

5.31.47

अनारतजगज्जालनवनिर्माणकारिणी । इयं मे पार्श्वगा माया स्वेन्द्रजालविलासिनी ॥ ४७ ॥

anāratjagajjālanavanirmāṇakāriṇī | iyaṃ me pārśvagā māyā sveṅdrajālavilāsinī || 47 ||

This is Maya, standing beside me. She never stops weaving new nets around the world, and she plays in her own web of magic tricks.

यह मेरे पास खड़ी माया हैं। वे लगातार दुनिया के चारों ओर नए जाल बुनती रहती हैं, और अपने ही जादू के खेल में मगन रहती हैं।

5.31.48

इयं सा हेलयाक्रान्तत्रैलोक्यतरुखण्डिका । जया स्फुरति मे पार्श्वे लता कल्पतरोरिव ॥ ४८ ॥

iyaṃ sā helayākrāntatralokyatarukhaṇḍikā | jayā sphurati me pārśve latā kalpataroriva || 48 ||

This is Victory. With ease she has conquered the whole tree of the three worlds, branch by branch. She shines beside me like a vine on the wish-granting tree.

यह विजय हैं। उन्होंने आसानी से तीनों लोकों रूपी पेड़ को डाल-डाल जीत लिया है। वे मेरे पास कल्पवृक्ष की बेल की तरह चमकती हैं।

5.31.49

इमौ मे नित्यशीतोष्णौ देवौ शीतांशुभास्करौ । प्रकटीकृतसंसारौ मुखमध्ये विलोचने ॥ ४९ ॥

imau me nityaśītoṣṇau devau śītāṃśubhāskarau | prakaṭīkṛtasaṃsārau mukhamadhye vilocane || 49 ||

These are my two eyes, in the middle of my face — the moon, always cool, and the sun, always hot. They are gods, and they make the whole world visible.

मेरे चेहरे के बीच में ये मेरी दो आंखें हैं — चांद, जो हमेशा ठंडा रहता है, और सूरज, जो हमेशा गरम रहता है। ये दोनों देवता हैं, और इन्हीं से पूरी दुनिया दिखाई देती है।

5.31.50

ममेयमुत्पलश्यामा पीनाम्भोधरसुन्दरी । श्यामीकृतककुप्चक्रा देहदीप्तिर्विसर्पिणी ॥ ५० ॥

mameyamutpalaśyāmā pīnāmbhodharasundarī | śyāmīkṛtakakupcakrā dehadīptirvisarpiṇī || 50 ||

This is the glow of my body — dark as a blue lotus, beautiful as a full rain cloud. As it spreads out, it turns every direction dark.

यह मेरे शरीर की चमक है — नीले कमल जैसी सांवली, भरे हुए बादल जैसी सुंदर। जैसे-जैसे यह फैलती है, हर दिशा को काला कर देती है।

5.31.51

पुरा त्वमरबन्दीनामसुरेः संस्तुतं मुखम् । अद्य त्वसुरबन्दीनां सुरैरालोकितं मुखम् ॥ ५१ ॥

purā tvamrabandīnāmasureḥ saṃstutaṃ mukham | adya tvasurebandīnāṃ surairālokitaṃ mukham || 51 ||

Long ago, the asuras praised the face of the gods they had taken prisoner. Today, the gods look at the face of the asuras they have taken prisoner.

बहुत पहले असुरों ने अपने बंदी बनाए देवताओं के मुख की तारीफ की थी। आज देवता अपने बंदी बनाए असुरों का मुख देख रहे हैं।

5.31.52

अयं मे कर्णिकाकोशनिलीनब्रह्मषट्पदः । पद्मः करतले श्रीमान्स्वनाडीकुहरोद्भवः ॥ ५२ ॥

ayaṃ me karṇikākośanilīnabrahmaṣaṭpadaḥ | padmaḥ karatale śrīmānsvanāḍīkuharodbhavaḥ || 52 ||

This is the lotus resting in my palm. It is glorious, and inside it Brahma sits hidden like a bee in its cup. It grew from the hollow stem that rises from my own body.

यह मेरी हथेली पर टिका हुआ कमल है। यह शानदार है, और इसके भीतर ब्रह्मा भौंरे की तरह छिपे बैठे हैं। यह मेरे अपने शरीर से निकली खोखली डंडी से उगा है।

5.31.53

इयं मे रत्नचित्राङ्गी सुमेरुशिखरोपमा । हेमाङ्गदा गदा गुर्वी दैत्यदानवमर्दिनी ॥ ५३ ॥

iyam me ratnacitrāṅgī sumeruśikharopamā | hemāṅgadā gadā gurvī daityadānavamardinī || 53 ||

This is my mace. It is heavy, and its whole body shines with jewels, as tall as the peak of Mount Sumeru, banded with gold. It crushes the Daityas and Danavas.

यह मेरी गदा है। यह भारी है, और इसका पूरा शरीर रत्नों से चमकता है, सुमेरु पर्वत की चोटी जितनी ऊंची, सोने के छल्लों से बंधी हुई। यह दैत्यों और दानवों को कुचल देती है।

5.31.54

अयं मे भास्कराकार उद्यदंशुः सुदर्शनः । ज्वालाजटिलपर्यन्तपरिपाटलदिक्तटः ॥ ५४ ॥

ayaṃ me bhāskarākāra udyadaṃśuḥ sudarśanaḥ | jvālājaṭilaparyantaparipāṭaladiktataḥ || 54 ||

This is my discus, Sudarshana. It is shaped like the sun, its rays shoot upward, its rim is tangled with flame, and it turns the edge of every direction red.

यह मेरा चक्र है, सुदर्शन। यह सूरज जैसा दिखता है, इसकी किरणें ऊपर उठती हैं, इसका किनारा आग की लपटों में उलझा है, और यह हर दिशा के छोर को लाल कर देता है।

5.31.55

अयं मे केतुमद्वह्निसुन्दरो ज्वलितोऽसितः । कुठारो दैत्यवृक्षाणां नन्दयन्नन्दकः स्थितः ॥ ५५ ॥

ayaṃ me ketumadvahnisundaro jvalito'sitaḥ | kuṭhāro daityavṛkṣāṇāṃ nandayannandakaḥ sthitaḥ || 55 ||

This is my sword, Nandaka. It is dark and blazing, beautiful like a fire with a tongue of flame. It is the axe that cuts down the Daityas like trees, and it stands here bringing joy.

यह मेरी तलवार है, नंदक। यह काली और धधकती हुई है, आग की लौ जैसी सुंदर। यह वह कुल्हाड़ी है जो दैत्यों को पेड़ों की तरह काट गिराती है, और यह यहां खड़ी होकर आनंद देती है।

5.31.56

इदं मे शरधाराणां पुष्करावर्तकोपमम् । शार्ङ्गं धनुरहीन्द्राभमिन्द्रकार्मुकसुन्दरम् ॥ ५६ ॥

idaṃ me śaradhārāṇāṃ puṣkarāvartakopamam | śārṅgaṃ dhanurahīndrābhamindrakārmukasundaram || 56 ||

This is my bow, Sharnga. The arrows it rains down are like the flood-clouds of doomsday. It gleams like a great serpent, and it is as beautiful as a rainbow.

यह मेरा धनुष है, शार्ङ्ग। इससे बरसने वाले बाण प्रलय के बादलों की बौछार जैसे हैं। यह विशाल सांप जैसा चमकता है, और यह इंद्रधनुष जैसा सुंदर है।

5.31.57

इमान्यहमनन्तानि जगन्ति जठरे चिरम् । बिभर्मि जातनष्टानि वर्तमानान्यनेकशः ॥ ५७ ॥

imānyahamanantāni jaganti jaṭhare ciram | bibharmi jātanaṣṭāni vartamānānyanekaśaḥ || 57 ||

In my belly I have carried, for a very long time, these countless worlds — worlds that were born, worlds that died, and the many worlds that exist right now.

मैं अपने पेट में बहुत लंबे समय से इन असंख्य लोकों को धारण किए हुए हूं — वे लोक जो जन्मे, वे जो नष्ट हो गए, और वे कई लोक जो अभी मौजूद हैं।

5.31.58

इमौ मही मे चरणाविदं मे गगनं शिरः । इदं वपुर्मे त्रिजगदिमे मे कुक्षयो दिशः ॥ ५८ ॥

imau mahī me caraṇāvidaṃ me gaganaṃ śiraḥ | idaṃ vapurme trijagadime me kukṣayo diśaḥ || 58 ||

This earth is my two feet. This sky is my head. These three worlds are my body. These directions are my two sides.

यह धरती मेरे दो पैर हैं। यह आकाश मेरा सिर है। ये तीनों लोक मेरा शरीर हैं। ये दिशाएं मेरे दोनों पार्श्व हैं।

5.31.59

साक्षादयमहं विष्णुर्नीलमेघोदरद्युतिः । सुपर्णपर्वतारूढः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ५९ ॥

sākṣādayamahaṃ viṣṇurnīlameghodaradyutiḥ | suparṇaparvatārūḍhaḥ śaṅkhacakragadādharaḥ || 59 ||

I am truly Vishnu himself, glowing like the inside of a dark rain cloud, riding on Garuda, huge as a mountain, holding a conch, a discus, and a mace.

मैं सचमुच खुद विष्णु हूं, नीले बादल के भीतरी हिस्से जैसी चमक लिए हुए, पहाड़ जैसे विशाल गरुड़ पर सवार, शंख, चक्र और गदा लिए हुए।

5.31.60

एते मत्तः पलायन्ते समग्रा दुष्टचेतसः । तार्णास्तरलसंचाराः पवनादिव राशयः ॥ ६० ॥

ete mattaḥ palāyante samagrā duṣṭacetasaḥ | tārṇāstaralasaṃcārāḥ pavanādiva rāśayaḥ || 60 ||

All these evil-minded ones flee from me. They are like heaps of straw, trembling and scattering, as if blown by the wind.

ये सभी दुष्ट मन वाले मुझसे भाग जाते हैं। वे तिनकों के ढेर की तरह हैं, कांपते और बिखरते हुए, मानो हवा से उड़ रहे हों।

5.31.61

अयं नीलोत्पलश्यामः पीतवासा गदाधरः । लक्ष्मीवान्गरुडारूढः स्वयमेवाहमच्युतः ॥ ६१ ॥

ayaṃ nīlotpalasyāmaḥ pītavāsā gadādharaḥ | lakṣmīvāngaruḍārūḍhaḥ svayamevāhamacyutaḥ || 61 ||

I myself am Achyuta, the one who never falls — dark as a blue lotus, dressed in yellow, holding a mace, with Lakshmi beside me, riding on Garuda.

मैं खुद अच्युत हूं, वह जो कभी नहीं गिरता — नीले कमल जैसा सांवला, पीले वस्त्र पहने, गदा लिए हुए, लक्ष्मी को साथ लिए, गरुड़ पर सवार।

5.31.62

को मामेति विरुद्धात्मा त्रैलोक्यदहनक्षमम् । स्वनाशाय ततः क्षुब्धं कालाग्निं शलभो यथा ॥ ६२ ॥

ko māmeti viruddhātmā trailokyadahanakṣamam | svanāśāya tataḥ kṣubdhaṃ kālāgniṃ śalabho yathā || 62 ||

What enemy, with a hostile heart, comes toward me — I who can burn the three worlds — rushing to his own death, like a moth flying into the blazing fire that ends the world?

कौन शत्रु, बैरी मन लिए, मेरी ओर आता है — मैं जो तीनों लोकों को जला सकता हूं — अपनी ही मौत की ओर, जैसे पतंगा प्रलय की धधकती आग में जा गिरता है?

5.31.63

इमे मे तैजसीं सृष्टिं ममाग्रस्थाः सुरासुराः । न शक्नुवन्ति संरोद्धुं चक्षुर्मन्दाः प्रभा इव ॥ ६३ ॥

ime me taijasīṃ sṛṣṭiṃ mamāgrasthāḥ surāsurāḥ | na śaknuvanti saṃrodhduṃ cakṣurmandāḥ prabhā iva || 63 ||

These gods and demons standing before me cannot hold back my blazing creation — just as weak eyes cannot shut out the light.

मेरे सामने खड़े ये देवता और असुर मेरी तेजस्वी सृष्टि को रोक नहीं सकते — जैसे कमजोर आंखें रोशनी को रोक नहीं सकतीं।

5.31.64

इमं मामीश्वरं विष्णुं ब्रह्मेन्द्राग्निहरादयः । स्तुवन्त्यनन्तया वाचा बहुवक्त्रसमुत्थया ॥ ६४ ॥

imaṃ māmīśvaraṃ viṣṇuṃ brahmendrāgniharādayaḥ | stuvantyanantayā vācā bahuvaktrasamutthayā || 64 ||

Brahma, Indra, Agni, Shiva, and the other gods praise me, the lord Vishnu, with endless words pouring out of their many mouths.

ब्रह्मा, इंद्र, अग्नि, शिव और बाकी देवता मुझ ईश्वर विष्णु की स्तुति अपने कई मुखों से निकलते अनंत शब्दों से करते हैं।

5.31.65

अयं विजृम्भितैश्वर्यो जातोऽहमजिताकृतिः । सर्वद्वन्द्वपदातीतो महिम्ना परमेण हि ॥ ६५ ॥

ayaṃ vijṛmbhitaiśvaryo jāto'hamajitākṛtiḥ | sarvadvandvapadātīto mahimnā parameṇa hi || 65 ||

I have come into being with my power fully unfolded, my form never conquered, risen above every pair of opposites, through the highest greatness.

मैं अपनी पूरी तरह प्रकट हुई शक्ति के साथ उत्पन्न हुआ हूं, मेरा रूप कभी हारता नहीं, मैं हर विरोधी जोड़े से ऊपर उठ चुका हूं, अपनी सबसे बड़ी महिमा के बल पर।

5.31.66

त्रिभुवनभवनोदरैकमूर्ति प्रसभविभिन्नसमस्तदुष्टसत्त्वम्। घनगिरितृणकाननान्तरस्थं सकलभयापहरं वपुः प्रणौमि ॥ ६६ ॥

tribhuvanabhavanodaraikamūrti prasabhavibhinnasamastaduṣṭasattvam | ghanagiritṛṇakānanāntarasthaṃ sakalabhayāpaharaṃ vapuḥ praṇau mi || 66 ||

I bow to that one form — the single body holding the three worlds within it, that has violently destroyed every evil being, that lives inside dense mountains, blades of grass, and forests alike, and that takes away all fear.

मैं उस एक रूप को प्रणाम करता हूं — जो अपने भीतर तीनों लोकों को समेटे हुए है, जिसने हर दुष्ट प्राणी को बलपूर्वक नष्ट कर दिया है, जो घने पहाड़ों, घास के तिनकों और जंगलों में समान रूप से बसा हुआ है, और जो हर डर को दूर कर देता है।

Chapter 32

5.32.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । प्रह्लाद इति संचिन्त्य कृत्वा नारायणीं तनुम् । पुनः संचिन्तयामास पूजार्थमसुरद्विषः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | prahrāda iti saṃcintya kṛtvā nārāyaṇīṃ tanum | punaḥ saṃcintayāmāsa pūjārthamasuradviṣaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Thinking this over, Prahlada made, in his mind, a body of Narayana, and once more turned his mind to worshipping the enemy of the demons.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह सोचकर प्रह्लाद ने अपने मन में नारायण का एक शरीर बनाया, और असुरों के शत्रु की पूजा करने के लिए फिर से अपना मन लगाया।

5.32.2

वपुषो वैष्णवादस्मान्मा भून्मूर्तिः परावरा । अयं प्राणप्रवाहेण बहिर्विष्णुः स्थितोऽपरः ॥ २ ॥

vapuṣo vaiṣṇavādasmānmā bhūnmūrtiḥ parāvarā | ayaṃ prāṇapravāheṇa bahirviṣṇuḥ sthito'paraḥ || 2 ||

Let no other form, higher or lower, arise apart from this body of Vishnu. This form, through the flow of the breath of life, stands outside as another Vishnu.

विष्णु के इस शरीर के अलावा कोई और रूप, ऊँचा या नीचा, न बने। यह रूप प्राण के प्रवाह से बाहर एक दूसरे विष्णु के रूप में खड़ा है।

5.32.3

वैनतेयसमारूढः स्फुरच्छक्तिचतुष्टयः । शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामलाङ्गश्चतुर्भुजः ॥ ३ ॥

vainateyasamārūḍhaḥ sphuracchakticatuṣṭayaḥ | śaṅkhacakragadāpāṇiḥ śyāmalāṅgaścaturbhujḥ || 3 ||

Mounted on Garuda, gleaming with fourfold power, holding the conch, the discus and the mace in his hands, dark of body and four-armed.

गरुड़ पर सवार, चार शक्तियों से चमकता हुआ, हाथों में शंख, चक्र और गदा लिए, साँवले शरीर वाला और चार भुजाओं वाला।

5.32.4

चन्द्रार्कनयनः श्रीमान्कान्तनन्दकनन्दनः । पद्मपाणिर्विशालाक्षः शार्ङ्गधन्वा महाद्युतिः ॥ ४ ॥

candrārkanayanaḥ śrīmānkāntanandakanandanaḥ | padmapāṇirviśālākṣaḥ śārṅgadhanvā mahādyutiḥ || 4 ||

With the moon and the sun as his eyes, full of glory, delighting in his beautiful sword Nandaka, a lotus in his hand, wide-eyed, carrying the bow Sharnga, full of great brilliance.

चाँद और सूरज जिसकी आँखें हैं, शोभा से भरपूर, अपनी सुंदर तलवार नंदक से प्रसन्न, हाथ में कमल लिए, बड़ी आँखों वाला, शार्ङ्ग धनुष धारण किए, बहुत तेजस्वी।

5.32.5

तदेनं पूजयाम्याशु परिवारसमन्वितम् । सपर्यया मनोमय्या सर्वसंभाररम्यया ॥ ५ ॥

tadenam pūjayāmyāśu parivārasamanvitam | sapyaryayā manomayyā sarvasaṃbhāraramyayā || 5 ||

So I shall quickly worship him now, together with his attendants, with a worship offered in the mind, made lovely with every requisite.

इसलिए मैं अब उसकी पूजा उसके परिवार सहित जल्दी करूँगा, मन से की गई पूजा से, जो हर सामग्री से सुंदर बनी है।

5.32.6

तत एनं महादेवं पूजयिष्याम्यहं पुनः । पूजया बाह्यसंभोगमहत्या बहुरत्नया ॥ ६ ॥

tat enaṃ mahādevaṃ pūjayiṣyāmyahaṃ punaḥ | pūjayā bāhyasaṃbhogamahatyā bahuratnayā || 6 ||

Then I shall worship this great god once more, with an outer worship, rich with offerings and with many jewels.

फिर मैं इस महान देवता की पूजा एक बार और करूँगा, बाहरी पूजा से, जो भोग-सामग्री और कई रत्नों से भरपूर है।

5.32.7

प्रह्लाद इति संचिन्त्य संभारभरभारिणा । मनसा पूजयामास माधवं कमलाधवम् ॥ ७ ॥

prahrāda iti saṃcintya saṃbhārabharabhāriṇā | manasā pūjayāmāsa mādhavaṃ kamalādhvam || 7 ||

Thinking this, Prahlada, his mind full of every requisite of worship, worshipped Madhava, the husband of Kamala.

यह सोचकर प्रह्लाद ने, पूजा की हर सामग्री से भरे मन से, माधव की पूजा की, जो कमला के पति हैं।

5.32.8

रत्नौघपात्रपटलैश्चन्दनादिविलेपनैः । धूपैर्दीपैर्विचित्रैश्च नानाविभवभूषणैः ॥ ८ ॥

ratnaughapātrapaṭalaiścandanādivilepanaiḥ | dhūpairdīpairvicitraiśca nānāvibhavabhūṣaṇaiḥ || 8 ||

With rows of jeweled vessels, with sandal paste and other perfumes, with incense and lamps of many kinds, and with ornaments of every splendor.

रत्नों से बने बर्तनों की पंक्तियों से, चंदन और दूसरे इत्रों से, धूप और कई तरह के दीयों से, और हर तरह के वैभव के आभूषणों से।

5.32.9

मन्दारमालावलनैर्हेमाब्जपटलोत्करैः । कल्पवृक्षलतागुच्छै रत्नस्तबकमण्डलैः ॥ ९ ॥

mandāramālāvalanairhemābjapaṭalotkaraiḥ | kalpavṛkṣalatāgucchai ratnastabakamaṇḍalaiḥ || 9 ||

With garlands of mandara flowers wound together, with heaps of golden lotuses, with clusters of vines from the wish-granting trees, and with round clusters of jewels.

मंदार के फूलों की गुँथी मालाओं से, सोने के कमलों के ढेरों से, कल्पवृक्ष की लताओं के गुच्छों से, और रत्नों के गोल गुच्छों से।

5.32.10

पल्लवैर्दिव्यवृक्षाणां नानाकुसुमदामभिः । किंकिरातैर्बकैः कुन्दैश्चम्पकैरसितोत्पलैः ॥ १० ॥

pallavairdivyavṛkṣāṇāṃ nānākusumadāmabhiḥ | kiṅkirātairbakaiḥ kundaiścampakairasitotpalaiḥ || 10 ||

With young shoots of heavenly trees, with garlands of many kinds of flowers, with kinkirata blossoms, baka flowers, jasmine, champak and blue lotuses.

दिव्य वृक्षों की कोमल कोंपलों से, कई तरह के फूलों की मालाओं से, किंकिरात के फूलों से, बक के फूलों से, कुंद, चंपा और नीले कमलों से।

5.32.11

कह्लारैः कुमुदैः काशैः खर्जूरैश्चूतकिंशुकैः । अशोकैर्मदनैर्बिल्वैः कर्णिकारैः किरातकैः ॥ ११ ॥

kahlāraiḥ kumudaiḥ kāśaiḥ kharjūraiścūtakiṃśukaiḥ | aśokairmadanairbilvaiḥ karṇikāraiḥ kirātakaiḥ || 11 ||

With red lotuses, white water lilies, kasha reeds, date-palm blossoms, mango and palash flowers, ashoka flowers, madana flowers, bilva, karnikara and kiratak blossoms.

लाल कमलों से, सफ़ेद कुमुद फूलों से, काश की घास से, खजूर के फूलों से, आम और पलाश के फूलों से, अशोक के फूलों से, मदन के फूलों से, बेल, कर्णिकार और किरातक के फूलों से।

5.32.12

कदम्बैर्बकुलैर्निम्बैः सिन्दुवारैः सयूथकैः । पारिभद्रैगुग्गुलीभिर्बिन्दुकैः पुष्पकोत्करैः ॥ १२ ॥

kadambairbakulairnimbaissinduvāraissayūthakaiḥ | pāribhadraiguggulībhirbindukaiḥ puṣpakotkaraiḥ || 12 ||

With kadamba, bakula and neem flowers, with sinduvara together with yuthika jasmine, with paribhadra flowers, guggul blossoms, binduka flowers, and heaps of other flowers.

कदंब, बकुल और नीम के फूलों से, सिंदुवार और यूथिका के फूलों से, पारिभद्र के फूलों, गुग्गुल के फूलों, बिंदुक के फूलों, और फूलों के ढेरों से।

5.32.13

प्रियङ्गुपटलैः पाटैः पाटलैर्धातुपाटलैः । आम्रैराम्रातकैर्गव्यैर्हरीतकबिभीतकैः ॥ १३ ॥

priyaṅgupaṭalaiḥ pāṭaiḥ pāṭalairdhātupāṭalaiḥ | āmrairāmrātakairgavyairharītakabibhītakaiḥ || 13 ||

With priyangu blossoms, with patala flowers pale and ochre-red, with mango and hog-plum blossoms, with gavya, and with haritaki and bibhitaki.

प्रियंगु के फूलों से, फीके और गेरू-लाल पाटल के फूलों से, आम और अंबाड़े के फूलों से, गव्य से, और हरड़ तथा बहेड़े से।

5.32.14

शालतालतमालानां लताकुसुमपल्लवैः । कोमलैः कलिकाजालैः सहकारैः सकुङ्कुमैः ॥ १४ ॥

śālatālatamālānāṃ latākusumapallavaiḥ | komalaiḥ kalikājālaiḥ sahakāraiḥ sakuṅkumaiḥ || 14 ||

With flowering vines and shoots from the sala, tala and tamala trees, with soft clusters of buds, with mango blossoms and saffron.

साल, ताल और तमाल के पेड़ों की फूलों भरी लताओं और कोंपलों से, कोमल कलियों के गुच्छों से, आम के बौर और केसर से।

5.32.15

केतकैः शतपत्रैश्च तथैलामञ्जरीगणैः । सर्वसौन्दर्यसंमानैः स्वयमात्मार्पणैरपि ॥ १५ ॥

ketakaiḥ śatapatraiśca tathailāmañjarīgaṇaiḥ | sarvasaundaryasaṃmānaiḥ svayamātmārpaṇairapi || 15 ||

With ketaki flowers and hundred-petaled lotuses, and also with clusters of cardamom blossoms, with everything prized for its beauty, given as though it offered itself.

केतकी के फूलों और सौ पंखुड़ियों वाले कमलों से, और इलायची के फूलों के गुच्छों से भी, हर उस चीज़ से जो सुंदरता के लिए मानी जाती है, मानो वह खुद को अर्पित कर रही हो।

5.32.16

हरिं परमया भक्त्या जगद्विभवभव्यया । मनसा पूजयामास प्रह्लादोऽन्तःपुरे पतिम् ॥ १६ ॥

hariṃ paramayā bhaktyā jagadvibhavabhavyayā | manasā pūjayāmāsa prahrādo'ntaḥpure patim || 16 ||

Prahlada worshipped Hari, the lord, in his mind, in his private chamber, with supreme devotion, glorious as the wealth of the whole world.

प्रह्लाद ने अपने अंतःपुर में, अपने मन से, परम भक्ति के साथ हरि की पूजा की, जो पूरे संसार के वैभव जैसी शानदार थी।

5.32.17

अथ देवगृहे तस्मिन्बाह्यार्थैः परिपूर्णया । पूजया पूजयामास दानवेशो जनार्दनम् ॥ १७ ॥

atha devagṛhe tasmin bāhyārthaiḥ paripūrṇayā | pūjayā pūjayāmāsa dānaveśo janārdanam || 17 ||

Then, in that temple, the lord of the demons worshipped Janardana with worship filled with outward offerings.

फिर उस मंदिर में दानवों के राजा ने बाहर की चीज़ों से भरी पूजा से जनार्दन की पूजा की।

5.32.18

बहिर्द्रव्यैरनेनैव क्रमेण परमेश्वरम्। पुनःपुनः पूजयित्वा तुष्टिमान्दानवोऽभवत्॥ १८॥

bahirdravvairanenaiva krameṇa parameśvaram | punaḥpunaḥ pūjayitvā tuṣṭimāndānavo'bhavat || 18 ||

With outer offerings, in this same way, having worshipped the Supreme Lord again and again, the demon became content.

इसी तरह बाहर की चीज़ों से बार-बार परमेश्वर की पूजा करके वह दानव संतुष्ट हो गया।

5.32.19

ततस्ततः प्रभृत्येव प्रह्लादः परमेश्वरम्। तथैव प्रत्यहं भक्त्या पूजयामास पूर्णया॥ १९॥

tatastataḥ prabhṛtyeva prahrādaḥ parameśvaram | tathaiva pratyahaṃ bhaktyā pūjayāmāsa pūrṇayā || 19 ||

From that day on, Prahlada worshipped the Supreme Lord every day in the same way, with full devotion.

उस दिन से प्रह्लाद हर रोज़ उसी तरह पूरी भक्ति के साथ परमेश्वर की पूजा करने लगा।

5.32.20

अथ तस्मिन्पुरे दैत्यास्ततः प्रभृति वैष्णवाः। सर्व एवाभवन्भव्या राजा ह्याचारकारणम्॥ २०॥

atha tasmin pure daityās tataḥ prabhṛti vaiṣṇavāḥ | sarva evābhavan bhavvā rājā hyācārakāraṇam || 20 ||

Then in that city, from that time on, all the demons became devotees of Vishnu and turned good, because the king is the reason for his people's conduct.

फिर उस नगर में उस समय से सब दानव विष्णु के भक्त बनकर अच्छे हो गए, क्योंकि राजा ही अपनी प्रजा के आचरण की वजह होता है।

5.32.21

जगाम वार्ता गगनं देवलोकमथारिहन्। विष्णोर्द्वेषं परित्यज्य भक्ता दैत्याः स्थिता इति॥ २१॥

jagāma vārtā gaganaṃ devalokamathārihan | viṣṇordveṣaṃ parityajya bhaktā daityāḥ sthitā iti || 21 ||

The news reached the sky and the world of the gods, O destroyer of enemies, that the demons had given up their hatred of Vishnu and had become his devotees.

हे शत्रुओं के नाश करने वाले, यह बात आकाश में और देवलोक तक पहुँच गई कि दानवों ने विष्णु से अपनी दुश्मनी छोड़कर उनकी भक्ति अपना ली है।

5.32.22

देवा विस्मयमाजग्मुः शक्राद्याः समरुद्गणाः। गृहीता वैष्णवी भक्तिर्दैत्यैः किमिति राघव॥ २२॥

devā vismayamājagmuḥ śakrādyāḥ samarudgaṇāḥ | gṛhītā vaiṣṇavī bhaktirdaiyaiḥ kimiti rāghava || 22 ||

The gods, headed by Indra, together with the hosts of the Maruts, were struck with wonder: what is this, have the demons taken up devotion to Vishnu, O Rama.

इंद्र समेत सब देवता, मरुद्गणों के साथ, हैरान रह गए: यह क्या हुआ, क्या दानवों ने विष्णु की भक्ति अपना ली, हे राम।

5.32.23

क्षीरोदे भोगिभोगस्थं विबुधा विस्मयाकुलाः। जग्मुरम्वरमुत्सृज्य हरिमाहवशालिनम्॥ २३॥

kṣīrode bhogibhogasthaṃ vibudhā vismayākulāḥ | jagmuramvaramutsṛjya harimāhavaśālinam || 23 ||

The gods, filled with wonder, left the sky and went to Hari, who lay on the coils of the serpent in the Ocean of Milk, glorious in battle.

हैरानी से भरे देवता आकाश छोड़कर उस हरि के पास गए, जो क्षीरसागर में शेषनाग की कुंडली पर लेटे हुए थे और युद्ध में तेजस्वी थे।

5.32.24

तत्रैनं दैत्यवृत्तान्तं कथयामासुरस्य ते । पप्रच्छुश्चैनमासीनमपूर्वाश्चर्यविस्मयम् ॥ २४ ॥

tatra enaṃ daityavṛttāntaṃ kathayāmāsurasya te | papracchuścainamāsīnampapūrvāścaryavismayam || 24 ||

There they told him the story of the demons, and asked him, as he sat in a wonder and astonishment such as had never been seen before.

वहाँ उन्होंने उन्हें दानवों की पूरी बात सुनाई, और उनसे पूछा, जो एक ऐसे अचरज और हैरानी में बैठे थे जो पहले कभी नहीं देखी गई थी।

5.32.25

विबुधा ऊचुः । किमेतद्भगवन्दैत्या विरुद्धा ये सदैव ते । ते हि तन्मयतां याता मायेयमिति भाव्यते ॥ २५ ॥

vibudhā ūcuḥ | kimetadbhagavandaiyā viruddhā ye sadaiva te | te hi tanmayatāṃ yātā māyeyamiti bhāvyate || 25 ||

The gods said: what is this, Lord? The demons, who have always been your enemies, have now become completely devoted to you. We think this must be some illusion.

देवताओं ने कहा: हे भगवन, यह क्या है? जो दानव हमेशा से आपके दुश्मन रहे हैं, वे अब पूरी तरह आपके भक्त बन गए हैं। हमें लगता है यह कोई माया ही है।

5.32.26

क्व किलात्यन्तदुर्वृत्ता दानवा दलिताद्रयः । क्व पाश्चात्यमहाजन्मलभ्या भक्तिर्जनार्दने ॥ २६ ॥

kva kilātyantadurvṛttā dānavā dalitādrayaḥ | kva pāścātyamahājanmalabhyā bhaktirjanārdane || 26 ||

Where are these demons of utterly wicked conduct, who shatter mountains, and where is devotion to Janardana, which is gained only after many lifetimes of great birth?

कहाँ तो ये बेहद दुष्ट स्वभाव के दानव, जो पहाड़ों को तोड़ डालते हैं, और कहाँ जनार्दन की वह भक्ति, जो कई महान जन्मों के बाद ही मिलती है?

5.32.27

प्राकृतो गुणवाञ्जात इत्येषा भगवन्कथा । अकालपुष्पमालेव सुखायोद्वेजनाय च ॥ २७ ॥

prākṛto guṇavāñjāta ityeṣā bhagavankathā | akālapuṣpamāleva sukhāyodvejanāya ca || 27 ||

This story, Lord, that a lowly creature has become virtuous, is like a garland of flowers blooming out of season, it brings both joy and unease.

हे भगवन, यह बात कि एक नीच जीव सद्गुणी बन गया, बेमौसम खिली फूलों की माला जैसी है, यह सुख भी देती है और बेचैनी भी।

5.32.28

नोपपन्नं हि यद्यत्र तत्र तन्न विराजते । मध्ये काचकलापस्य महामूल्यो मणिर्यथा ॥ २८ ॥

nopapannaṃ hi yadyatra tatra tanna virājate | madhye kācakalāpasya mahāmūlyo maṇiryathā || 28 ||

Whatever does not fit a place does not shine there, like a priceless jewel set among a heap of glass beads.

जो चीज़ जहाँ फिट नहीं बैठती, वह वहाँ शोभा नहीं देती, जैसे काँच के ढेर के बीच रखा हुआ अनमोल रत्न।

5.32.29

यो यो यादृग्गुणो जन्तुः स तामेवैति संस्थितिम्। सदृशेष्वप्यजेषु श्वा न मध्ये रमते क्वचित्॥ २९॥

yo yo yādṛgguṇo jantuḥ sa tāmevaeti saṃsthitim | sadṛśeṣvapyajeṣu śvā na madhye ramate kvacit || 29 ||

Whatever nature a creature has, it settles among its own kind, a dog is never at ease among goats, even goats that resemble it.

जिस जीव का जैसा स्वभाव होता है, वह अपने ही जैसों के बीच रहता है, एक कुत्ता बकरियों के बीच कभी सहज नहीं रहता, चाहे वे बकरियाँ उससे मिलती-जुलती ही क्यों न हों।

5.32.30

न तथा दुःखयन्त्यङ्गे मज्जन्त्यो वज्रसूचयः। वैसादृश्येन संबद्धा यथैता वस्तुदृष्टयः॥ ३०॥

na tathā duḥkhayantyaṅge majjantyo vajrasūcayaḥ | vaisādṛśyena saṃbaddhā yathaitā vastudṛṣṭayaḥ || 30 ||

Sharp diamond needles sinking into the body do not hurt as much as this, seeing a thing joined to what does not match it.

शरीर में गड़ती तीखी हीरे की सुइयाँ उतना दर्द नहीं देतीं, जितना यह देखना कि कोई चीज़ ऐसी चीज़ से जुड़ी है जो उसके अनुरूप नहीं है।

5.32.31

यद्यत्र क्रमसंप्राप्तमुपपन्नमनिन्दितम्। तदेव राजते तत्र जलेऽम्भोजं नतु स्थले॥ ३१॥

yadyatra kramasaṃprāptamupapannamaninditam | tadeva rājate tatra jale'mbhojaṃ natu sthale || 31 ||

Whatever comes to a place in its proper order, fitting and faultless, shines there alone, a lotus shines in water, not on dry ground.

जो चीज़ जहाँ सही क्रम से, ठीक और निर्दोष ढंग से आती है, वही वहाँ शोभा पाती है, कमल पानी में शोभा देता है, सूखी ज़मीन पर नहीं।

5.32.32

क्वाधमः प्राकृतारम्भो हीनकर्मरतिः सदा। वराको दानवो हीनजातिर्भक्तिः क्व वैष्णवी॥ ३२॥

kvādhamḥ prākṛtārambho hīnakarmaratiḥ sadā | varāko dānavo hīnajātirbhaktiḥ kva vaiṣṇavī || 32 ||

Where is this low creature, of base origin, always delighting in vile deeds, this wretched demon of low birth, and where is devotion to Vishnu?

कहाँ तो यह नीच जीव, ओछी शुरुआत वाला, जो हमेशा घटिया कामों में रमता है, यह बेचारा नीच जाति का दानव, और कहाँ विष्णु की भक्ति?

5.32.33

कमलिनी परुषोषरभूगता सुखयतीह यथा न दुराश्रया। दितिसुतोऽपि हि माधवभक्तिमानिति कथा न तथेश सुखाय नः॥ ३३॥

kamalinī paruṣoṣarabhūgatā sukhayatīha yathā na durāśrayā | ditisuto'pi hi mādhava-bhaktimāniti kathā na tatheśa sukhāya naḥ || 33 ||

Just as a lotus growing on hard, salty ground gives no joy here, because it is rooted where it does not belong, so too, Lord, this story of a son of Diti devoted to Madhava does not bring us happiness in the same way.

जैसे कठोर, खारी ज़मीन में उगा हुआ कमल यहाँ सुख नहीं देता, क्योंकि वह गलत जगह जड़ जमाए बैठा है, वैसे ही, हे भगवन, दिति के पुत्र का माधव का भक्त बनना, यह बात हमें उस तरह सुख नहीं देती।

Chapter 33

5.33.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । गर्जन्तमतिसंरब्धं सुरलोकमथारिहा । उवाच माधवो वाक्यं शिखिवृन्दमिवाम्बुदः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | garjantamatisaṃrabdhaṃ suralokamathārihā | uvāca mādhavo vākyaṃ śikhivṛndamivāmbudaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then Madhava, the killer of the enemy, spoke these words to the assembly of gods, who were roaring in great agitation, the way a cloud speaks to a flock of peacocks.

श्री वसिष्ठ ने कहा: तब शत्रु का नाश करने वाले माधव ने देवताओं की उस सभा से, जो बहुत व्याकुल होकर गरज रही थी, ऐसे शब्द कहे जैसे बादल मोरों के झुंड से बोलता है।

5.33.2

श्रीभगवानुवाच । विबुधा मा विषण्णाः स्थ प्रह्लादो भक्तिमानिति । पाश्चात्यं जन्म तस्येदं मोक्षार्होऽसावरिंदमः ॥ २ ॥

śrībhagavānuvāca | vibudhā mā viṣaṇṇāḥ stha prahlādo bhaktimāniti | pāścātyaṃ janma tasyedaṃ mokṣārhosāvarindamaḥ || 2 ||

Sri Bhagavan said: Gods, do not be sad that Prahlada is devoted to me. This is his last birth. He deserves freedom from rebirth, this queller of enemies.

श्री भगवान ने कहा: हे देवताओ, यह सोचकर दुखी मत हो कि प्रह्लाद मेरा भक्त है। यह उसका आखिरी जन्म है। शत्रुओं को दबाने वाला यह प्रह्लाद मुक्ति का अधिकारी है।

5.33.3

अत उत्तरमेतेन गर्भता दनुजन्मना । न कर्तव्या प्रदग्धेन बीजेनेवाङ्कुरक्रिया ॥ ३ ॥

ata uttarameten garbhatā danujanmanā | na kartavyā pradagdhena bījenaivāṅkurakriyā || 3 ||

Therefore, from now on, this one born as a demon will not enter a womb again, just as a scorched seed does not sprout.

इसलिए अब इसके बाद, राक्षस के रूप में जन्मा यह प्रह्लाद फिर से किसी माँ के गर्भ में नहीं आएगा, जैसे जला हुआ बीज कभी नहीं उगता।

5.33.4

गुणवान्निर्गुणो जात इत्यनर्थक्रमं विदुः । निर्गुणो गुणवाञ्जात इत्याहुः सिद्धिदं क्रमम् ॥ ४ ॥

guṇavān nirguṇo jāta ityanarthakramaṃ viduḥ | nirguṇo guṇavāñjāta ityāhuḥ siddhidam kramaṃ || 4 ||

When someone with good qualities becomes someone without them, they call that a harmful course. When someone without good qualities becomes someone with them, they call that a course that leads to success.

जब कोई अच्छे गुणों वाला व्यक्ति गुणहीन हो जाता है, तो उसे नुकसान की राह कहा जाता है। जब कोई गुणहीन व्यक्ति अच्छे गुणों वाला बन जाता है, तो उसे सफलता की राह कहा जाता है।

5.33.5

आत्मीयानि विचित्राणि भुवनान्यमरोत्तमाः । प्रयात नासुखायैषा प्राह्लादी गुणितेह वः ॥ ५ ॥

ātmīyāni vicitrāṇi bhuvanānyamarottamāḥ | prayāta nāsukhāyaiṣā prāhlādī guṇiteha vaḥ || 5 ||

Best of immortals, go now to your own wondrous worlds. This account of Prahlada that I have told you here is not meant to bring you any harm.

हे श्रेष्ठ देवताओ, अब अपने अद्भुत लोकों को जाओ। प्रह्लाद के बारे में जो बात मैंने यहाँ तुम्हें बताई है, वह तुम्हें कोई नुकसान पहुँचाने के लिए नहीं है।

5.33.6

श्रीवसिष्ठ उवाच । इत्युक्त्वा विबुधांस्तत्र क्षीरोदार्णववीचिषु । अन्तर्धानं ययौ देवस्तटतापिच्छगुच्छवत् ॥ ६ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | ityuktvā vibudhāṃstatra kṣīrodārṇavavīciṣu | antardhānaṃ yayau devastataṭāpicchaguccchavat || 6 ||

Sri Vasishtha said: Having said this to the gods there, amid the waves of the Ocean of Milk, the god disappeared, the way a cluster of tamala trees on the shore fades from sight.

श्री वसिष्ठ ने कहा: देवताओं से यह कहकर, क्षीरसागर की लहरों के बीच वह भगवान अदृश्य हो गए, जैसे किनारे पर तमाल वृक्षों का झुंड दिखाई देना बंद हो जाता है।

5.33.7

सोऽपि संपूजितहरिः सुरौघो व्रजदम्बरम् । पुनर्मन्दरनिर्धूतात्कणजालमिवार्णवात् ॥ ७ ॥

soapi saṃpūjitahariḥ suraugho vrajadambaram | punarmandaranirdhūtātkaṇajālamivārṇavāt || 7 ||

That host of gods, having worshipped Hari, went up into the sky again, like a spray of droplets flying up from the ocean churned by Mount Mandara.

देवताओं का वह समूह हरि की पूजा करके फिर आकाश की ओर चला गया, जैसे मंदराचल पर्वत से मथे गए समुद्र से पानी की बूँदों का फुहारा उठता है।

5.33.8

प्रह्लादं प्रति गीर्वाणास्ततः स्निग्धत्वमाययुः । महान्तो यत्र नोद्विग्नास्तत्र विश्वासवन्मनः ॥ ८ ॥

prahlādaṃ prati gīrvāṇāstatataḥ snigddhatvamāyayuḥ | mahānto yatra noudvignāstatra viśvāsavanmanaḥ || 8 ||

Then the gods grew affectionate toward Prahlada. Where great ones are not troubled by someone, there the mind comes to trust them.

तब देवताओं का मन प्रह्लाद के प्रति स्नेह से भर गया। जहाँ बड़े लोग किसी से परेशान नहीं होते, वहाँ मन उस पर भरोसा करने लगता है।

5.33.9

प्रत्यहं पूजयामास देवदेवं जनार्दनम् । मनसा कर्मणा वाचा प्रह्लादो भक्तिमानिति ॥ ९ ॥

pratyahaṃ pūjayāmāsa devadevaṃ janārdanam | manasā karmaṇā vācā prahlādo bhaktimāniti || 9 ||

Every day Prahlada, full of devotion, worshipped Janardana, the god of gods, with his mind, his actions, and his words.

प्रह्लाद हर दिन भक्ति भाव से देवों के देव जनार्दन की पूजा अपने मन से, अपने कर्मों से और अपनी वाणी से करता था।

5.33.10

अथ पूजापरस्यास्य समवर्धन्त कालतः । विवेकानन्दवैराग्यविभवप्रमुखा गुणाः ॥ १० ॥

atha pūjāparasyāsya samavardhanta kālataḥ | vivekānandavairāgyavibhavapramukhā guṇāḥ || 10 ||

Then, as time went on, for him, devoted to worship, good qualities grew, led by clear understanding, joy, freedom from craving, and inner richness.

फिर समय के साथ, पूजा में लगे रहने वाले प्रह्लाद में अच्छे गुण बढ़ने लगे, जिनमें साफ समझ, आनंद, इच्छाओं से मुक्ति और भीतरी समृद्धि सबसे आगे थे।

5.33.11

नाभ्यनन्ददसौ भोगपूगं शुष्कमिव द्रुमम् । न चारमत कान्तासु मृगो लोकमहीष्विव ॥ ११ ॥

nābhyanandadasau bhogapūgaṃ śuṣkamiva drumaṃ| na cāramata kāntāsu mṛgo lokamahīṣviva|| 11||

He took no delight in the heap of pleasures, as one takes no delight in a withered tree. He did not roam among beautiful women, as a deer does not roam among the women of the world.

उसे सुखों के ढेर में कोई खुशी नहीं मिलती थी, जैसे सूखे हुए पेड़ में कोई खुशी नहीं मिलती। वह सुंदर स्त्रियों के बीच नहीं घूमता था, जैसे हिरण संसार की स्त्रियों के बीच नहीं घूमता।

5.33.12

न रेमे लोकचर्यासु शास्त्रार्थकथनादृते । न जायते रतिस्तस्य दृश्ये स्थल इवाजिनी ॥ १२ ॥

na reme lokacaryāsu śāstrārthakathanaādṛte| na jāyate ratistasya dṛśye sthala ivājinī|| 12||

He found no delight in the ways of the world, except in discussing the meaning of the scriptures. Delight did not arise in him, just as a doe does not appear on open, visible ground.

उसे संसार के कामों में कोई आनंद नहीं आता था, सिवाय शास्त्रों के अर्थ पर बात करने के। उसमें आनंद नहीं जगता था, जैसे कोई हिरणी खुले मैदान में दिखाई नहीं देती।

5.33.13

न विशश्राम चेतोऽस्य भोगरोगानुरञ्जने । मुक्ताफलमसंश्लिष्टं मुक्ताफल इवामले ॥ १३ ॥

na viśaśrāma cetosya bhogarogānurañjane| muktāphalamasanśliṣṭaṃ muktāphala ivāmale|| 13||

His mind never came to rest in being tinged by the sickness of pleasure, like a pearl that will not stick to another flawless pearl.

उसका मन कभी सुख की उस बीमारी में रंगकर टिका नहीं, जैसे एक मोती दूसरे निर्मल मोती से चिपकता नहीं।

5.33.14

त्यक्तभोगादिकलनं विश्रान्तिमनुपागतम् । चेतः केवलमस्यासीद्दोलायामिव योजितम् ॥ १४ ॥

tyaktabhogādikalanaṃ viśrāntimanupāgatam| ceto kevalamasyaāsīddolāyāmiva yojitam|| 14||

His mind alone remained. It had let go of pleasure and all such things, yet had not found rest, like something set swinging on a swing.

बस उसका मन ही शेष रह गया था। उसने सुख और ऐसी सब चीज़ों को छोड़ दिया था, फिर भी उसे चैन नहीं मिला था, जैसे कोई चीज़ झूले पर बाँधकर झुलाई जा रही हो।

5.33.15

प्राह्लादीं तां स्थितिं विष्णुर्देवः क्षीरोदमन्दिरात्। विवेद सर्वगतया धिया परमकान्तया ॥ १५ ॥

prāhlādīṃ tāṃ sthitim viṣṇurdevaḥ kṣīrodamandirāt| viveda sarvagatayā dhiyā paramakāntayā|| 15||

The god Vishnu, from his home in the Ocean of Milk, knew this state of Prahlada's through his all-reaching, most radiant mind.

भगवान विष्णु ने क्षीरसागर में अपने निवास से, अपनी सब जगह पहुँचने वाली और परम तेजस्वी बुद्धि से प्रह्लाद की इस स्थिति को जान लिया।

5.33.16

अथ पातालमार्गेण विष्णुराह्लादिताग्रतः। पूजादेवगृहं तस्य प्रह्लादस्य समाययौ ॥ १६ ॥

atha pātālamārgeṇa viṣṇurāhlāditāgrataḥ | pūjādevagṛhaṃ tasya prahlādasya samāyayau || 16 ||

Then Vishnu, full of joy, went first by the path to the netherworld, and came to Prahlada's temple, the house where he worshipped his god.

फिर विष्णु आनंद से भरकर पाताल के मार्ग से आगे बढ़े और प्रह्लाद के उस पूजा-घर में पहुँचे, जहाँ वह अपने भगवान की पूजा करता था।

5.33.17

विज्ञायाभ्यागतं देवं पूजया द्विगुणेद्धया। दैत्येन्द्रः पुण्डरीकाक्षमादरात्पर्यपूजयत् ॥ १७ ॥

vijñāyābhyāgataṃ devaṃ pūjayā dviguṇeddhayā | daityendraḥ puṇḍarīkākṣamādarātparyapūjayat || 17 ||

Knowing that the god had arrived, the lord of the demons worshipped the lotus-eyed one with great reverence, honoring him twice as much as before.

भगवान के आने की बात जानकर, राक्षसों के राजा ने कमल जैसी आँखों वाले उस भगवान की बड़े आदर से पूजा की, पहले से दोगुने भाव से उनका सम्मान किया।

5.33.18

पूजागृहगतं देवं प्रत्यक्षावस्थितं हरिम्। प्रह्लादः परमप्रीतो गिरा तुष्टाव पुष्टया ॥ १८ ॥

pūjāgṛhagataṃ devaṃ pratyakṣāvasthitaṃ harim | prahlādaḥ paramaprīto girā tuṣṭāva puṣṭayā || 18 ||

Prahlada, filled with great joy, praised with rich words the god who had come into his temple, Hari, standing there before his very eyes.

प्रह्लाद बहुत प्रसन्न होकर अपने पूजा-घर में आए भगवान हरि की, जो उसकी आँखों के सामने साक्षात खड़े थे, भरे हुए शब्दों में स्तुति करने लगा।

5.33.19

प्रह्लाद उवाच। त्रिभुवनभवनाभिरामकोशं सकलकलङ्कहरं परं प्रकाशम्। अशरणशरणं शरण्यमीशं हरिमजमच्युतमीश्वरं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

prahlāda uvāca | tribhuvanabhavanābhirāmakośaṃ sakalakalaṅkaharaṃ paraṃ prakāśam | aśaraṇaśaraṇaṃ śaraṇyamīśaṃ harimajamacyutamīśvaraṃ prapadye || 19 ||

Prahlada said: I take refuge in Hari, the unborn, the never-failing, the highest lord. His being is the lovely home of all three worlds. He removes every stain. He is the highest light. He shelters those who have no shelter. He is the lord worth taking refuge in.

प्रह्लाद ने कहा: मैं हरि की शरण लेता हूँ, जो अजन्मा है, जो कभी असफल नहीं होता, जो सबसे ऊँचा स्वामी है। उसका रूप तीनों लोकों का सुंदर घर है। वह हर दाग को मिटा देता है। वह सबसे बड़ा प्रकाश है। जिन्हें कहीं शरण नहीं मिलती, वह उन्हें शरण देता है। वह ऐसा स्वामी है जिसकी शरण लेने लायक है।

5.33.20

कुवलयदलनीलसंनिकाशं शरदमलाम्बरकोटरोपमानम्। भ्रमरतिमिरकज्जलाञ्जनाभं सरसिजचक्रगदाधरं प्रपद्ये ॥ २० ॥

kuvalayadalanīlasannikāśaṃ śaradamalāmbarakoṭaropamānam | bhramaratimirakajjalāñjanābhaṃ sarasijacakragadādharaṃ prapadye || 20 ||

I take refuge in him who is blue-dark like the petal of the blue lotus, like the clear autumn sky, dark as a bee, as night, as soot, as the black of collyrium, who carries the lotus, the discus, and the mace.

मैं उसकी शरण लेता हूँ जो नीले कमल की पंखुड़ी जैसा नीला-गहरा है, जो शरद ऋतु के साफ आकाश जैसा है, जो भँवरे जैसा, रात जैसा, कालिख जैसा और काजल जैसा काला है, जो कमल, चक्र और गदा धारण करता है।

5.33.21

विमलमलिकलापकोमलाङ्गं सितदलपङ्कजकुड्मलाभशङ्खम्। श्रुतिरणितविरञ्चिचञ्चरीकं स्वहृदयपद्मदलाश्रयं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

vimalamalikalāpakomalāṅgaṃ sitadalapaṅkajakuḍmalābhaśaṅkham | śrutiraṇitavirañcicañcarīkaṃ svahṛdayapadmadalāśrayaṃ prapadye || 21 ||

I take refuge in him whose gentle body is adorned with a spotless cluster of jasmine flowers, who holds a conch as lovely as the bud of a white lotus, for whom Brahma hums like a bee to the sound of the Vedas, and who dwells on the petals of the lotus in one's own heart.

मैं उसकी शरण लेता हूँ जिसके कोमल शरीर पर चमेली के फूलों का निर्मल गुच्छा सजा है, जो सफेद कमल की कली जैसा सुंदर शंख धारण करता है, जिसके लिए ब्रह्मा वेदों की ध्वनि में भँवरे की तरह गुनगुनाते हैं, और जो अपने ही हृदय-कमल की पंखुड़ियों में निवास करता है।

5.33.22

सितनखगणतारकावकीर्णं स्मितधवलाननपीवरेन्दुबिम्बम्। हृदयमणिमरीचिजालगङ्गं हरिशरदम्बरमाततं प्रपद्ये ॥ २२ ॥

sitanakhagaṇatārakāvakīrṇaṃ smitadhavalānanapīvarendubimbaṃ | hṛdayamaṇimarīcijālagaggaṃ harīśaradambaramātataṃ prapadye || 22 ||

I take refuge in him whose scattered bright nails are like stars, whose smiling white face is like the full orb of the moon, whose network of rays from the jewel on his heart is like the Ganga, who stretches out vast like Hari's autumn sky.

मैं उसकी शरण लेता हूँ जिसके चमकते नाखून बिखरे हुए तारों जैसे हैं, जिसका मुस्कुराता सफेद चेहरा पूर्णिमा के चाँद जैसा है, जिसके हृदय पर सजे मणि की किरणों का जाल गंगा जैसा है, और जो हरि के शरद ऋतु के आकाश जैसा विशाल फैला हुआ है।

5.33.23

अविरलकृतसृष्टिसर्वलीनं सततमजातमवर्धनं विशालम्। गुणशतजरठाभिजातदेहं तरुदलशायिनमर्भकं प्रपद्ये ॥ २३ ॥

aviralakṛtasṛṣṭisarvalīnaṃ satatamajātamavardhanaṃ viśālaṃ | guṇaśatajaraṭhābhijātadehaṃ tarudalaśāyinamarbhakaṃ prapadye || 23 ||

I take refuge in him who ceaselessly creates yet is dissolved into everything, who is forever unborn yet never diminished, who is vast, whose body has grown great through a hundred good qualities yet is nobly born, the infant lying on the leaf of a tree.

मैं उसकी शरण लेता हूँ जो बिना रुके सृष्टि रचता है फिर भी सब में समा जाता है, जो हमेशा अजन्मा है फिर भी कभी कम नहीं होता, जो विशाल है, जिसका शरीर सौ गुणों से महान बना है फिर भी कुलीन रूप से जन्मा है, वह शिशु जो पेड़ के एक पत्ते पर लेटा है।

5.33.24

नवविकसितपद्मरेणुगौरं स्फुटकमलावपुषा विभूषिताङ्गम् । दिनशमसमयारुणाङ्गरागं कनकनिभाम्बरसुन्दरं प्रपद्ये ॥ २४ ॥

navavikasitapadmareṇugauram sphuṭakamalāvapuṣā vibhūṣitāṅgam | dinaśamasa mayāruṇāṅgarāgaṃ kanakanibhāmbarasundaraṃ prapadye || 24 ||

I take refuge in him who is fair as the pollen of a freshly opened lotus, whose body is adorned like a lotus in full bloom, whose color is red like the sky at the close of day, who is beautiful in garments the color of gold.

मैं उसकी शरण लेता हूँ जो नए खिले कमल के पराग जैसा गोरा है, जिसका शरीर पूरी तरह खिले कमल जैसा सजा हुआ है, जिसका रंग दिन ढलते समय के आकाश जैसा लाल है, जो सोने के रंग के वस्त्रों में सुंदर लगता है।

5.33.25

दितिसुतनलिनीतुषारपातं सुरनलिनीसततोदितार्कबिम्बम् । कमलजनलिनीजलावपूरं हृदि नलिनीनिलयं विभुं प्रपद्ये ॥ २५ ॥

diti sutanalinītuṣārapātaṃ suranalinīsatatoditārkabimbaṃ | kamalajanalinījalāvapūraṃ hṛdi nalinīnilayaṃ vibhuṃ prapadye || 25 ||

I take refuge in the all-reaching lord who is like frost falling on the lotus-pond of Diti's sons, who is like the sun always risen over the lotus-pond of the gods, who is like the flood of water filling the lotus-pond of the lotus-born one, and who dwells in the lotus of the heart.

मैं उस सब-व्यापी स्वामी की शरण लेता हूँ जो दिति के पुत्रों के कमल-सरोवर पर पड़ी पाले की तरह है, जो देवताओं के कमल-सरोवर पर सदा उगे सूरज की तरह है, जो कमल से जन्मे ब्रह्मा के कमल-सरोवर को भरने वाले जल की बाढ़ की तरह है, और जो हृदय के कमल में निवास करता है।

5.33.26

त्रिभुवननलिनीसितारविन्दं तिमिरसमानविमोहदीपमग्र्यम् । स्फुटतरमजडं चिदात्मतत्त्वं जगदखिलार्तिहरं हरिं प्रपद्ये ॥ २६ ॥

tribhuvananalinīsitāravindaṃ timirasamānavimohadīpamagryaṃ | sphuṭataramajaḍaṃ cidātmatattvaṃ jagadakhilārtiharaṃ hariṃ prapadye || 26 ||

I take refuge in Hari, the white lotus in the lotus-pond of the three worlds, the foremost lamp against the darkness of delusion, utterly clear, never lifeless, the very truth of consciousness, who removes all the suffering of the world.

मैं हरि की शरण लेता हूँ, जो तीनों लोकों के कमल-सरोवर में खिला श्वेत कमल है, जो भ्रम के अंधकार के विरुद्ध सबसे बड़ा दीपक है, जो पूरी तरह स्पष्ट है, जो कभी निर्जीव नहीं, जो चेतना का सच्चा तत्व है, और जो संसार का सारा दुख दूर करता है।

5.33.27

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति गुणबहुलाभिर्वाग्भिरभ्यर्चितोऽसौ हरिरसुरविनाशः श्रीनिषण्णांसदेशः । जलद इव मयूरं प्रीतिमान्प्रीयमाणं कुवलयदलनीलः प्रत्युवाचासुरेन्द्रम् ॥ २७ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti guṇabahulābhirvāgbhirabhyarcito'sau harirasuravināśaḥ śrīniṣaṇṇāṃsadeśaḥ | jalada iva mayūraṃ prītimānpriyamāṇaṃ kuvalayadalanīlaḥ pratyuvācāsurendram || 27 ||

Sri Vasishtha said: Praised in this way, with words full of his own good qualities, Hari, the destroyer of demons, on whose shoulder Sri rests, dark blue as the petal of a lotus, replied with joy to the happy lord of the demons, the way a cloud answers a peacock.

श्री वसिष्ठ ने कहा: अपने ही गुणों से भरे शब्दों से इस तरह स्तुति किए जाने पर, राक्षसों का नाश करने वाले हरि ने, जिनके कंधे पर श्री विराजमान रहती हैं, जो कमल की पंखुड़ी जैसे नीले हैं, प्रसन्न राक्षस-राजा को खुशी से उत्तर दिया, जैसे बादल मोर को उत्तर देता है।

Chapter 34

5.34.1

श्रीभगवानुवाच । वरं गुणनिधे दैत्यकुलचूडामहामणे । गृहाणाभिमतं भूयो जन्म दुःखोपशान्तये ॥ १ ॥

śrībhagavānuvāca | varaṃ guṇanidhe daityakulacūḍāmahāmaṇe | gṛhāṇābhimataṃ bhūyo janma duḥkhopaśāntaye || 1 ||

Sri Bhagavan said: Choose a boon, treasure of virtues, great jewel in the crown of the demon race. Take whatever birth you wish, so your sorrow may end.

श्री भगवान ने कहा: वर मांग लो, हे गुणों के खजाने, हे दानव कुल के मुकुट के महान मणि। जो जन्म चाहो वह ले लो, ताकि तुम्हारा दुख मिट जाए।

5.34.2

प्रह्लाद उवाच । सर्वसंकल्पफलद सर्वलोकान्तरस्थित । यदुदारतमं वेत्सि तदेवादिश मे विभो ॥ २ ॥

prahlāda uvāca | sarvasaṅkalpaphalada sarvalokāntarasthita | yadudāratamaṃ vetsi tadevādiśa me vibho || 2 ||

Prahlada said: Giver of the fruit of every wish, one who dwells inside every world, tell me whatever you know to be the best. Command it, lord.

प्रह्लाद ने कहा: हे सब इच्छाओं का फल देने वाले, हे सब लोकों के भीतर बसने वाले, जो आप सबसे उत्तम मानते हैं वही मुझे बताइए। वही आज्ञा दीजिए, हे प्रभु।

5.34.3

श्रीभगवानुवाच । सर्वसंभ्रमसंशान्त्यै परमाय फलाय च । ब्रह्मविश्रान्तिपर्यन्तो विचारोऽस्तु तवानघ ॥ ३ ॥

śrībhagavānuvāca | sarvasaṃbhramasamśāntyai paramāya phalāya ca | brahmaviśrāntiparyanto vicāro'stu tavānagha || 3 ||

Sri Bhagavan said: To calm every confusion completely, and for the highest good, let your inquiry, sinless one, carry on until it ends in rest in Brahman.

श्री भगवान ने कहा: हर उलझन को पूरी तरह शांत करने के लिए, और सबसे बड़े फल के लिए, हे निष्पाप, तुम्हारा विचार तब तक चलता रहे जब तक वह ब्रह्म में विश्राम पाकर न रुक जाए।

5.34.4

श्रीवसिष्ठ उवाच । इत्युक्त्वा दितिपुत्रेन्द्रं विष्णुरन्तरधीयत । कृतघर्घरनिर्ह्रादस्तरङ्गस्तोयधेरिव ॥ ४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | ityuktvā ditiputrendraṃ viṣṇurantaradhīyata | kṛtaghargharanirhrādastaraṅgastoyadheriva || 4 ||

Sri Vasishtha said: Having said this to the lord of Diti's sons, Vishnu disappeared, the way a wave of the sea vanishes with a gurgling roar.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह कहकर विष्णु दिति के पुत्रों के स्वामी के सामने से गायब हो गए, जैसे समुद्र की कोई लहर गरगराहट के साथ गायब हो जाती है।

5.34.5

विष्णावन्तर्हिते देवे पूजायां कुसुमाञ्जलिम्। पाश्चात्यं दानवस्त्वक्त्वा मणिरत्नपरिष्कृतम्॥ ५॥

viṣṇāvantarhite deve pūjāyāṃ kusumāñjalim | pāścātyaṃ dānavastvaktvā maṇiratnapariṣkṛtam || 5 ||

When the lord Vishnu had disappeared, the demon set aside the last handful of flowers meant for worship, adorned with jewels and gems,

जब भगवान विष्णु ओझल हो गए, तब उस दानव ने पूजा के लिए बचे हुए फूलों की अंजलि, जो मणियों और रत्नों से सजी थी, अलग रख दी,

5.34.6

पद्मासनस्थोऽतिमुदा ह्युपविश्य वरासनेस्तोत्रपाठविधावन्तश्चिन्तयामास चेतसा॥ ६॥

padmāsanastho'timudā hyupaviśya varāsanestotrapāṭhavidhāvantaścintayāmāsa cetasā || 6 ||

sitting in the lotus pose on a fine seat, full of great joy, during his recitation of hymns of praise, he reflected within his mind:

पद्मासन में बैठकर, एक उत्तम आसन पर बड़े आनंद से विराजमान होकर, स्तोत्र-पाठ के दौरान, उसने मन ही मन विचार किया:

5.34.7

विचारवानेव भवान्भवत्विति भवारिणादेवेनोक्तोऽस्मि तेनान्तः करोम्यात्मविचारणम्॥ ७॥

vicāravāneva bhavānbhavatviti bhavāriṇādevenokto'smi tenāntaḥ karomyātmavicāraṇam || 7 ||

You alone must hold to this inquiry, so I was told by the god who ends worldly existence. So now, within myself, I take up this inquiry into who I am.

तुम बस विचार में ही लगे रहो, ऐसा मुझसे उस देवता ने कहा है जो सांसारिक जीवन का अंत करने वाला है। इसलिए अब मैं अपने भीतर यह विचार करता हूं कि मैं कौन हूं।

5.34.8

किमहं नाम तावत्स्यां योऽस्मिन्भुवनडम्बरेवच्मि गच्छामि तिष्ठामि प्रयत्नेनाहरामि च॥ ८॥

kimahaṃ nāma tāvatsyāṃ yo'sminbhuvanaḍambarevacmi gacchāmi tiṣṭhāmi prayatnenāharāmi ca || 8 ||

First, what indeed am I, the one who, in this whole show of the world, speaks, walks, stands, and works hard to gather things?

पहले यह देखूं कि मैं आखिर हूं कौन, वह जो इस संसार के इस पूरे तमाशे में बोलता है, चलता है, खड़ा रहता है, और मेहनत करके चीजें जुटाता है।

5.34.9

जगत्तावदिदं नाहं सवृक्षतृणपर्वतम्यद्बाह्यमलमत्यन्तं तत्स्यां कथमहं किल॥ ९॥

jagattāvadidaṃ nāhaṃ savṛkṣatṛṇaparvatamyadbāhyamalamatyantaṃ tatsyāṃ kathamahaṃ kila || 9 ||

First of all, I am not this world, with its trees, its grass, and its mountains. How could I possibly be that, which is completely outside me?

सबसे पहले, मैं यह संसार नहीं हूं, इसके पेड़, घास और पहाड़ों समेत। जो पूरी तरह मुझसे बाहर है, वह मैं भला कैसे हो सकता हूं।

5.34.10

असन्नभ्युदितो मूकः पवनैः स्फुरितः क्षणम्कालेनाल्पेन विलयी देहो नाहमचेतनः ॥ १० ॥

asannabhyudito mūkaḥ pavanaiḥ sphuritaḥ kṣaṇamkālenālpena vilayī deho nāhamacetanaḥ || 10 ||

This body was nothing, then it appeared; it is silent, stirred for a moment by its own breath, and it dissolves after a short time. I am not that; it has no awareness.

यह शरीर पहले कुछ नहीं था, फिर प्रकट हुआ; यह गूंगा है, कुछ पल के लिए अपनी सांस से हिलता है, और थोड़ी ही देर में मिट जाता है। मैं वह नहीं हूं; इसमें कोई चेतना नहीं है।

5.34.11

जडया कर्णशष्कुल्या कल्प्यमानः क्षणक्षयी । शून्याकृतिः शून्यभवः शब्दो नाहमचेतनः ॥ ११ ॥

jaḍayā karṇaśaṣkulyā kalpyamānaḥ kṣaṇakṣayī | śūnyākṛtiḥ śūnyabhavaḥ śabdo nāhamacetanaḥ || 11 ||

Sound is shaped by the dull shell of the ear; it dies in an instant, has no shape, and is born out of empty space. I am not that; it has no awareness.

शब्द कान के जड़ खोल से बनता है; यह पल भर में मिट जाता है, इसका कोई आकार नहीं होता, और यह खाली आकाश से जन्म लेता है। मैं वह नहीं हूं; इसमें कोई चेतना नहीं है।

5.34.12

त्वचा क्षणविनाशिन्या प्राप्यमप्राप्यमप्यथ । चित्प्रसादोपलब्धात्मस्पर्शनं नास्म्यचेतनम् ॥ १२ ॥

tvacā kṣaṇavināśinyā prāpyamaprāpyamapyatha | citprasādopalabdhātmasparśanaṃ nāsmyacetanam || 12 ||

Touch is felt or not felt through skin that dies moment by moment; it is known only by the clear light of consciousness. I am not that; it has no awareness of its own.

स्पर्श हर पल मरती हुई त्वचा से महसूस होता है या नहीं होता; यह केवल चेतना के उजाले से जाना जाता है। मैं वह नहीं हूं; इसमें खुद कोई चेतना नहीं है।

5.34.13

बद्धात्मा जिह्वया तुच्छो लोलया लोलसत्तया । स्वल्पस्पन्दो द्रव्यनिष्ठो रसो नाहमचेतनः ॥ १३ ॥

baddhātmā jihvayā tuccho lolayā lolasattayā | svalpaspaṇḍo dravyaniṣṭho raso nāhamacetanaḥ || 13 ||

Taste is tied to the tongue; it is trivial, unsteady, resting on a restless tongue, barely moving, and dependent on matter. I am not that; it has no awareness.

स्वाद जीभ से बंधा है; यह तुच्छ है, अस्थिर है, एक बेचैन जीभ पर टिका है, बहुत कम हिलता है, और पदार्थ पर निर्भर है। मैं वह नहीं हूं; इसमें कोई चेतना नहीं है।

5.34.14

दृश्यदर्शनयोर्लीनं क्षयिक्षणविनाशिनोः । केवले द्रष्टरि क्षीणं रूपं नाहमचेतनम् ॥ १४ ॥

dṛśyadarśanayorlīnaṃ kṣayikṣaṇavināśinoḥ | kevale draṣṭari kṣīṇaṃ rūpaṃ nāhamacetanam || 14 ||

Sight dissolves between the seen thing and the act of seeing, both of which die moment by moment; it fades away when only the seer is left. I am not that; it has no awareness.

दृष्टि दृश्य वस्तु और देखने की क्रिया के बीच घुल-मिल जाती है, और दोनों ही पल-पल में मिट जाते हैं; जब केवल देखने वाला ही बचता है तो यह मिट जाती है। मैं वह नहीं हूं; इसमें कोई चेतना नहीं है।

5.34.15

नासयाप्यन्धजडया क्षयिण्या परिकल्पितः । पेलवोऽनियताकारो गन्धो नाहमचेतनः ॥ १५ ॥

nāsayāpyandhajaḍayā kṣayiṇyā parikalpitaḥ | pelavo'niyatākāro gandho nāhamacetanaḥ || 15 ||

Smell is shaped by the blind, dull nose, which itself dies away; it is faint and has no fixed form. I am not that; it has no awareness.

गंध अंधे और जड़ नाक से बनती है, जो खुद भी नष्ट हो जाती है; यह हल्की है और इसका कोई निश्चित रूप नहीं। मैं वह नहीं हूं; इसमें कोई चेतना नहीं है।

5.34.16

निर्ममोऽमननः शान्तो गतपञ्चेन्द्रियभ्रमः । शुद्धचेतन एवाहं कलाकलनवर्जितः ॥ १६ ॥

nirmamo'mananaḥ śānto gatapañcendriyabhramaḥ | śuddhacetana evāhaṃ kalākalanavarjitaḥ || 16 ||

Free of any sense of mine, free of restless thought, at peace, past the confusion of the five senses, I am pure awareness alone, with no parts and beyond all counting.

मेरे-पराए के भाव से मुक्त, बेचैन विचारों से मुक्त, शांत, और पांचों इंद्रियों के भ्रम से परे, मैं केवल शुद्ध चेतना हूं, जिसका कोई हिस्सा नहीं और जो हर गिनती से परे है।

5.34.17

चेत्यवर्जितचिन्मात्रमहमेषोऽवभासकः । सबाह्याभ्यन्तरव्यापी निष्कलामलसन्मयः ॥ १७ ॥

cetyavarjitacinmātramahameṣo'vabhāsakaḥ | sabāhyābhyantaravyāpī niṣkalāmalasanmayaḥ || 17 ||

I am awareness alone, with nothing left to know; I am the one light that shows up everything, spread through what is outside and what is inside, whole, pure, made of pure being.

मैं केवल चेतना हूं, जिसमें जानने के लिए कुछ बचा ही नहीं; मैं वह एक रोशनी हूं जो सब कुछ दिखाती है, जो बाहर और भीतर हर जगह फैली है, अखंड, निर्मल, और शुद्ध सत्ता से बनी है।

5.34.18

अनेन चेतनेनेमे सर्वे घटपटादयः । सूर्यान्ता अवभास्यन्ते दीपेनोत्तमतेजसा ॥ १८ ॥

anena cetaneneme sarve ghaṭapaṭādayaḥ | sūryāntā avabhāsyante dīpenottamatejasā || 18 ||

By this awareness, all these things, pots and cloths and the rest, up to the sun itself, are lit up, the way a lamp of the finest brightness lights up what is near it.

इसी चेतना से ये सब चीजें, घड़े, कपड़े और आगे सूरज तक, रोशन होती हैं, जैसे सबसे तेज रोशनी वाला दीपक अपने पास की चीजों को रोशन करता है।

5.34.19

आ इदानीं स्मृतं सत्यमेतत्तदखिलं मया । निर्विकल्पचिदाभास एष आत्मास्मि सर्वगः ॥ १९ ॥

ā idānīṃ smṛtaṃ satyametattadakhilaṃ mayā | nirvikalpacidābhāsa eṣa ātmāsmi sarvagaḥ || 19 ||

Just now I have remembered this whole truth: I am this self, the shining of undivided awareness, present everywhere.

अभी-अभी मुझे यह पूरा सत्य याद आया: मैं यही आत्मा हूं, अखंड चेतना की चमक, जो हर जगह मौजूद है।

5.34.20

अनेनैताः स्फुरन्तीह विचित्रेन्द्रियवृत्तयः । तेजसान्तःप्रकाशेन यथाग्निकणपङ्क्तयः ॥ २० ॥

anenaiteāḥ sphurantīha vicitrendriyavṛttayaḥ | tejasāntaḥprakāśena yathāgnikaṇapaṅktayaḥ || 20 ||

By this awareness, and its light shining from within, the many different workings of the senses flare up here, like a shower of sparks flying from a fire.

इसी चेतना से, और उसके भीतर से चमकते प्रकाश से, इंद्रियों की तरह-तरह की क्रियाएं यहां चमक उठती हैं, जैसे आग से चिंगारियों की झड़ी उड़ती है।

5.34.21

अनेनैताः स्फुरन्तीह विचित्रेन्द्रियपङ्क्तयः । सर्वगेन निदाघेन यथा मरुमरीचिकाः ॥ २१ ॥

anenaietāḥ sphurantīha vicitrendriyapaṅktayaḥ | sarvagena nidāghena yathā marumarīcikāḥ || 21 ||

By this same awareness, these many rows of senses flicker here, the way summer heat spread everywhere throws up mirages in a desert.

इसी चेतना से इंद्रियों की ये तरह-तरह की पंक्तियां यहां टिमटिमाती हैं, जैसे चारों ओर फैली गर्मी रेगिस्तान में मृगतृष्णा पैदा करती है।

5.34.22

अनेनैतत्पदार्थानां वस्तुत्वं प्रतिपाद्यते । शुक्लादिगुणवत्त्वं स्वं प्रदीपेनेव वाससाम् ॥ २२ ॥

anenaietatpadārthānāṃ vastutvaṃ pratipādyate | śuklādiguṇavattvaṃ svaṃ pradīpeneveva vāsasām || 22 ||

By this awareness, the very reality of these things is shown, the way a lamp reveals a cloth's own whiteness and its other qualities.

इसी चेतना से इन चीजों की असली सच्चाई सामने आती है, जैसे दीपक कपड़े की अपनी सफेदी और उसके बाकी गुणों को उजागर कर देता है।

5.34.23

असावेव हि भूतानां सर्वेषामेव जाग्रताम् । सर्वानुभवितामूमिरात्मा मुकुरवत्स्थितः ॥ २३ ॥

asāveva hi bhūtānāṃ sarveṣāmeva jāgratām | sarvānubhavitābhūmirātmā mukuravatsthitaḥ || 23 ||

This alone, indeed, is the ground of every experience for all beings that are awake. The self stands there like a mirror.

यही एक तत्व है जो जागते हुए हर प्राणी के हर अनुभव का आधार है। यह आत्मा दर्पण की तरह खड़ी है।

5.34.24

तस्यैकस्याविकल्पस्य चिद्दीपस्य प्रसादतः । उष्णोऽर्कः शिशिरश्चन्द्रो घनोऽद्रिर्विद्रुतं पयः ॥ २४ ॥

tasyaikasyāvikalpasya ciddīpasya prasādataḥ | uṣṇo'rkaḥ śiśiraścandro ghano'drirvidrutaṃ payaḥ || 24 ||

By the grace of that one undivided lamp of awareness, the sun is hot, the moon is cool, the mountain is solid, and water flows.

उस एक, अखंड चेतना रूपी दीपक की कृपा से सूरज गर्म है, चांद ठंडा है, पहाड़ ठोस है, और पानी बहता है।

5.34.25

सातत्येनानुभूतानां सर्वेषां च जगत्स्थितौ । एतत्कारणमाद्यं तत्कारणं नास्य विद्यते ॥ २५ ॥

sātatyenānubhūtānāṃ sarveṣāṃ ca jagatsthitau | etatkāraṇamādyaṃ tatkāraṇaṃ nāsya vidyate || 25 ||

Of everything that is steadily experienced through the whole span of the world's existence, this awareness is the first cause, and this cause itself has no other cause.

दुनिया के टिके रहने के दौरान जो कुछ भी लगातार अनुभव होता है, उस सबका पहला कारण यही चेतना है, और इस कारण का कोई और कारण नहीं है।

5.34.26

सातत्येनानुभूतानां पदार्थानामनेन तत्। पदार्थत्वमुदेत्युच्चैः प्रतापेनेव तप्तता ॥ २६ ॥

sātatyenānubhūtānāṃ padārthānāmanena tat| padārthatvamudetyuccaiḥ pratāpeneveva taptatā || 26 ||

Of the things that are steadily experienced, it is through this awareness that their very being-a-thing rises up strongly, the way heat itself gives things their hotness.

जिन चीजों का लगातार अनुभव होता है, उनका वस्तु होना इसी चेतना से जोरदार ढंग से उभरता है, जैसे गर्मी से ही चीजों में गर्माहट आती है।

5.34.27

अनाकारात्कारणाच्च सर्वकारणकारणात्। एतस्मादिदमुत्पन्नं जगच्चैत्यं हिमादिव ॥ २७ ॥

anākārātkāraṇācca sarvakāraṇakāraṇāt| etasmādidamutpannaṃ jagacchaityaṃ himādiva || 27 ||

From the formless cause, the cause of all causes, this world has come out of it, the way coldness comes out of ice.

उस निराकार कारण से, जो सब कारणों का कारण है, यह जगत उससे निकला है, जैसे बर्फ से ठंडक निकलती है।

5.34.28

ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राणां कारणानां जगत्स्थितौ। एतत्कारणमाद्यं तत्कारणं नास्य विद्यते ॥ २८ ॥

brahmaviṣṇvindrarudrāṇāṃ kāraṇānāṃ jagatsthitau| etatkāraṇamādyaṃ tatkāraṇaṃ nāsya vidyate || 28 ||

Brahma, Vishnu, Indra, and Rudra are themselves causes behind the world's existence, but this awareness is the first cause of all, and this cause has no other cause.

ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और रुद्र खुद जगत के टिके रहने के कारण हैं, पर सबका पहला कारण यही चेतना है, और इस कारण का कोई और कारण नहीं है।

5.34.29

चिच्चेत्यदृष्टदृश्यादिनामभिर्वर्जितात्मने। स्वयं सकृद्विभाताय मह्यमस्मै नमो नमः ॥ २९ ॥

cicchetyadṛṣṭadṛśyādināmabhirvarjitātmane| svayaṃ sakṛdvibhātāya mahyamasmai namo namaḥ || 29 ||

This self of mine is free of names such as consciousness, the seen, the unseen and all the rest. It shines by itself, once and for all. I bow again and again to this self, which is myself.

मेरा यह स्वरूप चेतना, दिखने वाली चीज़, न दिखने वाली चीज़ जैसे सारे नामों से परे है। यह अपने आप ही, हमेशा के लिए, अपने आप में चमकता है। मैं बार-बार इस स्वरूप को प्रणाम करता हूँ, जो असल में मैं खुद ही हूँ।

5.34.30

एतस्मिन्सर्वभूतानि निर्विकल्पचिदात्मनि। गुणभूतानि भूतेशे तिष्ठन्ति विविशन्ति च ॥ ३० ॥

etasmin sarvabhūtāni nirvikalpacidātmani| guṇabhūtāni bhūteśe tiṣṭhanti viviśanti ca || 30 ||

All beings rest in this being, the unchanging self of pure awareness, the lord of all beings. They exist in it as its qualities, staying in it and entering into it.

सारे प्राणी इसी में टिके हैं, यह शुद्ध चेतना का अपरिवर्तनीय स्वरूप है, सब प्राणियों का स्वामी है। वे इसी में इसके गुणों की तरह रहते हैं, इसी में ठहरते हैं और इसी में प्रवेश करते हैं।

5.34.31

यत्किलानेन कलितं चेतनेनान्तरात्मना । तत्तद्भवति सर्वत्र नेतरत्सदपि स्थितम् ॥ ३१ ॥

yatkilānena kalitaṃ cetanenāntarātmanā | tattadbhavati sarvatra netaratsadapi sthitam || 31 ||

Whatever this conscious inner self conceives, that alone becomes real everywhere. Nothing else exists, even if it looks as though it is there.

यह चेतन भीतरी स्वरूप जो कुछ भी सोचता है, वही हर जगह सच बन जाता है। बाकी कुछ भी नहीं है, चाहे वह वहाँ मौजूद दिखे भी।

5.34.32

यच्चिता कलितं किंचित्तदाप्नोति निजं पदम् । यच्चिताकलितं नेह तत्सदप्यन्तमागतम् ॥ ३२ ॥

yaccitā kalitaṃ kiṃcittadāpnoti nijaṃ padam | yaccitākalitaṃ neha tatsadapyantamāgatam || 32 ||

Whatever awareness conceives reaches its own true place. Whatever awareness does not conceive comes, here, to nothing at all, even if it seems to exist.

चेतना जिसे सोचती है, वह अपनी सच्ची जगह पा लेता है। चेतना जिसे नहीं सोचती, वह यहाँ कुछ भी नहीं रह जाता, चाहे वह मौजूद दिखता भी हो।

5.34.33

इमे घटपटाकाराः पदार्थशतपङ्क्तयः । जागत्यो विपुलादर्शे ह्यस्मिन्व्योमनि बिम्बिताः ॥ ३३ ॥

ime ghaṭapaṭākārāḥ padārthaśatapaṅktayaḥ | jāgatyo vipulādarśe hyasminvyomani bimbitāḥ || 33 ||

Things like pots and cloth, and all the hundreds of rows of things that make up the world, are only reflections. They appear in this vast mirror, in this sky of awareness.

घड़े और कपड़े जैसी चीज़ें, और दुनिया बनाने वाली सैकड़ों तरह की चीज़ें, सब बस प्रतिबिंब हैं। ये इसी विशाल आईने में, इसी चेतना के आकाश में दिखाई देती हैं।

5.34.34

एतद्वृद्धं वृद्धतरे क्षयि क्षयिणि जायते । पदार्थे सदसच्चापि प्रतिबिम्बार्कवत्स्थितम् ॥ ३४ ॥

etadvṛddhaṃ vṛddhatare kṣayi kṣayiṇi jāyate | padārthe sadasaccāpi pratibimbārkavatsthitam || 34 ||

This world grows when the thing it appears in grows, and it fades when that thing fades. It stands in every object, real or not, the way the sun's reflection stands in water.

यह दुनिया तब बढ़ती है जब वह चीज़ बढ़ती है जिसमें यह दिखती है, और तब घटती है जब वह चीज़ घटती है। यह हर चीज़ में, चाहे वह सच हो या झूठ, वैसे ही टिकी रहती है जैसे सूरज का प्रतिबिंब पानी में टिका रहता है।

5.34.35

अदृश्यं सर्वभूतानां प्राप्यं गलितचेतसाम् । एतत्तद्दृश्यते सद्भिः परं व्योमातिनिर्मलम् ॥ ३५ ॥

adṛśyaṃ sarvabhūtānāṃ prāpyaṃ galitacetasām | etattaddṛśyate sadbhiḥ paraṃ vyomātinirmalam || 35 ||

No being can see this. Only those whose minds have melted away can reach it. This supreme, utterly pure space is seen only by the wise.

इसे कोई भी प्राणी देख नहीं सकता। इसे केवल वे ही पा सकते हैं जिनका मन पूरी तरह गल चुका है। इस परम, बिलकुल शुद्ध आकाश को केवल ज्ञानी लोग ही देख पाते हैं।

5.34.36

इयमभ्युदयं याति नानादृश्यसुमञ्जरी । आचारचञ्चरीकाढ्या एतस्मात्कारणद्रुमात् ॥ ३६ ॥

iyamabhyudayaṃ yāti nānādṛśyasumañjarī | ācāracañcarīkāḍhyā etasmātkāraṇadrumāt || 36 ||

The many things we see are like a bunch of flowers, crowded with bees which are our everyday actions. This flower cluster grows out from the tree that is the cause of everything.

हमें दिखने वाली ये अनेक चीज़ें फूलों के एक गुच्छे जैसी हैं, जिस पर हमारे रोज़ के काम-काज रूपी भँवरे भरे हुए हैं। यह फूलों का गुच्छा उस पेड़ से निकलता है जो सबका कारण है।

5.34.37

अस्मादियमुदेत्युच्चैः संसाररचनाचला । विचित्रतरुगुल्माढ्या शैलादिव वनावली ॥ ३७ ॥

asmādiyamudetyuccaiḥ saṃsāraracanācalā | vicitrataruguLmāḍhyā śailādiva vanāvalī || 37 ||

Out of this rises the whole structure of the world, tall and unmoving, full of many kinds of trees and bushes, the way a stretch of forest rises up from a mountain.

इसी से यह पूरी दुनिया की बनावट ऊँची और अडिग खड़ी होती है, जो तरह-तरह के पेड़ों और झाड़ियों से भरी है, जैसे किसी पहाड़ से जंगलों की कतार उठ खड़ी होती है।

5.34.38

सर्वेषामविभिन्नोऽसौ त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् । ब्रह्मादीनां तृणान्तानां चिदात्मा संप्रकाशकः ॥ ३८ ॥

sarveṣāmavibhinno'sau trailokyodaravartinām | brahmādīnāṃ tṛṇāntānāṃ cidātmā saṃprakāśakaḥ || 38 ||

This awareness, the light that lights up everything, is not separate from anyone living in the three worlds, from Brahma down to a blade of grass. It is the same in all of them.

यह चेतना, जो सबको रोशन करने वाली रोशनी है, तीनों लोकों में रहने वाले किसी से भी अलग नहीं है, ब्रह्मा से लेकर घास के एक तिनके तक। यह सबमें एक जैसी है।

5.34.39

एकोऽसावहमाद्यन्तरहितः सर्वगाकृतिः । चराचराणां भूतानामन्तः स्वानुभवः स्थितः ॥ ४० ॥

eko'sāvahamādyantarahitaḥ sarvagākṛtiḥ | carācarāṇāṃ bhūtānāmantaḥ svānubhavaḥ sthitaḥ || 40 ||

I am that one being, with no beginning and no end, whose form reaches everywhere. I am present inside every being, moving or still, as the very experience each of them has of itself.

मैं वही एक हूँ, जिसका न कोई आरंभ है न अंत, जिसका रूप हर जगह फैला है। मैं हर प्राणी के भीतर, चाहे वह चलता हो या स्थिर हो, उसके अपने ही अनुभव के रूप में मौजूद हूँ।

5.34.40

अस्य तस्य ममेमानि स्थावराणि चराणि च । परिसंख्यादिहीनानि शरीराणि बहूनि च ॥ ४१ ॥

asya tasya mamemāni sthāvarāṇi carāṇi ca | parisaṃkhyādihīnāni śarīrāṇi bahūni ca || 41 ||

All these bodies, moving and still, that people call his, or that one's, or mine, every one of them, more than can be counted, is really mine.

चलने वाले और स्थिर, ये सारे शरीर, जिन्हें लोग उसका, उस दूसरे का या मेरा कहते हैं, इनमें से हर एक, जो गिने नहीं जा सकते, असल में मेरे ही हैं।

5.34.41

एकोऽसावनुभूत्यात्मा स्वानुभूतिवशात्स्वयम् । सर्वदृग्द्रष्टृदृश्यत्वात्सहस्रकरलोचनः ॥ ४१ ॥

eko'sāvanubhūtyātmā svānubhūtivaśātsvayam | sarvadṛgdṛṣṭṛdṛśyatvātsahasrakaralocanaḥ || 41 ||

That one alone is the self behind every experience, known only through its own experience, by itself. Because it is the one who sees everything, and is both the seer and the thing seen, it is called the one with a thousand hands and a thousand eyes.

वह एक ही हर अनुभव के पीछे का स्वरूप है, जिसे केवल अपने ही अनुभव से, अपने आप से जाना जाता है। क्योंकि वही सबको देखने वाला है, और देखने वाला भी वही है और दिखने वाली चीज़ भी वही है, इसलिए उसे हज़ार हाथों और हज़ार आँखों वाला कहा जाता है।

5.34.42

एषोऽसावहमाकाशे सूर्यदेहेन चारुणा । विहरामीतरेणापि वायुदेहेन वायुना ॥ ४२ ॥

eṣo'sāvahamākāśe sūryadehena cāruṇā | viharāmītareṇāpi vāyudehena vāyunā || 42 ||

I am the one who moves through the sky wearing the bright body of the sun, and I also move as the wind, wearing the body of the wind.

मैं वही हूँ जो सूरज के सुंदर शरीर में आकाश में घूमता है, और मैं ही हवा के शरीर में हवा बनकर भी घूमता हूँ।

5.34.43

ममैतद्वपुरानीलं शङ्खचक्रगदाधरम् । सर्वसौभाग्यसीमान्तं ह्यस्मिञ्जगति वल्गति ॥ ४३ ॥

mamaitadvapurānīlaṃ śaṅkhacakragadādharam | sarvasaubhāgyasīmāntaṃ hyasmiñjagati valgati || 43 ||

I also have this dark blue body, carrying a conch shell, a discus and a mace. It is the most beautiful and fortunate of forms, and it moves about in this world.

मेरा यह गहरे नीले रंग का शरीर भी है, जो शंख, चक्र और गदा धारण किए है। यह सबसे सुंदर और सौभाग्यशाली रूप है, और यह इस दुनिया में घूमता-फिरता है।

5.34.44

अहमस्मिन्समुद्भूतः पद्मासनगतः सदा । निर्विकल्पसमाधिस्थः परां निर्वृतिमागतः ॥ ४४ ॥

ahamasmin samudbhūtaḥ padmāsanagataḥ sadā | nirvikalpasamādhisthaḥ parāṃ nirvṛtimāgataḥ || 44 ||

I am also the one born here, always seated on a lotus, deep in unbroken meditation, who has reached the highest peace.

मैं ही वह भी हूँ जो यहाँ जन्मा है, जो हमेशा कमल पर बैठा रहता है, जो बिना किसी विकल्प वाली गहरी समाधि में स्थित है, और जिसने सबसे ऊँची शांति पा ली है।

5.34.45

अहं त्रिनेत्रयाऽऽकृत्या गौरीवक्त्राब्जषट्पदः । सर्गान्ते संहरामीदं कूर्मोऽङ्गपटलं यथा ॥ ४५ ॥

ahaṃ trinetrayā'kṛtyā gaurīvaktrābjaṣaṭpadaḥ | sargānte saṃharāmīdaṃ kūrmo'ṅgapaṭalaṃ yathā || 45 ||

I am also the three-eyed one, always close to Gauri's lotus face like a bee. At the end of each creation I pull this world back into myself, the way a tortoise draws its limbs back into itself.

मैं ही वह तीन आँखों वाला भी हूँ, जो गौरी के कमल जैसे मुख के पास भँवरे की तरह रहता है। हर सृष्टि के अंत में मैं इस दुनिया को अपने भीतर समेट लेता हूँ, जैसे कछुआ अपने अंग अपने भीतर समेट लेता है।

5.34.46

अहमिन्द्रेण रूपेण त्रिलोकीमखिलामिमाम् । पालयामि क्रमप्राप्तां मठिकामिव तापसः ॥ ४६ ॥

ahamindreṇa rūpeṇa trilokīmakhilāmimām | pālayāmi kramaprāptāṃ maṭhikāmiva tāpasaḥ || 46 ||

I am also Indra, and in that form I take care of this whole world of three realms, which has come to me in its proper turn, the way a hermit takes care of the hut he has been given.

मैं ही इंद्र भी हूँ, और उस रूप में मैं तीनों लोकों की इस पूरी दुनिया की देखभाल करता हूँ, जो अपनी बारी पर मुझे मिली है, जैसे कोई तपस्वी अपनी कुटिया की देखभाल करता है।

5.34.47

स्त्रीपुमानहमेवैतत्कुमारो ह्यहमित्यपि । जीर्णोऽहं देहधारित्वाज्जातोऽहं विश्वतोमुखः ॥ ४७ ॥

strīpumānahamevaitatkumāro hyahamityapi | jīrṇo'haṃ dehadhāritvājjāto'haṃ viśvatomukhaḥ || 47 ||

I am both the woman and the man. I am also the child. Because I carry a body, I am the old man too. I am the one who takes birth, with faces turned every way.

मैं ही स्त्री हूँ और मैं ही पुरुष भी हूँ। मैं ही बच्चा भी हूँ। शरीर धारण करने के कारण मैं ही बूढ़ा भी हूँ। मैं ही वह हूँ जो जन्म लेता है, जिसके मुख हर दिशा में हैं।

5.34.48

अहं तृणलतागुल्मजालं रसतया स्थितः । उत्थापयामि चिद्भूमेः कूपोऽन्तरलतामिव ॥ ४८ ॥

ahaṃ tṛṇalatāgulmajālaṃ rasatayā sthitaḥ | utthāpayāmi cidbhūmeḥ kūpo'ntaralatāmiva || 48 ||

I am the sap inside grass, vines and bushes, and through that sap I raise up this whole tangle of plants from the ground of awareness, the way a well makes a vine near it grow up.

मैं घास, बेलों और झाड़ियों के भीतर रस के रूप में रहता हूँ, और उसी रस से मैं चेतना की इस धरती से पौधों का यह पूरा जाल ऊपर उठाता हूँ, जैसे एक कुआँ अपने पास की बेल को ऊपर उठा देता है।

5.34.49

स्वलीलार्थमिदं चारु जगदाडम्बरं ततम् । मयाभिजातबालेन पङ्ककीडनकं यथा ॥ ४९ ॥

svalīlārthamidaṃ cāru jagadāḍambaraṃ tatam | mayābhijātabālena paṅkakrīḍanakaṃ yathā || 49 ||

I have spread out this whole beautiful, grand world only for my own play, the way a child from a good family makes a little toy out of mud, just to play.

मैंने यह पूरी सुंदर और भव्य दुनिया केवल अपने खेल के लिए फैलाई है, जैसे किसी अच्छे घर का बच्चा खेलने के लिए मिट्टी का एक छोटा सा खिलौना बना लेता है।

5.34.50

मयेदमाप्यते सर्वं सत्ता मां प्राप्य गच्छति । मत्परित्यक्तमेतच्च सदप्येव न किंचन ॥ ५० ॥

mayedamāpyate sarvaṃ sattā māṃ prāpya gacchati | matparityaktametacca sadapyeva na kiṃcana || 50 ||

Everything reaches its existence through me. A thing becomes real only by reaching me. And anything I let go of is nothing at all, even if it seems to exist.

हर चीज़ का अस्तित्व मेरे ही ज़रिए है। कोई चीज़ तभी सच बनती है जब वह मुझ तक पहुँचती है। और जिस चीज़ को मैं छोड़ देता हूँ, वह कुछ भी नहीं है, चाहे वह मौजूद दिखती भी हो।

5.34.51

मयि स्फारे चिदादर्शे प्रतिबिम्बं यदागतम्। तदस्ति नेतरद्यस्मान्मत्तोऽन्यन्नेह विद्यते ॥ ५१ ॥

mayi sphāre cidādarśe pratibimbaṃ yadāgatam | tadasti netaradyasmānmattonanyanneha vidyate || 51 ||

I am like a huge mirror made of awareness. Whatever reflection shows up in me is what exists, nothing else does, because apart from me nothing else is here at all.

मैं चेतना का एक विशाल आईना हूँ। मुझमें जो भी प्रतिबिंब दिखाई देता है, वही सच में मौजूद है, बाकी कुछ नहीं, क्योंकि मेरे अलावा यहाँ और कुछ है ही नहीं।

5.34.52

कुसुमेष्वहमामोदः पुष्पपत्रेष्वहं छविः। छविष्वहं रूपकला रूपेष्वनुभवोऽप्यहम् ॥ ५२ ॥

kusumeṣvahamāmodaḥ puṣpapatreṣvahaṃ chaviḥ | chaviṣvahaṃ rūpakalā rūpeṣvanubhavo'pyaham || 52 ||

I am the scent inside flowers. I am the color inside their petals. I am the beauty of the shape within that color. And I am also the feeling of seeing that shape.

मैं फूलों के भीतर की खुशबू हूँ। मैं उनकी पंखुड़ियों के भीतर का रंग हूँ। मैं उस रंग के भीतर की आकृति की सुंदरता हूँ। और मैं ही उस आकृति को देखने का अनुभव भी हूँ।

5.34.53

यद्यत्किंचिदिदं दृश्यं जगत्स्थावरजङ्गमम्। सर्वसंकल्परहितं तच्चित्तत्त्वमहं परम् ॥ ५३ ॥

yadyatkiṃcididaṃ dṛśyaṃ jagatsthāvarajaṅgamam | sarvasaṃkalparahitaṃ taccittattvamahaṃ param || 53 ||

Whatever this visible world is, everything in it, moving or still, untouched by any thought, that reality of pure awareness is me, the highest one.

यह दिखने वाली दुनिया जो कुछ भी है, इसमें जो कुछ भी है, चाहे वह चलता हो या स्थिर हो, किसी भी विचार से अछूता, वही शुद्ध चेतना की सच्चाई मैं हूँ, वह सबसे ऊँचा।

5.34.54

आद्या रसमयी शक्ती रसौघो विस्तृतो यया। सा यथा दारुकुड्येषु तथाहं सर्ववस्तुषु ॥ ५४ ॥

ādyā rasamayī śaktī rasaugho vistṛto yayā | sā yathā dārukuḍyeṣu tathāhaṃ sarvavastuṣu || 54 ||

There is an original power made of sap that spreads the flow of sap through a tree, and that same power stays even in wooden walls made from that tree. In the same way, I am present in everything there is.

एक मूल शक्ति है जो रस से बनी है, जिससे पेड़ में रस का प्रवाह फैलता है, और वही शक्ति उस पेड़ से बनी लकड़ी की दीवारों में भी बनी रहती है। उसी तरह मैं हर चीज़ में मौजूद हूँ।

5.34.55

परमां तामहं सर्वपदार्थान्तरवर्तिताम्। उपेत्य संविद्वैचित्र्यं प्रतनोमि स्वयेच्छया ॥ ५५ ॥

paramāṃ tāmahaṃ sarvapadārthāntaravartitām | upetya saṃvidvaicitryaṃ pratanoami svayecchayā || 55 ||

I reach that highest state, present deep inside every single thing, and from there, by my own will, I spread out all the different kinds of experience there are.

मैं उस सबसे ऊँची अवस्था तक पहुँचता हूँ, जो हर एक चीज़ के भीतर गहरे में मौजूद है, और वहाँ से, अपनी ही इच्छा से, मैं अनुभव की सारी अलग-अलग तरहें फैलाता हूँ।

5.34.56

घृतं यथान्तः पयसो रसशक्तिर्यथा जले । चिच्छक्तिः सर्वभावेषु तथान्तरहमास्थितः ॥ ५६ ॥

ghṛtaṃ yathāntaḥ payaso rasaśaktiryathā jale | cicchaktiḥ sarvabhāveṣu tathāntarahamāsthitaḥ || 56 ||

The way ghee lies hidden inside milk, and the way the power of taste lies hidden inside water, in that same way I lie hidden inside everything, as the power of awareness.

जैसे घी दूध के भीतर छिपा रहता है, और जैसे स्वाद की शक्ति पानी के भीतर छिपी रहती है, ठीक उसी तरह मैं चेतना की शक्ति बनकर हर चीज़ के भीतर छिपा रहता हूँ।

5.34.57

इदं जगत्त्रिकालस्थं चिति मध्ये च संस्थितम् । चेत्योपचाररहितं वस्तुजातमिवावनौ ॥ ५७ ॥

idaṃ jagattrikālasthaṃ citi madhye ca saṃsthitam | cetyopacārarahitaṃ vastujātamivāvanau || 57 ||

This world exists in the past, the present and the future, and it rests inside awareness. To call it a separate thing that awareness looks at is only a manner of speaking. It is like this: many objects simply rest on the ground.

यह दुनिया भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों में मौजूद है, और यह चेतना के भीतर ही टिकी है। इसे चेतना से अलग, देखी जाने वाली कोई चीज़ कहना बस बोलने का एक तरीका भर है। बात बस इतनी है कि जैसे बहुत सी चीज़ें ज़मीन पर बस टिकी रहती हैं।

5.34.58

भरिताशेषदिक्कुक्षिस्त्यक्तसंकोचविभ्रमः । सर्वस्थः सर्वकर्ता च विराट् सम्राडहं स्थितः ॥ ५८ ॥

bharitāśeṣadikkukṣistyaktasaṃkocavibhramaḥ | sarvasthaḥ sarvakartā ca virāṭ samrāḍahaṃ sthitaḥ || 58 ||

All directions fill my belly, with nothing left outside it; I have dropped the illusion of being small. I am present everywhere, I am the doer of everything; I stand here as the vast being that fills the universe, its sovereign ruler.

सारी दिशाएँ मेरे पेट में समा गई हैं, कुछ भी बाहर नहीं बचा; मैंने छोटा होने का भ्रम छोड़ दिया है। मैं हर जगह मौजूद हूँ, मैं ही सब कुछ करने वाला हूँ; मैं यहाँ उस विशाल सत्ता के रूप में खड़ा हूँ जो पूरे ब्रह्मांड को भरती है, उसका सम्राट।

5.34.59

अपूर्वमनिबद्धेन्द्रमशस्त्रदलितामरम् । अप्रार्थितं मे संप्राप्तं जगद्राज्यमिदं ततम् ॥ ५९ ॥

apūrvamanibaddhendramśastradalitāmaram | aprārthitaṃ me saṃprāptaṃ jagadrājyamidaṃ tatam || 59 ||

This unprecedented kingdom of the whole world has come to me though I never sought it - a kingdom unbound by Indra, one where even the immortals were crushed without any weapon, and it stretches out everywhere.

यह अभूतपूर्व विश्व-राज्य मुझे बिना माँगे मिल गया है - ऐसा राज्य जो इंद्र के अधीन नहीं है, जिसमें देवता भी बिना किसी हथियार के हार गए, और जो चारों ओर फैला हुआ है।

5.34.60

अहो नु विततात्मास्मि न माम्यप्यात्मनात्मनि । कल्पान्तपवनाधूत एकार्णव इवार्णवे ॥ ६० ॥

aho nu vitatātmāsmi na māmyapyātmanātmani | kalpāntapavanādhūta ekārṇava ivārṇave || 60 ||

How vast I have become! I cannot find my own limit within myself - like the single ocean of the great dissolution, stirred by that final wind, surging within the ocean itself.

मैं कितना विशाल हो गया हूँ! मैं अपने भीतर ही अपनी कोई सीमा नहीं पाता - जैसे प्रलय की वह एक ही समुद्र, आख़िरी आँधी से हिलकर, समुद्र के भीतर ही उमड़ता है।

5.34.61

नात्मन्यन्तमवाप्नोमि स्वस्थेऽन्तः स्वदिते स्वयम्। क्षीरवारिनिधौ पङ्गुः सरीसृप इव स्फुरन्॥ ६१॥

nātmanyantamavāpnomi svasthe'ntaḥ svadite svayam | kṣīravārinidhau paṅguḥ sarīsṛpa iva sphuran || 61 ||

I find no end within myself, resting inside myself, tasting myself - like a crippled, crawling creature stirring in an ocean of milk.

मैं अपने भीतर ही कोई अंत नहीं पाता, अपने भीतर टिका हुआ, अपने आप को चखता हुआ - जैसे कोई लंगड़ा, रेंगने वाला जीव दूध के समुद्र में हिल रहा हो।

5.34.62

स्वल्पेयं मठिका ब्राह्मी जगन्नाम्नी सुसंकटा। गजो बिल्व इव स्वाङ्गे न माति विपुलं वपुः॥ ६२॥

svalpeyaṃ maṭhikā brāhmī jagannāmnī susaṃkaṭā | gajo bilva iva svāṅge na māti vipulaṃ vapuḥ || 62 ||

This little room, made by Brahma and named "the world," is too small and cramped for me - like an elephant that cannot fit its huge body into a bilva fruit.

ब्रह्मा की बनाई यह छोटी सी कोठरी, जिसे "जगत" कहते हैं, बहुत तंग है - जैसे कोई हाथी अपने विशाल शरीर को बेल के फल में नहीं समा पाता, वैसे ही मैं इसमें नहीं समाता।

5.34.63

विरिञ्चिभवनात्पारे तत्त्वान्तेऽप्याहरत्पदम्। प्रसरत्येव मे रूपमद्यापि न निवर्तते॥ ६३॥

viriñcibhavanātpāre tattvānte'pyāharatpadam | prasaratyeva me rūpamadyāpi na nivartate || 63 ||

Beyond Brahma's own world, even past the last of all things, it has planted its foot; my form keeps spreading on and on - even now it does not stop.

ब्रह्मा के लोक से भी परे, सारे तत्वों के अंत तक, इसने अपना कदम रखा है; मेरा रूप बस फैलता ही जाता है - आज भी यह रुकता नहीं।

5.34.64

अयं नामाहमित्यन्तः कुतो निरवलम्बना। अपर्यन्ताकृतेरेषा किलासीत्स्वल्पता मम॥ ६४॥

ayaṃ nāmāhamityantaḥ kuto niravalambanā | aparyantākṛter eṣā kilāsītsvalpatā mama || 64 ||

This "I" within me - where does it find any ground to stand on, since it has none? My true shape has no limit at all; yet, it seems, this smallness of mine really did exist.

मेरे भीतर जो यह "मैं" है, उसे कोई सहारा नहीं है - तो यह आया कहाँ से? मेरा असली रूप तो असीम है; फिर भी लगता है कि मेरा यह छोटापन कभी सच में था।

5.34.65

भवानयमयं चाहमिति मिथ्यैव विभ्रमः। कोदेहः कोऽप्यदेहो वा को मृतः कश्च जीवति॥ ६५॥

bhavānayamayaṃ cāhamiti mithyaiva vibhramaḥ | kodehaḥ ko'pyadeho vā ko mṛtaḥ kaśca jīvati || 65 ||

"You are this person" and "I am this person" - that is only a mistaken idea. Who really has a body, who has none, who has died, and who is alive?

"तुम यह हो" और "मैं यह हूँ" - यह बस एक झूठा भ्रम है। सच में शरीर किसका है, बिना शरीर के कौन है, मरा कौन है, और जीता कौन है?

5.34.66

वराकाः पेलवधियो बभूवुर्मे पितामहाः। ये साम्राज्यमिदं त्यक्त्वा रेमिरे भवभूमिषु ॥ ६६ ॥

varākāḥ pelavadhiyo babhūvurme pitāmahāḥ| ye sāmrājyamidaṃ tyaktvā remire bhavabhūmiṣu || 66 ||

My forefathers were pitiful, weak in mind - they gave up this great kingdom and went off to enjoy themselves in the lands of ordinary worldly life.

मेरे पूर्वज बेचारे और कमज़ोर बुद्धि वाले थे - उन्होंने इस महान राज्य को छोड़कर सांसारिक जीवन में मौज-मस्ती की।

5.34.67

क्वेयं किल महादृष्टिर्भरिता ब्रह्मबृंहिता। क्व सरीसृपभीमाशा भीमा राज्यविभूतिभिः ॥ ६७ ॥

kveyam kila mahādṛṣṭirbharitā brahmabṛṃhitā| kv sarīsṛpabhīmāśā bhīmā rājyavibhūtibhiḥ || 67 ||

Where indeed is this great vision, so full, so expanded by the ultimate reality? And where is that fearsome, crawling craving that the powers of kingship make so terrible?

कहाँ है यह महान दृष्टि, जो पूर्ण है, जो परम सत्य से इतनी विस्तृत हो गई है? और कहाँ है वह रेंगने वाली, डरावनी लालसा, जिसे राज्य की शक्तियाँ इतना भयानक बना देती हैं?

5.34.68

अनन्तानन्दसंभोगा परोपशमशालिनी। शुद्धेयं चिन्मयी दृष्टिजयत्यखिलदृष्टिषु ॥ ६८ ॥

anantānandasaṃbhogā paropaśamaśālinī| śuddheyaṃ cinmayī dṛṣṭijayatyakhiladṛṣṭiṣu || 68 ||

This pure vision, made of consciousness, holds endless bliss and supreme peace - it wins out over every other way of seeing.

यह शुद्ध दृष्टि, जो चेतना से बनी है, अनंत आनंद और परम शांति से भरी है - यह हर दूसरी दृष्टि पर भारी पड़ती है।

5.34.69

सर्वभावान्तरस्थाय चेत्यमुक्तचिदात्मने। प्रत्यक्चेतनरूपाय मह्यमेव नमो नमः ॥ ६९ ॥

sarvabhāvāntarasthāya cetayamuktacidātmane| pratyakcetanarūpāya mahyameva namo namaḥ || 69 ||

Salutations, salutations to myself alone - to the one who lives inside every being, whose conscious self is never an object seen by another, whose true form is awareness turned inward.

मुझे ही बार-बार प्रणाम - जो हर प्राणी के भीतर बसा है, जिसकी चेतना कभी किसी और की देखी हुई चीज़ नहीं बनती, जिसका असली रूप भीतर की ओर मुड़ी हुई चेतना है।

5.34.70

जयाम्यहमजो जातो जीर्णसंसारसंसृतिः। प्राप्तप्राप्यो महात्मायं जीवामि च जयामि च ॥ ७० ॥

jayāmyahamajo jāto jīrṇasaṃsārasaṃsṛtiḥ| prāptaprāpyo mahātmāyaṃ jīvāmi ca jayāmi ca || 70 ||

I win - I who am unborn, yet born, the one for whom this worn-out cycle of rebirth is finished. This great self has reached everything worth reaching; I live, and I win.

मैं जीतता हूँ - मैं जो बिना जन्म के भी जन्मा हूँ, वह जिसके लिए यह घिसा-पिटा जन्म-मरण का चक्र ख़त्म हो चुका है। इस महात्मा ने वह सब पा लिया है जो पाने लायक था; मैं जीता हूँ और मैं जीतता हूँ।

5.34.71

इदमुत्तमसाम्राज्यं बोधं संत्यज्य शाश्वतम्। न रमेऽहमरम्यासु राज्यदुःखविभूतिषु ॥ ७१ ॥

idamuttamasāmrājyaṃ bodhaṃ saṃtyajya śāśvatam | na rame'hamaramyāsu rājyaduḥkhavibhūtiṣu || 71 ||

I will not give up this supreme, everlasting kingdom of awakening, to enjoy the sorrowful, unpleasant riches of an earthly kingdom.

मैं जागृति के इस सबसे ऊँचे, सदा रहने वाले राज्य को छोड़कर सांसारिक राज्य के उन दुखद, अप्रिय वैभवों में नहीं रमूँगा।

5.34.72

दारुवारिदृषन्मात्रे लुलितो यो धरातले। धिग्वराकमनात्मज्ञं तं कुदानवकीटकम् ॥ ७२ ॥

dāruvāridṛṣanmātre lulito yo dharātale | dhigvarākamanātmajñaṃ taṃ kudānavakīṭakam || 72 ||

Shame on that pitiful, self-ignorant creature - that miserable worm of a demon - who rolled about on the ground fighting over mere wood, water, and stone!

धिक्कार है उस बेचारे, आत्म-अज्ञानी पर - उस तुच्छ राक्षस-कीड़े पर - जो सिर्फ़ लकड़ी, पानी और पत्थर के लिए ज़मीन पर लोटता रहा!

5.34.73

अविद्यैकात्मभिर्द्रव्यैरविद्यामयमङ्गकम्। अज्ञेन संतर्पयता किं नाम गुरुणा कृतम् ॥ ७३ ॥

avidyaiakātmabhirdravyairavidyāmayamaṅgakam | ajñena saṃtarpayatā kiṃ nāma guruṇā kṛtam || 73 ||

Feeding a body made of ignorance with things that are nothing but ignorance, that ignorant man kept satisfying it - but what, tell me, did this so-called great man actually get?

अज्ञान से बने शरीर को अज्ञान से बनी चीज़ों से खिलाते-पिलाते हुए, उस अज्ञानी ने बस उसे तृप्त करने में समय बिताया - पर बताओ, इस तथाकथित महान आदमी ने आख़िर पाया क्या?

5.34.74

वर्षाणि कतिचित्प्राप्य जगच्छ्रीमठिकामिमाम्। किं नाम प्रापदुचितं हिरण्यकशिपुः किल ॥ ७४ ॥

varṣāṇi katicitprāpya jagacchrīmaṭhikāmimām | kiṃ nāma prāpaducitaṃ hiraṇyakaśipuḥ kila || 74 ||

Hiranyakashipu got hold of this cramped little room called the world's glory for a few years - but what did he really gain that was worth having?

हिरण्यकशिपु को भी संसार की इस तथाकथित शानदार, पर तंग कोठरी में कुछ ही वर्ष मिले - पर सच बताओ, उसने आख़िर ऐसा क्या पाया जो सच में काम का हो?

5.34.75

अनास्वाद्येदमानन्दं जगद्राज्यशतान्यपि। समास्वादयता नेह किंचिदास्वादितं भवेत् ॥ ७५ ॥

anāsvādyedamānandaṃ jagadrājyaśatānyapi | samāsvādayatā neha kiṃcidaāsvāditaṃ bhavet || 75 ||

If a person has not tasted this joy, then even after tasting hundreds of world-kingdoms, he would still have tasted nothing at all.

अगर किसी ने इस आनंद को नहीं चखा, तो सैकड़ों संसार के राज्यों को चखकर भी उसने असल में कुछ भी नहीं चखा।

5.34.76

न किंचिद्येन संप्राप्तं तेनेदं परमामृतम्। संप्राप्यान्तः प्रपूर्णेन सर्वं प्राप्तमखण्डितम्॥ ७६॥

na kiṃcidyena saṃprāptaṃ tenedaṃ paramāmṛtam | saṃprāpyāntaḥ prapūrṇena sarvaṃ prāptamakhṇḍitam || 76 ||

The one who has gained nothing in the world - he is the one who has truly gained this highest nectar. Once he has it, filled within, he has gained everything, complete and undivided.

जिसने दुनिया में कुछ भी नहीं पाया, असल में उसी ने यह सबसे बड़ा अमृत पाया है। इसे पाकर, भीतर से पूरी तरह भरकर, उसने सब कुछ पा लिया है, पूरा और अखंड।

5.34.77

त्यक्त्वा पदमिदं मूर्खो मितमेति न पण्डितः। उष्ट्रो हि त्यक्तसुलतः कण्टकं याति नेतरः॥ ७७॥

tyaktvā padamidaṃ mūrkho mitameti na paṇḍitaḥ | uṣṭro hi tyaktasulataḥ kaṇṭakaṃ yāti netaraḥ || 77 ||

A fool leaves this state and settles for something small; a wise man never does. Only a camel gives up a good, sweet vine and turns to a thorn - no other creature does that.

मूर्ख इस स्थिति को छोड़कर किसी छोटी-सी चीज़ पर संतोष कर लेता है; बुद्धिमान ऐसा कभी नहीं करता। ऊँट ही होता है जो अच्छी, मीठी बेल छोड़कर काँटे की ओर मुड़ता है - कोई और जानवर ऐसा नहीं करता।

5.34.78

परां दृष्टिमिमां त्यक्त्वा दग्धराज्ये रमेत कः। कस्त्यक्त्वेक्षुरसं प्राज्ञः कटु निम्बपयः पिबेत्॥ ७८॥

parāṃ dṛṣṭimimāṃ tyaktvā dagdharājye rameta kaḥ | kastyaktvekṣurasaṃ prājñaḥ kaṭu nimbapayaḥ pibet || 78 ||

Who would give up this highest vision to enjoy a burnt-out kingdom? What wise person would give up sweet sugarcane juice to drink bitter neem juice?

इस सबसे ऊँची दृष्टि को छोड़कर कौन जला हुआ राज्य भोगना चाहेगा? कौन समझदार मीठा गन्ने का रस छोड़कर कड़वा नीम का रस पिएगा?

5.34.79

मूर्खा एव हि ते सर्वे बभुवुर्मे पितामहाः। इमां दृष्टिं परित्यज्य रेमिरे राज्यसंकटे॥ ७९॥

mūrkhā eva hi te sarve babhuvurme pitāmahāḥ | imāṃ dṛṣṭiṃ parityajya remire rājyasaṅkaṭe || 79 ||

All my forefathers were nothing but fools - they gave up this vision and went to enjoy themselves in the troubles of ruling a kingdom.

मेरे सभी पूर्वज सचमुच मूर्ख ही थे - उन्होंने इस दृष्टि को छोड़कर राज्य चलाने की परेशानियों में मौज मनाई।

5.34.80

क्व फुल्लानन्दनस्थल्यः क्व दग्धमरुभूमयः। क्वेमा बोधदृशः शान्ताः क्व भोगेष्वात्मबुद्धयः॥ ८०॥

kva phullānandanasthalyāḥ kva dagdhamarubhūmayaḥ | kvemā bodhadṛśaḥ śāntāḥ kva bhogeṣvātmabuddhayaḥ || 80 ||

Where are the blooming pleasure-gardens, and where are the scorched desert lands? Where is this peaceful vision of awakening, and where is the thought that looks for the self in worldly pleasures?

कहाँ हैं वे खिले हुए आनंद-उद्यान, और कहाँ हैं वे जले हुए रेगिस्तान? कहाँ है जागृति की यह शांत दृष्टि, और कहाँ है वह सोच जो अपने आप को सांसारिक भोगों में ढूँढ़ती है?

5.34.81

न किंचिदपि त्रैलोक्ये यद्राज्यमपि वाञ्छते सर्वमस्त्येव चित्तत्त्वे तत्कस्मान्नानुभूयते ॥ ८१ ॥

na kimcidapi trailokye yadrājyamapi vāñchate sarvamastyeva cittattve tatkasmānnānubhūyate || 81 ||

There is nothing at all in the three worlds left for even a kingdom to want - everything already exists in the reality of consciousness. So why is it not experienced?

तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी नहीं बचा जिसे कोई राज्य भी चाहे - सब कुछ चेतना के इस सत्य में पहले से मौजूद है। फिर यह अनुभव में क्यों नहीं आता?

5.34.82

चिता सर्वस्थया स्वस्थसमया निर्विकारया सर्वया सर्वदा सर्वं सर्वतः साधु लभ्यते ॥ ८२ ॥

citā sarvasthayā svasthasamayā nirvikārayā sarvayā sarvadā sarvaṃ sarvataḥ sādhu labhyate || 82 ||

Through consciousness - present in everything, resting in itself, the same everywhere, unchanging - through this consciousness that is everything, at all times, everything is truly gained, from every side.

उस चेतना से - जो हर चीज़ में मौजूद है, अपने आप में टिकी है, हर जगह एक जैसी है, और कभी नहीं बदलती - इसी सब कुछ वाली चेतना से, हमेशा, हर तरफ़ से सब कुछ ठीक से मिल जाता है।

5.34.83

भासिनी तैजसी शक्तिरमृतप्राप्तिरैन्दवी ब्राह्मी महत्ता महती शाक्री त्रैलोक्यराजता ॥ ८३ ॥

bhāsinī taijasī śaktiramṛtaprāptiraivdavī brāhmī mahattā mahatī śākrī trailokyarājatā || 83 ||

The shining power, the fiery power, the moon's power of reaching nectar, Brahma's greatness, and Indra's great rule over the three worlds.

चमकती हुई शक्ति, आग की शक्ति, चाँद की वह शक्ति जो अमृत तक पहुँचाती है, ब्रह्मा की महानता, और इंद्र की वह महान शक्ति जो तीनों लोकों पर राज करती है।

5.34.84

परमा पूर्णता शार्वी जयलक्ष्मीश्च वैष्णवी मानसी शीघ्रगतिता बलवत्ता च वायवी ॥ ८४ ॥

paramā pūrṇatā śārvī jayalakṣmīśca vaiṣṇavī mānasī śīghragatitā balavattā ca vāyavī || 84 ||

Shiva's supreme fullness, Vishnu's fortune of victory, the mind's swiftness, and the wind-god's strength.

शिव की परम पूर्णता, विष्णु की विजय-लक्ष्मी, मन की फुर्ती, और वायु देवता की शक्ति।

5.34.85

आग्नेयी दाहकलना पायसी रसनिर्वृतिर्मौनी महातपःसिद्धिर्विद्या बार्हस्पती तथा ॥ ८५ ॥

āgneyī dāhakalanā pāyasī rasanirvṛtirmaunī mahātapaḥsiddhirvidyā bārhaspatī tathā || 85 ||

Agni's power to burn, the delight that milk's taste gives, the great success of penance that comes with silence, and likewise Brihaspati's knowledge.

अग्नि की जलाने की शक्ति, दूध के स्वाद का सुख, मौन से मिलने वाली महान तप की सिद्धि, और वैसे ही बृहस्पति का ज्ञान।

5.34.86

वैमानिकी व्योमगतिः स्थिरता चापि पार्वती । गम्भीरताथ सामुद्री मैरवी च महोन्नतिः ॥ ८६ ॥

vaimānikī vyomagatiḥ sthiratā cāpi pārvatī | gambhīratātha sāmudrī mairavī ca mahonnatiḥ || 86 ||

The sky-faring power of flying chariots, the mountain's steadiness, the ocean's depth, and Meru's great height.

विमानों की आकाश में चलने की शक्ति, पर्वत की स्थिरता, समुद्र की गहराई, और मेरु पर्वत की महान ऊँचाई।

5.34.87

शमश्रीः सौगती सौम्या मादिरी मदलोलता । माधवी पुष्पमयता वार्षिकी घनशब्दिता ॥ ८७ ॥

śamaśrīḥ saugatī saumyā mādirī madalolatā | mādhavī puṣpamayatā vārṣikī ghanaśabditā || 87 ||

The glory of peace, the way of the Buddha, gentleness, wine, the reeling of intoxication, spring, the fullness of flowers, the rains, the sound of thunder.

शांति की शोभा, बुद्ध का मार्ग, कोमलता, शराब, नशे में झूमना, बसंत, फूलों से भरापन, बरसात, बादलों की गरज।

5.34.88

याक्षी च मायामयता नाभसी निष्कलङ्कता । शीतातापि च तौषारी नैदाघी तापतप्तता ॥ ८८ ॥

yākṣī ca māyāmayatā nābhasī niṣkalaṅkatā | śītatāpi ca tauṣārī naidāghī tāpataptatā || 88 ||

The Yakshas, being made of illusion, the sky, having no stain, coldness, frost, summer heat, being scorched by heat.

यक्ष, माया से बना होना, आकाश, बेदाग़ होना, ठंडक, पाला, गर्मी की तपन, गर्मी से झुलसना।

5.34.89

एताश्चान्यास्तथा बह्वयो देशकालक्रियात्मिकाः । नानाकारविकारोत्थास्त्रिकालोदरसंस्थिताः ॥ ८९ ॥

etāścānyāstathā bahvayo deśakālakriyātmikāḥ | nānākāravikārothāstrikālodarasaṃsthitāḥ || 89 ||

These, and many others like them, have their being in place, time, and action; they arise as changes taking many forms, and they all stay inside the three times: past, present, and future.

ये और भी बहुत सारी शक्तियाँ जगह, समय और काम से जुड़ी हैं; ये अलग-अलग रूपों में बदलती हुई पैदा होती हैं, और सब भूत, वर्तमान और भविष्य के भीतर ही टिकी रहती हैं।

5.34.90

विचित्राः शक्तयः स्वस्थसमया निर्विकारया । चिता क्रियन्ते परया कलाकलनयुक्तया ॥ ९० ॥

vicitrāḥ śaktayaḥ svasthasamayā nirvikārayā | citā kriyante parayā kalākalanayuktayā || 90 ||

All these many strange powers are made by one and the same consciousness, a consciousness that rests only in itself, that never changes, that is supreme, and that carries within it the power to shape all things.

ये सारी अनोखी शक्तियाँ एक ही चेतना से बनती हैं, चेतना जो सिर्फ़ अपने में टिकी रहती है, जो कभी नहीं बदलती, जो सबसे ऊपर है, और जिसके भीतर हर चीज़ को आकार देने की शक्ति है।

5.34.91

विकल्पहीना चित्सर्वा पदार्थशतदृष्टिषु । सममेवाभिपतति प्रभा प्राभाकरी यथा ॥ ९१ ॥

vikalpahīnā citsarvā padārthaśatadṛṣṭiṣu | samamevābhipatati prabhā prābhākarī yathā || 91 ||

This consciousness, whole and free of all thought-constructions, falls equally on the sight of a hundred different things, just as sunlight falls equally everywhere.

यह चेतना, जो हर तरह की कल्पना से मुक्त है, सैकड़ों अलग-अलग चीज़ों पर एक जैसी पड़ती है, जैसे सूरज की रोशनी हर जगह एक जैसी पड़ती है।

5.34.93

तथा समस्तसंसारबृहदृश्यदशाश्रियम् । कालत्रयस्थाममला चिच्चेतति तदात्मिका ॥ ९३ ॥

tathā samastasaṃsārabṛhadṛśyadaśāśriyam | kālatrayasthāmamalā cicchetati tadātmikā || 93 ||

In the same way, this same stainless consciousness, present through the past, the present and the future, perceives the whole vast show of everything visible in this world, exactly as it is.

इसी तरह, यही निर्मल चेतना, जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों में बनी रहती है, इस पूरी दुनिया के दिखने वाले विशाल तमाशे को ठीक वैसे ही जान लेती है जैसा वह है।

5.34.94

तुल्यकालपरामृष्टा त्रिकालकलनाशता । अनन्तभुवनाभोगा परिपूर्णैव शुद्धचित् ॥ ९४ ॥

tulyakālaparāmṛṣṭā trikālakalanāśatā | anantabhuvanābhogā paripūrṇaiva śuddhacit || 94 ||

Grasping everything at one and the same time, having a hundred workings throughout the past, present and future, reaching over endless worlds, this pure consciousness alone is complete in itself.

एक ही समय में सब कुछ जान लेने वाली, भूत, वर्तमान और भविष्य में सैकड़ों तरीकों से काम करने वाली, अनंत लोकों तक फैली हुई, यह शुद्ध चेतना अकेले ही पूरी तरह भरी-पूरी है।

5.34.95

सर्वाशाकोशविश्रान्तां पदार्थपटलीं महीम् । कालत्रयेहाकलितां यथानुभवति क्षणात् ॥ ९५ ॥

sarvāśākośaviśrāntāṃ padārthapaṭalīṃ mahīm | kālatrayehaikalitāṃ yathānubhavati kṣaṇāt || 95 ||

It experiences in a single instant this whole heap of things, this whole world, resting inside every direction, known throughout the past, present and future, exactly as it is.

यह एक ही पल में इस पूरे ढेर को जान लेती है, इस पूरी दुनिया को, जो हर दिशा के भीतर टिकी है, जो भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों में जानी जाती है, ठीक वैसे ही जैसे वह है।

5.34.96

तुल्यकालावबुद्धेन स्वादुना कटुनापि चित् । समेन समतामेति मधुनिम्बानुभूतिवत् ॥ ९६ ॥

tulyakālāvabuddhena svādunā kaṭunāpi cit | samena samatāmeti madhunimbānubhūtivat || 96 ||

This consciousness knows the sweet and the bitter at one and the same time, and being itself unmoved, it treats them as the same, like one single awareness tasting both honey and the bitter neem leaf.

यह चेतना मीठे और कड़वे को एक ही समय पर जानती है, और खुद अडिग रहते हुए दोनों को बराबर मानती है, जैसे एक ही चेतना शहद भी चखे और नीम की कड़वाहट भी।

5.34.97

त्यक्तसंकल्पकलया सूक्ष्मया चिद्व्यवस्थयासर्वभावानुगतया सत्ताद्वैतैकरूपया ॥ ९७ ॥

tyaktasaṃkalpakalayā sūkṣmayā cidvyavasthayāsarvabhāvānugatayā sattādvaitaikarūpayā || 97 ||

By this subtle working of consciousness, one that has let go of all willing and imagining, that runs through every single thing there is, and that has only one form, the oneness of pure being,

चेतना की इस सूक्ष्म स्थिति के द्वारा, जिसने हर इच्छा और कल्पना छोड़ दी है, जो हर एक चीज़ में मौजूद है, और जिसका एक ही रूप है, शुद्ध होने की एकता,

5.34.98

विचित्रापि पदार्थश्रीरन्योन्यवलितान्तरा । तुल्यकालानुभवना साम्येनैवानुभूयते ॥ ९८ ॥

vicitrāpi padārthaśrīranyonyavalitāntarā | tulyakālānubhavanā sāmyenaivānubhūyate || 98 ||

the many-colored glory of things, even though each is woven into the others, is experienced all at once, only as one and the same thing.

चीज़ों की यह रंग-बिरंगी शोभा, भले ही एक-दूसरे में गुँथी हुई हो, एक ही पल में अनुभव होती है, सिर्फ़ एक जैसी चीज़ के रूप में।

5.34.99

भावेनाभावमाश्रित्य भावस्त्यजति दुःखताम् । प्रेक्ष्य भावमभावेन भावस्त्यजति दुष्टताम् ॥ ९९ ॥

bhāvenābhāvamāśritya bhāvastyajati duḥkhatām | prekṣya bhāvamabhāvena bhāvastyajati duṣṭatām || 99 ||

By taking shelter in what does not exist, the thing that seems to exist gives up its power to cause pain. And by seeing the thing that seems to exist through what does not exist, that thing gives up its power to do harm.

जो न होने में शरण लेकर, जो चीज़ होती हुई दिखती है वह अपना दुख देने की ताक़त छोड़ देती है। और जो न होने के ज़रिए देखी जाए, वह होती हुई दिखने वाली चीज़ अपना नुक़सान पहुँचाने का गुण छोड़ देती है।

5.34.100

कालत्रयमपश्यन्त्या हीनायाश्चेत्यबन्धनैः । चितश्चेत्यमुपेक्षिण्याः समतैवावशिष्यते ॥ १०० ॥

kālatrayamapaśyantyā hīnāyāścetyabandhanaiḥ | citaścetyamupekṣiṇyāḥ samataivāvaśiṣyate || 100 ||

For the awareness that does not even see the past, present and future, that carries no chains tying it to anything it knows, and that pays no attention to anything it knows, only one single sameness is left.

जो चेतना भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों को देखती तक नहीं, जिस पर किसी भी जानी हुई चीज़ की कोई ज़ंजीर नहीं, और जो किसी जानी हुई चीज़ पर ध्यान ही नहीं देती, उसमें सिर्फ़ एक जैसापन ही बचता है।

5.34.101

याति वाचामगम्यत्वादसत्तामिव शाश्वतीम् । नैरात्म्यसिद्धान्तदशामुपयातेव तिष्ठति ॥ १०१ ॥

yāti vācāmagamyatvādasattāmiva śāśvatīm | nairātmyasiddhāntadaśāmupayāteva tiṣṭhati || 101 ||

Because words cannot reach it, it seems to pass into a never-ending non-existence. It stands as though it has reached the state the teaching of no-self speaks of.

शब्द वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, इसलिए वह एक ऐसे न-होने जैसी लगती है जिसका कभी अंत नहीं। वह ऐसे खड़ी रहती है जैसे उस स्थिति तक पहुँच गई हो जिसे यह सिद्धांत बताता है कि कोई आत्मा है ही नहीं।

5.34.102

भवत्यात्मा तथा ब्रह्म न किंचिच्चाखिलं च वा । परमोपशमेऽलीना मोक्षनाम्ना परोच्यते ॥ १०२ ॥

bhavatyātmā tathā brahma na kiṃciccākhilaṃ ca vā | paramopaśame'līnā mokṣanāmnā parocyate || 102 ||

It becomes the self, and it becomes Brahman too. It is nothing at all, and it is everything too. Resting in the highest peace, this supreme state is called by the name liberation.

वह खुद आत्मा बन जाती है, और ब्रह्म भी बन जाती है। वह कुछ भी नहीं है, और सब कुछ भी है। सबसे ऊँची शांति में टिकी हुई, इस सबसे ऊँची स्थिति को मोक्ष के नाम से जाना जाता है।

5.34.103

संकल्पकलिता त्वेषा मन्दाभासतया जगत् । न सम्यक्पश्यतीदं चिद्दृष्टिः पटलिनी यथा ॥ १०३ ॥

saṃkalpakalitā tveṣā mandābhāsatayā jagat | na samyakpaśyatīdaṃ cidṛṣṭiḥ paṭalinī yathā || 103 ||

But this same consciousness, once caught up in imagining, sees the world only faintly and does not see it rightly, like sight covered by a cataract.

पर यही चेतना, जब कल्पना में उलझ जाती है, तो दुनिया को धुंधला ही देखती है, ठीक से नहीं देख पाती, जैसे मोतियाबिंद से ढकी नज़र।

5.34.104

ईहानीहामयैरन्तर्या चिदावलिता मलैः । सा हि नोड्डयितुं शक्ता पाशबद्धेव पक्षिणी ॥ १०४ ॥

īhānīhāmayairantaryā cidāvalitā malaiḥ | sā hi noḍḍayituṃ śaktā pāśabaddheva pakṣiṇī || 104 ||

Consciousness, wrapped inside by the dirt of wanting and not wanting, cannot fly at all, like a bird tied down by a rope.

चेतना, जो चाहने और न चाहने की गंदगी से भीतर से लिपटी हुई है, उड़ ही नहीं पाती, जैसे रस्सी से बंधी हुई कोई चिड़िया।

5.34.105

संकल्पकलनेनैव ये केचन जना इमे । पतिता मोहजालेषु विनेत्रा इव पक्षिणः ॥ १०५ ॥

saṃkalpakalanenaiva ye kecana janā ime | patitā mohajāleṣu vinetrā iva pakṣiṇaḥ || 105 ||

Just by this working of imagining, whatever people there are have fallen into the nets of delusion, like birds without eyes.

इसी कल्पना करने भर से, जो भी लोग हैं, वे सब मोह के जाल में गिर पड़े हैं, जैसे बिना आँख वाली चिड़ियाँ।

5.34.106

संकल्पजालवलितैर्विषयावटपातिभिः । पदवी गतबाधेयं न दृष्टा मत्पितामहैः ॥ १०६ ॥

saṃkalpajālavalitairviṣayāvaṭapātibhiḥ | padavī gatabādheyaṃ na dṛṣṭā matpitāmahaiḥ || 106 ||

My forefathers, caught up in the net of imagining, always falling into the pit of the senses, never saw this path, free of all trouble.

मेरे पुरखे, कल्पना के जाल में उलझे हुए, इंद्रियों के गड्ढे में बार-बार गिरते हुए, इस राह को कभी देख ही न सके, जो हर तकलीफ़ से मुक्त है।

5.34.107

दिनैः कतिपयैरेव स्फुरिता धरणीतले । वराकास्तेन ते नष्टा मशकाः कुहरेष्विव ॥ १०७ ॥

dinaiḥ katipayaireva sphuritā dharaṇītale | varākāsten te naṣṭā maśakāḥ kuhareṣviva || 107 ||

Within just a few days they sprang up on this earth, and that same cause destroyed those poor creatures, like little gnats dying in a hollow.

बस कुछ ही दिनों में वे इस धरती पर उभर आए, और उसी वजह से वे बेचारे नष्ट हो गए, जैसे छोटे-छोटे मच्छर किसी खोखले में जन्म लेकर मर जाते हैं।

5.34.108

यद्यज्ञास्यन्निमे तत्त्वं भोगदुःखार्थिनस्तदा । भावाभावान्धकूपेषु नापतिष्यन्हताशयाः ॥ १०८ ॥

yadyajñāsyannime tattvaṃ bhogaduḥkhārthinas tadā | bhāvābhāvāndhakūpeṣu nāpatiṣyannhatāśayāḥ || 108 ||

If these seekers of pleasure and pain had known the truth, their ruined minds would not have fallen into the blind wells of existence and non-existence.

अगर सुख-दुख चाहने वाले ये लोग सच्चाई जान लेते, तो इनके बर्बाद मन होने और न-होने के अंधे कुओं में कभी न गिरते।

5.34.109

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन जन्तवः । धराविवरमग्नानां कीटानां समतां गताः ॥ १०९ ॥

icchādveṣasamutthena dvandvamohena jantavaḥ | dharāvivaramagnānāṃ kīṭānāṃ samatāṃ gatāḥ || 109 ||

Through the delusion of opposites, born of desire and hatred, living beings have become no better than worms buried in a hole in the ground.

इच्छा और नफ़रत से पैदा हुए विरोधों के मोह के कारण, जीव-जंतु धरती के किसी गड्ढे में दबे कीड़ों से बेहतर नहीं रह गए।

5.34.110

ईहितानीहिताकाराः कलनामृगतृष्णिकाः । सत्यावबोधमेधेन यस्य शान्ताः स जीवति ॥ ११० ॥

īhitānīhitākārāḥ kalanāmṛgatṛṣṇikāḥ | satyāvabodhamedhena yasya śāntāḥ sa jīvati || 110 ||

The one for whom these mirages of imagining, taking the shape of things wanted and unwanted, have been burned away by the fire of true understanding, he alone truly lives.

जिस इंसान के लिए चाहने और न चाहने की शक्ल लिए ये कल्पना के मृगजल सच्चे ज्ञान की आग से बुझ गए हैं, वही सच में जीता है।

5.34.111

कुतः किलास्याः शुद्धाया अविच्छिन्नामलाकृतेः । चन्द्रिकाया रुचः कोष्णाः कलङ्काः कलनाश्चितः ॥ १११ ॥

kutaḥ kilāsyāḥ śuddhāyā avicchinnāmalākṛteḥ | candrikāyā rucaḥ koṣṇāḥ kalaṅkāḥ kalanāścitah || 111 ||

How, indeed, can this pure being, unbroken and stainless, like the light of the moon, carry the warm stains that are only the workings of imagination?

यह शुद्ध, अटूट और बेदाग़ अस्तित्व चाँद की रोशनी जैसा है, तो भला इस पर कल्पना के ये गुनगुने दाग़ कैसे लग सकते हैं?

5.34.112

आत्मनेऽस्तु नमो मह्यमविच्छिन्नचिदात्मने । लोकालोकमणे देव चिरेणाधिगतोऽस्यहो ॥ ११२ ॥

ātmane'stu namo mahyamavicchinnacidātmane | lokālokamaṇe deva cireṇādhigato'syaho || 112 ||

Homage to myself, to the self whose nature is unbroken consciousness. O jewel that lights up every world, seen and unseen, O shining one, ah, after so long, I have found you.

मुझे प्रणाम, उस आत्मा को जिसका स्वभाव अटूट चेतना है। हे हर लोक को रोशन करने वाले रत्न, दिखने वाले और न दिखने वाले दोनों लोकों को, हे तेजस्वी, अरे, इतने लंबे समय बाद मैंने तुझे पा लिया।

5.34.113

परामृष्टोऽसि लब्धोऽसि प्रोदितोऽसि चिराय च । उद्धृतोसिविकल्पेभ्यो योसि सोसि नमोस्तु ते ॥ ११३ ॥

parāmṛṣṭo'si labdho'si prodito'si cirāya ca | uddhṛto'sivikalpebhyo yosi sosi namostu te || 113 ||

I have touched you, I have found you. After so long, you have risen into view. You are pulled free from every thought and doubt. Whatever you are, that is what you are. Homage to you.

मैंने तुझे छुआ है, मैंने तुझे पाया है। इतने लंबे समय बाद तू सामने आया है। तू हर शक और कल्पना से मुक्त कर लिया गया है। तू जो भी है, वही है। तुझे प्रणाम।

5.34.114

मह्यं तुभ्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं शिवात्मने । नमो देवाधिदेवाय पराय परमात्मने ॥ ११४ ॥

mahyaṃ tubhyamanantāya mahyaṃ tubhyaṃ śivātmane | namo devādhidevāya parāya paramātmane || 114 ||

To me, to you, the one without end. To me, to you, whose very nature is pure peace. Homage to the god beyond all gods, the supreme, the highest self.

मुझे, तुझे, जो कभी खत्म नहीं होता। मुझे, तुझे, जिसका स्वभाव शुद्ध शांति है। हर देवता से ऊपर के देवता को प्रणाम, सबसे ऊँचे को, सबसे ऊँची आत्मा को प्रणाम।

5.34.115

गतघनपरिपूर्णमिन्दुबिम्बं गतकलनावरणं स्वमेव रूपम् । स्ववषुषि मुदिते स्वयं स्वसंस्थं स्वयमुदितं स्ववशं स्वयं नमामि ॥ ११५ ॥

gataghanaparipūrṇamindubimbaṃ gatakalanāvaraṇaṃ svameva rūpam | svavaṣuṣi mudite svayaṃ svasaṃsthaṃ svayamuditaṃ svavaśaṃ svayaṃ namāmi || 115 ||

I bow to my own true form, the moon's full disc now free of clouds, free of the covering of imagining, resting happily in its own body, standing on its own, risen on its own, ruled by none but itself. I bow to myself, by myself.

मैं अपने ही असली रूप को प्रणाम करता हूँ, बादलों से मुक्त और पूरा भरा हुआ चाँद का गोला, कल्पना के परदे से मुक्त, अपने ही शरीर में खुश, खुद अपने में टिका हुआ, खुद ही उगा हुआ, खुद अपने बस में। मैं खुद को, खुद से ही प्रणाम करता हूँ।

Chapter 35

5.35.1

प्रह्लाद उवाच । ओमित्येकोचिताकारो विकारपरिवर्जितः । आत्मैवायमिदं सर्वं यत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ १ ॥

prahlāda uvāca | omiti ekākārā viakāraparivarjitaḥ | ātmaivāyamidaṃ sarvaṃ yatkiñcjjagatīgatam || 1 ||

Prahlada said: Called Om, this self has one single form and never changes. This same self is everything - all that exists anywhere in the world.

प्रह्लाद ने कहा: ॐ कहलाने वाला यह आत्मा एक ही रूप का है और कभी नहीं बदलता। यही आत्मा यह सब कुछ है - जगत में जो कुछ भी है।

5.35.2

मेदोस्थिमांसमज्जासृगतीतोऽप्येष चेतनः । अन्तरस्थो हि सूर्यादीन्प्रकाशयति दीपकः ॥ २ ॥

medosthimāṃsamajjāsṛgatīto'pyeṣa cetanaḥ | antarastho hi sūryādīnprakāśayati dīpakaḥ || 2 ||

This conscious self is beyond fat, bone, flesh, marrow, and blood. Sitting within, like a lamp, it lights up the sun and everything else.

यह चेतन आत्मा चर्बी, हड्डी, मांस, मज्जा और खून से परे है। भीतर बैठकर, यह दीये की तरह सूरज को और बाकी सबको रोशन करता है।

5.35.3

उष्णीकरोति दहनं रसयत्यमृतं रसम् । इन्द्रियानुभवान्भुङ्क्ते भोगानिवमहीपतिः ॥ ३ ॥

uṣṇīkaroti dahanaṃ rasayatyamṛtaṃ rasaṃ | indriyānubhavānbhuṅkte bhogānivamahīpatiḥ || 3 ||

It makes fire hot, and it gives nectar its sweetness. It enjoys what the senses feel, the way a king enjoys his pleasures.

यह आग को गर्म बनाता है, और अमृत को उसका स्वाद देता है। यह इंद्रियों के अनुभवों को उसी तरह भोगता है जैसे एक राजा अपने सुखों को भोगता है।

5.35.4

तिष्ठन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति । शान्तोऽपि व्यवहारस्थः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ४ ॥

tiṣṭhannapi hi nāsīno gacchannapi na gacchati | śānto'pi vyavahārasthaḥ kurvannapi na lipyate || 4 ||

Even standing still, it is not merely sitting idle. Even while moving, it does not really move. Even at peace, it takes part in everyday affairs. Even while acting, it is never touched by the act.

यह स्थिर रहते हुए भी निष्क्रिय बैठा नहीं है। यह चलते हुए भी सच में चलता नहीं। यह शांत रहते हुए भी रोज़ के काम-काज में शामिल रहता है। यह कर्म करते हुए भी कर्म से लिप्त नहीं होता।

5.35.5

पूर्वमद्य तथेदानीमिहामुत्रोभयत्र च । विहितोऽविहितोऽप्येष समः सर्वासु वृत्तिषु ॥ ५ ॥

pūrvamadya tathedānīmihāmutrobhayatraca | vihito'vihito'pyeṣa samaḥ sarvāsu vṛttiṣu || 5 ||

In the past, today, and now; here, in the other world, and in both places; whether following what is prescribed or not - this self stays the same in every state.

बीते समय में, आज और अभी में; यहाँ, परलोक में, और दोनों जगह; विधि के अनुसार चले या न चले - यह आत्मा हर हाल में एक-सा रहता है।

5.35.6

उद्भवत्यभयो भावं भुवनानि ततस्ततः । ब्रह्मादितृणपर्यन्तं जगदावर्तयन्स्थितः ॥ ६ ॥

udbhavatyabhayo bhāvaṃ bhuvanāni tatastataḥ | brahmāditṛṇaparyantaṃ jagadāvartayan sthitaḥ || 6 ||

Free of fear, it brings forth existence and one world after another. It stays turning the whole world around, from Brahma down to a blade of grass.

निडर होकर, यह अस्तित्व को और एक के बाद एक लोकों को जन्म देता है। यह ब्रह्मा से लेकर एक तिनके तक, पूरे जगत को घुमाते हुए टिका रहता है।

5.35.7

नित्यस्पन्दमयो नित्यमपि देवात्सदागतेः । स्थाणोरप्यक्रियो नित्यमाकाशादप्यलेपकः ॥ ७ ॥

nityaspandamayo nityamapi devātsadāgateḥ | sthāṇorapyakriyo nityamākāśādapyalepakaḥ || 7 ||

It is always trembling with motion, more than the wind that never stops. It is always still and does nothing, more still than a fixed post. And it is always untouched, more untouched than the sky.

यह हमेशा कंपन से भरा है, उस हवा से भी ज़्यादा जो कभी नहीं रुकती। यह हमेशा स्थिर है और कुछ नहीं करता, एक खंभे से भी ज़्यादा स्थिर। और यह हमेशा अछूता है, आकाश से भी ज़्यादा अछूता।

5.35.8

मनांसि क्षोभयत्येष पल्लवानीव मारुतः । वाहयत्यक्षपङ्क्तिं स्वामश्वालीमिव सारथिः ॥ ८ ॥

manāṃsi kṣobhayatyēṣa pallavānīva mārutaḥ | vāhayatyakṣapaṅkatiṃ svāmaśvālīmiva sārathiḥ || 8 ||

It stirs minds the way the wind stirs young leaves. It drives the row of senses the way a charioteer drives his own team of horses.

यह मन को उसी तरह हिलाता है जैसे हवा नई पत्तियों को हिलाती है। यह इंद्रियों की पंक्ति को उसी तरह चलाता है जैसे सारथी अपने घोड़ों की टोली को चलाता है।

5.35.9

अतिदुर्विधवद्देहगेहे कर्मरतः सदा । सम्राडिवात्मनि स्वस्थः संस्थितो भोगभुग्विभुः ॥ ९ ॥

atidurvidhavaddēhagēhē karmarataḥ sadā | samrāḍivātmani svasthaḥ saṃsthito bhogabhugvibhuḥ || 9 ||

In the house of the body it always toils like someone very poor and helpless. Yet, resting in itself, it is content like an emperor - the all-pervading lord who enjoys every pleasure.

शरीर रूपी घर में यह हमेशा एक बहुत गरीब और लाचार आदमी की तरह मेहनत करता रहता है। फिर भी अपने आप में टिका हुआ, यह एक सम्राट की तरह संतुष्ट है - वह सर्वव्यापी स्वामी जो हर सुख भोगता है।

5.35.10

एष एव सदाऽन्विष्यः स्तुत्यो ध्यातव्य एव तु । जरामरणसंमोहादनेनोत्तीर्य गम्यते ॥ १० ॥

ēṣa ēva sadā'nvīṣyaḥ stutyo dhyātavya ēva tu | jarāmaraṇasaṃmōhādanēnōttīrya gamyatē || 10 ||

This alone should always be sought, praised, and meditated on. Through it, a person crosses over old age, death, and delusion, and reaches the goal.

इसी को हमेशा खोजना, इसी की स्तुति करनी और इसी का ध्यान करना चाहिए। इसके सहारे बुढ़ापे, मृत्यु और मोह को पार करके मनुष्य लक्ष्य तक पहुँचता है।

5.35.11

सुलभश्चायमत्यन्तं सुजेयश्चाप्तबन्धुवत् । शरीरपद्मकुहरे सर्वेषामेव षट्पदः ॥ ११ ॥

sulabhaścāyamatyantaṃ sujeyaścāptabandhuvat | śarīrapadmakuhere sarveṣāmeva ṣaṭpadaḥ || 11 ||

This self is very easy to reach, and easy to win over, like a close and trusted friend. In the hollow of the body's lotus, it sits like a bee, in everyone.

यह आत्मा पाना बहुत आसान है, और इसे जीत लेना भी उतना ही आसान है, जैसे किसी भरोसेमंद अपने की तरह। शरीर रूपी कमल की खोह में, यह सबके भीतर एक भौंरे की तरह बैठा है।

5.35.12

अनाक्रुष्टोऽप्यनाहूतः स्वदेहादेव लभ्यते । मनागेवोपहूतोऽपि क्षणाद्भवति सन्मुखः ॥ १२ ॥

anākruṣṭo'pyanāhūtaḥ svadehādeva labhyate | manāgevopahūto'pi kṣaṇādbhavati sanmukhaḥ || 12 ||

Even without being pulled or called, it is found right in one's own body. Called even a little, it turns to face you at once.

बिना खींचे, बिना पुकारे भी, यह अपने ही शरीर में मिल जाता है। थोड़ा सा भी पुकारने पर, यह तुरंत सामने आ जाता है।

5.35.13

नास्य संसेव्यमानस्य सर्वसंपत्तिशालिनः । धनानामीश्वरस्येव स्मयो गर्वो यथा भवेत् ॥ १३ ॥

nāsya saṃsevyamānasya sarvasaṃpattiśālinaḥ | dhanānāmīśvarasyeva smayo garvo yathā bhavet || 13 ||

Though it is served and possesses every kind of wealth, it never feels pride or arrogance the way a rich lord of wealth would.

यह हर तरह की संपत्ति से भरपूर है और इसकी सेवा भी होती है, फिर भी इसमें वह घमंड या अहंकार नहीं होता जो किसी धनी स्वामी में होता है।

5.35.14

आमोद इव पुष्पेषु तैलं तिलकणेष्विव । रसजातिष्विवास्वादो देवो देहेषु संस्थितः ॥ १४ ॥

āmoda iva puṣpeṣu tailaṃ tilakaṇeṣviva | rasajātiṣvivāsvādo devo deheṣu saṃsthitaḥ || 14 ||

Like scent in flowers, like oil in sesame seeds, like taste in every kind of flavor - so this shining self lives inside bodies.

जैसे फूलों में खुशबू, जैसे तिल के दानों में तेल, जैसे हर तरह के रस में स्वाद होता है - वैसे ही यह चमकता आत्मा शरीरों में बसा है।

5.35.15

अविचारवशादेष हृदयस्थोऽपि चेतनः । न ज्ञायते चिरादृष्टो दृष्टबन्धुरिवाग्रतः ॥ १५ ॥

avicāravaśādeṣa hṛdayastho'pi cetanaḥ | na jñāyate cirādṛṣṭo dṛṣṭabandhurivāgrataḥ || 15 ||

Because no one looks closely, this conscious self, though it sits in the heart, goes unrecognized - like a relative seen long ago, standing right in front of you, whom you fail to recognize.

गहराई से न सोचने के कारण, यह चेतन आत्मा हृदय में बैठा होते हुए भी पहचाना नहीं जाता - जैसे बरसों पहले देखा हुआ कोई रिश्तेदार सामने खड़ा हो, पर पहचान में न आए।

5.35.16

विचारणापरिज्ञात एतस्मिन्परमेश्वरे । अभ्युदेति परानन्दो लब्धे प्रियजने यथा ॥ १६ ॥

vicāraṇāparijñāta etasminparamēśvarē | abhyudeti parānandō labdhē priyajanē yathā || 16 ||

When this highest lord is fully known through careful thought, supreme joy rises up, the way joy rises when you find a dear one you had lost.

जब गहरी सोच-विचार से यह परम ईश्वर पूरी तरह जान लिया जाता है, तो वैसा ही परम आनंद उठता है जैसा किसी खोए हुए प्रियजन के मिल जाने पर उठता है।

5.35.17

अस्मिन्दृष्टे परे बन्धावुद्दामानन्ददायिनि । आयान्ति दृष्टयस्तास्ता याभिर्भङ्गो विलीयते ॥ १७ ॥

asminndṛṣṭē parē bandhāvuddāmānandadāyini | āyānti dṛṣṭayastāstā yābhirbhaṅgō vilīyatē || 17 ||

When this supreme friend, who gives boundless joy, is seen, all those true ways of seeing come, and by them every trouble melts away.

जब यह परम मित्र, जो असीम आनंद देता है, दिख जाता है, तो वे सभी सच्ची दृष्टियाँ आ जाती हैं, जिनसे हर उलझन घुल जाती है।

5.35.18

त्रुट्यन्ते सर्वतः पाशाः क्षीयन्ते सर्वशत्रवः । न कृन्तन्ति मनांस्याशा गृहाणीव दुराखवः ॥ १८ ॥

truṭyantē sarvataḥ pāśāḥ kṣīyantē sarvaśatravaḥ | na kṛntanti manāṃsyāśā gṛhāṇīva durākhavḥ || 18 ||

All bonds snap on every side, and every enemy is destroyed. Cravings no longer gnaw at the mind, the way rats no longer gnaw at a house.

हर तरफ से सारे बंधन टूट जाते हैं, और सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं। इच्छाएँ मन को उसी तरह नहीं कुतरतीं, जैसे चूहे किसी घर को नहीं कुतरते।

5.35.19

अस्मिन्दृष्टे जगद्दृष्टं श्रुतेऽस्मिन्सकलं श्रुतम् । स्पृष्टेचास्मिञ्जगत्स्पृष्टं स्थितेऽस्मिन्संस्थितं जगत् ॥ १९ ॥

asminndṛṣṭē jagaddṛṣṭaṃ śrutē'smin sakalaṃ śrutam | spṛṣṭēcāsmin jagat spṛṣṭaṃ sthitē'smin saṃsthitaṃ jagat || 19 ||

When this is seen, the whole world is seen. When this is heard, everything is heard. When this is touched, the world is touched. When this stands, the world stands.

जब यह देख लिया जाता है, तो पूरा जगत देख लिया जाता है। जब यह सुन लिया जाता है, तो सब कुछ सुन लिया जाता है। जब इसे छू लिया जाता है, तो जगत छू लिया जाता है। जब यह टिका रहता है, तो जगत टिका रहता है।

5.35.20

एष जागर्ति सुप्तानां प्रहरत्यविवेकिनाम् । हरत्यापदमार्तानां वितरत्यमहात्मनाम् ॥ २० ॥

eṣa jāgarti suptānāṃ praharatyavivēkinām | haratyāpadamārtānāṃ vitaratyamahātmanām || 20 ||

This self wakens those who are asleep, and strikes those without judgment. It removes trouble from the suffering, and gives even to the small-minded.

यह आत्मा सोए हुओं को जगाता है, और नासमझों पर प्रहार करता है। यह दुखियों की मुसीबत दूर करता है, और छोटे दिल वालों को भी देता है।

5.35.21

विचरत्येष लोकेषु जीव एव जगत्स्थितौ । विलसत्येव भोगेषु प्रस्फुरत्येव वस्तुषु ॥ २१ ॥

vicaraty eṣa lokeṣu jīva eva jagatsthitau | vilasaty eva bhogeṣu prasphuraty eva vastuṣu || 21 ||

As the living self, it wanders through the worlds for as long as the world lasts. It plays and shines in every pleasure, it flashes in every thing.

जीव के रूप में, यह जब तक जगत रहता है तब तक लोकों में विचरण करता है। यह हर सुख में चमकता-खेलता है, यह हर वस्तु में झलकता है।

5.35.22

आत्मनात्मानमेवातः शान्तेनानुभवन्भवी । स्थितः सर्वेषु देहेषु तीक्ष्णत्वं मरिचेष्विव ॥ २२ ॥

ātmanātmānam evātaḥ śāntenānubhavan bhavī | sthitaḥ sarveṣu deheṣu tīkṣṇatvaṃ mariceṣv iva || 22 ||

So this self, calm and at peace, experiences only itself, by itself. It lives inside every body, the way sharpness lives inside a peppercorn.

इसलिए यह आत्मा, शांत रहते हुए, अपने आप को अपने आप से ही अनुभव करता है। यह हर शरीर में उसी तरह बसा है जैसे काली मिर्च में तीखापन बसा होता है।

5.35.23

चेतनाकलनारूपी सबाह्याभ्यन्तराश्रितः । जगत्पदार्थसंभारे सत्तासामान्यमास्थितः ॥ २३ ॥

cetanākalanārūpī sabāhyābhyantarāśritaḥ | jagatpadārthasaṃbhāre sattāsāmānyamāsthitaḥ || 23 ||

Its form is the working of awareness, resting on both the outside and the inside. In the whole mass of the world's things, it is the one existence that all of them share.

इसका रूप चेतना की गतिविधि है, जो बाहर और भीतर दोनों में टिका है। जगत की सारी वस्तुओं में, यह वह एक अस्तित्व है जो सबमें समान रूप से मौजूद है।

5.35.24

एष शून्यत्वमाकाशे स्पन्द एष सदागतौ । प्रकाशश्चैव तेजस्तु पयस्स्वेष रसः परः ॥ २४ ॥

eṣa śūnyatvam ākāśe spanda eṣa sadāgatau | prakāśaś caiva tejastu payassveṣa rasaḥ paraḥ || 24 ||

It is the emptiness in the sky, it is the movement in the wind. It is the light in fire, and it is the taste, above all, in water.

यह आकाश में खालीपन है, यह हवा में गति है। यह आग में रोशनी है, और यह पानी में वह सबसे बड़ा स्वाद है।

5.35.25

काठिन्यमवनावेवमौष्ण्यमेव हुताशने । शैत्यमेष निशानाथे सत्ता चैष जगद्गणे ॥ २५ ॥

kāṭhinyam avanāv evam auṣṇyam eva hutāśane | śaityam eṣa niśānāthe sattā caiṣa jagadgaṇe || 25 ||

It is hardness in the earth, and heat in fire. It is coolness in the moon, and it is the very being in the whole mass of the world.

यह पृथ्वी में कठोरता है, और आग में गर्मी है। यह चाँद में ठंडक है, और यह पूरे जगत के समूह में अस्तित्व है।

5.35.26

मषीपिण्डे यथा काष्ण्यं शैत्यं हिमकणे यथा । यथा पुष्पेषु सौगन्ध्यं देहे देहपतिस्तथा ॥ २६ ॥

maṣīpiṇḍe yathā kārṣṇyaṃ śaityaṃ himakaṇe yathā | yathā puṣpeṣu saugandhyaṃ dehe dehapatistathā || 26 ||

As blackness is in a lump of soot, as coldness is in a flake of snow, as fragrance is in flowers - so is the lord of the body present in the body.

जैसे कालिख के लोंदे में कालापन है, जैसे बर्फ के कण में ठंडक है, जैसे फूलों में खुशबू है - वैसे ही देह का स्वामी देह में है।

5.35.27

यथा सर्वगता सत्ता कालः सर्वगतो यथा । प्रभुशक्तिर्मही यस्य सर्वदेशगता यथा ॥ २७ ॥

yathā sarvagatā sattā kālaḥ sarvagato yathā | prabhuśaktirmahī yasya sarvadeśagatā yathā || 27 ||

Just as existence reaches everywhere, and time reaches everywhere, and the land of a mighty king reaches into every region his power touches,

जैसे अस्तित्व हर जगह फैला है, और समय हर जगह फैला है, और किसी शक्तिशाली राजा की भूमि उसकी ताकत जहाँ तक पहुँचे वहाँ तक फैली रहती है,

5.35.28

रूपालोकमनस्कारयुक्तं सत्त्वं तथात्मनः । नित्यः सोऽयं महादेवो देवानामेव बोधकः ॥ २८ ॥

rūpālokamanaskārayuktaṃ sattvaṃ tathātmanaḥ | nityaḥ so'yaṃ mahādevo devānāmeva bodhakaḥ || 28 ||

so the true being of the self, joined to form, appearance, and awareness, reaches everywhere too. This eternal one is the great god, the very awakener of the gods.

उसी तरह आत्मा का असली स्वरूप, जो रूप, दिखावट और चेतना से जुड़ा है, हर जगह फैला है। यह सनातन आत्मा ही महादेव है, जो देवताओं को भी जगाने वाला है।

5.35.29

अहमेवास्मि मे नास्ति कलनापि किलेतरा । रेणुनेवाणुना व्योम्नि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २९ ॥

ahamevāsmi me nāsti kalanāpi kiletarā | reṇunevāṇunā vyomni padmapatramivāmbhasā || 29 ||

I alone exist. I have no other contact with anything at all - the way empty space is not touched by a speck of dust, the way a lotus leaf is not wetted by water.

मैं ही हूँ, बस मैं। मेरा किसी और चीज़ से कोई संबंध नहीं है - जैसे आकाश धूल के एक कण से नहीं छूता, जैसे कमल का पत्ता पानी से नहीं भीगता।

5.35.30

संभ्रमेणेव पाषाणे संबन्धो मयि नेतरैः । सुखदुःखश्रियो देहे मा पतन्तु पतन्तु वा ॥ ३० ॥

saṃbhraemeṇeva pāṣāṇe saṃbandho mayi netaraiḥ | sukhaduḥkhaśriyo dehe mā patantu patantu vā || 30 ||

As one imagines a bond with a mere stone out of confusion, so is any bond of mine with anything other than myself. Let pleasure, pain, and fortune fall on this body, or let them not fall.

जैसे भ्रम में पड़कर किसी पत्थर से नाता जोड़ लिया जाता है, वैसे ही मेरा अपने सिवा किसी और चीज़ से नाता है। इस शरीर पर सुख, दुख और वैभव आएँ, या न आएँ।

5.35.31

तुम्बकोपरि धाराश्च का नः क्षतिरुपस्थिता । दीपाङ्गातिगतो रज्वा नालोको बध्यते यथा ॥ ३१ ॥

tumbakopari dhārāśca kā naḥ kṣatirupasthitā | dīpāṅgātigato rajvā nāloko badhyate yathā || 31 ||

What harm comes to us, like streams of water poured on a gourd? Just as light spreading out beyond a lamp cannot be tied down with a rope.

जैसे तूंबे पर पानी की धाराएँ गिरें, तो हमें क्या नुक़सान होता है? जैसे दीये से बाहर फैला प्रकाश रस्सी से नहीं बाँधा जा सकता, वैसे ही।

5.35.32

तथा नायमहं बद्धः सर्वभावगणातिगः । संबन्धः कोऽस्तु नः कामैर्भावाभावैरथेन्द्रियैः ॥ ३२ ॥

tathā nāyamahaṃ baddhaḥ sarvabhāvagaṇātigaḥ | saṃbandhaḥ ko'stu naḥ kāmairbhāvābhāvairathendriyaiḥ || 32 ||

So this I am not bound — I have gone beyond every host of states of being. What bond could there be for me with desires, with existence and non-existence, or with the senses?

इसलिए यह मैं बंधा हुआ नहीं हूँ — मैं हर तरह की अवस्थाओं के परे जा चुका हूँ। फिर इच्छाओं से, होने-न-होने से, या इंद्रियों से मेरा कैसा नाता?

5.35.34

कुम्भे भग्ने क्षते क्षीणे कुम्भाकाशस्य का क्षतिः । पिशाचक इवादृश्यो मनो नामोदितं मुधा ॥ ३४ ॥

kumbhe bhagne kṣate kṣīṇe kumbhākāśasya kā kṣatiḥ | piśācaka ivādṛśyo mano nāmoditaṃ mudhā || 34 ||

When a pot breaks, is damaged, or wears away, what harm comes to the space inside the pot? Just so, this thing called the mind, invisible like a little ghost, has arisen for nothing.

घड़ा टूटे, फूटे या घिस जाए, तो घड़े के भीतर के आकाश को क्या हानि होती है? वैसे ही, मन नाम की यह चीज़, जो एक छोटे भूत की तरह अदृश्य है, यूँ ही व्यर्थ उठ खड़ी हुई है।

5.35.35

केन संबध्यते व्योम केन संबाध्यते मनः । शरीरे शतधा याते खण्डना का शरीरिणः ॥ ३५ ॥

kena saṃbadhyate vyoma kena saṃbādhyate manaḥ | śarīre śatadhā yāte khaṇḍanā kā śarīriṇaḥ || 35 ||

By what is the sky bound? By what is the mind troubled? When the body breaks into a hundred pieces, what division befalls the one who dwells in it?

आकाश किससे बँधा है? मन किससे व्याकुल होता है? जब शरीर सौ टुकड़ों में बिखर जाए, तो उसमें रहने वाले को क्या हानि होती है?

5.35.36

अभवत्पूर्वमद्यैका संपन्नाऽतनुनिर्वृतिः । अन्यो भुङ्क्तेऽन्य आदत्तेऽप्यन्यस्यानर्थसंकटः ॥ ३६ ॥

abhavatpūrvamadyaikā saṃpannā'tanunirvṛtiḥ | anyo bhuṅkte'nya ādatte'pyanyasyānarthasaṃkaṭaḥ || 36 ||

Earlier it was this way; today a single, boundless peace has come to be. One enjoys, another takes, and the trouble belongs to yet a third.

पहले यह हाल था; आज एक विशाल शांति आ मिली है। कोई और भोगता है, कोई और लेता है, और मुसीबत किसी तीसरे की होती है।

5.35.37

अन्यः पश्यत्यहो मौर्ख्यं कस्येयं खलु चक्रिका । भुङ्क्ते प्रकृतिरादत्ते मनोदेहस्य संकटः ॥ ३७ ॥

anyaḥ paśyatyaho maurkhyaṃ kasyeyaṃ khalu cakrikā | bhuṅkte prakṛtirādatte manodehasya saṅkaṭaḥ || 37 ||

Another looks on: ah, what foolishness! Whose wheel is this indeed? Nature enjoys, nature takes; the trouble belongs to the mind and body.

कोई और देख रहा है: अरे, कैसी मूर्खता! यह चक्र आख़िर किसका है? प्रकृति भोगती है, प्रकृति लेती है; मुसीबत मन और शरीर की होती है।

5.35.38

दुष्टात्मा मौर्ख्यमस्तीह न किंचित्केवले क्षतिः । न मे भोगस्थितौ वाञ्छा न च भोगविवर्जने ॥ ३८ ॥

duṣṭātmā maurkhyaṃastīha na kiṃcitkevale kṣatiḥ | na me bhogasthitau vāñchā na ca bhogavivarjane || 38 ||

The foolishness belongs to the wicked self; the pure one alone suffers no harm at all. I have no wish for enjoyment to continue, nor for it to end.

मूर्खता उस दुष्ट अहंकार की है; अकेले शुद्ध तत्व को कोई हानि नहीं होती। न मुझे भोग बने रहने की चाह है, न भोग छोड़ने की।

5.35.39

यदायाति तदायातु यत्प्रयाति प्रयातु तत् । सुखेषु मम नापेक्षा नोपेक्षा दुःखवृत्तिषु ॥ ३९ ॥

yadāyāti tadāyātu yatprayāti prayātu tat | sukheṣu mama nāpekṣā nopēkṣā duḥkhavṛttiṣu || 39 ||

Let what comes, come; let what goes, go. I have no craving for pleasures, and no need to turn away from suffering.

जो आए, आए; जो जाए, जाए। न मुझे सुखों की चाह है, न दुखों से मुँह मोड़ने की ज़रूरत।

5.35.40

सुखदुःखान्युपायान्तु यान्तु वाप्यहमेषु कः । वासना विविधा देहे त्वस्तं चोदयमेव वा ॥ ४० ॥

sukhaduḥkhānyupāyāntu yāntu vāpyahameṣu kaḥ | vāsanā vividhā dehe tvastaṃ codayameva vā || 40 ||

Let pleasures and pains come, or let them go — what am I amid these? Let the many impressions in the body set, or rise.

सुख-दुख आएँ, या चले जाएँ — इनके बीच मैं कौन हूँ? शरीर में तरह-तरह की आदतें उठें या शांत हो जाएँ।

5.35.41

प्रयान्तु नाहमेतासु न चैता मम काश्चन । एतावन्तमहं कालमज्ञानरिपुणा हतः ॥ ४१ ॥

prayāntu nāhame tāsu na caitā mama kāścana | etāvantamahaṃ kālamajñānaripuṇā hataḥ || 41 ||

Let them go; I am not caught up in them, nor are they mine at all. For so long a time I was struck down by the enemy, ignorance.

वे चली जाएँ; न मैं उनमें उलझा हूँ, न वे कभी मेरी थीं। इतने लंबे समय तक मैं अज्ञान नामक शत्रु से मारा गया।

5.35.42

हृत्वा विवेकसर्वस्वमेकान्तमवपोथितम् । वैष्णवेन प्रसादेन स्वसमुत्थेन चारुणा ॥ ४२ ॥

hṛtvā vivekasarvasvamekāntamavapothitam| vaiṣṇavena prasādena svasamutthena cāruṇā || 42 ||

It had robbed me of my whole wealth of discernment and crushed it completely; then, through Vishnu's own lovely, spontaneous grace,

उसने मेरे विवेक का सारा धन छीनकर उसे पूरी तरह कुचल दिया था; फिर, विष्णु की अपनी ही सुंदर, स्वतःस्फूर्त कृपा से,

5.35.43

इदानीं संपरिज्ञाय मयैष परिमोषितः । अहंकारपिशाचोऽयं शरीरतरुकोटरात् ॥ ४३ ॥

idānīṃ saṃparijñāya mayaiṣa parimoṣitaḥ| ahaṃkārapiśāco'yaṃ śarīratarukoṭarāt || 43 ||

having now fully recognized it, I have plundered this ego-ghost from the hollow in the tree that is my body.

अब इसे पूरी तरह पहचानकर, मैंने इस अहंकार-रूपी भूत को अपने शरीर-वृक्ष की खोखल से लूट लिया है।

5.35.44

परावबोधमन्त्रेण मयेदानीमपाकृतः। निरहंकारयक्षोऽयं मच्छरीरमहाद्रुमः ॥ ४४ ॥

parāvabodhamantreṇa mayedānīmapākṛtaḥ| nirahaṃkārayakṣo'yaṃ maccharīramahādrumaḥ || 44 ||

By the spell of supreme awakening, I have now driven it out: this great tree that is my body stands free of the ego-spirit.

परम बोध के मंत्र से मैंने अब इसे भगा दिया है: मेरे शरीर का यह विशाल वृक्ष अब अहंकार-रूपी यक्ष से मुक्त खड़ा है।

5.35.45

पुण्यतामलमायातः प्रफुल्ल इव राजते। प्रशान्तमोहदारिद्र्यो दुराशादोषसंक्षये ॥ ४५ ॥

puṇyatāmalamāyātaḥ praphulla iva rājate| praśāntamohadāridryo durāśādoṣasaṃkṣaye || 45 ||

Having come fully into purity, it shines like a tree in full blossom, the poverty of delusion stilled in it, the fault of false hope destroyed.

पूरी तरह पवित्रता को प्राप्त होकर, वह पूरी तरह खिले हुए वृक्ष जैसा चमकता है; उसमें मोह की दरिद्रता शांत हो चुकी है, झूठी आशा का दोष मिट चुका है।

5.35.46

विवेकधनसंभारान्स्थितोऽस्मि परमेश्वरः। ज्ञातं ज्ञातव्यमखिलं दृष्टा द्रष्टव्यदृष्टयः ॥ ४६ ॥

vivekadhanasaṃbhārānssthito'smi parameśvaraḥ| jñātaṃ jñātavyamakhilaṃ dṛṣṭā draṣṭavyadṛṣṭayaḥ || 46 ||

Having gained the whole wealth of discernment, I stand as the supreme lord. All that is to be known, I have known; all that is worth seeing, I have seen.

विवेक का सारा धन पाकर, मैं परम ईश्वर के रूप में खड़ा हूँ। जो कुछ जानने योग्य था, वह मैंने जान लिया है; जो कुछ देखने योग्य था, वह मैंने देख लिया है।

5.35.47

तत्प्राप्तमधुना येन नाप्राप्तमवशिष्यते। दिष्ट्या दूरोज्झितानर्थामपेतविषयोरगाम् ॥ ४७ ॥

tatprāptamadhunā yena nāprāptamavaśiṣyate | diṣṭyā dūrojhitānarthāmapetaviṣayoragām || 47 ||

Now I have attained that beyond which nothing remains unattained — by good fortune, a state far removed from misfortune, free of the serpent of sense-pleasures,

अब मैंने वह पा लिया है जिसके आगे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता — सौभाग्य से, एक ऐसी अवस्था जो दुर्भाग्य से बहुत दूर है, इंद्रिय-सुखों के साँप से मुक्त,

5.35.48

संशान्तमोहनीहारां शान्ताशामृगतृष्णिकाम्। रजोरहितसर्वाशां शीतलोपशमद्रुमाम् ॥ ४८ ॥

saṃśāntamohanīhārāṃ śāntāśāmṛgatṛṣṇikām | rajorahitasarvāśāṃ śītalopaśamadrumām || 48 ||

whose mist of delusion is fully stilled, whose mirage of false hope has gone quiet, every hope free of passion's dust, a cool tree of perfect peace,

जिसमें मोह का कुहासा पूरी तरह थम गया है, जिसमें झूठी आशा का मृगजल शांत हो गया है, हर आशा रज से मुक्त है, जो शांति का शीतल वृक्ष है,

5.35.49

प्राप्तोऽस्मि विततां भूमिमुन्नतां पारमार्थिकीम्। स्तुत्या प्रणत्या विज्ञप्त्या शमेन नियमेन च ॥ ४९ ॥

prāpto'smi vitatāṃ bhūmimunnatāṃ pāramārthikīm | stutyā praṇatyā vijñaptyā śamen niyamen ca || 49 ||

I have attained this vast and exalted state of ultimate reality, through praise, through prostration, through humble entreaty, through tranquility, and through discipline.

मैंने यह विशाल और उन्नत परम सत्य की अवस्था स्तुति से, प्रणाम से, विनम्र प्रार्थना से, शांति से और संयम से पाई है।

5.35.50

लब्धोऽयं भगवानात्मा दृष्टश्चाधिगतः स्फुटम्। अहंकारपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः ॥ ५० ॥

labdho'yaṃ bhagavānātmā dṛṣṭaścādhigataḥ sphuṭam | ahaṃkārapadātītaścirātsaṃsmṛtimāgataḥ || 50 ||

This blessed Self has been gained, seen, and clearly realized — beyond the reach of the ego, and after so long, at last remembered.

यह पूज्य आत्मा प्राप्त हो गई है, देख ली गई है, और साफ़-साफ़ जान ली गई है — अहंकार की पहुँच से परे, और इतने लंबे समय बाद अंततः याद आ गई है।

5.35.51

स्वभावाद्भगवानात्मा विष्णोर्ब्रह्म सनातनम्। इन्द्रियोरगगर्तेषु मरणश्वभ्रभूमिषु ॥ ५१ ॥

svabhāvādbhagavānātmā viṣṇorbrahma sanātanam | indriyoragagarteṣu maraṇaśvabhrabhūmiṣu || 51 ||

By its own nature, the blessed Self is the eternal Brahman of Vishnu. In the pits of the senses' serpents, in the ground of death's chasms,

अपने स्वभाव से ही, पूज्य आत्मा विष्णु का सनातन ब्रह्म है। इंद्रियों के साँपों के गड्ढों में, मृत्यु की खाइयों की भूमि में,

5.35.52

तृष्णाकरञ्जकुञ्जेषु कामकोलाहलेषु च। वासनावनजालेषु जन्मकूपान्तरेषु च ॥ ५२ ॥

tṛṣṇākarañjakuñjeṣu kāmakolāhaleṣu ca | vāsanāvanajāleṣu janmakūpāntareṣu ca || 52 ||

in the thorny thickets of craving, in the noise of desire, in the tangled forests of old habits, in the depths of the wells of birth,

तृष्णा की कँटीली झाड़ियों में, वासना के शोर में, पुरानी आदतों के उलझे जंगलों में, जन्म के कुओं की गहराई में,

5.35.53

दुःखदावाग्निदाहेषु दुःखदावाग्निहारिषु। पातोत्पातदशालक्षैर्मज्जनोन्मज्जनभ्रमैः ॥ ५३ ॥

duḥkhadāvāgnidāheṣu duḥkhadāvāgnihāriṣu | pātotpātadaśālakṣairmajjjanonmajjjanabhramaiḥ || 53 ||

through the burnings of sorrow's wildfire, through its ravaging blaze, through hundreds of thousands of falls and calamities, through the whirl of sinking and rising,

दुख की जंगल की आग की जलन से, उसकी विनाशकारी लपट से, लाखों गिरावटों और मुसीबतों से, डूबने-उतराने के भँवर से,

5.35.54

आविर्भावतिरोभावैराशापाशविचेष्टनैः। अहं चिरमहंकारद्विषा समवमोषितः ॥ ५४ ॥

āvirbhāvatirobhāvairāśāpāśaviceṣṭanaiḥ | ahaṃ ciramahaṃkāradviṣā samavamoṣitaḥ || 54 ||

through appearings and disappearings, through the writhing noose of hope — I was, for so long, utterly plundered by the enemy, ego.

प्रकट होने और छिप जाने से, आशा के फंदे की छटपटाहट से — मैं इतने लंबे समय तक अहंकार नामक शत्रु से पूरी तरह लुटता रहा।

5.35.55

निशायामल्पवीर्यात्मा पिशाचेनेव जङ्गले । स्वयमेव त्वथेदानीं क्रियाशक्त्या स्वयैव हि ॥ ५५ ॥

niśāyāmalpavīryātmā piśācenaiva jaṅgale | svayameva tvathedānīṃ kriyāśaktyā svayaiva hi || 55 ||

Just as one weak in strength, at night in the wilderness, is seized by a ghost — so was I. But now, by my own power of action indeed,

जैसे रात में जंगल में कमज़ोर व्यक्ति को भूत पकड़ लेता है — वैसा ही मैं था। पर अब, अपनी ही क्रिया-शक्ति से,

5.35.56

शौरिणा व्यपदेशेन विवेकश्रीर्विबोधिता । प्रबुद्धे भवतीशाने तमहंकारराक्षसम् ॥ ५६ ॥

śauriṇā vyapadeśena vivekaśrīrvibodhitā | prabuddhe bhavatīśāne tamahaṃkārarākṣasam || 56 ||

through the name of Shauri, the glory of discernment was awakened; when you, O Lord, became awake — that ego-demon,

शौरि के नाम के बहाने विवेक की देवी जाग उठी; जब आप, हे ईश, जाग उठे — उस अहंकार-रूपी राक्षस को,

5.35.57

न पश्यामि नभोदीपे ज्वलिते तिमिरं यथा । तस्याहंकारयक्षस्य मनोविवरवासिनः ॥ ५७ ॥

na paśyāmi nabhodīpe jvalite timiraṃ yathā | tasyāhaṃkārayakṣasya manovivaravāsinaḥ || 57 ||

I no longer see, just as darkness is nowhere to be seen when the lamp of the sky blazes — that ego-spirit who dwells in the hollow of the mind,

मैं अब नहीं देखता, जैसे आकाश का दीया जल उठे तो अंधकार कहीं नज़र नहीं आता — उस अहंकार-रूपी यक्ष को, जो मन की खोखल में बसता था,

5.35.58

दीपस्येव प्रशान्तस्य न वेद्मि गतिमीश्वरः । दृष्ट एव त्वयीशाने पलायनपरायणः ॥ ५८ ॥

dīpasyaiva praśāntasya na vedmi gatimīśvaraḥ | dṛṣṭa eva tvayīśāne palāyanaparāyaṇaḥ || 58 ||

I do not know where it has gone, like the path of an extinguished lamp — it was seen, right before you, O Lord, bent on flight.

मुझे नहीं पता वह कहाँ गया, जैसे बुझे हुए दीये का मार्ग कोई नहीं जानता — वह आपके सामने ही, हे ईश, भागने पर तुला हुआ दिखा था।

5.35.59

संपन्नो मदहंकारश्चोरः सूर्योदये यथा । असदभ्युत्थिते तस्मिन्नहंकारे पिशाचवत् ॥ ५९ ॥

saṃpanno madahaṃkāraścoroḥ sūryodaye yathā | asadabhyutthite tasminnahaṃkāre piśācavat || 59 ||

My ego became like a thief caught at sunrise — that unreal ego had appeared only like a ghost.

मेरा अहंकार सूर्योदय पर पकड़े गए चोर जैसा हो गया — वह झूठा अहंकार तो बस भूत की तरह प्रकट हुआ था।

5.35.60

गते तिष्ठाम्यहं स्वस्थो निर्गोनस इव द्रुमः । शाम्यामि परिनिर्वामि जगत्यस्मिन्प्रबोधवान् ॥ ६० ॥

gate tiṣṭhāmyahaṃ svastho nirgonasa iva drumaḥ | śāmyāmi parinirvāmi jagatyasminprabodhavān || 60 ||

Now that he is gone, I stay at ease in myself, like a tree with no snake in it. I have grown calm, I have found complete peace, and I am awake in this world.

अब जब वह जा चुका है, मैं अपने भीतर आराम से हूँ, जैसे कोई ऐसा पेड़ जिसमें साँप न हो। मैं शांत हो गया हूँ, मुझे पूरी शांति मिल गई है, और मैं इस दुनिया में जागा हुआ हूँ।

5.35.61

तस्करेणोज्झितोऽस्मीति निवृर्तोऽस्मि चिरोदयम् । शैत्यमभ्यागतोस्म्यन्तः शान्ताशामृगतृष्णिकः ॥ ६१ ॥

taskareṇojjhito'smīti nivṛrto'smi cirodayam | śaityamabhyāgato'smyantaḥ śāntāśāmṛgatṛṣṇikaḥ || 61 ||

Thinking, the thief has let me go, I have turned back at long last. I have grown cool inside, and the mirage of my longing has gone quiet.

यह सोचकर कि चोर ने मुझे छोड़ दिया, मैं आखिरकार लौट आया हूँ। मैं भीतर से ठंडा हो गया हूँ, और मेरी चाहत का मृगजल अब शांत हो गया है।

5.35.62

प्रावृडम्बुभरस्नातः शान्तदाव इवाचलः । प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदे स्वार्थविचारतः ॥ ६२ ॥

prāvṛḍambubharasnātaḥ śāntadāva ivācalaḥ | pramārjitehamityasminpade svārthavicārataḥ || 62 ||

Like a mountain bathed in the heavy rain of the monsoon, its wildfire put out, I have become clean in this state, by looking closely into my own true nature.

जैसे कोई पहाड़ बरसात की भारी बारिश में नहा जाए और उसकी जंगल की आग बुझ जाए, वैसे ही मैं इस हालत में साफ हो गया हूँ, अपने असली स्वरूप को गहराई से देखकर।

5.35.63

को मोहः कानि दुःखानि काः कदाशाः क आधयः । नरकस्वर्गमोक्षादिभ्रमाः सत्यामहंकृतौ ॥ ६३ ॥

ko mohaḥ kāni duḥkhāni kāḥ kadāśāḥ ka ādhayaḥ | narakasvargamokṣādibhramāḥ satyāmahankṛtau || 63 ||

What is delusion now? What are sorrows? What are bad desires? What are worries? Hell, heaven, freedom, and everything like them are only mistakes that show up when the feeling I am this is taken as real.

अब मोह क्या है? दुख क्या हैं? बुरी इच्छाएँ क्या हैं? चिंताएँ क्या हैं? नरक, स्वर्ग, मुक्ति और ऐसी सारी चीज़ें बस भ्रम हैं, जो तभी दिखती हैं जब मैं यही हूँ का यह एहसास सच माना जाए।

5.35.64

भित्तावेव प्रवर्तन्ते चित्रेहा न नभस्तले । अहंकारकलापित्ते चित्ते ज्ञानचमत्कृतिः । न राजतेंऽशुके म्लाने यथा कुङ्कुमरञ्जना ॥ ६४ ॥

bhittāveva pravartante citrehā na nabhastale | ahaṃkārakalāpitte citte jñānacamatkṛtiḥ | na rājateṃ'śuke mlāne yathā kuṅkumarañjanā || 64 ||

Picture-making happens only on a wall, not in the open sky. In a mind covered with the streaks of ego, the wonder of true knowledge does not shine, just as the colour of saffron does not show on a faded cloth.

तस्वीर बनाने का काम दीवार पर ही होता है, खुले आकाश में नहीं। जिस मन पर अहंकार की धारियाँ छाई हों, उसमें सच्चे ज्ञान की चमक नहीं दिखती, ठीक वैसे ही जैसे मुरझाए कपड़े पर केसर का रंग नहीं दिखता।

5.35.65

निरहंकारजलदे तृष्णासारविवर्जिते । भाति चित्तशरद्व्योम्नि स्वच्छता कान्तिशालिनी ॥ ६५ ॥

nirahaṃkārajalade tṛṣṇāsāravivarjite | bhāti cittaśaradvyomni svacchatā kāntiśālinī || 65 ||

When the cloud of ego has cleared away, and the rain of craving has stopped, the mind shines like an autumn sky, clear and beautifully bright.

जब अहंकार का बादल छँट जाता है और चाहत की बारिश रुक जाती है, तो मन शरद ऋतु के आकाश जैसा साफ और खूबसूरत उजाला बिखेरता है।

5.35.66

निरहंकारपङ्काय संप्रसन्नान्तराय च । मह्यमानन्दसरसे तुभ्यमात्मन्नमो नमः ॥ ६६ ॥

nirahaṃkārapaṅkāya saṃprasannāntarāya ca | mahyamānandasarase tubhyamātmannamo namaḥ || 66 ||

Salutations, again and again, my own self, to you, my lake of joy, free of the mud of ego, calm and clear all the way down.

बार-बार प्रणाम, हे मेरी आत्मा, तुझे, जो मेरे लिए आनंद की झील है, अहंकार के कीचड़ से मुक्त, और जो अंदर तक साफ और शांत है।

5.35.67

शान्तेन्द्रियोग्रग्राहाय क्षीणचित्तौर्ववह्नये । आनन्दाम्बुधये तुभ्यं मह्यमात्मन्नमो नमः ॥ ६७ ॥

śāntendriyogragrāhāya kṣīṇacittaurvavahnaye | ānandāmbudhaye tubhyaṃ mahyamātmannamo namaḥ || 67 ||

Salutations, again and again, my own self, to you, my ocean of joy, whose fierce crocodiles, the senses, have grown calm, and whose fire deep under the water, the fire of the mind, has died down.

बार-बार प्रणाम, हे मेरी आत्मा, तुझे, जो मेरे लिए आनंद का समुद्र है, जिसके भयानक मगरमच्छ यानी इंद्रियाँ अब शांत हो गई हैं, और जिसके भीतर पानी के नीचे की आग यानी मन की आग बुझ चुकी है।

5.35.68

गताहंकारमेघाय शान्ताशादाववह्नये । मह्यमानन्दशैलाय विभ्रान्ताय नमो नमः ॥ ६८ ॥

gatāhaṃkārameghāya śāntāśādāvavahnaye | mahyamānandaśailāya vibhrāntāya namo namaḥ || 68 ||

Salutations, again and again, to you, my mountain of joy, whose cloud of ego is gone, whose forest fire of desire has grown calm, and who now roams free.

बार-बार प्रणाम तुझे, जो मेरे लिए आनंद का पर्वत है, जिस पर से अहंकार का बादल हट गया है, जिसकी इच्छा की जंगल-आग शांत हो गई है, और जो अब आज़ाद होकर विचरता है।

5.35.69

प्रफुल्लानन्दपद्माय शान्तचिन्तामयोर्मवे । मह्यं सन्मानसायात्मंस्तुभ्यमन्तर्नमो नमः ॥ ६९ ॥

praPhullānandapadmāya śāntacintāmayormave | mahyaṃ sanmānasāyātmaṃstubhyamantarnamo namaḥ || 69 ||

Salutations, again and again, from within, my own self, to you, my true Manasa lake, whose lotus of joy has bloomed, and whose waves of worried thought have grown still.

भीतर से बार-बार प्रणाम, हे मेरी आत्मा, तुझे, जो मेरे लिए सच्चा मानसरोवर है, जिसका आनंद का कमल खिल उठा है, और जिसकी चिंता भरी लहरें अब थम गई हैं।

5.35.70

संविदाभासपक्षाय पद्मकोटरवासिने । सर्वमानसहंसाय स्वात्मनेऽन्तर्नमो नमः ॥ ७० ॥

saṃvidābhāsapakṣāya padmakoṭaravāsine | sarvamānasahaṃsāya svātmane'ntarnamo namaḥ || 70 ||

Salutations, again and again, from within, to my own self, the swan of every mind, whose wings are the shining light of awareness, who lives in the cup of the lotus.

भीतर से बार-बार प्रणाम मेरी अपनी आत्मा को, जो हर मन का हंस है, जिसके पंख चेतना की चमकती रोशनी हैं, और जो कमल की कटोरी में रहता है।

5.35.71

कलाकलितरूपाय निष्कलायामृतात्मने । सदोदिताय पूर्णात्मन् शशिने ते नमो नमः ॥ ७१ ॥

kalākalitarūpāya niṣkalāyāmṛtātmane | sadoditāya pūrṇātman śaśine te namo namaḥ || 71 ||

Salutations, again and again, to you, whole and complete self, the moon whose shape is made of changing phases, yet who has no parts at all, whose nature is nectar, and who is always risen and never sets.

बार-बार प्रणाम तुझे, हे पूर्ण आत्मा, जो वह चाँद है जिसका रूप बदलती कलाओं से बना है, फिर भी जिसका कोई हिस्सा नहीं, जिसका स्वभाव अमृत है, और जो हमेशा उगा रहता है, कभी डूबता नहीं।

5.35.72

सदोदिताय शान्ताय महाहृद्ध्वान्तहारिणे । सर्वगायाप्यदृश्याय चित्सूर्याय नमो नमः ॥ ७२ ॥

sadoditāya śāntāya mahāhṛddhvāntahāriṇe | sarvagāyāpyadṛśyāya citsūryāya namo namaḥ || 72 ||

Salutations, again and again, to the sun of awareness, always risen, calm, who clears away the great darkness of the heart, and who is present everywhere yet cannot be seen.

बार-बार प्रणाम चेतना के उस सूरज को, जो हमेशा उगा रहता है, शांत है, हृदय के घने अंधेरे को दूर करता है, और जो हर जगह है फिर भी दिखाई नहीं देता।

5.35.73

अस्नेहस्नेहदीपाय वृत्तिनिष्क्रान्तवर्तिने । स्वभावाधारधीराय चिद्दीपाय नमो नमः ॥ ७३ ॥

asnehasnehadīpāya vṛttiniṣkrāntavartine | svabhāvādhāradhīrāya ciddīpāya namo namaḥ || 73 ||

Salutations, again and again, to the lamp of awareness, burning with an oil that is not worldly oil, its wick gone beyond all flickering thought, steady, resting on its own true nature.

बार-बार प्रणाम चेतना के उस दीये को, जो बिना सांसारिक तेल के जलता है, जिसकी बाती हर हिलती-डुलती सोच से आगे निकल चुकी है, जो स्थिर है और अपने ही असली स्वभाव पर टिका है।

5.35.74

मदनानलसंतप्ते शीतेन मनसा मनः । भग्नमन्तर्मया तप्तमयसेव बलादयः ॥ ७४ ॥

madanānalasaṃtapte śītena manasā manaḥ | bhagnamantarmayā taptamayaseva balādayaḥ || 74 ||

With a cool mind, I have broken from within the mind that was burning with the fire of desire, the way heated iron is broken by force.

एक ठंडे मन से मैंने भीतर से उस मन को तोड़ दिया है जो इच्छा की आग में जल रहा था, ठीक वैसे ही जैसे गरम लोहे को ज़ोर लगाकर तोड़ा जाता है।

5.35.75

इन्द्रियेणेन्द्रियं छित्त्वा छित्त्वा च मनसा मनः । अहंकृतिमहंकृत्या छित्त्वा शेषो जयाम्यहम् ॥ ७५ ॥

indriyeṇendriyaṃ chittvā chittvā ca manasā manaḥ | ahaṃkṛtimahaṃkṛtyā chittvā śeṣo jayāmyaham || 75 ||

I cut one sense with another sense, I cut mind with mind, I cut the feeling of I with the making of I itself, and what is left of me has won.

मैंने एक इंद्रिय को दूसरी इंद्रिय से काटा, मन को मन से काटा, और मैं-पन के भाव को मैं-पन से ही काट दिया, और जो मेरा हिस्सा बचा है, वही जीत गया है।

5.35.76

भावेनाभावमाच्छिद्य हित्वा तृष्णामतृष्णया । निष्पिष्य प्रज्ञयाऽप्रज्ञां ज्ञोऽज्ञः सत्योसि ते नमः ॥ ७६ ॥

bhāvenābhāvamācchidya hitvā tṛṣṇāmatṛṣṇayā | niṣpiṣya prajñayā'prajñāṃ jño'jñaḥ satyosi te namaḥ || 76 ||

Having cut away not-being with being, having given up craving through freedom from craving, having ground down ignorance with knowledge, you who are both the one who knows and the one beyond knowing, you who are real, salutation to you.

अभाव को भाव से काटकर, चाहत को निष्चाहता से छोड़कर, अज्ञान को ज्ञान से पीसकर, हे तू जो जानने वाला भी है और जानने से परे भी है, हे तू जो सच है, तुझे प्रणाम।

5.35.77

मनसा मनसि च्छिन्ने निरहंकारतां गते । भावेन गलिते भावे स्वच्छस्तिष्ठामि केवलः ॥ ७७ ॥

manasā manasi chchinne nirahaṃkāratāṃ gate | bhāvena galite bhāve svacchastiṣṭhāmi kevalaḥ || 77 ||

When the mind has been cut by the mind and has reached a state with no ego, and when worldly existence has melted away through true being, I remain clear and alone.

जब मन को मन से काट दिया गया और वह बिना अहंकार की स्थिति में पहुँच गया, और जब सांसारिक भाव सच्चे होने से पिघल गया, तब मैं साफ और अकेला टिका रहता हूँ।

5.35.78

निर्भावं निरहंकारं निर्मनस्कमनीहितम् । केवलं स्पन्दशुद्धात्मन्येव तिष्ठति मे वपुः ॥ ७८ ॥

nirbhāvaṃ nirahaṃkāraṃ nirmanaskamanīhitam | kevalaṃ spandaśuddhātmanyeva tiṣṭhati me vapuḥ || 78 ||

Without a sense of being, without ego, without mind, without craving, my very body now rests only in the pure self, which is a single, pure stir of awareness.

बिना किसी भाव के, बिना अहंकार के, बिना मन के, बिना किसी चाहत के, मेरा यह शरीर अब केवल उस शुद्ध आत्मा में टिका है, जो चेतना की एक शुद्ध हलचल भर है।

5.35.79

हेलानुकम्पितानन्तविश्वेशादतिशायिनी । परमोपशमोपेता जातेयं मम निर्वृतिः ॥ ७९ ॥

helānukampitānantaviśveśādatiśāyinī | paramopaśamopetā jāteyaṃ mama nirvṛtiḥ || 79 ||

This peace of mine has come, joined with the highest calm. It is greater even than the joy that the endless lord of the universe gives merely through his play.

मेरी यह शांति आ गई है, सबसे ऊँची शांति के साथ जुड़कर। यह उस आनंद से भी बड़ी है जो अनंत ब्रह्मांड का स्वामी अपने खेल भर से देता है।

5.35.80

प्रशान्तमोहवेतालो गताहंकारराक्षसः । कदाशारूपिकोन्मुक्तो जातोऽस्मि विगतज्वरः ॥ ८० ॥

praśāntamohavetālo gatāhaṃkārarākṣasaḥ | kadāśārūpikonmukto jāto'smi vigatajvaraḥ || 80 ||

I have become one whose fever is gone. The ghost of delusion in me has grown calm, the demon of ego has left, and I am freed from the shape of wicked desire.

मैं अब वह हो गया हूँ जिसका ताप उतर चुका है। मेरे भीतर का मोह का भूत शांत हो गया है, अहंकार का राक्षस चला गया है, और मैं बुरी इच्छा के रूप से मुक्त हो गया हूँ।

5.35.81

तृष्णारज्जुगुणं छित्त्वा मच्छरीरकपञ्जरात्। न जाने क्व गतोड्डीय दुरहंकृतिपक्षिणी ॥ ८१ ॥

tṛṣṇārajjuguṇaṃ chittvā maccharīrakapañjarāt | na jāne kva gatoḍḍīya durahaṃkṛtipakṣiṇī || 81 ||

Cutting the strand of the rope of craving, the bird that was my wicked ego has flown out of the cage of my body. I do not know where it has gone.

चाहत की रस्सी का धागा काटकर, मेरा बुरा अहंकार, जो एक पंछी की तरह था, मेरे शरीर के पिंजरे से उड़ गया है। मुझे नहीं पता वह कहाँ गया।

5.35.82

उद्धूलिते घनाज्ञानकुलाये कायपादपात्। न जाने गत उड्डीय क्काहंभावविहंगमः ॥ ८२ ॥

uddhūlite ghanājñānakulāye kāyapādapāt | na jāne gata uḍḍīya kvāhaṃbhāvavihangamaḥ || 82 ||

The nest of thick ignorance in the tree of my body has been broken apart, and the bird that was the feeling I have flown away. I do not know where.

मेरे शरीर रूपी पेड़ में बना घने अज्ञान का घोंसला टूट चुका है, और मैं-पन का भाव, जो एक पंछी की तरह था, उड़ गया है। मुझे नहीं पता वह कहाँ गया।

5.35.83

दुराशादीर्घदौरात्म्यधूसरा भोगभस्मना। भयभोगिहिता दिष्ट्या भूयस्यो वासनाः क्षताः ॥ ८३ ॥

durāśādīrghadourātmyadhūsarā bhogabhasmanā | bhayabhogihitā diṣṭyā bhūyasyo vāsanāḥ kṣatāḥ || 83 ||

Luckily, so many of my old habits of mind have now been destroyed, habits grown grey with long, wicked craving, turned to ash by worldly pleasures, that used to feed the snake of fear.

अच्छी बात है कि मेरे मन की कई पुरानी आदतें अब नष्ट हो गई हैं, वे आदतें जो लंबी बुरी चाहत से धूसर हो चुकी थीं, जो सांसारिक सुखों की राख से बनी थीं, और जो डर के साँप को खिलाया करती थीं।

5.35.84

एतावन्तमहं कालं कोऽभूवं चित्रमीदृशम्। येनाहमेष मिथ्यैव दृढाहंकारतां गतः ॥ ८४ ॥

etāvantamahaṃ kālaṃ ko'bhūvaṃ citramīdṛśam | yenāhameṣa mithyaiava dṛḍhāhaṃkāratāṃ gataḥ || 84 ||

For so long a time, what had I become? How strange it is that I had fallen, falsely, into such a firm feeling of I.

इतने लंबे समय तक मैं क्या बन गया था? यह कितना अजीब है कि मैं झूठे ही मैं-पन के इतने पक्के भाव में फँस गया था।

5.35.85

अद्याहमस्मि जातोऽयमहमद्य महामतिः। अहंकारमहाभ्रेण यत्कृष्णेनालमुज्झितः ॥ ८५ ॥

adyāhamasmi jāto'yamahamadya mahāmatiḥ | ahaṃkāramahābhreṇa yatkṛṣṇenālamujjhitaḥ || 85 ||

Today I am truly born. Today I have become a person of great wisdom, because I have been fully freed from the great, dark cloud of ego.

आज मैं सच में जन्मा हूँ। आज मैं बड़ी समझ वाला बन गया हूँ, क्योंकि मैं अहंकार के बड़े, काले बादल से पूरी तरह मुक्त हो गया हूँ।

5.35.86

दृष्टोऽयमात्मा भगवांस्तथैवाधिगतो मया । आलब्धश्चानुभूतोऽङ्ग स्वानुभूतौ नियोजितः ॥ ८६ ॥

dṛṣṭo'yamātmā bhagavāṃstathaivādhigato mayā | ālabdhaścānubhūto'ṅgaṃ svānubhūtau niyojitaḥ || 86 ||

This self, the lord, has been seen, and I have reached it exactly so. I have grasped it, I have felt it directly, my friend, and I am now settled in my own direct experience of it.

इस आत्मा को, जो भगवान है, मैंने देख लिया है, और मैं ठीक उसी तक पहुँच गया हूँ। मैंने उसे पकड़ लिया है, उसे सीधे महसूस कर लिया है, मेरे मित्र, और अब मैं अपने ही सीधे अनुभव में टिका हुआ हूँ।

5.35.87

गतास्पदं गतमननं गतैषणं तिरस्कृतं निपुणमहंकृतिभ्रमैः । निरीहितं व्यपगतरागरञ्जनं विकौतुकं प्रशममिदं गतं मनः ॥ ८७ ॥

gatāspadaṃ gatamananaṃ gataiṣaṇaṃ tiraskṛtaṃ nipuṇamahaṃkṛtibhramaiḥ | nirīhitaṃ vyapagatarāgarañjanaṃ vikautukaṃ praśamamidaṃ gataṃ manaḥ || 87 ||

This mind, with no more footing, no more thinking, no more longing, having set aside the clever tricks of ego-making, free of all striving, its colour of passion faded away, free of all eagerness, has come to rest.

यह मन, जिसकी कोई ज़मीन नहीं बची, जिसकी सोच खत्म हो गई, जिसकी चाहत मिट गई, जिसने अहंकार की चालाक चालों को छोड़ दिया, जो अब किसी कोशिश से मुक्त है, जिसका मोह का रंग उतर गया है, और जो हर उत्सुकता से मुक्त है, अब चैन में आ गया है।

5.35.88

दुरुत्तराः समविषमा महापदः सुदुःसहाः प्रभवनदीर्घदोषदाः । गताः क्षयं समधिगतो महेश्वरश्चिदद्वयोऽपगतमचित्त्वमन्तरे ॥ ८८ ॥

duruttarāḥ samaviṣamā mahāpadaḥ suduḥsahāḥ prabhavanadīrghadoṣadāḥ | gatāḥ kṣayaṃ samadhigato maheśvaraścidadvayo'pagatamacittvamantare || 88 ||

The great dangers, hard to get past, some smooth-looking and some rough, very hard to bear, that used to breed long harm, have all now been destroyed. I have fully reached the great lord, awareness with no second. Inside me, all trace of dull unawareness is gone.

वे बड़े संकट, जिन्हें पार करना कठिन था, कुछ सीधे दिखने वाले और कुछ उलझे हुए, जिन्हें सहना बहुत मुश्किल था, और जो लंबा नुकसान पैदा करते थे, अब सब नष्ट हो गए हैं। मैं पूरी तरह उस महान ईश्वर तक पहुँच गया हूँ, जो चेतना है और जिसका कोई दूसरा नहीं। मेरे भीतर से जड़ता और बेहोशी का हर अंश अब जा चुका है।

Chapter 36

5.36.1

प्रह्लाद उवाच । आत्मा सर्वपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः । दिष्ट्या लब्धोऽसि भगवन्नमस्तेस्तु महात्मने ॥ १ ॥

prahlāda uvāca | ātmā sarvapadātītaścirātsaṃsmṛtimāgataḥ | diṣṭyā labdho'si bhagavannamastestu mahātmane || 1 ||

Prahlada said: The Self, which is beyond every state, has come back into my memory after a long time. By good luck I have found you, Lord; I bow to you, great soul.

प्रह्लाद ने कहा: वह आत्मा, जो हर अवस्था से परे है, बहुत समय बाद फिर मेरी याद में लौट आई है। मेरे सौभाग्य से मुझे आप मिल गए, हे भगवान; हे महान आत्मा, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

5.36.2

अभिवन्द्याथ चालोक्य चिरमालिङ्ग्यसे मया । कोऽन्यः स्यात्त्वदृते बन्धुर्भगवन्भुवनत्रये ॥ २ ॥

abhivandyātha cālokya ciramāliṅgyase mayā | ko'nyaḥ syāttvadṛte bandhurbhagavannbhuvanatraye || 2 ||

Having bowed to you and looked at you, I hold you in a long embrace. Lord, who else could be my kinsman in the three worlds besides you?

आपको प्रणाम करके और आपको देखकर, मैं आपको बहुत देर तक गले लगाए रखता हूँ। हे भगवान, तीनों लोकों में आपके सिवा और कौन मेरा अपना हो सकता है?

5.36.3

हंसि पासि ददासि त्वं स्तौषि यासि विवल्गसि । अयं प्राप्तोसि दृष्टोसि किं करोषि क्व गच्छसि ॥ ३ ॥

haṃsi pāsi dadāsi tvaṃ stauṣi yāsi vivalgasi | ayaṃ prāptosi dṛṣṭosi kiṃ karosi kv gacchasi || 3 ||

You laugh, you protect, you give, you praise, you walk, you dance about. Now you are found, now you are seen — what are you doing, where are you going?

आप हँसते हैं, आप रक्षा करते हैं, आप देते हैं, आप स्तुति करते हैं, आप चलते हैं, आप नाचते-कूदते हैं। अभी आप मिल गए, अभी आप दिख गए — अब आप क्या कर रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं?

5.36.4

स्वसत्तापूरिताशेषविश्व विश्वजनीन भोः । सर्वत्र लक्ष्यसे नित्यमधुना क्व पलायसे ॥ ४ ॥

svasattāpūritāśeṣaviśva viśvajanīna bhoḥ | sarvatra lakṣyase nityamadhunā kv palāyase || 4 ||

You fill the whole universe with your own being, friend of the whole world. You are seen everywhere, always — where can you run away to now?

आप अपने ही अस्तित्व से पूरे विश्व को भरते हैं, आप सारे संसार के मित्र हैं। आप हर जगह, हमेशा दिखते हैं — अब आप कहाँ भाग सकते हैं?

5.36.5

आवयोरन्तरं भूरि जन्मव्यवहितान्तरम् । अदूरमद्य संपन्नं दिष्ट्या दृष्टोऽसि बान्धव ॥ ५ ॥

āvayorantaraṃ bhūri janmavyavahitāntaram | adūramadya saṃpannaṃ diṣṭyā dṛṣṭo'si bāndhava || 5 ||

The distance between us two was great, a distance kept apart by births. Today that distance is gone — by good luck I have seen you, my kinsman.

हम दोनों के बीच बहुत दूरी थी, जन्मों से बनी हुई दूरी। आज वह दूरी मिट गई — मेरे सौभाग्य से मैंने आपको देख लिया, हे मेरे अपने।

5.36.6

नमस्ते कृतकृत्याय कर्त्रे भर्त्रे नमोस्तु ते । नमः संसारवृन्ताय नित्याय विमलात्मने ॥ ६ ॥

namaste kṛtakṛtyāya kartrē bhartṛē namōstu tē | namaḥ saṃsāravṛntāya nityāya vimalātmanē || 6 ||

I bow to you, who have done all that needed doing; I bow to you, the doer, the sustainer. I bow to the stem that holds up the whole world, to the eternal one, to the stainless self.

मैं आपको प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने वह सब कर लिया है जो करना था; मैं आपको प्रणाम करता हूँ, जो करने वाले हैं, जो पालने वाले हैं। मैं उस डंठल को प्रणाम करता हूँ जो पूरे संसार को थामे हुए है, जो सदा रहने वाला है, जो निर्मल आत्मा है।

5.36.7

नमश्चक्राजहस्ताय नमश्चन्द्रार्धधारिणे । नमो विबुधनाथाय नमस्ते पद्मजन्मने ॥ ७ ॥

namaścakrājahastāya namascandrārdhadhāriṇē | namō vibudhanāthāya namastē padmajanmānē || 7 ||

I bow to you whose hand holds the discus, I bow to you who wears the crescent moon. I bow to the lord of the gods, I bow to you, the lotus-born.

मैं आपको प्रणाम करता हूँ जिनके हाथ में चक्र है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ जो अपने सिर पर आधा चाँद धारण करते हैं। मैं देवताओं के स्वामी को प्रणाम करता हूँ, मैं आपको प्रणाम करता हूँ जो कमल से जन्मे हैं।

5.36.8

वाच्यवाचकदृष्ट्यैव भेदो योऽयमिहावयोः । असत्या कल्पनैवैषा वीचिवीच्यम्भसोरिव ॥ ८ ॥

vācyavācakadṛṣṭyaiva bhēdō yō'yamihaāvayōḥ | asatyā kalpanaiṣā vīcivīcyambhasōriva || 8 ||

The difference that seems to be between us here is only a matter of the word and its meaning. This is a false idea, like the difference between one wave and another, when both are only water.

यहाँ हम दोनों के बीच जो भेद दिखता है, वह केवल शब्द और उसके अर्थ का भेद है। यह एक झूठी कल्पना है, जैसे एक लहर और दूसरी लहर में भेद हो, जबकि दोनों केवल पानी हैं।

5.36.9

त्वमेवानन्तयानन्तवस्तुवैचित्र्यरूपया । भावाभावविलासिन्या नित्ययैव विजृम्भसे ॥ ९ ॥

tvamēvānantayānantavastuvaičitryarūpayā | bhāvābhāvavilāsinyā nityayaiēva vijṛmbhasē || 9 ||

It is you alone who, through your own endless power, spread out as all this. That power takes the form of the endless variety of things, its play is appearing and disappearing, and it never ends.

आप ही अपनी अनंत शक्ति से यह सब बनकर फैले हुए हैं। वह शक्ति अनगिनत तरह की चीज़ों का रूप लेती है, उसका खेल है प्रकट होना और मिट जाना, और वह कभी समाप्त नहीं होती।

5.36.10

नमो द्रष्ट्रे नमः स्रष्ट्रे नमोऽनन्तविकासिने । नमः सर्वस्वभावाय नमस्ते सर्वगात्मने ॥ १० ॥

namō drṣṭṛē namaḥ sraṣṭṛē namō'nantavikāsinē | namaḥ sarvasvabhāvāya namastē sarvagātmanē || 10 ||

I bow to the seer, I bow to the creator, I bow to the one who unfolds without end. I bow to the one who is the nature of everything, I bow to you, the self that is present in all.

मैं देखने वाले को प्रणाम करता हूँ, मैं बनाने वाले को प्रणाम करता हूँ, मैं उसे प्रणाम करता हूँ जो बिना रुके फैलता रहता है। मैं उसे प्रणाम करता हूँ जो हर चीज़ का स्वभाव है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, वह आत्मा जो सब में मौजूद है।

5.36.11

प्रतिजन्म चिरं बह्व्यो दीर्घदुःखवता मया । त्वया मयोपदिष्टेन दग्धेनापहतौजसा ॥ ११ ॥

pratijanma ciraṃ bahvyo dīrghaduḥkhvatā mayā | tvayā mayopadiṣṭena dagdhenāpahataujasā || 11 ||

Birth after birth, for a long time, I suffered long. Though I was taught by you, I was burned, and my strength was destroyed.

जन्म-जन्म तक, बहुत समय तक, मैंने लंबा दुख झेला। आपके उपदेश पाकर भी मैं जलता रहा, और मेरी शक्ति नष्ट हो गई।

5.36.12

आलोकिता लोकदृशो दृष्टा दृष्टान्तदृष्टयः । न प्राप्तस्तत्त्वयाऽनेन किंचिदासादितं भवेत् ॥ १२ ॥

ālokitā lokadṛśo dṛṣṭā dṛṣṭāntadṛṣṭayaḥ | na prāptastattvayā'nena kiṃcidāsāditaṃ bhavet || 12 ||

I saw the sights of this world, I saw the examples that were shown to teach me, but through none of it was truth ever attained; nothing was gained.

मैंने इस संसार के दृश्य देखे, मैंने वे उदाहरण देखे जो मुझे सिखाने के लिए दिखाए गए, पर इनमें से किसी से भी सच्चाई नहीं मिली; कुछ भी हाथ नहीं लगा।

5.36.13

सर्वं मृत्काष्ठपाषाणवारिमात्रमिदं जगत् । नेहास्ति त्वदृते देव यत्प्राप्तौ नाभिवाञ्छति ॥ १३ ॥

sarvaṃ mṛtkāṣṭhapāṣāṇavārimātramidaṃ jagat | nehāsti tvadṛte deva yatprāptau nābhivāñchati || 13 ||

This whole world is nothing but earth, wood, stone and water. Except for you, God, there is nothing here whose finding leaves nothing more to wish for.

यह पूरा संसार बस मिट्टी, लकड़ी, पत्थर और पानी है। हे भगवान, आपके सिवा यहाँ ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे पाकर और कुछ पाने की इच्छा न रह जाए।

5.36.14

देवायमद्य लब्धोऽसि दृष्टोऽस्यधिगतोऽसि च । संप्राप्तोऽसि गृहीतोऽसि नमस्तेस्तु न मुह्यसि ॥ १४ ॥

devāyamadya labdho'si dṛṣṭo'syadhigato'si ca | saṃprāpto'si gṛhīto'si namaste'stu na muhyasi || 14 ||

God, today you are found, you are seen, you are known. You are fully reached, you are held — I bow to you, who are never confused.

हे भगवान, आज आप मिल गए, आप दिख गए, आप जान लिए गए। आप पूरी तरह पा लिए गए, आप थाम लिए गए — मैं आपको प्रणाम करता हूँ, जो कभी भ्रमित नहीं होते।

5.36.15

योऽक्ष्णोः कनीनिकारश्मिजालप्रोतवपुः स्थितः । देव दर्शनरूपेण कथं सोऽत्र न दृश्यते ॥ १५ ॥

yo'kṣṇoḥ kanīnikāraśmijālaprotavapuḥ sthitaḥ | deva darśanarūpeṇa kathaṃ so'tra na dṛśyate || 15 ||

You dwell woven into the very net of light in the pupils of the eyes. God, being sight itself, how can you not be seen?

आप आँखों की पुतलियों की किरणों के जाल में बुने हुए बसे हैं। हे भगवान, आप स्वयं देखने की शक्ति हैं, तो आप न दिखें, यह कैसे हो सकता है?

5.36.16

यस्त्वक्स्पर्शौ स्पृशन्सर्वं गन्धं तैलं तिले यथा। स्पर्शमन्तःकरोत्येष स कथं नानुभूयते॥ १६॥

yastvaksparśau spṛśansarvaṃ gandhaṃ tailaṃ tile yathā | sparśamantaḥkarotyeṣa sa kathaṃ nānubhūyate || 16 ||

You touch every touch felt on the skin, the way oil fills a sesame seed. You make the feeling happen inside — how can you not be felt?

आप त्वचा पर होने वाले हर स्पर्श को छूते हैं, जैसे तिल के बीज में तेल भरा होता है। भीतर अनुभूति आप ही पैदा करते हैं — फिर आप महसूस क्यों न हों?

5.36.17

यः शब्दश्रवणादन्तः शब्दशक्तिं परामृशन्। रोमाञ्चं जनयत्यङ्गे स दूरस्थः कथं भवेत्॥ १७॥

yaḥ śabdaśravaṇādantaḥ śabdaśaktiṃ parāmṛśan | romāñcaṃ janayatyange sa dūrasthaḥ kathaṃ bhavet || 17 ||

When a sound is heard, you reach inside and take hold of the power in that sound, and you make the hair on the body stand up. How could you be far away?

जब कोई आवाज़ सुनाई देती है, तो आप भीतर जाकर उस आवाज़ की शक्ति को पकड़ लेते हैं, और शरीर के रोंगटे खड़े कर देते हैं। फिर आप दूर कैसे हो सकते हैं?

5.36.18

जिह्वापल्लवलग्नानि स्वदितस्याग्रतोऽपि च। स्वदन्ते यस्य वस्तूनि स्वदते स न कस्य च॥ १८॥

jihvāpallavalagnāni svaditasya agrato'pi ca | svadante yasya vastūni svadate sa na kasya ca || 18 ||

Things that touch the tip of the tongue taste sweet right at the moment they are tasted — it is you who taste them. In whom are you not the one tasting?

जो चीज़ें जीभ की नोक को छूती हैं, वे चखे जाने के उसी पल मीठी लगती हैं — उन्हें चखने वाले आप ही हैं। किसमें आप चखने वाले नहीं हैं?

5.36.19

पुष्पगन्धानुपादाय घ्राणहस्तेन देहकम्। य आलोकयति प्रीत्या कस्यासौ न करे स्थितः॥ १९॥

puṣpagandhānupādāya ghrāṇahastena dehakam | ya ālokayati prītyā kasyāsau na kare sthitaḥ || 19 ||

With the nose as its hand, you take up the scent of flowers and take pleasure in what you sense of the body. In whose hand are you not present?

नाक को अपना हाथ बनाकर, आप फूलों की खुशबू उठाते हैं और शरीर से जो महसूस होता है उसमें आनंद लेते हैं। किसके हाथ में आप मौजूद नहीं हैं?

5.36.20

वेदवेदान्तसिद्धान्ततर्कपौराणगीतिभिः। यो गीतः स कथं ह्यात्मा विज्ञातो याति विस्मृतिं॥ २०॥

vedavedāntasiddhāntatarkapaurāṇagītibhiḥ | yo gītaḥ sa kathaṃ hyātmā vijñāto yāti vismṛtiṃ || 20 ||

The Self that is sung of in the words of the Vedas, the Vedanta, their final teachings, logic, and the Puranas — once known, how could it ever be forgotten?

वह आत्मा जिसकी चर्चा वेदों, वेदांत, उनके सिद्धांतों, तर्कशास्त्र और पुराणों में की जाती है — एक बार जान लेने पर, वह कैसे भुलाई जा सकती है?

5.36.21

सैवेह देहभोगाली सुभगापीयमद्य मे । अन्तर्न स्वदते स्वच्छे त्वयि दृष्टे परावरे ॥ २१ ॥

saiveha dehabhogālī subhagāpīyamadya me | antarna svadate svacche tvayi dṛṣṭe parāvare || 21 ||

This same string of bodily pleasures, sweet as it is, no longer tastes sweet to me inside, now that I have seen you, the pure one, who are beyond everything and within everything.

शरीर के सुखों की यही लड़ी, चाहे कितनी भी मीठी क्यों न हो, अब मुझे भीतर से मीठी नहीं लगती, क्योंकि मैंने आपको देख लिया है — वह निर्मल, जो सबसे परे भी है और सबके भीतर भी।

5.36.22

त्वया विमलदीपेन भानुः प्रकटतां गतः । त्वया शीततुषारेण चन्द्रः शिशिरतां गतः ॥ २२ ॥

tvayā vimaladīpena bhānuḥ prakaṭatāṃ gataḥ | tvayā śītatuṣāreṇa candraḥ śiśiratāṃ gataḥ || 22 ||

Through you, the spotless lamp, the sun has become bright. Through you, cool as frost, the moon has become cool.

आपके कारण, हे निर्मल दीपक, सूरज चमकीला हुआ है। आपके कारण, हे बर्फ़ जैसे ठंडे, चाँद ठंडा हुआ है।

5.36.23

त्वयैते गुरवः शैलास्त्वयैते द्युचरा धृताः । त्वयैवेयं धरा धीरा त्वयैवाम्बरमम्बरम् ॥ २३ ॥

tvayaita gurovaḥ śailāstvayaita dyucarā dhṛtāḥ | tvayaiveyaṃ dharā dhīrā tvayaivāmbaramambaram || 23 ||

Through you these heavy mountains stand. Through you these travellers of the sky are held in their place. Through you alone this steady earth stays firm. Through you alone the sky is the sky.

आपके कारण ये भारी पहाड़ खड़े हैं। आपके कारण आकाश में चलने वाले ये तारे-ग्रह अपनी जगह टिके हैं। आप ही के कारण यह स्थिर धरती टिकी है। आप ही के कारण आकाश आकाश है।

5.36.24

दिष्ट्या मत्तामसि प्राप्तो दिष्ट्या त्वत्तामहं गतः । अहं त्वं त्वमहं देव दिष्ट्या भेदोऽस्ति नावयोः ॥ २४ ॥

diṣṭyā mattāmasi prāpto diṣṭyā tvattāmahaṃ gataḥ | ahaṃ tvaṃ tvamahaṃ deva diṣṭyā bhedo'sti nāvayoḥ || 24 ||

By good luck you have become me, and by good luck I have become you. I am you, you are I, God — by good luck there is no difference between us.

मेरे सौभाग्य से आप मैं बन गए, और मेरे सौभाग्य से मैं आप बन गया। मैं आप हूँ, आप मैं हैं, हे भगवान — मेरे सौभाग्य से हम दोनों में कोई भेद नहीं है।

5.36.25

अहं त्वमितिशब्दाभ्यां पर्यायाभ्यां महात्मनः । तव वा मम वा शाखा संयुक्ताभ्यां नमोनमः ॥ २५ ॥

ahaṃ tvaṃ itiśabdābhyāṃ paryāyābhyāṃ mahātmanaḥ | tava vā mama vā śākhā saṃyuktābhyāṃ namonamaḥ || 25 ||

The two words "I" and "you" are just two names for the one great Self, whether tied to the branch called yours or the branch called mine. I bow again and again.

"मैं" और "आप" ये दो शब्द उसी एक महान आत्मा के दो नाम हैं, चाहे वे आपकी शाखा से जुड़े हों या मेरी शाखा से। मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

5.36.26

नमो मह्यमनन्ताय निरहंकाररूपिणे । नमो मह्यमरूपाय नमः समसमात्मने ॥ २६ ॥

namo mahyamanantāya nirahaṃkārarūpiṇe | namo mahyamarūpāya namaḥ samasamātmane || 26 ||

I bow to myself, the endless one, whose very form has no ego in it. I bow to myself, the formless one. I bow to the self that is the same in everyone.

मैं स्वयं को प्रणाम करता हूँ, जो अनंत है, जिसके स्वरूप में कोई अहंकार नहीं है। मैं स्वयं को प्रणाम करता हूँ, जो निराकार है। मैं उस आत्मा को प्रणाम करता हूँ जो सबमें एक समान है।

5.36.27

मय्यात्मनि समे स्वच्छे साक्षिभूते निराकृतौ । दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने स्वात्मन्येवेह तिष्ठसि ॥ २७ ॥

mayyātmani same svacche sākṣibhūte nirākṛtau | dikkālādyanavacchinne svātmanyeveha tiṣṭhasi || 27 ||

In me, the Self — the same in all, clear, the witness, without shape, not bound by place or time or anything else — you stand there in your own self alone.

मुझमें, उस आत्मा में — जो सबमें एक समान है, निर्मल है, साक्षी है, निराकार है, जो स्थान, समय या किसी और चीज़ से बंधी नहीं है — आप अपने ही स्वरूप में स्थित हैं।

5.36.28

मनः प्रक्षोभमायाति स्फुरन्तीन्द्रियवृत्तयः । शक्तिरुल्लसति स्फारा प्राणापानप्रवाहिनी ॥ २८ ॥

manaḥ prakṣobhamāyāti sphurantīndriyavṛttayaḥ | śaktirullasati sphārā prāṇāpānapravāhinī || 28 ||

The mind grows restless, and the movements of the senses begin to stir. The great power surges up, flowing as the breath that goes in and the breath that goes out.

मन बेचैन हो जाता है, और इंद्रियों की हलचलें जाग उठती हैं। वह बड़ी शक्ति उमड़ पड़ती है, अंदर जाने वाली और बाहर आने वाली साँस की तरह बहती हुई।

5.36.29

वहन्ति देहयन्त्राणि कृष्टान्याशावरत्रया चर्ममांसास्थिदिग्धानि मनःसारथिमन्ति च ॥ २९ ॥

vahanti dehayantrāṇi kṛṣṭānyāśāvaratrayā carmamāṃsāsthidigdhāni manaḥsārathimanti ca || 29 ||

The body is like a machine, dragged along by the rope of desire, covered in skin, flesh and bone, with the mind as its driver.

यह शरीर एक मशीन जैसा है, जिसे इच्छा की रस्सी खींचती है, जो चमड़ी, मांस और हड्डी से ढका है, और जिसे मन चलाता है।

5.36.30

अयं संविद्वपुरहं न काचिन्न कृतास्पदः । देहः पततु वोदेतु यथाभिमतयेच्छया ॥ ३० ॥

ayaṃ saṃvidvapurahaṃ na kācinnā kṛtāspadaḥ | dehaḥ patatu vōdetu yathābhimatayecchayā || 30 ||

I am this form of pure awareness. I am not anything at all; I have no fixed place. Let the body fall, or let it rise, just as it pleases.

मैं तो यह शुद्ध चेतना का रूप हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ, मेरा कोई ठिकाना नहीं है। यह शरीर चाहे गिरे या उठे, जैसी उसकी मर्ज़ी हो।

5.36.31

चिरादहमहं जातः स्वात्मलाभश्चिरादयम् । चिरादुपशम याति कल्पस्यान्ते जगद्यथा ॥ ३१ ॥

cirādahamahaṃ jātaḥ svātmalābhaścirādayam | cirādupśama yāti kalpasyaante jagadyathā || 31 ||

Only after a long time did this sense of I-am-I arise in me. Only after a long time did I gain my own true self. And only after a long time does it come to rest, just as the world dissolves at the end of an age.

बहुत समय बाद ही मुझमें यह भाव जागा कि मैं ही मैं हूँ। बहुत समय बाद ही मुझे अपने असली स्वरूप की प्राप्ति हुई। और बहुत समय बाद ही यह शांत होता है, ठीक वैसे ही जैसे कल्प के अंत में यह जगत लीन हो जाता है।

5.36.32

चिरात्संसारगामित्वाद्दीर्घे संसारवर्त्मनि । विश्रान्तोऽस्मिचिरं श्रान्तः कल्पस्यान्त इवानलः ॥ ३२ ॥

cirātsaṃsāragāmitvāddīrgha saṃsāravartmani | viśrānto'smiciraṃ śrāntaḥ kalpasyaanta ivānalaḥ || 32 ||

After a long journey through this world, on this long road of worldly life, I have grown tired through the long journey, and now I have come to rest, like a fire that dies down at the end of an age.

इस संसार में लंबे समय तक भटकते हुए, इस लंबे रास्ते पर, मैं बहुत थक गया हूँ, और अब विश्राम में हूँ, ठीक उस आग की तरह जो कल्प के अंत में बुझ जाती है।

5.36.33

सर्वातीताय सर्वाय तुभ्यं मह्यं नमो नमः । तेभ्योऽपि च नमस्तेस्तु ये मां त्वां प्रवदन्ति च ॥ ३३ ॥

sarvātītāya sarvāya tubhyaṃ mahyaṃ namo namaḥ | tebhyo'pi ca namastestu ye māṃ tvāṃ pravadanti ca || 33 ||

Salutation, salutation to you, who are beyond everything and yet are everything, to you and to me. And salutation too to those who speak of me and of you.

आपको प्रणाम, प्रणाम, जो सबसे परे भी हैं और सब कुछ भी हैं, आपको भी और मुझे भी। और उन्हें भी प्रणाम, जो मेरी और आपकी बात करते हैं।

5.36.34

अखिलानन्तसंभोगा न स्पृष्टा दोषवृत्तिभिः । जयत्यकृतसंरम्भा साक्षिता परमात्मनः ॥ ३४ ॥

akhilānantasaṃbhogā na spṛṣṭā doṣavṛttibhiḥ | jayatyakṛtasaṃrambhā sākṣitā paramātmanaḥ || 34 ||

The witness-nature of the highest self wins. Its joy is whole and without end, untouched by any fault, and never shaken by any struggle.

परम आत्मा का साक्षी-भाव विजयी होता है। उसका आनंद पूरा और अंतहीन है, वह किसी दोष से छूता नहीं, और किसी उथल-पुथल से कभी हिलता नहीं।

5.36.35

आत्मन्पुष्प इवामोदो भस्त्रापिण्ड इवानिलः । तिले तैलमिवास्मिंस्त्वं सर्वत्र वपुषि स्थितः ॥ ३५ ॥

ātmanpuṣpa ivāmodo bhastrāpiṇḍa ivānilaḥ | tile tailamivāsmiṃstvaṃ sarvatra vapuṣi sthitaḥ || 35 ||

O Self, you are like the fragrance in a flower, like the air inside a bellows, like the oil inside a sesame seed. You are present everywhere in this body.

हे आत्मा, आप फूल की सुगंध की तरह हैं, धौंकनी के भीतर की हवा की तरह हैं, तिल के भीतर के तेल की तरह हैं। आप इस शरीर में हर जगह मौजूद हैं।

5.36.36

हंसि पासि ददासि त्वमवस्फूर्जसि वल्गसि । अनहंकृतिरूपोऽपि चित्रेयं तव मायिता ॥ ३६ ॥

haṃsi pāsi dadāsi tvamavasphūrjasi valgasi | anahaṃkṛtirūpo'pi citreyam tava māyitā || 36 ||

You kill, you protect, you give, you roar out, you leap and play. Even though your true form has no sense of I, how strange is this power of illusion in you.

आप मारते हैं, आप बचाते हैं, आप देते हैं, आप गरजते हैं, आप उछलते-कूदते हैं। आपका असली रूप तो अहंकार-रहित है, फिर भी आपकी यह माया कितनी अजीब है।

5.36.37

जयामीशज्वलद्दीप्तिः सर्वमुन्मीलयञ्जगत् । जयाम्युपरतारम्भो जगद्भूयो निमीलयन् ॥ ३७ ॥

jayāmīśajvaladdīptiḥ sarvamunmīlayañjagat | jayāmyuparatārambho jagadbhūyo nimīlayan || 37 ||

I win, shining bright like a lord, opening up the whole world for all to see. I win again, all effort at rest, folding the world back in.

मैं विजयी हूँ, ईश्वर जैसी चमक से जगमगाता हुआ, जो पूरे जगत को खोलकर सबके सामने रखता है। मैं फिर विजयी हूँ, जब हर कोशिश थम जाती है, तब जगत को वापस समेट लेता हूँ।

5.36.38

परमाणोस्तवैवान्तरिदं संसारमण्डलम् । वटत्वं वटधानायां बभूवास्ति भविष्यति ॥ ३८ ॥

paramāṇostavaivāntaridaṃ saṃsāramaṇḍalam | vaṭatvaṃ vaṭadhānāyāṃ babhūvāsti bhaviṣyati || 38 ||

Inside a single speck of you lies this whole round world, just as the whole banyan tree lies inside a banyan seed. It was so, it is so, and it will be so.

आपके एक कण के भीतर ही यह पूरा गोल संसार समाया है, ठीक वैसे ही जैसे बरगद का पूरा पेड़ बरगद के बीज के भीतर समाया रहता है। यह पहले भी था, अभी भी है, और आगे भी रहेगा।

5.36.39

हयद्विपरथाकारैर्यद्वत्खे दृश्यतेऽम्बुदः । तद्वदालोक्यसे देव पदार्थशतविभ्रमैः ॥ ३९ ॥

hayadviparathākārairyadvatkhe dṛśyate'mbudaḥ | tadvadālokyase deva padārthśatavibhramaiḥ || 39 ||

Just as a cloud in the sky is seen taking the shape of horses, elephants and chariots, so too, God, you are seen through the changing shapes of a hundred different things.

जैसे आकाश में बादल कभी घोड़े, कभी हाथी, कभी रथ के आकार में दिखता है, वैसे ही, हे भगवान, आप सैकड़ों बदलते हुए रूपों में दिखाई देते हैं।

5.36.40

भावानां भूरिभङ्गानामभवाय भवाय च । भव भावविमुक्तात्मा भावाभावबहिष्कृतः ॥ ४० ॥

bhāvānāṃ bhūribhaṅgānāmabhavāya bhavāya ca | bhava bhāvavimuktātmā bhāvābhāvabahiṣkṛtaḥ || 40 ||

For the sake of the rising and passing of these many things that keep breaking apart, be one whose self is free of all becoming, standing outside both being and not being.

इन बहुत सी चीज़ों के बनने और मिटने के लिए, जो बार-बार टूटती रहती हैं, आप ऐसे बनिए जिसका स्वरूप बनने-मिटने से मुक्त हो, जो होने और न होने दोनों से परे हो।

5.36.41

जहि मानं महाकोपं कालुष्यं क्रूरतां तथा । न महान्तो निमज्जन्ति प्राकृते गुणसंकटे ॥ ४१ ॥

jahi mānaṃ mahākopaṃ kāluṣyaṃ krūratāṃ tathā | na mahānto nimajjanti prākṛte guṇasaṃkaṭe || 41 ||

Give up pride, great anger, an impure mind, and cruelty too. Great people never sink into the trouble that comes from the qualities of matter.

अभिमान, बड़ा गुस्सा, मन की गंदगी, और क्रूरता को छोड़ दो। महान लोग प्रकृति के गुणों से आई उलझन में कभी नहीं डूबते।

5.36.42

प्राक्तनीं दीर्घदौरात्म्यदशां स्मृत्वा पुनःपुनः । कोहं किं तद्बभूवेति हसन्मुक्ताच्छटासितम् ॥ ४२ ॥

prāktanīṃ dīrghadaurātmyadaśāṃ smṛtvā punaḥpunaḥ | kohaṃ kiṃ tadbabhūveti hasanmuktācchaṭāsitam || 42 ||

Remembering, again and again, his own long and deep-rooted wickedness of before, and asking, who am I, what was that, he laughs, his laughter shining white like a burst of pearls.

अपनी पुरानी, गहरी बुराई को बार-बार याद करके, और यह सोचकर कि मैं कौन हूँ, वह क्या था, वह हँस पड़ता है, उसकी हँसी मोतियों की चमक जैसी उजली हो उठती है।

5.36.43

ते प्रयाताः समारम्भा गतास्ते दग्धवासराः । येषु चिन्तानलज्वालाजालाकीर्णो भवानभूत् ॥ ४३ ॥

te prayātāḥ samārambhā gatāste dagdhavāsarāḥ | yeṣu cintānalajvālājālākīrṇo bhavānabhūt || 43 ||

Those undertakings are gone, those burning days have passed, the days in which you were caught in a net of flames from the fire of worry.

वे सारे काम अब बीत गए, वे जलते हुए दिन चले गए, जिनमें आप चिंता की आग की लपटों के जाल में फँसे हुए थे।

5.36.44

अद्य त्वं देहनगरे राजा स्फारमनोरथः । न दुःखैर्गृह्यसे नापि सुखैर्व्योम करैरिव ॥ ४४ ॥

adya tvaṃ dehanagare rājā sphāramanorathaḥ | na duḥkhairgṛhyase nāpi sukhairvyoma karairiva || 44 ||

Today you are the king in the city of the body, your every wish fulfilled and vast. Sorrows do not grip you, nor do pleasures, just as rays of light do not touch the sky.

आज आप शरीर रूपी नगर के राजा हैं, आपकी हर इच्छा बड़ी और पूरी है। न दुख आपको पकड़ पाते हैं, न सुख, ठीक वैसे ही जैसे किरणें आकाश को नहीं छूतीं।

5.36.45

अद्येन्द्रियदुरश्वांश्च जित्वा जितमनोगजः । भोगारिमभितो भङ्क्त्वासाम्राज्यमधितिष्ठसि ॥ ४५ ॥

adyendriyaduraśvāṃśca jitvā jitamanogajaḥ | bhogārimabhito bhaṅktvāsāmrājyamadhitiṣṭhasi || 45 ||

Today, having tamed the wild horses of your senses and mastered the elephant of your mind, having broken the enemy of craving for pleasure on every side, you sit on the throne of your own kingdom.

आज आपने अपनी इंद्रियों रूपी जंगली घोड़ों को काबू में कर लिया है, और मन रूपी हाथी को भी वश में कर लिया है। भोग की लालसा रूपी शत्रु को चारों ओर से तोड़कर, आप अपने राज्य के सिंहासन पर बैठे हैं।

5.36.46

अपाराम्बरपान्थस्त्वमजस्रास्तमयोदयः । अवभासकरो नित्यं बहिरन्तश्च भास्करः ॥ ४६ ॥

apārāmbarapānthastvamajasrāstamayodayah | avabhāsakaro nityaṃ bahirantaśca bhāskarah || 46 ||

You are the traveler of the boundless sky, forever rising and setting, always giving light, a sun both outside and within.

आप इस असीम आकाश के यात्री हैं, हमेशा उगते और डूबते रहते हैं, सदा रोशनी देते हैं, बाहर और भीतर दोनों जगह सूरज की तरह।

5.36.47

सर्वदैवासि संसुप्तः शक्त्या संबोध्यसे विभो । भोगालोकनलीलार्थं कामिन्या कामुको यथा ॥ ४७ ॥

sarvadaivāsi saṃsuptaḥ śaktyā saṃbodhyase vibho | bhogālokanalīlārthaṃ kāminyā kāmuko yathā || 47 ||

You are always asleep, Lord, and your own power wakes you up for the play of watching and enjoying the world, just as a lover is woken by his beloved.

हे प्रभु, आप सदा सोए रहते हैं, और आपकी अपनी शक्ति ही आपको जगाती है, दुनिया को देखने और भोगने के खेल के लिए, ठीक वैसे ही जैसे प्रेमी को उसकी प्रेयसी जगाती है।

5.36.48

दृक्क्षुद्राभिरुपानीतं दूरादूपमधु त्वया । पीयते स्वीकृतं शक्त्या नेत्रवातायनस्थया ॥ ४८ ॥

dṛkṣudrābhirupānītaṃ dūrādrūpamadhu tvayā | pīyate svīkṛtaṃ śaktyā netravātāyanasthayā || 48 ||

The honey of beauty, carried from far away by the small rays of your sight, is drunk by you, taken in by your own power that sits at the window of the eye.

रूप का यह मधु, नज़र की छोटी-छोटी किरणों से दूर से लाया गया, आप उसे पीते हैं, अपनी उस शक्ति के ज़रिए जो आँख की खिड़की में बैठी है।

5.36.49

ब्रह्माण्डकोटराध्वान्ताः प्राणापानपरैस्त्वया । गतागतैर्ब्रह्मपुरे संप्रेक्ष्यन्ते प्रतिक्षणम् ॥ ४९ ॥

brahmāṇḍakoṭarādhvāntāḥ prāṇāpānaparais tvayā | gatāgatair brahmapure saṃprekṣyante pratikṣaṇam || 49 ||

Through the breath moving in and moving out, you look, moment by moment, into the dark hollows of the universe's egg, within the city of Brahma.

साँस के अंदर-बाहर आने-जाने के ज़रिए, आप हर पल, ब्रह्मा के नगर में, इस ब्रह्मांड के भीतरी अंधेरे खोखले हिस्सों में देखते हैं।

5.36.50

देहपुष्पे त्वमामोदो देहेन्दौ त्वमृतामृतम् । रसस्त्वं देहविटपे शैत्यं देहहिमे भवान् ॥ ५० ॥

dehapuṣpe tvamāmodo dehendau tvamṛtāmṛtam | rasastvaṃ dehaviṭape śaityaṃ dehahime bhavān || 50 ||

In the flower of the body, you are its scent. In the moon of the body, you are its true nectar. In the tree of the body, you are its sap. In the frost of the body, you are its coolness.

शरीर रूपी फूल में आप उसकी खुशबू हैं। शरीर रूपी चाँद में आप उसका सच्चा अमृत हैं। शरीर रूपी पेड़ में आप उसका रस हैं। शरीर रूपी बर्फ में आप उसकी ठंडक हैं।

5.36.51

त्वय्यस्ति विस्मयस्नेहः शरीरक्षीरसर्पिषित्वमन्तरस्य देहस्य दारुण्यग्निरिव स्थितः ॥ ५१ ॥

tvayyasti vismayasnehaḥ śarīrakṣīrasarpiṣitvamantarasya dehasya dāruṇyagniriva sthitaḥ || 51 ||

In you lies the very heart of wonder. You are the ghee hidden inside the milk of the body. You stay deep inside the body, like fire hidden inside wood.

आप में ही आश्चर्य का असली सार छिपा है। आप शरीर रूपी दूध में छिपे घी की तरह हैं। आप शरीर के भीतर वैसे ही बसे हैं जैसे लकड़ी में छिपी आग।

5.36.52

त्वमेवानुत्तमास्वादः प्राकाश्यं तेजसामपिअवगन्ता त्वमर्थानां त्वं भासामवभासकः ॥ ५२ ॥

tvamevānuttamāsvādaḥ prākāśyaṃ tejasāmapiavagantā tvamarthānāṃ tvaṃ bhāsāmavabhāsakaḥ || 52 ||

You alone are the taste beyond every other taste. You are the brightness inside every bright thing. You are the one who knows all things. You are the light that lights up every light.

आप ही वह स्वाद हैं जिससे बढ़कर कोई स्वाद नहीं। आप हर चमकती चीज़ के भीतर की चमक हैं। आप ही सब कुछ जानने वाले हैं। आप ही वह रोशनी हैं जो हर रोशनी को रोशन करती है।

5.36.53

स्पन्दस्त्वं सर्ववायूनां त्वं मनोहस्तिनो मदःप्रज्ञानलशिखायास्त्वं प्राकाश्यं तैक्ष्ण्यमेव च ॥ ५३ ॥

spandastvaṃ sarvavāyūnāṃ tvaṃ manohastino madaḥprajñānalaśikhāyāstvaṃ prākāśyaṃ taikṣṇyameva ca || 53 ||

You are the movement in every wind. You are the frenzy of the elephant that is the mind. You are the brightness and the sharpness of the flame of the fire of wisdom.

आप हर हवा की गति हैं। आप मन रूपी हाथी का मद हैं। आप ज्ञान रूपी आग की लौ की चमक और तीखापन दोनों हैं।

5.36.54

त्वद्वशादियमात्मीया वाचा संप्रविलीयतेदीपवत्पुनरन्यत्र समुदेति कुतोऽपि सा ॥ ५४ ॥

tvadvaśādiyamātmīyā vācā saṃpravilīyatedīpavatpunaranyatra samudeti kuto'pi sā || 54 ||

Because of your power, this sound of ours dies away the instant it is spoken, the way a lamp goes out; then, from somewhere, it rises again somewhere else.

तुम्हारी ताकत से यह अपनी आवाज़ बोलते ही ऐसे बुझ जाती है जैसे कोई दीया बुझ जाता है; फिर वह कहीं और, न जाने कहाँ से, फिर से उठ खड़ी होती है।

5.36.55

त्वयि संसारवर्तिन्यः पदार्थावलयस्तथाकटकाङ्गदकेयूरयुक्तयः कनके यथा ॥ ५५ ॥

tvayi saṃsāravartinyaḥ padārthāvalayastathākaṭakāṅgadakeyūrayuktayaḥ kanake yathā || 55 ||

The many things of this world, forever turning in the cycle of birth and death, exist within you, the way bangles, armbands, and bracelets all exist within gold.

इस दुनिया की सारी चीज़ें, जो जन्म-मरण के चक्र में घूमती रहती हैं, तुम्हारे अंदर ही टिकी हैं, जैसे चूड़ी, बाजूबंद और कंगन सब सोने में ही टिके होते हैं।

5.36.56

भवानयमयं चाहंत्वंशब्दैरेवमादिभिः । स्वयमेवात्मनात्मानं लीलार्थं स्तौषि वक्षि च ॥ ५६ ॥

bhavānayamayaṃ cāhaṃtvaṃśabdairevamādibhiḥ | svayamevātmanātmānaṃ līlārthaṃ stauṣi vakṣi ca || 56 ||

With words like 'you,' 'this,' 'I,' and 'you' again, you yourself, all alone, praise yourself and speak of yourself, just for play.

तुम खुद ही 'तुम', 'यह', 'मैं' जैसे शब्दों से, अकेले ही, सिर्फ खेल के लिए अपनी तारीफ़ करते हो और अपने बारे में बोलते हो।

5.36.57

मन्दानिलविनुन्नोऽब्दो गजाश्वनरदृष्टिभिः । यथा संलक्ष्यते व्योम्नि तथा त्वं भूतदृष्टिभिः ॥ ५७ ॥

mandānilavinunno'bdo gajāśvanaradṛṣṭibhiḥ | yathā saṃlakṣyate vyomni tathā tvaṃ bhūtadṛṣṭibhiḥ || 57 ||

Just as a cloud pushed along by a soft wind is seen in the sky as an elephant, a horse, or a man, depending on who is looking, so you are seen differently through the eyes of each creature.

जैसे धीमी हवा से उड़ता हुआ बादल आसमान में किसी को हाथी जैसा, किसी को घोड़े जैसा और किसी को आदमी जैसा दिखता है, वैसे ही तुम हर जीव को उसकी अपनी नज़र से अलग-अलग दिखते हो।

5.36.58

यथा हयगजाकारैर्ज्वाला लसति वह्निषु । तथैवाव्यतिरिक्तैस्त्वं दृश्यसे भुवि सृष्टिषु ॥ ५८ ॥

yathā hayagajākārairjvālā lasati vahniṣu | tathaivāvyatiriktaistvaṃ dṛśyase bhuvi sṛṣṭiṣu || 58 ||

Just as a flame in a fire flickers into the shape of a horse or an elephant, so you are seen in the creations of this earth, never separate from them.

जैसे आग की लौ घोड़े या हाथी के आकार में चमकती है, वैसे ही तुम इस धरती की सारी रचनाओं में दिखते हो, उनसे अलग नहीं।

5.36.59

त्वं ब्रह्माण्डकमुक्तानामच्छिन्नस्तन्तुराततः । क्षेत्रं त्वं भूतसस्यानां चिद्रसायनसेवितम् ॥ ५९ ॥

tvaṃ brahmāṇḍakamuktānāmacchinnastanturātataḥ | kṣetraṃ tvaṃ bhūtasasyānāṃ cidrasāyanasevitam || 59 ||

You are the unbroken thread strung through the worlds like pearls on a string. You are the field where living beings grow like crops, watered by the nectar of consciousness.

तुम वह अटूट धागा हो जिसमें सारी दुनियाएँ मोतियों की तरह पिरोई हुई हैं। तुम वह खेत हो जिसमें सारे जीव फ़सल की तरह उगते हैं, और जिसे चेतना का अमृत सींचता है।

5.36.60

असत्तदनभिव्यक्तं पदार्थानां प्रकाश्यते । त्वया तत्त्वं यथा पक्त्या मांसानां स्वादवेदनम् ॥ ६० ॥

asattadanabhivyaktaṃ padārthānāṃ prakāśyate | tvayā tattvaṃ yathā paktyā māṃsānāṃ svādavedanam || 60 ||

What is not shown is as good as not there. The true nature of things is revealed only by you, the way the taste of meat is known only once it is cooked.

जो चीज़ दिखाई नहीं देती, वह न होने के बराबर है। चीज़ों का असली रूप तुम्हारे ज़रिए ही सामने आता है, जैसे मांस का स्वाद पकाने के बाद ही पता चलता है।

5.36.61

विद्यमानापि वस्तुश्रीर्न स्थिता त्वयि न स्थिते । वनितारूपलावण्यसत्तेव गतचक्षुषः ॥ ६१ ॥

vidyamānāpi vastuśrīrna sthitā tvayi na sthite | vanitārūpalāvaṇyasatteva gatacakṣuṣaḥ || 61 ||

Even if it truly exists, the beauty of a thing means nothing when you are not present, the way a woman's beauty and grace mean nothing to a man who has lost his eyes.

कोई चीज़ भले ही सचमुच सुंदर हो, पर अगर तुम वहाँ नहीं हो तो उसकी सुंदरता का कोई मतलब नहीं, जैसे किसी औरत का रूप और सुंदरता उस आदमी के लिए बेमानी है जिसकी आँखें चली गई हों।

5.36.62

सदपीह न सत्तायै वस्तु नावर्जितं त्वया । तृप्तये न स्वलावण्यं मुकुरात्प्रतिबिम्बितम् ॥ ६२ ॥

sadapīha na sattāyai vastu nāvarjitaṃ tvayā | tṛptaye na svalāvaṇyaṃ mukurātpratibimbitam || 62 ||

Something may exist here, but that existence is nothing unless you have laid hold of it, the way one's own beauty reflected in a mirror gives no satisfaction by itself.

यहाँ कोई चीज़ भले ही मौजूद हो, पर जब तक तुम उसे थाम न लो, उसका होना कुछ नहीं है, जैसे आईने में दिखता अपना ही रूप अकेले किसी को तसल्ली नहीं देता।

5.36.63

लुठति त्वां विना देहः काष्ठलोष्टसमः क्षितौ । सन्नप्यसन्नगोच्छ्रायः श्यामास्विव रविं विना ॥ ६३ ॥

luṭhati tvāṃ vinā dehaḥ kāṣṭhaloṣṭasamaḥ kṣitau | sannapyasannagocchrāyaḥ śyāmāsviva raviṃ vinā || 63 ||

Without you, the body rolls on the ground like a log of wood or a clump of earth. It exists, and yet, without the sun, it is as good as not existing, like the height of a mountain lost in the dark of night.

तुम्हारे बिना यह शरीर ज़मीन पर लकड़ी के टुकड़े या मिट्टी के ढेले की तरह लुढ़कता रहता है। वह है तो सही, पर सूरज के बिना ऐसा है जैसे न हो, जैसे रात के अंधेरे में किसी पहाड़ की ऊँचाई खो जाती है।

5.36.64

सुखदुःखक्रमः प्राप्य भवन्तं परिनश्यति । प्राकाश्यमासाद्य यथा तमस्तेजोऽथवा हिमम् ॥ ६४ ॥

sukhaduḥkhakramaḥ prāpya bhavantaṃ parinaśyati | prākāśyamāsādya yathā tamastejo'thavā himam || 64 ||

The whole run of pleasure and pain, on reaching you, comes to a complete end, the way darkness, or the glow of a flame, or frost, vanish the moment sunlight arrives.

सुख-दुख का यह पूरा सिलसिला तुम तक पहुँचते ही पूरी तरह खत्म हो जाता है, जैसे सूरज की रोशनी आते ही अंधेरा, या दीये की चमक, या पाला, गायब हो जाता है।

5.36.65

त्वदालोकनयैवैते स्थितिं यान्ति सुखादयः । सूर्यालोकनया प्रातर्वर्णाः शुक्लादयो यथा ॥ ६५ ॥

tvadālokanayaivaite sthitiṃ yānti sukhādayaḥ | sūryālokanayā prātarvarṇāḥ śuklādayo yathā || 65 ||

Pleasure and everything like it come to exist only through your light, the way colours like white appear only through the morning sunlight.

सुख और उस जैसी बाकी सब चीज़ें तुम्हारी रोशनी से ही होती हैं, जैसे सुबह की धूप से ही सफ़ेद जैसे रंग दिखाई देते हैं।

5.36.66

लब्धात्मानो विनश्यन्ति संबन्धक्षण एव ते । ते तमांसीव दीपस्य दृष्टा एव व्रजन्त्यलम् ॥ ६६ ॥

labdhātmāno vinaśyanti saṃbandhakṣaṇa eva te| te tamāṃsīva dīpasya dṛṣṭā eva vrajantyalam || 66 ||

The very instant they come into being, they perish, in that same moment of contact with you. They vanish completely the moment they are seen, like patches of darkness the instant a lamp is lit.

वे जिस पल तुमसे जुड़कर पैदा होते हैं, उसी पल में खत्म भी हो जाते हैं। दीया जलते ही जैसे अंधेरा पूरी तरह गायब हो जाता है, वैसे ही वे देखते ही देखते मिट जाते हैं।

5.36.67

तमस्ता तमसो दीपासत्तायां स्फुटतां गता । दीपसंबन्धसमये सा चोत्पद्य विनश्यति ॥ ६७ ॥

tamastā tamaso dīpāsattāyāṃ sphuṭatāṃ gatā| dīpasaṃbandhasamaye sā cotpadya vinaśyati || 67 ||

Darkness is darkness most clearly only when there is no lamp. The moment a lamp touches it, that darkness is born and dies in that very same instant.

अंधेरा तभी सबसे साफ़ अंधेरा होता है जब दीया न हो। दीये के छूते ही वह अंधेरा उसी पल में पैदा भी होता है और मिट भी जाता है।

5.36.68

तदेवं सुखदुःखश्रीर्दृष्टैव त्वामनामयम् । जायते जातमात्रैवं सर्वनाशेन नश्यति ॥ ६८ ॥

tadevaṃ sukhaduḥkhaśrīrdṛṣṭaiva tvāmanāmayam| jāyate jātamātraivaṃ sarvanāśena naśyati || 68 ||

In this way, pleasure and pain appear only when they catch sight of you, the flawless one, and the very instant they are born, they are completely destroyed.

इस तरह सुख और दुख तभी दिखते हैं जब उनकी नज़र तुम पर पड़ती है, जो हर दोष से परे हो, और पैदा होते ही वे पूरी तरह मिट भी जाते हैं।

5.36.69

भङ्गुरत्वादिह स्थातुं कालं नाणुमपि क्षमा । निमेषलक्षभागाख्या तन्वी कालकला यथा ॥ ६९ ॥

bhaṅguratvādiha sthātuṃ kālaṃ nāṇumapi kṣamā| nimeṣalakṣabhāgākhyā tanvī kālakalā yathā || 69 ||

Because they are so fragile, they cannot last here even for an instant, like that tiny unit of time called a hundred-thousandth part of an eye-blink.

वे इतने कमज़ोर होते हैं कि यहाँ एक पल भी नहीं टिक पाते, जैसे वह बहुत छोटा समय जिसे पलक झपकने के एक लाखवें हिस्से जितना कहा जाता है।

5.36.70

गान्धर्वी नगरी तन्वी सुखदुःखादिभावना । स्फुरति त्वत्प्रसादेन त्वयि दृष्टे विलीयते ॥ ७० ॥

gāndharvī nagarī tanvī sukhaduḥkhādibhāvanā| sphurati tvatprasādena tvayi dṛṣṭe vilīyate || 70 ||

The feeling of pleasure, pain, and the rest is delicate, like a city in the sky. It flashes into being by your grace, and it melts away the moment you are truly seen.

सुख-दुख जैसी ये भावनाएँ नाज़ुक होती हैं, आसमान में बने किसी शहर जैसी। वे तुम्हारी कृपा से चमक उठती हैं, और जिस पल तुम्हें सचमुच देख लिया जाता है, उसी पल घुलकर मिट जाती हैं।

5.36.71

त्वदालोकेक्षणोद्भूता त्वदालोकेक्षणक्षया । मृतेव जाता जातेव मृता केनोपलक्ष्यते ॥ ७१ ॥

tvadālokekṣaṇodbhūtā tvadālokekṣaṇakṣayā | mṛteva jātā jāteva mṛtā kenopalakṣyate || 71 ||

It is born from one glimpse of your light, and it dies from that very same glimpse of your light, born as if already dead, dead as if just born. Who can tell the two apart?

वह तुम्हारी रोशनी की एक झलक से पैदा होती है, और उसी झलक से मिट भी जाती है, पैदा होते ही मानो मरी हुई, मरते हुए मानो अभी पैदा हुई। इन दोनों में फ़र्क कौन बता सकता है?

5.36.72

क्षणमप्यस्थिरं वस्तु कथं कार्यकरं भवेत् । तरङ्गैरुत्पलाकारैर्माला कथमवेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

kṣaṇamapyasthiraṃ vastu kathaṃ kāryakaraṃ bhavet | taraṅgairutpalākārairmālā kathamavekṣyate || 72 ||

How can something that cannot stay still even for one moment actually get anything done? How could you ever see a garland made out of waves shaped like lotus flowers?

जो चीज़ एक पल भी टिक नहीं सकती, वह भला कुछ कर कैसे सकती है? क्या कभी लहरों से, कमल के फूल जैसी शक्ल में, कोई माला बनी देखी है?

5.36.73

यदा वा जातनिर्नष्टं क्रियां वस्तु करिष्यते । तदा रमेत लोकोऽयं मालां कृत्वा तडिद्गणैः ॥ ७३ ॥

yadā vā jātanirnaṣṭaṃ kriyāṃ vastu kariṣyate | tadā rameta loko'yaṃ mālāṃ kṛtvā taḍidgaṇaiḥ || 73 ||

Or say a thing that dies the very instant it is born could somehow get something done. Then this world could well take pleasure in a garland made of flashes of lightning.

या मान लो कि पैदा होते ही मिट जाने वाली कोई चीज़ सचमुच कुछ कर सके। तो फिर यह दुनिया बिजली की चमक से बनी माला पहनकर भी खुश हो सकती है।

5.36.74

इमां सुखादिकां लक्ष्मीं विवेकिजनचेतसि । स्थितः सन्नेव गृह्णासि न जहासि समस्थितिम् ॥ ७४ ॥

imāṃ sukhādikāṃ lakṣmīṃ vivekijanacetasi | sthitaḥ sanneva gṛhṇāsi na jahāsi samasthitim || 74 ||

You take hold of this treasure called pleasure while it sits in the heart of a person of understanding, and yet, even while doing so, you never lose your own steadiness, the same in everything.

समझदार इंसान के मन में बैठे सुख नाम के इस खज़ाने को तुम थाम लेते हो, और फिर भी अपनी वह एकसार शांति कभी नहीं छोड़ते जो हर चीज़ में एक जैसी बनी रहती है।

5.36.75

अविवेकिषु योऽसि त्वं सहजात्मन्यदृच्छया । तद्रूपकथनेनालं ममानल्पपदास्पद ॥ ७५ ॥

aviveki̇ṣu yo'si tvaṃ sahajātmanyadṛcchayā | tadrūpakathanenālaṃ mamānalpapadāspada || 75 ||

Among people without understanding, you exist only by chance, as their bare inborn self. Enough, for me, of describing that side of you, you who hold so vast a place.

जिन लोगों में समझ नहीं है, उनमें तुम बस संयोग से, उनकी सहज-जन्मजात आत्मा के रूप में मौजूद रहते हो। बस, अब मैं तुम्हारे इस रूप का बखान और नहीं करूँगा, तुम जो इतनी बड़ी जगह के मालिक हो।

5.36.76

निरीहेण निरंशेन निरहंकृतिना त्वया । सता वाप्यसता वापि कर्तृत्वमुररीकृतम् ॥ ७६ ॥

nirīheṇa niraṃśena nirahaṃkṛtinā tvayā | satā vāpyasatā vāpi kartṛtvamurarīkṛtam || 76 ||

You have no desire, no parts, no sense of 'I' -- and yet, whether you are said to exist or not to exist, you have still taken on the role of the doer.

तुम्हारी कोई चाहत नहीं, कोई हिस्सा नहीं, कोई 'मैं' का एहसास नहीं -- फिर भी, चाहे तुम्हें होना कहें या न होना, तुमने कर्ता का काम अपने ऊपर ले लिया है।

5.36.77

जय प्रोड्डामराकार जय शान्तिपरायण । जय सर्वागमातीत जय सर्वागमास्पद ॥ ७७ ॥

jaya proḍḍāmarākāra jaya śāntiparāyaṇa | jaya sarvāgamātīta jaya sarvāgamāspada || 77 ||

Hail to you, of wild, boundless form. Hail to you, given over only to peace. Hail to you, who are beyond every scripture. Hail to you, who are the ground of every scripture.

जय हो तुम्हारी, जिसका रूप बेलगाम और विशाल है। जय हो तुम्हारी, जो सिर्फ़ शांति में टिके हो। जय हो तुम्हारी, जो हर शास्त्र से परे हो। जय हो तुम्हारी, जो हर शास्त्र का आधार हो।

5.36.78

जय जात जयाजात जय क्षत जयाक्षत । जय भाव जयाभाव जय जेय जयाजय ॥ ७८ ॥

jaya jāta jayājāta jaya kṣata jayākṣata | jaya bhāva jayābhāva jaya jeya jayājaya || 78 ||

Hail to the born, hail to the unborn. Hail to the wounded, hail to the unwounded. Hail to being, hail to non-being. Hail to what can be won, hail to victory and to defeat both.

जय हो जन्मे हुए की, जय हो बिना जन्मे की। जय हो घायल की, जय हो बिना घाव वाले की। जय हो होने की, जय हो न होने की। जय हो जीती जा सकने वाली चीज़ की, जय हो जीत और हार दोनों की।

5.36.79

उल्लसाम्युपशाम्यामि तिष्ठाम्यधिगतोऽस्मि च । जयी जयाय जीवामि नमो मह्यं नमोऽस्तु ते ॥ ७९ ॥

ullasāmyupaśāmyāmi tiṣṭhāmyadhigato'smi ca | jayī jayāya jīvāmi namo mahyaṃ namo'stu te || 79 ||

I shine, I grow quiet, I stand still, and I have reached what is to be reached. Victorious, I live only for victory. Hail to myself. Hail to you.

मैं चमकता हूँ, मैं शांत होता हूँ, मैं टिका रहता हूँ, और जो पाने लायक था वह मैंने पा लिया है। जीतकर, मैं सिर्फ़ जीत के लिए जीता हूँ। मुझे प्रणाम। तुम्हें भी प्रणाम।

5.36.80

त्वयि स्थिते मयि विगतामयात्मनि स्वसंस्थितौ व्यपगतरागरञ्जने । क्व बन्धनं क्व च विपदः क्व संपदो भवाभवौ क्व शममुपैमि शाश्वतम् ॥ ८० ॥

tvayi sthite mayi vigatāmayātmani svasaṃsthitau vyapagatarāgarañjane | kva bandhanaṃ kva ca vipadaḥ kva saṃpado bhavābhavau kva śamamupaimi śāśvatam || 80 ||

When you stand firm, and I too stand in my own true nature, free of all sickness, untouched by any tinge of passion -- then where is bondage? Where are misfortunes? Where is wealth? Where is coming to be and ceasing to be? I reach only a peace that lasts forever.

जब तुम अडिग खड़े हो, और मैं भी अपने असली रूप में टिका हूँ, हर बीमारी से मुक्त, किसी भी मोह-राग के रंग से अछूता -- तो फिर बंधन कहाँ, मुसीबतें कहाँ, दौलत कहाँ, बनना-बिगड़ना कहाँ? मैं तो बस एक ऐसी शांति पाता हूँ जो हमेशा के लिए है।

Chapter 37

5.37.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति संचिन्तयन्नेव प्रह्लादः परवीरहा । निर्विकल्पपरानन्दसमाधिं समुपाययौ ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti saṃcintayanneva prahlādaḥ paravīrahā | nirvikalpaparānandasamādhiṃ samupāyayau || 1 ||

Sri Vasishtha said: Thinking this, Prahlada, the slayer of enemy warriors, sank into a deep trance of the highest bliss, a state beyond all thought.

श्री वसिष्ठ ने कहा: ऐसा सोचते हुए ही शत्रु-वीरों के संहारक प्रह्लाद परम आनंद की उस समाधि में डूब गए, जो हर विचार से परे थी।

5.37.2

निर्विकल्पसमाधिस्थश्चित्रार्पित इवाचलः । शैलादिव समुत्कीर्णो बभौ स्वपदमास्थितः ॥ २ ॥

nirvikalpasamādhisthaścitrārpitevācalaḥ | śailādiva samutkīrṇo babhau svapadamāsthitaḥ || 2 ||

Fixed in that trance beyond thought, he was as still as a figure in a painting, as if carved out of solid rock, and he shone there, resting in his own true state.

विचारों से परे उस समाधि में स्थिर होकर वे किसी चित्र में बनी आकृति की तरह अचल थे, मानो चट्टान से तराशी गई मूर्ति हों, और अपने असली स्वरूप में टिके हुए वे चमक रहे थे।

5.37.3

तथानुतिष्ठतस्तस्य कालो बहुतरो ययौ । स्वगृहे भुवनस्थस्य मेरोरिव सुरद्विषः ॥ ३ ॥

tathānutiṣṭhatastasya kālo bahutaro yayau | svagṛhe bhuvanasthasya meroriva suradviṣaḥ || 3 ||

As he stayed like this, a long time passed for him. He was an enemy of the gods, sitting in his own home in this world, just as Mount Meru has stood in this world through long ages.

इस तरह बैठे रहते हुए उनका बहुत समय बीत गया। वे देवताओं के शत्रु इस संसार में अपने ही घर में बैठे रहे, ठीक वैसे ही जैसे मेरु पर्वत युगों-युगों से इस संसार में खड़ा रहता आया है।

5.37.4

बोधितोऽप्यसुराधीशैर्नाबुध्यत महामतिः । अकाले बहुसेकोऽपि बीजकोशादिवाङ्कुरः ॥ ४ ॥

bodhito'pyasurādhīśairnābudhyata mahāmatiḥ | akāle bahuseko'pi bījakośādivāṅkuraḥ || 4 ||

Though the lords of the demons tried hard to wake him, the wise Prahlada did not wake, just as a sprout does not break out of its seed however much it is watered, if the season is wrong.

असुरों के प्रमुखों ने उन्हें जगाने की बहुत कोशिश की, फिर भी वह बुद्धिमान प्रह्लाद नहीं जागे, जैसे गलत मौसम में बीज को कितना भी पानी दिया जाए, उसमें से अंकुर नहीं फूटता।

5.37.5

एवं वर्षसहस्राणि पीनात्माऽतिष्ठदेकदृक् । शान्त एवासुरपुरे मार्तण्ड इव चोपले ॥ ५ ॥

evaṃ varṣasahasrāṇi pīnātmā'tiṣṭhadekadṛk | śānta evāsurapure mārtaṇḍa iva copale || 5 ||

Thus for thousands of years, his body strong and full, his gaze fixed on one point, he stayed still and calm in the city of the demons, like the sun lying motionless inside a stone.

इस तरह हजारों वर्षों तक, शरीर से हृष्ट-पुष्ट रहते हुए और एक ही दृष्टि पर टिके हुए, वे असुरों की नगरी में शांत और स्थिर बैठे रहे, जैसे सूर्य किसी पत्थर के भीतर निश्चल पड़ा हो।

5.37.6

परानन्ददशैकान्तपरिणामितया तया निरानन्दं पराभासमिवाभासपदं गतः ॥ ६ ॥

parānandadaśaikāntapariṇāmitayā tayā nirānandaṃ parābhāsamivābhāsapadaṃ gataḥ || 6 ||

That state had turned entirely into one unbroken condition of supreme bliss, and so it came to look like something with no joy in it at all, a bare appearance, nothing more than a reflection.

वह अवस्था परम आनंद की एक ही अखंड स्थिति में पूरी तरह ढल चुकी थी, इसलिए वह बाहर से आनंदरहित-सी दिखने वाली मात्र एक झलक बनकर रह गई, केवल एक प्रतिबिंब से अधिक कुछ नहीं।

5.37.7

एतावताथ कालेन तद्रसातलमण्डलम् बभूवाराजकं तीक्ष्णं मात्स्यन्यायकदर्थितम् ॥ ७ ॥

etāvatātha kālena tadrasātalamaṇḍalam babhūvārājakaṃ tīkṣṇaṃ mātsyanayakadarthitam || 7 ||

Meanwhile, after all this time had passed, that whole realm of Rasatala, with no king, grew harsh, and was ruined by the law of the fish, where the strong prey on the weak.

इतना समय बीत जाने पर, राजा के बिना रसातल का वह सारा प्रदेश कठोर हो गया और मछली के उस नियम से तबाह हो गया, जिसमें बलवान निर्बल का शिकार करता है।

5.37.8

हिरण्यकशिपौ क्षीणे समाधौ तत्सुते स्थिते न बभूवापरः कश्चिद्राजा दनुसुतालये ॥ ८ ॥

hiraṇyakaśipau kṣīṇe samādhau tatsute sthite na babhūvāparaḥ kaścidrājā danusutālaye || 8 ||

Hiranyakashipu was gone, and his son Prahlada remained fixed in his trance, so there was no other king at all in the home of Danu's sons.

हिरण्यकशिपु समाप्त हो चुके थे, और उनके पुत्र प्रह्लाद समाधि में स्थिर पड़े थे, इसलिए दनु के पुत्रों के उस घर में कोई और राजा था ही नहीं।

5.37.9

असुरेशार्थिनां तेषां दानवानां समाधितः परेणापि प्रयत्नेन प्रह्लादो न व्यबुध्यत ॥ ९ ॥

asureśārthināṃ teṣāṃ dānavānāṃ samādhitaḥ pareṇāpi prayatnena prahlādo na vyabudhyata || 9 ||

Those demons wanted a lord for the asuras, and they tried with all their strength, but Prahlada would not wake from his trance.

वे दानव असुरों के लिए एक स्वामी चाहते थे, और उन्होंने पूरी शक्ति लगा दी, फिर भी प्रह्लाद समाधि से नहीं जागे।

5.37.10

न प्रापुर्विकसद्रूपं पतिं तममरारयः लसत्पत्रलताजालं निशि पद्ममिवालयः ॥ १० ॥

na prāpurvikasadrūpaṃ patiṃ tamamarārayaḥ lasatpatralatājālaṃ niśi padmamivālayaḥ || 10 ||

The enemies of the gods could not reach their lord in his full blossoming, just as at night bees cannot reach a lotus, even though its petals and stems still glisten.

देवताओं के वे शत्रु अपने उस पूरी तरह खिले हुए स्वामी तक नहीं पहुँच सके, ठीक वैसे ही जैसे रात में भौंरे कमल तक नहीं पहुँच पाते, चाहे उसकी पंखुड़ियाँ और डंठल तब भी चमकते रहें।

5.37.11

संविद्वादो न तस्यान्तरबोध्यत विचेतसः। भुवश्चेष्टाक्रम इव पौरुषो गतभास्वतः ॥ ११ ॥

saṃvidvādo na tasyāntarabodhyata vicetasaḥ| bhuvaśceṣṭākrama iva pauruṣo gatabhāsvataḥ || 11 ||

No one could sense any working of the mind inside him, since his ordinary mind had gone completely still, just as no one can see what people are doing on earth once the sun's light is gone.

उनके भीतर मन की कोई हलचल किसी को महसूस नहीं होती थी, क्योंकि उनका सामान्य मन पूरी तरह शांत हो चुका था, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य का प्रकाश चले जाने पर पृथ्वी पर लोगों के काम-काज दिखाई नहीं देते।

5.37.12

अथोद्विग्नेषु दैत्येषु गतेष्वभिमतां दिशम्। विचरत्सु यथाकाममराजनि पुरे पुरा ॥ १२ ॥

athodvigneṣu daityeṣu gateṣvabhimatāṃ diśam| vicaratsu yathākāmamarājani pure purā || 12 ||

Then the demons grew anxious. They went off in whatever direction they wished, wandering freely, as before, through that city which had no king.

फिर दैत्य व्याकुल हो उठे। वे जिधर चाहते उधर चले गए, और पहले की तरह उस राजाविहीन नगर में मनमाने ढंग से घूमने लगे।

5.37.13

चिराय पातालमभूदभूपालतया तया। मात्स्यन्यायविपर्यस्तमस्तंगतगुणक्रमम् ॥ १३ ॥

cirāya pātālamabhūdabhūpālatayā tayā| mātsyanayaviparyastamastaṃgataguṇakramam || 13 ||

For a long time, having no ruler, Patala was turned upside down by the rule of the fish, where the strong devour the weak, and its whole order of good things sank into darkness like a setting sun.

बिना राजा के पाताल लोक लंबे समय तक मछली के उस नियम से उलट-पुलट रहा, जिसमें बलवान निर्बल को खा जाता है, और उसकी सारी अच्छी व्यवस्था डूबते सूरज की तरह अंधकार में डूब गई।

5.37.14

बलिमुक्ताबलपुरं मर्यादाक्रमवर्जितम्। सर्वार्ताशेषवनितं परस्परहृताम्बरम् ॥ १४ ॥

balimuktābalapuraṃ maryādākravarjitam| sarvārtāśeṣavanitaṃ parasparahṛtāmbaram || 14 ||

That realm had lost all its strength and grown powerless. No rule or order was left in it. Every one of its women was in distress. People stole clothes from one another.

उस राज्य की सारी शक्ति समाप्त हो गई थी और वह असहाय हो गया था। वहाँ कोई नियम या व्यवस्था शेष नहीं रही थी। वहाँ की सभी स्त्रियाँ दुखी थीं। लोग एक-दूसरे के वस्त्र चुरा रहे थे।

5.37.15

प्रलापाक्रन्दपुरुषं विसंस्थानपुरान्तरम्। लुठदुद्याननगरं व्यर्थानर्थकदर्थितम् ॥ १५ ॥

pralāpākrandapuruṣaṃ visaṃsthānapurāntaram| luṭhadudyānanagaraṃ vyarthānarthakadarthitam || 15 ||

Its people wailed and cried out. Its towns fell into disorder. Its gardens and streets lay trampled and ruined. It was worn down by senseless misfortunes.

वहाँ के लोग बिलख-बिलख कर रो रहे थे। नगर तितर-बितर हो गए थे। बाग-बगीचे और सड़कें उजड़कर धूल में पड़ी थीं। वह राज्य व्यर्थ की मुसीबतों से थक चुका था।

5.37.16

चिन्तापरासुरगणं निरन्नफलबान्धवम्। अकाण्डोत्पातविवशं ध्वस्ताशामुखमण्डलम्॥ १६॥

cintāparāsuragaṇaṃ nirannaphalabāndhavam | akāṇḍotpātavivaśaṃ dhvastāśāmukhamaṇḍalam || 16 ||

Its demon hosts were sunk in worry. They had no grain, no fruit, and no kin left. They were helpless before disasters that struck without warning. Their hope was shattered, and it showed on their faces.

वहाँ के असुरगण चिंता में डूबे रहते थे। उनके पास न अनाज बचा था, न फल, न कोई सगे-संबंधी। वे अचानक आई विपत्तियों के आगे असहाय थे। उनकी आशा टूट चुकी थी, और यह उनके चेहरों पर साफ दिखता था।

5.37.17

सुरार्भकपराभूतं भूतैराक्रान्तमन्त्यजैः। भूतरिक्तमलक्ष्मीकमुच्छिन्नप्रायकोटरम्॥ १७॥

surārbhakaparābhūtaṃ bhūtairākrāntamantyajaiḥ | bhūtariktamalakṣmīkamucchinnaprāyakoṭaram || 17 ||

It was overpowered even by mere children of the gods, and overrun by ghosts and by outcasts. It was emptied of its people, stripped of all its splendor, and its caverns lay almost entirely destroyed.

उसे देवताओं के बालकों तक ने हरा दिया था, और वह भूत-प्रेतों तथा समाज के सबसे निचले तबके के लोगों से भर गया था। वह अपने लोगों से खाली हो गया था, उसकी सारी शोभा जाती रही थी, और उसकी गुफाएँ लगभग पूरी तरह उजड़ चुकी थीं।

5.37.18

अनियतवनितार्थमन्त्रयुद्धं हृतधनदारविरावितं समन्तात्। कलियुगसमयोद्भटोत्कटाभं तदसुरमण्डलमाकुलं बभूव॥ १८॥

aniyatavanitārthamantrayuddaṃ hṛtadhanadāravirāvitaṃ samantāt | kaliyugasamayodbhaṭotkaṭābhaṃ tadasuramaṇḍalamākulaṃ babhūva || 18 ||

Women, wealth, counsel, and war had all lost their proper order there. On every side rose cries over stolen wealth and stolen wives. The place looked as fierce and terrible as the age of Kali itself. That whole realm of the demons fell into utter turmoil.

वहाँ स्त्रियाँ, धन, सलाह और युद्ध, सब कुछ अपनी मर्यादा खो चुके थे। चारों ओर से चुराए गए धन और स्त्रियों को लेकर चीख-पुकार सुनाई देती थी। वह जगह कलियुग जैसी ही भयंकर और उग्र दिखाई देती थी। असुरों का वह सारा राज्य पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया।

Chapter 38

5.38.1

श्रीवसिष्ठ उवाच अथाखिलजगज्जालक्रमपालनदेवनः । क्षीरोदनगरे शेषशय्यासनगतो हरिः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca athākhilajagajjālakramapālanadevanaḥ | kṣīrodanagare śeṣaśayyāsanagato hariḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then Hari, whose delight is to protect this whole web of the world in its right order, lay resting on the couch of the serpent in the city of the milk ocean.

श्री वसिष्ठ ने कहा: फिर हरि, जिनका आनंद ही इस पूरे संसार-जाल को सही क्रम में बचाए रखना है, क्षीरसागर के नगर में शेषनाग की सेज पर विराजमान थे।

5.38.2

प्रावृण्निद्राव्युपरमे देवार्थमरिसूदनः । धिया विलोकयामास कदाचिज्जागतीं गतिम् ॥ २ ॥

prāvṛṇnidrāvyuprame devārthamariśūdanaḥ | dhiyā vilokayāmāsa kadācijjāgatīṃ gatim || 2 ||

When his rains-time sleep had come to an end, Hari, the slayer of enemies, once looked with his own mind, for the sake of the gods, at the state of the world.

जब उनकी वर्षा-ऋतु की निद्रा समाप्त हुई, तब शत्रुओं का नाश करने वाले हरि ने देवताओं की भलाई के लिए एक बार अपने मन से संसार की दशा को देखा।

5.38.3

त्रिविष्टपं स्वमनसा पार्थिवं चावलोक्य सः । आचारमाजगामाशु पातालमरिपालितम् ॥ ३ ॥

triviṣṭapaṃ svamanasā pārthivaṃ cāvalokya saḥ | ācāramājagāmāśu pātālamaripālitam || 3 ||

Having looked with his own mind at heaven and at the earth, he then quickly turned, as was his way, toward Patala, ruled by the demons.

अपने ही मन से स्वर्ग और पृथ्वी को देखकर, वे फिर जल्दी से, जैसा उनका सदा से नियम था, उस पाताल की ओर मुड़ गए जो दैत्यों के अधीन था।

5.38.4

तत्र स्थिरसमाधाने स्थिते प्रह्लाददानवे । दृष्ट्वा संपदमिन्द्रस्य पुरे प्रौढिमुपागताम् ॥ ४ ॥

tatra sthirasamādhāne sthite prahlādadānave | dṛṣṭvā saṃpadamindrasya pure prauḍhimupāgatām || 4 ||

There, where the demon Prahlada remained fixed in steady, unmoving meditation, he saw that Indra's wealth and glory had grown to its fullness in his city.

वहाँ, जहाँ दैत्य प्रह्लाद स्थिर समाधि में लीन थे, उन्होंने देखा कि इंद्र का ऐश्वर्य उसके नगर में पूरे उफान पर पहुँच चुका था।

5.38.5

व्यालतल्पतलस्थस्य क्षीरोदार्णवशायिनः । शङ्खचक्रगदापाणेर्देहस्यान्तरचारिणः ॥ ५ ॥

vyālatalpatalasthasya kṣīrodārṇavaśāyinaḥ | śaṅkhacakragadāpāṇerdehasyāntaracāriṇaḥ || 5 ||

He rested on the surface of the serpent's couch, lay on the ocean of milk, held the conch, the discus, and the mace in his hands, and moved as the inner self within his body.

वे शेषनाग की सेज पर लेटे थे, क्षीरसागर में शयन किए हुए थे, उनके हाथों में शंख, चक्र और गदा थी, और वे शरीर के भीतर अंतर्यामी रूप में विचरते थे।

5.38.6

पद्मासनस्थस्य मनः शरीरेणातिभास्वता । इदं संचिन्तयामास त्रैलोक्यालमहालिना ॥ ६ ॥

padmāsanasthasya manaḥ śarīreṇātibhāsvatā | idaṃ saṃcintayāmāsa trailokyālamahālinā || 6 ||

Seated in the lotus posture, his mind, together with his own most radiant body, ranging like a great bee over the three worlds, thought this:

कमल के आसन पर बैठे हुए उनका मन, अपने ही परम तेजस्वी शरीर के साथ, मानो तीनों लोकों पर मँडराता कोई विशाल भँवरा हो, यह सोचने लगा:

5.38.7

प्रह्लादे पदविश्रान्ते पाताले गतनायके । कष्टं सृष्टिरियं प्रायो निर्दैत्यत्वमुपागता ॥ ७ ॥

prahlāde padaviśrānte pātāle gatanāyake | kaṣṭaṃ sṛṣṭiriyam prāyo nirdaitvatvamupāgatā || 7 ||

Since Prahlada has settled into deep repose and Patala is left without its lord, this creation, alas, has all but become empty of demons.

चूँकि प्रह्लाद गहरी विश्रांति में डूब गए हैं और पाताल अपने स्वामी के बिना रह गया है, इसलिए यह सृष्टि, हाय, लगभग दैत्यों से खाली हो चली है।

5.38.8

दैत्याभावे सुरश्रेणी निर्जिगीषुपदं गता । शममेष्यत्यदृष्टाब्दपटलेषु सरिद्यथा ॥ ८ ॥

daityābhāve suraśreṇī nirjigīṣupadaṃ gatā | śamameṣyatyadṛṣṭābdapaṭaleṣu saridyathā || 8 ||

With no demons left at all, the ranks of the gods lose all wish to conquer; they will come to a standstill, just as a river runs dry when the clouds vanish from the sky.

जब दैत्य ही नहीं रहे, तो देवताओं की पंक्ति में विजय की कोई इच्छा नहीं बचेगी; वे भी वैसे ही थम जाएँगे जैसे बादल न रहने पर कोई नदी सूखकर थम जाती है।

5.38.9

मोक्षाख्यं निर्गतद्वन्द्वं ततो यास्यति तत्पदम् । क्षीणाभिमानविरसा लतेव प्रविशुष्कताम् ॥ ९ ॥

mokṣākhyam nirgatadvandvaṃ tato yāsyati tatpadam | kṣīṇābhimānavirasā latāv praviśuṣkatām || 9 ||

Then they will go on to that state called liberation, free from every pair of opposites, their pride worn thin and gone lifeless - like a vine withering away into complete dryness.

फिर वे मोक्ष नाम की उस अवस्था को पा लेंगे, जो सुख-दुख के हर जोड़े से मुक्त है; उनका अभिमान घिस-घिसकर खत्म हो जाएगा और वे निर्जीव पड़ जाएँगे, जैसे कोई बेल सूखते-सूखते बिल्कुल सूखी हो जाती है।

5.38.10

देवौघे शान्तिमायाते भुवि यज्ञतपःक्रियाः । अदेवत्वफलाः सर्वाः शममेष्यन्त्यसंशयम् ॥ १० ॥

devaughē śāntimāyātē bhuvi yajñatapaḥkriyāḥ | adēvatvaphalāḥ sarvāḥ śamamēṣyantyasaṃśayam || 10 ||

Once the ranks of the gods have grown this still, then on earth every rite of sacrifice and penance, since their fruit will no longer be godhood, will surely come to an end.

जब देवताओं की पंक्ति इस तरह शांत हो जाएगी, तो पृथ्वी पर यज्ञ और तप के हर कर्म का फल अब देवत्व नहीं रह जाएगा, और वे निश्चय ही समाप्त हो जाएँगे।

5.38.11

क्रियास्वथोपशान्तासु भूर्लोकोऽस्तमुपैष्यति । असंसारप्रसङ्गोऽथ तस्य नाशे भविष्यति ॥ ११ ॥

kriyāsvathopaśāntāsu bhūrloko'stamupaiṣyati | asaṃsāraprasaṅgo'tha tasya nāśe bhaviṣyati || 11 ||

Once these rites have died away, this earthly world will go to its setting, like the sun going down; and the moment it perishes, this endless round of birth and death will itself come to an end.

फिर जब ये कर्म थम जाएँगे, तो यह पृथ्वी-लोक भी वैसे ही अस्त हो जाएगा जैसे सूरज डूबता है; और इसके नष्ट होते ही यह जन्म-मरण का अंतहीन चक्र भी पूरी तरह मिट जाएगा।

5.38.12

आकल्पान्तं त्रिभुवनं यदिदं कल्पितं मया । नाशमेष्यत्यकालेन तापे हिमकणो यथा ॥ १२ ॥

ākalpāntaṃ tribhuvanaṃ yadidaṃ kalpitaṃ mayā | nāśameṣyatyakālena tāpe himakaṇo yathā || 12 ||

This world of three regions, which I shaped to last until the end of the age, will perish before its time - like a grain of snow melting in the heat.

यह तीनों लोकों वाला जगत, जिसे मैंने कल्प के अंत तक टिकने के लिए रचा था, अपने समय से पहले ही नष्ट हो जाएगा - जैसे धूप में बर्फ का एक कण पिघल जाता है।

5.38.13

किमेवमस्मिन्नाभोगे विलीय क्षयमागते । कृतं मयेह भवति स्वलीलाक्षयकारिणा ॥ १३ ॥

kimevamasminnābhoge vilīya kṣayamāgate | kṛtaṃ mayeha bhavati svalīlākṣayakāriṇā || 13 ||

Then what would I have accomplished here - I, whose very sport never ends - if this whole vast world simply dissolves away and comes to ruin?

तो फिर मैंने यहाँ क्या किया - मैं, जिसकी लीला कभी खत्म नहीं होती - अगर यह पूरा विशाल जगत यूँ ही घुलकर बर्बाद हो जाए?

5.38.14

ततोऽहमपि शून्येऽस्मिन्नष्टचन्द्रार्कतारके । वपुःप्रशान्तिमाधाय स्थितिमेष्यामि तत्पदे ॥ १४ ॥

tato'hamapi śūnye'sminnaṣṭacandrārkatārake | vapuḥpraśāntimādhāya sthitimeṣyāmi tatpade || 14 ||

Then I too, in this emptiness where the moon, the sun and the stars have all vanished, will still my own form to rest, and come to abide in that highest state.

तब मैं भी, इस सूनेपन में जहाँ चाँद, सूरज और तारे सब मिट चुके होंगे, अपने ही रूप को शांत करके उस परम अवस्था में जा टिकूँगा।

5.38.15

अकाण्ड एवमेवं हि जगत्युपशमं गते । नेह श्रेयो न पश्यामि मन्ये जीवन्तु दानवाः ॥ १५ ॥

akāṇḍa evamevaṃ hi jagatyupaśamaṃ gate | neha śreyo na paśyāmi manye jīvantu dānavāḥ || 15 ||

If the world comes to an end this way, so suddenly and out of season, I see no good in it at all - so I think: let the demons live!

अगर संसार इस तरह अचानक, बिना किसी कारण के, समाप्त हो जाता है, तो मुझे इसमें कोई भलाई नहीं दिखती - इसलिए मैं सोचता हूँ: दैत्य जीवित रहें!

5.38.16

दैत्योद्योगेन विबुधास्ततो यज्ञतपःक्रियाः। तेन संसारसंस्थानं न संसारक्रमोऽन्यथा ॥ १६ ॥

daityodyogenena vibudhāstato yajñatapaḥkriyāḥ| tena saṃsārasaṃsthānaṃ na saṃsārakramo'nyathā || 16 ||

It is the demons' own striving that keeps the gods active, and with that the rites of sacrifice and penance go on; by this the order of the world stays standing - the round of birth and death runs no other way.

दैत्यों की अपनी मेहनत ही देवताओं को सक्रिय रखती है, और इसी से यज्ञ और तप के कर्म चलते रहते हैं; इसी से संसार की व्यवस्था टिकी रहती है - जन्म-मरण का चक्र किसी और तरह नहीं चलता।

5.38.17

तस्माद्रसातलं गत्वा यथावत्स्थापयाम्यहम्। स्वे क्रमे दानवाधीशमृतुः पुनरिव द्रुमम् ॥ १७ ॥

tasmādrasātalaṃ gatvā yathāvatsthāpayāmyaham| sve kramē dānavādhīśamṛtuḥ punariva drumam || 17 ||

Therefore I shall go down to Rasatala and set the lord of the demons back in his rightful place - as a returning season brings a tree back to life.

इसलिए मैं रसातल जाकर दैत्यों के स्वामी को फिर से उसके सही स्थान पर बिठाऊँगा - जैसे लौटती हुई ऋतु किसी पेड़ को फिर से हरा-भरा कर देती है।

5.38.18

विना प्रह्लादमथ चेदितरं दानवेश्वरम्। करोमि तदसौ मन्ये देवानासादयिष्यति ॥ १८ ॥

vinā prahlādamatha ceditarāṃ dānavēśvaram| karomi tadasau manye dēvānāsādayiṣyati || 18 ||

But if, instead of Prahlada, I make someone else lord of the demons, then he, I think, will go on to attack the gods.

लेकिन अगर मैं प्रह्लाद की जगह किसी और को दैत्यों का स्वामी बना दूँ, तो मुझे लगता है वह देवताओं पर चढ़ाई कर बैठेगा।

5.38.19

प्रह्लादस्य त्वयं देहः पश्चिमः पावनो महान्। आकल्पमिह वस्तव्यं देहेनानेन तेन च ॥ १९ ॥

prahlādasya tvayaṃ dēhaḥ paścimaḥ pāvano mahān| ākalpamiha vastavyaṃ dēhēnānēna tēna ca || 19 ||

As for Prahlada - this body of his is his last, a great and purifying one; with this very body he must dwell here until the end of the age.

जहाँ तक प्रह्लाद की बात है - यह उनका आखिरी शरीर है, बड़ा और पवित्र; उन्हें इसी शरीर के साथ यहाँ कल्प के अंत तक रहना है।

5.38.20

एवं हि नियतिर्देवी निश्चिता पारमेश्वरी। प्रह्लादेन यथाकल्पं स्थातव्यमिह देहिना ॥ २० ॥

evaṃ hi niyatirdēvī niścitā pāramēśvarī| prahlādēna yathākalpaṃ sthātavyamihadēhinā || 20 ||

For thus the goddess Destiny, the supreme mistress over all, has firmly decided: Prahlada, in this body, must remain here until the end of the age.

क्योंकि नियति देवी ने, जो सबसे बड़ी स्वामिनी हैं, यही निश्चित कर रखा है: प्रह्लाद को इसी देह में यहाँ कल्प के अंत तक रहना होगा।

5.38.21

तस्मात्तमेव गत्वा तु दैत्येन्द्रं बोधयाम्यहम्। गर्जन्गिरिनदीसुप्तं मयूरमिव वारिदः ॥ २१ ॥

tasmāttameva gatvā tu daityendraṃ bodhayāmyaham | garjangirinadīsuptaṃ mayūramiva vāridaḥ || 21 ||

Therefore I shall go to him alone and wake the lord of the demons - as a thundering raincloud wakes a peacock sleeping by a mountain stream.

इसलिए मैं अकेले उनके पास जाकर दैत्यों के स्वामी को जगाऊँगा - जैसे गरजता हुआ बादल पहाड़ी नदी के किनारे सोए हुए मोर को जगा देता है।

5.38.22

जीवनमुक्तसमाधिस्थः करोत्वसुरनाथताम्। मणिर्मुक्तमनस्कारः प्रतिबिम्बक्रियामिव ॥ २२ ॥

jīvanamuktasamādhisthaḥ karotvasuranāthatām | maṇirmuktamanaskāraḥ pratibimbakriyāmiva || 22 ||

Let him, freed while still living and settled in that deep stillness, carry out his rule over the demons - like a jewel, with no intent of its own, that simply throws back a reflection.

जीते-जी मुक्त होकर उस गहरी स्थिरता में टिके हुए, वे दैत्यों पर शासन करते रहें - जैसे कोई मणि, बिना कोई इरादा रखे, बस अपने आप एक प्रतिबिंब दिखा देती है।

5.38.23

नहि नश्यति सर्गोऽयमेवं सह सुरासुरैः। भविष्यति च तद्वन्द्वं तन्मे क्रीडा भविष्यति ॥ २३ ॥

nahi naśyati sargo'yamevaṃ saha surāsuraiḥ | bhaviṣyati ca taddvandvaṃ tanme krīḍā bhaviṣyati || 23 ||

So this creation, together with its gods and demons, will not perish this way; that pair will go on - and that will be my play.

इसलिए यह सृष्टि, अपने देवताओं और दैत्यों के साथ, इस तरह नष्ट नहीं होगी; वह जोड़ा बना रहेगा - और यही मेरी लीला होगी।

5.38.24

सर्गक्षयोदयावेतौ सुसमौ मम यद्यपि। तथापीदं यथासंस्थं भवत्वन्येन किं मम ॥ २४ ॥

sargakṣayodayāvetau susamau mama yadyapi | tathāpīdaṃ yathāsaṃsthaṃ bhavatvanyena kiṃ mama || 24 ||

Though the rising and the passing of creation are entirely the same to me, still - let this go on as it now stands; what else is it to me?

भले ही सृष्टि का बनना और मिटना मेरे लिए बिल्कुल बराबर है, फिर भी - यह जैसा चल रहा है वैसा ही चलने दो; इससे अलग मुझे और क्या लेना-देना है?

5.38.25

भावाभावेषु यत्तुल्यं तन्नाशे तत्स्थितौ च वा। यः प्रयत्नस्त्वबुद्धित्वात्तद्योगगमनं भवेत् ॥ २५ ॥

bhāvābhāveṣu yattulyaṃ tannaśe tatsthitau ca vā | yaḥ prayatnastvabuddhitvāttadyogagamanaṃ bhavet || 25 ||

What is the same in being and in not-being is the same whether this world perishes or endures; whatever effort is made about it comes only from a lack of understanding, and is nothing but wasted exertion.

जो होने और न होने में एक-सा है, वही इस जगत के मिटने और बने रहने में भी एक-सा है; इसके बारे में जो भी कोशिश की जाए, वह सिर्फ समझ की कमी से होती है, और बस बेकार की मशक्कत भर होती है।

5.38.26

तस्मात्प्रयामि पातालं बोधयाम्यसुरेश्वरम्। स्थैर्यं यामि न संसारलीलां संपादयाम्यहम्॥ २६॥

tasmātprayāmi pātālaṃ bodhayāmyasureśvaram | sthairyaṃ yāmi na saṃsāralīlāṃ saṃpādayāmyaham || 26 ||

Therefore I shall go to Patala and wake the lord of the demons; I am not headed toward mere stillness - I shall carry the play of the world onward.

इसलिए मैं पाताल जाऊँगा और दैत्यों के स्वामी को जगाऊँगा; मैं किसी ठहराव की ओर नहीं जा रहा - मैं संसार की लीला को आगे बढ़ाता रहूँगा।

5.38.27

असुरपुरमवाप्य प्रोद्धताचारघोरं कमलमिव विवस्वान्दैत्यमुद्बोधयामः। जगदिदमखिलं स्वस्थैर्यमभ्यानयामो घनविधिरिव शैले चञ्चलं मेघजालम्॥ २७॥

asurapuramavāpya proddhatācāraghoraṃ kamalamiva vivasvāndaitayamudbodhayāmaḥ | jagadidamakhilaṃ svasthairayamabhyānayāmo ghanavidhiriva śaile cañcalaṃ meghajālam || 27 ||

Once we reach the city of the demons, fearsome with its haughty ways, we shall wake the demon-king, as the sun wakens a lotus; and we shall bring this whole world back to its own steadiness - as the massing clouds settle their drifting web over a mountain into stillness.

दैत्यों के नगर में पहुँचकर, जो अपने अहंकारी आचरण के कारण डरावना है, हम दैत्यों के स्वामी को जगाएँगे, जैसे सूरज कमल को खिलाता है; और हम इस पूरे जगत को उसकी अपनी स्थिरता में वापस ले आएँगे - जैसे घने बादल पहाड़ पर अपने बिखरे हुए जाल को समेटकर टिका देते हैं।

Chapter 39

5.39.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति संचिन्त्य सर्वात्मा क्षीरोदादात्मकात्पुरात् । चचाल परिवारेण सह सानुरिवाचलः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti saṃcintya sarvātmā kṣīrodādātmakātpurāt | cacāla parivāreṇa saha sānurivācalaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having thought this, Vishnu, the self of all, set out from his own city in the ocean of milk, together with his companions, like a mountain moving along with its slopes.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह सोचकर विष्णु, जो सबकी आत्मा हैं, क्षीरसागर में अपने नगर से अपने साथियों के साथ चल पड़े, ठीक वैसे जैसे कोई पहाड़ अपनी चोटियों के साथ चलता है।

5.39.2

क्षीरोदतलरन्ध्रेण तेनैव स्तम्भिताम्भसा । प्रह्लादनगरं प्राप शक्रलोकमिवापरम् ॥ २ ॥

kṣīrodatalarandhreṇa tenaiva stambhitāmbhasā | prahlādanagaraṃ prāpa śakralokamivāparam || 2 ||

Through an opening in the floor of the ocean of milk, holding its waters still by that very passage, he reached the city of Prahlada, as if reaching another world of Indra.

क्षीरसागर की तह में बने एक छेद से, उसी रास्ते पानी को रोककर, वे प्रह्लाद के नगर में पहुँचे, मानो किसी दूसरे इन्द्रलोक में पहुँच गए हों।

5.39.3

हेममन्दिरकोशस्थं ददर्शात्रासुरं हरिः । अथ शैलगुहालीनं समाधिस्थमिवाब्जजम् ॥ ३ ॥

hemamandirakośasthaṃ dadarśātrāsuraṃ hariḥ | atha śailaguhālīnaṃ samādhisthamivābjajam || 3 ||

There Vishnu saw Prahlada sitting in the inner room of his golden palace, like Brahma, the lotus-born, sitting in deep meditation inside a mountain cave.

वहाँ विष्णु ने प्रह्लाद को अपने सोने के महल के भीतरी कक्ष में बैठा देखा, जैसे कमल से जन्मे ब्रह्मा किसी पहाड़ की गुफा में समाधि लगाकर बैठे हों।

5.39.4

तत्र ते तेजसा दैत्या वैष्णवेनावधूलिता । दूरं ययुर्दिनेशांशुवित्रस्ता इव कौशिकाः ॥ ४ ॥

tatra te tejasā daityā vaiṣṇavenāvadhūlitā | dūraṃ yayurdineśāṃśuvitrasā iva kauśikāḥ || 4 ||

There those demons, scattered by Vishnu's brightness, fled far away, like owls frightened by the rays of the sun.

वहाँ वे राक्षस विष्णु के तेज से तितर-बितर होकर दूर भाग गए, जैसे उल्लू सूरज की किरणों से डरकर भाग जाते हैं।

5.39.5

द्वित्रैः सहासुरैर्मुख्यैः परिवारयुतो हरिः । प्रविवेशासुरगृहं तारावानिव खं शशी ॥ ५ ॥

dvitrairmukhyaismukhyaiḥ sahāsurairmukhyaismukhyaiḥ parivārayuto hariḥ | praviveśāsauragṛhaṃ tārāvānivakhaṃ śaśī || 5 ||

Along with two or three chief demons, and surrounded by his own company, Vishnu entered the demon's palace, like the moon entering a sky full of stars.

दो-तीन प्रमुख राक्षसों तथा अपने साथियों के साथ विष्णु राक्षस के महल में घुसे, जैसे चाँद तारों भरे आकाश में प्रवेश करता है।

5.39.6

वैनतेयासनस्थोऽसौ लक्ष्मीविधुतचामरः । स्वायुधादिपरीवारो देवर्षिमुनिवन्दितः ॥ ६ ॥

vainateyāsanastho'sau lakṣmīvidhutacāmaraḥ | svāyudhādiparīvāro devarṣimunivanditaḥ || 6 ||

He sat there upon Garuda, fans waving over him at Lakshmi's hand, his own weapons around him as his escort, honored by gods, divine sages, and sages.

वे वहाँ गरुड़ पर बैठे थे, लक्ष्मी उन पर चँवर डुला रही थीं, उनके अपने अस्त्र-शस्त्र रक्षक की तरह उनके साथ थे, और देवता, देवर्षि तथा मुनि सब उन्हें प्रणाम कर रहे थे।

5.39.7

महात्मन्संप्रबुध्यस्वेत्येवं विष्णुरुदाहरन् । पाञ्चजन्यं प्रदध्मौ च ध्वनयन्ककुभां गणम् ॥ ७ ॥

mahātmansaṃprabudhyasvetyevaṃ viṣṇurudāharan | pāñcajanyaṃ pradadhmau ca dhvanayankakubhāṃ gaṇam || 7 ||

Saying, "Great one, awaken!" Vishnu spoke, then blew his conch Panchajanya, and its sound filled every direction.

"हे महात्मा, जागो!" यह कहकर विष्णु ने अपना शंख पांचजन्य बजाया, और उसकी ध्वनि से सभी दिशाएँ गूँज उठीं।

5.39.8

महता तेन शब्देन वैष्णवप्राणजन्मना । तुल्यकालपरिक्षुब्धकल्पाभ्रार्णवरंहसा ॥ ८ ॥

mahatā tena śabdena vaiṣṇavaprāṇajanmanā | tulyakālaparikṣubdhakalpābhrārṇavaraṃhasā || 8 ||

That was a great sound, born from Vishnu's own breath, coming with the force of the clouds of the world's end and a churned ocean, both together.

वह एक बहुत बड़ी ध्वनि थी, जो विष्णु की अपनी साँस से उठी थी, और जिसमें प्रलय के बादलों तथा मथे हुए समुद्र का वेग एक साथ समाया था।

5.39.9

आसुरी जनता भूमौ पपातागतसंभ्रमा । मत्तलीलाभ्रनादेन राजहंसावली यथा ॥ ९ ॥

āsurī janatā bhūmau papātāgatasaṃbhramā | mattalīlābhranādena rājahaṃsāvalī yathā || 9 ||

The demon people fell to the ground, suddenly seized by panic, like a row of royal swans falling at the roar of clouds in wild play.

राक्षस लोग अचानक घबराकर भूमि पर गिर पड़े, जैसे बादलों की गरज से राजहंसों की पंक्ति गिर पड़ती है।

5.39.10

जहर्ष जनितानन्दा वैष्णवी गतसंभ्रमा । जनता जलदध्वानफुल्लेव कुटजावली ॥ १० ॥

jaharṣa janitānandā vaiṣṇavī gatasaṃbhramā | janatā jaladadhvānaphullaiva kuṭajāvalī || 10 ||

Vishnu's own people, filled with joy, their fear gone, rejoiced, like a row of kutaja trees blossoming at the sound of clouds.

विष्णु के अपने लोग आनंद से भर गए, उनका डर जाता रहा, और वे ऐसे प्रसन्न हुए जैसे बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर कुटज के पेड़ों की पंक्ति खिल उठती है।

5.39.11

बभूव संप्रबुद्धात्मा दानवेशः शनैःशनैः । मेघावसर उत्फुल्लकदम्ब इव कानने ॥ ११ ॥

babhūva saṃprabuddhātmā dānaveśaḥ śanaiḥśanaiḥ | meghāvasara utphullakadamba iva kānane || 11 ||

Slowly, gradually, Prahlada, the lord of the demons, became fully awake, like a kadamba tree blossoming in the forest when the rains come.

धीरे-धीरे राक्षसों का स्वामी प्रह्लाद पूरी तरह जाग उठा, जैसे बरसात आने पर जंगल में कदंब का पेड़ खिल उठता है।

5.39.12

ब्रह्मरन्ध्रकृतोत्थाना प्राणशक्तिरथासुरम् । शनैराक्रमयामास गङ्गा सर्वमिवार्णवम् ॥ १२ ॥

brahmarandhrakṛtotthānā prāṇaśaktirathāsuram | śanairākramayāmāsa gaṅgā sarvamivārṇavam || 12 ||

Then the power of his life-breath, rising up from the opening at the crown of his head, slowly spread through Prahlada completely, as the Ganga spreads through the whole ocean.

फिर उसकी प्राणशक्ति सिर के ऊपरी छिद्र से उठकर धीरे-धीरे प्रह्लाद के पूरे शरीर में फैल गई, जैसे गंगा पूरे समुद्र में फैल जाती है।

5.39.13

क्षणादाक्रमयामास प्राणश्रीः सर्वतोऽसुरम् । उदयानन्तरं सौरी प्रभेव भुवनान्तरम् ॥ १३ ॥

kṣaṇādākramayāmāsa prāṇaśrīḥ sarvato'suram | udayānantaraṃ saurī prabheva bhuvanāntaram || 13 ||

In an instant, the splendor of his life-breath spread through Prahlada completely, like the sun's light spreading over another world the moment after it rises.

एक ही क्षण में उसकी प्राणशक्ति की चमक प्रह्लाद के पूरे शरीर में फैल गई, जैसे सूरज उगते ही उसकी रोशनी किसी दूसरे लोक में फैल जाती है।

5.39.14

प्राणेषु रन्ध्रनवके प्रवृत्तेष्वथ तस्य चित् । चेत्योन्मुखी बभूवान्तः प्राणदर्पणबिम्बिता ॥ १४ ॥

prāṇeṣu randhranavake pravṛtteṣvatha tasya cit | cetyondmukhī babhūvāntaḥ prāṇadarpaṇabimbitā || 14 ||

Then, when the life-breaths had begun moving through the nine openings of his body, his awareness turned to face the world outside, mirrored within the mirror of his own breath.

फिर, जब प्राण उसके शरीर के नौ द्वारों में गति करने लगे, तो उसकी चेतना बाहरी संसार की ओर मुड़ गई, मानो अपने ही श्वास के दर्पण में झलक रही हो।

5.39.15

चेतनीयोन्मुखी चेत्यं चिन्मनस्तामुपाययौ । द्वित्वं मुकुरसंक्रान्ता मुखश्रीरिव राघव ॥ १५ ॥

cetanīyonmukhī cetyaṃ cinmanastāmupāyayau | dvitvaṃ mukurasaṃkrāntā mukhaśrīriva rāghava || 15 ||

O Rama, that awareness, turning to face the object before it, became mind, as the beauty of a face, cast into a mirror, becomes two.

हे राम, वह चेतना सामने की वस्तु की ओर मुड़कर मन बन गई, जैसे दर्पण में पड़ने पर एक ही मुख की सुंदरता दो हो जाती है।

5.39.16

किंचिदङ्कुरिते चित्ते नेत्रे विकसनोन्मुखे । शनैर्बभूवतुस्तस्य प्रातर्नीले यथोत्पले ॥ १६ ॥

kiṃcid aṅkurite citte netre vikasanonmukhe | śanair bhabhūvatus tasya prātarnīle yathotpale || 16 ||

When his mind had begun to stir just a little, his two eyes, about to open, slowly came awake, like two blue lotuses opening at dawn.

जब उसका मन थोड़ा-सा हिलने लगा, तो उसकी दोनों आँखें, जो खुलने ही वाली थीं, धीरे-धीरे खुल गईं, जैसे सुबह के समय दो नीले कमल खिलते हैं।

5.39.17

प्राणापानपरामृष्टानाडीविवरसंविदः । वातार्तस्येव पद्मस्य स्पन्दोऽस्य समजायत ॥ १७ ॥

prāṇāpānaparāmṛṣṭānāḍīvivarasaṃvidaḥ | vātārtasyeva padmasya spando'sya samajāyata || 17 ||

A quiver arose in the awareness within his body's channels, now stirred by the breath going in and the breath going out, like a lotus trembling in the wind.

उसके शरीर की नाड़ियों में बसी चेतना में एक कंपन उठा, जिसे भीतर जाती और बाहर आती साँस ने छेड़ दिया था, जैसे हवा में कोई कमल काँप उठता है।

5.39.18

निमेषान्तरमात्रेण मनः पीवरतां ययौ । तस्मिन्प्राणवशात्पूर्णे तरङ्ग इव वारिणि ॥ १८ ॥

nimeṣāntaramātreṇa manaḥ pīvaratāṃ yayau | tasminprāṇavaśātpūrṇe taraṅga iva vāriṇi || 18 ||

In the space of a single blink, his mind grew full and firm, like a wave rising in water once the water is filled by the force of the breath.

पलक झपकते ही उसका मन भरा-पूरा और स्थिर हो गया, जैसे पानी में लहर उठती है जब साँस का वेग उसमें भर जाता है।

5.39.19

अथासौ विकसन्नेत्रमनःप्राणवपुर्बभौ । अर्धोदित इवादित्ये सरः स्फुरितपङ्कजम् ॥ १९ ॥

athāsau vikasannetramanaḥprāṇavapurbabhau | ardhodita ivāditye saraḥ sphuritapaṅkajam || 19 ||

Then he shone forth, his eyes, mind, breath, and body all opening together, like a lake with its lotuses opening and glistening when the sun is half risen.

फिर वह चमक उठा, उसकी आँखें, मन, प्राण और शरीर सब एक साथ खुल गए, जैसे आधा सूरज उगते ही तालाब के कमल खिलकर चमकने लगते हैं।

5.39.20

अस्मिन्नवसरे यावद्बुध्यस्वेत्यवदद्विभुः । प्रबुद्धस्तावदेषोऽभूद्बर्ही घनरवादिव ॥ २० ॥

asminnavasare yāvadbudhyasvetyavadadvibhuḥ | prabuddhastāvadeṣo'bhūdbarhī ghanaravādiva || 20 ||

At that very moment, the instant the Lord said, "Awaken!", Prahlada became fully awake, like a peacock stirred by the roar of clouds.

उसी क्षण, जैसे ही भगवान ने कहा "जागो!", प्रह्लाद पूरी तरह जाग गया, जैसे बादलों की गरज सुनकर मोर जाग उठता है।

5.39.21

प्रफुल्लनयनं जातमननं पीवरस्मृतिम् उवाचैनं त्रिलोकेशः पुरा नाभ्यब्जजं यथा ॥ २१ ॥

praPhullanayanaṃ jātamananaṃ pīvarasmṛtim uvācainaṃ trilokeśaḥ purā nābhyabjajaṃ yathā || 21 ||

To him now, his eyes open, his thought risen, his memory grown full, the Lord of the three worlds spoke, just as he once spoke, long ago, to the one born from the lotus of his own navel.

अब जिसकी आँखें खुल चुकी थीं, जिसका विचार जाग उठा था, जिसकी स्मृति भरपूर हो गई थी, उससे तीनों लोकों के स्वामी ने वैसे ही कहा जैसे उन्होंने बहुत पहले अपनी नाभि के कमल से जन्मे ब्रह्मा से कहा था।

5.39.22

साधो स्मर महालक्ष्मीमात्मीयां स्मर चाकृतिम् अकाण्ड एव किं देहविरामः क्रियते त्वया ॥ २२ ॥

sādho smara mahālakṣmīmātmīyāṃ smara cākṛtim akāṇḍa eva kiṃ dehavirāmaḥ kriyate tvayā || 22 ||

Good man, remember your own great glory, and remember your true form. Why, for no reason at all, are you putting an end to your body?

हे भले पुरुष, अपने महान वैभव को याद करो, और अपने असली स्वरूप को याद करो। बिना किसी कारण के तुम अपने शरीर को समाप्त क्यों कर रहे हो?

5.39.23

हेयोपादेयसंकल्पविहीनस्य शरीरगैः भावाभावैस्तवार्थः किमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ संप्रति ॥ २३ ॥

heyopādeyasaṃkalpavihīnasya śarīragaiḥ bhāvābhāvais tavārthaḥ kimuttiṣṭhottiṣṭha saṃprati || 23 ||

For one who is free of every thought of what to take and what to leave, what does it matter whether the body comes to be or ceases to be? Rise, rise now!

जो व्यक्ति यह सोच ही नहीं रखता कि क्या अपनाना है और क्या छोड़ना है, उसके लिए शरीर के बनने या मिटने से क्या फर्क पड़ता है? उठो, अभी उठो!

5.39.24

स्थातव्यमिह देहेन कल्पं यावदनेन ते वयं हि नियतिं विद्मो यथाभूतामनिन्दिताम् ॥ २४ ॥

sthātavyamiha dehena kalpaṃ yāvadanena te vayaṃ hi niyatiṃ vidmo yathābhūtāmaninditām || 24 ||

You must stay here with this body for a whole age of the world, for we truly know your fate as it is, and there is nothing to blame in it.

तुम्हें इस शरीर के साथ यहाँ पूरे एक कल्प तक रहना है, क्योंकि हम तुम्हारी नियति को जैसी वह सच में है वैसा ही जानते हैं, और उसमें कोई दोष नहीं है।

5.39.25

जीवन्मुक्तेन भवता राज्य एवेह तिष्ठता क्षेपणीया गतोद्वेगमाकल्पान्तमियं तनुः ॥ २५ ॥

jīvanmuktena bhavatā rājya eveha tiṣṭhatā kṣepaṇīyā gatodvegamākalpāntamiyaṃ tanuḥ || 25 ||

You, who are freed while still living, should stay right here in your kingdom, and let this body pass, free of all worry, until the end of this age.

तुम, जो जीते-जी मुक्त हो, यहीं अपने राज्य में रहो, और इस शरीर को बिना किसी चिंता के इस कल्प के अंत तक चलने दो।

5.39.26

तन्वां कल्पान्तशीर्णायां स्वे महिम्नि त्वयानघ । वस्तव्यं स्फुटिते कुम्भे कुम्भाकाशेन खे यथा ॥ २६ ॥

tanvāṃ kalpāntaśīrṇāyāṃ sve mahimni tvayānagha| vastavyaṃ sphuṭite kumbhe kumbhākāśena khe yathā || 26 ||

O sinless one, when this body crumbles away at the end of the age, you must dwell in your own greatness, as the space held inside a pot, when the pot breaks, comes to dwell in the open sky.

हे निष्पाप, जब यह शरीर कल्प के अंत में नष्ट हो जाए, तब तुम अपनी ही महिमा में बसे रहना, जैसे घड़े के भीतर का आकाश, घड़ा फूटने पर, खुले आकाश में जा मिलता है।

5.39.27

कल्पान्तस्थायिनी शुद्धा दृष्टलोकपरावरा । इयं तव तनुर्जाता जीवन्मुक्तविलासिनी ॥ २७ ॥

kalpāntasthāyinī śuddhā dṛṣṭalokaparāvarā| iyaṃ tava tanurjātā jīvanmuktavilāsinī || 27 ||

This body of yours has become pure, lasting until the end of the age, one that has seen the worlds both high and low, the very playground of one who is freed while still living.

तुम्हारा यह शरीर शुद्ध हो गया है, जो कल्प के अंत तक टिकेगा, जिसने ऊँचे और नीचे सब लोक देख लिए हैं, यह उस व्यक्ति का खेल-स्थान बन गया है जो जीते-जी मुक्त है।

5.39.28

नोदिता द्वादशादित्या न प्रलीनाः शिलोच्चयाः । न जगज्ज्वलितं साधो तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ २८ ॥

noditā dvādaśādityā na pralīnāḥ śiloccayāḥ| na jagajjvalitaṃ sādho tanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 28 ||

The twelve suns have not risen, the mountains have not melted away, and the world has not caught fire. Good man, why are you giving up your body for nothing?

बारह सूरज नहीं उगे हैं, पहाड़ पिघले नहीं हैं, और दुनिया जली नहीं है। भले आदमी, तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.29

वायुर्वहति नोन्मत्तस्त्रिलोकीभस्मधूसरः । लोलामरकपालाङ्कस्तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ २९ ॥

vāyurvahati nonmattastrilokībhasmadhūsaraḥ| lolāmarakapālāṅkastanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 29 ||

The wind is not blowing wild, grey with the ashes of the three worlds, strewn with the trembling skulls of the gods. Why are you giving up your body for nothing?

हवा पागलों की तरह नहीं चल रही, तीनों लोकों की राख से धूसर होकर, देवताओं की काँपती खोपड़ियों से भरी हुई। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.30

अशोक इव मञ्जर्यः पुष्करावर्तविद्युतः । न स्फुरन्ति जगत्कोशे तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ ३० ॥

aśoka iva mañjaryaḥ puṣkarāvartavidyutaḥ| na sphuranti jagatkośe tanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 30 ||

The lightning of the Pushkaravarta clouds is not flashing across the world's shell like clusters of ashoka blossoms. Why are you giving up your body for nothing?

पुष्करावर्त बादलों की बिजली अशोक के फूलों के गुच्छों की तरह दुनिया के आकाश में नहीं चमक रही। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.31

धरासाररणच्छैलाः प्रज्वलज्ज्वलनोज्ज्वलाः । ककुभो न विशीर्यन्ते तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ ३१ ॥

dharāsārarṇacchailāḥ prajvalajjvalanōjjvalāḥ | kakubhō na viśīryantē tanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 31 ||

The mountains are not roaring under torrents of stone and blazing with leaping fire, and the four directions are not crumbling to pieces. Why are you giving up your body for nothing?

पहाड़ पत्थरों की बौछार से गरज नहीं रहे और धधकती आग से जल नहीं रहे, और चारों दिशाएँ टूट-फूट नहीं रही हैं। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.32

न ब्रह्मविष्णुरुद्राख्यत्रयीशेषमिदं स्थितम् । जगज्जरठजीमूतं तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ ३२ ॥

na brahmaviṣṇurudrākhyatrayīśēṣamidaṃ sthitam | jagajjaraṭhajīmūtaṃ tanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 32 ||

This world, an old worn-out cloud, has not shrunk down to a mere trace of the three called Brahma, Vishnu and Rudra. Why are you giving up your body for nothing?

यह दुनिया, एक पुराने घिसे हुए बादल की तरह, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम के तीनों का बस एक निशान भर बनकर नहीं रह गई है। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.33

न चेहाद्रिदलश्रेणिमात्रैकानुमितान्तराः । दिशो जर्जरतां यातास्तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ ३३ ॥

na cehādridalśrēṇimātraiakānumitāntarāḥ | diśō jarjaratāṃ yātāstanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 33 ||

And here, the four directions, marked apart only by lines of shattered mountain rock, have not crumbled to pieces. Why are you giving up your body for nothing?

और यहाँ, चारों दिशाएँ, जो सिर्फ टूटे हुए पहाड़ों की चट्टानों की कतारों से अलग पहचानी जाती हैं, टूट-फूट कर बिखरी नहीं हैं। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.34

स्फुटदद्रीन्द्रटंकाराः कराः सौरा भ्रमन्ति खे । कल्पाभ्राणि न गर्जन्ति तनुं त्यजसि किं मुधा ॥ ३४ ॥

sphuṭadadrīndraṭaṅkārāḥ karāḥ saurā bhramanti khe | kalpābhrāṇi na garjanti tanuṃ tyajasi kiṃ mudhā || 34 ||

The sun's rays that crack great mountains with a clang are not roaming the sky, and the doomsday clouds are not thundering. Why are you giving up your body for nothing?

जो सूरज की किरणें बड़े-बड़े पहाड़ों को कड़कड़ाती आवाज़ के साथ फोड़ देती हैं, वे आकाश में नहीं घूम रहीं, और प्रलय के बादल गरज नहीं रहे। तुम अपना शरीर यूँ ही क्यों छोड़ रहे हो?

5.39.35

अहं भूतावकीर्णासु सालोकासु खगध्वजः । विहरामि दशाशासु मा देहमवधीरय ॥ ३५ ॥

ahaṃ bhūtāvakīrṇāsu sālokāsu khagadhvajaḥ | viharāmi daśāśāsu mā dehamavadhīraya || 35 ||

I, who carry a bird on my banner, wander in the ten directions filled with living beings and their worlds. Do not scorn your body.

मैं, जिसके झंडे पर एक पंछी है, दसों दिशाओं में घूमता हूँ, जो जीवों और उनकी दुनियाओं से भरी हैं। अपने शरीर को तुच्छ मत समझो।

5.39.36

इमे वयमिमे शैला भूतानीमान्ययं भवान् । इदं जगदिदं व्योम मा देहमवधीरय ॥ ३६ ॥

ime vayamime śailā bhūtānīmānyayaṃ bhavān| idaṃ jagadidaṃ vyoma mā dehamavadhīraya || 36 ||

We are all this. These are the mountains. These are the living beings. You, too, are this. This is the world. This is the sky. Do not scorn your body.

हम ही यह सब कुछ हैं। ये पहाड़ हैं। ये सारे जीव हैं। तुम भी यही हो। यह दुनिया है। यह आकाश है। अपने शरीर को तुच्छ मत समझो।

5.39.37

पीवराज्ञानयोगेन यस्य पर्याकुलं मनः। दुःखानि विनिकृन्तन्ति मरण तस्य राजते ॥ ३७ ॥

pīvarājñānayogena yasya paryākulaṃ manaḥ| duḥkhāni vinikṛntanti maraṇa tasya rājate || 37 ||

The one whose mind is confused by thick ignorance, and whom sufferings tear apart, for him death reigns.

जिसका मन घनी अज्ञानता से उलझा हुआ है, और जिसे दुख चीर-फाड़ देते हैं, उस पर मौत का राज है।

5.39.38

कृशोऽतिदुःखी मूढोऽहमेताश्चान्याश्च भावनाः। मतिं यस्यावलुम्पन्ति मरणं तस्य राजते ॥ ३८ ॥

kṛśo'tiduḥkhī mūḍho'hametāścānyāśca bhāvanāḥ| matiṃ yasyāvalumpanti maraṇaṃ tasya rājate || 38 ||

The one whose mind is robbed by thoughts like I am weak, I am in great pain, I am a fool, and other such thoughts, for him death reigns.

जिसकी बुद्धि को मैं कमज़ोर हूँ, मैं बहुत दुखी हूँ, मैं मूर्ख हूँ, और ऐसे ही और खयाल लूट लेते हैं, उस पर मौत का राज है।

5.39.39

आशापाशनिबद्धोऽन्तरितश्चेतश्च नीयते। यो विलोलमनोवृत्त्या मरणं तस्य राजते ॥ ३९ ॥

āśāpāśanibaddho'ntaritaścetaśca nīyate| yo vilolamanovṛttyā maraṇaṃ tasya rājate || 39 ||

The one bound by the rope of desire, dragged inwardly along by his own restless mind, for him death reigns.

जो इच्छा की रस्सी से बँधा है, और अपने ही चंचल मन के बहाव में भीतर ही भीतर घसीटा जाता है, उस पर मौत का राज है।

5.39.40

यस्य तृष्णाः प्रभञ्जन्ति हृदयं हृतभावनाः। प्ररोहमिव गर्धेभ्यो मरणं तस्य राजते ॥ ४० ॥

yasya tṛṣṇāḥ prabhañjanti hṛdayaṃ hṛtabhāvanāḥ| prarohamiva gardhebhyo maraṇaṃ tasya rājate || 40 ||

The one whose cravings carry off his very feelings and shatter his heart, the way greed destroys a tender shoot, for him death reigns.

जिसकी चाहतें उसके एहसासों को छीनकर उसके दिल को चूर-चूर कर देती हैं, जैसे लालच किसी नए अंकुर को नष्ट कर देता है, उस पर मौत का राज है।

5.39.41

चित्तवृत्तिलता यस्य तालोत्तालमनोवने। फलिता सुखदुःखाभ्यां मरणं तस्य राजते ॥ ४१ ॥

cittavṛttilatā yasya tālottālamanovane | phalitā sukhaduḥkhābhyāṃ maraṇaṃ tasya rājate || 41 ||

The one whose creeper of restless thoughts has grown wild in the tangled forest of his mind, bearing fruit as pleasure and pain, for him death reigns.

जिसके मन के उलझे हुए जंगल में उसके बेचैन विचारों की बेल जंगली होकर फैल गई है, और सुख-दुख के फल दे रही है, उस पर मौत का राज है।

5.39.42

रोमराजीलताजालं यस्येमं देहदुर्द्रुमम्। अनर्थौघो हरत्युच्चैर्मरणं तस्य राजते ॥ ४२ ॥

romarājīlatājālaṃ yasyemam dehadurdrumam | anarthaugho haratyuccairmaraṇaṃ tasya rājate || 42 ||

The one whose body is like a wretched tree, its lines of body hair tangled over it like a web of creepers, and who is swept away completely by a flood of misfortune, for him death reigns.

जिसका शरीर एक बेकार पेड़ जैसा है, जिस पर उसके रोयों की रेखाएँ बेलों के जाल की तरह फैली हैं, और जिसे दुर्भाग्य की बाढ़ पूरी तरह बहा ले जाती है, उस पर मौत का राज है।

5.39.43

यस्य स्वदेहविपिनमाधिव्याधिदवाग्नयः। दहन्ति लोलाङ्गलतं मरणं तस्य राजते ॥ ४३ ॥

yasya svadehavipinamādhivyādhidavāgnyaḥ | dahanti lolāṅgalataṃ maraṇaṃ tasya rājate || 43 ||

The one whose body is a forest tangled with the creeper of his own restless limbs, and is burned by the wildfires of mental pain and bodily disease, for him death reigns.

जिसका शरीर एक जंगल है, जो उसके अपने बेचैन अंगों की बेल से उलझा हुआ है, और जो मानसिक कष्ट और शारीरिक रोग की दावाग्नि से जल रहा है, उस पर मौत का राज है।

5.39.44

कामकोपात्मका यस्य स्फूर्जन्त्यजगरास्तनौ। अन्तःशुष्कद्रुमस्येव मरण तस्य राजते ॥ ४४ ॥

kāmakopātmakā yasya sphūrjantyajagarāstanau | antaḥśuṣkadrumasyeva maraṇa tasya rājate || 44 ||

The one in whose body pythons made of desire and anger uncoil and spring, as they would inside a tree gone dry and hollow within, for him death reigns.

जिसके शरीर में इच्छा और क्रोध के अजगर कुंडली खोलकर उछलते हैं, जैसे किसी पेड़ के भीतर जो सूखकर खोखला हो गया हो, उस पर मौत का राज है।

5.39.45

योऽयं देहपरित्यागस्तल्लोके मरणं स्मृतम्। न सता नासता तेन कारणं वेद्यवेदनम् ॥ ४५ ॥

yo'yaṃ dehaparityāgastalloke maraṇaṃ smṛtam | na satā nāsata tena kāraṇaṃ vedyavedanam || 45 ||

This giving up of the body is what people in the world call death. It is caused neither by something that truly exists nor by something that does not exist at all, its only cause is an experience of what can be known.

शरीर का यह त्याग ही है जिसे दुनिया में मौत कहा जाता है। यह न तो किसी सचमुच मौजूद चीज़ से होता है, न किसी बिलकुल न मौजूद चीज़ से, इसका कारण बस जानने-योग्य किसी चीज़ का अनुभव है।

5.39.47

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। यः समः सर्वभावेषु जीवितं तस्य राजते ॥ ४७ ॥

yasya nāhaṃkṛto bhāvo buddhiryasya na lipyate | yaḥ samaḥ sarvabhāveṣu jīvitaṃ tasya rājate || 47 ||

The one who has no feeling made by I, whose mind is never stained, who stays even toward everything that happens, for him life reigns.

जिसमें मैं का कोई भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कभी दागदार नहीं होती, जो हर हाल में एक-सा बना रहता है, उस पर जीवन का राज है।

5.39.48

योऽन्तःशीतलया बुद्ध्या रागद्वेषविमुक्तया । साक्षिवत्पश्यतीदं हि जीवितं तस्य राजते ॥ ४८ ॥

yo'ntaḥśītalayā buddhyā rāgadveṣavimuktayā | sākṣivatpaśyatīdaṃ hi jīvitaṃ tasya rājate || 48 ||

The one who, with a mind cool within and free of liking and hating, watches all this like a witness, for him life reigns.

जो भीतर से शांत और पसंद-नापसंद से मुक्त बुद्धि के साथ यह सब कुछ एक गवाह की तरह देखता है, उस पर जीवन का राज है।

5.39.49

येन सम्यक्परिज्ञाय हेयोपादेयमुज्झता । चित्तस्यान्तेऽर्पितं चित्तं जीवितं तस्य शोभते ॥ ४९ ॥

yena samyakparijñāya heyo'pādeyamujjhatā | cittasyānte'rpitaṃ cittaṃ jīvitaṃ tasya śobhate || 49 ||

The one who, having fully understood, has let go of both what to take and what to leave, and has settled his mind into the very depth of the mind, for him life shines.

जो पूरी तरह समझकर, क्या लेना है और क्या छोड़ना है, दोनों को छोड़ चुका है, और जिसने अपने मन को मन की गहराई में ही टिका दिया है, उसकी ज़िंदगी रौशन होती है।

5.39.50

अवस्तुसदृशे वस्तुन्यसक्तं कलनामले । येन लीनं कृतं चेतो जीवितं तस्य शोभते ॥ ५० ॥

avastusadṛśe vastunyasaktaṃ kalanāmale | yena līnaṃ kṛtaṃ ceto jīvitaṃ tasya śobhate || 50 ||

The one whose mind, untouched by things that are really nothing at all, stays pure in its very seeing, and has dissolved into stillness, for him life shines.

जिसका मन उन चीज़ों से अछूता रहता है जो असल में कुछ भी नहीं हैं, जो देखने में ही शुद्ध बना रहता है, और जो शांत होकर लीन हो गया है, उसकी ज़िंदगी रौशन होती है।

5.39.51

सत्यां दृष्टिमवष्टभ्य लीलयेयं जगत्क्रिया । क्रियतेऽवासनं येन जीवितं तस्य राजते ॥ ५१ ॥

satyāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya līlayeyaṃ jagatkriyā | kriyate'vāsanaṃ yena jīvitaṃ tasya rājate || 51 ||

The one who, holding fast to true insight, does all the world's business as mere play, acting without any inner craving, for him life reigns.

जो सच्ची समझ को थामे रखते हुए दुनिया के सारे काम खेल की तरह करता है, बिना किसी भीतरी चाहत के, उस पर जीवन का राज है।

5.39.52

नान्तस्तुष्यति नोद्वेगमेति यो विहरन्नपि । हेयोपादेयसंप्राप्तौ जीवितं तस्य शोभते ॥ ५२ ॥

nāntastuṣyati nodvegameti yo viharannapi | heyopādeyasaṃprāptau jīvitaṃ tasya śobhate || 52 ||

The one who, even while going about his life, feels no inner joy and no inner worry when he meets with things to take or to leave, for him life shines.

जो अपनी ज़िंदगी जीते हुए भी, जब उसे कुछ पाने या छोड़ने जैसी बातें सामने आती हैं, तो न भीतर खुश होता है न परेशान, उसकी ज़िंदगी रौशन होती है।

5.39.53

शुद्धपक्षस्य शुद्धस्य हंसौघः सरसो यथा । यस्माद्गुणौघो निर्याति जीवितं तस्य शोभते ॥ ५३ ॥

śuddhapakṣasya śuddhasya haṃsaughaḥ saraso yathā | yasmādguṇaugho niryāti jīvitaṃ tasya śobhate || 53 ||

The one from whom a flood of good qualities pours out, the way a flock of white-winged swans rises from a clear lake, for him life shines.

जिसमें से अच्छे गुणों की बाढ़ बहती है, जैसे किसी साफ झील से सफेद पंखों वाले हंसों का झुंड उड़ान भरता है, उसकी ज़िंदगी रौशन होती है।

5.39.54

यस्मिन्श्रुतिपथं प्राप्ते दृष्टे स्मृतिमुपागते । आनन्दं यान्ति भूतानि जीवितं तस्य शोभते ॥ ५४ ॥

yasminśrutipathaṃ prāpte dṛṣṭe smṛtimupāgate | ānandaṃ yānti bhūtāni jīvitaṃ tasya śobhate || 54 ||

The one who, merely by being heard of, by being seen, or by being remembered, brings joy to all living beings, for him life shines.

जिसके बारे में सुनते ही, जिसे देखते ही, या जिसे याद करते ही, सारे जीव खुश हो जाते हैं, उसकी ज़िंदगी रौशन होती है।

5.39.55

यस्योदयेषु हृदयेन जनाम्बुजानि जीवालिमन्ति सकलानि विलासवन्ति । तस्यैव भाति परिजीवितमक्षयेन्दोरापूर्णतेव दनुजेश्वर नेतरस्य ॥ ५५ ॥

yasyodayeṣu hṛdayena janāmbujāni jīvālimanti sakalāni vilāsavanti | tasyaiva bhāti parijīvitamakṣayendorāpūrṇateva danujeśvara netarasya || 55 ||

O king of the demons, when he rises, the lotus-hearts of all people come alive with swarming bees and turn joyful, the way lotuses open at moonrise. His life alone shines full, like the fullness of a moon that never wanes, not anyone else's.

हे दानवों के राजा, जब वह उठता है, तो सब लोगों के दिल रूपी कमल भौंरों से गुलज़ार होकर खिल उठते हैं, जैसे चाँद निकलते ही कमल खिल जाते हैं। उसी की ज़िंदगी पूरी तरह चमकती है, जैसे कभी न घटने वाले चाँद की पूर्णता, किसी और की नहीं।

Chapter 40

5.40.1

श्रीभगवानुवाच । स्थैर्यं देहस्य दृष्टस्य जीवितं प्रोच्यते जनैः । देहान्तरार्थं देहस्य संत्यागो मरणं स्मृतम् ॥ १ ॥

śrībhagavānuvāca | sthairyaṃ dehasya dṛṣṭasya jīvitaṃ procyate janaiḥ | dehāntarārthaṃ dehasya saṃtyāgo maraṇaṃ smṛtam || 1 ||

Sri Bhagavan said: People call it life when this body we see stays steady. Giving up this body to get another body is called death.

श्री भगवान ने कहा: जब यह दिखने वाला शरीर टिका रहता है, तो लोग उसे जीवन कहते हैं। एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर पाने के लिए उसे त्यागना, इसी को मृत्यु कहा जाता है।

5.40.2

द्वाभ्यां चैवासि पक्षाभ्यामाभ्यां मुक्तो महामते । किं ते मरणमस्तीह किं वा जीवितमस्ति ते ॥ २ ॥

dvābhyāṃ caivāsi pakṣābhyāmābhyāṃ mukto mahāmate | kiṃ te maraṇamastīha kiṃ vā jīvitamasti te || 2 ||

You are free from both of these, from these two sides, O great-minded one. So what death is there for you here, or what life is there for you?

हे महामति, तुम इन दोनों से, इन दो पक्षों से मुक्त हो। तो फिर यहाँ तुम्हारे लिए मृत्यु क्या है, या तुम्हारे लिए जीवन क्या है?

5.40.3

निदर्शनार्थमेतत्तु मयोक्तमरिमर्दन । न त्वं जीवसि सर्वज्ञ म्रियसे न कदाचन ॥ ३ ॥

nidarśanārthametattu mayoktamariamardana | na tvaṃ jīvasi sarvajña mriyase na kadācana || 3 ||

I said this only as an example, O crusher of enemies. You do not live, O all-knowing one, and you never die.

हे शत्रुओं को कुचलने वाले, मैंने यह केवल एक उदाहरण के लिए कहा था। हे सर्वज्ञ, तुम जीते नहीं हो, और तुम कभी मरते भी नहीं हो।

5.40.4

देहसंस्थोऽप्यदेहत्वाददेहोऽसि विदेहदृक् । व्योमसंस्थोऽप्यसक्तत्वादव्योमेव हि मारुतः ॥ ४ ॥

dehasaṃstho'pyadehatvādadeho'si videhadṛk | vyomasansthо'pyasaktatvādavyomeva hi mārutaḥ || 4 ||

Though you live inside a body, you have no body, because you are not attached to it — your sight goes beyond the body. Wind moves inside the sky, but wind is not the sky, because it is not tied to it.

यद्यपि तुम शरीर के भीतर रहते हो, तुम्हारा कोई शरीर नहीं है, क्योंकि तुम उससे बंधे नहीं हो — तुम्हारी दृष्टि शरीर से परे है। हवा आकाश के भीतर चलती है, पर हवा आकाश नहीं है, क्योंकि वह उससे बंधी नहीं है।

5.40.5

स्पर्शसंबोधकारित्वाद्देह एवास्ति सुव्रत । उत्सेधारोधकत्वेन खमुत्सेधस्य कारणम् ॥ ५ ॥

sparśasaṃbodhakāritvāddeha evāsti suvrat | utsedhārodhakatvena khamutsedhasya kāraṇam || 5 ||

O truly disciplined one, the body is said to exist only because it lets you feel touch. In the same way, empty space is called the cause of height, only because it puts up no resistance to things rising in it.

हे सच्चे व्रत वाले, शरीर का होना इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह स्पर्श का एहसास कराता है। उसी तरह खाली आकाश को ऊँचाई का कारण कहा जाता है, केवल इसलिए कि वह चीज़ों के ऊपर उठने में कोई रुकावट नहीं डालता।

5.40.6

प्रबुद्धो ज्ञातवस्तुत्वाद्देहः क्व शमिनामिह । इदं त्वेकं परिच्छिन्नं रूपमज्ञेषु दुःस्थितम् ॥ ६ ॥

prabuddho jñātavastutvāddehaḥ kva śamināmiha| idaṃ tvekaṃ paricchinnaṃ rūpamajñeṣu duḥsthitam || 6 ||

The awakened one has known the true nature of things — so where, for those at peace, is there any body at all? This one limited shape sits shakily only in the minds of the ignorant.

जागे हुए व्यक्ति ने वस्तु के असली रूप को जान लिया है — तो शांत लोगों के लिए यहाँ शरीर कहाँ है? यह एक सीमित रूप केवल अज्ञानी लोगों में ही डगमगाता हुआ टिका है।

5.40.7

सर्वदा सर्वमेवासि चित्प्रकाशः परैकधीः । को देहः कोऽप्यदेहस्ते यं गृह्णासि जहासि च ॥ ७ ॥

sarvadā sarvamevāsi citprakāśaḥ paraikadhīḥ| ko dehaḥ ko'pyadehaste yaṃ gṛhṇāsi jahāsi ca || 7 ||

You are always everything itself, the light of pure awareness, the one supreme mind. What is a body to you, or even bodilessness, that you should take it up or cast it off?

तुम सदा सब कुछ ही हो, चेतना का प्रकाश, वह एक परम बुद्धि। तुम्हारे लिए शरीर क्या है, या शरीर-रहित होना भी क्या है, जिसे तुम पकड़ो या छोड़ो?

5.40.8

समुदेतु वसन्तो वा वातु वा प्रलयानिलः । भावाभावविहीनस्य किमभ्यागतमात्मनः ॥ ८ ॥

samudetu vasanto vā vātu vā pralayānilaḥ| bhāvābhāvavihīnasya kimabhyāgatamātmanaḥ || 8 ||

Let spring arise, or let the wind of the great dissolution blow — for the self that is beyond both being and non-being, what has actually changed?

चाहे वसंत आए, या प्रलय की आँधी चले — जो आत्मा होने और न होने, दोनों से परे है, उसके लिए क्या बदला?

5.40.9

प्रलुठत्स्वपि शैलेषु कल्पाग्निषु दहत्स्वपि । वहत्सूत्पातवातेषु स्वात्मन्येव हि तिष्ठति ॥ ९ ॥

praluṭhatsvapi śaileṣu kalpāgniṣu dahatsvapi| vahatsūtpātavāteṣu svātmanyeva hi tiṣṭhati || 9 ||

Even while mountains crumble, while the fires at the end of an age burn, while storm winds of disaster blow, he stays only in his own self.

पहाड़ों के गिरने पर भी, प्रलय की आग जलने पर भी, विनाशकारी आँधियों के चलने पर भी, वह केवल अपनी आत्मा में ही टिका रहता है।

5.40.10

सर्वभूतानि तिष्ठन्तु सर्वमेव प्रयातु वा । नश्यन्तु वाथ वर्धन्तामात्मन्येवाभितिष्ठति ॥ १० ॥

sarvabhūtāni tiṣṭhantu sarvameva prayātu vā| naśyantu vātha vardhantāmātmanyevābhitiṣṭhati || 10 ||

Let all beings stay as they are, or let everything pass away; let them perish, or let them grow — he remains only in the self.

चाहे सभी प्राणी टिके रहें, या सब कुछ चला जाए; चाहे वे नष्ट हों या बढ़ें — वह केवल आत्मा में ही टिका रहता है।

5.40.11

क्षीयते न क्षयं प्राप्ते वर्धमाने न वर्धते । न स्पन्दते स्पन्दमाने देहेऽस्मिन्परमेश्वरः ॥ ११ ॥

kṣīyate na kṣayaṃ prāpte vardhamāne na vardhate | na spandate spandamāne dehe'sminparameśvaraḥ || 11 ||

When this body decays, the supreme self within it does not decay; when it grows, that self does not grow; when this body trembles, that self does not tremble.

जब यह शरीर घटता है, तब इसमें बसा परम आत्मा नहीं घटता; जब यह बढ़ता है, तब वह नहीं बढ़ता; जब यह शरीर काँपता है, तब वह नहीं काँपता।

5.40.12

देहस्याहमहं देहीति क्षीणे चित्तविभ्रमे । त्यजामि न त्यजामीति किं मुधा कलनोदिता ॥ १२ ॥

dehasyāhamahaṃ dehīti kṣīṇe cittavibhrame | tyajāmi na tyajāmīti kiṃ mudhā kalanoditā || 12 ||

When the mind's confusion — thinking 'I belong to the body' or 'I am the one who has a body' — has faded away, why does the useless thought 'I am giving it up' or 'I am not giving it up' still arise, for nothing?

जब मन का यह भ्रम — कि 'मैं शरीर का हूँ' या 'मैं देहधारी हूँ' — मिट चुका है, तो 'मैं छोड़ता हूँ' या 'मैं नहीं छोड़ता', यह व्यर्थ विचार क्यों उठे?

5.40.14

प्रबुद्धाः सर्वकर्तारः करिष्यन्तीह किंचन । न तस्याकरणे नित्यमकर्तृत्वपदं गताः ॥ १४ ॥

prabuddhāḥ sarvakartāraḥ kariṣyantīha kiṃcana | na tasyākaraṇe nityamakartṛtvapadaṃ gatāḥ || 14 ||

The awakened can do anything, and they still act somewhat here in this world. It is not by refusing to act that they have reached the permanent state of not being the doer.

जो जाग गए हैं वे सब कुछ कर सकते हैं, और वे इस संसार में फिर भी कुछ न कुछ करते हैं। वे केवल काम न करने से 'करने वाला न होने' की उस सदा की स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं।

5.40.15

अकर्तृत्वादभोक्तृत्वमर्थादेव समागतम् । संगृहीतं किलानुप्तं केनेह भुवनत्रये ॥ १५ ॥

akartṛtvādabhoktṛtvamarthādeva samāgatam | saṃgṛhītaṃ kilānuptaṃ keneha bhuvanatraye || 15 ||

From not being the doer, not being the one who enjoys the results has followed as a plain matter of course — gathered in, so to speak, though no one anywhere in the three worlds had sown it.

करने वाला न होने से भोगने वाला न होना अपने आप, बिना किसी कोशिश के आ गया — मानो तीनों लोकों में किसी ने इसे बोया ही नहीं, फिर भी यह काटा गया।

5.40.16

शान्ते कर्तृत्वभोक्तृत्वे शान्तिरेवेह शिष्यते । प्रौढिमभ्यागता सैव मुक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥ १६ ॥

śānte kartṛtvabhoktṛtve śāntireveha śiṣyate | prauḍhimabhyāgatā saiva muktiritiucyate budhaiḥ || 16 ||

When doing and enjoying its results have both grown quiet, only peace is left here. That same peace, once it becomes full and complete, is what the wise call liberation.

जब करने वाला होना और भोगने वाला होना, दोनों शांत हो जाते हैं, तब यहाँ केवल शांति ही बचती है। वही शांति जब पूरी तरह परिपक्व हो जाती है, उसे ही समझदार लोग मुक्ति कहते हैं।

5.40.17

प्रबुद्धाश्चिन्मयाः शुद्धाः सर्वमाक्रम्य संस्थिताः । किं त्यक्तं परिगृह्णन्तु किं गृहीतं त्यजन्तु वा ॥ १७ ॥

prabuddhāścinmayāḥ śuddhāḥ sarvamākramya saṃsthitāḥ | kiṃ tyaktaṃ parigṛhṇantu kiṃ gṛhītaṃ tyajantu vā || 17 ||

The awakened are made of pure consciousness; they are pure, standing spread through everything. What abandoned thing should they now take up, or what thing they hold should they now give up?

जागे हुए लोग शुद्ध चेतना से बने हैं, वे निर्मल हैं, और सब कुछ में फैले हुए स्थित हैं। वे अब कौन-सी छोड़ी हुई चीज़ को पकड़ें, या कौन-सी पकड़ी हुई चीज़ को छोड़ें?

5.40.18

ग्राह्यग्राहकसंबन्धप्रमितावयविक्रमैः । हीनः प्रमेयावयवैः किं गृह्णातु जहातु किम् ॥ १८ ॥

grāhyagrāhakasaṃbandhapramitāvayavikramaiḥ | hīnaḥ prameyāvayavaiḥ kiṃ gṛhṇātu jahātu kim || 18 ||

He has no bond between a thing grasped and the one who grasps it, no steps that make up a measured whole, and no parts belonging to a thing to be known. So what should he take hold of, and what should he let go?

उसमें न तो पकड़ी जाने वाली चीज़ और पकड़ने वाले के बीच कोई नाता है, न किसी मापे गए पूरे के चरण हैं, न किसी जानी जाने वाली चीज़ के हिस्से हैं। तो वह क्या पकड़े, और क्या छोड़े?

5.40.19

ग्राह्यग्राहकसंबन्धे क्षीणे शान्तिरुदेत्यलम् । स्थितिमभ्यागता शान्तिर्मोक्षनाम्नाभिधीयते ॥ १९ ॥

grāhyagrāhakasaṃbandhe kṣīṇe śāntirudetyalam | sthitimabhyāgatā śāntirmokṣanāmnābhidhīyate || 19 ||

When the bond between the thing grasped and the one who grasps it fades away, peace rises up in full. That peace, once it becomes steady, is given the name liberation.

जब पकड़ी जाने वाली चीज़ और पकड़ने वाले का यह नाता मिट जाता है, तब शांति पूरी तरह उठती है। वही शांति जब स्थिर हो जाती है, उसे मुक्ति के नाम से कहा जाता है।

5.40.20

तत्र स्थिताः सदा शान्तास्त्वादृशाः पुरुषोत्तमाः । सुषुप्तावयवस्पन्दसाधर्म्येण चरन्ति हि ॥ २० ॥

tatra sthitāḥ sadā śāntāstvādṛśāḥ puruṣottamāḥ | suṣuptāvayavaspandasādharmyeṇa caranti hi || 20 ||

Best of men, people like you always stay there at peace, and they move about only the way a sleeping person's limbs might stir.

तुम जैसे श्रेष्ठ पुरुष वहाँ सदा शांत होकर टिके रहते हैं, और वे केवल वैसे ही चलते-फिरते हैं जैसे गहरी नींद में सोए हुए व्यक्ति के अंग हिलते हैं।

5.40.21

परावबोधविश्रान्तवासनो जगति स्थितिम् । अर्धसुप्त इवेहेमां त्वं पश्यात्मस्थया धिया ॥ २१ ॥

parāvabodhaviśrāntavāsano jagati sthitim | ardhasupta ivehemaṃ tvaṃ paśyātmasthayā dhiyā || 21 ||

Your old desires have come to rest in the highest awakening. So look at this life in the world as if half asleep, watching it with a mind that stays fixed in your own self.

तुम्हारी पुरानी इच्छाएँ परम जागृति में शांत हो चुकी हैं। इसलिए इस संसार की स्थिति को मानो आधी नींद में देखते हुए देखो, अपने मन को अपनी आत्मा में टिकाकर।

5.40.22

न रमन्ते हि रम्येषु स्वात्मन्येव गताशयाः । नोद्विजन्तेऽन्यदुःखेषु स्वात्मन्येकरसायनाः ॥ २२ ॥

na ramante hi ramyeṣu svātmanyeva gatāśayāḥ | noudvijante'nyaduḥkheṣu svātmanyekarasāyanāḥ || 22 ||

Those whose hearts have settled only in their own self do not take delight even in delightful things; those who rest in the one taste of their own self are not disturbed even by the sufferings of others.

जिनका मन केवल अपनी आत्मा में टिक गया है, वे सुंदर चीज़ों में भी आनंद नहीं लेते; जो अपनी आत्मा के एक ही रस में डूबे रहते हैं, वे दूसरों के दुखों से भी विचलित नहीं होते।

5.40.23

इदं कृत्वा करोमीदमिदं त्यक्त्वेदमित्यलम् । इति तत्त्वविदां तात संकल्पाः संक्षयं गताः ॥ २३ ॥

idaṃ kṛtvā karomīdamidaṃ tyaktvedamityalam | iti tattvavidāṃ tāta saṃkalpāḥ saṃkṣayaṃ gatāḥ || 23 ||

'Having done this, now I do that; having left this, now I do that' — enough of such thinking! Dear one, for those who know the truth, all such intentions have come to a complete end.

'यह करके अब मैं यह करता हूँ, इसे छोड़कर अब यह करता हूँ' — बस, ऐसे विचार व्यर्थ हैं! हे प्रिय, सत्य को जानने वालों के ऐसे सारे संकल्प पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं।

5.40.24

जाग्रति स्वात्मनि स्वस्थाः सुप्ताः संसारसंस्थितौ । बालवत्प्रविवेपन्ते सुषुप्तसदृशाशयाः ॥ २४ ॥

jāgrati svātmanyi svasthāḥ suptāḥ saṃsārasaṃsthitau | bālavatpravivepante suṣuptasadṛśāśayāḥ || 24 ||

Wide awake in their own self, resting easy there, but asleep to the ways of the world, they move about like little children, their minds like someone in deep sleep.

वे अपनी आत्मा में पूरी तरह जागे हुए और सहज बैठे हैं, पर सांसारिक जीवन के प्रति सोए हुए हैं; वे बच्चों की तरह हिलते-डुलते हैं, उनका मन गहरी नींद में सोए व्यक्ति जैसा होता है।

5.40.25

त्वमजितपदवीमुपागतोऽन्तः कमलजवासरमेकमेव भुक्त्वा । गुणगणकलितामिहैव लक्ष्मीं व्रज परमास्पदमच्युतं महात्मन् ॥ २५ ॥

tvamajitapadavīmupāgato'ntaḥ kamaljavāsaramekameva bhuktvā | guṇagaṇakalitāmihaiva lakṣmīṃ vraja paramāspadamacyutaṃ mahātman || 25 ||

You have already reached, deep inside yourself, the state that no one can conquer, after living through just one single day of Brahma, the lotus born. So now, great soul, go to that highest, unfailing home, right here — the true glory made of every good quality.

तुम एक दिन के लिए कमल से जन्मे ब्रह्मा का सुख भोगकर, अपने भीतर उस अवस्था तक पहुँच चुके हो जिसे कोई नहीं जीत सकता। इसलिए अब, हे महान आत्मा, यहीं उस सबसे ऊँचे, अविनाशी धाम को जाओ — जो हर अच्छे गुण से बना सच्चा वैभव है।

Chapter 41

5.41.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । जगद्रत्नसमुद्गेन त्रैलोक्याद्भुतदर्शिना । इत्युक्ते पद्मनाभेन ज्योत्स्नाशीतलया गिरा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | jagadratnasamudgena trailokyādbhutadarśinā | ityukte padmanābhena jyotsnāśītalayā girā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Padmanabha is the box that holds the jewel of the whole world, and he reveals the wonders of all three worlds. He had said this in a voice as cool as moonlight.

श्री वसिष्ठ ने कहा: पद्मनाभ वह पात्र हैं जिनमें पूरे संसार रूपी रत्न रखा है, और वे तीनों लोकों के अचरज दिखाते हैं। उन्होंने यह बात चाँदनी जैसी ठंडी वाणी में कही थी।

5.41.2

प्रह्लादनामा देहोऽसौ विकाशिनयनाम्बुजः । मुदोवाच वचो धीरो गृहीतमननक्रमः ॥ २ ॥

prahlādanāmā deho'sau vikāśinayanāmbujaḥ | mudovāca vaco dhīro gṛhītamananakramaḥ || 2 ||

Then that person named Prahlada, his lotus eyes opening wide, calm and steady, his thoughts now settled in order, spoke these words with joy.

फिर प्रह्लाद नाम का वह व्यक्ति, जिसकी कमल जैसी आँखें खिल उठीं, शांत और स्थिर, अपने विचारों को व्यवस्थित किए हुए, खुशी से यह बात बोला।

5.41.3

प्रह्लाद उवाच । हिताहितविचारेण राजकार्यशतेन च । अत्यहं श्रमितो देव क्षणं विश्रामतां गतः ॥ ३ ॥

prahlāda uvāca | hitāhitavicāreṇa rājakāryaśatena ca | atyahaṃ śramito deva kṣaṇaṃ viśrāmatāṃ gataḥ || 3 ||

Prahlada said: Lord, from weighing what is good and what is bad for the kingdom, and from handling a hundred royal duties, I have grown very tired. For a moment, I have come to rest.

प्रह्लाद ने कहा: हे प्रभु, राज्य के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है यह सोचते-सोचते, और राज-काज के सैकड़ों कामों में लगे रहते हुए, मैं बहुत थक गया हूँ। इसलिए एक पल के लिए आराम करने आया हूँ।

5.41.4

भगवंस्त्वत्प्रसादेन स्थितिः सम्यगथागता । समाधावसमाधौ च रूपेणाहं समः सदा ॥ ४ ॥

bhagavāṃstvatprasādena sthitiḥ samyagathāgatā | samādhāvasamādhau ca rūpeṇāhaṃ samaḥ sadā || 4 ||

Lord, by your grace, true steadiness has now come to me. Whether I am deep in meditation or out of it, in my true nature I am always the same.

हे भगवान, आपकी कृपा से अब मुझे सच्ची स्थिरता मिल गई है। चाहे मैं समाधि में रहूँ या समाधि से बाहर, अपने असली स्वरूप में मैं हमेशा एक जैसा ही रहता हूँ।

5.41.5

चिरमन्तर्महादेव दृष्टोऽस्यमलया धिया । पुनर्बहिरयं दृष्ट्या दिष्ट्या देव प्रदृश्यसे ॥ ५ ॥

ciramantarmahādeva dṛṣṭo'syamalayā dhiyā | punarbhairayam dṛṣṭyā diṣṭyā deva pradṛśyase || 5 ||

For a long time, great god, I saw you within, with a pure mind. Now, by good fortune, great god, I see you again outwardly, with these eyes.

हे महादेव, बहुत समय तक मैंने आपको भीतर, अपने निर्मल मन से देखा। अब सौभाग्य से, हे प्रभु, मैं आपको फिर से बाहर, इन आँखों से देख रहा हूँ।

5.41.6

अहमासमनन्तायामस्यां दृष्टौ महेश्वर । सर्वसंकल्पमुक्तायां व्योम व्योम्नीव निर्मले ॥ ६ ॥

ahamāsamanantāyāmasyāṃ dṛṣṭau maheśvara | sarvasaṃkalpamuktāyāṃ vyoma vyomnīva nirmale || 6 ||

Great lord, I was present in this endless seeing, free of every thought, clear and stainless, like open sky resting inside open sky.

हे महेश्वर, मैं इस अनंत दर्शन में था, हर विचार से मुक्त, निर्मल और साफ, जैसे आकाश आकाश में समाया हो।

5.41.7

न शोकेन न मोहेन न च वैराग्यचिन्तया । न देहत्यागकार्येण न संसारभयेन च ॥ ७ ॥

na śokena na mohena na ca vairāgyacintayā | na dehatyāgakāryeṇa na saṃsārabhayena ca || 7 ||

It was not out of grief, not out of confusion, not from any thought of giving up the world, not for the sake of giving up the body, and not out of fear of this world of change.

यह न तो दुख से हुआ, न मोह से, न संसार छोड़ने के विचार से, न शरीर त्यागने के इरादे से, और न ही संसार के डर से।

5.41.8

एकस्मिन्विद्यमाने हि कुतः शोकः कुतः क्षतिः । कुतो देहः क्व संसारः क्व स्थितिः क्व भयाभये ॥ ८ ॥

ekasminvidyamāne hi kutaḥ śokaḥ kutaḥ kṣatiḥ | kuto dehaḥ kva saṃsāraḥ kva sthitiḥ kva bhayābhaye || 8 ||

For when only the One exists, where is grief, where is loss? Where is the body, where is this world, where is staying still, where is fear or the absence of fear?

क्योंकि जब केवल एक ही तत्व है, तो दुख कहाँ, हानि कहाँ? शरीर कहाँ, संसार कहाँ, ठहराव कहाँ, डर या निडरता कहाँ?

5.41.9

यथेच्छयैवामलया केवलं स्वयमुत्थया । एवमेवाहमवसं विते पावने पदे ॥ ९ ॥

yathecchayaivāmalayā kevalaṃ svayamutthayā | evamevāhamavasaṃ vitate pāvane pade || 9 ||

Entirely on its own, pure, and arising simply by itself, this is how I dwelt, in that vast, purifying state.

अपने आप ही, निर्मल रूप से, बिना किसी और कारण के उठा हुआ, ठीक इसी तरह मैं उस विशाल, पवित्र करने वाली अवस्था में रहा।

5.41.10

हा विरक्तोऽस्मि संसारं त्यजामीतीयमीश्वर । अप्रबुद्धदृशां चिन्ता हर्षशोकविकारदा ॥ १० ॥

hā virakto'smi saṃsāraṃ tyajāmītīyamīśvara | aprabuddhadṛśāṃ cintā harṣaśokavikāradā || 10 ||

Lord, the thought 'Alas, I am now free of desire, I must give up the world!' is only the worried thought of those whose eyes are not yet open, a thought that brings on the ups and downs of joy and grief.

हे प्रभु, यह सोच कि 'हाय, मैं अब वैराग्य में आ गया हूँ, मुझे संसार छोड़ देना चाहिए', यह उन लोगों की चिंता है जिनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। यही सोच सुख-दुख का उतार-चढ़ाव लाती है।

5.41.11

देहाभावे न दुःखानि देहे दुःखानि मे मतिः । इति चिन्ताविषव्याली मूर्खमेवावलुम्पति ॥ ११ ॥

dehābhāve na duḥkhāni dehe duḥkhāni me matiḥ | iti cintāviṣavyālī mūrkham evāvalumpati || 11 ||

'Without a body there is no sorrow; with a body there is sorrow' — this thought is a venomous snake, and it seizes only the fool.

'शरीर न हो तो दुख नहीं, शरीर हो तो दुख है', यह सोच एक जहरीले साँप जैसी है, और यह सिर्फ मूर्ख को ही पकड़ती है।

5.41.12

इदं सुखमिदं दुःखमिदं नास्तीदमस्ति मे । इति दोलायितं चेतो मूढमेव न पण्डितम् ॥ १२ ॥

idaṃ sukham idaṃ duḥkham idaṃ nāstīdam asti me | iti dolāyitaṃ ceto mūḍham eva na paṇḍitam || 12 ||

'This is pleasure, this is pain, this does not exist, this exists for me' — a mind that swings back and forth like this is foolish, never wise.

'यह सुख है, यह दुख है, यह नहीं है, यह मेरे लिए है', इस तरह डोलता हुआ मन मूर्ख है, समझदार नहीं।

5.41.13

अहमन्योऽन्य एवायमित्यज्ञानां तु वासना । दूरोदस्तात्मबुद्धीनां जयत्यसुमतामिह ॥ १३ ॥

aham anyo'nya evāyam ity ajñānāṃ tu vāsanā | dūrodastātma buddhīnāṃ jayaty asumatām iha || 13 ||

'I am one person, and this other is someone else entirely' — this is only the deep habit of the ignorant, of those who have thrown the understanding of the Self far away. It is this habit that wins here among living beings.

'मैं कोई और हूँ, और यह दूसरा बिलकुल अलग है', यह सिर्फ अज्ञानी लोगों की गहरी आदत है, जिन्होंने आत्मा की समझ को दूर फेंक दिया है। यही आदत यहाँ जीवों में जीत जाती है।

5.41.14

इदं त्याज्यमिदं ग्राह्यमिति मिथ्या मनोभ्रमः । नोन्मत्ततां नयत्यन्तर्ज्ञमज्ञमिव दुर्धियः ॥ १४ ॥

idaṃ tyājyam idaṃ grāhyam iti mithyā manobhramaḥ | nonmattatāṃ nayaty antarjñam ajñam iva durdhiyaḥ || 14 ||

The false confusion of the mind that says, 'this must be rejected, this must be accepted,' does not drive the one who knows the Self within to madness, but it does drive the dull and ignorant to it.

मन का यह झूठा भ्रम कि 'यह छोड़ देना चाहिए, यह अपना लेना चाहिए', जो व्यक्ति भीतर से आत्मा को जानता है उसे पागल नहीं बनाता, पर मूर्ख और अज्ञानी को पागल बना देता है।

5.41.15

सर्वस्मिन्नात्मनि तते त्वयि तामरसेक्षण । हेयोपादेयपक्षस्था द्वितीया कलना कुतः ॥ १५ ॥

sarvasminn ātmani tate tvayi tāmarasekṣaṇa | heya upādeya pakṣasthā dvitīyā kalanā kutaḥ || 15 ||

Lotus-eyed one, when you are the one Self spread through everything, how could there be any second thought at all, one that stands on the side of 'this is to be rejected' or 'this is to be accepted'?

हे कमल-नयन, जब आप ही वह एक आत्मा हैं जो सब में फैली हुई है, तो 'यह छोड़ो' या 'यह अपनाओ' जैसा कोई दूसरा विचार कैसे हो सकता है?

5.41.16

विज्ञानाभासमखिलं जगत्सदसदुत्थितम् । किं हेयं किमुपादेयमिह यत्त्यज्यते न वा ॥ १६ ॥

vijñānābhāsamakhilaṃ jagatsadasadutthitam | kiṃ heyaṃ kimupādeyamih yattyajyate na vā || 16 ||

The whole world is only a flicker of consciousness, arising as both real and unreal. So what here is to be rejected, what is to be accepted, what could ever be given up, or not given up?

यह पूरा संसार चेतना की एक झलक मात्र है, जो सच और झूठ दोनों रूप में उठती है। तो यहाँ क्या छोड़ना है, क्या अपनाना है, क्या कभी छोड़ा जा सकता है, या नहीं छोड़ा जा सकता?

5.41.17

केवलं स्वस्वभावेन द्रष्टृदृश्ये विचारयन्। क्षणं विश्रान्तवानन्तः परमात्मात्मनात्मनि ॥ १७ ॥

kevalaṃ svasvabhāvena draṣṭṛadṛśye vicārayan | kṣaṇaṃ viśrāntavānanthḥ paramātmātmanātmani || 17 ||

Simply by my own nature, thinking over the seer and the seen, I rested for a moment within, the highest Self resting in the self, by the self alone.

अपने ही स्वभाव से, देखने वाले और दिखने वाले पर विचार करते हुए, मैं एक पल के लिए भीतर टिक गया, परम आत्मा, आत्मा के सहारे, आत्मा में ही टिकी हुई।

5.41.18

भावाभावविनिर्मुक्तो हेयोपादेयवर्जितः। एवमासमहं पूर्वमधुनेत्थं व्यवस्थितः ॥ १८ ॥

bhāvābhāvavinirmukto heyaopādeyavarjitaḥ | evamāsmaham pūrvamadhunetthaṃ vyavasthitaḥ || 18 ||

Free from both being and not-being, free from both rejecting and accepting, this is how I was before, and this is how I am settled now.

होने और न होने दोनों से मुक्त, छोड़ने और अपनाने दोनों से मुक्त, मैं पहले भी ऐसा ही था, और अब भी ऐसा ही ठहरा हूँ।

5.41.19

स मयात्मीयमापन्नं सर्वमात्मात्मतां गतः। करोम्यहं महादेव तुभ्यं यत्परिरोचते ॥ १९ ॥

sa mayātmīyamāpannaṃ sarvamātmātmatāṃ gataḥ | karomyahaṃ mahādeva tubhyaṃ yatparirocate || 19 ||

Having made the whole world my own, I have become one with the Self. And now, great god, I do only what pleases you.

पूरे संसार को अपना मान कर, मैं आत्मा के साथ एक हो गया हूँ। और अब, हे महादेव, मैं वही करता हूँ जो आपको भाता है।

5.41.20

त्वमयं पुण्डरीकाक्षः पूज्यस्तावज्जगत्त्रये। तन्मत्तः प्रकृतिप्राप्तां पूजामादातुमर्हसि ॥ २० ॥

tvamayaṃ puṇḍarīkākṣaḥ pūjyastāvajjagattraye | tanmattaḥ prakṛtiprāptāṃ pūjāmādātumarhasi || 20 ||

You, this lotus-eyed god, are worshipped throughout the three worlds. So you should accept from me the worship that is naturally your due.

आप, यह कमल-नयन देव, तीनों लोकों में पूजे जाते हैं। इसलिए आप मुझसे वह पूजा स्वीकार करें जो स्वाभाविक रूप से आपकी है।

5.41.21

इत्युक्त्वा दानवाधीशः पुरः क्षीरोदशायिनः। शैलेन्द्र इव पूर्णेन्दुमर्घपात्रमुपाददे ॥ २१ ॥

ityuktvā dānavādhīśaḥ puraḥ kṣīrodśāyinaḥ| śailendra iva pūrṇendumarghapātramupādade || 21 ||

Having said this, the demon king stood before the god who lies on the ocean of milk and picked up the vessel of offering, round like the full moon, just as the king of the mountains holds up the full moon.

यह कहकर दानवों के राजा ने दूध के सागर पर लेटे भगवान के सामने खड़े होकर भेंट का पात्र उठाया, जो पूर्ण चाँद जैसा गोल था, ठीक वैसे ही जैसे पर्वतों का राजा पूर्ण चाँद को थामे रहता है।

5.41.22

सायुधं साप्सरोवृन्दं ससुरं सखगाधिपम्। पूजयामास गोविन्दं सत्रैलोक्यमथाग्रगम्॥ २२॥

sāyudhaṃ sāpsarovṛndaṃ sasuraṃ sakhagādhipam| pūjayāmāsa govindaṃ satrailokyamathāgragam || 22 ||

Then he worshipped Govinda, along with his weapons, his crowds of apsaras, the gods, and the king of birds, and the three worlds too, for Govinda stands above them all.

फिर उसने गोविंद की पूजा की, उनके हथियारों, उनकी अप्सराओं की भीड़, देवताओं, पक्षियों के राजा और तीनों लोकों के साथ, क्योंकि गोविंद इन सबसे ऊपर हैं।

5.41.23

सबाह्याभ्यन्तरभ्रान्तभुवनं भुवनेश्वरम्। पूजयित्वाथ तिष्ठन्तमुवाच कमलापतिः॥ २३॥

sabāhyābhyantarabhrāntabhuvanaṃ bhuvaneśvaram| pūjayitvātha tiṣṭhantamuvāca kamalāpatiḥ || 23 ||

He worshipped the lord of all the worlds, the one whose worlds move both within him and around him. Then, to him standing there, the husband of Lakshmi spoke.

उसने सब लोकों के स्वामी की पूजा की, जिनके भीतर और बाहर सब लोक चलते हैं। फिर, वहाँ खड़े उससे, लक्ष्मी के पति ने कहा।

5.41.24

श्रीभगवानुवाच। उत्तिष्ठ दानवाधीश सिंहासनमुपाश्रय। यावदाश्वभिषेकं ते स्वयमेव ददाम्यहम्॥ २४॥

śrībhagavānuvāca| uttiṣṭha dānavādhīśa siṃhāsanamupāśraya| yāvadāśvabhiṣekaṃ te svayameva dadāmyaham || 24 ||

The Lord said: Rise, king of the demons, take your seat on the throne. I myself will crown you at once.

भगवान ने कहा: उठो, दानवों के राजा, सिंहासन पर बैठो। मैं स्वयं तुम्हें अभी राजतिलक दूंगा।

5.41.25

पाञ्चजन्यरवं श्रुत्वा य इमे समुपागताः। सिद्धाः साध्याः सुरौघास्ते कुर्वन्तु तव मङ्गलम्॥ २५॥

pāñcajanyaravaṃ śrutvā ya ime samupāgatāḥ| siddhāḥ sādhyāḥ suraughāste kurvantu tava maṅgalam || 25 ||

Let the Siddhas, the Sadhyas, and the hosts of gods, who have all gathered here on hearing the sound of the conch Panchajanya, now wish you well.

शंख पांचजन्य की आवाज़ सुनकर जो सिद्ध, साध्य और देवताओं के समूह यहाँ इकट्ठे हुए हैं, वे सब अब तुम्हारा मंगल करें।

5.41.26

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षो दानवं सिंहविष्टरे।योजयामास योग्यं तं मेरुश्रृङ्ग इवाम्बुदम्॥ २६॥

ityuktvā puṇḍarīkākṣo dānavaṃ siṃhaviṣṭare|yojayāmāsa yogyaṃ taṃ meruśṛṅga ivāmbudam|| 26 ||

Having said this, the lotus-eyed one seated the demon, who deserved it, on the lion throne, as a cloud rests on the peak of Mount Meru.

यह कहकर कमल-नेत्र भगवान ने उस दानव को, जो इसके योग्य था, सिंहासन पर बिठाया, जैसे कोई बादल मेरु पर्वत की चोटी पर टिका हो।

5.41.27

अथैनं हरिराहूतैः क्षीरोदाद्यैर्महाब्धिभिः।गङ्गादिभिः सरित्पूरैः सर्वतीर्थजलैस्तथा॥ २७॥

athainaṃ harirāhūtaiḥ kṣīrodādyairmahābdhibhiḥ|gaṅgādibhiḥ saritpūraiḥ sarvatīrthajalais tathā|| 27 ||

Then Hari called on the great oceans, beginning with the ocean of milk, on the streams of the rivers, beginning with the Ganga, and on the waters of every sacred place.

फिर हरि ने दूध के सागर से शुरू होने वाले महासागरों को, गंगा से शुरू होने वाली नदियों की धाराओं को, और सब तीर्थों के जल को बुलाया।

5.41.28

सर्वविप्रर्षिसङ्घैश्च सर्वसिद्धगणैः सह ।पुनर्विद्याधरयुतो लोकपालसमन्वितः॥ २८ ॥

sarvaviprarṣisaṅghaiśca sarvasiddhagaṇaiḥ saha|punarvidyādharyuto lokapālasamanvitaḥ|| 28 ||

He was joined by every host of learned sages, every host of siddhas, once more by the vidyadharas, and by the guardians of the world.

उनके साथ हर समूह के विद्वान ऋषि, सिद्धों के समूह, फिर से विद्याधर, और लोकों के रक्षक भी जुड़े।

5.41.29

अभ्यषिञ्चदमेयात्मा दैत्यराज्ये महासुरम् ।मरुद्गणैः स्तूयमानं पूर्वं स्वर्गे हरिं यथा ॥ २९ ॥

abhyaṣiñcadameyātmā daityarājye mahāsuram|marudgaṇaiḥ stūyamānaṃ pūrvaṃ svarge hariṃ yathā|| 29 ||

With all these, he, boundless in spirit, made the great demon king in the realm of the daityas, while the hosts of the Maruts sang his praises, just as Hari was once praised in heaven long ago.

इन सबके साथ, असीम आत्मा वाले उन्होंने उस महान दानव को दैत्यों के राज्य में राजा बनाया, जबकि मरुतों के समूह उसकी स्तुति गा रहे थे, ठीक वैसे ही जैसे कभी स्वर्ग में हरि की स्तुति हुई थी।

5.41.30

सुरासुरैः स्तूयमानं स्तूयमानः सुरासुरैः।अभिषिक्तमुवाचेदं प्रह्लादं मधुसूदनः॥ ३० ॥

surāsuraiḥ stūyamānaṃ stūyamānaḥ surāsuraiḥ|abhiṣiktamuvācedaṃ prahlādaṃ madhusūdanaḥ|| 30 ||

To Prahlada, now made king and praised by gods and demons together, Madhusudana, himself praised by gods and demons, said this:

प्रह्लाद से, जो अब राजा बनकर देवताओं और दानवों दोनों से प्रशंसित हो रहा था, मधुसूदन ने, जो स्वयं भी देवताओं और दानवों से प्रशंसित हो रहे थे, यह कहा:

5.41.31

श्रीभगवानुवाच । यावन्मेरुर्धरा यावद्यावच्चन्द्रार्कमण्डले । अखण्डितगुणश्लाघी तावद्राजा भवानघ ॥ ३१ ॥

śrībhagavānuvāca | yāvanmerurdharā yāvadyāvaccandrārkamaṇḍale | akhaṇḍitaguṇaślāghī tāvadrājā bhavānagha || 31 ||

The Lord said: For as long as Mount Meru stands, for as long as the earth stands, for as long as the sun and moon remain in the sky, for that long, sinless one, you will be king, praised for virtues that never fail.

भगवान ने कहा: जब तक मेरु पर्वत खड़ा है, जब तक पृथ्वी खड़ी है, जब तक सूरज और चाँद आकाश में रहेंगे, तब तक, हे निष्पाप, तुम राजा रहोगे, और तुम्हारे गुणों की प्रशंसा कभी कम नहीं होगी।

5.41.32

इष्टानिष्टफलं त्यक्त्वा समदर्शनया धिया । वीतरागभयक्रोधो राज्यं समनुपालय ॥ ३२ ॥

iṣṭāniṣṭaphalaṃ tyaktvā samadarśanayā dhiyā | vītarāgabhayakrodho rājyaṃ samanupālaya || 32 ||

Give up caring whether the result is pleasant or unpleasant. See everything with an equal eye. Free yourself from desire, fear, and anger, and rule your kingdom well.

फल अच्छा हो या बुरा, उसकी चिंता छोड़ दो। सब कुछ को एक समान नज़र से देखो। इच्छा, डर और क्रोध से मुक्त होकर अपने राज्य का अच्छी तरह पालन करो।

5.41.33

राज्येऽस्मिन्भोगसंपूर्णे दृष्टानुत्तमभूमिना । न गन्तव्यस्त्वयोद्वेगः स्वर्गे मानवकेऽथवा ॥ ३३ ॥

rājye'sminbhogasaṃpūrṇe dṛṣṭānuttamabhūminā | na gantavyastvayodvegaḥ svarge mānavake'thavā || 33 ||

In this kingdom, full of every pleasure, you have already seen the highest truth, so never let distress touch you, whether in heaven or among men.

इस राज्य में, जो हर सुख से भरा है, तुमने पहले ही सबसे ऊँचा सत्य देख लिया है, इसलिए स्वर्ग में हो या मनुष्यों के बीच, कभी दुख को अपने पास मत आने दो।

5.41.34

देशकालक्रियाकारैर्यथाप्राप्तासु दृष्टिषु । प्रकृतं कार्यमातिष्ठ त्यक्त्वा मानसमास्स्व भो ॥ ३४ ॥

deśakālakriyākārairyathāprāptāsu dṛṣṭiṣu | prakṛtaṃ kāryamātiṣṭha tyaktvā mānasamāssva bho || 34 ||

As place, time, action, and the people involved present themselves to you, take up the task that fits each one. Let go of your inner worry, and simply stay at ease.

जैसे-जैसे स्थान, समय, काम और लोग तुम्हारे सामने आएं, उसी के अनुसार उचित काम करो। अपनी भीतरी चिंता छोड़ दो, और बस चैन से रहो।

5.41.35

अतिदेहतयेदंताममतापरिवर्जितम् । भावाभावे समं कार्यं कुर्वन्निह न बाध्यसे ॥ ३५ ॥

atidehatayedantāmamatāparivarjitam | bhāvābhāve samaṃ kāryaṃ kurvannihi na bādhyase || 35 ||

Give up excess attachment to the body, give up thinking I am this, and give up thinking this is mine. Do your work the same way whether it succeeds or fails, and here in this world you will not be bound.

शरीर से ज़्यादा लगाव मत रखो, यह सोचना छोड़ो कि मैं यही हूँ, और यह मानना भी छोड़ो कि यह मेरा है। अपना काम एक ही तरह से करो, चाहे वह सफल हो या असफल, तो इस संसार में तुम बंधन में नहीं पड़ोगे।

5.41.36

दृष्टसंसारपर्यायस्तुलिनातुलतत्पदः । सर्वं सर्वत्र जानासि किमन्यदुपदिश्यते ॥ ३६ ॥

dṛṣṭasaṃsāraparyāyastulinātulatatpadaḥ| sarvaṃ sarvatra jānāsi kimanyadupadiśyate || 36 ||

You have seen the whole round of worldly life and reached that state beyond compare. You already know everything, everywhere, so what more is there to teach you?

तुमने संसार का पूरा चक्र देख लिया है और उस अतुलनीय अवस्था को पा लिया है। तुम पहले से ही हर जगह सब कुछ जानते हो, तो अब तुम्हें और क्या सिखाया जाए?

5.41.37

वीतरागभयक्रोधे त्वयि राजनि राजति । नेदानीं दुःखदुर्ग्रन्थिर्नासुरान्दलयिष्यति ॥ ३७ ॥

vītarāgabhayakrodhe tvayi rājani rājati| nedānīṃ duḥkhadurgraṃthirnāsurāndalayiṣyati || 37 ||

Now that you, free from desire, fear, and anger, reign as king, the hard knot of suffering will no longer tear the demons apart.

अब जब तुम, इच्छा, डर और क्रोध से मुक्त होकर राजा के रूप में राज्य करते हो, तो दुख की कठोर गाँठ अब दानवों को नहीं तोड़ेगी।

5.41.38

वाष्पश्रीर्नासुरीकर्णमञ्जरीः प्लावयिष्यति । वनराजिमिवोन्मत्ता सरित्तारतरङ्गिणी ॥ ३८ ॥

vāṣpaśrīrnāsurīkarṇamañjarīḥ plāvayiṣyati| vanarājimivonmattā sarittārataraṅgiṇī || 38 ||

Tears will no longer stream down and flood the ear ornaments of the demon women, the way a wild river in high flood, loud with waves, floods a line of forest trees.

आँसू अब बहकर दानव स्त्रियों के कान के गहनों को नहीं डुबोएंगे, जैसे कोई उफनती नदी, ऊँची लहरों के साथ, जंगल की कतार को डुबो देती है।

5.41.39

अद्यप्रभृत्यसंप्राप्तदानवामरसंगरम् । निर्मन्दराम्भोनिधिवज्जगत्स्वस्थमिव स्थितम् ॥ ३९ ॥

adyaprabhṛtyasaṃprāptadānavāmarasaṅgaram| nirmandarāmbhonidhivajjagatsvasthamiva sthitam || 39 ||

From today on, no war between demons and gods will come again. The world will stand at peace, like an ocean with no Mount Mandara stirring it.

आज से देवताओं और दानवों के बीच फिर कभी कोई युद्ध नहीं होगा। यह संसार शांति से टिका रहेगा, जैसे कोई सागर जिसे मंदराचल पर्वत मथ न रहा हो।

5.41.40

देवासुरकुटुम्बिन्यो भर्तृष्वन्तःपुरेषु च । स्वेष्वेव यान्तु विश्वासमपरस्परमाहृताः ॥ ४० ॥

devāsurakuṭumbinyo bhartṛṣvantḥpureṣu ca| sveṣveva yāntu viśvāsamaparasparamāhṛtāḥ || 40 ||

Let the wives of the gods and the demons trust only their own husbands in their own homes, no longer carried off from one another.

देवताओं और दानवों की पत्नियाँ अब सिर्फ अपने-अपने घर में अपने-अपने पति पर भरोसा करें, अब एक-दूसरे से छीनी न जाएँ।

5.41.41

भवबहुलनिशानितान्तनिद्रातिमिरमपास्य सदोदिताशयश्रीः । दनुसुत वनितावि‌लासरम्यां चिरमजितामुपभुङ्क्ष्व राज्यलक्ष्मीम् ॥ ४१ ॥

bhavabahulaniśānitāntanidrātimiramapāsya sadoditāśayaśrīḥ | danusuta vanitāvilāsaramyāṃ ciramajitāmupabhuṅkṣva rājyalakṣmīm || 41 ||

Throw off the thick darkness of sleep that fills the long nights of worldly life, and keep the light of your mind always awake. Son of Danu, may you enjoy this kingdom's fortune for a long time, a fortune no one can conquer, made delightful by the company of women.

संसार की लंबी रातों में छाई नींद के घने अंधकार को दूर फेंक दो, और अपने मन की रोशनी को हमेशा जगाए रखो। हे दनु के पुत्र, तुम इस राज्य के वैभव को लंबे समय तक भोगो, जिसे कोई जीत नहीं सकता, और जो स्त्रियों के सुख-विलास से सुंदर है।

Chapter 42

5.42.1

श्रीवसिष्ठ उवाचैत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षः सनरामरकिन्नरःद्वितीय इव संसारश्चचालासुरमन्दिरात् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvācaityuktvā puṇḍarīkākṣaḥ sanarāmarakinnaraḥdvitīya iva saṃsāraścacālāsuramandirāt || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having said this, Vishnu, the lotus-eyed one, set out from the demon's palace together with men, gods and kinnaras, like a second world stirring into motion.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह कहकर कमल जैसी आँखों वाले विष्णु मनुष्यों, देवताओं और किन्नरों के साथ राक्षस के महल से चल पड़े, जैसे कोई दूसरी दुनिया हिलकर चल पड़ी हो।

5.42.2

प्रह्लादादिविनिर्मुक्तैः पश्चात्पुष्पाञ्जलिव्रजैःपूर्यमाणो विहङ्गेशपाश्चात्याङ्गरुहोत्करैः ॥ २ ॥

prahrādādivinirmuktaiḥ paścātpuṣpāñjalivrajaiḥpūryamāṇo vihaṅgeśapāścātyāṅgaruhotkaraiḥ || 2 ||

He was covered, from behind, by the streams of flowers that Prahlada and the others showered on him, and by the mass of feathers trailing off the back of Garuda, the king of birds.

प्रह्लाद और बाकी लोगों ने पीछे से जो फूलों की झड़ी बरसाई, उससे, और पक्षियों के राजा गरुड़ के पीछे के पंखों के ढेर से, वे ढँक गए।

5.42.3

क्रमात्क्षीरोदमासाद्य विसृज्य सुरवाहिनीम्भोगिभोगासने तस्थौ श्वेताब्ज इव षट्पदः ॥ ३ ॥

kramātkṣīrodamāsādya visṛjya suravāhinīmbhogibhogāsane tasthau śvetābja iva ṣaṭpadaḥ || 3 ||

In time, he reached the Ocean of Milk. Having sent back the host of gods, he settled on the coils of the serpent, like a bee on a white lotus.

समय के साथ वे क्षीरसागर पहुँचे। देवताओं की सेना को विदा करके वे शेषनाग के कुंडलों पर ऐसे विराजमान हुए जैसे कोई भँवरा सफेद कमल पर बैठा हो।

5.42.4

भोगिभोगासने विष्णुः शक्रः स्वर्गे सहामरैःपाताले दानवाधीश इति तस्थुर्गतज्वराः ॥ ४ ॥

bhogibhogāsane viṣṇuḥ śakraḥ svarge sahāmaraiḥpātāle dānavādhīśa iti tasthurgatajvarāḥ || 4 ||

So they settled, each free of torment: Vishnu on the serpent's coils, Indra in heaven with the gods, and the lord of the demons in the underworld, Patala.

इस तरह वे सब चिंतामुक्त होकर बस गए: विष्णु शेषनाग के कुंडलों पर, इंद्र स्वर्ग में देवताओं के साथ, और असुरों का राजा पाताल में।

5.42.5

एषा ते कथिता राम निःशेषमलनाशिनीप्राह्लादी बोधसंप्राप्तिरैन्दवद्रवशीतला ॥ ५ ॥

eṣā te kathitā rāma niḥśeṣamalanāśinīprāhrādī bodhasaṃprāptiraindavadravaśītalā || 5 ||

Rama, this is what I have told you: Prahlada's attainment of awakening, which destroys every impurity completely, is as cool as moonlight melted into liquid.

हे राम, मैंने तुम्हें यह बताया: प्रह्लाद की यह बोध-प्राप्ति हर मैल को पूरी तरह मिटा देती है, और यह चाँदनी के पिघलने जैसी ठंडी है।

5.42.6

तां तु ये मानवा लोके बहुदुष्कृतिनोऽपि हि । धिया विचारयिष्यन्ति ते प्राप्स्यन्त्यचिरात्पदम् ॥ ६ ॥

tāṃ tu ye mānavā loke bahuduṣkṛtino'pi hi | dhiyā vicārayiṣyanti te prāpsyantyacirātpadam || 6 ||

But whatever humans in this world, however many wrongs they have done, reflect on this with their mind, will soon attain that state.

इस संसार में जो भी मनुष्य, चाहे उन्होंने कितने भी बुरे काम किए हों, इस पर अपने मन से विचार करेंगे, वे जल्द ही उस पद को पा लेंगे।

5.42.7

सामान्येन विचारेण क्षयमायाति दुष्कृतम् । योगवाक्यविचारेण को न याति परं पदम् ॥ ७ ॥

sāmānyena vicāreṇa kṣayamāyāti duṣkṛtam | yogavākyavicāreṇa ko na yāti paraṃ padam || 7 ||

Even ordinary reflection destroys wrongdoing. Who, then, would not reach the highest state by reflecting on the words of yoga?

साधारण विचार से भी बुरे कर्म नष्ट हो जाते हैं। फिर योग के इन वचनों पर विचार करने से भला कौन परम पद को नहीं पाएगा?

5.42.8

अज्ञानमुच्यते पापं तद्विचारेण नश्यति । पापमूलच्छिदं तस्माद्विचारं न परित्यजेत् ॥ ८ ॥

ajñānamucyate pāpaṃ tadvicāreṇa naśyati | pāpamūlacchidaṃ tasmādvicāraṃ na parityajet || 8 ||

Ignorance is what is called sin, and it is destroyed by reflection. Since reflection cuts sin off at the root, one should never give it up.

अज्ञान को ही पाप कहा जाता है, और यह विचार से ही नष्ट होता है। चूँकि विचार पाप की जड़ काट देता है, इसलिए विचार को कभी मत छोड़ो।

5.42.9

इमां प्रह्लादसंसिद्धिं प्रविचारयता नृणाम् । सप्तजन्मकृतं पापं क्षयमायात्यसंशयम् ॥ ९ ॥

imāṃ prahrādasaṁsiddhiṃ pravicārayatā nṛṇām | saptajanmakṛtaṃ pāpaṃ kṣayamāyātyasaṃśayam || 9 ||

For anyone who reflects deeply on this attainment of Prahlada, sins done across seven births are destroyed, without doubt.

जो कोई प्रह्लाद की इस सिद्धि पर गहराई से विचार करता है, उसके सात जन्मों के पाप बिना किसी संदेह के नष्ट हो जाते हैं।

5.42.10

श्रीराम उवाच । परे पदे परिणतं पाञ्चजन्यस्वनैर्मनः । कथं प्रबुद्धं भगवन्प्रहादस्य महात्मनः ॥ १० ॥

śrīrāma uvāca | pare pade pariṇataṃ pāñcajanyasvanairmanaḥ | kathaṃ prabuddhaṃ bhagavanprahādasya mahātmanaḥ || 10 ||

Sri Rama said: Venerable one, the mind of the great soul Prahlada had turned fully into the highest state. How, then, was he awakened by the sound of the Panchajanya?

श्रीराम ने कहा: हे भगवन, महात्मा प्रह्लाद का मन तो परम पद में लीन हो चुका था। फिर पांचजन्य की ध्वनि से वे कैसे जागे?

5.42.11

श्रीवसिष्ठ उवाच । द्विविधा मुक्तता लोके संभवत्यनघाकृते । सदेहैका विदेहान्या विभागोऽयं तयोः शृणु ॥ ११ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dvividhā muktatā loke saṃbhavatyanaghākṛte | sadehaikā videhānyā vibhāgo'yaṃ tayoḥ śṛṇu || 11 ||

Sri Vasishtha said: O sinless Rama, liberation in this world is of two kinds — one while still in the body, the other without the body. Listen to the distinction between them.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे निष्पाप राम, इस संसार में मुक्ति दो तरह की होती है, एक शरीर के रहते हुए, दूसरी शरीर के बिना। इन दोनों का भेद सुनो।

5.42.12

असंसक्तमतेर्यस्य त्यागादानेषु कर्मणाम्। नैषणा तत्स्थितिं विद्धि त्वं जीवन्मुक्ततामिह ॥ १२ ॥

asansaktamateryasya tyāgādāneṣu karmaṇām | naiṣaṇā tatsthitiṃ viddhi tvaṃ jīvanmuktatām iha || 12 ||

Know this: the state of one whose mind stays unattached, who feels no craving whether he takes up an action or gives it up, that, here in this world, is called living liberation.

जान लो: जिस व्यक्ति का मन किसी काम को करने या न करने में भी बिना किसी लालसा के अनासक्त रहता है, उसी दशा को इस दुनिया में जीवनमुक्ति कहते हैं।

5.42.13

सैव देहक्षये राम पुनर्जननवर्जिता। विदेहमुक्तता प्रोक्ता तत्स्था नायान्ति दृश्यताम् ॥ १३ ॥

saiva dehakṣaye rāma punarjananavarjitā | videhamuktatā proktā tatsthā nāyānti dṛśyatām || 13 ||

Rama, that same state, when the body falls away and there is no more rebirth, is called liberation without a body. Those who rest in it do not come back into view.

हे राम, वही दशा, जब शरीर के नष्ट होने पर फिर जन्म नहीं होता, विदेहमुक्ति कहलाती है। उसमें टिके लोग फिर कभी दिखाई नहीं देते।

5.42.14

भृष्टबीजोपमा भूयो जन्माङ्कुरविवर्जिताः। हृदि जीवद्विमुक्तानां शुद्धा भवति वासना ॥ १४ ॥

bhṛṣṭabījopamā bhūyo janmāṅkuravivarjitāḥ | hṛdi jīvadvimuktānāṃ śuddhā bhavati vāsanā || 14 ||

In the hearts of those liberated while still alive, the inner tendencies turn pure, like a roasted seed that will never again sprout into birth.

जो जीवित रहते हुए मुक्त हो चुके हैं, उनके मन की वासनाएँ शुद्ध हो जाती हैं, जैसे भुना हुआ बीज फिर कभी नहीं उगता, वैसे ही वे फिर जन्म नहीं लेते।

5.42.15

पावनी परमोदारा शुद्धसत्त्वानुपातिनी। आत्मध्यानमयी नित्यं सुषुप्तस्येव तिष्ठति ॥ १५ ॥

pāvanī paramodārā śuddhasattvānupātinī | ātmadhyānamayī nityaṃ suṣuptasyeva tiṣṭhati || 15 ||

That tendency is purifying, supremely noble, and follows only pure being. Made wholly of meditation on the self, it stays always as if in deep, dreamless sleep.

वह वासना पवित्र करने वाली, बहुत उदार और शुद्ध सत्त्व के अनुरूप होती है। वह हमेशा आत्म-ध्यान से भरी रहती है, और गहरी नींद में सोए हुए व्यक्ति जैसी शांत बनी रहती है।

5.42.16

अपि वर्षसहस्रान्ते तयेवान्तरवस्थया। सति देहे प्रबुध्यन्ते जीवन्मुक्ता रघूद्वह ॥ १६ ॥

api varṣasahasrānte tayevāntaravasthayā | sati dehe prabudhyante jīvanmuktā raghūdvaha || 16 ||

Rama, best of the Raghus, even after a thousand years have passed, those liberated while living may awaken again in that same inward state, while the body is still alive.

हे राम, रघुकुल में श्रेष्ठ, हज़ार साल बीत जाने पर भी जीवनमुक्त लोग उसी भीतरी अवस्था से, शरीर के जीवित रहते हुए ही, फिर से जाग सकते हैं।

5.42.17

प्रह्लादोऽन्तस्थया शुद्धसत्त्ववासनया स्वया । बोधमाप महाबाहो शङ्खशब्दावबुद्धया ॥ १७ ॥

prahrādo'ntasthayā śuddhasattvavāsanayā svayā | bodhamāpa mahābāho śaṅkhaśabdāvabuddhayā || 17 ||

Mighty-armed Rama, Prahlada attained awakening through his own pure inner tendency, which had stayed within him and was roused by the sound of the conch.

हे महाबाहु राम, प्रह्लाद अपनी उसी शुद्ध भीतरी वासना से जागे, जो उनके भीतर बनी हुई थी और शंख की आवाज़ से जाग उठी।

5.42.18

हरिरात्मा हि भूतानां तस्य यत्प्रतिभासते । तत्तथैव भवत्याशु सर्वमात्मैव कारणम् ॥ १८ ॥

harirātmā hi bhūtānāṃ tasya yatpratibhāsate | tattathaiva bhavatyāśu sarvamātmaiva kāraṇam || 18 ||

Hari is indeed the self of all beings. Whatever appears to him at once becomes exactly so, the self alone is the cause of everything.

हरि ही सब प्राणियों की आत्मा हैं। उन्हें जो कुछ भी दिखाई देता है, वह तुरंत वैसा ही हो जाता है, हर चीज़ का कारण आत्मा ही है।

5.42.19

प्रबोधमेतु प्रह्लादो यदैवेति विचिन्तितम्निमेषाद्वासुदेवेन तदैवैतदुपस्थितम् ॥ १९ ॥

prabodhametu prahrādo yadaiveti vicintitamnimeṣādvāsudevena tadaivaitadupasthitam || 19 ||

The instant Vasudeva thought, let Prahlada awaken, that very moment, within the blink of an eye, it came to pass.

जैसे ही वासुदेव ने सोचा कि प्रह्लाद जाग उठें, उसी पल, पलक झपकते ही, ऐसा हो गया।

5.42.20

आत्मन्यकारणेनैव भूतानां कारणेन च । सृष्ट्यर्थं वपुरात्तं हि वासुदेवमयात्मना ॥ २० ॥

ātmanyakāraṇenaiva bhūtānāṃ kāraṇena ca | sṛṣṭyarthaṃ vapurāttaṃ hi vāsudevamayātmanā || 20 ||

The self has no cause of its own, yet it is the cause of all beings. For the sake of creation, that self, which is nothing but Vasudeva, took on a body.

आत्मा का खुद कोई कारण नहीं है, फिर भी वह सब प्राणियों का कारण है। सृष्टि के लिए, वही आत्मा, जो वासुदेव-स्वरूप है, ने एक शरीर धारण किया।

5.42.21

आत्मावलोकनेनाशु माधवः परिदृश्यते । माधवाराधनेनाशु स्वयमात्मावलोक्यते ॥ २१ ॥

ātmāvalokanenāśu mādhavaḥ paridṛśyate | mādhavārādhanenāśu svayamātmāvalokyate || 21 ||

By looking upon the self, one quickly sees Madhava. By worshipping Madhava, one quickly sees the self itself.

आत्मा को देखने से जल्दी ही माधव दिखाई देते हैं, और माधव की उपासना से जल्दी ही आत्मा स्वयं दिखाई देती है।

5.42.22

एतां दृष्टिमवष्टभ्य राघवात्मावलोकने । विहराशु विचारात्मा पदं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ २२ ॥

etāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya rāghavātmāvalokane | viharāśu vicārātmā padaṃ prāpsyasi śāśvatam || 22 ||

Rama, hold on to this insight and engage yourself at once in beholding the self. Living as one devoted to inquiry, you will reach the eternal state.

हे राम, इस समझ को थामे रहो और तुरंत आत्मा को देखने में लग जाओ। विचारशील बनकर जीने से तुम शाश्वत पद को पा लोगे।

5.42.23

दुःखासारवती राम संसारप्रावृडातता। जाड्यं ददाति परमं विचारार्कमपश्यताम्॥ २३॥

duḥkhāsāravatī rāma saṃsāraprāvṛḍātatā | jāḍyaṃ dadāti paramaṃ vicārārkamapaśyatām || 23 ||

Rama, the monsoon of worldly life, heavy with downpours of suffering, brings deep dullness to those who do not see the sun of inquiry.

हे राम, इस संसार का बरसाती मौसम, जो दुख की झड़ियों से भरा है, उन लोगों को गहरी जड़ता में डाल देता है जो विचार के सूरज को नहीं देखते।

5.42.24

प्रसादादात्मनो विष्णोर्मायेयमतिभासुरा। प्रबाधते न धीरांस्तु यक्षी मन्त्रवतो यथा॥ २४॥

prasādādātmano viṣṇormāyeyamatibhāsurā | prabādhate na dhīrāṃstu yakṣī mantravato yathā || 24 ||

By the grace of the self, Vishnu, this dazzling maya does not trouble the steady, just as a yakshi cannot harm one who holds the right spell.

आत्मा, अर्थात् विष्णु की कृपा से, यह चमकीली माया धैर्यवान लोगों को नहीं सताती, जैसे मंत्र जानने वाले को कोई यक्षिणी नहीं सता पाती।

5.42.25

आत्मेच्छयैव घनतां समुपागतान्तरात्मेच्छयैव तनुतामुपयाति काले। संसारजालरचनेयमनन्तमायाज्वालेह वातवलयादिव पावकस्य॥ २५॥

ātmeccchayaiva ghanatāṃ samupāgatāntarātmeccchayaiva tanutāmupayāti kāle |
saṃsārajālaracaneyamanantamāyājvāleha vātavalayādiva pāvakasya || 25 ||

Only by the self's own wish does it grow dense, and only by the inner self's wish does it grow thin over time. This web that weaves the world is the flame of an endless maya, like the flame of a fire caught in a whirl of wind.

आत्मा की अपनी इच्छा से ही यह सघन हो जाता है, और भीतर की आत्मा की इच्छा से ही यह समय के साथ पतला हो जाता है। संसार को बुनने वाला यह जाल अनंत माया की ज्वाला है, ठीक वैसे ही जैसे हवा के भँवर में आग की लपट घटती-बढ़ती है।

Chapter 43

5.43.1

श्रीराम उवाच । भगवन्सर्वधर्मज्ञ शुद्धैस्त्वद्वचनांशुभिः । निर्वृताः स्म शशाङ्कस्य करैरोषधयो यथा ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | bhagavansarvadharmajña śuddhaitvadvacanāṃśubhiḥ | nirvṛtāḥ sma śaśāṅkasya karairoṣadhayo yathā || 1 ||

Sri Rama said: Lord, you know every duty there is. The pure rays of your words have cooled us, the way the moon's rays cool the plants.

श्रीराम ने कहा: हे भगवन, आप सभी धर्मों को जानने वाले हैं। आपके शुद्ध वचनों की किरणों ने हमें वैसे ही ठंडक पहुँचाई है, जैसे चाँद की किरणें पौधों को ठंडक पहुँचाती हैं।

5.43.2

कर्णाभिवाञ्छ्यमानानि पवित्राणि मृदूनि च । सुखयन्ति गृहीतानि पुष्पाणीव वचांसि ते ॥ २ ॥

karṇābhivāñchyamānāni pavitrāṇi mṛdūni ca | sukhayanti gṛhītāni puṣpāṇīva vacāṃsi te || 2 ||

Your words are pure and soft, and the ears long to hear them. Like flowers held in the hand, they bring joy when they are received.

आपके वचन शुद्ध और कोमल हैं, और कान उन्हें सुनने के लिए तरसते हैं। जैसे हाथ में लिए फूल सुख देते हैं, वैसे ही ग्रहण करने पर ये वचन सुख देते हैं।

5.43.3

पौरुषेण प्रयत्नेन सर्वमासाद्यते यदि । प्रह्लादस्तत्कथं बुद्धो न माधववरं विना ॥ ३ ॥

pauruṣeṇa prayatnena sarvamāsādyate yadi | prahlādastatkathaṃ buddho na mādhavavaraṃ vinā || 3 ||

If a man can get everything by his own effort alone, then how did Prahlada awaken to the truth without the boon of Madhava?

अगर इंसान अपनी मेहनत से ही सब कुछ पा सकता है, तो प्रह्लाद माधव के वरदान के बिना सच को कैसे जान पाए?

5.43.4

श्रीवसिष्ठ उवाच । यद्यद्राघव संप्राप्तं प्रह्लादेन महात्मना । तत्तदासादितं तेन पौरुषादेव नान्यतः ॥ ४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yadyadrāghava saṃprāptaṃ prahlādena mahātmanā | tattadāsāditaṃ tena pauruṣādeva nānyataḥ || 4 ||

Sri Vasishtha said: Rama, whatever the great Prahlada attained, he attained it through his own effort alone, and nothing else.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राम, महान प्रह्लाद ने जो कुछ भी पाया, वह अपनी मेहनत से ही पाया, और किसी और चीज़ से नहीं।

5.43.5

आत्मा नारायणश्चैव न भिन्नस्तिलतैलवत् । तथैव शौक्ल्यपटवत्कुसुमामोदवत्तथा ॥ ५ ॥

ātmā nārāyaṇaścaiva na bhinnastilatailavat | tathaiva śauklyapaṭavatkusumāmodavattathā || 5 ||

The self and Narayana are not different from each other, like a sesame seed and its oil, like a white cloth and its whiteness, like a flower and its smell.

आत्मा और नारायण एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, जैसे तिल और उसका तेल अलग नहीं, जैसे सफ़ेद कपड़ा और उसकी सफ़ेदी अलग नहीं, जैसे फूल और उसकी खुशबू अलग नहीं।

5.43.6

यो हि विष्णुः स एवात्मा यो ह्यात्मासौ जनार्दनः। विष्ण्वात्मशब्दौ पर्यायौ यथा विटपिपादपौ ॥ ६ ॥

yo hi viṣṇuḥ sa evātmā yo hyātmāsau janārdanaḥ| viṣṇvātmaśabdau paryāyau yathā viṭapipādapau || 6 ||

Whoever is Vishnu is the self, and whoever is the self is Janardana. Vishnu and self are two names for the same thing, the way a tree can be called by two different names.

जो विष्णु हैं, वही आत्मा हैं, और जो आत्मा है, वही जनार्दन है। विष्णु और आत्मा एक ही चीज़ के दो नाम हैं, जैसे एक पेड़ को दो अलग-अलग नामों से बुलाया जा सकता है।

5.43.7

प्रह्लादनामा प्रथममात्मैव स्वयमात्मना। स्वयैव परया शक्त्या विष्णुभक्तौ नियोजितः ॥ ७ ॥

prahlādanāmā prathamamātmaiva svayamātmanā| svayaiva parayā śaktyā viṣṇubhaktau niyojitaḥ || 7 ||

The one named Prahlada was, at first, only the self. By its own supreme power, the self set itself to the devotion of Vishnu.

प्रह्लाद नाम का यह व्यक्ति पहले सिर्फ़ आत्मा ही था। आत्मा ने अपनी ही सबसे बड़ी शक्ति से खुद को विष्णु की भक्ति में लगाया।

5.43.8

प्रह्लादो ह्यात्मनैवैनं वरमर्जितवान्स्वयम्। स्वत्रं विचारगं कृत्वा स्वयं विदितवान्मनः ॥ ८ ॥

prahlādo hyātmanaivaenam varamarjitavānsvayam| svatraṃ vicāragaṃ kṛtvā svayaṃ viditavānmanaḥ || 8 ||

Prahlada earned this boon by the self alone, by himself. He turned his mind to inquiry, and by himself came to know his own mind.

प्रह्लाद ने यह वरदान अपनी आत्मा के बल पर, खुद ही अर्जित किया। उसने अपने मन को आत्म-चिंतन में लगाया, और खुद ही अपने मन को जान लिया।

5.43.9

कदाचिदात्मनैवात्मा स्वयं शक्त्या प्रबुध्यते। कदाचिद्विष्णुदेहेन भक्तिलभ्येन बोध्यते ॥ ९ ॥

kadācidaātmanaivātmā svayaṃ śaktyā prabudhyate| kadācadvaiṣṇudehena bhaktilabhyena bodhyate || 9 ||

Sometimes the self awakens by its own power, on its own. Sometimes it is awakened through the body of Vishnu, which is reached through devotion.

कभी आत्मा अपनी ही शक्ति से खुद जाग जाती है। कभी वह विष्णु के शरीर के ज़रिए जगाई जाती है, जो भक्ति से पाया जाता है।

5.43.10

चिरमाराधितोऽप्येष परमप्रीतिमानपि। नाविचारवतो ज्ञानं दातुं शक्नोति माधवः ॥ १० ॥

ciramārādhitō'pyeṣa paramaprītimānapi| nāvicāravato jñānaṃ dātuṃ śaknoti mādhavaḥ || 10 ||

Even if Madhava is worshipped for a long time, and even if he is very pleased, he still cannot give knowledge to a man who does not inquire.

माधव की चाहे लंबे समय तक पूजा की जाए, और चाहे वे बहुत खुश हो जाएं, फिर भी वे उस आदमी को ज्ञान नहीं दे सकते जो आत्म-चिंतन नहीं करता।

5.43.11

मुख्यः पुरुषयत्नोत्थो विचारः स्वात्मदर्शने । गौणो वरादिको हेतुर्मुख्यहेतुपरो भव ॥ ११ ॥

mukhyaḥ puruṣayatnottho vicāraḥ svātmadarśane | gauṇo varādiko heturmūkhyahētuparo bhava || 11 ||

In seeing one's own self, the main cause is the inquiry that comes from a person's own effort. A boon or anything like it is only a small, secondary cause. Hold on to the main cause.

अपनी आत्मा को देखने में मुख्य कारण इंसान के अपने प्रयत्न से उठने वाला आत्म-चिंतन है। वरदान वगैरह तो बस गौण कारण हैं। तुम मुख्य कारण को ही पकड़े रहो।

5.43.12

पूर्वमेव बलात्तस्मादाक्रम्येन्द्रियपञ्चकम् । अभ्यसन्सर्वयत्नेन चित्तं कुरु विचारवत् ॥ १२ ॥

pūrvameva balāttasmādākramyendriyapañcakam | abhyasansarvayatnena cittaṃ kuru vicāravat || 12 ||

So first of all, forcefully conquer your five senses. Practice with all your effort, and turn your mind toward inquiry.

इसलिए सबसे पहले ज़ोर लगाकर अपनी पाँचों इंद्रियों पर काबू पाओ। पूरी मेहनत से अभ्यास करो, और अपने मन को आत्म-चिंतन की ओर मोड़ो।

5.43.13

यद्यदासाद्यते किंचित्केनचित्क्वचिदेव हि । स्वशक्तिसंप्रवृत्त्या तल्लभ्यते नान्यतः क्वचित् ॥ १३ ॥

yadyadāsādyate kiñcitkenacitkvacideva hi | svaśaktisaṃpravṛttyā tallabhyate nānyataḥ kvacit || 13 ||

Whatever anyone gets, anywhere, is gotten only by the working of their own strength, never from anything else.

जो कुछ भी, कोई भी, कहीं भी पाता है, वह सिर्फ़ अपनी ही ताक़त के इस्तेमाल से पाता है, किसी और चीज़ से कभी नहीं।

5.43.14

पौरुषं यत्नमाश्रित्य प्रोल्लङ्घ्येन्द्रियपर्वतम् । संसारजलधिं तीर्त्वा पारं गच्छ परं पदम् ॥ १४ ॥

pauruṣaṃ yatnamāśritya prollaṅghyendriyaparvatam | saṃsārajaladhiṃ tīrtvā pāraṃ gaccha paraṃ padam || 14 ||

Rely on your own effort. Climb over the mountain of the senses, cross the ocean of birth and death, and go across to the far shore, the highest state.

अपने प्रयत्न का सहारा लो। इंद्रियों के पहाड़ को लांघो, जन्म-मरण के सागर को पार करो, और उस पार पहुँचो, सबसे ऊँचे पद तक।

5.43.15

गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरुषादृते । उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥ १५ ॥

guruśceduddharatyajñamātmīyātpauruṣādṛte | uṣṭraṃ dāntaṃ balīvardaṃ tatkasmānnoddharityasau || 15 ||

If a guru can save an ignorant man without any effort of his own, then why does he not also save a tamed camel or an ox?

अगर गुरु किसी अज्ञानी को उसकी अपनी मेहनत के बिना ही तार सकते हैं, तो वे किसी सधे हुए ऊँट या बैल को भी क्यों नहीं तार देते?

5.43.17

न हरेर्न गुरोर्नार्थात्किंचिदासाद्यते महत् आक्रान्तमनसः स्वस्माद्यदासादितमात्मनः ॥ १७ ॥

na harer na guror nārthāt kiñcid āsādyate mahat ākrāntamanasaḥ svasmād yad āsāditam ātmanaḥ || 17 ||

Nothing great comes from Hari, from a guru, or from wealth. For a man who has conquered his own mind, whatever the self gains, it gains from itself alone.

हरि से, गुरु से, या धन से कुछ भी महान नहीं मिलता। जिसने अपने मन पर काबू पा लिया है, उसे आत्मा से जो कुछ मिलता है, वह खुद से ही मिलता है।

5.43.18

अभ्यासवैराग्ययुतादाक्रान्तेन्द्रियपन्नगात् नात्मनः प्राप्यते यत्तत्प्राप्यते न जगत्त्रयात् ॥ १८ ॥

abhyāsavairāgyayutādākrāntendriyapannagāt nātmanaḥ prāpyate yattat prāpyate na jagattrayāt || 18 ||

Through practice and detachment, and by conquering the snakes of the senses, a person gets from the self whatever can be gotten. What cannot be gotten from the self this way cannot be gotten even from the three worlds.

अभ्यास और वैराग्य से, और इंद्रियों रूपी साँपों को वश में करके, इंसान अपनी आत्मा से वह सब कुछ पा लेता है जो पाया जा सकता है। जो आत्मा से इस तरह नहीं मिलता, वह तीनों लोकों से भी नहीं मिलता।

5.43.19

आराधयात्मनात्मानमात्मनात्मानमर्चय आत्मनात्मानमालोक्य संतिष्ठस्वात्मनात्मनि ॥ १९ ॥

ārādhayātmanātmanāmātmanātmanāmārchaya ātmanātmanāmālokya saṃtiṣṭhasvātmanātmani || 19 ||

Worship the self by the self. Honour the self by the self. See the self by the self, and by the self remain in the self.

आत्मा के ज़रिए आत्मा की आराधना करो। आत्मा के ज़रिए आत्मा का सम्मान करो। आत्मा के ज़रिए आत्मा को देखो, और आत्मा के ज़रिए आत्मा में टिके रहो।

5.43.20

शास्त्रयत्नविचारेभ्यो मूर्खाणां प्रपलायिनाम् कल्पिता वैष्णवी भक्तिः प्रवृत्त्यर्थं शुभस्थितौ ॥ २० ॥

śāstrayatnavicārebhyo mūrkhāṇāṃ prapalāyināṃ kalpitā vaiṣṇavī bhaktiḥ pravṛttyarthaṃ śubhasthitau || 20 ||

For fools who run away from scripture, effort, and inquiry, devotion to Vishnu was made, so that they might still be set moving on the path and settled in a good state.

जो मूर्ख शास्त्र, प्रयत्न और आत्म-चिंतन से भाग खड़े होते हैं, उनके लिए विष्णु-भक्ति बनाई गई, ताकि वे किसी तरह राह पर लग सकें और अच्छी हालत में टिक सकें।

5.43.21

अभ्यासयत्नौ प्रथमं मुख्यो विधिरुदाहृतः तदभावे तु गौणः स्यात्पूज्यपूजामयक्रमः ॥ २१ ॥

abhyāsayatnau prathamaṃ mukhyo vidhirudāhṛtaḥ tadabhāve tu gauṇaḥ syāt pūjyapūjāmayakramaḥ || 21 ||

Practice and effort are said to be the main way, first of all. Only when that is missing does the secondary way apply, the way of worshipping a god worthy of worship.

अभ्यास और प्रयत्न को ही सबसे पहले मुख्य रास्ता कहा गया है। जब यह न हो, तभी गौण रास्ता काम आता है, यानी पूज्य देवता की पूजा करने का तरीका।

5.43.22

अस्ति चेदिन्द्रियाक्रान्तिः किं प्राप्यं पूजनैः फलम्। नास्तिचेदिन्द्रियाक्रान्तिः किं प्राप्यं पूजनैः फलम्॥ २२॥

asti cedindriyākrāntiḥ kiṃ prāpyaṃ pūjanaiḥ phalam| nāsticedindriyākrāntiḥ kiṃ prāpyaṃ pūjanaiḥ phalam || 22 ||

If the senses are already conquered, what is there to gain from acts of worship? If the senses are not conquered, what is there to gain from acts of worship?

अगर इंद्रियों पर पहले से ही जीत हासिल हो चुकी है, तो पूजा-पाठ से क्या फल मिलेगा? और अगर इंद्रियों पर जीत हासिल नहीं हुई है, तो भी पूजा-पाठ से क्या फल मिलेगा?

5.43.23

विचारोपशमाभ्यां हि न विनासाद्यते हरिः। विचारोपशमाभ्यां च मुक्तस्याब्जकरेण किम्॥ २३॥

vicāroparśamābhyāṃ hi na vināsādyate hariḥ| vicāroparśamābhyāṃ ca muktsyābjakareṇa kim || 23 ||

Without inquiry and inner calm, Hari can never be reached. And what use does a man freed by inquiry and inner calm have for the lotus-handed god?

बिना विचार और भीतरी शांति के हरि कभी नहीं मिलते। और जो मनुष्य विचार और भीतरी शांति से मुक्त हो चुका है, उसे कमल हाथ में लिए भगवान से क्या लेना-देना?

5.43.24

विचारोपशमोपेतं चित्तमाराधयात्मनः। तस्मिन्सिद्धे भवान्सिद्धो नो चेत्त्वं वनगर्दभः॥ २४॥

vicāroparśamopetaṃ cittamārādhayātmanaḥ| tasminsiddhe bhavānsiddho no cettvaṃ vanagardabhaḥ || 24 ||

Worship your own mind, filled with inquiry and inner calm. When that mind is perfected, you are perfected. If not, you are just a wild donkey.

अपने ही मन की उपासना करो, जो विचार और भीतरी शांति से भरा हो। जब वह मन सिद्ध हो जाए, तब तुम भी सिद्ध हो। और अगर नहीं, तो तुम बस एक जंगली गधे के समान हो।

5.43.25

क्रियते माधवादीनां प्रणयप्रार्थना स्वयम्। तथैव क्रियते कस्मान्न स्वकस्यैव चेतसः॥ २५॥

kriyate mādhavādīnāṃ praṇayaprārthanā svayam| tathaiva kriyate kasmānna svakasyeva cetasaḥ || 25 ||

A man makes his loving prayer to Madhava and the other gods all on his own. Why does he not make that same prayer to his own mind?

मनुष्य अपनी मर्ज़ी से माधव और दूसरे देवताओं से प्रेम भरी प्रार्थना करता है। वही प्रार्थना वह अपने ही मन से क्यों नहीं करता?

5.43.26

सर्वस्यैव जनस्यास्य विष्णुरभ्यन्तरे स्थितः। तं परित्यज्य ये यान्ति बहिर्विष्णुं नराधमाः॥ २६॥

sarvasyaiva janasyaasya viṣṇurabhyantare sthitaḥ| taṃ parityajya ye yānti bahirviṣṇuṃ narādhamāḥ || 26 ||

In every single person, Vishnu lives within. Those who leave him and go to a Vishnu outside are the lowest of men.

हर एक मनुष्य के भीतर विष्णु बसते हैं। जो लोग उन्हें छोड़कर बाहर के विष्णु के पास जाते हैं, वे सबसे नीच मनुष्य हैं।

5.43.27

हृद्गुहावासिचित्तत्त्वं मुख्यं सानातनं वपुः । शङ्खचक्रगदाहस्तो गौण आकार आत्मनः ॥ २७ ॥

hṛdguhāvāsicittattvaṃ mukhyaṃ sānātanaṃ vapuḥ | śaṅkhacakragadāhasto gauṇa ākāra ātmanaḥ || 27 ||

The consciousness that lives in the cave of the heart is his chief, eternal form. The form with a conch, a discus and a mace in hand is only his lesser form.

हृदय की गुफा में बसने वाली चेतना ही उसका मुख्य, सनातन रूप है। शंख, चक्र और गदा हाथ में लिए हुआ रूप तो उसका छोटा, गौण रूप है।

5.43.28

यो हि मुख्यं परित्यज्य गौणं समनुधावति । त्यक्त्वा रसायनं सिद्धं साध्यं संसाधयत्यसौ ॥ २८ ॥

yo hi mukhyaṃ parityajya gauṇaṃ samanudhāvati | tyaktvā rasāyanaṃ siddhaṃ sādhyaṃ saṃsādhayatyasau || 28 ||

He who leaves the chief form and runs after the lesser form throws away an elixir already made, and tries instead to prepare one that is not yet made.

जो मुख्य रूप को छोड़कर गौण रूप के पीछे भागता है, वह एक बनी-बनाई अमृत-औषधि को फेंककर एक ऐसी औषधि बनाने में लग जाता है जो अभी बनी ही नहीं है।

5.43.29

यस्तु भोः स्थितिमेवास्यामात्मज्ञानचमत्कृतौ । नासादयति संमत्तमनाः स रघुनन्दन ॥ २९ ॥

yastu bhoḥ sthitimevāsyāmātmajñānacamatkṛtau | nāsādayati saṃmattamanāḥ sa raghunandana || 29 ||

But Rama, whoever does not gain steadiness in this wonder that is self-knowledge has a mind gone mad.

पर हे राम, जो इस आत्मज्ञान के आश्चर्य में स्थिरता नहीं पाता, उसका मन पागल हो चुका है।

5.43.30

अप्राप्तात्मविवेकोऽन्तर्ज्ञचित्तवशीकृतः । शंखचक्रगदापाणिमर्चयेत्परमेश्वरम् ॥ ३० ॥

aprāptātmaviveko'ntarjñacittavaśīkṛtaḥ | śaṅkhacakragadāpāṇimarcayetparameśvaram || 30 ||

One who has not yet gained self-knowledge, but has brought his mind under control through inner awareness, should worship the supreme lord who holds a conch, a discus and a mace in his hand.

जिसने अभी आत्मज्ञान नहीं पाया, पर जिसने भीतरी जागरूकता से अपने मन को वश में कर लिया है, उसे शंख, चक्र और गदा हाथ में लिए परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए।

5.43.31

तत्पूजनेन कष्टेन तपसा तस्य राघव । काले निर्मलतामेति चित्तं वैराग्यकारिणा ॥ ३१ ॥

tatpūjanena kaṣṭena tapasā tasya rāghava | kāle nirmalatāmeti cittaṃ vairāgyakāriṇā || 31 ||

Rama, through that worship, through hard austerity that breeds dispassion, his mind, in time, grows pure.

हे राम, उस पूजा से, कठिन तपस्या से, जो वैराग्य पैदा करती है, उसका मन समय के साथ शुद्ध हो जाता है।

5.43.32

नित्याभ्यासविवेकाभ्यां चित्तमाशु प्रसीदति । आम्र एव दशामेति साहकारीं शनैः शनैः ॥ ३२ ॥

nityābhyāsavivekābhyāṃ cittamāśu prasīdati | āmra eva daśāmeti sāhakārīṃ śanaiḥ śanaiḥ || 32 ||

Through constant practice and discernment, the mind soon grows calm, just as a mango tree itself becomes a fruit-bearing tree only little by little.

निरंतर अभ्यास और विवेक से मन जल्दी ही शांत हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे आम का एक पेड़ धीरे-धीरे ही फल देने वाला वृक्ष बनता है।

5.43.33

एतदप्यात्मनैवात्मा फलमाप्नोति भाषितम् । हरिपूजाक्रमाख्येन निमित्तेनारिसूदन ॥ ३३ ॥

etadapyātmanaivātmā phalamāpnoti bhāṣitam | haripūjākramākhyena nimittenaārisūdana || 33 ||

Here too, Rama, the self gets, all on its own, the very result already described. The worship of Hari is only the means by which it happens.

यहाँ भी, हे राम, आत्मा अपने आप ही वह फल पाती है जो पहले बताया गया। हरि की पूजा तो बस वह माध्यम है जिससे यह होता है।

5.43.34

वरमाप्नोति यो वापि विष्णोरमिततेजसः । तेन स्वस्यैव तत्प्राप्तं फलमभ्यासशाखिनः ॥ ३४ ॥

varamāpnoti yo vāpi viṣṇoramitatejasah | tena svasyeva tatprāptaṃ phalamabhyāsaśākhinaḥ || 34 ||

And whoever gets a boon from Vishnu of boundless splendor has, by that, only gotten for himself the fruit of his own tree of practice.

और जो कोई असीम तेज वाले विष्णु से वरदान पाता है, वह भी असल में अपने ही अभ्यास रूपी पेड़ का फल खुद ही पाता है।

5.43.35

सर्वेषामुत्तमस्थानां सर्वासां चिरसंपदाम् । स्वमनोनिग्रहो भूमिर्भूमिः सस्यश्रियामिव ॥ ३५ ॥

sarveṣāmuttamsthānāṃ sarvāsāṃ cirasaṃpadām | svamanonigraho bhūmirbhūmiḥ sasyashriyāmiva || 35 ||

Control of one's own mind is the ground for all the highest states, for all lasting riches, just as soil is the ground for the wealth of crops.

अपने मन पर काबू पाना ही सब श्रेष्ठ अवस्थाओं और सब स्थायी संपत्तियों की नींव है, ठीक वैसे ही जैसे मिट्टी फसलों की समृद्धि की नींव होती है।

5.43.36

अप्युर्वीखननोत्कस्य कर्षतोऽपि शिलोच्चयम् । स्वमनोनिग्रहादन्यो नोपायोऽस्तीह कश्चन ॥ ३६ ॥

apyurvīkhananotkasya karṣato'pi śiloccayam | svamanonigrahādanyo nopāyo'stīha kaścana || 36 ||

Even for someone eager to dig up the earth, even for one who can drag away a whole heap of rock, there is no other means here at all except control of one's own mind.

चाहे कोई धरती खोदने पर तुला हो, चाहे कोई पत्थरों के पूरे ढेर को घसीट सके, फिर भी यहाँ अपने मन पर काबू पाने के अलावा और कोई उपाय नहीं है।

5.43.37

तावज्जन्मसहस्राणि भ्रमन्ति भुवि मानवाः । यावन्नोपशमं याति मनोमत्तमहार्णवः ॥ ३७ ॥

tāvajjanmasahasrāṇi bhramanti bhuvi mānavāḥ | yāvannopaśamaṃ yāti manomattamahārṇavaḥ || 37 ||

Men wander on this earth through a thousand births, for as long as the mind's great, raging ocean does not grow calm.

जब तक मन का विशाल, उग्र सागर शांत नहीं होता, तब तक मनुष्य हज़ारों जन्मों तक इस धरती पर भटकते रहते हैं।

5.43.38

ब्रह्मविष्ण्विन्द्ररुद्राद्याश्चिरसंपूजिता अपि । उपप्लवान्मनोव्याधेर्न त्रायन्तेऽपि वत्सलाः ॥ ३८ ॥

brahmaviṣṇvindrarudrādyāścirasaṃpūjitā api | upaplavānmanovyādherna trāyante'pi vatsalāḥ || 38 ||

Brahma, Vishnu, Indra, Rudra and the rest, even after being worshipped for a long time, cannot save a man from the disease of the mind, however loving they are.

ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, रुद्र और बाकी देवता, चाहे कितने ही लंबे समय तक उनकी पूजा की जाए, मन की बीमारी से मनुष्य को नहीं बचा सकते, चाहे वे कितने ही स्नेही क्यों न हों।

5.43.39

आकारभासुरं त्यक्त्वा बाह्यमान्तरमप्यजम् । कुरु जन्मक्षयायाशु संविन्मात्रैकचिन्तनम् ॥ ३९ ॥

ākārabhāsuraṃ tyaktvā bāhyamāntaramapyajam | kuru janmakṣayāyāśu saṃvinmātraikacintanam || 39 ||

Give up the shining form of the unborn one, whether outward or inward, and quickly fix your mind only on pure consciousness, so as to end birth.

उस अजन्मे के चमकते रूप को छोड़ दो, चाहे वह बाहर का हो या भीतर का, और जन्म का अंत करने के लिए जल्दी से केवल शुद्ध चेतना पर ही मन लगाओ।

5.43.40

संवेद्यनिर्मुक्तनिरामयैकसंविन्मयास्वादमनन्तरूपम् । सन्मात्रमास्वादय सर्वसारं पारं परं प्राप्स्यसि जन्मनद्याः ॥ ४० ॥

saṃvedyanirmuktanirāmayaikekaṃvinmayāsvādamanantarūpam | sanmātramāsvādaya sarvasāraṃ pāraṃ paraṃ prāpsyasi janmanadyāḥ || 40 ||

Taste only pure being, the taste made of one flawless consciousness, free of anything known as a separate object, infinite in form, the essence of everything, and you will reach the farthest shore of the river of birth.

केवल शुद्ध सत्ता का स्वाद चखो, वह स्वाद जो एक अकेली, निर्दोष चेतना से बना है, जो हर जानी जाने वाली चीज़ से मुक्त है, जिसका रूप अनंत है, और जो हर चीज़ का सार है, और तुम जन्म की नदी के सबसे दूर, परम किनारे तक पहुँच जाओगे।

Chapter 44

5.44.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । रामापर्यवसानेयं माया संसृतिनामिका । आत्मचित्तजयेनैव क्षयमायाति नान्यथा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | rāmāparyavasāneyaṃ māyā saṃsṛtināmikā | ātmacittajayenaiva kṣayamāyāti nānyathā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Rama, this illusion we call the world never comes to an end on its own. It ends only when you conquer your own mind — never in any other way.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राम, यह माया जिसे हम संसार कहते हैं, अपने आप कभी खत्म नहीं होती। यह सिर्फ अपने मन को जीतने से ही खत्म होती है, किसी और तरीके से नहीं।

5.44.2

जगन्मायाप्रपञ्चस्य वैचित्र्यप्रतिपत्तये । इतिहासमिमं वक्ष्ये श्रृणुष्वावहितोऽनघ ॥ २ ॥

jaganmāyāprapañcasya vaicitryapratipattaye | itihāsamimaṃ vakṣye śṛṇuṣvāvahito'nagha || 2 ||

To help you understand the many strange forms this world's illusion takes, I will tell you a story. Listen closely, blameless Rama.

इस संसार की माया के तरह-तरह के अनोखे रूपों को समझाने के लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊँगा। ध्यान से सुनो, हे निष्पाप राम।

5.44.3

अस्त्यस्मिन्वसुधापीठे कोसलो नाम मण्डलः । कल्पवृक्षवनं मेराविव रत्नगणाकरः ॥ ३ ॥

astyasminvasudhāpīṭhe kosalo nāma maṇḍalaḥ | kalpavṛkṣavanaṃ merāviva ratnagaṇākaraḥ || 3 ||

On this earth there is a region called Kosala. Like Mount Meru, it is a forest of wish-granting trees and a mine full of jewels.

इस धरती पर कोसल नाम का एक प्रदेश है। मेरु पर्वत की तरह वहाँ इच्छा पूरी करने वाले वृक्षों का वन है और रत्नों की खान है।

5.44.4

तत्राभूद्ब्राह्मणः कश्चिद्गुणी गाधिरिति श्रुतः । परमश्रोत्रियो धीमान्धर्ममूर्तिरिव स्थितः ॥ ४ ॥

tatrābhūdbrāhmaṇaḥ kaścidguṇī gādhiriti śrutaḥ | paramaśrotriyo dhīmāndharmamūrtiriva sthitaḥ || 4 ||

There lived a virtuous brahmin named Gadhi. He was deeply learned in the Vedas, wise, and stood like the very form of righteousness.

वहाँ गाधि नाम का एक गुणी ब्राह्मण रहता था। वह वेदों का बड़ा जानकार और बुद्धिमान था, और मानो धर्म की मूर्ति बनकर खड़ा था।

5.44.5

आबाल्यात्प्रविरक्तेन चेतसा स व्यराजत । निष्कलङ्कावदातेन भुवनं नभसा यथा ॥ ५ ॥

ābālyātpraviraktēna cētasā sa vyarājata | niṣkalaṅkāvadātēna bhuvanaṃ nabhasā yathā || 5 ||

From childhood his mind was free of worldly attachment, and he shone with it — the way the world shines under a clear, spotless sky.

बचपन से ही उसका मन सांसारिक चीज़ों से अलग था, और वह उससे ऐसे चमकता था जैसे साफ, बेदाग़ आकाश से यह संसार चमकता है।

5.44.6

किमप्यभिमतं कार्यं विनिधाय स्वचेतसि । बन्धुवृन्दाद्विनिष्क्रम्य तपस्तप्तुं वनं ययौ ॥ ६ ॥

kimapyabhimataṃ kāryaṃ vinidhāya svacetasi | bandhuvṛndādviniṣkramya tapastaptuṃ vanaṃ yayau || 6 ||

He fixed some cherished purpose in his mind, left his family and relatives behind, and went to the forest to practice austerity.

उसने अपने मन में कोई मनचाहा उद्देश्य ठान लिया, अपने परिवार और रिश्तेदारों को छोड़ दिया, और तपस्या करने के लिए जंगल चला गया।

5.44.7

उत्फुल्लकमलं प्राप सरस्तत्र स विप्रराट् । चन्द्रः प्रसन्नविमलं तारासारमिवाम्बरम् ॥ ७ ॥

utphullakamalaṃ prāpa sarastatra sa viprarāṭ | candraḥ prasannavimalaṃ tārāsāramivāmbaram || 7 ||

There that great brahmin came to a lake covered with blooming lotuses, the way the moon comes into a clear sky full of bright stars.

वहाँ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण खिले हुए कमलों से भरे एक सरोवर के पास पहुँचा, जैसे चाँद तारों से भरे साफ आकाश में पहुँचता है।

5.44.8

आशौरिदर्शनं तस्मिंस्तपोर्थं सरसि द्विजः । आकण्ठमम्बुनिर्मग्नः प्रावृद्वद्म इवाविशत् ॥ ८ ॥

āśauridarśanaṃ tasmins taporthaṃ sarasi dvijaḥ | ākaṇṭhamambunirmagnaḥ prāvṛṭpadma ivāviśat || 8 ||

In that lake, to practice austerity until he saw Vishnu, the brahmin sank into the water up to his neck, entering it like a lotus in the rainy season.

उस सरोवर में विष्णु का दर्शन पाने तक तपस्या करने के लिए, वह ब्राह्मण गले तक पानी में डूब गया, मानो बरसात के मौसम में एक कमल जल में समा गया हो।

5.44.9

ययौ मासाष्टकं तस्य मग्नस्य सरसोऽम्भसि । वासपङ्कजसंकोचमनाग्भग्नमुखच्छवेः ॥ ९ ॥

yayau māsāṣṭakaṃ tasya magnasya saraso'mbhasi | vāsapankajasaṃkocamanāgbhagnamukhacchaveḥ || 9 ||

Eight months passed while he stayed sunk in the waters of that lake. The glow on his face faded a little, like a lotus slowly closing where it grows.

वह उस सरोवर के पानी में डूबा रहा, और इस तरह आठ महीने बीत गए। उसके चेहरे की चमक थोड़ी फीकी पड़ गई, जैसे कमल अपने ही स्थान पर धीरे-धीरे मुरझा जाता है।

5.44.10

अथैनं तपसा तप्तमाजगामैकदा हरिः । निदाघार्तं घनः श्यामः प्रावृषीव धरातलम् ॥ १० ॥

athainaṃ tapasā taptamājagāmaikadā hariḥ | nidāghārtaṃ ghanaḥ śyāmaḥ prāvṛṣīva dharātalam || 10 ||

Then one day Vishnu came to him, worn out by his austerity — as a dark rain cloud comes to earth scorched by summer heat, when the rains arrive.

फिर एक दिन विष्णु उसके पास आए, जो अपनी तपस्या से थक चुका था — जैसे गर्मी से झुलसी धरती पर बरसात के मौसम में काला बादल आता है।

5.44.11

श्रीभगवानुवाच विप्रोत्तिष्ठ पयोमध्याद्गृहाणाभिमतं वरम् अभीप्सितफलोपेतो जातस्ते नियमद्रुमः ॥ ११ ॥

śrībhagavānuvāca viprottiṣṭha payomadhyādgṛhāṇābhimataṃ varam abhīpsitaphalopeto jātaste niyamadrumaḥ || 11 ||

Sri Vishnu said: Brahmin, rise up out of the water, and ask for the wish you want. The tree of your discipline has now borne the fruit you longed for.

श्री विष्णु ने कहा: हे ब्राह्मण, पानी से बाहर निकलो और जो वरदान चाहते हो, माँग लो। तुम्हारी तपस्या का वृक्ष अब वह फल दे चुका है जिसकी तुम्हें चाह थी।

5.44.12

ब्राह्मण उवाच असंख्येयजगद्भूतहृत्पद्मकुहरालिने जगत्त्रयैकनलिनीसरसे विष्णवे नमः ॥ १२ ॥

brāhmaṇa uvāca asaṃkhyeyajagadbhūtahṛtpadmakuharāline jagattrayekanalinīsarase viṣṇave namaḥ || 12 ||

The brahmin said: I bow to Vishnu — he is the bee that lives inside the heart-lotus of every one of this world's countless beings, and he is the one lotus pond that holds all three worlds.

ब्राह्मण ने कहा: मैं विष्णु को नमन करता हूँ — वे संसार के अनगिनत प्राणियों के हृदय-कमल के भीतर बसने वाले भँवरे हैं, और वे तीनों लोकों को धारण करने वाले एकमात्र कमल-सरोवर हैं।

5.44.13

मायामिमां त्वद्रचितां भगवन्पारमात्मिकीम् द्रष्टुमिच्छामि संसारनाम्न्यामन्ध्यैककारिणीम् ॥ १३ ॥

māyāmimāṃ tvadracitāṃ bhagavanpāramātmikīm draṣṭumicchāmi saṃsāranāmnīmāndhyaikakāriṇīm || 13 ||

Lord, I want to see this illusion you have made — the power of the Supreme Self itself, the one they call the world, which alone makes beings blind.

हे भगवान, मैं आपकी बनाई हुई इस माया को देखना चाहता हूँ — जो परमात्मा की ही शक्ति है, जिसे संसार कहा जाता है, और जो अकेली ही जीवों को अंधा बना देती है।

5.44.14

श्रीवसिष्ठ उवाच इमां द्रक्ष्यसि मायां त्वं ततोऽत्यक्ष्यसि चेत्यजः उक्त्वा ययावदृश्यत्वं गान्धर्वमिव पत्तनम् ॥ १४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca imāṃ drakṣyasi māyāṃ tvaṃ tatastyakṣyasi cetyajaḥ uktvā yayāvadṛśyatvaṃ gāndharvamiva pattanam || 14 ||

Sri Vasishtha said: Vishnu had told him, "You will see this illusion, and then you will leave it behind." Having said this, he vanished from sight, like a city in the sky.

श्री वसिष्ठ ने कहा: विष्णु ने उससे कहा था, "तुम यह माया देखोगे, और फिर इसे छोड़ दोगे।" यह कहकर वे आँखों से ओझल हो गए, जैसे आकाश में बना कोई नगर।

5.44.15

गते विष्णौ समुत्थासौ जलात्स ब्राह्मणेश्वरः शीतलामलमूर्तित्वादिन्दुः क्षीरोदकादिव ॥ १५ ॥

gate viṣṇau samuttasthau jalātsa brāhmaṇeśvaraḥ śītalāmalamūrtitvādinduḥ kṣīrodakādiva || 15 ||

When Vishnu had gone, that great brahmin rose up out of the water — his form cool and spotless, like the moon rising from the ocean of milk.

जब विष्णु चले गए, तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पानी से बाहर निकल आया — उसका रूप शीतल और निर्मल था, जैसे क्षीरसागर से चाँद निकलता है।

5.44.16

बभूव परितुष्टात्मा दर्शनेन जगत्पतेः । दर्शनस्पर्शनैरिन्दोरुत्फुल्लमिव कैरवम् ॥ १६ ॥

babhūva parituṣṭātmā darśanena jagatpateḥ | darśanaspṛśanairindorutphullamiva kairavam || 16 ||

Seeing the lord of the world, he became fully content in himself — like a white lily opening at the sight and touch of the moon.

जगत के स्वामी के दर्शन से वह मन ही मन पूरी तरह संतुष्ट हो गया — जैसे चाँद को देखकर और उसकी किरणों को छूकर सफ़ेद कुमुदिनी खिल उठती है।

5.44.17

अथास्य कतिचित्तस्मिन्दिवसा निर्ययुर्वने । हरिसंदर्शनानन्दवतो ब्राह्मणकर्मणा ॥ १७ ॥

athāsya katicit tasmin divasā niryayur vane | harisaṃdarśanānandavato brāhmaṇakarmaṇā || 17 ||

After that, some days went by for him in the forest, full of joy at having seen Vishnu, as he carried on with his brahmin duties.

इसके बाद जंगल में उसके कुछ दिन इसी तरह बीते, विष्णु का दर्शन पाकर वह आनंदित था, और एक ब्राह्मण के रोज़ के काम करता रहा।

5.44.18

एकदारब्धवान्स्नानं सरस्युदितपङ्कजे । चिन्तयन्वैष्णवं वाक्यं महर्षिरिव मानसे ॥ १८ ॥

ekadā ārabdhavān snānaṃ sarasyuditapaṅkaje | cintayan vaiṣṇavaṃ vākyaṃ maharṣiriva mānase || 18 ||

One day he began to bathe in that lake full of blooming lotuses, turning over Vishnu's words in his mind, like a great sage.

एक दिन वह उस खिले हुए कमलों वाले सरोवर में स्नान करने लगा, और एक महर्षि की तरह मन ही मन विष्णु के वचनों पर विचार करने लगा।

5.44.19

अथ स्नानविधावन्तर्जलमेष चकार ह । सकलाघविघातार्थं परिवर्तमिवात्मना ॥ १९ ॥

atha snānavidhāvantarjalameṣa cakāra ha | sakalāghavighātārthaṃ parivartamivātmanā || 19 ||

Then, while bathing, he ducked down under the water to wash away all his sins, as if turning his whole self over.

फिर स्नान करते समय उसने अपने सारे पापों को धोने के लिए पानी के भीतर गोता लगाया, मानो अपने आप को पूरी तरह पलट दिया हो।

5.44.20

अन्तर्जलविधौ तस्मिन्विस्मृतध्यानमन्त्रधीः । पर्यस्तसंवित्प्रसरः सोऽपश्यज्जलमध्यतः ॥ २० ॥

antarjalavidhau tasmin vismṛtadhyānamantradhīḥ | paryastasaṃvitprasaraḥ so'paśyajjalamadhyataḥ || 20 ||

While he was under the water like this, his mind lost hold of the meditation and the mantra it had been reciting. The flow of his awareness turned, and from within the water, he saw.

पानी के भीतर इस अवस्था में उसका मन ध्यान और मंत्र को भूल गया। उसकी चेतना की धारा पलट गई, और पानी के बीच से उसने देखा।

5.44.21

मृतमात्मानमात्मीये सदने शोच्यतां गतम् । पतितं वातवेगेन कन्दरान्तरिव द्रुमम् ॥ २१ ॥

mṛtamātmānamātmīye sadane śocyatāṃ gatam| patitaṃ vātavegena kandarāntariva drumam|| 21 ||

There he lay dead in his own house, someone now to be mourned, fallen like a tree brought down by a gust of wind inside a ravine.

वह अपने ही घर में मरा पड़ा था, अब शोक करने लायक, जैसे कोई पेड़ आँधी के झोंके से किसी घाटी में जा गिरा हो।

5.44.22

प्राणापानप्रवाहेण मुक्तमन्तमुपागतम् । संशान्तावयवस्पन्दं निर्वात इव खण्डकम् ॥ २२ ॥

prāṇāpānapravāheṇa muktamantamupāgatam| saṃśāntāvayavaspandaṃ nirvāta iva khaṇḍakam|| 22 ||

His breath, going in and going out, had stopped flowing, and his life had come to its end; the shaking of his limbs was completely still, like a scrap of cloth hanging motionless where there is no wind.

उसकी साँस का अंदर-बाहर आना-जाना बंद हो चुका था, और उसका जीवन समाप्त हो चुका था; उसके अंगों का काँपना पूरी तरह थम चुका था, जैसे बिना हवा के कपड़े का कोई टुकड़ा निश्चल लटका हो।

5.44.23

पाण्डुराननमाम्लानं वृक्षपर्णमिवारसम् । शवीभूतमिवाग्लानं छिन्ननालमिवाम्बुजम् ॥ २३ ॥

pāṇḍurānanamāmlānaṃ vṛkṣaparṇamivārasam| śavībhūtamivāglānaṃ chinnanālamivāmbujam|| 23 ||

His face had turned pale and withered, like a leaf drained of its sap; he had become a corpse, yet did not look wasted, like a lotus that still looks fresh though its stem is cut.

उसका चेहरा पीला और मुरझाया हुआ था, जैसे किसी पेड़ का पत्ता जिसका रस सूख गया हो; वह लाश बन चुका था, फिर भी थका हुआ नहीं दिखता था, जैसे डंठल कटा हुआ कमल भी ताज़ा ही दिखे।

5.44.24

विपर्यस्तेक्षणं प्रातर्मग्नतारमिवाम्बरम् । सावग्रहमिव ग्रामं सर्वतः पांसुधूसरम् ॥ २४ ॥

viparyastekṣaṇaṃ prātarmagntāramivāmbaram| sāvagrahamiva grāmaṃ sarvataḥ pāṃsudhūsaram|| 24 ||

His eyes had rolled back, like the morning sky when its stars have sunk out of sight; he was grey with dust all over, like a village struck by drought.

उसकी आँखें उलट गई थीं, जैसे सुबह का आकाश जिसके तारे डूब चुके हों; वह हर तरफ धूल से धूसर था, जैसे सूखे से मारा हुआ कोई गाँव।

5.44.25

बाष्पक्लिन्नमुखैर्दीनैः करुणाक्रन्दकारिभिः । आवृतं बन्धुभिः खिन्नैः कुररैरिव पादपम् ॥ २५ ॥

bāṣpaklinnamukhairdīnaiḥ karuṇākrandakāribhiḥ| āvṛtaṃ bandhubhiḥ khinnaiḥ kurarairiva pādapam|| 25 ||

He was surrounded by his wretched kinsmen, their faces wet with tears, crying out in pity, worn out with grief, like a tree surrounded by wailing ospreys.

उसके दुखी संबंधी उसे घेरे हुए थे, उनके चेहरे आँसुओं से भीगे थे, वे करुण स्वर में रो रहे थे, दुख से थके हुए, जैसे कोई पेड़ रोते हुए बाज़ पक्षियों से घिरा हो।

5.44.26

सेतुभंगगलद्वारिह्रियमाणमुखाब्जया । नलिन्या समधर्मिण्या भार्यया पादयोः श्रितम् ॥ २६ ॥

setubhaṅgagaladvārihriyamāṇamukhābjayā | nalinyā samadharmiṇyā bhāryayā pādayoḥ śritam || 26 ||

His wife clung to his feet, sharing his very state, her face, like a lotus, being swept away by a flood of tears pouring out as though through a broken dam.

उसकी पत्नी उसके पैरों से लिपटी हुई थी, वह भी उसी हाल में थी; उसका कमल-सा चेहरा आँसुओं की बाढ़ में बहा जा रहा था, मानो कोई बाँध टूट गया हो।

5.44.27

ताराक्रन्दरणद्रेफप्रलापालापलुब्धया । मात्रा गृहीतं चिबुके नवव्यञ्जनलाञ्छिते ॥ २७ ॥

tārākrandaraṇadrephapralāpālāpalubdhayā | mātrā gṛhītaṃ cibuke navavyañjanalāñchite || 27 ||

His mother, longing to hear again his baby talk, that had once sounded like a bee's hum mixed with loud crying, held him by the chin, now marked with the first signs of a beard.

उसकी माँ उसकी बचपन की तुतलाहट फिर से सुनने के लिए तरस रही थी, जो कभी भौंरे की गुनगुनाहट और ज़ोर के रोने जैसी लगती थी; उसने उसकी ठुड्डी पकड़ ली, जिस पर अब हल्की दाढ़ी के पहले चिह्न उभर आए थे।

5.44.28

अन्यैः पार्श्वगतैर्दीनैः स्रवदश्रुमुखैर्जनैः । श्रितं गलदवश्यायैः शुष्कपर्णैरिव द्रुमम् ॥ २८ ॥

anyaiḥ pārśvagatairdīnaiḥ sravadaśrumukhairjanaiḥ | śritaṃ galadavaśyāyaiḥ śuṣkaparṇairiva drumaṃ || 28 ||

Other wretched people stood pressed close at his side, their faces streaming with tears, like a withered tree covered with dry leaves beaded with dripping dew.

और भी दुखी लोग उसके पास सटकर खड़े थे, उनके चेहरों से आँसू बह रहे थे, जैसे कोई सूखा पेड़ जिसकी मुरझाई पत्तियों से ओस टपक रही हो।

5.44.29

वियोगभीत्या संयोगपरिहारपरैरिव । दूरं विप्रसृतैरङ्गैरनात्मीयैरिवावृतम् ॥ २९ ॥

viyogabhītyā saṃyogaparihāraparairiva | dūraṃ viprasṛtairaṅgairanātmīyairivāvṛtaṃ || 29 ||

His limbs lay flung far apart, as if they were no longer his own, as if, afraid of parting, they wanted nothing more to do with one another.

उसके अंग दूर-दूर बिखरे पड़े थे, मानो अब उसके अपने न रहे हों, मानो बिछड़ने के डर से वे एक-दूसरे से कोई नाता ही न रखना चाहते हों।

5.44.30

परस्परमलग्नाभ्यामोष्ठाभ्यां दशनैः सितैः । सविरागमिवाम्लानैर्हसन्तं स्वात्मजीवितम् ॥ ३० ॥

parasparamalagnābhyāmoṣṭhābhyāṃ daśanaiḥ sitaiḥ | savirāgamivāmlānairhasantaṃ svātmajīvitam || 30 ||

His two lips did not touch each other, his teeth still white and fresh, and he seemed to be laughing at his own life, as if he no longer cared about it at all.

उसके दोनों होंठ एक-दूसरे से अलग थे, उसके दाँत अब भी सफेद और ताज़े थे, और वह मानो अपने ही जीवन पर हँस रहा हो, जैसे उसे अब उसकी कोई परवाह ही न रही हो।

5.44.31

मौनध्यानमिवापन्नं पङ्कादिव विनिर्मितम् । अप्रबोधाय संसुप्तं विश्राम्यन्तमिवोच्चकैः ॥ ३१ ॥

maunadhyānamivāpannaṃ paṅkādiva vinirmitam | aprabodhāya saṃsuptaṃ viśrāmyantamivoccakaiḥ || 31 ||

He seemed to have entered a silent meditation, as though shaped out of clay, sunk in a sleep from which there is no waking, as though resting completely.

वह मानो मौन ध्यान में डूब गया हो, जैसे मिट्टी से गढ़ा गया हो, ऐसी नींद में सोया हो जिससे फिर जागना ही न हो, मानो पूरी तरह विश्राम कर रहा हो।

5.44.32

बान्धवाक्रन्दसंरम्भकोलाहलगता गिरः । स्नेहभावविचारार्थं श्रृण्वन्तमिव यत्नतः ॥ ३२ ॥

bāndhavākrandasaṃrambhakolāhalagatā giraḥ | snehabhāvavicārārthaṃ śrṛṇvantamiva yatnataḥ || 32 ||

He seemed to be listening carefully to the cries of his kinsmen, rising in a wave of grief and uproar, as if to judge the depth of their love.

वह मानो ध्यान से सुन रहा हो अपने संबंधियों की चीख-पुकार, जो शोक और हल्ले की लहर में उठ रही थी, मानो यह जाँचने के लिए कि उनका प्रेम कितना गहरा है।

5.44.33

अथ तत्कालकल्लोलप्रलापाकुलचेष्टितैः । सोरस्ताडनमूर्च्छोत्थनेत्रवारिवहाप्लुतैः ॥ ३३ ॥

atha tatkālakallolapralāpākulaceṣṭitaiḥ | sorastāḍanamūrcchotthanetravārivahāplutaiḥ || 33 ||

Then, their movements thrown into confusion by the surging waves of wailing of that moment, his people were drenched with streams of tears that sprang from their fainting fits, along with the beating of their breasts.

फिर, उस पल के विलाप की उमड़ती लहरों से उसके लोगों की हरकतें उलझ गईं, और वे छाती पीटने के साथ मूर्छा से उठे आँसुओं की धार से भीग गए।

5.44.34

क्रमेण स्वजनैः क्षुब्धैस्ताराक्रन्दादिघर्घरैः । निष्कालितममङ्गल्यमपुनर्दर्शनाय वै ॥ ३४ ॥

krameṇa svajanaiḥ kṣubhdais tārākrandādigargharaiḥ | niṣkālitamamaṅgalyamapunardarśanāya vai || 34 ||

Little by little, his own agitated kinsfolk carried him out, treating him now as an ill omen, amid loud wailing and choked, hoarse sobs, so that he would never be seen again.

धीरे-धीरे उसके अपने ही व्याकुल लोग उसे बाहर ले गए, अब उसे अशुभ मानते हुए, ज़ोर के विलाप और घुटी हुई, भर्राई सिसकियों के बीच, ताकि वह फिर कभी न दिखे।

5.44.35

नीतं श्मशानं मांसान्त्रवसापङ्ककलङ्कितम् । शुष्काशुष्करसक्लिन्नं कंकालशतसंकुलम् ॥ ३५ ॥

nītaṃ śmaśānaṃ māṃsāntravasāpaṅkakalaṅkitam | śuṣkāśuṣkarasaklinnaṃ kaṅkālaśatasaṅkulam || 35 ||

He was carried to the cremation ground, a place smeared with the filth of flesh, entrails, and fat, wet with fluids both fresh and dried, crowded with hundreds of skeletons.

उसे श्मशान ले जाया गया, वह जगह मांस, आँत और चरबी की गंदगी से सनी थी, ताज़ी और सूखी दोनों तरह की चिपचिपी नमी से गीली थी, और सैकड़ों कंकालों से भरी थी।

5.44.36

गृध्राभ्रच्छन्नसूर्यांशुचिताज्वलननिस्तमः । शिवाशिवमुखज्वालाजालपल्लविताविनि ॥ ३६ ॥

gṛdhra-abhra-cchanna-sūryāṃśu-citā-jvalana-nistamaḥ| śivā-śiva-mukha-jvālā-jāla-pallavitā-avani || 36 ||

There, clouds of vultures blocked out the rays of the sun, and the darkness was broken only by the blaze of the funeral fires; the ground itself seemed to sprout new shoots of flame wherever the jackals opened their mouths.

वहाँ गिद्धों के झुंड बादलों की तरह सूरज की किरणों को रोक रहे थे, और अँधेरा केवल चिताओं की धधकती आग से टूटता था; धरती मानो जगह-जगह नए अंकुर फूट रही हो, जहाँ भी सियार अपना मुँह खोलते और आग-सी लपटें दिखतीं।

5.44.37

वहद्रक्तसरित्स्नातमग्नकङ्कोग्रवायसम्। रक्तार्द्रतन्त्रीप्रसरजालाबद्धजरत्खगम्॥ ३७॥

vahad-rakta-sarit-snātam-agna-kaṅka-ugra-vāyasam| raktā-ardra-tantrī-prasara-jālā-baddha-jarat-khagam || 37 ||

It was washed by streams of flowing blood, where fierce hawks and crows plunged in to feed, and old birds lay caught in a tangle of blood-soaked sinews.

वह जगह बहते खून की धाराओं से धुली थी, जहाँ हिंसक बाज और कौवे खाने के लिए उतर पड़े थे, और बूढ़े पक्षी खून से भीगी नसों के जाल में उलझे पड़े थे।

5.44.38

तत्र ते ज्वलने दीप्ते चक्रुस्तं भस्मसाच्छवम्। बान्धवाः सलिलापूरं समुद्रा इव वाडवे॥ ३८॥

tatra te jvalane dīpte cakrustaṃ bhasmasācchavam| bāndhavāḥ salilāpūraṃ samudrā iva vāḍave || 38 ||

There, in the blazing fire, his kinsmen burned that body to ashes, just as oceans pour their flood of waters into the fire beneath the sea.

वहाँ धधकती आग में उसके संबंधियों ने उस शरीर को जलाकर राख कर दिया, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र अपने जल की बाढ़ समुद्र के नीचे की आग में उंडेल देते हैं।

5.44.39

चितिश्चटचटास्फोटैः शवमाशु ददाह सा। शुष्केन्धनबहूच्छूनज्वालाजालजटावली॥ ३९॥

citiścaṭacaṭāsphoṭaiḥ śavamāśu dadāha sā| śuṣkendhanabahūcchūnajvālājālajaṭāvalī || 39 ||

The pyre, crackling and popping, quickly burned up the body, a tangled mass of flames leaping high, fed by plenty of dry wood.

चिता चटख-चटख की आवाज़ करते हुए शरीर को तुरंत जला गई, सूखी लकड़ी के भरपूर ईंधन से ऊँची उठती लपटों का उलझा हुआ जाल बन गई।

5.44.40

अभ्युल्लसत्कटकटारवमुक्तगन्धव्याप्ताम्बुवाहपटलोऽस्थिचयं हुताशः। दन्ती सरन्ध्रमिव वेणुवनं समन्तादुद्वान्तमेदुररसं दलयांचकार॥ ४०॥

abhyullasatkaṭakaṭāravamuktagandhavyāptāmbuvāhapaṭalo'sthicayaṃ hutāśaḥ| dantī sarandhramiva veṇuvanaṃ samantādudvāntamedurarasaṃ dalayāṃcakāra || 40 ||

The fire roared and crackled, its rising smoke filling the sky with a heavy smell, and it split open the pile of bones on every side, so their thick marrow oozed out, like an elephant splitting apart a bamboo grove full of hollow canes.

आग गरजती और चटकती रही, उसका उठता धुआँ आकाश को गहरी गंध से भर गया, और उसने हड्डियों के ढेर को चारों ओर से चीर डाला, जिससे उनका गाढ़ा गूदा बह निकला, जैसे कोई हाथी खोखले बाँसों से भरे बाँस के झुरमुट को चीर देता है।

Chapter 45

5.45.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथापश्यदसौ गाधिः स्वाधिपीवरया धिया । अन्तर्जलस्थ एवान्तरात्मनात्मनि निर्मले ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | athāpaśyad asau gādhiḥ svādhipīvarayā dhiyā | antarjalastha evāntarātmanātmani nirmale || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then, while he was still standing in the water, Gadhi saw within his own pure inner self, his mind grown heavy.

श्री वसिष्ठ ने कहा: तब पानी में खड़े-खड़े ही गाधि ने अपने भारी मन से, अपने शुद्ध भीतरी मन में देखा।

5.45.2

भूतमण्डलपर्यन्तग्रामोपान्तनिवासिनाम् । श्वपचानां स्त्रिया गर्भे स्थितिमात्मानमाकुलम् ॥ २ ॥

bhūtamaṇḍalaparyantagrāmopāntanivāsinām | śvapacānāṃ striyā garbhe sthitimātmānamākulam || 2 ||

He saw his own troubled state, lying in the womb of a woman among the outcastes who lived at the edge of a village at the border of Bhutamandala.

उसने देखा कि वह खुद बहुत बेचैन हालत में एक चांडाल स्त्री के गर्भ में पड़ा है, उन चांडालों में से जो भूतमण्डल की सीमा वाले एक गाँव के किनारे रहते थे।

5.45.3

गर्भवासभराक्रान्तं पीडितं पेलवाङ्गकम् । श्वपचीहृदये सुप्तं स्वविष्ठायामिवाकुलम् ॥ ३ ॥

garbhavāsabharākrāntaṃ pīḍitaṃ pelavāṅgakam | śvapacīhṛdaye suptaṃ svaviṣṭhāyāmivākulam || 3 ||

He saw himself weighed down by the burden of living in the womb, in pain, his little body soft and frail, lying asleep against the outcaste woman's heart, as if troubled there in his own filth.

उसने देखा कि वह गर्भ में रहने के बोझ से दबा हुआ, दुखी और नाजुक शरीर वाला था, उस चांडाल स्त्री के हृदय से लगा सोया हुआ था, मानो अपनी ही गंदगी में बेचैन पड़ा हो।

5.45.4

शनैः पक्वतया काले प्रसूतं मेचकच्छविम् । श्वपच्या प्रावृषेवाब्दं श्याममावलितं मलैः ॥ ४ ॥

śanaiḥ pakvatayā kāle prasūtaṃ mecakacchavim | śvapacyā prāvṛṣevābdaṃ śyāmamāvalitaṃ malaiḥ || 4 ||

Slowly, when the time was ripe, he was born of the outcaste woman, dark-skinned, black like a rain cloud of the monsoon, smeared all over with dirt.

धीरे-धीरे, समय पूरा होने पर, वह उस चांडाल स्त्री से पैदा हुआ, सांवले रंग का, बरसात के काले बादल जैसा, और गंदगी से लथपथ।

5.45.5

संपन्नं श्वपचागारे शिशुं श्वपचवल्लभम् । इतश्चेतश्च गच्छन्तमुत्पीडमिव यामुनम् ॥ ५ ॥

saṃpannaṃ śvapacāgāre śiśuṃ śvapacavallabham | itaścetaśca gacchantamutpīḍamiva yāmunam || 5 ||

He grew into a baby in the outcaste's house, dear to the outcaste family, crawling here and there like a rising flood-wave of the river Yamuna.

वह उस चांडाल के घर में एक शिशु बनकर बड़ा हुआ, चांडाल परिवार को बहुत प्यारा, और यमुना नदी की उठती हुई लहर की तरह इधर-उधर रेंगता रहा।

5.45.6

द्वादशाब्ददशां यातं संस्थितं षोडशाब्दिकम् । पीवरांसमुदाराङ्गं पयोदमिव मेदुरम् ॥ ६ ॥

dvādaśābda daśāṃ yātaṃ saṃsthitaṃ ṣoḍaśābdikam| pīvarāṃsamudārāṅgaṃ payodamiva meduram || 6 ||

He passed through his twelfth year, and by sixteen he stood grown up, broad-shouldered, his limbs full, like a rain cloud heavy with water.

वह बारह वर्ष की उम्र पार कर सोलह वर्ष का हो गया, चौड़े कंधों वाला, भरे-पूरे शरीर वाला, पानी से भरे बादल की तरह।

5.45.7

सारमेयपरीवारं विहरन्तं वनाद्वनम् । निघ्नन्तं मृगलक्षाणि पौलिन्दीं स्थितिमागतम् ॥ ७ ॥

sārameyaparīvāraṃ viharantaṃ vanādvanam| nighnantaṃ mṛgalakṣāṇi paulindīṃ sthitimāgatam || 7 ||

Surrounded by a pack of dogs, he roamed from forest to forest, killing countless deer, taking up the life of the Pulindas, the hunting people of the forest.

कुत्तों के झुंड से घिरा हुआ, वह जंगल-जंगल घूमता था, अनगिनत हिरणों को मारता था, और जंगल की शिकारी जाति पुलिन्द की तरह जीवन बिताने लगा।

5.45.8

तमाललतयेवाथ श्रितं श्वपचकान्तया । स्तनस्तबकशालिन्या नवपल्लवहस्तया ॥ ८ ॥

tamālalatayevātha śritaṃ śvapacakāntayā| stanastabakaśālinyā navapallavahastayā || 8 ||

Then an outcaste woman clung to him as her beloved, like a dark tamala creeper, her breasts like clusters of flowers on it, her hands like fresh new shoots.

फिर एक चांडाल स्त्री उसे अपने प्रिय की तरह ऐसे लिपट गई जैसे कोई काली तमाल की लता, उसके स्तन मानो लता के फूलों के गुच्छे थे और उसके हाथ मानो नई कोंपलें।

5.45.9

श्यामया मलिनाकारदशनामलमालया । वनपल्लवया भूरिविलासवलिताङ्गया ॥ ९ ॥

śyāmayā malinākāradanśanāmalamālayā| vanapallavayā bhūrivilāsavalitāṅgayā || 9 ||

She was dark, and her look was soiled, but her teeth were an unblemished white row; she wore forest sprigs as ornaments, her limbs full of grace and movement.

वह सांवली थी, उसका रूप मैला-सा था, पर उसके दांत एक बेदाग सफेद पंक्ति जैसे थे; वह जंगली टहनियों के गहने पहने थी, और उसके अंग अदा से भरे हुए मुड़ते थे।

5.45.10

विलसन्तं वनान्तेषु तया सह नवेष्टया । श्यामलं श्यामया भृङ्गं भृंग्येव कुसुमर्द्धिषु ॥ १० ॥

vilasantaṃ vanānteṣu tayā saha naveṣṭayā| śyāmalaṃ śyāmayā bhṛṅgaṃ bhṛṅgyeva kusumarddhiṣu || 10 ||

He sported with her at the edge of the forest, she his new beloved, he dark, she dark, like a dark bee with his mate among blossoming flowers.

वह जंगल के किनारे उसके साथ, अपनी नई प्रेयसी के साथ, क्रीड़ा करता था, वह भी सांवला और वह भी सांवली, मानो खिले फूलों के बीच एक काला भौंरा अपनी भौंरी के साथ हो।

5.45.11

वनपर्णलतापत्रे वसन्तं व्यसनातुरम्। विन्ध्यकान्तारमाकारमभ्यागतमिवोद्भटम्॥ ११॥

vanaparṇalatāpatre vasantaṃ vyasanāturam | vindhyakāntāramākāramabhyāgatamivodbhaṭam || 11 ||

Living in a hut of forest leaves and vines, lost in his passion for the hunt, he looked as fierce as if the wild Vindhya forest itself had taken a body and come to stand there.

जंगल के पत्तों और लताओं की झोंपड़ी में रहते हुए, शिकार के जुनून में डूबा हुआ, वह इतना भयंकर दिखता था मानो विंध्य का जंगल खुद शरीर धारण करके वहां आ खड़ा हुआ हो।

5.45.12

विश्रान्तं वनकुञ्जेषु सुप्तं गिरिदरीषु च। निलीनं पत्रपुञ्जेषु गुल्मकेषु कृतालयम्॥ १२॥

viśrāntaṃ vanakuñjeṣu suptaṃ giridarīṣu ca | nilīnaṃ patrapuñjeṣu gulmakeṣu kṛtālayam || 12 ||

He rested in forest groves and slept in mountain caves, hid himself among heaps of leaves, and made his home in the thickets.

वह जंगल की कुंजों में विश्राम करता, पहाड़ की गुफाओं में सोता, पत्तों के ढेरों में छिप जाता, और झाड़ियों में अपना घर बना लेता।

5.45.13

किंकिरातावतंसाढ्यं यूथिकास्रग्विभूषितम्। केतकोत्तंससुभगं सहकारस्रगाकुलम्॥ १३॥

kiṅkirātāvataṃsāḍhyaṃ yūthikāstragvibhūṣitam | ketakottaṃsasubhagaṃ sahakārasragākulam || 13 ||

Rich with a crest of kimkirata blossoms, adorned with a garland of jasmine, lovely with a crown of ketaki flowers, wrapped in a garland of mango blossoms.

वह किंकिरात फूलों के मुकुट से सजा हुआ, चमेली की माला पहने, केतकी फूलों के मुकुट से सुंदर, और आम की मंजरी की माला से लिपटा हुआ था।

5.45.14

लुलितं पुष्पशय्यासु भ्रान्तमद्रितटीषु च। तज्ज्ञं काननकोशेषु बहुज्ञं मृगमारणे॥ १४॥

lulitaṃ puṣpaśayyāsu bhrāntamadritaṭīṣu ca | tajjñaṃ kānanakośeṣu bahujñaṃ mṛgamāraṇe || 14 ||

He rolled about on beds of flowers, wandered over mountain slopes, knew every hidden corner of the forest, and was skilled at hunting deer.

वह फूलों की सेज पर लोटता, पहाड़ी ढलानों पर भटकता, जंगल के हर छिपे कोने को जानता था, और हिरणों के शिकार में बहुत निपुण था।

5.45.15

प्रसूतमथ शैलेषु पुत्रान्निजकुलाङ्कुरान्। अत्यन्तविषमोदन्तान्खदिरः कण्टकानिव॥ १५॥

prasūtamatha śaileṣu putrānnijakulāṅkurān | atyantaviṣamodantānkhadiraḥ kaṇṭakāniva || 15 ||

Then, in the mountains, he fathered sons, shoots of his own line, harsh and hard in nature, like a khadira acacia tree putting out thorns.

फिर पहाड़ों में उसने पुत्र जने, जो उसी के कुल की कोंपलें थे, स्वभाव से बहुत कठोर, जैसे खैर का पेड़ कांटे उगाता है।

5.45.16

कलत्रवन्तं संपन्नं स्थितं प्रक्षीणयौवनम्। शनैर्जर्जरतां यातं वृष्टिहीनमिव स्थलम्॥ १६॥

kalatravaṃtaṃ saṃpannaṃ sthitaṃ prakṣīṇayauvanam | śanairjarjaratāṃ yātaṃ vṛṣṭihīnamiva sthalam || 16 ||

He became a man with a wife, and stood there as his youth faded; slowly he grew feeble and worn, like dry ground without rain.

वह पत्नी वाला गृहस्थ बन गया, और वहीं रहते हुए उसकी जवानी ढलने लगी; धीरे-धीरे वह जर्जर और कमज़ोर होता गया, जैसे बिना बारिश के सूखी ज़मीन।

5.45.17

ततो भूतग्रहग्रामजन्मदेशमुपेत्य तम्। संस्थितं मठिकां पर्णैः कृत्वा दूरे मुनीन्द्रवत्॥ १७॥

tato bhūtagrahagrāmajanmadēśamupētya taṃ | saṃsthitaṃ maṭhikāṃ parṇaiḥ kṛtvā dūrē munīndravat || 17 ||

Then he went to that remote village of his birth, and settled there; he built himself a hut of leaves, away from others, like a great sage.

फिर वह अपने जन्म की उसी दूर बस्ती में गया, और वहीं बस गया; उसने पत्तों की एक झोंपड़ी बनाई, सबसे दूर, किसी बड़े ऋषि की तरह।

5.45.18

जराजरठतां यातं स्वदेहसमपुत्रकम्। जीर्णप्रायरसश्वभ्रतमालतरुसंनिभम्॥ १८॥

jarājaratāṃ yātaṃ svadēhasamaputrakam | jīrṇaṃprāyarasaśvabhratamālatarusaṃnibham || 18 ||

He sank into the weakness of old age, his sons now grown up like other selves beside him, and he himself had become like an old tamala tree, its sap almost gone, hollow at the core.

वह बुढ़ापे में बहुत कमज़ोर और जर्जर हो गया, उसके बेटे अब उसी की तरह बड़े होकर दूसरे रूप में खड़े थे, और वह खुद एक पुराने तमाल के पेड़ जैसा हो गया था, जिसका रस लगभग सूख चुका हो और जो अंदर से खोखला हो।

5.45.19

प्रौढं श्वपचगार्हस्थ्यं कुर्वाणं बहुबान्धवम्। क्रूरनामार्थवचनं परां वृद्धिमुपागतम्॥ १९॥

prauḍhaṃ śvapacagārhasthyaṃ kurvāṇaṃ bahubāndhavam | krūranāmārthavacanaṃ parāṃ vṛddhimupāgatam || 19 ||

He lived out a full outcaste household life with many kinsmen; his name, its meaning, and his very words were all harsh, yet he rose to the height of standing among them.

उसने कई रिश्तेदारों के साथ पूरा चांडाल गृहस्थ जीवन जिया; उसका नाम, उसका अर्थ और उसकी बोली, सब कठोर थे, फिर भी वह उनमें सबसे ऊंचे स्थान तक पहुंच गया।

5.45.20

अथापश्यदसौ गाधिर्यावत्तस्य कलत्रिणः। जरठः श्वपचेभ्यश्च स्वात्मनो भ्रमहारिणः॥ २०॥

athāpaśyadasau gādhiryāvattasya kalatriṇaḥ | jaratāḥ śvapacebhyaśca svātmano bhramahāriṇaḥ || 20 ||

Then Gadhi saw again: that man, now old and living among the outcastes, had a wife who kept his own mind free of confusion.

फिर गाधि ने आगे देखा: वह व्यक्ति, जो अब बूढ़ा होकर चांडालों के बीच रहता था, उसकी एक पत्नी थी जो उसके मन को भ्रम से बचाए रखती थी।

5.45.21

तत्कलत्रमशेषेण नीतमावृत्य मृत्युना । आसारसलिलेनाशु वनपर्णगणो यथा ॥ २१ ॥

tatkalatramśeṣeṇa nītamāvṛtya mṛtyunā | āsārasalilenaśu vanaparṇagaṇo yathā || 21 ||

Death carried his wife off completely, and she was gone as swiftly as a downpour of rain sweeps away a heap of forest leaves.

मौत उसकी पत्नी को पूरी तरह अपने साथ ले गई, और वह उतनी ही जल्दी छिन गई जैसे तेज़ बारिश जंगल में गिरे पत्तों के ढेर को बहा ले जाती है।

5.45.22

प्रलपत्येक एवासावटव्यां दुःखकर्शितः । वियूथ इव सारङ्गो विगतास्थोऽश्रुलोचनः ॥ २२ ॥

pralapatyeka evāsāvaṭavyāṃ duḥkhakarśitaḥ | viyūtha iva sāraṅgo vigatāstho'śrulocanaḥ || 22 ||

Alone, he wailed in the forest, wasted away with grief, like a deer cut off from its herd, careless of everything, his eyes streaming with tears.

अकेला, वह जंगल में विलाप करता रहा, दुख से घुला जा रहा था, जैसे झुंड से बिछड़ा हुआ हिरण, हर चीज़ से बेपरवाह, उसकी आंखों से आंसू बहते रहे।

5.45.23

दिनानि कतिचित्तत्र नीत्वा शोकपरीतधीः । जहौ स्वदेशं संशुष्कपद्मं सर इवाण्डजः ॥ २३ ॥

dināni katicittatra nītvā śokaparītadhīḥ | jahau svadeśaṃ saṃśuṣkapadmaṃ sara ivaṇḍajaḥ || 23 ||

After passing a few days there, his mind overwhelmed by grief, he left his own land, as a bird leaves a lake whose lotuses have withered.

वहां कुछ दिन बिताने के बाद, दुख से भरे मन के साथ, उसने अपनी ज़मीन छोड़ दी, जैसे कोई पक्षी उस झील को छोड़ देता है जिसके कमल सूख चुके हों।

5.45.24

विजहार बहून्देशाननास्थश्चिन्तयान्वितः । प्रेर्यमाण इवान्येन वातनुन्न इवाम्बुदः ॥ २४ ॥

vijahāra bahūnddeśānanāsthaścintayānvitaḥ | preryamāṇa ivānyena vātanunna ivāmbudaḥ || 24 ||

He wandered through many lands, careless of everything, lost in anxious thought, as if driven on by some other will, like a cloud driven by the wind.

वह कई देशों में भटकता रहा, हर चीज़ से बेपरवाह, चिंता में डूबा हुआ, मानो कोई और शक्ति उसे हांक रही हो, जैसे हवा किसी बादल को हांक ले जाती है।

5.45.25

एकदा प्राप कीराणां मण्डले श्रीमतीं पुरीम् । खेचरो विहरन्शून्ये सद्विमानमिवाम्बरे ॥ २५ ॥

ekadā prāpa kīrāṇāṃ maṇḍale śrīmatīṃ purīm | khecaro viharanśūnye sadvimānamivāmbare || 25 ||

One day, as he wandered, he came to a splendid city in the land of the Kiras, the way a sky-wanderer roaming through empty space might come upon an actual heavenly chariot in the sky.

घूमते-घूमते वह एक दिन कीर देश की एक शानदार नगरी में जा पहुँचा, ठीक वैसे ही जैसे आकाश में घूमता कोई खेचर अचानक असली विमान देख ले।

5.45.26

नृत्यद्रत्नांशुकच्छन्नमार्गवृक्षलताङ्गनम्। आगुल्फाकीर्णकुसुमं चन्दनागुरुसुन्दरम्॥ २६॥

nṛtyadratnāṃśukacchannamārgavṛkṣalatāṅganam | āgulphākīrṇakusumaṃ candanāgurusundaram || 26 ||

Its roadside trees, creepers and bowers were hidden under fluttering silks bright as jewels, flowers lay strewn on the ground up to the ankle, and the whole city was made beautiful with the scent of sandalwood and aloe wood.

वहाँ रास्ते के पेड़, लताएँ और कुंज रत्नों-सी चमकती फहराती रेशमी चादरों से ढके थे, ज़मीन पर टख़नों तक फूल बिछे थे, और पूरा नगर चंदन और अगर की खुशबू से सुंदर बना हुआ था।

5.45.27

सामन्तैर्ललनाभिश्च नागरैश्च निरन्तरम्। स्वर्गमार्गोपमं राजमार्गमध्यमवाप सः॥ २७॥

sāmantairlalanābhiśca nāgaraiśca nirantaram | svargamārgopamaṃ rājamārgamadhyamavāpa saḥ || 27 ||

He came into the middle of the royal road, packed without a break with vassal chiefs, women and townsfolk, a road as fine as the path to heaven.

वह राजमार्ग के बीचोबीच पहुँचा, जो लगातार सामंतों, स्त्रियों और नगरवासियों से भरा हुआ था, ठीक स्वर्ग जाने वाले मार्ग जैसा सुंदर।

5.45.28

मणिरत्नकृतागारं तत्र मङ्गलहस्तिनम्। ददर्शामरशैलेन्द्रमिव संचारचञ्चलम्॥ २८॥

maṇiratnakṛtāgāraṃ tatra maṅgalahastinam | dadarśāmarśailendramiva saṃcāracañcalam || 28 ||

There he saw an auspicious elephant, housed in a mansion built of gems and jewels, swaying as it moved, like the great mountain of the gods on the move.

वहाँ उसने एक शुभ हाथी देखा, जो रत्नों और मणियों से बने भवन में रखा गया था, और चलते समय इस तरह डोलता था जैसे देवताओं का महान पर्वत खुद चल पड़ा हो।

5.45.29

मृते राजनि राजार्थं विहरन्तमितस्ततः। रत्नज्ञमिव रत्नार्थं चिन्तामणिदिदृक्षया॥ २९॥

mṛte rājani rājārthaṃ viharantamitastataḥ | ratnajñamiva ratnārthaṃ cintāmaṇididṛkṣayā || 29 ||

The king had died, and the elephant was wandering here and there in search of a king, like a connoisseur of gems roaming about in search of a jewel, eager to see the wish-granting stone.

राजा मर चुका था, और वह हाथी नए राजा की खोज में इधर-उधर घूम रहा था, ठीक वैसे ही जैसे कोई रत्न-पारखी किसी मणि की तलाश में घूमता है, चिंतामणि को देखने की चाह में।

5.45.30

तमसौ श्वपचो नागं कौतुकोद्धुरया दृशा। चिरमालोकयामास स्पन्दयुक्ताचलोपमम्॥ ३०॥

tamasau śvapaco nāgaṃ kautukoddhurayā dṛśā | ciramālokayāmāsa spandayuktācalopamam || 30 ||

The outcaste looked long at that elephant with eyes wide with wonder, the elephant like a mountain that had somehow begun to move.

उस चांडाल ने कौतूहल से भरी आँखों से उस हाथी को देर तक देखा, जो मानो कोई चलता-फिरता पर्वत हो।

5.45.31

आलोकयन्तमादाय तं करेण स वारणः । स्वकटेऽयोजयन्मेरुस्तटेऽर्कमिव सादरम् ॥ ३१ ॥

ālokayantamādāya taṃ kareṇa sa vāraṇaḥ | svakaṭe'yojayanmerustata'rkamiva sādaram || 31 ||

The elephant took him up with its trunk as he stood watching, and set him respectfully on its own back, the way Mount Meru might respectfully hold the sun on its slope.

हाथी ने उसे, जो यूँ ही देख रहा था, अपनी सूँड़ से उठाया और आदरपूर्वक अपनी पीठ पर बिठा लिया, ठीक वैसे ही जैसे मेरु पर्वत सूरज को अपनी ढलान पर आदर सहित थाम ले।

5.45.32

तस्मिन्कटगते नेदुर्जयदुन्दुभयोऽभितः । कल्पाम्बुद इवाकाशमधिरूढे महार्णवाः ॥ ३२ ॥

tasminkaṭagate nedurjayadundubhayo'bhitaḥ | kalpāmbuda ivākāśamadhirūḍhe mahārṇavāḥ || 32 ||

When he had climbed onto the elephant's back, victory drums sounded on every side, like the great oceans roaring when the cloud of the world's end rises into the sky.

जैसे ही वह हाथी की पीठ पर चढ़ा, चारों ओर विजय के नगाड़े बज उठे, ठीक वैसे ही जैसे प्रलय का बादल आकाश में उठते ही महासागर गरज उठते हैं।

5.45.33

पूरिताशो बभौ राजा जयतीति जनस्वनः । उदभूत्संप्रबुद्धानां विहगानामिवारवः ॥ ३३ ॥

pūritāśo babhau rājā jayatīti janasvanaḥ | udabhūtsaṃprabuddhānāṃ vihagānāmivāravaḥ || 33 ||

The king shone, filling every direction, while the crowd's shout of victory, victory rose up, like the noise of birds that have just woken.

राजा हर दिशा में छा जाने वाली आभा से चमक उठा, और लोगों की जय हो, जय हो की पुकार यूँ उठी जैसे अभी-अभी जागे पक्षियों का कलरव।

5.45.34

उदभूद्बन्दिवृन्दानां घनकोलाहलस्ततः । वेलाविलुलिताम्बूनामम्बुधीनामिव ध्वनिः ॥ ३४ ॥

udabhūdbandivṛndānāṃ ghanakolāhalastataḥ | velāvilulitāmbūnāmambudhīnāmiva dhvaniḥ || 34 ||

Then came a great roar from the crowds of court bards, like the sound of oceans whose waters are churned along the shoreline.

फिर दरबारी भाटों की भीड़ से घना कोलाहल उठा, ठीक वैसे ही जैसे किनारे से टकराते हुए समुद्र की लहरों की गड़गड़ाहट।

5.45.35

तं तत्रावरयामासुर्मण्डनार्थं वराङ्गनाः । क्षीरोदगतविभ्रान्ता लहर्य इव मन्दरम् ॥ ३५ ॥

taṃ tatrāvarayāmāsurmaṇḍanārthaṃ varāṅganāḥ | kṣīrodagatavibhrāntā laharya iva mandaram || 35 ||

There, beautiful women crowded around him to adorn him, like waves rising from the Ocean of Milk swirling around Mount Mandara.

वहाँ सुंदर स्त्रियाँ उसे सजाने के लिए उसके चारों ओर घिर आईं, ठीक वैसे ही जैसे क्षीरसागर से उठी लहरें मंदराचल पर्वत के चारों ओर लहराती हैं।

5.45.36

मानिन्यस्तं गुणप्रोतैर्नानारत्नैरपूरयन्। नानाप्रभाप्रभातार्का वेला इव तटाचलम्॥ ३६॥

māninyastam guṇaprotaisnānāratnairapūrayan| nānāprabhāprabhātārkā velā iva taṭācalam || 36 ||

Proud, beautiful women covered him with strings strung with many kinds of gems, the way the shore, bright with the many-colored glow of the rising sun, covers a mountain by the sea.

घमंडी सुंदरियों ने उसे तरह-तरह के रत्नों से गुँथे हार पहनाकर ढँक दिया, ठीक वैसे ही जैसे उगते सूरज की रंग-बिरंगी चमक से भरा किनारा समुद्र के पास खड़े पर्वत को ढँक लेता है।

5.45.38

विचित्रवर्णसौगन्ध्यैः पुष्पैरावलयन्स्त्रियः। वनं मधुश्रिय इव तं लोलकरपल्लवाः॥ ३८॥

vicitravarṇasaugandhyaiḥ puṣpairāvalayanstriyaḥ| vanam madhuśriya iva tam lolakarapallavāḥ || 38 ||

Women, their hands as restless as young shoots, wound flowers of many colors and scents around him, the way the beauty of spring wreathes a forest.

स्त्रियों ने, जिनके हाथ कोमल नई कोंपलों जैसे चंचल थे, तरह-तरह के रंग और खुशबू वाले फूल उसके चारों ओर लपेट दिए, ठीक वैसे ही जैसे वसंत की शोभा किसी जंगल को लपेट लेती है।

5.45.39

नानावर्णरसामोदैस्तास्तमाशु विलेपनैः। अलेपयन्प्रभाजालैर्नगोऽभ्रमिव धातुभिः॥ ३९॥

nānāvarṇarasāmodaistāstamāśu vilepanaiḥ| alepayanprabhājālairnago'bhraṃiva dhātubhiḥ || 39 ||

They quickly anointed him with pastes of many colors, tastes and scents, the way a mountain colors the clouds above it with the glow of its many minerals.

उन्होंने जल्दी-जल्दी उसे तरह-तरह के रंग, स्वाद और खुशबू वाले उबटन से लीप दिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई पर्वत अपनी रंग-बिरंगी धातुओं की चमक से ऊपर के बादलों को रंग देता है।

5.45.40

रत्नकाञ्चनकान्तोऽसावाददे चित्तमाततम्। संध्याभ्रतारेन्दुनदीव्याप्तं मेरुरिवाम्बरम्॥ ४०॥

ratnakāñcanakānto'sāvādade cittamātatam| sandhyābhratārendunadīvyāptaṃ merurivāmbaram || 40 ||

Bright with jewels and gold, he captured every heart completely, the way Mount Meru, filled with twilight clouds, stars, the moon and the heavenly river, captures the whole sky.

रत्नों और सोने से चमकता हुआ वह सबका मन पूरी तरह मोह लेता था, ठीक वैसे ही जैसे संध्या के बादलों, तारों, चाँद और आकाश-गंगा से भरा मेरु पर्वत पूरे आकाश को मोह लेता है।

5.45.41

भूषितः सविलासाभिर्बालवल्लीभिरावृतः। रत्नपुष्पांशुकाकीर्णः कल्पवृक्ष इवाबभौ॥ ४१॥

bhūṣitaḥ savilāsābhirbālavallībhirāvṛtaḥ| ratnapuṣpāṃśukākīrṇaḥ kalpavṛkṣa ivābabhau || 41 ||

Dressed and adorned, surrounded by playful young women graceful as vines, covered with jeweled flowers and silks, he shone like the wish-granting tree of paradise.

सज-धज कर, बेलों-सी सुकुमार चंचल युवतियों से घिरा और रत्नजड़ित फूलों तथा रेशमी वस्त्रों से लदा हुआ, वह कल्पवृक्ष जैसा दमक रहा था।

5.45.42

तादृशं तमुपाजग्मुः परिवारसमन्विताः । सर्वाः प्रकृतयः फुल्लं मार्गद्रुममिवाध्वगाः ॥ ४२ ॥

tādṛśaṃ tamupājagmuḥ parivārasamanvitāḥ | sarvāḥ prakṛtayaḥ phullaṃ mārgadrumamivādhvagāḥ || 42 ||

All his subjects, each with their own retinue, came to him just as he was, the way travelers come to a flowering tree beside the road.

उसके सारे प्रजाजन अपने-अपने लाव-लश्कर सहित उसी रूप में उसके पास आए, ठीक वैसे ही जैसे राही रास्ते के फूले हुए पेड़ के पास आ जुटते हैं।

5.45.43

ता एनमासने सैंहे तत्राभिषिषिचुः क्रमात् । तस्मिन्नेव गजे शक्रमैरावत इवामराः ॥ ४३ ॥

tā enamāsane saiṃhe tatrābhiṣiṣicuḥ kramāt | tasminneva gaje śakramairāvata ivāmarāḥ || 43 ||

They then, in due order, anointed him on a lion throne set upon that same elephant, just as the gods anoint Indra upon Airavata.

फिर उन्होंने विधिपूर्वक उसी हाथी पर रखे सिंहासन पर उसका राजतिलक किया, ठीक वैसे ही जैसे देवता ऐरावत हाथी पर इंद्र का अभिषेक करते हैं।

5.45.44

एवं स श्वपचो राज्यं प्राप कीरपुरान्तरे । आरण्यं हरिणं पुष्टमप्राणमिव वायसः ॥ ४४ ॥

evaṃ sa śvapaco rājyaṃ prāpa kīrapurāntare | āraṇyaṃ hariṇaṃ puṣṭamaprāṇamiva vāyasaḥ || 44 ||

In this way the outcaste won the kingdom in the city of Kira, the way a crow might come upon a fat forest deer lying dead.

इस तरह उस चांडाल को कीर नगरी में राजपाट मिल गया, ठीक वैसे ही जैसे किसी कौवे को जंगल में पड़ा हुआ एक मोटा-ताज़ा मरा हिरण मिल जाए।

5.45.45

कीरीकरतलाम्भोजप्रमृष्टचरणाम्बुजः । सर्वाङ्गं कुङ्कुमालेपैः संध्याम्बुधरशोभनः ॥ ४५ ॥

kīrīkaratalāmbhojapramṛṣṭacaraṇāmbujaḥ | sarvāṅge kuṅkumālepaiḥ saṃdhyāmbudharashobhanaḥ || 45 ||

His lotus feet were rubbed smooth by the lotus hands of the women of Kira, and his whole body, smeared with saffron paste, shone like an evening raincloud.

उसके कमल-से पैर कीर देश की स्त्रियों के कमल-से हाथों से सहलाए जाते थे, और उसका पूरा शरीर केसर के लेप से लिपटा हुआ संध्या के बादल जैसा चमकता था।

5.45.46

जज्वाल कीरनगरे नागरीगणवानसौ । सिंहीगणयुतः सिंहो यथा कुसुमिते वने ॥ ४६ ॥

jajvāla kīranagare nāgarīgaṇavānasau | siṃhīgaṇayutaḥ siṃho yathā kusumite vane || 46 ||

Surrounded by crowds of the city's women, he blazed in the city of Kira, like a lion with his pride of lionesses in a forest full of flowers.

नगर की स्त्रियों की भीड़ से घिरा हुआ, वह कीर नगरी में यूँ दमक रहा था जैसे फूलों से लदे जंगल में सिंहनियों के झुंड के साथ कोई सिंह।

5.45.47

हरिहतकरिकुम्भोन्मुक्तमुक्ताकलापप्रविरचितशरीरः शान्तचिन्ताविषादः। अरमत सह सद्भिस्तत्र भोगैः सरस्यां रविकरमदतप्तो वारिपूरैरिवेभः ॥ ४७ ॥

harīhatakarikumbhōnmūktamuktākalāpapraviracitaśarīraḥ śāntacintāviṣādaḥ| aramata saha sadbhistatra bhogaiḥ sarasyāṃ ravikaramadataptō vāripūrairivēbhaḥ || 47 ||

His body was decked with strings of pearls that had fallen from the foreheads of elephants killed by lions, and his grief and anxiety were now stilled. He took his pleasure there at the lake together with good people, the way an elephant scorched by the sun's heat delights in floods of water.

उसका शरीर उन हाथियों के माथे से गिरे मोतियों की लड़ियों से सजा था जिन्हें सिंहों ने मार डाला था, और अब उसका शोक और बेचैनी शांत हो चुकी थी। वह वहाँ तालाब पर अच्छे लोगों के साथ सुख भोगता था, ठीक वैसे ही जैसे धूप से तपा हुआ हाथी पानी की बाढ़ में सुख पाता है।

5.45.48

परिविसृतनृपौजाः सर्वदिक्संस्थिताज्ञः कतिपयदिवसेहासिद्धदेशव्यवस्थः। प्रकृतिभिरलमूढाशेषराजन्यभारः स गवल इति नाम्ना तत्र राजा बभूव ॥ ४८ ॥

parivisṛtanṛpaujāḥ sarvadiksaṃsthitājñaḥ katipayadivasehāsiddhadeśavyavasthaḥ| prakṛtibhiralamūḍhāśeṣarājanyabhāraḥ sa gavala iti nāmnā tatra rājā babhūva || 48 ||

His royal power spread on every side, his command was set up in every direction, and within a few days he had settled the order of the whole land. With his subjects fully bearing the entire weight of royal rule, he became king there under the name Gavala.

उसका राजतेज चारों ओर फैल गया, उसकी आज्ञा हर दिशा में स्थापित हो गई, और कुछ ही दिनों में उसने पूरे राज्य का प्रबंध जमा दिया। प्रजा ने राजकाज का पूरा भार खुद उठा लिया, और वह वहाँ गवल नाम से राजा बन गया।

Chapter 46

5.46.1

श्रीवसिष्ठ उवाचविलासिनीभिर्वलितो मन्त्रिमण्डलपूजितःवन्दितः सर्वसामन्तैश्चत्रचामरलालितः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvācavilāsinībhirvalito mantrimaṇḍalapūjitaḥvanditaḥ sarvasāmantaiścchatracāmaralālitaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: He was surrounded by lovely women, honored by the whole circle of ministers, saluted by every neighboring king, and cherished with the royal umbrella and the fan.

श्री वसिष्ठ ने कहा: वह सुंदर स्त्रियों से घिरा रहता था, मंत्रियों का पूरा समूह उसका सम्मान करता था, आसपास के सब राजा उसे प्रणाम करते थे, और छत्र और चंवर से उसकी सेवा होती थी।

5.46.2

सिद्धानुशासनः कान्तो ज्ञातराज्यगुणक्रमःवीतशोकभयायासप्रज्ञः प्राप्तमहादशः ॥ २ ॥

siddhānuśāsanaḥ kānto jñātarājyaguṇakramaḥvītaśokabhayāyāsaprajñaḥ prāptamahādaśaḥ || 2 ||

His orders were obeyed at once, he was handsome, he knew every rule of good kingship, his mind was free of sorrow, fear and tiredness, and he had reached a truly great state.

उसकी आज्ञा तुरंत मानी जाती थी, वह सुंदर था, राज-काज के सारे नियम जानता था, उसका मन दुख, डर और थकान से मुक्त था, और वह बहुत ऊँची अवस्था तक पहुँच चुका था।

5.46.3

विस्मृतात्मस्वभावोऽभूदनिशं स्तवमङ्गलैःआनन्दपूर्णया वृत्त्या भृशं क्षीव इवासवैः ॥ ३ ॥

vismṛtātmasvabhāvo'bhūdaniśaṃ stavamaṅgalaiḥānandapūrṇayā vṛttyā bhṛśaṃ kṣīva ivāsavaiḥ || 3 ||

Amid constant praise and blessings he forgot his own true nature; his heart was so full of joy that he became like a man made completely drunk with wine.

लगातार स्तुति और आशीर्वादों के बीच वह अपना असली रूप भूल गया; उसका मन खुशी से इतना भर गया कि वह शराब से पूरी तरह मस्त हुए आदमी जैसा हो गया।

5.46.4

कीरेषु श्वपचो राज्यं वर्षाण्यष्टौ चकार हार्यवृत्तमशेषेण तावत्कालं बभार ह ॥ ४ ॥

kīreṣu śvapaco rājyaṃ varṣāṇyaṣṭau cakāra haāryavṛttamaśeṣeṇa tāvatkālaṃ babhāra ha || 4 ||

This outcaste ruled as king over the people of Kira for eight years, and through all that time he carried on with conduct that was entirely noble.

यह अछूत आठ साल तक किरा देश के लोगों पर राजा बनकर राज करता रहा, और इतने समय तक उसका व्यवहार पूरी तरह भले-कुलीन आदमी जैसा रहा।

5.46.5

यदृच्छयैकदाथासावतिष्ठत्त्यक्तभूषणःअतमस्तारकेन्द्वर्कतेजोऽम्भोदमिवाम्बरम् ॥ ५ ॥

yadṛcchayaikadāthāsāvatiṣṭhattyaktabhūṣaṇaḥatamastārakendvarkatejo'mbhodamivāmbaram || 5 ||

Then one day, on his own, he stood there with his ornaments taken off, like a sky bright with stars, moon and sun that a cloud has now covered.

फिर एक दिन अपनी मर्ज़ी से उसने अपने गहने उतार दिए और वहाँ खड़ा हो गया, ठीक वैसे जैसे तारों, चाँद और सूरज की चमक वाला आकाश किसी बादल से ढक जाए।

5.46.6

बह्वमन्यत नो हारकेयूरवलयान्यसौ । प्रभुताबृंहितं चेतो नाहार्यमभिनन्दति ॥ ६ ॥

bahvamanyata no hārakeyūravalayānyasau | prabhutābṛṃhitaṃ ceto nāhāryamabhinandati || 6 ||

He no longer thought much of his necklaces, armlets and bracelets; a mind swollen with power takes no delight in things that are merely put on.

अब उसे अपने हार, बाजूबंद और कंगन ज़्यादा अच्छे नहीं लगते थे; सत्ता के नशे से भरा मन बाहर से पहने गए गहनों में खुशी नहीं पाता।

5.46.7

एक एवाजिरं बाह्यं तादृग्वेषः स निर्ययौ । मुख्याङ्गं णान्नभोभागादस्तं गच्छन्निवांशुमान् ॥ ७ ॥

eka evājiraṃ bāhyaṃ tādṛgveṣaḥ sa niryayau | mukhyāṅgaṃ ṇānnabhobhāgādastaṃ gacchannivāṃśumān || 7 ||

He went out alone to the outer courtyard, dressed just as he was, like the sun leaving the sky with its chief brightness gone.

वह अकेला उसी हालत में बाहर के आँगन में चला गया, ठीक वैसे जैसे सूरज अपनी मुख्य चमक खोकर आकाश से ढल जाए।

5.46.8

तत्रापश्यद्धनं श्यामं पीनं श्वपचपेटकम् । गायन्मृदु वसन्तोत्थं कोकिलानामिव व्रजम् ॥ ८ ॥

tatrapaśyaddhanaṃ śyāmaṃ pīnaṃ śvapacapeṭakam | gāyanmṛdu vasantotthaṃ kokilānāmiva vrajam || 8 ||

There he saw a great, dark, sturdy crowd of outcastes, singing softly a song of spring, like a flock of cuckoos.

वहाँ उसने अछूतों की एक बड़ी, सांवली, गठीली भीड़ देखी, जो कोयलों के झुंड की तरह धीरे-धीरे वसंत का गीत गा रही थी।

5.46.9

धुनानं वल्लकीतन्त्रीं करपल्लवलीलया । मृदुरेफं रणद्रेफामलिश्रेणिमिव द्रुमम् ॥ ९ ॥

dhuṇānaṃ vallakītantrīṃ karapallavalīlayā | mṛdurephaṃ raṇadrephāmalīśreṇimiva drumam || 9 ||

They were plucking the strings of a lute playfully with their soft hands, making a gentle, humming sound, like a tree covered with a line of bees.

वे अपने कोमल हाथों से खेल-खेल में एक तंबूरे के तार छेड़ रहे थे, और धीमी, गुनगुनाती आवाज़ निकाल रहे थे, ठीक वैसे जैसे किसी पेड़ पर मधुमक्खियों की कतार गूँजती है।

5.46.10

एकस्तस्मात्समुत्तस्थौ जरावान्रक्तलोचनः । काचश्रृङ्गहिमापूर्णमिव श्वपचनायकः ॥ १० ॥

ekastasmātsamuttasthau jarāvānraktalocanaḥ | kācaśṛṅgahimāpūrṇamiva śvapacanāyakaḥ || 10 ||

One of them rose up from the group, old and red-eyed, the leader of the outcastes, like a glass peak filled with frost.

उनमें से एक आदमी उठकर खड़ा हुआ, बूढ़ा और लाल आँखों वाला, अछूतों का मुखिया, जैसे बर्फ से भरी काँच की कोई चोटी।

5.46.11

भो कटंजेति सहसा वदन्कीरमहीपतिम् । इह राजा भवन्तं वा कच्चिद्गेयक्रियाविदम् ॥ ११ ॥

bhō kaṭaṃjēti sahasā vadankīramahīpatim | iha rājā bhavantaṃ vā kaccidgēyakriyāvidam || 11 ||

Suddenly he said to the King of Kira, Oh Katanja! I hope the king here honors you, who perhaps still know the art of song,

अचानक उसने किरा के राजा से कहा, अरे कटंज! उम्मीद है यहाँ का राजा तुम्हारा सम्मान करता होगा, तुम जो शायद अब भी गाने की कला जानते हो,

5.46.12

रक्तकण्ठं मानयति रागवानिव कोकिलम्। आपूरयति वा कच्चिद्गृहवस्त्रासनार्पणैः ॥ १२ ॥

raktakaṇṭhaṃ mānayati rāgavāniva kōkilam | āpūrayati vā kaccidgṛhavastrāsanārpaṇaiḥ || 12 ||

the way a man in love with music honors a red-throated cuckoo. Or does he give you your fill of a house, clothes and a seat?

जैसे संगीत का दीवाना आदमी लाल गले वाली कोयल का सम्मान करता है। या फिर वह तुम्हें घर, कपड़े और बैठने की जगह से भरपूर करता है?

5.46.13

मधू रसालविटपं फलपुष्पभरैरिव। दर्शनेन तवाद्याहं परां निर्वृतिमागतः ॥ १३ ॥

madhū rasālaviṭapaṃ phalapuṣpabharairiva | darśanena tavādyāhaṃ parāṃ nirvṛtimāgataḥ || 13 ||

As spring loads a mango branch with fruit and flowers, so today, seeing you, I have found the deepest joy.

जैसे वसंत आम की डाल को फलों और फूलों से लाद देता है, वैसे ही आज तुम्हें देखकर मुझे सबसे बड़ी खुशी मिली है।

5.46.14

पद्मं सूर्योदयेनेव चन्द्रोदय इवौषधी। आनन्दानामशेषाणां लाभानां महतामपि ॥ १४ ॥

padmaṃ sūryōdayēnēva candrōdaya ivauṣadhī | ānandānāmaśeṣāṇāṃ lābhānāṃ mahatāmapi || 14 ||

As a lotus opens at sunrise, as a plant flourishes at moonrise, so it is with every joy, and even with the greatest gains, all without exception,

जैसे कमल सूरज उगते ही खिल जाता है, जैसे पौधा चाँद निकलते ही फल-फूल जाता है, वैसे ही हर खुशी की बात है, यहाँ तक कि सबसे बड़ी पाई हुई चीज़ों की भी, बिना किसी कमी के,

5.46.15

विश्रामाणामनन्तानां सीमान्तो बन्धुदर्शनम्। श्वपचे प्रवदत्येवं राजा यावत्तया तया। चकार तत्कालजया चेष्टयैवावधीरणम्॥ १५॥

viśrāmāṇāmanantānāṃ sīmāntō bandhudarśanam | śvapacē pravadatyēvaṃ rājā yāvattayā tayā | cakāra tatkālajayā cēṣṭayēvāvadhīraṇam || 15 ||

the sight of a kinsman is the final point of endless rest. While he kept saying this and that, the king simply showed indifference, with a gesture that only got him through the moment.

किसी अपने को देखना ही अनंत विश्राम की आख़िरी सीमा है। वह यह सब कहता रहा, और राजा ने बस बेपरवाही दिखाई, एक ऐसी हरकत से जो सिर्फ उस पल को टाल गई।

5.46.16

तावद्वातायनगताः कान्ताः प्रकृतयस्तथा श्वपचोऽयमिति ज्ञात्वा म्लानतामलमाययुः ॥ १६ ॥

tāvadvātāyanagatāḥ kāntāḥ prakṛtayastathā śvapaco'yamiti jñātvā mlānatāmalamāyayuḥ || 16 ||

Meanwhile the lovely women at the windows, and the courtiers as well, understood this is an outcaste, and became completely gloomy.

इतने में खिड़कियों पर खड़ी सुंदर स्त्रियाँ, और साथ ही दरबारी लोग, यह समझ गए कि यह तो एक अछूत है, और पूरी तरह उदास हो गए।

5.46.17

पद्मास्तुषारप्रावृष्ट्या ग्रामाः सावग्रहा इव दाववन्त इवाद्रीन्द्रा नागरा न विरेजिरे ॥ १७ ॥

padmāstuṣāraprāvṛṣṭyā grāmāḥ sāvagrahā iva dāvavanta ivādrīndrā nāgarā na virejire || 17 ||

The people of the town lost their glow, like lotuses under a fall of frost, like villages struck as if by drought, like great mountains scarred by wildfire.

शहर के लोगों की रौनक जाती रही, जैसे कमल पाले की मार से मुरझा जाएँ, जैसे गाँव सूखे से मारे हुए लगें, जैसे बड़े पहाड़ जंगल की आग से झुलसे हों।

5.46.18

नृपोऽवधीरयामास तां तां श्वपचसंकथाम् वृक्षाग्रगतमार्जारफेत्कारं मृगराडिव ॥ १८ ॥

nṛpo'vadhīrayāmāsa tāṃ tāṃ śvapacasaṃkathām vṛkṣāgragatamārjāraphētkāraṃ mṛgarāḍiva || 18 ||

The king ignored his endless talk, like a lion ignoring the screech of a cat sitting at the top of a tree.

राजा ने उसकी लगातार बातों की परवाह नहीं की, ठीक वैसे जैसे शेर पेड़ की चोटी पर बैठी बिल्ली की चीख़ की परवाह नहीं करता।

5.46.19

सत्वरं प्रविवेशान्तःपुरमाम्लानमानवम् राजहंस इवावर्षे सीदत्सरसिजं सरः ॥ १९ ॥

satvaraṃ praviveśāntaḥpuramāmlānamānavam rājahaṃsa ivāvarṣe sīdatsarasijaṃ saraḥ || 19 ||

He hurried into the inner rooms of the palace, now full of completely gloomy people, like a royal swan coming to a pond whose lotuses droop in a drought.

वह जल्दी से महल के रनिवास में घुस गया, जो अब पूरी तरह उदास लोगों से भरा था, ठीक वैसे जैसे कोई राजहंस उस तालाब पर पहुँचे जिसके कमल सूखे में मुरझा गए हों।

5.46.20

सर्वावयवविश्रान्तां म्लाननामयमाययौ जानुस्तम्भान्तरमहारन्ध्राग्निरिव दुर्द्रुमः ॥ २० ॥

sarvāvayavaviśrāntāṃ mlānanāmayamāyayau jānustambhāntaramahārandhrāgniriva durdrumaḥ || 20 ||

He came upon everything there gone silent, full of gloom, while he himself was like a rotten tree with a great fire smoldering in the hollow of its trunk.

वहाँ सब कुछ चुप और उदासी से भरा हुआ था, और वह वहीं जा पहुँचा, जबकि वह खुद एक सड़े हुए पेड़ जैसा था, जिसके तने की खोखल में एक बड़ी आग सुलग रही हो।

5.46.21

तत्रापश्यदसौ सर्वं विषण्णवदनं जनम्। जालं कुङ्कुमपुष्पाणां भुक्तमूलमिवाखुना ॥ २१ ॥

tatrāpaśyadasau sarvaṃ viṣaṇṇavadanaṃ janam | jālaṃ kuṅkumapuṣpāṇāṃ bhukta-mūlamivākhunā || 21 ||

There he saw everyone with gloomy faces, like a bed of saffron flowers whose roots a mouse has eaten away.

वहाँ उसने सबके चेहरे उदास देखे, ठीक वैसे जैसे केसर के फूलों की क्यारी जिसकी जड़ें किसी चूहे ने कुतर दी हों।

5.46.22

मन्त्रिणो नागरा नार्यस्ततस्ते तं महीपतिम्। नास्प्राक्षुरपि तिष्ठन्तं गृह एव शवं यथा ॥ २२ ॥

mantrino nāgarā nāryastatataste taṃ mahīpatim | nāsprākṣurapi tiṣṭhantaṃ gṛha eva śavaṃ yathā || 22 ||

Then the ministers, the townsfolk and the women did not even touch that king, though he stood right there, as if he were a corpse in the house.

फिर मंत्रियों, शहर के लोगों और स्त्रियों ने उस राजा को छुआ तक नहीं, हालाँकि वह वहीं खड़ा था, जैसे घर में पड़ी कोई लाश हो।

5.46.23

भृत्याश्चाकृतसत्कारं दूर एनमथात्यजन्। दुःखयुक्ता घनस्नेहा अपि बालाः शवं यथा ॥ २३ ॥

bhṛtyāścākṛtasatkāraṃ dūra enamathātyajan | duḥkhayuktā ghanasnehaḥ api bālāḥ śavaṃ yathā || 23 ||

And the servants, without paying him any honor, then left him at a distance, just as children, though sad and full of deep love, leave a corpse.

और नौकरों ने उसका कोई आदर किए बिना उसे दूर छोड़ दिया, बिलकुल वैसे जैसे बच्चे, दुखी और गहरे प्यार से भरे होने पर भी, किसी लाश को छोड़ देते हैं।

5.46.24

अनानन्दमुखं श्यामं शरीरं श्रीविवर्जितम्। दग्धं स्थलमिवैनं ते बह्वमन्यन्त नाकुलाः ॥ २४ ॥

anānandamukhaṃ śyāmaṃ śarīraṃ śrīvivarjitam | dagdhaṃ sthalamivaainaṃ te bahvamanyanta nākulāḥ || 24 ||

His face had no joy in it. His body was dark and stripped of all beauty. And the people, without any distress, thought of him as nothing more than a patch of burnt ground.

उसके चेहरे पर कोई खुशी नहीं थी। उसका शरीर काला था और उसकी सारी शोभा जा चुकी थी। और लोग बिना किसी दुख के उसे बस जली हुई ज़मीन के टुकड़े जैसा समझते थे।

5.46.25

धूमायमानदेहस्य परितापदशावती। नाढौकतास्य जनता पार्श्वमग्निर्गिरेरिव ॥ २५ ॥

dhūmāyamānadehasya paritāpadaśāvatī | nāḍhaukatāsya janatā pārśvamagnirgireriva || 25 ||

His body was smoking, but the people, though they themselves were in anguish, would not go near him, just as no one goes near a fire burning on a mountain.

उसका शरीर धुआँ छोड़ रहा था, पर लोग, जो खुद भी व्याकुल थे, फिर भी उसके पास नहीं जाते थे, ठीक वैसे जैसे कोई पहाड़ पर जलती आग के पास नहीं जाता।

5.46.26

मन्दोत्साहाः समुद्भूताः सभ्यसंघातवर्जिताः न तदाज्ञाः पदं प्रापुर्भस्मनीवाम्बुविप्रुषः ॥ २६ ॥

mandotsāhāḥ samudbhūtāḥ sabhyasaṃghātavarjitāḥ na tadājñāḥ padaṃ prāpurbhasmanīvāmbuvipruṣaḥ || 26 ||

His commands lost all their force. Once given, they no longer reached the assembly of the nobles, and they came to nothing, like drops of water falling on ashes.

उसके आदेशों में अब कोई दम नहीं रहा। वे जब भी दिए जाते, सभा के प्रतिष्ठित लोगों तक पहुँचते ही नहीं थे, और राख पर गिरी पानी की बूँदों की तरह बेअसर होकर रह जाते थे।

5.46.27

क्रूरकर्मकराकारात्संगताशुभदायिनः तस्माद्विशेषेण जना राक्षसादिव दुद्रुवुः ॥ २७ ॥

krūrakarmakarākārātsaṃgatāśubhadāyinaḥ tasmādviśeṣeṇa janā rākṣasādiva dudruvuḥ || 27 ||

He looked like someone who does cruel deeds, and misfortune came to anyone who went near him. So people fled from him just as they would flee from a demon.

वह देखने में ही ऐसा लगता था मानो क्रूर काम करने वाला हो, और जो कोई उसके पास जाता उसका बुरा होता। इसलिए लोग उससे ऐसे भागते थे जैसे किसी राक्षस से भागते हैं।

5.46.28

एक एव बभूवासौ जनमध्यगतोऽपि सन् अर्थादिगुणनिर्मुक्तः परदेश इवाध्वगः ॥ २८ ॥

eka eva babhūvāsau janamadhyagato'pi san arthādiguṇanirmuktaḥ paradeśa ivādhvagaḥ || 28 ||

Even in the middle of a crowd, he was completely alone. Stripped of wealth and everything else like it, he was like a traveler in a foreign land.

भीड़ के बीच रहते हुए भी वह पूरी तरह अकेला था। धन और उस जैसी बाकी सब चीज़ों से खाली, वह किसी परदेश में भटकते यात्री जैसा था।

5.46.29

भृशमालपतेऽप्यस्मे नालापं नागरा ददुः मुक्ताजालयुतायापि कीचकायाध्वगा इव ॥ २९ ॥

bhṛśamālapate'pyasme nālāpaṃ nāgarā daduḥ muktajālayutāyāpi kīcakāyādhvagā iva || 29 ||

He spoke to them again and again, but the people of the city gave him no answer, just as travelers give no answer to a hollow bamboo strung with a net of pearls.

वह बार-बार उनसे बोलने की कोशिश करता, पर नगरवासी उसे कोई जवाब नहीं देते थे, ठीक वैसे ही जैसे यात्री मोतियों के जाल से सजे खोखले बांस को कोई जवाब नहीं देते।

5.46.30

अथ सर्वे वयं दीर्घकालं श्वपचदूषिताः प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यामः प्रविशामो हुताशनम् ॥ ३० ॥

atha sarve vayaṃ dīrghakālaṃ śvapacadūṣitāḥ prāyaścittairna śuddhyāmaḥ praviśāmo hutāśanam || 30 ||

Now, all of us have been fouled for so long by this outcaste that no penance can make us clean again. Let us enter the fire.

अब हम सब इस अछूत के संसर्ग से इतने लंबे समय से गंदे हो चुके हैं कि कोई प्रायश्चित हमें फिर से शुद्ध नहीं कर सकता। चलो हम आग में प्रवेश करें।

5.46.31

इति निर्णीय नगरे नागरा मन्त्रिणस्तथा । अभितो ज्वालयामासुश्चिताः शुष्केन्धनैधिताः ॥ ३१ ॥

iti nirṇīya nagare nāgarā mantriṇastathā | abhito jvālayāmāsuścitāḥ śuṣkendhanaidhitāḥ || 31 ||

Having decided this, the people of the city, and the ministers with them, lit fires all around, piled high with dry wood.

यह तय करके नगर के लोगों ने, और साथ ही मंत्रियों ने भी, चारों ओर सूखी लकड़ी से भरी चिताएँ जला दीं।

5.46.32

ज्वलितास्वभितस्तासु तारकास्विव खे तदा । बभूव नगरं सर्वमाक्रन्दपरमानवम् ॥ ३२ ॥

jvalitāsvabhitastāsu tārakāsviva khe tadā | babhūva nagaraṃ sarvamākrandaparamānavam || 32 ||

When those fires were blazing all around, like stars in the sky, the whole city filled with the loudest cries of wailing.

जब वे चिताएँ चारों ओर आकाश के तारों की तरह जल उठीं, तब पूरा नगर सबसे ऊँची चीख-पुकार से भर गया।

5.46.33

करुणारावमुखरैः कलत्रैर्बाष्पवर्षिभिः । अवष्टब्धं ज्वलत्कुण्डोपान्तमन्दरुदत्प्रजम् ॥ ३३ ॥

karuṇārāvamukharaiḥ kalatrairbāṣpavarṣibhiḥ | avaṣṭabdhaṃ jvalatkuṇḍopāntamandarudatprajam || 33 ||

The city was gripped by wives loud with pitiful crying and raining tears, and near the blazing pits its people wept softly.

नगर स्त्रियों की करुण चीख-पुकार और बहते आँसुओं से जकड़ा हुआ था, और जलती चिताओं के पास लोग धीरे-धीरे सिसक रहे थे।

5.46.34

अग्निकुण्डप्रविष्टानां मन्त्रिणां भृत्यरोदनैः । रुदत्क्रन्दद्दृढतरमरण्यमिव मारुतैः ॥ ३४ ॥

agnikuṇḍapraviṣṭānāṃ mantriṇāṃ bhṛtyarodanaiḥ | rudatkrandadṛḍhataramaraṇyamiva mārutaiḥ || 34 ||

With the crying of the servants whose masters, the ministers, had entered the fire, the city wept and cried out even louder, like a forest roaring in the wind.

जिन मंत्रियों ने आग में प्रवेश किया था, उनके सेवकों के रोने से नगर और भी ज़ोर से रो-चिल्ला उठा, जैसे हवा से गूँजता कोई घना जंगल।

5.46.35

चितादीपितविप्रेन्द्रमांसमांसलगन्धया । जातनीहारमुत्पातवात्ययावकरोद्धतैः ॥ ३५ ॥

citādīpitaviprendramāṃsamāṃsalagandhayā | jātanīhāramutpātavātyayāvakaroddhataiḥ || 35 ||

The heavy smell of the flesh of great brahmins burning on the fires filled the sky with a haze, stirred up further by ill-omened storm winds.

चिताओं पर जलते महान ब्राह्मणों के मांस की गहरी गंध से आकाश में धुंध छा गई, जिसे अपशकुनी आंधी के झोंकों ने और बढ़ा दिया।

5.46.36

वातदीर्घवसागन्धदूरानीतखगोर्जितैः चक्रैर्व्योभाभवच्छन्नभास्करं जलदैरिव ॥ ३६ ॥

vātadīrghavasāgandhadūrānītakhagorjitaiḥ cakrairvyobhābhavacchannabhāskaraṃ jaladairiva || 36 ||

Flocks of birds, drawn from far off by the smell of fat carried on the wind, wheeled round in circles, and the sky, its sun hidden, looked as if covered by clouds.

हवा में दूर तक फैली चर्बी की गंध से खिंचे पक्षियों के झुंड घेरे बनाकर मंडराने लगे, और सूरज को ढंकता हुआ आकाश मानो बादलों से घिर गया हो।

5.46.37

वातोद्धूतचितावह्निप्रज्वलद्व्योममण्डलम् उड्डीनाग्निकणव्राततारासारदिगन्तरम् ॥ ३७ ॥

vātoddhūtacitāvahniprajvaladvyomamaṇḍalam uḍḍīnāgnikaṇavrātatārāsāradigantaram || 37 ||

The wind fanned the fires until the whole circle of the sky was ablaze, and flying sparks streamed like a shower of stars, filling every quarter of the horizon.

हवा से भड़ककर चिताओं की आग से पूरा आकाश जल उठा, और उड़ती चिंगारियाँ तारों की बौछार जैसी बनकर चारों दिशाओं में फैल गईं।

5.46.38

प्रमत्ततस्करक्रन्दद्वेल्लद्बालकुमारकम् संत्रस्तनागरापास्तजीविताख्यमसंस्थिति ॥ ३८ ॥

pramattataskarakrandadvelladvālakumārakam saṃtrastanāgarāpāstajīvitākhyamasansthiti || 38 ||

Thieves grew bold and shouted aloud, small children trembled, the people of the city were terrified, and everything fell into such disorder that the city seemed to have given up on life itself.

चोर बेखौफ होकर चिल्लाने लगे, छोटे बच्चे थर-थर काँपने लगे, नगरवासी डर गए, और सब कुछ ऐसी अव्यवस्था में डूब गया मानो नगर ने जीना ही छोड़ दिया हो।

5.46.39

अलक्षितगृहं चौरलुण्ठिताखिलसंचयम् त्यक्तपुत्रकलत्रं तन्मरणव्यग्रनागरम् ॥ ३९ ॥

alakṣitagṛhaṃ cauraluṇṭhitākhilasaṃcayam tyaktaputrakalatraṃ tanmarṇavyagranāgaram || 39 ||

Houses stood with no one watching over them, thieves plundered every store of goods, people left even their sons and wives behind, and the whole city was thrown into frantic distress over that death.

घरों की कोई देखभाल करने वाला नहीं रहा, चोरों ने सारा जमा किया धन लूट लिया, लोग अपने बेटों और पत्नियों तक को छोड़ बैठे, और पूरा नगर उस मृत्यु के कारण घबराहट में डूब गया।

5.46.40

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कष्टे विधिविपर्यये अशेषजनताशेषकल्पान्तसदृशस्थितौ ॥ ४० ॥

tasmiṃstathā vartamāne kaṣṭe vidhiviparyaye aśeṣajanatāśeṣakalpāntasadṛśasthitau || 40 ||

This cruel twist of fate went on and on, and it was as though the whole population faced the very end of the world.

भाग्य का यह क्रूर उलटफेर यूँ ही चलता रहा, और ऐसा लगा मानो सारी प्रजा पर प्रलय ही आ गई हो।

5.46.41

राज्यसज्जनसंपर्कपवित्रीकृतधीरधीः । गवलश्चिन्तयामास शोकेनाकुलचेतनः ॥ ४१ ॥

rājyasajjanasaṃparkapavitrīkṛtadhīradhīḥ | gavalaścintayāmāsa śokenākulacetanaḥ || 41 ||

Gavala, whose steady mind had been purified by keeping company with the good people of the kingdom, his heart troubled by grief, began to think:

गवल, जिसकी स्थिर बुद्धि राज्य के सज्जनों की संगति से शुद्ध हो चुकी थी, शोक से व्याकुल मन लिए यह सोचने लगा:

5.46.42

मदर्थे हि कदर्थोऽयं देशेऽस्मिन्स्थितिमागतः । अकालकल्पान्तमयः सर्वनायकनाशनः ॥ ४२ ॥

madarthe hi kadartho'yaṃ deśe'sminsthitimāgataḥ | akālakalpāntamayaḥ sarvanāyakanāśanaḥ || 42 ||

Because of me alone, this calamity, like an untimely doomsday, has come upon this land and destroyed all its leading men.

मेरे ही कारण यह विपत्ति, मानो असमय आया प्रलय, इस देश पर आ पड़ी है और इसने सारे प्रमुख लोगों को नष्ट कर दिया है।

5.46.43

किं मे जीवितदुःखेन मरणं मे महोत्सवः । लोकनिन्द्यस्य दुर्जन्तोर्जीवितान्मरणं वरम् ॥ ४३ ॥

kiṃ me jīvitaduḥkhena maraṇaṃ me mahotsavaḥ | lokanindyasya durjantorjīvitānmarṇaṃ varam || 43 ||

What good is this painful life to me? Death is a great celebration for me. For a wretched creature condemned by the whole world, death is better than life.

मुझे इस दुखभरे जीवन से क्या मिलेगा? मेरे लिए तो मृत्यु ही एक बड़ा उत्सव है। जिस अभागे प्राणी की सारी दुनिया निंदा करती हो, उसके लिए जीने से मरना ही बेहतर है।

5.46.44

इति निश्चित्य गवलो ज्वलिते ज्वलने पुनः । पतङ्गवदनुद्वेगमकरोदाहुतिं वपुः ॥ ४४ ॥

iti niścitya gavalo jvalite jvalane punaḥ | pataṅgavadanudvegamakarodāhutiṃ vapuḥ || 44 ||

Having decided this, Gavala calmly, without any fear, like a moth, gave his body once more as an offering into the blazing fire.

यह निश्चय करके गवल ने बिना किसी डर के, पतंगे की तरह, अपने शरीर को फिर से जलती आग में आहुति के रूप में डाल दिया।

5.46.45

तस्मिन्बलाद्गवलनाम्नि हुताशराशौ देहे पतत्यवयवाकुलतां प्रयाते । स्वाङ्गावदाहदहनस्फुरणानुरोधादन्तर्जले झटिति बोधमवाप गाधिः ॥ ४५ ॥

tasminbalādgavalanāmni hutāśarāśau dehe patatyavayavākulatāṃ prayāte |
svāṅgāvadāhadahanasphuraṇānurodhādantarjale jhaṭiti bodhamavāpa gādhiḥ || 45 ||

As that body called Gavala turned into a mass of fire and fell, its limbs falling into disorder, the burning pain running through his own limbs made Gadhi suddenly wake up, there in the water.

जब गवल नाम का वह शरीर आग का ढेर बनकर गिर पड़ा और उसके अंग बिखरकर तितर-बितर हो गए, तब अपने ही अंगों में जलने की उस पीड़ा के कारण गाधि पानी के भीतर अचानक जाग उठे।

5.46.46

श्रीवाल्मीकिरुवाच । इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगाम । स्नातुं सभा कृतनमस्करणा जगाम श्यामाक्षये रविकरैश्च सहाजगाम ॥ ४६ ॥

śrīvālmīkiruvāca | ityuktavatyatha munau divaso jagāma sāyaṃtanāya vidhaye'stamino jagāma | snātuṃ sabhā kṛtanamaskarṇā jagāma śyāmākṣaye ravikaraiśca sahājagāma || 46 ||

Sri Valmiki said: When the sage had spoken these words, the day came to an end. The sun went down, as if to keep its own evening rites. The assembly bowed to the sage and went off to bathe. And with the sun's last rays, the endless dark of night set in.

श्री वाल्मीकि ने कहा: मुनि के ऐसा कह चुकने पर दिन समाप्त हो गया। सूरज मानो अपनी संध्या-विधि निभाने के लिए अस्त हो गया। सभा मुनि को प्रणाम करके स्नान करने चली गई। और सूरज की अंतिम किरणों के साथ ही अंतहीन रात का अंधकार छा गया।

Chapter 47

5.47.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । मुहूर्तद्वितयेनाथ गाधिराधिभवभ्रमात् । प्रशशासाकुलीभावो वेलावर्त इवाम्बुधेः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | muhūrtadvitayenātha gādhirādhibhavabhramāt | praśaśāsākulībhāvo velāvarta ivāmbudheḥ ||1||

Sri Vasishtha said: For about two hours, a whirl of confusion from the shock of his ordeal held Gadhi in its grip, the way the sea churns when the tide turns.

श्री वसिष्ठ ने कहा, करीब दो घंटे तक गाधि उस पूरे हादसे के सदमे से उपजी उलझन में फँसे रहे, ठीक वैसे ही जैसे ज्वार पलटते समय समुद्र में हलचल मच जाती है।

5.47.2

मनोनिर्माणसंमोहात्तस्मात्स विरराम ह । कल्पान्तसमये ब्रह्मा जगद्विरचनादिव ॥ २ ॥

manonirmāṇasammohāttasmāt sa virarāma ha | kalpāntasamaye brahmā jagadviracanādiva ||2||

Then he stopped that whole illusion built by his own mind, the way Brahma stops making the world when an age of creation ends.

फिर उसने अपने ही मन की रची हुई उस पूरी माया को रोक दिया, जैसे कल्प का अंत होने पर ब्रह्मा सृष्टि की रचना बंद कर देते हैं।

5.47.3

बोधमाप शनैः शान्तः स्वमेवोन्निद्रधीरिव । क्षीबतायां प्रशान्तायां यथा परिणताशयः ॥ ३ ॥

bodhamāpa śanaiḥ śāntaḥ svevonnidradhīriva | kṣībatāyāṃ praśāntāyāṃ yathā pariṇatāśayaḥ ||3||

Slowly and calmly he came back to his senses, as though his own mind had woken up, the way a drunk man's mind clears and settles once his intoxication wears off.

धीरे धीरे और शांत होकर उसे होश आया, मानो उसकी अपनी बुद्धि ही जाग उठी हो, जैसे नशा उतरने पर किसी नशे में डूबे आदमी का मन शांत होकर ठिकाने आ जाता है।

5.47.4

अयं सोऽहमिदं कार्यमिदं नेति ददर्श ह । निशाव्यपगमे लोको यथा क्षीणे तमःपटे ॥ ४ ॥

ayaṃ sahamidam kāryamidam neti dadarśa ha | niśāvyapagame loko yathā kṣīṇe tamaḥpaṭe ||4||

He now saw it clearly: this is that, I am this, this is to be done, and this is not, just as people see everything plainly once night departs and the covering of darkness thins away.

उसने अब यह साफ साफ देख लिया, यह वही है, मैं यह हूँ, यह करने लायक है, और यह नहीं, ठीक वैसे ही जैसे रात ढलने पर और अंधेरे की चादर छँटने पर लोगों को सब कुछ साफ दिखने लगता है।

5.47.5

स्मृतस्वरूपोऽथ पदमुद्दध्रे स जलान्तरात् । शिशिरान्ते प्रवृत्तास्यं सरोजमिव माधवः ॥ ५ ॥

smṛtasvarūpo'tha padamuddadhre sa jalāntarāt | śiśirānte pravṛttāsyaṃ sarojamiva mādhavaḥ ||5||

Then, remembering who he truly was, he lifted his foot out of the water, just as spring lifts up a lotus that has just begun to open its face, at the end of the cold season.

फिर, अपना असली रूप याद आते ही, उसने पानी में से अपना पैर बाहर निकाला, ठीक वैसे ही जैसे जाड़े के अंत में बसंत किसी ऐसे कमल को ऊपर उठाता है जिसकी पंखुड़ियाँ अभी अभी खुलनी शुरू हुई हों।

5.47.6

एतद्वारिककुबूव्योमवतीं वसुमतीमिमाम् । अन्यामिव पुनः पश्यन्विस्मयं परमं ययौ ॥ ६ ॥

etadvārikakubūvyomavatīṃ vasumatīmimām | anyāmiva punaḥ paśyanvismayaṃ paramaṃ yayau || 6 ||

Seeing this same earth, with its waters, its directions and its sky, again as if it were a different world, he was struck with the deepest wonder.

इसी धरती को, जिसमें पानी है, दिशाएँ हैं, आकाश है, फिर से देखकर, मानो यह कोई और ही दुनिया हो, वह गहरे अचरज में डूब गया।

5.47.7

कोऽहं किमिव पश्यामि किमकार्षमहं किल । एवं विचारयंश्चित्रं सभ्रूभङ्गमभूत्क्षणम् ॥ ७ ॥

ko'haṃ kimiva paśyāmi kimakārṣamahaṃ kila | evaṃ vicārayaṃścitraṃ sabhrūbhangamabhūtkṣaṇam || 7 ||

Who am I? What is this I am seeing? What have I actually done? Thinking this, puzzled, he frowned for a moment, his eyebrows knotted in confusion.

मैं कौन हूँ? यह क्या देख रहा हूँ? मैंने आखिर किया क्या है? यह सोचते हुए, हैरान होकर, वह एक पल के लिए भौंहें सिकोड़ बैठा।

5.47.8

श्रान्तस्तत्क्षणमात्रेण संभ्रमं दृष्टवानहम् । इति विज्ञाय सलिलादुदस्थादुदयार्कवत् ॥ ८ ॥

śrāntastatkṣaṇamātreṇa saṃbharamaṃ dṛṣṭavānaham | iti vijñāya salilādudasthādudayārkavat || 8 ||

Worn out, in just that instant, I have seen all this confusion. Realizing this, he rose up out of the water, just as the sun rises.

थका हुआ मैं, बस एक ही पल में यह सारी उलझन देख बैठा। यह समझते ही वह पानी से बाहर उठ खड़ा हुआ, ठीक जैसे सूरज उगता है।

5.47.9

चिन्तयामास च तटे क्व सा माता क्व सा प्रिया । यदाहं मृतिमायातो मध्ये मातृमहेलयोः ॥ ९ ॥

cintayāmāsa ca taṭe kva sā mātā kva sā priyā | yadāhaṃ mṛtimāyāto madhye mātṛmahelayoḥ || 9 ||

And on the bank he thought, where is my mother now, where is my wife, for I met death between the two of them.

और किनारे पर बैठे बैठे उसने सोचा, अब मेरी माँ कहाँ है, मेरी पत्नी कहाँ है, मैं तो अपनी माँ और अपनी पत्नी के बीच ही मर गया था।

5.47.10

बालस्य मातापितरौ नष्टौ किल ममामतेः । वातनीतस्य पत्रस्य वल्लीवृक्षमिवासिना ॥ १० ॥

bālasya mātāpitaraunāṣṭau kila mamāmateḥ | vātanītasya patrasya vallīvṛkṣamivāsinā || 10 ||

The mother and father of that foolish child I once was are gone now, the way the wind carries off a leaf, cut away from vine and tree as though by a sword.

मेरे उस मूर्ख बचपन के माँ बाप अब जा चुके हैं, ठीक जैसे हवा किसी पत्ते को उड़ा ले जाती है, मानो तलवार से बेल और पेड़ से काट दिया गया हो।

5.47.11

अविवाहोऽस्मि जानामि न स्वरूपमपि स्त्रियः । दुष्टायाः क्षोभकारिण्या मदिराया इव द्विजः ॥ ११ ॥

avivāho'smi jānāmi na svarūpamapi striyaḥ | duṣṭāyāḥ kṣobhakāriṇyā madirāyā iva dvijaḥ || 11 ||

Yet here I am unmarried, I do not even know what a woman is like, the way a true brahmin does not know bad, mind troubling liquor.

फिर भी मेरी तो अभी शादी हुई ही नहीं, मुझे तो यह भी पता नहीं कि स्त्री कैसी होती है, जैसे एक सच्चे ब्राह्मण को यह नहीं पता होता कि बुरी, मन बिगाड़ने वाली शराब कैसी होती है।

5.47.12

अतिदूरतरीभूताः स्वदेशस्य स्वबान्धवाः । के नाम मम येषां ते मध्ये जीवं त्यजाम्यहम् ॥ १२ ॥

atidūratarībhūtāḥ svadeśasya svabāndhavāḥ | ke nāma mama yeṣāṃ te madhye jīvaṃ tyajāmyaham || 12 ||

My own kinsmen, of my own land, are now very far away, so who indeed were those people in whose midst I gave up my life?

मेरे अपने घर के, अपने सगे संबंधी तो बहुत दूर हैं, तो फिर वे कौन थे, जिनके बीच मैंने अपनी जान दी थी?

5.47.13

तस्मादेतत्समुद्भूतमहं किं नाम दृष्टवान् । विविधारम्भसंरम्भं गन्धर्वनगरं यथा ॥ १३ ॥

tasmādetatsamudbhūtamahaṃ kiṃ nāma dṛṣṭavān | vividhārambhasaṃrambhaṃ gandharvanagaraṃ yathā || 13 ||

So what exactly have I seen, this whole thing that sprang up, so full of different beginnings and busy doings, just like a city in the sky?

तो आखिर मैंने यह क्या देखा, जो यूँ ही उठ खड़ा हुआ, तरह तरह की शुरुआतों और भागदौड़ से भरा, आकाश में बने किसी शहर जैसा?

5.47.14

तदास्तामेतदेषा हि बन्धुमध्ये मृतस्थितिः । मायामोहे मनागस्मिन्न सत्यमुपलभ्यते ॥ १४ ॥

tadāstāmetadeṣā hi bandhumadhye mṛtasthitiḥ | māyāmohe manāgasminna satyamupalabhyate || 14 ||

Let it be, let it rest, this whole business of dying in the midst of my family, in this illusion spun by maya there is not even a bit of truth to be found.

ठीक है, इसे छोड़ो, यह जो अपनों के बीच मर जाना था, यह तो माया के भ्रम मात्र है, इसमें ज़रा भी सच्चाई नहीं है।

5.47.15

नित्यमेवमनन्तासु भ्रान्तिदृष्टिषु देहिनाम् । चेतो भ्रमति शार्दूलो वनराजिष्विवोन्मदः ॥ १५ ॥

nityamevamanantāsu bhrāntidṛṣṭiṣu dehinām | ceto bhramati śārdūlo vanarājiṣvivonmadaḥ || 15 ||

This is how it always is, among the endless illusions that embodied beings see, the mind wanders on and on, like a frenzied tiger roaming from forest to forest.

यह तो हमेशा से ऐसा ही होता है, देहधारियों के अनगिनत भ्रमों में मन यूँ ही भटकता रहता है, जैसे कोई पागल बाघ जंगल दर जंगल भटकता फिरे।

5.47.16

अवधार्येति तं चित्ते मोहं गाधिर्निनाय सः । दिनानि कतिचित्तस्मिन्स्वक एवाश्रमे तदा ॥ १६ ॥

avadhāryeti taṃ citte mohaṃ gādhirninaya saḥ | dināni katicit tasmin svaka evāśrame tadā || 16 ||

Having thought this through, Gadhi carried that whole strange experience in his mind, and for some days after, he stayed on in his own hermitage.

यह सब सोच समझकर, गाधि उस अजीब अनुभव को मन में लिए रहे, और कुछ दिनों तक वे अपने ही आश्रम में यूँ ही रहे।

5.47.17

एकदा गाधिमगमत्कश्चित्तत्र प्रियोऽतिथिः । ब्रह्माणमिव दुर्वासाः स विशश्राम सश्रमः ॥ १७ ॥

ekadā gādhim agamat kaścit tatra priyo'tithiḥ | brahmāṇam iva durvāsāḥ sa viśaśrāma saśramaḥ || 17 ||

One day, a dear guest came there to Gadhi, the way Durvasa once came to Brahma, tired from his journey, he rested.

एक दिन गाधि के पास कोई प्रिय अतिथि आया, जैसे कभी दुर्वासा ब्रह्मा के पास आए थे, थका हुआ वह वहीं विश्राम करने लगा।

5.47.18

परमां तुष्टिमानीतः फलपुष्परसाशनैः । सोऽतिथिर्गाधिना तेन वसन्तेनेव पादपः ॥ १८ ॥

paramāṃ tuṣṭim ānītaḥ phalapuṣparasāśanaiḥ | so'tithir gādhinā tena vasanteneva pādapaḥ || 18 ||

That guest was made deeply content with fruits, flowers, juices and food, by Gadhi, the way spring makes a tree flourish.

फल, फूल, रस और भोजन से गाधि ने उस अतिथि को गहरा संतोष दिया, ठीक वैसे ही जैसे बसंत किसी पेड़ को खिला देता है।

5.47.19

मिथो वन्दितसंध्यौ तौ कृतजाप्यावुभावपि । क्रमाच्छयनमासाद्य तस्थतुर्मृदुपल्लवम् ॥ १९ ॥

mitho vanditasandhyau tau kṛtajāpyāvubhāvapi | kramaścayanamāsādya tasthaturmṛdupaallavam || 19 ||

Having greeted the evening together and finished their prayers, the two of them then made their way to their beds, and settled onto a bed of soft leaves.

दोनों ने साथ मिलकर संध्या वंदन किया और अपना जाप पूरा किया, फिर धीरे धीरे अपने बिछौने तक पहुँचकर मुलायम पत्तों की सेज पर बैठ गए।

5.47.20

ततः प्रावर्तते शान्ता तयोस्तापसयोः कथा । स्वव्यापारोचिता पुष्पश्रीरिवर्तुत्वमाशयोः ॥ २० ॥

tataḥ prāvartate śāntā tayostāpasayoḥ kathā | svavyāpārocitā puṣpaśrīrivartutvamāśayoḥ || 20 ||

Then a calm conversation began between the two ascetics, suited to their own way of life, and it blossomed between their two minds like the beauty of a flower.

फिर उन दोनों तपस्वियों के बीच एक शांत बातचीत शुरू हुई, जो उनकी अपनी जीवनचर्या के अनुसार थी, और उनके मन में फूल की तरह खिल उठी।

5.47.21

तं पप्रच्छातिथिं गाधिः प्रसङ्गपतितं वचः । किं ब्रह्मन्सुकृशाङ्गस्त्वं किमिति श्रमवानसि ॥ २१ ॥

taṃ papracchātithiṃ gādhiḥ prasaṅgapatitaṃ vacaḥ | kiṃ brahmansukṛśāṅgastvaṃ kimiti śramavānasi || 21 ||

Gadhi asked his guest a question that came up in their talk. Brahmin, why is your body so thin, why are you so worn out?

गाधि ने बातचीत के दौरान अतिथि से यह सवाल पूछा, हे ब्राह्मण, तुम्हारा शरीर इतना दुबला क्यों है, तुम इतने थके हुए क्यों हो?

5.47.22

अतिथिरुवाच । ममातिकार्श्यश्रमयोर्भगवन् श्रृणु कारणम् । कथयामि तथाभूतं वयं नासत्यवादिनः ॥ २२ ॥

atithiruvāca | mamātikārśyaśramayorbhavan śṛṇu kāraṇam | kathayāmi tathābhūtaṃ vayaṃ nāsatyavādinaḥ || 22 ||

The guest said: Venerable sir, hear the reason for my great thinness and tiredness. I will tell you exactly what happened, we do not speak lies.

अतिथि ने कहा, हे भगवन, सुनिए मेरी इस दुबलेपन और थकान की वजह। मैं आपको ठीक वैसा ही बताता हूँ जैसा हुआ, हम झूठ नहीं बोलते।

5.47.23

अस्त्यस्मिन्वसुधापीठे उत्तराशानिकुञ्जके । कीरो नामातिविख्यातः श्रीमाञ्जनपदो महान् ॥ २३ ॥

astyasminvasudhāpīṭhe uttarāśānikuñjake | kīro nāmātivikhyātaḥ śrīmāñjanapado mahān || 23 ||

On this earth, in a corner of the north, there is a great and prosperous country, very famous, named Kira.

इस धरती पर, उत्तर दिशा के एक कोने में, कीर नाम का एक बहुत मशहूर, बड़ा और समृद्ध देश है।

5.47.24

तत्राहमवसं मासं पूज्यमानः पुरे जनैः । नानात्मस्वादलोलात्मा चित्तवेतालमोहितः ॥ २४ ॥

tatrāhamavasaṃ māsaṃ pūjyamānaḥ pure janaiḥ | nānātmasvādalolātmā cittavetālamohitaḥ || 24 ||

There I stayed for a month, honored by the people of the city; my mind restless, hungry for many kinds of pleasure, bewitched by the ghost of my own mind.

वहाँ मैं एक महीने रहा, नगर के लोग मेरा आदर करते रहे; मेरा मन बेचैन था, तरह-तरह के सुखों का लालची, और अपने ही मन के भूत से मोहित था।

5.47.25

एकदैकेन तत्रोक्तं कथाप्रस्तावतः क्वचित् । इहाभूच्छ्वपचो राजा वर्षाण्यष्टौ द्विजेति मे ॥ २५ ॥

ekadaikena tatroktaṃ kathāprastāvataḥ kvacit | ihābhūcchvapaco rājā varṣāṇyaṣṭau dvijeti me || 25 ||

Once, someone there told me, in the course of a story: here there was an outcaste king for eight years, brahmin.

एक बार वहाँ किसी ने बातों-बातों में मुझसे कहा, यहाँ आठ साल तक एक अछूत राजा रहा, हे ब्राह्मण।

5.47.26

ततो ग्रामेषु तत्पृष्टैः प्रोक्तं सकलजन्तुभिः । राजा बभूव श्वपचो वर्षाण्यष्टाविहेति तैः ॥ २६ ॥

tato grāmeṣu tatpṛṣṭaiḥ proktaṃ sakalajantubhiḥ | rājā babhūva śvapaco varṣāṇyaṣṭāviheti taiḥ || 26 ||

Then, when asked about this in the villages, all the people said, here there was an outcaste king for eight years.

फिर जब गाँवों में लोगों से यह पूछा गया, तो सबने कहा, यहाँ आठ साल तक एक अछूत राजा रहा।

5.47.27

सोऽयमन्ते परिज्ञातः प्रविष्टो ज्वलनं जवात् । ततो द्विजशतानीह प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ २७ ॥

so'yamante parijñātaḥ praviṣṭo jvalanaṃ javāt | tato dvijaśatānīha praviṣṭāni hutāśanam || 27 ||

He, once his secret was found out, quickly entered the fire in the end; then hundreds of brahmins here also entered the fire.

जब आख़िर में उसका भेद खुल गया, तो वह तुरंत आग में समा गया; फिर यहाँ सैकड़ों ब्राह्मण भी आग में समा गए।

5.47.28

इति तेषां मुखाच्छ्रुत्वा तस्मान्निर्गत्य मण्डलात् । प्रयागेऽकरवं शुद्ध्यै प्रायश्चित्तमहं द्विज ॥ २८ ॥

iti teṣāṃ mukhācchrutvā tasmānnirgatya maṇḍalāt | prayāge'karavaṃ śuddhyai prāyaścittamahaṃ dvija || 28 ||

Hearing this from their own mouths, I left that region, and at Prayaga I performed a penance for purification, brahmin.

यह उन्हीं के मुँह से सुनकर, मैं उस इलाके से निकल आया, और प्रयाग में शुद्धि के लिए प्रायश्चित किया, हे ब्राह्मण।

5.47.29

कृत्वा चान्द्रायणस्यान्ते तृतीयस्याद्य पारणम्। इहाहमागतस्तेन श्रान्तोस्म्यतिकृशोस्मि च ॥ २९ ॥

kṛtvā cāndrāyaṇasyānte tṛtīyasyādya pāraṇam | ihāhamāgatastena śrāntosmyatikṛśosmi ca || 29 ||

Having completed, at the end of the third chandrayana fast, today's breaking of the fast, I have come here; that is why I am tired and very thin.

तीसरे चांद्रायण व्रत के अंत में आज व्रत खोलकर, मैं यहाँ आया हूँ; इसीलिए मैं थका हुआ और बहुत दुबला हूँ।

5.47.30

श्रीवसिष्ठ उवाच। इति श्रुतवता तेन गाधिना स तदा द्विजः। भूयः पृष्टोऽप्येतदेव कथयामास नान्यथा ॥ ३० ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti śrutavatā tena gādhinā sa tadā dvijaḥ | bhūyaḥ pṛṣṭo'pyetadeva kathayāmāsa nānyathā || 30 ||

Sri Vasishtha said: Gadhi, having heard this, questioned the brahmin again, but even then he told the very same thing, nothing different.

श्री वसिष्ठ ने कहा, यह सुनकर गाधि ने उस ब्राह्मण से फिर पूछा; पर तब भी उसने वही बात कही, कुछ अलग नहीं कहा।

5.47.31

अथ विस्मयवान्गाधिस्तां नीत्वा तत्र शर्वरीम्। जगद्गेहमहादीपे रवावुदयमागते ॥ ३१ ॥

atha vismayavāngādhistāṃ nītvā tatra śarvarīm | jagadgehamahādīpe ravāvudayamāgate || 31 ||

Then Gadhi, filled with wonder, spent that night there, and the sun, the great lamp of the world's house, rose.

फिर गाधि, आश्चर्य से भरकर, वह रात वहीं रहा, और सूरज, जो संसार रूपी घर का बड़ा दीपक है, उग आया।

5.47.32

कृतप्रातःस्नानविधावापृच्छय स्वातिथौ गते। इदं संचिन्तयामास विस्मयोद्धुरया धिया ॥ ३२ ॥

kṛtaprātaḥsnānavidhāvāpṛcchaya svātithau gate | idaṃ saṃcintayāmāsa vismayoddhurayā dhiyā || 32 ||

After he had finished his morning bath rituals and his guest had taken leave and gone, he sat pondering this, his mind overwhelmed with wonder.

सुबह का स्नान पूरा करने और अपने अतिथि को विदा करने के बाद, वह यह सोचने बैठा, उसका मन आश्चर्य से भरा हुआ था।

5.47.33

यन्मया संभ्रमे दृष्टं सत्यभूतं द्विजेन तत्। उक्तं ममेति किं नाम स्यान्मायाशम्बरक्रमः ॥ ३३ ॥

yanmayā saṃbhrae dṛṣṭaṃ satyabhūtaṃ dvijena tat | uktaṃ mameti kiṃ nāma syānmāyāśambarakramaḥ || 33 ||

What I myself saw in my confusion, and what the brahmin then told me was true, what could this be? Some working of Shambara's magic?

जो मैंने खुद अपनी उलझन में देखा, और जो ब्राह्मण ने बाद में मुझे सच बताया, यह आख़िर क्या था? क्या यह शम्बर की माया का कोई खेल था?

5.47.34

यद्बन्धुमध्ये मरणं मया तदृष्टमात्मनः । सा मायैव न संदेहः शेषं पश्यामि तस्य तम् ॥ ३४ ॥

yadbandhumadhye maraṇaṃ mayā taddṛṣṭamātmanaḥ | sā māyaiva na saṃdehaḥ śeṣaṃ paśyāmi tasya tam || 34 ||

The death amid my kinsmen that I saw as my own, that was only illusion, no doubt of it. Yet I still see the rest of it.

अपने रिश्तेदारों के बीच जो मृत्यु मैंने अपनी समझी थी, वह केवल माया ही थी, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी उसका बाकी हिस्सा मुझे अब भी दिखता है।

5.47.35

तदात्मश्वपचोदन्तं द्रष्टुं तावदखिन्नधीः । भूतमण्डलपर्यन्तग्रामं गच्छामि सत्वरम् ॥ ३५ ॥

tadātmaśvapacodantaṃ draṣṭuṃ tāvadakhinnadhīḥ | bhūtamaṇḍalaparyantagrāmaṃ gacchāmi satvaram || 35 ||

So now, my mind undaunted, in order to see this matter of my own being an outcaste, let me go quickly to the village at the edge of Bhutamandala.

तो अब, बिना थके, अपने अछूत होने की इस बात को देखने के लिए, मैं जल्दी से भूतमण्डल के छोर वाले गाँव जाता हूँ।

5.47.36

इति संचिन्तयन्गन्तुं मण्डलान्तरमादरात् । उत्तस्थौ भास्करः पार्श्वं मेरोर्द्रष्टुमिवोद्यतः ॥ ३६ ॥

iti saṃcintayan gantuṃ maṇḍalāntaram ādarāt | uttasthau bhāskaraḥ pārśvaṃ merordraṣṭum ivodyataḥ || 36 ||

Thinking this, eager to journey to another region, he rose, like the sun rising as if to look upon the side of Meru.

यह सोचते हुए, दूसरे इलाके जाने के लिए उत्सुक होकर, वह उठ खड़ा हुआ, जैसे सूरज मेरु पर्वत की ओर देखने के लिए उगा हो।

5.47.37

मनोराज्यमपि प्राज्ञा लभन्ते व्यवसायिनः । गाधिना स्वप्नसंदृष्टं गत्वा लब्धमखण्डितम् ॥ ३७ ॥

manorājyam api prājñā labhante vyavasāyinaḥ | gādhinā svapnasandṛṣṭaṃ gatvā labdham akhaṇḍitam || 37 ||

Even a kingdom that exists only in the mind, resolute and wise people attain by their own effort. Gadhi, having gone there, obtained, whole and undivided, what he had seen in a dream.

मन में बसा राज्य भी बुद्धिमान और दृढ़ लोग अपने प्रयास से पा लेते हैं। गाधि ने वहाँ जाकर वही पूरा-पूरा पा लिया, जो उसने सपने में देखा था।

5.47.38

सर्वमध्यवसायेन दुष्प्रापमपि लभ्यते । पश्यन्गाधिर्जगन्मायां प्रमेयीकर्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥

sarvam adhyavasāyena duṣprāpam api labhyate | paśyan gādhir jagat māyāṃ prameyīkartum udyataḥ || 38 ||

Anything can be won by effort, even what is hard to reach. Seeing this, Gadhi set out to test the world's illusion for himself, to know it directly.

प्रयास से कुछ भी पाया जा सकता है, चाहे वह कितना ही कठिन क्यों न हो। यह देखकर गाधि संसार की माया को खुद परखने और सीधे जानने के लिए निकल पड़ा।

5.47.39

विनिर्गत्याभवन्मार्गे प्रावृडोघजवेन सः । देशानुल्लंघयामास बहून्वाततुरङ्गवत् ॥ ३९ ॥

vinirgatya ābhavan mārge prāvṛḍoghajavena saḥ | deśān ullaṅghayāmāsa bahūn vātaturagavat || 39 ||

He set out, and on the way he moved with the speed of a monsoon flood, crossing many lands, swift as a horse racing the wind.

वह निकल पड़ा, और रास्ते में बरसाती बाढ़ जैसी तेज़ी से, कई देशों को पार करता गया, हवा से होड़ लेते घोड़े जैसा तेज़।

5.47.40

तच्चेदृशनिजाचारं भूतमण्डलमागतः । करभः कण्टकार्थ्येकः कारञ्जमिव काननम् ॥ ४० ॥

taccedṛśa nijācāraṃ bhūtamaṇḍalam āgataḥ | karabhaḥ kaṇṭakārthye kaḥ kārañjam iva kānanam || 40 ||

He came to Bhutamandala, so different in its own ways, alone, like a camel craving thorns going into a forest of karanja trees.

वह भूतमण्डल में पहुँचा, जिसके अपने ही अनोखे रीति-रिवाज़ थे, अकेला, जैसे काँटे चाहने वाला ऊँट किसी करंज के जंगल में जा रहा हो।

5.47.41

तत्र संवित्स्थितेनैव संनिवेशेन वै पुनः । अपश्यद्भ्रामकं कंचिद्गन्धर्व इव पत्तनम् ॥ ४१ ॥

tatra saṃvitsthitenaiva saṃniveśena vai punaḥ | apaśyadbhrāmakaṃ kañcidgandharva iva pattanam || 41 ||

There, once more, through an arrangement fixed only in his own awareness, he saw a shifting city, like a gandharva's city in the sky.

वहाँ फिर, अपनी ही सोच के मुताबिक़, उसने एक घूमता हुआ नगर देखा, जैसे आकाश में गंधर्वों का कोई नगर हो।

5.47.42

ददर्श तस्य पर्यन्ते तमेव श्वपचालयम् । अधस्ताद्भूवनस्येव पाताले नरकव्रजम् ॥ ४२ ॥

dadarśa tasya paryante tameva śvapacālayam | adhastādbhūvanasyeva pātāle narakavrajam || 42 ||

At its edge he saw that very same outcaste's dwelling, like a row of hells in the underworld beneath this world.

उसके छोर पर उसने वही अछूत का घर देखा, जैसे इस संसार के नीचे पाताल में नरकों की कोई कतार हो।

5.47.43

चित्तचिन्तितविस्तारं तन्निवेशमयं परम् । गन्धर्ववदसावात्मश्वपचत्वं च दृष्टवान् ॥ ४३ ॥

cittacintitavistāraṃ tanniveśamayaṃ param | gandharvavadasāvātmaśvapacatvaṃ ca dṛṣṭavān || 43 ||

That whole place was exactly as his mind had imagined it, like a city in the sky, and there he saw his own state as an outcaste.

वह पूरी जगह ठीक वैसी ही थी जैसी उसके मन ने कल्पना की थी, आकाश के किसी नगर जैसी; और वहाँ उसने अपनी ही अछूत वाली दशा देखी।

5.47.44

तेनैव संनिवेशेन प्राग्दृष्टं श्वपचास्पदम् । तस्य कामपि वैराग्यपदवीमनयन्मनः ॥ ४४ ॥

tenaiva saṃniveśena prāgdṛṣṭaṃ śvapacāspadam | tasya kāmapi vairāgyapadavīmanayanmanaḥ || 44 ||

That same setting, the outcaste's home he had seen before, turned his mind toward a certain path of detachment.

वही जगह, वह अछूत का घर जो उसने पहले देखा था, उसके मन को एक अजीब-सी उदासीनता की राह पर ले गई।

5.47.45

प्रावृडासारलुठितं भित्तिजातयवाङ्कुरम्। पर्यस्तच्छादनार्धाङ्कं किंचिदादृष्टतल्पकम्॥ ४५॥

prāvṛḍāsāraluṭhitaṃ bhittijātayavāṅkuram | paryastacchādanārdhāṅkaṃ kiñcidādṛṣṭatalpakam || 45 ||

That house had been battered by the heavy rains of the monsoon season. Grass had sprouted from its walls. Half its roof had collapsed. Its bed could barely be seen.

उस घर को बरसात के मौसम की तेज़ बारिश ने तहस-नहस कर दिया था। उसकी दीवारों से घास उग आई थी। उसकी आधी छत गिर चुकी थी। उसका बिछौना मुश्किल से दिखाई देता था।

5.47.46

दारिद्र्यं तदृढमिव दौर्भाग्यमिव कुड्यमत्। भ्रष्टाङ्गमिव दौरात्म्यं दौःस्थित्यमिव खण्डितम्॥ ४६॥

dāridryaṃ taddṛḍhamiva daurbhāgyamiva kuḍyamat | bhraṣṭāṅgamiva dourātmyaṃ dauḥsthityamiva khaṇḍitam || 46 ||

That house looked like poverty turned solid. Its wall looked like misfortune itself. Its broken part, with a piece fallen off, looked like wickedness missing a limb. Its cracked part looked like hardship itself.

वह घर मानो जमी हुई गरीबी जैसा लगता था। उसकी दीवार मानो दुर्भाग्य जैसी लगती थी। उसका टूटा हुआ हिस्सा, जिसका एक टुकड़ा गिर चुका था, मानो दुष्टता जैसा लगता था जिसका कोई अंग कट गया हो। उसका दरका हुआ हिस्सा मानो दुर्दशा जैसा लगता था।

5.47.47

गाधिर्दन्तावदलितैर्गवाश्वमहिषास्थिभिः। धवलैर्व्याप्तपर्यन्तं साक्ष्यं कर्तुमिव स्थितैः॥ ४७॥

gādhirdantāvadalitairgavāśvamahiṣāsthibhiḥ | dhavalairvyāptaparyantaṃ sākṣyaṃ kartumiva sthitaiḥ || 47 ||

Gadhi saw that its edges were lined with the white bones of cows, horses, and buffaloes, cracked open by teeth, standing there as if to bear witness.

गाधि ने देखा कि उसके किनारों पर गायों, घोड़ों और भैंसों की सफेद हड्डियाँ बिखरी थीं, जो दाँतों से चबाकर तोड़ी गई थीं, मानो गवाही देने के लिए वहाँ खड़ी हों।

5.47.48

भुक्तं पीतं पुरा तेन येषु खर्परकेषु वै। तैरस्पन्दाभ्रसलिलैः पानपूर्णैरिवावृतम्॥ ४८॥

bhuktaṃ pītaṃ purā tena yeṣu kharparakeṣu vai | tairaspandābhrasalilaiḥ pānapūrṇairivāvṛtam || 48 ||

And it was ringed by the very bowls he had once eaten and drunk from, now filled with still rainwater, as if they were still full of drink.

और वह उन्हीं बर्तनों से घिरा था जिनमें वह कभी खाता-पीता था, जो अब ठहरे हुए बारिश के पानी से भरे थे, मानो अब भी पीने की चीज़ों से भरे हों।

5.47.49

ताभिरेवान्त्रतन्त्रीभिः संशुष्काभिलतावृतैः। तृष्णाभिरिव दीर्घाभिः परितः परिवेष्टितम्॥ ४९॥

tābhirevāntratantrībhiḥ saṃśuṣkābhilatāvṛtaiḥ | tṛṣṇābhiriva dīrghābhiḥ parito pariveṣṭitam || 49 ||

It was wrapped all around by those same dried-out gut-strings, covered with withered creepers, encircled on every side as if by long, drawn-out cravings.

वह उन्हीं सूखी हुई आँतों की डोरियों से चारों ओर से लिपटा था, जो मुरझाई हुई लताओं से ढकी थीं, मानो लंबी, खिंची हुई तृष्णाओं ने उसे चारों ओर से घेर रखा हो।

5.47.50

चिरमालोकयामास स तदात्मगृहं जवात्। प्राक्तनं शुष्कशवतां यातं देहमिवात्मवान्॥ ५०॥

ciramālokayāmāsa sa tadātmagṛhaṃ javāt | prāktanaṃ śuṣkaśavatāṃ yātaṃ dehamivātmavān || 50 ||

He, a man of understanding, at once fixed his gaze on that house of his own and looked at it for a long time, the way a man looks at his own former body that has turned into a dried-up corpse.

वह समझदार व्यक्ति तुरंत अपने उसी घर पर नज़र गड़ाकर देर तक देखता रहा, ठीक वैसे जैसे कोई व्यक्ति अपने ही पुराने शरीर को देखता है जो सूखकर लाश बन चुका हो।

5.47.51

अतिविस्मयमातस्थौ ग्रामकं समुपाययौ। उल्लंघ्य म्लेच्छनगरमार्यदेशमिवाध्वगः॥ ५१॥

ativismayamātasthau grāmakaṃ samupāyayau | ullaṃghya mlecchanagaramāryadeśamivādhvagaḥ || 51 ||

He was overcome with great wonder. Then he went toward the village, like a traveler who crosses a foreign city and then enters the land of his own people.

वह बड़े आश्चर्य में डूब गया। फिर वह गाँव की ओर बढ़ा, ठीक वैसे जैसे कोई यात्री किसी विदेशी नगर को पार करके अपने ही देश में प्रवेश करता है।

5.47.52

तत्रापृच्छज्जनं साधो कच्चित्स्मरति भो भवान्। प्राग्वृत्तमस्य ग्रामस्य पर्यन्ते श्वपचक्रमम्॥ ५२॥

tatrapṛcchajjanaṃ sādho kaccitsmarati bho bhavān | prāgvṛttamasya grāmasya paryante śvapacakramam || 52 ||

There he asked the people: Good sir, do you at all remember what happened long ago at the edge of this village, about an outcaste?

वहाँ उसने लोगों से पूछा: भले आदमी, क्या आपको याद है कि इस गाँव के किनारे बहुत पहले एक अछूत के साथ क्या हुआ था?

5.47.53

सर्व एव हि धीमन्तश्चिरवृत्तमपि स्फुटम्। करस्थमिव पश्यन्ति मयेति सुजनाच्छ्रुतम्॥ ५३॥

sarve eva hi dhīmantaściravṛttamapi sphuṭam | karasthamiva paśyanti mayeti sujanācchṛutam || 53 ||

All wise people can see even a very old event clearly, as though they held it in the palm of their hand. This is what I have heard said by good people.

सारे बुद्धिमान लोग बहुत पुरानी बात को भी साफ़-साफ़ देख लेते हैं, मानो वह उनकी हथेली पर रखी हो। यही मैंने भले लोगों से सुना है।

5.47.54

अत्र श्वपचमेकान्ते वासिनं वृद्धमुत्तमम्। स्मरस्येनं किमुत भो दुःखानामिव देहकम्॥ ५४॥

atra śvapacamekānte vāsinaṃ vṛddhamuttamam | smarasyenaṃ kimuta bho duḥkhānāmiva dehakam || 54 ||

Here there lived alone an outcaste, an old man, the finest of his kind. His very body seemed made of nothing but sorrow. Surely you remember him, sir?

यहाँ एक अछूत अकेला रहता था, एक बूढ़ा आदमी, अपनी तरह में सबसे उत्तम। उसका शरीर मानो दुखों से ही बना था। सर, आपको वह ज़रूर याद होगा?

5.47.55

यदि जानासि भोः साधो तन्मे कथय तत्त्वतः । पान्थ संशयविच्छेदे महत्पुण्यफलं स्मृतम् ॥ ५५ ॥

yadi jānāsi bhoḥ sādho tanme kathaya tattvataḥ | pāntha saṃśayavicchede mahatpuṇyaphalaṃ smṛtam || 55 ||

If you know of it, good sir, tell me the truth of it. To end a traveler's doubt is remembered as a deed of great merit.

अगर आप जानते हैं, भले आदमी, तो मुझे सच-सच बताइए। किसी यात्री का संदेह मिटाना बड़े पुण्य का काम माना गया है।

5.47.56

भूयो भूय इति ग्राम्याः पृष्टा गाधिद्विजन्मना । अनल्पस्मयसंरम्भमार्तेनेव चिकित्सकाः ॥ ५६ ॥

bhūyo bhūyo iti grāmyāḥ pṛṣṭā gādhidvijanmanā| analpasmayasaṃrambhamārteneva cikitsakāḥ || 56 ||

Gadhi, the brahmin, asked the villagers this again and again, with great and eager urgency, like a suffering man questioning his doctors.

गाधि नामक ब्राह्मण ने गाँववालों से यह बात बार-बार पूछी, बड़ी उत्सुकता और बेचैनी के साथ, ठीक वैसे जैसे कोई रोगी अपने वैद्यों से पूछता है।

5.47.57

ग्राम्या ऊचुः । यथा कथयसि ब्रह्मंस्तत्तथा न तदन्यथा । कटंजनामा श्वपच इहाभूद्दारुणाकृतिः ॥ ५७ ॥

grāmyā ūcuḥ| yathā kathayasi brahmaṃstattathā na tadanyathā| kaṭaṃjanāmā śvapaca ihābhūddāruṇākṛtiḥ || 57 ||

The villagers said: Brahmin, exactly as you say, so it is, not otherwise. Here there lived an outcaste named Katanja, terrible to look at.

गाँववालों ने कहा: हे ब्राह्मण, आप जैसा कहते हैं, ठीक वैसा ही है, इससे अलग नहीं। यहाँ कटंज नाम का एक अछूत रहता था, जिसकी शक्ल बहुत डरावनी थी।

5.47.58

पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबन्धुस्वजनपेटकम् । यस्यातिविस्तीर्णमभूत्पत्रवृन्दं तरोरिव ॥ ५८ ॥

putrapautrasuhṛdbhṛtyabandhusvajanapeṭakam| yasyātivistīrṇamabhūtpatravṛndaṃ taroriva || 58 ||

His host of sons, grandsons, friends, servants, kinsmen, and relations had grown as wide and thick as the leaves of a tree.

उसके बेटों, पोतों, दोस्तों, नौकरों, रिश्तेदारों और अपनों का समूह किसी पेड़ के पत्तों जितना घना और फैला हुआ था।

5.47.59

यस्य वृद्धस्य तत्सर्वं कलत्रं मृत्युराच्छिनत् । अद्रेः पुष्पफलोपेतं दावो वनमिवानलः ॥ ५९ ॥

yasya vṛddhasya tatsarvaṃ kalatraṃ mṛtyurācchinat| adreḥ puṣpaphalopetaṃ dāvo vanamivānalaḥ || 59 ||

Then, when he had grown old, death tore away his whole family, the way a forest fire burns down a mountain's forest heavy with flowers and fruit.

फिर, जब वह बूढ़ा हो गया, तो मौत ने उसके पूरे परिवार को छीन लिया, ठीक वैसे जैसे जंगल की आग किसी पहाड़ के फूलों और फलों से लदे जंगल को जला डालती है।

5.47.60

यस्ततो देशमुत्सृज्य ययौ कीरपुरान्तरम्। वर्षाण्यष्टावनुद्वेगं तत्र राजा बभूव सः ॥ ६० ॥

yastato deśamutsṛjya yayau kīrapurāntaram| varṣāṇyaṣṭāvanudvegaṃ tatra rājā babhūva saḥ || 60 ||

He then left that land and went into the region of Kirapura. There, for eight years, he lived undisturbed and was king.

फिर उसने वह देश छोड़ दिया और कीरपुर के इलाके में चला गया। वहाँ वह आठ साल तक बिना किसी चिंता के राजा बना रहा।

5.47.61

यस्तत्रार्थं परिज्ञाय जनैर्दूरे निराकृतः। यथा राशिरनर्थस्य यथा ग्रामे विषद्रुमः ॥ ६१ ॥

yastatrārthaṃ parijñāya janairdūre nirākṛtaḥ | yathā rāśiranarthasya yathā grāme viṣadrumaḥ || 61 ||

But when the people there learned the truth about him, they drove him far away, like a heap of misfortune, like a poison-tree standing in a village.

पर जब वहाँ के लोगों को उसके बारे में सच पता चला, तो उन्होंने उसे दूर खदेड़ दिया, मानो वह विपत्तियों का ढेर हो, मानो गाँव में खड़ा कोई ज़हरीला पेड़ हो।

5.47.62

ततो जनेऽग्निं प्रविशत्यात्मना यो हुताशनम्। आर्यतामार्यसंसर्गादागतः प्रविवेश ह ॥ ६२ ॥

tato jane'gniṃ praviśatyātmanā yo hutāśanam | āryatāmāryasaṃsargādāgataḥ praviveśa ha || 62 ||

Then, in front of the people, he threw himself into the fire that consumes offerings, by his own will. Contact with noble people had brought him to a noble nature, and he truly went through with it.

फिर, सबके सामने, उसने अपनी मर्ज़ी से हवन की आग में छलांग लगा दी। भले लोगों की संगति ने उसे भला बना दिया था, और उसने सचमुच ऐसा ही किया।

5.47.63

किं त्वमेव प्रयत्नेन श्वपचं पृच्छसि प्रभो। किं ते बन्धुरसौ कच्चिदभवस्त्वं स्वतोऽथवा ॥ ६३ ॥

kiṃ tvameva prayatnena śvapacaṃ pṛcchasi prabho | kiṃ te bandhurasau kaccidabhavastvaṃ svato'thavā || 63 ||

But why, sir, do you take such trouble to ask about this outcaste? Is he perhaps some relative of yours? Or is this about you yourself?

पर सर, आप इतनी मेहनत से इस अछूत के बारे में क्यों पूछ रहे हैं? क्या वह आपका कोई रिश्तेदार है? या यह बात खुद आपके बारे में है?

5.47.64

एवं कथयतो ग्राम्यान्गाधिः पृच्छन्पुनःपुनः। सर्वेषु तत्र प्रान्तेषु मासमेकमुवास सः ॥ ६४ ॥

evaṃ kathayato grāmyān gādhiḥ pṛcchan punaḥpunaḥ | sarveṣu tatra prānteṣu māsamekamuvāsa saḥ || 64 ||

As the villagers spoke like this, Gadhi kept asking again and again. He stayed there a whole month, in all those parts of the country.

जब गाँववाले इस तरह बोल रहे थे, तो गाधि बार-बार पूछता रहा। वह वहाँ पूरे एक महीने तक, उन सब इलाकों में ठहरा रहा।

5.47.65

यथा तेनानुभूतं तच्छवापचं तत्तथैव तैः । ग्रामीणैस्तस्य कथितं सर्वैरेवावखण्डितम् ॥ ६५ ॥

yathā tenānubhūtaṃ tacchavāpacaṃ tattathaiva taiḥ | grāmīṇaistasya kathitaṃ sarvairevāvakhaṇḍitam || 65 ||

Just as that outcaste's life had been lived through by him, exactly so it was told to him by the villagers, told in full, and all of them agreed.

जैसा वह अछूत का जीवन उसने खुद जिया था, ठीक वैसा ही गाँववालों ने उसे बताया, पूरी बात, और सभी की बात एक जैसी थी।

5.47.66

अव्याहतं सकलभूतमुखादथैतदाकर्ण्य सम्यगवलोक्य यथानुभूतम् । गाधिः शशाङ्कमलवद्हृदयेऽधिरूढं गूढाकृतिः परमविस्मयमाजगाम ॥ ६६ ॥

avyāhataṃ sakalabhūtamukhādathaitadākarṇya samyagavalokya yathānubhūtam | gādhiḥ śaśāṅkamalavadhṛdaye'dhirūḍhaṃ gūḍhākṛtiḥ paramavismayamājagāma || 66 ||

Gadhi heard this same account, unbroken, from the mouths of all the people there. He weighed it carefully, and it was exactly as he himself had lived it. Then, hiding his feelings behind a calm face, he was overcome by the deepest wonder, rising in his heart like the mark that sits upon the moon.

गाधि ने वहाँ के सब लोगों के मुँह से यही बात, बिना किसी फ़र्क़ के, सुनी। उसने इसे ध्यान से परखा, और यह ठीक वैसा ही था जैसा उसने खुद जिया था। फिर, अपने मन का भाव चेहरे पर आने दिए बिना, उसके दिल में गहरा आश्चर्य उठ खड़ा हुआ, ठीक वैसे जैसे चाँद पर उसका दाग़ टिका रहता है।

Chapter 48

5.48.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । लुठितं श्वपचागारे पुनर्विस्मयमाययौ । गाधेर्मनो हि नायाति तृप्तिमाश्चर्यदर्शने ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | luṭhitaṃ śvapacāgāre punarvismayamāyayau | gādhermano hi nāyāti tṛptimāścaryadarśane || 1 ||

Sri Vasishtha said: He had once wallowed in the outcaste's house, and now wonder came over him again. Gadhi's mind never has enough of seeing something wonderful.

श्री वसिष्ठ ने कहा: वह पहले उस चांडाल के घर में पड़ा रहा था, और अब उसे फिर से अचरज हुआ। गाधि का मन किसी अचरज भरी चीज़ को देखकर कभी तृप्त नहीं होता।

5.48.2

तत्रावलोकयामास स्थानानि सदनानि च । कल्पक्षोभविवृत्तानि जगन्तीवाम्बुजोद्भवः ॥ २ ॥

tatrāvalokayāmāsa sathānāni sadanāni ca | kalpakṣobhavivṛttāni jagantīvāmbujodbhavaḥ || 2 ||

There he looked at the places and houses, all changed by the great upheaval of that age, as Brahma, born from the lotus, looks upon the worlds.

वहाँ उसने वे जगहें और घर देखे, जो उस युग की उथल-पुथल से बदल चुके थे, जैसे कमल से जन्मे ब्रह्मा दुनियाओं को देखते हैं।

5.48.3

उवाच स्वात्मनैवेदमरण्ये लुठितालये । शुष्कास्थिमालावलिते पिशाचक इव द्रुमे ॥ ३ ॥

uvāca svātmanaiveidamarṇye luṭhitālaye | śuṣkāsthimālāvalite piśācaka iva drum || 3 ||

He said this to himself, there in the forest, in the fallen house strewn with garlands of dry bones, like a ghost in a tree:

उसने जंगल में, उस गिरे हुए घर में, जो सूखी हड्डियों की मालाओं से भरा था, पेड़ पर बैठे भूत जैसे, अपने आप से यह कहा:

5.48.4

इमास्ता मृतमातङ्गदन्तमाला वृतौ कृताः । अद्यापि संस्थिताः कल्पं प्रतिमेरुशिखा इव ॥ ४ ॥

imāstā mṛtamātaṅgadantamālā vṛtau kṛtāḥ | adyāpi saṃsthitāḥ kalpaṃ pratimeruśikhā iva || 4 ||

These garlands of dead elephants' tusks were made into a fence here; even today they still stand, after a whole age, like the peaks of Mount Meru.

यहाँ मरे हुए हाथियों के दाँतों की मालाओं से एक बाड़ बनाई गई थी; वे आज भी, इतने युग बीतने के बाद भी, मेरु पर्वत की चोटियों जैसी खड़ी हैं।

5.48.5

इह तद्वानरीमांसं पक्ववंशांकुरैः सह । भुक्तं पुरासवोन्मत्तैः सह श्वपचबन्धुभिः ॥ ५ ॥

iha tadvānarīmāṃsaṃ pakvavaṃśāṅkuraiḥ saha | bhuktaṃ purāsavonmattaiḥ saha śvapacabandhubhiḥ || 5 ||

Here that monkey meat, together with cooked bamboo shoots, was eaten long ago by men drunk on liquor, along with the outcaste's kinsmen.

यहाँ वह बंदर का मांस, पके हुए बांस के अंकुरों के साथ, पहले शराब में डूबे लोगों ने चांडाल के रिश्तेदारों के साथ मिलकर खाया था।

5.48.6

आलिङ्ग्य श्वपचश्यामामिह केसरिचर्मणि। सुप्तमापीय मैरेयं तिक्तं गजमदेन च ॥ ६ ॥

āliṅgya śvapacaśyāmāmiha kesaricarmaṇi | suptamāpīya maireyaṃ tiktaṃ gajamadena ca || 6 ||

Here, on a lion's skin, the dark outcaste woman was embraced; bitter liquor mixed with elephant's must was drunk, and then came sleep.

यहाँ, शेर की खाल पर, उस काली चांडाल स्त्री को गले लगाया गया था; हाथी के मद में मिली कड़वी शराब पी गई, और फिर नींद आ गई।

5.48.7

कौलेयककुटुम्बिन्यः पिण्याकपलवर्धिताः। इह बद्धा वरत्राभिर्मृतेभरदकाष्ठके ॥ ७ ॥

kauleyakakuṭumbinyaḥ piṇyākapalavardhitāḥ | iha baddhā varatrābhirmṛtebharadakāṣṭhake || 7 ||

Here the bitches of the household, fed on oil-cake and meat, were tied with cords to a post made from the tusk of a dead elephant.

यहाँ घर की कुतियाओं को, जो खली और मांस खिलाकर पाली गई थीं, रस्सियों से एक मरे हुए हाथी के दाँत के खंभे से बांधा गया था।

5.48.8

इह वारणमुक्तानां ददासीत्पिठरत्रयम्। पिनद्धं माहिषेणोग्रचर्मणाम्बुदशोभिना ॥ ८ ॥

iha vāraṇamuktānāṃ dadāsītpiṭharatrayam | pinaddhaṃ māhiṣeṇogracarmaṇāmbudaśobhinā || 8 ||

Here, for elephants once set free, there were three drums, bound in tough buffalo hide that shone dark like a raincloud.

यहाँ, आज़ाद किए गए हाथियों के लिए, तीन ढोल रखे थे, जो भैंसे की सख्त खाल से मढ़े थे और बादल जैसे काले चमकते थे।

5.48.9

स्थलीष्वेतासु तास्वत्र सह श्वपचबालकैः। चिरं विलुठितं चूतपत्रपुञ्जे पिकैरिव ॥ ९ ॥

sthalīṣvetāsu tāsvatra saha śvapacabālakaiḥ | ciraṃ viluṭhitaṃ cūtapatrapuñje pikairiva || 9 ||

On these very grounds, together with the outcaste children, there was long rolling about, like cuckoos in a heap of mango leaves.

इन्हीं जगहों पर, चांडाल के बच्चों के साथ, देर तक लोटा जाता था, जैसे आम के पत्तों के ढेर में कोयल।

5.48.10

अत्र तद्बालनिःश्वासरणद्वंशप्रवृत्तवत्। गीतं पीतं शुनीरक्तं साधिता शवभूषितः ॥ १० ॥

atra tadbālaniḥśvāsaraṇadvamśapravṛttavat | gītaṃ pītaṃ śunīraktaṃ sādhitā śavabhūṣitaḥ || 10 ||

Here a bamboo pipe seemed to sound from a child's breath; there was singing and drinking; a dog stayed close by; meat was cooked; and someone stood there decked with a corpse.

यहाँ एक बांस की बांसुरी मानो बच्चे की सांस से बज उठती थी; यहाँ गाना-पीना होता था; एक कुतिया पास रहती थी; मांस पकाया जाता था; और कोई एक शव से सजा हुआ खड़ा रहता था।

5.48.11

अत्र सार्धं कुटुम्बेन जन्यत्रेषु कुटुम्बिना। नृत्तं तत्कृतमुन्नादं कल्लोलैर्जलधाविव ॥ ११ ॥

atra sārdhaṃ kuṭumbena janyatreṣu kuṭumbinā | nṛttaṃ tatkṛtamunnādaṃ kallolairjaladhāviva || 11 ||

Here, together with the whole family and the householder, there was dancing at the wedding feasts, its roar like the waves of the sea.

यहाँ, पूरे परिवार और घर के मुखिया के साथ, शादी के उत्सवों में नाच होता था, जिसका शोर समंदर की लहरों जैसा गूंजता था।

5.48.12

अत्रोड्डयनलोलानां काकभासपत्त्रिणाम्। धृतानामन्यदाशार्थं ग्रथितं वंशपञ्जरम्॥ १२॥

atroud̤d̤ayanalolānāṃ kākabhāsapattriṇām | dhṛtānāmanyadāśārthaṃ grathitaṃ vaṃśapañjaram || 12 ||

Here a bamboo cage was woven to hold crows and hawks eager to fly off, kept there for hunting another day.

यहाँ कौवों और बाज़ों को, जो उड़ जाने को बेचैन रहते थे, किसी और दिन शिकार के लिए रखने को बांस का पिंजरा बुना गया था।

5.48.13

श्रीवसिष्ठ उवाच। एवंप्रायाः स्मरन्गाधिः प्राक्तनीः श्वपचक्रियाः। विस्मयोत्कम्पितशिरा धातुश्चेष्टां परामृशत्॥ १३॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃprāyāḥ smarangādhiḥ prāktanīḥ śvapacakriyāḥ | vismayotkampitashirā dhātuśceṣṭāṃ parāmṛśat || 13 ||

Sri Vasishtha said: Remembering in this way his past deeds as an outcaste, Gadhi, his head trembling with wonder, thought about the working of the Creator.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस तरह अपने पुराने चांडाल जीवन के कामों को याद करते हुए, गाधि का सिर अचरज से कांप उठा, और वह विधाता के इस खेल के बारे में सोचने लगा।

5.48.14

चचाल तस्माद्दीर्घेण देशात्कालेन कार्यवित्। भूत्मण्डलमुत्सृज्य प्राप देशान्तरं क्रमात्॥ १४॥

cacāla tasmāddīrghēṇa deśātkālena kāryavit | bhūtmaṇd̤alamutsṛjya prāpa deśāntaraṃ kramāt || 14 ||

He then set out from that place, knowing well what he had to do; after a long time, leaving that whole region behind, he came step by step to another land.

फिर वह उस जगह से चल पड़ा, यह अच्छी तरह जानते हुए कि उसे क्या करना है; लंबे समय बाद, उस पूरे इलाके को पीछे छोड़कर, वह धीरे-धीरे एक दूसरे देश में जा पहुंचा।

5.48.15

समुल्लङ्घ्य नदीशैलमण्डलारण्यसंततिम्। आससाद तुषाराद्रिरत्नं किल जनास्पदम्॥ १५॥

samullaṅghya nadīśailamaṇd̤alāraṇyasaṃtatim | āsasāda tuṣārādriratnaṃ kila janāspadam || 15 ||

Crossing over rivers, mountains, whole regions, and forest after forest, he reached the jewel of the snow-mountains, a place truly filled with people.

नदियों, पहाड़ों, पूरे इलाकों और एक के बाद एक जंगल पार करके, वह बर्फीले पहाड़ों के उस रत्न तक पहुंचा, जो सच में लोगों से भरा था।

5.48.16

तत्र प्राप महीपालनगरं नगसंनिभम्। जगद्भ्रमणखिन्नात्मा स्वर्लोकमिव नारदः॥ १६॥

tatra prāpa mahīpālanagaraṃ nagasaṃnibham| jagadbhramaṇakhinātmā svarlokamiva nāradaḥ || 16 ||

There he came to a king's city, as grand as a mountain, his mind tired from wandering the earth, like Narada reaching heaven.

वहाँ वह एक राजा के नगर में पहुंचा, जो पहाड़ जैसा भव्य था, धरती में घूम-घूमकर थका हुआ, जैसे नारद स्वर्ग पहुंचे हों।

5.48.17

अथात्मनानुभूतानि दृष्टान्यासेवितानि च । स्थानानि नगरे पश्यन्पप्रच्छ जनमादृतः ॥ १७ ॥

athātmanānubhūtāni dṛṣṭānyāsevitāni ca | sthānāni nagare paśyanpapraccha janamādṛtaḥ || 17 ||

Then, seeing in that city the very places he had once experienced, seen, and lived in, he asked the people there, treating them with respect.

फिर, उस नगर में उन्हीं जगहों को देखकर जिन्हें उसने खुद अनुभव किया था, देखा था, और जहाँ रहा था, उसने वहाँ के लोगों से आदर के साथ पूछा।

5.48.18

साधो स्मरसि किंचित्त्वमिह श्वपचमीश्वरम् । यदि जानासि तत्त्वं मे वर्णयाशु यथाविधि ॥ १८ ॥

sādho smarasi kiṃcittvamih śvapacamīśvaram | yadi jānāsi tattvaṃ me varṇayāśu yathāvidhi || 18 ||

Good sir, do you at all remember an outcaste here who was once a ruler? If you know the truth of it, tell it to me quickly, in full.

भले मानुष, क्या तुम्हें यहाँ का कोई चांडाल राजा याद है? अगर तुम इसकी सच्चाई जानते हो, तो मुझे जल्दी और पूरी तरह बताओ।

5.48.19

नागरा ऊचुः । अभूदिहाष्टौ वर्षाणि श्वपचो भूमिपो द्विज । राजत्वमर्पितं यस्य नाम मङ्गलहस्तिना ॥ १९ ॥

nāgarā ūcuḥ | abhūdihaṣṭau varṣāṇi śvapaco bhūmipo dvija | rājatvamarpitaṃ yasya nāma maṅgalahastinā || 19 ||

The townspeople said: For eight years, O brahmin, there lived here an outcaste who was our king; kingship, indeed, had been given to him by the auspicious elephant.

नगरवासियों ने कहा: हे ब्राह्मण, यहाँ आठ साल तक एक चांडाल हमारा राजा रहा; उसे राजपद उस शुभ हाथी ने ही दिया था।

5.48.20

अन्ते च संपरिज्ञातः स प्रविष्टो हुताशनम् । अद्य द्वादशवर्षाणि समतीतानि तापस ॥ २० ॥

ante ca saṃparijñātaḥ sa praviṣṭo hutāśanam | adya dvādaśavarṣāṇi samatītāni tāpasa || 20 ||

And in the end he was found out, and he entered the fire; today, twelve years have passed since then, O ascetic.

और आख़िर में उसकी असलियत जान ली गई, और वह आग में समा गया; हे तपस्वी, आज उसे बारह साल बीत चुके हैं।

5.48.21

यं यं पृच्छत्यसौ गाधिर्जनं जातकुतूहलः । तस्य तस्य मुखादेव श्रृणोत्यास्वादयत्यपि ॥ २१ ॥

yaṃ yaṃ pṛcchatyasau gādhirjanaṃ jātakutūhalaḥ | tasya tasya mukhādeva śr̥ṇotyāsvādayatyapi || 21 ||

Whatever person Gadhi asked, filled with curiosity, from the mouth of each one he heard the very same account, and he even relished it.

गाधि जिस-जिस आदमी से पूछता, उत्सुकता से भरकर, हर एक के मुंह से वही बात सुनता, और उसका आनंद भी लेता।

5.48.22

अथापश्यत्पुरे तस्मिन्नृपं सबलवाहनम् । देवं चक्रधरं विष्णुं मन्दिरान्निर्गतं बहिः ॥ २२ ॥

athāpaśyatpure tasminnṛpaṃ sabalavāhanam | devaṃ cakradharaṃ viṣṇuṃ mandirān nirgataṃ bahiḥ || 22 ||

Then in that city he saw a king coming out of the palace with his army and his mounts, like the god Vishnu who carries the discus, stepping outside.

फिर उस नगर में उसने एक राजा को महल से बाहर आते देखा, अपनी सेना और सवारियों के साथ, जैसे चक्र धारण किए भगवान विष्णु बाहर निकले हों।

5.48.23

स दृष्ट्वा स्थगिताकाशं चलरेणुपयोधरैः । प्राक्तनीं राजतां स्मृत्वा समुवाचातिविस्मयः ॥ २३ ॥

sa dṛṣṭvā sthagitākāśaṃ calareṇupayodharaiḥ | prāktanīṃ rājatāṃ smṛtvā samuvācātivismayaḥ || 23 ||

Seeing the sky blotted out by the swirling dust of that procession, and remembering his own former kingship, he was struck with great wonder, and spoke.

उड़ती धूल से ढके आकाश को देखकर, और अपने पुराने राजपद को याद करके, वह बहुत अचरज में पड़ गया और बोलने लगा।

5.48.24

इमास्ताः कीरकामिन्यः पद्मगर्भोपमत्वचः । कनकद्रववर्णिन्यो लोलनीलोत्पलेक्षणाः ॥ २४ ॥

imāstāḥ kīrakāminyaḥ padmagarbhopamatvacaḥ | kanakadravavarṇinyo lolanīlotpalekṣaṇāḥ || 24 ||

Here are those women of Kira, their skin like the inside of a lotus, their color like molten gold, their eyes like restless blue lotuses.

ये रहीं किरा देश की वे स्त्रियां, जिनकी त्वचा कमल की भीतरी पंखड़ी जैसी है, जिनका रंग पिघले सोने जैसा है, और जिनकी आंखें चंचल नीले कमल जैसी हैं।

5.48.25

चामरौघा इमे चन्द्रकरसंपिण्डपाण्डुराः । स्थिरनिर्झरसंकाशाः काशपुष्पचया इव ॥ २५ ॥

cāmaraugāḥ ime candrakarasaṃpiṇḍapāṇḍurāḥ | sthiranirjharasaṃkāśāḥ kāśapuṣpacayā iva || 25 ||

These are the many chowries, white as clustered moonbeams, like a motionless waterfall, like heaps of kasha flowers.

ये रहे बहुत सारे चंवर, जो चांदनी की तरह सफेद हैं, जैसे कोई ठहरा हुआ झरना, जैसे कास के फूलों के ढेर।

5.48.26

कान्ताभिरवधूयन्ते बालव्यजनराजयः । इमास्ता वनवल्लीभिर्दीप्यमाना इवर्द्धयः ॥ २६ ॥

kāntābhiravadhūyante bālavyajanarājayaḥ | imāstā vanavallībhirdīpyamānā ivaṛddhayaḥ || 26 ||

Lovely women wave rows of young fans, and they shine like glowing goddesses of plenty among forest vines.

सुंदर स्त्रियां नए पंखों की कतारें हिला रही हैं, और वे ऐसे चमकती हैं जैसे जंगल की बेलों के बीच चमकती हुई समृद्धि की देवियां।

5.48.27

इमास्ता मत्तमातङ्गघटा घटितदिक्तटाः । संकल्पपादपा मेरोरिव श्रृङ्गपरम्पराः ॥ २७ ॥

imāstā mattamātaṅgaghaṭā ghaṭitadiktaṭāḥ | saṃkalpapādapā meroriva śṛṅgaparamparāḥ || 27 ||

Here are herds of rutting elephants that fill the horizon, and wish-granting trees like rows of peaks on Mount Meru.

ये रहे मस्त हाथियों के झुंड, जो दिशाओं के छोर तक फैले हैं, और इच्छा पूरी करने वाले पेड़, मानो मेरु पर्वत की चोटियों की कतारें हों।

5.48.28

एते ते यमवारीशकुबेरप्रतिमौजसः । सामन्ता वासवस्येव लोकपाला महीभृतः ॥ २८ ॥

ete te yamavārīśakuberapratimaujasaḥ | sāmantā vāsavasyeva lokapālā mahībhṛtaḥ || 28 ||

These are feudatory kings, as powerful as Yama, Varuna, and Kubera, kings like Indra's own guardians of the world.

ये रहे अधीन राजा, जो यम, वरुण और कुबेर जितने शक्तिशाली हैं, मानो इंद्र के अपने लोकपाल राजा हों।

5.48.29

इमास्ताः सर्ववस्त्वोघाः सर्वाभिमतदास्ततः । कल्पवृक्षलताकुञ्जसुन्दर्यो गृहपङ्क्तयः ॥ २९ ॥

imāstāḥ sarvavastvoghāḥ sarvābhimatadāstatāḥ | kalpavṛkṣalatākuñjasundaryo gṛhapaṅktayaḥ || 29 ||

Here are rows of houses, filled with every good thing, giving all that is wished for, made beautiful with groves of wish-granting trees and vines.

ये रहीं घरों की कतारें, जो हर अच्छी चीज़ से भरी हैं, जो मनचाही हर वस्तु देती हैं, और जो इच्छा पूरी करने वाले पेड़ों और बेलों के कुंजों से सुंदर बनी हैं।

5.48.30

इदं तत्कीरजनताराज्यं प्राग्भुक्तमद्य मे । आत्मजन्मान्तराचार इव प्रत्यक्षतां गतम् ॥ ३० ॥

idaṃ tatkīrajanatārājyaṃ prāgbhuktaṃ adya me | ātmajanmāntarācāra iva pratyakṣatāṃ gatam || 30 ||

This is that kingdom of the Kira people that I once ruled, and now it stands before my eyes again, like something from a former life of my own.

यह वही किरा प्रजा का राज्य है, जिसे मैंने पहले भोगा था, और आज यह फिर मेरी आंखों के सामने ऐसे आ खड़ा हुआ है जैसे मेरे ही किसी पिछले जन्म की बात हो।

5.48.31

सत्यं स्वप्न इवायं मे जाग्रद्भूतः पुनः स्थितः । न जाने किंकृतोत्थाना मायेयं प्रविजृम्भते ॥ ३१ ॥

satyam svapna ivāyam me jāgradbhūtaḥ punaḥ sthitaḥ | na jāne kimkṛtothānā māyeyam pravijṛmbhate || 31 ||

Truly, this is like a dream to me, standing here again while I am awake. I do not know from what cause this illusion has arisen and spread out before me.

सच में, यह मेरे लिए सपने जैसा है, जो जागते हुए भी फिर सामने खड़ा हो गया है। मुझे नहीं पता कि यह माया किस कारण से उठी है और इस तरह फैल गई है।

5.48.32

अहो नु खलु दीर्घेण मनोमोहेन वल्गता । वैवश्यमुपनीतोऽहं जालेनेव शकुन्तकः ॥ ३२ ॥

aho nu khalu dīrgheṇa manomohēna valgatā | vaivaśyamupanīto'haṃ jālēnēva śakuntakaḥ || 32 ||

Ah, how strange, by a long, darting delusion of my own mind I have been made helpless, like a little bird caught in a net.

अरे, कितनी अजीब बात है, अपने ही मन के इस लंबे और भटकते हुए भ्रम ने मुझे बेबस कर दिया है, जैसे जाल में फंसी कोई छोटी चिड़िया।

5.48.33

हा धिक्कष्टमबुद्धं मे मनो वासनया हतम्। पश्यति भ्रमजालानि विततानि शिशोरिव ॥ ३३ ॥

hā dhikkaṣṭamabuddhaṃ me mano vāsanayā hatam | paśyati bhramajālāni vitatāni śiśoriva || 33 ||

Alas, how painful, my unwise mind, struck down by its own old habits, sees widespread webs of delusion, like a child.

हाय, कितना दुख है, मेरा यह नासमझ मन अपनी ही पुरानी आदतों से मारा हुआ, एक बच्चे की तरह चारों ओर फैले भ्रम के जाल देखता है।

5.48.34

एषा हि माया महती तेन मे चक्रधारिणा। दर्शितेत्यधुना साधु मया स्मृतमखण्डितम्॥ ३४ ॥

eṣā hi māyā mahatī tena me cakradhāriṇā | darśitetyadhunā sādhu mayā smṛtamakhṇḍitam || 34 ||

This indeed is a great illusion, shown to me by the wheel-bearing Lord. Now I have recalled it well, and I understand it completely.

यह सचमुच एक बड़ी माया है, जो चक्र धारण करने वाले प्रभु ने मुझे दिखाई है। अब मैंने इसे अच्छी तरह याद कर लिया है और इसे पूरी तरह समझ लिया है।

5.48.35

तदिदानीं तथा यत्नं करिष्ये गिरिकन्दरे। यथाकुसंभ्रमस्यास्य जाने जन्म तथा स्थितिम्॥ ३५ ॥

tadidānīṃ tathā yatnaṃ kariṣye girikandare | yathākusambhramasya'sya jāne janma tathā sthitim || 35 ||

So now I will make such effort in a mountain cave, that I may know the origin and the continuing of this false confusion.

इसलिए अब मैं किसी पहाड़ की गुफा में ऐसा प्रयास करूंगा, जिससे मैं इस झूठे भ्रम का आरंभ और उसका टिके रहना, दोनों जान सकूं।

5.48.36

इति संचिन्त्य नगरादगाधिस्तस्माज्जगाम ह। कन्दरं प्राप्य शैलस्य तस्थौ विश्रान्तसिंहवत्॥ ३६ ॥

iti saṃcintya nagarādgādhistasmājjagāma ha | kandaraṃ prāpya śailasya tasthau viśrāntasiṃhavat || 36 ||

Thinking this, Gadhi left that city and went away. Reaching a mountain cave, he settled there like a lion at rest.

यह सोचकर गाधि उस नगर से चल पड़े। पहाड़ की एक गुफा में पहुंचकर वे वहां ऐसे ठहर गए जैसे कोई विश्राम करता हुआ सिंह।

5.48.37

तत्र संवत्सरं सार्धं पयश्चुलुकभोजनम्। तपश्चक्रे महातेजास्तुष्टये शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३७ ॥

tatra saṃvatsaraṃ sārdhaṃ payaśculukabhojanam | tapaścakre mahātejāstuṣṭaye śārṅgadhanvanaḥ || 37 ||

There, for a year and a half, eating nothing but sips of water, the radiant Gadhi performed austerities to please Vishnu, the bearer of the Sharnga bow.

वहां डेढ़ साल तक, सिर्फ चुल्लू भर पानी पीकर, तेजस्वी गाधि ने शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले विष्णु को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की।

5.48.38

अथास्य पुण्डरीकाक्षः पयोमूर्तिरुपाययौ। प्रसादमुत्पलश्यामः शरदीव महाहदः ॥ ३८ ॥

athāsya puṇḍarīkākṣaḥ payomūrtirupāyayau | prasādamutpalaśyāmaḥ śaradīva mahāhadaḥ || 38 ||

Then the lotus-eyed Vishnu, his form like water, dark as a blue lotus, came to him with grace, like a great lake in autumn.

तब कमल जैसी आंखों वाले विष्णु, जिनका रूप पानी जैसा और रंग नीले कमल जैसा गहरा था, कृपापूर्वक उनके पास आए, मानो शरद ऋतु की कोई बड़ी झील।

5.48.39

तमाजगाम शैलेन्द्रकन्दरं द्विजमन्दिरम्। पयोधरवदच्छाच्छच्छविर्व्योमन्यथावसत्॥ ३९॥

tamājagāma śailendrakandaraṃ dvijamandiram | payodharavadacchācchacchavirvyomanyathāvasat || 39 ||

He came to that mountain cave, the hermitage of the Brahmin, bright and clear like a cloud that had been resting in the sky.

वे उस पहाड़ की गुफा में आए, जो उस ब्राह्मण का आश्रम था, वे ऐसे उज्ज्वल और स्वच्छ थे जैसे आकाश में ठहरा हुआ कोई बादल।

5.48.40

श्रीभगवानुवाच। गाधे कच्चित्त्वया दृष्टा माया मम गरीयसी। दृष्टं त्वया जगज्जालचेष्टितं दैष्टिकात्मकम्॥ ४०॥

śrībhagavānuvāca | gādhe kaccittvayā dṛṣṭā māyā mama garīyasī | dṛṣṭaṃ tvayā jagajjālacēṣṭitaṃ daiṣṭikātmakam || 40 ||

The Lord said: Gadhi, have you seen my great illusion? Have you seen how the net of the world works, and that its nature is destiny?

भगवान ने कहा, गाधि, क्या तुमने मेरी यह महान माया देखी? क्या तुमने देखा कि संसार का यह जाल कैसे चलता है, और यह कि इसका स्वभाव भाग्य से बंधा है?

5.48.41

चित्ताभिगत एतस्मिन्प्राप्ते सम्यगनिन्दितः। तपो गिरितटे कुर्वन्किमन्यदभिवाञ्छसि॥ ४१॥

cittābhigata etasminprāpte samyaganinditaḥ | tapo giritaṭe kurvankimanyadabhivāñchasi || 41 ||

Now that this has been truly grasped by your mind, blameless one, performing austerity on the mountainside, what else do you wish for?

हे निर्दोष, अब जब तुमने इस बात को अपने मन में सच में समझ लिया है, और पहाड़ की ढलान पर तपस्या कर रहे हो, तो अब और क्या चाहते हो?

5.48.42

श्रीवसिष्ठ उवाच। एवं वदन्तमालोक्य हरिं गाधिर्द्विजोत्तमः। अर्चां कुसुमपूरेण पादयोः पर्यपूरयत्॥ ४२॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ vadantamālokya hariṃ gādhirdvijottamaḥ | arcāṃ kusumapūreṇa pādayoḥ paryapūrayat || 42 ||

Sri Vasishtha said: Seeing Hari speak thus, Gadhi, best of Brahmins, worshipped him fully, covering his feet with a heap of flowers.

श्री वसिष्ठ ने कहा, हरि को यह कहते देखकर, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ गाधि ने उनकी पूरी पूजा की, और उनके चरणों को फूलों के ढेर से भर दिया।

5.48.43

दत्त्वार्घ्यं कीर्णकुसुमः प्रणम्याशु प्रदक्षिणैः। विष्णुमाह द्विजो वाक्यमम्भोदमिव चातकः॥ ४३॥

dattvārdhyaṃ kīrṇakusumaḥ praṇamyāśu pradakṣiṇaiḥ | viṣṇumāha dvijo vākyamambhodamiva cātakaḥ || 43 ||

Having offered the ritual water and covered him with flowers, having quickly bowed and walked around him, the Brahmin spoke these words to Vishnu, like a rain bird crying out to a cloud.

अर्घ्य देकर, फूलों से ढककर, जल्दी से प्रणाम करके और परिक्रमा करके, उस ब्राह्मण ने विष्णु से ये शब्द कहे, जैसे कोई पपीहा बादल से पुकारता है।

5.48.44

गाधिरुवाच । देव यैषा त्वया माया दर्शिताऽतितमोमयी । महीं प्रातरिवादित्यस्तां मे प्रकटतां नय ॥ ४४ ॥

gādhiruvāca | deva yaiṣā tvayā māyā darśitā'titamomayī | mahīṃ prātariivādityastāṃ me prakaṭatāṃ naya || 44 ||

Gadhi said: Lord, this illusion you showed me is full of deep darkness. As the sun at dawn reveals the earth, so make it clear and plain to me.

गाधि ने कहा, हे प्रभु, जो माया आपने मुझे दिखाई, वह घोर अंधकार से भरी है। जैसे सुबह सूरज धरती को उजागर करता है, वैसे ही इसे मेरे लिए साफ और स्पष्ट कर दीजिए।

5.48.45

भ्रमं यं पश्यति मनो वासनामलमालितम् । स्वप्नवत्स कथं देव जाग्रत्यपि हि दृश्यते ॥ ४५ ॥

bharamaṃ yaṃ paśyati mano vāsanāmalamālitam | svapnavatsa kathaṃ deva jāgratyapi hi dṛśyate || 45 ||

The delusion which the mind sees, wreathed in the stain of its own desires, how, Lord, is that seen, like a dream, even while awake?

जो भ्रम मन देखता है, अपनी ही वासनाओं के मैल से लिपटा हुआ, वह, हे प्रभु, सपने की तरह जागते हुए भी कैसे दिखाई देता है?

5.48.46

मुहूर्तमुपलब्धश्च जलान्तः स्वप्नविभ्रमः । कथं प्रत्यक्षतां प्राप्तो ममामलपदास्पद ॥ ४६ ॥

muhūrtamupalabdhaśca jalāntaḥ svapnavibhramaḥ | kathaṃ pratyakṣatāṃ prāpto mamāmalapadāspada || 46 ||

And this dream-like confusion, felt for only a moment within the water, how has it become so real for me, refuge of the pure and stainless state?

और यह सपने जैसा भ्रम, जो पानी के भीतर बस एक पल के लिए अनुभव हुआ था, हे निर्मल पद के आश्रय, मेरे लिए यह सच कैसे बन गया?

5.48.47

दैर्घ्यादैर्घ्येऽस्य कालस्य शरीरस्य भवाभवाः । कथमन्तस्थिता न स्युर्मदीयैः श्वपचभ्रमैः ॥ ४७ ॥

dairghyādairghye'sya kālasya śarīrasya bhavābhavāḥ | kathamantasthitā na syurmadiyaḥ śvapacabhramaiḥ || 47 ||

Whether that time was long or short, how could a body's births and deaths not fit inside these delusions of mine, of being an outcaste?

चाहे वह समय लंबा रहा हो या छोटा, मेरे इन भ्रमों के भीतर, कि मैं एक अछूत हूं, किसी शरीर के जन्म और मृत्यु क्यों न समा गए होंगे?

5.48.48

श्रीभगवानुवाच । गाधे स्वाधिविधूतस्य स्वरूपस्यैतदात्मकम् । चेतसोऽदृष्टतत्त्वस्य यत्पश्यत्युरुविभ्रमम् ॥ ४८ ॥

śrībhagavānuvāca | gādhe svādhividhūtasya svarūpasyaitadātmakam | cetaso'dṛṣṭatattvasya yatpaśyatyuruvibhramam || 48 ||

Sri Bhagavan said: Deep within, the true self takes on this very shape when it is stirred by its own false idea. This is what a mind that has not seen the truth sees as a huge illusion.

श्री भगवान ने कहा: भीतर गहराई में भी, सच्चा स्वरूप अपने ही झूठे विचार से हिलकर ऐसा ही रूप ले लेता है। जिस मन ने अभी तक सच नहीं देखा, वह इसे एक बड़ा भ्रम मानकर देखता है।

5.48.49

बहिर्न किंचिदप्यस्ति खाद्यब्ध्युर्वीदिगादिकम्। एतत्स्वचित्त एवास्ति पत्रपुञ्जमिवाङ्कुरे ॥ ४९ ॥

bahirna kiṃcidapyasti khādyabdhyurvīdigādikam | etatsvacitta evāsti patrapuñjamivāṅkure || 49 ||

Nothing at all exists outside - no sky, no ocean, no earth, no directions, nothing like that. All this exists only in one's own mind, the way a whole bunch of leaves exists within a sprout.

बाहर कुछ भी नहीं है - न आकाश, न समुद्र, न धरती, न दिशाएँ, ऐसा कुछ भी नहीं। यह सब केवल अपने मन में है, जैसे पत्तों का पूरा गुच्छा एक अंकुर के भीतर होता है।

5.48.50

फलादि स्फारतामेति यथैव बहिरङ्कुरात्। बहिः प्रकटतां याति तथा पृथ्व्यादिचेतसः ॥ ५० ॥

phalādi sphāratāmeti yathaiva bahiraṅkurāt | bahiḥ prakaṭatāṃ yāti tathā pṛthvyādicetasaḥ || 50 ||

Just as fruit and the rest grow outward from a sprout and spread out, in the same way the earth and everything else become visible outward from the mind.

जैसे फल आदि अंकुर से बाहर बढ़कर फैल जाते हैं, वैसे ही धरती आदि सब मन से बाहर होकर दिखाई देने लगते हैं।

5.48.51

सत्यं पृथ्व्यादि चित्तस्थं न बहिष्ठं कदाचन। अङ्कुरस्थः पल्लवस्तु तस्माद्यस्मात्फलश्रियः ॥ ५१ ॥

satyam pṛthvyādi cittasthaṃ na bahiṣṭhaṃ kadācana | aṅkurasthaḥ pallavastu tasmādyasmātphalaśriyaḥ || 51 ||

In truth, the earth and everything else exist only in the mind; they are never outside it. The tender shoot that lies within the sprout is exactly what the fruit's beauty later grows from.

सच तो यह है कि धरती वगैरह सब मन में ही हैं, वे कभी बाहर नहीं होतीं। अंकुर के भीतर छिपी कोंपल ही वह है जिससे आगे चलकर फल की शोभा उगती है।

5.48.52

रूपालोकमनस्कारतत्तताकालक्रियात्मकम्। कुम्भकारो घटमिव चेतो हन्ति करोति च ॥ ५२ ॥

rūpālokamanaskāratattākālakriyātmakam | kumbhakāro ghaṭamiva ceto hanti karoti ca || 52 ||

This thing is made of shape, appearance, attention, its own being, time, and action, and the mind destroys it and makes it again, just as a potter destroys and makes a pot.

यह चीज़ रूप, दिखावट, ध्यान, अपनी सत्ता, समय और क्रिया से बनी है, और मन इसे मिटाता है और फिर से बनाता है, ठीक वैसे ही जैसे कुम्हार घड़े को मिटाकर फिर से बनाता है।

5.48.53

आबालमेतत्पुरुषैः सर्वैरेवानुभूयते। स्वप्नभ्रममदावेगरागरोगादिदृष्टिषु ॥ ५३ ॥

ābālametatpuruṣaiḥ sarvairevānubhūyate | svapnabhramamadāvegarāgarogādidṛṣṭiṣu || 53 ||

All people experience this, even from childhood, in the sights seen during dreams, confusion, intoxication, excitement, attachment, sickness, and other such states.

सपने में, भ्रम में, नशे में, उत्तेजना में, आसक्ति में, बीमारी में - ऐसी हालतों में जो कुछ दिखता है, उसे सब लोग बचपन से ही अनुभव करते हैं।

5.48.54

चित्ते वृत्तान्तलक्षाणि संस्थितान्यात्तवासने । पादपे फलपुष्पाणि मूलाक्रान्तावनाविव ॥ ५४ ॥

citte vṛttāntalakṣāṇi saṃsthitānyāttavāsane | pādape phalapuṣpāṇi mūlākrāntāvanāviva || 54 ||

In a mind that carries its impressions, hundreds of thousands of events lie ready, the way fruits and flowers lie ready in a tree whose root has taken hold in the ground.

जिस मन में संस्कार बसे होते हैं, उसमें लाखों घटनाएँ पहले से मौजूद रहती हैं, जैसे किसी पेड़ में फल और फूल पहले से मौजूद रहते हैं, जिसकी जड़ ज़मीन में जमी होती है।

5.48.55

त्यक्तावनेर्विटपिनो भूयः पत्राणि नो यथा । निर्वासनस्य जीवस्य पुनर्जन्मादि नो तथा ॥ ५५ ॥

tyaktāvanerviṭapino bhūyaḥ patrāṇi no yathā | nirvāsanasya jīvasya punarjanmādi no tathā || 55 ||

Just as a tree pulled out of the ground never grows leaves again, a soul with no impressions left in it never takes rebirth again.

जैसे ज़मीन से उखड़ा हुआ पेड़ फिर कभी पत्ते नहीं उगाता, वैसे ही जिस जीव में कोई संस्कार बाकी नहीं बचता, वह फिर कभी जन्म नहीं लेता।

5.48.56

यत्रानन्तजगज्जालं संस्थितं तेन तेजसा । श्वपचत्वं प्रकटितं यदि तद्विस्मयोऽत्र किम् ॥ ५६ ॥

yatrānantajagajjālaṃ saṃsthitaṃ tena tejasā | śvapacatvaṃ prakaṭitaṃ yadi tadvismayo'tra kim || 56 ||

By that same light in which the whole endless web of worlds rests, if it showed you the state of being an outcaste, what is there to wonder at in that?

जिस एक ही रोशनी में संसार का यह अनंत जाल टिका हुआ है, अगर उसी ने तुम्हें चांडाल होने की दशा दिखा दी, तो इसमें अचरज की क्या बात है।

5.48.57

अवबुद्धा श्वपचता प्रतिभासवशात्त्वया । यथैवानल्पसंरम्भा विचित्राधिविकारदा ॥ ५७ ॥

avabuddhā śvapacatā pratibhāsavaśāttvayā | yathaivānalpasamrambhā vicitradhivikāradā || 57 ||

You realized your state as an outcaste only through how it appeared to you - an intensely vivid state that brought about many extraordinary changes.

तुमने अपने चांडाल होने की स्थिति को केवल उसके आभास से ही समझा - एक ऐसी गहरी और तीव्र स्थिति जिसने कई अजीबोगरीब बदलाव ला दिए।

5.48.58

तथैवातिथिरायातो भुक्तवान्सुप्तवान्द्विजः । कथां कथितवांश्चेति दृष्टवानसि संभ्रमम् ॥ ५८ ॥

tathaivātithirāyāto bhuktavānsuptavāndvijaḥ | kathāṃ kathitavāṃśceti dṛṣṭavānasi saṃbhramam || 58 ||

In the same way: a guest arrived, a brahmin, who ate, slept, and told a tale - this too you have seen in a confused rush.

उसी तरह: एक अतिथि आया, एक ब्राह्मण, जिसने खाया, सोया और एक कथा सुनाई - यह भी तुमने एक उलझन भरी हड़बड़ी में देखा।

5.48.59

तथैवोत्थाय गच्छामि प्राप्तोऽहं भूतमण्डलम्। इमे भूता इमे ग्रामा दृष्टवानसि संभ्रमम्॥ ५९॥

tathaivottāya gacchāmi prāpto'haṃ bhūtamaṇḍalam | ime bhūtā ime grāmā dṛṣṭavānasi saṃbhramam || 59 ||

In the same way: 'I get up and go; I have reached Bhutamandala. These are its people, these are villages' - this too you have seen in a confused rush.

उसी तरह: 'मैं उठकर चलता हूँ; मैं भूतमण्डल पहुँच गया हूँ। ये इसके लोग हैं, ये गाँव हैं' - यह भी तुमने एक उलझन भरी हड़बड़ी में देखा।

5.48.60

तथैवेदं कटंजस्य प्राक्तनं लुठितं गृहम्। जनैरुक्तं कटंजस्य दृष्टवानसि संभ्रमम्॥ ६०॥

tathaivedaṃ kaṭaṃjasya prāktanaṃ luṭhitaṃ gṛham | janairuktaṃ kaṭaṃjasya dṛṣṭavānasi saṃbhramam || 60 ||

In the same way: this is Katanja's old, fallen-down house - so people said it was Katanja's - this too you have seen in a confused rush.

उसी तरह: यह कटंज का पुराना, गिरा हुआ घर है - लोगों ने कहा कि यह कटंज का ही है - यह भी तुमने एक उलझन भरी हड़बड़ी में देखा।

5.48.61

तथैव कीरनगरं प्राप्तोऽस्मि कथितं च मे। कीरैः श्वपचराजत्वं दृष्टवानसि सभ्रमम्॥ ६१॥

tathaiva kīranagaraṃ prāpto'smi kathitaṃ ca me | kīraiḥ śvapacarājatvaṃ dṛṣṭavānasi sabhramam || 61 ||

In the same way: 'I have reached Kira city' - and it was told to me that the Kiras had made me king of the outcastes - this too you have seen in a confused rush.

उसी तरह: 'मैं कीर नगर पहुँच गया हूँ' - और मुझे बताया गया कि कीरों ने मुझे चांडालों का राजा बना दिया है - यह भी तुमने एक उलझन भरी हड़बड़ी में देखा।

5.48.62

एवं सर्वं त्वया दृष्टं मोहजालं द्विजोत्तम। यत्सत्यमिति जानासि यच्चासत्यमवैषि च॥ ६२॥

evaṃ sarvaṃ tvayā dṛṣṭaṃ mohajālaṃ dvijottama | yatsatyamiti jānāsi yaccāsatyamavaishi ca || 62 ||

O best of brahmins, in this way you have seen this whole net of illusion - you know what is real, and you also understand what is unreal.

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, इस तरह तुमने भ्रम के इस पूरे जाल को देखा है - जो सच है उसे तुम जानते हो, और जो झूठ है उसे भी तुम समझते हो।

5.48.63

वासनावलितं चेतः किं नामान्तर्न पश्यति। साधितं दृश्यते स्वप्ने वर्षसाध्यं प्रयोजनम्॥ ६३॥

vāsanāvalitaṃ cetaḥ kiṃ nāmāntarn na paśyati | sādhitaṃ dṛśyate svapne varṣasādhyaṃ prayojanam || 63 ||

A mind caught up in its own impressions - what will it not see within itself? Even a task that would take a whole year is seen accomplished in a single dream.

अपने संस्कारों में उलझा हुआ मन भीतर क्या नहीं देख लेता? एक सपने में ही वह काम पूरा हुआ दिख जाता है, जिसमें सचमुच पूरा एक साल लग जाता।

5.48.64

नातिथिर्न च भूतास्ते न कीरास्ते न तत्पुरम्। सर्वमेतन्महाबुद्धे व्यामोहादृष्टवानसि॥ ६४॥

nātithirna ca bhūtāste na kīrāste na tatpuram | sarvametanmahābuddhe vyāmohāddṛṣṭavānasi || 64 ||

There was no guest, no spirits, no Kiras, no such city - O wise one, you have seen all this out of delusion.

न कोई अतिथि था, न कोई भूत, न कोई कीर, न कोई ऐसा नगर - हे बुद्धिमान, यह सब तुमने भ्रम के कारण देखा।

5.48.65

गच्छता भवता भूतदेशं पान्थेन कन्दरे । कस्मिंश्चिद्विप्र विश्रान्तं कुरङ्गेणेव कानने ॥ ६५ ॥

gacchatā bhavatā bhūtadeśaṃ pānthena kandare | kasmiṃścidvipra viśrāntaṃ kuraṅgeṇeva kānane || 65 ||

O brahmin, while you were travelling, on your way as a wayfarer toward the land of spirits, you rested for a while in a cave, like a deer resting in the forest.

हे ब्राह्मण, जब तुम एक यात्री की तरह भूत-प्रदेश की ओर जा रहे थे, तो तुम किसी गुफा में ठहर गए, जैसे कोई हिरण जंगल में विश्राम करता है।

5.48.66

तत्रैव श्रममूढत्वादिदं तद्भूतमण्डलम् । इदं तच्छ्वपचागारमिति दृष्टं न सत्यतः ॥ ६६ ॥

tatraiva śramamūḍhatvādidam tadbhūtamaṇḍalam| idam tacchvapacāgāramiti dṛṣṭam na satyataḥ || 66 ||

Right there, tired and confused, you saw 'this is Bhutamandala' and 'this is that outcaste's house' - but none of it was real.

वहीं थकान और उलझन में तुमने देखा - 'यह भूतमण्डल है', 'यह वही चांडाल का घर है' - पर यह सब सच नहीं था।

5.48.67

तथैव कीरनगरं दृष्टवानसि तत्तथा । तदैव चान्यदा वापि मायार्थं हि भवान्द्विज ॥ ६७ ॥

tathaiva kīranagaram dṛṣṭavānasi tattathā| tadaiva cānyadā vāpi māyārtham hi bhavāndvija || 67 ||

In the same way, you saw Kira city and took it to be real - whether that happened then or at some other time, O brahmin, all of it was only to show you what illusion is.

उसी तरह तुमने कीर नगर को देखा और उसे सच मान लिया - चाहे वह तभी हुआ हो या किसी और समय, हे ब्राह्मण, यह सब केवल तुम्हें माया दिखाने के लिए था।

5.48.68

सर्वदैव समग्रासु विहरन्नसि दृष्टवान् । दिक्षु प्रोन्मत्तक इव विभ्रमं मनसा मुने ॥ ६८ ॥

sarvadaiva samagrāsu viharannasi dṛṣṭavān| dikṣu pronmattaka iva vibhramam manasā mune || 68 ||

O sage, at all times, roaming through every direction, you have seen this delusion with your own mind, like a madman wandering about.

हे मुनि, हर समय, सभी दिशाओं में घूमते हुए, तुमने अपने ही मन से यह भ्रम देखा है, ठीक वैसे ही जैसे कोई पागल इधर-उधर भटकता है।

5.48.69

तदुत्तिष्ठ निजं कर्म कुर्वंस्तिष्ठोपशान्तधीः । न स्वकर्म विना श्रेयः प्राप्नुवन्तीह मानवाः ॥ ६९ ॥

taduttiṣṭha nijaṃ karma kurvamstiṣṭhopaśāntadhīḥ| na svakarma vinā śreyaḥ prāpnuvantīha mānavāḥ || 69 ||

So rise; go on doing your own work, with a calm and quiet mind. In this world, people do not reach anything good without doing their own work.

इसलिए उठो; शांत मन से अपना काम करते रहो। इस दुनिया में लोग अपना काम किए बिना कोई भलाई नहीं पाते।

5.48.70

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति निगदितवान्स पद्मनाभो भुवनगतापसवृन्दपूज्यमानः । विबुधमुनिगणैः पवित्रहस्तैर्वृत उदधिं निजमास्पदं जगाम ॥ ७० ॥

śrīvasiṣṭha uvāca| iti nigaditavānsa padmanābho bhuvanagatāpasavṛndapūjyamānaḥ| vibudhamunigaṇaiḥ pavitrahastairvṛta udadhiṃ nijamāspadaṃ jagāma || 70 ||

Sri Vasishtha said: Having spoken thus, Padmanabha - worshipped by the crowds of ascetics gathered there from every world - surrounded by wise gods and hosts of sages with their hands folded in reverence, went to the ocean, his own true home.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह कहकर, पद्मनाभ - जिनकी पूजा सभी लोकों से आए तपस्वियों के समूह कर रहे थे - विद्वान देवताओं और मुनियों के समूह से घिरे, जिनके हाथ श्रद्धा से जुड़े थे, समुद्र की ओर चले गए, जो उनका अपना घर था।

Chapter 49

5.49.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अथ गाधिर्गते विष्णौ पुनर्भूतादिकं क्रमात् । स्वयं मोहविचारार्थं बभ्रामाभ्रमिवाम्बरे ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atha gādhirgate viṣṇau punarbhūtādikaṃ kramāt | svayaṃ mohavicārārthaṃ babhrāmābhra-mivāmbare || 1 ||

Sri Vasishtha said: Then, when Vishnu had gone, Gadhi wandered again on his own, in due order, through all that had happened, to examine his own delusion, like a cloud drifting across the sky.

श्री वसिष्ठ ने कहा: फिर, जब विष्णु चले गए, तो गाधि खुद फिर से अपनी सारी बीती हुई घटना को क्रम से देखने के लिए अकेले घूमने लगे, अपने मोह को समझने के लिए, जैसे आकाश में कोई बादल घूमता है।

5.49.2

उपलभ्य तथैवात्मवृत्तान्तं जनतस्ततः । हरिमाराधयामास पुनरद्रिगुहां गतः ॥ २ ॥

upalabhya tathaivātmavṛttāntaṃ janatastataḥ | harimārādhayāmāsa punaradriguhāṃ gataḥ || 2 ||

Having thus confirmed from the people that his own story was true, he then went again to the mountain cave and worshipped Hari.

लोगों से यह पक्का जानकर कि उनकी अपनी कहानी सच थी, वे फिर पहाड़ की गुफा में गए और हरि की पूजा करने लगे।

5.49.3

आजगामैनमल्पेन कालेनाथ जनार्दनः । सकृदाराधनेनैव माधवो याति बन्धुताम् ॥ ३ ॥

ājagāmaenamalpena kālenātha janārdanaḥ | sakṛdārādhane-naiva mādhavo yāti bandhutām || 3 ||

In a short time Janardana came to him. Madhava becomes a kinsman through even a single act of worship.

थोड़े ही समय में जनार्दन उनके पास आ गए। माधव तो एक बार पूजा करने से ही अपना बन जाते हैं।

5.49.4

उवाच गाधिं भगवान्मयूरमिव वारिदः । किं त्वं प्रार्थयसे भूयस्तपसेति प्रसादवान् ॥ ४ ॥

uvāca gādhiṃ bhagavānmayūramiva vāridaḥ | kiṃ tvaṃ prārthayase bhūyastapase-ti prasādavān || 4 ||

The Lord spoke to Gadhi graciously, like a raincloud to a peacock: What do you ask for now, after your austerity?

भगवान ने गाधि से कृपा से कहा, जैसे बादल किसी मोर के पास आता है: तुम अपनी तपस्या के बाद अब क्या माँगते हो?

5.49.5

गाधिरुवाच । भ्रान्तोऽस्मि देव षण्मासान्भूतकीरजनास्पदम् । तत्र व्यभिचरत्यस्मद्वृत्तान्तो न कथास्वपि ॥ ५ ॥

gādhiruvāca | bhrānto'smi deva ṣaṇmāsānbhūtakīrajana-spadam | tatra vyabhicaratyas-madvṛttānto na kathāsvapi || 5 ||

Gadhi said: O Lord, I was deluded for six months in the home of the people of Bhutamandala and Kira. There, our story does not differ, not even in their own accounts.

गाधि ने कहा: हे प्रभु, मैं छह महीने तक भूतमण्डल और कीर के लोगों के घर में मोहित होकर भटकता रहा। वहाँ हमारी कहानी उनकी अपनी बातों में भी बिल्कुल वैसी ही मिलती है, अलग नहीं होती।

5.49.6

मायया भूतभूर्दृष्टा त्वयेत्युक्तोऽस्मि किं प्रभो । मोहनाशाय महतां वचो नो मोहवृद्धये ॥ ६ ॥

māyayā bhūtabhūrdṛṣṭā tvetyuktō'smi kiṃ prabho | mohanāśāya mahatāṃ vaco no mohavṛddhaye || 6 ||

You told me, You saw the land of beings through illusion. What does this mean, Lord? The words of great ones destroy delusion, they do not increase it.

आपने मुझसे कहा, तुमने जीवों की धरती को माया से देखा था। इसका क्या मतलब है, प्रभु? बड़े लोगों की बात मोह को मिटाने के लिए होती है, मोह बढ़ाने के लिए नहीं।

5.49.7

श्रीभगवानुवाच । काकतालीययोगेन चेतसि श्वपचस्थितिः । सर्वेषां भूतकीराणां तवेव प्रतिबिम्बति ॥ ७ ॥

śrībhagavānuvāca | kākatālīyayogena cetasi śvapacasthitiḥ | sarveṣāṃ bhūtakīrāṇāṃ taveva pratibimbiti || 7 ||

Sri Bhagavan said: By sheer chance, like a crow landing just as a palm fruit happens to fall, your existence as an outcaste appeared in the minds of all the people of Bhutamandala and Kira.

श्री भगवान ने कहा: यह केवल एक इत्तफाक से हुआ, जैसे कौआ बैठता है और ठीक उसी वक्त ताड़ का फल गिर जाता है, तुम्हारा वह बहिष्कृत जैसा जीवन भूतमण्डल और कीर के सभी लोगों के मन में वैसे ही दिख गया।

5.49.8

तेनाङ्ग तव वृत्तान्तं यथावत्कथयन्ति ते । प्रतिभासो हि नायाति पुनरप्रतिभासताम् ॥ ८ ॥

tenāṅga tava vṛttāntaṃ yathāvatkathayanti te | pratibhāso hi nāyāti punarapratibhāsatām || 8 ||

Because of that, dear one, they tell your story exactly as it happened. For once something has appeared, it never again becomes something that never appeared.

इसी वजह से, प्रिय, वे तुम्हारी कहानी बिल्कुल वैसी ही बताते हैं जैसी हुई थी। क्योंकि जो एक बार दिख गया है, वह फिर कभी ऐसा नहीं हो सकता जैसे दिखा ही न हो।

5.49.9

केनचिच्छ्वपचेनान्ते ग्रामस्य रचितं गृहम् । तत्त्वया दृष्टमाविष्टमिष्टकाखण्डतां गतम् ॥ ९ ॥

kenacicchvapacenānte grāmasya racitaṃ gṛham | tattvayā dṛṣṭamāviṣṭamiṣṭakākhaṇḍatāṃ gatam || 9 ||

A house that some outcaste built at the edge of the village, that same house, which you saw and entered, has now crumbled into broken bricks.

गाँव के किनारे किसी बहिष्कृत ने जो घर बनाया था, वही घर, जिसे तुमने देखा और जिसमें तुम गए थे, अब टूटी हुई ईंटों में बदल चुका है।

5.49.10

कदाचित्प्रतिभैकैव बहूनामपि जायते । काकोलतालस्थितिवद्विचित्रा हि मनोगतिः ॥ १० ॥

kadācitpratibhaikaiva bahūnāmapi jāyate | kākolatālasthitivadvicitrā hi manogatiḥ || 10 ||

Sometimes a single vision arises for many people at once, like the crow and the falling palm fruit. Strange indeed is the movement of the mind.

कभी-कभी एक ही दृश्य बहुत सारे लोगों को एक साथ दिखता है, जैसे कौआ और गिरता हुआ ताड़ का फल। मन की चाल सचमुच अजीब है।

5.49.11

तथाहि बहवः स्वप्नमेकं पश्यन्ति मानवाः । स्वापभ्रमदमैरेयमदमन्थरचित्तवत् ॥ ११ ॥

tathāhi bahavaḥ svapnamekaṃ paśyanti mānavāḥ | svāpabhramadamaireyamadamantharacittavat || 11 ||

Indeed, many people see one and the same dream, the way minds grow slow and hazy with sleep or with drink.

सच में, बहुत सारे लोग एक ही सपना देखते हैं, जैसे नींद या शराब के नशे में मन सुस्त और धुंधला हो जाता है।

5.49.12

एकस्यामेव लीलायां रमन्ते बहुबालकाः । एकस्यामेव नीलायां वनस्थल्यामिवैणकाः ॥ १२ ॥

ekasyāmeva līlāyāṃ ramante bahubālakāḥ | ekasyāmeva nīlāyāṃ vanasthalyāmivaaiṇakāḥ || 12 ||

Many children delight together in a single game, just as deer roam together in a single dark forest glade.

जैसे बहुत सारे हिरण एक ही अँधेरे जंगल के मैदान में साथ घूमते हैं, वैसे ही बहुत सारे बच्चे एक ही खेल में साथ मगन रहते हैं।

5.49.14

प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञानां कालो दातेति या श्रुतिः । विप्र संकल्पमात्रोऽसौ कालो ह्यात्मनि तिष्ठति ॥ १४ ॥

pratibandhābhyanujñānāṃ kālo dāteti yā śrutiḥ | vipra saṃkalpamātro'sau kālo hyātmani tiṣṭhati || 14 ||

There is a teaching that time is what grants both denial and consent. But brahmin, that time is only a thought, time exists within the mind.

यह जो बात कही जाती है कि समय ही रोक और इजाज़त देता है, हे ब्राह्मण, वह समय सिर्फ एक विचार है, समय मन के भीतर ही रहता है।

5.49.15

वहवस्तुल्यकालं च प्रतिभासेन कर्मणाम् । जना यतन्ते स्वफलपाकेऽतिबहुलाकृतौ ॥ १५ ॥

vahavastulyakālaṃ ca pratibhāsena karmaṇām | janā yatante svaphalapāke'tibahulākṛtau || 15 ||

Many people, all at the same time, strive through the appearance of their own deeds toward the ripening of their own fruits, amid this world's countless forms.

बहुत सारे लोग एक ही समय पर अपने-अपने कामों की दिखावट के सहारे, इस दुनिया के अनगिनत रूपों के बीच, अपने-अपने फल पकने के लिए मेहनत करते हैं।

5.49.16

लौकिको यस्त्वयं कालो वर्षकल्पयुगात्मकः । संकल्प्यते पदार्थौघैः पदार्थौघश्च तेन तु ॥ १६ ॥

laukiko yastvayaṃ kālo varṣakalpayugātmakaḥ | saṃkalpyate padārthaughaiḥ padārthaughaśca tena tu || 16 ||

But this worldly time, made of years, ages and cosmic cycles, is imagined into being by the mass of things. And that mass of things, in turn, is imagined into being by time.

पर यह जो सांसारिक समय है, जो सालों, कल्पों और युगों से बना है, वह चीज़ों के ढेर से गढ़ा जाता है, और चीज़ों का वह ढेर भी उसी समय से गढ़ा जाता है।

5.49.17

समानप्रतिभासोत्थसंभ्रमं भ्रान्तचेतसः तथा तं दृष्टवन्तस्ते भूतकीरजनोच्चयाः ॥ १७ ॥

samānapratibhāsotthasaṃbhraṃ bhrāntacetasaḥ tathā taṃ dṛṣṭavantaste bhūtakīrajanochchayāḥ || 17 ||

Their minds deluded, caught up in the same confusion that rose from the same vision, that whole crowd of the people of Bhutamandala and Kira saw it exactly so.

उनका मन मोहित था, एक ही दृश्य से उठी एक जैसी घबराहट में फँसा था, इसी तरह भूतमण्डल और कीर के लोगों की उस पूरी भीड़ ने ठीक वैसा ही देखा।

5.49.18

स्वव्यापारपरो भूत्वा धियात्मानं विचारय साधो गतमनोमोहमिहैवास्व व्रजाम्यहम् ॥ १८ ॥

svavyāpāraparo bhūtvā dhiyātmānaṃ vicāraya sādho gatamanomohamihaiavāsva vrajāmyaham || 18 ||

Devote yourself to your own proper work, and examine the self with your intellect, good sir. Stay right here, your mind's delusion gone, I will go now.

अपने ही काम में लगे रहो, और अपनी बुद्धि से खुद को समझो, हे साधु। यहीं रहो, तुम्हारे मन का मोह जा चुका है, अब मैं जाता हूँ।

5.49.20

ततः कतिपयेष्वद्रौ मासेष्वतिगतेषु सः पुनराराधयामास पुण्डरीककरं द्विजः ॥ २० ॥

tataḥ katipayeṣvadrāu māseṣvatigateṣu saḥ punarārādhayāmāsa puṇḍarīkakaraṃ dvijaḥ || 20 ||

Then, when a few months had passed on the mountain, that brahmin again worshipped the lotus-handed Lord.

फिर, पहाड़ पर कुछ महीने बीत जाने के बाद, उस ब्राह्मण ने फिर से कमल-हाथ वाले भगवान की पूजा की।

5.49.21

ददर्श चैकदा नाथमागतं प्रणनाम तम् पूजयामास मनसा चोक्तेनोवाच चेश्वरम् ॥ २१ ॥

dadarśa caikadā nāthamāgataṃ praṇanāma taṃ pūjayāmāsa manasā coktenovāca ceśvaram || 21 ||

One day he saw that the Lord had come. He bowed to him, worshipped him in his heart and in words, and spoke to the Lord.

एक दिन उन्होंने देखा कि भगवान आ गए हैं। उन्होंने उन्हें प्रणाम किया, मन से और शब्दों से उनकी पूजा की, और भगवान से बोले।

5.49.22

गाधिरुवाच भगवन्संस्मरंश्चैतामात्मनः श्वपचस्थितम् इमां संसारमायां च परिमुह्यामि चेतसा ॥ २२ ॥

gādhiruvāca bhagavansaṃsmaraṃścaitāmātmanaḥ śvapacasthitam imāṃ saṃsāramāyāṃ ca parimuhyāmi cetasā || 22 ||

Gadhi said: Lord, when I remember this life of mine as an outcaste, and this illusion of worldly existence, my mind is utterly bewildered.

गाधि ने कहा: प्रभु, जब मैं अपने उस बहिष्कृत जीवन को और इस संसार की माया को याद करता हूँ, तो मेरा मन पूरी तरह से मोहित हो जाता है।

5.49.23

तदुक्त्वास्व यथावस्तु महामोहनिवृत्तये । एकस्मिन्नेव विमले मां नियोजय कर्मणि ॥ २३ ॥

taduktvāsv yathāvastu mahāmohanivṛttaye | ekasminneva vimale māṃ niyojaya karmaṇi || 23 ||

Tell me the plain truth of this, to end my great delusion. Set me to a single, pure task.

मुझे यह सच-सच बताइए, ताकि मेरा यह बड़ा मोह मिट जाए। मुझे किसी एक ही शुद्ध काम में लगा दीजिए।

5.49.24

श्रीभगवानुवाच । ब्रह्मन् जगदिदं मायामहाशम्बरडम्बरम् । सर्वा आश्चर्यकलनाः संभवन्तीह विस्मृतेः ॥ २४ ॥

śrībhagavānuvāca | brahman jagadidaṃ māyāmahāśambaraḍambaram | sarvā āścaryakalanāḥ saṃbhavantīha vismṛteḥ || 24 ||

Sri Bhagavan said: Brahmin, this world is a grand illusion, a pompous show like the great Shambara's own. All these wonders happen here through forgetting.

श्री भगवान ने कहा: हे ब्राह्मण, यह जगत माया का एक बड़ा तमाशा है, ठीक शंबर के बड़े दिखावे जैसा। यहाँ जो भी अचरज की बातें होती हैं, वे सब भूल जाने की वजह से होती हैं।

5.49.25

भूतकीरपुरे मोहाद्दृष्टवांस्तत्तथा भवान् । इत्येतत्संभवत्येव दृश्यते हि जनैर्भ्रमः ॥ २५ ॥

bhūtakīrapure mohāddṛṣṭavāṃstattathā bhavān | ityetatsaṃbhavatyeva dṛśyate hi janairbhramaḥ || 25 ||

In the city of Bhutamandala and Kira you saw all this through delusion, exactly as it happened. Such a thing can truly happen; people really do see this kind of delusion.

भूतमण्डल और कीर के नगर में तुमने मोह के कारण यह सब वैसे ही देखा जैसा हुआ था। ऐसा सचमुच हो सकता है; लोग सचमुच ऐसा भ्रम देखते हैं।

5.49.27

इदं तु शृणु वक्ष्यामि यथाभूतमनिन्दितम् । यथैति तनुतां चिन्ता मार्गशीर्षलतेव ते ॥ २७ ॥

idaṃ tu śṛṇu vakṣyāmi yathābhūtamaninditam | yathaiti tanutāṃ cintā mārgaśīrṣalateva te || 27 ||

Now listen to this. I will tell you exactly as it happened, without any fault, so that your worry grows thin, like a creeper in the month of Margashirsha.

अब यह सुनो। मैं तुम्हें ठीक वैसे ही बताऊंगा जैसा हुआ था, बिना किसी दोष के, ताकि तुम्हारी चिंता उतनी ही पतली हो जाए जितनी मार्गशीर्ष महीने में बेल पतली हो जाती है।

5.49.28

योऽसौ कटंजको नाम श्वपचो भूतमण्डले । तेनैव संनिवेशेन स तथैवाभवत्पुरा ॥ २८ ॥

yo'sau kaṭaṃjako nāma śvapaco bhūtamaṇḍale | tenaiva saṃniveśena sa tathaivābhavatpurā || 28 ||

There was, in Bhutamandala, an outcaste named Katanjaka. By that same nature he had truly become so, long ago.

भूतमण्डल में कटंजक नाम का एक चांडाल था। उसी स्वभाव के कारण वह पहले सचमुच वैसा ही बना था।

5.49.29

तथैव विकलत्रत्वं प्राप्य देशान्तरं गतः । बभूव कीरनृपतिः प्रविवेशानलं ततः ॥ २९ ॥

tathaiva vikalatratvaṃ prāpya deśāntaraṃ gataḥ | babhūva kīranṛpatiḥ praviveśānalaṃ tataḥ || 29 ||

In just that way, after losing his wife, he went to another land. He became the king of Kira, and then he entered into fire.

उसी तरह पत्नी खोकर वह दूसरे देश चला गया। वह कीरा का राजा बना, और फिर उसने आग में प्रवेश कर लिया।

5.49.31

द्रष्टानुभूतमप्यर्थं कदाचिद्विस्मरत्यलम्। कदाचिदप्यदृष्टं तु चेतः पश्यति दृष्टवत्॥ ३१॥

draṣṭānubhūtamapyarthaṃ kadācidvismaratyalaṃ | kadācidapyadṛṣṭaṃ tu cetaḥ paśyati dṛṣṭavat || 31 ||

Sometimes the mind completely forgets a thing it has seen and lived through, and sometimes it sees even what it has never seen, as if it had truly seen it.

कभी-कभी मन देखी और अनुभव की हुई बात को पूरी तरह भूल जाता है, और कभी बिना देखी बात को भी ऐसे देखता है जैसे उसने उसे सचमुच देखा हो।

5.49.32

यथा स्वप्नमनोराज्यधातुसंस्थितिविभ्रमाः। जाग्रत्यपि तथैवाङ्ग दृश्यन्ते मनसा स्वयम्॥ ३२॥

yathā svapnamanorājyadhātusaṃsthitivibhramāḥ | jāgratyapi tathaivāṅga dṛśyante manasā svayam || 32 ||

Just as illusions happen in a dream, in a daydream, and in the confusion of a fevered body, so too, friend, the mind on its own sees such things even while awake.

जैसे सपने में, दिवास्वप्न में, और ज्वर से बिगड़े शरीर के भ्रम में गड़बड़ियां होती हैं, वैसे ही, मित्र, मन जागते हुए भी अपने आप ऐसी चीज़ें देख लेता है।

5.49.33

भविष्यद्भूतकालस्थं यथा त्रैकाल्यदर्शिनः। प्रतिभाभेति गाधे यत्कटंजाचरितं तथा॥ ३३॥

bhaviṣyadbhūtakālasthaṃ yathā traikālyadarśinaḥ | pratibhābheti gādhe yatkaṭaṃjācaritaṃ tathā || 33 ||

Gadhi, just as things of the future and the past appear to one who sees all three times through pure insight, so does the story of Katanjaka appear.

गाधि, जैसे तीनों कालों को देखने वाले को भविष्य और भूतकाल की बातें शुद्ध अंतर्दृष्टि से दिखाई देती हैं, वैसे ही कटंजक की कथा भी दिखाई देती है।

5.49.34

अयं सोऽहमिदं तन्म इति मज्जति नात्मवान्। अयं सोऽहमिदं तन्म इति मज्जत्यनात्मवान्॥ ३४॥

ayaṃ so'hamidaṃ tanma iti majjati nātmavān | ayaṃ so'hamidaṃ tanma iti majjaty anātmavān || 34 ||

This is that, I am this, this is mine, thinking so, a man who knows himself does not sink into confusion, but a man who does not know himself sinks into it.

यह वह है, मैं यही हूं, यह मेरा है, ऐसा सोचकर जो अपने आपको जानता है वह भ्रम में नहीं डूबता, पर जो अपने आपको नहीं जानता वह डूब जाता है।

5.49.35

सर्वमेवाहमेवेति तत्त्वज्ञो नावसीदति। न गृह्णाति पदार्थेषु विभागानर्थभावनम्॥ ३५॥

sarvamevāhamēvēti tattvajñō nāvasīdati | na gṛhṇāti padārthēṣu vibhāgānarthabhāvanam || 35 ||

All this is truly myself, knowing this, the knower of truth does not grieve. He does not hold, about things, the harmful idea of division.

यह सब सचमुच मैं ही हूं, यह जानकर तत्त्वज्ञ दुखी नहीं होता। वह चीज़ों के बारे में भेद की व्यर्थ धारणा नहीं रखता।

5.49.36

तेनासौ भ्रमयोगेषु सुखदुःखविलासिषु । न निमज्जति मग्नोऽपि तुम्बीपात्रमिवाम्भसि ॥ ३६ ॥

tēnāsau bhramayōgēṣu sukhaduḥkhavilāsiṣu | na nimajjati magnaḥ api tumbīpātramivāmbhasi || 36 ||

Therefore, even while caught in the play of delusion that shows itself as pleasure and pain, he does not sink, like a gourd pot in water.

इसलिए, सुख-दुख के रूप में खेलते हुए भ्रम में फंसा होते हुए भी वह नहीं डूबता, जैसे तुम्बे का बर्तन पानी में नहीं डूबता।

5.49.37

त्वं तावद्वासनाजालग्रस्तचित्तो विचेतनः । किंचिच्छेषमहाव्याधिरिव न स्वस्थमागतः ॥ ३७ ॥

tvaṃ tāvadvāsanājālagrastacittō vicētanaḥ | kiṃcicchēṣamahāvyādhiriva na svasthamāgataḥ || 37 ||

As for you, your mind is caught in the net of your old habits, and you are not fully aware. Like a great disease with a little still left, you have not yet come back to health.

रही बात तुम्हारी, तुम्हारा मन पुराने संस्कारों के जाल में फंसा है, और तुम पूरी तरह सचेत नहीं हो। जैसे किसी बड़ी बीमारी का थोड़ा हिस्सा अभी बाकी रह गया हो, वैसे ही तुम अभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए हो।

5.49.38

ज्ञानस्यापरिपूर्णत्वान्न शक्नोषि मनोभ्रमम् । विनिवारयितुं मेघमसम्यग्यत्नवानिव ॥ ३८ ॥

jñānasyāparipūrṇatvānna śakroṣi manōbhramam | vinivārayituṃ mēghamasamyyatyatnavāniva || 38 ||

Because your knowledge is not yet complete, you cannot drive away the confusion of your mind, like someone whose effort is too weak to drive away a cloud.

क्योंकि तुम्हारा ज्ञान अभी पूरा नहीं हुआ है, तुम अपने मन का भ्रम दूर नहीं कर पा रहे, जैसे कोई कमज़ोर प्रयास से बादल को नहीं हटा पाता।

5.49.39

यदेव ते मनोमात्रे सहसा प्रतिभासते । तरुरुच्चजनेनेव तेनैवाक्रम्यसे क्षणात् ॥ ३९ ॥

yadēva tē manōmātrē sahasā pratibhāsatē | tarurucchajanēnēva tēnēvākrāmyasē kṣaṇāt || 39 ||

Whatever suddenly appears in your mind alone, by that very thing you are seized in an instant, like a tree overwhelmed by a crowd of people.

तुम्हारे मन में अचानक जो कुछ भी उठता है, उसी से तुम पल भर में जकड़ लिए जाते हो, जैसे कोई पेड़ भीड़ से घिर जाता है।

5.49.40

चित्तं नाभिः किलास्येह मायाचक्रस्य सर्वतःस्थीयते चेत्तदाक्रम्य तन्न किंचित्प्रबाधते ॥ ४० ॥

cittaṃ nābhiḥ kilāsyeha māyācakrasya sarvataḥsthīyate cettadākramya tanna kiṃcitprabādhate || 40 ||

The mind alone is the hub of this wheel of illusion here. If a man stays steady through everything, then, having mastered it, nothing at all can trouble him.

मन ही इस माया के चक्र की धुरी है। अगर कोई हर हाल में स्थिर रहे, तो उसे जीतकर फिर कुछ भी उसे परेशान नहीं कर सकता।

5.49.41

त्वमुत्तिष्ठ गिरेः कुञ्जे दशवर्षाण्यखिन्नधीःतपः कुरु ततो ज्ञानमनन्तं समवाप्स्यसि ॥ ४१ ॥

tvamuttiṣṭha gireḥ kuñje daśavarṣāṇyakhinnadhīḥtapaḥ kuru tato jñānamanantaṃ samavāpsyasi || 41 ||

Rise up. In a mountain grove, for ten years, with an untiring mind, practice austerity. Then you will attain endless knowledge.

उठो। पहाड़ के किसी कुंज में, दस वर्षों तक, बिना थके मन से तप करो। फिर तुम्हें अनंत ज्ञान मिलेगा।

5.49.42

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्रैवान्तरधीयतवाताभ्रवद्दीपकवद्यमुनोत्पीडवत्क्षणात् ॥ ४२ ॥

ityuktvā puṇḍarīkākṣastatraivāntaradhīyatavātābhravaddīpakavadyamunotpīḍavatkṣaṇāt || 42 ||

Having said this, Pundarikaksha vanished right there in an instant, like a cloud scattered by the wind, like a lamp going out, like a sudden surge of the Yamuna.

यह कहकर पुण्डरीकाक्ष उसी क्षण वहीं अंतर्धान हो गए, जैसे हवा से बादल छंट जाए, जैसे दीपक बुझ जाए, जैसे यमुना की अचानक उठी लहर शांत हो जाए।

5.49.43

गाधिर्विवेकवशजं वैराग्यपदमागतःशरत्समयपर्यन्ते वैरस्यमिव पादपः ॥ ४३ ॥

gādhirvivekavaśajaṃ vairāgyapadamāgataḥśaratsamayaparyante vairasyamiva pādapaḥ || 43 ||

Gadhi arrived at a state of dispassion that discrimination had produced, like a tree that turns sapless at the end of the autumn season.

गाधि विवेक की शक्ति से वैराग्य की उस अवस्था तक पहुंचे, जैसे शरद ऋतु के अंत में कोई पेड़ रसहीन हो जाता है।

5.49.44

विचित्रं चेष्टितं धातुरसमञ्जसमागतम्भ्रमद्भ्रमभरोन्मुक्तमतिर्मन्दमगर्हयत् ॥ ४४ ॥

vicitraṃ ceṣṭitaṃ dhāturasamañjasamāgatambhramadbhamabharonmuktamatirmandamagarhayat || 44 ||

His mind, still turning a little, now free of the weight of confusion, he gently blamed fate for this strange and improper turn of events.

उसका मन अब भी कुछ हल्का-सा घूम रहा था, पर भ्रम के बोझ से मुक्त हो चुका था। उसने भाग्य के इस अजीब और बेढंगे खेल को हल्के में उलाहना दिया।

5.49.45

जगाम करुणार्द्रात्मा नियमायोत्तमश्रिये । विश्रान्त्यै ऋष्यमूकं तु पयोधर इवाचलम् ॥ ४५ ॥

jagāma karuṇārdrātmā niyamāyottamaśriye | viśrāntyai ṛṣyamūkaṃ tu payodhara ivācalam || 45 ||

With his heart softened by compassion, he went, for discipline and for the highest good, to Mount Rishyamuka to rest, like a cloud going to a mountain.

करुणा से भीगे हृदय के साथ, वह नियम और परम कल्याण के लिए, विश्राम के वास्ते ऋष्यमूक पर्वत की ओर गया, जैसे कोई बादल पहाड़ की ओर जाता है।

5.49.46

निरस्ताशेषसंकल्पस्तपस्तत्र चकार ह । दशवर्षाणि तेनासावात्मज्ञानमवाप ह ॥ ४६ ॥

nirastāśeṣasaṃkalpastapastatra cakāra ha | daśavarṣāṇi tenāsāvātmajñānamavāpa ha || 46 ||

With all his thoughts and wishes entirely cast off, he practiced austerity there. For ten years he did this, and by it he attained knowledge of the self.

अपने सारे संकल्पों को पूरी तरह त्यागकर, उसने वहां तप किया। दस वर्षों तक ऐसा करके, उसने आत्मज्ञान पाया।

5.49.47

अरमत तदनु स्वां प्राप्य सत्तां महात्मा ह्यपगतभयशोको भोगभूमावनीषु । सततमुदितजीवन्मुक्तरूपः प्रशान्तः सकल इव शशाङ्को घूर्णितापूर्णचेताः ॥ ४७ ॥

aramata tadanu svāṃ prāpya sattāṃ mahātmā hyapagatabhayaśoko bhogabhūmāvanīṣu |
satatamuditajīvanmuktarūpaḥ praśāntaḥ sakala iva śaśāṅko ghūrṇitāpūrṇacetāḥ || 47 ||

After that, the great soul, having reached his own true being, rejoiced, free from fear and grief in every land he went to. Forever appearing as one freed while still alive, utterly at peace, his mind full and steady, like the full moon.

इसके बाद, उस महात्मा ने अपने सच्चे स्वरूप को पाकर आनंद मनाया। वह जहां भी गया, हर जगह भय और शोक से मुक्त रहा। वह सदा जीवन्मुक्त के रूप में रहा, पूरी तरह शांत, उसका मन पूर्ण चंद्रमा की तरह भरा और अडोल था।

Chapter 50

5.50.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवमेषातिविततता दुर्ज्ञाना रघुनन्दन । महामोहमयी माया विषमा पारमात्मिकी ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evameṣātivitātā durjñānā raghunandana | mahāmohamayī māyā viṣamā pāramātmikī || 1 ||

Sri Vasishtha said: Raghunandana, this maya is exactly so. It is very vast, hard to understand, made of great delusion, dangerous, and it belongs to the highest self.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे रघुनंदन, यह माया ऐसी ही है। यह बहुत फैली हुई है, समझ में नहीं आती, बड़े मोह से बनी है, खतरनाक है, और परमात्मा से जुड़ी हुई है।

5.50.2

क्व मुहूर्तद्वयस्वप्नसंभ्रमाल्लोकदृष्टता । क्वानेकवर्षसंभुक्तश्वपचावनिपभ्रमः ॥ २ ॥

kva muhūrtadvayasvapnasambhramāllokadṛṣṭatā | kvāneka varṣasambhuktaśvapacāvanipabhramaḥ || 2 ||

Where is the sense of a whole world, seen through the confusion of a dream lasting only an hour or two? And where is the delusion of having lived, for many years, as an outcaste and as a king?

कहाँ तो एक-दो घंटे के सपने की उलझन से दिखने वाली यह सारी दुनिया, और कहाँ यह मोह कि मानो कोई कई वर्षों तक चांडाल और राजा बनकर जीया हो।

5.50.3

क्व संभ्रमोपलब्धत्वं क्व प्रत्यक्षनिदर्शनम् । क्वासत्यत्वमसंदिग्धं क्व सत्यपरिणामिता ॥ ३ ॥

kva sambhramopalabdhatvaṃ kva pratyakṣanidarśanam | kvāsatyatvamasandigdhaṃ kva satyapariṇāmitā || 3 ||

Where is a thing merely caught in confusion, and where is a thing shown directly before the eyes? Where is an unreality that is beyond all doubt, and where is an outcome that turns out just like the real thing?

कहाँ तो भ्रम में बस पकड़ में आई कोई चीज़, और कहाँ आँखों के सामने सीधे दिखने वाली चीज़? कहाँ तो वह चीज़ जिसका झूठा होना बिना किसी शक के तय है, और कहाँ यह कि वह ठीक सच्ची चीज़ जैसा नतीजा दे।

5.50.4

अतो वच्मि महाबाहो मायेयं विषमान्वहम् । असावधानमनसं संयोजयति संकटे ॥ ४ ॥

ato vachmi mahābāho māyeyaṃ viṣamānvaham | asāvadhānamanasaṃ saṃyojayati saṃkaṭe || 4 ||

So I tell you, mighty armed one, this maya is dangerous every day. It catches hold of a careless mind and throws it into trouble.

इसलिए मैं कहता हूँ, हे महाबाहु, यह माया रोज़ रोज़ खतरनाक है। जिसका मन असावधान रहता है, उसे यह मुसीबत में डाल देती है।

5.50.5

श्रीराम उवाच । एवमस्य कथं ब्रह्मन्मायाचक्रस्य रोधनम् । कुर्युः प्रवहतो वेगात्सर्वाङ्गच्छेदकारिणः ॥ ५ ॥

śrīrāma uvāca | evam asya kathaṃ brahman māyācakrasya rodhanam | kuryuḥ pravahato vegāt sarvāṅgacchedakāriṇaḥ || 5 ||

Sri Rama said: Being so, sage, how can this wheel of maya be stopped? It rushes on with such speed and cuts off every limb.

श्रीराम ने कहा: हे मुनि, ऐसा होने पर माया के इस चक्र को कैसे रोका जाए? यह इतनी तेज़ी से बहता है और हर अंग को काट डालता है।

5.50.6

श्रीवसिष्ठ उवाच । अस्य संसाररूपस्य मायाचक्रस्य राघव । चित्तं विद्धि महानाभिं भ्रमतो भ्रमदायिनः ॥ ६ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | asya saṃsārarūpasya māyācakrasya rāghava | cittaṃ viddhi mahānābhiṃ bhramato bhramadāyinaḥ || 6 ||

Sri Vasishtha said: Raghava, know that the mind is the great hub of this wheel of maya. This wheel is the very shape of worldly life. It turns, and it makes everything else turn with it.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राघव, जान लो कि मन ही माया के इस चक्र की बड़ी धुरी है। यह चक्र ही संसार का रूप है। यह घूमता है, और सबको घुमाता है।

5.50.7

तस्मिन्द्रुतमवष्टब्धे धिया पुरुषयत्नतः । गृहीतनाभिवहनान्मायाचक्रं निरुध्यते ॥ ७ ॥

tasmin dru tam avaṣṭabdhe dhiyā puruṣayatnataḥ | gṛhītanābhivahanān māyācakraṃ nirudhyate || 7 ||

When that hub is firmly seized at once by the intellect, through a person's own effort, the wheel of maya stops turning, because its hub's motion has been caught and held.

जब उस धुरी को बुद्धि के द्वारा, अपने ही प्रयास से, तुरंत मज़बूती से पकड़ लिया जाता है, तो धुरी की गति रुक जाने से माया का यह चक्र रुक जाता है।

5.50.8

अवष्टब्धमनोनाभिमोहचक्रं न गच्छति । यथा रज्ज्वां निरुद्धायां कीलकं रज्जुवेष्टितम् ॥ ८ ॥

avaṣṭabdhamanonābhimohacakraṃ na gacchati | yathā rajjvāṃ niruddhāyāṃ kīlakaṃ rajjuveṣṭitam || 8 ||

When the mind, the hub, is held firm, the wheel of delusion does not move. It is like a peg wound round with rope, that does not turn once the rope is held still.

जब मन रूपी धुरी को मज़बूती से पकड़ लिया जाता है, तो मोह का यह चक्र नहीं चलता। यह वैसे ही है जैसे रस्सी से लिपटी हुई खूँटी, रस्सी को थाम लेने पर नहीं घूमती।

5.50.9

चक्रयुद्धैकतज्ज्ञोऽसि कस्माज्जानासि नानघ । चक्रं नाभाववष्टब्धं वशमायाति नान्यथा ॥ ९ ॥

cakrayuddhaikataj jñō'si kasmāj jānāsi nānagha | cakraṃ nābhāvavaṣṭabdhaṃ vaśam āyāti nānyathā || 9 ||

You alone are skilled in fighting with the war discus. Why then do you not know this, sinless one? A wheel comes under control only when it is held at its hub, never in any other way.

तुम तो युद्ध में चक्र चलाने में अकेले निपुण हो। फिर हे निष्पाप, तुम यह क्यों नहीं जानते? कोई भी चक्र धुरी को पकड़ने पर ही वश में आता है, और किसी तरह नहीं।

5.50.10

चित्तं नाभिमवष्टभ्य तस्माद्यत्नेन राघव । संसारचक्रं वहनादात्मनः परिरोधय ॥ १० ॥

cittaṃ nābhimavaṣṭabhya tasmādyatnena rāghava | saṃsāracakraṃ vahanādātmanaḥ parirodhaya || 10 ||

So, Raghava, take hold of the mind, the hub, with real effort, and stop the wheel of worldly life from turning.

इसलिए, हे राघव, मन रूपी धुरी को पूरे प्रयास से पकड़ो, और संसार के इस चक्र को घूमने से रोक दो।

5.50.11

एतां युक्तिं विना दुःखमनन्तमितमात्मनः । अस्यां दृष्टौ क्षणादन्तं गतमेवावलोकय ॥ ११ ॥

etāṃ yuktiṃ vinā duḥkhamanantamitamātmanaḥ | asyāṃ dṛṣṭau kṣaṇādantaṃ gatamevāvalokaya || 11 ||

Without this method, the self's suffering goes on without end. But once this insight is there, watch, in a single moment, that suffering comes to its very end.

इस उपाय के बिना, आत्मा का दुख अंतहीन होकर चलता रहता है। पर एक बार यह समझ आ जाए, तो देखो, वह दुख एक ही पल में पूरी तरह खत्म हो जाता है।

5.50.12

चित्ताक्रमणमात्रात्तु परमादौषधादृते । प्रयत्नेनापि संसारमहारोगो न शाम्यति ॥ १२ ॥

cittākramṇamātrāttu paramādauṣadhādṛte | prayatnenāpi saṃsāramahārogo na śāmyati || 12 ||

But apart from that one supreme medicine, simply mastering the mind, the great disease of worldly life will not go away, however hard you try.

पर उस एक सबसे बड़ी दवा के बिना, जो सिर्फ मन पर काबू पाना है, संसार की यह महाबीमारी चाहे जितनी कोशिश करो, नहीं मिटती।

5.50.13

तस्माद्राघव संत्यज्य तीर्थदानतपःक्रियाः । श्रेयसे परमायान्तश्चित्तमेव वशं कुरु ॥ १३ ॥

tasmādrāghava santyajya tīrthadānatapaḥkriyāḥ | śreyase paramāyāntaścittameva vaśaṃ kuru || 13 ||

So, Raghava, set aside pilgrimages, charity, and austerities. Turn within, and for your highest good, bring only the mind under control.

इसलिए, हे राघव, तीर्थ यात्रा, दान और तप जैसी क्रियाओं को छोड़ दो। भीतर की ओर मुड़ो, और अपने परम कल्याण के लिए बस मन को वश में करो।

5.50.14

चित्तान्तरेव संसारः कुम्भान्तः कुम्भखं यथा । चित्तनाशे न संसारः कुम्भनाशे न कुम्भखम् ॥ १४ ॥

cittāntareva saṃsāraḥ kumbhāntaḥ kumbhakhaṃ yathā | cittanāśena saṃsāraḥ kumbhanāśena kumbhakham || 14 ||

Worldly life exists only inside the mind, as the space enclosed in a pot exists only inside the pot. When the mind ends, worldly life ends. When the pot is broken, its enclosed space ends too.

संसार मन के भीतर ही है, जैसे घड़े के भीतर ही घड़े की बंद हवा है। मन के मिटने पर संसार मिट जाता है, और घड़ा टूटने पर उसकी बंद हवा भी नहीं रहती।

5.50.15

चिरं संसरणाकाशकोटरं चित्तकुम्भखम् । विनाश्यातुलिताकाशस्वरूपं रूपमाविश ॥ १५ ॥

ciraṃ saṃsaraṇākāśakoṭaraṃ cittakumbhakham | vināśyātulitākāśasvarūpaṃ rūpamāviśa || 15 ||

Destroy this pot space of the mind, this small hollow that has sat for so long within the sky of endless rebirth, and enter the true form, the very nature of boundless, unmatched space.

मन के इस घड़े जैसे बंद स्थान को मिटा दो, यह छोटी सी खोखली जगह जो बहुत समय से जन्म-मरण के आकाश में पड़ी है, और उस असली रूप में प्रवेश करो, जो उस अतुलनीय, असीम आकाश का स्वभाव है।

5.50.16

वर्तमानमनायासं भजद्बाह्यधिया क्षणम्। भूतं भविष्यदभजद्याति चित्तमचित्तताम्॥ १६॥

vartamānamanāyāsaṃ bhajadvāhyadhiyā kṣaṇam | bhūtaṃ bhaviṣyadabhajadyāti cittamacittatām || 16 ||

When the mind, through its outward turned attention, rests easily on the present moment alone, and does not dwell on what is past or what is to come, then the mind itself passes into the state of no mind.

जब मन अपनी बाहर की ओर लगी बुद्धि से बिना किसी मेहनत के बस वर्तमान क्षण में टिका रहता है, और बीते हुए या आने वाले पर नहीं अटकता, तब मन खुद ही मन-रहित अवस्था में चला जाता है।

5.50.17

संकल्पांशानुसंधानवर्जनं चेत्प्रतिक्षणम्। करोषि तदचित्तत्वं प्राप्त एवासि पावनम्॥ १७॥

saṃkalpāṃśānusandhānavarjanaṃ cetpratikṣaṇam | karosi tadacittatvaṃ prāpta evāsi pāvanam || 17 ||

If, moment after moment, you give up chasing even a fragment of a thought, you will have reached that pure state of no mind.

यदि पल पल तुम विचार के एक टुकड़े का भी पीछा करना छोड़ दो, तो तुमने वह शुद्ध मन-रहित अवस्था पा ही ली।

5.50.18

यावत्संकल्पकलना तावच्चित्तविभूतयः। यावज्जलदविस्तारस्तावत्खजलबिन्दवः॥ १८॥

yāvatsaṃkalpakalanā tāvaccittavibhūtayaḥ | yāvajjaladavistārastāvatkhajalabindavaḥ || 18 ||

As long as thoughts keep forming, the mind keeps producing its many shapes. As long as a cloud spreads across the sky, there are drops of rain falling from it.

जब तक विचार बनते रहते हैं, तब तक मन अपने कई कई रूप रचता रहता है। जब तक आकाश में बादल फैला रहता है, तब तक उससे बारिश की बूँदें गिरती रहती हैं।

5.50.19

सचित्तं चेतनं यावत्तावत्संकल्पकल्पनम्। सचन्द्रांशु जगद्यावत्तावत्प्रालेयलेशकाः॥ १९॥

sacittaṃ cetanaṃ yāvattāvatsaṃkalpakalpanam | sacandrāṃśu jagadyāvattāvatprāleyaleśakāḥ || 19 ||

As long as awareness is joined with mind, thought after thought keeps forming. As long as the world has moonlight, there are little specks of dew.

जब तक चेतना मन से जुड़ी रहती है, तब तक विचार बनते रहते हैं। जब तक दुनिया में चांदनी रहती है, तब तक ओस की छोटी छोटी बूँदें बनती रहती हैं।

5.50.20

चेतनं चित्तरिक्तं चेद्भावितं तत्स्वसंसृतेः। आमूलमेव दग्धानि विद्धि मूलानि सिद्धवत्॥ २०॥

cetanaṃ cittariktam cedbhāvitaṃ tatsvasaṃsṛteḥ | āmūlameva dagdhāni vidhi mūlāni siddhavat || 20 ||

If you realize awareness emptied of mind, know that the roots of your own cycle of rebirth are burnt away down to the very root, just as they are for one who has already reached perfection.

यदि तुम मन से खाली चेतना का अनुभव कर लो, तो जान लो कि तुम्हारे अपने जन्म-मरण की जड़ें जड़ से ही जल चुकी हैं, ठीक वैसे ही जैसे किसी सिद्ध पुरुष की जड़ें जल चुकी होती हैं।

5.50.21

चेतनं चित्तरिक्तं हि प्रत्यक्चेतनमुच्यते । निर्मनस्कस्वभावं तन्न तत्र कलनामलः ॥ २१ ॥

cetanaṃ cittariktaṃ hi pratyakcetanamucyate | nirmanaskasvabhāvaṃ tanna tatra kalanāmalaḥ || 21 ||

Awareness emptied of mind is called the inward facing awareness. Its very nature has no mind, and in it there is no stain of any mental construction.

मन से खाली चेतना को ही भीतर की ओर मुड़ी हुई चेतना कहा जाता है। उसका स्वभाव ही मन-रहित है, और उसमें किसी भी मानसिक रचना का धब्बा नहीं है।

5.50.22

सा सत्यता सा शिवता सावस्था पारमात्मिकी । सर्वज्ञता सा सा दृष्टिर्नतु यत्र मनः क्षतम् ॥ २२ ॥

sā satyatā sā śivatā sāvasthā pāramātmikī | sarvajñatā sā sā dṛṣṭirnatu yatra manaḥ kṣatam || 22 ||

That is truth, that is true goodness, that is the highest state of the supreme self. That is all knowing, that is real seeing, but not wherever the mind is still wounded.

वही सच्चाई है, वही कल्याण है, वही परमात्मा की सबसे ऊँची अवस्था है। वही सब कुछ जानना है, वही असली देखना है, पर वहाँ नहीं जहाँ मन अब भी घायल है।

5.50.23

मनो यत्र तु तत्राशास्तत्र दुःखसुखानि च । सदा संनिधिमायान्ति श्मशान इव वायसाः ॥ २३ ॥

mano yatra tu tatrāśāstatra duḥkhasukhāni ca | sadā sannidhimāyānti śmaśāna iva vāyasāḥ || 23 ||

But wherever the mind is, hopes and desires are there, and pain and pleasure are there too. They always gather close, the way crows gather at a cremation ground.

पर जहाँ मन है, वहीं इच्छाएँ हैं, वहीं दुख और सुख भी हैं। ये हमेशा पास आ जुटते हैं, जैसे श्मशान में कौवे जुट आते हैं।

5.50.24

वस्तुतत्त्वावबोधेन सर्वभावव्यवस्थितेः । ससृतिव्रततेर्बीजं संकल्पेनोपजायते ॥ २४ ॥

vastutattvāvabodhena sarvabhāvavyavasthiteḥ | sasṛtivrataterbījaṃ saṃkalpenopajāyate || 24 ||

Once you understand the true nature of things, you see this: the settled existence of all things, the seed of this ever spreading vine of worldly life, is born from thought alone.

चीज़ों के असली स्वरूप को समझने से यह पता चलता है कि सब वस्तुओं का यह पक्का अस्तित्व, जो संसार की इस फैलती हुई बेल का बीज है, सिर्फ विचार से ही पैदा होता है।

5.50.25

शास्त्रसज्जनसंपर्कसंततताभ्यासयोगतः । जागतानामवस्तुत्वं भावानामवगम्यते ॥ २५ ॥

śāstrasajjanasamparkasantatābhyāsayogataḥ | jāgatānāmavastutvaṃ bhāvānāmavagamyate || 25 ||

Through scripture, through the company of good people, and through steady, continuing practice, one comes to understand that the things of this world are not real things.

शास्त्रों से, अच्छे लोगों की संगति से, और लगातार अभ्यास से, इन सबके मेल से यह समझ में आता है कि इस दुनिया की चीज़ें असल में कोई ठोस सच्चाई नहीं रखतीं।

5.50.26

अविवेकादुपाहृत्य चेतसोद्यमनिश्चयैः बलात्कारेण संयोज्यं शास्त्रसत्पुरुषक्रमैः ॥ २६ ॥

avivekād upāhṛtya cetasod yamaniścayaiḥ balātkāreṇa saṃyojyaṃ śāstrasat puruṣakramaiḥ || 26 ||

So the mind, once drawn out of its own folly, must be joined by force, through firm resolve and effort, to the path shown by scripture and by good people.

इसलिए मन को उसकी नासमझी से खींचकर, दृढ़ प्रयास और संकल्प के सहारे, शास्त्रों और सज्जनों के बताए रास्ते से जबरन जोड़ना ज़रूरी है।

5.50.27

मुख्यं कारणमात्मैव परमात्मावलोकने अगाधे पतितं रत्नं रत्नेनैवावलोक्यते ॥ २७ ॥

mukhyaṃ kāraṇamātmaiva paramātmāvalokane agādhe patitaṃ ratnaṃ ratnenaivāvalokyate || 27 ||

In seeing the supreme self, the self alone is the main cause. A jewel that has fallen into a bottomless deep is seen only by means of another jewel.

परमात्मा को देखने में असली कारण आत्मा खुद ही है। जो रत्न किसी अथाह गहराई में गिर जाए, वह किसी दूसरे रत्न से ही दिखाई देता है।

5.50.28

स्वानुभूतानि दुःखानि स्वात्मैव त्यक्तुमिच्छति तेनात्मैवात्मविज्ञाने हेतुरेकः परः स्मृतः ॥ २८ ॥

svānubhūtāni duḥkhāni svātmaiva tyaktumicchati tenātmaivātmavijñāne heturekaḥ paraḥ smṛtaḥ || 28 ||

The sufferings a person feels, only that person's own self wishes to be rid of. So the self alone is held to be the one, highest cause in the knowledge of the self.

जो दुख कोई खुद अनुभव करता है, उसे मिटाने की चाह भी उसकी अपनी आत्मा को ही होती है। इसलिए आत्मा को ही आत्म-ज्ञान का एक, सबसे बड़ा कारण माना गया है।

5.50.29

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्निमिषन्निमिषन्नपि निरस्तमननानन्तसंविन्मात्रपरो भव ॥ २९ ॥

pralapan visṛjan gṛhṇan nunmiṣan nimiṣan napi nirastamananānantasaṃvinmātraparo bhava || 29 ||

Whether you are speaking, letting go, grasping, opening your eyes, or closing them, stay devoted only to that endless awareness which is free of all thinking.

चाहे तुम बोल रहे हो, कुछ छोड़ रहे हो, कुछ पकड़ रहे हो, आँखें खोल रहे हो या बंद कर रहे हो, हमेशा उसी अनंत चेतना में लगे रहो जिसमें कोई विचार नहीं है।

5.50.30

जायमानस्तथा जीवन्म्रियमाणः क्रियारतः स्वात्मन्यमलतां प्राप्ते संविदंशे स्थिरो भव ॥ ३० ॥

jāyamānas tathā jīvan mriyamāṇaḥ kriyārataḥ svātmanyamalatāṃ prāpte saṃvidaṃśa sthiro bhava || 30 ||

Whether being born, living, dying, or busy with action, stay firm in the awareness where your own self has become pure.

चाहे जन्म ले रहे हो, जी रहे हो, मर रहे हो या किसी काम में लगे हो, उस चेतना में स्थिर रहो जहाँ तुम्हारा अपना स्वरूप शुद्ध हो गया है।

5.50.31

ममेदं तदयं सोऽहमिति संत्यज्य वासनाः। एकनिष्ठतयान्तस्थसंविन्मात्रपरो भव ॥ ३१ ॥

mamedaṃ tadayaṃ so'hamiti saṃtyajya vāsanāḥ| ekaniṣṭhayāntasthasaṃvinmātraparo bhava || 31 ||

Give up the habits that say this is mine, that is this, I am that person, and with a single focus, stay devoted only to the awareness that lives within you.

यह मेरा है, वह यह है, मैं वही हूँ, ऐसी आदतों को छोड़ दो, और पूरे ध्यान से केवल उस चेतना में लगे रहो जो तुम्हारे भीतर बसी है।

5.50.32

वर्तमानभविष्यन्त्योः स्थित्योरादेहमेकधीः। स्वसंवित्त्यानुसंधानसमाधानपरो भव ॥ ३२ ॥

vartamānabhaviṣyantyoḥ sthityorādeham ekadhīḥ| svasaṃvittyānusaṃdhānasamādhānaparo bhava || 32 ||

In the present and in the future, for as long as you have a body, keep the same understanding throughout, and stay devoted to steadily seeking out your own awareness.

वर्तमान में और भविष्य में, जब तक शरीर है, एक ही समझ बनाए रखो, और अपनी चेतना को लगातार खोजने में लगे रहो।

5.50.33

बाल्ययौवनवृद्धेषु दुःखेषु च सुखेषु च। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु स्वसंवित्तिपरो भव ॥ ३३ ॥

bālyayauvanavṛddheṣu duḥkheṣu ca sukheṣu ca| jāgratsvapnasuṣupteṣu svasaṃvittiparo bhava || 33 ||

In childhood, in youth, in old age, in sorrow and in joy, in waking, in dream, and in deep sleep, stay devoted only to your own awareness.

बचपन में, जवानी में, बुढ़ापे में, दुख में और सुख में, जागने में, सपने में और गहरी नींद में, केवल अपनी चेतना में लगे रहो।

5.50.34

मलं संवेद्यमुत्सृज्य मनो निर्गलयन्परम्। आशापाशमलं छित्त्वा स्वसंवित्तिपरो भव ॥ ३४ ॥

malaṃ saṃvedyamutsṛjya mano nirgalayanparam| āśāpāśamalaṃ chittvā svasaṃvittiparo bhava || 34 ||

Give up the impurity of everything you perceive, let your mind melt into the highest, cut away the dirty noose of desire, and stay devoted only to your own awareness.

जो कुछ भी दिखता है उसकी मैल को छोड़ दो, अपने मन को परम तत्व में घुलने दो, इच्छा के गंदे फंदे को काट दो, और केवल अपनी चेतना में लगे रहो।

5.50.35

शुभाशुभस्वसंकेतसंशान्ताशाविषूचिकः। नष्टेष्टानिष्टदृष्टिस्त्वं संवित्सारपरो भव ॥ ३५ ॥

śubhāśubhasvasaṃketasaṃśāntāśāviṣūcikaḥ| naṣṭeṣṭāniṣṭadṛṣṭistvaṃ saṃvitsāraparo bhava || 35 ||

When the cholera of desire, which shows itself through your own marks of good and bad, has gone quiet in you, and you no longer see anything as liked or disliked, stay devoted only to the essence of awareness.

जब अच्छे-बुरे के अपने ही संकेतों से बना इच्छा का हैज़ा तुम्हारे भीतर शांत हो जाए, और तुम्हें कुछ भी पसंद या नापसंद न लगे, तो केवल चेतना के सार में लगे रहो।

5.50.36

सकर्तृकर्मकरणान्स्वास्पर्शानन्तरा स्पृशन् निर्विकल्पनिरालम्बः स्वचिन्मात्रपरो भव ॥ ३६ ॥

sakartṛkarmaṇānsvāsparśānantarā spṛśan nirvikalpanirālambhaḥ svacinmātraparo bhava || 36 ||

Even while you touch the things your senses touch, the deeds done with a doer and a means, touch them as if untouched, resting on nothing, free of every thought, and stay devoted only to your own bare awareness.

तुम्हारी इंद्रियाँ जो कुछ छूती हैं, जो कर्म करने वाले, कर्म और साधन के साथ होता है, उसे ऐसे छुओ जैसे छुआ ही न हो, बिना किसी सहारे के, हर विचार से मुक्त होकर, और केवल अपनी शुद्ध चेतना में लगे रहो।

5.50.37

जाग्रत्येव हि संसुप्तां भावयन्सुस्थिरां स्थितिम् सर्वमस्मीति संचिन्त्य सत्तैकात्मवपुर्भव ॥ ३७ ॥

jāgratyeva hi saṃsuptāṃ bhāvayan susthirāṃ sthitim sarvamasmīti saṃcintya sattaiakātmavapurbhava || 37 ||

Even while you are awake, hold on to the steady stillness that is like deep sleep. Think I am everything, and become one whose very being is pure existence itself.

जागते हुए भी, गहरी नींद जैसी वह स्थिर शांति बनाए रखो। यह सोचकर कि मैं ही सब कुछ हूँ, शुद्ध सत्ता रूप बन जाओ।

5.50.38

नानाऽनानादशामुक्तो युक्तो मुक्ततया समे समग्रकलनादीपः स्वचिन्मात्रपरो भव ॥ ३८ ॥

nānā'nānādaśāmukto yukto muktatayā same samagrakalanādīpaḥ svacinmātraparo bhava || 38 ||

Free yourself from the ideas of many and not many, and join yourself instead to freedom, staying the same through everything, like a lamp shining over every such idea, and stay devoted only to your own pure awareness.

अनेक और न अनेक जैसे विचारों से मुक्त हो जाओ, और मुक्ति से जुड़ जाओ, हर हाल में एक जैसे रहते हुए, जैसे हर ऐसे विचार पर एक दीपक जल रहा हो, और केवल अपनी शुद्ध चेतना में लगे रहो।

5.50.39

आत्मतापरते त्यक्त्वा निर्विभागो जगत्स्थितौ वज्रस्तम्भवदात्मानमवलम्ब्य स्थिरो भव ॥ ३९ ॥

ātmatāparate tyaktvā nirvibhāgo jagatsthitau vajrastambhavadātmānamavalambya sthiro bhava || 39 ||

Give up taking pleasure in troubling yourself. Stay undivided within the world as it is, and resting on your own self as on a pillar of diamond, stay steady.

खुद को सताने में सुख लेना छोड़ दो। संसार में बिना बंटे हुए रहो, और अपने आप पर हीरे के खंभे की तरह टिककर स्थिर रहो।

5.50.40

स्थित्वान्तर्मानसान्पाशानाशारूपानुदारया धिया धैर्यैकधर्मिण्या निर्धर्माधर्मता व्रज ॥ ४० ॥

sthitvāntarmānasānpāśānāśārūpānudārayā dhiyā dhairyaikadharmiṇyā nirdharmādharmatā vraja || 40 ||

Stand firm against the inner snares of the mind that take the shape of hope, keep a generous mind whose only quality is steadiness, and go to the state that is beyond both virtue and vice.

आशा के रूप में भीतर बसे मानसिक फंदों के आगे डटे रहो, एक उदार मन रखो जिसका बस एक ही गुण है धैर्य, और पुण्य तथा पाप दोनों से परे उस अवस्था में चले जाओ।

5.50.41

समास्वादयतस्तत्त्वं स्वसंवेदनधर्मिणः । विषं हालाहलमपि यास्यत्यमृततामथ ॥ ४१ ॥

samāsvādayatastattvaṃ svasaṃvedanadharmiṇaḥ | viṣaṃ hālāhalamapi yāsyatyamṛtatāmatha || 41 ||

For someone who tastes the truth, whose nature is self-awareness, even the world's deadliest poison, halahala, turns into nectar.

जो सत्य का स्वाद लेता है, जिसका स्वभाव ही आत्म-चेतना है, उसके लिए दुनिया का सबसे भयंकर विष, हलाहल भी, अमृत बन जाता है।

5.50.42

तदोदेति महामोहः संसृतिभ्रमकारणम्। निर्मलाया निरंशायाः संवित्तेश्चामतिर्यदा ॥ ४२ ॥

tadodeti mahāmohaḥ saṃsṛtibhramakāraṇam | nirmalāyā niraṃśāyāḥ saṃvitteścāmatiryadā || 42 ||

Great confusion arises then, the very cause of wandering lost in this world, when a person fails to know that awareness which is without stain and without parts.

जब कोई उस चेतना को नहीं पहचान पाता जो निर्मल है और जिसका कोई भाग नहीं है, तभी बड़ा मोह उठ खड़ा होता है, जो संसार में भटकने का कारण बनता है।

5.50.43

तदा संक्षीयते मोहः संसारभ्रमकारणम्। निर्मलायां निरंशायां स्वसंवित्तौ स्थितिर्यदा ॥ ४३ ॥

tadā saṃkṣīyate mohaḥ saṃsārabhramakāraṇam | nirmalāyāṃ niraṃśāyāṃ svasaṃvittau sthitiryadā || 43 ||

And that confusion, the cause of wandering lost in this world, fades away when a person stays firm in that self-awareness which is without stain and without parts.

और वही मोह, जो संसार में भटकने का कारण है, मिट जाता है जब कोई उस निर्मल, निरंश आत्म-चेतना में स्थिर हो जाता है।

5.50.44

स्वरूपमनुयातस्य तीर्णस्याशामहार्णवम्। प्रसरिष्यति ते संवित्सर्यांशुरिव सर्वतः ॥ ४४ ॥

svarūpamanuyātasya tīrṇasyāśāmahārṇavam | prasariṣyati te saṃvitsaryāṃśuriva sarvataḥ || 44 ||

For someone who has found his own true nature, having crossed the huge ocean of craving, his awareness will spread out in every direction, like rays of the sun.

जिसने अपना असली स्वरूप पा लिया है, और इच्छा के विशाल समुद्र को पार कर लिया है, उसकी चेतना सूरज की किरणों की तरह चारों दिशाओं में फैल जाएगी।

5.50.45

स्वभावमालोकयत आनन्दाद्वयसंस्थितेः। रसायनमपि स्वादु राम प्रतिविषायते ॥ ४५ ॥

svabhāvamālokayata ānandādvayasaṃsthiteḥ | rasāyanamapi svādu rāma prativiṣāyate || 45 ||

Rama, for someone who has seen his own true nature and rests in the joy of oneness, even a sweet elixir starts to taste like poison.

राम, जिसने अपना सच्चा स्वरूप देख लिया है और अद्वैत आनंद में टिका हुआ है, उसके लिए मीठा रसायन भी विष जैसा लगने लगता है।

5.50.46

तैर्नो भजामहे पुंभिर्ये स्वभावमुपागताः। शेषाः पुरुषनामानो गर्दभा दीर्घबाहवः ॥ ४६ ॥

tairno bhajāmahe puṃbhirye svabhāvamupāgatāḥ | śeṣāḥ puruṣanāmāno gardabhā dīrghabāhavaḥ || 46 ||

We honor only those men who have found their true nature. The rest, even if they are called men and have long arms, are nothing but donkeys.

हम केवल उन्हीं पुरुषों का सम्मान करते हैं जिन्होंने अपना सच्चा स्वरूप पा लिया है। बाकी लोग, भले ही उन्हें पुरुष कहा जाए और उनकी भुजाएँ लंबी हों, गधे ही हैं।

5.50.47

पर्वतात्पर्वतं यान्ति पुरोऽद्रेरिव दन्तिनः । परां कोटिं प्रयातस्य स्वसंवित्त्युन्नतस्थितेः ॥ ४७ ॥

parvatātparvataṃ yānti puro'dreriva dantinaḥ | parāṃ koṭiṃ prayātasya svasaṃvittyunnatasthiteḥ || 47 ||

For someone who has climbed to the highest point, the lofty state of his own awareness, mountains move from mountain to mountain like elephants going ahead of a mountain.

जो अपनी चेतना की सबसे ऊँची और उन्नत अवस्था के शिखर तक पहुँच गया है, उसके लिए पर्वत भी उसी तरह एक से दूसरे पर्वत की ओर चलते हैं जैसे हाथी किसी पर्वत के आगे चलते हैं।

5.50.48

अदृष्टादृश्यसीम्नोऽन्तः सूर्यादीन्यखिलान्यपि । न तेजांस्युपकुर्वन्ति स्वसंविद्दिव्यचक्षुषः ॥ ४८ ॥

adṛṣṭādṛśyasīmno'ntaḥ sūryādīnyakhilānyapi | na tejāṃsyupakurvanti svasaṃviddivyacakṣuṣaḥ || 48 ||

For someone whose true eye is his own awareness, the eye that can see even into what is unseen and unseeable, the light of the sun and everything like it is of no use at all.

जिसकी असली आँख उसकी अपनी चेतना है, वह आँख जो दिखाई न देने वाली और न दिखने लायक सीमा के भीतर भी देख लेती है, उसके लिए सूरज और उस जैसी हर चीज़ की रोशनी किसी काम की नहीं रहती।

5.50.49

अवस्तुतां व्रजन्त्येते माध्याह्ना इव दीपकाः । अर्कादयो महालोका विद्ययाधिगतात्मनः ॥ ४९ ॥

avastutāṃ vrajantyete mādhyāhnā iva dīpakāḥ | arkādayo mahālokā vidyayādhigatātmanaḥ || 49 ||

The sun and every other great light become as useless as a lamp lit at midday, for someone who has found the self through true knowledge.

सूरज और बाकी सारी बड़ी रोशनियाँ, उस व्यक्ति के लिए दोपहर में जलाए गए दीये जितनी बेकार हो जाती हैं, जिसने सच्चे ज्ञान से आत्मा को पा लिया है।

5.50.50

तेजोंशुषु प्रभावेषु बलिष्वपि महत्स्वपि । सर्वेषून्नतियुक्तेषु तत्त्वज्ञः परमोन्नतः ॥ ५० ॥

tejoṃśuṣu prabhāveṣu baliṣvapi mahatsvapi | sarveṣūnnatiyukteṣu tattvajñaḥ paramonnataḥ || 50 ||

Among all things that shine, among all that has power, among all that is strong or great, among everything that stands high, the one who knows the truth stands the highest of all.

जो कुछ भी चमकता है, जो कुछ भी शक्तिशाली है, जो कुछ भी बलवान या महान है, जो कुछ भी ऊँचा है, उन सबमें सत्य को जानने वाला ही सबसे ऊँचा है।

5.50.51

भान्तीह भासा यस्यार्कवह्नीन्दुमणितारकाःतथा जगति राजन्ते ज्ञातज्ञेया नरोत्तमाः ॥ ५१ ॥

bhāntīha bhāsā yasyārkavahnīndumaṇitārakāḥtathā jagati rājante jñātajñeyā narottamāḥ || 51 ||

The light by which the sun, fire, moon, gems, and stars all shine here in this world, in that same way the finest of men, who have known what there is to know, shine out in the world.

जिस रोशनी से यहाँ इस दुनिया में सूरज, आग, चाँद, मणियाँ और तारे चमकते हैं, उसी तरह वे श्रेष्ठ पुरुष भी दुनिया में चमकते हैं जिन्होंने जानने योग्य को जान लिया है।

5.50.52

धराविवरकीटेभ्यो गर्दभेभ्योऽपि मानवःतिर्यग्भ्यश्चाप्यतत्त्वज्ञा राम तुच्छतराः स्मृताः ॥ ५२ ॥

dharāvivarakīṭebhyo gardabhebhyo'pi mānavaḥtiryagbhyaścāpyatattvajñā rāma tucchatarāḥ smṛtāḥ || 52 ||

Rama, people who do not know the truth are said to be more worthless than the worms that live in holes in the ground, more worthless than donkeys, and more worthless than any other animal.

राम, जो लोग सत्य को नहीं जानते, वे धरती के बिलों में रहने वाले कीड़ों से भी ज़्यादा तुच्छ माने जाते हैं, गधों से भी ज़्यादा तुच्छ, और किसी भी पशु से भी ज़्यादा तुच्छ।

5.50.53

तावत्संमोहवेतालो देही यावदनात्मवानात्मज्ञ एव संयुक्तश्चेतनेनेति तद्विदः ॥ ५३ ॥

tāvatsaṃmohavetālo dehī yāvadanātmavānātmajña eva saṃyuktaścetaneneti tadvidaḥ || 53 ||

As long as a person does not know the self, confusion haunts him the way a ghost haunts a body. Only the one who knows the self is truly joined with awareness, so say those who know this truth.

जब तक कोई व्यक्ति आत्मा को नहीं जानता, तब तक मोह उसे उसी तरह सताता है जैसे कोई भूत शरीर को सताता है। जो आत्मा को जानता है वही सचमुच चेतना से जुड़ा है, ऐसा वे कहते हैं जो यह सत्य जानते हैं।

5.50.54

अनात्मज्ञो हि दुःखेहः प्रस्फुरन्नपि भूतलेशव एव भ्रमत्युच्चैरात्मज्ञस्तु सचेतनः ॥ ५४ ॥

anātmajño hi duḥkhehaḥ prasphurannapi bhūtaleśava eva bhramatyuccairātmajñastu sacetanaḥ || 54 ||

One who does not know the self struggles in pain, and even while moving about, wanders the earth like a corpse. But one who knows the self is the one who is truly awake and alive.

जो आत्मा को नहीं जानता, वह दुख में तड़पता रहता है, और चलता-फिरता होते हुए भी धरती पर एक लाश की तरह भटकता है। पर जो आत्मा को जानता है, वही सचमुच जागा हुआ और जीवित है।

5.50.55

दूरादात्मज्ञता याति चित्ते पीवरतां गतेआलोकलक्ष्मीरभितो महामेघ इवोत्थिते ॥ ५५ ॥

dūrādātmajñatā yāti citte pīvaratāṃ gateālokalakṣmīrabhito mahāmegha ivotthite || 55 ||

When the mind grows thick and dull, self-knowledge moves far away, just as when a great cloud rises, it hides the glow of light all around.

जब मन मोटा और सुस्त हो जाता है, तो आत्म-ज्ञान दूर चला जाता है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ा बादल उठते ही चारों ओर की रोशनी की चमक ढक जाती है।

5.50.56

भोगाभोगतिरस्कारैः कार्श्यं नेयं शनैर्मनः । रसापहारैस्तज्ज्ञेन कालेनाजीर्णपर्णवत् ॥ ५६ ॥

bhogābhogatiraskāraiḥ kārśyaṃ neyaṃ śanairmanaḥ | rasāpahāraistajjñena kālenājīrṇaparṇavat || 56 ||

By turning away from both pleasure and the lack of it, and by slowly taking away what the mind finds pleasing, a person who understands this should thin the mind down bit by bit, over time, the way time slowly withers even a green leaf.

सुख को और सुख की कमी को, दोनों को ठुकराकर, और मन को जो अच्छा लगता है उसे धीरे-धीरे छीनकर, जो यह बात समझता है उसे मन को धीरे-धीरे, समय के साथ पतला करते जाना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे समय एक हरी पत्ती को भी धीरे-धीरे मुरझा देता है।

5.50.57

अन्यात्मन्यात्मभावेन देहमात्रास्थयानया । पुत्रदारकुटुम्बैश्च चेतो गच्छति पीनताम् ॥ ५७ ॥

anyātmanyātmabhāvena dehamātrāsthayānayā | putradārakuṭumbaiśca ceto gacchati pīnatām || 57 ||

By feeling I toward what is not the self, by trusting only in the body, and through attachment to sons, wife, and family, the mind grows heavy and swollen.

जो अपना नहीं है उसमें मैं का भाव रखकर, केवल शरीर पर भरोसा करके, और बेटे, पत्नी तथा परिवार के मोह से, मन भारी और स्थूल होता जाता है।

5.50.58

अहंकारविकारेण ममतामलहेलया । इदं ममेति भावेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥ ५८ ॥

ahaṃkāravikāreṇa mamatāmalahalayā | idaṃ mameti bhāvena ceto gacchati pīnatām || 58 ||

Through the twisting of ego, through the careless stain of possessiveness, and through the feeling this is mine, the mind grows fat.

अहंकार की विकृति से, ममता के मैल की लापरवाही से, और यह मेरा है ऐसे भाव से, मन मोटा हो जाता है।

5.50.59

जरामरणदुःखेन व्यर्थमुन्नतिमीयुषा । दोषाशीविषकोशेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥ ५९ ॥

jarāmaraṇaduḥkhena vyarthamunnatimīyuṣā | doṣāśīviṣakośena ceto gacchati pīnatām || 59 ||

The mind grows fat from the pain of old age and death, swollen to a useless height, and from the venom pouch of its faults, like a poisonous snake's.

बुढ़ापे और मृत्यु के दुख से मन मोटा हो जाता है, जो व्यर्थ ही ऊँचाई तक फूल जाता है, और अपने दोषों की उस थैली से जो विषैले सांप की विष-थैली जैसी है।

5.50.60

आधिव्याधिविलासेन समाश्वासेन संसृतेः । हेयादेयप्रयत्नेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥ ६० ॥

ādhiyādhivilāsena samāśvāsena saṃsṛteḥ | heyādeyaprayatnena ceto gacchati pīnatām || 60 ||

Through the play of mental pain and bodily disease, through the comfort of worldly life, and through the effort spent on what to take and what to leave, the mind grows fat.

मानसिक पीड़ा और शारीरिक रोग के खेल से, सांसारिक जीवन के दिलासे से, और क्या छोड़ें क्या अपनाएँ इस प्रयास से मन मोटा हो जाता है।

5.50.61

स्नेहेन धनलोभेन लाभेन मणियोषिताम् । आपातरमणीयेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥ ६१ ॥

snehena dhanalobhena lābhena maṇiyoṣitām | āpātaramaṇīyena ceto gacchati pīnatām || 61 ||

Through affection, through greed for wealth, through gaining jewels and women, through what is pleasant only at first sight, the mind grows fat.

स्नेह से, धन के लोभ से, गहनों और स्त्रियों की प्राप्ति से, और जो पहली नज़र में ही अच्छा लगे उससे मन मोटा हो जाता है।

5.50.62

दुराशाक्षीरपानेन भोगानिलबलेन च । आस्थादानेन चारेण चित्ताहिर्याति पीनताम् ॥ ६२ ॥

durāśākṣīrapānena bhogānilabalena ca | āsthādānena cāreṇa cittāhiryāti pīnatām || 62 ||

The mind, a snake, grows fat drinking the milk of vain hope, filled with the force of the wind of pleasures, fed by constant attention, and by its own restless roving.

मन रूपी सांप व्यर्थ आशा का दूध पीकर, भोगों की हवा के बल से, लगातार ध्यान देने से, और अपने ही भटकने से मोटा होता जाता है।

5.50.63

आगमापायवपुषा विषवैषम्यशंसिना। भोगाभोगेन भीमेन चेतो गच्छति पीनताम्॥ ६३॥

āgamāpāyavapuṣā viṣavaiṣamyasaṃsinā | bhogābhogena bhīmena ceto gacchati pīnatām || 63 ||

Through its very shape of coming and going, which betrays the unevenness of its poison, and through its terrible coiling, the mind grows fat.

मन आने-जाने के अपने रूप के कारण, जो उसके विष की विषमता को प्रकट करता है, और अपनी भयानक कुंडली के कारण, मोटा होता जाता है।

5.50.64

शरीरदुःश्वभ्रचिरप्ररूढं चिन्ताचयोच्चाकृतिमञ्जरीकम्। जरामृतिव्याधिफलौघनम्रं कामोपभोगौघविकासिपुष्पम्॥ ६४॥

śarīraduḥśvabhra ciraprarūḍhaṃ cintācayoccākṛtimañjarīkam | jarāmṛtivyādhifalaughnamraṃ kāmopabhogaughavikāsipuṣpam || 64 ||

It has grown for a long time, rooted in the wretched pit of the body. Its cluster of blossoms rises high, made of piled-up worries. It bends low under the heavy fruit of old age, death, and disease, and it bursts into flower with desire and enjoyment.

यह शरीर के गंदे गड्ढे में बहुत समय से जड़ जमाए बैठा है। इसके फूलों का गुच्छा चिंताओं के ढेर जैसा ऊँचा उठा है। यह बुढ़ापे, मृत्यु और रोग के भारी फलों के बोझ से झुका हुआ है, और यह काम तथा भोग के फूलों से खिल उठा है।

5.50.65

विचारसारक्रकचेन चित्तविषद्रुमं त्वद्भुतमद्रिकल्पम्। आशामहाशाखमशङ्कमेनं छिन्धि प्रसह्यात्र विकल्पपत्रम्॥ ६५॥

vicārasārakrakacena cittaviṣadrumaṃ tvadbhutamadrikalpam | āśāmahāśākham aśaṅkamenaṃ chindhi prasahyātra vikalpapatram || 65 ||

Cut down this poison-tree of the mind with the saw of clear discernment. It is astonishing, like a mountain, and hope is its great branch. Cut away its leaves of doubt, here and now, without fear.

मन के इस विषैले वृक्ष को विवेक की आरी से काट डालो। यह अचरज भरा है, मानो कोई पहाड़ हो, और आशा इसकी बड़ी डाल है। इसके संदेह के पत्तों को यहीं, बिना डरे, जोर से काट दो।

5.50.66

मत्तेक्षणं चैकतटोपवेशं विश्रान्तिसौख्येष्वसमर्थमुग्रम्। आलोकनोत्कं सुजनक्रमाल्लखण्डस्य चण्डं सुखदुःखगण्डम्॥ ६६॥

mattekṣaṇaṃ caikataṭopaveśaṃ viśrāntisaukhyeṣvasamarthamugram | ālokanotkaṃ sujanakramāllakhaṇḍasya caṇḍaṃ sukhaduḥkhagaṇḍam || 66 ||

Its eyes are wild as a rutting elephant's. It sits on the riverbank. It cannot rest or find any peace. It is fierce, always eager to look around, moving with the herd, savage, and both pleasure and pain run from its temples.

इसकी आँखें मस्त हाथी की तरह हैं। यह नदी के किनारे बैठा है। यह न आराम कर पाता है, न चैन पाता है। यह उग्र है, हमेशा चारों ओर देखने को उतावला रहता है, झुंड के साथ चलता है, क्रूर है, और इसकी कनपटियों से सुख-दुख दोनों बहते रहते हैं।

5.50.67

चेतोगजं कायकुकाननस्थं सुतीक्ष्णया धीकरजाग्रपङ्क्त्या । विदारयादीर्घविकारदन्तं क्रियाकरं राघव राजसिंह ॥ ६७ ॥

cetogajaṃ kāyakukānanasthaṃ sutīkṣṇayā dhīkarajāgrapaṅktyā | vidārayādīrghavikāradantaṃ kriyākaraṃ rāghava rājasimha || 67 ||

O Raghava, lion among kings, tear apart with the sharp claws of your wisdom this elephant of the mind. It lives in the miserable forest of the body. Its tusks have grown long and monstrous. It is the one that drives all action.

हे राघव, हे राजाओं में सिंह, अपनी बुद्धि के तीखे पंजों से मन के इस हाथी को चीर डालो। यह शरीर के गंदे जंगल में रहता है। इसके दांत लंबे और भयानक हो गए हैं। यही सब कर्मों को करवाने वाला है।

5.50.68

रतिं गतं नित्यमसत्प्रदेशे शरीरमांसग्रसनेन पुष्टम् । दुष्टक्रियाकर्कशचञ्चुदण्डमेकेक्षणं पुष्टतमोंशुकृष्णम् ॥ ६८ ॥

ratiṃ gataṃ nityamasatpradeśe śarīramāṃsagrasanena puṣṭam | duṣṭakriyākarkaśacañcudaṇḍamekekṣaṇaṃ puṣṭatamoṃśukṛṣṇam || 68 ||

It loves to stay in filthy places. It grows fat by feeding on the flesh of the body. Its beak is harsh, made for wicked deeds. It has one eye, and it is black with the thickest darkness.

यह सदा गंदी जगहों में रमता है। यह शरीर का मांस खाकर मोटा होता है। इसकी चोंच कठोर है, जो बुरे काम करती है। इसकी एक ही आँख है, और यह घने अंधकार जैसा काला है।

5.50.69

दूरे समुत्सारय भारभूतं दुश्चेष्टितं कर्कशमारटन्तम् । गन्धोद्गतं कायकुलायकोशाद्दोषोपशान्त्यै निजचित्तकाकम् ॥ ६९ ॥

dūre samutsāraya bhārabhūtaṃ duśceṣṭitaṃ karkaśamāraṭantam | gandhodgataṃ kāyakulāyakośāddoṣopaśāntyai nijacittakākam || 69 ||

Drive this crow of your own mind far away. It is a burden. It behaves badly. It caws harshly. It rises up stinking from its nest, the body. Drive it away, so that your faults may be calmed.

अपने इस मन-कौवे को दूर भगा दो। यह बोझ है। यह बुरी तरह व्यवहार करता है। यह कर्कश स्वर में काँव-काँव करता है। यह शरीर रूपी घोंसले से दुर्गंध फैलाते हुए उठता है। अपने दोषों को शांत करने के लिए इसे दूर भगा दो।

5.50.70

तृष्णापिशाच्या परिचर्यमाणं विश्रान्तमज्ञानमहावटेषु । भ्रान्तं चिरं देहशतेष्वटव्यां स्वसंसृतौ चेतनवर्जितेषु ॥ ७० ॥

tṛṣṇāpiśācyā paricaryamāṇaṃ viśrāntamajñānamahāvaṭeṣu | bhrāntaṃ ciraṃ dehaśateṣvāṭavyāṃ svasaṃsṛtau cetanavarjiteṣu || 70 ||

It is served by Craving, the she-demon. It rests under the great banyan trees of ignorance. For a long time it has wandered in a forest of a hundred bodies, in its own round of rebirth, moving among things that have no awareness.

इसकी सेवा तृष्णा नाम की राक्षसी करती है। यह अज्ञान के बड़े बरगद के पेड़ों के नीचे विश्राम करता है। यह बहुत समय से सैकड़ों शरीरों के जंगल में, अपने ही जन्म-मरण के चक्र में, चेतनाहीन चीज़ों के बीच भटकता रहा है।

5.50.71

विवेकवैराग्यगुरुप्रयत्नमन्त्रैः स्वतन्त्रैः स्वचिदात्मगेहात् नोत्सादयेच्चित्तपिशाचमेनं यावत्कुतस्तावदिहात्मसिद्धिः ॥ ७१ ॥

vivekavairāgyaguruprayatnamantraiḥ svatantraiḥ svacidātmagehāt notsādayecittapiśācamenaṃ yāvatkutastāvadihātmasiddhiḥ || 71 ||

Using nothing but the power of discernment, dispassion, and great effort, one must drive this demon of the mind out of the house that is one's own conscious self. As long as it lingers anywhere at all, self-realization here remains impossible.

अपने ही विवेक, वैराग्य और बड़े प्रयास के बल पर इस मन-रूपी पिशाच को अपने चेतन आत्मा के घर से निकाल बाहर करना चाहिए। जब तक यह कहीं भी बचा रहेगा, तब तक यहाँ आत्मसिद्धि संभव नहीं है।

5.50.72

शुभाशुभास्यं हतमानवौघं चिन्ताविषं कायकुकञ्चुकं च अजस्रमच्छश्वसनाशनं च सर्वस्य नानाभयनाशदं च ॥ ७२ ॥

śubhāśubhāsyaṃ hatamānavaughaṃ cintāviṣaṃ kāyakukañcukam ca ajasramacchaśvasanāśanaṃ ca sarvasya nānābhayanāśadaṃ ca || 72 ||

Its face shows both good and evil. It has destroyed multitudes of men. Its poison is worry. Its covering is the wretched body. Without pause it feeds on the very breath, and it brings every kind of fear and ruin to everyone.

इसका मुख अच्छाई और बुराई दोनों दिखाता है। इसने अनगिनत लोगों को मार डाला है। इसका विष चिंता है। इसका वस्त्र यह बुरा शरीर है। यह बिना रुके सांस को ही अपना भोजन बनाता है, और यह सबके लिए तरह-तरह के भय और विनाश लाता है।

5.50.73

हृदज्जदुःशाल्मलिकोटरस्थममोघया चित्खगमन्त्रशक्त्या नीत्वा शमं राम मनोमहाहिं भयं भृशं प्रोज्झ्य भवाभयात्मा ॥ ७३ ॥

hṛdajjaduḥśālmalikokoṭarasthamamoghayā citkhagamantrśaktyā nītvā śamaṃ rāma manomahāhiṃ bhayaṃ bhṛśaṃ projjhya bhavābhayātmā || 73 ||

Rama, calm this great snake of the mind, born in the heart and living in the hollow of the wretched silk-cotton tree, with the unfailing power of the mantra of your own awareness, the bird that masters snakes. Cast off your fear completely, and make your very self fearless of worldly existence.

हे राम, हृदय में जन्मे और उस अभागे सेमल के पेड़ की खोखल में रहने वाले मन के इस विशाल सर्प को, अपनी चेतना के अचूक मंत्र-बल से शांत कर दो, जो साँपों को वश में करने वाला पक्षी है। अपने भय को पूरी तरह त्याग दो, और अपनी आत्मा को संसार के भय से मुक्त कर लो।

5.50.74

अमङ्गलाकारधरः शरीरशवावलीसंततसेवनेन दिगावलीसंभ्रमणश्रमार्तः श्मशानसेवी वपुषा क्षतेन ॥ ७४ ॥

amaṅgalākāradharaḥ śarīraśavāvalīsantatasevanena digāvalīsaṃbhraṇaśramārtaḥ śmaśānasevī vapuṣā kṣaten || 74 ||

It has the shape of a bad omen. It is always found among rows of dead bodies. It grows tired from constantly circling in every direction. It haunts the cremation ground, and its body is torn and wounded.

इसका रूप अशुभ है। यह हमेशा लाशों की कतारों के बीच मिलता है। हर दिशा में लगातार चक्कर काटते-काटते यह थक जाता है। यह श्मशान में मंडराता है, और इसका शरीर घायल और क्षत-विक्षत है।

5.50.75

भोगमिषो दिक्ष्वभिधावमान उत्कन्धरो धीरविवृद्धगर्धः उड्डीय वै गच्छति चित्तगृध्रो देहद्रुमात्तन्निपुणं जयस्ते ॥ ७५ ॥

bhogamiṣo dikṣvabhidhāvamāna utkandharo dhīravivṛddhagardhaḥ uḍḍīya vai gacchati cittagṛdhro dehadrumāttannipuṇaṃ jayaste || 75 ||

Pretending to seek pleasure, it rushes about in every direction, its neck stretched out, its greed growing bolder and bolder. This vulture of the mind flies up and away from the tree of the body. May you master it completely.

सुख पाने के बहाने यह हर दिशा में दौड़ता है, गर्दन ताने हुए, इसका लालच लगातार बढ़ता ही जाता है। मन का यह गिद्ध शरीर रूपी पेड़ से उड़कर चला जाता है। तुम इसे पूरी कुशलता से जीत लो।

5.50.76

भ्रान्तं वनान्तेषु दिगन्तरेषु फलार्थिनं चञ्चलमाकुलाङ्गम् । जन्मावनेर्जन्ममहिं प्रयातं संसारबन्धं जनतां हसन्तम् ॥ ७६ ॥

bhrāntaṃ vanānteṣu digantareṣu phalārthinaṃ cañcalamākulāṅgam | janmāvanerjanmamahiṃ prayātaṃ saṃsārabandhaṃ janatāṃ hasantam || 76 ||

It wanders at the edge of forests, roaming in every direction, always looking for fruit. It is restless, its whole body in constant motion. It goes from one birth to the next, tied down in this world, mocking everyone around it.

यह जंगलों के किनारे भटकता है, हर दिशा में घूमता है, हमेशा फल की तलाश में रहता है। यह चंचल है, इसका पूरा शरीर लगातार हिलता-डुलता रहता है। यह एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है, इस संसार में बंधा हुआ, और लोगों का मज़ाक उड़ाता हुआ।

5.50.77

द्रुमेऽक्षिनासाकुसुमे भुजादिशाखे विलोलाङ्गुलिजालपत्रे । समुल्लसन्तं परिमारयान्तर्मनोमहामर्कटमङ्ग सिद्ध्यै ॥ ७७ ॥

drume'kṣināsākusume bhujādiśākhe vilolāṅgulijālapatre | samullasantam parimārayāntarmamomahāmarkaṭamanga siddhyai || 77 ||

On this tree whose flowers are the eyes and the nose, whose branches are the arms and other limbs, and whose leaves are the webs of restless fingers, a great monkey of the mind leaps and plays inside. Kill it completely, my friend, so that you may succeed.

इस पेड़ पर, जिसके फूल आँखें और नाक हैं, जिसकी डालियाँ भुजाएँ और बाकी अंग हैं, और जिसके पत्ते बेचैन उँगलियों के जाल हैं, मन का यह बड़ा बंदर भीतर उछल-कूद करता रहता है। हे मित्र, अपनी सिद्धि के लिए इसे पूरी तरह मार डालो।

5.50.78

अभ्युत्थितं सत्फलसंक्षयाय लसन्मुखासङ्गितडित्प्रकाशम् । वर्षन्तमासारमनर्थसार्थमान्दोलितं वासनवात्ययान्तः ॥ ७८ ॥

abhyutthitaṃ satphalasaṃkṣayāya lasanmukhāsaṅgitaditprakāśam | varṣantamāsāramanarthasārthamāndolitaṃ vāsanavātyayāntaḥ || 78 ||

It rises up to destroy every good result. Its face flashes with clinging streaks of lightning. It pours down a heavy rain, a whole flood of misfortune. Inside, it is tossed about by the storm wind of old desires.

यह हर अच्छे परिणाम को नष्ट करने के लिए उठ खड़ा होता है। इसके मुख पर चिपकी हुई बिजली चमकती है। यह भारी बारिश की तरह विपत्तियों का पूरा सैलाब बरसाता है। भीतर से यह पुरानी वासनाओं के तूफानी झोंकों से हिलता-डुलता रहता है।

5.50.79

संकल्पसंकल्पनवर्जनोग्रमन्त्रप्रभावाद्हृदयाम्बरस्थम्। सोत्साहमुत्सादय चित्तमेघं बृहत्फलं प्राप्य भवालमाद्यः ॥ ७९ ॥

saṃkalpasamkalpanavarjanogramantraprabhāvādhṛdayāmbarastham | sotsāhamutsādaya cittameghaṃ bṛhatphalaṃ prāpya bhavālamādyaḥ || 79 ||

With the fierce power of the mantra that means giving up every mental construct, destroy with all your zeal this cloud of the mind that hangs in the sky of your heart. Once you gain that great result, become, fully and completely, the first and highest being.

हर मानसिक कल्पना को त्याग देने वाले प्रचंड मंत्र की शक्ति से, अपने हृदय के आकाश में छाए इस मन के बादल को पूरे उत्साह से मिटा दो। यह बड़ा फल पाकर तुम पूरी तरह वह सबसे पहला, सबसे बड़ा तत्व बन जाओ।

5.50.80

ग्रन्थीकृतं कर्मभिरात्मसृष्टेर्मन्त्रैरभेद्यं ज्वलनैरदग्धम्। पीडां परामात्मनि कल्पयन्तं समस्तजात्यन्तरदीर्घदाम ॥ ८० ॥

granthīkṛtaṃ karmabhirātmasṛṣṭermantairabhedyaṃ jvalanairadagdham | pīḍāṃ parāmātmani kalpayantaṃ samastajātyantaradīrghadām || 80 ||

It is knotted by our own past deeds. No spell can break it, and no fire can burn it. It stretches long across countless different births, and it brings the self the deepest pain.

यह हमारे ही किए कर्मों से गँठा हुआ है। कोई मंत्र इसे तोड़ नहीं सकता, कोई आग इसे जला नहीं सकती। यह अनगिनत अलग-अलग जन्मों तक लंबा फैला रहता है, और यह आत्मा को गहरी पीड़ा देता है।

5.50.81

संप्रोतनिःसंख्यशरीरमालं बलादसंकल्पनमात्रशस्त्रैः। छित्त्वा स्वयं राघव चित्तपाशं यथासुखं त्वं विहरास्तशङ्कः ॥ ८१ ॥

saṃprotaniḥsaṃkhyasharīramālaṃ balādasankalpanamātraśastraiḥ | chittvā svayaṃ rāghava cittapāśaṃ yathāsukhaṃ tvaṃ viharāstashaṅkaḥ || 81 ||

Rama, cut this noose of the mind yourself. It is strung together with countless bodies like a garland. Cut it by force, using no weapon but freedom from mental thought, and then wander about happily as you please, with every doubt gone.

हे राघव, मन के इस फंदे को खुद काट डालो। यह गिनती से बाहर अनगिनत शरीरों को माला की तरह पिरोए हुए है। इसे बलपूर्वक काटो, बस एक ही हथियार से, यानी हर मानसिक कल्पना से मुक्त होकर। फिर हर शंका छोड़कर जैसे चाहो, सुख से विचरण करो।

5.50.82

फूत्कारदग्धाखिलपान्थलोकमत्यन्तदुष्प्रापपरप्रबोधम्। आशीविषं शोषितलोकखण्डं व्यात्त्यामिषोद्धूतशरीरदण्डम् ॥ ८२ ॥

phūtkāradagdhākhilapānthalokamatyantaduṣprāpaparaprabodham | āśīviṣaṃ śoṣitalokakhaṇḍaṃ vyāttyāmiṣoddhūtaśarīradaṇḍam || 82 ||

This poisonous snake burns up every traveler with just its hiss. True understanding of it is very hard to reach. It has dried up a whole part of the world, and its long body writhes as it opens its mouth wide, hungry for flesh.

यह विषैला सांप अपनी फुफकार मात्र से हर राहगीर को जला डालता है। इसे सचमुच समझ पाना बहुत कठिन है। इसने संसार के एक हिस्से को सुखा डाला है, और मांस के लिए मुँह पूरा खोले हुए इसका लंबा शरीर छटपटाता रहता है।

5.50.83

आमन्थरं देहगुहासु गुप्तं संकल्पघोराजगरं जवेन । अकामनानाममहानलेन बलेन दग्ध्वा विभवो भव त्वम् ॥ ८३ ॥

āmantharaṃ dehaguhasu guptaṃ saṃkalpaghorājagaraṃ javena | akāmanānāmamahānalena balena dagdhvā vibhavo bhava tvam || 83 ||

Quickly and forcefully burn away this terrible python of desire and thought, sluggish and hidden in the caves of the body, with the great fire called desirelessness. Then become, yourself, the truly glorious one.

शरीर की गुफाओं में छिपे, सुस्त, संकल्प के इस भयानक अजगर को अकामना नामक महान अग्नि से शीघ्र और बलपूर्वक जला डालो। फिर तुम स्वयं परम वैभवशाली बन जाओ।

5.50.84

चित्तेन चेतः शममाशु नीत्वा शुद्धेन घोरास्त्रमिवास्त्रयुक्त्या । चिराय साधो त्यज चञ्चलत्वं विमर्कटो वृक्ष इवाक्षतश्रीः ॥ ८४ ॥

cittena cetaḥ śamamāśu nītvā śuddhena ghorāstramivāstrayuktyā | cirāya sādho tyaja cañcalatvaṃ vimarkaṭo vṛkṣa ivākṣataśrīḥ || 84 ||

With a pure mind, quickly calm your restless mind, the way one skillfully wields a fearsome weapon. Good man, give up your restlessness forever, and become like a tree with no monkeys in it, its beauty unspoiled.

शुद्ध मन से अपने चंचल मन को शीघ्र शांत कर दो, जैसे कोई कुशलता से किसी भयंकर शस्त्र का प्रयोग करता है। हे साधु पुरुष, अपनी चंचलता को सदा के लिए त्याग दो, और उस पेड़ की तरह हो जाओ जिस पर कोई बंदर नहीं है, जिसकी शोभा अक्षुण्ण बनी रहती है।

5.50.85

अमलमिति च कृत्वा चेतसा वीतशङ्कमुपशमितमनोऽन्तः सर्वमादेहमेव । तृणलवलघु पश्यँल्लीलया हेयदृष्ट्या पिव विहर रमस्व प्राप्तसंसारपारः ॥ ८५ ॥

amalamiti ca kṛtvā cetasā vītaśaṅkamupaśamitamano'ntaḥ sarvamādeham eva | tṛṇalavalaghupaśyaṃllīlayā heyadṛṣṭyā piva vihara ramasva prāptasaṃsārapāraḥ || 85 ||

Know with your mind that the self alone is pure. Let your mind be calm within, free of every doubt. See everything, even your own body, as light as a blade of grass, playfully, with the eyes of someone who has let it all go. Then drink, wander, and enjoy freely, for you have crossed to the far shore of this world.

अपने मन से यह जान लो कि आत्मा ही निर्मल है। अपने मन को भीतर से शांत और हर शंका से मुक्त रखो। सब कुछ, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी, घास के एक तिनके जैसा हल्का समझो, खेल-खेल में, उस दृष्टि से जो सब कुछ त्याग चुकी है। फिर पियो, विचरण करो, और आनंद लो, क्योंकि तुम इस संसार के पार पहुँच चुके हो।

Chapter 51

5.51.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । परिदीर्घासु तन्वीषु सुतीक्ष्णासु सितासु च । क्षुरधारोपमानासु चित्तवृत्तिषु तिष्ठ मा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | paridīrghāsu tanvīṣu sutīkṣṇāsu sitāsu ca | kṣuradhāropamānāsu cittavṛttiṣu tiṣṭha mā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Do not dwell in thoughts that are long, thin, very sharp and bright, like the edge of a razor.

श्री वसिष्ठ ने कहा: उन विचारों में मत टिको जो लंबे, पतले, बहुत तेज़ और चमकीले हैं, बिलकुल छुरे की धार जैसे।

5.51.2

कालेन महता क्षेत्रे जातेयं बुद्धिवल्लरी । वृद्धिं विवेकसेकेन नय तां नयकोविद ॥ २ ॥

kālena mahatā kṣetre jāteyaṃ buddhivallarī | vṛddhiṃ vivekasekena naya tāṃ nayakovida || 2 ||

This creeper of understanding has grown, over a long time, in this field. Water it with discernment and make it grow taller, you who know the right way.

समझ की यह बेल लंबे समय में इस खेत में उगी है। इसे विवेक के पानी से सींचो और इसे और बढ़ने दो, तुम जो सही राह जानते हो।

5.51.3

यावन्म्लायति नो कायलतिका कालभास्वता । भूतलेऽपतितां तावदेनामुद्धृत्य धारय ॥ ३ ॥

yāvanmlāyati no kāyalatikā kālabhāsvatā | bhūtale'patitāṃ tāvadenāmuddhṛtya dhāraya || 3 ||

Before the sun of time withers this creeper that is your body, before it falls to the ground, lift it up and hold it.

इससे पहले कि समय का सूरज तुम्हारे शरीर की इस बेल को सुखा दे, इससे पहले कि यह ज़मीन पर गिरे, इसे उठाओ और सहारा दो।

5.51.4

मद्वाक्यार्थैकतत्त्वज्ञ मद्वाक्यार्थैकभावनात् । सुखमाप्नोषि सर्पारिर्यथाभ्रवभावनात् ॥ ४ ॥

madvākyārthaikatattvajña madvākyārthaikabhāvanāt | sukhamāpnoṣi sarpāriryathābhraravabhāvanāt || 4 ||

You know the one truth that is the meaning of my words. By dwelling only on the meaning of my words, you will find happiness, just as the peacock, the killer of snakes, finds joy at the sound of thunder.

तुम मेरे शब्दों के अर्थ में छिपे उस एक सत्य को जानते हो। मेरे शब्दों के अर्थ पर ही मन लगाने से तुम्हें सुख मिलेगा, ठीक जैसे मोर, जो साँपों को मारता है, बादलों की गरज सुनकर आनंदित होता है।

5.51.5

उद्दालकवदालूनं विशीर्णं भूतपञ्चकम् । कृत्वा कृत्वा धिया धीरधीरयान्तर्विचारय ॥ ५ ॥

uddālakavadālūnaṃ viśīrṇaṃ bhūtapañcakam | kṛtvā kṛtvā dhiyā dhīradhīrayāntarvicāraya || 5 ||

Cut apart and scatter the five elements again and again with your mind, as Uddalaka did, and quietly look within, calmly and steadily.

उद्दालक की तरह पाँचों तत्वों को बार-बार अपनी बुद्धि से काटो और बिखेरो, और शांति से, धीरज के साथ भीतर देखो।

5.51.6

श्रीराम उवाच । केन क्रमेण भगवन्मुनिनोद्दालकेन तत् । भूतपञ्चकमालूनं कृत्वान्तः प्रविचारितम् ॥ ६ ॥

śrīrāma uvāca | kena krameṇa bhagavanmuninoddālakena tat | bhūtapañcakamālūnaṃ kṛtvāntaḥ pravicāritam || 6 ||

Sri Rama said: Lord, by what method did the sage Uddalaka cut apart the five elements and look at them closely within himself?

श्री राम ने कहा: हे भगवन्, ऋषि उद्दालक ने किस तरीके से पाँचों तत्वों को काटकर उन्हें अपने भीतर गहराई से देखा?

5.51.7

श्रीवसिष्ठ उवाच । श्रृणु राम यथापूर्वं भूतवृन्दविचारणात् । उद्दालकेन संप्राप्ता परमा दृष्टिरक्षता ॥ ७ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | śṛṇu rāma yathāpūrvaṃ bhūtavṛndavicāraṇāt | uddālakena saṃprāptā paramā dṛṣṭirakṣatā || 7 ||

Sri Vasishtha said: Listen, Rama, to how, long ago, Uddalaka gained the highest, unbroken insight by examining the collection of elements.

श्री वसिष्ठ ने कहा: सुनो राम, कैसे बहुत पहले उद्दालक ने तत्वों के समूह की जाँच करके सबसे ऊँची, अटूट समझ पाई।

5.51.8

जगज्जीर्णगृहस्यास्य कोणे कस्मिंश्चिदाताते । भूमेरनिलदिग्नाम्नि भूभृद्भाण्डसमाकुले ॥ ८ ॥

jagajjīrṇagṛhasyāsya koṇe kasmiṃścidātate | bhūmeraniladignāmni bhūbhṛdbhāṇḍasamākule || 8 ||

In a certain broad corner of this old house that is the world lies a region of the earth called the direction of the wind, crowded with many mountains.

इस जगत रूपी पुराने घर के किसी एक बड़े कोने में धरती का वह हिस्सा है जिसे हवा की दिशा कहा जाता है, जो कई पहाड़ों से भरा है।

5.51.9

गन्धमादनशैलेन्द्रनाम्नि काचित्किल स्थली । विद्यते कीर्णकुसुमा द्रुमकर्पूरकेसरा ॥ ९ ॥

gandhamādanaśailendranāmni kācitkila sthalī | vidyate kīrṇakusumā drumakarpūrakesarā || 9 ||

There is indeed a place named Gandhamadana, the king of mountains. It is covered with flowers, and its camphor trees are full of fragrant blossoms.

वहीं सचमुच गंधमादन नाम की जगह है, जो पहाड़ों का राजा है। वह फूलों से ढकी है, और उसके कपूर के पेड़ खुशबूदार फूलों से भरे हैं।

5.51.10

विचित्रवर्णविहगा नानावल्लीविलासिनी । वनेचरव्याप्ततटी पुष्पकेसरभासिनी ॥ १० ॥

vicitravarṇavihagā nānāvallīvilāsinī | vanecaravyāptataṭī puṣpakesarabhāsinī || 10 ||

It has birds of many colours, and is lovely with all kinds of vines. Wild forest creatures fill its slopes, and it shines with the pollen of flowers.

वहाँ कई रंगों के पक्षी हैं, और तरह-तरह की बेलों से वह सुंदर लगता है। जंगली जानवर उसकी ढलानों पर भरे हैं, और वह फूलों के पराग से चमकता है।

5.51.11

क्वचित्स्फीतमहारत्ना क्वचिल्लोलाम्बुजोत्पला । क्वचिन्नीहारकबरी सरसीदर्पणा क्वचित् ॥ ११ ॥

kvacitsphītamahāratnā kvacillolāmbujotpalā | kvacinnīhārakabarī sarasīdarpaṇā kvacit || 11 ||

In one part it is rich with great jewels, in another its lotuses and blue lotuses sway in the water, in another it is streaked with mist, and in another its lakes are like mirrors.

कहीं वह बड़े-बड़े रत्नों से भरा है, कहीं उसके कमल और नीले कमल पानी में हिलते हैं, कहीं वह कोहरे से ढका है, और कहीं उसकी झीलें आईने जैसी हैं।

5.51.12

तत्र कस्मिंश्चिदुदिते सानौ सरलपादपे । आगुल्फाकीर्णकुसुमे स्निग्धच्छायमहाद्रुमे ॥ १२ ॥

tatra kasmiṃścidudite sānau saralapādape | āgulphākīrṇakusume snigdhachChāyamahādrume || 12 ||

There, on a certain hill, stood a great tree with cool, thick shade. Pine trees covered the hill, and flowers lay heaped up to the ankle.

वहाँ एक पहाड़ी पर घने और ठंडे छाँव वाला एक बड़ा पेड़ खड़ा था। पहाड़ी देवदार के पेड़ों से भरी थी और वहाँ टखनों तक फूल बिछे थे।

5.51.13

उद्दालको नाम मुनिर्मौनी मानी महामतिः । अप्राप्तयौवनः पूर्वमुवासोद्दामतापसः ॥ १३ ॥

uddālako nāma munirmauṇī mānī mahāmatiḥ | aprāptayauvanaḥ pūrvamuvāsodddāmatāpasaḥ || 13 ||

A sage named Uddalaka lived there. He was silent, dignified, and of great wisdom. In earlier days, before he had come of age, he practiced fierce austerities.

उद्दालक नाम का एक ऋषि वहाँ रहता था। वह चुप रहने वाला, आत्मसम्मानी और बड़ी बुद्धि वाला था। पहले, जवानी आने से पहले ही, वह कठोर तप करता था।

5.51.14

प्रथमं तु बभूवासावल्पप्रज्ञो विचारवान् । अप्राप्तपदविश्रान्तिरप्रबुद्धः शुभाशयः ॥ १४ ॥

prathamaṃ tu babhūvāsāvalpaprajño vicāravān | aprāptapadaviśrāntiraprabuddhaḥ śubhāśayaḥ || 14 ||

At first he had little understanding, though he was thoughtful. He had not yet found the resting place of truth, and had not yet awakened, but his heart was good.

शुरू में उसकी समझ कम थी, हालाँकि वह सोच-विचार करता था। उसे अभी सच्चाई का ठिकाना नहीं मिला था, और वह अभी जागा नहीं था, लेकिन उसका मन अच्छा था।

5.51.15

ततः क्रमेण तपसा शास्त्रार्थनियमैः क्रमैः । विवेक आजगामैनं नवर्तुरिव भूतलम् ॥ १५ ॥

tataḥ krameṇa tapasā śāstrārthaniyamaiḥ kramaiḥ | viveka ājagāmainaṃ navarturiva bhūtalam || 15 ||

Then, step by step, through austerity and through following the rules and meaning of the scriptures, discernment came to him, the way a new season comes to the earth.

फिर, धीरे-धीरे, तप से और शास्त्रों के अर्थ और नियमों का पालन करने से, उसमें विवेक आया, जैसे धरती पर एक नया मौसम आता है।

5.51.16

अथेमं चिन्तयामास संसारामयभीरुधीः । एकान्त एव निवसन्कदाचित्कान्तमानसः ॥ १६ ॥

athemaṃ cintayāmāsa saṃsārāmayabhīrudhīḥ | ekānta eva nivasankadācitkāntamānasaḥ || 16 ||

Then one day, living alone, his mind afraid of the sickness that is worldly life, his heart serene, he began to think:

फिर एक दिन, अकेले रहते हुए, उसका मन सांसारिक जीवन की बीमारी से डरा हुआ था, और उसका हृदय शांत था, तब वह सोचने लगा:

5.51.17

किं तत्प्राप्यं प्रधानं स्याद्यद्विश्रान्तौ न शोच्यते । यत्प्राप्य जन्मना भूयः संबन्धो नोपजायते ॥ १७ ॥

kiṃ tatprāpyaṃ pradhānaṃ syādyadvicrāntau na śocyate | yatprāpya janmanā bhūyaḥ saṃbandho nopajāyate || 17 ||

What is that one great thing to gain, which once found leaves nothing to grieve over, which once gained means no more connection with being born again?

वह कौन सी सबसे बड़ी चीज़ है जिसे पाना है, जिसे पाकर फिर कोई दुख नहीं रहता, और जिसे पाकर फिर से जन्म लेने का नाता नहीं रहता?

5.51.18

कदाहं त्यक्तमनने पदे परमपावने । चिरं विश्रान्तिमेष्यामि मेरुश्रृङ्ग इवाम्बुदः ॥ १८ ॥

kadāhaṃ tyaktamanane pade parmapāvane | ciraṃ viśrāntimeṣyāmi meruśṛṅga ivāmbudaḥ || 18 ||

When will I reach that supremely pure state, beyond all thinking, and rest there for a long time, like a cloud resting on the peak of Mount Meru?

मैं कब उस परम पवित्र अवस्था में पहुँचूँगा, जो सारी सोच-विचार से परे है, और वहाँ लंबे समय तक टिकूँगा, जैसे कोई बादल मेरु पर्वत की चोटी पर टिका रहता है?

5.51.19

कदा शममुपैष्यन्ति ममान्तर्भोगसंविदः । आलोलकल्लोलरवा ऊर्मयोऽम्बुनिधाविव ॥ १९ ॥

kadā śamamupaiṣyanti mamāntarbhogasaṃvidaḥ | ālolakallolaravā ūrmayo'mbunidhāviva || 19 ||

When will the feelings and thoughts stirring inside me become calm, the way restless, roaring waves grow still in the ocean?

मेरे भीतर उठने वाले भाव और विचार कब शांत होंगे, जैसे समुद्र में बेचैन, गरजती लहरें शांत हो जाती हैं?

5.51.20

इदं कृत्वेदमप्यन्यत्कर्तव्यमिति कल्पनाम् । कदान्तर्विहसिष्यामि पदविश्रान्तया धिया ॥ २० ॥

idaṃ kṛtvedamapyanyatkartavyamiti kalpanām | kadāntarvihasiṣyāmi padaviśrāntayā dhiyā || 20 ||

When will I, with a mind that has come to rest, laugh inside at this endless idea that says: having done this, there is still that other thing to do?

मैं कब, शांत हो चुके मन से, इस सोच पर भीतर ही भीतर हँसूँगा जो कहती रहती है: यह कर लिया, अब वह दूसरा काम भी करना है?

5.51.21

कदा विकल्पजालं मे न लगिष्यति चेतसि । स्थितमप्युज्झितासङ्गं पयः पद्मदले यथा ॥ २१ ॥

kadā vikalpajālaṃ me na lagiṣyati cetasi | sthitamapyujjhitāsaṅgaṃ payaḥ padmadale yathā || 21 ||

When will the tangle of restless thoughts stop clinging to my mind, staying near it, yet not sticking, the way water sits on a lotus leaf without wetting it?

मेरे मन में उलझे हुए विचारों का जाल कब चिपकना बंद करेगा, मन के पास रहकर भी न चिपके, जैसे पानी कमल के पत्ते पर बिना भिगोए टिका रहता है?

5.51.22

कदा बहुलकल्लोलां नावा परमया धिया । परितीर्णो भविष्यामि मत्तां तृष्णातरङ्गिणीम् ॥ २२ ॥

kadā bahulakallolāṃ nāvā paramayā dhiyā | paritīrṇo bhaviṣyāmi mattāṃ tṛṣṇātaraṅgiṇīm || 22 ||

When, in the boat of the highest wisdom, will I cross over the wild river of craving, with all its many waves?

मैं कब सबसे ऊँची बुद्धि की नाव में बैठकर, लालसा की उस बेचैन, लहरों से भरी नदी को पार करूँगा?

5.51.23

कदेमां जागतैर्भूतैः क्रियमाणामसन्मयीम् । क्रियामपहसिष्यामि बाललीलामिवाकुलाम् ॥ २३ ॥

kademāṃ jāgatairbhūtaiḥ kriyamāṇāmasanmayīm | kriyāmapahasiṣyāmi bālalīlāmivākulām || 23 ||

When will I laugh at all this activity done by worldly beings, unreal in its nature, as confused as a child's game?

मैं कब इस सारी क्रिया पर हँसूँगा जो सांसारिक जीव करते हैं, जो असल में झूठी है, और बच्चों के खेल जितनी उलझी हुई है?

5.51.24

कदा विकल्पपर्यस्तं मनो दोलावदोलनम् । शममेष्यति मे शान्तवातौजस इव भ्रमः ॥ २४ ॥

kadā vikalpaparyastaṃ mano dolāvadolanam | śamameṣyati me śāntavātaujas iva bhramaḥ || 24 ||

When will my mind, swinging back and forth like a swing, tossed by one notion after another, become still, the way a whirling eddy stills when the force of the wind dies down?

मेरा मन, जो झूले की तरह आगे-पीछे झूलता है और एक के बाद एक विचार से हिलता है, कब शांत होगा, जैसे हवा का ज़ोर कम होने पर भँवर शांत हो जाती है?

5.51.25

कदोदितवपुर्भासा विहसञ्जागतीर्गतीः । अन्तः संतोषमेष्यामि विराडात्मेव पूर्णधीः ॥ २५ ॥

kadoditavapurbhāsā vihasañjāgatīrgatīḥ | antaḥ saṃtoṣameṣyāmi virāḍātmeve pūrṇadhīḥ || 25 ||

When will I laugh at the ways of the world, my true light risen within me, and find contentment inside myself, my mind whole and full, like Virat, the cosmic being?

मैं कब संसार के तौर-तरीकों पर हँसूँगा, जब मेरे भीतर मेरा असली प्रकाश जाग उठेगा, और मैं अपने भीतर संतोष पाऊँगा, मेरा मन विराट पुरुष, उस सारे विश्व-रूप, की तरह पूरा और परिपूर्ण होगा?

5.51.26

अन्तः समसमाकारः सौम्यः सर्वार्थनिस्पृहः । कदोपशममेष्यामि मन्थमुक्तामृताब्धिवत् ॥ २६ ॥

antaḥ samasamākāraḥ saumyaḥ sarvārthanispṛhaḥ | kadopaśamameṣyāmi manthamuktāmṛtābdhivat || 26 ||

When, calm within, gentle, wanting nothing at all, will I come to perfect peace, like the ocean of nectar once the churning has stopped?

मैं कब, भीतर से शांत, कोमल, कुछ भी न चाहते हुए, पूरी शांति पाऊँगा, जैसे मंथन रुकने के बाद अमृत का सागर शांत हो जाता है?

5.51.27

कदेमामचलां दृश्यश्रियमाशाशतात्मिकाम् । सर्वां सुषुप्तवत्पश्यन्भविष्याम्यन्तराततः ॥ २७ ॥

kademāmacalāṃ dṛśyaśriyamāśāśatātmikām | sarvāṃ suṣuptavatpaśyanbhaviṣyāmyantarātataḥ || 27 ||

When will I see this whole unmoving glory of the visible world, made of a hundred hopes, as if it were nothing but a deep sleep, and come to be spread out within, everywhere?

जब मैं इस दिखने वाली पूरी शोभा को, जो सौ आशाओं से बनी है और भीतर से अचल है, गहरी नींद जैसा ही देखूँगा, और भीतर से हर तरफ फैला हुआ हो जाऊँगा?

5.51.28

सबाह्याभ्यन्तरं सर्व शान्तकल्पनया धिया । पश्यंश्चिन्मात्रमखिलं भावयिष्याम्यहं कदा ॥ २८ ॥

sabāhyābhyantaraṃ sarva śāntakalpanayā dhiyā | paśyaṃścinmātramakhilaṃ bhāvayiṣyāmyahaṃ kadā || 28 ||

When will I see everything, outside and inside, with a mind whose thinking has gone completely still, and feel all of it as nothing but pure consciousness?

जब मैं बाहर और भीतर की हर चीज़ को पूरी तरह शांत हो चुके मन से देखूँगा, और महसूस करूँगा कि यह सब केवल चेतना ही है?

5.51.29

कदोपशान्तचित्तात्मा चित्तामुपगतः पराम् । परमालोकमेष्यामि जात्यन्धविगमादिव ॥ २९ ॥

kadopaśāntacittātmā cittāmupagataḥ parām | paramālokameṣyāmi jātyandhavigamādiva || 29 ||

When, my mind and self grown calm, having reached that highest state, will I come to the supreme light - as someone born blind comes to sight when the blindness finally goes?

जब मेरा मन और मेरी आत्मा शांत होकर उस परम अवस्था को पा लेंगे, तब क्या मैं उस परम प्रकाश को पाऊँगा - जैसे जन्म से अंधा व्यक्ति अंधापन दूर होने पर आखिरकार रोशनी पाता है?

5.51.30

कदाभ्यासोपलभ्येन चित्प्रकाशेन चारुणा । दूरादालोकयिष्यामि तन्वीं कालकलामिमाम् ॥ ३० ॥

kadābhyāsopalabhyena citprakāśena cāruṇā | dūrādālokayiṣyāmi tanvīṃ kālakalāmimām || 30 ||

When, by the beautiful light of consciousness that practice alone brings, will I see, from far away, this slender sliver of time?

जब अभ्यास से मिलने वाले चेतना के सुंदर प्रकाश से, मैं समय के इस पतले से टुकड़े को दूर से देख पाऊँगा?

5.51.32

कदाशाकौशिकीकीर्णा जाड्यजीर्णहृदम्बुजा । क्षयमेष्यति कृष्णेयं कदा मे दोषयामिनी ॥ ३२ ॥

kadāśākauśikīkīrṇā jāḍyajīrṇahṛdambujā | kṣayameṣyati kṛṣṇeyaṃ kadā me doṣayāminī || 32 ||

When will this dark night of my faults come to an end - the night filled with owls of desire, that has withered the lotus of my heart with dullness?

मेरे दोषों की यह काली रात, जो इच्छाओं के उल्लुओं से भरी है और जिसने जड़ता से मेरे हृदय-कमल को मुरझा दिया है, कब समाप्त होगी?

5.51.33

ईहितानीहितैर्मुक्तो हेयोपादेयवर्जितः । कदान्तस्तोषमेष्यामि स्वप्रकाशपदे स्थितः ॥ ३३ ॥

īhitānīhitairmukto heyaopādeyavarjitaḥ | kadāntastoṣameṣyāmi svaprakāśapade sthitaḥ || 33 ||

When, free from wanting things and not wanting things, done with what to take and what to leave, standing in the place of my own self-shining light, will I feel content within?

जब मैं चाहने और न चाहने दोनों से मुक्त हो जाऊँगा, क्या लेना है और क्या छोड़ना है इस सबसे भी मुक्त हो जाऊँगा, और अपने ही स्वयं-प्रकाशित रूप में टिककर भीतर से संतोष पाऊँगा?

5.51.34

कदा मे मानमातङ्गः स्वाभिमानमहामदः । सत्त्वावबोधहरिणा हतो नाशमुपैष्यति ॥ ३४ ॥

kadā me mānamātaṅgaḥ svābhimānamahāmadaḥ | sattvāvabodhahariṇā hato nāśamupaiṣyati || 34 ||

When will the elephant of my pride, drunk with the great intoxication of self-conceit, be struck down by the lion of true understanding, and go to its end?

मेरे अभिमान का हाथी, जो अपने घमंड के बड़े नशे में डूबा है, कब सच्चे बोध के सिंह से मारा जाकर नष्ट होगा?

5.51.35

निरंशध्यानविश्रान्तेर्मूकस्य मम मूर्धनि । कदा तार्णं करिष्यन्ति कुलायं वनघूर्णिकाः ॥ ३५ ॥

niraṃśadhyānaviśrānter mūkasya mama mūrdhani | kadā tārṇaṃ kariṣyanti kulāyaṃ vanaghūrṇikāḥ || 35 ||

When will forest birds build a nest of grass on my head, since I sit silent, resting in meditation that never breaks?

जब मैं चुपचाप, बिना टूटे ध्यान में टिका बैठा रहूँगा, तब जंगल के पक्षी मेरे सिर पर घास का घोंसला कब बनाएँगे?

5.51.36

कदा निःशङ्कमुरसि ध्यानधीरधियः खगाः । मम विश्रान्तिमेष्यन्ति शैलस्थाण्वचलस्थितेः ॥ ३६ ॥

kadā niḥśaṅkamurasi dhyānadhīradhiyaḥ khagāḥ | mama viśrāntimeṣyanti śailasthāṇvacalasthiteḥ || 36 ||

When will birds, without any fear, come to rest on my chest, since I sit unmoving like a mountain or a tree-stump, my mind steady in meditation?

जब मैं पहाड़ या ठूँठ की तरह अचल बैठा रहूँगा और मेरा मन ध्यान में स्थिर रहेगा, तब पक्षी बिना किसी डर के मेरी छाती पर आकर कब बैठेंगे?

5.51.37

तृष्णाकरञ्जजटिलां जन्मजर्जरगुल्मिकाम् । संसारारण्यसरसीं त्यक्त्वा यास्याम्यहं कदा ॥ ३७ ॥

tṛṣṇākarañjajaṭilāṃ janmajarjaragulmikām | saṃsārāraṇyasarasīṃ tyaktvā yāsyāmyahaṃ kadā || 37 ||

When will I leave this pool in the forest of the world - choked with the thorny trees of craving, its bushes worn out by birth after birth - and go on?

तृष्णा के कँटीले पेड़ों से उलझा और जन्म-जन्म से जर्जर झाड़ियों वाला यह संसार-रूपी जंगल का तालाब, मैं कब छोड़कर आगे बढ़ूँगा?

5.51.38

इति चिन्तापरवशो वन उद्दालको द्विजः । पुनः पुनस्तूपविशन्ध्यानाभ्यासं चकार ह ॥ ३८ ॥

iti cintāparavaśo vana uddālako dvijaḥ | punaḥ punastūpaviśandhyānābhyāsaṃ cakāra ha || 38 ||

Thinking these thoughts, Uddalaka the brahmin, overcome by worry, sat down again and again in the forest and practiced meditation.

ऐसा सोचते हुए, चिंता से भरा हुआ ब्राह्मण उद्दालक जंगल में बार-बार बैठकर ध्यान का अभ्यास करता रहा।

5.51.39

विषयैर्नीयमाने तु चित्ते मर्कटचञ्चले। न स लेभे समाधानप्रतिष्ठां प्रीतिदायिनीम्॥ ३९॥

viṣayairnīyamāne tu citta markaṭacañcale | na sa lebhe samādhānapratiṣṭhāṃ prītidāyinīm || 39 ||

But since his mind, restless as a monkey, was carried away by the objects of the senses, he did not find the joy-giving steadiness of concentration.

पर उसका मन बंदर की तरह चंचल होकर विषयों में बहता रहा, इसलिए उसे आनंद देने वाली स्थिर एकाग्रता नहीं मिली।

5.51.40

कदाचिद्बाह्यसंस्पर्शपरित्यागादनन्तरम्। तस्यागच्छच्चित्तकपिः प्रोद्वेगं सत्त्वसंस्थितौ॥ ४०॥

kadācibāhyasaṃsparśaparityāgādanantaram | tasyāgacchacittakapiḥ prodvegaṃ sattvasaṃsthitau || 40 ||

Sometimes, right after he had let go of contact with things outside, the monkey of his mind would grow restless even while resting in that calm state.

कभी-कभी बाहरी चीज़ों का संपर्क छोड़ने के तुरंत बाद भी, उस शांत अवस्था में टिके रहते हुए उसका मन-रूपी बंदर बेचैन हो जाता था।

5.51.41

कदाचिदान्तरान् स्पर्शान्परित्यज्य मनःकपिः। लोलत्वात्तस्य संयातो विषयं विषदग्धवत्॥ ४१॥

kadācidaāntarān sparśānparityajya manaḥkapiḥ | lolatvāttasya saṃyāto viṣayaṃ viṣadagdhavat || 41 ||

Sometimes, letting go of inner touches too, the monkey of his mind, out of its own restlessness, ran to the objects of the senses - like someone burned by poison.

कभी-कभी भीतर के स्पर्शों को भी छोड़कर, उसका मन-रूपी बंदर अपनी चंचलता के कारण विषयों की ओर भाग जाता था - जैसे कोई विष से जला हुआ व्यक्ति भागता है।

5.51.42

कदाचिदुदितार्काभं तेजो दृष्ट्वान्तरे मनः। विषयोन्मुखतां यातं तस्य तामरसेक्षण॥ ४२॥

kadāciduditārkābhaṃ tejo dṛṣṭvāntare manaḥ | viṣayonmukhatāṃ yātaṃ tasya tāmarasekṣaṇa || 42 ||

Sometimes, O lotus-eyed one, after seeing within a light like the rising sun, his mind would still turn again toward the senses.

हे कमल-नयन, कभी-कभी भीतर उगते सूरज जैसा प्रकाश देखने के बाद भी, उसका मन फिर विषयों की ओर मुड़ जाता था।

5.51.43

आन्तरान्ध्यतमस्त्यागं कृत्वा विषयलम्पटम्। तस्योड्डीय मनो याति कदाचित्त्रस्तपक्षिवत्॥ ४३॥

āntarāndhyatamastyāgaṃ kṛtvā viṣayalampaṭam | tasyoḍḍīya mano yāti kadācitttrastapakṣivat || 43 ||

Sometimes, having cast off the inner darkness of blindness, his mind, greedy for the objects of the senses, would fly off - like a frightened bird.

कभी-कभी भीतर के अंधेपन के अंधकार को छोड़ने के बाद भी, विषयों का लालची उसका मन उड़ जाता था - जैसे कोई डरा हुआ पक्षी उड़ जाता है।

5.51.44

बाह्यानाभ्यन्तरान्स्पर्शांस्त्यक्त्वा निद्रां च तन्मनः । तमस्तेजोन्तिके लेभे कदाचिच्छाश्वतीं स्थितिम् ॥ ४४ ॥

bāhyānābhyantarānsparśāṃstyaktvā nidrāṃ ca tanmanaḥ | tamastejonantike lebhe kadāciścchāśvatīṃ sthitim || 44 ||

Sometimes, having given up contact with things outside and inside, and sleep as well, that mind of his would find a lasting stillness there, between darkness and light.

कभी-कभी बाहर और भीतर के सभी स्पर्श छोड़कर, और नींद भी छोड़कर, उसका वह मन अंधकार और प्रकाश के बीच उस स्थान पर एक स्थायी स्थिरता पा लेता था।

5.51.45

इति पर्याकुलस्यान्तः स खलु ध्यानवृत्तिषु । दरीष्वन्वहमुग्रासु वातमग्न इव द्रुमः ॥ ४५ ॥

iti paryākulasyaantḥ sa khalu dhyānavṛttiṣu | darīṣvanvahamugrāsu vātamagna iva drumḥ || 45 ||

Caught up in confusion like this, he stayed on in the movements of meditation, day after day, in the harsh mountain caves - like a tree caught in a storm wind.

इस तरह उलझा हुआ, वह दिन-प्रतिदिन कठोर पहाड़ी गुफाओं में ध्यान की उथल-पुथल में बना रहा - जैसे कोई पेड़ आँधी में फँसा हो।

5.51.46

अतिष्ठद्ध्यानसंरूढमननः संकटे यथा । दोलायितवपुस्तुच्छतृष्णातीरतरङ्गकैः ॥ ४६ ॥

atiṣṭhaddhyānasaṃrūḍhamananaḥ saṃkaṭe yathā | dolāyitavapustucchatṛṣṇātīrataraṅgakaiḥ || 46 ||

He stayed there, his thinking fixed deep in meditation as if hemmed in, his body swaying under the small waves on the shore of his own petty craving.

वह वहीं टिका रहा, उसका मन गहरे ध्यान में जमा हुआ था, मानो घिरा हुआ हो, और उसका शरीर अपनी तुच्छ तृष्णा के किनारे की छोटी लहरों से हिलता रहा।

5.51.47

अथ पर्याकुलमना विजहार मुनिर्गिरौ । प्रत्यहं दिवसाधीशो महामेराविवैककः ॥ ४७ ॥

atha paryākulamanā vijahāra munirgirau | pratyahaṃ divasādhīśo mahāmerāvivaikakaḥ || 47 ||

Then, his mind troubled, the sage wandered on the mountain day after day, alone - like the sun, the lord of the day, alone on the great mountain Meru.

फिर, मन में व्याकुल होकर, वह मुनि रोज़ पहाड़ पर अकेला घूमता रहा - जैसे दिन का स्वामी सूर्य महान मेरु पर्वत पर अकेला घूमता है।

5.51.48

समस्तभूतदुष्प्रापामेकदा प्राप कन्दराम् । संशान्तसर्वसंचारां मुनिर्मोक्षदशामिव ॥ ४८ ॥

samastabhūtaduṣprāpāmekadā prāpa kandarām | saṃśāntasarvasaṃcārāṃ munirmokṣadaśāmiva || 48 ||

One day the sage reached a mountain cave that no creature at all could reach - a cave where all movement had gone completely still, like the state of liberation itself.

एक दिन वह मुनि एक ऐसी पहाड़ी गुफा में पहुँचा, जहाँ कोई भी प्राणी नहीं पहुँच सकता था - एक ऐसी गुफा जहाँ हर हलचल पूरी तरह शांत हो चुकी थी, जैसे मोक्ष की अवस्था हो।

5.51.49

अपर्याकुलितां वातैरप्राप्तमृगपक्षिणीम्। अदृष्टां देवगन्धर्वैः परमाकाशशोभनाम्॥ ४९॥

aparyākulitāṃ vātairaprāptamṛgapakṣiṇīm | adṛṣṭāṃ devagandharvaiḥ paramākāśaśobhanām || 49 ||

That cave was undisturbed by winds, unreached by any deer or bird, unseen even by gods or gandharvas, and beautiful with the high open sky above it.

वह गुफा हवाओं से अछूती थी, किसी हिरण या पक्षी की पहुँच से बाहर थी, देवताओं और गंधर्वों ने भी उसे नहीं देखा था, और ऊपर के विशाल खुले आकाश से सुंदर लगती थी।

5.51.50

पुष्पप्रकरसंछन्नां मृदुशाद्वलकोमलाम्। ज्योतीरसाश्मसंप्रोतैः कृतां मरकतैरिव॥ ५०॥

puṣpaprakarasaṃchannāṃ mṛduśādvalakomalām | jyotīrasāśmasaṃprotairmarakatairiva || 50 ||

It was covered over with heaps of flowers, soft with tender grass, looking as if it were built out of emeralds set with glowing gems.

वह फूलों के ढेरों से ढकी थी, कोमल घास से मुलायम थी, और ऐसी लगती थी मानो चमकते रत्नों से जड़े पन्नों से बनाई गई हो।

5.51.51

सुस्निग्धशीतलच्छायां प्रकटां रत्नदीपकैः। सुगुप्तां वनदेवीनामन्तःपुरकुटीमिव॥ ५१॥

susnigdhaśītalacchāyāṃ prakaṭāṃ ratnadīpakaiḥ | suguptāṃ vanadevīnāmantaḥpurakuṭīmiva || 51 ||

Its shade was cool and gentle, lit up by jewels that shone like lamps, and it was as well hidden as the private inner chamber of forest goddesses.

उसकी छाया ठंडी और कोमल थी, वहाँ रत्न दीयों की तरह चमक रहे थे, और वह उतनी ही छिपी हुई थी जितना वन-देवियों का भीतरी निजी कक्ष होता है।

5.51.52

कुलम्बनाहिमालोकां नात्युष्णां नातिशीतलाम्। शारदस्योदितार्कस्य हेमगौरीं प्रभामिव॥ ५२॥

kulambanāhimālokāṃ nātyuṣṇāṃ nātiśītalām | śāradasyoditārkasya hemagauraṃ prabhāmiva || 52 ||

It was like a bank of water that never turned to ice, neither too hot nor too cold, like the pale golden light of the autumn sun just after it has risen.

वह ऐसी लगती थी जैसे कोई जलाशय का किनारा हो जो कभी बर्फ़ नहीं बनता, न बहुत गर्म, न बहुत ठंडी - जैसे शरद ऋतु के अभी उगे सूरज की सुनहरी-पीली रोशनी।

5.51.53

बालालोकपरिम्लानां कोमलाशब्दमारुताम्। मञ्जरीजटिलोपेतां बालां मालावतीमिव॥ ५३॥

bālālokaparimlānāṃ komalāśabdamārutām | mañjarījaṭilopetāṃ bālāṃ mālāvatīmiva || 53 ||

It was gently dimmed by the young morning light, its breeze soft and hushed, covered with tangled clusters of blossoms - like a young girl wearing a garland.

वह सुबह की नई हल्की रोशनी से हल्की धुंधली थी, उसकी हवा कोमल और शांत थी, और वह गुच्छों में उलझी कलियों से ढकी थी - जैसे कोई युवा लड़की माला पहने हो।

5.51.54

उपशमपदवीमिवानुरूपां कमलजविश्रमणाय योग्यरूपाम् । कुसुमनिकरकोमलाभिरामां सरसिजकोटरकोमलां समन्तात् ॥ ५४ ॥

upaśamapadavīmivānurūpāṃ kamalajaviśramaṇāya yogyarūpām | kusumanikarakomalābhirāmāṃ sarasijakoṭarakomalāṃ samantāt || 54 ||

It fit, like the very path to peace; it was shaped just right for Brahma, the lotus-born, to rest in; it was lovely and soft with heaps of flowers, soft all around like the inside of a lotus.

वह मानो शांति के मार्ग जैसी उपयुक्त थी; वह ठीक वैसी बनी थी कि कमल से जन्मे ब्रह्मा भी उसमें विश्राम कर सकें; वह फूलों के ढेरों से सुंदर और कोमल थी, और चारों ओर से कमल के भीतरी भाग जैसी मुलायम थी।

Chapter 52

5.52.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । स तां विवेश धर्मात्मा गन्धमादनकन्दराम् । चित्रभ्रमणसंप्राप्तामलिः पद्मकुटीमिव ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | sa tāṃ viveśa dharmātmā gandhamādanakandarām |
citrabhramaṇasaṃprāptāmalipadmakuṭīmiva || 1 ||

Sri Vasishtha said: he, the righteous man, entered that mountain cave of Gandhamadana, reached only after long wandering, as a bee reaches a bower of lotuses after wandering the same way.

श्री वसिष्ठ ने कहा: वह धर्मात्मा पुरुष गन्धमादन पर्वत की उस गुफा में गया, जो बहुत भटकने के बाद ही मिलती थी, जैसे एक भौंरा बहुत भटकने के बाद कमल की कुटिया तक पहुँचता है।

5.52.2

समाधानोन्मुखतया प्रविशन्स व्यराजत । सर्गव्यापारविरतावात्मपुर्यामिवाब्जजः ॥ २ ॥

samādhānonmukhatayā praviśans vyarājata | sargavyāpāraviratāvātmapuryāmivābjajaḥ || 2 ||

Entering with his mind turned toward deep meditation, he shone brightly, like Brahma, born from the lotus, entering his own city when the work of creation had come to rest.

गहरे ध्यान की ओर मन लगाकर भीतर जाते हुए वह चमक उठा, जैसे कमल से जन्मे ब्रह्मा सृष्टि का काम रुक जाने पर अपनी ही नगरी में प्रवेश करते हैं।

5.52.3

चकारासनमम्लानैः पत्रैरन्तस्वगुच्छकम् । मृदुमेघविधिर्वृन्दमम्भोदमिव तत्र सः ॥ ३ ॥

cakārāsanamamlānaiḥ patrairantasvagucchakam | mṛdumeghavidhirvṛndamambhodamiva tatra saḥ || 3 ||

There, with fresh, unwithered leaves, he made himself a seat, thick with its own gathered heap, like soft clouds gathering together into a mass.

वहाँ उसने ताज़ी, बिना मुरझाई पत्तियों से अपने लिए एक आसन बनाया, जो घनी तरह से इकट्ठा किया गया था, जैसे कोमल बादल इकट्ठे होकर एक घना समूह बन जाते हैं।

5.52.4

स तत्प्रस्तारयामास पृष्ठे चारु मृगाजिनम् । नीलरत्नतटे मेरुस्तारासारमिवाम्बरम् ॥ ४ ॥

sa tatprastārayāmāsa pṛṣṭhe cāru mṛgājinam | nīlaratnataṭe merustārāsāramivāmbaram || 4 ||

He spread a beautiful deerskin over the top of it, as Mount Meru spreads the star-filled sky over its slope of blue gems.

उसने उस आसन के ऊपर एक सुंदर मृगचर्म बिछाया, जैसे मेरु पर्वत अपने नीले रत्नों वाले ढलान पर तारों भरे आकाश को फैलाए रहता है।

5.52.5

स तत्रोपाविशद्वृत्तीश्चेतसस्तनुतां नयन् । अन्तःशुद्धवपुः शृङ्गे वृष्य मूक इवाम्बुदः ॥ ५ ॥

sa tatropāviśadvṛttīścetasastanutāṃ nayan | antaḥśuddhavapuḥ śṛṅge vṛṣya mūka ivāmbudaḥ || 5 ||

There he sat down, making the movements of his mind grow thin and subtle, his body pure within, like a silent cloud resting on a mountain peak after it has rained.

वहाँ वह बैठ गया, अपने मन की हलचलों को सूक्ष्म और पतला करते हुए, भीतर से शुद्ध शरीर लिए हुए, जैसे बरस चुका मौन बादल किसी पर्वत शिखर पर टिका रहता है।

5.52.6

बुद्धवत्सुदृढं बद्धपद्मासन उदङ्मुखः । पार्ष्णिभ्यां वृषणौ धृत्वा चकार ब्राह्ममञ्जलिम् ॥ ६ ॥

buddhavatsudṛḍhaṃ baddhapadmāsana udaṅmukhaḥ | pārṣṇibhyāṃ vṛṣaṇau dhṛtvā cakāra brāhmaṃjaliṃ || 6 ||

Firm and steady as one fully awake, he sat bound in the lotus posture, facing north, pressing his heels against his groin, and joined his palms in salutation to Brahman.

पूरी तरह जागे हुए व्यक्ति जैसा दृढ़ और स्थिर होकर, वह पद्मासन में बैठा, उत्तर की ओर मुख किए हुए, अपनी एड़ियाँ अपने गुह्य भाग पर टिकाकर, और उसने हाथ जोड़कर ब्रह्म को प्रणाम किया।

5.52.7

वासनाभ्यः समाहृत्य मनोमृगमुपप्लुतम् । निर्विकल्पसमाध्यर्थं चकारेमां विचारणाम् ॥ ७ ॥

vāsanābhyaḥ samāhṛtya manomṛgamupaplutam | nirvikalpasamādhyarthaṃ cakāremāṃ vicāraṇām || 7 ||

Having drawn back the deer of his mind, which had strayed under the pull of its old impressions, so as to reach thought-free absorption, he made this inquiry:

अपने मन रूपी हिरण को, जो पुराने संस्कारों के बहाव में भटक गया था, वापस खींचकर, निर्विकल्प समाधि पाने के लिए, उसने यह विचार किया:

5.52.8

अयि मूर्ख मनः कोऽर्थस्तव संसारवृत्तिभिः । धीमन्तो न निषेवन्ते पर्यन्ते दुःखदां क्रियाम् ॥ ८ ॥

ayi mūrkha manaḥ ko'rthastava saṃsāravṛttibhiḥ | dhīmanto na niṣevante paryante duḥkhadāṃ kriyām || 8 ||

Oh foolish mind, what use do you have for the habits of worldly life? Wise people do not pursue an action that brings sorrow in the end.

अरे मूर्ख मन, तुझे संसार की इन आदतों से क्या मिलता है? बुद्धिमान लोग ऐसा काम नहीं करते जो अंत में दुख ही दे।

5.52.9

अनुधावति यो भोगांस्त्यक्त्वा शमरसायनम् । संत्यज्य मन्दारवनं स याति विषजङ्गलम् ॥ ९ ॥

anudhāvati yo bhogāṃstyaktvā śamarasāyanam | saṃtyajya mandāravanaṃ sa yāti viṣajaṅgalam || 9 ||

One who chases after pleasures, giving up the elixir of peace, leaves behind a grove of heavenly mandara trees and walks into a jungle full of poison.

जो सुखों के पीछे भागता है और शांति के अमृत को छोड़ देता है, वह मन्दार वृक्षों के स्वर्गीय वन को छोड़कर विष भरे जंगल में चला जाता है।

5.52.10

यदि यासि महीरन्ध्रं ब्रह्मलोकमथापि वा । तन्न निर्वाणमायासि विनोपशमनामृतम् ॥ १० ॥

yadi yāsi mahīrandhraṃ brahmalokamathāpi vā | tanna nirvāṇamāyāsi vinopaśamanāmṛtam || 10 ||

Even if you go down into a hole in the earth, or up to the world of Brahma, you will not reach liberation without the nectar of inner peace.

चाहे तू धरती के किसी गड्ढे में जाए या ब्रह्मलोक में, शांति के अमृत के बिना तुझे मुक्ति नहीं मिलेगी।

5.52.11

आशाशतावपूर्णत्वे त्वमेवं सर्वदुःखदम्। त्यज्य याहि परं श्रेयः परमेकान्तसुन्दरम्॥ ११॥

āśāśatāvapūrṇatve tvamevaṃ sarvaduḥkhadam | tyajya yāhi paraṃ śreyaḥ paramēkāntasundaram || 11 ||

So long as hundreds of your desires remain unfulfilled, you bring nothing but sorrow. Give this up, and go toward the highest good, whose beauty stands alone above everything else.

जब तक सैकड़ों इच्छाएँ अधूरी रहती हैं, तब तक तू केवल दुख ही देता है। इसे छोड़ दे, और उस परम कल्याण की ओर चल, जिसकी सुंदरता हर चीज़ से अलग और सबसे ऊँची है।

5.52.12

इमा विचित्राः कलना भावाभावमयात्मिकाः। दुःखायैव तवोग्राय न सुखाय कदाचन॥ १२॥

imā vicitrāḥ kalanā bhāvābhāvamayātmikāḥ | duḥkhāyaiva tavogrāya na sukhāya kadācana || 12 ||

These many strange notions, made up of being and not-being, exist only to bring you sharp suffering, never, ever, to bring you joy.

ये तरह-तरह की अजीब कल्पनाएँ, जो होने और न होने से बनी हैं, तुझे सिर्फ गहरा दुख देने के लिए हैं, सुख देने के लिए कभी नहीं।

5.52.13

शब्दादिकाभिरेताभिः किं मूर्ख हतवृत्तिभिः। भ्रमस्यविरतं व्यर्थं मेघे मण्डूकिका यथा॥ १३॥

śabdādikābhiretābhiḥ kiṃ mūrkha hatavṛttibhiḥ | bhramasya viratam vyarthaṃ meghē maṇḍūkikā yathā || 13 ||

Fool, what use are these, sound and the rest, whose working only brings ruin? You wander on, endlessly and pointlessly, like a little frog in a cloud.

मूर्ख, इन सबका क्या फ़ायदा, शब्द वगैरह, जिनका काम ही बिगाड़ना है? तू बिना रुके, बेकार में भटकता रहता है, जैसे बादल में कोई छोटा मेंढक।

5.52.14

मनोमण्डूकिके व्यर्थमियन्तं कालमन्धया। भ्रमन्त्या भुवनं क्षिप्रं किं समासादितं त्वया॥ १४॥

manomaṇḍūkike vyarthamiyanthaṃ kālamandhayā | bhramantyā bhuvanaṃ kṣipraṃ kiṃ samāsāditaṃ tvayā || 14 ||

O frog-mind, wandering blind through the world, pointlessly, for so long a time, what have you actually gained?

हे मेंढक जैसे मन, इतने लंबे समय तक अंधे होकर, बेकार में दुनिया में भटकते हुए, तूने आखिर क्या पाया?

5.52.15

यस्मात्किंचिदवाप्नोषि यस्मिन्वहसि निर्वृतिम्। तस्मिंश्चेतः शमे मूर्ख नानुबध्नासि किं पदम्॥ १५॥

yasmātkiñcidavāpnoṣi yasminvahasi nirvṛtim | tasmiṃścetaḥ śame mūrkha nānubadhnāsi kiṃ padam || 15 ||

Mind, you fool, from that place you gain something real, in that place you find contentment, why do you not plant your foot firmly in that very peace?

मन, ओ मूर्ख, जिससे तुझे कुछ असली मिलता है, जिसमें तुझे संतोष मिलता है, उसी शांति में तू अपना पैर मज़बूती से क्यों नहीं जमाता?

5.52.16

आगत्य श्रोत्रतां मूर्ख व्यर्थोत्थानोपबृंहिताम्। धिया शब्दानुसारिण्या मृगवन्मा क्षयं व्रज ॥ १६ ॥

āgatya śrotratāṃ mūrkha vyarthotthānopabṛṃhitām | dhiyā śabdānusāriṇyā mṛgavanmā kṣayaṃ vraja || 16 ||

Fool, having become the sense of hearing, swollen with useless excitement, do not let your mind chase after sound and go to your ruin, like a deer.

मूर्ख, कान बनकर, बेकार के उत्साह से भरकर, शब्द के पीछे भागती बुद्धि से अपना नाश मत कर, जैसे हिरण करता है।

5.52.17

त्वक्तामागत्य दुःखाय स्पर्शोन्मुखतया धिया। मूर्ख मा बद्धतामेहि गजीलुब्धगजेन्द्रवत् ॥ १७ ॥

tvaktāmāgatya duḥkhāya sparśonmukhatayā dhiyā | mūrkha mā baddhatāmehi gajīlubdhagajendravat || 17 ||

Fool, having become the sense of touch, with your mind bent only on touching, do not fall into bondage that brings sorrow, like a mighty elephant trapped through his desire for a female elephant.

मूर्ख, स्पर्श बनकर, केवल छूने की ओर झुकी बुद्धि से, दुख देने वाले बंधन में मत पड़, जैसे कोई बड़ा हाथी हथिनी की चाह में फँस जाता है।

5.52.18

रसनाभावमागत्य गर्द्धेनान्ध दुरन्धसाम्। मा नाशमेहि बडिशपिण्डीलम्पटमत्स्यवत् ॥ १८ ॥

rasanābhāvamāgatya garrdhenāndha durandhasām | mā nāśamehi baḍiśapiṇḍīlampṭamatsyavat || 18 ||

Having become the sense of taste, blind with greed for bad food, do not rush to your ruin, like a fish greedy for the lump of bait on a hook.

रसना बनकर, बुरे भोजन के लालच में अंधा होकर, अपने नाश की ओर मत भाग, जैसे मछली काँटे में लगे चारे के लालच में फँस जाती है।

5.52.19

चाक्षुषीं वृत्तिमाश्रित्य प्रभारूपचयोन्मुखीम्। मा गच्छ दग्धतां मुग्ध कान्तिलुब्धपतङ्गवत् ॥ १९ ॥

cākṣuṣīṃ vṛttimāśritya prabhārūpacayonmukhīm | mā gaccha dagdhatāṃ mugdha kāntilubdhapataṅgavat || 19 ||

Deluded one, having relied on the eye's way of seeing, hungry for the brightness of shining forms, do not go up in flames, like the moth that craves the light.

हे मोहित मन, आँख के देखने के तरीके पर भरोसा करके, चमकते रूपों की चमक के लालच में, आग में मत जल, जैसे पतंगा रोशनी के लालच में जल जाता है।

5.52.20

घ्राणमार्गमुपाश्रित्य शरीराम्भोजकोटरे। गन्धोन्मुखतया बन्धं मा त्वं संश्रय भृङ्गवत् ॥ २० ॥

ghrāṇamārgamupāśritya śarīrāmbhojakoṭare | gandhonmukhatayā bandhaṃ mā tvaṃ saṃśraya bhṛṅgavat || 20 ||

Having taken the path of smell inside the lotus-hollow of the body, do not, out of craving for scent, bind yourself, like the bee trapped inside the lotus.

शरीर रूपी कमल की खोह में गंध के रास्ते पर चलकर, सुगंध के लालच में अपने आप को मत बाँध, जैसे भौंरा कमल में बंद हो जाता है।

5.52.21

कुरङ्गालिपतङ्गेभमीनास्त्वेकैकशो हताःसर्वैर्युक्तैरनर्थैस्तु व्याप्तस्याज्ञ कुतः सुखम् ॥ २१ ॥

kuraṅgālipataṅgebhamīnāstvekaikaśo hatāḥsarvairyuktairanarthaistu vyāptasyājña kutaḥ sukham || 21 ||

The deer, the bee, the moth, the elephant, and the fish are each destroyed by just one sense alone. So tell me, ignorant one, for someone caught by all these dangers together, where can happiness be found?

हिरण, भौंरा, पतंगा, हाथी और मछली, इनमें से हर एक सिर्फ एक इंद्रिय के कारण मारा जाता है। फिर बता, हे अज्ञानी, जो इन सब खतरों से एक साथ घिरा हो, उसे सुख कहाँ से मिलेगा?

5.52.22

हे चित्त वासनाजालं बन्धाय भवतोहितम्स्वात्मनः सहजः फेनस्ततः कुकृमिणा यथा ॥ २२ ॥

he citta vāsanājālaṃ bandhāya bhavatohitamsvātmanaḥ sahajaḥ phenastataḥ kukṛmiṇā yathā || 22 ||

Mind, the web of your own impressions is harmful to you and leads to bondage, just as foam, rising naturally from water itself, later breeds a lowly worm within it.

हे मन, तेरे अपने संस्कारों का जाल तेरे लिए हानिकारक है और तुझे बाँधता है, जैसे पानी से अपने आप उठा हुआ झाग बाद में उसी में एक तुच्छ कीड़ा पैदा कर देता है।

5.52.23

शरदभ्रवदागत्य शुद्धिं त्यक्तभवामयाम्यदि शाम्यसि निर्मूलं तदनन्तो जयस्तव ॥ २३ ॥

śaradabhravadāgatya śuddhiṃ tyaktabhavāmayāmyadi śāmyasi nirmūlaṃ tadananto jayastava || 23 ||

If you come to a purity like an autumn cloud, free of the sickness of worldly existence, and grow completely still down to the very root, then your victory will have no end.

अगर तू शरद ऋतु के बादल जैसी शुद्धता को पाए, संसार की बीमारी से मुक्त होकर, और जड़ से पूरी तरह शांत हो जाए, तो तेरी जीत का कोई अंत नहीं होगा।

5.52.24

क्षयोदयदशाधात्रीं पर्यन्तपरितापिनीम्जानन्नपि जगत्सृष्टिं न त्यक्ष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ २४ ॥

kṣayodayadaśādhātrīṃ paryantaparitāpinīmjānannapi jagatsṛṣṭiṃ na tyakṣyasi vinaṃkṣyasi || 24 ||

Even though you know that this created world only rises and falls, and brings pain in the end, you will not let go of it, and you will be destroyed.

यह जानते हुए भी कि यह बनी हुई दुनिया बस उतार-चढ़ाव लाती है और अंत में दुख देती है, तुम इसे नहीं छोड़ोगे, और तुम नष्ट हो जाओगे।

5.52.25

करोम्यथ किमर्थं वा तवैतदनुशासनम्विचारणवतः पुंसःचित्तमस्ति हि नानघ ॥ २५ ॥

karomyatha kimarthaṃ vā tavaitadanuśāsanamvicāraṇavataḥ puṃsaścittamasti hi nānagha || 25 ||

Then why should I obey this rule of yours? For a man who has real understanding, there is no mind at all, O pure one.

फिर मैं तुम्हारा यह आदेश क्यों मानूँ? जिस आदमी को सच्ची समझ आ गई है, उसके लिए मन नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, हे निर्मल।

5.52.26

यावदज्ञानघनता तावत्प्रघनचित्तता । यावत्प्रावृड्जलदता तावन्नीहारभूरिता ॥ २६ ॥

yāvadajñānaghanatā tāvatpraghanacittatā | yāvatprāvṛḍjaladatā tāvannīhārabhūritā || 26 ||

As long as ignorance stays thick, the mind stays thick with it; as long as the rain clouds are heavy, the fog is thick too.

जब तक अज्ञान घना रहता है, तब तक मन भी घना रहता है; जब तक बरसात के बादल घने रहते हैं, तब तक कोहरा भी घना रहता है।

5.52.27

यावदज्ञानतनुता तावच्चित्तस्य तानवम् । प्रावृद्वरिक्षयो यावत्तावन्नीहारसंक्षयः ॥ २७ ॥

yāvadajñānatanutā tāvaccittasya tānavam | prāvṛtparikṣayo yāvattāvannīhārasaṃkṣayaḥ || 27 ||

As ignorance grows thin, the mind grows thin along with it; as the rains fade, the fog fades away too.

जैसे-जैसे अज्ञान पतला होता है, वैसे-वैसे मन भी पतला होता है; जैसे बरसात घटती है, वैसे कोहरा भी मिट जाता है।

5.52.28

यावत्तानवमायातं शुद्धं चित्तं विचारतः । तावत्तत्क्षीणमेवाहं मन्ये शारदमेघवत् ॥ २८ ॥

yāvattānavamāyātaṃ śuddhaṃ cittaṃ vicārataḥ | tāvattatkṣīṇamevāhaṃ manye śāradameghavat || 28 ||

The moment the mind becomes clear through honest thinking and grows thin, I take it to be as good as gone, like a cloud in autumn.

जैसे ही सोच-विचार से मन साफ होकर पतला पड़ जाता है, मैं उसे लगभग खत्म हुआ ही मान लेता हूँ, शरद ऋतु के बादल की तरह।

5.52.29

अनुशासनमेतद्यदसतो नश्यतोऽथ वा । क्रियते तन्नभोवारिपवनाहननैः समम् ॥ २९ ॥

anuśāsanametadyadasato naśyato'tha vā | kriyate tannabhovāripavanaāhananaiḥ samam || 29 ||

To teach something that is not real and is already dying is like hitting the sky, or hitting water, or hitting the wind.

जो चीज़ झूठी है और वैसे भी मिटती जा रही है, उसे सिखाना आकाश पर, पानी पर या हवा पर वार करने जैसा है।

5.52.30

तस्मात्संक्षीयमाणत्वात्त्यजामि त्वामसन्मयम् । मौर्ख्यं परममेवाहुः परित्याज्यानुशासनम् ॥ ३० ॥

tasmātsaṃkṣīyamāṇatvāttyajāmi tvāmasanmayam | maurkhyaṃ paramamevāhuḥ parityājyānuśāsanam || 30 ||

So, since you keep wasting away, I let go of you, you who are made only of what is not real. To teach something that should just be dropped, people call that the biggest foolishness.

इसलिए, चूँकि तुम लगातार घटते जा रहे हो, मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ, तुम जो झूठ से बने हो। जिस चीज़ को बस छोड़ ही देना है, उसे सिखाना, लोग इसे सबसे बड़ी मूर्खता कहते हैं।

5.52.31

निर्विकल्पोऽस्मि चिद्दीपो निरहंकारवासनः । त्वयाहंकारबीजेन न संबद्धोऽस्म्यसन्मय ॥ ३१ ॥

nirvikalpo'smi ciddīpo nirahaṃkāravāsanaḥ | tvayāhaṃkārabījena na saṃbaddho'smyasanmaya || 31 ||

I am free of all mental images, a lamp of pure awareness, with not even a trace of ego left in me. I am not tied to you, seed of the ego, you who are made only of what is not real.

मैं सब कल्पनाओं से मुक्त हूँ, चेतना का एक दीया हूँ, जिसमें अहंकार का कोई अंश भी नहीं बचा। हे अहंकार के बीज, तुमसे मेरा कोई नाता नहीं है, तुम जो झूठ से बने हो।

5.52.32

अयं सोऽहमिति व्यर्थं दुर्दृष्टिरवलम्बिता । त्वया मूढविनाशाय शङ्काविषविषूचिका ॥ ३२ ॥

ayaṃ so'hamiti vyarthaṃ durdṛṣṭiravalambitā | tvayā mūḍhavināśāya śaṅkāviṣaviṣūcikā || 32 ||

You have held on to this useless, false idea, 'this is that, this is me' - a cholera brought on by the poison of doubt, there to destroy the fool.

तुमने यह बेकार, झूठी सोच पकड़ रखी है कि 'यह वही है, यह मैं हूँ' - यह शंका के ज़हर से हुआ हैज़ा है, जो मूर्ख को नष्ट कर देता है।

5.52.33

अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य तन्वीति मनसि स्थितिः । न संभवति बिल्वान्तर्वासितादन्तिनोर्यथा ॥ ३३ ॥

anantasyātmatattvasya tanvīti manasi sthitiḥ | na saṃbhavati bilvāntarvāsitādantinoryathā || 33 ||

To think that the endless truth of the Self is something small is impossible, as impossible as an elephant living inside a small wood-apple fruit.

यह सोचना कि आत्मा का अनंत सत्य कोई छोटी चीज़ है, वैसे ही असंभव है जैसे किसी छोटे-से बेल के फल के अंदर हाथी का रहना।

5.52.34

महाश्वभ्रीव गम्भीरा दुःखदा वासनाश्रिता । त्वयैषा बत चित्तेति नैनामनुसराम्यहम् ॥ ३४ ॥

mahāśvabhrīva gambhīrā duḥkhadā vāsanāśritā | tvaya eṣā bata citteti naināmanusarāmyaham || 34 ||

This thing of yours, the one they call the mind, is deep like a huge pit, gives nothing but pain, and rests on desire. I will not follow it.

तुम्हारी यह चीज़, जिसे लोग मन कहते हैं, किसी बड़े गड्ढे जितनी गहरी है, बस दुख ही देती है, और वासना पर टिकी है। मैं इसके पीछे नहीं जाऊँगा।

5.52.35

कः किलायं मुधा मोहो बालस्येवाविचारिणः । अयं सोऽहमिति भ्रान्तिस्त्वहंतापरिकल्पिता ॥ ३५ ॥

kaḥ kilāyaṃ mudhā moho bālasyevāvicāriṇaḥ | ayaṃ so'hamiti bhrāntistvahaṃtāparikalpitā || 35 ||

What is this useless delusion, like that of a child who never stops to think? This confusion, this is that, this is me, is only something the ego made up, and you built it.

यह कैसा बेकार मोह है, जैसे किसी बिना सोचे-समझे बच्चे का हो? यह वही है, यह मैं हूँ, यह भ्रम बस अहंकार की गढ़ी हुई कल्पना है, जिसे तुमने बनाया है।

5.52.36

पादाङ्गुष्ठाच्छिरो यावत्कणशः प्रविचारितम् । न लब्धोऽसावहं नाम कः स्यादहमिति स्थितः ॥ ३६ ॥

pādāṅguṣṭhācchiro yāvatkaṇaśaḥ pravicāritam| na labdho'sāvahaṃ nāma kaḥ syādahamiti sthitaḥ || 36 ||

I looked bit by bit, from the big toe up to the head, and I could not find any I there. So who is it that stands here as I?

पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक, एक-एक हिस्से की जाँच करने पर, मुझे कहीं कोई मैं नहीं मिला। तो फिर यहाँ मैं बनकर कौन खड़ा है?

5.52.37

भरिताशेषदिक्कुञ्जं यत्स्यामेकं जगत्त्रये । संवेदनमसंवेद्यं सर्वत्रविगतात्मकम् ॥ ३७ ॥

bharitāśeṣadikkuñjaṃ yatsyāmekaṃ jagattraye| saṃvedanamasavedyaṃ sarvatravigatātmakam || 37 ||

I am the one who fills every corner of every direction, in all three worlds, an awareness that cannot itself be known as a thing, present everywhere, with no separate shape of its own.

मैं वही एक हूँ जो हर दिशा के हर कोने को, तीनों लोकों में भर देता है, ऐसी चेतना जिसे किसी वस्तु की तरह जाना नहीं जा सकता, जो हर जगह है पर जिसका अपना कोई अलग आकार नहीं है।

5.52.38

दृश्यते यस्य नेयत्ता न नाम परिकल्पना । नैकता नान्यतैवेह न महत्ता न चाणुता ॥ ३८ ॥

dṛśyate yasya neyattā na nāma parikalpanā| naikatā nānyataiveha na mahattā na cāṇutā || 38 ||

No limit can be seen in it, and no name or idea can hold it. In it there is no oneness and no difference, no bigness and no smallness.

इसकी कोई सीमा दिखाई नहीं देती, और कोई नाम या विचार इसे बाँध नहीं सकता। इसमें न एकता है, न भिन्नता, न बड़ापन है, न छोटापन।

5.52.39

वेद तत्त्वां स्वसंवेद्यमाततं दुःखकारणम् । विवेकजेन बोधेन तदिदं हन्यसे मया ॥ ३९ ॥

veda tattvāṃ svasaṃvedyamātataṃ duḥkhakāraṇam| vivekajena bodhena tadidaṃ hanyase mayā || 39 ||

Now I know you, you who are known only to yourself, spread out everywhere, and the very cause of suffering. With this understanding born of clear thinking, I am destroying you now.

अब मैं तुम्हें पहचान गया हूँ, तुम जो सिर्फ अपने आप को ही जानते हो, हर जगह फैले हुए हो, और दुख के कारण हो। सच्ची समझ से आई इस जानकारी से, अब मैं तुम्हें मिटा रहा हूँ।

5.52.40

इदं मांसमिदं रक्तमिमान्यस्थीनि देहके । इमे ते श्वासमरुतः कोऽसावहमिति स्थितः ॥ ४० ॥

idaṃ māṃsamidaṃ raktamimānyasthīni dehake| ime te śvāsamārutaḥ ko'sāvahamiti sthitaḥ || 40 ||

This is flesh, this is blood, these are the bones in this body, these are the movements of breath. So who is it that stands here as I?

यह मांस है, यह खून है, ये देह की हड्डियाँ हैं, यह साँस का आना-जाना है। तो फिर यहाँ मैं बनकर कौन खड़ा है?

5.52.41

स्पन्दो हि वातशक्तीनामवबोधो महाचितः । जरा मृतिश्च कायेऽस्मिन्कोऽसावहमिति स्थितः ॥ ४१ ॥

spando hi vātaśaktīnāmavabodho mahācitaḥ| jarā mṛtiśca kāye'smin ko'sāvahamiti sthitaḥ || 41 ||

Movement belongs to the powers of breath, and awareness belongs to the great consciousness. Old age and death belong to this body. So who is it that stands here as I?

हलचल तो साँस की शक्तियों की है, और चेतना महाचेतना की है। बुढ़ापा और मौत इस शरीर के हैं। तो फिर यहाँ मैं बनकर कौन खड़ा है?

5.52.42

मांसमन्यदसृक्चान्यदस्थीन्यन्यानि चित्त हे । बोधोऽन्यः स्पन्दनं चान्यत्कोसावहमिति स्थितः ॥ ४२ ॥

māṃsamanyadasṛk cānyadasthīnyanyāni citta he| bodho'nyaḥ spandanaṃ cānyat ko'sāvahamiti sthitaḥ || 42 ||

Flesh is one thing, blood is another, bones are yet another, mind. Awareness is one thing, and movement is another. So who is it that stands here as I?

हे मन, मांस एक चीज़ है, खून दूसरी, हड्डियाँ फिर अलग हैं। चेतना एक चीज़ है, और हलचल दूसरी। तो फिर यहाँ मैं बनकर कौन खड़ा है?

5.52.43

इदं घ्राणमियं जिह्वा त्वगियं श्रवणे इमे । इदं चक्षुरसौ स्पर्शः कोऽसावहमिति स्थितः ॥ ४३ ॥

idaṃ ghrāṇam iyaṃ jihvā tvag iyaṃ śravaṇe ime| idaṃ cakṣurasau sparśaḥ ko'sāvahamiti sthitaḥ || 43 ||

This is the nose, this is the tongue, this is the skin, these are the ears, this is the eye, that is the sense of touch. So who is it that stands here as I?

यह नाक है, यह जीभ है, यह त्वचा है, ये कान हैं, यह आँख है, वह स्पर्श है। तो फिर यहाँ मैं बनकर कौन खड़ा है?

5.52.44

यथाभूततया नाहं मनो न त्वं न वासना । आत्मा शुद्धचिदाभासः केवलोऽयं विजृम्भते ॥ ४४ ॥

yathābhūtatayā nāhaṃ mano na tvaṃ na vāsanā| ātmā śuddhacidābhāsaḥ kevalo'yaṃ vijṛmbhate || 44 ||

In truth, I am not the mind, not you, and not any desire. Only the Self is here, the pure light of awareness, shining alone.

सच तो यह है कि न मैं मन हूँ, न तुम हूँ, न कोई वासना हूँ। यहाँ बस आत्मा है, चेतना का शुद्ध प्रकाश, जो अकेला चमक रहा है।

5.52.45

अहमेवेह सर्वत्र नाहं किंचिदपीह वा । इत्येव सन्मयी दृष्टिर्नेतरो विद्यते क्रमः ॥ ४५ ॥

ahameveha sarvatra nāhaṃ kiṃcidapīha vā| ityeva sanmayī dṛṣṭirnetaro vidyate kramaḥ || 45 ||

I alone am here, everywhere, or else I am nothing at all here. This alone is the way of seeing that rests on pure being. There is no other way.

यहाँ हर जगह बस मैं ही मैं हूँ, या फिर यहाँ मैं कुछ भी नहीं हूँ। यही वह दृष्टि है जो शुद्ध सत्य पर टिकी है। इसके अलावा और कोई तरीका नहीं है।

5.52.46

चिरमज्ञानधूर्तेन पोथितोऽस्मि त्वहंतया । वृकेण दृप्तेनाटव्यां लब्धेन पशुपोतकः ॥ ४६ ॥

ciramajñānadhūrtena pothito'smi tvahaṃtayā | vṛkeṇa dṛptenāṭavyāṃ labdhena paśupotakaḥ || 46 ||

For a long time I have been beaten down by the trickster called ignorance, working through you, my ego, like a young animal caught in the forest by a fierce wolf.

मैं बहुत समय से अज्ञान नाम के ठग के हाथों पिटता रहा हूँ, जो तुम्हारे, मेरे अहंकार के, ज़रिए काम करता रहा है, जैसे जंगल में किसी क्रूर भेड़िये के हाथ लगा कोई मासूम पशु-बच्चा।

5.52.47

दिष्ट्येदानीं परिज्ञातो मयैवाज्ञानतस्करः । पुनर्न संश्रयाम्येनं स्वरूपार्थापहारिणम् ॥ ४७ ॥

diṣṭyedānīṃ parijñāto mayaivājñānataskaraḥ | punarna saṃśrayāmyenaṃ svarūpārthāpahāriṇam || 47 ||

Luckily, I have now recognized the thief called ignorance. I will never turn to him again, the one who steals away the wealth of my own true nature.

अच्छा हुआ, अब मैंने अज्ञान नाम के इस चोर को पहचान लिया है। मैं दोबारा कभी इसकी शरण नहीं लूँगा, यह वह है जो मेरे असली स्वरूप की दौलत चुरा लेता है।

5.52.48

निर्दुःखो दुःखयोग्यस्य नाहं तस्य न चैष मे । कश्चिद्भवति शैलस्य तत्स्थ एव यथाम्बुदः ॥ ४८ ॥

nirduḥkho duḥkhayogyasya nāhaṃ tasya na caiṣa me | kaścidbhavati śailasya tatstha eva yathāmbudaḥ || 48 ||

I have no sorrow at all. I do not belong to that which is fit for sorrow, and it does not belong to me - just as a cloud resting on a mountain is nothing to the mountain.

मुझे कोई दुख नहीं है। जो चीज़ दुख के लायक है, न तो मैं उसका हूं, न वह मेरी है - जैसे पहाड़ पर टिका हुआ बादल पहाड़ का कुछ नहीं होता।

5.52.49

भूत्वा त्वहमिदं वच्मि वेद्मि तिष्ठामि यामि च । आत्मावलोकनेनाहमनहंकारतां गतः ॥ ४९ ॥

bhūtvā tvahamidaṃ vacmi vedaṃ tiṣṭhāmi yāmi ca | ātmāvalokanenāhamanahaṃkāratāṃ gataḥ || 49 ||

I still go on saying, "I do this," "I know," "I stand," "I go" - but by looking within at myself, I have gone beyond this feeling of "I."

मैं अब भी कहता रहता हूं, "यह मैं करता हूं," "मैं जानता हूं," "मैं खड़ा हूं," "मैं जाता हूं" - लेकिन अपने भीतर देखने से मैं इस "मैं" के भाव से आगे निकल गया हूं।

5.52.50

नूनमेवाहमेवैते मन्ये ज्ञाश्चक्षुरादयः । यान्तु तिष्ठन्तु वा देहे ममैते तु न किंचन ॥ ५० ॥

nūnamevāhamevaita manye jñāścakṣurādayaḥ | yāntu tiṣṭhantu vā dehe mamaite tu na kiṃcana || 50 ||

I truly think these knowing senses - the eyes and the rest - are myself. Yet whether they stay in this body or leave it, not one of them is mine.

मैं सचमुच यही सोचता हूं कि ये जानने वाली इंद्रियां - आंखें वगैरह - ही मैं हूं। फिर भी, चाहे ये शरीर में रहें या चली जाएं, इनमें से कोई भी मेरी नहीं है।

5.52.51

कष्टं कोऽयमहं नाम कथं केनोपकल्पितः । जगद्बालकवेतालस्तालोत्तालातुलाकृतिः ॥ ५१ ॥

kaṣṭaṃ ko'yamahaṃ nāma kathaṃ kenopakalpitaḥ | jagadbālakavetālastālottālātulākṛtiḥ || 51 ||

How hard this is! Who indeed is this "I"? How was it made, and by whom? It is a ghost haunting the children of this world, a shape monstrous, wild, and beyond compare.

कितना कठिन है यह! आखिर यह "मैं" है कौन? यह बना कैसे, और किसने बनाया? यह इस जगत के बच्चों को सताने वाला एक भूत है, एक ऐसा रूप जो भयानक, उग्र और बेजोड़ है।

5.52.52

एतावन्तं चिरं कालं व्यर्थमालुठितोऽवटे । अहमत्र तृणोन्मुक्ते दुरद्रौ हरिणो यथा ॥ ५२ ॥

etāvantaṃ ciraṃ kālaṃ vyarthamāluṭhito'vaṭe | ahamatra tṛṇonmukte duradrau hariṇo yathā || 52 ||

For all this long time I have thrashed about here uselessly, stuck in a pit, on a bare mountain with no grass, like a deer.

इतने लंबे समय से मैं यहां बेकार ही तड़पता रहा हूं, एक गड्ढे में फंसा हुआ, बिना घास के एक सूखे पहाड़ पर, हिरन की तरह।

5.52.53

स्वार्थमालोकने चक्षुर्यदितून्मुखतां गतम् । तदहं नाम कोसौ स्याद्योऽस्मिन्दुःखे न मोहितः ॥ ५३ ॥

svārthamālokane cakṣuryaditūnmukhatāṃ gatam | tadahaṃ nāma kosau syādyo'sminduḥkhe na mohitaḥ || 53 ||

The eye turns outward only to see what is its own concern. So who then is this "I" who stays undeceived in all this suffering?

आंख तो बस अपने काम के लिए बाहर की ओर देखती है। तो फिर यह "मैं" कौन है, जो इस सारे दुख में भी धोखा नहीं खाता?

5.52.54

स्पर्शनाय निजे तत्त्वे यदि जाता त्वगुन्मुखीतत्कोयं स्यादहं नाम कुपिशाच इवोदितः ॥ ५४ ॥

sparśanāya nije tattve yadi jātā tvagunmukhītatkoyaṃ syādahaṃ nāma kupiśāca ivoditaḥ || 54 ||

If the skin, on its own, turns to touch to sense what is its own nature, then who is this so-called "I" that has arisen like a vile ghost?

अगर त्वचा अपने आप स्पर्श की ओर मुड़ती है ताकि अपने स्वभाव को महसूस कर सके, तो फिर यह जो "मैं" कहलाता है, वह कौन है, जो एक नीच भूत की तरह उठ खड़ा हुआ है?

5.52.55

रसेष्वभिनिषण्णेऽस्मिन्स्वक्रमे रसनेन्द्रिये । अहं मृष्टभुगित्येष कुतस्त्यः कुत्सितो भ्रमः ॥ ५५ ॥

raseṣvabhiniṣaṇṇe'smin svakrame rasanendriye | ahaṃ mṛṣṭabhugityeṣa kutastyāḥ kutsito bhramaḥ || 55 ||

When the tongue is simply doing its own work, tasting flavors, where does this vile confusion come from - the thought, "I am the one enjoying this delicious food"?

जब जीभ बस अपना काम कर रही होती है, स्वाद चख रही होती है, तो यह घटिया भ्रम कहां से आता है - यह खयाल कि "मैं ही इस स्वादिष्ट भोजन का आनंद ले रहा हूं"?

5.52.56

शब्दशक्तिं गते श्रोत्रे वराके स्वार्थपीडिते । तदहंकारदुःखस्य निर्बीजस्य क आगमः ॥ ५६ ॥

śabdaśaktiṃ gate śrotre varāke svārthapīḍite | tadahaṃkāraduḥkhasya nirbījasya ka āgamaḥ || 56 ||

The poor ear, troubled just by doing its own natural task, simply catches the power of sound. So where does this baseless suffering of "I" come from?

बेचारा कान, अपने ही स्वाभाविक काम से परेशान होकर, बस आवाज़ को पकड़ता है। तो फिर "मैं" के इस बेबुनियाद दुख की जड़ कहां है?

5.52.57

आत्मभरित्वेन निजे घ्राणे स्वं गन्धमागते । अहं घ्रातेति यो माता तं चौरं नैव वेद्म्यहम् ॥ ५७ ॥

ātma-bhari-tv-ena nije ghrāṇe svaṃ gandhamāgatē | ahaṃ ghrātēti yō mātā taṃ cauram naiva vēdm'yaham || 57 ||

When the nose, all on its own, simply catches a smell, the thought comes, "I have smelled it." I do not even know this thief who makes up that thought.

जब नाक अपने आप ही कोई गंध पकड़ लेती है, तो यह खयाल आता है, "मैंने यह सूंघा।" मैं तो इस चोर को जानता तक नहीं, जो यह खयाल गढ़ता है।

5.52.58

मृगतृष्णाक्रमेणैषा भावना व्यर्थभाविनी । भावस्तस्यामसत्यायां यः सोऽयमिति संभ्रमः ॥ ५८ ॥

mṛgatṛṣṇākrameṇaiṣā bhāvanā vyarthabhāvinī | bhāvastasyāmasatyāyāṃ yaḥ so'yamiti saṃbhramaḥ || 58 ||

Like a mirage, this imagining creates something that is not real. To think, "this is that," about something unreal - that thought is nothing but confusion.

जैसे रेगिस्तान में दूर से पानी दिखने का धोखा होता है, वैसे ही यह कल्पना कुछ ऐसा बना देती है जो असल में है ही नहीं। किसी झूठी चीज़ के बारे में यह मान लेना कि "यही वह है" - यह सिर्फ एक भ्रम है।

5.52.59

वासनाहीनमप्येतच्चक्षुरादीन्द्रियैः स्वतः । प्रवर्तते बहिः स्वार्थे वासना नात्र कारणम् ॥ ५९ ॥

vāsanāhīnamapyetaccakṣurādīndriyaiḥ svataḥ | pravartate bahiḥ svārthe vāsanā nātra kāraṇam || 59 ||

Even with no craving at all, the senses - the eye and the rest - go out on their own toward their own objects. Craving is not the cause here.

चाहे कोई तृष्णा बिल्कुल भी न हो, तब भी इंद्रियां - आंख वगैरह - अपने आप अपने-अपने विषयों की ओर बाहर जाती हैं। यहां तृष्णा कोई वजह नहीं है।

5.52.60

वासनारहितं कर्म क्रियते ननु चित्त हे । केवलं नानुभूयन्ते सुखदुःखदृशोऽग्रगाः ॥ ६० ॥

vāsanārahitaṃ karma kriyate nanu citta he | kevalaṃ nānubhūyante sukhaduḥkhadṛśo'gragāḥ || 60 ||

Work can still be done without craving, O mind! Only, the feelings of pleasure and pain that usually come first are not felt.

बिना तृष्णा के भी काम हो सकता है, हे मन! बस, सुख और दुख की जो अनुभूतियां आमतौर पर सबसे पहले आती हैं, वे महसूस नहीं होतीं।

5.52.61

तस्मान्मूर्खाणीन्द्रियाणि त्यक्त्वान्तर्वासनां निजाम् । कुरुध्वं कर्म हे सर्वं न दुःखं समवाप्स्यथ ॥ ६१ ॥

tasmānmūrkhāṇīndriyāṇi tyaktvāntarvāsanāṃ nijām | kurudhvaṃ karma he sarvaṃ na duḥkhaṃ samavāpsyatha || 61 ||

So, you foolish senses! Give up your own inner craving, and do all your work - you will not get any suffering.

इसलिए, हे मूर्ख इंद्रियो! अपनी भीतरी तृष्णा को छोड़ दो, और अपना सारा काम करो - तुम्हें कोई दुख नहीं मिलेगा।

5.52.62

भवद्भिरेव दुःखाय वासनावासिता मुधा । बालैः पङ्ककृीडनकं विनाशेनेव खिन्नता ॥ ६२ ॥

bhavadbhireva duḥkhāya vāsanāvāsitā mudhā | bālaiḥ paṅkakrīḍanakaṃ vināśeneva khinnatā || 62 ||

You yourselves, for nothing, have soaked yourselves in craving, only to suffer for it - like the sadness children feel when their mud toy is destroyed.

तुमने खुद ही, बेवजह, अपने आप को तृष्णा में डुबो लिया है, बस दुख पाने के लिए - जैसे बच्चों को दुख होता है जब उनका मिट्टी का खिलौना टूट जाता है।

5.52.63

वासनाद्या दृशः सर्वा व्यतिरिक्तास्तु नात्मनः । जलादिव तरङ्गाद्या ज्ञस्यैवान्यस्य नानघ ॥ ६३ ॥

vāsanādyā dṛśaḥ sarvā vyatiriktāstu nātmanaḥ | jalādiva taraṅgādyā jñasyeva anyasya nānagha || 63 ||

Craving, and everything else we perceive, is separate from the true self - none of it belongs to the self - just as waves rising from water belong to something else, to the one who simply knows, O sinless one.

तृष्णा और जो कुछ भी हम देखते-महसूस करते हैं, वह सच्चे स्वयं से अलग है - इनमें से कुछ भी स्वयं का नहीं है - जैसे पानी में उठने वाली लहरें किसी और चीज़ की होती हैं, उस जानने वाले की, हे निष्पाप।

5.52.64

तृष्णयैव विनष्टाः स्थ व्यर्थमिन्द्रियबालकाः । कोशकारकृकृमयस्तन्तुनेव स्वयंभुवा ॥ ६४ ॥

tṛṣṇayaiva vinṣṭāḥ stha vyarthamindriyabālakāḥ | kośakārakukṛmayastantuneva svayaṃbhuva || 64 ||

By craving alone, you child-senses have destroyed yourselves for nothing - like silkworms destroyed by the very thread they spun themselves.

सिर्फ तृष्णा के कारण, तुम बच्चे जैसी इंद्रियों ने खुद को बेवजह बर्बाद कर लिया है - जैसे रेशम के कीड़े अपने ही बनाए धागे से बर्बाद हो जाते हैं।

5.52.65

तृष्णयैवेह लुठथ जरामरणसंकटे । भ्रमदृष्ट्येव शिखरिपथिकाः श्वभ्रभूमिषु ॥ ६५ ॥

tṛṣṇayaiveha luṭhatha jarāmaraṇasaṅkaṭe | bhramadṛṣṭyeva śikharipathikāḥ śvabhrabhūmiṣu || 65 ||

By craving alone, you flounder here in the trap of old age and death - like travelers on a mountain ridge who, with blurred sight, fall into pits in the ground.

सिर्फ तृष्णा के कारण, तुम यहां बुढ़ापे और मौत के जाल में तड़प रहे हो - जैसे पहाड़ की चोटी पर चलने वाले यात्री धुंधली नज़र की वजह से ज़मीन के गड्ढों में गिर जाते हैं।

5.52.66

वासनैवेह भवतां हेतुरेकत्र बन्धने । रज्जुः शून्याशयप्रोता मुक्तानामातता यथा ॥ ६६ ॥

vāsanaiveha bhavatāṃ heturekatra bandhane | rajjuḥ śūnyāśayaprotā muktānāmātatā yathā || 66 ||

Craving alone is the reason you are bound together in one place - like a rope strung through empty hollows, stretched out for those who are already free.

सिर्फ तृष्णा ही वह वजह है जिससे तुम सब एक जगह बंधे हुए हो - जैसे खाली सुराखों में पिरोई हुई एक रस्सी, जो उन लोगों के लिए तनी हुई है जो पहले से ही आज़ाद हैं।

5.52.67

कल्पनामात्रकलिता सत्यैषा हि न वस्तुतः । असंकल्पनमात्रेण दात्रेणेव विलूयते ॥ ६७ ॥

kalpanāmātrakalitā satyaiṣā hi na vastutaḥ | asaṃkalpanamātreṇa dātreṇeva vilūyate || 67 ||

This craving is made only of imagination; it is not real in fact. By simply not imagining it, it is cut away, as if by a sickle.

यह तृष्णा सिर्फ कल्पना से बनी है; असल में यह सच नहीं है। बस इसकी कल्पना करना छोड़ दो, तो यह ऐसे कट जाती है जैसे हंसिये से कटती हो।

5.52.68

एषा हि भवतामेव विमोहाय क्षयाय च । वातलेखेव दीपानां स्फुरतामपि तेजसाम् ॥ ६८ ॥

eṣā hi bhavatāmeva vimohāya kṣayāya ca | vātalekheva dīpānāṃ sphuratāmapi tejasām || 68 ||

This craving brings only confusion and ruin to you - like a gust of wind to lamps, even to flames that are burning bright.

यह तृष्णा तुम्हारे लिए सिर्फ भ्रम और बर्बादी लाती है - जैसे तेज़ हवा का एक झोंका दीयों के लिए होता है, तेज़ जलती हुई लौ के लिए भी।

5.52.69

हे चित्त सर्वेन्द्रियकोश तस्मात्सर्वेन्द्रियैरैक्यमुपेत्य नूनम्। आलोक्य चात्मानमसत्स्वरूपं निर्वाणमेवामलबोधमास्स्व ॥ ६९ ॥

he citta sarvendriyakośa tasmātsarvendriyairekyamupetya nūnam | ālokya cātmānamasatsvarūpaṃ nirvāṇamevāmalabodhamāssva || 69 ||

O mind, O home of all the senses! So, once you have truly become one with all the senses, and have seen that this self has no real nature of its own, settle into nirvana itself - into pure, untainted awareness.

हे मन, हे सारी इंद्रियों के घर! इसलिए, जब तुम सचमुच सारी इंद्रियों के साथ एक हो जाओ, और देख लो कि इस "मैं" का अपना कोई सच्चा रूप नहीं है, तो निर्वाण में ही टिक जाओ - एक शुद्ध, निर्मल जागरूकता में।

5.52.70

विषयविषविषूचिकामनन्तां निपुणमहंस्थितिवासनामपास्य। अभिमतपरिहारमन्त्रयुक्त्या भव विभवो भगवान्भियामभूमिः ॥ ७० ॥

viṣayaviṣaviṣūcikāmanantāṃ nipuṇamahaṃsthitivāsanāmapāsya | abhimataparihāramantrayuktyā bhava vibhavo bhagavānbhiyāmabhūmiḥ || 70 ||

So skilfully throw off the endless cholera caused by the poison of the senses - the craving to go on existing as "I" - through the one sure spell that removes whatever must be removed, and become great, become a lord, one in whom fear finds no ground to stand on.

इसलिए इंद्रियों के ज़हर से पैदा हुई इस अंतहीन हैज़े की बीमारी को - यानी "मैं" बने रहने की इस तृष्णा को - होशियारी से दूर फेंक दो, उस एक पक्के उपाय से जो हटाने लायक चीज़ को हटा देता है, और महान बन जाओ, स्वामी बन जाओ, ऐसा बन जाओ जिसमें डर को खड़े होने की कोई जगह न मिले।

Chapter 53

5.53.1

उद्दालक उवाच । अपारपर्यन्तवपुः परमाण्वणुरेव च । चिदचेत्या तदाक्रान्तौ न शक्ता वासनादयः ॥ १ ॥

uddālaka uvāca | apāraparyantavapuḥ paramāṇvaṇureva ca | cidacetyā tadākrāntau na śaktā vāsanādayaḥ || 1 ||

Sri Uddalaka said: Consciousness has no far edge and no limit to its form, and yet it is finer than the finest atom. It cannot be grasped by thought. Old habits and their kind have no power to overcome it.

श्री उद्दालक ने कहा: चेतना का न कोई किनारा है न कोई सीमा, फिर भी वह सबसे सूक्ष्म कण से भी सूक्ष्म है। उसे सोचकर नहीं पकड़ा जा सकता। पुरानी वासनाएँ और उनके जैसी चीज़ें उस पर हावी होने की ताकत नहीं रखतीं।

5.53.2

मनः शेमुष्यहंकारप्रतिबिम्बैर्जडेन्द्रियैः । वासनाविततः शून्या वेतालत्रासनोद्यताः ॥ २ ॥

manaḥ śemuṣyahaṃkārapratibimbairjaḍendriyaiḥ | vāsanāvitatāḥ śūnyā vetālatrāsanodyatāḥ || 2 ||

The mind, the intellect, and the ego are only reflections lying in the dull senses. Spread out by old habits, they are empty, yet they stand ready to frighten like ghosts.

मन, बुद्धि और अहंकार सुस्त इंद्रियों में पड़े प्रतिबिंब मात्र हैं। पुरानी वासनाओं से फैले हुए, ये भीतर से खाली हैं, फिर भी भूत-प्रेत की तरह डराने को तैयार रहते हैं।

5.53.3

तत्कृतेभ्यो विचारेभ्योऽनुभूतेभ्योऽपि भूरिशः । भूयोऽप्यनुभवत्यन्तरहं हि चिदलेपिका ॥ ३ ॥

tatkṛtebhyo vicārebhyo'nubhūtebhyo'pi bhūriśaḥ | bhūyo'pyanubhavatyantarahaṃ hi cidalepikā || 3 ||

Through the enquiries made about this, even though it has already been felt again and again, it is felt once more within: I am indeed consciousness, and nothing stains me.

इसकी खोज करने से, चाहे यह बार-बार महसूस किया जा चुका हो, फिर भी भीतर यही महसूस होता है: मैं ही वह चेतना हूँ, मुझ पर कोई दाग नहीं लगता।

5.53.4

स्वदुर्भावोपरचितां देहः संसारसंस्थितिम् । गृह्णात्वथ त्यजतु वाप्यहं हि चिदलेपिका ॥ ४ ॥

svadurbhāvoparacitāṃ dehaḥ saṃsārasaṃsthitim | gṛhṇātvatha tyajatu vāpyahaṃ hi cidalepikā || 4 ||

Let the body take up, or let it drop, this life in the world that its own wrong idea has built. I am the consciousness that nothing stains.

यह शरीर अपनी ही गलत धारणा से बनी इस सांसारिक स्थिति को चाहे अपनाए या छोड़ दे। मैं तो वही चेतना हूँ जिस पर कोई दाग नहीं लगता।

5.53.5

चितो न जन्ममरणे सर्वगायाश्चितः किल । किं नाम म्रियते जन्तुर्मार्यते केन वापि किम् ॥ ५ ॥

cito na janmamaraṇe sarvagāyāścitaḥ kila | kiṃ nāma mriyate janturmāryate kena vāpi kim || 5 ||

Consciousness fills everything, and for it there is no birth and no death. So what does a creature really die of? And by what is anything killed - what is there even to kill?

चेतना हर जगह फैली है, और उसके लिए न कोई जन्म है न मृत्यु। तो फिर कोई प्राणी सच में किस चीज़ से मरता है? और किसी को किससे मारा जाता है, मारने को है ही क्या?

5.53.6

चितो न जीवितेनार्थः सर्वात्मा सर्वजीवितम्। किं प्राप्स्यति कदात्मैषा प्रायता यदि जीवितम्॥ ६॥

cito na jīvitena arthaḥ sarvātmā sarvajīvitam | kiṃ prāpsyati kadātmaiṣā prāyatā yadi jīvitam || 6 ||

Consciousness has no need for life. It is the self of everything, the life of everything. When this self departs, what would it gain, even if it had lived?

चेतना को जीवन की कोई ज़रूरत नहीं। वह सबकी आत्मा है, सबका जीवन है। जब यह आत्मा चली जाए, तो जीने से उसे भला क्या मिल जाता?

5.53.7

जीव्यते म्रियते चेति कुविकल्पकमालिनी। कलना मनसामेव नात्मनो विमलात्मनः॥ ७॥

jīvyate mriyate ceti kuvikalpakamālinī | kalanā manasāmeva nātmano vimalātmanaḥ || 7 ||

It lives, it dies - these are only a string of wrong ideas, something only the mind makes up. This is not true of the self, the self that is pure and without stain.

यह जीता है, यह मरता है - ये तो बस गलत खयालों की एक लड़ी है, जिसे सिर्फ़ मन गढ़ता है। यह उस आत्मा की बात नहीं जो शुद्ध है, निर्मल है।

5.53.8

यो ह्यहंभावतां प्राप्तो भावाभावैः स गृह्यते। आत्मनो नास्त्यहंभावो भावाभावाः कुतोऽस्य ते॥ ८॥

yo hyahaṃbhāvatāṃ prāpto bhāvābhāvaiḥ sa gṛhyate | ātmano nāstyahaṃbhāvo bhāvābhāvāḥ kuto'sya te || 8 ||

Whatever has taken on the feeling of I is caught by coming into being and ceasing to be. The self has no feeling of I at all, so how could coming into being and ceasing to be belong to it?

जो कुछ भी 'मैं' का भाव धारण करता है, वह बनने और मिटने की पकड़ में आ जाता है। आत्मा में तो 'मैं' का भाव है ही नहीं, तो फिर बनना और मिटना उसमें कहाँ से आएगा?

5.53.9

अहंभावो मुधा मोहो मनश्च मृगतृष्णिका। जडः पदार्थसंभारः कस्याहंकारभावना॥ ९॥

ahaṃbhāvo mudhā moho manaśca mṛgatṛṣṇikā | jaḍaḥ padārthasaṃbhāraḥ kasyāhaṃkārabhāvanā || 9 ||

The feeling of I is a useless delusion, and the mind is only a mirage. This whole heap of things is lifeless, so whose feeling of I can this really be?

'मैं' का भाव एक बेकार भ्रम है, और मन तो बस मृगतृष्णा है। चीज़ों का यह पूरा ढेर निर्जीव है, तो फिर यह 'मैं' का भाव आखिर किसका है?

5.53.10

रक्तमांसमयो देहो मनो नष्टं विचारणात्। जडाश्चित्तादयः सर्वे कुतोऽहंभावभावना॥ १०॥

raktamāṃsamayo deho mano naṣṭaṃ vicāraṇāt | jaḍāścittādayaḥ sarve kuto'haṃbhāvabhāvanā || 10 ||

The body is made of blood and flesh. Look closely at the mind, and it turns out not to exist at all. The mind and everything like it are lifeless, so where does this feeling of I come from?

शरीर तो खून और मांस से बना है। मन को गौर से देखो तो वह है ही नहीं। चित्त और उस जैसी हर चीज़ निर्जीव है, तो फिर यह 'मैं' के भाव का खयाल कहाँ से आता है?

5.53.11

आत्मंभरितया नित्यमिन्द्रियाणि स्थितान्यलम्। पदार्थाश्च पदार्थत्वे कुतोऽहंभावभावना॥ ११॥

ātmaṃbhritayā nityamindriyāṇi sthitānyalam | padārthāśca padārthatve kuto'haṃbhāvabhāvanā || 11 ||

The senses always stand busy only with feeding themselves, and things remain simply things. So where is there room for the feeling of I?

इंद्रियाँ हमेशा बस अपने ही स्वार्थ में लगी रहती हैं, और चीज़ें बस चीज़ें ही बनी रहती हैं। तो फिर 'मैं' के भाव को जगह कहाँ बचती है?

5.53.12

गुणा गुणार्थे वर्तन्ते प्रकृतौ प्रकृतिः स्थिता । सदेव सति विश्रान्तं कुतोऽहंभावभावना ॥ १२ ॥

guṇā guṇārthe vartante prakṛtau prakṛtiḥ sthitā | sadeva sati viśrāntaṃ kuto'haṃbhāvabhāvanā || 12 ||

The qualities work only for the sake of the qualities. Nature rests within nature. Being rests only in being. So where is there room for the feeling of I?

गुण केवल गुणों के लिए काम करते हैं। प्रकृति प्रकृति में ही टिकी रहती है। सत्ता सत्ता में ही टिकी रहती है। तो फिर 'मैं' के भाव को जगह कहाँ बचती है?

5.53.13

सर्वगं सर्वदेहस्थं सर्वकालमयं महत् । केवलं परमात्मानं चिदात्मैवेह संस्थितः ॥ १३ ॥

sarvagaṃ sarvadehasthaṃ sarvakālamayaṃ mahat | kevalaṃ paramātmānaṃ cidātmaiveha saṃsthitaḥ || 13 ||

It is present everywhere, present in every body, filling all time, the great one. Only the highest self is here, consciousness itself, standing alone.

वह हर जगह मौजूद है, हर शरीर में मौजूद है, पूरे समय में फैला है, वह महान है। यहाँ बस एक ही परम आत्मा है, स्वयं चेतना, अकेली खड़ी हुई।

5.53.14

एवं किमाकृतिः को वा किमादेशश्च किंकृतः । किंरूपः किंमयः कोहं किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ १४ ॥

evaṃ kimākṛtiḥ ko vā kimādeśaśca kiṃkṛtaḥ | kiṃrūpaḥ kiṃmayaḥ kohaṃ kiṃ gṛhṇāmi tyajāmi kim || 14 ||

So then, what shape does it have, or who is it? Where is it, and what was it made by? What form does it have, what is it made of? Who am I? What do I hold on to, and what do I let go?

तो फिर इसका आकार क्या है, या यह कौन है? यह कहाँ है, और यह किससे बना है? इसका रूप क्या है, यह किस चीज़ से बना है? मैं कौन हूँ? मैं क्या पकड़ूँ, और क्या छोड़ूँ?

5.53.15

तेनाहं नाम नेहास्ति भावाभावोपपत्तिमान् । अनहंकाररूपस्य संबन्धः केन मे कथम् ॥ १५ ॥

tenāhaṃ nāma nehāsti bhāvābhāvopapattimān | anahaṃkārarūpasya saṃbandhaḥ kena me katham || 15 ||

So there is no such thing here as I, something that comes into being and ceases to be. For the one whose very nature has no ego, what connection could there be, with what, and how?

इसलिए यहाँ 'मैं' नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, जो बनती और मिटती हो। जिसका स्वरूप ही अहंकार-रहित है, उसका किसी से कैसा नाता, किससे और कैसे?

5.53.16

असत्यलमहंकारे संबन्धः कस्य केन कः । संबन्धाभावसंसिद्धौ विलीना द्वित्वकल्पना ॥ १६ ॥

asatyalamahaṅkāre saṃbandhaḥ kasya kena kaḥ | saṃbandhābhāvasaṃsiddhau vilīnā dvitvakalpanā || 16 ||

When the ego itself does not exist at all, what connection could there be, of what, by what? Once it is fully clear that there is no such connection, the very idea of two things dissolves.

जब अहंकार है ही नहीं, तो किसका किससे और कैसा नाता? जब यह पूरी तरह साफ़ हो जाए कि कोई नाता है ही नहीं, तो दो होने का खयाल भी मिट जाता है।

5.53.17

एवं ब्रह्मात्मकमिदं यत्किंचिज्जगति स्थितम्। सदेवास्मि तदेवास्मि परिशोचामि किं मुधा ॥ १७ ॥

evaṃ brahmātmakamidaṃ yatkiṃcijjagati sthitam | sadevāsmi tadevāsmi pariśocāmi kiṃ mudhā || 17 ||

So whatever exists in the world is, in its nature, Brahman alone. I am that very being, I am that alone. Why should I grieve for nothing?

इस तरह जगत में जो कुछ भी है, वह अपने स्वभाव में ब्रह्म ही है। मैं वही सत्ता हूँ, मैं वही हूँ। तो फिर मैं व्यर्थ ही क्यों दुखी होऊँ?

5.53.18

एकस्मिन्नेव विमले पदे सर्वगते स्थिते। अहंकारकलङ्कस्य कथं नामोदयः कुतः ॥ १८ ॥

ekasminneva vimale pade sarvagate sthite | ahaṅkārakalaṅkasya kathaṃ nāmodayaḥ kutaḥ || 18 ||

When only the one pure state exists, present everywhere, then how could the stain of ego ever rise? From where?

जब बस एक ही निर्मल अवस्था है, जो हर जगह फैली है, तो अहंकार का यह दाग आखिर कैसे उठे? कहाँ से उठे?

5.53.19

नास्त्येव हि पदार्थश्रीरात्मैवास्तीह सर्वगः। पदार्थलक्ष्म्यां सत्यां च संबन्धोस्ति न कस्यचित् ॥ १९ ॥

nāstyeva hi padārthaśrīrātmaivāstīha sarvagaḥ | padārthalakṣmyāṃ satyāṃ ca saṃbandhosti na kasyacit || 19 ||

Things, in truth, have no real existence of their own. Only the self is here, and it fills everything. And even if we say that things truly exist, still there is no connection between anything and anyone.

चीज़ों की असल में अपनी कोई सत्ता है ही नहीं। यहाँ बस आत्मा है, जो हर जगह फैली है। और अगर मान भी लें कि चीज़ें सच में हैं, तो भी किसी का किसी से कोई नाता नहीं बनता।

5.53.20

इन्द्रियैरिन्द्रियैरंगैर्मनो मनसि वल्गति। चिदलिप्तवपुः केन संबन्धः कस्य किं कथम् ॥ २० ॥

indriyairindriyairaṅgairmano manasi valgati | cidaliptavapuḥ kena saṃbandhaḥ kasya kiṃ katham || 20 ||

Senses move among senses, limbs among limbs, the mind stirs within the mind, but consciousness, whose form nothing stains, what connection can it have, with what, and how?

इंद्रियाँ इंद्रियों के बीच चलती हैं, अंग अंगों के बीच, मन मन के भीतर हलचल करता है, पर चेतना, जिस पर कोई दाग नहीं लगता, उसका किससे और कैसा नाता हो सकता है?

5.53.21

उपलायःशलाकानां संबन्धो न यथा मिथः तथैकत्रापि दृष्टानां देहेन्द्रियमनश्चिताम् ॥ २१ ॥

upalāyaḥśalākānāṃ saṃbandho na yathā mithaḥ tathaikatrāpi dṛṣṭānāṃ dehendriyamanaścitām || 21 ||

Just as a stone and an iron rod lying side by side have no real bond between them, so too the body, the senses, the mind, and consciousness have no real bond with each other, even though they are found in one place.

जैसे एक पत्थर और एक लोहे की सलाई साथ रखे होने पर भी उनमें कोई सच्चा नाता नहीं होता, वैसे ही शरीर, इंद्रियाँ, मन और चेतना एक ही जगह पाए जाने पर भी आपस में कोई सच्चा नाता नहीं रखते।

5.53.22

असदभ्युत्थिते व्यर्थमहंकारमहाभ्रमे ममेदमिदमस्येति विपर्यस्तमिदं जगत् ॥ २२ ॥

asadabhyutthite vyarthamahaṃkāramahābhrahe mamedamidamasyeti viparyastamidaṃ jagat || 22 ||

When the unreal rises up in the great, useless delusion called ego, and the thought comes, this is mine, this is his, then this world is turned upside down.

जब असत्य उठ खड़ा होता है अहंकार के इस व्यर्थ महाभ्रम में, और यह खयाल आता है कि यह मेरा है, यह उसका है, तो यह जगत उलटा हो जाता है।

5.53.23

अतत्त्वालोकजातेयमहंकारचमत्कृतिः तापेन हिमलेखेव तत्त्वालोके विलीयते ॥ २३ ॥

atattvālokajāteyamahaṃkāracamatkṛtiḥ tāpena himalekheva tattvāloke vilīyate || 23 ||

This dazzling show called ego is born from not seeing the truth, and it melts away in the light of truth, the way a streak of frost melts away in heat.

अहंकार का यह चमकीला तमाशा सच को न देख पाने से पैदा होता है, और सच के प्रकाश में यह उसी तरह घुल जाता है जैसे गर्मी से बर्फ़ की एक पतली परत घुल जाती है।

5.53.24

आत्मनो व्यतिरेकेण न किंचिदपि विद्यते सर्वं ब्रह्मेति मे तत्त्वमेतत्तद्भावयाम्यहम् ॥ २४ ॥

ātmano vyatirekeṇa na kiṃcidapi vidyate sarvaṃ brahmeti me tattvametattadbhāvayāmyaham || 24 ||

Apart from the self, nothing at all exists. Everything is Brahman - this is the truth I have found, and this is what I keep in my mind.

आत्मा से अलग कुछ भी नहीं है। सब कुछ ब्रह्म है, यही मेरा सत्य है, और मैं इसी को मन में बसाए रखता हूँ।

5.53.25

अहंकारभ्रमस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् अपुनःस्मरणं मन्ये नूनं विस्मरणं वरम् ॥ २५ ॥

ahaṃkārabhramasya asya jātasyākāśavarṇavat apunahsmaraṇaṃ manye nūnaṃ vismaraṇaṃ varam || 25 ||

This delusion called ego arose the way color seems to appear in empty sky. I think it is best simply forgotten, never called to mind again.

यह अहंकार का भ्रम उसी तरह उठा है जैसे खाली आकाश में रंग दिखाई देता है। मुझे यही सही लगता है कि इसे बस भुला दिया जाए, फिर कभी याद न किया जाए।

5.53.26

समूलं संपरित्यज्य चिरायाहंकृतिभ्रमम् । तिष्ठाम्यात्मनि शान्तात्मा शरत्खं शरदीव खे ॥ २६ ॥

samūlaṃ saṃparityajya cirāyāhaṃkṛtibhramam | tiṣṭhāmyātmani śāntātmā śaratkhaṃ śaradīva khe || 26 ||

Having thrown out, root and all, this delusion of making an ego, for good, I stay in the self, my mind at peace, like the clear autumn sky in autumn.

अहंकार बनाने वाले इस भ्रम को जड़ से, हमेशा के लिए फेंककर, मैं शांत मन से अपनी आत्मा में टिका रहता हूँ, जैसे शरद ऋतु का साफ़ आकाश।

5.53.27

ददात्यनर्थनिचयं विस्तारयति दुष्कृतम्। विस्तारयति संतापमहंभावोनुसंहितः ॥ २७ ॥

dadātyanarthanicayaṃ vistārayati duṣkṛtam | vistārayati saṃtāpamahaṃbhāvonusaṃhitaḥ || 27 ||

One who stays bound to the feeling of I brings on a heap of misfortunes, spreads wrongdoing further, and spreads suffering further.

जो 'मैं' के भाव से बंधा रहता है, वह विपत्तियों का ढेर ले आता है, बुरे कर्मों को और फैलाता है, और दुख को और फैलाता है।

5.53.28

स्फुरत्यहंकारघने हृद्व्योम्नि सलिलात्मनि। विकसत्यभितः कायकदम्बे दोषमञ्जरी ॥ २८ ॥

sphuratyahaṃkāraghane hṛdvyomni salilātmani | vikasatyabhitaḥ kāyakadambe doṣamañjarī || 28 ||

When the sense of "I" thickens like a cloud in the sky of the heart, watery, and flickers there, sprays of faults blossom all through the body.

जब हृदय के आकाश में अहंकार बादल की तरह गाढ़ा होकर, जल-सा, वहाँ चमकता है, तो पूरे शरीर में दोषों के गुच्छे फूल की तरह खिल उठते हैं।

5.53.29

मरणं जीवितोपान्तं जीवितं मरणान्तगम्। भावोऽभावाद्व्यवच्छिन्नः कष्टेयं दुःखवेदना ॥ २९ ॥

maraṇaṃ jīvitopāntaṃ jīvitaṃ maraṇāntagam | bhāvo'bhāvādvyavacchinnaḥ kaṣṭeyaṃ duḥkhavedanā || 29 ||

Death is right at the edge of life, and life ends in death. Existence is only cut off from non-existence, and this feeling of pain is a hard thing to bear.

मृत्यु जीवन के बिलकुल पास है, और जीवन मृत्यु में जाकर समाप्त होता है। होना, न-होने से बस अलग किया गया है, और यह दुःख की अनुभूति सहना कठिन है।

5.53.30

इदं लब्धमिदं प्राप्स्यामीत्यार्तिर्दाहकारिणी। न शाम्यत्यर्करत्नानां ग्रीष्मेऽग्निरिव दुर्धियाम् ॥ ३० ॥

idaṃ labdhamedaṃ prāpsyāmītyārtirdāhakāriṇī | na śāmyatyarkaratnānāṃ grīṣme'gniriva durdhiyām || 30 ||

The burning pain that says "I have gotten this, I will get that" does not cool down in a foolish mind, just as the fire in a sun-crystal does not cool down in summer.

यह जलाने वाली पीड़ा, जो कहती है "यह मुझे मिल गया, यह मुझे मिलेगा", मूर्ख मन में शांत नहीं होती, जैसे गर्मी में सूर्यकांत मणि की आग शांत नहीं होती।

5.53.31

नास्तीदमिदमस्तीति चिन्ता धावत्यहंकृतिम्। जडाशया जडामभ्रमाला शैलावलीमिव ॥ ३१ ॥

nāstīdamidamastīti cintā dhāvatyahaṃkṛtim | jaḍāśayā jaḍāmabhramālā śailāvalīmiva || 31 ||

The worry that says "this does not exist, this exists" rushes toward the dull sense of "I", with a dull mind, the way a line of clouds rushes toward a row of mountains.

यह चिंता कि "यह नहीं है, यह है", जड़ अहंकार की ओर जड़ बुद्धि से दौड़ती है, जैसे बादलों की पंक्ति पहाड़ों की कतार की ओर दौड़ती है।

5.53.33

स्वतृष्णाकृष्णभोगिन्यो देहद्रुमकृतालयाः । क्वापि यान्ति विचारात्मन्यागते विनतासुते ॥ ३३ ॥

svatṛṣṇākṛṣṇabhoginyo dehadrumakṛtālayāḥ | kvāpi yānti vicārātmanyāgate vinatāsute || 33 ||

One's own cravings are dark snakes that have made their nest in the tree of the body; they flee somewhere the moment discernment comes, discernment that is Garuda, Vinata's son.

अपनी तृष्णाएँ शरीर रूपी वृक्ष में बसे हुए काले साँप हैं; ज्यों ही विवेक आता है, वे कहीं भाग जाती हैं, वह विवेक जो विनता-पुत्र गरुड़ है।

5.53.34

असदभ्युत्थिते विश्वे तज्जाते भ्रमसन्मये । असन्मयपरिस्पन्दे त्वहं त्वं चेति कः क्रमः ॥ ३४ ॥

asadabhyutthite viśve tajjāte bhramasanmaye | asanmayaparispande tvahaṃ tvaṃ ceti kaḥ kramaḥ || 34 ||

When this world has arisen, unreal, born from the unreal, made only of an illusion that passes for being, in this movement that is nothing but the unreal, what sense is there in saying "I" and "you"?

जब यह संसार उठ खड़ा हुआ है, जो झूठा है, झूठ से ही पैदा हुआ है, और भ्रम को सच मानकर बना है, तो इस झूठी हलचल में "मैं" और "तू" कहने का कोई मतलब नहीं बनता।

5.53.35

इदं जगदुदेत्यादावकारणमकारणात् । यदकारणमुद्भूतं तत्सदित्युच्यते कथम् ॥ ३५ ॥

idaṃ jagadudetyādāvakāraṇamakāraṇāt | yadakāraṇamudbhūtaṃ tatsadityucyate katham || 35 ||

This world arises, in the beginning, without a cause, from no cause at all. How can what has arisen without a cause be called real?

यह जगत आरंभ में बिना किसी कारण के, बिना किसी कारण से उठता है। जो बिना कारण के उत्पन्न हुआ, उसे सत्य कैसे कहा जाए?

5.53.36

अपर्यन्तपुराकाले मृदि कुम्भ इवाकृतिः । देहोऽभवदिदानीं तु तथैवास्ति भविष्यति ॥ ३६ ॥

aparyantapurākāle mṛdi kumbha ivākṛtiḥ | deho'bhavadidānīṃ tu tathaivāsti bhaviṣyati || 36 ||

Long ago, in a time without end, the body came into being the way the shape of a pot lies hidden in clay before it is made. It exists the same way now, and it will exist the same way in the future.

बहुत पहले, अनंत काल में, यह शरीर उसी तरह बना जैसे घड़े का आकार मिट्टी में बनने से पहले छिपा रहता है। अभी भी यह उसी तरह है, और आगे भी उसी तरह रहेगा।

5.53.37

मध्येतरपयोमात्रं कंचित्कालं चलाचलम् आद्यन्तसौम्यते त्यक्त्वा वारि वीचितया यथा ॥ ३७ ॥

madhyetarapayomātraṃ kaṃcitkālaṃ calācalam ādyantasauyamate tyaktvā vāri vīcitayā yathā || 37 ||

For a while, in the middle, it is nothing but water, moving and not moving, different from what comes before and after, leaving behind the calm of its start and its end, the way water rises into a wave.

बीच में कुछ समय के लिए यह केवल जल है, कभी हिलता कभी थमता, आगे-पीछे से अलग, आदि और अंत की शांति को छोड़कर, जैसे जल लहर का रूप लेकर उठता है।

5.53.38

अस्मिन्क्षणपरिस्पन्दे देहे विसरणोन्मुखे तरङ्गे च निबद्धास्था ये हतास्ते कुबुद्धयः ॥ ३८ ॥

asminkṣaṇaparispande dehe visaraṇonmukhe taraṅge ca nibaddhāsthā ye hatāste kubuddhayaḥ || 38 ||

Those who place their trust in this body, which trembles for a moment and is always about to break apart, like a wave, are destroyed by it; they are the foolish ones.

जो लोग इस शरीर पर भरोसा रखते हैं, जो एक क्षण के लिए काँपता है और सदा बिखरने की ओर बढ़ रहा है, लहर की तरह, वे इससे बर्बाद हो जाते हैं; वे ही मूर्ख हैं।

5.53.39

प्राक्पुरस्ताच्च सर्वाणि सन्ति वस्तूनि नाभितः मध्ये स्फुटत्वमेतेषां कैवास्था हतरूपिणी ॥ ३९ ॥

prākpurastācca sarvāṇi santi vastūni nābhitaḥ madhye sphuṭatvameteṣāṃ kaivāsthā hatarūpiṇī || 39 ||

All things seem to exist before and after, but not truly, on either side. Only in the middle do they flash into being for a moment. So what is this trust worth, trust placed in something already doomed?

सभी चीज़ें पहले और बाद में होती हुई दिखती हैं, पर असल में न पहले, न बाद में। बीच में ही वे क्षण भर के लिए चमक उठती हैं। तो इस भरोसे का क्या मोल, जो पहले से ही मिट जाने वाली चीज़ पर रखा गया है?

5.53.40

चित्तं पूर्वं पुरस्ताच्च चिद्देशं शान्तमित्यपि सदसद्वा खलीनं मध्येऽस्मिन्किं तवोदितम् ॥ ४० ॥

cittaṃ pūrvaṃ purastācca ciddeśaṃ śāntamityapi sadasadvā khalīnaṃ madhye'sminkiṃ tavoditam || 40 ||

Before it arises and after it settles, the mind is said to be that same calm space of consciousness. Real or unreal, it wears away in this middle stretch, so, mind, what is it that has truly arisen for you here?

मन, पहले और बाद में, चेतना के उसी शांत स्थान के रूप में कहा जाता है। सच हो या झूठ, यह बीच में मिट ही जाता है, तो हे मन, इस बीच के समय में तेरे लिए सच में क्या उठ खड़ा हुआ?

5.53.41

यथा स्वप्नविकारेषु यथा संभ्रमदृष्टिषु यथा वा मदलीलासु यथा नौयानसंभ्रमे ॥ ४१ ॥

yathā svapnavikāreṣu yathā saṃbhramadṛṣṭiṣu yathā vā madalīlāsu yathā nauyānasambhrame || 41 ||

As in the shifting shapes of a dream, as in a dizzy, whirling sight, as in the play of drunkenness, as in the reeling feeling of riding a boat,

जैसे सपने के बदलते रूपों में, जैसे चक्कर खाती हुई नज़र में, जैसे नशे के खेल में, जैसे नाव में बैठकर चक्कर सा महसूस होने में,

5.53.42

यथा धातुविकारेषु यथा चेन्द्रियविक्लवे । यथातिसंभ्रमानन्दे दोषावेशदशासु च ॥ ४२ ॥

yathā dhātuvikāreṣu yathā cendriyaviklave | yathātisaṃbhramānande doṣāveśadaśāsu ca || 42 ||

as in disorders of the body's inner elements, as when the senses falter, as in the dizzy joy of overwhelming excitement, and as in states overtaken by disorder,

जैसे शरीर के तत्वों के बिगड़ने में, जैसे इंद्रियों के थक जाने में, जैसे अत्यधिक उत्तेजना के चक्करदार आनंद में, और जैसे किसी विकार से घिरी अवस्था में,

5.53.43

दृश्यते क्षीयते चैव रूपं सदसतोश्चलम् । तथैवेयमिह त्वेषा काले न्यूनातिरिक्तता ॥ ४३ ॥

dṛśyate kṣīyate caiva rūpaṃ sadasatoścalam | tathaiveyamiha tveṣā kāle nyūnātiriktatā || 43 ||

in each of these, a shape appears and then fades away, a shape that shifts between being real and being unreal. In just the same way, this rising and falling across time is the same kind of thing.

इन सब में, एक रूप दिखता है और फिर मिट जाता है, ऐसा रूप जो सच और झूठ के बीच डोलता रहता है। ठीक उसी तरह, समय के साथ यह घटना-बढ़ना भी वैसा ही है।

5.53.44

सा च त्वया कृता नित्यं चित्त दुःखसुखोदये । यथा वियोगयामिन्यो मतयो हन्ति रागिणम् ॥ ४४ ॥

sā ca tvayā kṛtā nityaṃ citta duḥkhasukhodaye | yathā viyogayāminyo matayo hanti rāgiṇam || 44 ||

And this, mind, is always your own making, this rising of pleasure and pain, just as it is the thought of nights spent apart, and not the nights themselves, that destroys a person in love.

और यह, हे मन, हमेशा तेरा ही किया हुआ है, यह सुख-दुख का उठना, ठीक वैसे ही जैसे विरह की रातें नहीं, बल्कि उनका विचार ही, प्रेम में डूबे व्यक्ति को नष्ट कर देता है।

5.53.45

मयैवेहासदभ्यासान्मिथ्या सदिव लक्ष्यसे । मृगतृष्णेव तेनैतत्त्वत्कृतं मत्कृतं भवेत् ॥ ४५ ॥

mayaivehāsadabhyāsānmithyā sadiva lakṣyase | mṛgatṛṣṇeva tenaitattvatkṛtaṃ matkṛtaṃ bhavet || 45 ||

It is by me alone that you come to seem real, falsely, through the habit of dwelling on what is unreal, like a mirage. So this, which seems your doing, is really my own doing.

यह मैं ही हूँ जिसकी वजह से तुम झूठे को सच मानने की आदत से सच जैसे दिखते हो, मृगतृष्णा की तरह। इसलिए जो तुम्हारा किया हुआ लगता है, वह वास्तव में मेरा ही किया हुआ है।

5.53.46

यदिदं किंचिदाभोगि तत्सर्वं दृश्यमण्डलम् । अवस्त्विति विनिर्णीय मनो यात्यमनःपदम् ॥ ४६ ॥

yadidaṃ kiṃcidābhogi tatsarvaṃ dṛśyamaṇḍalam | avastviti viniṛṇīya mano yātyamanahpadam || 46 ||

Whatever this whole visible world is, in all its spread, once the mind decides it is not a real thing, the mind passes into the state beyond mind.

यह समूचा दिखने वाला संसार जो भी है, अपने पूरे विस्तार में, जब मन यह तय कर लेता है कि यह कोई वास्तविक चीज़ नहीं है, तो मन मन-रहित अवस्था में चला जाता है।

5.53.47

अवस्त्विदमिति स्फारे रूढे मनसि निश्चये । हेमन्त इव मञ्जर्यः क्षीयन्ते भोगवासनाः ॥ ४७ ॥

avastvidaṃiti sphāre rūḍhe manasi niścaye | hemante iva mañjaryaḥ kṣīyante bhogavāsanāḥ || 47 ||

When the certainty "this is not real" takes deep root and spreads through the mind, the desires for pleasure wither away, like blossoms in winter.

जब यह निश्चय कि "यह वास्तविक नहीं है" मन में गहरी जड़ जमा लेता है और फैल जाता है, तो भोग की इच्छाएँ वैसे ही मुरझा जाती हैं जैसे जाड़े में फूल मुरझा जाते हैं।

5.53.48

चित्त्वाद्दृष्टात्मना नूनं संत्यक्तमननौजसा । मनसा वीतरागेण स्वयं स्वस्थेन भूयते ॥ ४८ ॥

cittvāddṛṣṭātmanā nūnaṃ saṃtyaktamananaujasā | manasā vītarāgeṇa svayaṃ svasthena bhūyate || 48 ||

Surely, once the mind has seen the true self and let go of the drive to keep thinking, and passion has left the mind, a person becomes settled in their own true nature, all by themselves.

निश्चय ही, जब मन ने अपने सच्चे स्वरूप को देख लिया है और सोचते रहने की उछल-कूद छोड़ दी है, और मन से चाहत हट गई है, तो व्यक्ति अपने आप अपने असली स्वभाव में स्थिर हो जाता है।

5.53.49

परमात्मानले क्षिप्तं संवृत्त्यावयवं स्वयम् । दग्ध्वात्मानलं चित्तं शुद्धतामेति शाश्वतीम् ॥ ४९ ॥

paramātmānale kṣiptaṃ saṃvṛttyāvayavaṃ svayam | dagdhvātmānalaṃ cittaṃ śuddhatāmeti śāśvatīm || 49 ||

The mind casts its own parts into the fire of the highest Self as they dissolve, and once they are burnt away in that fire, the mind reaches an everlasting purity.

मन अपने ही अंशों को, उनके घुलने के साथ, परमात्मा की अग्नि में डाल देता है, और उस अग्नि में उनके जल जाने पर मन सदा के लिए शुद्ध हो जाता है।

5.53.50

देहमन्यतया दृष्ट्वा त्यक्त्वा विषयवासनाम् । विनाशमुररीकृत्य मनो जयति वीरवत् ॥ ५० ॥

dehamanyatayā dṛṣṭvā tyaktvā viṣayavāsanām | vināśamurarīkṛtya mano jayati vīravat || 50 ||

Seeing the body as something other than oneself, giving up craving for the objects of the senses, and accepting death without flinching, the mind wins the way a hero wins.

शरीर को अपने से अलग देखकर, इंद्रिय-विषयों की चाहत छोड़कर, और मृत्यु को बिना डरे स्वीकार करके, मन उसी तरह जीतता है जैसे एक वीर जीतता है।

5.53.51

मनः शत्रुः शरीरस्य शरीरं मनसो रिपुः । एकाभावेन नश्येते आधाराधेयकार्यवत् ॥ ५१ ॥

manaḥ śatruḥ śarīrasya śarīraṃ manaso ripuḥ | ekābhāvena naśyete ādhārādheyakāryavat || 51 ||

The mind is the body's enemy, and the body is the mind's enemy; yet if either one is missing, both are destroyed together, like an effect that depends on both a container and what is held inside it.

मन शरीर का शत्रु है, और शरीर मन का शत्रु है; फिर भी यदि इनमें से एक भी न रहे, तो दोनों नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोई परिणाम बर्तन और उसमें रखी चीज़ दोनों पर निर्भर करता है।

5.53.52

रागद्वेषवतोर्नित्यमन्योन्यातिविरुद्धयोः । एतयोर्मूलकाषेण विनाशः परमं सुखम् ॥ ५२ ॥

rāgadveṣavatornityamanyonyātiviruddhayoḥ | etayormūlakāṣeṇa vināśaḥ paramaṃ sukham || 52 ||

These two, always caught up in attachment and aversion, forever completely at odds with each other, to destroy them at the very root is the highest happiness.

ये दोनों, जो हमेशा चाहत और नफरत में डूबे रहते हैं और सदा एक-दूसरे के पूरी तरह विरोधी हैं, इन्हें जड़ से मिटा देना ही सबसे बड़ा सुख है।

5.53.53

एतयोरेकसंस्थाने मृतिरित्येव या कथा । सा व्योम्न्यया स्त्रिया भुक्ता धरेति कथया समा ॥ ५३ ॥

etayorekasaṃsthāne mṛtirityeva yā kathā | sā vyomnyayā striyā bhukta dharaiti kathayā samā || 53 ||

The very story that says "there is death" while these two are joined as one is exactly like the tale of a woman in the sky enjoying the earth.

यह कहना कि जब ये दोनों एक साथ जुड़े हों तब भी "मृत्यु" होती है, बिलकुल वैसी ही कहानी है जैसे आकाश में रहने वाली किसी स्त्री का धरती को भोगना।

5.53.54

अकृत्रिमविरोधस्थौ यत्र संघटितावुभौ । धारा इव पतन्त्येव तत्रानर्थपरम्पराः ॥ ५४ ॥

akṛtrimavirodhasthau yatra saṃghaṭitāvubhau | dhārā iva patantyeva tatrānarthaparamparāḥ || 54 ||

Wherever these two, which are naturally opposed to each other, are joined together, chains of misfortune pour down there like torrents of rain.

जहाँ भी ये दोनों, जो स्वभाव से ही एक-दूसरे के विरोधी हैं, आपस में जुड़ जाते हैं, वहाँ दुर्भाग्य की धाराएँ मूसलाधार बारिश की तरह बरसने लगती हैं।

5.53.55

मिथो विरुद्धसंसर्गे रतिमेत्यधमो हि यः । त्यक्तव्यः स पतद्वारावग्निराशावलेपने ॥ ५५ ॥

mitho viruddhasaṃsarge ratimetyadhamo hi yaḥ | tyaktavyaḥ sa patadvārāvagnirāśāvalepane || 55 ||

Whoever, being base, delights in this bond between two things so opposed to each other should be given up, like someone who smears himself with a heap of fire and hurries toward his own downfall.

जो कोई नीच होकर एक-दूसरे के इतने विरोधी इन दोनों के मेल में सुख पाता है, उसे त्याग देना चाहिए, जैसे कोई खुद पर आग का ढेर मलकर अपने पतन की ओर दौड़ पड़े।

5.53.56

संकल्पेन मनः पुष्ट्वा शरीरं बालयक्षवत् । आयुरेवाशनान्यस्मै स्वदुःखानि प्रयच्छति ॥ ५६ ॥

saṃkalpena manaḥ puṣṭvā śarīraṃ bālayakṣavat | āyurevāśanānyasmāi svaduḥkhāni prayacchati || 56 ||

Once desire has fattened up the mind, the body turns into something like a demon that feeds on children: it lives on the very days of our life as its food, and pays us back with our own sorrows.

जब इच्छा मन को मोटा कर देती है, तो शरीर बच्चों को खा जाने वाले किसी राक्षस जैसा बन जाता है, वह हमारी उम्र के दिनों को ही अपना भोजन बनाकर खाता है, और बदले में हमें हमारा ही दुख लौटाता है।

5.53.57

तर्दुःखैस्तापितो देहो मनो हन्तुमथेच्छति । पुत्रोऽपि हन्ति पितरमाततायिपदं गतम् ॥ ५७ ॥

tarduḥkhaistāpitō dēhō manō hantumathēcchati | putrō'pi hanti pitaramātatāyipadaṃ gatam || 57 ||

Scorched by these sorrows, the body then wants to kill the mind, just as a son kills even his own father, once the father has turned into a murderous attacker.

इन दुखों से जला हुआ शरीर तब मन को मार डालना चाहता है, जैसे बेटा भी अपने पिता को मार डालता है, जब पिता खुद एक हत्यारा हमलावर बन जाए।

5.53.58

नास्ति शत्रुः प्रकृत्यैव न च मित्रं कदाचन। सुखदं मित्रमित्युक्तं दुःखदाः शत्रवः स्मृताः ॥ ५८ ॥

nāsti śatruḥ prakṛtyaiva na ca mitraṃ kadācana | sukhadaṃ mitramityuktaṃ duḥkhadāḥ śatravaḥ smṛtāḥ || 58 ||

No one is an enemy by nature, and no one is ever a friend either. Whoever gives happiness is called a friend; whoever gives sorrow is known as an enemy.

स्वभाव से न कोई शत्रु होता है, न कभी कोई मित्र होता है। जो सुख देता है उसे मित्र कहा जाता है, और जो दुख देता है उसे शत्रु माना जाता है।

5.53.59

देहो दुःखान्यनुभवन्स्वमनो हन्तुमिच्छति। देहं मनः स्वदुःखानां संकेतं कुरुते क्षणात् ॥ ५९ ॥

dēhō duḥkhānyanubhavansvamanaḥ hantumicchati | dēhaṃ manaḥ svaduḥkhānāṃ saṃkētaṃ kurutē kṣaṇāt || 59 ||

The body, suffering its pains, wants to kill its own mind; and the mind, in an instant, makes the body the target of its own sorrows.

शरीर अपने दुखों को सहते हुए अपने ही मन को मार डालना चाहता है, और मन एक ही पल में शरीर को अपने दुखों का निशाना बना देता है।

5.53.60

एवं मिथो दुःखदयोः श्लिष्टयोः कः सुखागमः। एतयोर्देहमनसोर्जात्यैवातिविरुद्धयोः ॥ ६० ॥

evaṃ mitho duḥkhadayōḥ śliṣṭayōḥ kaḥ sukhāgamaḥ | ētayōrdēhamanasōrjātyaiva ativiruddhayōḥ || 60 ||

So when body and mind, utterly opposed to each other by their very nature, are bound together, each causing pain to the other, how can happiness ever come?

तो जब शरीर और मन, जो अपने स्वभाव से ही एक-दूसरे के पूरी तरह विरोधी हैं, आपस में बंधे रहते हैं और एक-दूसरे को दुख देते हैं, तो सुख कहाँ से आएगा?

5.53.61

मनस्येव परिक्षीणे न देहो दुःखभाजनम्। तत्क्षयोत्कतया नित्यं देहोऽपि परिधावति ॥ ६१ ॥

manasyēva parikṣīṇē na dēhō duḥkhabhājanam | tatkṣayōtkatayā nityaṃ dēhō'pi paridhāvati || 61 ||

When the mind alone wastes away, the body no longer holds any sorrow; and the more intensely the mind wastes away, the more the body too, constantly, wastes away with it.

जब अकेला मन ही घटता जाए, तो शरीर में दुख नहीं टिकता; और मन जितनी तेज़ी से घटता है, शरीर भी उतनी ही लगातार उसके साथ घटता चला जाता है।

5.53.62

नष्टानष्टमनर्थाय शरीरं पदमापदाम्। अलब्धात्मविवेकेन मनसा सुप्रजायते ॥ ६२ ॥

naṣṭānaṣṭamanarthāya śarīraṃ padamāpadām| alabdhātmavivekena manasā suprajāyate || 62 ||

Whether it lives or dies, the body, born only of a mind that has not found any true understanding of the self, becomes nothing but a home for one trouble after another.

चाहे वह बचे या मरे, शरीर, जो केवल ऐसे मन से जन्मा है जिसे आत्मा की सच्ची समझ नहीं मिली, बस एक के बाद एक मुसीबतों का घर बनकर रह जाता है।

5.53.63

एते मनःशरीरे हि मिथः पीवरतां गते । जडरूपे हि वपुषा पयोदसरसी यथा ॥ ६३ ॥

ete manaḥśarīre hi mithaḥ pīvaratāṃ gate| jaḍarūpe hi vapuṣā payodasarasī yathā || 63 ||

These two, mind and body, being lifeless in their own nature, grow strong together, each feeding the other, like a cloud and a lake, each filling the other in turn.

मन और शरीर, दोनों अपने स्वभाव से निर्जीव होते हुए भी, एक-दूसरे को पालते हुए साथ-साथ बढ़ते हैं, जैसे बादल और झील एक-दूसरे को बारी-बारी से भरते हैं।

5.53.64

मिथो दुःखाय संपन्ने एकरूपे द्विधा स्थिते । व्यवहारपरे सार्धं लोके वार्यनलाविव ॥ ६४ ॥

mitho duḥkhāya saṃpanne ekarūpe dvidhā sthitē| vyavahāraparē sārdhaṃ lōkē vāryanalāviva || 64 ||

Though one in essence, these two stand apart as two, bringing sorrow to each other, and together they carry on the business of the world, like water and fire.

एक ही तत्व होते हुए भी ये दोनों अलग-अलग खड़े होकर एक-दूसरे को दुख देते हैं, और फिर भी साथ मिलकर संसार का काम चलाते हैं, जैसे पानी और आग।

5.53.65

चित्ते क्षयिणि संक्षीणे देहो ह्यामूलितो भवेत् । वर्धमाने तरुरिव शतशाखः प्रवर्तते ॥ ६५ ॥

citte kṣayiṇi saṃkṣīṇē dēhō hyāmūlitō bhavēt| vardhamānē taruriva śataśākhaḥ pravartatē || 65 ||

When the mind wastes and wanes, the body too is uprooted; but when the mind grows, the body spreads out like a tree with a hundred branches.

जब मन घटता और क्षीण होता है, तो शरीर भी जड़ से उखड़ जाता है; और जब मन बढ़ता है, तो शरीर सौ शाखाओं वाले पेड़ की तरह फैल जाता है।

5.53.67

संकल्पपादपं तृष्णालतं छित्त्वा मनोवनम् । विततां भुवमासाद्य विहरामि यथासुखम् ॥ ६७ ॥

saṃkalpapādapaṃ tṛṣṇālataṃ chittvā manōvanam| vitatāṃ bhuvamāsādya viharāmi yathāsukham || 67 ||

Having cut down the tree of imagination and the creeper of craving in the forest of my mind, I have reached open ground, and now I wander wherever I please, at ease.

अपने मन के जंगल में कल्पना के पेड़ और तृष्णा की बेल को काट डालने के बाद, मैं खुली ज़मीन पर आ पहुँचा हूँ, और अब जहाँ चाहूँ, सुख से घूमता हूँ।

5.53.68

प्रक्षीयमाणमेवेदं न मनो मनसि स्थितम् प्रशाम्यद्वासनाजालं प्रावृडन्त इवाम्बुदः ॥ ६८ ॥

prakṣīyamāṇamevedaṃ na mano manasi sthitam prashāmyadvāsanājālaṃ prāvṛḍanta ivāmbudaḥ || 68 ||

This mind, forever dwindling, no longer stays fixed as mind; its net of desires fades away, like a cloud at the end of the rains.

यह मन, जो लगातार घटता जा रहा है, अब मन बनकर टिका नहीं रहता; इसकी इच्छाओं का जाल वैसे ही बिखर जाता है जैसे बरसात के अंत में बादल छँट जाता है।

5.53.69

धातूनां संनिवेशोऽयं देहनामा रिपुर्मम प्रक्षीयमाणे मनसि गलत्वेषोऽवतिष्ठतु ॥ ६९ ॥

dhātūnāṃ saṃniveśo'yaṃ dehanāmā ripurmama prakṣīyamāṇe manasi galatveṣo'vatiṣṭhatu || 69 ||

This arrangement of the bodily elements, called the body, is my enemy. As the mind wastes away, let it melt away or let it stay, it makes no difference to me.

शरीर नाम से जानी जाने वाली यह तत्वों की बनावट मेरी शत्रु है। मन के घटते जाने पर, यह पिघल जाए या बना रहे, मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

5.53.70

यदर्थं किल भोगश्रीर्वाञ्छते स्वकलेवरम् तन्मे नापि न तस्याहं कोऽर्थः सुखलवेन मे ॥ ७० ॥

yadarthaṃ kila bhogashrīrvāñchate svakalevaram tanme nāpi na tasyāhaṃ ko'rthaḥ sukhalavena me || 70 ||

The riches of pleasure want a body only for their own enjoyment, but that body is not mine, and I do not belong to it. What use is a mere scrap of pleasure to me?

सुख-भोग की यह शोभा जिस शरीर को अपने लिए चाहती है, वह शरीर न मेरा है, न मैं उसका हूँ। फिर सुख के एक टुकड़े से मुझे क्या लेना-देना?

5.53.71

नाहं देह इति त्वस्मिन्युक्तिमाकर्णय क्रमे सर्वाङ्गेष्वपि सत्स्वेव शवः कस्मान्न वल्गति ॥ ७१ ॥

nāhaṃ deha iti tvasminyuktimākarṇaya krame sarvāṅgeṣvapi satsveva śavaḥ kasmānna valgati || 71 ||

"I am not the body": hear the reason for this. Even though all its limbs are whole, why doesn't a corpse move?

"मैं शरीर नहीं हूँ": इसका कारण सुनो। सारे अंग पूरे होते हुए भी, मुर्दा शरीर हिलता-डुलता क्यों नहीं?

5.53.72

तस्माद्देहादतीतोऽहं नित्योऽनस्तमितद्युतिः यः सङ्गं भास्वता प्राप्य वेद्मि व्योमनि भास्करम् ॥ ७२ ॥

tasmāddehādatīto'haṃ nityo'nastamitadyutiḥ yaḥ saṅgaṃ bhāsvatā prāpya vedmi vyomani bhāskaram || 72 ||

So I am beyond that body, eternal, a light that never sets, like one who, coming into contact with its brightness, knows the sun shining in the sky.

इसलिए मैं उस शरीर से परे हूँ, नित्य, एक ऐसा प्रकाश जो कभी अस्त नहीं होता, जैसे कोई उसकी चमक के संपर्क में आकर आकाश में चमकते सूरज को पहचान लेता है।

5.53.73

नाज्ञोऽहं नच मे दुःखं नानर्थो न च दुःखिता । शरीरमस्तु मावास्तु स्थितोस्मि विगतज्वरः ॥ ७३ ॥

nājño'haṃ naca me duḥkhaṃ nānartho na ca duḥkhitā | śarīramastu māvāstu sthitosmi vigatajvaraḥ || 73 ||

I am not ignorant, I have no sorrow, no misfortune, no suffering. Let the body live or not, I remain free of all torment.

मैं अज्ञानी नहीं हूँ, मुझे न दुख है, न कोई विपत्ति है, न कोई पीड़ा है। शरीर रहे या न रहे, मैं हर तकलीफ़ से मुक्त बना रहता हूँ।

5.53.74

यत्रात्मा तत्र न मनो नेन्द्रियाणि न वासनाः । पामरा परितिष्ठन्ति निकटे न महीभृतः ॥ ७४ ॥

yatrātmā tatra na mano nendriyāṇi na vāsanāḥ | pāmarā paritiṣṭhanti nikaṭe na mahībhṛtaḥ || 74 ||

Where the self is, there is no mind, no senses, no desires present, just as poor, ordinary people do not stand close to a king.

जहाँ आत्मा है, वहाँ न मन है, न इंद्रियाँ हैं, न इच्छाएँ हैं, जैसे साधारण, गरीब लोग किसी राजा के पास खड़े नहीं होते।

5.53.75

पदं तदनुयातोऽस्मि केवलोस्मि जयाम्यहम् । निर्वाणोस्मि निरंशोस्मि निरीहोस्मि निरीप्सितः ॥ ७५ ॥

padaṃ tadanuyāto'smi kevalosmi jayāmyaham | nirvāṇosmi niraṃśosmi nirīhosmi nirīpsitaḥ || 75 ||

I have reached that highest state; I am whole and alone, and I stand victorious. I am at perfect peace, without parts, without craving, with nothing left to seek.

मैं उस सर्वोच्च अवस्था तक पहुँच चुका हूँ; मैं अकेला और पूर्ण हूँ, और विजयी खड़ा हूँ। मैं परम शांति में हूँ, बिना किसी हिस्से के, बिना किसी चाह के, और अब मुझे कुछ भी पाना बाकी नहीं।

5.53.76

इदानीमस्यसंबद्धो मनोदेहेन्द्रियादिभिः । पृथक्कृतस्य तैलस्य तिलैर्विगलनैरिव ॥ ७६ ॥

idānīmasmyasaṃbaddho manodehendriyādibhiḥ | pṛthakkṛtasya tailasya tilairvigalanairiva || 76 ||

Now I am free of any bond with mind, body, senses, and all the rest, like oil, drawn out and separated from sesame seeds.

अब मैं मन, शरीर, इंद्रियों और बाकी सबसे हर बंधन से मुक्त हूँ, जैसे तिल से निकाला और अलग किया हुआ तेल।

5.53.77

स्वस्मात्पदवरादस्माल्लीलया चलितस्य मे । पृथक्कृतमतेः किंच परिवारो ह्ययं शुभः ॥ ७७ ॥

svasmātpadavarādasmāllīlayā calitasya me | pṛthakkṛtamateḥ kiṃca parivāro hyayaṃ śubhaḥ || 77 ||

Even though I have playfully stepped down, in sport, from this best state that is my own, keeping my understanding apart from them, this following of mine is still a good one.

भले ही मैं अपनी इस सबसे श्रेष्ठ अवस्था से खेल-खेल में हट आया हूँ, और अपनी समझ को इनसे अलग रखे हुए हूँ, फिर भी मेरे साथ का यह परिवार शुभ ही है।

5.53.78

स्वच्छतोर्जितता सत्ता हृद्यता सत्यता ज्ञता । आनन्दितोपशमिता सदा च मृदुभाषिता ॥ ७८ ॥

svacchatotārjitā satā hṛdyatā satyatā jñatā | ānanditopaśamitā sadā ca mṛdubhāṣitā || 78 ||

Clarity, strength, true being, loveliness, truthfulness, wisdom, a joy that is calm, and always gentle speech,

स्पष्टता, बल, सच्चा होना, मन को भाने वाला रूप, सच्चाई, ज्ञान, शांत भरा आनंद, और हमेशा मीठी वाणी,

5.53.79

पूर्णतोदारता सत्या कान्तिमत्तैकतानता । सर्वैकता निर्भयता क्षीणद्वित्वविकल्पता ॥ ७९ ॥

pūrṇatodāratā satyā kāntimattekatānatā | sarvaikatā nirbhayatā kṣīṇadvitvavikalpatā || 79 ||

fullness, true generosity, a steady radiance, oneness with everything, fearlessness, and a mind where every trace of duality has faded,

पूर्णता, सच्ची उदारता, एक स्थिर चमक, सबके साथ एकता, निर्भयता, और ऐसा मन जिसमें दो-पन का हर भाव मिट चुका है,

5.53.80

नित्योदिताः समाः स्वस्थाः सुन्दर्यः सुभगोदयाः । ममैकात्ममतेर्नित्यं कान्ता हृदयवल्लभाः ॥ ८० ॥

nityoditāḥ samāḥ svasthāḥ sundaryaḥ subhagodayāḥ | mamaikātmatater nityaṃ kāntā hṛdayavallabhāḥ || 80 ||

ever shining, balanced, at rest in themselves, lovely, and blessed in their rising: now that I am one single self, these are forever my beloved companions, dear to my heart.

सदा चमकते हुए, संतुलित, अपने में ही टिके हुए, सुंदर, और शुभ उदय वाले: अब जब मैं एक अकेला आत्मा हूँ, तो ये सब सदा के लिए मेरे प्रिय साथी हैं, मेरे दिल के करीब।

5.53.81

सर्वथा सर्वदा सर्वं सर्वस्मिन्संभवत्यतः । सर्वं प्रति मम क्षीणे वाञ्छावाञ्छे सुखासुखे ॥ ८१ ॥

sarvathā sarvadā sarvaṃ sarvasminsambhavatyataḥ | sarvaṃ prati mama kṣīṇe vāñchāvāñche sukhāsukhe || 81 ||

In every way, always, everything arises within everything else, so now, wanting and not wanting, pleasure and pain, have both ended for me, toward all things alike.

हर तरह से, हमेशा, हर चीज़ हर चीज़ के भीतर ही प्रकट होती है, इसलिए अब हर चीज़ के प्रति मेरी चाहत और न-चाहत, सुख और दुख, दोनों ही खत्म हो चुके हैं।

5.53.82

विगतमोहतया विमनस्तया गतविकल्पनचित्ततया स्फुटम् । उपरमाम्यहमात्मनि शीतले घनलवः शरदीव नभस्तले ॥ ८२ ॥

vigatamohatayā vimanastayā gatavikalpanacittatayā sphuṭam | uparamāmyahamātmani śītale ghanalavaḥ śaradīva nabhastale || 82 ||

Free from delusion, free from the ordinary mind, my thinking free of all division, clearly I come to rest in the cool self, like the last wisp of cloud melting into the autumn sky.

भ्रम से मुक्त, सामान्य मन से मुक्त, हर बँटवारे से मुक्त सोच के साथ, मैं साफ़-साफ़ उस शीतल आत्मा में जाकर टिक जाता हूँ, जैसे शरद ऋतु के आकाश में बादल का आख़िरी टुकड़ा घुल जाता है।

Chapter 54

5.54.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति निर्णीय ततया धिया धवलया मुनिः । बद्धपद्मासनस्तस्थावर्धोन्मीलितलोचनः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti nirṇīya tatayā dhiyā dhavalayā muniḥ | baddhapadmāsanastasthāvardhonmīlitalocanaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having settled this in his mind, now vast and clear, the sage sat down in the lotus pose, his eyes half open.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह बात अपने विशाल और निर्मल मन में तय करके, मुनि पद्मासन लगाकर बैठ गए, उनकी आंखें आधी खुली थीं।

5.54.2

ओमित्येतत्परं ब्रह्म निर्णीय स मुनिस्तदा । ॐकारोच्चारितो येन तेनाप्तं परमं पदम् ॥ २ ॥

omityetatparaṃ brahma nirṇīya sa munistadā | oṃkāroccārito yena tenāptaṃ paramaṃ padam || 2 ||

He then decided that this syllable OM is the supreme Brahman: whoever utters OM reaches the highest state through it.

फिर उसने यह तय किया कि यह ओंकार ही परम ब्रह्म है: जो भी ओम का उच्चारण करता है, वह इसी से सबसे ऊंची अवस्था को पाता है।

5.54.3

ॐकारमकरोत्तारस्वरमूर्ध्वगतध्वनिम् । सम्यगाहतलाङ्गूलं घण्टाकुण्डमिवारवम् ॥ ३ ॥

oṃkāramakarottārasvaramūrdhvagatadhvanim | samyagāhatalāṅgūlaṃ ghaṇṭākuṇḍamivāravam || 3 ||

He uttered OM in a high, clear tone, its sound rising upward, like a great bell ringing out when its clapper strikes it well.

उसने ऊँचे, साफ़ स्वर में ओम का उच्चारण किया, जिसकी आवाज़ ऊपर उठती गई, जैसे कोई बड़ा घंटा, जिसका लटकन ठीक से टकराए, गूँज उठता है।

5.54.4

ओमुच्चारयतस्तस्य संवित्तत्त्वे तदुन्मुखे । यावदोंकारमूर्धस्थे विततते विमलात्मनि ॥ ४ ॥

omuccārayatastasya saṃvittattve tadunmukhe | yāvadoṃkāramūrdhasthae vitate vimalātmani || 4 ||

As he uttered OM, his mind turned fully toward that reality of pure awareness, resting at the crest of OM, spread out wide in the pure self.

जैसे ही उसने ओम का उच्चारण किया, उसका मन पूरी तरह उस शुद्ध चेतना की सच्चाई की ओर मुड़ गया, जो ओम के शिखर पर टिकी थी और उस निर्मल आत्मा में फैली हुई थी।

5.54.5

सार्धत्र्यंशात्ममात्रस्य प्रथमेंऽशे स्फुटारवे । प्रणवस्य समाक्षुब्धप्राणारणितदेहके ॥ ५ ॥

sārdhatryaṃśātmamātrasya prathameṃ'śe sphuṭārave | praṇavasya samākṣubdhaprāṇāraṇitadehake || 5 ||

OM consists of three and a half parts. In its first part, with a clear, distinct sound, his breath grew violently agitated and his body resounded with it.

ओम साढ़े तीन भागों से बना है। उसके पहले भाग में, एक साफ और स्पष्ट ध्वनि के साथ, उसकी सांस बहुत उत्तेजित हो गई और उसका शरीर उसी से गूंज उठा।

5.54.6

रेचकाख्योऽखिलं कायं प्राणनिष्क्रमणक्रमः रिक्तीचकार पीताम्बुरगस्त्य इव सागरम् ॥ ६ ॥

rechakākhyo'khilaṃ kāyaṃ prāṇaniṣkramaṇakramaḥ riktīcakāra pītāmburagasty iva sāgaram || 6 ||

The process called exhalation, the breath flowing out, emptied his whole body, just as Agastya once drank up and emptied the ocean.

रेचक कहलाने वाली इस क्रिया ने, यानी सांस के बाहर निकलने ने, उसका पूरा शरीर खाली कर दिया, जैसे अगस्त्य ऋषि ने समुद्र का पानी पीकर उसे खाली कर दिया था।

5.54.7

अतिष्ठत्प्राणपवनश्चिद्रसापूरिताम्बरे त्यक्तदेहः परित्यक्तनीडः खग इवाम्बरे ॥ ७ ॥

atiṣṭhatprāṇapavanaścidrasāpūritāmbare tyaktadehaḥ parityaktanīḍaḥ khaga ivāmbare || 7 ||

His breath, having left the body, stood still in the sky filled with the taste of pure consciousness, like a bird that has given up its nest and hangs still in the open sky.

उसकी सांस, शरीर को छोड़कर, शुद्ध चेतना के रस से भरे आकाश में स्थिर रुक गई, जैसे कोई पक्षी अपना घोंसला छोड़कर खुले आकाश में ठहरा हो।

5.54.8

हृदयाग्निर्ज्वलज्ज्वालो ददाह निखिलं वपुः उत्पातपवनोद्भूतो दावः शुष्कमिव द्रुमम् ॥ ८ ॥

hṛdayāgnirjvalajjvālo dadāha nikhilaṃ vapuḥ utpātapavanodbhūto dāvaḥ śuṣkamiva drumaṃ || 8 ||

The fire of his heart, blazing with flame, burned up his whole body, like a wildfire risen with a storm-wind burning a dry tree.

उसके हृदय की आग, जो जलती हुई लपटों वाली थी, उसके पूरे शरीर को जला गई, जैसे तूफानी हवा से उठी जंगल की आग किसी सूखे पेड़ को जला देती है।

5.54.9

यावदित्थमवस्थैषा प्रणवप्रथमक्रमे बभूव न हठादेव हठयोगो हि दुःखदः ॥ ९ ॥

yāvaditthamavasthaiṣā praṇavaprathamakrame babhūva na haṭhādeva haṭhayogo hi duḥkhadaḥ || 9 ||

As long as this state lasted in the first stage of OM, it did not come about through mere force. Forced hatha yoga only brings pain.

जब तक यह अवस्था ओम के पहले चरण में बनी रही, वह सिर्फ जबरदस्ती से नहीं हुई थी। जबरदस्ती वाला हठयोग तो दुख ही देता है।

5.54.10

अथेतरांशावसरे प्रणवस्य समस्थितौ निष्कम्पकुम्भको नाम प्राणानामभवत्क्रमः ॥ १० ॥

athaitarāṃśāvasare praṇavasya samasthitau niṣkampakumbhako nāma prāṇānāmabhavatkramaḥ || 10 ||

Then, at the time of the next part, in the even, settled state of OM, there arose the breathing process called the still breath-hold, the breath held steady without a tremor.

फिर, अगले भाग के समय, ओम की स्थिर अवस्था में, सांसों की वह क्रिया शुरू हुई जिसे स्थिर सांस-रोक कहते हैं, यानी सांस बिना कांपे स्थिर होकर रुक गई।

5.54.11

न बहिर्नान्तरे नाधो नोर्ध्वं नाशासु तत्र ते। संक्षोभमगमन्प्राणा आपः संस्तम्भिता इव ॥ ११ ॥

na bahirnāntare nādho nourdhavam nāśāsu tatra te | saṃkṣobhamagamanprāṇā āpaḥ saṃstambhitā iva || 11 ||

Not outside, not inside, not below, not above, not in any direction did they move. His breaths fell into turmoil right there, like water that has been dammed and held still.

न बाहर, न भीतर, न नीचे, न ऊपर, न किसी दिशा में - उसकी सांसें वहीं उथल-पुथल में पड़ गईं, जैसे रोका हुआ पानी वहीं ठहर कर हिलता-डुलता रहता है।

5.54.12

दग्धदेहपुरो वह्निः शशामाशनिवत्क्षणात्। अदृश्यत सितं भस्म शारीरं हिमपाण्डुरम् ॥ १२ ॥

dagdhadehapuro vahniḥ śaśāmāśanivatkṣaṇāt | adṛśyata sitaṃ bhasma śārīraṃ himapāṇḍuram || 12 ||

The fire that had burned the city of his body died out in an instant, like a bolt of lightning. White ash appeared where the body had been, pale as snow.

जिस आग ने उसके शरीर रूपी नगर को जला डाला था, वह बिजली की तरह एक ही पल में बुझ गई। वहां सफेद राख दिखाई दी, शरीर बर्फ जैसा सफेद हो चुका था।

5.54.13

यत्र कर्पूरशय्यायां सुप्तानीव सुखोचितम्। शरीरास्थीनि लक्ष्यन्ते निष्पन्दानि सितानि च ॥ १३ ॥

yatra karpūraśayyāyāṃ suptānīva sukhochitam | śarīrāsthīni lakṣyante niṣpandāni sitāni ca || 13 ||

There, the bones of the body could be seen, still and white, as if lying comfortably asleep on a bed of camphor.

वहां शरीर की हड्डियां दिखाई दे रही थीं, स्थिर और सफेद, जैसे वे कपूर की सेज पर आराम से सोई हुई हों।

5.54.14

तद्भस्म पवनानीतं सास्थि वायुरयोजयत्। स्वदेहे भृशमुत्सन्ने त्रिनेत्रव्रतवानिव ॥ १४ ॥

tadbhasma pavanānītaṃ sāsthi vāyurayojayat | svadehe bhṛśamutsanne trinetravratavāniva || 14 ||

The wind gathered that ash together with the bones and joined them onto its own hugely swollen body, like someone bound by a vow to Shiva, the three-eyed god.

हवा ने उस राख को हड्डियों समेत इकट्ठा करके अपने ही बहुत फूले हुए शरीर पर जोड़ लिया, जैसे कोई त्रिनेत्र शिव के व्रत से बंधा हुआ व्यक्ति हो।

5.54.15

तच्चण्डपवनोद्भूतमावृत्त्य गगनं क्षणात्। शरदीवाभ्रमिहिका क्वापि भस्मास्थिमद्ययौ ॥ १५ ॥

taccaṇḍapavanoddhūtamāvṛttya gaganaṃ kṣaṇāt | śaradīvābhraṃmihikā kvāpi bhasmāsthimadyayau || 15 ||

Stirred up by a fierce wind, it covered the sky in an instant, then drifted off somewhere, ash and bones together, like a cloud of mist in autumn.

तेज़ हवा से उड़कर वह एक ही पल में आकाश को ढक गई, फिर राख और हड्डियां साथ लिए न जाने कहां बह गई, जैसे शरद ऋतु का कोहरे भरा बादल।

5.54.16

यावदित्थमवस्थैषा प्रणवस्यापरे क्रमे । बभूव न हठादेव हठयोगो हि दुःखदः ॥ १६ ॥

yāvaditthamavasthaiṣā praṇavasyāpare kramē | babhūva na haṭhādēva haṭhayōgō hi duḥkhadaḥ || 16 ||

As long as this state lasted in the next stage of OM, it did not come about through mere force. Forced hatha yoga only brings pain.

जब तक यह अवस्था ओम के अगले चरण में बनी रही, वह सिर्फ जबरदस्ती से नहीं हुई थी। जबरदस्ती वाला हठयोग तो दुख ही देता है।

5.54.17

ततस्तृतीयावसरे प्रणवस्योपशान्तिदे । पूरणप्रपूरको नाम प्राणानामभवत्क्रमः ॥ १७ ॥

tataḥtṛtīyāvasarē praṇavasyōpaśāntidē | pūraṇaprapūrakō nāma prāṇānāmabhavatkramaḥ || 17 ||

Then, at the third stage of OM, the stage that brings peace, there arose the breathing process called the complete filling.

फिर, ओम के तीसरे चरण में, जो शांति देने वाला चरण है, सांसों की वह क्रिया शुरू हुई जिसे पूर्ण भराव कहते हैं।

5.54.18

अस्मिन्नवसरे प्राणाश्चेतनामृतमध्यगाः । व्योम्नि शीतलतामीयुर्हिमसंस्पर्शसुन्दरीम् ॥ १८ ॥

asminnavasarē prāṇāścētanāmṛtamadhyagāḥ | vyōmni śītalatāmīyurhimasaṃsparśasundarīm || 18 ||

At this time his breaths, moving within the nectar of consciousness, took on in that inner sky a coolness beautiful with the touch of frost.

इस समय उसकी सांसें, चेतना के अमृत के बीच चलती हुई, उस भीतरी आकाश में एक ऐसी ठंडक ले आईं जो बर्फ के स्पर्श जैसी सुंदर थी।

5.54.19

क्रमाद्गगनमध्यस्थाश्चन्द्रमण्डलतां ययुः । धूमा गगनकोशस्थाः शीतलाम्बुदतामिव ॥ १९ ॥

kramādgaganamadhyasthāścandramaṇḍalatāṃ yayuḥ | dhūmā gaganakōśasthāḥ śītalāmbudatāmiva || 19 ||

Gradually, standing in the middle of that sky, they turned into the shape of the moon's disc, like smoke standing in the vault of the sky turning into a cool cloud.

धीरे-धीरे, उस आकाश के बीच खड़ी होकर, वे चंद्रमा के गोले का रूप लेती गईं, जैसे आकाश के भीतर खड़ा धुआं ठंडे बादल का रूप ले लेता है।

5.54.20

कलाकलापसंपूर्णे ते तस्मिंश्चन्द्रमण्डले । पुण्यराशाविवापूर्णे रसायनमहार्णवे ॥ २० ॥

kalākalāpasaṃpūrṇē tē tasmiñcandramaṇḍalē | puṇyarāśāvivāpūrṇē rasāyanamahārṇavē || 20 ||

In that moon's disc, now completely full, filled as if with a heap of merit, lay a great ocean of the elixir of life.

उस चंद्रमा के गोले में, जो अब पूरी तरह भरा हुआ था, मानो पुण्य के ढेर से भरा हो, वहां रसायन का एक विशाल सागर था।

5.54.21

रसायनमया धाराः संपन्नाः प्राणवायवः । मणियष्टिसमाकारा जालेष्विन्दोरिवांशवः ॥ २१ ॥

rasāyanamayā dhārāḥ saṃpannāḥ prāṇavāyavaḥ | maṇiyaṣṭisamākārā jāleṣvindorivāṃśavaḥ || 21 ||

His breaths became streams made of that elixir, shaped like strings of jewels, like the moon's rays passing through a lattice screen.

उसकी सांसें उस रसायन से बनी धाराएं बन गईं, जो रत्नों की लड़ियों जैसी दिख रही थीं, जैसे जाली में से छनकर आती चांदनी की किरणें।

5.54.22

सा पपाताम्बराद्धारा शेषे शारीरभस्मनि । रसायनी हरशिरःपतितेव सुरापगा ॥ २२ ॥

sā papātāmbarāddhārā śeṣe śārīrabhasmani | rasāyanī haraśiraḥpatiteva surāpagā || 22 ||

That stream of elixir fell from the sky onto the ash that remained of his body, like the Ganga, river of the gods, falling onto the head of Shiva.

रसायन से भरी वह धारा आकाश से गिरकर उसके शरीर की बची हुई राख पर आ पड़ी, जैसे देवनदी गंगा शिव के सिर पर गिरी थी।

5.54.23

उदभूदिन्दुबिम्बाभं चतुर्बाहुवपुस्तया । प्रस्फुरन्मन्दरादब्धेः पारिजात इव द्रुमः ॥ २३ ॥

udabhūdindubimbābhaṃ caturbāhuvapustayā | prasphuranmandarādabdheḥ pārijāta iva drumḥ || 23 ||

From that, a four-armed body arose, glowing like the disc of the moon, like the Parijata tree rising shining from the ocean churned by Mount Mandara.

उससे एक चार भुजाओं वाला शरीर उठ खड़ा हुआ, जो चंद्रमा के गोले जैसा चमक रहा था, जैसे मंदार पर्वत से मथे गए सागर से चमकता हुआ पारिजात वृक्ष निकला था।

5.54.24

उद्दालकशरीरं तन्नारायणतयोदितम् । प्रफुल्लनेत्रवक्त्राब्जमाबभौ दीप्तिसुन्दरम् ॥ २४ ॥

uddālakaśarīraṃ tannārāyaṇatayoditam | praphullanetravaktrābjamābabhau dīptisundaram || 24 ||

Uddalaka's body rose up now in the form of Narayana; his face and eyes were like a lotus in full bloom, and he shone, beautiful with light.

उद्दालक का शरीर अब नारायण के रूप में उठ खड़ा हुआ; उसका चेहरा और आँखें पूरी तरह खिले हुए कमल जैसे थे, और वह तेज से सुंदर होकर चमक रहा था।

5.54.25

रसायनमयाः प्राणास्तच्छरीरमपूरयन् । सलिलौघा इव सरो वृक्षं मधुरसा इव ॥ २५ ॥

rasāyanamayāḥ prāṇāstaccharīramapūrayan | salilaughā iva saro vṛkṣaṃ madhurasā iva || 25 ||

Life-breaths made of that elixir filled his body, the way floods of water fill a lake, the way sweet sap fills a tree.

उस अमृत-रस से बने प्राणों ने उसके शरीर को भर दिया, जैसे पानी की बाढ़ किसी तालाब को भर देती है, जैसे मीठा रस किसी पेड़ को भर देता है।

5.54.26

अन्तःकुण्डलिनीं प्राणाः पूरयामासुरादृताः । चक्रानुवर्तप्रसृतां पयांसीव सरिद्वराम् ॥ २६ ॥

antaḥkuṇḍalinīṃ prāṇāḥ pūrayāmāsurādṛtāḥ | cakrānuvartaprasṛtāṃ payāṃsīva saridvarām || 26 ||

The breaths moved with care and filled the kundalini within him, spreading along its coils, the way water fills a great river flowing along its bends.

प्राणों ने सावधानी से उसके भीतर की कुंडलिनी को भर दिया, जो अपने घुमावों के साथ फैल रही थी, जैसे पानी किसी बड़ी नदी को उसके मोड़ों में बहकर भर देता है।

5.54.27

प्रकृतस्थं बभूवास्य तच्छरीरं द्विजन्मनः । प्रावृड्वरीरविगमे धौतं तलमिवावनेः ॥ २७ ॥

prakṛtasthaṃ babhūvāsya taccharīraṃ dvijanmanaḥ | prāvṛṭśarīravigame dhautaṃ talamivāvaneḥ || 27 ||

His body, the body of that brahmin, came back to its natural state, the way the earth's surface looks washed clean once the rains have passed.

उस ब्राह्मण का शरीर फिर से अपनी सामान्य स्थिति में आ गया, जैसे बारिश का मौसम बीत जाने पर धरती की सतह धुली-धुली साफ़ दिखती है।

5.54.28

अथ पद्मासनगतः कृत्वा देहे स्थितिं दृढम् । आलान इव मातङ्गं निबद्ध्येन्द्रियपञ्चकम् ॥ २८ ॥

atha padmāsanagataḥ kṛtvā dehe sthitiṃ dṛḍham | ālāna iva mātaṅgaṃ nibaddhyendriyapañcakam || 28 ||

Then, sitting in the lotus posture, he made his body completely steady and tied down his five senses, the way an elephant is tied to a post.

फिर वह पद्मासन में बैठकर अपने शरीर को पूरी तरह स्थिर करके अपनी पाँचों इंद्रियों को बाँध दिया, जैसे किसी हाथी को खूँटे से बाँधा जाता है।

5.54.29

निर्विकल्पसमाध्यर्थं व्यवसायमुपाददे । स्वभावं स्वच्छतां नेतुं शरत्काल इवामलम् ॥ २९ ॥

nirvikalpasamādhyarthaṃ vyavasāyamupādade | svabhāvaṃ svacchatāṃ netuṃ śaratkāla ivāmalam || 29 ||

He made the effort needed for that thought-free stillness, to bring his own nature to a clearness as spotless as the autumn season.

उसने उस विचार-रहित गहरी शांति के लिए ज़रूरी प्रयास किया, ताकि अपने स्वभाव को शरद ऋतु जैसा निर्मल और साफ़ बना सके।

5.54.30

प्रशान्तवातहरिणमाशादिगणगामिनम् । चिन्तया हृदयं निन्ये दूराद्रज्ज्वेव कीलकम् ॥ ३० ॥

praśāntavātahariṇamāśādigaṇagāminam | cintayā hṛdayaṃ ninye dūrādrajjveva kīlakam || 30 ||

That mind of his -- once a deer swift as the wind, running to every direction, now grown calm -- he pulled in from far away by steady thought, the way a rope pulls in a stake.

उसका मन -- जो पहले हवा जैसा तेज़ हिरण था और हर दिशा में दौड़ता रहता था, अब शांत हो चुका था -- उसने दूर से गहरे चिंतन के सहारे खींच लिया, जैसे रस्सी किसी खूँटे को खींच लेती है।

5.54.31

धावमानमधो मत्तं चित्तं विमलमाकुलम् । बलात्संरोधयामास सेतुर्जलमिव द्रुतम् ॥ ३१ ॥

dhāvamānamadho mattam cittam vimalamākulam | balātsamrodhayāmāsa seturjalamivadrutam || 31 ||

That mind -- running wild and low, drunk and unsettled though pure by nature -- he forced to a stop, the way a dam stops a rushing flood.

वह मन -- जो नीचे की ओर बेतहाशा दौड़ रहा था, मतवाला और बेचैन था, हालाँकि स्वभाव से निर्मल था -- उसने ज़बरदस्ती रोक दिया, जैसे कोई बाँध तेज़ बहती बाढ़ को रोक देता है।

5.54.32

निमिमील दृशावर्धं परिपक्ष्मलपक्ष्मके । निस्पन्दतारामधुरे संध्याकाल इवाम्बुजे ॥ ३२ ॥

nimimīla drśāvardham paripakṣmalapakṣmake | nispandatārāmadhure samdhyākāla ivāmbuje || 32 ||

He half-closed his eyes, ringed all round with lashes, their still gaze soft, the way a lotus closes at twilight.

उसने अपनी आँखें आधी बंद कर लीं, जो चारों ओर पलकों से घिरी थीं, उनकी शांत दृष्टि कोमल थी, जैसे संध्या के समय कमल बंद हो जाता है।

5.54.33

सौम्यतामनयन्मौनी प्राणापानजवं मुखे । श्वसनं श्रेयसे देशे प्रशस्तः समयो यथा ॥ ३३ ॥

saumyatāmanayanmaunī prāṇāpānajavam mukhe | śvasanam śreyase deśe praśastaḥ samayo yathā || 33 ||

That silent sage calmed the rushing in-breath and out-breath at his mouth, the way the right moment comes at the right place for something good.

उस मौन ऋषि ने अपने मुँह पर चल रही तेज़ साँसों -- प्राण और अपान -- को शांत कर दिया, जैसे किसी अच्छे काम के लिए सही समय सही जगह पर आ जाता है।

5.54.34

तिलेभ्य इव तैलानि पृथक् चक्रे प्रयत्नतः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः कूर्मोऽङ्गानीव गोपयन् ॥ ३४ ॥

tilebhya iva tailāni prthak cakre prayatnataḥ | indriyāṇīndriyārthebhyaḥ kūrmo'ṅgānīva gopayan || 34 ||

With effort he pulled the senses away from the things the senses reach for, the way oil is pressed out of sesame seeds, guarding them the way a tortoise draws in its limbs.

उसने मेहनत से इंद्रियों को उनके विषयों से अलग कर दिया, जैसे तिल से तेल निकाला जाता है, और उन्हें ऐसे बचाकर रखा जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है।

5.54.35

बाह्यस्पर्शानशेषेण जहौ दूरे स धीरधीः । सहसा कुण्डकच्छन्नो मणिर्दूरत्विषो यथा ॥ ३५ ॥

bāhyasparśānaśeṣeṇa jahau dūre sa dhīradhīḥ | sahasā kuṇḍakacchanno maṇirdūratviṣo yathā || 35 ||

He, steady of mind, threw off all outer touch completely, far away, the way a gem whose light reaches far is suddenly hidden in a hollow.

वह, जिसका मन स्थिर था, बाहरी स्पर्शों को पूरी तरह दूर फेंक दिया, जैसे दूर तक चमकने वाला कोई रत्न अचानक किसी गड्ढे में छिप जाए।

5.54.36

विलीनानान्तरांश्चक्रे स्पर्शानुज्झितदर्शनात् । रसान्वितपकोशस्थान्मार्गशीर्ष इव द्रुमः ॥ ३६ ॥

vilīnānāntarāṃścakre sparśānujJhitadarśanāt | rasānvitapakośasthānmārgaśīrṣa iva drumah || 36 ||

By giving up outward seeing, he made the inner touches sink into stillness, the way a tree in the month of Margashirsha keeps its sap inside the cover of its shoots.

बाहर देखना छोड़कर, उसने भीतरी स्पर्शों को शांत करके भीतर समेट लिया, जैसे मार्गशीर्ष महीने में कोई पेड़ अपना रस अपनी टहनियों के भीतर ही रोके रखता है।

5.54.37

रुरोध गुदसंकोच्चान्नवद्वारानिलानथ । मुखसंस्थगितः कुम्भो रन्ध्रकोशानिवेतरान् ॥ ३७ ॥

rurudha gudasaṃkocchānnavadvārānilānath | mukhasaṃsthagitaḥ kumbho randhrakośānivetarān || 37 ||

Then, by drawing in the anus, he held back the breaths at the nine gates of the body, the way sealing the mouth of a jar also shuts its other openings.

फिर, गुदा को भीतर खींचकर, उसने शरीर के नौ द्वारों की साँसों को रोक दिया, जैसे किसी घड़े का मुँह बंद करने से उसके बाकी छेद भी बंद हो जाते हैं।

5.54.38

स्वात्मरत्नप्रकाशाढ्यां स्पष्टां कुसुमलाञ्छिताम्। दधार कन्धरां धीरो मेरुः शृङ्गशिखामिव ॥ ३८ ॥

svātmaratnaprakāśāḍhyāṃ spaṣṭāṃ kusumalāñchitām | dadhāra kandharāṃ dhīro meruḥ śṛṅgaśikhāmiva || 38 ||

That steady man held his neck straight -- rich with the glow of his own inner jewel, clear, and adorned with flowers -- the way Mount Meru holds the tip of its peak.

उस स्थिर पुरुष ने अपनी गर्दन को सीधा ताने रखा -- जो अपने भीतरी रत्न की चमक से भरी थी, साफ़ दिखती थी और फूलों से सजी थी -- जैसे मेरु पर्वत अपनी चोटी की नोक को थामे रहता है।

5.54.39

बभार हृदयाकाशे मनः संयममागतम्। विन्ध्यखात इवोन्मत्तं गजं युक्तिवशीकृतम् ॥ ३९ ॥

babhāra hṛdayākāśe manaḥ saṃyamamāgatam | vindhyakhāta ivonmattaṃ gajaṃ yuktivaśīkṛtam || 39 ||

He held, in the space of his heart, the mind that had come under control, the way a wild elephant, tamed by skillful means, is held in a Vindhya pit.

उसने अपने हृदय के आकाश में उस मन को थाम लिया जो अब वश में आ चुका था, जैसे किसी उन्मत्त हाथी को कुशलता से वश में करके विंध्य के किसी गड्ढे में रोक दिया जाता है।

5.54.40

शरन्नभोवदासाद्य निर्मलामतिसौम्यताम्। जहार परिपूर्णाब्धेर्निर्वातस्याचलां श्रियम् ॥ ४० ॥

śaran nabhovadāsādya nirmalāmatisauomyatām | jahāra paripūrṇābhdher nirvātasyācalāṃ śriyam || 40 ||

Reaching a clear, deeply calm state like the autumn sky, he took on the still beauty of a full ocean with no wind.

शरद ऋतु के आकाश जैसी निर्मल और गहरी शांति पाकर, उसने ऐसे भरे हुए समुद्र की स्थिर सुंदरता धारण कर ली जिस पर कोई हवा नहीं चल रही थी।

5.54.41

दुधावातिविकल्पौघान्प्रतिभासमुपेयुषः। पुरः परिस्फुरद्रूपान्मशकानिव मारुतः ॥ ४१ ॥

dudhāvātivikalpaughānpratibhāsamupeyuṣaḥ | puraḥ parisphuradrūpānmaśakāniva mārutaḥ || 41 ||

He drove off the floods of extra imaginings that had come into view, forms flickering in front of him, the way wind scatters mosquitoes.

उसने उन बेशुमार कल्पनाओं की बाढ़ को दूर भगा दिया जो सामने प्रकट हो चुकी थीं और चमकते रूपों में दिख रही थीं, जैसे हवा मच्छरों को उड़ा देती है।

5.54.42

आगच्छतो यथाकामं प्रतिभासान्पुनः पुनः। अच्छिनन्मनसा शूरः खड्गेनेव रणे रिपून् ॥ ४२ ॥

āgacchato yathākāmaṃ pratibhāsānpunaḥ punaḥ | acchinanmanasā śūraḥ khaṅgeneva raṇe ripūn || 42 ||

The forms that kept coming back on their own, again and again, he cut down with his mind, the way a brave warrior cuts down enemies in battle with a sword.

जो रूप बार-बार अपने आप लौट आते थे, उन्हें उसने अपने मन से काट डाला, जैसे कोई बहादुर योद्धा युद्ध में तलवार से दुश्मनों को काट डालता है।

5.54.43

विकल्पौघे परालूने सोऽपश्यद्धृदयाम्बरे । तमच्छन्नविवेकार्कं लोलकज्जलमेचकम् ॥ ४३ ॥

vikalpaughē parālūnē so'paśyaddhadayāmbarē | tamacchannavivēkārkaṃ lolakajjalamēcakam || 43 ||

When the flood of imaginings was fully cut away, he saw, in the sky of his heart, a darkness covering the sun of clear understanding, black and shifting like lamp-soot.

जब कल्पनाओं की बाढ़ पूरी तरह कट चुकी थी, तब उसने अपने हृदय के आकाश में एक अँधेरा देखा जो सही समझ के सूरज को ढक रहा था, वह दीये की कालिख जैसा काला और डोलता हुआ था।

5.54.44

तमप्युन्मार्जयामास सम्यक्स्वान्तविवस्वता । सम्यग्ज्ञानोदितेनाशु पवनेनेव कज्जलम् ॥ ४४ ॥

tamapyunmārjayāmāsa samyaksvāntavivasvatā | samyagjñānoditenaśu pavaneneva kajjalam || 44 ||

That darkness, too, he wiped clean away with the sun of his own heart, which had risen fast through right knowledge, the way wind sweeps away soot.

उस अँधेरे को भी उसने अपने हृदय के सूरज से पूरी तरह पोंछ डाला, जो सही ज्ञान से तुरंत उग आया था, जैसे हवा कालिख को उड़ा ले जाती है।

5.54.45

तमस्युपरते कान्तं तेजःपुञ्जं ददर्श सः । शार्वरे तिमिरे शान्ते प्रातःसंध्यामिवाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

tamasya uparate kāntaṃ tejaḥpuñjaṃ dadarśa saḥ | śārvare timire śānte prātaḥsaṃdhyāmivāmbujam || 45 ||

When the darkness had ended, once the gloom of night had grown still, he saw a lovely mass of light, the way a lotus opens to the light of dawn.

जब अँधेरा खत्म हो गया और रात का धुँधलका शांत हो गया, तब उसने प्रकाश का एक सुंदर पुंज देखा, जैसे कमल भोर की रोशनी में खिल उठता है।

5.54.46

तल्लुलाव स्थलाब्जानां वनं बाल इव द्विपः । अपिबच्चाप्यसृक्पूरं वेताल इव वेगतः ॥ ४६ ॥

tallulāva sthalābjānāṃ vanaṃ bāla iva dvipaḥ | apibacchāpyasṛkpūraṃ vetāla iva vegataḥ || 46 ||

It tore through a grove of land-lotuses like a young elephant, and it drank up a flood of blood swiftly like a ghoul.

उसने किसी जवान हाथी की तरह ज़मीन के कमलों के एक झुरमुट को उजाड़ डाला, और किसी प्रेत की तरह तेज़ी से खून की एक धारा पी डाली।

5.54.47

तेजस्युपरते तस्य घूर्णमानं मनो मुनेः । निशाब्जवदगान्निद्रा लोलं क्षीबवदेव वा ॥ ४७ ॥

tejasyuparate tasya ghūrṇamānaṃ mano muneḥ | niśābjavadagānnidrā lolaṃ kṣībavadeva vā || 47 ||

When that light too had faded, the sage's whirling mind sank into sleep, like a lotus closing at night, unsteady, as if it were drunk.

जब वह प्रकाश भी बुझ गया, तो मुनि का घूमता हुआ मन नींद में डूब गया, जैसे रात में कमल बंद हो जाता है, डगमगाता हुआ, मानो नशे में हो।

5.54.48

मेघमालामिव मरुद्व्यालो नीलाब्जिनीमिव । यामिनीमिव तीक्ष्णांशुस्तामप्याशु लुलाव सः ॥ ४८ ॥

meghamālāmiva marudvyālo nīlābjinīmiva | yāminīmiva tīkṣṇāṃśustāmapyāśu lulāva saḥ || 48 ||

As the wind scatters a mass of clouds, as a wild elephant tramples a pond of blue lotuses, as the sharp-rayed sun burns away the night, so he swiftly swept that sleep away too.

जैसे हवा बादलों के समूह को बिखेर देती है, जैसे कोई जंगली हाथी नीले कमलों के तालाब को रौंद डालता है, जैसे तेज़ किरणों वाला सूरज रात को मिटा देता है, वैसे ही उसने उस नींद को भी झट से मिटा दिया।

5.54.49

निद्राव्यपगमे तस्य भावयामास तन्मनः । व्योमश्यामलदृग्जन्तुर्नभसीव शिखण्डकान् ॥ ४९ ॥

nidrāvyapagame tasya bhāvayāmāsa tanmanaḥ | vyomasyāmaladṛgjanturnabhasīva śikhaṇḍakān || 49 ||

When sleep had left him, his mind began to watch itself closely, the way a peacock, its eyes dark as the sky, watches the clouds overhead.

जब नींद जाती रही, तो उसका मन खुद को ध्यान से देखने लगा, जैसे मोर, जिसकी आँखें आकाश जैसी गहरे रंग की हैं, बादलों को ध्यान से देखता है।

5.54.50

पयोद इव तापिच्छं नीहारमिव मारुतः । दीपस्तम इवाच्छात्म तदप्याशु ममार्ज सः ॥ ५० ॥

payod iva tāpiśaṃ nīhāramiva mārutaḥ | dīpastama ivācchātma tadapyāśu mamārja saḥ || 50 ||

As a raincloud swallows a dark tamala tree into itself, as the wind sweeps away mist, as a lamp's clear flame swallows the darkness, so he swiftly wiped that too away.

जैसे बादल किसी काले तमाल वृक्ष को अपने भीतर समा लेता है, जैसे हवा कोहरे को उड़ा ले जाती है, जैसे दीये की उजली लौ अंधकार को निगल जाती है, वैसे ही उसने उसे भी झट से मिटा दिया।

5.54.51

व्योमसंविदि नष्टायां मूढं तस्याभवन्मनः । निद्रायां तु विलीनायां मैरेयमदवानिव ॥ ५१ ॥

vyomasañvidi naṣṭāyāṁ mūḍhaṁ tasyābhavanmanaḥ| nidrāyāṁ tu vilīnāyāṁ maireyamadavāniva || 51 ||

When that sky-like awareness was lost, his mind grew dull and confused, the way a man drunk on wine feels dazed as his sleep wears off.

जब वह आकाश जैसी चेतना खो गई, तो उसका मन धुंधला और उलझा हुआ हो गया, जैसे शराब के नशे में डूबा आदमी नींद टूटते समय उलझा हुआ महसूस करता है।

5.54.52

मोहमप्येष मनसस्तं ममार्ज महाशयः । यामिनीजनितं जाड्यं भुवनादिव भास्करः ॥ ५२ ॥

mohamapyeṣa manasastaṁ mamārja mahāśayaḥ| yāminījanitaṁ jāḍyaṁ bhuvanādiva bhāskaraḥ || 52 ||

This great soul wiped away that confusion of mind too, the way the sun wipes the dullness of night from the whole world.

इस महान आत्मा ने मन के उस भ्रम को भी मिटा दिया, जैसे सूर्य रात से उत्पन्न सुस्ती को पूरी दुनिया से मिटा देता है।

5.54.53

ततस्तेजस्तमोनिद्रामोहादिपरिवर्जितम्। कामप्यवस्थामासाद्य विशश्राम मनः क्षणम्॥ ५३॥

tatastejas tamoni drāmohādiparivarjitam| kāmapyavasthāmāsādya viśaśrāma manaḥ kṣaṇam || 53 ||

Then that light, now free of darkness, sleep, confusion and all the rest, reached a state beyond words, and the mind rested there for a moment.

फिर वह ज्योति, जो अब अंधकार, नींद, भ्रम आदि सबसे मुक्त हो चुकी थी, एक ऐसी अवस्था में पहुँची जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता, और मन एक पल के लिए वहाँ विश्राम पा गया।

5.54.54

विश्रम्याशु पपाताङ्ग संविदं विश्वरूपिणीम्। सेतुरुद्धं सरोवारि प्रतीपं स्वमिवास्पदम्॥ ५४॥

viśramyāśu papātāṅga saṁvidaṃ viśvarūpiṇīm| seturuddhaṁ sarovāri pratīpaṁ svamivāspadam || 54 ||

Having rested, it quickly fell into that awareness which takes every form, like the water of a lake held back by a dam rushing back to its own bed once the dam breaks.

विश्राम करने के बाद वह तुरंत उस चेतना में जा गिरा जो हर रूप धारण करती है, जैसे बाँध से रुका हुआ तालाब का पानी बाँध टूटते ही अपने ही स्थान की ओर वापस बह पड़ता है।

5.54.55

चिरानुसंधानवशात्स्वदनाच्च स्वसंविदः। ततश्चिन्मयतामागाद्धेम नूपुरतामिव॥ ५५॥

cirānusaṁdhānavasātsvadanācca svasaṁvidaḥ| tataścinmayatāmāgāddhema nūpuratāmiva || 55 ||

Because of long, sustained inquiry, and from tasting his own awareness, his mind then became one with pure consciousness, the way gold takes the shape of an anklet.

लंबी खोज और अपनी ही चेतना का स्वाद चखने के कारण, उसका मन अब शुद्ध चेतना के रूप में बदल गया, जैसे सोना ढलकर पायल बन जाता है।

5.54.56

चित्तत्वमथ संत्यज्य चित्तं चित्तत्त्वतां गतम्। अन्यदेव बभूवाशु पङ्कः कुम्भस्थितो यथा॥ ५६॥

cittatvamatha saṃtyajya cittaṃ cittattvatāṃ gatam | anyadeva babhūvāśu paṁkaḥ kumbhasthito yathā || 56 ||

Then the mind gave up being ordinary mind and reached the true nature of consciousness; it quickly became something altogether different, the way soft mud becomes a pot.

फिर मन ने अपना सामान्य मन होने का स्वभाव छोड़कर चेतना के असली स्वरूप को पा लिया; वह तुरंत बिलकुल कुछ और बन गया, जैसे नरम मिट्टी घड़ा बन जाती है।

5.54.57

चेत्यं संत्यज्य चिच्छुद्धा चित्सामान्यमथाययौ। त्यक्तवीच्यादिभेदोऽब्धिर्वाःसामान्यमिवैकधीः॥ ५७॥

cetyaṃ saṃtyajya cicchuddhā citsāmānyamathāyayau | tyaktavīcyādibhedo'bdhirvāḥsāmānyamivaikadhīḥ || 57 ||

Giving up all objects it perceived, pure consciousness reached universal consciousness, the way an ocean gives up the differences of its waves and becomes plain water everywhere, as if it were a single, undivided mind.

हर देखी हुई चीज़ को छोड़कर, शुद्ध चेतना अब सर्वव्यापी चेतना बन गई, जैसे समुद्र अपनी लहरों का भेद छोड़कर हर जगह एक जैसा पानी बन जाता है, मानो वह एक ही अखंड मन हो।

5.54.58

त्यक्तभूतौघमननं ततो विश्वंभरं महत्। चिदाकाशं ततः शुद्धं सोऽभवद्बोधमागतः ॥ ५८ ॥

tyaktabhūtaughamananaṃ tato viśvaṃbharaṃ mahat | cidākāśaṃ tataḥ śuddhaṃ so'bhavadbodhamāgataḥ || 58 ||

Giving up the whole mass of elements and all thinking, he became the vast, all-sustaining whole, then pure space made of consciousness; he had reached awakening.

समस्त तत्वों और हर विचार को छोड़कर, वह विशाल, सबको धारण करने वाला सत्य बन गया, फिर चेतना का शुद्ध आकाश बन गया; वह जागृति को प्राप्त हो गया।

5.54.59

तत्र प्रापदथानन्दं दृश्यदर्शनवर्जितम्। अनन्तमुत्तमास्वादं रसायनमिवार्णवम् ॥ ५९ ॥

tatra prāpadathānandaṃ dṛśyadarśanavarjitam | anantamuttamāsvādaṃ rasāyanamivārṇavaṃ || 59 ||

There, he then attained bliss, free from the seeing of anything seen, endless, of the finest taste, like an ocean of the elixir of life.

वहाँ उसे आनंद प्राप्त हुआ, जो किसी दृश्य को देखने से मुक्त था, अनंत था, सबसे उत्तम स्वाद वाला था, मानो अमृत का समुद्र हो।

5.54.60

शरीरात्समवेतोऽसौ कामप्यवनिमागतः। सत्तासामान्यरूपात्मा बभूवानन्दसागरः ॥ ६० ॥

śarīrātsamaveto'sau kāmapyavanimāgataḥ | sattāsāmānyarūpātmā babhūvānandasāgaraḥ || 60 ||

Free of the body now, he had reached some state beyond words; his self was now simply pure existence itself, and he became an ocean of bliss.

अब शरीर से अलग होकर, वह किसी ऐसी अवस्था में पहुँच गया जिसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता; उसका स्वरूप अब केवल शुद्ध सत्ता ही था, और वह आनंद का सागर बन गया।

5.54.61

द्विजचेतनहंसोऽसावानन्दसरसि स्थितः। अतिष्ठच्छरदच्छे खे कलापूर्ण इवोडुपः ॥ ६१ ॥

dvijacetanahaṃso'sāvānandasarasi sthitaḥ | atiṣṭhaccharadacche khe kalāpūrṇa ivouḍupaḥ || 61 ||

The brahmin's consciousness, like a swan, rested on the lake of bliss; he remained there like the full moon standing in a clear autumn sky.

उस ब्राह्मण की चेतना, हंस के समान, आनंद के सरोवर पर टिकी रही; वह वहाँ ऐसे बना रहा जैसे शरद ऋतु के साफ़ आकाश में पूर्ण चाँद बना रहता है।

5.54.62

बभूवावातदीपाभो लिपिकर्मार्पितोपमः। वीतवीच्यम्बुधिप्रख्यो वृष्टमूकाम्बुदस्थितिः ॥ ६२ ॥

babhūvāvātadīpābho lipikarmārpitopamaḥ | vītavīcyambudhiprakhyaḥ vṛṣṭamūkāmbudasthitiḥ || 62 ||

He became still, like a lamp's flame undisturbed by any wind, like a figure fixed by a painter's hand, like an ocean without a single wave, like a rain-cloud gone silent and motionless after it has poured down all its rain.

वह ऐसा स्थिर हो गया जैसे बिना हवा के दीये की लौ, जैसे चित्रकार के हाथ से बना कोई स्थिर चित्र, जैसे बिना लहरों वाला समुद्र, जैसे बरस चुका और अब चुप, निश्चल बादल।

5.54.63

अथैतस्मिन्महालोके तिष्ठन्नुद्दालकश्चिरम्। अपश्यद्व्योमगान्सिद्धानमरानपि भूरिशः ॥ ६३ ॥

athaitasminmahāloke tiṣṭhannuddālakaściram | apaśyadvyomagānsiddhānamarānapi bhūriśaḥ || 63 ||

Then, staying long in that great world, Uddalaka saw many perfected beings and gods moving through the sky.

फिर उस विशाल लोक में लंबे समय तक रहते हुए, उद्दालक ने आकाश में विचरण करते हुए कई सिद्धों और देवताओं को देखा।

5.54.64

आगतानि विचित्राणि सिद्धिजालानि चाभितः। शक्रार्कपददातॄणि नीरन्ध्राण्यप्सरोगणैः ॥ ६४ ॥

āgatāni vicitrāṇi siddhijālāni cābhitaḥ | śakrārkapadadātṛṇi nīranndhrāṇyapsarogaṇaiḥ || 64 ||

Strange and wonderful powers came to him from every side, powers that could grant the rank of Indra or of the Sun, crowded thick with troupes of heavenly dancers.

चारों ओर से उसके पास अनोखी और विचित्र सिद्धियाँ आईं, जो इंद्र या सूर्य जैसा पद दे सकती थीं, और अप्सराओं के समूहों से खचाखच भरी थीं।

5.54.65

तानि नादरयांचक्रे सिद्धिवृन्दानि स द्विजः। गम्भीरमतिरक्षुब्धो विलासानिव शैशवान्॥ ६५ ॥

tāni nādarayāñcakre siddhivṛndāni sa dvijaḥ | gambhīramatirakṣubdho vilāsāniva śaiśavān || 65 ||

That brahmin, deep and unshaken in mind, did not care for that crowd of powers, as if it were mere child's play.

वह ब्राह्मण, गंभीर और अडोल मन वाला, उन सिद्धियों की भीड़ को कुछ नहीं समझता था, मानो वह बचपन का खेल हो।

5.54.66

सिद्धिसार्थमनादृत्य तस्मिन्नानन्दमन्दिरे। अतिष्ठदथ षण्मासान्दिक्तटेऽर्क इवोत्तरे ॥ ६६ ॥

siddhisārthamanādṛtya tasminnānandamandire | atiṣṭhadatha ṣaṇmāsāndiktaṭe'rka ivottare || 66 ||

Ignoring the whole crowd of powers, he stayed six months in that temple of bliss, like the sun lingering at the northern edge of the sky.

सिद्धियों की पूरी भीड़ की उपेक्षा करके, वह उस आनंद-मंदिर में छह महीने तक ठहरा रहा, जैसे सूर्य उत्तर दिशा की क्षितिज-सीमा पर ठहरा रहता है।

5.54.67

जीवन्मुक्तपदं तत्तद्यावत्संप्राप्तवान्द्विजः। तत्र सिद्धाः सुराः साध्याः स्थिता ब्रह्महरादयः ॥ ६७ ॥

jīvanmuktapadaṃ tattadyāvatsaṃprāptavāndvijaḥ | tatra siddhāḥ surāḥ sādhyāḥ sthitā brahmaharādayaḥ || 67 ||

The brahmin reached, as fully as it can be reached, the state of one who is free while still alive; there dwelt siddhas, gods, sadhyas, and others such as Brahma and Hara.

उस ब्राह्मण ने, जितना पाया जा सकता है उतना, जीवित रहते हुए ही मुक्त होने की अवस्था पा ली; वहाँ सिद्ध, देवता, साध्य, और ब्रह्मा-हर जैसे देवता निवास करते थे।

5.54.68

आनन्दे परिणामित्वादनानन्दपदं गतः । नानन्दे न निरानन्दे ततस्तत्संविदाबभौ ॥ ६८ ॥

ānande pariṇāmitvādanānandapadaṃ gataḥ | nānande na nirānande tatastatsaṃvidābabhau || 68 ||

Because even bliss can change, he passed beyond the state of bliss to what is neither bliss nor the absence of bliss; there he simply shone as pure awareness.

क्योंकि आनंद भी बदलता रहता है, इसलिए वह आनंद की अवस्था से आगे उस अवस्था में चला गया जो न आनंद है न आनंद का अभाव; वहाँ वह केवल शुद्ध चेतना के रूप में चमकता रहा।

5.54.69

क्षणं वर्षसहस्रं वा तत्र लब्ध्वा स्थितिं मनः । रतिमेति न भोगौघे दृष्टस्वर्ग इवावनौ ॥ ६९ ॥

kṣaṇaṃ varṣasahasraṃ vā tatra labdhvā sthitiṃ manaḥ | ratimeti na bhogaughe dṛṣṭasvarga ivāvanau || 69 ||

Having found rest there, whether for a moment or a thousand years, the mind takes no delight in the flood of pleasures, like one who has seen heaven takes no delight on earth.

वहाँ चाहे एक पल के लिए स्थिरता मिले या हज़ार साल के लिए, मन फिर सांसारिक सुखों की भरमार में आनंद नहीं पाता, जैसे स्वर्ग देख चुका व्यक्ति धरती पर आनंद नहीं पाता।

5.54.70

तत्पदं सा गतिः शान्ता तच्छ्रेयः शाश्वतं शिवम् । तत्र विश्रान्तिमाप्तस्य भूयो नो बाधते भ्रमः ॥ ७० ॥

tatpadaṃ sā gatiḥ śāntā tacchreyaḥ śāśvataṃ śivam | tatra viśrāntimāptasya bhūyo no bādhate bhramaḥ || 70 ||

That state is the peaceful goal, that is the eternal, auspicious good; for one who has found rest there, confusion troubles him no more.

वही अवस्था शांत लक्ष्य है, वही सदा रहने वाला और कल्याणकारी सुख है; जिसने वहाँ विश्राम पा लिया, उसे फिर कभी भ्रम परेशान नहीं करता।

5.54.71

तत्पदं साधवः प्राप्य दृश्यदृष्टिमिमां पुनः । नायान्ति खदिरोद्यानं लब्धचैत्ररथा इव ॥ ७१ ॥

tatpadaṃ sādhavaḥ prāpya dṛśyadṛṣṭimimāṃ punaḥ | nāyānti khadirodyānaṃ labdhacaitrarathā iva || 71 ||

Reaching that state, good people do not come back again to look at this visible world, just as those who have reached the garden called Chaitraratha do not go back to a garden of thorny khadira trees.

उस पद को पाकर अच्छे लोग फिर से इस दिखने वाले संसार को देखने नहीं लौटते, जैसे चैत्ररथ नाम के बगीचे को पा चुके लोग फिर कांटेदार खैर के पेड़ों के बगीचे में नहीं जाते।

5.54.72

तां महानन्दपदवीं चित्तादासाद्य देहिनः । दृश्यं न बहु मन्यन्ते राजानो दीनतामिव ॥ ७२ ॥

tāṃ mahānandapadavīṃ cittādāsādya dehinḥ | dṛśyaṃ na bahu manyante rājāno dīnatāmiva || 72 ||

Reaching that path of great joy through the mind, living beings stop caring much for this visible world, just as kings do not care much about poverty.

मन से उस बड़े आनंद के मार्ग तक पहुंचकर, जीव इस दिखने वाले संसार को ज्यादा महत्व नहीं देते, जैसे राजा गरीबी को ज्यादा महत्व नहीं देते।

5.54.73

चेतस्तत्पदविश्रान्तं बुद्धं दृश्यदशां प्रति । कदर्थाद्बोधमायाति नायात्येवाथवानघ ॥ ७३ ॥

cetastatpadaviśrāntaṃ buddhaṃ dṛśyadaśāṃ prati | kadarthādbodhamāyāti nāyātyevāthavānagha || 73 ||

O sinless one, once the mind comes to rest in that state and wakes up, it turns toward this visible world only with great difficulty, or else it does not turn toward it at all.

हे निष्पाप, जब मन उस पद में टिककर जाग जाता है, तो वह इस दिखने वाले संसार की ओर बड़ी मुश्किल से ही मुड़ता है, या फिर बिल्कुल नहीं मुड़ता।

5.54.74

उद्दालकोऽत्र षण्मासान्दूरोत्सारितसिद्धिभूः । उषित्वोन्मिषितोम्भोदकोशादर्को मधाविव ॥ ७४ ॥

uddālako'tra ṣaṇmāsāndūrotsāritasiddhibhūḥ | uṣitvonmiṣitombhodakośādarko madhāviva || 74 ||

Here Uddalaka stayed six months, having already set aside any wish for special powers, and after this stay he shone like the sun breaking out of a parted cloud in spring.

यहां उद्दालक छह महीने तक रहे, किसी विशेष सिद्धि या शक्ति की चाह को पहले ही दूर छोड़ चुके थे, और इतने दिन रहने के बाद वे वसंत में बादल के बीच से निकलते सूरज की तरह चमक उठे।

5.54.75

ददर्श संप्रबुद्धात्मा पुनः परमतेजसः । प्रणामलालसाः स्निग्धाश्चन्द्रविम्बवपुर्धराः ॥ ७५ ॥

dadarśa saṃprabuddhātmā punaḥ paramatejasaḥ | praṇāmalālasāḥ snigdhāścandravimvavapurdharāḥ || 75 ||

With his mind now fully awake, he then saw again beings of the highest brightness, eager to bow to him, full of warmth, their bodies like the round moon.

अपने मन को पूरी तरह जागा हुआ पाकर, उन्होंने फिर से बड़े तेजवाले प्राणियों को देखा, जो उन्हें प्रणाम करने के लिए उत्सुक थे, स्नेह से भरे हुए थे, और जिनके शरीर गोल चांद जैसे थे।

5.54.76

रमणीर्गौरमन्दाररेणुभ्रमरचामराः । स्फुरत्पताकापटला द्युविमानपरम्पराः ॥ ७६ ॥

ramaṇīrgouramandārareṇubhramaracāmarāḥ | sphuratpatākāpaṭalā dyuvimānaparamparāḥ || 76 ||

He also saw lovely women holding fly whisks that looked like bees swarming over the pollen of white coral-tree flowers, and rows of heavenly flying chariots with clusters of banners fluttering on them.

उन्होंने सुंदर स्त्रियों को भी देखा, जो सफेद मंदार फूलों के पराग पर मंडराते भौंरों जैसे चंवर लिए हुए थीं, और आकाश में उड़ने वाले विमानों की पंक्तियां देखीं, जिन पर झंडों के समूह लहरा रहे थे।

5.54.77

अस्मदादीन्मुनीन्दर्भपवित्राङ्ककराम्बुजान् । विद्याधरीभिर्वलितान्विद्याधरपतीनपि ॥ ७७ ॥

asmadādīnmūnīndrabhapavitrāṅkakarāmbujān | vidyādharībhirvalitānvidyādharapatīnapi || 77 ||

He saw sages like himself, their lotus hands marked with rings of sacred darbha grass, surrounded by Vidyadhara women, and even the lords of the Vidyadharas.

उन्होंने अपने जैसे मुनियों को देखा, जिनके कमल जैसे हाथों में पवित्र दर्भ घास के छल्ले पहने हुए थे, जो विद्याधर स्त्रियों से घिरे हुए थे, और साथ ही विद्याधरों के राजाओं को भी देखा।

5.54.78

ते तमूचुर्महात्मानमुद्दालकमुनिं तथा । प्रसादेन प्रणामान्नो भगवन्नवलोकय ॥ ७८ ॥

te tamūcurmahātmānamuddālakamuniṃ tathā | prasādena praṇāmānno bhagavannavalokaya || 78 ||

They said to that great soul, the sage Uddalaka: lord, look kindly on our bows to you.

उन्होंने उस महान आत्मा, मुनि उद्दालक से कहा, हे भगवन, कृपा करके हमारे प्रणाम को स्वीकार कीजिए।

5.54.79

आरुह्येदं विमानं त्वमेहि त्रैविष्टपं पुरम् । स्वर्ग एव हि सीमान्तो जगत्संभोगसंपदाम् ॥ ७९ ॥

āruhyaidaṃ vimānaṃ tvamehi traiviṣṭapaṃ puram | svarga eva hi sīmānto jagatsaṃbhogasaṃpadām || 79 ||

Climb onto this flying chariot and come with us to the city of heaven, for heaven alone is the farthest limit of all the pleasures and riches of this world.

इस विमान पर चढ़िए और हमारे साथ स्वर्ग की नगरी में चलिए, क्योंकि स्वर्ग ही इस संसार के सभी सुखों और संपत्तियों की सबसे ऊंची सीमा है।

5.54.80

आकल्पमुचितान्भुङ्क्ष्व भोगानभिमतान्विभो । स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः ॥ ८० ॥

ākalpamucitānbhuṅkṣva bhogānabhimatānvibho | svargādiphalabhogārthamevāśeṣatapaḥkriyāḥ || 80 ||

Enjoy, O mighty one, the fitting pleasures you desire, until the end of this world age, for all acts of penance are done only to enjoy the fruit of heaven and things like it.

हे शक्तिशाली, इस कल्प के अंत तक अपनी इच्छा के अनुसार उचित सुखों का आनंद लीजिए, क्योंकि सारी तपस्या केवल स्वर्ग जैसे फलों को भोगने के लिए ही की जाती है।

5.54.81

हारचामरधारिण्यो विद्याधरवराङ्गनाः । पश्येमास्त्वमुपासीनाः करिण्यः करिणं यथा ॥ ८१ ॥

hāracāmaradhāriṇyo vidyādharavarāṅganāḥ | paśyemāstvamupāsīnāḥ kariṇyaḥ kariṇaṃ yathā || 81 ||

Look, these finest Vidyadhara women wear necklaces and hold fly whisks, and they wait on you the way female elephants wait on a male elephant.

देखिए, ये सबसे सुंदर विद्याधर स्त्रियां हार पहने और चंवर लिए हुए हैं, और ये आपकी सेवा उसी तरह करती हैं जैसे हथिनियां हाथी की सेवा करती हैं।

5.54.82

कामो धर्मार्थयोः सारः कामसाराः सुयोषितः । वसन्त इव मञ्जर्यः स्वर्ग एव भवन्ति ताः ॥ ८२ ॥

kāmo dharmārthayoḥ sāraḥ kāmasārāḥ suyoṣitaḥ | vasanta iva mañjaryaḥ svarga eva bhavanti tāḥ || 82 ||

Pleasure is the true essence of duty and wealth, and lovely women are the true essence of pleasure, and like blossoms that come only in spring, such women are found only in heaven.

सुख ही धर्म और अर्थ का असली सार है, और सुंदर स्त्रियां ही सुख का असली सार हैं, और जैसे फूल केवल वसंत में खिलते हैं, वैसे ही ऐसी स्त्रियां केवल स्वर्ग में मिलती हैं।

5.54.83

एवं कथयतः सर्वानतिथीनित्यसौ मुनिः । परिपूज्य यथान्यायमतिष्ठद्गतसंभ्रमम् ॥ ८३ ॥

evaṃ kathayataḥ sarvānatithīnityasau muniḥ | paripūjya yathānyāyamatiṣṭhagatasaṃbhramam || 83 ||

When all the guests had spoken like this, that sage honoured each one properly and then stood there calm, without any excitement.

जब सभी अतिथि इस तरह बोल चुके, तो उस मुनि ने सबका उचित सम्मान किया और फिर बिना किसी उत्साह के शांत खड़े रहे।

5.54.84

नाभ्यनन्दन्न तत्याज तां विभूतिं स धीरधीः । भो सिद्धा व्रजतेत्युक्त्वा स्वव्यापारपरोऽभवत् ॥ ८४ ॥

nābhyanandann na tatyāja tāṃ vibhūtiṃ sa dhīradhīḥ | bho siddhā vrajatetyuktvā svavyāpāraparo'bhavat || 84 ||

That steady-minded sage neither welcomed nor pushed away that offered glory. He said, go now, you accomplished ones, and turned back to his own work.

उस स्थिर बुद्धि वाले मुनि ने न तो उस दी गई शान का स्वागत किया और न उसे ठुकराया। उन्होंने कहा, अब तुम जाओ, सिद्धो, और अपने काम में लग गए।

5.54.85

अथ स्वधर्मनिरतं भोगेष्वरतिमागतम् । तमुपास्य ययुः सिद्धा दिनैः कतिपयैः स्वयम् ॥ ८५ ॥

atha svadharmaniratam bhogeṣvaratimāgatam | tamupāsya yayuḥ siddhā dinairkatipayaiḥ svayam || 85 ||

Then, after paying homage to him, who stayed devoted to his own duty and had lost all liking for pleasures, those accomplished beings themselves left after a few days.

फिर, जो अपने ही कर्तव्य में लगे हुए थे और जिनकी सुखों में कोई रुचि नहीं रह गई थी, उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे सिद्ध लोग खुद ही कुछ दिनों में वहां से चले गए।

5.54.86

जीवन्मुक्तः स च मुनिर्विजहार यथासुखम् । यावदिच्छं वनान्तेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ ८६ ॥

jīvanmuktaḥ sa ca munirvijahāra yathāsukham | yāvadicchaṃ vanānteṣu munīnāmāśrameṣu ca || 86 ||

That sage, freed while still alive, then wandered about happily, wherever he wished, in the edges of forests and in the hermitages of sages.

जीते जी मुक्त हो चुके उस मुनि ने फिर जहां चाहा वहां सुख से घूमा, जंगलों के किनारों में और मुनियों के आश्रमों में।

5.54.87

मेरुमन्दरकैलासहिमवद्विन्ध्यसानुषु । द्वीपोपवनदिक्कुञ्जजङ्गलारण्यभूमिषु ॥ ८७ ॥

merumandarakailāsahimavadvindhyasānuṣu | dvīpopavanadikkuñjajaṅgalāraṇyabhūmiṣu || 87 ||

He wandered too on the peaks of Meru, Mandara, Kailasa, Himavat and Vindhya, and through islands, gardens, groves in every direction, wild lands and forests.

वे मेरु, मंदार, कैलास, हिमवत और विंध्य पर्वतों की चोटियों पर भी घूमे, और द्वीपों, बगीचों, हर दिशा के कुंजों, जंगली भूमियों और वनों में भी घूमे।

5.54.88

ततःप्रभृति संप्राप्तपदमुद्दालको द्विजः । गुहासु गिरिकुक्षीणामवसद्ध्यानलीलया ॥ ८८ ॥

tataḥprabhṛti saṃprāptapadamuddālako dvijaḥ | guhāsu girikuksīṇāmavasaddhyānalīlayā || 88 ||

From then on, Uddalaka the twice-born, having reached that state, lived in mountain caves, treating his meditation like a game.

उसके बाद से, वह पद पा चुके द्विज उद्दालक पहाड़ों की गुफाओं में रहे, और उनका ध्यान मानो एक खेल जैसा हो गया था।

5.54.89

कदाचिदह्ना मासेन कदाचिद्वत्सरेण च । कदाचिद्वत्सरौघेण ध्यानासक्तो व्यबुध्यत ॥ ८९ ॥

kadācidahnā māsena kadācidvatsareṇa ca | kadācidvatsaraugheṇa dhyānāsakto vyabudhyata || 89 ||

Sometimes he woke from his meditation after a day, sometimes after a month, sometimes after a year, and sometimes only after many years passed, so deep was he sunk in it.

कभी वे एक दिन बाद ध्यान से जागते, कभी एक महीने बाद, कभी एक साल बाद, और कभी तो कई सालों के बाद ही जागते, इतने गहरे वे ध्यान में डूबे रहते थे।

5.54.90

उद्दालकस्तदारभ्य व्यवहारपरोऽपि सन् । सुसमाहित एवासौ चित्तत्त्वैकत्वमागतः ॥ ९० ॥

uddālakastadārabhya vyavahāraparo'pi san | susamāhita evāsau cittattvaikatvamāgataḥ || 90 ||

From that time on, Uddalaka, even while busy with worldly matters, stayed always well collected in mind, having reached oneness with the true nature of the mind.

उस समय से, उद्दालक सांसारिक कामों में लगे रहने पर भी हमेशा मन से पूरी तरह स्थिर रहते थे, क्योंकि वे मन के असली स्वभाव के साथ एक हो चुके थे।

5.54.91

चित्तत्त्वैकघनाभ्यासान्महाचित्त्वमुपेत्य सः । बभूव सर्वत्र समस्तेजः सौरमिवावनौ ॥ ९१ ॥

cittattvaikaghanābhyāsānmahācittvamupetya saḥ | babhūva sarvatra samastejaḥ sauramivāvanau || 91 ||

By steady practice of oneness with the true nature of mind, he reached the state of the great mind, and became everywhere of equal brightness, like sunlight spread over the earth.

मन के असली स्वभाव में एकता के लगातार अभ्यास से, वे महान चित्त की अवस्था तक पहुंच गए, और हर जगह समान तेज वाले हो गए, जैसे धरती पर फैली हुई सूरज की रोशनी।

5.54.92

चित्सामान्यचिराभ्यासात्सत्तासामान्यमेत्य सः । दृश्येऽस्मिंश्चित्ररविवन्नास्तमायान्न चोदयम् ॥ ९२ ॥

citsāmānyacirābhyāsātsattāsāmānyametya saḥ | dṛśye'smiṃścitraravivannāstamāyānna codayam || 92 ||

By long practice of that same one awareness everywhere, he reached a being that is the same everywhere, and in this visible world he was like a sun painted in a picture, neither setting nor rising.

हर जगह एक ही चेतना के लंबे अभ्यास से, वे एक ऐसी सत्ता तक पहुंच गए जो हर जगह एक समान है, और इस दिखने वाले संसार में वे चित्र में बने सूरज की तरह हो गए, जो न कभी डूबता है न कभी उगता है।

5.54.93

शमपरपदलाभप्राप्तिसंशान्तचेता गलितजननपाशः क्षीणसंदेहदोलः । शरदि खमिव शान्तं व्याततं चोर्जितं च स्फुटममलमचेतस्तद्वपुः संबभार ॥ ९३ ॥

śamaparapadalābha-prāptisaṃśāntacetā galitajananapāśaḥ kṣīṇasandehadolaḥ | śaradi khamiva śāntaṃ vyātataṃ corjitaṃ ca sphuṭamamalamacetastadvapuḥ sambabhāra || 93 ||

With his mind fully calmed by reaching that highest state of peace, the bond of birth fallen away, the swing of doubt worn thin, he carried that body of his, calm like the autumn sky, wide, strong, clear, spotless, and free of ordinary thought.

उस सबसे ऊंची शांति की अवस्था को पाकर जिनका मन पूरी तरह शांत हो गया था, जिनके जन्म का बंधन टूट चुका था, जिनके संदेह का झूलना खत्म हो चुका था, उन्होंने अपने उस शरीर को धारण किया जो शरद ऋतु के आकाश जैसा शांत, फैला हुआ, मजबूत, साफ, निर्मल और सामान्य सोच से परे था।

Chapter 55

5.55.1

श्रीराम उवाच । आत्मज्ञानदिनैकार्क मत्संशयतृणानल । अज्ञानदाहशीतांशो सत्तासामान्यमीश किम् ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | ātmajñānadinaikārka matsaṃśayatṛṇānala | ajñānadāhaśītāṃśo sattāsāmānyamīśa kim || 1 ||

Sri Rama said: You are the one sun of the day of true self-knowledge, the fire that burns up the dry grass of my doubt, the cool moon that soothes the burning heat of ignorance. Lord, what is the sameness of being?

श्री राम ने कहा: आप आत्मज्ञान के दिन के अकेले सूरज हैं, मेरे संदेह की सूखी घास को जलाने वाली आग हैं, अज्ञान की जलन को शांत करने वाला ठंडा चाँद हैं। हे स्वामी, यह सब में एक ही सत्ता क्या है?

5.55.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । यदा संक्षीयते चित्तमभावात्यन्तभावनात् । चित्सामान्यस्वरूपस्य सत्तासामान्यता तदा ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yadā saṃkṣīyate cittamabhāvātyantabhāvanāt | citsāmānyasvarūpasya sattāsāmānyatā tadā || 2 ||

Sri Vasishtha said: When a person dwells so long and so completely on the thought that nothing exists that the mind itself wastes away, then, because his true nature is that same one consciousness, this is the sameness of being.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जब कोई इतनी देर और इतनी गहराई से यह सोचता रहे कि कुछ भी नहीं है कि उसका मन खुद ही घिस जाए, तब, क्योंकि उसका असली रूप वही एक चेतना है जो हर जगह एक-सी है, यही सब में एक ही सत्ता है।

5.55.3

नूनं चेत्यांशरहिता चिद्यदात्मनि लीयते । असद्रूपवदत्यच्छा सत्तासामान्यता तदा ॥ ३ ॥

nūnaṃ cetyāṃśarahitā cidyadātmani līyate | asadrūpavadatyacchā sattāsāmānyatā tadā || 3 ||

Indeed, when awareness, with no trace of any object left in it, melts back into itself and becomes so utterly clear that it seems as if nothing were there at all, that is the sameness of being.

सचमुच, जब चेतना में किसी वस्तु का कोई अंश नहीं बचता और वह खुद में ही घुलकर इतनी साफ़ हो जाती है कि लगे मानो कुछ है ही नहीं, तो यही सब में एक ही सत्ता है।

5.55.4

यदा सर्वमिदं किंचित्सबाह्याभ्यन्तरात्मकम् । अपलप्य वसेच्चेतः सत्तासामान्यता तदा ॥ ४ ॥

yadā sarvamidaṃ kiṃcitsabāhyābhyantarātmakam | apalapya vaseccetaḥ sattāsāmānyatā tadā || 4 ||

When the mind sets aside everything that exists, everything outside and everything inside, and simply rests there, that is the sameness of being.

जब मन बाहर और भीतर की हर चीज़ को परे रखकर बस वहीं ठहर जाता है, तो यही सब में एक ही सत्ता है।

5.55.5

यदा सर्वाणि दृश्यानि सत्तासामान्यवेदनम् । स्वरूपेण स्वरूपाभं सत्तासामान्यता तदा ॥ ५ ॥

yadā sarvāṇi dṛśyāni sattāsāmānyavedanam | svarūpeṇa svarūpābhaṃ sattāsāmānyatā tadā || 5 ||

When everything that is seen appears, in its own true nature, just like that very same nature, and this is what knowing the sameness of being feels like, that is the sameness of being.

जब जो कुछ भी दिखता है, वह अपने असली रूप में उसी एक जैसे रूप में दिखे, और यही सब में एक ही सत्ता को जानना है, तो यही सब में एक ही सत्ता है।

5.55.7

दृष्टिरेषा हि परमा सदेहादेहयोः सदा । मुक्तयोः संभवत्येव तुर्यातीतपदोपमा ॥ ७ ॥

dṛṣṭireṣā hi paramā sadehādehayoḥ sadā | muktayoḥ saṃbhavatyeva turyātītapadopamā || 7 ||

This highest way of seeing comes only to people who are always free, whether they still have a body or not, and it is like the state that lies even beyond the fourth state of awareness.

यह सबसे ऊँची दृष्टि केवल उन्हीं को मिलती है जो हमेशा मुक्त हैं, चाहे उनका शरीर हो या न हो, और यह उस अवस्था जैसी है जो चौथी अवस्था से भी आगे है।

5.55.8

व्युत्थितस्य भवत्येषा समाधिस्थस्य चानघ । ज्ञस्य केवलमज्ञस्य न भवत्येव बोधजा ॥ ८ ॥

vyutthitasya bhavaty eṣā samādhisthasya cānagha | jñasya kevalam ajñasya na bhavaty eva bodhajā || 8 ||

Sinless Rama, this insight, born only of true understanding, comes only to someone who knows the truth, whether he is sitting deep in meditation or has come back out of it into ordinary life. It never comes to someone who does not know.

हे निष्पाप राम, यह सूझ, जो सच्चे ज्ञान से ही जन्म लेती है, केवल उसी को मिलती है जो सच जानता है, चाहे वह गहरी समाधि में बैठा हो या उससे बाहर आकर सामान्य जीवन में हो। जो नहीं जानता, उसे यह कभी नहीं मिलती।

5.55.9

अस्यां दृशि स्थिताः सर्वे जीवन्मुक्ता महाशयाः । सिद्धा रसा इव भुवि व्योमवीथ्यामिवानिलाः ॥ ९ ॥

asyāṃ dṛśi sthitāḥ sarve jīvanmuktā mahāśayāḥ | siddhā rasā iva bhuvi vyomavīthyām ivānilāḥ || 9 ||

All the great souls who are set free while still alive stand fixed in this vision, like refined mercury hidden in the earth, like the wind moving through the paths of the sky.

जो महान आत्माएँ जीते-जी मुक्त हो चुकी हैं, वे सब इसी दृष्टि में टिकी रहती हैं, जैसे धरती में छिपा हुआ शुद्ध पारा, जैसे आकाश के मार्गों में बहती हवा।

5.55.10

अस्मत्प्रभृतयः सर्वे नारदाद्याश्च राघव । ब्रह्मविष्ण्वीश्वराद्याश्च दृष्टावस्यां व्यवस्थिताः ॥ १० ॥

asmatprabhṛtayaḥ sarve nāradādyāśca rāghava | brahmaviṣṇvīśvarādyāśca dṛṣṭāvasyāṃ vyavasthitāḥ || 10 ||

Raghava, all of us, starting with me, and Narada and the others, and Brahma, Vishnu, Shiva and the others too, all stand fixed in this same vision.

हे राघव, हम सब, मुझसे शुरू करके, नारद आदि, और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि भी, सब इसी दृष्टि में टिके हैं।

5.55.11

एतामालम्ब्य पदवीं समस्तभयनाशिनीम्। उद्दालकोऽसाववसद्यावदिच्छं जगद्गृहे ॥ ११ ॥

etāmālambya padavīṃ samastabhayanāśinīm | uddālako'sāvavasadyāvadicchaṃ jagadgṛhe || 11 ||

Relying on this path, which destroys every fear, Uddalaka lived on in this world, as if it were his own house, for as long as he chose.

इसी राह के सहारे, जो हर डर को मिटा देती है, उद्दालक जब तक चाहा तब तक इस संसार रूपी घर में रहा।

5.55.12

अथ कालेन बहुना बुद्धिस्तस्य बभूव ह। विदेहमुक्तस्तिष्ठामि देहं त्यक्त्वेति निश्चला ॥ १२ ॥

atha kālena bahunā buddhistasya babhūva ha | videhamuktastiṣṭhāmi dehaṃ tyaktveti niścalā || 12 ||

Then, after a long time, a firm thought arose in him: having given up the body, I will remain free, without a body.

फिर बहुत समय बाद उसके मन में यह पक्का विचार उठा: मैं शरीर छोड़कर बिना शरीर के ही मुक्त रहूँगा।

5.55.13

एवं चिन्तितवानद्रेर्गुहायां पल्लवासने। बद्धपद्मासनस्तस्थावर्धोन्मीलितलोचनः ॥ १३ ॥

evaṃ cintitavānadrerguhāyāṃ pallavāsane | baddhapadmāsanastasthāvardhonmīlitalocanaḥ || 13 ||

Thinking this, he sat down in a mountain cave, on a seat of leaves, locked into the lotus posture, his eyes half open.

ऐसा सोचकर वह पहाड़ की एक गुफा में पत्तों के आसन पर पद्मासन लगाकर बैठ गया, उसकी आँखें आधी खुली थीं।

5.55.14

संयम्य गुदसंरोधाद्द्वाराणि नव चेतसः। मात्रास्पर्शान्विचिन्वानो भावितस्वाङ्गचिद्धनः ॥ १४ ॥

saṃyamya gudasaṃrodhāddvārāṇi nava cetasaḥ | mātrāsparśānvicinvāno bhāvitasvāṅgaciddhanaḥ || 14 ||

He held the base of his body pressed shut and so closed the mind's nine doors, sorting through every sensation one by one, for he had already come to feel his own body as nothing but a solid mass of awareness.

उसने शरीर के निचले हिस्से को कसकर बंद कर मन के नौ द्वार रोक दिए, और एक-एक करके हर अनुभूति को परखने लगा, क्योंकि वह पहले से ही अपने शरीर को चेतना के एक ठोस पिंड जैसा महसूस करने लगा था।

5.55.15

संरुद्धप्राणपवनः समसंस्थानकन्धरः। तालुमूलतलालग्नजिह्वामूलो लसन्मुखः ॥ १५ ॥

saṃruddhaprāṇapavanaḥ samasaṃsthānakandharaḥ | tālumūlatalālagnajihvāmūlo lasanmukhaḥ || 15 ||

His breath was held still, his neck was straight and level, the root of his tongue was pressed to the root of his palate, and his face shone.

उसकी साँस थम गई थी, उसकी गर्दन सीधी और बराबर थी, उसकी जीभ की जड़ तालू की जड़ से सटी हुई थी, और उसका चेहरा चमक रहा था।

5.55.16

न बहिर्नान्तरे नाधो नोर्ध्वे नार्थे न शून्यके । संयोजितमनोदृष्टिर्दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ॥ १६ ॥

na bahirnāntare nādho nourdhe nārthe na śūnyake | saṃyojitamanodṛṣṭirdantairdantānasanspṛśan || 16 ||

Not outside, not inside, not below, not above, not on any object, not on emptiness, he held his mind and his gaze joined together as one, his teeth not touching each other.

न बाहर, न भीतर, न नीचे, न ऊपर, न किसी वस्तु पर, न शून्य पर, उसने अपने मन और अपनी नज़र को एक साथ जोड़ रखा था, और उसके दाँत आपस में नहीं छू रहे थे।

5.55.17

प्राणप्रवाहसंरोधसमः स्वच्छाननच्छविः । अङ्ग चित्संविदुत्तानरोमकण्टकिताङ्गभूः ॥ १७ ॥

prāṇapravāhasaṅrodhasamaḥ svacchānanacchaviḥ | aṅga cittasaṅviduttānaromakaṇṭakitāṅgabhūḥ || 17 ||

Steady now that the flow of his breath had stopped, his face bright and clear, Rama, the surface of his whole body stood in goosebumps from the touch of pure awareness.

साँस का बहाव रुकने से वह स्थिर हो गया था, उसका चेहरा साफ़ और उज्ज्वल था। हे राम, शुद्ध चेतना के स्पर्श से उसके पूरे शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए थे।

5.55.18

अङ्गचित्संविदाभ्यासाच्चित्सामान्यमुपाददे । तदभ्यासादवापान्तरानन्दस्पन्दमुत्तमम् ॥ १८ ॥

aṅgacitsaṅvidābhyāsāccitsāmānyamupādade | tadabhyāsādavāpāntarānandaspandamuttamam || 18 ||

From practicing this awareness of consciousness within the body, he took hold of the sameness of consciousness, and from that practice he obtained the highest inner wave of joy.

शरीर के भीतर इस चेतना के अभ्यास से उसने चेतना की समानता को पा लिया, और उस अभ्यास से उसे भीतर आनंद की सबसे ऊँची लहर मिली।

5.55.19

तदास्वादनतो लीनचित्सामान्यदशाक्रमम् । विश्वंभरमनन्तात्म सत्तासामान्यमाययौ ॥ १९ ॥

tadāsvādanato līnacitsāmānyadaśākramam | viśvaṃbharmanantātma sattāsāmānyamāyayau || 19 ||

By tasting that joy, passing stage by stage through a state where even the sameness of consciousness melted away, he reached, Rama of boundless self, the sameness of being that holds up the whole universe.

उस आनंद को चखते हुए, एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाते हुए, जिसमें चेतना की समानता भी घुल गई, वह, हे अनंत आत्मा वाले राम, उस सब में एक ही सत्ता को पा गया जो पूरे विश्व को धारण करती है।

5.55.20

तस्थौ समसमाभोगः परां विश्रान्तिमागतः । अनानन्दसमानन्दमुग्धमुग्धमुखद्युतिः ॥ २० ॥

tasthau samasamābhogaḥ parāṃ viśrāntimāgataḥ | anānandasamānandamugdhamugdhamukhadyutiḥ || 20 ||

He remained perfectly full and even, having come to rest in the highest peace, his joy no different from having no joy at all, his face glowing with a captivated, wondering light.

वह पूरी तरह से संतुलित और भरा हुआ रहा, सबसे ऊँची शांति को पा चुका था। उसका आनंद मानो न-आनंद जैसा ही था, और उसका चेहरा एक मोहक, चकित चमक से दमक रहा था।

5.55.21

संशान्तानन्दपुलकः पदं प्राप्यामलं गतः । चिरकालपरिक्षीणमननादिभवभ्रमः ॥ २१ ॥

saṃśāntānandapulakaḥ padaṃ prāpyāmalaṃ gataḥ | cirakālaparikṣīṇamananādibhavabhramaḥ || 21 ||

His body's thrill of joy now calm, he reached the flawless state; the illusion of worldly life, thinking included, had at last, after so long a time, worn itself completely away.

आनंद का रोमांच अब शांत हो गया था, वह उस निर्मल अवस्था में पहुँच गया। संसार का भ्रम, सोच-विचार सहित, इतने लंबे समय के बाद आख़िरकार पूरी तरह मिट चुका था।

5.55.22

बभूव स महासत्त्वो लिपिकर्मार्पितोपमः । समः कलावपूर्णेन शरदच्छाम्बरेन्दुना ॥ २२ ॥

babhūva sa mahāsattvo lipikarmārpitopamaḥ| samaḥ kalāvapūrṇena śaradacchāmbarendunā || 22 ||

That great being became still, like a figure drawn in a painting, equal to the full moon shining in the clear autumn sky.

वह महान आत्मा मानो किसी चित्र में बनी हुई मूर्ति जैसा स्थिर हो गया, जैसे शरद ऋतु के साफ़ आकाश में पूरा चाँद चमकता है, वैसा ही।

5.55.23

उपशशाम शनैर्दिवसैरसौ कतिपयैः स्वपदे विमलात्मनि । तरुरसः शरदन्त इवामले रविकरौजसि जन्मदशातिगः ॥ २३ ॥

upaśaśāma śanairdivasairasau katipayaiḥ svapade vimalātmani| tarurasaḥ śaradanta ivāmale ravikaraujasi janmadashātigaḥ || 23 ||

Slowly, within a few days, he became fully still in his own pure state, passing beyond the state of birth, like the sap of a tree drying up at the end of autumn in the clear, strong light of the sun.

धीरे-धीरे, कुछ ही दिनों में, वह अपनी उस निर्मल अवस्था में पूरी तरह शांत हो गया, जन्म की दशा से आगे निकल गया, जैसे शरद ऋतु के अंत में पेड़ का रस तेज़ धूप में सूख जाता है।

5.55.24

गतसकलविकल्पो निर्विकारोऽभिरामः सकलमलविलासोपाधिनिर्मुक्तमूर्तिः । विगलितसुखमाद्यं तत्सुखं प्राप यस्मिंस्तृणमिव जलराशावूह्यते शक्रलक्ष्मीः ॥ २४ ॥

gatasakalavikalpo nirvikāro'bhirāmaḥ sakalamalavilāsopādhinirmuktamūrtiḥ| vigalitasukhamādyaṃ tatsukhaṃ prāpa yasmiṃstṛṇamiva jalarāśāvūhyate śakralakṣmīḥ || 24 ||

With every mental distinction gone, unchanging and lovely, his very form freed from every limitation that impurity puts on, he reached that first joy in which all lesser pleasure dissolves, a state in which even Indra's majesty is swept away like a piece of straw on a flood of water.

जिसके सारे भेद मिट चुके थे, जो अडिग और सुंदर था, जिसका रूप अशुद्धि के हर बंधन से मुक्त हो चुका था, उसने वह पहला आनंद पा लिया जिसमें हर छोटा सुख घुल जाता है, ऐसी अवस्था जिसमें इंद्र का ऐश्वर्य भी बाढ़ के पानी में तिनके की तरह बह जाता है।

5.55.25

अपरिमितनभोन्तर्व्यापिदिग्व्यापि पूर्णं भुवनभरणशीलं भूरिभव्योपसेव्यम्। कथनगुणमतीतं सत्यमानन्दमाद्यं परमसुखमनन्तं ब्राह्मणोऽसौ बभूव ॥ २५ ॥

aparimitanabhontravyāpidigvyāpi pūrṇaṃ bhuvanabharaṇaśīlaṃ bhūribhavyopasevyaṃ| kathnaguṇamatītaṃ satyamānandamādyaṃ paramasukhamanantaṃ brāhmaṇo'sau babhūva || 25 ||

That Brahmin became this: spread through the boundless sky, spread through every direction, complete, sustaining all the worlds, served by many noble beings, beyond every word that could describe it, true, joyful, primal, the highest and endless happiness.

वह ब्राह्मण यह बन गया: असीम आकाश में फैला हुआ, हर दिशा में फैला हुआ, पूर्ण, सारे लोकों को धारण करने वाला, अनेक महान आत्माओं द्वारा सेवित, हर शब्द से परे, सत्य, आनंदमय, आदि, सबसे ऊँचा और अनंत सुख।

5.55.26

गतवति पदमाद्यं चेतसि स्वच्छभावं द्विजतनुरथ मासैः सोपविष्टैव षड्भिः। रविकरपरितप्ता वातभांकाररम्या तनुतरुभुजतन्त्री शैलवीणा बभूव ॥ २६ ॥

gatavati padamādyaṃ cetasi svacchabhāvaṃ dvijatanuratha māsaiḥ sopaviṣṭaiva ṣaḍbhiḥ| ravikaraparitaptā vātabhāṃkāraramyā tanutarubhujatantri śailavīṇā babhūva || 26 ||

When his mind had gone into that first, clear state, the Brahmin's body, having sat unmoving like that for six whole months, scorched by the sun's rays, made musical by the humming of the wind, its thin arms like the branches of a tree serving as strings, became a lute of the mountain.

जब उसका मन उस पहली, स्वच्छ अवस्था में जा चुका था, तब ब्राह्मण का शरीर छह महीने तक वैसे ही बैठा रहा, सूरज की किरणों से झुलसा हुआ, हवा की सांय-सांय आवाज़ से मानो संगीतमय, उसकी पतली भुजाएँ पेड़ की टहनियों जैसी तार बनी हुई, वह मानो पहाड़ की वीणा बन गया।

5.55.27

अथ बहुतरकालेनैतदद्रेर्भुवं तामुपययुरगकन्याऽसंयुता मातरः खात्। अभिमतफलसिद्ध्यौ संयुता एव सर्वा अनलमिव शिखानां पङ्क्तयः पिङ्गकेश्यः ॥ २७ ॥

atha bahutarakālenaitadadrerbhuvam tāmupayayuragakanyā'saṃyutā mātaraḥ khāt | abhimataphalasiddhyau saṃyutā eva sarvā analamiva śikhānāṃ paṅktayaḥ piṅgakeśyaḥ || 27 ||

Then, after a very long time, the Mother goddesses came down from the sky to that same spot on the mountain, without the mountain's daughter, all of them joined together to bring about the result they wanted, tawny-haired, like rows of flame-tips.

फिर बहुत लंबे समय बाद, वे मातृ-देवियाँ आकाश से उसी पर्वत के उस स्थान पर आईं, पर्वत-कन्या के बिना, सब मिलकर अपना मनचाहा फल पाने के लिए, तांबई बालों वाली, मानो आग की लपटों की पंक्तियाँ।

5.55.28

दिनकरकरशुष्कं विप्रकंकालकं त ज्झटिति मुकुटकोटौ खड्गखट्वाङ्गमध्ये। सकलविबुधवन्द्या खिंखिनी देवदेवी निशि नवतरवृत्ताकान्तकान्तिं चकार ॥ २८ ॥

dinakarakaraśuṣkaṃ viprakaṃkālakaṃ ta jjhaṭiti mukuṭakoṭau khaḍgakhaṭvāṅgamadhye | sakalavibudhavandhyā khiṃkhiṃī devadevī niśi navataravṛttākāntakāntiṃ cakāra || 28 ||

That Brahmin's skeleton, dried by the sun's rays, Khinkhini, the goddess of gods, worshipped by every god, suddenly placed between her sword and her skull-staff, at the very tip of her crown, and at night gave it a fresh, round, dark glow.

सूरज की किरणों से सूखा हुआ उस ब्राह्मण का कंकाल, सब देवताओं द्वारा पूजी जाने वाली देवताओं की देवी खिंखिनी ने अचानक अपनी तलवार और खट्वांग के बीच, अपने मुकुट की चोटी पर रख लिया, और रात में उसे एक नई, गोल, धुँधली चमक दे दी।

5.55.29

इत्युद्दालकदेहकं सुविलसन्मायूरबर्हव्रजव्यालोलाब्दलवे नवैर्विवलिते मन्दारमालागणैः। शेते खिंखिनिका महाभगवती लीलाललामे लताजाले भृङ्ग इवान्तपुष्पपटले पश्चादुपागच्छति ॥ २९ ॥

ityuddālakadehakaṃ suvilasanmāyūrabarhavrajavyālolābdlave navairvivalite mandāramālāgaṇaiḥ | śete khiṃkhiṇikā mahābhagavatī līlālalāme latājāle bhṛṅga ivāntapuṣpapaṭale paścādupāgacchati || 29 ||

So, amid a swaying mass of cloud-like peacock feathers, woven through with fresh garlands of mandara flowers, the great goddess Khinkhini lies with Uddalaka's body, in her place of play, inside a thicket of creepers, like a bee that comes from behind into the depths of a bed of flowers.

इस तरह, मोरपंखों जैसे लहराते बादलों के बीच, ताज़ी मन्दार-फूलों की मालाओं से गुँथी हुई जगह में, महान देवी खिंखिनी उद्दालक के उस शरीर के साथ अपने क्रीड़ा-स्थल में, लताओं के जाल के भीतर लेट जाती है, जैसे कोई भँवरा पीछे से आकर फूलों के गुच्छे के भीतर घुस जाता है।

5.55.30

एषोद्दालकचित्तवृत्तिकलनावल्ली विवेकस्फुर त्स्वानन्दप्रविकासभासिकुसुमा हृत्कानने विस्तृता। रूढा यस्य कदाचिदेव विहरन्नप्येव सच्छायया नासावेति वियोगमेति सफलेनोच्चैस्तरां संगमम् ॥ ३० ॥

eṣoddālakacittavṛttikalanāvallī vivekasphura tsvānandapravikāsabhāsikusumā hṛtkānane vistṛtā | rūḍhā yasya kadācideva viharannapyeva sacchāyayā nāsāveti viyogameti safalena uccaiḥstaraṃ saṅgamam || 30 ||

This creeper, which is Uddalaka's own working of mind, spreads through the forest of the heart, its flowers shining with the blossoming of self-joy that flashes out as clear understanding. Deeply rooted, even when at times it wanders, it still keeps its true shade. It never comes to separation. Instead it comes to a union that is fuller and higher still.

उद्दालक के मन की यही गतिविधि मानो हृदय के जंगल में फैली हुई एक बेल है, जिसके फूल स्पष्ट समझ से चमकते हुए आत्म-आनंद के खिलने से दमकते हैं। यह गहरी जड़ें जमाए हुए है, कभी भटकते हुए भी यह अपनी सच्ची छाया के साथ रहती है। यह कभी बिछड़ती नहीं। बल्कि यह और भी भरपूर और ऊँचे मिलन को पा लेती है।

Chapter 56

5.56.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । क्रमेणानेन विहरन्विचार्यात्मानमात्मना । विश्रान्तिमेहि वितते पदे पद्मदलेक्षण ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | kramenānena viharañvicāryātmānamātmanā | viśrāntimehi vitate pade padmadalekṣaṇa || 1 ||

Sri Vasishtha said: Living your life in this way, examining the self with the self, come to rest in that vast state, O lotus-eyed one.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस तरह जीवन बिताते हुए, आत्मा को आत्मा से परखते हुए, उस विशाल पद में विश्राम पाओ, हे कमल-नयन।

5.56.2

शास्त्रार्थगुरुचेतोभिस्तावत्तावद्विचार्यते । सर्वदृश्यक्षयाभ्यासाद्यावदासाद्यते पदम् ॥ २ ॥

śāstrārthagurucetobhistāvattāvadvicāryate | sarvadṛśyakṣayābhyāsādyāvadāsādyate padam || 2 ||

That state is looked into by the meaning of the scriptures, by the teacher, and by one's own mind, but only for as long as it takes, until, by wearing away everything that is seen, that state is finally reached.

उस पद को शास्त्रों के अर्थ से, गुरु से और अपने मन से तब तक खोजा जाता है, जब तक दिखने वाली हर चीज़ को मिटाने के अभ्यास से वह पद आखिर में मिल नहीं जाता।

5.56.3

वैराग्याभ्यासशास्त्रार्थप्रज्ञागुरुमयक्रमैः । पदमासाद्यते पुण्यं प्रज्ञयैवैकयाथवा ॥ ३ ॥

vairāgyābhyāsaśāstrārthaprajñāgurumayakramaiḥ | padamāsādyate puṇyaṃ prajñayaikekayāthavā || 3 ||

Through the joint working of dispassion, practice, the meaning of the scriptures, insight, and the teacher, a person reaches that sacred state, or else through insight alone, by itself.

वैराग्य, अभ्यास, शास्त्रों के अर्थ, सूझ-बूझ और गुरु, इन सबके मेल से वह पवित्र पद मिलता है, या फिर अकेली सूझ-बूझ से भी मिल जाता है।

5.56.4

संप्रबोधवती तीक्ष्णा कलङ्करहिता मतिः । सर्वसामग्र्यहीनापि पदं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ ४ ॥

saṃprabodhavatī tīkṣṇā kalaṅkarahitā matiḥ | sarvasāmagryahīnāpi padam prāpnoti śāśvatam || 4 ||

A mind that is fully awake, sharp, and free of any stain reaches that eternal state, even if it has none of the other aids at all.

जो मन पूरी तरह जागा हुआ, तेज़ और निर्मल है, वह बाकी सब सहारों के बिना भी उस शाश्वत पद को पा लेता है।

5.56.5

श्रीराम उवाच । भगवन्भूतभव्येश कश्चिज्जातसमाधिकः । प्रबुद्ध इव विश्रान्तो व्यवहारपरोऽपि सन् ॥ ५ ॥

śrīrāma uvāca | bhagavanbhūtabhavyeśa kaścijjātasamādhikaḥ | prabuddha iva viśrānto vyavahāraparo'pi san || 5 ||

Sri Rama said: Lord, master of all that has been and all that will be, one person who has reached samadhi stays at rest, as if fully awake, even while he is busy with worldly life.

श्रीराम ने कहा: हे भगवन्, भूत और भविष्य के स्वामी, कोई एक व्यक्ति जिसे समाधि मिल चुकी है, जागे हुए की तरह शांत रहता है, चाहे वह सांसारिक काम-काज में लगा भी हो।

5.56.6

कश्चिदेकान्तमाश्रित्य समाधिनियतः स्थितः । तयोस्तु कतरः श्रेयानिति मे भगवन्वद ॥ ६ ॥

kaścidekāntamāśritya samādhinayataḥ sthitaḥ | tayostu kataraḥ śreyāniti me bhagavānvada || 6 ||

Another person withdraws into solitude and stays fixed there in samadhi. Of these two, tell me, Lord, which one is better.

कोई और व्यक्ति एकांत का सहारा लेकर वहीं समाधि में स्थिर रहता है। हे भगवन्, मुझे बताइए इन दोनों में से कौन श्रेष्ठ है।

5.56.7

श्रीवसिष्ठ उवाच । इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः । अन्तःशीतलता यासौ समाधिरिति कथ्यते ॥ ७ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | imaṃ guṇasamāhāramanātmatvena paśyataḥ | antaḥśītalatā yāsau samādhiriti kathyate || 7 ||

Sri Vasishtha said: For someone who sees this whole bundle of qualities as not being himself, a coolness settles inside him. That coolness is what is called samadhi.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जो व्यक्ति गुणों के इस पूरे जोड़ को अपना आत्मा न मानकर देखता है, उसके भीतर जो शीतलता आ जाती है, उसी को समाधि कहा जाता है।

5.56.8

दृश्यैर्मनसि संबन्ध इति निश्चित्य शीतलः । कश्चित्संव्यवहारस्थः कश्चिद्ध्याने व्यवस्थितः ॥ ८ ॥

dṛśyairmanasi saṃbandha iti niścitya śītalaḥ | kaścitsaṃvyavahārasthaḥ kaściddhyāne vyavasthitaḥ || 8 ||

Once he has settled it in his mind that his link to everything he sees is only in the mind, and so has grown cool and calm inside, one such person stays busy with worldly work, another stays settled in meditation.

यह तय करके कि दिखने वाली चीज़ों से नाता केवल मन में है, और इस तरह भीतर से शांत होकर, कोई व्यक्ति सांसारिक काम में लगा रहता है, तो कोई ध्यान में स्थिर रहता है।

5.56.9

द्वावेतौ राम सुखितावन्तश्चेत्परिशीतलौ । अन्तःशीतलता या स्यात्तदनन्ततपःफलम् ॥ ९ ॥

dvāvetau rāma sukhitāvantaścetpariśītalau | antaḥśītalatā yā syāttadanantatapaḥphalam || 9 ||

O Rama, both of these people are happy, as long as they are at peace within. Whatever coolness a person feels inside is the fruit of endless effort.

हे राम, ये दोनों सुखी हैं, बशर्ते भीतर से शीतल हों। भीतर जो यह शीतलता होती है, वह अनंत तपस्या का ही फल है।

5.56.10

समाधिस्थानकस्थस्य चेतश्चेद्वृत्तिचञ्चलम् । तत्तस्य तत्समाधानं सममुन्मत्ततताण्डवैः ॥ १० ॥

samādhisthānakasthasya cetścedvṛtticañcalam | tattasya tatsamādhānaṃ samamunmattatāṇḍavaiḥ || 10 ||

If a man sits in the posture of samadhi but his mind is still restless and unsteady, then that samadhi of his is no different from the wild dance of a madman.

जो व्यक्ति समाधि की मुद्रा में बैठा है, पर उसका मन चंचल और अस्थिर है, तो उसकी वह समाधि किसी पागल के उन्मत्त नाच के समान ही है।

5.56.11

उन्मत्तताण्डवस्थस्य चेतश्चेत्क्षीणवासनम्। तदस्योन्मत्तवृत्तं तत्समं बुद्धसमाधिना ॥ ११ ॥

unmattatāṇḍavasthasya cetas cetakṣīṇavāsanam | tadasyonmattavṛttaṃ tatsamaṃ buddhasamādhinā || 11 ||

And if a man dances about like a madman, but his mind has worn away all its inner cravings, then even his mad behavior is equal to the samadhi of one who is fully awake.

और जो पागल की तरह उन्मत्त होकर नाच रहा है, पर उसके मन की सारी वासनाएँ मिट चुकी हैं, तो उसका वह पागलपन भी उस जागे हुए व्यक्ति की समाधि के समान ही है।

5.56.12

व्यवहारी प्रबुद्धो यः प्रबुद्धो यो वने स्थितः। द्वावेतौ सुसमौ नूनमसंदेहं पदं गतौ ॥ १२ ॥

vyavahārī prabuddho yaḥ prabuddho yo vane sthitaḥ | dvāvetau susamau nūnamasandehaṃ padaṃ gatau || 12 ||

The man who is awake while he lives an ordinary life, and the man who is awake while he stays in the forest, are truly equal to each other. Both of them, without doubt, have reached that state.

जो व्यक्ति सांसारिक व्यवहार करते हुए जागा हुआ है, और जो जंगल में रहकर जागा हुआ है, ये दोनों निश्चय ही बराबर हैं; दोनों ही बिना किसी संदेह के उस पद को पा चुके हैं।

5.56.13

अकर्तृ कुर्वदप्येतच्चेतः प्रतनुवासनम्। दूरं गतमना जन्तुः कथासंश्रवणे यथा ॥ १३ ॥

akartṛ kurvadapyetac cetas pratanuvāsanam | dūraṃ gatamanā jantuḥ kathāsaṃśravaṇe yathā || 13 ||

When such a mind's inner cravings have worn thin, it acts, yet is not really the one acting, like someone listening to a story whose mind has wandered off somewhere else.

जब मन की वासनाएँ पतली पड़ जाती हैं, तो वह मन काम तो करता है, पर असल में करने वाला नहीं रहता, जैसे कोई कहानी सुनते हुए भी उसका मन कहीं और चला गया हो।

5.56.14

अकुर्वदपि कर्तेव चेतः प्रघनवासनम्। निस्पन्दाङ्गमपि स्वप्ने श्वभ्रपातस्थितावि॒व ॥ १४ ॥

akurvadapi karteva cetas praghnavāsanam | nispandāṅgamapi svapne śvabhrapātasthitāviva || 14 ||

But a mind whose cravings are thick and solid feels like the doer even when it does nothing, like a sleeping body that lies perfectly still while in the dream it is falling into a pit.

पर जिस मन की वासनाएँ घनी और ठोस हैं, वह कुछ न करते हुए भी करने वाला जैसा महसूस करता है, जैसे सोया हुआ शरीर बिल्कुल निश्चल पड़ा रहता है, पर सपने में वह गड्ढे में गिर रहा होता है।

5.56.15

चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमुत्तमम्। तं विद्धि केवलीभावं सा शुभा निर्वृतिः परा ॥ १५ ॥

cetaso yadakartṛtvaṃ tatsamādhānamuttamam | taṃ viddhi kevalībhāvaṃ sā śubhā nirvṛtiḥ parā || 15 ||

That state in which the mind is no longer the doer of anything, that is the highest samadhi. Know it to be the state of standing alone as oneself, that highest and truly good peace.

मन का करने वाला न रह जाना, यही सबसे ऊँची समाधि है। इसे ही अकेले शुद्ध आत्मा में टिक जाना जानो, यही वह श्रेष्ठ और शुभ शांति है।

5.56.16

चेतश्चलाचलत्वेन परम कारणं स्मृतम्। ध्यानाध्यानदृशोस्तेन तदेवानङ्कुरं कुरु ॥ १६ ॥

cetashcalācalatvena parama kāraṇaṃ smṛtam | dhyānādhyānadṛśostena tadevānaṅkuraṃ kuru || 16 ||

Whether the mind is restless or still is the real cause behind both meditation and its absence. So work on that mind alone, and stop any new thought from sprouting in it.

मन का चंचल होना या स्थिर होना ही ध्यान और अ-ध्यान दोनों का असली कारण है; इसलिए उसी मन पर काम करो और उसमें कोई नया विचार अंकुरित न होने दो।

5.56.17

अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनोध्यानं तदेव तु। स एव केवलीभावः शान्ततैव च सा सदा ॥ १७ ॥

avāsanaṃ sthiraṃ proktaṃ manodhyānaṃ tadeva tu | sa eva kevalībhāvaḥ śāntataiva ca sā sadā || 17 ||

A mind that is free of these cravings and steady, that alone is real meditation. That alone is the state of standing purely as oneself, and that alone is true and lasting peace.

जो मन इन वासनाओं से मुक्त और स्थिर है, वही असली ध्यान कहलाता है। वही अकेले शुद्ध आत्मा में टिकना है, और वही सदा सच्ची शांति है।

5.56.18

तनुवासनमत्युच्चैः पदायोद्यतमुच्यते। अवासनं मनो कर्तृपदं तस्मादवाप्यते ॥ १८ ॥

tanuvāsanamatyuccaiḥ padāyodyatamucyate | avāsanaṃ mano kartṛpadaṃ tasmādavāpyate || 18 ||

A mind whose cravings have thinned is said to be climbing toward that highest state; a mind wholly free of cravings then reaches the state of the doer.

जिस मन की वासनाएँ पतली पड़ गई हों, उसे उस सबसे ऊँचे पद की ओर बढ़ता हुआ कहा जाता है; और जिस मन में वासना बिल्कुल नहीं बची, वह उस कर्ता के पद को पा लेता है।

5.56.19

घनवासनमेतत्तु चेतः कर्तृत्वभाजनम्। सर्वदुःखप्रदं तस्माद्वासनां तनुतां नयेत् ॥ १९ ॥

ghanavāsanametattu cetḥ kartṛtvabhājanam | sarvaduḥkhapradaṃ tasmādvāsanāṃ tanutāṃ nayet || 19 ||

This mind, when its cravings are thick, becomes the seat of being the doer, and being the doer brings all suffering. So one should thin out these cravings.

यह मन, जब उसकी वासनाएँ घनी होती हैं, कर्ता बनने का ठिकाना बन जाता है, और कर्ता बनना ही सारे दुख का कारण है; इसलिए वासनाओं को पतला करते जाना चाहिए।

5.56.20

प्रशान्तजगदास्थोऽन्तर्वीतशोकभयैषणः। स्वस्थो भवति येनात्मा स समाधिरिति स्मृतः ॥ २० ॥

praśāntajagadāstho'ntarvītaśokabhayaiṣaṇaḥ | svastho bhavati yenātmā sa samādhiriti smṛtaḥ || 20 ||

When a person's concern for the world grows calm, and inside he is free of grief, fear, and craving, and his self comes to rest in itself, that is what is known as samadhi.

जब किसी व्यक्ति की दुनिया के प्रति चिंता शांत हो जाती है, और भीतर से वह शोक, भय और लालसा से मुक्त हो जाता है, और उसका आत्मा अपने आप में टिक जाता है, इसी को समाधि कहा जाता है।

5.56.21

चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम्। यथा तिष्ठसि तिष्ठ त्वं तथा शैले गृहेऽथवा ॥ २१ ॥

cetasā saṃparityajya sarvabhāvātmabhāvanām | yathā tiṣṭhasi tiṣṭha tvaṃ tathā śaile gṛhe'thavā || 21 ||

Once you have let go, in your mind, of the feeling that you are all these things, then stay just as you are, whether that is on a mountain or in a house.

जब तुमने अपने मन से यह भाव छोड़ दिया कि तुम ये सब चीज़ें हो, तो फिर जैसे भी रहो, वैसे ही रहो, चाहे पहाड़ पर रहो या घर में।

5.56.22

गृहमेव गृहस्थानां सुसमाहितचेतसाम्। शान्ताहंकृतिदोषाणां विजनावनभूमयः ॥ २२ ॥

gṛhameva gṛhasthānāṃ susamāhitacetasām | śāntāhaṃkṛtidōṣāṇāṃ vijanāvanabhūmayaḥ || 22 ||

For a householder whose mind is calm and settled, and whose fault of ego has quieted down, the house itself becomes like an empty forest.

जिस गृहस्थ का मन शांत और स्थिर है, और जिसका अहंकार का दोष मिट चुका है, उसके लिए घर भी सुनसान जंगल जैसा हो जाता है।

5.56.23

अरण्यसदने तुल्ये समाहितमनोदृशाम्। भवतामिह भूतानां भूतानां महतामिव ॥ २३ ॥

araṇyasadane tulye samāhitamanodṛśām | bhavatāmiha bhūtānāṃ bhūtānāṃ mahatāmiva || 23 ||

For those whose mind and sight are calm, forest and house are the same. For you living beings here, it is just as it is for the great ones too.

जिनका मन और नज़र शांत हो चुकी है, उनके लिए जंगल और घर एक समान हैं। तुम लोगों के लिए भी यहाँ वैसा ही है जैसा बड़े-बड़े महात्माओं के लिए होता है।

5.56.24

शान्तचित्तमहाभ्रस्य जनज्वालोज्ज्वलान्यपि। नगराण्यपि शून्यानि वनान्यवनिपात्मज ॥ २४ ॥

śāntacittamahābhrasya janajvālojjvalānyapi | nagarāṇyapi śūnyāni vanānyavanipātmaja || 24 ||

O prince, for someone whose mind, like a great cloud, has grown calm, even cities ablaze with crowds of people are empty, like forests.

हे राजकुमार, जिसका मन एक बड़े बादल की तरह शांत हो चुका है, उसके लिए भीड़ से जगमगाते शहर भी जंगलों जैसे सुनसान हैं।

5.56.25

वृत्तिमच्चित्तमत्तस्य विजनानि वनान्यपि। नगराणि महालोकपूर्णानि परवीरहन ॥ २५ ॥

vṛttimaccittamattasya vijanāni vanānyapi | nagarāṇi mahālokapūrṇāni paravīrahan || 25 ||

O slayer of enemy warriors, for someone whose mind is intoxicated with its own restless activity, even a lonely forest feels like a city crowded with people.

हे शत्रु-वीरों के संहारक, जिसका मन अपनी ही हलचल में डूबा और मतवाला है, उसके लिए सुनसान जंगल भी भीड़ से भरे शहर जैसा लगता है।

5.56.26

व्युत्थितं चित्तमभ्येति भ्रमस्यान्तः सुषुप्तताम्। निर्वाणमेति निर्वाणं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २६ ॥

vyutthitaṃ cittamabhyeti bhramasyāntaḥ suṣuptatām | nirvāṇameti nirvāṇaṃ yathecchasi tathā kuru || 26 ||

A restless mind only sinks into a kind of stupor within its own confusion. A mind that is already at peace attains true peace. So do as you wish.

बेचैन मन अपनी ही उलझन में एक तरह की गहरी नींद में डूब जाता है। जो मन पहले से शांत है, वही असली शांति पाता है। इसलिए जैसा चाहो वैसा करो।

5.56.27

सर्वभावपदातीतं सर्वभावात्मकं च वा । यः पश्यति सदात्मानं स समाहित उच्यते ॥ २७ ॥

sarvabhāvapadātītaṃ sarvabhāvātmakaṃ ca vā | yaḥ paśyati sadātmānaṃ sa samāhita ucyate || 27 ||

Whoever sees the true self as beyond every state of being, and also as the very essence of every state of being, is called one whose mind is composed.

जो व्यक्ति सच्चे आत्मा को हर हाल से परे भी देखता है, और हर हाल के भीतर भी उसी को देखता है, उसे ही शांत-चित्त कहा जाता है।

5.56.28

ईहितानीहिते क्षीणे यस्यान्तर्विततताकृतेः । सर्वे भावाः समा यस्य स समाहित उच्यते ॥ २८ ॥

īhitānīhite kṣīṇe yasyāntarvitatātakṛteḥ | sarve bhāvāḥ samā yasya sa samāhita ucyate || 28 ||

One in whom wanting and not wanting have both faded away, whose inner being has spread out to fill everything, and for whom all things are equal, he is called one whose mind is composed.

जिसकी चाहत और अनचाहत दोनों मिट चुकी हैं, जिसका भीतरी स्वभाव सब जगह फैल चुका है, और जिसके लिए सब कुछ बराबर है, उसे ही शांत-चित्त कहा जाता है।

5.56.29

सदात्मना सदेवेदं जगत्पश्यति नो मनः । यथा स्वप्ने तथैवास्मिञ्जाग्रत्यपि जनेश्वर ॥ २९ ॥

sadātmanā sadevedaṃ jagatpaśyati no manaḥ | yathā svapne tathaivāsmiñjāgratyapi janeśvara || 29 ||

The mind does not see this world as it really is, one with the eternal self. It is the same in this waking state as it is in a dream, O lord of men.

मन इस जगत को वैसा नहीं देखता जैसा यह सच में है, यानी सदा-विद्यमान आत्मा से एक। हे मनुष्यों के स्वामी, यह जागते हुए भी वैसा ही है जैसा सपने में होता है।

5.56.30

यथा विपणिकालोका विहरन्तोऽप्यसत्समाः । असंबन्धात्तथा ज्ञस्य ग्रामोपि विपिनोपमः ॥ ३० ॥

yathā vipaṇikālokā viharanto'pyasatsamāḥ | asaṃbandhāttathā jñasya grāmopi vipinopamaḥ || 30 ||

Just as, to someone with no stake in it, people bustling about a marketplace seem as if they do not even exist, so too, for one who knows the truth, a village is just like a forest, because he has no bond with it.

जैसे बाज़ार में घूमते-फिरते लोग किसी अनजान आदमी के लिए मानो होते ही नहीं, वैसे ही जो सच जानता है, उसके लिए गाँव भी जंगल जैसा है, क्योंकि उसका उससे कोई नाता नहीं है।

5.56.31

अन्तर्मुखमना नित्यं सुप्तो बुद्धो व्रजन्नपि । पुरं जनपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति ॥ ३१ ॥

antarmukhamanā nityaṃ supto buddho vrajannapi | puraṃ janapadaṃ grāmamaranyamiva paśyati || 31 ||

One whose mind is always turned inward, whether asleep, awake, or walking about, sees a city, a country, or a village as if it were a forest.

जिसका मन हमेशा भीतर की ओर लगा रहता है, चाहे वह सोया हो, जागा हो, या चल रहा हो, वह शहर को, प्रदेश को, गाँव को, जंगल जैसा ही देखता है।

5.56.32

सर्वमाकाशतामेति नित्यमन्तर्मुखस्थितेः । सर्वथानुपयोग्यत्वाद्भूताकुलमिदं जगत् ॥ ३२ ॥

sarvamākāśatāmeti nityamantarmukhasthiteḥ | sarvathānupayogyatvādbhūtākulamidaṃ jagat || 32 ||

For one whose mind is always turned inward, everything becomes like open space, because this world, crowded with living beings, holds nothing for him to make use of.

जिसका मन हमेशा भीतर की ओर लगा रहता है, उसके लिए सब कुछ खाली आकाश जैसा हो जाता है, क्योंकि जीवों से भरी यह दुनिया उसके किसी काम की नहीं रहती।

5.56.33

अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत् । विज्वराणामिव नृणां भवत्याजीवितस्थितेः ॥ ३३ ॥

antaḥśītalatāyāṃ tu labdhāyāṃ śītalaṃ jagat | vijvarāṇāmiva nṛṇāṃ bhavatyājīvitasthiteḥ || 33 ||

But once one has found coolness within, the world too turns cool, just as it does for a man free of fever, for as long as he lives.

पर जब भीतर की ठंडक मिल जाती है, तो यह जगत भी ठंडा हो जाता है, जैसे किसी बुखार से मुक्त आदमी के लिए होता है, जब तक जीवन रहता है तब तक।

5.56.34

अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत् । भवत्यखिलजन्तूनां यदन्तस्तद्बहिः स्थितम् ॥ ३४ ॥

antastṛṣṇopataptānāṃ dāvadāhamayaṃ jagat | bhavatyakhilajantūnāṃ yadantastadvahiḥ sthitam || 34 ||

For all creatures scorched within by craving, the world turns into a wildfire, because what is inside comes to stand outside.

जो जीव भीतर से तृष्णा की आग में झुलस रहे हैं, उनके लिए यह जगत जंगल की आग जैसा बन जाता है, क्योंकि जो भीतर होता है वही बाहर दिखने लगता है।

5.56.35

द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः । अन्तःकरणतत्त्वस्य भागा बहिरिव स्थिताः ॥ ३५ ॥

dyauḥ kṣamā vāyurākāśaṃ parvatāḥ sarito diśaḥ | antaḥkaraṇatattvasya bhāgā bahiriva sthitāḥ || 35 ||

Sky, earth, wind, space, mountains, rivers, and the directions, all are parts of the true nature of the inner mind, standing as if outside it.

आकाश, पृथ्वी, हवा, अंतरिक्ष, पहाड़, नदियाँ और दिशाएँ, ये सब भीतरी मन के असली स्वरूप के ही हिस्से हैं, जो मानो बाहर खड़े दिखाई देते हैं।

5.56.36

वटधाना वट इव यदन्तःस्थं सदात्मनः । तद्बहिर्भासते भास्वद्विकासे पुष्पगन्धवत् ॥ ३६ ॥

vaṭadhānā vaṭa iva yadantaḥsthaṃ sadātmanaḥ | tadbahirbhāsate bhāsvadvikāse puṣpagandhavat || 36 ||

Just as a banyan tree is already contained within a banyan seed, whatever lies within the true self shines outward when it unfolds, like the scent that appears when a flower blossoms.

जैसे बरगद का पेड़ बरगद के बीज के भीतर ही छिपा रहता है, वैसे ही जो कुछ सच्चे आत्मा के भीतर है, वह खुलते ही बाहर चमक उठता है, जैसे फूल खिलते ही उसकी खुशबू फैल जाती है।

5.56.37

न बहिष्ठं न चान्तःस्थं क्वचित्किंचन विद्यते । यद्यथा कचितं चित्त्वात्तत्तथा तत्त्वमुत्थितम् ॥ ३७ ॥

na bahiṣṭhaṃ na cāntaḥsthaṃ kvacitkiñcana vidyate | yadyathā kacitaṃ cittvāttattathā tattvamutthitam || 37 ||

Nothing anywhere truly exists as outside or as inside. Whatever appears, appears out of the nature of consciousness, and reality arises exactly as that appearance.

कहीं भी कुछ सच में न बाहर है न भीतर। जो कुछ भी दिखाई देता है, वह चेतना के स्वभाव से ही दिखाई देता है, और सच्चाई ठीक उसी रूप में उठ खड़ी होती है।

5.56.38

आत्मतत्त्वान्तरं भाति बहिष्ट्वेन जगत्तया । कर्पूरमिव गन्धेन संकोचे प्रविकासि च ॥ ३८ ॥

ātmatattvāntaraṃ bhāti bahiṣṭvena jagattayā | karpūramiva gandhena saṃkoce pravikāsi ca || 38 ||

The true self's inner nature shines outward as the world, the way camphor's scent stays itself whether it is held close or spreading out.

सच्चे आत्मा का भीतरी स्वरूप ही बाहर जगत के रूप में चमकता है, जैसे कपूर की खुशबू बंद रहने पर भी और फैलने पर भी वैसी ही रहती है।

5.56.39

आत्मैव स्फुरति स्फारं जगत्त्वेनाप्यहंतया । बाह्यत्वेनान्तरत्वेन स च नासन्न सन्विभुः ॥ ३९ ॥

ātmaiva sphurati sphāraṃ jagattvenāpyahaṃtayā | bāhyatvenāntaratvena sa ca nāsan na sanvibhuḥ || 39 ||

The self alone shines forth vastly, as the world and as the sense of I, as what is outer and what is inner, and that self, which pervades everything, is neither unreal nor real.

आत्मा ही बड़े रूप में प्रकट होता है, जगत के रूप में भी, 'मैं' के भाव के रूप में भी, बाहर के रूप में भी, भीतर के रूप में भी, और सब में व्याप्त वह आत्मा न झूठा है, न सच्चा।

5.56.40

बहिष्ठेनान्तरं बाह्यमन्तःस्थेनान्तरस्थितम् । यथाविदितमात्मायं स्वचित्तमनुपश्यति ॥ ४० ॥

bahiṣṭhenāntaraṃ bāhyamantaḥsthenāntarasthitam | yathāviditamātmāyaṃ svacittamanupaśyati || 40 ||

Through the outer side, the inner part appears outside. Through the inner side, it stays inside. This self sees its own mind exactly as it comes to be known.

बाहर वाले हिस्से से भीतर की चीज़ बाहर दिखती है। भीतर वाले हिस्से से वह भीतर ही रहती है। यह आत्मा अपने मन को ठीक वैसे ही देखता है जैसे वह जाना जाता है।

5.56.41

सबाह्याभ्यन्तरं शान्तमात्मनो भेदितं जगत् । अहन्त्वादिस्थिते भेदे भूरिभङ्गभयं तु तत् ॥ ४१ ॥

sabāhyābhyantaraṃ śāntamātmano bheditaṃ jagat| ahaṃtvādisthite bhede bhūribhaṅgabhayaṃ tu tat || 41 ||

The world, both outside and inside, is nothing but the self at peace. But once it is split apart, once division sets in, starting with the notion of I, that split brings great fear of shattering.

यह जगत, बाहर और भीतर दोनों तरफ से, शांत आत्मा के सिवा कुछ नहीं है। पर जब यह बँट जाता है, जब 'मैं' के भाव से शुरू होकर यह बँटवारा होता है, तब यही बँटवारा टूट जाने का बड़ा डर बन जाता है।

5.56.42

द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः। कल्पादिरेव ज्वलितं सर्वमाधिहतात्मनः ॥ ४२ ॥

dyauḥ kṣamā vāyurākāśaṃ parvatāḥ sarito diśaḥ| kalpādireva jvalitaṃ sarvamādhihatātmanaḥ || 42 ||

Sky, earth, wind, space, mountains, rivers, the directions, for someone whose mind is struck by anguish, all of this has been ablaze since the very beginning of creation.

आकाश, पृथ्वी, हवा, अंतरिक्ष, पहाड़, नदियाँ, दिशाएँ, जिसका मन पीड़ा से घायल है, उसके लिए यह सब सृष्टि के आरंभ से ही जलता आ रहा है।

5.56.43

यस्त्वात्मरतिरेवान्तः कुर्वन्कर्मेन्द्रियैः क्रियाः। न वशो हर्षशोकाभ्यां स समाहित उच्यते ॥ ४३ ॥

yastvātmaratirevāntaḥ kurvankarmendriyaiḥ kriyāḥ| na vaśo harṣaśokābhyāṃ sa samāhita ucyate || 43 ||

But whoever, while performing actions with the body's organs, delights within only in the self, and is not ruled by joy or sorrow, he is called one whose mind is composed.

पर जो कर्मेंद्रियों से काम करते हुए भी भीतर सिर्फ आत्मा में ही आनंद पाता है, और जो सुख-दुख के वश में नहीं होता, उसे ही शांत-चित्त कहा जाता है।

5.56.44

यः सर्वगतमात्मानं पश्यन्समुपशान्तधीः। न शोचति ध्यायति वा स समाहित उच्यते ॥ ४४ ॥

yaḥ sarvagatamātmānaṃ paśyansamupaśāntadhīḥ| na śocati dhyāyati vā sa samāhita ucyate || 44 ||

The one who sees the self as present everywhere, whose mind has grown completely calm, and who neither grieves nor broods, he is called truly composed.

जो आत्मा को हर जगह मौजूद देखता है, जिसका मन पूरी तरह शांत हो चुका है, और जो न दुखी होता है न चिंता करता है, उसे ही सच में स्थिर मन वाला कहा जाता है।

5.56.45

स पूर्वापरपर्यन्तां यः पश्यञ्जागतीं गतिम्। दृष्टिष्वेतासु हसति स समाहित उच्यते ॥ ४५ ॥

sa pūrvāparaparyantāṃ yaḥ paśyañjāgatīṃ gatim| dṛṣṭiṣvetāsu hasati sa samāhita ucyate || 45 ||

The one who watches the world's whole course, from its beginning to its end, and laughs at these very sights, he is called truly composed.

जो संसार की पूरी चाल को शुरू से आखिर तक देखता है, और इन्हीं नज़ारों पर हंसता है, उसे ही सच में स्थिर मन वाला कहा जाता है।

5.56.46

समे परेऽपि नाहंता न जगज्जन्मनो मयि। वीचिवृन्देष्विवातप्ता नाकाशे फलधातवः ॥ ४६ ॥

same pare'pi nāhaṃtā na jagajjanmano mayi | vīcivṛndeṣvivātaptā nākāśe phaladhātavaḥ || 46 ||

Even in that supreme sameness there is no I; the world's birth is not really in me either, just as a mass of waves carries no separate heat of its own, just as no ore is ever found in the sky.

उस परम समानता में भी कोई मैं नहीं है; मुझमें संसार के पैदा होने की भी कोई बात नहीं है, जैसे लहरों के ढेर में अलग से कोई गर्मी नहीं होती, जैसे आकाश में कोई धातु नहीं मिलती।

5.56.47

यस्यान्तरस्थिताहन्त्वं न विभागादि नो मनः । न चेतनाचेतनत्वे सोऽस्ति नास्तीतरो जनः ॥ ४७ ॥

yasyāntarasthitāhantvaṃ na vibhāgādi no manaḥ | na cetanācetanatve so'sti nāstītaro janaḥ || 47 ||

In whom there dwells no I, no division, no mind at all, and no difference between the conscious and the unconscious, he alone truly is, there is no other person.

जिसके भीतर न कोई मैं है, न कोई बंटवारा है, न मन है, और न चेतन-अचेतन का फ़र्क़ है, वही सच में है, उसके सिवा कोई दूसरा नहीं है।

5.56.48

व्योमस्वच्छो बहिष्ठेहां सम्यगाचरतीह यः । हर्षामर्षविकारेषु काष्ठलोष्टसमः शमः ॥ ४८ ॥

vyomasyacchobahiṣṭhehāṃ samyagācaratīha yaḥ | harṣāmaraṣavikāreṣu kāṣṭhaloṣṭasamaḥ śamaḥ || 48 ||

He is clear as the sky, and rightly carries out his outward actions in the world; amid the disturbance of joy and anger, his calm stays as unmoved as a piece of wood or a clod of earth.

वह आकाश जैसा साफ़ है, और दुनिया में अपने बाहरी काम ठीक तरह से करता है; खुशी और गुस्से की हलचल में भी उसकी शांति लकड़ी या मिट्टी के ढेले जैसी अटल रहती है।

5.56.49

आत्मवत्सर्वभूतानि परद्रव्याणि लोष्टवत् । स्वभावादेव न भयाद्यः पश्यति स पश्यति ॥ ४९ ॥

ātmavatsarvabhūtāni paradravyāṇi loṣṭavat | svabhāvādeva na bhayādyaḥ paśyati sa paśyati || 49 ||

The one who looks on all beings as he looks on himself, and on others' wealth as no more than a clod of earth, doing this from his own nature, not from fear, he alone truly sees.

जो सब जीवों को अपने जैसा समझता है, और दूसरों के धन को मिट्टी के ढेले जैसा समझता है, यह उसके अपने स्वभाव से होता है, किसी डर से नहीं, वही सच में देखना जानता है।

5.56.50

अर्थोऽतनुस्तनुर्वापि नासद्रूपेण चेत्यते । सद्रूपो नानुभूतोऽज्ञे न ज्ञेनैव न तत्तया ॥ ५० ॥

artho'tanustanurvāpi nāsadrūpeṇa cetayate | sadrūpo nānubhūto'jñe na jñenaiva na tattayā || 50 ||

A thing, whether formless or having a form, is never known as unreal. But the truly real is not experienced by the ignorant, nor even by the knower, nor by identity with it.

कोई भी चीज़, चाहे वह बिना शरीर की हो या शरीर वाली, कभी झूठी नहीं जानी जाती। पर जो सचमुच सच है, उसे न तो अनजान इंसान अनुभव करता है, न जानने वाला, न ही उसके साथ एक होकर।

5.56.51

ईदृशाशयसंपन्नो महासत्त्वपदं गतः । तिष्ठतूदेतु वा यातु मृतिमेतु न तत्स्थितिम् ॥ ५१ ॥

īdṛśāśayasaṃpanno mahāsattvapadaṃ gataḥ | tiṣṭhatūdetu vā yātu mṛtimetu na tatsthitim || 51 ||

The one with such a mind, who has reached the state of a truly great soul, let him stay still, rise up, go away, or even die, he never departs from that steady state.

ऐसे मन वाला, जो महान आत्मा की अवस्था को पा चुका है, चाहे वह रुके, उठे, चला जाए, या मर भी जाए, वह अपनी उस स्थिर अवस्था से कभी नहीं हटता।

5.56.52

वसतूत्तमभोगाढ्ये स्वगृहे वा जनाकुले । सर्वभोगोज्झिताभोगे सुमहत्यथवा वने ॥ ५२ ॥

vasatūttamabhogāḍhye svagṛhe vā janākule | sarvabhogojjhitābhoge sumahatyathavā vane || 52 ||

Let him live in a home of his own filled with the finest pleasures, or among crowds of people, or in a very great forest where all pleasure is given up.

वह चाहे बढ़िया सुखों से भरे अपने घर में रहे, चाहे लोगों की भीड़ में, या फिर किसी बहुत बड़े जंगल में जहां कोई सुख-भोग नहीं है।

5.56.53

उद्दाममन्मथं पानतत्परो वापि नृत्यतु । सर्वसङ्गपरित्यागी सममायातु वा गिरौ ॥ ५३ ॥

uddāmamanmathaṃ pānatatparo vāpi nṛtyatu | sarvasaṅgaparityāgī samamāyātu vā girau || 53 ||

Let him dance wild with passion, or give himself entirely to drink; or, having given up every attachment, let him go with the same even mind to a mountain.

वह चाहे प्रेम में डूबकर नाचे, या शराब पीने में लगा रहे; या फिर सारे मोह-बंधन छोड़कर उसी शांत भाव से किसी पहाड़ पर चला जाए।

5.56.54

चन्दनागुरुकर्पूरैर्वपुर्वा परिलिम्पतु । ज्वालाजटिलविस्तारे निपतत्वथवाऽनले ॥ ५४ ॥

candanāgurukarpūrairvapurvā parilimpatu | jvālājaṭilavistāre nipatatvathavā'nale || 54 ||

Let him rub his body with sandalwood, agarwood, and camphor, or let him fall into a fire whose flames spread out in tangled masses.

वह चाहे अपने शरीर पर चंदन, अगर और कपूर लगाए, या फिर फैली हुई उलझी लपटों वाली आग में गिर जाए।

5.56.55

पापं करोतु सुमहद्बहुलं पुण्यमेव च । अद्य वा मृतिमायातु कल्पान्तनिचयेन वा ॥ ५५ ॥

pāpaṃ karotu sumahadbahulaṃ puṇyameva ca | adya vā mṛtimāyātu kalpāntanicayena vā || 55 ||

Let him commit a very great sin, or a great deal of merit; let him come to death today, or only after ages have piled up, at the end of a world cycle.

वह चाहे बहुत बड़ा पाप करे, या बहुत पुण्य करे; वह चाहे आज ही मर जाए, या फिर कई युग बीतने के बाद, कल्प के अंत में।

5.56.56

नासौ किंचिन्न तत्किंचित्कृतं तेन महात्मनानासौ कलङ्कमाप्नोति हेम पङ्कगतं यथा ॥ ५६ ॥

nāsau kiṃcinna tatkiṃcitkṛtaṃ tena mahātmanānāsau kalaṅkamāpnoti hema paṅkagataṃ yathā || 56 ||

That great soul does nothing at all, nothing whatsoever is done by him, he never becomes stained, just as gold does not become stained even lying in mud.

वह महान आत्मा असल में कुछ नहीं करता; उसके द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता; वह कभी दागदार नहीं होता, जैसे सोना कीचड़ में पड़े रहने पर भी दागदार नहीं होता।

5.56.57

संवित्पुरुषशब्दार्थैः स कलङ्कैः कलंक्यतेअहंत्वंवासनारूपैः शुक्तिकारजतोपमैः ॥ ५७ ॥

saṃvitpuruṣaśabdārthaiḥ sa kalaṅkaiḥ kalaṃkyateahaṃtvaṃvāsanārūpaiḥ śuktikārajatopamaiḥ || 57 ||

He seems stained only by the meanings behind words like awareness and person, forms taken by the mere sense of I, the way a shell is mistaken for silver.

वह केवल चेतना और व्यक्ति जैसे शब्दों के मतलब से दागदार दिखता है, जो मैं के भाव के ही रूप हैं, जैसे सीप को चांदी समझ लिया जाता है।

5.56.58

समस्तवस्तुप्रशमात्सम्यग्ज्ञानाद्यथास्थितेःस्वभावस्योपशान्तोन्तःकलङ्कोऽसत्तया स्वतः ॥ ५८ ॥

samastavastupraśamātsamyagjñānādyathāsthiteḥsvabhāvasyopaśāntontaḥkalaṅko'sattayā svataḥ || 58 ||

Through the quieting of every object, through right knowledge of one's own nature exactly as it is, that inner stain calms down of itself, because it was never real to begin with.

जब सारी चीज़ों की हलचल शांत हो जाती है, और अपने असली स्वभाव का सही ज्ञान हो जाता है, तो वह भीतर का दाग़ अपने आप शांत हो जाता है, क्योंकि वह था ही नहीं।

5.56.59

अहंत्ववासनानर्थप्रसूतेः संविदात्मनःपुरुषस्य विचित्राणि सुखदुःखानि जन्मनि ॥ ५९ ॥

ahaṃtvavāsanānarthaprasūteḥ saṃvidātmanaḥpuruṣasya vicitrāṇi sukhaduḥkhāni janmani || 59 ||

Because of the harm born from this sense of I, though his true self is only awareness, a person meets all kinds of pleasure and pain, birth after birth.

इस मैं के भाव से पैदा हुई गड़बड़ के कारण ही, हालांकि उसका असली रूप सिर्फ चेतना है, इंसान को जन्म-जन्म में तरह-तरह के सुख-दुख मिलते हैं।

5.56.60

रज्ज्वां सर्पभ्रमे शान्तेऽहिर्नेति निर्वृतिर्यथाअहंत्वभावसंशान्तौ तथान्तः समता मता ॥ ६० ॥

rajjvāṃ sarpabhrame śānte'hirneti nirvṛtiryathāahaṃtvabhāvasaṃśāntau tathāntaḥ samatā matā || 60 ||

Just as, once the mistaken sight of a snake on a rope has calmed down, there comes the relief of knowing there is no snake at all, so too, once the sense of I has calmed down, an evenness of mind is known to arise within.

जैसे रस्सी में सांप दिखने का भ्रम शांत होने पर यह राहत मिलती है कि यहां कोई सांप नहीं है, वैसे ही मैं का भाव शांत होने पर भीतर मन की समता आ जाती है।

5.56.61

यत्करोति यदश्नाति यद्ददाति जुहोति वा । न तज्ज्ञस्य न तत्र ज्ञो मा करोतु करोतु वा ॥ ६१ ॥

yatkaroti yadaśnāti yaddadāti juhoti vā | na tajjñasya na tatra jño mā karotu karotu vā || 61 ||

Whatever he does, whatever he eats, whatever he gives or offers, none of it belongs to the one who knows; the knower has no part in it, whether he does it or not.

वह जो कुछ भी करे, जो कुछ खाए, जो कुछ दान करे या हवन करे, यह सब जानने वाले का नहीं होता; जानने वाले का इससे कोई नाता नहीं, चाहे वह करे या न करे।

5.56.62

कर्मणास्ति न तस्यार्थो नार्थस्तस्यास्त्यकर्मणा । यथास्वभावावगमात्स आत्मन्येव संस्थितः ॥ ६२ ॥

karmaṇāsti na tasyārtho nārthastasyāstyakarmaṇā | yathāsvabhāvāvagamātsa ātmanyeva saṃsthitaḥ || 62 ||

Action brings him no gain, and inaction brings him no gain either. Since he has understood his own true nature, he remains settled in the self alone.

काम करने से उसे कोई फ़ायदा नहीं होता, और काम न करने से भी कोई फ़ायदा नहीं होता। क्योंकि वह अपने असली स्वभाव को जान चुका है, इसलिए वह हमेशा अपने आत्मा में ही टिका रहता है।

5.56.63

इच्छास्ततः समुद्यन्ति न मञ्जर्य इवोपलात्। याश्चोद्यन्ति च ताः सर्वाः स एवाप्स्विव वीचयः ॥ ६३ ॥

icchāstatataḥ samudyanti na mañjarya ivopalāt | yāścodyanti ca tāḥ sarvāḥ sa evāpsviva vīcayaḥ || 63 ||

From him no desires arise, any more than blossoms spring from a stone. And whatever desires do arise are nothing but himself, like waves in water.

उससे कोई इच्छा नहीं उठती, जैसे पत्थर से कोई कली नहीं फूटती। और जो इच्छाएं उठती भी हैं, वे सब वह खुद ही हैं, जैसे पानी में लहरें।

5.56.64

सकलमिदमसावसौ च सर्वं जगदखिलं न विभागितात्र काचित्। परमपुरुषपावनैकरूपी स सदिति तत्सदकिंचिदेव नासौ ॥ ६४ ॥

sakalamidamasāvasau ca sarvaṃ jagadakhilaṃ na vibhāgitātra kācit | paramapuruṣapāvanaikarūpī sa saditi tatsadakiñcideva nāsau || 64 ||

All this is he, and he alone is this whole world entire, there is no division here at all. He is the one form of the Supreme Being, the purifier, he is called the Real, yet that Real is not a thing at all, and he is not a thing either.

यह सब कुछ वही है, और वही यह पूरा संसार है; इसमें कहीं कोई बंटवारा नहीं है। वह परम पुरुष का, जो पवित्र करने वाला है, एक ही रूप है; उसे सत् यानी असली सत्य कहा जाता है, पर वह सत्य भी कोई चीज़ नहीं है, और वह खुद भी कोई चीज़ नहीं है।

Chapter 57

5.57.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । यदात्ममरिचस्यान्तश्चित्त्वात्तीक्ष्णत्ववेदनम् । तदहंतादि भेदादि देशकालादि चेत्यतः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yadātmamaričasyāntaścittvāttīkṣṇatvavedanam | tadahaṃtādi bhedādi deśakālādi cetayataḥ ||1||

Sri Vasishtha said: within a peppercorn itself, the feel of sharpness comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of place and time all come from being known by that same awareness.

श्री वसिष्ठ ने कहा: मिर्च के दाने में तीखेपन का एहसास उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और जगह व समय का भाव भी उसी चेतना से जाने जाने के कारण पैदा होते हैं।

5.57.2

यदात्मलवणस्यान्तश्चित्त्वाल्लवणवेदनम् । तदहंतादि भेदादि देशकालादि मत्स्थितम् ॥ २ ॥

yadātmalavaṇasyāntaścittvāllavaṇavedanam | tadahaṃtādi bhedādi deśakālādi matsthitam ||2||

Within salt itself, the feel of saltiness comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of place and time all rest in me.

नमक में नमकीनपन का एहसास उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और जगह व समय का भाव मुझमें ही टिका है।

5.57.3

स्वतो यदन्तरात्मेक्षोश्चित्त्वान्माधुर्यवेदनम् । तदहंतादि भेदादि जगत्तत्त्वादि जृम्भितम् ॥ ३ ॥

svato yadantarātmeśościttvānmādhuryavedanam | tadahaṃtādi bhedādi jagattattvādi jṛmbhitam ||3||

By itself, within sugarcane, the feel of sweetness comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of the world and its elements have all unfolded from that awareness.

गन्ने में मिठास का एहसास अपने आप उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और संसार व उसके तत्वों का भाव भी उसी चेतना से खिल उठा है।

5.57.4

स्वतो यदात्मदृषदश्चित्त्वात्काठिन्यवेदनम् । तदहंतादि भेदादि देशकालादितां गतम् ॥ ४ ॥

svato yadātmadṛṣadaścittvātkāṭhinyavedanam | tadahaṃtādi bhedādi deśakāladitāṃ gatam ||4||

By itself, within a stone, the feel of hardness comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of place and time have come to exist in just this way.

पत्थर में कठोरपन का एहसास अपने आप उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और जगह व समय का भाव भी ठीक इसी तरह से बना है।

5.57.5

स्वतो यदात्मशैलस्य ज्ञतया जाड्यवेदनम्। तदहंतादि भेदादि भुवनादीति संस्थितम्॥ ५॥

svato yadātmaśailasya jñatayā jāḍyavedanam | tadahaṃtādi bhedādi bhuvanādīti saṃsthitam || 5 ||

By itself, within a mountain, the feel of dullness comes through the knowing awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of the world stands there in just the same way.

पहाड़ में जड़ता का एहसास अपने आप उसके भीतर की जानने वाली चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और संसार का भाव भी ठीक इसी तरह टिका हुआ है।

5.57.6

स्वतो यदात्मतो यस्य चिद्द्रवत्वादिवर्तनम्। तदावर्ताद्यहंतादिभेदाद्याकारिता इव॥ ६॥

svato yadātmato yasya ciddravatvādivartanam | tadāvartādyahaṃtādibhedādyākāritā iva || 6 ||

In water, by its own nature, awareness turns into fluidity, and out of that fluidity into whirlpools. In the same way, that awareness takes the shape of 'I' and of difference, as if it had truly turned into those things.

पानी में अपने आप चेतना बहाव का रूप ले लेती है, और उसी बहाव से भँवर बन जाते हैं। उसी तरह वह चेतना 'मैं' का और अंतर का रूप ले लेती है, मानो सचमुच वही बन गई हो।

5.57.7

स्वतो यदात्मवृक्षस्य शाखादिस्तस्य वेदनम्। तदहंतादि भेदादि भुवनादीव सत्स्फुरत्॥ ७॥

svato yadātmavṛkṣasya śākhādistasya vedanam | tadahaṃtādi bhedādi bhuvanādīva satsphurat || 7 ||

By itself, within a tree, the branches and the rest are felt as its own. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of the world shine out, real, like the branches of that very tree.

पेड़ में उसकी अपनी शाखाएँ वगैरह उसी की महसूस होती हैं। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और संसार का भाव भी सच्चे रूप में उसी पेड़ की शाखाओं जैसे चमक उठते हैं।

5.57.8

यदात्मगगनस्यान्तश्चित्त्वाच्छून्यत्ववेदनम्। तदहंतादि भेदादि भुवनादीति भावनम्॥ ८॥

yadātmagaganasya antaścittvācchūnyatvavedanam | tadahaṃtādi bhedādi bhuvanādīti bhāvanam || 8 ||

Within the sky itself, the feel of empty space comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of the world comes to be felt in just the same manner.

आकाश में खालीपन का एहसास उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और संसार का भाव भी ठीक उसी तरह महसूस होता है।

5.57.9

यदात्मगगनस्यान्तश्चित्त्वात्सौषिर्यवेदनम्। तदहंतादि भेदादि शरीरादि च दीपितम्॥ ९॥

yadātmagaganasya antaścittvātsauṣiryavedanam | tadahaṃtādi bhedādi śarīrādi ca dīpitam || 9 ||

Within the sky itself, the feel of hollow space comes from the awareness inside it. In the same way, the feeling of 'I,' of difference, and of the body and the rest, shine out lit up from it.

आकाश में खोखलेपन का एहसास उसके भीतर की चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव, अंतर का भाव, और शरीर वगैरह का भाव भी उसी से जगमगा उठते हैं।

5.57.10

स्वतो यदात्मकुड्यस्य नैरन्तर्यं निरन्तरम्। तदहंतादिभेदेन चित्ताद्बहिरिव स्थितम्॥ १०॥

svato yadātmakuḍyasya nairantaryaṃ nirantaram | tadahaṃtādibhedena cittādvahiriva sthitam || 10 ||

A wall, by its own nature, is unbroken and continuous throughout, without a gap. In the same way, that same continuous reality, through the difference made by the sense of 'I' and the rest, comes to seem as if it stood outside the mind.

दीवार अपने आप में शुरू से आख़िर तक बिना किसी टूट के लगातार बनी रहती है। उसी तरह वही निरंतर सच्चाई, 'मैं' के भाव और अंतर के भाव के कारण, ऐसी लगने लगती है मानो वह मन से बाहर खड़ी हो।

5.57.11

स्वतो यदात्मसत्तायाश्चित्त्वात्सत्त्वैकवेदनम्। तदहंतादि भेदादि चेतनानीतिवत्स्थितम्॥ ११॥

svato yadātmasattāyāścittvātsattvaikavedanam | tadahaṃtādi bhedādi cetanānītivatsthitam || 11 ||

Existence itself, by its own nature, has one single feel of simply being, and this comes from awareness. In the same way, the feeling of 'I' and of difference stand there as if they were separate living beings.

होने का भाव अपने आप में बस एक ही जैसा है, और यह चेतना से आता है। उसी तरह 'मैं' का भाव और अंतर का भाव ऐसे खड़े हो जाते हैं मानो वे अलग-अलग जीव हों।

5.57.12

अन्तरात्मप्रकाशस्य स्वतो यदवभासनम्। तदहंतादि चित्त्वादि जीव इत्येव वेद सः॥ १२॥

antarātmaprakāśasya svato yadavabhāsanam | tadahaṃtādi cittvādi jīva ityeva veda saḥ || 12 ||

The inner light of the Self shines out by its own nature. That very shining, taken as the feeling of 'I' and the feeling of being aware, is what a person then knows as 'a living being.'

आत्मा का भीतरी प्रकाश अपने आप चमकता है। उसी चमक को जब 'मैं' के भाव और चेतन होने के भाव के रूप में लिया जाता है, तो इंसान उसे 'जीव' के नाम से जानने लगता है।

5.57.13

अन्तरस्ति यदात्मेन्दोश्चिद्रूपं चिद्रसायनम्। स्वत आस्वादितं तेन तदहंतादिनोदितम्॥ १३॥

antarasti yadātmendōścidrūpaṃ ciddrasāyanam | svata āsvāditaṃ tena tadahaṃtādinoditam || 13 ||

Within the moon of the Self there is its own true nature, pure awareness, a nectar of consciousness. That nectar, tasted by the Self itself, rises up as the feeling of 'I' and the rest.

आत्मा रूपी चाँद के भीतर उसका अपना असली रूप है, यानी शुद्ध चेतना, चेतना का अमृत। उसी अमृत को आत्मा खुद चखती है, और वहीं से 'मैं' का भाव वगैरह उठ खड़ा होता है।

5.57.14

परमात्मगुडस्यान्तर्यच्चित्स्वादूदयात्मकम्। तदेवास्वाद्यते तेन स्वतोऽहंतादि नान्तरे॥ १४॥

paramātmaguḍasyāntaryaccitsvādūdayātmakam | tadevāsvādyate tena svato'haṃtādi nāntare || 14 ||

Within the jaggery of the Supreme Self, a sweetness of awareness rises up on its own. It is that very sweetness that is tasted, and so the feeling of 'I' is not something separate from it.

परम आत्मा रूपी गुड़ के भीतर चेतना की मिठास अपने आप उठती है। चखा भी वही मिठास जाता है, इसलिए 'मैं' का भाव उससे अलग कोई चीज़ नहीं है।

5.57.15

परमात्ममणेश्चित्त्वाद्यदन्तः कचनं स्वयम्। चेतनात्मपदे चान्तरहमित्यादि वेत्त्यसौ ॥ १५ ॥

paramātmamaṇeścittvādyadantaḥ kacanaṃ svayam | cetanātmapade cāntarahamityādi vetyasau || 15 ||

The jewel of the Supreme Self shines from within by its own awareness. And it is in that very state of being a conscious self that it knows, from within, the thought 'I,' and all that follows from it.

परम आत्मा रूपी रत्न अपनी चेतना से भीतर ही भीतर चमकता है। और चेतन आत्मा की उसी अवस्था में वह भीतर से 'मैं' के विचार को और उससे जुड़ी बाकी बातों को जानता है।

5.57.16

न च किंचन वेत्त्यन्तर्वेद्यस्यासंभवादिह न चास्वादयति स्वादु स्वाद्यस्यासंभवादयम् ॥ १६ ॥

na ca kiṃcana vetti antarvedyasyāsaṃbhāvādiha na cāsvādayati svādu svādyasyāsaṃbhāvādayam || 16 ||

And yet it really knows nothing within, because there is no separate thing there to be known. And it tastes no sweetness either, because there is no separate thing there to be tasted.

फिर भी सच में वह भीतर कुछ नहीं जानता, क्योंकि वहाँ जानने के लिए कोई अलग चीज़ है ही नहीं। और वह कोई मिठास भी नहीं चखता, क्योंकि वहाँ चखने के लिए भी कोई अलग चीज़ नहीं है।

5.57.17

न च किंचिच्चिनोत्यन्तश्चेत्यस्यासंभवे सति विन्दते न च वा किंचिद्वेद्यस्यासंभवादसौ ॥ १७ ॥

na ca kiṃciccinotyantaścetyasyāsaṃbhāve sati vindate na ca vā kiṃcidvedyasyāsaṃbhāvādasau || 17 ||

And it perceives nothing within itself either, because there is nothing there that could be perceived. And it finds nothing, because there is nothing there that could be found.

और वह अपने भीतर कुछ महसूस भी नहीं करता, क्योंकि वहाँ महसूस करने लायक कुछ है ही नहीं। और उसे कुछ मिलता भी नहीं, क्योंकि वहाँ पाने लायक भी कुछ नहीं है।

5.57.18

असदाभास एवात्मा अनन्तो भरिताकृतिः स्थितः सदैवैकघनो महाशैल इवात्मनि ॥ १८ ॥

asadābhāsa evātmā ananto bharitākṛtiḥ sthitaḥ sadaivaikaghano mahāśaila ivātmani || 18 ||

The Self only seems to hold what is unreal within it. In truth it is endless, whole and complete, standing forever as one single solid mass, like a great mountain resting within itself.

आत्मा में जो कुछ भी असली नहीं है, वह बस दिखाई भर देता है। असल में आत्मा अनंत है, पूरी तरह भरी हुई है, और हमेशा एक ठोस पिंड की तरह टिकी रहती है, जैसे कोई बड़ा पहाड़ अपने भीतर ही खड़ा हो।

5.57.19

अनया तु वचोभङ्ग्या मया ते रघुनन्दन नाहंतादिजगत्तादिभेदोस्तीति निदर्शितम् ॥ १९ ॥

anayā tu vacobhaṅgyā mayā te raghunandana nāhaṃtādijagattādibhedostīti nidarśitam || 19 ||

With this manner of speaking, Raghunandana, I have shown you that there is no real difference made of 'I,' of the world, and the rest.

हे रघुनंदन, इसी तरह बोलकर मैंने तुम्हें दिखाया है कि 'मैं' और संसार वगैरह का यह भेद असल में है ही नहीं।

5.57.20

न चित्तमस्ति नो चेता न जगत्तादिविभ्रमः वृष्टमूकाम्बुदसितं शान्तं शाम्यति केवलम् ॥ २० ॥

na cittamasti no cetā na jagattādivibhramaḥ vṛṣṭamūkāmbudasitaṃ śāntaṃ śāmyati kevalam || 20 ||

There is no mind, no perceiver, and no confusion made of the world and the rest. Like a silent rain cloud that has poured out its rain and turned clear, everything that is at peace simply settles into peace alone.

न कोई मन है, न कोई देखने वाला, न संसार वगैरह का कोई भ्रम है। जैसे बरस चुका बादल चुप और साफ़ हो जाता है, वैसे ही जो शांत है वह बस अपने आप शांति में ही टिक जाता है।

5.57.21

यथावर्तादितामेति द्रवत्वाद्वारि वारिणि । तदाहंतादितामेति ज्ञप्ता ज्ञप्तौ ज्ञ आत्मनि ॥ २१ ॥

yathāvartāditāmeti dravatvādvāri vāriṇi | tadāhaṃtāditāmeti jñaptā jñaptau jña ātmani || 21 ||

Just as water, because of its own fluidity, takes the shape of a whirlpool and the rest within water itself, so too the knower, within its own knowing, takes the shape of 'I' and the rest, within the Self.

जैसे पानी अपने बहाव के कारण पानी के भीतर ही भँवर वगैरह का रूप ले लेता है, वैसे ही जानने वाला अपनी जानकारी के भीतर ही आत्मा में 'मैं' वगैरह का रूप ले लेता है।

5.57.22

यथा द्रवत्वं पयसि यथा स्पन्दः सदागतौ । अहंतादेशकालादि तथा ज्ञे ज्ञप्तिमात्रके ॥ २२ ॥

yathā dravatvaṃ payasi yathā spandaḥ sadāgatau | ahaṃtādeśakālādi tathā jñe jñaptimātrake || 22 ||

As fluidity exists in water, as movement exists in the ever-blowing wind, so the feeling of 'I,' of place, of time, and the rest exist in the knower, in the bare act of knowing itself.

जैसे पानी में बहाव होता है, जैसे लगातार बहती हवा में हलचल होती है, वैसे ही 'मैं' का भाव, जगह और समय वगैरह का भाव, जानने वाले में, यानी सिर्फ़ जानने की क्रिया में ही होता है।

5.57.23

ज्ञो ज्ञतायां शिव ज्ञानं जानाति ज्ञानबृंहया । ज्ञायतेऽहंतदि ज्ञेन जीवादीत्यभिजीवनैः ॥ २३ ॥

jño jñatāyāṃ śiva jñānaṃ jānāti jñānabṛṃhayā | jñāyate'haṃtadi jñena jīvādītyabhijīvanaiḥ || 23 ||

The knower, who is Shiva, comes to know knowledge in the state of knowing, through the growing of that very knowledge. Through that knower, the feeling of 'I' becomes known as 'a living being' and the rest, through the very things that make it feel alive.

जानने वाला, जो शिव ही है, जानने की अवस्था में उसी ज्ञान के बढ़ने से ज्ञान को जान लेता है। उसी जानने वाले के ज़रिए 'मैं' का भाव 'जीव' वगैरह के रूप में जाना जाता है, उन्हीं चीज़ों से जो उसे जीवित होने का एहसास देती हैं।

5.57.24

यथोदेति ययाऽज्ञस्य तृप्तिर्ज्ञानेन यादृशी । अनन्ये वान्यता बुद्धा स तथा जृम्भते तया ॥ २४ ॥

yathodeti yayā'jñasya tṛptirjñānena yādṛśī | ananye vānyatā buddhā sa tathā jṛmbhate tayā || 24 ||

Just as some kind of satisfaction rises up for an ignorant person through whatever knowledge he gains, so too, where there is truly no other thing at all, the mere idea of 'another' unfolds and grows in that very same way.

जैसे किसी अनजान इंसान को जो भी ज्ञान मिलता है, उससे उसे कुछ न कुछ संतोष मिल जाता है, वैसे ही जहाँ सच में कोई दूसरी चीज़ है ही नहीं, वहाँ भी 'कुछ और है' यह खयाल उसी तरह उठकर फैल जाता है।

5.57.25

जीवनं ज्ञातता ज्ञाता जीवनं जीवजीवनम्। अत्यन्तमस्ति नो भेदश्चिद्रूपत्वे ज्ञजीवयोः ॥ २५ ॥

jīvanaṃ jñātatā jñātā jīvanaṃ jīvajīvanam | atyantamasti no bhedaścidrūpatve jñajīvayoḥ || 25 ||

Life is simply being known, the knower is life, and the living being's life is that very same knowing. Between the knower and the living being there is, in their true nature as awareness, no difference at all.

जीवन बस जाना जाना ही है, जानने वाला ही जीवन है, और जीव का जीवन भी वही जानना है। जानने वाले और जीव के बीच, उनके असली स्वरूप यानी चेतना में, कोई अंतर है ही नहीं।

5.57.26

यथा ज्ञजीवयोर्नास्ति भेदो नाम तथैतयोः। भेदोऽस्ति न ज्ञशिवयोर्विद्धि शान्तमखण्डितम्॥ २६ ॥

yathā jñajīvayornāsti bhedo nāma tathaitayoḥ | bhedo'sti na jñśivayorvidhdi śāntamakhaṇḍitam || 26 ||

Just as there is truly no difference between the knower and the living being, so it is between the knower and Shiva as well, there is no difference at all. Know this as one peaceful, unbroken reality.

जैसे जानने वाले और जीव के बीच सच में कोई अंतर नहीं है, वैसे ही जानने वाले और शिव के बीच भी कोई अंतर नहीं है। इसे एक शांत और अखंड सच्चाई जानो।

5.57.27

सर्वं प्रशान्तमजमेकमनादिमध्यमाभास्वरं स्वदनमात्रमचेत्यचिह्नम्। सर्वं प्रशान्तमिति शब्दमयी तु दृष्टिर्बोधार्थमेव हि मुधैव तदोमितीदम्॥ २७ ॥

sarvaṃ praśāntamajamekamanādimadhyamābhāsvaraṃ svadanamātramacetyacihnam | sarvaṃ praśāntamiti śabdamayī tu dṛṣṭirbodhārthameva hi mudhaiva tadomitīdam || 27 ||

Everything is utterly at peace: unborn, one, without beginning or middle, radiant, a mere taste of itself, beyond thought, without any mark. Yet even this saying, 'everything is at peace,' is only made of words, given only to help one understand; and even that, and the word Om itself, are said only for that same purpose, in the end empty of any final meaning.

सब कुछ पूरी तरह शांत है: बिना जन्मे, एक, बिना शुरुआत और बीच के, चमकता हुआ, बस अपना ही स्वाद, सोच से परे, बिना किसी निशान के। फिर भी यह कहना कि 'सब कुछ शांत है', सिर्फ़ शब्दों में कहा गया है, और यह सिर्फ़ समझाने के लिए कहा गया है; यहाँ तक कि 'ॐ' शब्द भी बस इसी मक़सद से कहा गया है, आख़िर में यह सब बस समझाने भर के लिए है, अपने आप में इसका कोई अंतिम मतलब नहीं है।

Chapter 58

5.58.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । किरातेशस्य सुरघोर्वृत्तान्तं विस्मयास्पदम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atraivodāharantīmamitihāsaṃ purātanam | kirāteśasya suraghorvṛttāntaṃ vismayāspadam ||1||

Sri Vasishtha said: Right here, people tell this old story, the wondrous account of Suraghu, the lord of the Kiratas.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इसी बारे में लोग एक पुरानी कहानी सुनाते हैं, किरातों के राजा सुरघु की अनोखी कहानी।

5.58.2

उत्तरस्या दिशो मेदः कर्पूरपटल भुवः । संभूतं हसनं शार्वं शुक्लो वा चान्द्र आतपः ॥ २ ॥

uttarasyā diśo medaḥ karpūrapaṭala bhuvaḥ | saṃbhūtaṃ hasanaṃ śārvaṃ śuklo vā cāndra ātapaḥ ||2||

There seemed to be, formed from a mass of camphor, the very fat of the northern quarter, or Shiva's laughter, or perhaps the white light of the moon.

वहाँ मानो उत्तर दिशा की चर्बी कपूर के ढेर से बनी हो, या शिव की हँसी हो, या फिर चाँद की सफेद रोशनी हो।

5.58.3

हिमाद्रेः श्रृङ्गमस्तीह कैलासो नाम पर्वतः । शैलकुञ्जरनिर्मुक्तकलापस्येव नायकः ॥ ३ ॥

himādreḥ śṛṅgamastīha kailāso nāma parvataḥ | śailakuñjaranirmuktakalāpasyeva nāyakaḥ ||3||

There is here a peak of the Himalaya, a mountain called Kailasa, like the finest pearl come loose from a cluster shed by a mountain elephant.

यहाँ हिमालय की एक चोटी है, जिसका नाम कैलास पर्वत है, मानो किसी पहाड़ जैसे बड़े हाथी के गिराए हुए मोतियों के गुच्छे से छूटा हुआ सबसे बड़ा मोती हो।

5.58.4

विष्णोः क्षीरोद इव स्वर्गः सुरपतेरिव । अब्जजस्येव नाभ्यब्जं गृहं यः शशिमौलिनः ॥ ४ ॥

viṣṇoḥ kṣīroda iva svargaḥ surapateriva | abjajasyeva nābhyabjaṃ gṛhaṃ yaḥ śaśimaulinaḥ ||4||

It is the home of Shiva, who wears the moon on his head — as dear to him as the Ocean of Milk is to Vishnu, as heaven is to the king of gods, as the lotus of the navel is to the lotus-born Brahma.

यह शिव का घर है, जो अपने सिर पर चाँद रखते हैं - यह उन्हें उतना ही प्रिय है जितना विष्णु को क्षीर सागर प्रिय है, देवताओं के राजा को स्वर्ग प्रिय है, और कमल से जन्मे ब्रह्मा को अपनी नाभि का कमल प्रिय है।

5.58.5

रुद्राक्षवृक्षदोलाभिः साप्सरोभिर्विभाति यः । लोलरत्नशलाकाभिर्लहरीभिरिवार्णवः ॥ ५ ॥

rudrākṣavṛkṣadolābhiḥ sāpsarobhirvibhāti yaḥ | lolaratnaśalākābhirlaharībhirivārṇavaḥ ||5||

It shines with swings hung from rudraksha trees, with apsaras on them, like an ocean whose waves flash with restless streaks of jewels.

यह रुद्राक्ष के पेड़ों पर बँधे झूलों से चमकता है, जिन पर अप्सराएँ झूलती हैं, मानो कोई समुद्र हो जिसकी लहरें बेचैन रत्नों की धारियों से चमक रही हों।

5.58.6

गणाङ्गनानामनिशं मत्तानां चरणैर्हताः । अशोका इव राजन्ते यत्राशोका विलासिनः ॥ ६ ॥

gaṇāṅganānāmaniśaṃ mattānāṃ caraṇairhatāḥ | aśokā iva rājante yatrāśokā vilāsinaḥ || 6 ||

There, the playful ashoka trees, struck again and again by the feet of Shiva's joyful attendant women, shine as if they truly had no sorrow.

वहाँ अशोक के मस्ती भरे पेड़, शिव की मस्त सेविकाओं के पैरों की बार-बार की चोट से, ऐसे चमकते हैं मानो उन्हें सचमुच कोई दुख न हो।

5.58.7

संचरन्शङ्करो दिक्षु भृगुष्विन्दुमणिद्रवैःनिवर्तन्ते प्रवर्तन्ते यत्राजस्रं च निर्झराः ॥ ७ ॥

saṃcaranśaṃkaro dikṣu bhṛguṣvindumaṇidravaiḥnivartante pravartante yatrājasraṃ ca nirjharāḥ || 7 ||

There Shankara wanders over the cliffs in every direction, amid streams flowing from moonstones, and there the waterfalls endlessly stop and start again.

वहाँ शंकर चंद्रकांत मणियों से बहती धाराओं के बीच, हर दिशा की चट्टानों पर घूमते हैं, और वहाँ के झरने बिना रुके कभी थमते और कभी फिर बहने लगते हैं।

5.58.8

यो लतावृक्षगुल्मौघवापीहृदनदीनदैः । मृगैर्मृगगणैर्भूतैर्ब्रह्माण्डवदिवावृतः ॥ ८ ॥

yo latāvṛkṣagulmaughavāpīhṛdanadīnadaiḥ | mṛgairmṛgagaṇairbhūtairbrahmāṇḍavadivāvṛtaḥ || 8 ||

Covered with creepers, trees, shrubs, torrents, pools, lakes, rivers and streams, with deer, herds of deer, and living creatures, it looks as if it were wrapped around like the whole universe itself.

यह लताओं, पेड़ों, झाड़ियों, तेज़ धाराओं, बावड़ियों, तालाबों, नदियों और नालों से ढका है, हिरणों, हिरणों के झुंडों और तरह-तरह के जीवों से भरा है, और ऐसा लगता है मानो यह पूरा ब्रह्मांड ही लपेटकर रखा गया हो।

5.58.9

तस्य हेमजटा नाम किराताः संस्थिताः स्थले । पिपीलिका वटतरोर्मूलकोशगता इव ॥ ९ ॥

tasya hemajaṭā nāma kirātāḥ saṃsthitāḥ sthale | pipīlikā vaṭatarormūlakośagatā iva || 9 ||

At its foot lived the Kiratas called Hemajata, settled there like ants gathered in the hollow at the root of a banyan tree.

उसके नीचे हेमजटा नाम के किरात रहते थे, वहाँ ऐसे बसे हुए थे जैसे चींटियाँ बरगद के पेड़ की जड़ के खोखले हिस्से में जा बसती हैं।

5.58.10

कैलासपादारण्यानां रुद्राक्षैस्तरुगुल्मकैः । वसन्ति घूकवत्क्षुद्रास्ते वै निकटजीविनः ॥ १० ॥

kailāsapādāraṇyānāṃ rudrākṣaistarugulmakaiḥ | vasanti ghūkavatkṣudrāste vai nikaṭajīvinaḥ || 10 ||

In the forests at the foot of Kailasa, thick with rudraksha trees and shrubs, they lived small like owls, dwelling close by.

कैलास की तलहटी के जंगलों में, जो रुद्राक्ष के पेड़ों और झाड़ियों से भरे थे, वे उल्लुओं की तरह छोटे बनकर रहते थे, पास ही बसे हुए।

5.58.11

आसीत्तेषामुदारात्मा राजा परपुरंजयः । जयलक्ष्म्या भुज इव यः प्रजायाश्च दक्षिणः ॥ ११ ॥

āsītteṣāmudārātmā rājā parapuraṃjayaḥ | jayalakṣmyā bhuja iva yaḥ prajāyāśca dakṣiṇaḥ || 11 ||

Among them there was a noble-hearted king, a conqueror of enemy cities, like the very arm of the goddess of Victory, kind to his people.

उनमें एक बड़े दिल वाला राजा था, जो शत्रुओं के नगर जीतने वाला था, मानो विजय की देवी की भुजा हो, और अपनी प्रजा के प्रति दयालु था।

5.58.12

सुरघुर्नाम बलवान्सुरघोरारिदर्पहा । अर्कः पराक्रम इव मूर्तिमानिव मारुतः ॥ १२ ॥

suraghurnāma balavānsuraghorāridarpahā | arkaḥ parākrama iva mūrtimāniva mārutaḥ || 12 ||

Named Suraghu, he was mighty, a destroyer of the pride of the gods' terrible enemies, like the sun in his valor, like the wind-god given a body.

उसका नाम सुरघु था, वह बहुत बलवान था, देवताओं के डरावने दुश्मनों का घमंड तोड़ने वाला था, अपने पराक्रम में सूरज जैसा था, जैसे हवा के देवता ने खुद शरीर ले लिया हो।

5.58.13

जितो वै राज्यविभवैर्धनैर्गुह्यकनायकः । शतक्रतुगुरुर्बोधैः काव्यैरसुरदेशिकः ॥ १३ ॥

jito vai rājyavibhavairdhanairguhyakanāyakaḥ | śatakratugururbodhaiḥ kāvyairasuradeśikaḥ || 13 ||

In the wealth and splendor of his kingdom, he outdid Kubera, the lord of the Guhyakas; in wisdom he outdid Brihaspati, the teacher of Indra; in eloquence he outdid Shukra, the teacher of the demons.

अपने राज्य के ऐश्वर्य और धन में उसने गुह्यकों के स्वामी कुबेर को पीछे छोड़ दिया; अपनी बुद्धि में उसने इंद्र के गुरु बृहस्पति को पीछे छोड़ दिया; अपनी वाणी की कुशलता में उसने असुरों के गुरु शुक्राचार्य को पीछे छोड़ दिया।

5.58.14

स चक्रे राजकार्याणि निग्रहानुग्रहक्रमैः । यथाप्राप्तान्यखिन्नाङ्गो दिनानीव दिवाकरः ॥ १४ ॥

sa cakre rājakāryāṇi nigrahānugrahakramaiḥ | yathāprāptānyakhinnāṅgo dinānīva divākaraḥ || 14 ||

He carried out his royal duties, through punishment and reward, as they came, tirelessly, like the sun going through its days.

वह राजा के काम - दंड देना और कृपा करना - जैसे-जैसे आते, बिना थके करता रहता था, ठीक जैसे सूरज अपने दिन बिना रुके पूरा करता है।

5.58.15

तज्जाभ्यां सुखदुःखाभ्यामथ तस्याभ्यभूयत । स्वगतिर्वागुराबन्धैः श्लिष्टाङ्गस्येव पक्षिणः ॥ १५ ॥

tajjābhyāṃ sukhaduḥkhābhyāmatha tasyābhyabhūyata | svagatirvāgurābandhaiḥ śliṣṭāṅgasyaiva pakṣiṇaḥ || 15 ||

Then, from the pleasure and pain born of these acts, he lost his own freedom of movement, like a bird whose body is caught fast in the bonds of a net.

फिर, इन कामों से जन्मे सुख और दुख के कारण, उसने अपनी चलने-फिरने की आज़ादी खो दी, ठीक जैसे कोई पक्षी जिसका शरीर जाल के बंधनों में फँस जाए।

5.58.16

किमार्तं पीडयाम्येनं तिलान्यन्त्रमिवौजसा । सर्वेषामेव भूतानां ममेवार्तिः प्रजायते ॥ १६ ॥

kimārtaṃ pīḍayāmyenaṃ tilānyantramivaujasā | sarveṣāmeva bhūtānāṃ mamevārtiḥ prajāyate || 16 ||

Why do I torment him with such force, like a press crushing sesame seeds? Whenever any being suffers, I feel that same pain as my own.

मैं उसे इतनी ताकत से क्यों सता रहा हूँ, जैसे कोल्हू तिल पीसता है? जब भी कोई भी जीव दुखी होता है, मुझे वही दुख अपना लगता है।

5.58.17

धनमस्मै प्रयच्छामि धनेनानन्दवाञ्जनः । भवत्यहमिवाशेषस्तदलं मेऽतिनिग्रहैः ॥ १७ ॥

dhanamasmai prayacchāmi dhanenānandavāñjanaḥ | bhavatyahamivāśeṣastadalaṃ me'tinigrahaiḥ || 17 ||

I give him wealth; wealth makes a person joyful and whole, just as it would me. So let there be no more of this excessive punishment for me.

मैं उसे धन देता हूँ; धन से आदमी खुश और संतुष्ट हो जाता है, ठीक जैसे मैं भी हो जाऊँगा। तो अब मेरे लिए इतना ज़्यादा दंड देना बंद।

5.58.18

अथवा निग्रहं प्राप्तं करोम्येतेन वै विना । वर्तते न प्रजैवेयं विना वारि सरिद्यथा ॥ १८ ॥

athavā nigrahaṃ prāptaṃ karomye tena vai vinā | vartate na prajaiveyaṃ vinā vāri saridyathā || 18 ||

Or else, I give the punishment that is due; for without it, these people cannot go on, just as a river cannot flow without water.

या फिर, मैं वही दंड देता हूँ जो देना ज़रूरी है; क्योंकि इसके बिना यह प्रजा नहीं चल सकती, ठीक जैसे नदी पानी के बिना नहीं बह सकती।

5.58.19

हा कष्टमेव निग्राह्यो नित्यानुग्राह्य एष मे । दिष्ट्याद्य सुखवानस्मि कष्टमद्यास्मि दुःखवान् ॥ १९ ॥

hā kaṣṭameva nigrāhyo nityānugrāhya eṣa me | diṣṭyādya sukhavānasmik kaṣṭamadyāsmi duḥkhavān || 19 ||

Alas, how hard this is — this man must be punished, and yet he is one I must always protect. Luckily, today I am happy; and yet, today I am also in pain.

हाय, यह कितना कठिन है - इस आदमी को दंड भी देना है, और फिर भी यह वही है जिसकी मुझे हमेशा रक्षा करनी है। अच्छी बात है कि आज मैं खुश हूँ; और फिर भी आज मैं दुखी भी हूँ।

5.58.20

इति दोलायितं चेतो न विशश्राम भूपतेः । एकत्राम्बुमहावर्ते चिरतृष्णमिव भ्रमत् ॥ २० ॥

iti dolāyitaṃ ceto na viśaśrāma bhūpateḥ | ekatrāmbumahāvarte ciratṛṣṇamiva bhramat || 20 ||

So the king's mind swung back and forth and found no rest, whirling in one spot like a creature, long thirsty, caught spinning in a great whirlpool of water.

इस तरह राजा का मन झूलता रहा और उसे कहीं चैन न मिला, वह एक ही जगह पर ऐसे घूमता रहा जैसे कोई प्यास से तड़पता जीव किसी बड़े भँवर में फँसकर घूमता रहे।

5.58.21

अथैकदा गृहं तस्य माण्डव्यो मुनिराययौ । भ्रान्ताशेषककुप्कुञ्जो वासवस्यव नारदः ॥ २१ ॥

athaikadā gṛhaṃ tasya māṇḍavyo munirāyayau | bhrāntāśeṣakakupkuñjo vāsavasyava nāradaḥ || 21 ||

Then one day the sage Mandavya, who had wandered through the groves of every direction, came to his house, like Narada coming to Indra.

फिर एक दिन मुनि माण्डव्य, जो हर दिशा के जंगलों में घूम चुके थे, उसके घर आए, ठीक जैसे नारद इंद्र के पास आते हैं।

5.58.22

तमसौ पूजयामास पप्रच्छ च महामुनिम् । संदेहदुर्द्रुमस्तम्भपरशुं सर्वकोविदम् ॥ २२ ॥

tamasau pūjayāmāsa papraccha ca mahāmunim | saṃdehadurdrumastambhaparaśuṃ sarvakovidam || 22 ||

He honored him and questioned the great sage — one who was an axe to the trunk of the evil tree of doubt, a man who knew everything.

उसने उनका सम्मान किया और उस महामुनि से सवाल पूछे - जो संदेह के बुरे पेड़ के तने के लिए कुल्हाड़ी के समान थे, जो सब कुछ जानते थे।

5.58.23

सुरघुरुवाच भवदागमनेनास्मि मुने निर्वृतिमागतः । परमां वसुधापीठं संप्राप्त इव माधवे ॥ २३ ॥

suraguruvāca bhavadāgamanenāsmi mune nirvṛtimāgataḥ | paramāṃ vasudhāpīṭhaṃ saṃprāpta iva mādhave || 23 ||

Suraghu said: Sage, by your coming I have found peace, as if I had won the highest throne of the earth in springtime.

सुरघु ने कहा: हे मुनि, आपके आने से मुझे शांति मिली है, मानो मैंने वसंत के मौसम में पृथ्वी का सबसे बड़ा सिंहासन पा लिया हो।

5.58.24

अद्य तिष्ठाम्यहं नाथ धन्यानां धुरि धर्मतः । विकासि रविणेवाब्जं यत्त्वयास्म्यवलोकितः ॥ २४ ॥

adya tiṣṭhāmyahaṃ nātha dhanyānāṃ dhuri dharmataḥ | vikāsi ravinevābjaṃ yattvayāsmyavalokitaḥ || 24 ||

Today, my lord, I rightly stand at the head of the fortunate, blooming like a lotus in the sun, because you have looked upon me.

आज, हे स्वामी, मैं सही मायने में भाग्यशाली लोगों में सबसे आगे खड़ा हूँ, सूरज को पाकर खिलते कमल की तरह, क्योंकि आपने मुझ पर नज़र डाली है।

5.58.25

भगवन्सर्वधर्मज्ञ चिरं विश्रान्तवानसि । तदमुं संशयं छिन्धि ममार्कस्तिमिरं यथा ॥ २५ ॥

bhagavansarvadharmajña ciraṃ viśrāntavānasi | tadamuṃ saṃśayaṃ chindhi mamārkastimiraṃ yathā || 25 ||

Lord, knower of all dharma, you have rested long enough now. So destroy this doubt of mine, the way the sun destroys darkness.

हे भगवन्, सब धर्मों के ज्ञाता, आप बहुत देर तक विश्राम कर चुके हैं। तो मेरे इस संशय को वैसे ही नष्ट कीजिए जैसे सूर्य अंधकार को नष्ट करता है।

5.58.26

महतां संगमेनार्तिः कस्य नाम न नश्यति । संदेहं तु परामार्तिमाहुरार्तिविदो जनाः ॥ २६ ॥

mahatāṃ saṃgamenaārtiḥ kasya nāma na naśyati | saṃdehaṃ tu parāmārtimāhurārtivido janāḥ || 26 ||

By the company of great ones, whose suffering does not vanish? But people who understand suffering call doubt itself the greatest suffering of all.

महापुरुषों की संगति से किसका दुख नष्ट नहीं होता? परंतु दुख को समझने वाले लोग संशय को ही सबसे बड़ा दुख कहते हैं।

5.58.27

मन्निग्रहानुग्रहजा मद्भृत्यवपुषि स्थिताः । कषन्ति मामलं चिन्ता गजं हरिनखा इव ॥ २७ ॥

mannigrahānugrahajā madbhṛtyavapuṣi sthitāḥ | kaṣanti māmalam cintā gajaṃ harinakhā iva || 27 ||

Worries born from my own acts of punishment and favor, worries that live in the persons of my servants, tear at me badly, the way a lion's claws tear at an elephant.

मेरे अपने दंड और कृपा से उपजी चिंताएँ, जो मेरे सेवकों के शरीर में बसी रहती हैं, मुझे बुरी तरह नोचती हैं, जैसे शेर के पंजे हाथी को नोचते हैं।

5.58.28

तद्यथा समतोदेति सूर्यांशुरिव सर्वदा । मतौ मम मुने नान्या तथा करुणया कुरु ॥ २८ ॥

tadyathā samatodeti sūryāṃśuriva sarvadā | matau mama mune nānyā tathā karuṇayā kuru || 28 ||

So do this with compassion, sage: make an evenness rise in my mind always, the way the sun's rays rise evenly. I have no other way.

इसलिए हे मुनि, कृपा करके ऐसा कीजिए कि मेरे मन में सदा वही समता उदय हो, जैसे सूर्य की किरणें सदा समान रूप से उदय होती हैं; मेरे पास और कोई उपाय नहीं है।

5.58.30

स्वविचारणयैवाशु शाम्यत्यन्तर्मनोज्वरः । शरदागममात्रेण मिहिका महती यथा ॥ ३० ॥

svavicāraṇayaivāśu śāmyatyantarmanojvaraḥ | śaradāgamamātreṇa mi hikā mahatī yathā || 30 ||

Through inquiry into yourself alone, the fever inside the mind quickly cools, the way a heavy fog clears the moment autumn arrives.

अपने विषय में विचार करने मात्र से ही मन का भीतरी ताप शीघ्र शांत हो जाता है, जैसे शरद ऋतु आते ही घना कोहरा छँट जाता है।

5.58.31

स्वेनैव मनसा स्वानि स्वशरीरगतानि च । विचारयेन्द्रियाण्यन्तः कीदृशान्यथ कानि च ॥ ३१ ॥

svenaiva manasā svāni svaśarīragatāni ca | vicārayendriyāṇyantaḥ kīdṛśānyatha kāni ca || 31 ||

With your own mind, examine within yourself your own senses that dwell in your own body, what they are really like, and what they are.

अपने ही मन से, अपने शरीर में स्थित अपनी इंद्रियों की भीतर से जाँच करो कि वे वास्तव में कैसी हैं और क्या हैं।

5.58.32

कोऽहं कथमिदं किंवा कथं मरणजन्मनी । विचारयान्तरेवं त्वं महत्तामलमेष्यसि ॥ ३२ ॥

ko'haṃ kathamidaṃ kiṃvā kathaṃ maraṇajanmanī | vicārayāntarevaṃ tvaṃ mahattāmalameṣyasi || 32 ||

Who am I? What is this world? And how do birth and death happen? Question yourself within like this, and you will surely reach true greatness.

मैं कौन हूँ? यह क्या है? और जन्म तथा मृत्यु कैसे होते हैं? इस प्रकार भीतर ही भीतर विचार करो, तो तुम अवश्य ही सच्ची महानता को प्राप्त करोगे।

5.58.33

विचारणा परिज्ञातस्वभावस्य सतस्तवहर्षामर्षदशाश्चेतस्तोलयिष्यन्ति नाचलम् ॥ ३३ ॥

vicāraṇā parijñātasvabhāvasya satastavaharṣāmarṣadaśāścetastolayiṣyanti nācalam || 33 ||

For you, once you have fully understood your true nature through this inquiry, moods of joy and anger will no longer shake your mind, it will stay unmoved.

इस विचार से जब तुम अपने वास्तविक स्वभाव को पूरी तरह जान लोगे, तो हर्ष और क्रोध की अवस्थाएँ तुम्हारे मन को फिर कभी नहीं हिला पाएँगी, वह अडिग बना रहेगा।

5.58.34

मनः कृष्णमृत्सृज्य शममेष्यति विज्वरम्। भूतपूर्ववपुर्भूत्वा तरङ्गः पयसीव ते ॥ ३४ ॥

manaḥ kṛṣṇamṛtsṛjya śamameṣyati vijvaram | bhūtapūrvavapurbhūtvā taraṅgaḥ payasīva te || 34 ||

Once the mind casts off its darkness, it will come to a peace free of fever, becoming, for you, only a shape it once had, the way a wave is only a shape water once took.

जब मन अपने अंधकार को त्याग देगा, तो वह ऐसी शांति पाएगा जिसमें कोई ताप नहीं होगा, और तुम्हारे लिए वह बस एक पुराना रूप बनकर रह जाएगा, जैसे लहर पानी का एक पुराना रूप मात्र होती है।

5.58.35

तिष्ठदेव मनोरूपं परित्यक्ष्यति तेऽनघ। कलङ्कविकलं कालं मन्वन्तरगताविव ॥ ३५ ॥

tiṣṭhadeva manorūpaṃ parityakṣyati te'nagha | kalaṅkavikalaṃ kālaṃ manvantaragatāviva || 35 ||

Even while you go on living, this shape of the mind will fall away from you completely, sinless one, like a flawless time slipping into a new age.

हे निष्पाप, तुम्हारे जीवित रहते हुए भी तुम्हारा यह मनरूप तुमसे पूरी तरह छूट जाएगा, ठीक वैसे ही जैसे एक निर्मल समय नए मन्वन्तर में विलीन हो जाता है।

5.58.36

अनुकम्प्या भविष्यन्ति श्रीमन्तः सर्व एव ते। दृष्टतत्त्वस्य तुष्टस्य जनाः पितुरिवावनौ ॥ ३६ ॥

anukampyā bhaviṣyanti śrīmantaḥ sarva eva te | dṛṣṭatattvasya tuṣṭasya janāḥ piturivāvanau || 36 ||

Once you have seen the truth and are content, even all these prosperous people will become fit for your compassion, and people will look to you as they would to a father on earth.

जब तुम सत्य को देख लोगे और संतुष्ट हो जाओगे, तो सब धनवान और भाग्यशाली लोग भी तुम्हारी करुणा के पात्र बन जाएँगे, और लोग तुम्हें वैसे ही देखेंगे जैसे पृथ्वी पर पिता को देखा जाता है।

5.58.37

विवेकदीपदृष्टात्मा मेर्वब्धिनभसामपि। अधो करिष्यसि नृप महत्तामुत्तमार्थदाम् ॥ ३७ ॥

vivekadīpadṛṣṭātmā mervabdhinabhasāmapi | adho kariṣyasi nṛpa mahattāmuttamārthadām || 37 ||

With the lamp of discernment showing you your true self, you will rise above even Mount Meru, the ocean, and the sky, king, reaching a greatness that grants the highest good.

विवेक के दीपक से अपने असली स्वरूप को देखकर, हे राजन, तुम मेरु पर्वत, समुद्र और आकाश से भी ऊँचे उठ जाओगे, ऐसी महानता को पाकर जो सबसे बड़ा कल्याण देती है।

5.58.38

महत्तामागते चेतस्तव संसारवृत्तिषु। न निमज्जति हे साधो गोष्पदेष्विव वारणः ॥ ३८ ॥

mahattāmāgate cetastava saṃsāravṛttiṣu | na nimajjati he sādho goṣpadeṣviva vāraṇaḥ || 38 ||

Once your mind reaches this greatness, good man, it will no longer sink into the affairs of worldly life, just as an elephant does not sink in a puddle the size of a cow's hoof-print.

जब तुम्हारा मन इस महानता को पा लेगा, हे साधु, तो वह संसार के कामों में नहीं डूबेगा, जैसे हाथी गाय के खुर जितने छोटे गड्ढे में नहीं डूबता।

5.58.39

कृपणं तु मनो राजन्पेलवेऽपि निमज्जतिकार्ये गोष्पदतोयेऽपि जीर्णाङ्गो मशको यथा ॥ ३९ ॥

kṛpaṇaṃ tu mano rājanpelave'pi nimajjatikārye goṣpadatoye'pi jīrṇāṅgo maśako yathā || 39 ||

But a small, petty mind, king, sinks even in a trifling matter, the way a feeble, worn-out mosquito drowns even in the water of a cow's hoof-print.

परंतु हे राजन, एक तुच्छ और दीन मन छोटी सी बात में भी डूब जाता है, जैसे एक कमज़ोर और जर्जर मच्छर गाय के खुर के गड्ढे के पानी में भी डूब जाता है।

5.58.40

चेतोवासनया पङ्के कीटवत्परिमज्जसि । दृश्यमात्रावलम्बिन्या स्वया दीनतया तया ॥ ४० ॥

cetovāsanayā paṅke kīṭavatparimajjasi | dṛśyamātrāvalambinyā svayā dīnatayā tayā || 40 ||

Because of your mind's own clinging desires, you sink into the mud like a worm, through this pitiful weakness of yours that clings only to what can be seen.

अपने मन की वासनाओं के कारण तुम कीड़े की तरह कीचड़ में डूब जाते हो, अपनी उसी दीनता के कारण, जो केवल दिखने वाली चीज़ों से चिपकी रहती है।

5.58.41

तावत्तावन्महाबाहो स्वयं संत्यज्यतेऽखिलम् । यावद्यावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते ॥ ४१ ॥

tāvattāvanmahābāho svayaṃ saṃtyajyate'khilam | yāvadyāvatparālokaḥ paramātmaiva śiṣyate || 41 ||

The more that highest vision grows in you, mighty-armed one, the more everything falls away by itself, until only the supreme Self remains.

हे महाबाहु, जितना-जितना वह परम दर्शन तुम्हारे भीतर बढ़ता जाता है, उतना-उतना सब कुछ अपने आप छूटता जाता है, यहाँ तक कि केवल परम आत्मा ही शेष रह जाता है।

5.58.42

तावत्प्रक्षाल्यते धातुर्यावद्धेमैव शिष्यते । तावदालोक्यते सर्वं यावदात्मैव लभ्यते ॥ ४२ ॥

tāvatprakṣālyate dhāturyāvaddhemaiva śiṣyate | tāvadālokyate sarvaṃ yāvadātmaiva labhyate || 42 ||

Ore is washed only until pure gold alone is left. In the same way, everything is examined only until the Self alone is found.

अयस्क को तभी तक धोया जाता है जब तक केवल सोना शेष न रह जाए। वैसे ही सब कुछ तभी तक जांचा जाता है जब तक केवल आत्मा ही प्राप्त न हो जाए।

5.58.43

सर्वः सार्विकया बुद्ध्या सर्वं सर्वत्र सर्वदा । सर्वथा संपरित्यज्य स्वात्मनात्मोपलभ्यते ॥ ४३ ॥

sarvaḥ sārvikayā buddhyā sarvaṃ sarvatra sarvadā | sarvathā saṃparityajya svātmanātma-upalabhyate || 43 ||

Everyone, using an understanding that embraces everything, gives up all things completely, everywhere, always, in every way, and so finds the Self through the self alone.

हर कोई, सब कुछ को समझने वाली बुद्धि से, हर जगह, हमेशा, हर तरह से सब कुछ पूरी तरह त्याग कर, अपने ही आप के द्वारा आत्मा को पा लेता है।

5.58.44

यावत्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते । सर्वावस्थापरित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते ॥ ४४ ॥

yāvatsarvaṃ na saṃtyaktaṃ tāvadātmā na labhyate | sarvāvasthāparityāge śeṣa ātmeti kathyate || 44 ||

As long as you have not given up everything, you will not find the Self. When every condition is let go of, whatever remains is called the Self.

जब तक सब कुछ नहीं छोड़ा जाता, तब तक आत्मा नहीं मिलती। जब सारी अवस्थाएँ छोड़ दी जाती हैं, तो जो शेष रह जाता है, उसे ही आत्मा कहा जाता है।

5.58.45

यावदन्यन्न संत्यक्तं तावत्सामान्यमेव हि । वस्तु नासाद्यते साधो स्वात्मलाभे तु का कथा ॥ ४५ ॥

yāvadanyaṃ na saṃtyaktaṃ tāvatsāmānyameva hi | vastu nāsādyate sādho svātmalābhe tu kā kathā || 45 ||

As long as you have not given up other things, good man, you cannot even get hold of an ordinary object, so what is there to say about attaining your own Self!

जब तक तुम दूसरी चीज़ों को नहीं छोड़ते, हे साधु, तब तक एक साधारण वस्तु भी हाथ नहीं आती, फिर अपनी आत्मा को पाने की तो बात ही क्या!

5.58.46

यत्र सर्वात्मनैवात्मा लाभाय यतति स्वयम् । त्यक्तान्यकार्यं प्राप्नोति तन्नाम नृप नेतरत् ॥ ४६ ॥

yatra sarvātmanaivātmā lābhāya yatati svayam | tyaktānyakāryaṃ prāpnoti tanna nāma nṛpa netarat || 46 ||

When you strive with your whole being, entirely on your own, only for reaching the Self, having given up every other task, you attain exactly that, king, nothing else.

जब तुम अपने पूरे अस्तित्व से, स्वयं ही, केवल आत्मा को पाने के लिए प्रयत्न करते हो, और बाकी सब काम छोड़ देते हो, तो हे राजन, तुम्हें वही मिलता है, और कुछ नहीं।

5.58.47

स्वात्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत् सर्वं किंचित्परित्यज्य यद्दृष्टं तत्परं पदम् ॥ ४७ ॥

svātmāvalokanārthaṃ tu tasmātsarvaṃ parityajet sarvaṃ kiṃcitparityajya yaddṛṣṭaṃ tatparaṃ padam || 47 ||

So, in order to see your own true Self, give up everything. Once you have given up everything, whatever then is seen, that is the highest state.

इसलिए अपने असली स्वरूप को देखने के लिए सब कुछ त्याग दो। सब कुछ त्याग देने के बाद जो कुछ भी दिखे, वही परम पद है।

5.58.48

सकलकारणकार्यपरम्परामयजगद्गतवस्तुविजृम्भितम् अलमपास्य मनः स्ववपुस्ततः परिविलाप्य यदेति तदेव तत् ॥ ४८ ॥

sakalakāraṇakāryaparamparāmayajagadgatavastuvijṛmbhitam alamapāsya manaḥ svavapustataḥ parivilāpya yadeti tadeva tat || 48 ||

Cast fully aside this expansion of the mind, made up of the whole chain of causes and effects tied to worldly things, and then let go even of your own bodily form. Whatever you reach after that, that alone is the Absolute.

मन के इस विस्तार को, जो संसार की वस्तुओं से जुड़ी कारण-कार्य की पूरी शृंखला से बना है, पूरी तरह त्याग दो, और फिर अपने शरीर के रूप को भी विलीन कर दो; उसके बाद जो कुछ भी प्राप्त हो, वही असली सत्य है।

Chapter 59

5.59.1

इत्युक्त्वा भगवानेनं सुरघुं रघुनन्दनयऔ स्वमेव रुचिरं माण्डव्यो मौनमण्डलम् ॥ १ ॥

ityuktvā bhagavānenaṃ suraghuṃ raghunandanayayau svameva ruciraṃ māṇḍavyo maunamaṇḍalam || 1 ||

Having said this to Suraghu, O Rama, the venerable Mandavya went away to his own lovely realm of silence.

यह कहकर, हे राम, पूज्य माण्डव्य सुरघु को छोड़कर अपने ही सुंदर मौन-लोक में चले गए।

5.59.2

गते वरमुनौ राजा गत्वैकान्तमनिन्दितम्धिया संचिन्तयामास को नामाहमिति स्वयम् ॥ २ ॥

gate varamunau rājā gatvaikāntamaninditamdhiyā saṃcintayāmāsa ko nāmāhamiti svayam || 2 ||

When the great sage had gone, the king went off alone to a quiet, blameless place, and began to ask himself in his own mind: who am I, really?

जब वह श्रेष्ठ मुनि चले गए, तब राजा अकेले एक शांत, निर्दोष जगह जाकर अपने मन में सोचने लगे कि मैं आखिर हूँ कौन।

5.59.3

नाहं मेरुर्न मे मेरुर्जगन्नाहं न मे जगन्नाहं शैला न मे शैला धरा नाहं न मे धरा ॥ ३ ॥

nāhaṃ merurna me merurjagannāhaṃ na me jagatnāhaṃ śailā na me śailā dharā nāhaṃ na me dharā || 3 ||

I am not Mount Meru, nor is Meru mine. I am not the world, nor is the world mine. I am not the mountains, nor are the mountains mine. I am not the earth, nor is the earth mine.

मैं मेरु पर्वत नहीं हूँ, न मेरु मेरा है। मैं संसार नहीं हूँ, न संसार मेरा है। मैं पहाड़ नहीं हूँ, न पहाड़ मेरे हैं। मैं धरती नहीं हूँ, न धरती मेरी है।

5.59.4

किरातमण्डलं नेदं मम नाहं च मण्डलम्निजसंकेतमात्रेण केवलं देश एव मे ॥ ४ ॥

kirātamaṇḍalaṃ nedaṃ mama nāhaṃ ca maṇḍalamnijasaṃketamātreṇa kevalaṃ deśa eva me || 4 ||

This land of the Kiratas is not mine, and I am not this land. It is called my country only because of a name I myself have given it.

यह किरातों की भूमि मेरी नहीं है, और मैं यह भूमि नहीं हूँ। यह सिर्फ मेरे अपने रखे हुए नाम की वजह से 'मेरा देश' कहलाती है।

5.59.5

त्यक्तो मयैष संकेतो नाहं देशो न वैष मेइदानीं नगरं शिष्टमेष एवात्र निश्चयः ॥ ५ ॥

tyakto mayaiṣa saṃketo nāhaṃ deśo na vaiṣa meidānīṃ nagaraṃ śiṣṭameṣa evātra niścayaḥ || 5 ||

I have now given up that naming. I am not the country, and this country is not mine. What remains now is the city. This is the sure conclusion here.

अब मैंने यह नामकरण भी छोड़ दिया है। मैं देश नहीं हूँ, और यह देश मेरा नहीं है। अब जो बचता है वह है नगर। यही यहाँ पक्की बात है।

5.59.6

पताकावनपङ्क्त्याड्या भृत्योपवनसंकुलागजाश्वसामन्तयुता पुरी नाहं न मे पुरी ॥ ६ ॥

patākāvanapaṅktyāḍhyā bhṛtyopavanasaṃkulāgajāśvasāmantayutā purī nāhaṃ na me purī || 6 ||

The city, rich with rows of flag-decked groves, crowded with servants and gardens, furnished with elephants, horses and vassal chiefs, I am not that city, and the city is not mine.

यह नगर, जो झंडों से सजी वाटिकाओं की पंक्तियों से भरा है, सेवकों और बगीचों से भरा-पूरा है, हाथियों, घोड़ों और सामंतों से युक्त है, मैं वह नगर नहीं हूँ, और यह नगर मेरा नहीं है।

5.59.7

व्यर्थसंकेतसंबन्धं संकेतविगमे क्षतम्भोगवृन्दं कलत्रं च नाहं नैतन्ममाखिलम् ॥ ७ ॥

vyarthasaṃketasaṃbandhaṃ saṃketavigame kṣatambhogavṛndaṃ kalatraṃ ca nāhaṃ naitanmamākhilam || 7 ||

The whole mass of pleasures and the wife, their bond is only an empty naming, broken the moment that naming ends. I am not these, and none of this is mine.

भोगों का यह सारा समूह और पत्नी, इनका नाता केवल एक व्यर्थ नामकरण है, जो नामकरण मिटते ही टूट जाता है। मैं ये नहीं हूँ, और यह सब मेरा नहीं है।

5.59.8

एवं सभृत्यं सबलं सवाहनपुरान्तरम्नाहं राज्यं न मे राज्यं संकेतो ह्ययमाकुलः ॥ ८ ॥

evaṃ sabhṛtyaṃ sabalaṃ savāhanapurāntaramnāhaṃ rājyaṃ na me rājyaṃ saṃketo hyayamākulaḥ || 8 ||

So the kingdom, with its servants, its army, its mounts and its cities, I am not the kingdom, and the kingdom is not mine. This too is only a confused naming.

इस तरह यह राज्य, अपने सेवकों, सेना, वाहनों और नगरों समेत, मैं राज्य नहीं हूँ, और राज्य मेरा नहीं है। यह भी बस एक उलझा हुआ नामकरण है।

5.59.9

देहमात्रमहं मन्ये हस्तपादादिसंयुतम्तदिदं तावदाश्वन्तरलमालोकयाम्यहम् ॥ ९ ॥

dehamātramahaṃ manye hastapādādisaṃyutamtadidaṃ tāvadāśvantaralamālokayāmyaham || 9 ||

I think of myself as just this body, joined with hands, feet and the rest. So now let me look closely at this body itself.

मैं स्वयं को बस यह शरीर मानता हूँ, जो हाथ-पैर आदि से जुड़ा है। तो अभी आओ, मैं इस शरीर को ही ध्यान से देखूं।

5.59.10

तदत्र तावन्मांसास्थि नाहमेतदचेतनम्न चैतन्मम संश्लेषमेत्यब्जस्य यथा जलम् ॥ १० ॥

tadatra tāvanmāṃsāsthi nāhametadacetanamna caitanmama saṃśleṣametyabjasya yathā jalam || 10 ||

So here, first of all, there is flesh and bone. I am not this lifeless thing, and it is not mine. It touches me the way water touches a lotus.

तो यहाँ सबसे पहले तो मांस और हड्डी है। मैं यह निर्जीव चीज़ नहीं हूँ, और यह मेरी नहीं है। यह मुझे वैसे ही छूती है जैसे कमल को पानी छूता है।

5.59.11

मांसं जडं न तदहं नैवाहं रक्तमप्यलम्जडान्यस्थीनि नैवाहं न चैतानि मम क्वचित् ॥ ११ ॥

māṃsaṃ jaḍaṃ na tadahaṃ naivāhaṃ raktamapyalamjaḍānyasthīni naivāhaṃ na caitāni mama kvacit || 11 ||

Flesh is lifeless matter, I am not that. Nor am I blood at all. The bones too are lifeless, I am not them either, and none of these are ever mine.

मांस जड़ है, मैं वह नहीं हूँ। मैं रक्त भी बिल्कुल नहीं हूँ। हड्डियाँ भी जड़ हैं, मैं वे भी नहीं हूँ, और ये कभी भी मेरी नहीं हैं।

5.59.12

कर्मेन्द्रियाणि नैवाहं न च कर्मेन्द्रियाणि मेजडं यत्किल देहेऽस्मिंस्तदहं नैव चेतनः ॥ १२ ॥

karmendriyāṇi naivāhaṃ na ca karmendriyāṇi mejaḍaṃ yatkila dehe'smiṃstadahaṃ naiva cetanaḥ || 12 ||

I am surely not the organs of action, and the organs of action are not mine. Whatever is lifeless in this body, that I, the conscious one, am certainly not.

मैं निश्चय ही कर्मेन्द्रियाँ नहीं हूँ, और कर्मेन्द्रियाँ मेरी नहीं हैं। इस शरीर में जो कुछ भी जड़ है, मैं, जो चेतन हूँ, वह निश्चय ही नहीं हूँ।

5.59.13

नाहं भोगा न मे भोगा न मे बुद्धीन्द्रियाणि चजडान्यसत्स्वरूपाणि न च बुद्धीन्द्रियाण्यहम् ॥ १३ ॥

nāhaṃ bhogā na me bhogā na me buddhīndriyāṇi cajaḍānyasatsvarūpāṇi na ca buddhīndriyāṇyaham || 13 ||

I am not the pleasures I enjoy, and they are not mine. The organs of perception are not mine either, they are lifeless, with no true being of their own, and I am not the organs of perception.

मैं भोग नहीं हूँ, और भोग मेरे नहीं हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ भी मेरी नहीं हैं, वे जड़ हैं, उनका अपना कोई सच्चा अस्तित्व नहीं है, और मैं ज्ञानेन्द्रियाँ भी नहीं हूँ।

5.59.14

मूलं संसृतिदोषस्य मनो नाहं जडं हि ततथा बुद्धिरहंकार इति दृष्टिर्मनोमयी ॥ १४ ॥

mūlaṃ saṃsṛtidoṣasya mano nāhaṃ jaḍaṃ hi tatatha buddhirahaṃkāra iti dṛṣṭirmanomayī || 14 ||

The mind is the root of all the trouble of worldly life. I am not the mind, it too is lifeless. So too are the intellect and the sense of I. This whole way of seeing things is made only of mind.

मन ही सांसारिक जीवन की सारी परेशानी की जड़ है। मैं मन नहीं हूँ, वह भी निर्जीव है। बुद्धि और अहंकार भी ऐसे ही हैं। यह सारी सोच, जिसमें 'मैं' और 'मेरा' दिखता है, मन की ही बनाई हुई है।

5.59.15

मनोबुद्धीन्द्रियाद्यन्तो भूतकोशचलद्वपुःनाहमेवं शरीरादि शिष्टमालोकयाम्यहम् ॥ १५ ॥

manobuddhīndriyādyanto bhūtakośaścaladvapuḥnāhamevaṃ śarīrādi śiṣṭamālokayāmyaham || 15 ||

This whole chain, from mind, intellect and the senses, down to this moving body made of the elements, I am not this body and the rest. I look at what remains beyond it.

मन, बुद्धि और इन्द्रियों से लेकर तत्वों से बने इस चलते-फिरते शरीर तक की यह पूरी शृंखला, मैं यह शरीर आदि कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो देखता हूँ कि इससे परे क्या शेष रह जाता है।

5.59.16

शेषस्तु चेतनो जीवः स चेच्चेत्येन चेततिअन्येन बोध्यमानोऽसौ नात्मतत्त्ववपुर्भवेत् ॥ १६ ॥

śeṣastu cetano jīvaḥ sa ceccetyena cetatianyena bodhyamāno'sau nātmatattvavapurbhavet || 16 ||

What remains, then, is the conscious living self. But if this self is conscious only through some object it knows, and is lit up by something other than itself, then it is not yet the true form of the real Self.

तो फिर जो बचता है वह है चेतन जीव। पर अगर यह जीव किसी जानी हुई चीज़ के ज़रिए ही जानता है, और किसी और चीज़ से रोशन होता है, तो यह असली आत्मा का सच्चा रूप नहीं है।

5.59.17

एवं त्यजामि संवेद्यं चेत्यं नाहं हि तत्किलशेषो विकल्परहितो विशुद्धचिदहंस्थितः ॥ १७ ॥

evaṃ tyajāmi saṃvedyaṃ cetyaṃ nāhaṃ hi tatkilaśeṣo vikalparahito viśuddhacidahaṃsthitaḥ || 17 ||

So I give up the object known, the perceivable, for I am surely not that. What remains, free of all thought and division, is pure consciousness alone, standing as I.

तो मैं उस जानी हुई चीज़ को, जो देखी-जानी जाती है, छोड़ देता हूँ, क्योंकि मैं वह नहीं हूँ। जो बचता है वह है हर सोच-विचार से मुक्त, शुद्ध चेतना, जो 'मैं' के रूप में टिकी है।

5.59.18

चित्रमेषोऽस्मि लब्धात्मा जातः कालेन कार्यवानेष सोऽहमनन्तात्मा नान्तोऽस्य परमात्मनः ॥ १८ ॥

citrameṣo'smi labdhātmā jātaḥ kālena kāryavāneṣa so'hamanantātmā nānto'sya paramātmanaḥ || 18 ||

How wondrous, this is what I am: one who has found the Self, born in time, engaged in action, yet this very I is the infinite Self. This supreme Self has no end.

कितनी अनोखी बात है, मैं यही हूँ: जिसने आत्मा को पा लिया है, जो समय में जन्मा और कर्म करता है, फिर भी यही मैं अनंत आत्मा हूँ। इस परमात्मा का कोई अंत नहीं है।

5.59.19

ब्रह्मणीन्द्रे यमे वायौ सर्वभूतगणे तथास एष भगवानात्मा तन्तुर्मुक्तास्विव स्थितः ॥ १९ ॥

brahmaṇīndre yame vāyau sarvabhūtagaṇe tathāsa eṣa bhagavānātmā tanturmuktāsviva sthitaḥ || 19 ||

That same glorious Self dwells in Brahma, in Indra, in Yama, in Vayu, and likewise in every multitude of beings, abiding in them the way a thread runs through pearls.

वही यह पूजनीय आत्मा ब्रह्मा में, इन्द्र में, यम में, वायु में, और इसी तरह सभी प्राणियों में बसी है, ठीक वैसे ही जैसे मोतियों की माला में धागा पिरोया रहता है।

5.59.20

चिच्छक्तिरमला सैषा चेत्यामयविवर्जिताभरिताशेषदिक्कुञ्जा भैरवाकारधारिणी ॥ २० ॥

cicchaktiramalā saiṣā cetyāmayavivarjitābharitāśeṣadikkuñjā bhairavākāradhāriṇī || 20 ||

This same pure power of awareness has no sickness of being just an object to know. It fills every corner of every direction, and it carries a form that is vast and fearsome.

यही शुद्ध चेतना की शक्ति है, जिसे केवल जानी जाने वाली चीज़ मानने की बीमारी छू भी नहीं सकती। यह हर दिशा के हर कोने को भरती है, और इसका रूप बहुत विशाल और भयानक है।

5.59.21

सर्वभावगता सूक्ष्मा भावाभावविवर्जिता । आब्रह्मभुवनान्तःस्था सर्वशक्तिसमुद्गिका ॥ २१ ॥

sarvabhāvagatā sūkṣmā bhāvābhāvavivarjitā | ābrahmabhuvanāntaḥsthā sarvaśaktisamudgikā || 21 ||

This same power is present in every kind of being; it is subtle, and it is free from both existing and not existing. It stands inside everything, all the way up to the world of Brahma, and it is the box that holds every power within it.

यही शक्ति हर तरह के प्राणी में मौजूद है; यह सूक्ष्म है, और यह होने और न होने दोनों से परे है। यह हर जगह के भीतर टिकी है, ब्रह्मलोक तक, और यह एक ऐसा पिटारा है जिसमें हर शक्ति समाई हुई है।

5.59.22

सर्वसौन्दर्यसुभगा सर्वप्राकाश्यदीपिका । सर्वसंसारमुक्तानां तन्तुराततरूपिणी ॥ २२ ॥

sarvasaunḍaryasubhagā sarvaprākāśyadīpikā | sarvasaṃsāramuktānāṃ tanturātatarūpiṇī || 22 ||

It is beautiful with every kind of beauty; it is the lamp that lights up everything that appears. Among all who are freed from the round of rebirth, it is the thread stretched through them.

यह हर तरह की सुंदरता से सुंदर है; यह वह दीया है जो हर दिखने वाली चीज़ को रोशन करता है। जो लोग जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो चुके हैं, उन सबके भीतर से यह धागे की तरह फैली हुई है।

5.59.23

सर्वाकारविकाराढ्या सर्वाकारविवर्जिता । सर्वभूतौघतां याता सर्वदा सर्वतां गता ॥ २३ ॥

sarvākāravikārāḍhyā sarvākāravivarjitā | sarvabhūtaughatāṃ yātā sarvadā sarvatāṃ gatā || 23 ||

It is rich with the changes of every form, yet it is free of every form. It has become the whole flood of every being, and at all times it has become everything.

यह हर रूप के बदलाव से भरपूर है, फिर भी यह किसी भी रूप से मुक्त है। यह हर प्राणी की पूरी बाढ़ बन चुकी है, और हर समय यह सब कुछ बन चुकी है।

5.59.24

चतुर्दशविधान्येषा भूतानि भुवनोदरे । एतन्मयीयं कलना जागती वेदनात्मिका ॥ २४ ॥

caturdaśavidhānyeṣā bhūtāni bhuvanodare | etanmayīyaṃ kalanā jāgatī vedanātmikā || 24 ||

This same power holds the beings of fourteen kinds inside the belly of the world. This whole waking world, made from that same power, is nothing but feeling.

यही शक्ति संसार के पेट के भीतर चौदह तरह के प्राणियों को धारण करती है। यह पूरा जागता हुआ संसार, उसी शक्ति से बना है, और वह केवल अनुभूति ही है।

5.59.25

मिथ्यावभासमात्रं तु सुखदुःखदशागतिः । नानाकारमयाभासः सर्वमात्मैव चित्परा ॥ २५ ॥

mithyāvabhāsamātraṃ tu sukhaduḥkhadaśāgatiḥ | nānākāramayābhāsaḥ sarvamātmaiva citparā || 25 ||

The coming of states of pleasure and pain is nothing but a false appearance. This appearance, made of many forms, is nothing else at all; everything is only the Self, the highest consciousness.

सुख और दुःख की अवस्थाओं का आना केवल एक झूठा प्रतीत होना है। यह जो अनेक रूपों में दिखता है, वह और कुछ नहीं है, सब कुछ केवल आत्मा है, वही सबसे ऊँची चेतना।

5.59.26

सोऽयमात्मा मम व्यापी सेयं यदवबोधनम्। सेयमाकलिताङ्गाभा करोति नृपविभ्रमम्॥ २६॥

so'yamātmā mama vyāpī seyaṃ yadavabodhanam | seyamākalitāṅgābhā karoti nṛpavibhramam || 26 ||

This same Self of mine pervades everything; this same thing is what we call awareness. This same one, wearing the glow of a body, creates the illusion of a king.

यही मेरी आत्मा है जो हर जगह फैली हुई है; यही वह चीज़ है जिसे हम जानना या समझ कहते हैं। यही, शरीर की चमक ओढ़कर, एक राजा होने का भ्रम पैदा करती है।

5.59.27

अस्या एव प्रसादेन मनो देहरथे स्थितम्। संसारजाललीलासु याति वल्गति नृत्यति॥ २७॥

asyā eva prasādena mano deharathe sthitam | saṃsārajālalīlāsu yāti valgati nṛtyati || 27 ||

By the grace of this very power, the mind sits in the chariot of the body; in the playful net of this world, it walks, it leaps, it dances.

इसी शक्ति की कृपा से मन शरीर के रथ में बैठा है; इस संसार के जाल भरे खेल में यह चलता है, कूदता है, नाचता है।

5.59.28

इदं मनःशरीरादि न किंचिदपि वस्तुतः। नष्टे न किंचिदप्यस्मिन्परिनश्यति पेलवे॥ २८॥

idaṃ manaḥśarīrādi na kiṃcidapi vastutaḥ | naṣṭe na kiṃcidapyasminparinaśyati pelave || 28 ||

This mind, body, and the rest are, in truth, nothing at all. When this frail thing is destroyed, nothing whatsoever truly perishes.

यह मन, शरीर और बाकी सब, सच में कुछ भी नहीं हैं। जब यह कमज़ोर चीज़ नष्ट होती है, तो असल में कुछ भी नष्ट नहीं होता।

5.59.29

जगज्जालमयं नृत्तमिदं चित्तनटैस्ततम्। एतयैवैकया बुद्ध्या दृश्यते दीपलेखया॥ २९॥

jagajjālamayaṃ nṛttamidaṃ cittanaṭaistatam | etayai vaikayā buddhyā dṛśyate dīpalekhayā || 29 ||

This dance, woven out of the net of the world, is spread out by dancers that are only the mind. It is seen by this one single awareness alone, the way something is seen by the light of a lamp.

यह नाच, जो संसार के जाल से बुना गया है, उन नर्तकों से फैला है जो असल में मन के सिवा कुछ नहीं हैं। इसे केवल इसी एक चेतना से देखा जाता है, जैसे दीये की रोशनी से कोई चीज़ देखी जाती है।

5.59.30

कष्टं मुधैव मे चिन्ता निग्रहानुग्रहस्थितौ। बभूव देहनिष्ठेह न किंचिदपि देहकम्॥ ३०॥

kaṣṭaṃ mudhai va me cintā nigrahānugrahasthitau | babhūva dehanisthteha na kiṃcidapi dehakam || 30 ||

How painful; my worry about being punished and being favored was useless. It was fixed on this body, but here there is no such body at all, in truth.

कितने दुख की बात है, मेरी वह चिंता व्यर्थ थी कि मुझे दंड मिलेगा या कृपा मिलेगी; यह चिंता इस शरीर पर टिकी थी, पर सच तो यह है कि यहाँ कोई शरीर है ही नहीं।

5.59.31

अहो त्वहं प्रबुद्धोऽस्मि गतं दुर्दर्शनं मम । दृष्टं द्रष्टव्यमखिलं प्राप्तं प्राप्यमिदं मया ॥ ३१ ॥

aho tvahaṃ prabuddho'smi gataṃ durdarśanaṃ mama | dṛṣṭaṃ draṣṭavyamakhilaṃ prāptaṃ prāpyamidaṃ mayā || 31 ||

Oh, now I am truly awake; my wrong way of seeing has gone. I have seen all that was to be seen; I have gained all that was to be gained.

अहा, अब मैं सच में जाग गया हूँ; मेरा गलत देखना चला गया। जो कुछ देखने योग्य था, वह मैंने देख लिया; जो कुछ पाने योग्य था, वह मैंने पा लिया।

5.59.32

सर्वं किंचिदिदं दृश्यं दृश्यते यज्जगद्गतम् । चिन्निष्पन्दांशमात्रांशान्नान्यत्किंचन शाश्वतम् ॥ ३२ ॥

sarvaṃ kiṃcididaṃ dṛśyaṃ dṛśyate yajjagadgatam | cinniṣpandāṃśamātrāṃśānnānyatkiṃcana śāśvatam || 32 ||

Everything that is seen here, whatever in this world appears, is seen as only a small piece of the still, unmoving part of consciousness. Nothing else at all is everlasting.

यहाँ जो कुछ भी दिखता है, इस संसार में जो कुछ भी नज़र आता है, वह चेतना के उस शांत, अचल हिस्से का बस एक छोटा टुकड़ा भर है। इसके अलावा कुछ भी सदा रहने वाला नहीं है।

5.59.33

क्व तौ कीदृग्विधौ वापि किंनिष्ठौ वा किमात्मकौ । निग्रहानुग्रहौ लोके हर्षामर्षक्रमौ तथा ॥ ३३ ॥

kva tau kīdṛgvidhau vāpi kiṃniṣṭhau vā kimātmakau | nigrahānugrahau loke harṣāmarṣakramau tathā || 33 ||

Where are they, what are they like, what do they rest on, what are they really; this punishment and this favor in the world, and this joy and this anger too?

वे कहाँ हैं, वे कैसे हैं, वे किस पर टिके हैं, वे असल में क्या हैं, यह दंड और यह कृपा इस संसार में, और यह खुशी और यह गुस्सा भी?

5.59.34

किं सुखं किं नु वा दुःखं सर्वं ब्रह्मेदमाततम् । अहमासं मुधा मूढो दिष्ट्या मूढोऽस्म्यहं स्थितः ॥ ३४ ॥

kiṃ sukhaṃ kiṃ nu vā duḥkhaṃ sarvaṃ brahmedamātatam | ahamāsaṃ mudhā mūḍho diṣṭyā mūḍho'smi ahaṃ sthitaḥ || 34 ||

What is pleasure, and what is pain? All this is Brahman, spread through everything. I was a fool for no reason; and by good fortune, I remain a fool, just as I am.

सुख क्या है, और दुःख भी क्या है? यह सब ब्रह्म ही है, जो हर जगह फैला हुआ है। मैं बिना किसी वजह के मूर्ख बना रहा; और अच्छी किस्मत से, मैं अब भी वैसा ही मूर्ख बना हुआ हूँ।

5.59.35

किमस्मिन्नेवमालोके शोच्यते किं विमुह्यते । किं प्रेक्ष्यते किं क्रियते स्थीयते वाथ गम्यते ॥ ३५ ॥

kimasminnevamāloke śocyate kiṃ vimuhyate | kiṃ prekṣyate kiṃ kriyate sthīyate vātha gamyate || 35 ||

In this world, then, what is there to grieve over? What is there to be confused about? What is there to look at, to do, to stay for, or to go towards?

तो फिर इस संसार में शोक करने लायक क्या है? भ्रम में पड़ने लायक क्या है? देखने, करने, रुकने या जाने लायक क्या है?

5.59.36

किंचिदेवमिदं नाम चिदाकाशे विराजते । नमो नमस्ते निस्तत्त्व दिष्ट्या दृष्टोऽसि सुन्दर ॥ ३६ ॥

kiṃcid evam idaṃ nāma cidākāśe virājate | namo namaste nistattva diṣṭyā dṛṣṭo'si sundara || 36 ||

Something like this, merely called this, shines in the sky of consciousness. Salutations, salutations to you, who are beyond all essence; by good fortune, I have seen you, O beautiful one.

कुछ ऐसा ही, जिसे बस यह कहा जाता है, चेतना के आकाश में चमक रहा है। तुम्हें नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है, तुम जो हर तत्व से परे हो; अच्छी किस्मत से मैंने तुम्हें देख लिया, हे सुंदर।

5.59.37

अहो नु संप्रबुद्धोऽस्मि सम्यग्ज्ञातमलं मया । नमो मह्यमनन्ताय सम्यग्ज्ञानोदयाय च ॥ ३७ ॥

aho nu saṃprabuddho'smi samyagjñātamalaṃ mayā | namo mahyamanantāya samyagjñānodayāya ca || 37 ||

Oh, indeed I am fully awake; I have understood everything rightly and completely. Salutation to myself, the infinite one, and to this rising of true knowledge.

अहा, सच में मैं पूरी तरह जाग गया हूँ; मैंने सब कुछ ठीक और पूरी तरह से समझ लिया है। मुझे ही नमस्कार, जो अनंत हूँ, और इस सच्चे ज्ञान के उदय को भी नमस्कार।

5.59.38

विगतरञ्जननिर्विषयस्थितिर्गतभवभ्रमरञ्जितवर्जिते । स्थिरसुषुप्तकलाभिगतस्ततः समसमं निवसाम्यहमात्मनि ॥ ३८ ॥

vigatarañjananirviṣayasthitirgatabhavabhramarañjitavarjite | sthirasuṣuptakalābhigatastataḥ samasamaṃ nivasāmyahamātmani || 38 ||

All coloring and all desire are gone from me; I hold on to no object at all. I am free from the confusion of this world, for even the coloring of that confusion has left me. I have reached a stillness as steady as deep, dreamless sleep, and now I live, calm and unchanging, in the Self.

मुझसे हर रंगत और हर चाहत जा चुकी है; अब मैं किसी भी चीज़ को पकड़े नहीं रखता। मैं इस संसार के भ्रम से मुक्त हूँ, क्योंकि उस भ्रम की रंगत भी अब मुझसे छूट चुकी है। मैं गहरी, बिना सपनों वाली नींद जैसी स्थिर शांति तक पहुँच गया हूँ, और अब मैं आत्मा में शांत और अपरिवर्तित होकर रहता हूँ।

Chapter 60

5.60.1

इति हेमजटाधीशो लेभे पदमनुत्तमम्विवेकाध्यवसायेन ब्राह्मण्यमिव गाधिजः ॥ १ ॥

iti hemajaṭādhīśo lebhe padamanuttamamvivekādhyavasāyena brāhmaṇyamiva gādhijaḥ || 1 ||

Thus, through firm and discerning effort, the lord of the Hemajatas reached the highest state - just as Gadhi's son attained the state of a Brahmin.

इस तरह, पक्के और विवेक भरे प्रयास से, हेमजटों के स्वामी ने सबसे ऊँची अवस्था पा ली - जैसे गाधि के पुत्र ने ब्राह्मण का पद पाया था।

5.60.2

अनर्थाकारकार्यासु नासीच्चेष्टासु खेदवान्भूयोभूयः प्रयुक्तासु दिनमालास्विवेश्वरः ॥ २ ॥

anarthākārakāryāsu nāsīcceṣṭāsu khedavānbhūyobhūyaḥ prayuktāsu dinamālāsviveśvaraḥ || 2 ||

Amid actions that seemed to lead nowhere, done again and again, he never grew weary - like the Lord, who is never wearied by the unending chain of days.

ऐसे काम जो बार-बार करने पर भी बेकार लगते थे, उनमें भी वह कभी नहीं थका - जैसे ईश्वर दिनों की कभी न खत्म होने वाली शृंखला से कभी नहीं थकता।

5.60.3

ततःप्रभृति सोऽतिष्ठतसर्वदा विगतज्वरःसमासमे स्वके कार्ये जलौघाग्र इवाचलः ॥ ३ ॥

tataḥprabhṛti so'tiṣṭhatasarvadā vigatajvaraḥsamāsame svake kārye jalaughāgra ivācalaḥ || 3 ||

From then on he always remained free of anguish, in every task of his, easy or hard, unmoving like a mountain standing before a flood of water.

उस दिन से वह हमेशा हर तरह की पीड़ा से मुक्त रहा; अपने हर काम में, चाहे वह आसान हो या कठिन, वह पानी की बाढ़ के आगे खड़े पहाड़ की तरह अडिग रहा।

5.60.4

हर्षामर्षविनिर्मुक्तः प्रत्यहं कार्यमाहरनुदारगम्भीरवपुर्जहाराम्बुनिधेः श्रियम् ॥ ४ ॥

harṣāmarṣavinirmuktaḥ pratyahaṃ kāryamāharanudāragambhīravapurjahārāmbunidheḥ śriyam || 4 ||

Free from both joy and anger, carrying out his duties every day, with a noble and deep bearing, he outshone even the splendor of the ocean.

खुशी और गुस्से दोनों से मुक्त होकर, वह रोज़ अपना काम करता रहा; उसका स्वभाव इतना उदार और गहरा था कि उसने समुद्र की शोभा को भी मात दे दी।

5.60.5

सुषुप्तपदधर्मिण्या चित्तवृत्त्या व्यराजतनिष्कम्पया प्रकाशिन्या दीपः स्वशिखयेव सः ॥ ५ ॥

suṣuptapadadharmiṇyā cittavṛttyā vyarājataniṣkampayā prakāśinyā dīpaḥ svaśikhayeva saḥ || 5 ||

With a mind as still as deep sleep, yet unwavering and shining, he glowed like a lamp with its own steady flame.

उसका मन गहरी नींद जैसा शांत था, फिर भी अडिग और चमकीला था; वह अपनी ही लौ से जलते दीये की तरह चमक रहा था।

5.60.6

न निर्घृणो दयावान्नो न द्वन्द्वी नाथ मत्सरी । न सुधीर्नासुधीर्नार्थी नानर्थी स बभूव ह ॥ ६ ॥

na nirghṛṇo dayāvānno na dvandvī nātha matsarī | na sudhīrnāsudhīrnārthī nānarthī sa babhūva ha || 6 ||

O lord, he was neither cruel nor kind, neither caught between opposites nor envious; he was neither wise nor foolish, neither seeking a purpose nor without one.

हे नाथ, वह न तो क्रूर था न दयालु, न वह दो विरोधी बातों में उलझा था न ईर्ष्यालु; वह न बुद्धिमान था न मूर्ख, न किसी उद्देश्य को चाहने वाला था न बिना उद्देश्य के।

5.60.7

समदर्शनया नित्यं वृत्त्याऽचापलधीरया । अन्तःशीतलया रेजे परिपूर्णार्णवेन्दुवत् ॥ ७ ॥

samadarśanayā nityaṃ vṛttyā'cāpaladhīrayā | antaḥśītalayā reje paripūrṇārṇavenduvat || 7 ||

With a disposition that always saw everything as equal, steady and unshaken, calm within, he shone like the moon over a full ocean.

जो हर चीज़ को हमेशा एक समान देखता था, जो स्थिर और अडोल था, और भीतर से शांत था - वह भरे हुए समुद्र पर चंद्रमा की तरह चमक रहा था।

5.60.8

सर्वं चित्तत्त्वकलनं जगदित्यवलोक्य सः । प्रशान्तसुखदुःखश्रीस्तस्य पूर्णा मतिर्बभौ ॥ ८ ॥

sarvaṃ cittattvakalanaṃ jagadityavalokya saḥ | praśāntasukhaduḥkhaśrīstasya pūrṇā matirbabhau || 8 ||

Seeing that the whole world is nothing but the working of consciousness, with pleasure and pain now stilled in him, his mind shone full and complete.

यह देखकर कि पूरा जगत चेतना की ही एक रचना है, उसके भीतर सुख और दुख दोनों शांत हो गए, और उसकी बुद्धि पूरी तरह से भरकर चमक उठी।

5.60.9

उल्लसन्विकसन्पूर्णस्तिष्ठन्गच्छन्विशन्स्वपन् । अभूत्समसमाधिस्थः प्रबुद्धश्चिल्लयं गतः ॥ ९ ॥

ullasanvikasanpūrṇastiṣṭhangacchanviśansvapan | abhūtsamasamādhisthaḥ prabuddhacillayaṃ gataḥ || 9 ||

Radiant, blossoming, whole - whether standing, walking, entering somewhere, or sleeping - he stayed established in that same unbroken absorption, awake, merged into consciousness.

चमकता हुआ, खिलता हुआ, पूर्ण - चाहे वह खड़ा हो, चल रहा हो, कहीं प्रवेश कर रहा हो, या सो रहा हो - वह हमेशा उसी एक समाधि में स्थित रहा, जागा हुआ, चेतना में लीन।

5.60.10

स कुर्वन्विगतासङ्गं राज्यं राजीवलोचनः । अतिष्ठदक्षताकारो भूरिवर्षशतान्यथ ॥ १० ॥

sa kurvanvigatāsaṅgaṃ rājyaṃ rājīvalocanaḥ | atiṣṭhadakṣatākāro bhūrivarṣaśatānyatha || 10 ||

The lotus-eyed one, ruling his kingdom without attachment, remained this way, his form unimpaired, for many hundreds of years.

कमल जैसी आँखों वाला वह राजा, बिना किसी आसक्ति के अपना राज्य चलाते हुए, सैकड़ों वर्षों तक इसी तरह रहा, और उसका शरीर कभी क्षीण नहीं हुआ।

5.60.11

संनिवेशमिमं देहनामकं तदनु स्वयम्। स जहौ तेजसाक्रान्तो रूपं हिमकणो यथा॥ ११॥

saṃniveśamimaṃ dehanāmakaṃ tadanu svayam | sa jahau tejasākrānto rūpaṃ himakaṇo yathā || 11 ||

Then he himself, of his own accord, gave up this structure called the body; overtaken by radiance, his form vanished like a speck of frost.

फिर उसने खुद ही, अपनी इच्छा से, शरीर नाम की इस रचना को त्याग दिया; तेज से घिरकर, उसका रूप बर्फ की एक बूँद की तरह मिट गया।

5.60.12

विवेश परमाद्यन्तकारणं कारणेश्वरम्। प्रज्ञया सरितां वारि परिपूर्णमिवाम्बुधिम्॥ १२॥

viveśa paramādyantakāraṇaṃ kāraṇeśvaram | prajñayā saritāṃ vāri paripūrṇamivāmbudhim || 12 ||

Through wisdom he entered the supreme cause of all beginning and end, the lord of all causes - like river water entering the full ocean.

अपनी प्रज्ञा से वह हर आदि और अंत के परम कारण में, सब कारणों के स्वामी में, प्रवेश कर गया - जैसे नदियों का पानी भरे हुए समुद्र में मिल जाता है।

5.60.13

अधिगतविमलैकरूपतेजा विजनदशां समुपेत्य शान्तशोकः। अलमभवदसौ परस्वरूपं घटखमिवाम्बरसंयुतं महात्मा॥ १३॥

adhigatavimalaikarūpatejā vijanadaśāṃ samupetya śāntaśokaḥ | alamabhavadasau parasvarūpaṃ ghaṭakhamivāmbarasaṃyutaṃ mahātmā || 13 ||

Having attained a pure, single radiance, having reached a state beyond all things, his sorrow now stilled, this great soul became completely one with the supreme Self - like the space inside a pot merging with the space of the open sky.

एक शुद्ध और अखंड तेज को पाकर, हर चीज़ से परे की अवस्था में पहुँचकर, जिसका शोक अब शांत हो चुका था - वह महान आत्मा परम स्वरूप में पूरी तरह से एक हो गई, जैसे घड़े के भीतर का आकाश खुले आकाश में मिल जाता है।

Chapter 61

5.61.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवमुत्पलपत्राक्ष राघवाघविपर्यये । पदमासादयाद्वन्द्वं विशोको भव भूतये ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evamutpalapatrākṣa rāghavāghaviparyaye | padamāsādayādvandvaṃ viśoko bhava bhūtaye || 1 ||

Sri Vasishtha said: In this way, Rama, whose eyes are like lotus petals, once wrong has been turned back, reach the state that is beyond opposites; be free of sorrow, for your own good.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राम, तुम्हारी आँखें कमल की पंखुड़ी जैसी हैं। इस तरह जब बुराई पलट दी जाए, तब द्वंद्वों से परे उस अवस्था को पा लो; अपनी भलाई के लिए दुख छोड़ दो।

5.61.2

एतां दृष्टिमवष्टभ्य न मनः परितप्यते । घोरे तमसि निर्मग्नं लब्धदीपं शिशुर्यथा ॥ २ ॥

etāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya na manaḥ paritapyate | ghore tamasi nirmagnaṃ labdhadīpaṃ śiśuryathā || 2 ||

Holding on to this understanding, the mind does not suffer, just as a child sunk in fearful darkness stops suffering once it gets a lamp.

इस समझ को थामे रहने से मन दुखी नहीं होता, जैसे घोर अंधेरे में डूबा हुआ बच्चा दीया मिलते ही चैन पा जाता है।

5.61.3

विवेकावस्थया चेतस्तथैवायाति निर्वृतिम् । पतच्छ्वभ्रे दृढतृणप्रचयालम्बनादिव ॥ ३ ॥

vivekāvasthayā cetastathaivāyāti nirvṛtim | pataśśvabhre dṛḍhatṛṇapracayālambanādiva || 3 ||

In the same way, through discernment, the mind comes to rest, like someone falling into a pit who finds peace by catching hold of a thick clump of firm grass.

उसी तरह विवेक की अवस्था से मन को चैन मिल जाता है, जैसे गड्ढे में गिरता हुआ आदमी घास के मजबूत गुच्छे को पकड़कर बच जाता है।

5.61.4

अथैतां पावनीं दृष्टिं भावयित्वाप्युदाहरन् । नित्यमेकसमाधानो भव भूषितभूतलः ॥ ४ ॥

athaitāṃ pāvanīṃ dṛṣṭiṃ bhāvayitvāpyudāharan | nityamekasamādhāno bhava bhūṣitabhūtalaḥ || 4 ||

So, having thought deeply on this purifying insight and spoken of it too, always stay fixed in one single steadiness, and be an ornament to this earth.

इसलिए इस पवित्र सोच पर गहराई से विचार करके और इसे दूसरों को बताकर भी, हमेशा एक ही स्थिरता में टिके रहो, और इस धरती की शोभा बनो।

5.61.5

श्रीराम उवाच । कथमेकसमाधानं कीदृशं वा मुनीश्वर । वाताहतमयूराङ्गरुहलोलं मनो भवेत् ॥ ५ ॥

śrīrāma uvāca | kathamekasamādhānaṃ kīdṛśaṃ vā munīśvara | vātāhatamayūrāṅgaruhalolaṃ mano bhavet || 5 ||

Sri Rama said: Lord of sages, how, and of what kind, can there be this one single steadiness, when the mind trembles like a peacock's feather struck by the wind?

श्री राम ने कहा: हे मुनियों के स्वामी, यह एक स्थिरता कैसी होती है और कैसे मिलती है, जब मन हवा से हिलते मोर के पंख जैसा चंचल है?

5.61.6

श्रीवसिष्ठ उवाच । श्रृणु तस्यैव सुरघोः प्रबुद्धस्य सतस्तदा । पर्णादस्य च राजर्षेः संवादमिममद्भुतम् ॥ ६ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | śṛṇu tasyeva suraghoḥ prabuddhasya satastadā | parṇādasya ca rājarṣeḥ saṃvādamimamadbhutam || 6 ||

Sri Vasishtha said: Listen now to this wonderful conversation between that same Suraghu, once he had awakened, and the royal sage Parnada.

श्री वसिष्ठ ने कहा: सुनो, उसी सुरघु के जाग जाने के बाद उसकी और राजर्षि पर्णाद के बीच हुई इस अद्भुत बातचीत को।

5.61.7

राघवैकसमाधानबोधितायोजितात्मनोः । परस्परं समालापमिमं प्रकथयामि ते ॥ ७ ॥

rāghavaikasamādhānabodhitāyojitātmanoḥ | parasparaṃ samālāpamimaṃ prakathayāmi te || 7 ||

Rama, I will tell you the conversation these two held with each other, two men whose minds became one after they woke up to this single steadiness.

हे राम, मैं तुम्हें उन दोनों की आपस की यह बातचीत सुनाता हूँ, जिनके मन इस एक स्थिरता को जानकर आपस में एक हो गए थे।

5.61.8

बभूव पारसीकानां पार्थिवः परवीरहा । परिघो नाम विख्यातः परिघः स्यन्दने यथा ॥ ८ ॥

babhūva pārasīkānāṃ pārthivaḥ paravīrahā | parigho nāma vikhyātaḥ parighaḥ syandane yathā || 8 ||

There was a king of the Persians, a killer of enemy warriors, famous by the name Parigha, like an iron club mounted on a chariot.

फारस के राजाओं में एक राजा हुआ, जो दुश्मन योद्धाओं का नाश करने वाला था; वह परिघ नाम से मशहूर था, ठीक जैसे रथ पर लगी लोहे की गदा हो।

5.61.9

स बभूव परं मित्रं सुरघो रघुनन्दन । नन्दनोद्यानसंस्थस्य मदनस्येव माधवः ॥ ९ ॥

sa babhūva paraṃ mitraṃ suragho raghunandana | nandanodyānasaṃsthasya madanasyaiva mādhavaḥ || 9 ||

Rama, delight of the Raghus, he became the closest friend of Suraghu, as the spring season is close to the god of love who lives in the Nandana garden.

हे राघुनंदन राम, वह सुरघु का सबसे गहरा मित्र बन गया, ठीक वैसे ही जैसे नंदन वन में रहने वाले कामदेव के लिए वसंत ऋतु होती है।

5.61.10

कदाचित्परिघस्याभूदवर्षं मण्डले महत् । कल्पान्त इव संसारे प्रजादुष्कृतदोषजम् ॥ १० ॥

kadācitparighasyābhūdavarṣaṃ maṇḍale mahat | kalpānta iva saṃsāre prajāduṣkṛtadoṣajam || 10 ||

Once, a great drought fell on Parigha's kingdom, caused by the wrongdoing of his people, like the destruction that comes at the end of an age.

एक बार परिघ के राज्य में बड़ा सूखा पड़ गया, जो उसकी प्रजा के बुरे कामों से पैदा हुआ था, ठीक जैसे युग के अंत में होने वाला विनाश।

5.61.11

विनेशुर्जनतास्तत्र बह्वयः क्षुत्क्षामजीविताः । ज्वलिते विपिने वह्नौ यथा भूतपरम्पराः ॥ ११ ॥

vineśurjanatāstatra bahvayaḥ kṣutkṣāmajīvitāḥ | jvalite vipine vahnau yathā bhūtaparamparāḥ || 11 ||

There, many people, wasted thin by hunger, died, like lines of creatures dying when fire blazes through a forest.

वहाँ भूख से दुबले हुए बहुत से लोग मर गए, जैसे जंगल में आग लगने पर एक के बाद एक जीव-जंतु मर जाते हैं।

5.61.12

तद्दुःखं परिघो दृष्ट्वा विषादमतुलं ययौ । तत्याजाश्वखिलं राज्यं दग्धं ग्राममिवाध्वगः ॥ १२ ॥

taddhuḥkhaṃ parigho dṛṣṭvā viṣādamatulaṃ yayau | tatyājāśvakhilaṃ rājyaṃ dagdhaṃ grāmamivādhvagaḥ || 12 ||

Seeing this suffering, Parigha fell into grief beyond measure. He at once gave up his whole kingdom, like a traveler leaving behind a burned village.

यह दुख देखकर परिघ को असीम विषाद हुआ। उसने तुरंत अपना पूरा राज्य छोड़ दिया, ठीक जैसे कोई राहगीर जले हुए गाँव को छोड़ जाता है।

5.61.13

प्रजानाशप्रतीकारेष्वसमर्थो विरागवान् । जगाम विपिने कर्तुं तपोऽजिनमुनीन्द्रवत् ॥ १३ ॥

prajānāśapratīkāreṣvasamartho virāgavān | jagāma vipine kartuṃ tapo'jinamunīndravat || 13 ||

Unable to stop the ruin of his people, and filled with dispassion, he went into the forest to do penance, like a great sage clad in deerskin.

अपनी प्रजा के विनाश को रोक पाने में असमर्थ और वैराग्य से भरा हुआ, वह तपस्या करने जंगल चला गया, ठीक जैसे मृगछाला पहने कोई महान मुनि।

5.61.14

पौराणामपरिज्ञाते कस्मिंश्चिद्दूरकानने । समुवास विरक्तात्मा लोकान्तर इवापरे ॥ १४ ॥

paurāṇāmaparijñāte kasmiṃściddūrakānane | samuvāsa viraktātmā lokāntara ivāpare || 14 ||

With his heart turned away from the world, he settled in some far forest that his own townspeople did not know of, as though in another world entirely.

संसार से मन हटाकर, वह किसी दूर के ऐसे जंगल में जा बसा जिसे उसके अपने नगरवासी भी नहीं जानते थे, मानो वह किसी दूसरी दुनिया में हो।

5.61.15

तपश्चरञ्छान्तमतिर्दान्तः कन्दरमन्दिरे । स्वयं शीर्णानि शुष्काणि तत्र पर्णान्यभक्षयत् ॥ १५ ॥

tapaścarañchāntamatirdāntaḥ kandaramandire | svayaṃ śīrṇāni śuṣkāṇi tatra parṇānyabhakṣayat || 15 ||

There, doing penance, calm and self-controlled, living in a cave, he ate only leaves that had withered and fallen on their own.

वहाँ गुफा में रहकर, शांत मन और संयमित होकर तपस्या करते हुए, वह केवल वे पत्ते खाता था जो अपने आप सूखकर गिर गए थे।

5.61.16

चिरं हुताशवच्छुष्कपर्णान्येवाथ भक्षयन् । पर्णाद इति नामासौ प्राप मध्ये तपस्विनाम् ॥ १६ ॥

ciram hutāśavacchuṣkaparṇānyevātha bhakṣayan | parṇāda iti nāmāsau prāpa madhye tapasvinām || 16 ||

Eating nothing but dry leaves for a long time, like a fire consuming its offerings, he came to be known among the ascetics by the name Parnada.

बहुत लंबे समय तक केवल सूखे पत्ते खाते हुए, आहुति खाती आग की तरह, वह तपस्वियों के बीच पर्णाद नाम से जाना जाने लगा।

5.61.17

ततःप्रभृति पर्णादनामा राजर्षिसत्तमः । जम्बूद्वीपे बभूवासौ विख्यातो मुनिसद्मसु ॥ १७ ॥

tataḥprabhṛti parṇādanāmā rājarṣisattamaḥ | jambūdvīpe babhūvāsau vikhyāto munisadmasu || 17 ||

From then on, this greatest of royal sages, named Parnada, became famous all over Jambudvipa, in the hermitages of the sages.

तब से यह श्रेष्ठ राजर्षि, जिसका नाम पर्णाद था, सारे जम्बूद्वीप में मुनियों के आश्रमों में प्रसिद्ध हो गया।

5.61.18

ततो वर्षसहस्रेण तपसा दारुणात्मना । प्रापदभ्यासवशतो ज्ञानमात्मप्रसादजम् ॥ १८ ॥

tato varṣasahasreṇa tapasā dāruṇātmanā | prāpada abhyāsavaśato jñānamātmaprasādajam || 18 ||

Then, after a thousand years of harsh penance, through steady practice he gained the knowledge that is born from the clearness of one's own mind.

फिर हज़ार वर्षों की कठोर तपस्या के बाद, निरंतर अभ्यास से उसने वह ज्ञान पा लिया जो अपने ही मन की स्वच्छता से जन्म लेता है।

5.61.19

बभूव विगतद्वन्द्वो निराशः शान्तमानसः । नीरागो निरनुक्रोशो जीवन्मुक्तः प्रबुद्धधीः ॥ १९ ॥

babhūva vigatadvandvo nirāśaḥ śāntamānasaḥ | nīrāgo niranukrośo jīvanmuktaḥ prabuddhadhīḥ || 19 ||

He became free from all opposites, free of every craving, his mind at peace, free from attachment, unmoved even by pity, liberated while still alive, his understanding fully awake.

वह सारे द्वंद्वों से मुक्त हो गया, उसकी कोई चाहत नहीं बची, उसका मन शांत हो गया, किसी चीज़ का मोह नहीं रहा, दया का भी उस पर असर नहीं होता था, वह जीते-जी मुक्त हो गया और उसकी बुद्धि पूरी तरह जाग गई।

5.61.20

विजहार यथाकामं त्रिलोकीमठिकामिमाम् । सिद्धसाध्यैः समं साधो सहंसालिरिवाज्जिनीम् ॥ २० ॥

vijahāra yathākāmaṃ trilokīmaṭhikāmimām | siddhasādhyaiḥ samaṃ sādho sahaṃsālirivājjinīm || 20 ||

He roamed as he wished through this little hut that is the three worlds, together with Siddhas and Sadhyas, virtuous one, like a flock of swans on a lake.

हे सज्जन, वह तीनों लोकों के इस छोटे से मठ में जहाँ चाहे घूमता रहा, सिद्धों और साध्यों के साथ, ठीक जैसे किसी सरोवर पर हंसों का झुंड।

5.61.21

एकदा तस्य सदनं हेमचूडमहीपतेः । प्राप रत्नविनिर्माणं मेरोः श्रृङ्गमिवापरम् ॥ २१ ॥

ekadā tasya sadanaṃ hemachūḍamahīpateḥ | prāpa ratnavinirmāṇaṃ meroḥ śṛṅgamivāparam || 21 ||

One day he came to the palace of King Hemachuda, a palace built of jewels, like another peak of Mount Meru.

एक दिन वह राजा हेमचूड़ के महल में पहुँचा, जो रत्नों से बना हुआ था, मानो मेरु पर्वत की एक और चोटी हो।

5.61.22

ते तत्र प्राक्तने मित्रे पूजामकुरुतां मिथः । पूर्णौ विज्ञातविज्ञेयौ मौर्ख्यगर्भाद्विनिर्गतौ ॥ २२ ॥

te tatra prāktane mitre pūjāmakurutāṃ mithaḥ | pūrṇau vijñātavijñeyau maurkhyagarbhādvinirgatau || 22 ||

There, the two old friends paid honor to each other, each complete, each knowing the other and worth knowing, both having come out of the womb of folly.

वहाँ उन दोनों पुराने मित्रों ने एक-दूसरे का सम्मान किया, दोनों पूर्ण, दोनों एक-दूसरे को जानने वाले और जानने योग्य, दोनों मूर्खता की कोख से बाहर निकल आए थे।

5.61.23

अहो नु बत कल्याणैः फलितं मम पावनैः । संप्राप्तवानहं यत्त्वामित्यन्योन्यमथोचतुः ॥ २३ ॥

aho nu bata kalyāṇaiḥ phalitaṃ mama pāvanaiḥ | saṃprāptavānahaṃ yattvāmityanyonyamathocatuḥ || 23 ||

Ah, how wonderful, my good and purifying deeds have truly borne fruit, since I have found you again, so each said to the other.

अरे वाह, मेरे शुभ और पवित्र कर्मों का यह फल मिला है कि मुझे तुम फिर मिल गए, ऐसा उन दोनों ने एक-दूसरे से कहा।

5.61.24

आलिङ्गितशरीरौ तावन्योन्यानन्दिताकृती । एकासने विविशतुश्चन्द्रार्काविव भूधरे ॥ २४ ॥

āliṅgitaśarīrau tāvanyonyānanditākṛtī | ekāsane viviśatuścandrārkāviva bhūdhare || 24 ||

The two embraced each other, their faces bright with joy, and sat down together on a single seat, like the moon and the sun over a mountain.

दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया, उनके चेहरे खुशी से खिल उठे, और वे दोनों एक ही आसन पर साथ बैठ गए, ठीक जैसे किसी पर्वत पर चाँद और सूरज।

5.61.25

परिघ उवाच । परमानन्दमायातं चेतस्त्वद्दर्शनेन मे । इन्दुबिम्ब इवोन्मग्नं मनः शीतलतां गतम् ॥ २५ ॥

parigha uvāca | paramānandamāyātaṃ cetastvaddarśanena me | induvimba ivonmagnaṃ manaḥ śītalatāṃ gatam || 25 ||

Parigha said: Seeing you has filled my heart with the greatest joy. It has risen up like the moon's disc, and my mind has grown cool.

परिघ ने कहा: तुम्हें देखकर मेरे मन को सबसे बड़ा आनंद मिला है। यह चाँद के गोले की तरह उभर आया है, और मेरा मन ठंडा हो गया है।

5.61.26

अकृत्रिमसुखं प्रेम वियोगे शतशाखताम् । प्रयाति पल्वलतटेऽच्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ॥ २६ ॥

akṛtrimasukhaṃ prema viyoge śataśākhatām | prayāti palvalataṭe'cchinnamūla iva drumaḥ || 26 ||

True love, whose joy is not put on, spreads into a hundred branches when it is parted. It is like a tree standing at the edge of a pond, its root unbroken, growing thick with branches.

सच्चा प्रेम, जिसका सुख बनावटी नहीं होता, बिछड़ने पर सौ शाखाओं में फैल जाता है। यह तालाब के किनारे खड़े उस पेड़ जैसा है जिसकी जड़ नहीं कटी, और जो घनी शाखाओं में फैलता है।

5.61.27

विश्रब्धास्तान्कथालापांस्ता लीलास्तच्च चेष्टितम् । संस्मृत्य प्राक्तनं साधो हृष्यामि च पुनःपुनः ॥ ॥ २७ ॥

viśrabdhāstānkathālāpāṃstā līlāstaccа ceṣṭitam | saṃsmṛtya prāktanaṃ sādho hṛṣyāmi ca punaḥpunaḥ || 27 ||

Remembering those open, trusting talks, those playful games, and that old way of behaving, O good man, I feel a thrill of joy again and again.

उन खुले दिल की बातचीत को, उन खेलों को, और उस पुरानी चेष्टा को याद करके, हे साधु, मुझे बार-बार रोमांच होता है।

5.61.28

ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं त्वया ज्ञातं यथाऽनघ । माण्डव्यस्य प्रसादेन परमात्मप्रसादजम् ॥ ॥ २८ ॥

jñānametanmayā prāptaṃ tvayā jñātaṃ yathā'nagha | māṇḍavyasya prasādena paramātmprasādajam || 28 ||

O sinless one, I too have gained this knowledge, the same as you know it. It is born from the grace of the highest self, through the grace of Mandavya.

हे निष्पाप, मैंने भी वही ज्ञान पाया है जो तुम जानते हो। यह परमात्मा की कृपा से पैदा हुआ है, माण्डव्य की कृपा से।

5.61.29

अद्य कच्चिददुःखस्त्वं कच्चिद्विश्रान्तवानसि । परमे कारणे मेराविव भूमण्डलाधिपः ॥ ॥ २९ ॥

adya kaccidaduḥkhastraṃ kaccidviśrāntavānasi | parame kāraṇe merāviva bhūmaṇḍalādhipaḥ || 29 ||

Today, are you free of sorrow? Have you found rest in the highest cause, like the lord of the whole earth resting on Mount Meru?

आज क्या तुम दुःख से मुक्त हो? क्या तुमने परम कारण में विश्राम पाया है, जैसे समूची पृथ्वी का राजा मेरु पर्वत पर विश्राम पाता है?

5.61.30

कच्चित्परमकल्याण आत्मारामतया तव । प्रसादो जायते चित्ते शरदीव सरोम्भसि ॥ ॥ ३० ॥

kaccitparamakalyāṇa ātmārāmatayā tava | prasādo jāyate citte śaradīva saro'mbhasi || 30 ||

O most blessed one, because you delight in your own self, does peace rise in your heart, like the water of a lake growing clear in autumn?

हे परम कल्याणकारी, अपनी आत्मा में रमने के कारण क्या तुम्हारे मन में शांति उठती है, जैसे शरद ऋतु में झील का पानी निर्मल हो जाता है?

5.61.31

कच्चित्करोषि समया सुप्रसन्नगभीरया । दृष्ट्या सुभग कार्याणि कार्याण्येव नराधिप ॥ ३१ ॥

kaccitkarosi samayā suprasannagabhīrayā | dṛṣṭyā subhaga kāryāṇi kāryāṇyeva narādhipa || 31 ||

O fortunate king, with a calm, clear, and deep gaze that treats everyone alike, do you do only those deeds that ought to be done?

हे सौभाग्यशाली राजा, क्या तुम एक जैसी, शांत और गहरी दृष्टि से केवल वही काम करते हो जो करने योग्य है?

5.61.32

निराधिव्याधयो धीराः कच्चित्संपन्नशालयः । जनतास्तव देशेषु तिष्ठन्ति विगतज्वरम् ॥ ३२ ॥

nirādhivyādhayo dhīrāḥ kaccitsaṃpannaśālayaḥ | janatāstava deśeṣu tiṣṭhanti vigatajvaram || 32 ||

In your lands, are the people free of worry and disease, calm and steady, their crops plentiful, living without any trouble?

क्या तुम्हारे देश में लोग चिंता और रोग से मुक्त, शांत और स्थिर हैं, उनकी फसलें भरपूर हैं, और वे बिना किसी कष्ट के रहते हैं?

5.61.33

कच्चिदुद्दामफलिनी फलिनीव फलानता । धरा तव फलापूरैर्भृशं धारयति प्रजाः ॥ ३३ ॥

kacciduddāmaphalinī phalinīva phalānatā | dharā tava phalāpūrairbhṛśaṃ dhārayati prajāḥ || 33 ||

Is your land so richly fruitful that it bends low, like a tree loaded with fruit, and does it feed your people well with its abundant crop?

क्या तुम्हारी धरती इतने फलों से भरी है कि वह फलों से लदे पेड़ की तरह झुक जाती है, और क्या वह अपनी भरपूर उपज से तुम्हारी प्रजा का अच्छी तरह पालन करती है?

5.61.34

कच्चित्तव दिगन्तेषु चन्द्रस्येवाशुपञ्जरम् । तुषारनिकराकारं प्रसृतं पावनं यशः ॥ ३४ ॥

kaccittava digānteṣu candrasyevāśupañjaram | tuṣāranikarākāraṃ prasṛtaṃ pāvanaṃ yaśaḥ || 34 ||

Has your pure fame spread out to the far edge of every direction, taking the shape of a heap of frost, like the moon's spreading web of light?

क्या तुम्हारा पवित्र यश हर दिशा के दूर छोर तक फैल गया है, बर्फ के ढेर जैसा दिखता हुआ, चाँद की फैलती हुई किरणों की तरह?

5.61.35

कच्चिद्गुणगणैरेता दिशो निर्विवरीकृताः । त्वया सरोम्भसाऽबाह्या विसानामिव भूमयः ॥ ३५ ॥

kaccidruṇagaṇairetā diśo nirvivarīkṛtāḥ | tvayā sarombhasā'bāhyā visānāmiva bhūmayaḥ || 35 ||

Have you filled these directions everywhere with your many virtues, leaving no gap, so that your land is never without water, like the wet fibers of a lotus stalk?

क्या तुमने अपने अनेक गुणों से इन दिशाओं को हर जगह भर दिया है, कोई कमी न छोड़ते हुए, ऐसे कि तुम्हारी भूमि कमल के गीले रेशों की तरह कभी जल से खाली नहीं रहती?

5.61.36

कच्चित्कलमकेदारकोणस्थानेषु दृष्यतीः । प्रतिग्रामं कुमार्यस्ते गायन्त्यानन्दनं यशः ॥ ३६ ॥

kaccitkalamakedārakoṇasthāneṣu dṛṣyatīḥ | pratigrāmaṃ kumāryaste gāyantyānandanaṃ yaśaḥ || 36 ||

In every village, do the girls who are seen at the edges of the rice fields sing your fame, the fame that brings joy?

क्या हर गाँव में, धान के खेतों के किनारे दिखने वाली लड़कियाँ तुम्हारा वह यश गाती हैं जो आनंद देता है?

5.61.37

कुशलं तव धान्येषु धनेषु विभवेषु च । भृत्येषु च कलत्रेषु पुत्रेषु नगरेषु च ॥ ३७ ॥

kuśalaṃ tava dhānyeṣu dhaneṣu vibhaveṣu ca | bhṛtyeṣu ca kalatreṣu putreṣu nagareṣu ca || 37 ||

Is all well with you in your grain, your wealth, your riches, your servants, your wife, your sons, and your cities?

क्या तुम्हारे अनाज, धन, वैभव, सेवकों, पत्नी, पुत्रों और नगरों में सब कुछ ठीक है?

5.61.38

आधिव्याधिविहीनेयं कच्चित्कायलता तव । फलं फलति पुण्यार्थं यदिहामुत्र चोदितम् ॥ ३८ ॥

ādhi-vyādhi-vihīneyaṃ kaccitkāyalatā tava | phalaṃ phalati puṇyārthaṃ yadiha-amutra coditam || 38 ||

Is this creeper of your body free of mental pain and disease, bearing the fruit of merit that is called for both in this world and the next?

क्या तुम्हारी यह देह-लता मानसिक पीड़ा और रोग से मुक्त है, और उस पुण्य का फल दे रही है जो इस लोक और परलोक दोनों के लिए बताया गया है?

5.61.39

आपातरमणीयेषु वर्तेतात्यन्तवैरिषु । कच्चिद्विषयसर्पेषु सविरागं मनस्तव ॥ ३९ ॥

āpātaramaṇīyeṣu vartetātyantavairiṣu | kaccidviṣayasarpeṣu savirāgaṃ manastava || 39 ||

Is your mind free of longing for the objects of the senses, which are like snakes, pleasant only at first touch but in truth the deepest enemies?

क्या तुम्हारा मन उन इंद्रिय-विषयों से विरक्त है, जो सर्पों के समान हैं, पहली नज़र में सुखद पर सचमुच सबसे बड़े शत्रु?

5.61.40

अहो बत चिरं कालमावां विश्लेषमागतौ । कालेन श्लेषितौ भूयो वसन्ताद्रितटाविव ॥ ४० ॥

aho bata ciraṃ kālamāvāṃ viśleṣamāgatau | kālena śleṣitau bhūyo vasantādriratataṭāviva || 40 ||

Ah, for so long a time the two of us were kept apart. Now time has joined us together again, as two slopes of a mountain are joined by spring.

अहो, कितने लंबे समय तक हम दोनों अलग रहे। अब समय ने हमें फिर से जोड़ दिया है, जैसे वसंत ऋतु में पर्वत की दो ढलानें फिर से जुड़ जाती हैं।

5.61.41

न ता जगति विद्यन्ते सुखदुःखदशाः सखे । जीवद्भिर्या न दृश्यन्ते संयोगजवियोगजाः ॥ ४१ ॥

na tā jagati vidyante sukhaduḥkhadaśāḥ sakhe | jīvadbhiryā na dṛśyante saṃyogajaviyogajāḥ || 41 ||

O friend, there is no state of joy or sorrow in this world, born of coming together or born of parting, that the living do not see.

हे मित्र, इस संसार में सुख या दुःख की ऐसी कोई अवस्था नहीं है, चाहे वह मिलन से जन्मी हो या बिछड़ने से, जिसे जीवित लोग न देखते हों।

5.61.42

तथैतास्वतिदीर्घासु दशास्वन्यत्वमागताः । भूयो वयमपि श्लिष्टाश्चित्रो हि नियतेर्विधिः ॥ ४२ ॥

tathaitāsvatidīrghāsu daśāsvanyatvamāgatāḥ | bhūyo vayamapi śliṣṭāścitro hi niyatervidhiḥ || 42 ||

So it was that during these very long years we became strangers to each other, and now we are joined together once more. How strange indeed is the working of fate.

इस तरह इन बहुत लंबे वर्षों में हम एक-दूसरे के लिए पराए हो गए थे, और अब हम फिर से जुड़ गए हैं। सच में, नियति की गति कितनी अनोखी है।

5.61.43

सुरघुरुवाच । भगवन्नियतेरस्या गतिं सर्पगतेरिव । दैविक्याः को हि जानाति गम्भीरां विस्मयप्रदाम् ॥ ४३ ॥

suraguruvāca | bhagavanniyerasya gatiṃ sarpagateriva | daivikyāḥ ko hi jānāti gambhīrāṃ vismayapradām || 43 ||

Suraghu said: My lord, who indeed can truly know the course of this fate, moving like a snake, this fate that comes from the gods, so deep and so full of wonder?

सुरघु ने कहा: हे स्वामी, इस नियति की चाल को, जो सर्प की चाल जैसी है, कौन सचमुच जान सकता है? यह दैवी नियति गहरी है और चकित कर देने वाली है।

5.61.44

त्वमहं च व्यपोह्येति दूरे दूरदशासु च । अद्य संघटितौ भूयः किमसाध्यमहो विधेः ॥ ४४ ॥

tvamahaṃ ca vyapohyeti dūre dūradāśāsu ca | adya saṃghaṭitau bhūyaḥ kimasādhyamaho vidheḥ || 44 ||

You and I were driven far apart, into conditions far away from each other. Today we are joined together again. Ah, what indeed is impossible for fate?

तुम और मैं एक-दूसरे से दूर, दूर की अवस्थाओं में धकेल दिए गए थे। आज हम फिर से जुड़ गए हैं। अहो, नियति के लिए क्या असंभव है?

5.61.45

वयं त्वद्य महासत्त्व भृशं कुशलिनः स्थिताः । त्वदागमनपुण्येन परां पावनतां गताः ॥ ४५ ॥

vayaṃ tvadya mahāsattva bhṛśaṃ kuśalinaḥ sthitāḥ | tvadāgamanapuṇyena parāṃ pāvanatāṃ gatāḥ || 45 ||

O great one, we are all truly very well today. Through the merit of your coming, we have reached the highest purity.

हे महान आत्मा, आज हम सब सचमुच बहुत अच्छी स्थिति में हैं। तुम्हारे आगमन के पुण्य से हमें परम पवित्रता मिली है।

5.61.47

सर्वाः संपत्तयोऽस्माकं राजर्षे संस्थिताः पुरे । भवदागमनेनाद्य प्रयाताः शतशाखताम् ॥ ४७ ॥

sarvāḥ saṃpattayo'smākaṃ rājarṣe saṃsthitāḥ pure | bhavadāgamanenādya prayātāḥ śataśākhatām || 47 ||

O royal sage, all our riches settled in this city have today, because of your coming, multiplied a hundredfold.

हे राजर्षि, इस नगर में बसी हमारी सारी संपत्ति आज तुम्हारे आगमन से सौ गुनी बढ़ गई है।

5.61.48

विकिरति परितो रसायनानामिव निकरं मधुरं महानुभाव । तव वचनमवेक्षणं च पुण्यं परमपदप्रतिमो हि साधुसङ्गः ॥ ४८ ॥

vikirati parito rasāyanānāmiva nikaraṃ madhuraṃ mahānubhāva | tava vachanamavekṣaṇaṃ cha puṇyaṃ paramapadapratimo hi sādhusaṅgaḥ || 48 ||

O great one, your sweet words spread out all around like a heap of rejuvenating medicines. Both your words and the sight of you are holy, for the company of the good is truly the very image of the highest state.

हे महानुभाव, तुम्हारे मीठे वचन चारों ओर ऐसे फैल जाते हैं जैसे कायाकल्प करने वाली औषधियों का ढेर। तुम्हारा वचन और तुम्हारा दर्शन दोनों पवित्र हैं, क्योंकि सज्जनों का साथ सचमुच परम पद के समान है।

Chapter 62

5.62.2

परिघ उवाच । यद्यत्संसारजालेऽस्मिन्क्रियते कर्म भूमिप । तत्समाहितचित्तस्य सुखायान्यस्य नानघ ॥ २ ॥

parigha uvāca | yadyatsaṃsārajāle'smin kriyate karma bhūmipa | tatsamāhitacittasya sukhāyānyasya nānagha || 2 ||

Parigha said: O king, O sinless one, whatever work is done in this net of the world, it brings happiness only to one whose mind is settled — not to another.

परिघ ने कहा: हे राजा, हे निष्पाप, इस संसार रूपी जाल में जो भी काम किया जाता है, वह उसी को सुख देता है जिसका मन शांत और स्थिर है, दूसरे को नहीं।

5.62.3

कच्चित्संकल्परहितं परं विश्रमणास्पदम् । परमोपशमं श्रेयः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ ३ ॥

kaccitsaṃkalparahitaṃ paraṃ viśramaṇāspadam | paramopaśamaṃ śreyaḥ samādhimanutiṣṭhasi || 3 ||

I hope you abide in that supreme absorption, free of every mental construct, the highest resting place, the highest peace, the highest good.

आशा है कि तुम उस परम समाधि में टिके रहते हो, जो हर तरह के संकल्प से रहित है, जो विश्राम का सबसे ऊँचा स्थान है, जो सबसे बड़ी शांति और भलाई है।

5.62.4

सुरघुरुवाच । एतन्मे ब्रूहि भगवन्सर्वसंकल्पवर्जितम् । परमोपशमं श्रेयः समाधिर्हि किमुच्यते ॥ ४ ॥

suraguruvāca | etanme brūhi bhagavan sarvasaṃkalpavarjitam | paramopaśamaṃ śreyaḥ samādhirhi kimucyate || 4 ||

Suraghu said: Tell me this, lord — what is meant by samadhi, that is said to be free of every mental construct, the highest peace, the highest good?

सुरघु ने कहा: हे भगवन्, मुझे यह बताइए कि समाधि किसे कहते हैं, जो हर तरह के संकल्प से रहित है, जो सबसे बड़ी शांति और भलाई है।

5.62.5

यो ज्ञो महात्मन्सततं तिष्ठन्त्यवहरंश्च वा । असमाहितचित्तोऽसौ कदा भवति कः किल ॥ ५ ॥

yo jño mahātman satataṃ tiṣṭhantyavaharaṃśca vā | asamāhitacitto'sau kadā bhavati kaḥ kila || 5 ||

O great soul, when does the knower — who stays the same always, whether resting still or engaged in action — ever have an unsettled mind? Who could that be?

हे महात्मन्, जो ज्ञानी सदा एक-सा रहता है, चाहे वह स्थिर बैठा हो या काम में लगा हो, उसका मन कब अस्थिर होता है? भला ऐसा कौन है?

5.62.6

नित्यं प्रबुद्धचित्तास्तु कुर्वन्तोऽपि जगत्क्रियाः । आत्मैकतत्त्वसंनिष्ठाः सदैव सुसमाधयः ॥ ६ ॥

nityaṃ prabuddhacittāstu kurvanto'pi jagatkriyāḥ | ātmaikatattvasaṃniṣṭhāḥ sadaiva susamādhayaḥ || 6 ||

Those whose minds are always awake stay fixed in the one reality of the self even while carrying out the actions of the world, and so are always truly settled in samadhi.

जिनका मन सदा जागा हुआ है, वे संसार के सारे काम करते हुए भी आत्मा के एक ही सत्य में टिके रहते हैं, और इसलिए सदा सच्ची समाधि में स्थित रहते हैं।

5.62.7

बद्धपद्मासनस्यापि कृतब्रह्माञ्जलेरपि । अविश्रान्तस्वभावस्य कः समाधिः कथं च वा ॥ ७ ॥

baddhapadmāsanasyaapi kṛtabrahmāñjalerapi | aviśrāntasvabhāvasya kaḥ samādhiḥ kathaṃ ca vā || 7 ||

But for someone whose inner nature is restless, even if he sits locked in the lotus posture with hands folded in worship, what samadhi does he have, and how?

परन्तु जिसका स्वभाव भीतर से अशांत है, वह चाहे पद्मासन में बैठकर हाथ जोड़कर प्रणाम की मुद्रा बना ले, तो भी उसकी कैसी समाधि और कहाँ की समाधि?

5.62.8

तत्त्वावबोधो भगवन्सर्वाशातृणपावकः । प्रोक्तः समाधिशब्देन नतु तूष्णीमवस्थितिः ॥ ८ ॥

tattvāvabodho bhagavansarvāśātṛṇapāvakaḥ | proktaḥ samādhiśabdena natu tūṣṇīmavasthitiḥ || 8 ||

Lord, what is called samadhi is the awakening to the truth, a fire that burns up all desires like dry grass — not simply sitting in silence.

हे भगवन्, समाधि उसी को कहते हैं जो सत्य का बोध है, जो सारी इच्छाओं को सूखी घास की तरह जला देने वाली आग है, न कि केवल चुपचाप बैठे रहना।

5.62.9

समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदर्शिनी । साधो समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः ॥ ९ ॥

samāhitā nityatṛptā yathābhūtārthadarśinī | sādho samādhiśabdena parā prajñocyate budhaiḥ || 9 ||

Good man, the wise use the word samadhi for the highest wisdom — a wisdom that is settled, always content, and sees things exactly as they are.

हे साधु, बुद्धिमान लोग समाधि शब्द से उसी परम बुद्धि को कहते हैं, जो स्थिर है, सदा संतुष्ट है, और चीज़ों को ठीक वैसा ही देखती है जैसी वे हैं।

5.62.10

अक्षुब्धा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी । प्रोक्ता समाधिशब्देन मेरोः स्थिरतराकृतिः ॥ १० ॥

akṣubdhā nirahaṅkārā dvandveṣvananupātinī | proktā samādhiśabdena meroḥ sthiratarākṛtiḥ || 10 ||

It is unshaken, free of ego, never swayed by opposites, and steadier than Mount Meru itself — that is what the word samadhi means.

जो कभी विचलित नहीं होती, जिसमें अहंकार नहीं है, जो कभी दो विपरीत बातों में नहीं बहती, और जो मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर है — उसी को समाधि कहते हैं।

5.62.11

निश्चिन्ताधिगताभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता । प्रोक्ता समाधिशब्देन परिपूर्णा मनोगतिः ॥ ११ ॥

niścintādhigatābhīṣṭā heyopādeyavarjitā | proktā samādhiśabdena paripūrṇā manogatiḥ || 11 ||

Free of anxiety, having already reached everything worth wanting, beyond both what to accept and what to reject, and completely full — that state of mind is what is called samadhi.

जो चिंता से मुक्त है, जिसने वह सब पा लिया है जो पाने योग्य था, जिसमें अब कुछ ग्रहण करने या त्यागने को शेष नहीं रहा, और जो पूर्ण रूप से भरी हुई है — मन की उसी अवस्था को समाधि कहते हैं।

5.62.12

यतःप्रभृति बोधेन युक्तमात्यन्तिकं मनः । तदारभ्य समाधानमव्युच्छिन्नं महात्मनः ॥ १२ ॥

yataḥprabhṛti bodhena yuktamātyantikaṃ manaḥ | tadārabhya samādhānamavyucchinnaṃ mahātmanaḥ || 12 ||

From the moment the mind is joined with true awakening, once and for all, from that moment on the great soul's samadhi never breaks.

जिस क्षण से मन पूरी तरह और सदा के लिए सच्चे बोध से जुड़ जाता है, उसी क्षण से उस महात्मा की समाधि कभी नहीं टूटती।

5.62.13

नहि प्रबुद्धमनसो भूत्वा विच्छिद्यते पुनः । समाधिर्दूरमाकृष्टो बिसतन्तुः शिशोरिव ॥ १३ ॥

nahi prabuddhamanaso bhūtvā vicchidyate punaḥ | samādhirdūramākṛṣṭo bisatantuḥ śiśoriva || 13 ||

Once the mind has fully awakened, samadhi is never cut off again — just as a lotus-fiber thread stays unbroken however far a child pulls it out.

जिसका मन एक बार जाग गया, उसकी समाधि फिर कभी नहीं टूटती — जैसे कमल की डंडी का रेशा बच्चे द्वारा दूर तक खींचे जाने पर भी नहीं टूटता।

5.62.14

समग्रं दिनमालोकाद्विरमत्यक्षयो यथा । आजीवितान्तं नो प्रज्ञा तथा तत्त्वावलोकनात् ॥ १४ ॥

samagraṃ dinamālokādviramatyakṣayo yathā | ājīvitāntaṃ no prajñā tathā tattvāvalokanāt || 14 ||

Just as the sun never stops shining throughout the whole day, so wisdom never stops seeing reality, right until the end of life.

जैसे सूर्य पूरे दिन प्रकाश देना कभी नहीं छोड़ता, वैसे ही ज्ञान जीवन के अंत तक सत्य को देखना कभी नहीं छोड़ता।

5.62.15

अजस्रमम्बुवहनाद्यथा नद्या न रुद्ध्यते । तथा विज्ञानदृग्बोधात्क्षणमात्रं न रुद्ध्यते ॥ १५ ॥

ajasramambuvahanādyathā nadyā na rudhyate | tathā vijñānadṛgbodhātkṣaṇamātraṃ na rudhyate || 15 ||

Just as a river never stops carrying its water, not even for a moment, so the eye of true knowledge never stops seeing, not even for a moment.

जैसे नदी कभी भी, एक पल के लिए भी, पानी बहाना नहीं रोकती, वैसे ही सच्चे ज्ञान की दृष्टि एक पल के लिए भी देखना नहीं रोकती।

5.62.16

न विस्मरत्यविरतं यथा कालः कलागतिम् । न विस्मरत्यविरतं स्वात्मानं प्राज्ञधीस्तथा ॥ १६ ॥

na vismaratyaviratam yathā kālaḥ kalāgatim | na vismaratyaviratam svātmānaṃ prājñadhīstathā || 16 ||

Just as time never forgets, even for an instant, the passing of its own moments, so the wise mind never forgets its own self, even for an instant.

जैसे समय अपने पलों के बीतने को कभी नहीं भूलता, एक क्षण के लिए भी नहीं, वैसे ही बुद्धिमान मन अपनी आत्मा को कभी नहीं भूलता, एक क्षण के लिए भी नहीं।

5.62.17

न विस्मरति सर्वत्र यथा सततगो गतिम् । न विस्मरति निश्चेयं चिन्मात्रं प्राज्ञ धीस्तथा ॥ १७ ॥

na vismarati sarvatra yathā satatago gatim | na vismarati niśceyaṃ cinmātraṃ prājña dhīstathā || 17 ||

Just as the wind, always moving, never forgets to blow everywhere, so the wise mind never forgets this one certainty — pure consciousness.

जैसे सदा चलने वाली हवा कहीं भी बहना नहीं भूलती, वैसे ही बुद्धिमान मन उस एक निश्चित सत्य — शुद्ध चेतना — को कभी नहीं भूलता।

5.62.18

गतिं कालकला यद्वच्चिन्वाना समवस्थिता । चिच्चितिश्चेत्यरहिता चिन्वाना गतयस्तथा ॥ १८ ॥

gatiṃ kālakalā yadvaccinvānā samavasthitā | cicciticścetyarahitā cinvānā gatayastathā || 18 ||

Just as the units of time keep gathering motion yet still remain fixed as time, so the movements of the world, being nothing but pure awareness, free of any sense of this or that, likewise keep gathering, yet remain just as fixed.

जैसे समय के अंश गति को इकट्ठा करते हुए भी समय के रूप में स्थिर बने रहते हैं, वैसे ही जगत की गतिविधियाँ, जो शुद्ध चेतना मात्र हैं और जिनमें यह-वह का कोई भेद नहीं, गति इकट्ठा करते हुए भी उतनी ही स्थिर बनी रहती हैं।

5.62.19

यथा सत्ताविहीनात्मा पदार्थो नोपलभ्यते । तथात्मज्ञानहीनात्मा कालो ज्ञस्य न लभ्यते ॥ १९ ॥

yathā sattāvihīnātmā padārtho nopalabhyate | tathātmajñānahīnātmā kālo jñasya na labhyate || 19 ||

Just as a thing with no existence at all cannot be perceived, so for the one who knows, there is no such thing as time without knowledge of the self.

जैसे जिस वस्तु का कोई अस्तित्व ही नहीं, वह कभी दिखाई नहीं देती, वैसे ही ज्ञानी के लिए ऐसा कोई समय नहीं मिलता जो आत्म-ज्ञान से रहित हो।

5.62.20

न संभवति संसारे गुणहीनो गुणी यथा । न संभवत्यात्मसंविद्वर्जितो ह्यात्मवांस्तथा ॥ २० ॥

na saṃbhavati saṃsāre guṇahīno guṇī yathā | na saṃbhavatyātmasaṃvidvarjito hyātmavāṃstathā || 20 ||

Just as, in this world, something that has a certain quality cannot at the same time be without that quality, so a person who truly has the self cannot at the same time be without awareness of the self.

जैसे संसार में कोई वस्तु किसी गुण को रखते हुए भी उस गुण से खाली नहीं हो सकती, वैसे ही जो सच में आत्मा को जानने वाला है, वह आत्म-ज्ञान से खाली नहीं हो सकता।

5.62.21

सर्वदैवास्मि संबुद्धः सर्वदैवास्मि निर्मलः । सर्वदैवास्मि शान्तात्मा सर्वदास्मि समाहितः ॥ २१ ॥

sarvadaivāsmi saṃbuddhaḥ sarvadaivāsmi nirmalaḥ | sarvadaivāsmi śāntātmā sarvadāsmi samāhitaḥ || 21 ||

I am always fully awake. I am always pure. I am always peaceful in nature. I am always settled in samadhi.

मैं सदा पूर्ण रूप से जागा हुआ हूँ। मैं सदा निर्मल हूँ। मैं सदा शांत स्वभाव वाला हूँ। मैं सदा समाधि में स्थित हूँ।

5.62.22

भेदः केन समाधेर्मे जन्यते कथमेव वा । आत्मनोऽव्यतिरेकेण नित्यमेव सदात्मता ॥ २२ ॥

bhedaḥ kena samādherme janyate kathameva vā | ātmano'vyatirekeṇa nityameva sadātmatā || 22 ||

By what, or how, could my samadhi ever be broken? Since I am never separate from the self, I remain, always and forever, simply myself.

मेरी समाधि किस कारण या कैसे टूट सकती है? क्योंकि मैं आत्मा से कभी अलग नहीं हूँ, इसलिए मैं सदा और हमेशा वही हूँ जो मैं हूँ।

5.62.23

तस्मात्कदाचिदपि मे नासमाधिमयं मनः । न वा समाहितं नित्यमात्मतत्त्वैकसंभवात् ॥ २३ ॥

tasmātkadācidapi me nāsamādhimayaṃ manaḥ | na vā samāhitaṃ nityamātmatattvaikasambhavāt || 23 ||

So my mind is never, at any time, without samadhi; yet it does not simply remain fixed in samadhi as a state either, since it arises only as the one reality of the self.

इसलिए मेरा मन कभी भी, किसी भी समय, समाधि से रहित नहीं है; फिर भी यह भी नहीं कि वह सदा किसी समाधि नामक अवस्था में टिका रहता है, क्योंकि वह केवल आत्मा के उसी एक सत्य के रूप में प्रकट होता है।

5.62.24

सर्वगः सर्वदैवात्मा सर्वमेव च सर्वथा । असमाधिर्हि कोऽसौ स्यात्समाधिरपि कः स्मृतः ॥ २४ ॥

sarvagaḥ sarvadaivātmā sarvameva ca sarvathā | asamādhirhi ko'sau syātsamādhirapi kaḥ smṛtaḥ || 24 ||

The self is present everywhere, always, and it is everything, in every way — so who could there be without samadhi? And who, then, is the one said to have it?

आत्मा सब जगह है, सदा है, और वह सब कुछ है, हर तरह से — तो ऐसा कौन हो सकता है जिसमें समाधि न हो? और फिर वह कौन है जिसे समाधि वाला कहा जाए?

5.62.25

नित्यं समाहितधियः सुसमा महान्तस्तिष्ठन्ति कार्यपरिणामविभागमुक्ताः । तेनासमाहितसमाहितभेदभङ्ग्या नित्योदितः क्व नु स उत्तमवाक्प्रपञ्चः ॥ २५ ॥

nityaṃ samāhitadhiyaḥ susamā mahāntastiṣṭhanti kāryapariṇāmavibhāgamuktāḥ |
tenāsamāhitasamāhitabhedabhaṅgyā nityoditaḥ kva nu sa uttamavākprapañcaḥ || 25 ||

The great ones, their minds forever settled and always the same, stand free of the divisions that come from change and action. So, through this very way of telling apart the unsettled from the settled, where, really, does all this elaborate talk about it stand?

महापुरुष, जिनकी बुद्धि सदा स्थिर और सदा एक-सी रहती है, कर्म और परिवर्तन के भेदों से मुक्त होकर रहते हैं। तो फिर 'असमाधि' और 'समाधि' के इस भेद को बताने वाली यह सारी बड़ी-बड़ी बातें आखिर कहाँ टिकती हैं?

Chapter 63

5.63.1

परिघ उवाच राजन्नूनं प्रबुद्धोऽसि प्राप्तवानसि तत्पदम् संशीतलान्तःकरणः पूर्णेन्दुरिव राजसे ॥ १ ॥

parigha uvāca rājannūnaṃ prabuddho'si prāptavānasi tatpadam saṃśītalāntaḥkaraṇaḥ pūrṇenduriva rājase || 1 ||

Parigha said: O king, surely you are awake now; you have reached that highest state. Your mind has grown fully cool and calm, and you shine like the full moon.

परिघ ने कहा: हे राजा, अब तो तुम सच में जाग गए हो, तुम उस सबसे ऊँचे पद तक पहुँच गए हो। तुम्हारा मन पूरी तरह ठंडा और शांत हो गया है, और तुम पूरे चाँद की तरह चमक रहे हो।

5.63.2

आनन्दमधुसंपूर्णो लक्ष्म्या च परया श्रितः शीतलः स्निग्धमधुरो राजीवमिव राजसे ॥ २ ॥

ānandamadhusaṃpūrṇo lakṣmyā ca parayā śritaḥ śītalaḥ snigdhamadhuro rājīvamiva rājase || 2 ||

You are full of the sweetness of joy, and you carry the highest beauty. You are cool, soft, and sweet, and you shine like a lotus.

तुम आनंद की मिठास से भरे हो, और तुम्हारे पास सबसे बड़ी शोभा है। तुम ठंडे, कोमल और मीठे हो, और तुम कमल की तरह चमक रहे हो।

5.63.3

निर्मलो विततः पूर्णो गम्भीरः प्रकटाशयः वेलानिलविलासेन मुक्तोऽब्धिरिव राजसे ॥ ३ ॥

nirmalo vitataḥ pūrṇo gambhīraḥ prakaṭāśayaḥ velānilavilāsena mukto'bdhiriva rājase || 3 ||

You are pure, wide, full, and deep, with an open heart. You are free, as if loosened by the play of the wind at the shore, and you shine like the ocean.

तुम शुद्ध, विशाल, पूरे और गहरे हो, और तुम्हारा मन खुला हुआ है। तुम ऐसे मुक्त हो जैसे किनारे की हवा के खेल से खुल गए हो, और तुम समुद्र की तरह चमक रहे हो।

5.63.4

स्वच्छ आनन्दसंपूर्णो नष्टाहंकारवारिदः स्फुटो विस्तीर्णगम्भीरः शरत्खमिव राजसे ॥ ४ ॥

svaccha ānandasaṃpūrṇo naṣṭāhaṃkāravāridaḥ sphuṭo vistīrṇagambhīraḥ śaratkhamaiva rājase || 4 ||

You are clear and full of joy, with the clouds of pride gone from you. You are bright, wide, and deep, and you shine like the autumn sky.

तुम साफ और आनंद से भरे हो, और तुमसे अभिमान के बादल हट गए हैं। तुम उजले, विशाल और गहरे हो, और तुम शरद के आकाश की तरह चमक रहे हो।

5.63.5

सर्वत्र लक्ष्यसे स्वस्थः सर्वत्र परितुष्यसि सर्वत्र वीतरागोऽसि राजन्सर्वत्र राजसे ॥ ५ ॥

sarvatra lakṣyase svasthaḥ sarvatra parituṣyasi sarvatra vītarāgo'si rājansarvatra rājase || 5 ||

Everywhere you are seen at ease with yourself. Everywhere you are content. Everywhere you are free from craving. O king, everywhere you shine.

हर जगह तुम अपने आप में सहज दिखते हो। हर जगह तुम संतुष्ट हो। हर जगह तुम लालच से मुक्त हो। हे राजा, हर जगह तुम चमकते हो।

5.63.6

सारासारपरिच्छेदपारगस्त्वं महाधिया जानासि सर्वमेवेदं यथास्थितमखण्डितम् ॥ ६ ॥

sārāsāraparicchedapāragastvaṃ mahādhiyā jānāsi sarvamevedaṃ yathāsthitamakhaṇḍitam || 6 ||

You have mastered the line between what has substance and what has none. With your great wisdom you know all this exactly as it stands, whole and undivided.

तुमने इस भेद को पूरी तरह समझ लिया है कि किसमें सार है और किसमें नहीं। अपनी बड़ी बुद्धि से तुम यह सब ठीक वैसा ही जानते हो जैसा यह है, पूरा और अखंड।

5.63.7

भावाभावपरिच्छेदतत्त्वज्ञमुदिताशयम् गमागमदशालौल्यमुक्तं तव वपुः स्थितम् ॥ ७ ॥

bhāvābhāvaparicchedatattvajñamuditāśayam gamaagamadaśālaulyamuktaṃ tava vapuḥ sthitam || 7 ||

Your very being stands as one who knows the truth of what is and what is not, whose mind has risen above trouble, and who is free from the restlessness of coming and going.

तुम्हारा पूरा अस्तित्व ऐसा है जो जानता है कि क्या है और क्या नहीं है, जिसका मन ऊपर उठ गया है, और जो आने-जाने की बेचैनी से मुक्त है।

5.63.8

वस्तुनाऽवस्तुनेवान्तरमृतेनेव सागरः अपुनःप्रक्षयायेव परे तृप्तोऽसि सुन्दर ॥ ८ ॥

vastunā'vastunevevāntaramṛteneva sāgaraḥ apunahprakṣayāyeva pare tṛpto'si sundara || 8 ||

For you there is no difference between what is real and what is not. You are content in truth alone, like the ocean that never runs dry. You are satisfied in the highest, beautiful one.

तुम्हारे लिए असली और नकली में कोई फ़र्क़ नहीं रहा। तुम सिर्फ़ सच में संतुष्ट हो, जैसे वह समुद्र जो कभी नहीं सूखता। हे सुंदर, तुम सबसे ऊँची अवस्था में तृप्त हो।

5.63.9

सुरघुरुवाच न तदस्ति मुने वस्तु यत्रोपादेयतास्ति नः यावत्किंचिदिदं दृश्यं तावदेतन्न किंचन ॥ ९ ॥

suraghuruvāca na tadasti mune vastu yatro'pādeyatāsti naḥ yāvatkiṃciddidaṃ dṛśyaṃ tāvadetanna kiṃcana || 9 ||

Suraghu said: O sage, there is no thing anywhere that is worth taking for us. However much of this world we see, that much of it is nothing at all.

सुरघु ने कहा: हे मुनि, हमारे लिए कहीं भी कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो लेने लायक हो। यह जो कुछ भी दिखता है, वह उतना ही कुछ नहीं है।

5.63.10

उपादेयस्य चाभावाद्धेयमप्यस्ति किं किल प्रतियोगि व्यवच्छेद्यं विना हेयं किमुच्यते ॥ १० ॥

upādeyasya cābhāvāddheyamapyasti kiṃ kila pratiyogi vyavacchedyaṃ vinā heyaṃ kimucyate || 10 ||

And since nothing here is worth taking, how can anything be worth rejecting? Without something to set against it, how can we even speak of the rejected?

और जब यहाँ लेने लायक कुछ भी नहीं है, तो छोड़ने लायक क्या हो सकता है? जब सामने रखने के लिए कुछ न हो, तो "छोड़ने लायक" कहा ही कैसे जाए?

5.63.11

तुच्छत्वात्सर्वभावानामतुच्छत्वाच्च कालतः । चिरं मम परिक्षीणे तुच्छातुच्छे मनःस्थिती ॥ ११ ॥

tucchatvātsarvabhāvānāmatucchatvācca kālataḥ | ciraṃ mama parikṣīṇe tucchātucche manaḥsthitī || 11 ||

All things are worthless in themselves, though in time they may seem otherwise. In me, both these states of mind, thinking things worthless and thinking them not worthless, have long since faded away.

सारी चीज़ें अपने आप में बेकार हैं, हालाँकि समय के साथ वे ऐसी नहीं लगतीं। मुझमें ये दोनों बातें, चीज़ों को बेकार समझना और उन्हें बेकार न समझना, बहुत पहले ही खत्म हो चुकी हैं।

5.63.12

देशकालवशादेव तुच्छस्यातुच्छतामिह । अतुच्छस्य तु तुच्छत्वं वर्ज्ये निन्दास्तुती बुधैः ॥ १२ ॥

deśakālavśādeva tucchasyātucchatāmiha | atucchasya tu tucchatvaṃ varjye nindāstutī budhaiḥ || 12 ||

It is only because of place and time that a worthless thing here seems to gain worth, and a thing of worth seems to become worthless. The wise should give up both praising and blaming such things.

सिर्फ़ जगह और समय की वजह से यहाँ कोई बेकार चीज़ कीमती लगने लगती है, और कोई कीमती चीज़ बेकार लगने लगती है। समझदार लोगों को ऐसी चीज़ों की तारीफ़ और निंदा, दोनों छोड़ देनी चाहिए।

5.63.13

रागान्निन्दास्तुती लोके रागश्च परिवाञ्छितम् । वाञ्छिते च महोदारं वस्तु शोभनबुद्धिना ॥ १३ ॥

rāgānnindāstutī loke rāgaśca parivāñchitam | vāñchite ca mahodāraṃ vastu śobhanabuddhinā || 13 ||

In this world, praise and blame come from liking, and liking comes from strong wanting. And in the thing that is wanted, a mind that calls it beautiful sees something great and noble.

इस दुनिया में तारीफ़ और निंदा लगाव से आती है, और लगाव तेज़ चाहत से आता है। और जिस चीज़ को चाहा जाता है, उसमें वह मन जो उसे सुंदर मानता है, कोई बड़ी और भली चीज़ देख लेता है।

5.63.14

त्रैलोक्ये च स्त्रियः शैलाः समुद्रवनराजयः । भूतानि वस्तुशून्यानि सारो नास्त्यत्र वस्तुतः ॥ १४ ॥

trailokye ca striyaḥ śailāḥ samudravana rājayaḥ | bhūtāni vastuśūnyāni sāro nāstyatra vastutaḥ || 14 ||

In the three worlds, women, mountains, oceans, forests, and all their kinds, every being is empty of real substance. In truth, there is no essence here at all.

तीनों लोकों में स्त्रियाँ, पहाड़, समुद्र, जंगल, और इन सबकी हर तरह की चीज़ें, हर प्राणी में असली सार नहीं है। सच तो यह है कि यहाँ कोई सार है ही नहीं।

5.63.15

मांसास्थिदारुमृद्रत्नमये जगति जर्जरे । वाञ्छनीयविहीनेऽस्मिञ्शून्ये किमिव वाञ्छ्यते ॥ १५ ॥

māṃsāsthidārumṛdratnamaye jagati jarjare | vāñchanīyavihīne'smiñśūnye kimiva vāñchyate || 15 ||

In this world made of flesh, bone, wood, clay, and jewels, a world that is worn out and empty, with nothing in it worth wanting, what is there left to want?

इस दुनिया में, जो मांस, हड्डी, लकड़ी, मिट्टी और रत्नों से बनी है, जो घिसी-पिटी और खाली है, और जिसमें चाहने लायक कुछ भी नहीं है, अब चाहा ही क्या जाए?

5.63.16

वाञ्छायां विनिवृत्तायां संक्षयो द्वेषरागयोः । दिनलक्ष्म्यां व्यपेतायामालोकातपयोरिव ॥ १६ ॥

vāñchāyāṃ vinivṛttāyāṃ saṃkṣayo dveṣarāgayoḥ | dinlakṣmyāṃ vyapetāyāmālokātapayoriva || 16 ||

When wanting stops, both hatred and attachment come to an end, just as, when the glow of the day fades, both its light and its warmth end too.

जब चाहत रुक जाती है, तो नफ़रत और लगाव दोनों खत्म हो जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे दिन की चमक ढलने पर उसकी रोशनी और गर्मी दोनों खत्म हो जाती हैं।

5.63.17

अलमतिविततैर्वचःप्रपञ्चैरियमुचितेह सुखाय दृष्टिरेका । उपशमितरसं समं मनोऽन्तर्यदि मुदितं तदनुत्तमा प्रतिष्ठा ॥ १७ ॥

alamativitatairvacaḥprapañcairiyamuciteha sukhāya dṛṣṭirekā | upaśamitarasaṃ samaṃ mano'ntaryadi muditaṃ tadanuttamā pratiṣṭhā || 17 ||

Enough of these long strings of words. There is only one view that truly fits here, for happiness: if the mind within, its restlessness calmed, stays even and content, that is the highest state of all.

बहुत हो गईं ये लंबी-लंबी बातें। यहाँ खुशी के लिए बस एक ही नज़रिया सही है: अगर भीतर का मन, अपनी बेचैनी को शांत करके, बराबर और संतुष्ट रहे, तो यही सबसे ऊँची अवस्था है।

Chapter 64

5.64.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । सुरघुः परिघश्चैव विचार्येति जगद्भ्रमम् । मिथः प्रपूजितौ तुष्टौ स्वव्यापारपरौ गतौ ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | suraghuḥ parighaścaiva vicāryeti jagadbhramam | mithaḥ prapūjitau tuṣṭau svavyāpāraparau gatau || 1 ||

Sri Vasishtha said: Thinking over the world's confusion in this way, Suraghu and Parigha honored each other, and pleased, each went back to his own work.

श्री वसिष्ठ ने कहा: संसार के इस भ्रम के बारे में ऐसा सोचकर, सुरघु और परिघ ने एक दूसरे का सम्मान किया, और संतुष्ट होकर दोनों अपने-अपने काम में लौट गए।

5.64.2

तदेव राघव श्रुत्वा परमं बोधकारणम् । अनेनैव विबोधेन भव लब्धास्पदः स्फुटम् ॥ २ ॥

tadeva rāghava śrutvā paramaṃ bodhakāraṇam | anenaiva vibodhena bhava labdhāspadaḥ sphuṭam || 2 ||

Rama, having heard this supreme reason for waking up, become through this very awakening clearly and firmly established.

हे राम, जागने का यह सबसे बड़ा कारण सुनकर, इसी जागृति से साफ़-साफ़ और मज़बूती से टिक जाओ।

5.64.3

परया प्रज्ञया धीरविचारगततीक्ष्णया । गलत्यलमहंकारकालमेघे हृदम्बरे ॥ ३ ॥

parayā prajñayā dhīravicāragatatīkṣṇayā | galatyalamahaṃkārakālameghe hṛdambare || 3 ||

Through the highest wisdom, made sharp by steady thought, the huge dark cloud of ego melts away in the sky of the heart.

गहरे और स्थिर विचार से तेज़ हुई सबसे ऊँची बुद्धि से अहंकार का वह बड़ा काला बादल हृदय के आकाश में पिघल जाता है।

5.64.4

समस्तलोकानुमते सफले ह्लादकारिणि । निर्मले विततते चेतः शरत्काल उपस्थिते ॥ ४ ॥

samastalokānumate saphale hlādakāriṇi | nirmale vitate cetaḥ śaratkāla upasthite || 4 ||

Then, as when autumn comes and the sky turns clear and wide, the mind too becomes clear and wide - pleasing to everyone, fruitful, and full of joy.

फिर, जैसे शरद ऋतु आने पर आकाश साफ़ और फैला हुआ हो जाता है, वैसे ही मन भी साफ़ और फैला हुआ हो जाता है - सबको भाने वाला, फलदायी और आनंद से भरा।

5.64.5

ध्येये शरण्ये सुगमे सकलानन्दसंपदि । सुप्रसन्ने चिदाकाशे स्थीयते परमात्मनि ॥ ५ ॥

dhyeye śaraṇye sugame sakalānandasaṃpadi | suprasanne cidākāśe sthīyate paramātmani || 5 ||

It is worth holding in thought, a refuge, easy to reach, rich with the wealth of complete bliss, very calm and clear - one comes to rest there, in the highest Self, the very space of consciousness.

वह मनन करने योग्य है, शरण देने वाला है, आसानी से मिलने वाला है, पूरे आनंद की दौलत से भरा है, बहुत शांत और साफ़ है - वहीं व्यक्ति टिक जाता है, उस सबसे ऊँचे आत्मा में, जो चेतना का आकाश है।

5.64.6

यो नित्यमध्यात्ममयो नित्यमन्तर्मुखः सुखी । नित्यं चिदनुसंधानो मनःशोकैर्न बाध्यते ॥ ६ ॥

yo nityamadhyātmamayo nityamantarmukhaḥ sukhī | nityaṃ cidanusaṃdhāno manaḥśokairna bādhyate || 6 ||

The one who always lives in the inner Self, always turns inward, and is happy, always holding fast to awareness - sorrows of the mind cannot trouble him.

जो हमेशा अपने भीतर के आत्मा में रहता है, हमेशा भीतर की ओर मुड़ा रहता है, सुखी रहता है, और हमेशा चेतना को थामे रहता है - उसे मन के दुख नहीं सता सकते।

5.64.7

व्यवहारपरोऽत्युच्चै रागद्वेषमयोऽपि सन् । नान्तःकलङ्कमायाति पद्मो जलगतो यथा ॥ ७ ॥

vyavahāraparo'tyuccai rāgadveṣamayo'pi san | nāntaḥkalaṅkamāyāti padmo jalagato yathā || 7 ||

Even one who is deeply engaged in worldly dealings, and full of liking and disliking, still does not take on any stain within - like a lotus that stays in water untouched by it.

जो सांसारिक कामों में गहराई से लगा रहता है और राग-द्वेष से भरा रहता है, फिर भी उसके भीतर कोई दाग नहीं लगता - जैसे कमल पानी में रहकर भी पानी से नहीं भीगता।

5.64.8

सम्यग्विज्ञानवान्शुद्धो योऽन्तःशान्तमना मुनिः । न बाध्यते स मनसा करिणेव मृगाधिपः ॥ ८ ॥

samyagvijñānavānśuddho yo'ntaḥśāntamanā muniḥ | na bādhyate sa manasā kariṇeva mṛgādhipaḥ || 8 ||

The sage who has full and right knowledge, who is pure, and whose mind is calm within - the mind cannot trouble him, just as an elephant cannot trouble a lion, the king of beasts.

जिस मुनि के पास पूरा और सही ज्ञान है, जो पवित्र है, और जिसका मन भीतर से शांत है - उसे मन नहीं सता सकता, जैसे हाथी शेर को, जो जानवरों का राजा है, नहीं सता सकता।

5.64.9

भोगैकशरणं दीनं न चित्तं ज्ञस्य विद्यते । नन्दने दुर्द्रुम इव ज्ञचित्तं हि महावपुः ॥ ९ ॥

bhogaikeśaraṇaṃ dīnaṃ na cittaṃ jñasya vidyate | nandane durdruma iva jñacittaṃ hi mahāvapuḥ || 9 ||

The mind of the one who knows is not a wretched thing that has only pleasure for its shelter. In truth, the mind of the one who knows has a great, noble form - not like a stunted, worthless tree in Nandana, the garden of the gods.

जानने वाले का मन कोई दीन-हीन चीज़ नहीं है, जिसका सहारा सिर्फ़ भोग-विलास हो। सच तो यह है कि जानने वाले का मन बहुत बड़ा और भव्य है - देवताओं के बाग़ नंदन में उगे किसी बेकार, बौने पेड़ जैसा नहीं।

5.64.10

विरक्तो जन्ममरणे यथा दुःखी न मानवः । परिज्ञाताखिलाविद्यं तथा चित्तं न दुःखितम् ॥ १० ॥

virakto janmamaraṇe yathā duḥkhī na mānavaḥ | parijñātākhilāvidyaṃ tathā cittaṃ na duḥkhitam || 10 ||

Just as a man who feels no craving for birth and death is not made sad by them, so too the mind that has fully understood all its ignorance is never sad.

जैसे जन्म और मृत्यु से मोह न रखने वाला आदमी उनसे दुखी नहीं होता, वैसे ही जिस मन ने अपनी सारी अज्ञानता को पूरी तरह समझ लिया है, वह दुखी नहीं होता।

5.64.11

परिज्ञातमनोमोहो जगद्भावोद्भवात्मना । स्पृश्यते नैनसा साधो रजसेव नभस्तलम् ॥ ११ ॥

parijñātamanomoho jagadbhāvodbhvātmanā | spṛśyate nainasā sādho rajaseva nabhastalam || 11 ||

O virtuous one, the one who has fully understood the mind's delusion is not touched by sin even while living amid this whole rising world - just as the open sky is not touched by dust.

हे साधु, जिसने मन के मोह को पूरी तरह समझ लिया है, वह इस उठती-बसती दुनिया में रहते हुए भी पाप से नहीं छूता - जैसे खुला आकाश धूल से नहीं छूता।

5.64.12

अविद्यासंपरिज्ञातमिदमेव महौषधम् । अविद्याविततव्याधेस्तिमिरस्येव दीपकम् ॥ १२ ॥

avidyāsaṃparijñātamidameva mahauṣadham | avidyāvitatavyādhestimirasyeva dīpakam || 12 ||

This full recognition of ignorance is itself the great medicine - like a lamp for the darkness of the disease that ignorance spreads far and wide.

अज्ञान को पूरी तरह पहचान लेना ही सबसे बड़ी दवा है - जैसे उस बीमारी के अंधेरे के लिए दीया, जो अज्ञान दूर-दूर तक फैलाता है।

5.64.13

अविद्या संपरिज्ञाता यदैव हि तदैव हि । सा परिक्षीयते भूयः स्वप्नेनेव हि भोगभूः ॥ १३ ॥

avidyā saṃparijñātā yadaiva hi tadaiva hi | sā parikṣīyate bhūyaḥ svapneneva hi bhogabhūḥ || 13 ||

The very moment ignorance is fully known, that very moment it wastes away completely - just like the land of pleasures seen in a dream fades away once the dream ends.

जिस पल अज्ञान को पूरी तरह जान लिया जाता है, उसी पल वह पूरी तरह मिट जाता है - जैसे सपने में दिखी भोग-विलास की धरती सपना टूटते ही मिट जाती है।

5.64.14

व्यवहारपरोऽप्यन्तरसक्तमतिरेकधीः । स्पृश्यते नैनसा साधुर्मत्स्येक्षणमिवाम्भसा ॥ १४ ॥

vyavahāraparo'pyantarasaktamatirekadhīḥ | spṛśyate nainasā sādhurmatsyekṣaṇamivāmbhasā || 14 ||

Even one who is engaged in worldly dealings - if his mind stays unattached within and his intellect stays single and steady - such a good man is not touched by sin, just as a fish's eye is not touched by the water it lives in.

जो सांसारिक कामों में लगा रहता है, फिर भी अगर उसका मन भीतर से किसी चीज़ से चिपका नहीं और उसकी बुद्धि एक ही जगह टिकी और स्थिर रहती है, तो वह भला आदमी पाप से नहीं छूता - जैसे मछली की आँख उस पानी से नहीं छूती जिसमें वह रहती है।

5.64.15

प्राप्ते चिद्भासुरालोके प्रक्षीणाऽज्ञानयामिनी । शेमुषी परमानन्दमागता ज्ञस्य राजते ॥ १५ ॥

prāpte cidbhāsurāloke prakṣīṇā'jñānayāminī | śemuṣī paramānandamāgatā jñasya rājate || 15 ||

When the shining light of consciousness arrives, the night of ignorance fades away completely. Then the wisdom of the one who knows, having reached the highest bliss, shines bright.

जब चेतना का चमकता प्रकाश आता है, तो अज्ञान की रात पूरी तरह मिट जाती है। फिर जानने वाले की बुद्धि, सबसे बड़े आनंद को पाकर, चमक उठती है।

5.64.16

अज्ञाननिद्रोपशमे जनो ज्ञानार्कबोधितः । तत्प्रबोधमवाप्नोति पुनर्येन न मुह्यति ॥ १६ ॥

ajñānanidropaśame jano jñānārkabodhitaḥ | tatprabodhamavāpnoti punaryena na muhyati || 16 ||

When the sleep of ignorance ends, a person woken by the sun of knowledge reaches that awakening after which he is never confused again.

जब अज्ञान की नींद टूटती है, तो ज्ञान के सूरज से जागा हुआ व्यक्ति उस जागृति को पा लेता है, जिसके बाद वह फिर कभी भ्रमित नहीं होता।

5.64.17

दिनानि जीव्यते तानि सानन्दास्ते क्रियाक्रमाः । आत्मचन्द्रोदिता येषु चिज्ज्योत्स्ना हृदयाम्बरे ॥ १७ ॥

dināni jīvyate tāni sānandāste kriyākramāḥ | ātmacandroditā yeṣu cijjyotsnā hṛdayāmbare || 17 ||

Those are the days truly worth living, and those actions done one after another are joyful, in which the moonlight of consciousness, risen like the moon of the Self, fills the sky of the heart.

वे ही दिन सचमुच जीने लायक हैं, और वे ही एक के बाद एक किए गए काम आनंददायक हैं, जिनमें आत्मा के चाँद की तरह उगी हुई चेतना की चाँदनी हृदय के आकाश में भर जाती है।

5.64.18

नरो मोहसमुत्तीर्णः सततं स्वात्मचिन्तया । अन्तःशीतलतामेति स्वामृतेनेव चन्द्रमाः ॥ १८ ॥

naro mohasamuttīrṇaḥ satataṃ svātmacintayā | antaḥśītalatāmeti svāmṛteneva candramāḥ || 18 ||

The man who has crossed beyond delusion, through constant thought about his own Self, becomes cool within - just as the moon becomes cool through its own nectar.

जो आदमी मोह को पार कर चुका है, वह अपने आत्मा पर लगातार विचार करते हुए भीतर से ठंडा हो जाता है - जैसे चाँद अपने ही अमृत से ठंडा हो जाता है।

5.64.19

तानि मित्राणि शास्त्राणि तानि तानि दिनानि च । विरागोल्लासवान्येभ्य आत्मचित्तोदयः स्फुटम् ॥ १९ ॥

tāni mitrāṇi śāstrāṇi tāni tāni dināni ca | virāgollāsavānyebhya ātmacittodayaḥ sphuṭam || 19 ||

Those are the true friends, those are the true teachings, and those are the true days - the ones that bring a joyful freedom from craving, and a clear dawning of one's own awareness of the Self.

वही सच्चे मित्र हैं, वही सच्चे शास्त्र हैं, और वही सच्चे दिन हैं - जिनसे इच्छाओं से मुक्ति का आनंद जगता है, और अपने आत्मा का साफ़ बोध जागता है।

5.64.20

चिरं शोचन्ति ते दीना जन्मजङ्गलवीरुधः । आत्मावलोकने हेला येषामविगतैनसाम् ॥ २० ॥

ciraṃ śocanti te dīnā janmajaṅgalavīrudhaḥ | ātmāvalokane helā yeṣāmavigataiṇasām || 20 ||

For a long time they grieve, those wretched weeds growing wild in the forest of birth - the ones who are careless about looking within at the Self, and whose faults have not left them.

वे बहुत देर तक दुखी रहते हैं, जन्म के जंगल में उगी वे दीन-हीन झाड़ियाँ - जो अपने भीतर आत्मा को देखने में लापरवाह हैं, और जिनके दोष अभी तक नहीं गए हैं।

5.64.21

आशापाशशतैर्बद्धं भोगोलपसुलालसम् । जराजर्जरिताकारं शोकोच्छ्वासकदर्थितम् ॥ २१ ॥

āśāpāśaśatairbaddhaṃ bhogolapasulālasam | jarājarjaritākāraṃ śokocchvāsakadarthitam || 21 ||

He is bound by hundreds of ropes of hope, deeply greedy and eager for pleasures, his body withered by old age, worn down by the sighs of grief.

वह आशा की सैकड़ों रस्सियों से बँधा है, भोग-विलास के लिए बहुत लालची और उतावला है, बुढ़ापे से उसका शरीर झुर्रीदार हो गया है, और दुख की आहों से थक चुका है।

5.64.22

व्यूढदुःखमहाभारं जन्मजङ्गलजीवितम् । कुकर्मकर्दमालिप्तं मोहपल्वलशायिनम् ॥ २२ ॥

vyūḍhaduḥkhamahābhāraṃ janmajaṅgalajīvitam | kukarmakardamāliptaṃ mohapalvalaśāyinam || 22 ||

He carries a heavy load of sorrow, living out his life wandering in the forest of birth, smeared with the mud of bad deeds, lying in the swamp of delusion.

वह दुख का भारी बोझ उठाए है, जन्म के जंगल में भटकते हुए अपना जीवन बिताता है, बुरे कामों की कीचड़ में सना हुआ है, और मोह के दलदल में पड़ा है।

5.64.23

रागदंशावलीदष्टं कृष्टं तृष्णावरत्रया । मनोवणिङनिकेतस्थं बन्धुबन्धननिश्चलम् ॥ २३ ॥

rāgadaṃśāvalīdaṣṭaṃ kṛṣṭaṃ tṛṣṇāvaratrayā | manovaṇiṅniketasthaṃ bandhubandhananiścalam || 23 ||

He is bitten by swarms of biting flies that are his own passions, dragged along by the strap of his craving, kept shut inside the mind's shop like goods in a merchant's house, held motionless in the bonds of family.

वह अपने ही राग-मोह रूपी डंक मारने वाले कीड़ों के झुंड से डसा हुआ है, अपनी तृष्णा की रस्सी से घसीटा जाता है, मन रूपी व्यापारी की दुकान में माल की तरह बंद रखा गया है, और परिवार के बंधन में जकड़ा हुआ हिल भी नहीं पाता।

5.64.24

पुत्रदारजराजीर्णे मग्नोन्मग्नं कुकर्दमे । श्रान्तं विगतविश्रामं भग्नमादीर्घवर्त्मनि ॥ २४ ॥

putradārajara jīrṇe magnōnmagnaṃ kukardamē | śrāntaṃ vigataviśrāmaṃ bhagnamādīrghavartmani || 24 ||

Worn down by wife, children and old age, sinking and rising again in the foul mud, exhausted, without any rest, broken on a long, long road.

पत्नी, बच्चों और बुढ़ापे से थक चुका है, गंदी कीचड़ में डूबता-उतराता है, थका हुआ है, उसे आराम नहीं मिलता, और एक बहुत लंबे रास्ते पर टूट चुका है।

5.64.25

गमागमपरिक्षीणं संसारारण्यचारिणम् । अलब्धशीतलच्छायं तीव्रतापोपतापितम् ॥ २५ ॥

gamāgamaparikṣīṇaṃ saṃsārāraṇyacāriṇam | alabdhaśītalacchāyaṃ tīvratāpōpatāpitam || 25 ||

Worn thin by endless coming and going, wandering through the forest of this world, finding no cool shade, scorched by fierce heat.

आने-जाने से घुल चुका है, इस संसार रूपी जंगल में भटकता है, उसे कहीं ठंडी छाया नहीं मिलती, और तेज़ गर्मी से झुलसा हुआ है।

5.64.26

आकारभासुरं दीनं बाह्यैराक्रान्तमिन्द्रियैः । कर्मघण्टारवाक्रान्तं क्रान्तं दुष्कृततताडनैः ॥ २६ ॥

ākārabhāsuraṃ dīnaṃ bāhyairākrāntamindriyaiḥ | karmaghaṇṭāravākrāntaṃ krāntaṃ duṣkṛtatāḍanaiḥ || 26 ||

Bright to look at on the outside, yet wretched within, overrun by his own senses that pull him outward, overwhelmed by the clanging bell of his own actions, struck again and again by the blows of his bad deeds.

बाहर से देखने में चमकीला है, पर भीतर से दीन-हीन है, अपनी ही बाहर खींचने वाली इंद्रियों से घिरा हुआ है, अपने कर्मों की घंटी की आवाज़ से परेशान है, और अपने बुरे कामों की मार बार-बार खाता है।

5.64.27

आविर्भावतिरोभावचक्रावर्तधुरोद्वहम् । अज्ञानविकटाटव्यां लुठितं सन्नगात्रकम् ॥ २७ ॥

āvirbhāvatirobhāvacakrāvartadhurodvaham | ajñānavikaṭāṭavyāṃ luṭhitaṃ sannagātrakam || 27 ||

Carrying the yoke of the wheel that turns through appearing and disappearing - being born and dying again and again - rolling on the ground in the dreadful forest of ignorance, his limbs worn out.

प्रकट होने और मिट जाने के इस चक्र का जुआ ढोता है - बार-बार जन्म लेता और मरता है - अज्ञान के भयानक जंगल में ज़मीन पर लोटता है, उसके अंग थक चुके हैं।

5.64.28

निजानर्थसदामग्नं सीदमानमकिंचनम् । सन्नाङ्गं कर्मभारेण करुणाक्रन्दकारिणम् ॥ २८ ॥

nijānarthasadāmagnaṃ sīdamānamakiṃcanam | sannāṅgaṃ karmabhāreṇa karuṇākrandakāriṇam || 28 ||

Forever sunk in troubles of his own making, sinking down in despair, owning nothing, his body broken under the weight of his deeds, crying out in a pitiful wail.

हमेशा अपनी ही बनाई मुसीबतों में डूबा रहता है, निराश होकर बैठ जाता है, उसके पास कुछ भी नहीं है, अपने कर्मों के बोझ से उसका शरीर टूट चुका है, और वह दया माँगते हुए दर्द से चिल्लाता है।

5.64.29

राम जीवबलीवर्दमिमं संसारपल्वलात् । परमं यत्नमास्थाय चिरमुत्तारयेद्बलात् ॥ २९ ॥

rāma jīvabalīvardamimaṃ saṃsārapalvalāt | paramaṃ yatnamāsthāya ciramuttārayedvalāt || 29 ||

Rama, this soul is like an ox stuck in the swamp of this world. One must make the greatest effort and pull it out by force, for a long time.

हे राम, यह जीव संसार के दलदल में फँसे बैल के समान है। इसे बड़े प्रयास से और लंबे समय तक ज़ोर लगाकर बाहर निकालना चाहिए।

5.64.30

तत्त्वावलोकनात्क्षीणे चित्ते नो जायते पुनः । जीवः कदाचन तदा भवेत्तीर्णभवार्णवः ॥ ३० ॥

tattvāvalokanātkṣīṇe citte no jāyate punaḥ | jīvaḥ kadācana tadā bhavettīrṇabhavārṇavaḥ || 30 ||

When the mind wastes away through seeing the truth, and the soul is never born again, then it has crossed the ocean of this world.

जब सत्य को देखने से मन क्षीण हो जाता है और जीव फिर कभी जन्म नहीं लेता, तभी वह संसार-सागर को पार कर चुका होता है।

5.64.31

महानुभावसंपर्कात्संसारार्णवलङ्घने । युक्तिः संप्राप्यते राम स्फुटा नौरिव नाविकात् ॥ ३१ ॥

mahānubhāvasaṃparkātsaṃsārārṇavalangghane | yuktiḥ saṃprāpyate rāma sphuṭā nauriva nāvikāt || 31 ||

Rama, in crossing the ocean of this world, one gets a clear way through contact with a great soul, just as one gets a boat from a boatman.

हे राम, संसार-सागर को पार करने के लिए किसी महान आत्मा के संपर्क से स्पष्ट उपाय मिलता है, जैसे नाविक से नाव मिलती है।

5.64.32

यस्मिन्देशमरौ तज्ज्ञो नास्ति सज्जनपादपः । सफलः शीतलच्छायो न तत्र निवसेद्बुधः ॥ ३२ ॥

yasmindeśamarao tajjño nāsti sajjanapādapaḥ | saphalaḥ śītalacchāyo na tatra nivasedbudaḥ || 32 ||

Wherever there is no such tree, a wise good man who gives fruit and cool shade, a wise person should not live in that land; it is a desert.

जहाँ ऐसा वृक्ष न हो, यानी कोई ऐसा बुद्धिमान भला आदमी न हो जो फल दे और ठंडी छाया दे, वहाँ बुद्धिमान को नहीं रहना चाहिए; वह जगह रेगिस्तान के समान है।

5.64.33

स्निग्धशीतवचःपत्रे सच्छाये स्मितपुष्पके । क्षणाद्विश्रम्यते राम भृशं सुजनचम्पके ॥ ३३ ॥

snigdhaśītavacaḥpatre sacchāye smitapuṣpake | kṣaṇādviśramyate rāma bhṛśaṃ sujanacampake || 33 ||

Rama, in the campaka tree that is a good man, whose leaves are gentle, cool words, whose shade is good, whose flowers are its smile, one finds deep rest in a moment.

हे राम, जो भला आदमी चंपा के वृक्ष के समान है, जिसकी पत्तियाँ स्नेहभरे और ठंडे शब्द हैं, जिसकी छाया अच्छी है, जिसके फूल उसकी मुस्कान हैं, उसके पास एक पल में गहरा आराम मिल जाता है।

5.64.34

तदभावे महामोहतापसंपत्तिदायिनि । किंचिज्जातविवेकेन स्वप्तव्यं नेह धीमता ॥ ३४ ॥

tadabhāve mahāmohatāpasampattidāyini | kiṃcijjātavivekena svaptavyaṃ neha dhīmatā || 34 ||

Without such a tree, only the burning heat of great delusion grows. So a wise person, once he has gained even a little understanding, should not stay asleep here.

ऐसे वृक्ष के न होने पर केवल बड़े मोह की तपिश बढ़ती है। इसलिए जिस बुद्धिमान में थोड़ी भी समझ जाग गई हो, उसे यहाँ सोया नहीं रहना चाहिए।

5.64.35

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मनात्मैवमुद्धरेत् । नात्मानमवलेपेन जन्मपङ्कार्णवे क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

ātmaiva hyātmano bandhurātmanātmaivamuddharet | nātmānamavalepeṇa janmapaṅkārṇave kṣipet || 35 ||

The self alone is the friend of the self; one should lift up the self by the self alone. One should not, out of pride, throw the self into the mud-ocean of birth.

आत्मा ही आत्मा की सच्ची मित्र है; आत्मा को आत्मा के द्वारा ही ऊपर उठाना चाहिए। घमंड में आकर आत्मा को जन्म के कीचड़-सागर में नहीं फेंकना चाहिए।

5.64.36

किमिदं कथमायातं किंमूलमिति किंक्षयम्। देहदुःखमिति प्राज्ञैः प्रेक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥

kimidaṃ kathamāyātaṃ kiṃmūlamiti kiṃkṣayam | dehaduḥkhamiti prājñaiḥ prekṣaṇīyaṃ prayatnataḥ || 36 ||

The wise should carefully examine, with effort, the suffering of the body: what is this, how did it arise, what is its root, and what ends it?

बुद्धिमान लोगों को प्रयासपूर्वक शरीर के दुख की भली-भाँति जाँच करनी चाहिए: यह क्या है, यह कैसे आया, इसकी जड़ क्या है, और यह किससे समाप्त होता है?

5.64.37

न धनानि न मित्राणि न शास्त्राणि न बान्धवाः। नराणामुपकुर्वन्ति मग्नस्वात्मसमुद्धृतौ ॥ ३७ ॥

na dhanāni na mitrāṇi na śāstrāṇi na bāndhavāḥ | narāṇāmupakurvanti magnasvātmasamuddhṛtau || 37 ||

Wealth does not help, friends do not help, scriptures do not help, kinsmen do not help; none of these help a man raise up his own sunken self.

धन मदद नहीं करता, मित्र मदद नहीं करते, शास्त्र मदद नहीं करते, रिश्तेदार मदद नहीं करते; इनमें से कोई भी आदमी को अपनी डूबी हुई आत्मा को ऊपर उठाने में मदद नहीं करता।

5.64.38

मनोमात्रेण सुहृदा सदैव सहवासिना। सह किंचित्परामृश्य भवत्यात्मा समृद्धृतः ॥ ३८ ॥

manomātreṇa suhṛdā sadaiva sahavāsinā | saha kiṃcitparāmṛśya bhavatyātmā samṛddhṛtaḥ || 38 ||

With the mind as one's only true friend, the one companion who is always with you, by reflecting with it a little, the self gets rescued.

मन ही एक ऐसा मित्र है जो हमेशा साथ रहता है; उसी के साथ थोड़ा विचार करने से आत्मा का उद्धार हो जाता है।

5.64.39

वैराग्याभ्यासयत्नाभ्यां स्वपरामर्शजन्मना। तत्त्वालोकनपोतेन तीर्यते भवसागरः ॥ ३९ ॥

vairāgyābhyāsayatnābhyāṃ svaparāmarśajanmanā | tattvālokanapotena tīryate bhavasāgaraḥ || 39 ||

Through the effort of turning away from desire and of practice, born from reflecting on oneself, one crosses the ocean of this world in the boat that is the vision of truth.

वैराग्य और अभ्यास के प्रयास से, जो अपने बारे में सोचने से पैदा होता है, सत्य को देखने की नाव पर सवार होकर संसार-सागर को पार किया जाता है।

5.64.40

शोच्यमानं जनैर्नित्यं दह्यमानं दुराशया। नात्मानमवमन्येत प्रोद्धरेदेनमादरात् ॥ ४० ॥

śocyamānaṃ janairnityaṃ dahyamānaṃ durāśayā | nātmānamavamanyeta prodhharedenamādarāt || 40 ||

Though the self is always pitied by people and burns with base craving, one should not look down on it; one should lift it up with care.

यद्यपि लोग आत्मा पर हमेशा तरस खाते हैं और वह ओछी चाह में जलती रहती है, फिर भी आत्मा को तुच्छ नहीं समझना चाहिए; उसे प्रेम और आदर से ऊपर उठाना चाहिए।

5.64.41

अहंकारमहालानं तृष्णारज्जुं मनोमदम्। जन्मजम्बालनिर्मग्नं जीवदन्तिनमुद्धरेत्॥ ४१॥

ahaṃkāramahālānaṃ tṛṣṇārajjuṃ manomadam| janmajambālanirmagnaṃ jīvadantinamuddharet|| 41 ||

One should pull out the soul, that elephant tied to the post of ego by the rope of craving, maddened by the mind, sunk deep in the mud of birth.

जीव उस हाथी के समान है जो अहंकार के खंभे से तृष्णा की रस्सी से बँधा है, मन के मद में डूबा है, और जन्म के कीचड़ में गहरे धँसा है; उसे बाहर निकालना चाहिए।

5.64.42

अयमेतावतैवात्मा त्रातो भवति राघव। यदपास्य विमूढत्वमहंकारः प्रमार्ज्यते॥ ४२॥

ayametāvataivātmā trāto bhavati rāghava| yadapāsya vimūḍhatvamahaṃkāraḥ pramārjyate|| 42 ||

Rama, the self is saved by just this much: when delusion is cast off and the ego is wiped away.

हे राम, आत्मा का उद्धार बस इतने से ही हो जाता है: जब मोह को त्याग दिया जाए और अहंकार को मिटा दिया जाए।

5.64.43

एतावतैव सन्मार्गे याति प्रकटतामलम्। यदपास्य मनोजालमहंभावो विलूयते॥ ४३॥

etāvataivā sanmārge yāti prakaṭatāmalam| yadapāsya manojālamahaṃbhāvo vilūyate|| 43 ||

By just this much, the self steps onto the right path, clear and spotless, when the net of the mind is thrown off and the feeling of I melts away.

बस इतने से ही आत्मा सही मार्ग पर स्पष्ट और निर्मल होकर आ जाती है, जब मन का जाल छोड़ दिया जाए और मैं का भाव पिघल जाए।

5.64.44

एतावतैव देवेशः परमात्मावगम्यते। काष्ठलोष्टसमत्वेन देहो यदवलोक्यते॥ ४४॥

etāvataivā deveśaḥ paramātmāvagamyate| kāṣṭhaloṣṭasamatvena deho yadavalokyate|| 44 ||

Just by this much, the supreme self, the lord of the gods, is understood: when the body is seen as no different from a piece of wood or a clod of earth.

बस इतने से ही परमात्मा, देवताओं के स्वामी, को जान लिया जाता है: जब शरीर को लकड़ी के टुकड़े या मिट्टी के ढेले के समान देखा जाए।

5.64.45

अहंकाराम्बुदे क्षीणे दृश्यते चिद्दिवाकरः। ततस्तत्परिणामेन तत्पदं समवाप्यते॥ ४५॥

ahaṃkārāmbude kṣīṇe dṛśyate ciddivākaraḥ| tatastatpariṇāmena tatpadaṃ samavāpyate|| 45 ||

When the cloud of ego thins away, the sun of consciousness is seen. Then, as that grows complete, the highest state is reached.

जब अहंकार का बादल छँट जाता है, तब चेतना का सूरज दिखाई देता है। फिर, उसके पूरी तरह प्रकट होने पर, वह सर्वोच्च पद पा लिया जाता है।

5.64.46

यथा ध्वान्तसमुच्छेदे स्वयमालोकवेदनम्। तथाहंकारविच्छेदे स्वयमात्मावलोकनम्॥ ४६॥

yathā dhvāntasamucchēdē svayamālōkavēdanam| tathāhaṃkāravicchēdē svayamātmāvalōkanam || 46 ||

Just as light is felt by itself once darkness is destroyed, so the self is seen by itself once the ego is cut away.

जैसे अंधकार के मिटते ही प्रकाश अपने आप अनुभव होने लगता है, वैसे ही अहंकार के कटते ही आत्मा अपने आप दिखाई देने लगती है।

5.64.47

अहंकारे परिक्षीणे यावस्था सुखमोदजा । सावस्था भरिताकारा सा सेव्या संप्रयत्नतः ॥ ४७ ॥

ahaṃkārē parikṣīṇē yāvasthā sukhamōdajā| sāvasthā bharitākārā sā sēvyā saṃprayatnataḥ || 47 ||

When the ego is completely worn away, there comes a state born of happiness and joy, a state whole and complete. That state should be sought with great effort.

जब अहंकार पूरी तरह मिट जाता है, तब सुख और आनंद से भरी हुई एक पूर्ण अवस्था आती है। उस अवस्था को बड़े प्रयास से पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

5.64.48

परिपूर्णार्णवप्रख्या न वा गोचरमेति नः । नोपमानमुपादत्ते नानुधावति रञ्जनम् ॥ ४८ ॥

paripūrṇārṇavaprakhyā na vā gōcaramēti naḥ| nōpamānamupādattē nānudhāvati rañjanam || 48 ||

That state is like a full, brimming ocean. It does not come within the reach of the senses; no comparison fits it; and it runs after no attachment or delight of its own.

वह अवस्था पूरी तरह भरे हुए समुद्र के समान है। वह इंद्रियों की पकड़ में नहीं आती; उसके लिए कोई उपमा ठीक नहीं बैठती; और वह किसी लगाव या भोग के पीछे नहीं भागती।

5.64.49

केवलं चित्प्रकाशांशकलिका स्थिरतां गता । तुर्या चेत्प्राप्यते दृष्टिस्तत्तया सोपमीयते ॥ ४९ ॥

kēvalaṃ citprakāśāṃśakalikā sthiratāṃ gatā| turyā cētprāpyatē dṛṣṭistattayā sōpamīyatē || 49 ||

It is only a small bud of the light of pure consciousness that has grown steady. If one attains the vision called Turiya, the fourth state, that alone can be compared to it.

वह शुद्ध चेतना के प्रकाश की एक छोटी सी कली है जो स्थिर हो गई है। यदि तुरीय नाम की चौथी अवस्था की अनुभूति मिल जाए, तो उसी की तुलना इससे की जा सकती है।

5.64.50

अदूरगतसादृश्यात्सुषुप्तस्योपलक्ष्यते । सावस्था भरिताकारा गगनश्रीरिवाततता ॥ ५० ॥

adūragatasādṛśyātsuṣuptsasyōpalakṣyatē| sāvasthā bharitākārā gaganśrīrivātatā || 50 ||

Through a resemblance close at hand, it can be pointed to by deep sleep. That whole, complete state stretches out like the splendor of the sky.

एक नज़दीकी समानता के कारण, गहरी नींद के उदाहरण से इसकी ओर इशारा किया जा सकता है। वह पूर्ण अवस्था आकाश की शोभा की तरह फैली हुई है।

5.64.51

मनोहंकारविलये सर्वभावान्तरस्थिता । समुदेति परानन्दा या तनुः पारमेश्वरी ॥ ५१ ॥

manohaṃkāravilaye sarvabhāvāntarasthitā | samudeti parānandā yā tanuḥ pārameśvarī || 51 ||

When mind and ego dissolve, there rises up that supremely blissful form, present inside every state of being, the very form of the Supreme Lord.

जब मन और अहंकार मिट जाते हैं, तब वह परम आनंदमय रूप प्रकट होता है, जो हर अवस्था के भीतर मौजूद है और जो परमेश्वर का ही स्वरूप है।

5.64.52

सा स्वयं योगसंसिद्धा सुषुप्तादूरभाविनी । न गम्या वचसां राम हृद्येवेहानुभूयते ॥ ५२ ॥

sā svayaṃ yogasaṃsiddhā suṣuptādūrabhāvinī | na gamyā vacasāṃ rāma hṛdyeva ihānubhūyate || 52 ||

That state is itself brought about through yoga; it is close in nature to deep sleep. It cannot be reached by words, Rama; it is felt only within the heart, here.

हे राम, वह अवस्था योग से स्वयं सिद्ध होती है; वह गहरी नींद के करीब है। वह शब्दों से नहीं पाई जा सकती; वह केवल यहीं, हृदय में अनुभव होती है।

5.64.53

अनुभूतिं विना तत्त्वं खण्डादेर्नानुभूयते । अनुभूतिं विना रूपं नात्मनश्चानुभूयते ॥ ५३ ॥

anubhūtiṃ vinā tattvaṃ khaṇḍādernānubhūyate | anubhūtiṃ vinā rūpaṃ nātmanaścānubhūyate || 53 ||

Without direct experience, even the true nature of a mere piece of something cannot be known. Without direct experience, the true form of the self, too, cannot be known.

बिना प्रत्यक्ष अनुभव के, किसी साधारण टुकड़े की भी असली प्रकृति नहीं जानी जा सकती। बिना प्रत्यक्ष अनुभव के, आत्मा का असली रूप भी नहीं जाना जा सकता।

5.64.54

अखिलमिदमनन्तमात्मतत्त्वं दृढपरिणामिनि चेतसि स्थितेऽन्तः । बहिरुपशमिते चराचरात्मा स्वयमनुभूयत एव देवदेवः ॥ ५४ ॥

akhilamidamanantamātmatattvaṃ dṛḍhapariṇāmini cetasi sthite'ntaḥ | bahirupaśamite carācarātmā svayamanubhūyata eva devadevaḥ || 54 ||

When the mind has firmly turned inward and settled within, and its outward movement is stilled, then this whole, endless reality of the self, the self of everything that moves and everything that does not move, the God of gods, is felt directly, by itself.

जब मन दृढ़ता से भीतर की ओर मुड़कर टिक जाता है, और उसकी बाहरी हलचल शांत हो जाती है, तब यह सारा अनंत आत्म-तत्व, जो चलने वाली और न चलने वाली हर चीज़ की आत्मा है, वह देवों का देव, स्वयं ही सीधे अनुभव में आ जाता है।

5.64.55

तदनु विषयवासनाविनाशस्तदनु शुभः परमः स्फुटप्रकाशः । तदनु च समतावशात्स्वरूपे परिणमनं महतामचिन्त्यरूपम् ॥ ५५ ॥

tadanu viṣayavāsanāvināśastadanu śubhaḥ paramaḥ sphuṭaprakāśaḥ | tadanu ca samatāvaśātsvarūpe pariṇamanaṃ mahatāmacintyarūpam || 55 ||

After that comes the end of craving for the things of the senses. After that, a supreme, pure, radiant light appears. And after that, through even-mindedness, one settles into one's own true nature, a state that, for great souls, has a form beyond thought.

उसके बाद इंद्रियों के विषयों की चाह समाप्त हो जाती है। उसके बाद एक सर्वोच्च, पवित्र, उज्ज्वल प्रकाश प्रकट होता है। और उसके बाद, समभाव के कारण, अपने असली स्वरूप में स्थिरता आ जाती है, जो महान आत्माओं के लिए भी सोच से परे है।

Chapter 65

5.65.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । मनसैव मनश्छित्त्वा यद्यात्मा नावलोक्यते । ममेत्यहमिति त्यक्त्वा तत्तामरसलोचन ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | manasaiva manaśchittvā yadyātmā nāvalokyate | mametyahamiti tyaktvā tattāmarasalocana ||1||

Sri Vasishtha said: O lotus-eyed one, if the mind has cut through the mind itself, if the thought 'this is mine' and 'this is I' has been dropped, and still the self cannot be seen,

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे कमल-नयन, अगर मन ने मन को ही काट दिया हो, अगर 'यह मेरा है' और 'यह मैं हूँ' का विचार छोड़ दिया गया हो, और फिर भी अपने आप का अनुभव न हो,

5.65.2

नास्तमेति जगद्दुःखं यथा चित्रगतो रविः । आयात्यापदनन्तत्वं महार्णववदातता ॥ २ ॥

nāstameti jagaddhuḥkhaṃ yathā citragato raviḥ | āyātyāpadanantatvaṃ mahārṇavavadātatā ||2||

then the sorrow of the world never ends, just as a sun painted in a picture never sets; misfortune stretches out endlessly, spread wide like the great ocean.

तो संसार का दुख कभी खत्म नहीं होता, जैसे चित्र में बना सूरज कभी अस्त नहीं होता; मुसीबत बिना अंत के फैल जाती है, बड़े समुद्र की तरह चौड़ी फैली हुई।

5.65.3

पुनःपुनरुपायाति जलकल्लोलकारणम् । मेघनीलतमःश्यामा संसृतिप्रावृडाकुला ॥ ३ ॥

punaḥpunarupāyāti jalakallolakāraṇam | meghanīlatamaḥśyāmā saṃsṛtiprāvṛḍākulā ||3||

Again and again it comes back, the thing that stirs up the waves of water; this round of birth and death is dark as storm clouds, and stormy like the rainy season.

बार-बार वह लौट आती है, जो पानी की लहरों को उठाती है; यह जन्म-मरण का चक्र बादलों जैसा काला है, और बरसात के मौसम जैसा तूफ़ानी है।

5.65.4

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । संवादं सुहृदो सह्यसानौ भासविलासयोः ॥ ४ ॥

atraivodāharantīmamitihāsaṃ purātanam | saṃvādaṃ suhṛdo sahyasānau bhāsavilāsayoḥ ||4||

Here, at this very point, they tell an old story: the conversation between two friends, Bhasa and Vilasa, on the ridge of Mount Sahya.

यहीं पर वे एक पुरानी कथा सुनाते हैं: सह्य पर्वत की चोटी पर दो मित्रों, भास और विलास, की बातचीत।

5.65.5

अस्त्युत्सेधजिताकाशः पीठेन जितभूतलः । तलेन जितपातालस्त्रिलोकविजयो गिरिः ॥ ५ ॥

astyutsedhajitākāśaḥ pīṭhena jitabhūtalaḥ | talena jitapātālastrilokavijayo giriḥ ||5||

There is a mountain that has conquered the sky with its height, conquered the earth with its base, and conquered the underworld with its foot, a mountain that has won all three worlds.

एक पर्वत है जिसने अपनी ऊँचाई से आकाश को जीत लिया है, अपने आधार से धरती को जीत लिया है, और अपने तल से पाताल को जीत लिया है। यह एक ऐसा पर्वत है जिसने तीनों लोकों को जीत लिया है।

5.65.6

असंख्यकुसुमापूरोऽसंख्यनिर्मलनिर्झरः । गुह्यकारक्षितनिधिः सह्यनामाऽविषह्यभाः ॥ ६ ॥

asankhyakusumāpūro'sankhyanirmalanirjharaḥ | guhyakārakṣitanidhiḥ sahyanāmā'viṣahyabhāḥ || 6 ||

It is full of countless flowers and countless clear waterfalls. Its treasures are guarded by the Guhyakas, the spirit-keepers of hidden wealth. Its name is Sahya, and its brightness is impossible to bear.

वह अनगिनत फूलों और अनगिनत साफ झरनों से भरा है। इसके खज़ानों की रखवाली गुह्यक करते हैं, जो छिपे धन के रखवाले होते हैं। इसका नाम सह्य है, और इसकी चमक बर्दाश्त नहीं होती।

5.65.7

मुक्तापटलसंपूर्णैर्भानुभासुरभित्तिभिः । भासुरः काञ्चनतटैः कटैरिव सुरद्विपः ॥ ७ ॥

muktāpaṭalasampūrṇairbhānubhāsurabhittibhiḥ | bhāsuraḥ kāñcanataṭaiḥ kaṭairiva suradvipaḥ || 7 ||

Its cliffs are full of layers of pearls, shining bright as the sun. Its golden slopes gleam, like the shining temples of the gods' elephant.

इसकी चट्टानें मोतियों की परतों से भरी हैं, सूरज जैसी चमकती हुई। इसके सुनहरे ढलान चमकते हैं, जैसे देवताओं के हाथी की चमकती कनपटी।

5.65.8

क्वचित्पुष्पभरासारो धातुसारातताः क्वचित् । क्वचित्फुल्लसरःसारो रत्नशालिशिलः क्वचित् ॥ ८ ॥

kvacitpuṣpabharāsāro dhātusārātataḥ kvacit | kvacitphullasaraḥsāro ratnaśāliśilaḥ kvacit || 8 ||

In one place it pours down a heavy shower of flowers, in another it is covered with rich veins of ore. In one place it has the finest of blooming lakes, in another rocks rich with gems.

एक जगह फूलों की भारी बारिश होती है, दूसरी जगह धातु की समृद्ध परतें बिछी हैं। एक जगह सबसे सुंदर खिले हुए तालाब हैं, दूसरी जगह रत्नों से भरी चट्टानें हैं।

5.65.9

इतो रटन्निर्झरवानितः क्वणितकीचकः । इतो रटद्गुहावात इतः षट्पदघुंघुमः ॥ ९ ॥

itō raṭannirjharavānitaḥ kvaṇitakīcakaḥ | itō raṭadguhāvāta itaḥ ṣaṭpadaghuṁghumaḥ || 9 ||

Here its waterfalls roar, here its bamboo canes whistle. Here the wind roars through its caves, here the bees hum.

यहाँ इसके झरने गरजते हैं, यहाँ इसके बांस सीटी बजाते हैं। यहाँ गुफाओं में हवा गरजती है, यहाँ भौंरे गुनगुनाते हैं।

5.65.10

सानौ गीतोऽप्सरोवृन्दैर्वने मृगखगारवः । अधित्यकायां मत्ताभ्रो गगनेषु खगारवः ॥ १० ॥

sānau gīto'psarovṛndairvane mṛgakhagāravaḥ | adhityakāyāṃ mattābhro gaganeṣu khagāravaḥ || 10 ||

On its peak, bands of heavenly nymphs sing. In its forest, deer and birds cry out. On its high plateau, wild storm clouds gather. In its sky, birds call.

इसकी चोटी पर स्वर्ग की अप्सराओं के झुंड गाते हैं। इसके जंगल में हिरण और पक्षी बोलते हैं। इसके ऊँचे पठार पर घने बादल उमड़ते हैं। इसके आकाश में पक्षी बोलते हैं।

5.65.11

विद्याधराश्रितगुहो भृङ्गगीताम्बुजाकरः । किरातगीतपर्यन्तः खगगीतवनद्रुमः ॥ ११ ॥

vidyādharāśritaguho bhṛṅgagītāmbujākaraḥ | kirātagītaparyantaḥ khagagītavanadrumaḥ || 11 ||

Vidyadharas, spirits who fly through the sky, live in its caves. Bees hum over its lotus ponds. Hill hunters sing at its far edges. Birds sing in the trees of its forest.

इसकी गुफाओं में आकाश में उड़ने वाले विद्याधर रहते हैं। इसके कमल-तालाबों पर भौंरे गुनगुनाते हैं। इसके दूर किनारों पर पहाड़ी शिकारी गाते हैं। इसके जंगल के पेड़ों पर पक्षी गाते हैं।

5.65.12

स्कन्धेषु देवैर्वलितः पादेषु वलितो नरैः । पाताले वलितो नागैर्जगद्गृहमिवापरम् ॥ १२ ॥

skandheṣu devairvalitapādeṣu valito naraiḥ | pātāle valito nāgairjagadgṛhamivāparam || 12 ||

Gods surround its shoulders, men surround its feet, and serpents surround it down in the underworld. It is like another home for the whole world.

इसके कंधों को देवता घेरे रहते हैं, इसके पैरों को मनुष्य घेरे रहते हैं, और पाताल में इसे नाग घेरे रहते हैं। यह पूरी दुनिया के लिए मानो एक और घर है।

5.65.13

कन्दरेषु श्रितः सिद्धैर्निधानैरन्तराश्रितः । चन्दनेषु श्रितो नागैः सिंहैः श्रृङ्गशिखासु च ॥ १३ ॥

kandareṣu śritaḥ siddhairnidhānairantarāśritaḥ | candaneṣu śrito nāgaiḥ siṃhaiḥ śṛṅgaśikhāsu ca || 13 ||

Siddhas, men of great spiritual power, live in its mountain clefts. Treasures lie hidden inside it. Serpents live among its sandalwood trees, and lions live on the tips of its peaks.

इसकी घाटियों में सिद्ध पुरुष रहते हैं। इसके भीतर खज़ाने छिपे हैं। इसके चंदन के पेड़ों में नाग रहते हैं, और इसकी चोटियों की नोक पर शेर रहते हैं।

5.65.14

पुष्पाभ्रसंवीतवपुः पुष्परेण्वभ्रपांसुलः । पुष्पवात्याभ्रहृद्भ्रान्तः पुष्पपादपपाण्डुरः ॥ १४ ॥

puṣpābhrasaṃvītavapuḥ puṣpareṇvabhrapāṃsulaḥ | puṣpavātyābhrabhṛdbhrāntaḥ puṣpapādapapāṇḍuraḥ || 14 ||

Its whole body is wrapped in a mist of flowers. It is dusted with clouds of flower pollen. It swirls with gusts that carry clouds of blossoms. It turns pale white with trees in flower.

इसका पूरा शरीर फूलों की धुंध में लिपटा है। यह फूलों के पराग के बादलों से धूल-धूसरित है। यह फूलों के बादल उड़ाने वाले झोंकों से घूमता है। यह खिले हुए पेड़ों से सफ़ेद हो जाता है।

5.65.15

धातुधूल्यभ्रकपिलो रत्नोपलतलस्थितैः । मन्दारगैरिव पुरस्त्रीगणैरलमाश्रितः ॥ १५ ॥

dhātudhūlyabhrakapilo ratnopalatalasthitaiḥ | mandāragairiva purastrīgaṇairalamāśritaḥ || 15 ||

Reddish brown with clouds of mineral dust, the mountain is well visited by groups of city women who sit on its jeweled rocks, like women visiting Mount Mandara.

खनिज धूल के बादलों से लाल-भूरा यह पर्वत, शहर की स्त्रियों के समूहों से खूब भरा रहता है, जो इसकी रत्न-जड़ित चट्टानों पर बैठती हैं, मानो मंदार पर्वत जाने वाली स्त्रियाँ हों।

5.65.16

अभ्रनीलांशुकच्छन्ना मूकरत्नविभूषणाः । शिलाः कनकसुन्दर्यो यत्र श्रृङ्गाभिसारिकाः ॥ १६ ॥

abhranīlāṃśukacchannā mūkaratnavibhūṣaṇāḥ | śilāḥ kanakasundaryo yatra śṛṅgābhisārikāḥ || 16 ||

There, its golden, beautiful rocks are wrapped in cloud-blue cloth and decked with silent jewels, like women stealing away at night to meet their lovers on the peaks.

वहाँ इसकी सुनहरी, सुंदर चट्टानें बादल जैसे नीले वस्त्र में लिपटी हैं और चुप रत्नों से सजी हैं, मानो स्त्रियाँ रात में चुपके से अपने प्रियतम से मिलने चोटियों पर जा रही हों।

5.65.17

तत्रोत्तरतटे सानौ विनम्रफलपादपे । रत्नपुष्करिणीजालवहन्निर्झरवारिणि ॥ १७ ॥

tatrottaratate sānau vinamraphalapādape | ratnapuṣkariṇījālavahannirjharavāriṇi || 17 ||

There, on the northern ridge of that mountain, trees bend low, heavy with fruit, and rows of jewel-lined ponds carry the flowing water of waterfalls.

वहाँ, उस पहाड़ की उत्तरी चोटी पर, पेड़ फलों के बोझ से झुके रहते हैं, और रत्नों से जड़े तालाबों की कतार में झरनों का पानी बहता रहता है।

5.65.18

चूतद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पस्तबकदन्तुरे । विफुल्लाङ्कोलपुन्नागनीलनीरजदिक्तटे ॥ १८ ॥

cūtadrumalatonmuktapuṣpastabakadanture | viphullāṅkolapunnāganīlanīrajadiktate || 18 ||

That place is thick with clusters of flowers fallen from mango trees and vines, and its slopes are covered with blooming ankola trees, punnaga trees, and blue lotuses.

वह जगह आम के पेड़ों और बेलों से गिरे फूलों के गुच्छों से भरी रहती है, और वहाँ की ढलानों पर अंकोल, पुन्नाग के पेड़ और नीले कमल खिले रहते हैं।

5.65.19

लतावितानच्छन्नार्के रत्नांशुभम्भास्वरे । स्रवज्जम्बूरसस्यूते स्वलोकाह्लादकारिणि ॥ १९ ॥

latāvitānacchannārke ratnāṃśubhambhāsvare | sravajjambūrasasyūte svalokāhlādakāriṇi || 19 ||

There the sun is hidden by a canopy of vines, the place shines with the light of jewels, it is soaked with the flowing juice of jambu fruits, and it brings joy to everyone who lives there.

वहाँ सूरज बेलों की छतरी में छिपा रहता है, वह जगह रत्नों की चमक से चमकती है, जामुन के फलों के बहते रस से भीगी रहती है, और वहाँ रहने वालों को सुख देती है।

5.65.20

ब्रह्मलोकसमः स्वर्गरम्यः शिवपुरोपमः । अत्रेरस्त्याश्रमः श्रीमान्सिद्धश्रमहरो महान् ॥ २० ॥

brahmalokasamaḥ svargaramyaḥ śivapuropamaḥ | atrerastyāśramaḥ śrīmānsiddhaśramaharo mahān || 20 ||

Equal to Brahma's world, as lovely as heaven, like the city of Shiva itself, there stands the great, glorious hermitage of the sage Atri, which takes away the tiredness of the siddhas.

ब्रह्मलोक जैसी, स्वर्ग जैसी सुंदर, शिव की नगरी जैसी, वहीं ऋषि अत्रि का वह बड़ा और शानदार आश्रम है, जो सिद्धों की थकान मिटा देता है।

5.65.21

महत्यत्राश्रमे तस्मिंस्तापसौ द्वौ बभूवतुः । कोविदौ तु नभोमार्ग इव शुक्रबृहस्पती ॥ २१ ॥

mahatyatrāśrame tasmiṃstāpasau dvau babhūvatuḥ | kovidau tu nabhomārga iva śukrabṛhaspatī || 21 ||

In that great hermitage lived two ascetics, both very wise, like Shukra and Brihaspati moving together across the sky.

उस बड़े आश्रम में दो तपस्वी रहते थे, दोनों बहुत ज्ञानी, मानो आकाश में शुक्र और बृहस्पति चल रहे हों।

5.65.22

तयोरथैकास्पदयोस्तथाभूतां सुतावुभौ । फुल्लाङ्कुरौ शुद्धतनू सरस्यम्बुजयोरिव ॥ २२ ॥

tayorathaikāspadayostathābhūtāṃ sutāvubhau | phullāṅkurau śuddhatanū sarasyambujayoriva || 22 ||

Then to those two, who lived together as one, were born two sons alike in nature, pure in body, like two lotus buds blooming together in a pond.

फिर एक ही जगह साथ रहने वाले उन दोनों के यहाँ एक जैसे स्वभाव के दो बेटे हुए, जो शरीर से बिल्कुल निर्मल थे, मानो किसी तालाब में खिलती दो कमल-कलियाँ हों।

5.65.23

विलासभासनामानौ वृद्धिमाययतुः क्रमात् । तौ पित्रोः पल्लवे दीर्घे लतापादपयोरिव ॥ २३ ॥

vilāsabhāsanāmānau vṛddhimāyayatuḥ kramāt | tau pitroḥ pallave dīrghe latāpādapayoriva || 23 ||

They were named Vilasa and Bhasa. The two of them grew up little by little, like fresh shoots on the long branch of their parents, a vine and a tree.

उनके नाम विलास और भास रखे गए। वे धीरे-धीरे बड़े होते गए, मानो अपने माँ-बाप रूपी बेल और पेड़ की लंबी डाल पर उगे नए अंकुर हों।

5.65.24

आस्तामन्योन्यसुस्निग्धौ सुहृदौ वल्लभौ मिथः । तिलतैलवदाश्लिष्टौ तौ पुष्पामोदवत्स्थितौ ॥ २४ ॥

āstāmanyonyasusnigdhau suhṛdau vallabhau mithaḥ | tilatailavadāśliṣṭau tau puṣpāmodavatsthitau || 24 ||

The two of them stayed deeply loving toward each other, close friends, dear to one another, joined like a sesame seed and its oil, always together like a flower and its scent.

वे दोनों एक-दूसरे से बहुत प्यार करते थे, गहरे दोस्त, एक-दूसरे को प्यारे, तिल और उसके तेल जैसे आपस में जुड़े हुए, और फूल तथा उसकी खुशबू जैसे हमेशा साथ रहने वाले।

5.65.25

नाऽयुक्तौ पुत्रयुक्तौ तु सुरक्ताविव दंपती । एकं द्वित्वमिवापन्नं सममासीत्तयोर्मनः ॥ २५ ॥

nā'yuktau putrayuktau tu suraktāviva daṃpatī | ekaṃ dvitvamivāpannaṃ samamāsīttayormanaḥ || 25 ||

The two were never apart, like a loving married couple with a son, and their minds were so alike that it seemed one single mind had become two.

वे कभी एक-दूसरे से अलग नहीं होते थे, मानो बेटेवाले किसी प्रेमी पति-पत्नी जैसे हों, और उनके मन इतने मिलते थे कि लगता जैसे एक ही मन दो हिस्सों में बँट गया हो।

5.65.26

तौ तथान्योन्यमुदितौ मनोहरतराकृती । तस्थतुः स्वाश्रमे मौने सरोज इव षट्पदौ ॥ २६ ॥

tau tathānyonyamuditau manoharatarākṛtī | tasthatuḥ svāśrame maune saroj iva ṣaṭpadau || 26 ||

Delighting in each other like this, both lovely to look at, the two of them lived quietly in their hermitage, like two bees resting in a lotus.

इस तरह एक-दूसरे में खुश रहते हुए, दोनों देखने में बहुत सुंदर, वे अपने आश्रम में चुपचाप रहते थे, मानो कमल में बैठे दो भँवरे हों।

5.65.27

प्रापतुर्यौवनं बाल्यमुत्सृज्य नववल्लभौ । कालेनाल्पतरेणैव चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २७ ॥

prāpaturyauvanaṃ bālyamutsṛjya navavallabhau | kālenālpatareṇaiva candrasūryāvivoditau || 27 ||

Leaving childhood behind, the two of them became young in a very short time, freshly handsome, like the sun and moon just risen.

बचपन को पीछे छोड़कर, वे दोनों बहुत कम समय में जवान हो गए, नई रौनक से भरे हुए, मानो अभी-अभी उगे सूरज और चाँद हों।

5.65.28

जग्मतुर्देहमुत्सृज्य ततस्तौ पितरौ तयोः । स्वर्गं जरार्तावुड्डीय नीडादिव विहंगमौ ॥ २८ ॥

jagmaturdēhamutsṛjya tatastau pitrau tayoḥ | svargaṃ jarārtāvuḍḍīya nīḍādivihaṅgamau || 28 ||

Then their two parents, worn out by old age, left their bodies and went up to heaven, flying from the nest like two birds.

फिर बुढ़ापे से थके हुए उनके माँ-बाप दोनों अपना शरीर छोड़कर स्वर्ग चले गए, मानो घोंसले से उड़ने वाले दो पंछी हों।

5.65.29

पञ्चत्वं गतयोः पित्रोर्दीनवक्त्रौ बभूवतुः । तप्ताङ्गौ विगतोत्साहौ पद्माविव जलोद्धृतौ ॥ २९ ॥

pañcatvaṃ gatayoḥ pitror dīnavaktrau babhūvatuḥ | taptāṅgau vigatotsāhau padmāviv jaloddhṛtau || 29 ||

When their parents had died, the two of them became sad-faced, their bodies burning with grief and all their strength gone, like two lotuses pulled out of the water.

जब उनके माँ-बाप मर गए, तो वे दोनों उदास मुँह वाले हो गए, उनके शरीर दुख से जलने लगे और उनका सारा जोश खत्म हो गया, मानो पानी से निकाले गए दो कमल हों।

5.65.30

तत्रौर्ध्वदैहिकं कृत्वा चक्राते परिदेवनम् । लोकस्थितिरलङ्घ्या हि महतामपि मानद ॥ ३० ॥

tatrordhvadaihikaṃ kṛtvā cakrāte paridevanam | lokasthitiralaghhyā hi mahatāmapi mānada || 30 ||

There they finished the funeral rites and then broke into mourning and grief, for even the great cannot escape the way of the world, O giver of honor.

वहाँ उन्होंने अंतिम संस्कार पूरा किया और फिर रो-रोकर विलाप करने लगे, क्योंकि हे मानद, दुनिया का यह नियम बड़े-बड़े लोगों के लिए भी टाला नहीं जा सकता।

5.65.31

कृत्वौर्ध्वदैहिकमथो व्यथयाभिभूतौ शोकोत्थया करुणयार्तगिरा विलप्य । चित्रार्पिताविव निरस्तसमस्तचेष्टौ तौ संस्थितौ सुखमशून्यहृदौ विवृत्तौ ॥ ३१ ॥

kṛtvourdhvadaihikamatho vyathayābhibhūtau śokotthayā karuṇayārtagirā vilapya | citrārpitāviv nirastasamastaceṣṭau tau saṃsthitau sukhamaśūnyahṛdau vivṛttau || 31 ||

After finishing the funeral rites, the two of them were overcome by the pain of grief and wept aloud in a sad, pained voice. Then, still as figures painted in a picture, all their movement stopped, and they grew calm, their hearts still not empty of sorrow, but no longer as they had been before.

अंतिम संस्कार करने के बाद, वे दोनों शोक से उठी पीड़ा से भर गए और दुखी, तड़पते स्वर में फूट-फूट कर रोए। फिर, जैसे किसी तस्वीर में बने हों, उनकी सारी हलचल थम गई, और वे शांत हो गए, उनके मन अब भी दुख से भरे थे, पर वे पहले जैसे नहीं रहे।

Chapter 66

5.66.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । अतिशोकपराभूतौ तस्थतुर्दृढतापसौ । तापसंशुष्कसर्वाङ्गौ तावरण्यद्रुमाविव ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | atiśokaparābhūtau tasthaturdṛḍhatāpasau | tāpasaṃśuṣkasarvāṅgau tāvaraṇyadrumāviva || 1 ||

Sri Vasishtha said: Overcome by deep grief, the two steadfast ascetics stood there, their whole bodies dried up by hard penance, like two trees of the forest.

श्री वसिष्ठ ने कहा: बहुत शोक से भरे हुए वे दोनों दृढ़ तपस्वी वहीं खड़े रहे, तप से उनका पूरा शरीर सूख गया था, जैसे जंगल के दो पेड़।

5.66.2

विरक्तौ विपिने कालं क्षेपयामासतुर्द्विजौ । वियूथाविव सारङ्गावनास्थामागतौ पराम् ॥ २ ॥

viraktau vipine kālaṃ kṣepayāmāsaturdvijau | viyūthāviva sāraṅgāvanāsthāmāgatau parām || 2 ||

Detached from the world, the two brahmins spent their time in the forest, like two deer cut off from their herd, sunk in utter despair.

संसार से विरक्त होकर वे दोनों ब्राह्मण जंगल में समय बिताने लगे, जैसे झुंड से बिछड़े हुए दो हिरन, जो गहरी निराशा में डूब गए हों।

5.66.3

जग्मुर्दिनानि मासाश्च वर्षाण्यथ तयोस्तदा । क्रमाद्वावपि संयातौ जरां श्वभ्रद्रुमाविव ॥ ३ ॥

jagmurdināni māsāśca varṣāṇyatha tayostadā | krameādvāvapi saṃyātau jarāṃ śvabhradrumāviva || 3 ||

Days, months, and years passed for the two of them, and gradually both came to old age, like two trees standing at the edge of a pit.

उन दोनों के दिन, महीने और वर्ष बीतते गए, और धीरे-धीरे दोनों बुढ़ापे को पहुंच गए, जैसे गड्ढे के किनारे खड़े दो पेड़।

5.66.4

अप्राप्तविमलज्ञानौ चिराज्जर्जरतापसौ । तावेकदा संघटिताविदमन्योन्यमूचतुः ॥ ४ ॥

aprāptavimalajñānau cirājjjarjaratāpasau | tāvekadā saṃghaṭitāvidamanyonyamūcatauḥ || 4 ||

The two ascetics, who had not attained pure knowledge, had grown old and feeble over that long time. One day, meeting together, they said this to each other:

वे दोनों तपस्वी, जिन्हें अभी तक शुद्ध ज्ञान नहीं मिला था, इतने लंबे समय में बूढ़े और कमज़ोर हो गए थे। एक दिन दोनों मिले और एक-दूसरे से यह कहा:

5.66.5

विलास उवाच । जीविताग्र्यद्रुमफल हृदावासामृताम्बुधे । जगत्यस्मिन्महाबन्धो भास स्वागतमस्तु ते ॥ ५ ॥

vilāsa uvāca | jīvitāgryadrumaphala hṛdāvāsāmṛtāmbudhe | jagatyasminmahābandho bhāsa svāgatamastu te || 5 ||

Vilasa said: O best fruit of the tree of life, O ocean of nectar living in my heart, O great friend in this world - Bhasa, welcome to you.

विलास ने कहा: हे जीवन के वृक्ष के सबसे अच्छे फल, हे मेरे हृदय में बसे अमृत के सागर, हे इस संसार में मेरे महान मित्र - भास, तुम्हारा स्वागत है।

5.66.6

एतावत्यो दिनावल्लयो मद्वियोगवता त्वया । वद क्व क्षपिताः साधो कच्चित्ते सफलं तपः ॥ ६ ॥

etāvatyo dināvallayo madviyogavatā tvayā | vada kva kṣapitāḥ sādho kaccitte saphalaṃ tapaḥ || 6 ||

Tell me, good man - separated from me, where did you spend so many long strands of days? Has your penance, I hope, borne fruit?

बताओ, हे साधु - मुझसे बिछड़कर तुमने दिनों की इतनी लंबी लड़ियाँ कहां बिताईं? क्या तुम्हारी तपस्या सफल हुई है?

5.66.7

कच्चित्ते विज्वरा बुद्धिः कच्चिज्ज्ञातस्त्वमात्मवान् । कच्चित्फलितविद्यस्त्वं कच्चित्कुशलवानसि ॥ ७ ॥

kaccitte vijvarā buddhiḥ kañcijjātastvamātmavān | kaccitphalitavidyastvaṃ kaccitkuśalavānasi || 7 ||

Is your mind free of its fever? Have you become, to some extent, master of yourself? Has your knowledge borne fruit? Are you well?

क्या तुम्हारा मन अब बेचैनी से मुक्त है? क्या तुम कुछ हद तक अपने आप के स्वामी बन गए हो? क्या तुम्हारा ज्ञान फला है? क्या तुम कुशल हो?

5.66.8

श्रीवसिष्ठ उवाच । इत्युक्तवन्तं संसारसमुद्विग्नमलं तथा । प्राहाप्राप्तमहाज्ञानं सुहृत्सुहृदमादरात् ॥ ८ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | ityuktavantaṃ saṃsārasamudvignamalaṃ tathā | prāhāprāptamahājñānaṃ suhṛtsuhṛdamādarāt || 8 ||

Sri Vasishtha said: To him who had spoken thus, greatly troubled by the cycle of birth and death, and who likewise had not attained great knowledge, the friend replied with respect, friend to friend.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस तरह बोलने वाले उस मित्र को, जो संसार से बहुत व्याकुल था और जिसे भी अभी महान ज्ञान नहीं मिला था, दूसरे मित्र ने आदर के साथ उत्तर दिया।

5.66.9

भास उवाच । साधो स्वागतताद्यैव दिष्ट्या दृष्टोऽसि मानद । कुशलं तु कुतोऽस्माकं संसारे तिष्ठतामिह ॥ ९ ॥

bhāsa uvāca | sādho svāgatatādyaiva diṣṭyā dṛṣṭo'si mānada | kuśalaṃ tu kuto'smākaṃ saṃsāre tiṣṭhatāmiha || 9 ||

Bhasa said: Welcome, good man - today, by good fortune, I see you, O giver of respect. But how can there be wellbeing for us, who remain here in this cycle of birth and death?

भास ने कहा: हे साधु, स्वागत है - आज सौभाग्य से मैंने तुम्हें देखा, हे आदर देने वाले। पर हम जैसे लोगों का, जो इस संसार में पड़े हैं, भला कैसे हो सकता है?

5.66.10

यावन्नाधिगतं ज्ञेयं यावत्क्षीणा न चित्तभूः । यावत्तीर्णो न संसारस्तावन्मे कुशलं कुतः ॥ १० ॥

yāvannādhigataṃ jñeyaṃ yāvatkṣīṇā na cittabhūḥ | yāvattīrṇo na saṃsārastāvanme kuśalaṃ kutaḥ || 10 ||

As long as the thing to be known has not been attained, as long as the ground of the mind has not been worn away, as long as this cycle of birth and death has not been crossed - so long, how can there be wellbeing for me?

जब तक जानने योग्य वस्तु नहीं मिली, जब तक मन की भूमि घिस नहीं गई, जब तक यह संसार पार नहीं हुआ - तब तक मेरा भला कैसे हो सकता है?

5.66.11

आशा यावदशेषेण न लूनाश्चित्तसंभवाः। वीरुधो दात्रकेणेव तावन्नः कुशलं कुतः ॥ ११ ॥

āśā yāvadaśeṣeṇa na lūnāścittasaṃbhavāḥ| vīrudho dātrakeṇeva tāvannnaḥ kuśalaṃ kutaḥ || 11 ||

As long as our hopes, born of the mind, are not cut away completely, like creepers cut by a sickle - so long, how can there be wellbeing for us?

जब तक मन से उपजी हमारी आशाएं पूरी तरह काट नहीं दी जातीं, जैसे बेलें हंसिये से काटी जाती हैं - तब तक हमारा भला कैसे हो सकता है?

5.66.12

यावन्नाधिगतं ज्ञानं यावन्न समतोदिता। यावन्नाभ्युदितो बोधस्तावन्नः कुशलं कुतः ॥ १२ ॥

yāvannādhigataṃ jñānaṃ yāvanna samatoditā| yāvannābhyudito bodhastāvannnaḥ kuśalaṃ kutaḥ || 12 ||

As long as knowledge has not been attained, as long as evenness of mind has not arisen, as long as understanding has not dawned - so long, how can there be wellbeing for us?

जब तक ज्ञान नहीं मिला, जब तक मन की समता नहीं जगी, जब तक बोध नहीं उदय हुआ - तब तक हमारा भला कैसे हो सकता है?

5.66.13

आत्मलाभं विना साधो विना ज्ञानमहौषधम्। उदेति पुनरेवेयं दुःसंसृतिविषूचिका ॥ १३ ॥

ātmalābhaṃ vinā sādho vinā jñānamahauṣadham| udeti punareveyaṃ duḥsaṃsṛtiviṣūcikā || 13 ||

Without gaining the true self, good man, and without the great medicine of knowledge, this cholera of evil rebirth keeps rising again and again.

हे साधु, आत्मा को पाए बिना, और ज्ञान की महान औषधि के बिना, बुरे जन्म-मरण का यह हैज़ा बार-बार उठता रहता है।

5.66.14

शैशवाङ्कुरितोज्जृम्भान्नवयौवनपल्लवः। जराकुसुमितोऽभ्येति पुनः संसारदुर्द्रुमः ॥ १४ ॥

śaiśavāṅkuritojjṛmbhānnavayauvanapallavaḥ| jarākusumito'bhyeti punaḥ saṃsāradurdrumaḥ || 14 ||

This evil tree of worldly life grows again: it sprouts and spreads out from the seed of childhood, puts out fresh young leaves in youth, and flowers into old age.

संसार का यह बुरा वृक्ष फिर से बढ़ता है: बचपन के अंकुर से फूटकर फैलता है, जवानी में नई-नई पत्तियां निकालता है, और बुढ़ापे में फूल जाता है।

5.66.15

कायजीर्णतरोरस्माद्बान्धवाक्रन्दषट्पदा। जराकुसुमितोदेति पुनर्मरणमञ्जरी ॥ १५ ॥

kāyajīrṇataroरasmādbāndhavākrandaṣaṭpada| jarākusumitodeti punarmaraṇamañjarī || 15 ||

From this tree of the body, grown old, whose bees are the wailing of kinsmen, flowering now with old age, the blossom-cluster of death rises again.

शरीर के इस बूढ़े हो चुके वृक्ष से, जिसकी भौंरें रिश्तेदारों की चीख-पुकार हैं, बुढ़ापे में फूलकर, मृत्यु का यह गुच्छा फिर से उठता है।

5.66.16

भुक्तकर्मर्तुविरसा पुराणदिवसोम्भिता। नीयते नीरसप्राया पुनः संवत्सरावली ॥ १६ ॥

bhukta-karma-ṛtu-virasā purāṇa-divasombhitā | nīyate nīrasa-prāyā punaḥ saṃvatsarāvalī || 16 ||

The succession of years, made tasteless by the season of deeds already lived through, swollen with old, spent days, passes on again, mostly without any savor.

बीत चुके कर्मों की ऋतु से फीका पड़ा, पुराने बीते दिनों से भरा हुआ, वर्षों का यह सिलसिला फिर से बिना किसी रस के गुजर जाता है।

5.66.17

महादरीषु देहाद्रेस्तृष्णाकण्टकितास्वपि । फलव्यालासु च पुनः क्रियासु परिलुठ्यते ॥ १७ ॥

mahādarīṣu dehādres-tṛṣṇākaṇṭakitāsvapi | phalavyālāsu ca punaḥ kriyāsu pariluṭhyate || 17 ||

One keeps rolling about, again and again, in the great caves of the mountain that is the body - caves thorny with craving - and in the actions whose fruit is a serpent.

शरीर रूपी पर्वत की बड़ी-बड़ी घाटियों में - जो तृष्णा के कांटों से भरी हैं - और उन कर्मों में जिनका फल सांप है, मनुष्य बार-बार लोटता रहता है।

5.66.18

दुःखैः सुखलवाकारैर्दीर्घादीर्घैः शुभाशुभैः । अपर्याप्तागमापायाः प्रयान्त्यायान्ति रात्रयः ॥ १८ ॥

duḥkhaiḥ sukhalavākārair-dīrghādīrghaiḥ śubhāśubhaiḥ | aparyāptāgamāpāyāḥ prayāntyāyānti rātrayaḥ || 18 ||

With sorrows that wear the look of tiny pleasures, some long, some short, some good, some bad, the nights come and go endlessly, without pause.

छोटे-छोटे सुखों जैसे दिखने वाले दुखों के साथ, कुछ लंबी, कुछ छोटी, कुछ अच्छी, कुछ बुरी - रातें बिना रुके, लगातार आती-जाती रहती हैं।

5.66.19

अयथार्थक्रियारम्भैः कदाशावेशपल्लवैः । क्षीयते कर्मभिस्तुच्छैरायुराहतकर्मभिः ॥ १९ ॥

ayathārthakriyārambhaiḥ kadāśāveśapallavaiḥ | kṣīyate karmabhistucchaiḥ āyurāhatakarmbhiḥ || 19 ||

Life wastes away through actions begun the wrong way, through the budding of empty hopes, through trivial deeds - deeds that come to nothing.

गलत तरीके से शुरू किए गए कामों से, खोखली उम्मीदों के अंकुरित होने से, छोटे-छोटे कामों से - जो कहीं नहीं पहुंचते - उम्र घटती जाती है।

5.66.20

उन्मूलिताश्रयालानो मनोमत्तमतङ्गजः । तृष्णाकरेणुकोन्निद्रो दूरं विपरिधावति ॥ २० ॥

unmūlitāśrayālāno manomattamataṅgajaḥ | tṛṣṇākareṇukonnidro dūraṃ viparidhāvati || 20 ||

The mind, a mad elephant that has torn up its tethering post, aroused by the she-elephant of craving, runs off wildly, far away.

मन रूपी मतवाला हाथी, जिसने अपने बंधने के खंभे को उखाड़ दिया है, तृष्णा रूपी हथिनी से उत्तेजित होकर, दूर तक बेतहाशा भाग जाता है।

5.66.21

जिह्वाचपलतालग्नः कायद्रुममहालये । पतच्चिन्तामणौ वृद्धो गर्द्धगृध्रो विवर्धते ॥ २१ ॥

jihvācapalatālagnaḥ kāyadrumamahālaye | pataccintāmaṇau vṛddho garddhagṛdhro vivardhate || 21 ||

Clinging to the tongue's fickle craving, growing old in the great hollow of the body's tree, feasting on the wish-granting jewel as it keeps falling, this ancient vulture of greed only grows bigger.

जीभ की चंचल लालसा से चिपका हुआ, शरीर रूपी पेड़ के बड़े खोखल में बूढ़ा होता हुआ, गिरते हुए इच्छा-पूरक रत्न को खाता हुआ, लालच का यह बूढ़ा गिद्ध बस बढ़ता ही जाता है।

5.66.22

नीरसा निःसुखा लघ्वी पतत्पेलवगात्रिका । जीर्णपर्णसवर्णेयं क्षीयते दिवसावली ॥ २२ ॥

nīrasā niḥsukhā laghvī patatpelavagātrikā | jīrṇaparṇasavarṇeyaṃ kṣīyate divasāvalī || 22 ||

The days of life come one after another, but they are dry and joyless, small and frail. Their weak body is falling apart, the colour of a withered leaf, and they keep wasting away.

जीवन के दिन एक के बाद एक आते हैं, पर वे सूखे और सुख-रहित हैं, छोटे और कमज़ोर हैं। उनका कमज़ोर शरीर गिरता जा रहा है, सूखे पत्ते के रंग का, और वे लगातार घटते जा रहे हैं।

5.66.23

अवमानरजोध्वस्तमस्तंगतवपुःश्रियम्। मुखं धूसरतामेति हिमैः पद्ममिवाहतम्॥ २३॥

avamānarajodhvastamastaṃgatavapuḥśriyam | mukhaṃ dhūsaratāmeti himaiḥ padmamivāhatam || 23 ||

The face, its beauty now set like a sinking sun, crushed by the dust of insult, turns dull and grey, like a lotus struck by frost.

चेहरे की सुंदरता डूबते सूरज की तरह ढल जाती है, अपमान की धूल से कुचली जाती है, और वह फीका व धूसर पड़ जाता है, जैसे पाले से मारा हुआ कमल।

5.66.24

शुष्यतः कायसरसः प्रगलद्यौवनाम्भसः। राजहंसः क्षणादायुरनिवर्ति पलायते॥ २४॥

śuṣyataḥ kāyasarasaḥ pragaladyauvanāmbhasaḥ | rājahaṃsaḥ kṣaṇādāyuranivarti palāyate || 24 ||

The body is a lake that is drying up, its water, our youth, draining away. And life, like a royal swan on that lake, flies off in an instant, never to come back.

शरीर एक तालाब है जो सूखता जा रहा है, उसका पानी, यानी हमारी जवानी, बहता जा रहा है। और जीवन, उस तालाब पर बैठा राजहंस, एक पल में उड़ जाता है, फिर कभी नहीं लौटता।

5.66.25

कालानिलबलोद्धूताज्जर्जराज्जीवितद्रुमात्। भोगपुष्पाणि दिवसपर्णानि निपतन्त्यधः॥ २५॥

kālānilabaloddhūtājjjarjarājjīvitadrumāt | bhogapuṣpāṇi divasaparṇāni nipatantyadhaḥ || 25 ||

The tree of life is worn out, shaken by the strong wind of time. From it the flowers of pleasure and the leaves that are our days fall to the ground.

जीवन का पेड़ जर्जर हो चुका है, समय की तेज़ आँधी से हिल रहा है। उससे सुख के फूल और दिनों के पत्ते नीचे गिरते जा रहे हैं।

5.66.26

भोगभोगिश्रितेष्वन्तर्दुःखदर्दुरधारिषु। मनोमोहान्धकूपेषु पूरेषु विनिमज्जति॥ २६॥

bhogabhogiśriteṣvantarduḥkhadarduradhāriṣu | manomohāndhakūpeṣu pūreṣu vinimajjati || 26 ||

The mind sinks down into these floods: waters where the snakes of pleasure lurk, where frogs of hidden sorrow lie, and blind wells dug by its own delusion.

मन इन बाढ़ों में डूब जाता है: ऐसे पानी में जहाँ सुख के साँप छिपे हैं, जहाँ छुपे हुए दुख के मेंढक बैठे हैं, और जो उसके अपने मोह से बने अंधे कुएँ हैं।

5.66.27

नानानुरञ्जनास्पृष्टा तृष्णा तरलपेलवा। चैत्यमग्रपताकेव दूरं समधिरोहति॥ २७॥

nānānurañjanāspṛṣṭā tṛṣṇā taralapelavā | caitayamagrpatākeva dūraṃ samadhirohati || 27 ||

Craving is restless and frail. Untouched by any single attachment that colours it, it climbs high and far, like a flag flying at the top of a temple.

तृष्णा (लालसा) चंचल और कमज़ोर है। किसी एक चाहत के रंग में न रँगी हुई, वह ऊँची और दूर तक चढ़ जाती है, जैसे मंदिर की चोटी पर लहराता झंडा।

5.66.28

अस्य संसारतन्त्रस्य बृहत्कालविलास्पदः । जीविताशामयं तन्तुमन्तकाखुर्निकृन्तति ॥ २८ ॥

asya saṃsāratantrasya bṛhatkālavilāspadaḥ | jīvitāśāmayam tantumanatkākhurnikṛntati || 28 ||

This world is a great web, the stage where time plays out its grand game. Its thread is nothing but the hope, I will go on living, and the mouse called Death is gnawing through that very thread.

यह संसार एक बड़ा जाल है, वह मंच जहाँ समय अपना बड़ा खेल खेलता है। इसका धागा बस यही उम्मीद है कि मैं जीता रहूँगा, और मृत्यु नाम का चूहा उसी धागे को कुतर रहा है।

5.66.29

यौवनोत्कटकल्लोला वहल्लोलासिफेनिला । परावर्तमहावर्ता याति जीवितदुर्नदी ॥ २९ ॥

yauvanotkaṭakallolā vahallolāsiphenilā | parāvartamahāvartā yāti jīvitadurnadī || 29 ||

Life is a wild river. Its waves are fierce with youth, restless, their foam flashing like swords, and full of great whirlpools that spin things back and drag them under. And on it flows.

जीवन एक भयंकर नदी है। इसकी लहरें जवानी से उफनती हैं, बेचैन हैं, इनका झाग तलवारों की तरह चमकता है, और इसमें बड़े-बड़े भँवर हैं जो चीज़ों को घुमाकर नीचे खींच लेते हैं। और यह नदी बहती ही जाती है।

5.66.30

कलाकुलजगत्कार्यकल्लोलाकुलसंकुला । क्रियासरिदपर्यन्ता वहत्याकुलकोटरा ॥ ३० ॥

kalākulajagatkāryakallolākulasankulā | kriyāsaridaparyantā vahatyākulakoṭarā || 30 ||

This river never ends. Its waves are the busy affairs of the whole world, all crowded and tangled together. It is the river of action, without end, and it flows on with a churning, turbulent bed.

यह नदी कभी खत्म नहीं होती। इसकी लहरें पूरी दुनिया के व्यस्त कामकाज हैं, जो आपस में उलझी और भीड़भाड़ में हैं। यह कर्म की नदी है, जिसका कोई अंत नहीं, और यह उथल-पुथल भरे तल के साथ बहती जाती है।

5.66.31

अनन्ता बन्धुजनतानद्यो गम्भीरकोटरे । अजस्रं निपतन्त्येता विततते कालसागरे ॥ ३१ ॥

anantā bandhujanatānadyo gambhīrakoṭare | ajasraṃ nipatantyetā vitate kālasāgare || 31 ||

Endless rivers, crowds of family and kin, fall without stopping into the deep hollow of the vast ocean of time.

रिश्तेदारों और अपनों की अनगिनत भीड़ें, मानो अनगिनत नदियाँ हों, बिना रुके काल के विशाल सागर की गहराई में गिरती जाती हैं।

5.66.32

देहरत्नशलाकेयं नाशपङ्कार्णवोदरे । न ज्ञायते क्व मग्नेति तात जन्मनि जन्मनि ॥ ३२ ॥

deharatnaśalākeyaṃ nāśapaṅkārṇavodare | na jñāyate kva magneti tāta janmani janmani || 32 ||

This body, delicate as a jewelled pin, sinks into the muddy depths of the ocean of ruin, and no one can tell, dear one, where it has gone, birth after birth.

यह शरीर एक नाज़ुक रत्न-जड़ित सलाई जैसा है, जो विनाश के सागर की कीचड़ भरी गहराई में डूब जाता है, और हे प्रिय, जन्म-जन्म में यह पता ही नहीं चलता कि यह कहाँ डूब गया।

5.66.33

चिन्ताचक्रे चिरं बद्धं कुक्रियाचारचञ्चुरम्। चेतो भ्रमति सामुद्रे गर्तावर्ते तृणं यथा ॥ ३३ ॥

cintācakre ciraṃ baddhaṃ kukriyācāracañcuram | ceto bhramati sāmudre gartāvarte tṛṇaṃ yathā || 33 ||

Bound for a long time in the wheel of worry, restless with wrong deeds, the mind whirls about like a piece of straw in a deep whirlpool of the sea.

चिंता के चक्र में लंबे समय से बँधा हुआ, गलत कामों से बेचैन, मन समुद्र के गहरे भँवर में एक तिनके की तरह घूमता रहता है।

5.66.34

उह्यमानमनन्तेषु चेतः कार्यमहोर्मिषु। क्षणमेति न विश्रान्तिं चिन्ताताण्डवितांशयम् ॥ ३४ ॥

uhyamānamananteṣu cetaḥ kāryamahormiṣu | kṣaṇameti na viśrāntiṃ cintātāṇḍavitāśayam || 34 ||

Swept along by the endless great waves of one task after another, the mind never rests, not even for a moment, its heart set dancing wildly by worry.

अनगिनत बड़े कामों की लहरों में बहता हुआ, मन एक पल भी आराम नहीं पाता, चिंता उसके भीतर को एक जंगली नाच की तरह उछालती रहती है।

5.66.35

इदं कृतं करोमीदं करिष्यामीदमित्यलम्। कलनाजालवलिता मूर्च्छिता मतिपक्षिणी ॥ ३५ ॥

idaṃ kṛtaṃ karomīdaṃ kariṣyāmīdamityalam | kalanājālavalitā mūrcchitā matipakṣiṇī || 35 ||

This I have done, this I am doing, this I will do, enough of it! Caught in the net of such endless reckoning, the bird that is the mind grows faint and dazed.

यह मैंने किया, यह मैं कर रहा हूँ, यह मैं करूँगा, बस, बहुत हुआ! ऐसी गिनतियों के जाल में उलझी हुई, बुद्धि रूपी चिड़िया मूर्छित हो जाती है।

5.66.36

अयं सुहृदयं शत्रुरिति द्वन्द्वमहाद्विपः। विनिकृन्तति मर्माणि यथा नीलोत्पलानि मे ॥ ३६ ॥

ayaṃ suhṛdayaṃ śatruh iti dvandvamahādvipaḥ | vinikṛntati marmāṇi yathā nīlotpalāni me || 36 ||

Thinking, this one is a friend, that one is an enemy, this great elephant made of opposites tramples through my most tender places, the way an elephant crushes blue lotuses.

यह मित्र है, यह शत्रु है, ऐसा सोचकर, द्वंद्व का यह विशाल हाथी मेरे कोमल अंगों को कुचल डालता है, जैसे कोई हाथी नीले कमलों को कुचल देता है।

5.66.37

चिन्तानद्या महावर्ते वीचिकानिचये चिरम्। क्षणादुच्छूनतामेति मनोमीनः क्षणाद्गतिः ॥ ३७ ॥

cintānadyā mahāvarte vīcikānicaye ciram | kṣaṇāducchūnatāmeti manomīnaḥ kṣaṇādgatiḥ || 37 ||

Tossed for a long time in the great whirlpool of the river of worry, among its heaping little waves, the fish that is the mind suddenly swells up, and in another instant it is swept away.

चिंता की नदी के बड़े भँवर में, उसकी छोटी-छोटी लहरों के बीच लंबे समय तक फँसी हुई, मन रूपी मछली अचानक फूल जाती है, और अगले ही पल बह जाती है।

5.66.38

अनात्मीयानि दुःखानि बहून्येवंविधान्ययम्। आत्मबुद्ध्या विचिन्वानो जनो गच्छति दीनताम्॥ ३८॥

anātmīyāni duḥkhāni bahūnyevaṃvidhānyayam | ātmabuddhyā vicinvāno jano gacchati dīnatām || 38 ||

This person gathers up many sorrows that were never truly his own, treating them as mine, and so falls into misery.

यह व्यक्ति ऐसे कई दुखों को, जो असल में उसके अपने नहीं हैं, यह मेरा है समझकर बटोर लेता है, और इस तरह दीन-हीन हो जाता है।

5.66.39

बहुविधसुखदुःखमध्यपाती विततजरामरणप्रवातभग्नः। जगदुदरगिरौ लुठञ्जनोऽयं गतरसपर्णवदेति जर्जरत्वम्॥ ३९॥

bahuvidhasukhaduḥkhamadhyapātī vitatajarāmaraṇapravātabhagnaḥ | jagadudaragirau luṭhañjano'yaṃ gatarasaparṇavadeti jarjaratvam || 39 ||

Falling amid pleasures and pains of every kind, broken by the constant gale of old age and death, this person tumbles about on the mountain in the belly of the world, and withers away like a leaf that has lost all its sap.

तरह-तरह के सुख-दुख के बीच गिरते हुए, बुढ़ापे और मृत्यु की लगातार आँधी से टूटे हुए, यह व्यक्ति संसार के पेट रूपी पहाड़ पर लुढ़कता रहता है, और उस पत्ते की तरह जर्जर हो जाता है जिसका सारा रस सूख चुका हो।

Chapter 67

5.67.1

एवं तौ कुशलप्रश्नं कृतवन्तौ परस्परंकालेनासाद्य विमलं ज्ञानं मोक्षं ततो गतौ ॥ १ ॥

evaṃ tau kuśalapraśnaṃ kṛtavantau parasparamkālenāsādya vimalaṃ jñānaṃ mokṣaṃ tato gatau || 1 ||

This is how the two of them asked after each other's well-being. In time, having reached pure knowledge, they then went on to liberation.

इस तरह उन दोनों ने एक-दूसरे का हाल-चाल पूछा। समय आने पर, निर्मल ज्ञान पाकर, वे फिर मुक्ति को प्राप्त हुए।

5.67.2

ततो वच्मि महाबाहो यथा ज्ञानेतरा गतिःनास्ति संसारतरणे पाशबन्धस्य चेतसः ॥ २ ॥

tato vacmi mahābāho yathā jñānetarā gatiḥnāsti saṃsārataraṇe pāśabandhasya cetasaḥ || 2 ||

Now I tell you this, mighty-armed one: for a mind still tied by its bonds, there is no way to cross this world of birth and death except through knowledge.

अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ, हे महाबाहु: जिस मन में अभी बंधन बंधे हैं, उसके लिए ज्ञान के सिवा संसार को पार करने का और कोई रास्ता नहीं है।

5.67.3

इदं भव्यमतेर्दुःखमनन्तमपि पेलवम्कुखगस्यातरोऽम्भोधिः सपरिर्गोष्पदायते ॥ ३ ॥

idaṃ bhavyamaterduḥkhamanantamapi pelavamkukhagasyā'taro'mbhodhiḥ sarpārergoṣpadāyate || 3 ||

For someone of noble understanding, this suffering, endless as it is, becomes slight - the way an uncrossable ocean turns into a mere cow's hoof-print for the bird that is the enemy of snakes.

अच्छी समझ वाले के लिए यह अनंत दुःख भी हल्का पड़ जाता है, जैसे साँपों के शत्रु उस पक्षी के लिए पार न होने वाला समुद्र भी गाय के खुर के निशान जितना छोटा हो जाता है।

5.67.4

देहातीता महात्मानःचिन्मात्रस्वात्मनि स्थिताःदूराद्देहं समीक्षन्ते प्रेक्षको जनतामिव ॥ ४ ॥

dehātītā mahātmānaścinmātrasvātmani sthitāḥdūrāddehaṃ samīkṣante prekṣako janatāmiva || 4 ||

Great souls who have gone beyond the body and stand in their own self, which is pure awareness, watch the body from a distance, the way a spectator watches a crowd.

जो महान आत्माएँ शरीर से परे जा चुकी हैं और अपने उस स्वरूप में स्थित हैं जो केवल शुद्ध चेतना है, वे शरीर को दूर से देखती हैं, जैसे कोई दर्शक भीड़ को देखता है।

5.67.5

देहे दुःखातिसंक्षुब्धे का नः क्षतिरुपस्थितारथे विधुरिते भग्ने सारथेः केव खण्डना ॥ ५ ॥

dehe duḥkhātisaṃkṣubdhe kā naḥ kṣatirupasthitārathe vidhurite bhagne sāratheḥ keva khaṇḍanā || 5 ||

When the body is badly shaken by suffering, what do we lose? When a chariot breaks apart and comes to grief, what harm comes to its driver?

जब शरीर दुःख से बुरी तरह हिल जाता है, तो हमारा क्या बिगड़ता है? जब रथ टूट जाता है और बर्बाद हो जाता है, तो उसके सारथी का क्या बिगड़ता है?

5.67.6

मनसि क्षुब्धतां याते चित्त्वस्याङ्ग किमागतम्। तरङ्गजलसंताने वैपरीत्यं किमम्बुधेः ॥ ६ ॥

manasi kṣubdhatāṃ yāte cittvasyaāṅga kimāgatam | taraṅgajalasaṃtāne vaiparītyaṃ kimambudheḥ || 6 ||

When the mind grows agitated, what happens to your true awareness, friend? When one wave after another rises on the water, does anything go wrong for the ocean?

जब मन विचलित हो जाता है, तो हे मित्र, तुम्हारी चेतना का क्या बिगड़ जाता है? जब पानी में एक के बाद एक लहर उठती रहती है, तो समुद्र का क्या बिगड़ता है?

5.67.7

केऽभवन्पयसां हंसाः पयसामुपलाश्च के। काः शिलाः किल दारूणां के भोगाः परमात्मनः ॥ ७ ॥

ke'bhavanpayasāṃ haṃsāḥ payasāmupalāśca ke | kāḥ śilāḥ kila dārūṇāṃ ke bhogāḥ paramātmanaḥ || 7 ||

What real bond do swans have with water? What bond do stones have with water? What bond, really, do rocks have with logs of wood? What bond do experiences have with the Supreme Self?

हंसों का पानी से सच में क्या नाता है? पत्थरों का पानी से क्या नाता है? चट्टानों का लकड़ी के लट्ठों से भला क्या नाता है? अनुभवों का परमात्मा से क्या नाता है?

5.67.8

संबन्धः क इव श्रीमन् शैलापरसमुद्रयोः। अन्तरे गिरिसंबाधे कश्च चित्तत्त्वबन्धयोः ॥ ८ ॥

saṃbandhaḥ ka iva śrīman śailāparasamudrayoḥ | antare girisaṃbādhe kaśca cittatattvabandhayoḥ || 8 ||

Glorious one, what real bond is there between a mountain and the ocean beyond it? And what bond is there between true awareness and bondage, closed in as they seem by a mountain gorge?

हे श्रीमान, पर्वत और उससे परे के समुद्र में सच में क्या संबंध है? और पर्वत की तंग घाटी से घिरे होने पर भी, सच्ची चेतना और बंधन में क्या संबंध है?

5.67.9

अप्युत्सङ्गोह्यमानानि पद्मानि सरिदम्भसाम्। कानि नाम भवन्तीह शरीराणि तथात्मनः ॥ ९ ॥

apyutsango hyamānāni padmāni saridambhasām | kāni nāma bhavantīha śarīrāṇi tathātmanaḥ || 9 ||

Even lotuses are carried along in the lap of a river's waters - in just the same way, what, really, are bodies here to the Self?

जैसे कमल नदी के जल की गोद में बहते चले जाते हैं, ठीक उसी तरह यहाँ शरीरों का आत्मा से भला क्या नाता है?

5.67.10

संघट्टात्काष्ठपयसोर्यथोत्तुङ्गाः कणादयः। देहात्मनोः समायोगात्तथैताश्चित्तवृत्तयः ॥ १० ॥

saṃghaṭṭātkāṣṭhapayasoryathottuṅgāḥ kaṇādayaḥ | dehātmanoḥ samāyogāttathaitāścittavṛttayaḥ || 10 ||

Just as tall sprays of foam rise up when wood strikes against water, so these movements of the mind arise from the joining of body and Self.

जैसे लकड़ी के पानी से टकराने पर ऊँची फुहारें उठती हैं, वैसे ही शरीर और आत्मा के मिलने से मन की ये हलचलें उठती हैं।

5.67.11

संबन्धाद्दारुपयसां प्रतिबिम्बानि दारुणः । यथा पयसि लक्ष्यन्ते शरीराणि तथात्मनि ॥ ११ ॥

saṃbandhāddārupayasāṃ pratibimbāni dāruṇaḥ | yathā payasi lakṣyante śarīrāṇi tathātmani || 11 ||

Just as, through the touch of wood and water, the wood's reflection is seen in the water, so bodies are seen in the Self.

जैसे लकड़ी और पानी के मिलने से लकड़ी की परछाईं पानी में दिखती है, वैसे ही शरीर आत्मा में दिखते हैं।

5.67.12

यथा दर्पणवीच्यादौ प्रतिबिम्बानि वस्तुतः । नासत्यानि च सत्यानि शरीराणि तथात्मनः ॥ १२ ॥

yathā darpaṇavīcyādau pratibimbāni vastutaḥ | nāsatyāni ca satyāni śarīrāṇi tathātmanaḥ || 12 ||

Just as reflections in a mirror or in a moving wave are, in truth, neither wholly false nor wholly real, so are the bodies that belong to the Self.

जैसे दर्पण में या हिलती लहर में दिखने वाले प्रतिबिंब न पूरी तरह झूठे हैं और न पूरी तरह सच्चे, वैसे ही आत्मा के शरीर भी हैं।

5.67.13

दारुवार्युपलास्फोटे दुःखिता न यथा क्वचित् । संयुक्तेषु वियुक्तेषु न तथा पञ्चसु क्षतिः ॥ १३ ॥

dāruvāryupalāsphoṭe duḥkhitā na yathā kvacit | saṃyukteṣu viyukteṣu na tathā pañcasu kṣatiḥ || 13 ||

Just as water is never hurt in the least when wood or stone strikes against it, so there is no harm done, whether the five elements come together or come apart.

जैसे लकड़ी या पत्थर के टकराने से पानी को कहीं भी कोई चोट नहीं पहुँचती, वैसे ही पाँचों तत्वों के मिलने या बिछड़ने से भी कोई हानि नहीं होती।

5.67.14

दारुसंश्लेषितात्तोयात्कम्पशब्दादयो यथा । प्रजायन्ते तथैवास्माद्देहाच्चित्परिबोधितात् ॥ १४ ॥

dārusanśleṣitāttoyātkampśabdādayo yathā | prajāyante tathaivāsmāddehāccitparibodhitāt || 14 ||

Just as tremors and sounds and the like arise from water when wood touches it, so these very things arise from this body once consciousness has woken it.

जैसे लकड़ी के पानी से जुड़ने पर हलचल, आवाज़ आदि पैदा होते हैं, वैसे ही ये चीज़ें इस शरीर से भी पैदा होती हैं जब चेतना इसे जगा देती है।

5.67.15

न शुद्धजडयोरेताः संविदश्चिच्छरीरयोः । एता ह्यज्ञानमात्रस्य तस्मिन्नष्टे चिदेव नः ॥ १५ ॥

na śuddhajaḍayoretāḥ saṃvidaścicccharīrayoḥ | etā hyajñānamātrasya tasminnaṣṭe cideva naḥ || 15 ||

These experiences do not belong to pure consciousness and inert matter taken as themselves; they belong only to ignorance. Once that ignorance is destroyed, we are consciousness alone.

ये अनुभव न तो शुद्ध चेतना के हैं और न शुद्ध जड़ शरीर के; ये केवल अज्ञान के हैं। जब वह अज्ञान मिट जाता है, तो हम केवल चेतना ही रह जाते हैं।

5.67.16

यथा न कस्यचिद्वारिदारुश्लेषेऽनुभूतयः । तथा न कस्यचिद्देहदेहिसङ्गेऽनुभूतयः ॥ १६ ॥

yathā na kasyacidvāridāruśleṣe'nubhūtayaḥ | tathā na kasyaciddehadehisangē'nubhūtayaḥ || 16 ||

Just as, when water and wood touch, no one there truly feels anything, so, when the body and the one who lives in it come together, no one there truly feels anything.

जैसे पानी और लकड़ी के मिलने पर वहाँ किसी को सच में कुछ महसूस नहीं होता, वैसे ही शरीर और उसमें रहने वाले के मिलने पर भी वहाँ किसी को सच में कुछ महसूस नहीं होता।

5.67.17

अज्ञस्यायं यथा दृष्टः संसारः सत्यतां गतः । न ज्ञस्यायं यथाभूतः संसारः सत्यतां गतः ॥ १७ ॥

ajñasyāyaṃ yathā dṛṣṭaḥ saṃsāraḥ satyatāṃ gataḥ | na jñasyāyaṃ yathābhūtaḥ saṃsāraḥ satyatāṃ gataḥ || 17 ||

This world is as real to the ignorant person as it looks to him. But to the one who knows, this world, however it may look, does not become real.

यह संसार अज्ञानी को जैसा दिखता है, उसे उतना ही सच लगता है। लेकिन जो जानता है, उसके लिए यह संसार, चाहे जैसा भी दिखे, सच नहीं बनता।

5.67.18

अन्तःसङ्गविहीनास्तु यथा स्नेहा दृषज्जले । तथासक्तमनोवृत्तौ बाह्यभोगानुभूतयः ॥ १८ ॥

antaḥsaṅgavihīnāstu yathā snehaḥ dṛṣajjale | tathāsaktamanovṛttau bāhyabhogānubhūtayaḥ || 18 ||

Just as drops of oil on a stone in water are not truly joined to it, so, in a mind caught up in attachment, the experience of outer pleasures is not truly joined to it.

जैसे पानी में पड़े पत्थर पर तेल की बूँदें उससे सच में नहीं जुड़तीं, वैसे ही आसक्त मन में बाहरी सुखों का अनुभव भी उससे सच में नहीं जुड़ता।

5.67.19

अन्तःसङ्गेन रहितो यद्वत्सलिलकाष्ठयोः । संबन्धस्तद्वदेवान्तरसङ्गो देहदेहिनोः ॥ १९ ॥

antaḥsaṅgena rahito yadvatsalilakāṣṭhayoḥ | sambandhas tadvadevāntarasaṅgo dehadehinoḥ || 19 ||

Just as the bond between water and wood carries no inner attachment, the inner bond between the body and the one who lives in it is exactly the same.

जैसे पानी और लकड़ी का संबंध भीतर से बिना किसी लगाव के होता है, वैसे ही शरीर और उसमें रहने वाले का भीतरी संबंध भी बिल्कुल वैसा ही, बिना लगाव के होता है।

5.67.20

अन्तःसङ्गेन रहितः संबन्धो जलकाष्ठयोः । स देहदेहिनोश्चैवं प्रतिबिम्बाम्भसोस्तथा ॥ २० ॥

antaḥsaṅgena rahitaḥ sambandho jalakāṣṭhayoḥ | sa dehadehinoścaivaṃ pratibimbāmbhasostathā || 20 ||

The bond between water and wood carries no inner attachment; so it is between the body and the one who lives in it, and so it is, too, between a reflection and the water holding it.

पानी और लकड़ी का संबंध बिना किसी भीतरी लगाव के होता है; ऐसा ही संबंध शरीर और उसमें रहने वाले का है, और ऐसा ही संबंध प्रतिबिंब और उसे धारण करने वाले पानी का भी है।

5.67.21

स्थिता सर्वत्र संवित्तिः शुद्धा संवेद्यवर्जिता । द्वित्वोपलाञ्छिता त्वन्या दुःसंवित्तिर्न विद्यते ॥ २१ ॥

sthitā sarvatra saṃvittiḥ śuddhā saṃvedyavarjitā | dvitvopalāñchitā tvanyā duḥsaṃvittirna vidyate || 21 ||

Pure awareness, with nothing separate for it to know, stays the same everywhere. There is no other, flawed kind of awareness marked by twoness - it simply does not exist.

शुद्ध चेतना, जिसके लिए जानने को कोई अलग चीज़ नहीं है, हर जगह एक-सी बनी रहती है। दो-पन से चिह्नित कोई और दोषपूर्ण चेतना नहीं है, वह है ही नहीं।

5.67.22

अदुःखमेति दुःखित्वमन्तःसंवेदना स्फुटम् । स्फारो भवति वेतालो वेतालत्वेन भावितः ॥ २२ ॥

aduḥkhameti duḥkhitvamantaḥsaṃvedanā sphuṭam | sphāro bhavati vetālo vetālatvena bhāvitaḥ || 22 ||

What is truly free of suffering plainly comes to suffer only through an inner conviction - the way a ghost becomes vivid and powerful once someone keeps believing it to be a ghost.

जो सच में दुःख से मुक्त है, वह केवल भीतरी धारणा के कारण साफ़ तौर पर दुःखी बन जाता है, जैसे कोई भूत, उसे भूत मानकर सोचते रहने से ही जीवंत और ताकतवर बन जाता है।

5.67.23

असंबन्धोऽपि संबन्धो भवत्यन्तर्विनिश्चयात् । स्वप्नाङ्गनासुरतवत्स्थाणुवेतालसङ्गवत् ॥ २३ ॥

asaṃbandho'pi saṃbandho bhavatyantarviniścayāt | svapnāṅganāsuratavatsthāṇuvetālasaṅgavat || 23 ||

Even where there is no real bond, a bond forms because of a conviction formed within - the way a man has union with a woman in a dream, or the way a tree stump is taken for a ghost and treated as one.

जहाँ असल में कोई नाता नहीं होता, वहाँ भी मन के भीतर बनी एक पक्की धारणा से नाता बन जाता है - जैसे सपने में किसी स्त्री के साथ संभोग होता है, या जैसे किसी ठूँठ को भूत मानकर उससे नाता जोड़ लिया जाता है।

5.67.24

असत्प्रायो हि संबन्धो यथा सलिलकाष्ठयोः । तथैव मिथ्यासंबन्धः शरीरपरमात्मनोः ॥ २४ ॥

asatprāyo hi saṃbandho yathā salilakāṣṭhayoḥ | tathaiva mithyāsaṃbandhaḥ śarīraparamātmanoḥ || 24 ||

The bond between water and a piece of wood is almost entirely unreal; in just the same way, the bond between the body and the supreme self is false.

जैसे पानी और लकड़ी के बीच का नाता लगभग पूरी तरह झूठा होता है, वैसे ही शरीर और परमात्मा के बीच का नाता भी झूठा है।

5.67.25

अन्तःसङ्गं विना नाम्बु काष्ठपातैः प्रगृह्यते । आत्माऽङ्गसङ्गरहितो देहदुःखैर्न दह्यते ॥ २५ ॥

antaḥsaṅgaṃ vinā nāmbu kāṣṭhapātaiḥ pragṛhyate | ātmā'ṅgasangharahito dehaduḥkhairna dahyate || 25 ||

Without an inner bond, water is not soaked up by pieces of wood floating in it. In the same way, the self, when free of attachment to the body, is not burned by the body's sufferings.

भीतरी लगाव के बिना, पानी में पड़ी लकड़ी उस पानी को सोख नहीं पाती। वैसे ही, आत्मा जब शरीर से लगाव नहीं रखती, तो शरीर के दुखों से जलती नहीं।

5.67.26

देहभावनयैवात्मा देहदुःखवशे स्थितः। तत्त्यागेन ततो मुक्तो भवतीति विदुर्बुधाः ॥ २६ ॥

dehabhāvanayaivātmā dehaduḥkhavśe sthitaḥ| tattyāgena tato mukto bhavatīti vidurbudhāḥ || 26 ||

It is only because of identifying with the body that the self falls under the power of the body's sufferings. The wise know that by giving up this identification, the self becomes free.

आत्मा शरीर के दुखों के वश में केवल इसलिए आती है क्योंकि वह खुद को शरीर मान बैठती है। ज्ञानी लोग जानते हैं कि इस मान्यता को छोड़ देने से आत्मा मुक्त हो जाती है।

5.67.27

अन्तःसङ्गविहीनत्वाद्दुःखवन्त्यङ्ग नो यथा। पत्राम्बुमलदारूणि श्लिष्टान्यपि परस्परम् ॥ २७ ॥

antaḥsaṅgavihīnatvāddduḥkhavantyaṅga no yathā| patrāmbumaladārūṇi śliṣṭānyapi parasparam || 27 ||

Dear one, because there is no inner bond, things do not suffer one another - just as a leaf, water, dirt and wood, even when pressed together, do not suffer one another.

प्रिय, भीतरी लगाव न होने के कारण चीज़ें एक-दूसरे को दुख नहीं देतीं - जैसे पत्ता, पानी, मिट्टी और लकड़ी आपस में सटे रहने पर भी एक-दूसरे को दुख नहीं देते।

5.67.28

अन्तःसङ्गेन रहिता यान्ति निर्दुःखतां पराम्। श्लिष्टान्यपि तथैवात्मदेहेन्द्रियमनांस्यलम् ॥ २८ ॥

antaḥsaṅgena rahitā yānti nirdduḥkhatāṃ parām| śliṣṭānyapi tathaivātmadehendriyamanāṃsyalam || 28 ||

Being free of inner attachment, these things reach the highest freedom from suffering. In just the same way, the self, the body, the senses and the mind, even though joined together, can certainly reach that same freedom from suffering.

भीतरी लगाव न होने से ये चीज़ें दुख से पूरी तरह मुक्त रहती हैं। ठीक वैसे ही, आत्मा, शरीर, इंद्रियाँ और मन भी, आपस में जुड़े होने पर भी, उसी तरह दुख से पूरी तरह मुक्त हो सकते हैं।

5.67.29

अन्तःसङ्गो हि संसारे सर्वेषां राम देहिनाम्। जरामरणमोहानां तरूणां बीजकारणम् ॥ २९ ॥

antaḥsaṅgo hi saṃsāre sarveṣāṃ rāma dehinām| jarāmaraṇamohānāṃ tarūṇāṃ bījakāraṇam || 29 ||

Rama, inner attachment is, for every embodied being in this world, the seed from which the trees of old age, death and delusion grow.

हे राम, भीतरी लगाव ही इस संसार में हर जीव के लिए वह बीज है, जिससे बुढ़ापे, मृत्यु और मोह के पेड़ उगते हैं।

5.67.30

अन्तःसंसङ्गवाञ्जन्तुर्मग्नः संसारसागरे। अन्तःसंसक्तिमुक्तस्तु तीर्णः संसारसागरात् ॥ ३० ॥

antaḥsaṃsaṅgavāñjanturmagnaḥ saṃsārasāgare| antaḥsaṃsaktimuktastu tīrṇaḥ saṃsārasāgarāt || 30 ||

A creature that has inner attachment is drowned in the ocean of this world. But one who is free of inner attachment has crossed over that ocean of the world.

जिस जीव के भीतर लगाव होता है, वह संसार-सागर में डूबा रहता है। पर जो भीतरी लगाव से मुक्त है, वह उस संसार-सागर को पार कर चुका है।

5.67.31

अन्तःसंसङ्गवच्चित्तं शतशाखमिवोच्यतेअन्तःसंसङ्गरहितं विलीनं चित्तमुच्यते ॥ ३१ ॥

antaḥsaṃsaṅgavaccittaṃ śataśākhamivocyateantaḥsaṃsaṅgarahitaṃ vilīnaṃ cittamucyate || 31 ||

A mind that has inner attachment is said to be like a tree with a hundred branches. A mind free of inner attachment is said to have dissolved away.

जिस मन में भीतरी लगाव होता है, वह सौ शाखाओं वाले पेड़ जैसा कहा जाता है। जो मन भीतरी लगाव से मुक्त है, उसे विलीन हुआ मन कहा जाता है।

5.67.32

भग्नस्फटिकवद्विद्धि मनः सक्तमपावनमभग्नस्फटिकाभासमसक्तं विद्धि मे मनः ॥ ३२ ॥

bhagnasphaṭikavadviddhi manaḥ saktamapāvanamabhagnasphaṭikābhāsamasaktaṃ viddhi me manaḥ || 32 ||

Know that a mind with attachment is impure, like a cracked crystal. Know that my mind, free of attachment, is like an unbroken, clear crystal.

जान लो कि जिस मन में लगाव है, वह टूटे हुए स्फटिक जैसा मैला है। और जान लो कि मेरा मन, जो लगाव से मुक्त है, बिना टूटे साफ़ स्फटिक जैसा है।

5.67.33

असक्तं निर्मलं चित्तं मुक्तं संसार्यपि स्फुटम्सक्तं तु दीर्घतपसा युक्तमप्यतिबन्धवत् ॥ ३३ ॥

asaktaṃ nirmalaṃ cittaṃ muktaṃ saṃsāryapi sphuṭamsaktaṃ tu dīrghatapasā yuktamapyatibandhavat || 33 ||

An unattached mind is pure - even one caught up in worldly life is clearly free, if it has no attachment. But an attached mind, even joined to long years of austerity, is bound as if by a tight knot.

बिना लगाव वाला मन शुद्ध होता है - चाहे वह संसार में उलझा भी हो, अगर उसमें भीतरी लगाव नहीं है, तो वह साफ़-साफ़ मुक्त है। पर लगाव वाला मन, लंबी तपस्या से जुड़ा होने पर भी, ऐसे बँधा रहता है जैसे कसकर बाँध दिया गया हो।

5.67.34

अन्तःसक्तं मनो बद्धं मुक्तं सक्तिविवर्जितमन्तःसंसक्तिरेवैकं कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ ३४ ॥

antaḥsaktaṃ mano baddhaṃ muktaṃ saktivivarjitamantaḥsaṃsaktirevaikaṃ kāraṇaṃ bandhamokṣayoḥ || 34 ||

A mind that clings within is bound; one free of that clinging is liberated. Inner attachment alone is the one cause of both bondage and freedom.

जो मन भीतर से चिपका रहता है, वह बँधा है; जो इस चिपकाव से मुक्त है, वह मुक्त है। भीतरी लगाव ही बंधन और मुक्ति, दोनों का इकलौता कारण है।

5.67.35

अन्तःसक्तं मनो बद्धं मुक्तं सक्तिविवर्जितमन्तःसंसक्तिरेवैकं कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ ३५ ॥

antaḥsaktaṃ mano baddhaṃ muktaṃ saktivivarjitamantaḥsaṃsaktirevaikaṃ kāraṇaṃ bandhamokṣayoḥ || 35 ||

A mind that clings within is bound; one free of that clinging is liberated. Inner attachment alone is the one cause of both bondage and freedom.

जो मन भीतर से चिपका रहता है, वह बँधा है; जो इस चिपकाव से मुक्त है, वह मुक्त है। भीतरी लगाव ही बंधन और मुक्ति, दोनों का इकलौता कारण है।

5.67.36

अन्तःसंसक्तितो जन्तोरकर्तुरपि कर्तृता । सुखदुःखवति स्वप्ने संभ्रमोन्मुखता यथा ॥ ३६ ॥

antaḥsaṃsaktito jantorakarturapi kartṛtā | sukhaduḥkhavati svapne saṃbhramonmukhatā yathā || 36 ||

Because of inner attachment, a creature that is not really an actor still comes to feel that it is acting - just as in a dream full of joy and sorrow, one becomes eagerly caught up as though it were real.

भीतरी लगाव के कारण, जो जीव असल में कुछ नहीं करता, वह भी यही महसूस करता है कि वह कुछ कर रहा है - जैसे सुख-दुख से भरे सपने में इंसान ऐसे उलझ जाता है मानो सब सच हो।

5.67.37

चित्ते कर्तरि कर्तृत्वमदेहस्यापि विद्यते । स्वप्नादाविव विक्षुब्धसुखदुःखदृशोपमम् ॥ ३७ ॥

citte kartari kartṛtvamadehasyāpi vidyate | svapnādāviva vikṣubdhasukhaduḥkhadṛśopamam || 37 ||

When the mind acts as the doer, a sense of doing arises even for the self, though the self has no body - like the troubled feeling of joy and sorrow one has in a dream.

जब मन कर्ता बन जाता है, तो आत्मा में भी करने का एहसास पैदा हो जाता है, हालांकि आत्मा का कोई शरीर नहीं है - जैसे सपने में सुख-दुख का बेचैन एहसास होता है।

5.67.38

अकर्तरि मनस्यन्तरकर्तृत्वं स्फुटं भवेत् । शून्यचित्तो हि पुरुषः कुर्वन्नपि न चेतति ॥ ३८ ॥

akartari manasyantarakartṛtvaṃ sphuṭaṃ bhavet | śūnyacitto hi puruṣaḥ kurvannapi na cetati || 38 ||

Even when the mind is not really the doer, a clear inner sense of doing still arises. A person whose mind is elsewhere does not notice, even while he is acting.

मन असल में कुछ न करे, तब भी भीतर करने का एक साफ़ एहसास पैदा हो जाता है। जिस इंसान का मन कहीं और लगा हो, वह कुछ करते हुए भी उसे महसूस नहीं करता।

5.67.39

चेतसा कृतमाप्नोषि चेतसा न कृतं तु न । न क्वचित्कारणे देहो न च चित्तेन कर्तृता ॥ ३९ ॥

cetasā kṛtamāpnoṣi cetasā na kṛtaṃ tu na | na kvacitkāraṇe deho na ca cittena kartṛtā || 39 ||

You reap what is done by the mind; what is not done by the mind, you do not reap. The body is never the real cause of anything, and the mind too has no real agency.

जो मन से किया जाता है, उसका फल तुम्हें मिलता है; जो मन से नहीं किया जाता, उसका फल नहीं मिलता। शरीर कभी किसी काम का असली कारण नहीं होता, और मन भी असल में कर्ता नहीं है।

5.67.40

असंसक्तमकर्तेव कुर्वदेव मनो विदुः । न कर्मफलभोक्तृत्वमसक्तं प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

asaṃsaktamakarteva kurvadeva mano viduḥ | na karmaphalabhoktṛtvam asaktaṃ pratipadyate || 40 ||

The wise know that an unattached mind, even while acting, is as if it were doing nothing at all. Being unattached, it does not come to experience the fruits of action.

ज्ञानी जानते हैं कि लगाव-रहित मन, काम करते हुए भी, मानो कुछ कर ही नहीं रहा। लगाव न होने के कारण वह अपने कर्मों का फल भी नहीं भोगता।

5.67.41

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यामसंसक्तो न लिप्यते। दूरस्थकान्तासंलीनमनाः कार्यैरिवाग्रगैः ॥ ४१ ॥

brahmahatyāśvamedhābhyāmasaṃsakto na lipyate | dūrasthakāntāsaṃlīnamanāḥ kāryairivāgragaiḥ || 41 ||

One who is unattached is stained neither by killing a Brahmin nor by performing a horse-sacrifice - just as a man whose mind is absorbed in a woman far away is untouched by the tasks right in front of him.

लगाव-रहित इंसान न तो किसी ब्राह्मण की हत्या से कलंकित होता है, न अश्वमेध यज्ञ से - जैसे जिस आदमी का मन दूर बैठी किसी प्रिय स्त्री में डूबा हो, वह अपने सामने के कामों से अछूता रहता है।

5.67.42

अन्तःसंसक्तिनिर्मुक्तो जीवो मधुरवृत्तिमान्। बहिःकुर्वन्नकुर्वन्वा कर्ता भोक्ता न हि क्वचित् ॥ ४२ ॥

antaḥsaṃsaktinirmukto jīvo madhuravṛttimān | bahiḥkurvannakurvanvā kartā bhoktā na hi kvacit || 42 ||

A soul that is free of inner attachment, gentle in its ways, is never truly a doer or an experiencer of results, whether outwardly it acts or does not act.

जो जीव भीतरी लगाव से मुक्त और स्वभाव से कोमल है, वह न तो कभी सच में कर्ता है, न भोक्ता - चाहे वह बाहर से कुछ करे या न करे।

5.67.43

अन्तःसंसक्तिमुक्तं यन्मनः स्यात्तदकर्तृकम्। तद्विमुक्तं प्रशान्तं तत्तद्युक्तं तदलेपकम् ॥ ४३ ॥

antaḥsaṃsaktimuktaṃ yanmanaḥ syāttadakartṛkam | tadvimuktaṃ praśāntaṃ tattadyuktaṃ tadalepakam || 43 ||

A mind that is free of inner attachment has no real agency. It is liberated, it is at peace, it is truly joined with what is real, and it stays untouched by any stain.

जो मन भीतरी लगाव से मुक्त है, वह असल में कर्ता नहीं है। वह मुक्त है, शांत है, सच से जुड़ा है, और किसी दाग से अछूता रहता है।

5.67.44

तस्मात्सर्वपदार्थानां श्लिष्टानां निश्चितं बहिः। सर्वदुःखकरीं क्रूरामन्तःसक्तिं विवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

tasmātsarvapadārthānāṃ śliṣṭānāṃ niścitaṃ bahiḥ | sarvaduḥkhakarīṃ krūrāmantaḥsaktiṃ vivarjayet || 44 ||

Therefore, even though all things are certainly joined together on the outside, one should give up inner attachment - it is cruel, and it brings about every kind of suffering.

इसलिए, भले ही सारी चीज़ें बाहर से एक-दूसरे से जुड़ी हों, भीतरी लगाव को छोड़ देना चाहिए - वह क्रूर है और हर तरह के दुख की जड़ है।

5.67.45

विरहितमलमन्तःसङ्गदोषेण चेतः शममुपगतमाद्यं व्योमवन्निर्मलाभम्। सकलमलविमुक्तेनात्मनैकत्वमेति स्थिरमणिनिभमम्भोवारिणी वारिनीले ॥ ४५ ॥

virahitamalamantaḥsaṅgadoṣeṇa cetaḥ śamamupagatamādyaṃ vyomavannirmalābham | sakalamalavimuktenātmanaikatvameti sthiramaṇinibhamambhovāriṇī vārinīle || 45 ||

The mind, free from the fault of inner attachment, having reached the peace that is its own true, original nature, clear like the sky and without any stain, becomes one with the self that is free of every impurity - like a steady jewel resting still in deep blue water.

जो मन भीतरी लगाव के दोष से मुक्त हो चुका है, और अपनी मूल शांति को पा चुका है - आकाश जैसा साफ़ और बेदाग़ - वह हर मैल से मुक्त आत्मा के साथ एक हो जाता है, जैसे कोई स्थिर मणि गहरे नीले पानी में शांत पड़ी हो।

Chapter 68

5.68.1

श्रीराम उवाच । कीदृशो भगवन्सङ्गः कथं बन्धाय वा नृणाम् । कश्च मोक्षाय कथितः कथं वैष चिकित्स्यते ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | kīdṛśo bhagavansaṅgaḥ kathaṃ bandhāya vā nṛṇām | kaśca mokṣāya kathitaḥ kathaṃ vaiṣa cikitsyate || 1 ||

Sri Rama said: Lord, what kind of attachment binds men, and how does it bind them? And which attachment, you say, leads to freedom, and how is this attachment cured?

श्री राम ने कहा: हे भगवन, वह कैसा लगाव है जो इंसानों को बांधता है, और वह कैसे बांधता है? और कौन सा लगाव मुक्ति के लिए बताया गया है, और इसका इलाज कैसे किया जाता है?

5.68.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । देहदेहिविभागैकपरित्यागेन भावनात् । देहमात्रे तु विश्वासः सङ्गो बन्धार्ह उच्यते ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dehaddehivibhāgaikaparityāgena bhāvanāt | dehamātre tu viśvāsaḥ saṅgo bandhārha ucyate || 2 ||

Sri Vasishtha said: When a person's understanding drops the distinction between the body and the self completely, and he comes to trust that he is nothing but the body, that trust placed in the body alone is called the attachment that binds.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जब इंसान की समझ शरीर और आत्मा के फर्क को पूरी तरह भुला देती है, और वह यह मान बैठता है कि वह सिर्फ शरीर ही है, तो शरीर पर टिका यही भरोसा वह लगाव है जो बांधता है।

5.68.3

अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सपर्यन्तत्वनिश्चये । यत्सुखार्थित्वमन्तः स सङ्गो बन्धार्ह उच्यते ॥ ३ ॥

anantasyātmatattvasya saparyantatvanniścaye | yatsukhārthitvamantaḥ sa saṅgo bandhārha ucyate || 3 ||

When a person becomes convinced that the boundless nature of the self has a limit, the inner craving for pleasure that grows out of this conviction is the attachment that binds.

जब इंसान यह मान लेता है कि आत्मा का असीम स्वरूप सीमित है, तो इस मान्यता से भीतर उठने वाली सुख की चाह ही वह लगाव है जो बांधता है।

5.68.4

सर्वमात्मेदमखिलं किं वाञ्छामि त्यजामि किम् । इत्यसङ्गस्थितिं विद्धि जीवन्मुक्ततनुस्थितिम् ॥ ४ ॥

sarvamātmedamakhilaṃ kiṃ vāñchāmi tyajāmi kim | ityasaṅgasthitiṃ viddhi jīvanmuktatanusthitim || 4 ||

All this, this whole world, is the self, so what should I want, what should I give up. Know this to be the state free of attachment, the state of one who is liberated while still living in the body.

यह सब कुछ, यह पूरा संसार, आत्मा ही है, तो मैं क्या चाहूं, क्या छोड़ूं। इसी को लगाव से मुक्त स्थिति जानो, यही जीते जी मुक्त हो चुके इंसान के शरीर की स्थिति है।

5.68.5

नाहमस्मि न चान्योऽस्ति मा भवन्तु भवन्तु वा । सुखान्यसक्त इत्यन्तः कथ्यते मुक्तिभाङ्नरः ॥ ५ ॥

nāhamasmi na cānyo'sti mā bhavantu bhavantu vā | sukhānyasakta ityantaḥ kathyate muktibhāṅnaraḥ || 5 ||

I do not exist, and there is no one else, let things be or let them not be. The man who feels this within himself, and stays unattached to pleasures, is said to share in freedom.

मैं हूं ही नहीं, और कोई दूसरा भी नहीं है, चीज़ें रहें या न रहें। जो इंसान भीतर से ऐसा अनुभव करता है और सुखों से अनासक्त रहता है, वही मुक्ति का भागी कहलाता है।

5.68.6

नाभिनन्दति नैष्कर्म्यं न कर्मस्वनुषज्जते । सुसमो यः फलत्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ६ ॥

nābhinandati naiṣkarmyaṃ na karmasvanuṣajjate | susamo yaḥ phalatyāgī so'saṃsakta iti smṛtaḥ || 6 ||

He who does not delight in doing nothing, and does not cling to action either, who stays even minded and gives up the fruit of his actions, he is called unattached.

जो न तो कुछ न करने में खुश होता है और न ही कर्मों से चिपकता है, जो सम रहता है और अपने कर्मों के फल को त्याग देता है, वही अनासक्त कहलाता है।

5.68.7

आत्मतत्त्वैकनिष्ठस्य हर्षामर्षवशं मनः । यस्य नायात्यसक्तोऽसौ जीवन्मुक्तः स कथ्यते ॥ ७ ॥

ātmatattvaikanṣṭhasya harṣāmarṣavaśaṃ manaḥ | yasya nāyātyasakto'sau jīvanmuktaḥ sa kathyate || 7 ||

He who is devoted only to the truth of the self, and whose mind never falls under the sway of joy or anger, that unattached man is called one who is free while still alive.

जो सिर्फ आत्मा के सत्य में लीन रहता है, और जिसका मन कभी खुशी या गुस्से के वश में नहीं आता, वह अनासक्त इंसान ही जीते जी मुक्त कहलाता है।

5.68.8

सर्वकर्मफलादीनां मनसैव न कर्मणा । निपुणं यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ८ ॥

sarvakarmaphalādīnāṃ manasaiva na karmaṇā | nipuṇaṃ yaḥ parityāgī so'saṃsakta iti smṛtaḥ || 8 ||

He who skilfully gives up all the fruits of action and everything like it, in his mind and not only in outward deed, he is called unattached.

जो सारे कर्मों के फल वगैरह को कुशलता से त्याग देता है, मन से, न कि सिर्फ बाहरी काम से, वही अनासक्त कहलाता है।

5.68.9

असंसङ्गेन सकलाश्चेष्टा नाना विजृम्भिताः । चिकित्सिता भवन्तीह श्रेयः संपादयन्ति च ॥ ९ ॥

asaṃsaṅgena sakalāśceṣṭā nānā vijṛmbhitāḥ | cikitsitā bhavantīha śreyaḥ saṃpādayanti ca || 9 ||

Through this freedom from attachment, all activities, however many and however varied, are cured here in this world, and they bring about the highest good.

इसी लगाव से मुक्ति के कारण, चाहे कितने भी और कैसे भी काम क्यों न हों, वे इस दुनिया में ठीक हो जाते हैं और सबसे बड़ा भला करते हैं।

5.68.10

संसक्तिवशतः सर्वे वितता दुःखराशयः । प्रयान्ति शतशाखत्वं श्वभ्रकण्टकवृक्षवत् ॥ १० ॥

saṃsaktivasaṭaḥ sarve vitatā duḥkharāśayaḥ | prayānti śataśākhatvaṃ śvabhrakaṇṭakavṛkṣavat || 10 ||

Because of attachment, all the heaps of sorrow spread out and grow a hundred branches, like a thorny tree growing over a pit.

लगाव के कारण दुखों के सारे ढेर फैलकर सैकड़ों शाखाओं वाले हो जाते हैं, जैसे किसी गड्ढे पर उगा हुआ कांटों का पेड़।

5.68.11

रज्जुकृष्टघनघ्राणो यद्गत्या पथि गर्दभः । भारं वहति भीतात्मा तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ ११ ॥

rajjukṛṣṭaghanaghrāṇo yadgatyā pathi gardabhaḥ | bhāraṃ vahati bhītātmā tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 11 ||

A donkey, its nose pulled tight by a rope, walks the road in fear and carries its load, this is what attachment produces.

गधा, जिसकी नाक रस्सी से कसकर बंधी है, डर के मारे रास्ते पर चलकर बोझ ढोता है, यही लगाव का फैलाव है।

5.68.12

शीतवातातपक्लेशमेकदेशनिषण्णया । तरुर्वहति यत्तन्वा तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १२ ॥

śītavātātapakleśamekadeśaniṣaṇṇayā | tarurvahati yattanvā tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 12 ||

The tree, its trunk rooted in one single place, bears the pain of cold, wind and heat, this too is what attachment produces.

पेड़, जो एक ही जगह जड़ जमाए खड़ा रहता है, सर्दी, हवा और धूप की तकलीफ सहता है, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.13

धराविवरनिर्मग्नो यत्कीटः पीडिताङ्गकः । क्षिणोति विकलः कालं तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १३ ॥

dharāvivaranirmagno yatkīṭaḥ pīḍitāṅgakaḥ | kṣiṇoti vikalaḥ kālaṃ tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 13 ||

The worm, sunk in a hole in the ground, its body in pain, wastes away its time in distress, this too is what attachment produces.

कीड़ा, जो धरती के बिल में धंसा हुआ है और जिसका शरीर पीड़ित है, बेबस होकर अपना समय गंवाता है, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.14

क्षुत्क्षामकुक्षिः क्षपयत्यायुर्व्याघातभीरुधीः । पक्षी वृक्षशिखाशायी तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १४ ॥

kṣutkṣāmakukṣiḥ kṣapayatyāyurvyāghātabhīrudhīḥ | pakṣī vṛkṣaśikhāśāyī tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 14 ||

The bird, its belly shrunk with hunger, its mind afraid of attack, sleeping on the top of a tree, wastes its life away, this too is what attachment produces.

पक्षी, जिसका पेट भूख से पिचक गया है और जिसका मन हमले के डर से घबराया रहता है, पेड़ की चोटी पर सोता हुआ अपनी जिंदगी गंवाता है, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.15

क्षुत्क्षामकुक्षिः क्षपयत्यायुर्व्याघातभीरुधीःपक्षी वृक्षशिखाशायी तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १५ ॥

kṣutkṣāmakukṣiḥ kṣapayatyāyurvyāghātabhīrudhīḥpakṣī vṛkṣaśikhāśāyī tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 15 ||

The bird, its belly shrunk with hunger, its mind afraid of attack, sleeping on the top of a tree, wastes its life away, this too is what attachment produces.

पक्षी, जिसका पेट भूख से पिचक गया है और जिसका मन हमले के डर से घबराया रहता है, पेड़ की चोटी पर सोता हुआ अपनी जिंदगी गंवाता है, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.16

कृमिकीटत्वमायान्ति जायमानाः पुनःपुनः । यदिमा जनता जीर्णास्तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १६ ॥

kṛmikīṭatvamāyānti jāyamānāḥ punaḥpunaḥ | yadimā janatā jīrṇāstatsaṃsaktivijṛmbhitam || 16 ||

Being born again and again, these worn out people come to the state of worms and insects, this too is what attachment produces.

बार-बार जन्म लेकर ये थके-हारे लोग कीड़े-मकोड़ों की दशा को पा लेते हैं, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.17

उत्पत्त्योत्पत्त्य लीयन्ते तरङ्गिणि तरङ्गवत् । भूतानि यदनन्तानि तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १७ ॥

utpattyoutpattya līyante taraṅgiṇi taraṅgavat | bhūtāni yadanantāni tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 17 ||

Countless beings arise again and again and dissolve away, like waves in a river, this too is what attachment produces.

अनगिनत प्राणी बार-बार पैदा होते हैं और नदी की लहरों की तरह मिट जाते हैं, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.18

वीरुत्तृणदशां याता म्रियन्ते यत्पुनःपुनः । नरा विगतसंचारास्तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १८ ॥

vīruttṛṇadaśāṃ yātā mriyante yatpunaḥpunaḥ | narā vigatasaṃcārāstatsaṃsaktivijṛmbhitam || 18 ||

Men who have lost the power to move reach the state of plants and grass and die there again and again, this too is what attachment produces.

जिन इंसानों की चलने-फिरने की ताकत खत्म हो जाती है, वे पौधों और घास की दशा को पाकर बार-बार मरते हैं, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.19

रसातलरसायोगात्तृणगुल्मलतादयः । जनयन्ति यदाकारं तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ १९ ॥

rasātalarasāyogāttṛṇagulmalatādayaḥ | janayanti yadākāraṃ tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 19 ||

Grass, shrubs, creepers and the rest take on their shape only by drawing on the sap deep in the ground, this too is what attachment produces.

घास, झाड़ियां, बेलें वगैरह अपना आकार धरती की गहराई के रस से जुड़कर ही बनाती हैं, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.20

स्वानर्थान्तरसंकाशपदार्थशतसंकुला । यत्संसारनदी मत्ता तत्संसक्तिविजृम्भितम् ॥ २० ॥

svānarthāntarasaṃkāśapadārthaśatasaṃkulā | yatsaṃsāranadī matta tatsaṃsaktivijṛmbhitam || 20 ||

The river of worldly life, turbulent and crowded with hundreds of things that look like one's own private troubles, this too is what attachment produces.

संसार रूपी नदी, जो उग्र है और सैकड़ों ऐसी चीज़ों से भरी है जो अपने ही भीतर के दुखों जैसी लगती हैं, यह भी लगाव का फैलाव है।

5.68.21

संसक्तिर्द्विविधा प्रोक्ता वन्द्या वन्ध्या च राघव । वन्ध्या सर्वत्र मूढानां वन्द्या तत्त्वविदां निजा ॥ २१ ॥

saṃsaktirdvivdhā proktā vandyā vandhyā ca rāghava | vandhyā sarvatra mūḍhānāṃ vandyā tattvavidāṃ nijā || 21 ||

Rama, attachment is said to be of two kinds, one worth praising and one that bears no fruit. The fruitless kind belongs everywhere to the foolish, the praiseworthy kind belongs to those who know the truth as their very own.

हे राम, लगाव दो तरह का बताया गया है, एक सराहने लायक और दूसरा निष्फल। निष्फल लगाव हर जगह मूर्खों का होता है, और सराहने लायक लगाव सच को जानने वालों का अपना होता है।

5.68.22

आत्मतत्त्वावबोधेन हीना देहादिवस्तुजा । भूयः संसारसक्तिर्या दृढा वन्ध्येति कथ्यते ॥ २२ ॥

ātmatattvāvabodhena hīnā dehādivastujā | bhūyaḥ saṃsārasaktiryā dṛḍhā vandhyeti kathyate || 22 ||

The attachment to worldly life that is born out of things like the body, without any understanding of the truth of the self, and that binds a person again and again, firmly, is called the fruitless attachment.

जो लगाव शरीर जैसी चीज़ों से पैदा होता है, आत्मा के सत्य को समझे बिना, और जो बार-बार मजबूती से संसार में जकड़े रखता है, उसे निष्फल लगाव कहा जाता है।

5.68.23

आत्मतत्त्वावबोधेन सत्यभूतविवेकजा । वन्द्या हि कथ्यते सक्तिर्भूयः संसारवर्जिता ॥ २३ ॥

ātmatattvāvabodhena satyabhūtavivekajā | vandyā hi kathyate saktirbhūyaḥ saṃsāravarjitā || 23 ||

The attachment that is born from understanding the truth of the self and from telling the real apart from the unreal, and that is free of any further worldly bondage, is indeed called the praiseworthy attachment.

जो लगाव आत्मा के सत्य को समझने और सच को झूठ से अलग पहचानने से पैदा होता है, और जो फिर कभी संसार में नहीं बांधता, वही सराहने लायक लगाव कहलाता है।

5.68.24

शङ्खचक्रगदाहस्तो देवो विविधयेहया । वन्द्यसंसक्तिवशतः परिपाति जगत्त्रयम् ॥ २४ ॥

śaṅkhacakragadāhasto devo vividhayehayā | vandyasaṃsaktivaśataḥ paripāti jagattrayam || 24 ||

The god who holds a conch, a discus and a mace in his hands protects the three worlds through his many acts, by the power of this praiseworthy attachment.

जिसके हाथों में शंख, चक्र और गदा हैं, वह देवता अपने अनेक कामों से, इसी सराहने लायक लगाव के बल पर, तीनों लोकों की रक्षा करता है।

5.68.25

अनारतनिरालम्बं व्योम वर्त्मनि पान्थताम् । वन्द्यसंसक्तिवशतः करोति रविरन्वहम् ॥ २५ ॥

anāratanirālambaṃ vyoma vartmani pānthatām | vandyasaṃsaktivaśataḥ karoti raviranvaham || 25 ||

Day after day, the sun makes his journey like a traveller across the sky, which has no support at all, and this too happens by the power of this praiseworthy attachment.

सूरज हर दिन, इस बिना किसी सहारे वाले आकाश में, एक यात्री की तरह अपना सफर तय करता है, और यह भी इसी सराहने लायक लगाव के बल पर होता है।

5.68.26

महाकल्पसमाधानचिरकल्पितकल्पनम्। वन्द्यसंसक्तिवशतो ब्राह्मं स्फुरति वै वपुः॥ २६॥

mahākalpasamādhānacirakalpitakalpanam | vandyasaṃsaktivaśato brāhmaṃ sphurati vai vapuḥ || 26 ||

By the power of this praiseworthy attachment, the body of Brahma appears, the body whose design, planned long ago, set the great cycle of creation in place.

इसी सराहने लायक लगाव के बल पर ब्रह्मा का वह शरीर प्रकट होता है, जिसकी बहुत पहले बनाई गई योजना ने सृष्टि के बड़े चक्र को व्यवस्थित किया।

5.68.27

लीलया ललनालानलीनं भूतिविभूषितम्। वन्द्यसंसक्तिवशतः शरीरं शाङ्करं स्थितम्॥ २७॥

līlayā lalanālānalīnaṃ bhūtivibhūṣitam | vandyasaṃsaktivaśataḥ śarīraṃ śāṅkaraṃ sthitam || 27 ||

In play he clings to a woman the way an elephant clings to its post, his body smeared with ash - Shankara's body stands like this because of this same clinging to what is worshipped.

जैसे हाथी अपने खूँटे से बँधा रहता है, वैसे ही वे खेल में एक स्त्री से चिपके रहते हैं, और उनका शरीर राख से लिपा है - शंकर का यह शरीर भी पूजी जाने वाली चीज़ से इसी चिपकाव के कारण टिका है।

5.68.28

विज्ञानगतयः सिद्धा लोकपालास्तथेतरे। वन्द्यसंसक्तिवशतस्तिष्ठन्ति जगतोऽङ्गणे॥ २८॥

vijñānagatayaḥ siddhā lokapālāstathaitare | vandyasaṃsaktivaśatastiṣṭhanti jagato'ṅgaṇe || 28 ||

Sages who live in pure knowledge, the perfected ones, the guardians of the world, and others like them all stand in the courtyard of this world because of this same clinging to what is worshipped.

शुद्ध ज्ञान में रहने वाले साधु, सिद्ध पुरुष, संसार के रखवाले, और उन जैसे बाकी लोग - ये सब इस दुनिया के आँगन में पूजी जाने वाली चीज़ से इसी चिपकाव के कारण टिके हैं।

5.68.29

धत्ते शारीरयन्त्रौघमन्या भुवनसंततिः। वन्द्यसंसक्तिवशतो जरामृतिविवर्जितम्॥ २९॥

dhatte śārīrayantraughamanyā bhuvanasantatiḥ | vandyasaṃsaktivaśato jarāmṛtivivarjitam || 29 ||

A different line of beings in the world keeps producing flood after flood of machine-like bodies that never grow old or die - again because of this same clinging to what is worshipped.

संसार के प्राणियों की एक और धारा मशीन जैसे शरीरों की बाढ़ पर बाढ़ बनाती रहती है, जो कभी बूढ़े नहीं होते और कभी मरते नहीं - यह भी उसी पूजी जाने वाली चीज़ से चिपकाव के कारण है।

5.68.30

मनः पतति भोगेषु गृध्रो मांसलवेष्विव। वन्द्यसंसक्तिवशतो व्यर्थया रम्यशङ्कया॥ ३०॥

manaḥ patati bhogeṣu gṛdhro māṃsalaveṣviva | vandyasaṃsaktivaśato vyarthayā ramyaśaṅkayā || 30 ||

The mind falls upon pleasures the way a vulture falls upon scraps of meat - again because of this clinging to what is worshipped, driven by an empty but pleasant fancy.

मन सुख-भोगों पर वैसे ही टूट पड़ता है जैसे गिद्ध मांस के टुकड़ों पर टूट पड़ता है - यह भी उसी पूजी जाने वाली चीज़ से चिपकाव के कारण होता है, एक खोखले मगर सुहावने खयाल के कारण।

5.68.31

संसक्तिवशतो वाति वायुर्भुवनकोटरे । पञ्चभूतानि तिष्ठन्ति वहतीयं जगत्स्थितिः ॥ ३१ ॥

saṃsaktivaśato vāti vāyurbhuvanakoṭare | pañcabhūtāni tiṣṭhanti vahatīyaṃ jagatssthitiḥ || 31 ||

Because of this clinging, the wind blows through the hollow of the world, the five elements hold their place, and this order of the world goes on.

इसी चिपकाव के कारण हवा दुनिया के खोखले में बहती है, पाँचों तत्त्व अपनी जगह बने रहते हैं, और दुनिया का यह चलन चलता रहता है।

5.68.32

दिवि देवा भुवि नराः पाताले भोगिनोऽसुराःब्रह्माण्डोदुम्बरफले स्फुरन्मशकवत्स्थिताः ॥ ३२ ॥

divi devā bhuvi narāḥ pātāle bhogino'surāḥbrahmāṇḍodumbaraphale sphuranmaśakavatsthitāḥ || 32 ||

Gods in the sky, men on earth, and the serpent-demons under the earth all sit like swarming gnats on this universe, a fruit of the udumbara tree.

आकाश में देवता, धरती पर मनुष्य, और धरती के नीचे नाग-दानव - ये सब इस दुनिया पर, जो गूलर के फल जैसी है, भिनभिनाते मच्छरों की तरह बैठे हैं।

5.68.33

जायन्ते च म्रियन्ते च निपतन्त्युत्पतन्ति चभूतानि यदनन्तानि तरङ्गिणि तरङ्गवत् ॥ ३३ ॥

jāyante ca mriyante ca nipatantyutpatanti cabhūtāni yadanantāni taraṅgiṇi taraṅgavat || 33 ||

Beings without end are born and die, fall and rise, like waves in a river.

अनगिनत प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं, गिरते हैं और उठते हैं, जैसे नदी में लहरें उठती-गिरती हैं।

5.68.34

उत्पत्त्योत्पत्त्य लीयन्ते तत्संसक्तिविजृम्भितम्भूतानि विरसं भूयो निर्झराम्बुकणा इव ॥ ३४ ॥

utpattyotpattya līyante tatsaṃsaktivijṛmbhitambhūtāni virasaṃ bhūyo nirjharāmbukaṇā iva || 34 ||

Spread out again and again by this same clinging, beings rise up and dissolve back, again and again, with no purpose, like drops of water flung from a waterfall.

इसी चिपकाव से बार-बार फैलकर, प्राणी बार-बार उठते हैं और फिर घुल जाते हैं, बिना किसी मतलब के, जैसे झरने से पानी की बूँदें उड़ती हैं।

5.68.35

परस्परनिगीर्णाङ्गा जनता जाड्यजर्जरासंभ्रान्ता प्रभ्रमत्यङ्ग शीर्णपर्णमिवाम्बरे ॥ ३५ ॥

parasparanigīrṇāṅgā janatā jāḍyajarjarāsaṃbhrāntā prabhramatyaṅga śīrṇaparṇamivāmvare || 35 ||

This crowd of people, their limbs swallowed up by each other, worn out and broken by dullness, wanders about bewildered - like a withered leaf blown through the sky, friend.

यह भीड़ एक-दूसरे के अंगों को निगलती है, सुस्ती से थककर टूट चुकी है, और घबराई हुई इधर-उधर भटकती है - जैसे आकाश में सूखा पत्ता उड़ता है, मित्र।

5.68.36

नक्षत्रचक्रं गगने द्रुमे मशकसंततिःस्फुरत्यावर्तवृत्त्यैव पातालेऽङ्ग जलौघवत् ॥ ३६ ॥

nakṣatracakraṃ gagane drume maśakasaṃtatiḥsphuratyāvartavṛttyaiva pātāle'ṅga jalaughavat || 36 ||

The wheel of stars in the sky, the swarm of gnats on a tree, and everything under the earth all whirl round and round the same way, like a rushing flood of water, friend.

आकाश में तारों का चक्र, पेड़ पर मच्छरों का झुंड, और धरती के नीचे की हर चीज़ - सब इसी तरह घूमते रहते हैं, जैसे पानी का तेज़ रेला घूमता है, मित्र।

5.68.37

पातोत्पातदशाजीर्णं कालबालककन्दुकम्। अद्यापि न जहातीन्दुर्जलमामलिनं वपुः ॥ ३७ ॥

pātotpātadaśājīrṇaṃ kālabālakakandukam| adyāpi na jahātīndurjalamāmalinaṃ vapuḥ || 37 ||

Worn thin by endless states of rising and falling, like a ball in the hands of a child named Time, the moon still has not given up, even today, its old, water-stained body.

बार-बार चढ़ने और गिरने से घिसा हुआ, जैसे काल नाम के बच्चे के हाथ की गेंद हो, चाँद ने आज भी अपना वह पुराना, पानी से धब्बेदार शरीर नहीं छोड़ा है।

5.68.38

नानापारयुगावर्तदुःखालोकनकर्कशम्। न लुनाति मनःखण्डं दुःखिगीर्वाणमण्डलम् ॥ ३८ ॥

nānāpārayugāvartaduḥkhālokanakarkaśam| na lunāti manaḥkhaṇḍaṃ duḥkhigīrvāṇamaṇḍalam || 38 ||

Not even the whole host of suffering gods can cut away this fragment of mind, grown hard and rough from watching the painful cycle of age after age.

दुखी देवताओं का पूरा समूह भी मन के इस टुकड़े को नहीं काट पाता, जो युग-दर-युग के दुखभरे चक्र को देखते-देखते सख्त और खुरदरा हो चुका है।

5.68.39

वासनामात्रवशतः परे व्योमनि केनचित्। इदमारचितं चित्रं विचित्रं पश्य राघव ॥ ३९ ॥

vāsanāmātravaśataḥ pare vyomani kenacit| idamāracitaṃ citraṃ vicitraṃ paśya rāghava || 39 ||

Look, Rama - this strange picture has been painted by someone in the highest sky, by nothing but the force of desire.

देखो राम - यह अनोखी तस्वीर सबसे ऊँचे आकाश में किसी ने बस इच्छा के बल पर बना दी है।

5.68.40

मनःसङ्गैकरङ्गेण शून्ये व्योम्नि जगन्मयम्। यदिदं रचितं चित्रं तत्सत्यं न कदाचन ॥ ४० ॥

manaḥsaṅgaikaraṅgeṇa śūnye vyomni jagannmayam| yadidaṃ racitaṃ citraṃ tatsatyaṃ na kadācana || 40 ||

In the empty sky, using the mind's clinging as its only color, this whole picture made of the world has been painted - and this picture is never true.

खाली आकाश में, मन के चिपकाव को ही एकमात्र रंग बनाकर, यह पूरी तस्वीर बनाई गई है जो दुनिया के रूप में दिखती है - और यह तस्वीर कभी सच नहीं होती।

5.68.41

संसक्तमनसामस्मिन्संसारे व्यवहारिणाम्। अत्ति तृष्णा शरीराणि तृणान्यग्निशिखा यथा ॥ ४१ ॥

saṃsaktamanasāmasminnasaṃsāre vyavahāriṇām| atti tṛṣṇā śarīrāṇi tṛṇānyagnisikhā yathā || 41 ||

Craving eats away the bodies of those whose minds cling to this world and its business, the way a tongue of fire eats dry grass.

जिनका मन इस दुनिया और उसके काम-धंधों से चिपका रहता है, उनके शरीर को तृष्णा उसी तरह खा जाती है जैसे आग की लपट सूखी घास को खा जाती है।

5.68.42

परिसक्तमतेर्देहान्सिकताः पत्युरम्भसाम्। कः शक्तः परिसंख्यातुं त्रसरेणुगणं यथा ॥ ४२ ॥

parisaktamaterdehānsikatāḥ patyurambhasām | kaḥ śaktaḥ parisaṃkhyātuṃ trasareṇugaṇaṃ yathā || 42 ||

Who could count the bodies of a mind that clings - any more than one could count the grains of sand in the ocean, or a swarm of dust motes?

जो मन चिपका रहता है, उसके शरीरों को कौन गिन सकता है - उतना ही मुश्किल जितना समुद्र की रेत के कण गिनना, या धूल के कणों का झुंड गिनना?

5.68.43

मुक्तालताया गङ्गाया मेरोरापादमस्तकम्। तरङ्गमुक्ता गण्यन्ते न देहाः सक्तचेतसाम् ॥ ४३ ॥

muktālatāyā gaṅgāyā merorāpādamastakam | taraṅgamuktā gaṇyante na dehāḥ saktacetasām || 43 ||

One could count the pearl-like drops flung up by the waves of the Ganga's string of pearls as it falls the whole length of Mount Meru, from foot to peak - but not the bodies of a mind that clings.

गंगा की मोतियों की माला मेरु पर्वत की तलहटी से चोटी तक जितनी दूर गिरती है, उसकी लहरों से उछलने वाली मोती जैसी बूँदें तो कोई गिन भी ले - पर चिपके हुए मन के शरीर कोई नहीं गिन सकता।

5.68.44

संसक्तमनसामेता रम्यान्तःपुरपङ्क्तयः। रचिता रौरवा वीचिकालसूत्रादिनामिकाः ॥ ४४ ॥

saṃsaktamanasāmetā ramyāntaḥpurapaṅktayaḥ | racitā rauravā vīcikālasūtrādināmikāḥ || 44 ||

For those whose minds cling, these same rows of lovely inner palaces are built - and so are the hells called Raurava, Vichi, Kalasutra, and the rest.

जिनका मन चिपका रहता है, उन्हीं के लिए ये सुंदर महलों की कतारें बनती हैं - और रौरव, वीचि, कालसूत्र जैसे नरक भी बनते हैं।

5.68.45

सक्तचित्तं जनं दुःखशुष्कमिन्धनसंचयम्। ज्वलतां नरकाग्नीनां विद्धि तेन ज्वलन्ति ते ॥ ४५ ॥

saktacittaṃ janaṃ duḥkhaśuṣkamindhanasaṃcayam | jvalatāṃ narakāgnīnāṃ viddhi tena jvalanti te || 45 ||

Know that people whose minds cling are a heap of fuel, dried out by suffering, for the blazing fires of hell - that is why they burn.

जान लो कि जिनका मन चिपका रहता है, वे नरक की धधकती आग के लिए दुख से सुखाई हुई लकड़ी के ढेर हैं - इसीलिए वे जलते हैं।

5.68.46

दुःखजालमिदं नाम यत्किंचिज्जगतीगतम्। संसक्तमनसामर्थे तत्सर्वं परिकल्पितम् ॥ ४६ ॥

duḥkhajālamidaṃ nāma yatkiṃcijjagatīgatam | saṃsaktamanasāmarte tatsarvaṃ parikalpitam || 46 ||

This net of suffering - whatever there is at all in this world - all of it is made only for the sake of those whose minds cling.

यह दुख का जाल - इस दुनिया में जो कुछ भी है - यह सब केवल उन्हीं के लिए बनाया गया है जिनका मन चिपका रहता है।

5.68.47

संसक्तचित्तमायान्ति सर्वा दुःखपरम्पराः। जलकल्लोलवलिता महानद्य इवाम्बुधिम् ॥ ४७ ॥

saṃsaktacittamāyānti sarvā duḥkhaparamparāḥ | jalakallolavalitā mahānady ivāmbudhim || 47 ||

All the lines of suffering come to the clinging mind, the way great rivers, curling with waves, come into the ocean.

दुख की सारी धाराएँ चिपके हुए मन में वैसे ही आ मिलती हैं जैसे लहराती हुई बड़ी नदियाँ समुद्र में जा मिलती हैं।

5.68.48

मनःसंसर्गरूपिण्या भारूभूतशरीरया । क्षयोदयदशार्थिन्या सर्वं ततमविद्यया ॥ ४८ ॥

manaḥsaṃsargarūpiṇyā bhārūbhūtaśarīrayā | kṣayodayadaśārthinyā sarvaṃ tatamavidyayā || 48 ||

Ignorance joins itself to the mind; its body trembles; it is always seeking the states of rising and falling - and by this ignorance everything is spread through and through.

अज्ञान मन से जुड़ जाता है; उसका शरीर काँपता रहता है; वह हमेशा उठने-गिरने की दशाएँ ढूँढ़ता रहता है - और इसी अज्ञान से सब कुछ भरा हुआ है।

5.68.49

असंसङ्गेन भोगानां सर्वा राम विभूतयः । परं विस्तारमायान्ति प्रावृषीव महापगाः ॥ ४९ ॥

asaṃsaṅgena bhogānāṃ sarvā rāma vibhūtayaḥ | paraṃ vistāramāyānti prāvṛṣīva mahāpagāḥ || 49 ||

By not clinging to pleasures, Rama, all one's powers reach their fullest height - like great rivers in the rainy season.

भोगों से न चिपकने पर, राम, सारी शक्तियाँ अपनी पूरी ऊँचाई तक पहुँच जाती हैं - जैसे बरसात में बड़ी नदियाँ भर आती हैं।

5.68.50

अन्तःसंसङ्गमङ्गानामङ्गारं विद्धि राघव । अनन्तःसङ्गमङ्गानां विद्धि राम रसायनम् ॥ ५० ॥

antaḥsaṃsāṅgamāṅgānām aṅgāraṃ viddhi rāghava | anantaḥsaṅgamāṅgānāṃ viddhi rāma rasāyanam || 50 ||

Know that clinging held inside the body is a burning coal, Raghava; and know that freedom from clinging inside the body is a healing medicine, Rama.

जान लो, राघव, कि शरीर के अंदर का चिपकाव जलता अंगारा है; और जान लो, राम, कि शरीर के अंदर चिपकाव न होना एक ऐसी दवा है जो सेहत ठीक कर देती है।

5.68.51

संसङ्गेनान्तरस्थेन दह्यते प्रकृतिः स्वयम् । स्वकलोत्थे नैरकाङ्क्षी पावकेन यथौषधिः ॥ ५१ ॥

saṃsaṅgenāntarasthena dahyate prakṛtiḥ svayam | svakalotthe nairakāṅkṣī pāvakena yathauṣadhiḥ || 51 ||

Because of the clinging that lives within, nature burns itself up on its own - the way a fire born from its own fuel burns a plant, wanting nothing else.

भीतर बसे चिपकाव के कारण प्रकृति खुद-ब-खुद जल जाती है - जैसे अपनी ही लकड़ी से पैदा हुई आग किसी पौधे को जला देती है, बिना किसी और चीज़ की चाह के।

5.68.52

सर्वत्रासक्तमाशान्तमनन्तमिव संस्थितम् । असत्कल्पं सदाभासं सुखायैव मनो भवेत् ॥ ५२ ॥

sarvatrāsaktamāśāntamanantamiva saṃsthitam | asatkalpaṃ sadābhāsaṃ sukhāyaiva mano bhavet || 52 ||

The mind should give up clinging everywhere, be fully at peace, rest as if without limit - seeming unreal even while it looks real - and exist only for the sake of happiness.

मन को हर जगह से चिपकाव छोड़ देना चाहिए, वह पूरी तरह शांत हो, मानो बिना किसी सीमा के टिका हो - झूठा होते हुए भी सच जैसा दिखे - और सिर्फ सुख के लिए हो।

5.68.53

विद्यादृशि प्रोदयमागतेन क्षयं त्वविद्याविषये गतेन । सर्वत्र संसक्तिविवर्जितेन स्वचेतसा तिष्ठति यः स मुक्तः ॥ ५३ ॥

vidyādṛśi prodāyamāgatena kṣayaṃ tvavidyāviṣaye gatena | sarvatra saṃsaktivivarjitena svacetasā tiṣṭhati yaḥ sa muktaḥ || 53 ||

Whoever lives with a mind that has fully risen in the sight of true knowledge, that has faded away in the field of ignorance, and that is free from clinging everywhere - that person is free.

जो व्यक्ति ऐसे मन के साथ रहता है जो सच्चे ज्ञान की नज़र में पूरी तरह उठ चुका है, जो अज्ञान के दायरे में मिट चुका है, और जो हर जगह से चिपकाव-रहित है - वही मुक्त है।

Chapter 69

5.69.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । सर्वदा सर्वसंस्थेन सर्वेण सह तिष्ठता । सर्वकर्मरतेनापि मनः कार्यं विजानता ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | sarvadā sarvasaṃsthena sarveṇa saha tiṣṭhatā | sarvakarmaratenaapi manaḥ kāryaṃ vijānatā || 1 ||

Sri Vasishtha said: For the one who always remains established in everything, who stays together with all things, and even while delighting in every action still knows how the mind should be kept,

श्री वसिष्ठ ने कहा: जो हमेशा हर चीज़ में टिका रहता है, जो सबके साथ रहता है, और हर काम में लगे रहते हुए भी यह समझता है कि मन को कैसे रखना है,

5.69.2

न सक्तमिह चेष्टासु न चिन्तासु न वस्तुषु । नाकाशे नाप्यधो नाग्रे न दिक्षु न लतासु च ॥ २ ॥

na saktamiha ceṣṭāsu na cintāsu na vastuṣu | nākāśe nāpyadho nāgre na dikṣu na latāsu ca || 2 ||

the mind is not attached to any activity here, nor to any thought, nor to any object; not in the sky, not below, not in front, not in the directions, not in the creepers,

मन यहाँ न तो किसी काम में बँधा है, न किसी सोच में, न किसी चीज़ में; न आकाश में, न नीचे, न सामने, न दिशाओं में, न बेलों में,

5.69.3

न बहिर्विपुलाभोगे न चैवेन्द्रियवृत्तिषु । नाभ्यन्तरे न च प्राणे न मूर्धनि न तालुनि ॥ ३ ॥

na bahirvipulābhoge na caivendriyavṛttiṣu | nābhyaantare na ca prāṇe na mūrdhani na tāluni || 3 ||

not outside in great enjoyment, nor in the workings of the senses; not inside, not in the breath, not on the crown of the head, not on the palate,

न बाहर के बड़े भोग-विलास में, न इंद्रियों के कामों में; न अंदर, न साँस में, न सिर के ऊपरी हिस्से में, न तालू में,

5.69.4

न भ्रूमध्ये न नासान्ते न मुखे न च तारके । नान्धकारे न चाभासे न चास्मिन्हृदयाम्बरे ॥ ४ ॥

na bhrūmadhye na nāsānte na muke na ca tārake | nāndhakāre na cābhāse na cāsmiinhṛdayāmbare || 4 ||

not between the eyebrows, not at the tip of the nose, not in the mouth, not in the pupil of the eye; not in darkness, not in any glow, not in this space within the heart,

न भौंहों के बीच में, न नाक की नोक पर, न मुँह में, न आँख की पुतली में; न अंधेरे में, न किसी चमक में, न इस हृदय के आकाश में,

5.69.5

न जाग्रति न च स्वप्ने न सुषुप्ते न निर्मले । नासिते न च वा पीतरक्तादौ शबले न च ॥ ५ ॥

na jāgrati na ca svapne na suṣupte na nirmale | nāsite na ca vā pītaraktādau śabale na ca || 5 ||

not in waking, not in dream, not in deep sleep, not in the stainless state; not in black, not in yellow or red and other colors, not in any spotted color,

न जागने में, न सपने में, न गहरी नींद में, न किसी निर्मल अवस्था में; न काले रंग में, न पीले, लाल आदि रंगों में, न किसी चितकबरे रंग में,

5.69.6

न चले न स्थिरे नादौ न मध्ये नेतरत्र च । न दूरे नान्तिके नाग्रे न पदार्थे न चात्मनि ॥ ६ ॥

na cale na sthire nādau na madhye netaratra ca | na dūre nāntike nāgre na padārthe na cātmani || 6 ||

not in the moving, not in the still, not at the start, not in the middle, not anywhere else; not far, not near, not ahead; not in any object, and not even in the self,

न चलती हुई चीज़ में, न ठहरी हुई चीज़ में, न शुरुआत में, न बीच में, न कहीं और; न दूर, न पास, न आगे; न किसी चीज़ में, और न खुद आत्मा में,

5.69.7

न शब्दस्पर्शरूपेषु न मोहानन्दवृत्तिषु । न गमागमचेष्टासु न कालकलनासु च ॥ ७ ॥

na śabdasparśarūpeṣu na mohānandavṛttiṣu | na gamāgamaceṣṭāsu na kālakalanāsu ca || 7 ||

not in sound, touch or form, not in the workings of delusion or joy, not in the movements of going and coming, not in the reckoning of time.

न आवाज़, न स्पर्श, न रूप में, न मोह या आनंद के भावों में, न आने-जाने की हलचल में, न समय की गिनती में।

5.69.8

केवलं चिति विश्रम्य किंचिच्चेत्यावलम्बिनि । सर्वत्र नीरसमिव तिष्ठत्वात्मरसं मनः ॥ ८ ॥

kevalaṃ citi viśramya kiṃciccetyāvalambini | sarvatra nīrasamiva tiṣṭhatvātmarasaṃ manaḥ || 8 ||

Let the mind rest only in pure awareness. Even while it still leans a little on something it perceives, let it remain everywhere as if without taste - its only true taste being the self.

मन केवल शुद्ध चेतना में टिका रहे। भले ही वह अब भी किसी देखी हुई चीज़ का हल्का सा सहारा लेता हो, फिर भी वह हर जगह ऐसे रहे जैसे उसमें कोई स्वाद ही न हो - उसका असली स्वाद तो बस आत्मा है।

5.69.9

तत्रस्थो विगतासङ्गो जीवोऽजीवत्वमागतः । व्यवहारमिमं सर्वं मा करोतु करोतु वा ॥ ९ ॥

tatrastho vigatāsaṅgo jīvo'jīvatvamāgataḥ | vyavahāramimaṃ sarvaṃ mā karotu karotu vā || 9 ||

Staying like this, free of all attachment, the living being becomes as good as not alive - whether he does all this everyday business or does not do it.

इस तरह रहते हुए, हर लगाव से मुक्त होकर, जीव मानो जीवित ही नहीं रहता - चाहे वह यह सारा रोज़मर्रा का काम करे या न करे।

5.69.10

अकुर्वन्नपि कुर्वाणो जीवः स्वात्मरतिः क्रियाः । क्रियाफलैर्न संबन्धमायाति खमिवाम्बुदैः ॥ १० ॥

akurvannapi kurvāṇo jīvaḥ svātmaratiḥ kriyāḥ | kriyāphalairna saṃbandhamāyāti khamivāmbudaiḥ || 10 ||

Even while doing nothing, such a living being still performs his actions, delighting only in his own self; and he never enters into any connection with the fruits of those actions - just as the sky never connects with the clouds that move through it.

कुछ न करते हुए भी, ऐसा जीव अपने सारे काम करता रहता है, और सिर्फ अपनी आत्मा में आनंद पाता है; वह अपने कर्मों के फल से कभी नहीं जुड़ता - जैसे आकाश उसमें से गुज़रते बादलों से कभी नहीं जुड़ता।

5.69.11

अथवा तमपि त्यक्त्वा चेत्यांशं शान्तचिद्घनः । जीवस्तिष्ठतु संशान्तो ज्वलन्मणिरिवात्मनि ॥ ११ ॥

athavā tamapi tyaktvā cetyaṃśaṃ śāntaciddhanaḥ | jīvastiṣṭhatu saṃśānto jvalanmaṇirivātmani || 11 ||

Or else, letting go even of that small trace of something perceived, and becoming nothing but peaceful awareness, let the living being remain completely at peace within the self, like a glowing jewel.

या फिर, देखी हुई चीज़ के उस थोड़े से हिस्से को भी छोड़कर, और शांत चेतना का ढेर मात्र बनकर, जीव आत्मा में पूरी तरह शांत होकर ऐसे टिका रहे जैसे कोई दमकता हुआ रत्न।

5.69.12

निर्वाणमात्मनि गतः सततोदितात्मा जीवोऽरुचिर्व्यवहरन्नपि रामभद्र । नो सङ्गमेति गतसङ्गतया फलेन कर्मोद्भवेन सहतीव च देहभारम् ॥ १२ ॥

nirvāṇamātmani gataḥ satatoditātmā jīvo'rucirvyavaharannapi rāmabhadra | no saṅgameti gatasaṅgatayā phalena karmodbhavena sahatīva ca dehabhāram || 12 ||

O Rama, the living being who has found peace within the self, whose awareness is forever awake, feels no craving even while carrying on worldly dealings. Because attachment has left him, he has no bond with the fruit born of action, and he carries the weight of his body only as if it were a burden.

हे राम, जो जीव आत्मा में शांति पा चुका है, जिसकी चेतना सदा जागी रहती है, वह सांसारिक व्यवहार करते हुए भी किसी चीज़ की चाह नहीं रखता। लगाव उससे छूट चुका है, इसलिए उसका कर्म से पैदा हुए फल से कोई नाता नहीं रहता, और वह अपने शरीर को मानो बस बोझ की तरह ढोता है।

Chapter 70

5.70.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । असंसङ्गसुखाभ्याससंस्थितैर्विततात्मभिः । व्यवहारिभिरप्यन्तर्वीतशोकभयैः स्थितम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | asaṃsaṅgasukhābhyāsasaṃsthitairvitatātmabhiḥ | vyavahāribhirapyantarvītaśokabhayaiḥ sthitam || 1 ||

Sri Vasishtha said: There are people settled in the practice of the joy of non-attachment, whose minds have grown vast, and who, even while dealing in the affairs of the world, remain inwardly free of grief and fear -- so it stands.

श्री वसिष्ठ ने कहा: कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आसक्ति-रहित सुख के अभ्यास में स्थिर हो चुके हैं, जिनका मन विशाल हो गया है, और जो संसार का व्यवहार करते हुए भी भीतर से शोक और भय से मुक्त रहते हैं -- स्थिति ऐसी ही है।

5.70.2

प्रक्षुब्धाक्षुब्धदेहस्याविसंवादेन संविदः । अन्तःपूर्णस्य वदने श्रीरिन्दोरिव लक्ष्यते ॥ २ ॥

prakṣubdhākṣubdhadehasyāvisaṃvādena saṃvidaḥ | antaḥpūrṇasya vadane śrīrindoriva lakṣyate || 2 ||

Such a person's body may seem shaken though it is not shaken, because his awareness never wavers; being inwardly full, a radiance is seen on his face, like the radiance of the moon.

ऐसे व्यक्ति का शरीर व्याकुल जैसा दिख सकता है, पर वास्तव में व्याकुल नहीं होता, क्योंकि उसकी चेतना कभी डगमगाती नहीं; भीतर से परिपूर्ण होने के कारण उसके चेहरे पर एक कांति दिखाई देती है, जैसे चाँद की कांति।

5.70.3

चेत्यहीनं चिदालम्बं मनो यस्य गतज्वरम् । तेनाम्बु कतकेनेव जनता संप्रसीदति ॥ ३ ॥

cetyahīnaṃ cidālambaṃ mano yasya gatajvaram | tenāmbu katakeneva janatā saṃprasīdati || 3 ||

Whose mind is free of clinging to things it knows, and rests only on pure awareness, and so has lost its fever -- because of him, people become calm and clear, the way muddy water is cleared by a purifying seed.

जो अपने मन को जानी हुई चीज़ों से चिपकने नहीं देता, और केवल शुद्ध चेतना पर टिका रहता है, इसलिए जिसका ताप शांत हो चुका है -- उसके कारण लोग वैसे ही शांत और निर्मल हो जाते हैं, जैसे गंदा पानी एक शुद्ध करने वाले बीज से साफ हो जाता है।

5.70.4

नित्यमात्मदृशा लीनो ज्ञः स्वस्थश्चञ्चलोऽपि सन् । क्षुब्धो दृश्यत एवासौ प्रतिबिम्बार्कवन्मुधा ॥ ४ ॥

nityamātmadṛśā līno jñaḥ svasthaścañcalo'pi san | kṣubdho dṛśyata evāsau pratibimbārkavatmudhā || 4 ||

The knower is always absorbed in the sight of his own Self, settled in himself; even though he seems restless, he is seen as agitated only in appearance, not in truth -- like the reflected sun, which seems to shake but does not.

ज्ञानी सदा अपने आत्मा के दर्शन में लीन रहता है, अपने आप में स्थिर रहता है; भले ही वह चंचल दिखे, पर वह अशांत केवल दिखने में लगता है, असल में नहीं -- जैसे प्रतिबिंबित सूर्य हिलता हुआ दिखता है, पर असल में नहीं हिलता।

5.70.5

आत्मारामा महात्मानः प्रबुद्धाः परमोदयाः । बहिः पिच्छाग्रतरला अन्तर्मेरुरिवाचलाः ॥ ५ ॥

ātmārāmā mahātmānaḥ prabuddhāḥ paramodayāḥ | bahiḥ picchāgrataralā antarmerurivācalāḥ || 5 ||

Great souls who delight in the Self, awakened, risen to the highest state, seem outwardly to tremble like the tip of a peacock feather, but inwardly they are unmoving like Mount Meru.

आत्मा में रमने वाले महापुरुष, जो जाग चुके हैं और परम ऊँचाई को पा चुके हैं, बाहर से मोर के पंख की नोक जैसे काँपते दिखते हैं, पर भीतर से मेरु पर्वत जैसे अडिग रहते हैं।

5.70.6

चित्तमात्मत्वमायातं सुखदुःखानुरञ्जनम् । नोपैति रङ्गसंयुक्तो मसृणः स्फटिको यथा ॥ ६ ॥

cittamātmatvamāyātaṃ sukhaduḥkhānurañjanam| nopaiti raṅgasaṃyukto masṛṇaḥ sphaṭiko yathā || 6 ||

A mind that has reached the nature of the Self does not take on the colour of pleasure and pain, just as a polished crystal, even placed next to a colour, does not take on that colour.

जो मन आत्मा के स्वरूप को पा चुका है, वह सुख-दुःख का रंग नहीं चढ़ने देता, जैसे एक चिकना स्फटिक किसी रंग के पास रखे जाने पर भी उस रंग को ग्रहण नहीं करता।

5.70.7

संसारदृष्टिरुदितं ज्ञातलोकपरावरम् । न रञ्जयति सच्चित्तं जललेखा यथाम्बुजम् ॥ ७ ॥

saṃsāradṛṣṭiruditaṃ jñātalokaparāvaram| na rañjayati saccittaṃ jalalekhā yathāmbujam || 7 ||

Though the higher and the lower worlds are fully known, the sight of this world that arises does not stain a true mind, just as a streak of water does not soak into a lotus.

ऊँचे और नीचे सभी लोकों को जान लेने पर भी, संसार को देखने से जो अनुभव उठता है, वह सच्चे मन को रंग नहीं पाता, जैसे पानी की एक बूँद कमल को भिगो नहीं पाती।

5.70.8

आत्मध्यानमयोऽध्याने प्रबोधं परमात्मनः । कलनामलनिर्मुक्तः स्वसक्त इति कथ्यते ॥ ८ ॥

ātmadhyānamayo'dhāne prabodhaṃ paramātmanaḥ| kalanāmalanirmuktaḥ svasakta iti kathyate || 8 ||

One whose being is filled with meditation on the Self keeps the awakening of the supreme Self even outside formal meditation; free of the stain of mental imagining, such a person is called one attached to his own Self.

जिसका सारा अस्तित्व आत्म-ध्यान से भरा है, वह औपचारिक ध्यान के बिना भी परमात्मा के जागरण को बनाए रखता है; कल्पना के दोष से मुक्त होकर, उसे 'अपने आत्मा में लीन व्यक्ति' कहा जाता है।

5.70.9

आत्मारामतया जीवो यात्यसंसङ्गतामिह । आत्मज्ञानेन संसङ्गस्तनुतामेति नान्यथा ॥ ९ ॥

ātmārāmatayā jīvo yātyasāṃsaṅgatāmiha| ātmajñānena saṃsaṅgastanutāmeti nānyathā || 9 ||

By delighting in the Self, a person here attains freedom from attachment. Only through knowledge of the Self does attachment grow less -- never in any other way.

आत्मा में रमने से ही जीव यहाँ आसक्ति-रहित होता है। आत्म-ज्ञान से ही आसक्ति कम होती है -- किसी और उपाय से नहीं।

5.70.10

जाग्रत्येव सुषुप्तस्थो जीवो भवति राघव । अस्यां दृशि गतोऽद्वन्द्वो नित्यानस्तमयोदयः ॥ १० ॥

jāgratyeva suṣuptastho jīvo bhavati rāghava| asyāṃ dṛśi gato'dvandvo nityānastamayodayaḥ || 10 ||

Even while awake, the living being becomes like one in deep, dreamless sleep, O Raghava. Having reached this vision, he is free of all opposites, ever without rising or setting.

हे राघव, जागते हुए भी जीव गहरी नींद में सोए हुए जैसा हो जाता है। इस दृष्टि को पाकर वह सभी द्वंद्वों से मुक्त हो जाता है, सदा बिना उदय और अस्त के।

5.70.11

अत्र प्रौढिमुपायातः सूर्यतामेति पावनीम् । परिणामवशादिन्दुरमावास्यार्कतामिव ॥ ११ ॥

atra prauḍhimupāyātaḥ sūryatāmeti pāvanīm | pariṇāmavaśādinduramāvāsyārkatāmiva || 11 ||

Here, having grown fully ripe, he reaches a purity like the sun's -- just as, through its change of phase, the moon becomes like the sun on the night of the new moon.

यहाँ पूरी तरह पक जाने पर वह सूर्य जैसी पवित्रता को पाता है -- जैसे अपने बदलते रूप के कारण अमावस्या की रात चंद्रमा सूर्य जैसा हो जाता है।

5.70.12

चित्ते चित्तदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् । सोच्यते शान्तकलना जाग्रत्येव सुषुप्तता ॥ १२ ॥

citte cittadaśāhīne yā sthitiḥ kṣīṇacetasām | socyate śāntakalanā jāgratyeva suṣuptatā || 12 ||

When the mind has left behind the state of an ordinary, restless mind, the condition of those whose mental activity has quieted is called thought now at peace -- deep, dreamless sleep right within waking.

जब मन साधारण, अशांत मन की अवस्था से बाहर निकल आता है, तो जिनकी मानसिक हलचल शांत हो चुकी है, उनकी उस अवस्था को 'शांत हुआ विचार' कहा जाता है -- यानी जागते हुए ही गहरी नींद जैसी स्थिति।

5.70.13

तां सुषुप्तदशामेत्य जीवन्व्यवहरन्नरः । सुखदुःखवरत्राभिर्न कदाचन कृष्यते ॥ १३ ॥

tāṃ suṣuptadaśāmetya jīvanvyavaharannaraḥ | sukhaduḥkhavaratrābhirna kadācana kṛṣyate || 13 ||

Having reached that state of deep, dreamless sleep, a person, while alive and going about the business of the world, is never dragged by the ropes of pleasure and pain.

उस गहरी नींद-जैसी अवस्था को पाकर मनुष्य जीते हुए और संसार का व्यवहार करते हुए भी, सुख-दुःख की रस्सियों से कभी नहीं खींचा जाता।

5.70.14

जाग्रत्येव सुषुप्तस्थो यः करोति जगत्क्रियाम् । तं यन्त्रपुत्रकमिव नायाति सुखदुःखदृक् ॥ १४ ॥

jāgratyeva suṣuptastho yaḥ karoti jagatkriyām | taṃ yantraputrakamiva nāyāti sukhaduḥkhadṛk || 14 ||

One who, established in deep, dreamless sleep even while awake, carries out the actions of the world -- to him, like to a mechanical puppet, the feeling of pleasure and pain never comes.

जो जागते हुए भी गहरी नींद में स्थित रहकर संसार के सारे काम करता है -- उसे, एक यंत्र की गुड़िया की तरह, सुख-दुःख का अनुभव कभी नहीं होता।

5.70.15

चित्तस्य बाधिका शक्तिर्भावाभावोपतापदा। आत्मतामागते चित्ते तस्य किं बाधते कथम्॥ १५॥

cittasya bādhikā śaktirbhāvābhāvopatāpadā | ātmatāmāgate citte tasya kiṃ bādhate katham || 15 ||

The power that troubles the mind, that brings the pain of things coming into being and passing away -- once the mind has reached the state of the Self, what can trouble it, and how?

मन को कष्ट देने वाली वह शक्ति, जो चीज़ों के होने और न होने का दुःख देती है -- जब मन आत्मा की अवस्था को पा लेता है, तो उसे कौन और कैसे कष्ट दे सकता है?

5.70.16

सुषुप्तबुद्धिः कर्माणि पूर्वमेवावहेलया। कुर्वन्न बध्यते जीवो जीवन्मुक्ततया स्थितः॥ १६॥

suṣuptabuddhiḥ karmāṇi pūrvamevāvahelayā | kurvanna badhyate jīvo jīvanmuktatayā sthitaḥ || 16 ||

With his mind as if asleep, doing the same actions as before but caring nothing for them, such a person is not bound -- he stands as one who is free while still alive.

जिसकी बुद्धि सोई हुई-सी है, वह पहले जैसे ही सारे काम करता है, पर उनकी कोई परवाह नहीं करता -- ऐसा व्यक्ति बंधन में नहीं पड़ता, वह जीते-जी मुक्त होकर रहता है।

5.70.17

सौषुप्तीं वृत्तिमाश्रित्य कुरु मा कुरु वानघ। कर्म प्रकृतिजं पाकवशादुपगतं स्थितम्॥ १७॥

sauṣuptīṃ vṛttimāśritya kuru mā kuru vānagha | karma prakṛtijaṃ pākavaśādupagataṃ sthitam || 17 ||

Rest in this state like deep sleep, sinless one, and do it or do not do it — the action that is born of your own nature, and that comes to you through the ripening of your past deeds, goes on just the same.

हे निष्पाप, गहरी नींद जैसी इस अवस्था में टिके रहो, और काम करो या न करो — जो काम तुम्हारे स्वभाव से पैदा हुआ है और पुराने कर्मों के पकने से तुम तक आया है, वह वैसे ही चलता रहता है।

5.70.18

नादानं न परित्यागः कर्मणोऽज्ञाय रोचते। तिष्ठन्त्यवगतात्मानो यथाप्राप्तानुवर्तिनः॥ १८॥

nādānaṃ na parityāgaḥ karmaṇo'jñāya rocate | tiṣṭhantyavagatātmāno yathāprāptānuvartinaḥ || 18 ||

Without real understanding, neither taking up action nor giving it up is right. Those who have known the self simply carry on, going along with whatever comes their way.

सच्चे ज्ञान के बिना न तो काम को अपनाना ठीक है, न उसे छोड़ना। जिन्होंने अपने आत्मा को जान लिया है, वे तो बस जो सामने आ जाए उसी के साथ चलते रहते हैं।

5.70.19

कुर्वन्नपि न कर्तासि सुषुप्त्यैकस्थया धिया। अकर्तापि च कर्तासि यथेच्छसि तथा कुरु॥ १९॥

kurvannapi na kartāsi suṣuptyaikasthayā dhiyā | akartāpi ca kartāsi yathecchasi tathā kuru || 19 ||

Even while you act, if your mind rests only in that sleep-like stillness, you are not the doer. And even without acting, you can still be the doer. So act just as you wish.

यदि तुम्हारा मन उस गहरी नींद जैसी शांत अवस्था में ही टिका रहे, तो काम करते हुए भी तुम कर्ता नहीं हो। और बिना काम किए भी तुम कर्ता हो सकते हो। इसलिए जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।

5.70.20

यथा न किंचित्कलयन्मञ्चके स्पन्दते शिशुः । तथा फलान्यकलयन्कुरु कर्माणि राघव ॥ २० ॥

yathā na kiñcitkalayanmañcake spandate śiśuḥ | tathā phalānyakalayankuru karmāṇi rāghava || 20 ||

Just as a baby lying on its cot moves about without giving any thought to it, so too, Raghava, do your actions without thinking about their results.

जैसे पालने में पड़ा बच्चा बिना कुछ सोचे-समझे हाथ-पैर हिलाता है, हे राघव, वैसे ही तुम फल की चिंता किए बिना अपने काम करो।

5.70.21

अचेत्यचित्पदस्वस्थो जाग्रत्यपि सुषुप्तधीः । यद्यत्करोति लब्धात्मा तस्मिंस्तस्य न कर्तृता ॥ २१ ॥

acetyacitpadasvastho jāgratyapi suṣuptadhīḥ | yadyatkaroti labdhātmā tasmiṃstasya na kartṛtā || 21 ||

Settled in that state beyond thought and beyond mind, his intellect asleep even while he is awake, the man who has found the self is not the doer of whatever he does.

विचार और मन से परे उस अवस्था में टिका हुआ, जागते हुए भी जिसकी बुद्धि सोई हुई है, ऐसा आत्मज्ञानी व्यक्ति जो भी करे, उसमें वह कर्ता नहीं होता।

5.70.22

दशामासाद्य सौषुप्तीं स्वचित्ते च विवासनः । अन्तः शीतलतामेति ज्ञो रसेन यथा शशी ॥ २२ ॥

daśāmāsādya sauṣuptīṃ svacitte ca vivāsanaḥ | antaḥ śītalatāmeti jño rasena yathā śaśī || 22 ||

Reaching this state like deep sleep, and free of all desire in his own mind, the wise man grows cool inside, the way the moon is cool by its own nature.

इस गहरी नींद जैसी अवस्था को पाकर और अपने मन में हर इच्छा से मुक्त होकर, ज्ञानी व्यक्ति भीतर से वैसे ही शीतल हो जाता है जैसे चाँद अपने स्वभाव से शीतल होता है।

5.70.23

सुषुप्तस्थो महातेजाः पूर्णः पूर्णेन्दुबिम्बवत् । समः सर्वास्ववस्थासु भवत्यद्रिर्यथर्तुषु ॥ २३ ॥

suṣuptastho mahātejāḥ pūrṇaḥ pūrṇendubimbavat | samaḥ sarvāsvavasthāsu bhavatyadriryatharrtuṣu || 23 ||

Abiding in that state like deep sleep, full of great brightness, whole like the orb of the full moon, he stays the same in every condition, as a mountain stays the same through the changing seasons.

गहरी नींद जैसी उस अवस्था में टिका हुआ, महान तेज से भरा, पूर्ण चाँद के समान परिपूर्ण, वह हर हाल में एक-सा बना रहता है, जैसे पहाड़ बदलते मौसमों में भी एक-सा बना रहता है।

5.70.24

सुषुप्तसंस्थो धीरात्मा बहिरायाति लोलताम् । क्रियासु नो भवत्कम्पः प्रस्पन्दित इवाचलः ॥ २४ ॥

suṣuptasaṃstho dhīrātmā bahirāyāti lolatām | kriyāsu no bhavatkampah praspandita ivācalaḥ || 24 ||

The steady-minded one, settled in that state like deep sleep, may outwardly seem restless and active, but there is no real shaking in his actions — like a mountain that seems to move but does not tremble.

गहरी नींद जैसी उस अवस्था में टिकी हुई धीर आत्मा बाहर से भले चंचल और सक्रिय दिखे, पर उसके कामों में कोई हलचल नहीं होती — जैसे पहाड़ हिलता हुआ दिखे तो भी वह कांपता नहीं।

5.70.25

सुषुप्तावस्थितो भूत्वा देहं विगतकल्मषः । पातयाश्वथ वा दीर्घं कालं धारय शैलवत् ॥ २५ ॥

suṣuptāvasthito bhūtvā dehaṃ vigatakalmaṣaḥ | pātayāśvatha vā dīrghaṃ kālaṃ dhāraya śailavat || 25 ||

Having become established in that sleep-like state, free of all taint, either drop the body at once, or else hold on to it for a long time, unmoved like a mountain.

गहरी नींद जैसी उस अवस्था में टिककर और हर दोष से मुक्त होकर, या तो शरीर को तुरंत त्याग दो, या फिर पहाड़ की तरह अडिग रहते हुए उसे लंबे समय तक धारण किए रहो।

5.70.26

एषैव राम सौषुप्ती स्थितिरभ्यासयोगतः । प्रौढा सती तुर्यमिति कथिता तत्त्वकोविदैः ॥ २६ ॥

eṣaiva rāma sauṣuptī sthitirabhyāsayogataḥ | prauḍhā satī turyamiti kathitā tattvakovidaiḥ || 26 ||

This very state like deep sleep, Rama, once it has matured through practice, is called the Fourth state by those who know the truth.

हे राम, यही गहरी नींद जैसी अवस्था जब अभ्यास से परिपक्व हो जाती है, तो सच को जानने वाले लोग इसे चौथी अवस्था कहते हैं।

5.70.27

आनन्दमय एवान्तः प्रक्षीणसकलामयः । अत्यन्तास्तं गतमना भवति ज्ञो महोदयः ॥ २७ ॥

ānandamaya evāntaḥ prakṣīṇasakalāmayaḥ | atyantāstaṃ gatamanā bhavati jñō mahodayāḥ || 27 ||

Filled with bliss within, every ailment of his completely gone, his mind fully set at rest, the wise man becomes truly great.

भीतर से पूरी तरह आनंद से भरा हुआ, जिसका हर रोग पूरी तरह मिट चुका है, जिसका मन पूरी तरह शांत हो चुका है, ऐसा ज्ञानी सचमुच महान बन जाता है।

5.70.28

तत्रस्थो ज्ञः प्रमुदितः परमानन्दघूर्णितः । लीलामिवेमां रचनां सदा समनुपश्यति ॥ २८ ॥

tatrasthō jñāḥ pramuditaḥ paramānandaghūrṇitaḥ | līlāmivēmāṃ racanāṃ sadā samanupaśyati || 28 ||

Established there, the joyful knower, swaying in supreme bliss, always sees this whole creation as if it were a game.

उस अवस्था में टिका हुआ, आनंदित ज्ञानी, परम आनंद में झूमता हुआ, इस पूरी सृष्टि को हमेशा एक खेल की तरह देखता है।

5.70.29

वीतशोकभयायासो गतसंसारसंभ्रमः । तुर्यावस्थामुपारूढो भूयः पतति नात्मवान् ॥ २९ ॥

vītaśokabhayāyāsō gatasaṃsārasaṃbhramaḥ | turyāvasthāmupārūḍhō bhūyaḥ patati nātmavān || 29 ||

Free from grief, fear, and struggle, the confusion of worldly life gone, the self-possessed man who has risen to the Fourth state does not fall back again.

शोक, भय और थकान से मुक्त, संसार की सारी उलझन जिसकी मिट चुकी है, ऐसा आत्मवान व्यक्ति जब चौथी अवस्था पर चढ़ जाता है, तो फिर कभी नीचे नहीं गिरता।

5.70.30

प्राप्य स्वां पदवीं पुण्यां यथेदं भ्रमितं जगत् । शैलसंस्थ इवाधःस्थं हसन्पश्यति धीरधीः ॥ ३० ॥

prāpya svāṃ padavīṃ puṇyāṃ yathedaṃ bhramitaṃ jagat | śailasaṃstha ivādhaḥsthaṃ hasanpaśyati dhīradhīḥ || 30 ||

Having reached his own sacred state, the steady-minded man, like one standing on a mountain looking down, watches this whole deluded world wandering below, and laughs.

अपनी उस पवित्र अवस्था को पाकर, धीर बुद्धि वाला व्यक्ति, पहाड़ पर खड़े होकर नीचे देखने वाले की तरह, इस भरमाई हुई दुनिया को नीचे भटकते देखकर हँसता है।

5.70.31

अस्यां तु तुर्यावस्थायां स्थितिं प्राप्याविनाशिनीम् । आनन्दैकान्तलीनत्वादनानन्दपदं गतः ॥ ३१ ॥

asyaam tu turyaavasthaayaam sthitim praapyaavinaashinim | aanandaikaantalinatvaadanaanandapadam gatah || 31 ||

In this Fourth state, having reached that imperishable condition, because he is dissolved wholly and only in bliss, he passes into the state beyond even bliss.

इस चौथी अवस्था में उस अविनाशी स्थिति को पाकर, जब वह पूरी तरह सिर्फ आनंद में ही डूब जाता है, तो वह आनंद से भी आगे की अवस्था में पहुँच जाता है।

5.70.32

अनानन्दमहानन्दकलातीतस्ततोऽपि हि । मुक्त इत्युच्यते योगी तुर्यातीतं पदं गतः ॥ ३२ ॥

anaanandamahaanandakalaateetastatoapi hi | mukt ityuchyate yogi turyaatitam padam gatah || 32 ||

The yogi who has passed beyond even a trace of both no-bliss and great bliss, and beyond that too, is called liberated — he has reached the state beyond the Fourth.

जो योगी न-आनंद और महान आनंद, दोनों के हल्के-से अंश से भी आगे निकल चुका है, और उससे भी आगे बढ़ चुका है, उसे मुक्त कहा जाता है — वह चौथी अवस्था से भी आगे की स्थिति को पा चुका होता है।

5.70.33

परिगलितसमस्तजन्मपाशः सकलविलीनतमोमयाभिमानः । परमरसमयीं प्रयाति सत्तां जलगतसैन्धवखण्डवन्महात्मा ॥ ३३ ॥

parigalitasamastajanmapaashah sakalaviliinatamomayaabhimaanah | paramarasamayim prayati sattaam jalagatasaindhavakhandavanmahaatmaa || 33 ||

All the bonds of rebirth completely melted away, all his dark self-pride completely dissolved, the great soul passes into the being that is made of supreme essence, like a lump of salt that has dissolved into water.

जन्म-मरण के सारे बंधन पूरी तरह गल चुके, अंधकार से भरा हर अहंकार पूरी तरह घुल चुका — ऐसी महान आत्मा उस परम रस से भरी सत्ता में वैसे ही मिल जाती है, जैसे नमक का टुकड़ा पानी में घुल जाता है।

Chapter 71

5.71.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । यावत्तुर्यपरामर्शस्तावत्केवलतापदम् । जीवन्मुक्तस्य विषयो वचसां च रघूद्वह ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yāvatturyaparāmarśastāvatkevalatāpadam | jīvanmuktasya viṣayo vacasāṃ ca raghūdvaha || 1 ||

Sri Vasishtha said: as long as there is still thought about the fourth state, that itself is only the state called aloneness. This belongs to one who is freed while still alive, and it is something words can speak of, O best of the Raghu line.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जब तक चौथी अवस्था के बारे में सोच बनी रहती है, तब तक वह केवल अकेलेपन की अवस्था है। यह उस व्यक्ति की बात है जो जीते जी मुक्त हो गया है, और यह शब्दों में कही जा सकती है, हे रघुकुल के श्रेष्ठ।

5.71.2

अत ऊर्ध्वमदेहानां मुक्तानां वचसा तथा । विषयो न महाबाहो पुरुषाणामिवाम्बरम् ॥ २ ॥

ata ūrdhvamadehānāṃ muktānāṃ vacasā tathā | viṣayo na mahābāho puruṣāṇāmivāmbaram || 2 ||

Beyond this point, for those who are freed and without a body, it is no longer something words can speak of, O mighty-armed one, just as the sky is not something a man can hold.

इससे आगे, जो लोग मुक्त हो चुके हैं और जिनका अब कोई शरीर नहीं, उनके लिए यह अवस्था शब्दों में कही ही नहीं जा सकती, हे बलवान भुजाओं वाले, जैसे आकाश किसी मनुष्य के हाथ में नहीं आता।

5.71.3

सा हि विश्रान्तिपदवी दूरेभ्योऽपि दवीयसी । गम्या विदेहमुक्तानां खलेखेव नभस्वताम् ॥ ३ ॥

sā hi viśrāntipadavī dūrebhyo'pi davīyasī | gamyā videhamuktānāṃ khalekheva nabhasvatām || 3 ||

That resting place is farther away than the farthest thing, and yet those who are freed and without a body can reach it, like a track through the sky that only the wind can travel.

वह विश्राम का स्थान सबसे दूर की चीज़ से भी दूर है, फिर भी जो मुक्त हो चुके हैं और जिनका शरीर नहीं रहा, वे वहाँ तक पहुँच जाते हैं, जैसे आकाश में बना वह रास्ता जिस पर केवल हवा ही चल पाती है।

5.71.4

सुषुप्तावस्थया कंचित्कालं भुक्त्वा जगत्स्थितिम् । तुर्यतामेति तदनु परमानन्दघूर्णितः ॥ ४ ॥

suṣuptāvasthayā kañcitkālaṃ bhuktvā jagatsthitim | turyatāmeti tadanu paramānandaghūrṇitaḥ || 4 ||

For some time he lives through the world as if in deep sleep, and then after that he enters the fourth state, swaying in the deepest joy.

कुछ समय तक वह संसार को गहरी नींद जैसी अवस्था में जीता है, और फिर उसके बाद वह चौथी अवस्था में पहुँच जाता है, गहरे आनंद में झूमता हुआ।

5.71.5

तुर्यातीतदशां तज्ज्ञा यथा यान्त्यात्मकोविदाः । तथाधिगच्छ निर्द्वन्द्वं पदं रघुकुलोद्वह ॥ ५ ॥

turyātītadaśāṃ tajjñā yathā yāntyātmakovidāḥ | tathādhigaccha nirdvandvaṃ padaṃ raghukulodvaha || 5 ||

Just as those who know it, the ones wise in the self, go on to reach the state beyond the fourth, so may you too attain that state which has no opposites, O best of the Raghu line.

जैसे जो लोग इसे जानते हैं, जो आत्मा में निपुण हैं, चौथी अवस्था से भी आगे की अवस्था तक पहुँच जाते हैं, वैसे ही तुम भी उस अवस्था को पा लो जिसमें कोई द्वंद्व नहीं है, हे रघुकुल के श्रेष्ठ।

5.71.6

सुषुप्तावस्थया राम भव संव्यवहारवान् । चित्रेन्दोरिव ते न स्तः क्षयोद्वेगावरिन्दम ॥ ६ ॥

suṣuptāvasthayā rāma bhava saṃvyavahāravān | citrendoriva te na staḥ kṣayodvegāvarindama || 6 ||

Rama, go on dealing with the world as though you were in deep sleep. Like a painted moon, you have no waning and no distress, O tamer of enemies.

राम, संसार का सारा व्यवहार ऐसे करते रहो जैसे तुम गहरी नींद में हो। जैसे चित्र में बना चाँद न घटता है न बेचैन होता है, वैसे ही तुम्हें भी न कोई घटाव है न कोई बेचैनी, हे शत्रुओं को वश में करने वाले।

5.71.7

शरीरसंनिवेशस्य क्षये स्थैर्ये च संविदः । मा गृहाण भ्रमो ह्येष शरीरमिति जृम्भते ॥ ७ ॥

śarīrasaṃniveśasya kṣaye sthairye ca saṃvidaḥ | mā gṛhāṇa bhramo hyeṣa śarīramiti jṛmbhate || 7 ||

Do not believe that when this body's frame breaks down or holds together, awareness itself breaks down or holds together. That belief is nothing but delusion swelling up as the thought, this is the body.

यह मत मानो कि जब यह शरीर का ढांचा टूटता है या बना रहता है, तो चेतना भी टूटती या बनी रहती है। यह सोच केवल एक भ्रम है जो यही शरीर है, इस विचार के रूप में फैलता है।

5.71.8

देहनाशेन कोऽर्थस्ते कोऽर्थस्ते देहसंस्थया । भव त्वं प्रकृतारम्भस्तिष्ठत्वेष यथास्थितम् ॥ ८ ॥

dehanāśena ko'rthaste ko'rthaste dehasaṃsthayā | bhava tvaṃ prakṛtārambhastiṣṭhatveṣa yathāsthitam || 8 ||

What do you gain from the body's destruction? What do you gain from the body's lasting? Go on with what you have already begun. Let the body remain just as it is.

शरीर के नाश से तुम्हें क्या मिलेगा? शरीर के बने रहने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम जो कर रहे हो वही करते रहो, शरीर जैसा है वैसा ही रहने दो।

5.71.9

ज्ञातवानसि तत्सत्यं बुद्धवानसि तत्पदम् । प्राप्तवानसि रूपं स्वं विशोको भव भूतये ॥ ९ ॥

jñātavānasi tatsatyaṃ buddhvānasi tatpadam | prāptavānasi rūpaṃ svaṃ viśoko bhava bhūtaye || 9 ||

You have known that truth, you have understood that state, you have reached your own true form. Now be free of grief, for your own good.

तुमने वह सच्चाई जान ली है, तुमने वह अवस्था समझ ली है, तुम अपने असली रूप को पा चुके हो। अब अपने ही भले के लिए शोक छोड़ दो।

5.71.10

ईप्सितानीप्सितं त्यक्त्वा शीतलालोकशोभया । अन्धकारात्तथाम्भोदान्मुक्तं खमिव शोभते ॥ १० ॥

īpsitānīpsitaṃ tyaktvā śītalālokaśobhayā | andhakārāttathāmbhodānmuktaṃ khamiva śobhate || 10 ||

Having let go of both what he wants and what he does not want, he shines with the beauty of a cool light, like the sky that is free of darkness and free of clouds too.

जो चाहा और जो नहीं चाहा, दोनों को छोड़कर, वह एक शीतल प्रकाश की सुंदरता से चमकता है, जैसे वह आकाश जो अंधकार से भी मुक्त है और बादलों से भी मुक्त है।

5.71.11

मनस्तवात्मसंपन्नं नाधः समनुधावति । योगमन्त्रतपःसिद्धः पुरुषः खादिवावनिम् ॥ ११ ॥

manastavātmasaṃpannaṃ nādhaḥ samanudhāvati | yogamantratapaḥsiddhaḥ puruṣaḥ khādivāvanim || 11 ||

Your mind, once it is filled with the self, does not run down to lower things, just as a man made perfect through yoga, sacred chanting and hard practice does not come down from the sky to the earth.

तुम्हारा मन, जब आत्मा से भर जाता है, तो नीचे की ओर नहीं भागता, ठीक वैसे ही जैसे योग, मंत्र और तपस्या से सिद्ध हुआ पुरुष आकाश से धरती पर नीचे नहीं आता।

5.71.12

इह शुद्धा चिदेवास्ति पारावारविवर्जिता । अयं सोऽहमिदं तन्म इति ते मास्तु विभ्रमः ॥ १२ ॥

iha śuddhā cidevāsti pārāvāravivarjitā | ayaṃ so'hamidaṃ tanma iti te māstu vibhramaḥ || 12 ||

Here there is only pure awareness, without any limit, without a near shore or a far shore. Do not fall into the confusion of thinking, this is that, I am this, or that is mine.

यहाँ केवल शुद्ध चेतना है, जिसकी कोई सीमा नहीं, जिसका न कोई इस पार है न उस पार। तुम इस भ्रम में मत पड़ो कि यह वह है, मैं यह हूँ, या वह मेरा है।

5.71.13

आत्मेति व्यवहारार्थमभिधा कल्पिता विभोः । नामरूपादिभेदस्तु दूरमस्मादलं गतः ॥ १३ ॥

ātmeti vyavahārārthamabhidhā kalpitā vibhoḥ | nāmarūpādibhedastu dūramasmādalam gataḥ || 13 ||

The word self is just a name, made up so that we can speak of the boundless one in everyday talk. The difference of name and shape stands very far away from it.

आत्मा शब्द तो बस एक नाम है, जो उस असीम को रोज़मर्रा की बातचीत में कहने के लिए बना लिया गया है। नाम और रूप का यह भेद उससे बहुत दूर की बात है।

5.71.14

जलमेव यथाम्भोधिर्न तरङ्गादिकं पृथक् । आत्मैवेदं तथा सर्वं न भूतोयादिकं पृथक् ॥ १४ ॥

jalameva yathāmbhodhirna taraṅgādikaṃ pṛthak | ātmaivedaṃ tathā sarvaṃ na bhūtoyādikaṃ pṛthak || 14 ||

Just as the ocean is nothing but water, and its waves are not separate from it, so too all this is nothing but the self, and the elements and beings are not separate from it.

जैसे समुद्र पानी के सिवा कुछ नहीं है, और उसकी लहरें उससे अलग नहीं हैं, वैसे ही यह सब कुछ आत्मा के सिवा कुछ नहीं है, और तत्व तथा प्राणी उससे अलग नहीं हैं।

5.71.15

यथा समस्ताज्जलधौ जलादन्यन्न लभ्यते । तथैव जगतः स्फारादात्मनोऽन्यन्न लभ्यते ॥ १५ ॥

yathā samastājjaladhau jalādanyannna labhyate | tathaiva jagataḥ sphārādātmano'nyannna labhyate || 15 ||

Just as nowhere in the whole ocean can anything be found except water, so nowhere in the whole spread of the world can anything be found except the self.

जैसे पूरे समुद्र में कहीं भी पानी के अलावा कुछ नहीं मिलता, वैसे ही पूरे संसार के फैलाव में कहीं भी आत्मा के अलावा कुछ नहीं मिलता।

5.71.16

अयं सोऽहमिति प्राज्ञ क्व करोषि व्यवस्थितिम् । किं तत्त्वं किं च वा ते स्यात्किं तत्त्वं किं च वा न ते ॥ १६ ॥

ayaṃ so'hamiti prājña kva karoṣi vyavasthitim| kiṃ tattvaṃ kiṃ ca vā te syātkiṃ tattvaṃ kiṃ ca vā na te || 16 ||

O wise one, where can you even fix the thought, this is that, I am this? What could be true for you, and what could be untrue for you?

हे बुद्धिमान, तुम यह विचार कहाँ टिकाओगे कि यह वह है, मैं यह हूँ? तुम्हारे लिए सच क्या हो सकता है, और झूठ क्या हो सकता है?

5.71.17

न द्वित्वमस्ति नो देहाः संबन्धो न च तैः स्थितः । संभाव्यते कलङ्को वा भानोरिव तमःपटैः ॥ १७ ॥

na dvitvamasti no dehāḥ saṃbandho na ca taiḥ sthitaḥ| saṃbhāvyate kalaṅko vā bhānoriva tamaḥpaṭaiḥ || 17 ||

There is no twoness, there are no bodies, and no bond is ever formed with them. A stain is imagined on it, the way clouds of darkness seem to stain the sun.

न कोई दोहरापन है, न कोई शरीर है, और न उनसे कभी कोई नाता बनता है। उस पर एक दाग की कल्पना कर ली जाती है, जैसे अंधकार के बादल सूरज पर दाग लगाते हुए दिखते हैं।

5.71.18

द्वित्वमभ्युपगम्यापि कथयामि तवारिहन् । देहादिभिः सद्भिरपि न संबन्धो विभोर्भवेत् ॥ १८ ॥

dvitvamabhyupagamyāpi kathayāmi tavārihan| dehādibhiḥ sadbhirapi na saṃbandho vibhorbhavet || 18 ||

Even if I grant that there is twoness, I tell you, O slayer of enemies, even if the body and the rest truly existed, there could still be no bond with the boundless one.

चाहे मैं मान भी लूँ कि दोहरापन है, फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ, हे शत्रुओं का नाश करने वाले, शरीर आदि सच में हों तब भी उस असीम से उनका कोई नाता नहीं बन सकता।

5.71.19

छायातपप्रसरयोः प्रकाशतमसोर्यथा । न संभवति संबन्धस्तथा वै देहदेहिनोः ॥ १९ ॥

chāyātapaprasarayoḥ prakāśatamasoryathā| na saṃbhavati saṃbandhas tathā vai dehadehinoḥ || 19 ||

Just as shade and sunlight can never mix, and light and darkness can never join, so too the body and the one who lives inside it can never be joined.

जैसे छाया और धूप कभी मिल नहीं सकते, और उजाला और अंधेरा कभी जुड़ नहीं सकते, वैसे ही शरीर और उसमें रहने वाला कभी जुड़ नहीं सकते।

5.71.20

यथा शीतोष्णयोर्नित्यं परस्परविरुद्धयोः। न संभवति संबन्धो राम देहात्मनोस्तथा ॥ २० ॥

yathā śītoṣṇayornityaṃ parasparaviruddhayoḥ| na saṃbhavati saṃbandho rāma dehātmanostathā || 20 ||

Just as cold and heat are always opposed to each other and can never be joined, so it is, Rama, between the body and the self.

जैसे ठंड और गर्मी हमेशा एक-दूसरे के विपरीत रहते हैं और कभी जुड़ नहीं सकते, वैसे ही, राम, शरीर और आत्मा के बीच भी है।

5.71.21

अविनाभाविनोर्यस्तु संबन्धः कथमेतयोः। जडचेतनयोर्देहदेहिनोरनुभूयते ॥ २१ ॥

avinābhāvino ryastu saṃbandhaḥ kathametayoḥ| jaḍacetanayordehadēhinoranubhūyatē || 21 ||

Then how is a bond even felt between these two, the unconscious body and the conscious self, which never seem to appear apart from one another?

फिर इन दोनों के बीच कोई नाता कैसे महसूस होता है, जड़ शरीर और चेतन आत्मा के बीच, जो एक-दूसरे से कभी अलग होते हुए नहीं दिखते?

5.71.22

चिन्मात्रस्यात्मनो देहसंबन्ध इति या कथा। सैषा दुरवबोधार्था दावाग्नौ जलधिर्यथा ॥ २२ ॥

cinmātrasya ātmano dēhasaṃbandha iti yā kathā| saiṣā duravabōdhārthā dāvāgnau jaladhiryathā || 22 ||

The claim that the self, which is pure awareness, is bound to a body, this claim is as hard to make sense of as saying there is an ocean inside a forest fire.

यह कहना कि आत्मा, जो शुद्ध चेतना है, शरीर से बंधी है, इस बात को समझ पाना उतना ही कठिन है जितना यह कहना कि जंगल की आग के भीतर एक समुद्र है।

5.71.23

सत्यावलोकनेनैषा मिथ्यादृष्टिर्विनश्यति। अवलोकनया साम्यमातपे जलधिर्यथा ॥ २३ ॥

satyāvalōkanēnēṣā mithyādṛṣṭirvinaśyati| avalōkanayā sāmyamātapē jaladhiryathā || 23 ||

When the truth is seen, this false view disappears, just as a mirage of water in the sun's heat disappears the moment it is looked at closely.

जब सच्चाई दिख जाती है, तो यह झूठी सोच मिट जाती है, ठीक वैसे ही जैसे धूप की गर्मी में दिखने वाला पानी का मृगजल पास से देखने पर मिट जाता है।

5.71.24

चिदात्मा निर्मलो नित्यः स्वावभासो निरामयः। देहस्त्वनित्यो मलवांस्तेन संबध्यते कथम् ॥ २४ ॥

cidātmā nirmalo nityaḥ svāvabhāso nirāmayaḥ| dēhas tv anityo malavānstēna saṃbadhyatē katham || 24 ||

The self, which is pure awareness, has no stain, is everlasting, shines by itself, and is free of any flaw. The body, however, does not last, and is full of impurity. How then could the self ever be joined to it?

आत्मा, जो शुद्ध चेतना है, बेदाग़ है, सदा रहने वाली है, खुद चमकती है, और किसी दोष से रहित है। शरीर तो नाशवान है और गंदगी से भरा है। फिर आत्मा उससे कैसे जुड़ सकती है?

5.71.25

स्पन्दमायाति वातेन भूतैर्वा पीवरीकृतः। देहस्तेन न संबन्धो मनागेव सहात्मना ॥ २५ ॥

spandamāyāti vātēna bhūtairvā pīvarīkṛtaḥ| dēhas tēna na saṃbandhaḥ manāgēva sahātmanā || 25 ||

The body moves because of wind, and it grows solid because of the elements. Through all that, the body has not even the slightest connection with the self.

शरीर हवा के कारण हिलता है, और तत्वों के कारण मोटा-भारी बनता है। इस सबसे शरीर का आत्मा से रत्ती भर भी नाता नहीं जुड़ता।

5.71.26

सिद्धे द्वित्वेऽपि देहस्य न संबन्धस्य संभवःद्वित्वासिद्धौ तु सुमते कलनैवेदृशी कुतः ॥ २६ ॥

siddhe dvitve'pi dehasya na saṃbandhasya saṃbhavaḥdvitvāsiddhau tu sumate kalanaivedṛśī kutaḥ || 26 ||

Even if it were true that the body and the self are two separate things, no real bond between them would be possible. And since their being two separate things cannot even be proved, wise one, how could such a bond exist at all?

अगर यह मान भी लिया जाए कि शरीर और आत्मा दो अलग चीज़ें हैं, तो भी उनमें सच्चा नाता संभव नहीं है। और जब उनका अलग-अलग होना ही सिद्ध नहीं होता, हे बुद्धिमान, तो ऐसा नाता हो ही कैसे सकता है?

5.71.28

सर्वमात्ममयं शान्तमित्येवं प्रत्ययं स्फुटम्सबाह्याभ्यन्तरं राम सर्वत्र दृढतां नय ॥ २८ ॥

sarvamātmamayaṃ śāntamityevaṃ pratyayaṃ sphuṭamsabāhyābhyantaraṃ rāma sarvatra dṛḍhatāṃ naya || 28 ||

Everything is peaceful and made only of the self. Rama, make this clear conviction firm everywhere, both outside and inside.

सब कुछ शांत है और सिर्फ आत्मा से बना है। हे राम, इस साफ विश्वास को हर जगह, बाहर और भीतर दोनों तरफ, पक्का कर लो।

5.71.29

सुखी दुःखी विमूढोऽस्मीत्येता दुर्दृष्टयः स्मृताःआसु चेद्वस्तुबुद्धिस्ते तच्चिरं दुःखमिच्छसि ॥ २९ ॥

sukhī duḥkhī vimūḍho'smītyetā durdṛṣṭayaḥ smṛtāḥāsu cedvastubuddhiste tacciraṃ duḥkhamicchasi || 29 ||

I am happy, I am sad, I am confused — these are known as false views. If you take them to be real, you are choosing long-lasting suffering for yourself.

मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं उलझा हुआ हूं, ये सब गलत नज़रिए कहलाते हैं। अगर तुम इन्हें सच मान लेते हो, तो तुम खुद लंबे समय के दुख को न्योता दे रहे हो।

5.71.30

यः क्रमः शैलतृणयोः कौशेयोपलयोस्तथासाम्यं प्रति स एवोक्तः परमात्मशरीरयोः ॥ ३० ॥

yaḥ kramaḥ śailatṛṇayoḥ kauśeyopalayostathāsāmyaṃ prati sa evoktaḥ paramātmaśarīrayoḥ || 30 ||

The same amount of likeness that a mountain has to a blade of grass, or that silk has to a stone, is the same amount of likeness that the supreme self has to the body.

पहाड़ और तिनके में, या रेशम और पत्थर में जितनी समानता है, उतनी ही समानता परम आत्मा और शरीर में है।

5.71.31

यथा तेजस्तिमिरयोर्न संबंधो न तुल्यतात्यंतभिन्नयो राम तथैवात्मशरीरयोः ॥ ३१ ॥

yathā tejastimirayorna saṃbandho na tulyatāatyantabhinnayo rāma tathaivātmaśarīrayoḥ || 31 ||

Just as light and darkness, being completely different from each other, have no connection and no likeness between them, Rama, it is exactly the same between the self and the body.

जैसे उजाले और अंधेरे में, जो एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं, न कोई नाता है और न कोई समानता, हे राम, ठीक वैसे ही आत्मा और शरीर के बीच भी है।

5.71.32

यथा शीतोष्णयोरैक्यं कथास्वपि न दृश्यते । जडप्रकाशयोः श्लेषो न तथात्मशरीरयोः ॥ ३२ ॥

yathā śītoṣṇayoraiakyaṃ kathāsvapi na dṛśyate | jaḍaprakāśayoḥ śleṣo na tathātmaśarīrayoḥ || 32 ||

Just as cold and heat are never seen to become one, not even in stories, in the same way lifeless matter and shining awareness are never seen to join. That is how it is between the body and the self.

जैसे ठंड और गर्मी कभी एक नहीं होते, कहानियों में भी नहीं, वैसे ही निर्जीव चीज़ और चमकती चेतना कभी नहीं जुड़ते। शरीर और आत्मा के बीच भी ऐसा ही है।

5.71.33

देहश्चलति वातेन तेनैवायाति गच्छति । शब्दं करोति वातेन देहनाडीविलासिना ॥ ३३ ॥

dehaścalati vātena tenaivāyāti gacchati | śabdaṃ karoti vātena dehanāḍīvilāsinā || 33 ||

The body moves because of wind, and by that same wind it comes and goes. It also makes sound, through the wind playing in the channels of the body.

शरीर हवा के कारण हिलता है, और उसी हवा से वह आता-जाता है। शरीर की नाड़ियों में खेलती हुई हवा से ही वह आवाज़ भी करता है।

5.71.34

शब्दः कचटतप्रायः स्फुरत्यन्तः समीरणैः । यथा प्रजायते वंशाद्देहरन्ध्रात्तथैव हि ॥ ३४ ॥

śabdaḥ kacaṭataprāyaḥ sphuratyantaḥ samīraṇaiḥ | yathā prajāyate vaṃśāddderandhrāttathaiva hi || 34 ||

Sound, made mostly of consonants, rises up inside through the movement of breath. Just as sound comes out of a bamboo flute, in the same way it comes out of the openings of the body.

आवाज़, जो ज़्यादातर व्यंजनों से बनती है, भीतर सांस की हलचल से उठती है। जैसे बांसुरी से आवाज़ निकलती है, वैसे ही शरीर के छिद्रों से भी आवाज़ निकलती है।

5.71.35

कनीनिकापरिस्पन्दश्चक्षुःस्पन्दस्य मारुतात् । इन्द्रियस्फुरणात्सैव संवित्केवलमात्मनः ॥ ३५ ॥

kanīnikāparispandaścakṣuḥspandasya mārutāt | indriyasphuraṇātsaiva saṃvitkevalamātmanaḥ || 35 ||

The movement of the pupil, and the movement of the eye, come from the air of the breath. Whatever flashes forth through the senses is only the pure awareness of the self.

आंख की पुतली का हिलना और आंख का हिलना, सांस की हवा से होता है। इंद्रियों में जो कुछ भी अनुभव के रूप में उभरता है, वह सिर्फ आत्मा की शुद्ध चेतना है।

5.71.36

आकाशोपलकुड्यादौ सर्वत्रात्मदशा स्थिता । प्रतिबिम्बमिवादर्शे चित्त एवात्र दृश्यते ॥ ३६ ॥

ākāśopalakuḍyādau sarvatrātmadaśā sthitā | pratibimbamivādarśe citta evātra dṛśyate || 36 ||

In the sky, in stone, in a wall, and everywhere else, the presence of the self is there. But like a reflection in a mirror, what is actually seen here is only the mind.

आकाश में, पत्थर में, दीवार में और हर जगह आत्मा की मौजूदगी है। लेकिन जैसे आईने में परछाई दिखती है, वैसे ही यहां असल में सिर्फ मन ही दिखता है।

5.71.37

शरीरालयमुत्सृज्य यत्र चित्तविहंगमः । स्ववासनावशाद्याति तत्रैवात्मानुभूयते ॥ ३७ ॥

śarīrālayamutsṛjya yatra cittavihangamaḥ | svavāsanāvaśādyāti tatraivātmānubhūyate || 37 ||

Once it leaves its home, the body, wherever the bird of the mind flies, driven by its own desires, the self is experienced right there.

अपना घर यानी शरीर छोड़कर, मन रूपी पंछी अपनी इच्छाओं के वश में होकर जहां भी उड़ता है, वहीं आत्मा का अनुभव होता है।

5.71.38

यत्र पुष्पं तत्र गन्धसंविदः संस्थिता यथा । यत्र चित्तं हि तत्रात्मसंविदः संस्थितास्तथा ॥ ३८ ॥

yatra puṣpaṃ tatra gandhasaṃvidaḥ saṃsthitā yathā | yatra cittaṃ hi tatrātmasaṃvidaḥ saṃsthitāstathā || 38 ||

Just as the smell of a flower is found wherever the flower is, in the same way the awareness of the self is found wherever the mind is.

जैसे फूल की खुशबू वहीं मिलती है जहां फूल होता है, वैसे ही आत्मा का एहसास वहीं होता है जहां मन होता है।

5.71.39

सर्वत्र स्थितमाकाशमादर्शे प्रतिबिम्बति । यथा तथात्मा सर्वत्र स्थितश्चेतसि दृश्यते ॥ ३९ ॥

sarvatra sthitamākāśamādarśe pratibimbiti | yathā tathātmā sarvatra sthitaścetasi dṛśyate || 39 ||

Just as the sky, though it is everywhere, is reflected only in a mirror, in the same way the self, though it is everywhere, is seen only in the mind.

जैसे आकाश हर जगह है, फिर भी वह सिर्फ आईने में झलकता है, वैसे ही आत्मा हर जगह है, फिर भी वह सिर्फ मन में ही दिखती है।

5.71.40

अपामवनतं स्थानमास्पदं भूतले यथा । अन्तःकरणमेवात्मसंविदामास्पदं तथा ॥ ४० ॥

apāmavanataṃ sthānamāspadaṃ bhūtale yathā | antaḥkaraṇamevātmasaṃvidāmāspadaṃ tathā || 40 ||

Just as water settles and stays in a low place on the ground, in the same way the awareness of the self settles and stays only in the inner mind.

जैसे पानी ज़मीन की नीची जगह में इकट्ठा होकर टिकता है, वैसे ही आत्मा की चेतना सिर्फ भीतरी मन में ही टिकती है।

5.71.41

सत्यासत्यं जगद्रूपमन्तःकरणबिम्बिता । आत्मसंवित्तनोतीदमालोकमिव सूर्यभा ॥ ४१ ॥

satyāsatyam jagadrūpamantaḥkaraṇabimbitā | ātmasaṃvittanotīdamālokamiva sūryabhā || 41 ||

The form of the world, which is both real and unreal, is reflected in the inner mind. It is the awareness of the self that spreads this out, the way sunlight spreads its light.

जगत का रूप, जो सच्चा भी है और झूठा भी, भीतरी मन में झलकता है। आत्मा की चेतना ही इसे फैलाती है, जैसे सूरज की रोशनी उजाला फैलाती है।

5.71.42

अन्तःकरणमेवातः कारणं भूतसंसृतौ आत्मा सर्वातिगत्वात्तु कारणं सदकारणम् ॥ ४२ ॥

antaḥkaraṇamevātaḥ kāraṇaṃ bhūtasaṃsṛtau ātmā sarvātigatvāttu kāraṇaṃ sadakāraṇam || 42 ||

So it is the inner mind alone that is the cause of the coming and going of beings through birth after birth. The self, since it goes beyond everything, may be called a cause, but it is really no cause at all.

इसलिए जीवों के जन्म-मरण के चक्र का कारण सिर्फ भीतरी मन है। आत्मा, चूंकि वह हर चीज़ से परे है, उसे कारण कहा जा सकता है, पर असल में वह कोई कारण नहीं है।

5.71.43

अविचारणमज्ञानं मौर्ख्यमाहुर्महाधियः संसारसंसृतौ सारमन्तःकरणकारणम् ॥ ४३ ॥

avicāraṇamajñānaṃ maurkhyamāhurmahādhiyaḥ saṃsārasaṃsṛtau sāramantaḥkaraṇakāraṇam || 43 ||

The wise call the lack of careful thought ignorance and foolishness. In the endless wandering of worldly life, the real cause at its core is the inner mind.

बुद्धिमान लोग बिना सोचे-समझे रहने को ही अज्ञान और मूर्खता कहते हैं। संसार के इस भटकाव का असली और मूल कारण भीतरी मन ही है।

5.71.44

असम्यक्प्रेक्षणान्मोहाच्चेतःसत्तां गृहीतवत् संमोहबीजकणिकां तमोऽर्कादिव दृश्यते ॥ ४४ ॥

asamyakprekṣaṇānmohāc cetḥsattāṃ gṛhītavat saṃmohabījakaṇikāṃ tamo'rkādiva dṛśyate || 44 ||

Through faulty seeing and delusion, the mind seems to have become something truly real. But this tiny seed of confusion appearing real is like darkness appearing to come from the sun.

गलत तरीके से देखने और मोह के कारण मन असली जैसा लगने लगता है। पर मोह का यह छोटा सा बीज इस तरह दिखना, वैसे ही है जैसे अंधेरा सूरज से निकलता दिखे।

5.71.45

यथा भूतात्मतत्त्वैकपरिज्ञानेन राघव असत्तामेत्यलं चेतो दीपेनेव तमः क्षणात् ॥ ४५ ॥

yathā bhūtātmatattvaikaparijñānena rāghava asattāmetyalam cetḥ dīpeneva tamaḥ kṣaṇāt || 45 ||

Just as darkness vanishes in an instant because of a lamp, in the same way, Raghava, through the one true knowledge of the real nature of the self and of all beings, the mind vanishes completely.

जैसे दीये से अंधेरा पल भर में मिट जाता है, वैसे ही, हे राघव, आत्मा और सभी प्राणियों के सच्चे स्वरूप के एक ज्ञान से मन पूरी तरह मिट जाता है।

5.71.46

संसारकारणमितः स्वयं चेतो विचारयेत् जीवोऽन्तःकरणं चित्तं मनश्चेत्यादिनामकम् ॥ ४६ ॥

saṃsārakāraṇamitaḥ svayaṃ cetḥ vichārayet jīvo'ntaḥkaraṇaṃ cittaṃ manaścetyādināmakam || 46 ||

From here on, one should examine for oneself this mind that causes worldly existence, the same thing that is called by names such as jiva, antahkarana, chitta, and manas.

अब आगे, संसार का कारण बनने वाले इस मन की खुद जांच करनी चाहिए, इसी को जीव, अंतःकरण, चित्त और मन जैसे नामों से पुकारा जाता है।

5.71.47

श्रीराम उवाच । एताः संज्ञाः प्रभो ब्रह्मंश्चेतसो रूढिमागताः । कथमित्येव कथय मयि मानद सिद्धये ॥ ४७ ॥

śrīrāma uvāca | etāḥ saṃjñāḥ prabho brahmaṃścetaso rūḍhimāgatāḥ | kathamityeva kathaya mayi mānada siddhaye || 47 ||

Sri Rama said: Lord, knower of Brahman, these are the names that have come into common use for the mind. Tell me exactly how this happened, giver of honor, so that I may understand fully.

श्रीराम ने कहा: हे प्रभु, हे ब्रह्मज्ञानी, मन के लिए ये नाम प्रचलन में आए हैं। हे मान देने वाले, मुझे ठीक-ठीक बताइए कि यह कैसे हुआ, ताकि मैं पूरी तरह समझ सकूं।

5.71.48

श्रीवसिष्ठ उवाच । सर्वे भावा इमे नित्यमात्मतत्वैकरूपिणः । चित्तात्तरङ्गकगणा जलैककलिता यथा ॥ ४८ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | sarve bhāvā ime nityamātmatatvaikarūpiṇaḥ | cittāttarangakagaṇā jalaikakalitā yathā || 48 ||

Sri Vasishtha said: All these many things are, in truth, always nothing but the one reality of the self, just as the many waves that rise up from the mind are all nothing but water.

श्रीवसिष्ठ ने कहा: ये सारी चीज़ें हमेशा असल में आत्मा के एक ही स्वरूप की हैं, ठीक वैसे ही जैसे मन से उठने वाली अनगिनत लहरें असल में सिर्फ पानी ही होती हैं।

5.71.49

आत्मा स्पन्दैकरूपात्मा स्थितस्तेषु क्वचित्क्वचित् । तरङ्गेषु विलोलेषु पयोधेः सलिलं यथा ॥ ४९ ॥

ātmā spandaikarūpātmā sthitasteṣu kvacitkvacit | taraṅgeṣu viloleṣu payodheḥ salilaṃ yathā || 49 ||

The self, whose only form is movement, stays in these things here and there, the way water stays in the restless waves of the sea.

आत्मा, जिसका रूप सिर्फ हलचल है, इन चीज़ों में कहीं-कहीं टिका रहता है, जैसे पानी समुद्र की बेचैन लहरों में टिका रहता है।

5.71.50

क्वचिदस्पन्दरूपात्मा स्थितस्तेषु महेश्वरः । तरङ्गत्वमयातेषु जलभावो जलेष्विव ॥ ५० ॥

kvacidaspandarūpātmā sthitasteṣu maheśvaraḥ | taraṅgatvamayāteṣu jalabhāvo jaleṣviva || 50 ||

In some of these things, the great lord stays with no movement at all in his form, the way water's own nature stays in water that has not turned into a wave.

इन्हीं में से कुछ में, वह महान ईश्वर बिना किसी हलचल के रूप में टिका रहता है, जैसे पानी का अपना स्वभाव उस पानी में टिका रहता है जो अभी लहर नहीं बना।

5.71.51

तत्रोपलादयो भावा अलोलाः स्वात्मनि स्थिताः । सुराफेनवदुत्स्पन्दा लोलास्तु पुरुषादयः ॥ ५१ ॥

tatropalādayo bhāvā alolāḥ svātmani sthitāḥ | surāphenavadutspandā lolāstu puruṣādayaḥ || 51 ||

Among these, things like stone stay still, resting in their own self without any movement, but things like man are restless, surging up like the foam of liquor.

इनमें से पत्थर जैसी चीज़ें बिना हिले-डुले अपने आप में शांत टिकी रहती हैं, लेकिन मनुष्य जैसी चीज़ें बेचैन रहती हैं, शराब के झाग की तरह उठती-गिरती रहती हैं।

5.71.52

तत्र तेषु शरीरेषु सर्वशक्तिस्तदात्मनः। कलिताऽज्ञानकलना तेनाज्ञानमसौ स्थितः ॥ ५२ ॥

tatra teṣu śarīreṣu sarvaśaktistadātmanaḥ| kalitā'jñānakalanā tenājñānamasau sthitaḥ || 52 ||

There, in those bodies, the full power of that same self takes on the working of ignorance, and because of that it comes to stand as ignorance.

वहाँ, उन शरीरों में, उसी आत्मा की पूरी शक्ति अज्ञान का काम अपना लेती है, और इसी वजह से वह अज्ञान बनकर टिक जाती है।

5.71.53

तदज्ञानमनन्तात्मभूषितं जीव उच्यते। स संसारे महामोहमायापञ्जरकुञ्जरः ॥ ५३ ॥

tadajñānamanantātmabhūṣitaṃ jīva ucyate| sa saṃsāre mahāmohamāyāpañjarakuñjaraḥ || 53 ||

That ignorance, decked out with the endless self, is called the living soul. In the round of birth and death, he is an elephant shut inside the cage of the illusion of great delusion.

वह अज्ञान, जो अनंत आत्मा से सजा है, जीव कहलाता है। जन्म-मरण के इस चक्र में, वह महामोह की माया के पिंजरे में बंद हाथी है।

5.71.54

जीवनाज्जीव इत्युक्तोऽहंभावः स्यात्त्वहंतया। बुद्धिर्निश्चायकत्वेन संकल्पकलनान्मनः ॥ ५४ ॥

jīvanājjīva ityukto'haṃbhāvaḥ syāttvahaṃtayā| buddhirniścāyakatvena saṃkalpakalanānmanaḥ || 54 ||

Because he lives, he is called the living soul. Because of the feeling "I am," it becomes the sense of "I." Because it decides, it is called the intellect. Because it forms intentions, it is called the mind.

क्योंकि वह जीता है, इसलिए वह जीव कहलाता है। "मैं हूँ" के भाव से वह अहंकार बन जाता है। क्योंकि वह निश्चय करता है, वह बुद्धि कहलाता है। क्योंकि वह इरादे बनाता है, वह मन कहलाता है।

5.71.55

प्रकृतिः प्रकृतित्वेन देहो दिग्धतया स्थितः। जडः प्रकृतिभावेन चेतनः स्वात्मसत्तया ॥ ५५ ॥

prakṛtiḥ prakṛtitvena deho digdhatayā sthitaḥ| jaḍaḥ prakṛtibhāvena cetanaḥ svātmasattayā || 55 ||

It is called nature by being nature itself. It stands as the body by being coated with that nature. It is called dull matter through the way of nature. It is called conscious through the reality of its own self.

वह प्रकृति होने के कारण प्रकृति कहलाता है। उसी प्रकृति से लिपटे होने के कारण वह शरीर बनकर खड़ा होता है। प्रकृति के स्वभाव के कारण वह जड़ कहलाता है। अपने ही आत्मा की सच्चाई के कारण वह चेतन कहलाता है।

5.71.56

जडाजडदृशोर्मध्यं यत्तत्त्वं पारमात्मिकम्। तदेतदेव नानात्वं नानासंज्ञाभिराततम् ॥ ५६ ॥

jaḍājaḍadṛśormadhyaṃ yattattvaṃ pāramātmikam| tadetadeva nānātvaṃ nānāsaṃjñābhirātatam || 56 ||

The one reality of the highest self, which stands between what is inert and what is conscious, is this very thing spread out into many forms, under many names.

सबसे ऊँची आत्मा की वह एक सच्चाई, जो जड़ और चेतन के बीच खड़ी है, वही यह अनेक रूपों में फैली हुई है, अलग-अलग नामों के साथ।

5.71.57

एवं स्वरूपं जीवस्य बृहदारण्यकादिषु । बहुधा बहुषु प्रोक्तं वेदान्तेषु किलानघ ॥ ५७ ॥

evaṃ svarūpaṃ jīvasya bṛhadāraṇyakādiṣu | bahudhā bahuṣu proktaṃ vedānteṣu kilānagha || 57 ||

In this way, sinless one, the true nature of the living soul is told in many ways, in many Vedanta texts, starting with the Brihadaranyaka.

इस तरह, हे निष्पाप, जीव का असली स्वरूप कई तरह से बताया गया है, कई वेदांत ग्रंथों में, बृहदारण्यक से शुरू करके।

5.71.58

अज्ञैस्त्वेतासु संज्ञासु कुविकल्पकुतार्किकैः । मोहाय केवलं मूढैर्व्यर्थमास्थाः प्रकल्पिताः ॥ ५८ ॥

ajñais tv etāsu saṃjñāsu kuvikalpakutārkikaiḥ | mohāya kevalaṃ mūḍhair vyartham āsthāḥ prakalpitāḥ || 58 ||

But foolish men, poor debaters caught up in bad theories, have built useless beliefs around these names, only to spread confusion.

लेकिन मूर्ख लोग, जो बुरे तर्क और गलत विचारों में उलझे रहते हैं, इन्हीं नामों के आस-पास बेकार की धारणाएँ गढ़ लेते हैं, सिर्फ भ्रम फैलाने के लिए।

5.71.59

एवमेष महाबाहो जीवः संसारकारणम् । मूकेनातिवराकेण देहकेनेह किं कृतम् ॥ ५९ ॥

evam eṣa mahābāho jīvaḥ saṃsārakāraṇam | mūkenātivarākeṇa dehakena iha kiṃ kṛtam || 59 ||

So, mighty-armed one, it is this living soul that is the cause of the cycle of birth and death. What has the poor mute little body done here?

इसलिए, हे बलशाली, यही जीव जन्म-मरण के चक्र का कारण है। इस बेचारे गूंगे छोटे से शरीर ने भला यहाँ क्या किया है?

5.71.60

आधाराधेययोरेकनाशे नान्यस्य नष्टता । यथा तथा शरीरादिनाशे नात्मनि नष्टता ॥ ६० ॥

ādhārādheyayorekanāśe nānyasya naṣṭatā | yathā tathā śarīrādināśe nātmani naṣṭatā || 60 ||

When one of two things, the support and the thing it supports, is destroyed, the other is not destroyed because of that. In the same way, when the body and such are destroyed, the self is not destroyed.

जब आधार और उस पर टिकी चीज़, इन दोनों में से एक नष्ट होती है, तो दूसरी उससे नष्ट नहीं होती। उसी तरह, जब शरीर वगैरह नष्ट होते हैं, तो आत्मा नष्ट नहीं होती।

5.71.61

एकपर्णरसे क्षीणे रसो नैति यथा क्षयम् । याति पर्णरसश्चार्करश्मिजालान्तरे यथा ॥ ६१ ॥

ekaparṇarase kṣīṇe raso naiti yathā kṣayam | yāti parṇarasaścārkararśmijālāntare yathā || 61 ||

Just as when the moisture of one leaf dries up, that moisture is not destroyed, it only passes into the web of the sun's rays.

जैसे जब एक पत्ते की नमी सूख जाती है, तो वह नमी नष्ट नहीं होती, वह बस सूरज की किरणों के जाल में समा जाती है।

5.71.62

शरीरसंक्षये देही न क्षयं याति कस्यचिन्निर्वासनश्चेत्तद्व्योम्नि तिष्ठत्यात्मपदे तथा ॥ ६२ ॥

śarīrasaṃkṣaye dehī na kṣayaṃ yāti kasyacitnirvāsanaścettadvyomni tiṣṭhatyātmapade tathā || 62 ||

When the body perishes, the embodied self does not perish at all. If it is free of desire, then it rests in the sky, that is, in the very state of the self.

जब शरीर नष्ट होता है, तो देही यानी आत्मा बिल्कुल नष्ट नहीं होती। अगर वह इच्छाओं से मुक्त है, तो वह आकाश में टिकती है, यानी आत्मा की अपनी अवस्था में।

5.71.63

देहनाशे विनष्टोऽस्मीत्येवं यस्याऽमतेर्भ्रमःमातुः स्तनतटात्तस्य मन्ये वेताल उत्थितः ॥ ६३ ॥

dehanāśe vinaṣṭo'smītyevaṃ yasyā'materbhramaḥmātuḥ stanataṭāttasya manye vetāla utthitaḥ || 63 ||

The one whose confused thought is this, "I am destroyed when the body is destroyed," in him, I think, a ghoul has risen up right from his mother's breast.

जिसकी सोच में यह भ्रम है कि "शरीर नष्ट होने पर मैं भी नष्ट हो जाता हूँ," मुझे लगता है कि उसमें यह वेताल अपनी माँ की छाती से ही उठ खड़ा हुआ है।

5.71.64

यस्य ह्यात्यन्तिको नाशः स्यादसावुदितः स्मृतःचित्तनाशो हि नाशः स्यात्स मोक्ष इति कथ्यते ॥ ६४ ॥

yasya hyātyantiko nāśaḥ syādasāvuditaḥ smṛtaḥcittanāśo hi nāśaḥ syātsa mokṣa iti kathyate || 64 ||

That which comes to an absolute end is what is truly said to have arisen. The destruction of the mind alone is real destruction; that is called liberation.

जिसका पूरी तरह अंत होता है, उसी को सच में जन्मा हुआ माना जाता है। मन का नष्ट होना ही असली नाश है, उसी को मोक्ष कहा जाता है।

5.71.65

मृतो नष्ट इति प्रोक्तो मन्ये तच्च मृषा ह्यसत्स देशकालान्तरितो भूत्वा भूत्वानुभूयते ॥ ६५ ॥

mṛto naṣṭa iti prokto manye tacca mṛṣā hyasatsa deśakālāntarito bhūtvā bhūtvānubhūyate || 65 ||

The dead is said to be "destroyed." I think that is false and untrue. Moved to another place and another time, he goes on being experienced, coming to be again and again.

मरे हुए को "नष्ट हुआ" कहा जाता है। मुझे लगता है कि यह बात झूठी और गलत है। दूसरी जगह और दूसरे समय में जाकर, वह बार-बार नए रूप में अनुभव किया जाता रहता है।

5.71.66

इहोह्यन्ते जनैरेवं तरङ्गान्तस्तृणैरिवमरणव्यपदेशासु देशकालतिरोहितैः ॥ ६६ ॥

ihohyante janairevaṃ taraṅgāntastṛṇairivamaraṇavyapadeśāsu deśakālatirohitaiḥ || 66 ||

In this way, here, creatures are swept along, like straws caught inside the waves, under the many names given to death, which are really just a hiding through a change of place and time.

इस तरह, यहाँ, जीव बहा दिए जाते हैं, जैसे लहरों में फँसे तिनके, मृत्यु के कई नामों के नीचे, जो असल में सिर्फ जगह और समय के बदलने से छिप जाना है।

5.71.67

वासनावस्थितो जीवो यात्युत्सृज्य शरीरकम्कपिर्वनतरुं त्यक्त्वा तर्वन्तरमिवास्थितः ॥ ६७ ॥

vāsanāvasthito jīvo yātyutsṛjya śarīrakamkapirvanataruṃ tyaktvā tarvantaramivāsthitaḥ || 67 ||

The living soul, resting on its own desires, leaves the little body behind and moves on, like a monkey that leaves one forest tree and settles onto another.

जीव, अपनी वासनाओं के सहारे टिका हुआ, छोटे से शरीर को छोड़कर आगे बढ़ जाता है, जैसे बंदर एक जंगल के पेड़ को छोड़कर दूसरे पेड़ पर जा बैठता है।

5.71.68

पुनस्तदपि संत्यज्य गच्छत्यन्यदपि क्षणात्अन्यस्मिन्विततते देशे कालेऽन्यस्मिंश्च राघव ॥ ६८ ॥

punastadapi saṃtyajya gacchatyanyadapi kṣaṇātanyasminvitate deśe kāle'nyasmiṃśca rāghava || 68 ||

Then, leaving that one too, it goes in a moment to yet another body, in another far-off place, and at another time too, Raghava.

फिर, उसे भी छोड़कर, वह एक पल में किसी और शरीर में चला जाता है, किसी दूर की और जगह में, और किसी और समय में भी, हे राघव।

5.71.69

इतश्चेतश्च नीयन्ते जीवा वासनया स्वयाचिरं तदपिजीविन्या धूर्त्या धात्र्यैव बालकाः ॥ ६९ ॥

itaścetaśca nīyante jīvā vāsanayā svayāciraṃ tadapijīvinyā dhūrtyā dhātryaiva bālakāḥ || 69 ||

The living souls are carried here and there by their own desire, for a long time, like children carried about by a cunning nurse who keeps them alive.

जीव अपनी ही वासना के सहारे इधर-उधर ले जाए जाते हैं, लंबे समय तक, जैसे एक चालाक दाई बच्चों को जिलाए रखते हुए इधर-उधर लिए फिरती है।

5.71.70

वासनारज्जुवलिता जीर्णाः पर्वतकुक्षिषुजरयन्त्यतिदुःखेन जीवितं जीवजीविकाः ॥ ७० ॥

vāsanārajjuvalitā jīrṇāḥ parvatakukṣiṣujarayantyatiduḥkhena jīvitaṃ jīvajīvikāḥ || 70 ||

Bound by the rope of desire, grown old, living creatures wear their lives away in great suffering, even in the hollow caves of mountains.

वासना की रस्सी से बंधे, बूढ़े हो चुके, जीव पहाड़ों की गुफाओं में भी बड़े दुख के साथ अपना जीवन घिसते रहते हैं।

5.71.71

जरठजरदुपोडदुःखभाराः परिणतिजर्जरजीविताश्च सत्यःहृदयजनितवासनानुवृत्त्या नरकभरे जनताश्चिरं पतन्ति ॥ ७१ ॥

jaraṭhajaradupoḍhaduḥkhabhārāḥ pariṇatijarjarajīvitāśca satyaḥhṛdayajanitavāsanānuvṛttyā narakabhare janatāściraṃ patanti || 71 ||

People carry the heavy burden of suffering brought on by harsh old age, their lives worn out by constant change. Through the pull of the desires born in their own hearts, they fall for a long time into a heap of hell.

लोग कठोर बुढ़ापे से आए दुख का भारी बोझ ढोते हैं, बदलाव के मारे उनकी ज़िंदगी घिस चुकी होती है। अपने ही दिल में जन्मी वासनाओं के खिंचाव से, वे लंबे समय तक नर्क के ढेर में गिरते रहते हैं।

5.71.72

श्रीवाल्मीकिरुवाचैत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायंतनाय विधयेऽस्तमिनो जगामस्नातुं सभा कृतनमस्करणा जगाम श्यामाक्षये रविकरैश्च सहाजगाम ॥ ७२ ॥

śrīvālmīkiruvācaityuktavatyatha munau divaso jagāma sāyaṃtanāya vidhaye'stamino jagāmasnātuṃ sabhā kṛtanamaskaraṇā jagāma śyāmākṣaye ravikaraiśca sahājagāma || 72 ||

Sri Valmiki said: When the sage had spoken this, the day passed on. The sun went down for the evening rites. The assembly, having made their bows, went to bathe. And, as the dusk deepened, it came on together with the sun's last rays.

श्री वाल्मीकि ने कहा: जब मुनि ऐसा कह चुके, तो दिन बीत गया। सूरज संध्या की विधि के लिए ढल गया। सभा, प्रणाम करके, नहाने चली गई। और जैसे-जैसे शाम गहरी होती गई, वह सूरज की आख़िरी किरणों के साथ ही आ पहुँची।

Chapter 72

5.72.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । देहे जाते न जातोऽसि देहे नष्टे न नश्यसि । त्वमात्मन्यकलङ्कात्मा देहस्तव न कश्चन ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dehe jāte na jāto'si dehe naṣṭe na naśyasi | tvamātmanyakalaṅkātmā dehastava na kaścana || 1 ||

Sri Vasishtha said: when the body is born, you are not born; when the body dies, you do not die. In yourself you are the stainless self; no body at all belongs to you.

श्री वसिष्ठ ने कहा: शरीर के जन्म लेने से तुम जन्म नहीं लेते, शरीर के नष्ट होने से तुम नष्ट नहीं होते। तुम अपने आप में निर्मल आत्मा हो, कोई भी शरीर तुम्हारा नहीं है।

5.72.2

यः कुण्डबदरन्यायो या घटाकाशसंस्थितिः । तत्रैकस्मिन्क्षते क्षीणे द्वे इति व्यर्थकल्पना ॥ २ ॥

yaḥ kuṇḍabadaranyāyo yā ghaṭākāśasaṃsthitiḥ | tatraikasminkṣate kṣīṇe dve iti vyarthakalpanā || 2 ||

There is the rule of the jujube fruit in the bowl, and the case of the sky shut inside a pot. When one of the two breaks or is lost, to think that both are lost is a useless idea.

जैसे घड़े में रखे बेर का नियम है, और जैसे घड़े में बंद आकाश की बात है, इनमें से एक के टूटने या नष्ट होने पर यह सोचना कि दोनों नष्ट हो गए, एक व्यर्थ कल्पना है।

5.72.3

विनाशिनि विनष्टेऽस्मिन्देहे स्वां स्थितिमागते । विनश्यामीति यः खेदी तं धिगस्त्वन्धचेतसम् ॥ ३ ॥

vināśini vinaṣṭe'smindehe svāṃ sthitimāgate | vinaśyāmīti yaḥ khedī taṃ dhigastvandhacetasam || 3 ||

When this perishable body dies and simply returns to its own natural state, whoever grieves, thinking I am dying, shame on that blind minded person.

जब यह नाशवान शरीर नष्ट होकर अपनी ही मूल अवस्था में लौट जाता है, तब जो व्यक्ति यह सोचकर दुखी होता है कि मैं नष्ट हो रहा हूँ, उस अंधबुद्धि व्यक्ति को धिक्कार है।

5.72.4

यादृशो रश्मिरथयोः स्नेहोद्वेगविवर्जितः । संबन्धस्तादृशो देहचित्तेन्द्रियमुखैश्चितेः ॥ ४ ॥

yādṛśo raśmirathayoḥ snehoudevagavivarjitaḥ | sambandhastādṛśo dehacittendriyamukhaiścitеḥ || 4 ||

Just as the bond between the rein and the chariot is free of both affection and anxiety, so is the relation of consciousness with the body, the mind, the senses, and the rest.

जैसे लगाम और रथ का संबंध न प्रेम से बंधा है, न व्याकुलता से, वैसे ही चेतना का संबंध शरीर, मन, इंद्रियों और बाकी सबसे है।

5.72.5

गतेतरेतरापेक्षः सरःपङ्कामलाम्भसाम् । यथा राघव संबन्धस्तथा देहेन्द्रियात्मनाम् ॥ ५ ॥

gate'taretarāpekṣaḥ sarḥpaṅkāmalāmbhasām | yathā rāghava sambandhastathā dehendriyātmanām || 5 ||

O Raghava, just as the mud and the clear water of a pond have no real need of each other, so is the relation between the body, the senses, and the self.

हे राघव, जैसे तालाब की कीचड़ और उसके साफ पानी को एक दूसरे की कोई ज़रूरत नहीं होती, वैसा ही संबंध शरीर, इंद्रियों और आत्मा का है।

5.72.6

यादृशोऽध्वा गताध्वानां निरास्थापरिदेवनः । संयोगो विप्रयोगश्च तादृशो देहदेहिनोः ॥ ६ ॥

yādṛśo'dhvā gatādhvānāṃ nirāsthāparidevanaḥ | saṃyogo viprayogaśca tādṛśo dehadehinoḥ || 6 ||

Just as travelers who have finished a road feel no concern and no grief about it, so the joining and the parting of the body and its owner bring neither concern nor grief.

जैसे रास्ता पूरा कर चुके यात्री को उस रास्ते से जुड़ने या बिछड़ने की न चिंता होती है, न दुख, वैसे ही शरीर और उसके स्वामी आत्मा का जुड़ना और बिछड़ना भी न चिंता की बात है, न दुख की।

5.72.7

यथा कल्पितवेतालविकारभयभीतयः । मिथ्यैव कल्पिता एते तथा स्नेहसुखादयः ॥ ७ ॥

yathā kalpitavetālavikārabhayabhītayaḥ | mithyāiva kalpitā ete tathā snehāsukhādayaḥ || 7 ||

Just as the fear of a change in an imagined ghost is only fright born of imagination, so affection, pleasure, and the rest are also only imagined, not real.

जैसे किसी कल्पित प्रेत के बदल जाने का डर केवल कल्पना से उपजा डर होता है, वैसे ही प्रेम, सुख आदि भी केवल कल्पना मात्र हैं, सच नहीं।

5.72.8

भूतपञ्चकसंपिण्डाद्रचिता जनताः पृथक् । एकस्मादेव विटपाद्विचित्रा इव पुत्रिकाः ॥ ८ ॥

bhūtapañcakasaṃpiṇḍādracitā janatāḥ pṛthak | ekasmādeva viṭapādvicitrā iva putrikāḥ || 8 ||

Out of the mass of the five elements, all the many people are fashioned separately, just as varied dolls are carved from a single branch of wood.

जैसे एक ही डाल की लकड़ी से तरह तरह की गुड़ियाएँ बनाई जाती हैं, वैसे ही पाँचों तत्वों के एक ही समूह से सब लोग अलग अलग रचे गए हैं।

5.72.9

काष्ठेतरत्काष्ठभारे किंचिदन्यन्न दृश्यते । भूतपिण्डेतरद्देहे किंचिदन्यन्न दृश्यते ॥ ९ ॥

kāṣṭhetaratkāṣṭhabhāre kiṃcidanyanna dṛśyate | bhūtapiṇḍetaraddehe kiṃcidanyanna dṛśyate || 9 ||

In a pile of wood, nothing but wood is ever seen. In the body, nothing but the mass of the five elements is ever seen.

लकड़ी के ढेर में लकड़ी के सिवा और कुछ नहीं दिखता। वैसे ही शरीर में पाँचों तत्वों के पिंड के सिवा और कुछ नहीं दिखता।

5.72.10

भूतपञ्चकविक्षोभनाशोत्पादेषु हे जनाः । हर्षामर्षविषादानां किं भवन्तो वशं गताः ॥ १० ॥

bhūtapañcakavikṣobhanāśotpādeṣu he janāḥ | harṣāmarṣaviṣādānāṃ kiṃ bhavanto vaśaṃ gatāḥ || 10 ||

O people, why do you fall under the sway of joy, anger, and despair over the stirring, the ending, and the arising of the five elements?

हे लोगो, पाँचों तत्वों के हिलने, नष्ट होने और उत्पन्न होने पर तुम हर्ष, क्रोध और विषाद के वश में क्यों हो जाते हो?

5.72.11

को नामातिशयः पुंसां स्त्रीनाम्न्यपरनाम्नि च । पेलवे भूतसंघाते प्रोद्भूतजनपातवत् ॥ ११ ॥

ko nāmātiśayaḥ puṃsāṃ strīnāmnyaparanāmni ca | pelave bhūtasaṃghāte prodbhūtajanapātavat || 11 ||

In this frail mass of the five elements, what real difference is there among people, one called woman and another called by some other name, any more than among the many beings that rise up and then fall away?

इन दुर्बल पाँचों तत्वों के पिंड में, स्त्री कहलाने वाले और किसी और नाम वाले लोगों के बीच सचमुच क्या भेद है, ठीक वैसे ही जैसे उठकर गिरने वाले अनेक लोगों के बीच कोई भेद नहीं होता?

5.72.12

संनिवेशांशवैचित्र्यमज्ञानामेव तुष्टये । तज्ज्ञानां तु यथाभूतभूतपञ्चकदर्शनम् ॥ १२ ॥

saṃniveśāṃśavaicitryamajñānāmeva tuṣṭaye | tajjñānāṃ tu yathābhūtabhūtapañcakadarśanam || 12 ||

The variety in how the parts of a body are arranged pleases only the ignorant. Those who know the truth see only the five elements as they really are.

शरीर के अंगों की बनावट की विविधता केवल अज्ञानी लोगों को ही भाती है। जो सत्य जानते हैं, वे तो बस पाँचों तत्वों को जैसे हैं वैसे ही देखते हैं।

5.72.13

मिथः शिलापुत्रकयोर्यथैकोपलपुत्रयोः । श्लिष्टयोरपि नो रागस्तथा चित्तशरीरयोः ॥ १३ ॥

mithaḥ śilāputrakayoryathaikopalaputrayoḥ | śliṣṭayorapi no rāgastathā cittaśarīrayoḥ || 13 ||

Just as two stone dolls carved from a single rock feel no affection for each other even while pressed together, so it is between the mind and the body.

जैसे एक ही पत्थर से बनी दो पुतलियाँ आपस में सटी होने पर भी एक दूसरे से प्रेम नहीं रखतीं, वैसे ही मन और शरीर का संबंध है।

5.72.14

मृत्पुंसां यादृशोऽन्योन्यमाशयः संगमे भवेत् । बुद्धीन्द्रियात्ममनसां संगमे तादृशोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

mṛtpuṁsāṃ yādṛśo'nyonyamāśayaḥ saṃgame bhavet | buddhīndriyātmamanasāṃ saṃgame tādṛśo'stu te || 14 ||

Whatever mutual affection two clay dolls might feel when they meet, let that same affection be yours when intellect, senses, self, and mind come together.

मिट्टी की दो गुड़ियाएँ जब आपस में मिलती हैं तो जितना प्रेम रखती हैं, उतना ही प्रेम बुद्धि, इंद्रियों, आत्मा और मन के मिलने में भी तुम्हारा हो।

5.72.15

नान्योन्यस्नेहसंबन्धभाजनं शैलपुत्रकाः । देहेन्द्रियात्मप्राणाश्च कस्यात्र परिदेवना ॥ १५ ॥

nānyonyasnehasaṃbandhabhājanaṃ śailaputrakāḥ | dehendriyātmaprāṇāśca kasyātra paridevanā || 15 ||

Stone dolls are not bound to one another by affection, and neither are the body, the senses, the self, and the life breaths. Whose grief, then, is there here?

पत्थर की पुतलियाँ आपस में प्रेम के बंधन से नहीं बंधी होतीं, और वैसे ही शरीर, इंद्रियाँ, आत्मा और प्राण भी नहीं। तो फिर यहाँ किसका शोक?

5.72.16

इतश्चेतश्च जातानि यथा संश्लेषयन्त्यलम्। तरङ्गास्तृणजालानि तथा भूतानि देहदृक् ॥ १६ ॥

itashcetashca jātāni yathā saṃśleṣayantyalam | taraṅgāstṛṇajālāni tathā bhūtāni dehadṛk || 16 ||

Just as waves gather together bits of straw born here and there, so the elements gather to form one who takes himself for the body.

जैसे लहरें इधर उधर से आए तिनकों को एक साथ बहा ले जाती हैं, वैसे ही पाँचों तत्व मिलकर उस व्यक्ति को बनाते हैं जो खुद को शरीर मानता है।

5.72.17

संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तृणान्यब्धिजले यथा। मुक्तान्तःकलनं देहे भूतान्यात्मनि वै तथा ॥ १७ ॥

saṃyujyante viyujyante tṛṇānyabdhijale yathā | muktāntaḥkalanaṃ dehe bhūtānyātmani vai tathā || 17 ||

Just as bits of straw come together and drift apart on the water of the sea, so the elements come together and drift apart within the self, once the mind inside is free of concern for the body.

जैसे समुद्र के जल में तिनके आपस में मिलते और बिछड़ते हैं, वैसे ही जब भीतर का मन शरीर के प्रति मुक्त हो जाता है, तो पाँचों तत्व आत्मा में मिलते और बिछड़ते रहते हैं।

5.72.18

आत्मा चित्ततया देहभूतान्याश्लेषयन्स्थितः। तृणान्यावृत्तवृत्तान्तकलनोत्सिक्तमब्धिवत् ॥ १८ ॥

ātmā cittatayā dehabhūtānyāśleṣayansthitaḥ | tṛṇānyāvṛttavṛttāntakalanotsiktamabdhivat || 18 ||

The self, acting as the mind, stands embracing the elements of the body, like an ocean swollen with the endless rising and falling of its waves, embracing bits of straw.

आत्मा मन के रूप में शरीर के तत्वों को अपने भीतर समेटे रहती है, ठीक वैसे ही जैसे बार बार उठती गिरती लहरों से उमड़ता समुद्र तिनकों को अपने भीतर समेटे रहता है।

5.72.19

प्रबोधाच्चेत्यतां त्यक्त्वा व्रजत्यात्मात्मतां स्वयम्। स्वस्पन्दवशतो वारि त्यक्त्वाच्छत्वमिवाच्छतां ॥ १९ ॥

prabodhāccetyatāṃ tyaktvā vrajatyātmātmatāṃ svayam | svaspandavaśato vāri tyaktvācchatvamivācchatāṃ || 19 ||

Upon awakening, the self by itself passes into its own true nature, giving up the state of being a mere object of thought, just as water, through its own motion, becomes clear all by itself.

जागृति होते ही आत्मा स्वयं अपने आप अपने असली स्वरूप में लौट आती है, और मात्र विचार की वस्तु बने रहने की स्थिति को छोड़ देती है, ठीक वैसे ही जैसे जल अपनी ही हलचल से अपने आप निर्मल हो जाता है।

5.72.20

ततो विश्लिष्टभूतौघो देहं संप्रति पश्यति। वायुस्कन्धगतो जन्तुर्वसुधामण्डलं यथा ॥ २० ॥

tato viśliṣṭabhūtaugho dehaṃ saṃprati paśyati | vāyuskandhagato janturvasudhāmaṇḍalaṃ yathā || 20 ||

Then, seeing the mass of the elements as separate from him, he looks at the body as something apart, just as a creature risen into the mass of the air looks down at the round earth.

तब पाँचों तत्वों के समूह को अपने से अलग जानकर, वह शरीर को भी अलग वस्तु की तरह देखता है, ठीक वैसे ही जैसे हवा में ऊँचा उठा हुआ कोई प्राणी नीचे गोल पृथ्वी को देखता है।

5.72.21

पृथग्भूतगणं दृष्ट्वा देहातीतो भवत्यजः । परं प्रकाशमायाति सूर्यकान्तिरिवाहनि ॥ २१ ॥

pṛthagbhūtagaṇaṃ dṛṣṭvā dehātīto bhavatyajaḥ | paraṃ prakāśamāyāti sūryakāntirivāhani || 21 ||

Seeing the elements as separate from himself, the unborn self goes beyond the body and comes into the supreme light, like sunlight filling the day.

पाँचों तत्वों के समूह को अपने से अलग देखकर, अजन्मा आत्मा शरीर से परे हो जाती है और परम प्रकाश को उसी तरह प्राप्त होती है जैसे दिन में सूर्य का प्रकाश फैल जाता है।

5.72.22

जानात्यथात्मनात्मानं मानमेयामयोज्झितम् । मुक्तक्षीबतयेवान्तः स्वां संविदमनुस्मरन् ॥ २२ ॥

jānātyathātmānātmānaṃ mānameyāmayojjhitam | muktakṣībataye'vāntaḥ svāṃ saṃvidamanusmaran || 22 ||

Then, remembering his own true awareness within, as if freed from intoxication, he knows the self by the self, free from the sickness of the measurer and the measured.

तब वह अपने भीतर की सच्ची चेतना का स्मरण करते हुए, मानो नशे से मुक्त हुए व्यक्ति की तरह, नापने वाले और नापी जाने वाली वस्तु के रोग से मुक्त होकर, आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जान लेता है।

5.72.23

आत्मैव स्पन्दते विश्वं वस्तुजातैरिवोदितम् । तरङ्गकणकल्लोलैरनन्ताम्ब्वम्बुधाविव ॥ २३ ॥

ātmaiva spandate viśvaṃ vastujātairivoditam | taraṅgakaṇakallolairanantāmbvambudhāviva || 23 ||

The self alone stirs as the universe, appearing as though risen into a multitude of things, just as an ocean of endless water stirs into waves, drops, and billows.

आत्मा ही स्वयं संसार के रूप में स्पंदित होती है, मानो अनेक वस्तुओं के रूप में प्रकट हो गई हो, ठीक वैसे ही जैसे अनंत जल का समुद्र लहरों, बूंदों और तरंगों के रूप में हिलता डुलता है।

5.72.24

एवंप्रायमहाबोधा वीतरागा गतैनसः । जीवन्मुक्ताश्चरन्तीह महासत्त्वपदं गताः ॥ २४ ॥

evaṃprāyamahābodhā vītarāgā gataienasaḥ | jīvanmuktāścarantīha mahāsattvapadaṃ gatāḥ || 24 ||

Those whose great awakening is mostly of this kind, free from passion and gone beyond fault, live liberated and move about in this world, having reached the state of the great being.

जिनका महान बोध लगभग इसी प्रकार का होता है, जो राग से मुक्त और दोष से परे हो चुके हैं, वे जीवनमुक्त होकर इस संसार में विचरते हैं, और महान तत्व की स्थिति को प्राप्त कर चुके होते हैं।

5.72.25

यथा चरन्ति विविधैर्मणिरत्नैर्महोर्मयः । निरस्तवासनाश्चित्तव्यवहारैस्तथोत्तमाः ॥ २५ ॥

yathā caranti vividhairmaṇiratnairmahormayaḥ | nirastavāsanāścittavyavahāraistathottamāḥ || 25 ||

Just as great waves move about carrying many kinds of jewels and gems, so the best of men, having let go of their inner cravings, carry on with the ordinary business of the mind.

जैसे बड़ी लहरें तरह-तरह के मणि और रत्न लिए हुए चलती रहती हैं, वैसे ही सबसे अच्छे लोग अपनी भीतरी इच्छाएँ छोड़कर मन के रोज़मर्रा के कामों में लगे रहते हैं।

5.72.26

न कूलकाष्ठैर्जलधिर्न रजोभिर्नभस्तलम्। न म्लायति निजैर्लोकव्यवहारैरिहात्मवान्॥ २६॥

na kūlakāṣṭhairjaladhirna rajobhirnabhastalam | na mlāyati nijairlokavyavahārairihaatmavān || 26 ||

The ocean is not spoiled by the driftwood on its shore, and the sky is not spoiled by dust; in the same way, the man who has found his true self is not spoiled here by his own everyday dealings with the world.

जैसे समुद्र किनारे की लकड़ियों से खराब नहीं होता और आकाश धूल से खराब नहीं होता, वैसे ही जिस आदमी ने अपने असली स्वरूप को पा लिया है, वह अपने रोज़ के सांसारिक कामों से यहाँ खराब नहीं होता।

5.72.27

गतैरभ्यागतैः स्वच्छैश्चपलैर्मलिनैर्जडैः। न रागो नाम्बुधेर्द्वेषो भोगैश्चाधिगतात्मनः॥ २७॥

gatairabhyāgataiḥ svacchaiścapalairmalinaírjadaiḥ | na rāgo nāmbudherdveṣo bhogaiścādhigatātmanaḥ || 27 ||

The ocean feels no love and no hatred for its waters, whether they come or go, whether they are clear or restless, clean or muddy; in the same way, the man who has found his own self feels no love and no hatred for the pleasures that come to him.

समुद्र को अपने पानी से न प्रेम होता है न द्वेष, चाहे वह पानी आए या जाए, साफ़ हो या बेचैन, स्वच्छ हो या गंदा। वैसे ही जिस आदमी ने अपने स्वरूप को पा लिया है, उसे भोगों से न प्रेम होता है न द्वेष।

5.72.28

यन्मनोमननं किंचित्समग्रं जगति स्थितम्। तच्चेत्योन्मुखचित्तत्त्वविलासोल्लसनं विदुः॥ २८॥

yanmanomananaṁ kiñcit samagraṁ jagati sthitaṁ | tacchetyonmukhacittatvavilāsollasanaṁ viduḥ || 28 ||

Whatever the mind thinks, everything that exists in this world, the wise know to be nothing but the shining play of the mind as it turns to face what it is thinking of.

मन जो कुछ भी सोचता है, इस दुनिया में जो कुछ भी है, ज्ञानी लोग जानते हैं कि यह सब मन के उस खेल की चमक है जब मन अपने विचार के सामने आता है।

5.72.29

यदहं यच्च भूतादि कालत्रितयभावि यत्। दृश्यदर्शनसंबन्धविस्तारैस्तद्विजृम्भते॥ २९॥

yadahaṁ yacca bhūtādi kālatritayabhāvi yat | dṛśyadarśanasambandhavistāraistadvijṛmbhate || 29 ||

Whatever is called I, whatever is matter and all that comes from it, and whatever exists in the past, in the present, or in the future, all of it grows out of the many links between seeing and the thing seen.

जो कुछ मैं कहलाता है, जो कुछ तत्व और उनसे बनी चीज़ें हैं, और जो कुछ बीते समय में, अभी में या आने वाले समय में है, यह सब देखने और देखी गई चीज़ के बीच के कई जुड़ावों से फैलता है।

5.72.30

यदृश्यं तदसत्सद्वा दृष्टिमेकामुपाश्रितम्। अन्यत्त्वलेपकं तस्माद्धर्षशोकदृशौ कुतः॥ ३०॥

yadṛśyaṁ tadasatsadvā dṛṣṭimekāmupāśritam | anyattvalepakaṁ tasmāddharṣaśokadṛśau kutaḥ || 30 ||

Whatever is seen, whether it is real or unreal, rests on a single act of seeing. Nothing else touches or stains it. So how can there be joy or grief in that seeing?

जो कुछ भी दिखता है, चाहे वह सच हो या झूठ, वह एक ही देखने पर टिका है। उसके अलावा कुछ भी उसे छूता या दागता नहीं है। तो फिर उस देखने में खुशी या दुख कैसे हो सकता है?

5.72.31

असत्यमेवासत्यं हि सत्यं सत्यं सदेव हि । सत्यासत्यमसद्विद्धि तदर्थं किं नु मुह्यसि ॥ ३१ ॥

asatyamevāsatyam hi satyam satyam sadeva hi | satyāsatyamasadviddhi tadartham kiṃ nu muhyasi || 31 ||

The unreal is only unreal, and the real is only real, being what truly exists. Know that whatever seems both real and unreal is itself unreal. Why then are you confused about this?

झूठ सिर्फ़ झूठ है, और सच सिर्फ़ सच है, क्योंकि वही असल में है। जान लो कि जो सच और झूठ दोनों जैसा लगता है, वह भी झूठ ही है। फिर तुम इस बारे में क्यों उलझन में पड़े हो?

5.72.32

असम्यग्दर्शनं त्यक्त्वा सम्यक्पश्य सुलोचन । न क्वचिन्मुह्यति प्रौढः सम्यग्दर्शनवानिह ॥ ३२ ॥

asamyagdarśanam tyaktvā samyakpaśya sulocana | na kvacinmuhyati prauḍhaḥ samyagdarśanavāniha || 32 ||

Give up wrong seeing, and see rightly, o clear-eyed one. The wise man who sees rightly is never confused here, in anything.

गलत देखना छोड़ दो और सही देखो, हे सुंदर आँखों वाले। जो समझदार आदमी सही देखता है, वह यहाँ कभी किसी बात में उलझन में नहीं पड़ता।

5.72.33

दृश्यदर्शनसंबन्धविस्तारैस्तद्विजृम्भते । दृश्यदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमात्मिकम् ॥ ३३ ॥

dṛśyadarśanasambandhavistāraistadvijṛmbhate | dṛśyadarśanasambandhe yatsukham pāramātmikam || 33 ||

This same world unfolds through the many workings of the link between seeing and the thing seen. In that link between seeing and the thing seen there is a happiness that belongs to the highest self.

यही दुनिया देखने और देखी गई चीज़ के बीच के कई कामों से फैलती है। देखने और देखी गई चीज़ के उस जुड़ाव में एक ऐसा सुख है जो सबसे ऊँचे स्वरूप का है।

5.72.34

अनुभूतिमयं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते । दृश्यदर्शनसंबन्धे सुखसंविदनुत्तमा ॥ ३४ ॥

anubhūtimayam tasmātsāram brahmeti kathyate | dṛśyadarśanasambandhe sukhasaṃvidanuttamā || 34 ||

Because it is made of pure experience, this essence is called Brahman. In the link between seeing and the thing seen there is a joyful awareness that nothing surpasses.

क्योंकि यह शुद्ध अनुभव से बना है, इसलिए इस सार को ब्रह्म कहा जाता है। देखने और देखी गई चीज़ के जुड़ाव में एक ऐसी सुखभरी चेतना है जिससे बढ़कर कुछ नहीं है।

5.72.35

ददात्यज्ञाय संसारं ज्ञाय मोक्षं सदोदयम् । दृश्यदर्शनसंबन्धसुखमात्मवपुर्विदुः ॥ ३५ ॥

dadātyajñāya saṃsāram jñāya mokṣam sadodayam | dṛśyadarśanasambandhasukhamātmavapurviduḥ || 35 ||

To one who does not understand it, it gives the round of rebirth; to one who understands it, it gives a freedom that is always rising. The wise know that the happiness in this link between seeing and the thing seen is the very form of the self.

जो इसे नहीं समझता, उसे यह बार-बार जन्म देता है; जो इसे समझ लेता है, उसे यह हमेशा उठती रहने वाली मुक्ति देता है। ज्ञानी जानते हैं कि देखने और देखी गई चीज़ के इस जुड़ाव में जो सुख है, वही स्वरूप का असली रूप है।

5.72.36

तदृश्यवलितं बन्धस्तन्मुक्तं मुक्तिरुच्यते । दृश्यदर्शनसंबन्धसुखसंविदनामया ॥ ३६ ॥

tadṛśyavalitaṃ bandhastanmuktaṃ muktirucyate | dṛśyadarśanasambandhasukhasaṃvidanāmayā || 36 ||

When this happiness is bent toward the thing seen, it is called bondage; when it is set free from that, it is called liberation. The joyful awareness in this link between seeing and the thing seen is free of all trouble.

जब यह सुख देखी गई चीज़ की ओर झुक जाता है, तो उसे बंधन कहते हैं; जब यह उससे छूट जाता है, तो उसे मुक्ति कहते हैं। देखने और देखी गई चीज़ के इस जुड़ाव में जो सुखभरी चेतना है, वह हर तकलीफ़ से मुक्त है।

5.72.37

क्षयातिशयमुक्ता चेत्तन्मुक्तिः सोच्यते बुधैः । दृश्यदर्शनसंबन्धे यानुभूतिः स्वगोचरा ॥ ३७ ॥

kṣayātiśayamuktā cet tatmuktiḥ socyate budhaiḥ | dṛśyadarśanasambandhe yānubhūtiḥ svagocarā || 37 ||

If this happiness is free from all rising and falling, the wise call that liberation. In the link between seeing and the thing seen there is an experience known only within oneself.

अगर यह सुख हर तरह के घटने-बढ़ने से मुक्त है, तो ज्ञानी उसे ही मुक्ति कहते हैं। देखने और देखी गई चीज़ के जुड़ाव में एक ऐसा अनुभव है जो सिर्फ़ अपने भीतर ही जाना जाता है।

5.72.38

दृश्यदर्शननिर्मुक्ता तामालम्ब्य भवाभवः । सौषुप्ती दृष्टिरेषा हि यात्येवं संप्रकाशते ॥ ३८ ॥

dṛśyadarśananirmuktā tāmālambya bhavābhavaḥ | sauṣuptī dṛṣṭireṣā hi yātyevaṃ saṃprakāśate || 38 ||

This way of seeing is set free from both the seer and the thing seen. Resting on that freedom, beyond all coming into being and passing away, it is like deep, dreamless sleep, and yet it goes on shining.

यह देखने का तरीका देखने वाले और देखी गई चीज़, दोनों से मुक्त है। उस मुक्ति पर टिककर, हर तरह के बनने और मिटने से परे, यह गहरी, बिना सपने की नींद जैसा है, और फिर भी यह चमकता रहता है।

5.72.39

एवं च याति तुर्यत्वमेवं मुक्तिरिति स्मृता । दृश्यदर्शनमुक्तायां युक्तायां परया धिया ॥ ३९ ॥

evaṃ ca yāti turyatvamevaṃ muktiriti smṛtā | dṛśyadarśanamuktāyāṃ yuktāyāṃ parayā dhiyā || 39 ||

And so it reaches the fourth state. This is what is called liberation, when the mind is set free from the seer and the thing seen, and is joined with the highest understanding.

और इस तरह यह चौथी अवस्था तक पहुँच जाता है। इसी को मुक्ति कहते हैं, जब मन देखने वाले और देखी गई चीज़ से मुक्त होकर सबसे ऊँची समझ से जुड़ जाता है।

5.72.40

दृश्यदर्शनसंबन्धसंविदस्यां तु राघव । नात्मा स्थूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतरः ॥ ४० ॥

dṛśyadarśanasambandhasaṃvidasyāṃ tu rāghava | nātmā sthūlo na caivāṇurna pratyakṣo na cetaraḥ || 40 ||

But in this awareness of the link between seeing and the thing seen, Rama, the self is not something gross, not something tiny and subtle, not something directly perceived, and not something known in any other way either.

पर देखने और देखी गई चीज़ के इस जुड़ाव की चेतना में, हे राम, स्वरूप न तो कोई स्थूल चीज़ है, न कोई बहुत सूक्ष्म चीज़, न कोई सीधे दिखने वाली चीज़, और न ही किसी और तरीके से जानी जाने वाली चीज़ है।

5.72.41

न चेतनो न च जडो न चैवासन्न सन्मयः । नाहं नान्यो न चैवैको नानेको नाप्यनेकवान् ॥ ४१ ॥

na cetano na ca jaḍo na caivāsanna sanmayaḥ | nāhaṃ nānyo na caivaiko nāneko nāpyanekavān || 41 ||

It is not conscious, and it is not without consciousness. It is not something that does not exist, and it is not simply existence itself. It is not I, not someone else, not one, not many, and not a thing made of many parts.

यह न तो चेतन है, न अचेतन। यह ऐसी चीज़ नहीं जो है ही नहीं, और यह सिर्फ़ अस्तित्व भी नहीं है। यह न मैं है, न कोई और, न एक है, न अनेक, और न ही कई हिस्सों से बनी कोई चीज़ है।

5.72.42

नाभ्याशस्थो न दूरस्थो नैवास्ति न च नास्ति च । न प्राप्यो नाति चाप्राप्यो न वा सर्वो न सर्वगः ॥ ४२ ॥

nābhyāśastho na dūrastho naivāsti na ca nāsti ca | na prāpyo nāti cāprāpyo na vā sarvo na sarvagaḥ || 42 ||

It is not near and not far. It is not something that is, and not something that is not. It is not something to be reached, and not something wholly out of reach. It is not everything, and it is not present everywhere.

यह न पास है, न दूर। यह न कोई ऐसी चीज़ है जो है, न कोई ऐसी चीज़ है जो नहीं है। यह न तो पाई जाने वाली चीज़ है, न पूरी तरह से हाथ न आने वाली चीज़ है। यह न सब कुछ है, न हर जगह मौजूद है।

5.72.43

न पदार्थो नापदार्थो न पञ्चात्मा न पञ्च च । यदिदं दृश्यतां प्राप्तं मनःषष्ठेन्द्रियास्पदम् ॥ ४३ ॥

na padārtho nāpadārtho na pañcātmā na pañca ca | yadidaṃ dṛśyatāṃ prāptaṃ manaḥṣaṣṭhendriyāspadam || 43 ||

It is not a thing that can be named, and it is not a nothing either. It is not made of the five elements, and it is not the five elements themselves. This world that appears before us is only the meeting ground of the mind and the five senses.

यह न कोई ऐसी चीज़ है जिसे नाम दिया जा सके, और न ही यह कुछ भी नहीं है। यह पाँच तत्वों से बनी नहीं है, और न ही यह खुद पाँच तत्व है। हमारे सामने जो यह दुनिया दिखती है, वह बस मन और पाँचों इंद्रियों के मिलने की जगह है।

5.72.44

तदतीतं पदं यत्स्यात्तन्न किंचिदिवेह तत् । यथाभूतमिदं सम्यग्ज्ञस्य संपश्यतो जगत् ॥ ४४ ॥

tadatītaṃ padaṃ yatsyāttanna kiṃcideveha tat | yathābhūtamidaṃ samyagjñasya saṃpaśyato jagat || 44 ||

That state which lies beyond all this is, here, as if it were nothing at all. To the one who has true knowledge and truly sees, this world appears just as it really is.

जो अवस्था इस सबसे परे है, वह यहाँ मानो कुछ भी नहीं जैसी है। जिसके पास सच्चा ज्ञान है और जो सच में सही देखता है, उसे यह दुनिया वैसी ही दिखती है जैसी वह असल में है।

5.72.45

सर्वमात्ममयं विश्वं नास्त्यनात्ममयं क्वचित्। काठिन्यद्रवणस्पन्दखावकाशावलोकनैः ॥ ४५ ॥

sarvamātmamayaṃ viśvaṃ nāstyānātmamayaṃ kvacit | kāṭhinyadravaṇaspandakhāvakāśāvalokanaiḥ || 45 ||

The whole universe is made of the self; nowhere is anything made of what is not the self. This can be seen through things like hardness, through melting, through movement, through empty space, and through the light by which we see that space.

पूरी दुनिया स्वरूप से बनी है, कहीं भी कुछ ऐसा नहीं है जो स्वरूप के अलावा किसी और चीज़ से बना हो। यह कठोरता से, पिघलने से, हलचल से, खाली जगह से, और उस जगह को देखने वाले उजाले से पता चलता है।

5.72.46

आत्मैव सर्वं सर्वेषु भूवार्यनिलखाग्निषु। सत्तैवास्ति न वस्तूनां या या राम चिता विना। व्यतिरिक्तं ततोऽस्मीति विद्धिप्रोन्मत्तजल्पितम्॥ ४६ ॥

ātmaiva sarvaṃ sarveṣu bhūvāryanilakhāgniṣu | sattaivāsti na vastūnāṃ yā yā rāma citā vinā | vyatiriktaṃ tato'smīti viddhipronmattajalpitam || 46 ||

The self alone is everything, in earth, water, wind, space, and fire. Nothing at all exists, Rama, apart from consciousness. To say I am something different from that, know this to be nothing but the raving of a madman.

स्वरूप ही सब कुछ है, धरती में, पानी में, हवा में, आकाश में और आग में। हे राम, चेतना के अलावा कुछ भी अस्तित्व में नहीं है। यह कहना कि मैं उससे अलग हूँ, इसे पागल आदमी की बड़बड़ाहट के सिवा कुछ मत जानो।

5.72.47

एको जगन्ति सकलानि समस्तकालकल्पक्रमान्तरगतानि गतागतानि। आत्मैव नेतरकलाकलनास्ति काचिदित्थंमतिर्भव तयातिगतो महात्मन्॥ ४७ ॥

eko jaganti sakalāni samastakālakalpakramāntaragatāni gatāgatāni | ātmaiva netarakalākalanāsti kācidittthaṃmatirbhava tayātigato mahātman || 47 ||

The self alone is one, present in all the worlds that come and go through the endless turning of ages and time. There is nothing else at work here at all. Take up this understanding, great soul, and through it rise above everything.

स्वरूप ही एक है, उन सब लोकों में मौजूद जो युगों और समय के अंतहीन चक्र में आते-जाते रहते हैं। यहाँ इसके सिवा और कुछ भी काम नहीं कर रहा। हे महान आत्मा, यह समझ अपना लो, और इसी से हर चीज़ से ऊपर उठ जाओ।

Chapter 73

5.73.1

एवंविचारया दृष्ट्या द्वैतत्यागेन राघवस्वभावः प्राप्यते तज्ज्ञैस्तज्ज्ञैश्चिन्तामणिर्यथा ॥ १ ॥

evaṃvicārayā dṛṣṭyā dvaitatyāgena rāghavasvabhāvaḥ prāpyate tajjñaistajjñaiścintāmaṇiryathā || 1 ||

By looking at things this way, and giving up the sense of two, one who truly understands reaches one's own true nature, Raghava, just as only one who truly knows a wish-granting jewel can find it.

इस तरह देखने से, और दो के भाव को छोड़ने से, जो इसे सच में समझता है वह अपने असली स्वरूप को पा लेता है, हे राघव, जैसे जो चिंतामणि को सच में पहचानता है वही उसे पा सकता है।

5.73.2

अथेमामपरां दृष्टिं शृणु रामानया यथादृश्यस्यात्मानमचलं भविष्यसि च दिव्यदृक् ॥ २ ॥

athemāmaparāṃ dṛṣṭiṃ śṛṇu rāmānayā yathādṛśyasyātmānamacalaṃ bhaviṣyasi ca divyadṛk || 2 ||

Now, Rama, listen to this other way of seeing, through which you will become the unmoving self within all that is seen, and you will gain divine sight.

अब सुनो राम, इस दूसरे नज़रिए को, जिससे तुम हर दिखने वाली चीज़ के भीतर अडिग आत्मा बन जाओगे, और तुम्हें दिव्य दृष्टि मिल जाएगी।

5.73.3

अहं खमहमादित्यो दिशोऽहमहमप्यधःअहं दैत्या अहं देवा लोकाश्चाहमहं महः ॥ ३ ॥

ahaṃ khamahamādityo diśo'hamahamapyadhaḥahaṃ daityā ahaṃ devā lokāścāhamahaṃ mahaḥ || 3 ||

I am the sky, I am the sun, I am the directions, I am also everything below. I am the demons, I am the gods, I am the worlds, and I am the glory in it all.

मैं आकाश हूँ, मैं सूरज हूँ, मैं दिशाएँ हूँ, मैं नीचे की हर चीज़ भी हूँ। मैं दैत्य हूँ, मैं देवता हूँ, मैं सारे लोक हूँ, और सबकी महिमा भी मैं ही हूँ।

5.73.4

अहं तमोऽहमभ्राणि भूः समुद्रादिकं त्वहम्रजो वायुरथाग्निश्च जगत्सर्वमिदं त्वहम् ॥ ४ ॥

ahaṃ tamo'hamabhrāṇi bhūḥ samudrādikaṃ tvahamrajo vāyurathāgniśca jagatsarvamidaṃ tvaham || 4 ||

I am the darkness, I am the clouds, the earth and the ocean and everything like that are me too. I am the dust, the wind, and the fire, and this whole world is me.

मैं अंधकार हूँ, मैं बादल हूँ, धरती और समुद्र वगैरह भी मैं ही हूँ। मैं धूल हूँ, हवा हूँ, और आग भी मैं ही हूँ, और यह पूरी दुनिया मैं ही हूँ।

5.73.5

जगत्त्रयेऽहं सर्वत्र य आत्मैव किलास्थितःकोऽहं किमन्यद्देहादि द्वित्वमेकस्य कीदृशम् ॥ ५ ॥

jagattraye'haṃ sarvatra ya ātmaiva kilāsthitaḥko'haṃ kimanyaddehādi dvitvamekasya kīdṛśam || 5 ||

In the three worlds I am everywhere, since it is truly the self alone that stands present everywhere. So who am I? What else is this body and such? How can there be two of what is one?

तीनों लोकों में मैं हर जगह हूँ, क्योंकि सच में हर जगह बस आत्मा ही टिकी हुई है। तो 'मैं' कौन हूँ? यह देह वगैरह और क्या है? जो एक है, उसमें दो कैसे हो सकते हैं?

5.73.6

इति निश्चयवानन्तर्भूतमात्मतया जगत्पश्य हर्षविषादाभ्यां नावशः परिभूयसे ॥ ६ ॥

iti niścayavānantarbhūtamātmatayā jagatpaśya harṣaviṣādābhyāṃ nāvaśaḥ paribhūyase || 6 ||

With this conviction, see the world as held within you, as the self itself, then joy and sorrow will not overpower you against your will.

इस निश्चय के साथ, दुनिया को अपने भीतर समाई हुई, आत्मा जैसी ही देखो, फिर सुख और दुख तुम्हें असहाय होकर नहीं दबा पाएँगे।

5.73.7

तन्मयेऽस्मिन्किल जगत्यखिले संस्थितेऽनघकिमात्मीयं परं किं स्यात्कमलेक्षण कथ्यताम् ॥ ७ ॥

tanmaye'sminkila jagatyakhile saṃsthite'naghakimātmīyaṃ paraṃ kiṃ syātkamalekṣaṇa kathyatām || 7 ||

Since this whole world, sinless one, truly stands made of that one self, tell me, what could be called mine, and what another's, lotus-eyed one?

हे निष्पाप, जब यह पूरी दुनिया सच में उसी एक आत्मा से बनी हुई है, तो बताओ, 'मेरा' क्या होगा और 'पराया' क्या, हे कमलनयन?

5.73.8

किं तज्ज्ञव्यतिरेकेण विद्यते यदुपागतम्हर्षमेतु विषादं वा विषादे ज्ञो जगन्मयः ॥ ८ ॥

kiṃ tajjñavyatirekeṇa vidyate yadupāgatamharṣametu viṣādaṃ vā viṣāde jño jaganmayaḥ || 8 ||

Is there anything at all that comes to be, apart from the one who knows the self? Let joy come, or let sorrow come, the one who knows is one with the whole world, even in sorrow.

आत्मा को जानने वाले से अलग, आख़िर क्या है जो कभी सामने आता है? चाहे सुख आए या दुख आए, जो जानता है वह पूरी दुनिया के साथ एक ही है, दुख में भी।

5.73.9

अहंकारदृशावेते सात्त्विके द्वेऽतिनिर्मलेतत्त्वज्ञानात्प्रवर्तेते मोक्षदे पारमार्थिके ॥ ९ ॥

ahaṃkāradṛśāvete sāttvike dve'tinirmaletattvajñānātpravartete mokṣade pāramārthike || 9 ||

These two ways of seeing 'I' are pure and full of goodness, they come from knowing the truth and lead to freedom, they belong to the highest reality.

'मैं' को देखने के ये दो तरीके शुद्ध और अच्छाई से भरे हैं, ये सच्चे ज्ञान से आते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं, ये परम सत्य से जुड़े हैं।

5.73.10

परोऽणुः सकलातीतरूपोऽहं चेत्यहंकृतिःप्रथमा सर्वमेवाहमित्यन्योक्ता रघूद्वह ॥ १० ॥

paro'ṇuḥ sakalātītarūpo'haṃ cetyahaṃkṛtiḥprathamā sarvamevāhamityanyoktā raghūdvaha || 10 ||

'I am the subtle point beyond all form, the highest one,' this is the first way of thinking 'I'. 'I am indeed everything,' this is called the other, best of the Raghu line.

'मैं वह सूक्ष्म बिंदु हूँ जो हर रूप से परे है, सबसे ऊँचा,' यह 'मैं' का पहला भाव है। 'मैं ही सब कुछ हूँ,' इसे दूसरा भाव कहा गया है, हे रघुकुल के श्रेष्ठ।

5.73.11

अहंकारदृगन्या तु तृतीया विद्यतेऽनघदेहोऽहमिति तां विद्धि दुःखायैव न शान्तये ॥ ११ ॥

ahaṃkāradṛganyā tu tṛtīyā vidyate'naghadeho'hamiti tāṃ viddhi duḥkhāyaiva na śāntaye || 11 ||

But there is another, a third way of seeing 'I,' sinless one: 'I am the body.' Know that this one brings only suffering, never peace.

पर 'मैं' का एक और, तीसरा भाव भी है, हे निष्पाप: 'मैं देह हूँ।' जान लो कि यह भाव सिर्फ़ दुख देता है, शांति कभी नहीं।

5.73.12

अथ चैतत्त्रयमपि त्यक्त्वा सकलसिद्धयेयच्छेषं तदुपालम्ब्य तिष्ठावष्टभ्दतत्परः ॥ १२ ॥

atha caitattrayamapi tyaktvā sakalasiddhayeyaccheṣaṃ tadupālambya tiṣṭhāvaṣṭabdhatatparaḥ || 12 ||

Now, giving up all three of these ways of thinking 'I,' for complete success, take hold of what remains beyond them, and stand firm, holding fast to it, given over to it alone.

अब इन तीनों 'मैं' के भावों को भी छोड़कर, पूरी सिद्धि के लिए, जो इनसे आगे बचता है उसे थाम लो, और उसी में दृढ़ता से टिके रहो, पूरी तरह उसी में लगे रहो।

5.73.13

सर्वातीतस्वरूपोऽपि सर्वसत्तातिगोऽपि चासत्तापूरितजगदस्त्येवात्मा प्रकाशकः ॥ १३ ॥

sarvātītasvarūpo'pi sarvasattātigo'pi caasattāpūritajagadastyevātmā prakāśakaḥ || 13 ||

Even though the self's true nature goes beyond everything, beyond every kind of existence, still, in this world filled with what is unreal, the self, the light that reveals all things, truly is.

आत्मा का असली रूप सब कुछ से परे है, यहाँ तक कि हर तरह के होने से भी परे है, फिर भी, इस असत्य से भरी दुनिया में, आत्मा, जो सबको उजागर करने वाला प्रकाश है, सच में मौजूद है।

5.73.14

स्वानुभूत्यैव पश्याशु स एवासि सदोदितःआशयं हृदयग्रन्थिं त्यज तत्त्वविदांवर ॥ १४ ॥

svānubhūtyaiva paśyāśu sa evāsi sadoditaḥāśayaṃ hṛdayagranthiṃ tyaja tattvavidāṃvara || 14 ||

See at once, through your own direct experience, that you yourself are that which is always shining. Give up the mind's grip, the knot in the heart, best of those who know the truth.

अपने ही सीधे अनुभव से तुरंत देखो कि तुम स्वयं वही हो जो सदा प्रकाशित रहता है। मन की पकड़, हृदय की गाँठ को छोड़ दो, हे सत्य को जानने वालों में श्रेष्ठ।

5.73.15

नात्मास्त्यनुमया राम न चाप्तवचनादिनासर्वदा सर्वथा सर्वं स प्रत्यक्षोऽनुभूतितः ॥ १५ ॥

nātmāstyanumayā rāma na cāptavacanādināsarvadā sarvathā sarvaṃ sa pratyakṣo'nubhūtitaḥ || 15 ||

The self is not known through inference, Rama, nor through the words of trusted teachers or such. Always, in every way, in everything, it is known directly, through one's own experience.

आत्मा अनुमान से नहीं जानी जाती, राम, न ही भरोसेमंद लोगों की बातों से। हमेशा, हर तरह से, हर जगह, वह सीधे अपने ही अनुभव से जानी जाती है।

5.73.16

यदिदं स्पर्शनं स्पन्दं किंचिद्यत्संविदाद्यपितत्सर्वमात्मा भगवान्दृश्यदर्शनवर्जितः ॥ १६ ॥

yadidaṃ sparśanaṃ spandaṃ kiṃcidyatsaṃvidādyapitatsarvamātmā bhagavāndṛśyadarśanavarjitaḥ || 16 ||

Whatever this is, any touch, any movement, anything at all, even awareness itself, all of it is the self, the divine one, free from any split between the seer and the seen.

यह जो कुछ भी है, कोई स्पर्श, कोई हलचल, कुछ भी, यहाँ तक कि चेतना भी, यह सब आत्मा ही है, वह भगवान, जो देखने वाले और दिखने वाले के भेद से परे है।

5.73.17

न सन्नासन्नसौ देवो नाणुर्नापि महानसौनाप्येतयोर्दृशोर्मध्यं स एवेदं च सर्वतः ॥ १७ ॥

na sannāsannasau devo nāṇurnāpi mahānasaunāpyetayordṛśormadhyaṃ sa evedaṃ ca sarvataḥ || 17 ||

That divine self is neither existent nor non-existent, it is neither tiny nor huge, it is not even something between these two. It alone is all this, in every direction.

वह दिव्य आत्मा न तो है, न ही नहीं है, वह न छोटी है, न बड़ी है, वह इन दोनों के बीच की कोई चीज़ भी नहीं है। वही सब कुछ है, हर तरफ़।

5.73.18

स एव चैवं वदति स च वक्तुं न युज्यतेन तदन्यदिदं तात पश्यात्मानमनामयम् ॥ १८ ॥

sa eva caivaṃ vadati sa ca vaktuṃ na yujyatena tadanyadidaṃ tāta paśyātmānamanāmayam || 18 ||

It alone speaks in this way, yet it is not right to say that it speaks. This is not separate from it, dear one, see the self, which is free of all trouble.

वही यह सब कह रहा है, फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि वह 'बोलता' है। यह सब उससे अलग नहीं है, प्रिय, उस आत्मा को देखो, जो हर तकलीफ़ से मुक्त है।

5.73.19

नात्मायमयमप्यात्मा संज्ञाभेद इति स्वयम्तेनैव सर्वगतया शक्त्या स्वात्मनि कल्पितः ॥ १९ ॥

nātmāyamayamapyātmā saṃjñābheda iti svayamtenaiva sarvagatayā śaktyā svātmani kalpitaḥ || 19 ||

'This is not the self,' and 'this too is the self,' these are only two names for one thing. That very difference is shaped within itself, by its own power that reaches everywhere.

'यह आत्मा नहीं है,' और 'यह भी आत्मा है,' ये तो एक ही चीज़ के दो नाम भर हैं। यह फ़र्क़ भी उसी की हर जगह फैली शक्ति से, उसी के भीतर रचा गया है।

5.73.20

संस्थितः स हि सर्वत्र त्रिषु कालेषु भास्करःसूक्ष्मत्वात्सुमहत्त्वाच्च केवलं न विभाव्यते ॥ २० ॥

saṃsthitaḥ sa hi sarvatra triṣu kāleṣu bhāskaraḥsūkṣmatvātsumahattvācca kevalaṃ na vibhāvyate || 20 ||

That shining self truly stands present everywhere, in all three times, past, present, and future. It simply is not seen, only because it is so subtle and so vast.

वह प्रकाशमान आत्मा सच में हर जगह मौजूद है, तीनों समय में, भूत, वर्तमान और भविष्य में। बस इतना है कि वह इतनी सूक्ष्म और इतनी विशाल है कि दिखाई नहीं देती।

5.73.21

सत्स्वनन्तपदार्थेषु जीवत्वेनाभिबिम्बतिआत्मा पुर्यष्टकादर्शे स्वभाववशतः स्वतः ॥ २१ ॥

satsvanantapadārtheṣu jīvatvenābhibimbatiātmā puryaṣṭakādarśe svabhāvavaśataḥ svataḥ || 21 ||

Among the countless things that exist, the self reflects itself as a living being, on its own, by the force of its own nature, in the mirror of the eightfold subtle body.

अनगिनत चीज़ों के बीच, आत्मा खुद को एक जीव के रूप में दिखाती है, अपने आप, अपने स्वभाव के दम पर, उस आठ अंगों वाले सूक्ष्म शरीर के आईने में।

5.73.22

पुर्यष्टकोदयादेव स्वयमात्मानुभूयतेसर्वदा सर्वसंस्थः खे घनास्पन्दादिवानिलः ॥ २२ ॥

puryaṣṭakodayādeva svayamātmānubhūyatesarvadā sarvasaṃsthaḥ khe ghanāspandādivānilaḥ || 22 ||

Only when the eightfold subtle body arises is the self itself felt, though it always stands everywhere, the way wind fills the sky always but is known only when it stirs the clouds.

वह आठ अंगों वाला सूक्ष्म शरीर जब बनता है, तभी आत्मा का एहसास होता है, हालाँकि आत्मा हमेशा हर जगह मौजूद रहती है, जैसे हवा हमेशा आकाश में भरी रहती है पर उसका पता तभी चलता है जब वह बादलों को हिलाती है।

5.73.23

चिदात्मा सर्वगो व्यापी न क्वचिन्नाम संस्थितःयद्वत्सर्वपदार्थानां सत्ता तद्वन्महेश्वरः ॥ २३ ॥

cidātmā sarvago vyāpī na kvacinnāma saṃsthitaḥyadvatsarvapadārthānāṃ sattā tadvanmaheśvaraḥ || 23 ||

The conscious self travels everywhere and fills everything; it does not sit fixed in any one place. The great Lord is present in everything the same way that mere existence is present in every single thing.

चेतन आत्मा हर जगह फैली हुई है, सब में मौजूद है; वह किसी एक जगह टिककर नहीं बैठी है। महान ईश्वर भी हर चीज़ में वैसे ही मौजूद है जैसे हर चीज़ का होना, यानी उसका अस्तित्व, उसमें मौजूद रहता है।

5.73.24

सति पुर्यष्टके तस्मिञ्जीवः स्फुरति नोपलेसति वायाविव रजः सति दीप इवेक्षणम् ॥ २४ ॥

sati puryaṣṭake tasmiñjīvaḥ sphurati nopalesati vāyāviva rajaḥ sati dīpa ivekṣaṇam || 24 ||

The living self shows itself only where this eightfold subtle body is present, not in a stone, the way dust rises only where there is wind, the way seeing happens only where there is a lamp.

जीव तभी दिखता है जहाँ यह आठ अंगों वाला सूक्ष्म शरीर मौजूद है, पत्थर में नहीं, जैसे धूल तभी उड़ती है जब हवा चले, जैसे देखना तभी होता है जब दीया जल रहा हो।

5.73.25

इयं पुर्यष्टके स्वेच्छा स्वात्मन्येवात्मनि स्थितेसति स्फुरत्यभ्युदिते भानाविव जनैषणा ॥ २५ ॥

iyaṃ puryaṣṭake svecchā svātmanyevātmani sthitesati sphuratyabhyudite bhānāviva janaiṣaṇā || 25 ||

This wanting of its own rises up in the eightfold subtle body, even while the self rests only in itself; it springs to life when the body arises, the way people's longings spring to life when the sun has risen.

यह अपनी चाहत उस आठ अंगों वाले सूक्ष्म शरीर में जागती है, जबकि आत्मा तो बस अपने ही अंदर टिकी रहती है; यह तभी जागती है जब वह शरीर बनता है, जैसे सूरज उगते ही लोगों की चाहतें जाग उठती हैं।

5.73.26

यदि सूर्ये स्थिते व्योम्नि तादृशोचितसंस्थितिःनश्यति व्यवहारोऽयं भास्करे तत्किमागतम् ॥ २६ ॥

yadi sūrye sthite vyomni tādṛśocitasaṃsthitiḥnaśyati vyavahāro'yaṃ bhāskare tatkimāgatam || 26 ||

Suppose that while the sun stands in the sky, the world's business goes on in its proper way because of it, and then that business comes to an end. What, then, has happened to the sun?

मान लो सूरज आकाश में है और उसी की वजह से दुनिया का सारा काम-काज ठीक ढंग से चल रहा है, और फिर वह काम-काज खत्म हो जाए। तो सूरज का क्या बिगड़ गया?

5.73.27

यद्यात्मनि स्थिते देवे तत्सत्ता लब्धसंस्थितिःदेहो नाशमुपायाति तत्किं नष्टमिहात्मनि ॥ २७ ॥

yadyātmani sthite deve tatsattā labdhasaṃsthitiḥdeho nāśamupāyāti tatkiṃ naṣṭamihātmani || 27 ||

In the same way, suppose that while the self is present, the body's existence stands there because of it, and then the body dies away. What, then, is destroyed in the self?

उसी तरह मान लो आत्मा के होने से ही शरीर का अस्तित्व टिका हुआ है, और फिर वह शरीर मर जाए। तो आत्मा में क्या नष्ट हुआ?

5.73.28

न जायते न म्रियते नादत्ते नाभिवाञ्छतिन मुक्तो न च बद्धोऽयमात्मा सर्वस्य सर्वदा ॥ २८ ॥

na jāyate na mriyate nādatte nābhivāñchatina mukto na ca baddho'yamātmā sarvasya sarvadā || 28 ||

It is not born, it does not die, it takes nothing, it wants nothing; it is not freed and it is not bound. This is the self of everyone, always.

यह न पैदा होता है, न मरता है, न कुछ लेता है, न कुछ चाहता है; यह न मुक्त है, न बंधा हुआ है। यही आत्मा हर किसी की है, हमेशा।

5.73.29

आत्माप्रबोधाभ्युदिता निरात्मन्यात्मतां गतासर्परज्जुभ्रमाकारा भ्रान्तिर्दुःखाय केवलम् ॥ २९ ॥

ātmāprabodhābhyuditā nirātmanyātmatāṃ gatāsarparajjubhramākārā bhrāntirduḥkhāya kevalam || 29 ||

This confusion rises up because the self has not woken to itself, and it makes something that is not the self seem like the self. It takes the shape of a rope mistaken for a snake, and it brings nothing but suffering.

यह भ्रम इसलिए उठता है क्योंकि आत्मा खुद को लेकर जागी नहीं है, और यह जो आत्मा नहीं है उसे आत्मा जैसा दिखा देता है। यह वैसा ही है जैसे रस्सी को साँप समझ लिया जाए, और इससे दुख के सिवा कुछ नहीं मिलता।

5.73.30

अनादित्वान्न जातोऽयमजातत्वान्न नश्यतिआत्मात्मव्यतिरिक्तं तु नाभिवाञ्छत्यसंभवात् ॥ ३० ॥

anāditvānna jāto'yamajātatvānna naśyatiātmātmavyatiriktaṃ tu nābhivāñchatyasaṃbhavāt || 30 ||

Because it has no beginning, this self is never born, and because it is never born, it never dies. And the self wants nothing other than itself, because nothing other than itself exists.

क्योंकि इसकी कोई शुरुआत नहीं है, यह आत्मा कभी पैदा नहीं होती, और क्योंकि यह पैदा नहीं होती, यह कभी मरती भी नहीं। और आत्मा अपने सिवा किसी और चीज़ को नहीं चाहती, क्योंकि उसके सिवा कुछ है ही नहीं।

5.73.31

दिक्कालाद्यनवच्छेदान्न बद्धोऽयं कदाचन बन्धाभावे क्व मुक्तिः स्यादमोक्षस्तेन संस्थितः ॥ ३१ ॥

dikkālādyanavacchedānna baddho'yaṃ kadācana bandhābhāve kva muktiḥ syādamokṣastena saṃsthitaḥ || 31 ||

Because it is never marked off by place or time or anything else, this self is never bound. And where there is no bondage, where could freedom be? So it stands beyond freedom itself.

क्योंकि यह किसी जगह, समय या किसी और चीज़ से घिरी नहीं है, यह आत्मा कभी बंधती नहीं। और जहाँ बंधन ही नहीं है, वहाँ मुक्ति कहाँ से हो? इसलिए यह मुक्ति से भी परे है।

5.73.32

एवंगुणविशिष्टोऽयमात्मा सर्वस्य राघव अविचारवशान्मूढो लोकोऽयं परिरोदिति ॥ ३२ ॥

evaṃguṇaviśiṣṭo'yamātmā sarvasya rāghava avicāravaśānmūḍho loko'yaṃ pariroditi || 32 ||

Rama, this is the self that belongs to everyone, marked by all these very qualities. But because they will not think it through, deluded people just weep and wail.

हे राम, यही वह आत्मा है जो हर किसी में है, इन्हीं गुणों के साथ। लेकिन बिना सोचे-समझे, भ्रम में पड़े लोग बस रोते-बिलखते रहते हैं।

5.73.33

सम्यगालोकिताशेषपूर्वापरजगत्क्रमः मा शोकं गच्छ सुमते मौर्योपगतलोकवत् ॥ ३३ ॥

samyagālokitāśeṣapūrvāparajagatkramaḥ mā śokaṃ gaccha sumate maurkhyopagatalokavat || 33 ||

You have seen clearly through the whole course of the world, from before to after, so do not fall into grief, you who are wise, the way foolish people do.

आपने दुनिया के पूरे क्रम को, पहले से लेकर बाद तक, साफ-साफ देख लिया है, इसलिए हे बुद्धिमान, दुखी मत होइए, जैसे मूर्ख लोग होते हैं।

5.73.34

द्वे एव कलने त्यक्त्वा मोक्षबन्धात्मके यथा विदुषा व्यवहर्तव्यं यन्त्रणेवात्ममौनिना ॥ ३४ ॥

dve eva kalane tyaktvā mokṣabandhātmike yathā viduṣā vyavahartavyaṃ yantraṇevātmamauninā || 34 ||

So a wise person, having dropped these two very notions of freedom and bondage, and staying silent within, should still deal with the world, the way someone carries out a task under compulsion.

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति मुक्ति और बंधन, इन दोनों खयालों को छोड़कर, और अंदर से चुप रहकर, फिर भी दुनिया का काम-काज करता रहे, जैसे कोई मजबूरी में कोई काम करता है।

5.73.35

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले मोक्षो हि चेतो विमलं सम्यग्ज्ञानविबोधितम् ॥ ३५ ॥

na mokṣo nabhasaḥ pṛṣṭhe na pātāle na bhūtale mokṣo hi ceto vimalaṃ samyagjñānavibodhitam || 35 ||

Freedom is not found on the surface of the sky, not in the world below the earth, not on the earth. Freedom is a mind that has become pure, woken up by true knowledge.

मुक्ति न आकाश की सतह पर है, न पाताल में, न धरती पर। मुक्ति तो बस वह मन है जो निर्मल हो चुका है, जो सच्चे ज्ञान से जाग उठा है।

5.73.36

सकलाशास्वसंसक्त्या यत्स्वयं चेतसः क्षयःस मोक्षनाम्ना कथितस्तत्त्वज्ञैरात्मदर्शिभिः ॥ ३६ ॥

sakalāśāsvasaṃsaktyā yatsvayaṃ cetasaḥ kṣayaḥsa mokṣanāmnā kathitastattvajñairātmadarśibhiḥ || 36 ||

When the mind, by not clinging to any desire at all, wears down and settles on its own, that is what those who know the truth, who have seen the self, call by the name freedom.

जब मन हर तरह की चाहत से न चिपककर अपने आप घटता और शांत होता जाता है, सच्चाई के जानकार, आत्मा को देख चुके लोग, उसे ही मुक्ति नाम से पुकारते हैं।

5.73.37

यावत्प्रबोधो विमलो नोदितस्तावदेव सःमौर्ख्याद्दीनतया राम भक्त्या मोक्षोभिवाञ्छ्यते ॥ ३७ ॥

yāvatprabodho vimalo noditastāvadeva saḥmaurkhyāddīnatayā rāma bhaktyā mokṣobhivāñchyate || 37 ||

Rama, only for as long as pure awakening has not yet risen is freedom longed for at all, out of foolishness, out of a feeling of poverty, longed for with devotion.

हे राम, जब तक शुद्ध जागरण नहीं हुआ है, तभी तक मूर्खता से और एक तरह की कमी के एहसास से, भक्ति के साथ मुक्ति को चाहा जाता है।

5.73.38

परं प्रबोधमासाद्य चित्ते चित्तत्त्वतां गतेदश मोक्षा न वाञ्छ्यन्ते किमुतैको हि मोक्षकः ॥ ३८ ॥

paraṃ prabodhamāsādya citte cittattvatāṃ gatedaśa mokṣā na vāñchyante kimutaiko hi mokṣakaḥ || 38 ||

Once supreme awakening is reached, once the mind has merged into the true nature of consciousness, a person would not want even ten freedoms, how much less a single one.

जब परम जागरण मिल जाए, जब मन चेतना के असली स्वरूप में मिल जाए, तो दस मुक्तियाँ भी नहीं चाहिए, फिर एक मुक्ति की तो बात ही क्या।

5.73.39

अयं मोक्षस्त्वयं बन्धः पेलवां कलनामितिपरित्यज्य महात्यागी स त्वमेव भवाभव ॥ ३९ ॥

ayaṃ mokṣastvayaṃ bandhaḥ pelavāṃ kalanāmitiparityajya mahātyāgī sa tvameva bhavābhava || 39 ||

Give up entirely this flimsy idea that says this is freedom and this is bondage. Become the great renouncer. That one is you yourself, you who are beyond both becoming and ceasing to be.

यह मुक्ति है, यह बंधन है, इस कमज़ोर खयाल को पूरी तरह छोड़ दो। महान त्यागी बन जाओ। वह त्यागी तुम खुद ही हो, तुम जो बनने और मिट जाने दोनों से परे हो।

5.73.40

परिगलितविकल्पनां प्रयातः सगरसुतौघनिखातमेखलाङ्कमवनिवलयमन्तरस्तसङ्गश्चिरमनुपालय सर्वदोदितश्रीः ॥ ४० ॥

parigalitavikalpanāṃ prayātaḥ
sagarasutaughanikhātamekhalāṅkamavanivalayamantarastasaṅgaściramanupālaya sarvadoditaśrīḥ || 40 ||

You have reached the state where every doubt has melted away. So rule for a long time over this circle of the earth, marked by the belt of ocean that the flood of Sagara's sons dug out, with every attachment cast off within you, your glory forever risen.

तुम उस अवस्था तक पहुँच चुके हो जहाँ हर शंका मिट चुकी है। तो लंबे समय तक इस धरती के इस घेरे पर राज करो, जिस पर सगर के पुत्रों की खोदी हुई समुद्र की पेटी का निशान है, अंदर से हर लगाव छोड़कर, तुम्हारी शोभा हमेशा चमकती रहे।

Chapter 74

5.74.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । लीलयाऽपश्यति वपुः कालेनात्मनि जायते । रम्यस्यापश्यतो वक्रं हृदि दौरूप्यधीरिव ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | līlayā'paśyati vapuḥ kālenātmani jāyate | ramyasyāpaśyato vakraṃ hṛdi daurūpyadhīriva || 1 ||

Sri Vasishtha said: the self does not really see any body, as if it were all just play. Yet in time this idea of a body is born within the self itself, the way a false idea of an ugly flaw can rise in the heart of someone who has not actually seen any crookedness in something beautiful.

श्री वसिष्ठ ने कहा: आत्मा असल में किसी शरीर को नहीं देखती, मानो यह सब एक खेल हो। फिर भी समय के साथ शरीर होने का यह खयाल खुद आत्मा के भीतर पैदा हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे किसी सुंदर चीज़ में कोई टेढ़ापन असल में देखे बिना भी मन में उसके भद्दे होने का झूठा खयाल उठ खड़ा होता है।

5.74.2

तद्वशादियमायाता महती मेदुरोदरा । माया मदमहाशक्तिः सुरास्वादलवादिव ॥ २ ॥

tadvashādiyamāyātā mahatī medurodarā | māyā madamahāśaktiḥ surāsvādalavādiva || 2 ||

Because of that, this illusion has come, huge, big bellied, a great power like intoxication, growing out of no more than a drop's taste of wine.

उसी के कारण यह माया आ खड़ी हुई है, बहुत बड़ी, फूले हुए पेट वाली, नशे जैसी एक बड़ी शक्ति, ठीक वैसे ही जैसे शराब का एक बूँद भर स्वाद लेने से बड़ा नशा चढ़ जाता है।

5.74.3

तयानया विकारिण्या तदतद्भावभूतया । इदं संपन्नमखिलं तापादिव मरौ पयः ॥ ३ ॥

tayānayā vikāriṇyā tadatadbhāvabhūtayā | idaṃ saṃpannamakhilaṃ tāpādiva marau payaḥ || 3 ||

Through this ever changing illusion, which is both a thing and not that thing, this whole world has come into being, like water appearing in a desert because of heat.

इस बदलती रहने वाली माया के कारण, जो एक ही समय में कुछ भी होती है और कुछ भी नहीं होती, यह पूरी दुनिया बन गई है, ठीक वैसे ही जैसे गरमी के कारण रेगिस्तान में पानी दिखने लगता है।

5.74.4

मनो बुद्धिरहंकारो वासनाश्चेन्द्रियाण्यपि । एवंकलितनामाङ्कैः स्फुरत्यात्माब्धिरम्बुभिः ॥ ४ ॥

mano buddhirahaṃkāro vāsanāścendriyāṇyapi | evaṃkalitanāmāṅkaiḥ sphuratyātmābdhirambubhiḥ || 4 ||

Mind, intellect, ego, desires and the senses are the waves that carry these very names, in which the ocean of the self shows itself.

मन, बुद्धि, अहंकार, वासनाएँ और इंद्रियाँ, इन्हीं नामों वाली लहरें हैं, जिनमें आत्मा का सागर खुद को दिखाता है।

5.74.5

चित्ताहंकारयोर्द्वित्वं वचस्यस्ति न वस्तुतः । यच्चित्तं स ह्यहंकारो योऽहंकारो मनो हि तत् ॥ ५ ॥

cittāhaṃkārayordvitvaṃ vacasyasti na vastutaḥ | yaccittaṃ sa hyahaṃkāro yo'haṃkāro mano hi tat || 5 ||

The difference between the mind stuff and the ego is only in words, not in fact. What is called the mind stuff is really the ego, and what is called the ego is really the mind.

चित्त और अहंकार में जो भेद है, वह सिर्फ बोलने में है, असल में नहीं। जिसे चित्त कहा जाता है वह असल में अहंकार ही है, और जिसे अहंकार कहा जाता है वह असल में मन ही है।

5.74.7

मनोहंकारयोरन्तर्द्वयोरेकतरक्षये क्षीणे द्वे एव हि यथा पटशौक्ल्ये पटक्षये ॥ ७ ॥

manohaṃkārayorantardvayorekatarakṣaye kṣīṇe dve eva hi yathā paṭaśauklye paṭakṣaye || 7 ||

Between the mind and the ego, since the two are one at heart, when either one dies out, both die out together, just as, when a white cloth is destroyed, its whiteness is destroyed with it.

मन और अहंकार के बीच, चूँकि भीतर से दोनों एक ही हैं, जब इनमें से एक मिट जाता है तो दोनों साथ ही मिट जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे जब सफेद कपड़ा नष्ट हो जाता है तो उसकी सफेदी भी साथ ही नष्ट हो जाती है।

5.74.8

तुच्छां मोक्षधियं त्यक्त्वा बन्धबुद्धिं तथैषणाम् स्ववैराग्यविवेकाभ्यां केवलं क्षपयेन्मनः ॥ ८ ॥

tucchāṃ mokṣadhiyaṃ tyaktvā bandhabuddhiṃ tathaiṣaṇām svavairāgyavivekābhyāṃ kevalaṃ kṣapayenmanaḥ || 8 ||

Give up the petty idea of being liberated, and also the idea of being bound, and every craving. Through your own dispassion and clear understanding alone, wear away the mind completely.

मुक्त होने का छोटा सा खयाल छोड़ दो, और बंधन में होने का खयाल भी, और हर तरह की चाह भी। सिर्फ अपने वैराग्य और साफ समझ के दम पर मन को पूरी तरह घिसकर मिटा दो।

5.74.9

मोक्षो मेऽस्त्विति चिन्तान्तर्जाता चेदुत्थितं मनः मननोत्के मनस्युच्चैर्वपुर्दोषाय केवलम् ॥ ९ ॥

mokṣo me'stviti cintāntarjātā cedutthitaṃ manaḥ mananotke manasyuccairvapurdōṣāya kevalam || 9 ||

If within you the thought arises, let me be freed, and the mind gets excited, eager to dwell on this again and again, that alone greatly harms the body.

अगर तुम्हारे भीतर यह खयाल उठे कि मैं मुक्त हो जाऊँ, और मन उतावला होकर बार बार इसी पर सोचने लगे, तो यह अकेला ही शरीर को बहुत नुकसान पहुँचाता है।

5.74.10

आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वभूतेऽथवा तते को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥ १० ॥

ātmanyatīte sarvasmātsarvabhūte'thavā tate ko bandhaḥ kaśca vā mokṣo nirmūlaṃ mananaṃ kuru || 10 ||

The self is beyond everything, or else it is spread through every being, so what is bondage, and what is liberation? Root out this very thinking, down to its base.

आत्मा हर चीज़ से परे है, या फिर हर प्राणी में फैली हुई है, तो फिर बंधन क्या है, और मुक्ति क्या है? इस सोच को ही जड़ से उखाड़ फेंको।

5.74.11

वायुः स्पन्दनधर्मत्वाद्यदा चलति देहके तदा स्फुरति हस्ताङ्गरसनापल्लवावली ॥ ११ ॥

vāyuḥ spandanadharmatvādyadā calati dehake tadā sphurati hastāṅgarasanāpallavāvalī || 11 ||

Because breath by nature vibrates, when it moves within the body, the hands, the limbs and the tongue, like a row of budding shoots, stir into motion.

चूँकि साँस का स्वभाव कँपना है, जब यह शरीर के भीतर चलती है, तब हाथ, अंग और जीभ, नई कोंपलों की एक कतार की तरह, हिलने लगते हैं।

5.74.12

पादपे पल्लवश्रेणीं चालयत्यनिलो यथातथैवाङ्गावलीं वायुर्देहे संचालयत्यलम् ॥ १२ ॥

pādape pallavaśreṇīṃ cālayatyanilo yathātathaivāṅgāvalīṃ vāyurdehe saṃcālayatyalam || 12 ||

Just as the wind moves a row of young leaves on a tree, in the same way, breath thoroughly moves the row of limbs in the body.

जैसे हवा पेड़ पर नई पत्तियों की कतार को हिला देती है, ठीक वैसे ही साँस शरीर में अंगों की कतार को पूरी तरह हिला देती है।

5.74.13

चित्सर्वव्यापिनी सूक्ष्मा न चला नैव चाल्यतेन स्वतः स्पन्दमायाति देवाचल इवानिलैः ॥ १३ ॥

citsarvavyāpinī sūkṣmā na calā naiva cālyatena svataḥ spandamāyāti devācala ivānilaiḥ || 13 ||

Consciousness, spreading through everything, subtle, does not move, is not moved by anything, and never stirs on its own, like the mountain of the gods, that even the winds cannot shake.

चेतना, जो हर चीज़ में फैली है, सूक्ष्म है, न खुद हिलती है, न किसी से हिलाई जाती है, और अपने आप कभी नहीं काँपती, ठीक वैसे ही जैसे देवताओं का पर्वत हवाओं से भी नहीं हिलता।

5.74.14

प्रतिबिम्बितसर्वार्था केवलं स्वात्मनि स्थिताप्रकाशयति बोधेन जगन्तीमानि दीपवत् ॥ १४ ॥

pratibimbitasarvārthā kevalaṃ svātmani sthitāprakāśayati bodhena jagantīmāni dīpavat || 14 ||

Consciousness, in which all things are reflected, resting only within itself, lights up all these worlds with its awareness, like a lamp.

चेतना, जिसमें हर चीज़ का प्रतिबिंब पड़ता है, सिर्फ अपने ही भीतर टिकी हुई, अपनी जागरूकता से इन सब लोकों को रोशन करती है, ठीक जैसे एक दीया करता है।

5.74.15

तत्र कोऽयं मूढा मोहो भवतामतिदुःखदःअयं सोऽहं ममाङ्गानि ममेदं चेति दुर्धियाम् ॥ १५ ॥

tatra ko'yaṃ mudhā moho bhavatāmatiduḥkhadaḥayaṃ so'haṃ mamāṅgāni mamedaṃ ceti durdhiyām || 15 ||

So what is this delusion, you deluded people, this great cause of suffering for you, the thought I am this, these limbs are mine, this thing is mine, that fills minds of poor understanding?

तो फिर यह भ्रम क्या है, ओ मोहग्रस्त लोगों, तुम्हें इतना दुख देने वाला यह भ्रम, यह खयाल कि मैं यह हूँ, ये अंग मेरे हैं, यह चीज़ मेरी है, जो कमज़ोर समझ वाले मन में भर जाता है?

5.74.16

इति कल्लोलहतया दृशा नित्यमनित्ययाज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वक्रिया समुपलभ्यते ॥ १६ ॥

iti kallolahatayā dṛśā nityamanityayājñatvakartṛtvabhoktṛtvakriyā samupalabhyate || 16 ||

In this way, through a vision shaken like waves, the eternal self mistaken for something passing, one comes to feel the workings of ignorance, of being a doer, and of being an enjoyer.

इस तरह, लहरों की तरह हिली हुई नज़र से, जो सदा रहने वाली आत्मा को नाशवान समझ बैठती है, इंसान को अज्ञान के, कर्ता होने के, और भोगने वाला होने के काम महसूस होने लगते हैं।

5.74.17

तत्रायमहमागन्ता भोक्ता कर्तेति जायते । मुधैवाज्ञाततापोत्था मृगतृष्णेव वासना ॥ १७ ॥

tatrāyamahamāgantā bhoktā karteti jāyate | mudhaivājñātatāpotthā mṛgatṛṣṇev vāsanā || 17 ||

There the thought is born, I am this one who comes and goes, who enjoys, who acts, a useless idea, rising out of some unrecognised inner burning, like a craving that is really a mirage.

वहाँ यह खयाल पैदा होता है कि मैं ही आने जाने वाला हूँ, भोगने वाला हूँ, करने वाला हूँ, यह एक बेकार खयाल है, किसी अनजानी भीतरी जलन से उठा हुआ, ठीक उस चाह की तरह जो असल में एक मृगतृष्णा है।

5.74.18

अज्ञतैषा मनोमत्तमृगं विषयतर्षुलम् । असत्यैव हि सत्येव मृगतृष्णेव कर्षति ॥ १८ ॥

ajñataiṣā manomattamṛgaṃ viṣayatarṣulam | asatyaiava hi satyeva mṛgatṛṣṇev karṣati || 18 ||

This ignorance, though it is unreal, drags along the mind, a wild deer thirsty for sense objects, as if it were real, the way a mirage pulls a thirsty deer.

यह अज्ञान, असल में झूठा होते हुए भी, मन को खींच ले जाता है, जो विषयों का प्यासा एक मतवाला हिरन है, मानो यह सच हो, ठीक जैसे मृगतृष्णा एक प्यासे हिरन को खींच ले जाती है।

5.74.19

विज्ञाता सत्यरूपांग नाशं याति पलायते । विप्रमध्यात्परिज्ञाता यथा चाण्डालकन्यका ॥ १९ ॥

vijñātā satyarūpāṃga nāśaṃ yāti palāyate | vipramadhyātparijñātā yathā cāṇḍālakanyakā || 19 ||

Once you truly know it, one of true nature, it is destroyed and it runs away, just as a chandala's daughter, once she is found out among brahmins, runs away.

इसे सच में पहचान लेने पर, हे सच्चे स्वभाव वाले, यह नष्ट हो जाता है और भाग खड़ा होता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई चांडाल की बेटी ब्राह्मणों के बीच पहचानी जाने पर भाग खड़ी होती है।

5.74.20

अविद्या संपरिज्ञाता न चैनं परिकर्षति । मृगतृष्णा परिज्ञाता तर्षुले नावकर्षति ॥ २० ॥

avidyā saṃparijñātā na cainaṃ parikarṣati | mṛgatṛṣṇā parijñātā tarṣule nāvakarṣati || 20 ||

Ignorance, once you see it clearly, no longer drags you along, just as a mirage, once it is recognised, no longer pulls a thirsty creature toward it.

अज्ञान, एक बार साफ साफ पहचान लेने पर, फिर तुम्हें नहीं खींचता, ठीक वैसे ही जैसे मृगतृष्णा, एक बार पहचान लेने पर, किसी प्यासे प्राणी को अपनी ओर नहीं खींचती।

5.74.21

परमार्थावबोधेन समूलं राम वासना । दीपेनेवान्धकारश्रीर्गलत्यालोक एति च ॥ २१ ॥

paramārthāvabodhena samūlaṃ rāma vāsanā | dīpeneveāndhakāraśrīrgaltiāloka eti ca || 21 ||

Through the understanding of the highest truth, Rama, craving is torn out by the root, as darkness melts away before a lamp, and light takes its place.

परम सत्य को समझ लेने से, हे राम, चाह जड़ समेत उखड़ जाती है, ठीक वैसे ही जैसे दीये के आगे अंधेरा पिघल जाता है, और उजाला आ जाता है।

5.74.22

नास्त्यविद्येति संजाते निश्चये शास्त्रयुक्तितः । गलत्यविद्या तापेन तुषारकणिका यथा ॥ २२ ॥

nāstyavidyeti saṃjāte niścaye śāstrayuktitaḥ | galatyavidyā tāpena tuṣārakaṇikā yathā || 22 ||

When, through the reasoning of the scriptures, the firm certainty arises that there is no such thing as ignorance, ignorance melts away in that very heat, just as a grain of frost melts in heat.

जब शास्त्रों के तर्क से यह पक्का यकीन हो जाता है कि अज्ञान नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, तो अज्ञान उसी गरमी में पिघल जाता है, ठीक जैसे बर्फ का एक कण गरमी में पिघल जाता है।

5.74.23

देहस्यास्य जडस्यार्थे किं भोगैरितिनिश्चयः । भिनत्त्याशामलं ज्ञाता पञ्जरं केसरी यथा ॥ २३ ॥

dehasyāsya jaḍasyārthe kiṃ bhogairiti niścayaḥ | bhinattyāśāmalaṃ jñātā pañjaraṃ kesarī yathā || 23 ||

What use are pleasures for the sake of this lifeless body, with this certainty firmly held, the one who knows breaks craving completely, just as a lion breaks out of its cage.

इस निर्जीव शरीर के लिए भोगों से क्या फायदा, इस पक्के यकीन के साथ, जानने वाला चाह को पूरी तरह तोड़ डालता है, ठीक वैसे ही जैसे शेर अपने पिंजरे को तोड़ डालता है।

5.74.24

आशापरिकरे राम नूनं परिहृते हृदा । पुमानागतसौन्दर्यो ह्लादमायाति चन्द्रवत् ॥ २४ ॥

āśāparikare rāma nūnaṃ parihṛte hṛdā | pumānāgatasaundaryo hlādamāyāti candravat || 24 ||

When the whole tangle of craving, Rama, is truly cast off by the heart, a person becomes lovely and brings delight, like the moon.

जब चाह का पूरा जाल, हे राम, दिल से सच में उतार फेंका जाता है, तो इंसान सुंदर हो जाता है और चाँद की तरह खुशी देने लगता है।

5.74.25

परां शीतलतामेति वृष्टिधौत इवाचलः । निर्वृतिं परमां धत्ते प्राप्तराज्य इवाधमः ॥ २५ ॥

parāṃ śītalatāmeti vṛṣṭidhauta ivācalaḥ | nirvṛtiṃ paramāṃ dhatte prāptarājya ivādhamaḥ || 25 ||

He becomes supremely cool, like a mountain washed clean by rain. He holds the highest contentment, like a poor man who has won a kingdom.

वह बहुत ठंडा हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे बारिश से धुला हुआ पहाड़। वह सबसे बड़ा संतोष पा लेता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई गरीब आदमी राजगद्दी पा ले।

5.74.26

शोभते परया लक्ष्म्या शरदीव नभस्तलम् । आत्मन्येव न मात्युच्चैः कल्पस्यान्त इवार्णवः ॥ २६ ॥

śobhate parayā lakṣmyā śaradīva nabhastalam | ātmanyeva na mātyucchaiḥ kalpasyānta ivārṇavaḥ || 26 ||

He shines with the highest beauty, like the autumn sky. He cannot be contained even within himself, so vast, like the ocean overflowing at the end of an age.

वह सबसे बड़ी शोभा से चमकता है, ठीक वैसे ही जैसे शरद ऋतु का आकाश। वह इतना विशाल हो जाता है कि खुद अपने भीतर भी नहीं समाता, ठीक वैसे ही जैसे कल्प के अंत में सागर उमड़ पड़ता है।

5.74.27

भवत्यपेतसंरम्भो वृष्टिमूक इवाम्बुदः । तिष्ठत्यात्मनि संवेत्ता प्रशान्त इव वारिधिः ॥ २७ ॥

bhavatyapetasaṃrambho vṛṣṭimūka ivāmbudaḥ| tiṣṭhatyātmani saṃvettā praśānta iva vāridhiḥ || 27 ||

He becomes free of all turmoil, like a cloud gone silent after its rain. The one who knows rests within himself, calm, like a quiet sea.

वह हर हलचल से मुक्त हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे बारिश के बाद चुप हो गया बादल। जानने वाला अपने ही भीतर शांत होकर टिका रहता है, ठीक वैसे ही जैसे शांत हुआ सागर।

5.74.28

परं धैर्यमुपादत्ते स्थैर्यं मेरुरिवाचलः । राजते स्वच्छया लक्ष्म्या शान्तेन्धन इवानलः ॥ २८ ॥

paraṃ dhairyamupādatte sthairyaṃ merurivācalaḥ| rājate svacchayā lakṣmyā śāntendhana ivānalaḥ || 28 ||

He takes on the deepest steadiness, unmoving like Mount Meru. He shines with a clear brightness, like a fire whose fuel has burned down to a quiet glow.

वह सबसे गहरी दृढ़ता पा लेता है, मेरु पर्वत की तरह अडिग। वह साफ चमक से दमकता है, ठीक वैसे ही जैसे वह आग जिसका ईंधन जलकर शांत हो चुका हो।

5.74.29

भवत्यात्मनि निर्वाणः प्रशान्त इव दीपकः । तृप्तिमायाति परमां नरः पीतामृतो यथा ॥ २९ ॥

bhavatyātmani nirvāṇaḥ praśānta iva dīpakaḥ| tṛptimāyāti paramāṃ naraḥ pītāmṛto yathā || 29 ||

Within himself he becomes still, quiet like a lamp gone out. He reaches the deepest contentment, like a man who has drunk the nectar of immortality.

वह अपने ही भीतर शांत हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे बुझा हुआ दीया शांत होता है। वह सबसे बड़ा संतोष पा लेता है, ठीक वैसे ही जैसे अमृत पी चुका इंसान।

5.74.30

अन्तर्दीपो घट इव मध्यज्वाल इवानलः । स्फुरद्दीप्तिर्मणिरिव प्रयात्यन्तः प्रकाशताम् ॥ ३० ॥

antardīpo ghaṭa iva madhyajvāla ivānalaḥ| sphuraddīptirmṇiriva prayātyantaḥ prakāśatām || 30 ||

Like a jar with a lamp burning inside it, like a fire with flame at its heart, like a gem glittering with light, he comes to shine within.

जैसे किसी घड़े के भीतर दीया जल रहा हो, जैसे आग के बीच में लौ हो, जैसे कोई रत्न चमक बिखेर रहा हो, वैसे ही वह भीतर से चमकने लगता है।

5.74.31

सर्वात्मकं सर्वगतं सर्वेशं सर्वनायकम् । सर्वाकारं निराकारं स्वमात्मानं प्रपश्यति ॥ ३१ ॥

sarvātmakaṃ sarvagataṃ sarveśaṃ sarvanāyakam| sarvākāraṃ nirākāraṃ svamātmānaṃ prapaśyati || 31 ||

He sees his own self as the self of everything, present everywhere, the lord of all, the leader of all, having every form, and yet without any form.

वह अपनी ही आत्मा को सबकी आत्मा के रूप में देखता है, जो हर जगह मौजूद है, सबका स्वामी है, सबका अगुआ है, हर रूप में है, फिर भी बिना किसी रूप के है।

5.74.32

हसत्यलमतीतास्ताः पेलवा दिवसावलीः । यासु स्मरशरश्रेणीचपलं चित्तमास्थितम् ॥ ३२ ॥

hasatyālamatītāstāḥ pelavā divasāvalīḥ | yāsu smaraśaraśreṇīcapalaṃ cittamāsthitam || 32 ||

He laughs freely now at those weak, worn-out days that have passed, days when his restless mind stayed caught up in one arrow of desire after another.

वह अब उन कमज़ोर, बीते हुए दिनों पर खुलकर हँसता है, जिन दिनों में उसका चंचल मन इच्छा के तीरों की झड़ी में उलझा रहता था।

5.74.33

सङ्गरङ्गविनिष्क्रान्तः शान्तमानमनोज्वरः । अध्यात्मरतिरासीनः पूर्णः पावनमानसः ॥ ३३ ॥

saṅgaraṅgaviniṣkrāntaḥ śāntamānamanojvaraḥ | adhyātmaratirāsīnaḥ pūrṇaḥ pāvanamānasaḥ || 33 ||

He has walked off the stage of attachment. The fever of pride and restless thought in him has gone quiet. He sits resting in love for his own true self, whole and pure in mind.

वह मोह-माया के मंच से बाहर निकल आया है। उसके भीतर घमंड और बेचैन मन का बुखार शांत हो गया है। वह अपने भीतर के सच्चे स्वरूप के प्रेम में टिका बैठा है, पूरा और मन से शुद्ध।

5.74.34

निर्मृष्टकामपङ्काङ्कश्छिन्नबन्धनिजभ्रमः । द्वन्द्वदोषभयोन्मुक्तस्तीर्णसंसारसागरः ॥ ३४ ॥

nirmṛṣṭakāmapaṅkāṅkaśchinnabandhanijabhramaḥ | dvandvadoṣabhayonmuktastīrṇasaṃsārasāgaraḥ || 34 ||

The stain of desire's mud has been wiped away from him, and the knot of his own confusion is cut. He is free from the fault and the fear that come from opposites, and he has crossed the ocean of this world.

उसके ऊपर से इच्छा की कीचड़ का दाग मिट चुका है, और उसके अपने भ्रम की गाँठ कट चुकी है। वह विरोधी जोड़ों से आने वाले दोष और डर से मुक्त है, और वह इस संसार-सागर से पार हो चुका है।

5.74.35

प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिर्लब्धालभ्यपरास्पदः । अनिवृत्तिपदं प्राप्तो मनसा कर्मणा गिरा ॥ ३५ ॥

prāptānuttamaviśrāntirlabdhālabhyaparāspadaḥ | anivṛttipadaṃ prāpto manasā karmaṇā girā || 35 ||

He has found the highest rest, and he has gained the highest place that others cannot reach. In mind, in action, and in speech, he has arrived at the state from which there is no turning back.

उसे सबसे बड़ा विश्राम मिल गया है, और उसने वह सबसे ऊँचा स्थान पा लिया है जो दूसरों को नहीं मिलता। मन से, काम से और वाणी से, वह उस अवस्था में पहुँच गया है जहाँ से लौटना नहीं होता।

5.74.36

सर्वाभिवाञ्छितारम्भो न किंचिदपि वाञ्छति । सर्वानुमोदितानन्दो न किंचिदनुमोदते ॥ ३६ ॥

sarvābhivāñchitārambho na kiñcidapi vāñchati | sarvānumoditānando na kiñcidanumodate || 36 ||

He could begin anything that anyone wishes for, yet he himself wishes for nothing. Everyone takes joy in his happiness, yet he himself takes joy in nothing.

वह वह सब कुछ शुरू कर सकता है जो कोई भी चाहे, फिर भी वह खुद कुछ नहीं चाहता। सब उसकी खुशी में आनंद लेते हैं, फिर भी वह खुद किसी बात में आनंद नहीं लेता।

5.74.37

न ददाति न चादत्ते न स्तौति न च निन्दति । नास्तमेति न चोदेति न तुष्यति न शोचति ॥ ३७ ॥

na dadāti na cādatte na stauti na ca nindati | nāstameti na codeti na tuṣyati na śocati || 37 ||

He does not give, and he does not take. He does not praise, and he does not blame. He does not set, and he does not rise. He is not pleased, and he does not grieve.

वह न कुछ देता है, न कुछ लेता है। वह न किसी की तारीफ़ करता है, न निंदा। वह न डूबता है, न उगता है। वह न खुश होता है, न दुखी।

5.74.38

सर्वारम्भपरित्यागी सर्वोपाधिविवर्जितः । सर्वाशासंपरित्यागी जीवन्मुक्त इति स्मृतः ॥ ३८ ॥

sarvārambhaparityāgī sarvopādhibivarjitaḥ | sarvāśāsamparityāgī jīvanmukta iti smṛtaḥ || 38 ||

One who has given up every undertaking, who is free from every limiting condition, who has let go of every hope completely — he is known as one who is free while still alive.

जिसने हर काम-धंधा छोड़ दिया है, जो हर बंधन-भरी पहचान से मुक्त है, जिसने हर आशा पूरी तरह छोड़ दी है — उसे जीते-जी मुक्त कहा जाता है।

5.74.39

सर्वैषणाः परित्यज्य चेतसा भव मौनवान् । धारा निरवशेषेण यथा त्यक्त्वा पयोधरः ॥ ३९ ॥

sarvaiṣaṇāḥ parityajya cetasā bhava mauṇavān | dhārā niraveśeṣeṇa yathā tyaktvā payodharaḥ || 39 ||

Let go of every craving in your mind, and become still — completely, without holding anything back — just as a cloud becomes empty once it has poured out all its rain.

अपने मन से हर इच्छा को छोड़ दो, और पूरी तरह शांत हो जाओ — बिना कुछ बचाए — जैसे बादल अपनी सारी बारिश बरसाकर खाली हो जाता है।

5.74.40

न तथा सुखयत्यङ्ग संलग्ना वरवर्णिनी । यथा सुखयति स्वान्तमिन्दुशीता निराशता ॥ ४० ॥

na tathā sukhayatyanga saṃlagnā varavarṇinī | yathā sukhayati svāntamindуśītā nirāśatā || 40 ||

A beautiful woman holding you close, dear one, does not give as much joy as desirelessness — cool as the moon — gives to your own heart.

कोई सुंदर स्त्री तुम्हें गले लगाकर भी उतना सुख नहीं देती, प्रिय, जितना सुख इच्छाहीनता — जो चाँद जैसी ठंडी है — तुम्हारे अपने मन को देती है।

5.74.41

न तथेन्दुः सुखयति कण्ठलग्नोऽपि राघव। नैराश्यं सुखयत्यन्तर्यथा सकलशीतलम्॥ ४१॥

na tathenduḥ sukhayati kaṇṭhalagno'pi rāghava | nairāśyaṃ sukhayatyantaryathā sakalaśītalam || 41 ||

Even the moon held close against your throat would not please you as much, Raghava, as desirelessness pleases you within — cool through and through.

अगर चाँद भी तुम्हारे गले से लगा हो, हे राघव, तो भी वह उतना सुख नहीं देगा जितना भीतर की इच्छाहीनता देती है — जो पूरी तरह ठंडी है।

5.74.42

पुष्पपूर्णनवलतो न तथा राजते मधुः। यथोदारमतिर्मौनी नैराश्यसममानसः॥ ४२॥

puṣpapūrṇanavalato na tathā rājate madhuḥ| yathodāramatirmauṇī nairāśyasamamānasaḥ || 42 ||

Spring itself, with its fresh vines full of flowers, does not shine as bright as a noble, silent sage whose heart rests evenly in desirelessness.

फूलों से भरी ताज़ा लताओं वाला बसंत भी उतना नहीं चमकता, जितना वह उदार, मौन मुनि चमकता है जिसका मन इच्छाहीनता में बराबर टिका रहता है।

5.74.43

न हिमाद्रेर्न मुक्ताभ्यो न रम्भाभ्यो न चन्दनात्। न च चन्द्रमसः शैत्यं नैराश्याद्यदवाप्यते॥ ४३॥

na himādrern na muktābhyo na rambhābhyo na candanāt| na ca candramasaḥ śaityaṃ nairāśyādyadavāpyate || 43 ||

Not from the snow-capped mountains, not from pearls, not from banana trees, not from sandalwood, and not even from the moon comes the coolness that desirelessness gives.

जो ठंडक इच्छाहीनता देती है, वह न बर्फ़ीले पहाड़ों से मिलती है, न मोतियों से, न केले के पेड़ों से, न चंदन से, और न ही चाँद से।

5.74.44

अपि राज्यादपि स्वर्गादपीन्दोरपि माधवात्। अपि कान्तासमासङ्गान्नैराश्यं परमं सुखम्॥ ४४॥

api rājyādapi svargādapi indorapi mādhavāt| api kāntāsamāsaṅgānnai rāśyaṃ paramaṃ sukham || 44 ||

More than a kingdom, more than heaven, more than the moon, more than spring, even more than the embrace of a beloved woman — desirelessness is the highest happiness.

राज्य से भी बढ़कर, स्वर्ग से भी बढ़कर, चाँद से भी बढ़कर, बसंत से भी बढ़कर, यहाँ तक कि किसी प्रिय स्त्री के आलिंगन से भी बढ़कर — इच्छाहीनता सबसे बड़ा सुख है।

5.74.45

तृणवन्नोपकुर्वन्ति यत्र त्रिभुवनश्रियः। सा परा निर्वृतिः साधो नैराश्यादुपलभ्यते॥ ४५॥

tṛṇavannopakurvanti yatra tribhuvanaśriyaḥ| sā parā nirvṛtiḥ sādho nairāśyādupalabhyate || 45 ||

That highest peace, good man, where the riches of all three worlds count for no more than a blade of grass — that peace comes from desirelessness.

हे साधु, वह सबसे बड़ी शांति जहाँ तीनों लोकों का ऐश्वर्य भी घास के तिनके जितना ही लगता है, वह इच्छाहीनता से मिलती है।

5.74.46

आपत्करञ्जपरशुं पराया निर्वृतेः पदम्। पुष्पगुच्छं शमतरोरालम्बस्व निराशताम्॥ ४६॥

āpatkarañjaparaśuṃ parāyā nirvṛteḥ padam| puṣpagucchaṃ śamatarorālambasva nirāśatām || 46 ||

Hold fast to desirelessness. It is the axe that cuts down calamity, the very seat of highest peace, the flower cluster on the tree of tranquility.

इच्छाहीनता को मज़बूती से पकड़े रहो। यही वह कुल्हाड़ी है जो आफ़त को काट गिराती है, यही सबसे बड़ी शांति का ठिकाना है, यही शांति के पेड़ पर लगा फूलों का गुच्छा है।

5.74.47

गोष्पदं पृथ्वी मेरुः स्थाणुराशाः समुद्गिकाःतृणं त्रिभुवनं राम नैराश्यालंकृताकृतेः॥ ४७॥

goṣpadaṃ pṛthivī meruḥ sthāṇurāśāḥ samudgikāḥtṛṇaṃ tribhuvanaṃ rāma nairāśyālaṃkṛtākṛteḥ || 47 ||

For one whose whole being is adorned with desirelessness, Rama, the earth is a cow's hoofprint, Mount Meru a mere post, the directions of space tiny boxes, and the three worlds a blade of grass.

हे राम, जिसका पूरा अस्तित्व इच्छाहीनता से सजा है, उसके लिए धरती गाय के खुर के निशान जितनी है, मेरु पर्वत एक साधारण खंभे जितना है, दिशाएँ छोटी डिबियों जितनी हैं, और तीनों लोक घास के एक तिनके जितने हैं।

5.74.48

दानादानसमाहारविहारविभवादिकाःक्रिया जगति हस्यन्ते निराशैः पुरुषोत्तमैः॥ ४८॥

dānādānasamāhāravihāravibhavādikāḥkriyā jagati hasyante nirāśaiḥ puruṣottamaiḥ || 48 ||

Giving and taking, gathering wealth, enjoying pleasures, and all such activities in this world are laughed at by desireless men, the best among men.

देना-लेना, धन इकट्ठा करना, सुख भोगना, और ऐसे सारे काम — इस दुनिया में इच्छाहीन पुरुष, जो सबसे श्रेष्ठ हैं, इन पर हँसते हैं।

5.74.49

पदं यस्य न बध्नाति कदाचित्कलना हृदितृणीकृतत्रिभुवनः केनासौ उपमीयते॥ ४९॥

padaṃ yasya na badhnāti kadācitkalanā hṛditṛṇīkṛtatribhuvanaḥ kenāsāvupamīyate || 49 ||

He in whose heart no clinging thought ever takes hold, who has turned the three worlds into a mere blade of grass — to what can he be compared?

जिसके मन में कोई चिपकने वाला विचार कभी जड़ नहीं जमाता, जिसने तीनों लोकों को घास के एक तिनके जैसा बना दिया है — उसकी तुलना किससे की जाए?

5.74.50

इदमेवास्त्विदं मास्तु ममेति हृदि रञ्जनान यस्यास्ति तमात्मेशं तोलयन्ति कथं जनाः॥ ५०॥

idamevāstvidaṃ māstu mameti hṛdi rañjanāna yasyāsti tamātmeśaṃ tolayanti kathaṃ janāḥ || 50 ||

'Let this be,' 'let this not be,' 'this is mine' — no such feeling colors his heart. He is the master of himself — how could people ever measure him?

'यह हो जाए,' 'यह न हो,' 'यह मेरा है' — ऐसा कोई भाव उसके मन को रंगता ही नहीं। वह खुद अपना स्वामी है — लोग उसे कैसे नाप सकते हैं?

5.74.51

सर्वसंकटपर्यन्तमसंकटमलं सुखम्सौभाग्यं परमं बुद्धेर्नैराश्यमवलम्ब्यताम् ॥ ५१ ॥

sarvasaṃkaṭaparyantamasaṃkaṭamalaṃ sukhamsaubhāgyaṃ paramaṃ buddhernairāśyamavalambyatām || 51 ||

It lies beyond the reach of every danger, and it is itself free of danger — happiness enough, the mind's highest fortune. Hold fast to desirelessness.

यह हर ख़तरे की पहुँच से परे है, और यह खुद किसी ख़तरे में नहीं है — यह अपने आप में पूरा सुख है, मन का सबसे बड़ा सौभाग्य है। इच्छाहीनता को मज़बूती से पकड़े रहो।

5.74.52

नाशास्तेनत्वमाशानां विद्धि मिथ्याभ्रमं जगत् । वहद्रथस्थदिक्चक्रपरावर्तवदुत्थितम् ॥ ५२ ॥

nāśāstena tvamāśānāṃ viddhi mithyābhramaṃ jagat | vahadrathasthadikcakraparāvartavadutthitam || 52 ||

Do not hope for anything; you do not belong to hope. Know this world to be a false illusion, arising just as the circle of directions seems to turn when one rides along in a moving chariot.

किसी बात की आशा मत रखो; तुम आशा के अधीन नहीं हो। इस संसार को एक झूठा भ्रम समझो, जो वैसे ही उठ खड़ा होता है जैसे चलते हुए रथ में बैठे व्यक्ति को दिशाओं का घेरा घूमता हुआ दिखता है।

5.74.53

किं मुह्यसि महाबाहो मूर्खवद्बोधितोऽपि सन् । ममेदं तदयं सोऽहमित्युद्भ्रान्तेन चेतसा ॥ ५३ ॥

kiṃ muhyasi mahābāho mūrkhavadbodhito'pi san | mamedaṃ tadayaṃ so'hamityudbhrāntena cetasā || 53 ||

Why are you confused, mighty-armed one, like a fool, even after being taught — your mind still whirling with thoughts like 'this is mine,' 'that is his,' 'this is he,' 'I am this'?

हे महाबाहु, तुम मूर्ख की तरह क्यों उलझन में पड़े हो, जबकि तुम्हें समझाया जा चुका है — तुम्हारा मन अब भी 'यह मेरा है,' 'वह उसका है,' 'यह वही है,' 'मैं यह हूँ' — ऐसे विचारों में घूम रहा है?

5.74.54

आत्मैवेदं जगत्सर्वं नानातेह न विद्यते । एकरूपं जगज्ज्ञात्वा धीरैर्नाम न खिद्यते ॥ ५४ ॥

ātmaivedaṃ jagatsarvaṃ nānāteha na vidyate | ekarūpaṃ jagajjñātvā dhīrairnāma na khidyate || 54 ||

This whole world is nothing but the self; there is no real difference here. Once the wise and steady know the world to be one single reality, they never grieve.

यह पूरी दुनिया आत्मा के सिवा कुछ भी नहीं है; यहाँ कोई सच्चा भेद है ही नहीं। जब बुद्धिमान और स्थिर लोग दुनिया को एक ही सच्चाई जान लेते हैं, तो वे कभी दुखी नहीं होते।

5.74.55

यथाभूतपदार्थौघदर्शनादेव राघव । परमाश्वासनं बुद्धेर्नैराश्यमधिगच्छति ॥ ५५ ॥

yathābhūtapadārthaughadarśanādeva rāghava | paramāśvāsanaṃ buddhernairāśyamadhigacchati || 55 ||

Only by seeing the true nature of this flood of things just as it is, Raghava, does the mind reach desirelessness — its deepest comfort.

हे राघव, चीज़ों की इस भरमार को जैसा वह सचमुच है वैसा देखने से ही मन को इच्छाहीनता मिलती है — जो मन का सबसे गहरा सुकून है।

5.74.56

भावाभावविसंवादमुक्तमाद्यन्तयोः स्थितम् । यद्रूपं तत्समालम्ब्य पदार्थानां स्थितिं कुरु ॥ ५६ ॥

bhāvābhāvavisamvādamuktamādyantayoḥ sthitam | yadrūpaṃ tatsamālambya padārthānāṃ sthitiṃ kuru || 56 ||

Hold on to that true nature which is free from the contradiction between being and not-being, which stays the same at the beginning and at the end — and settle, on that basis, what all things really are.

उस सच्चे स्वरूप को थामे रहो जो होने और न होने के टकराव से मुक्त है, जो शुरू से अंत तक एक जैसा रहता है — और उसी के आधार पर तय करो कि सब चीज़ें असल में क्या हैं।

5.74.57

वैराग्यवीरमनसो मायेयमतिमोहिनी । पलाय्य याति संसारी मृगी केसरिणो यथा ॥ ५७ ॥

vairāgyavīramanaso māyeyamatimohinī | palāyya yāti saṃsārī mṛgī kesariṇo yathā || 57 ||

From a mind that is heroic in giving things up, this deeply deluding illusion — the very stuff of this world — runs away, just as a doe runs away from a lion.

जो मन त्याग में वीर है, उससे यह गहरी मोह-माया — जो इस संसार को रचती है — वैसे ही भाग जाती है जैसे हिरनी शेर से भाग जाती है।

5.74.58

कान्तामुद्दाममदनां लोलां वनलतामिव । जर्जरोपलपाञ्चालीसमां पश्यति धीरधीः ॥ ५८ ॥

kāntāmuddāmamadanāṃ lolāṃ vanalatāmiva | jarjaropalapāñcālīsamāṃ paśyati dhīradhīḥ || 58 ||

The steady-minded man sees a beautiful woman — wild with passion, restless as a forest vine — as nothing more than a crumbling stone doll.

स्थिर मन वाला व्यक्ति एक सुंदर स्त्री को — जो कामना में बेकाबू है, जंगली बेल जैसी बेचैन है — बस एक टूटती-फूटती पत्थर की गुड़िया जैसा ही देखता है।

5.74.59

भोगा नानन्दयन्त्यन्तः खेदयन्ति न चापदः । दृश्यश्रियो हरन्त्यङ्ग नतमद्रिमिवानिलाः ॥ ५९ ॥

bhogā nānandayantyantaḥ khedayanti na cāpadaḥ | dṛśyaśriyo harantyaṅga natamadrimivānilāḥ || 59 ||

Pleasures do not delight him within, and troubles do not distress him. Visible splendors do not carry him away, dear one, any more than wind can move a mountain.

सुख-भोग उसे भीतर से आनंदित नहीं करते, और मुसीबतें उसे दुखी नहीं करतीं। दिखने वाली शानो-शौकत उसे बहा नहीं ले जाती, प्रिय, जैसे हवा किसी पहाड़ को हिला नहीं सकती।

5.74.60

रक्तबालाङ्गनस्यापि ज्ञस्योदारधिया मुनेः । कणशः पांसुतां यान्ति मनसः स्मरसायकाः ॥ ६० ॥

raktabālāṅganasyāpi jñasyodāradhiyā muneḥ | kaṇaśaḥ pāṃsutāṃ yānti manasaḥ smarasāyakāḥ || 60 ||

Even in a sage who seems drawn to a young woman, if he is a knower with a noble mind, the arrows of desire in his heart crumble to dust, grain by grain.

यहाँ तक कि जो मुनि किसी युवा स्त्री की ओर खिंचा हुआ लगे, अगर वह जानकार है और उसका मन उदार है, तो उसके मन में मौजूद कामना के तीर धीरे-धीरे, कण-कण करके धूल बन जाते हैं।

5.74.61

रागद्वेषैः स्वरूपज्ञो नावशः परिकृष्यते । स्पन्द एवास्य नैताभ्यां किमुताक्रमणं भवेत् ॥ ६१ ॥

rāgadveṣaiḥ svarūpajño nāvaśaḥ parikṛṣyate | spanda evāsya naitābhyāṃ kimutākramaṇaṃ bhavet || 61 ||

One who knows his own true nature is not dragged along helplessly by attraction and aversion. Not even a tremor stirs in him because of these two — how then could they ever overpower him?

जो अपने सच्चे स्वरूप को जानता है, वह राग और द्वेष से मजबूरी में घसीटा नहीं जाता। इन दोनों से उसके भीतर एक हलचल तक नहीं होती — फिर वे उस पर हावी कैसे हो सकते हैं?

5.74.62

समदृष्टलतालोलवनितोऽद्रिशिलाकृतिः । रमते नैष भोगेषु पान्थो मरुमहीष्विव ॥ ६२ ॥

samadṛṣṭalatālolavanito'driśilākṛtiḥ | ramate naiṣa bhogeṣu pāntho marumahīṣviva || 62 ||

He looks at a swaying creeper and a restless woman with the same eye, and his nature is like a rock on a mountain. He takes no delight in pleasures, as a traveler takes no delight in the desert sand.

वह हिलती हुई बेल और चंचल स्त्री को एक ही नज़र से देखता है, और उसका स्वभाव पहाड़ की चट्टान जैसा है। वह सुखों में आनंद नहीं लेता, जैसे कोई यात्री रेगिस्तान की रेत में आनंद नहीं लेता।

5.74.63

अयत्नोपनतं सर्वं लीलयाऽसक्तमानसः । भुङ्क्ते भोगभरं प्राज्ञस्त्वालोकमिव लोचनम् ॥ ६३ ॥

ayatnopanataṃ sarvaṃ līlayā'saktamānasaḥ | bhuṅkte bhogabharaṃ prājñastvālokamiva locanam || 63 ||

The wise man, whose mind is unattached to anything, enjoys with ease everything that comes to him without effort. He enjoys the whole weight of pleasure the way the eye takes in light.

जिस बुद्धिमान इंसान का मन किसी चीज़ से नहीं बंधा, वह बिना मेहनत के मिली हर चीज़ को आसानी से भोगता है। वह सुख के पूरे बोझ को वैसे ही भोगता है जैसे आँख रोशनी को ग्रहण करती है।

5.74.64

काकतालीयवत्प्राप्ता भोगाली ललनादिका । स्वादिताप्यङ्ग धीरस्य न दुःखाय न तुष्टये ॥ ६४ ॥

kākatālīyavatprāptā bhogālī lalanādikā | svāditāpyaṅga dhīrasya na duḥkhāya na tuṣṭaye || 64 ||

Enjoyments, women included, come to him by chance, like a crow landing just as a palm fruit falls. Friend, even when tasted, they bring the steady man neither sorrow nor delight.

स्त्री वगैरह सारे सुख-भोग उसे संयोग से मिलते हैं, जैसे कौआ बैठे और ठीक उसी वक्त ताड़ का फल गिर पड़े। दोस्त, इन्हें चख लेने पर भी ये स्थिर बुद्धि वाले इंसान को न दुःख देते हैं न सुख।

5.74.65

सम्यग्दृष्टपथं तज्ज्ञं सुखदुःखमती मनाक् । द्वे वीच्याविव शैलेन्द्रं क्षोभं नेतुं न शक्नुतः ॥ ६५ ॥

samyagdṛṣṭapathaṃ tajjñaṃ sukhaduḥkhama tī manāk | dve vīcyāviva śailendraṃ kṣobhaṃ netuṃ na śaknutaḥ || 65 ||

Pleasure and pain cannot stir, even a little, the man who has rightly seen the path and known the truth, just as two waves cannot shake a great mountain.

सुख और दुःख उस इंसान को ज़रा भी नहीं हिला सकते जिसने सही राह देख ली है और सच्चाई जान ली है, जैसे दो लहरें किसी बड़े पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

5.74.66

हेलयालोकयन्भोगान्मृदुर्दान्तो गतज्वरः । स्वमेव पदमालम्ब्य सर्वभूतान्तरस्थितम् ॥ ६६ ॥

helayālokayanbhogānmṛdurdānto gatajvaraḥ | svameva padamālambya sarvabhūtāntarasthitam || 66 ||

He looks upon pleasures with indifference. He is gentle, self-controlled, free of inner restlessness. He rests on his own true state, which lives within every being.

वह सुखों को उदासीनता से देखता है। वह कोमल है, आत्मसंयमी है, भीतर की बेचैनी से मुक्त है। वह अपनी उसी असली स्थिति के सहारे टिका रहता है जो हर प्राणी के भीतर मौजूद है।

5.74.67

ज्ञस्तिष्ठति गतव्यग्रो व्यग्रेणापि समन्वितः । जगन्ति जनयन्नेव ब्रह्मैवात्मपरायणः ॥ ६७ ॥

jñastiṣṭhati gatavyagro vyagreṇāpi samanvitaḥ | jaganti janayanneva brahmaivātmaparāyaṇaḥ || 67 ||

The knower remains free of restlessness, even while he is caught up in restless activity. Even while bringing the worlds into being, he is Brahman itself, absorbed only in his own self.

ज्ञानी बेचैनी से मुक्त रहता है, चाहे वह बेचैन कामों में ही क्यों न लगा हो। दुनिया को बनाते हुए भी, वह खुद ब्रह्म ही है, बस अपनी आत्मा में लीन।

5.74.68

आपतत्सु यथाकालं यथादेशं यथाक्रमम् । सुखदुःखेषु न क्षोभमेति भूभृदृतुष्विव ॥ ६८ ॥

āpatatsu yathākālaṃ yathādeśaṃ yathākramam | sukhaduḥkheṣu na kṣobhameti bhūbhṛdṛtuṣviva || 68 ||

When pleasure and pain come to him, each in its own time, its own place, its own order, he is not disturbed, like a mountain standing firm through the seasons.

जब सुख और दुःख उस पर आते हैं - अपने वक्त पर, अपनी जगह पर, अपने क्रम से - तो वह विचलित नहीं होता, जैसे पहाड़ हर मौसम में अडिग रहता है।

5.74.69

मज्जतोऽपि बहुज्ञस्य राम कर्मेन्द्रियभ्रमैः । असक्तमनसो नित्यं न किंचिदपि मज्जति ॥ ६९ ॥

majjato'pi bahujñasya rāma karmeindriyabhramaiḥ | asaktamanaso nityaṃ na kiṃcidapi majjati || 69 ||

Rama, the man of great wisdom seems immersed in the movements of his hands, feet, and senses, but because his mind is always unattached, nothing in him truly sinks.

हे राम, महाज्ञानी अपने हाथ-पैर और इंद्रियों की हरकतों में डूबा हुआ लगता है, लेकिन क्योंकि उसका मन हमेशा अनासक्त रहता है, इसलिए उसका कुछ भी सच में नहीं डूबता।

5.74.70

कलंकयन्तःकलङ्केन प्रोच्यते हेम नान्यथा । भावासक्त्या समासक्त उक्तो जन्तुर्हि नान्यथा ॥ ७० ॥

kalaṅkayantaḥkalaṅkena procyate hema nānyathā | bhāvāsaktyā samāsakta uktō janturhi nānyathā || 70 ||

Gold is called tarnished only when it carries a real inner stain, not otherwise. In the same way, a creature is called attached only when there is a real attachment of feeling within it, not otherwise.

सोना 'मैला' तभी कहलाता है जब उसमें सचमुच भीतरी मैल हो, वरना नहीं। उसी तरह कोई जीव 'आसक्त' तभी कहलाता है जब उसके भीतर सच में लगाव का भाव हो, वरना नहीं।

5.74.71

शरीराद्व्यतिरिक्तं ज्ञं पश्यतः प्रविवेकिनः । विकर्तिताङ्गकस्यापि न किंचित्प्रविकर्तितम् ॥ ७१ ॥

śarīrādvyatiriktaṃ jñaṃ paśyataḥ pravivekinaḥ | vikartitāṅgakasyāpi na kiṃcitpravikartitam || 71 ||

For the man of true discernment, who sees the self as separate from the body, even if his body is cut to pieces, nothing in him is really cut.

जो सच में भेद करना जानता है और आत्मा को शरीर से अलग देखता है, उसके लिए - भले ही उसका शरीर काट डाला जाए - असल में कुछ भी नहीं कटता।

5.74.72

सकृत्प्रभातं विमलं यज्ज्ञातं ज्ञातमेव तत् । नहि बन्धुः परिज्ञातः पुनरज्ञाततां व्रजेत् ॥ ७२ ॥

sakṛtprabhātaṃ vimalaṃ yajjñātaṃ jñātameva tat | nahi bandhuḥ parijñātaḥ punarajñātatāṃ vrajet || 72 ||

What has once dawned clear stays known; known once, it stays known forever. Someone once fully recognized as one's own does not become a stranger again.

जो एक बार साफ-साफ उजागर हो गया, वह हमेशा के लिए जाना हुआ ही रहता है। जैसे किसी अपने को एक बार पूरी तरह पहचान लेने के बाद वह फिर अजनबी नहीं बन जाता।

5.74.73

सर्पभ्रान्तौ निवृत्तायां न रज्ज्वां सर्पभावना । पुनरेति यथा प्रावृण्नदी गिरितटाच्च्युता ॥ ७३ ॥

sarpabhrāntau nivṛttāyāṃ na rajjvāṃ sarpabhāvanā | punareti yathā prāvṛṇnadī giritaṭācchyutā || 73 ||

Once the illusion of a snake is gone, the thought of a snake in the rope does not come back, just as a monsoon river, once it has run down from the mountain slope, does not flow back again.

जब सांप का भ्रम मिट जाता है, तो रस्सी में सांप का खयाल दोबारा नहीं आता - जैसे बरसात की नदी एक बार पहाड़ की ढलान से बह जाने पर फिर वापस नहीं लौटती।

5.74.74

न हेम तापशुद्धाङ्गं स्वभावमलमागतम् । कर्दमे मग्नमपि सत्समादत्ते मलं पुनः ॥ ७४ ॥

na hema tāpaśuddhāṅgaṃ svabhāvamalamāgatam | kardame magnampi satsamādatte malaṃ punaḥ || 74 ||

Gold whose base impurity has been burned away by fire, and which has come fully into its own true nature, does not turn stained again even when it sinks into mud.

जिस सोने की मूल अशुद्धि आग में जलकर दूर हो चुकी है और जो पूरी तरह अपने असली रूप को पा चुका है, वह कीचड़ में डूबने पर भी दोबारा मैला नहीं होता।

5.74.75

क्षीणे स्वहृदयग्रन्थौ न बन्धोऽस्ति पुनर्गुणैः । यत्नेनापि पुनर्बद्धुं केन वृन्ते च्युतं फलम् ॥ ७५ ॥

kṣīṇe svahṛdayagranthau na bandho'sti punarguṇaiḥ | yatnenāpi punarbadhdhaṃ kena vṛnte cyutaṃ phalam || 75 ||

Once the knot of the heart is undone, the strands of nature can never bind him again. However hard anyone tries, who can tie a fruit back onto its branch once it has fallen?

जब दिल की गांठ खुल जाती है, तो प्रकृति के गुण दोबारा कभी नहीं बांध सकते। कोई कितनी भी कोशिश कर ले, डाल से गिरे फल को दोबारा कौन जोड़ सकता है?

5.74.76

अवच्छेदविचाराभ्यामभितः खण्डशो गतम् । पाषाणं च मणिं चैव संधातुं कस्य शक्तता ॥ ७६ ॥

avacchedavicārābhyāmabhitaḥ khaṇḍaśo gatam | pāṣāṇaṃ ca maṇiṃ caiva saṃdhātuṃ kasya śaktatā || 76 ||

A stone or a gem that cutting and searching inquiry have broken completely into pieces - who has the power to join it back together?

काटने और खोजबीन से जो पत्थर या रत्न पूरी तरह टुकड़े-टुकड़े हो चुका है, उसे दोबारा जोड़ने की ताकत किसमें है?

5.74.77

विज्ञातायामविद्यायां कः पुनः परिमज्जति । परिज्ञाय श्वपाकानां यात्रां कः प्रेक्षते द्विजः ॥ ७७ ॥

vijñātāyāmavidyāyāṃ kaḥ punaḥ parimajjati| parijñāya śvapākānāṃ yātrāṃ kaḥ prekṣate dvijaḥ || 77 ||

Once ignorance has been fully understood, who sinks into it again? Once a Brahmin has learned what the outcastes do, would he care to go and watch them?

जब अज्ञान को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो उसमें दोबारा कौन डूबता है? जब कोई ब्राह्मण नीच जाति के लोगों का चाल-चलन जान चुका है, तो क्या वह उसे देखने जाएगा?

5.74.78

शुद्धाम्भसि यथा क्षीरधीर्विचारान्निवर्तते । संसारवासना तद्वद्धीविचारान्निवर्तते ॥ ७८ ॥

śuddhāmbhasi yathā kṣīradhīrvicārānnivartate| saṃsāravāsanā tadvaddhīvicārānnivartate || 78 ||

Just as, on clear water, the thought that it is milk goes away on close examination, so the deep habit of clinging to the world goes away, in the same way, through close examination by the mind.

जैसे साफ पानी में यह खयाल कि यह दूध है, गौर से देखने पर मिट जाता है, वैसे ही दुनिया से चिपके रहने की गहरी आदत भी मन की जाँच-पड़ताल से मिट जाती है।

5.74.79

मध्वम्बुशङ्कया तावद्विप्रवर्यैः प्रपीयतेयावन्नात्र परिज्ञातं परिज्ञातं प्रहीयते ॥ ७९ ॥

madhvambuśaṅkayā tāvadvipravaryaiḥ prapīyateyāvannātra parijñātaṃ parijñātaṃ prahīyate || 79 ||

The finest of Brahmins drink it only so long as they mistake it for sweetened water; the moment they recognize what it really is, they give it up.

श्रेष्ठ ब्राह्मण इसे तभी तक पीते हैं जब तक उन्हें यह मीठा पानी समझने की भूल रहती है; जैसे ही उन्हें असलियत पता चलती है, वे इसे छोड़ देते हैं।

5.74.80

रूपलावण्ययुक्तापि चित्रकान्तेव कामिनी । द्रव्यमात्रसमारम्भात्तत्त्वविद्भिर्विलोक्यते ॥ ८० ॥

rūpalāvaṇyayuktāpi citrakānteva kāminī| dravyamātrasamārambhāttattvavidbhirvilokyate || 80 ||

Even a woman full of beauty and grace is seen by those who know the truth as nothing more than a painted picture, a mere arrangement of matter.

रूप और सुंदरता से भरपूर स्त्री को भी सच्चाई जानने वाले लोग एक तस्वीर जैसा ही देखते हैं - बस पदार्थ की एक बनावट।

5.74.81

यथा मषीकुसुम्भादि स्त्रियाश्चित्रे तथैव हि । जीवत्या अपि केशोष्ठं कस्तां परि किल ग्रहः ॥ ८१ ॥

yathā maṣīkusumbhādi striyāścitre tathaiva hi| jīvatyā api keśoṣṭhaṃ kastāṃ pari kila grahaḥ || 81 ||

Just as the hair and lips of a woman in a painting are only ink and red dye, the hair and lips of a living woman are exactly the same. What, then, is there to be so taken with?

जैसे तस्वीर में बनी स्त्री के बाल और होंठ बस स्याही और लाल रंग होते हैं, वैसे ही जीती-जागती स्त्री के बाल और होंठ भी वैसे ही हैं। फिर उस पर इतना मोहित होने की क्या बात है?

5.74.82

अनुभूतो गुडः स्वादुरपि दाहविकर्तनैः । न शक्यतेऽन्यथाकर्तुं तत्त्वालोकस्तथात्मनः ॥ ८२ ॥

anubhūto guḍaḥ svādurapi dāhavikartanaiḥ | na śakyate'nyathākartuṃ tattvālokastathātmanaḥ || 82 ||

Jaggery once tasted as sweet cannot be made otherwise by burning it or cutting it up; so too the direct sight of one's own true nature, once known, cannot be undone.

जो गुड़ एक बार मीठा चख लिया गया, उसे जलाने या काटने से भी मीठे से अलग नहीं बनाया जा सकता; वैसे ही आत्मा की सच्चाई का साक्षात्कार एक बार हो जाए तो उसे मिटाया नहीं जा सकता।

5.74.83

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि । तदेवास्वादयत्यन्तः परसङ्गरसायनम् ॥ ८३ ॥

paravyasaninī nārī vyagrāpi gṛhakarmaṇi | tadevāsvādayatyantaḥ parasanga rasāyanam || 83 ||

A woman devoted to another man, even while busy with her household chores, is inwardly tasting nothing but the sweetness of union with him.

पराए मर्द में रमी हुई औरत, घर के काम में व्यस्त रहते हुए भी, भीतर ही भीतर बस उसके साथ मिलन के सुख का स्वाद चखती रहती है।

5.74.84

एवं तत्त्वे परे शुद्धे धीरो विश्रान्तिमागतः । न शक्यते चालयितुं देवैरपि सवासवैः ॥ ८४ ॥

evaṃ tattve pare śuddhe dhīro viśrāntimāgataḥ | na śakyate cālayituṃ devairapi savāsavaiḥ || 84 ||

In just this way, the steady man who has come to rest in the supreme, pure truth cannot be shaken even by the gods, Indra included.

इसी तरह, जो स्थिर बुद्धि वाला इंसान परम शुद्ध सच्चाई में विश्राम पा चुका है, उसे इंद्र समेत देवता भी नहीं हिला सकते।

5.74.85

परव्यसनिनी नारी केन भर्त्रा बलीयसा । विस्मारिता स्वसंकल्पकान्तसङ्गमहोत्सवम् ॥ ८५ ॥

paravyasaninī nārī kena bhartrā balīyasā | vismāritā svasaṃkalpakāntasaṅgamahotsavam || 85 ||

However powerful her husband, a woman devoted to another man cannot be made to forget the joy of union with the lover she holds in her own mind.

पराए मर्द में रमी औरत को चाहे कितना भी ताकतवर पति क्यों न हो, वह अपने ही मन में बसाए प्रेमी के मिलन के आनंद को भुला नहीं सकता।

5.74.86

जगत्समरसानन्दचिदालोकावलम्बनम्। केन विस्मार्यते बुद्धिस्तत्त्वज्ञस्य महात्मनः ॥ ८६ ॥

jagatsamarasānandacidālokāvalambanam | kena vismāryate buddhis tattvajñasya mahātmanaḥ || 86 ||

What could make the mind of the great soul who knows the truth forget the light of consciousness and bliss it rests on, the same bliss that runs through the whole world alike?

जो महान आत्मा सच्चाई को जानता है, उसके मन को कौन उस चेतना और आनंद की रोशनी को भुला सकता है, जिस पर वह टिका है - वही आनंद जो पूरी दुनिया में एक जैसा बहता है?

5.74.87

समग्रसुखदुःखाढ्यं व्यवहारमखण्डितम्। कुर्वन्कुलजनायत्तो भर्तृश्वशुरखेदितः ॥ ८७ ॥

samagrasukhaduḥkhāḍhyaṃ vyavahāramakhaṇḍitam | kurvankulajanāyatto bhartṛśvaśurakheditaḥ || 87 ||

She keeps up her unbroken round of household dealings, full of every pleasure and pain, bound to her family's will, worn down by her husband and father-in-law.

वह लगातार अपने घर के काम करती रहती है, जिसमें हर तरह का सुख-दुःख भरा है, परिवार वालों की मरज़ी से बंधी हुई, अपने पति और ससुर से परेशान।

5.74.88

यथा संकल्पकान्तेन भवत्यानन्दमन्थरः। वधूलोको व्यसनवान्दुःखवृन्दैर्न बाध्यते ॥ ८८ ॥

yathā saṃkalpakāntena bhavatyānandamantharaḥ | vadhūloko vyasanavānduḥkhavṛndairna bādhyate || 88 ||

Yet, because of the lover she holds in her own mind, that same woman, lost in her secret passion, grows languid with joy, and is not troubled by her many sorrows.

फिर भी, अपने ही मन में बसाए प्रेमी की वजह से, वही औरत, अपनी गुप्त लगन में डूबी हुई, आनंद से मंद पड़ जाती है, और अपने ढेरों दुखों से विचलित नहीं होती।

5.74.89

तथा विगलिताविद्यो व्यवहारपरोऽप्यलम्। सम्यग्दृष्टिः सदाचारो मुदमेत्यन्तरात्मना ॥ ८९ ॥

tathā vigalitāvidyo vyavahāraparo'pyalam | samyagdṛṣṭiḥ sadācāro mudametyantarātmanā || 89 ||

In the same way, the man whose ignorance has melted away, though fully caught up in worldly affairs, being of right vision and good conduct, finds joy within, in his own inmost self.

उसी तरह, जिस इंसान का अज्ञान मिट चुका है, वह चाहे सांसारिक कामों में पूरी तरह लगा हो, सही समझ और अच्छे बर्ताव वाला होकर, अपने भीतर ही आनंद पाता है।

5.74.90

छिद्यते न निकृत्ताङ्गो गलदश्रुर्न रोदिति। दह्यते न प्रदग्धोऽपि नष्टोऽपि न विनश्यति ॥ ९० ॥

chidyate na nikṛttāṅgo galadaśrurna roditi | dahyate na pradagdho'pi naṣṭo'pi na vinaśyati || 90 ||

Though his limb is cut off, he is not cut; though his tears flow, he does not weep; though he is burned, he is not burned; though destroyed, he does not perish.

उसका अंग कट जाए तो भी वह नहीं कटता; आंसू बहें तो भी वह नहीं रोता; वह जल जाए तो भी नहीं जलता; वह मिट जाए तो भी नहीं मिटता।

5.74.91

व्यपगतसुखदुःखसंनिपातो विधिविधुरेष्वपि संकटेष्वचित्तः । विलसतु सदने पुरोत्तमे वा विततगिरौ विपिने तपोवने वा ॥ ९१ ॥

vyapagatasukhaduḥkhasaṃnipāto vidhividhureṣvapi saṃkaṭeṣvacittaḥ | vilasatu sadane purottame vā vitatagirau vipine tapovane vā || 91 ||

Untouched by the rise of pleasure and pain, unshaken even amid harsh blows of fate, let him live joyfully, whether in a house, or in the finest of cities, on a vast mountain, in a wild forest, or in a hermitage.

सुख-दुःख के उभरने से अछूता, भाग्य की कठोर मुसीबतों में भी बेफिक्र, वह आनंद से रहे - चाहे घर में हो, चाहे किसी बड़े शहर में, चाहे किसी विशाल पहाड़ पर, चाहे घने जंगल में, चाहे तपोवन में।

Chapter 75

5.75.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । जनकः संस्थितो राज्ये व्यवहारपरोऽपि सन् । विगतज्वर एवान्तरनाकुलमतिः सदा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | janakaḥ saṃsthito rājye vyavahāraparo'pi san | vigatajvara evāntaranākulamatiḥ sadā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Janaka stayed in his kingdom, busy with its affairs, but the fever in him was gone, and his mind stayed always calm within.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जनक अपने राज्य में रहते हुए राज-काज में लगे रहते थे, फिर भी उनके भीतर की बेचैनी सदा मिट चुकी थी, और उनका मन सदा भीतर से शांत रहता था।

5.75.2

पितामहो दिलीपस्ते सर्वारम्भपरोऽप्यलम् । वीतरागतयैवान्तर्बुभुजे मेदिनीं चिरम् ॥ २ ॥

pitāmaho dilīpaste sarvārambhaparo'pyalam | vītarāgatayaivāntarbubhuje medinīṃ ciram || 2 ||

Your grandfather Dilipa was devoted to every undertaking, yet inside he was entirely free of attachment, and so he ruled the earth for a long time.

आपके पितामह दिलीप हर काम में पूरी तरह लगे रहते थे, फिर भी भीतर से वे राग से पूरी तरह मुक्त थे, और इसी तरह उन्होंने बहुत लंबे समय तक पृथ्वी पर राज किया।

5.75.3

निरञ्जनतया बुद्धो जनतां पालयंश्चिरम् । जीवन्मुक्ताकृतिर्नित्यं मनू राज्यमपालयत् ॥ ३ ॥

nirañjanatayā buddho janatāṃ pālayañc ciram | jīvanmuktākṛtirnityaṃ manū rājyamapālayat || 3 ||

Manu was awake within, free of all stain, and he protected his people for a long time. Always in the shape of one who is free while still alive, he ruled his kingdom.

मनु भीतर से जागे हुए और हर दोष से रहित थे, और उन्होंने बहुत लंबे समय तक अपनी प्रजा की रक्षा की। वे सदा जीते-जी मुक्त हुए व्यक्ति के रूप में रहकर अपने राज्य पर शासन करते रहे।

5.75.4

विचित्रबलयुद्धेषु व्यवहारेषु भूरिषु । मान्धाता सुचिरं तिष्ठन्प्राप्तवान्वै परं पदम् ॥ ४ ॥

vicitrabalayuddheṣu vyavahāreṣu bhūriṣu | māndhātā suciraṃ tiṣṭhanprāptavānvai paraṃ padam || 4 ||

Mandhata took part in strange and mighty battles and countless affairs. Yet after staying in them for a long time, he reached the highest state.

मान्धाता विचित्र और शक्तिशाली युद्धों तथा अनेक कामों में लगे रहे। फिर भी इतने लंबे समय तक इनमें रहकर भी उन्होंने परम पद प्राप्त किया।

5.75.5

बलिः पातालपीठस्थः कुर्वन्सदिव संस्थितिम् । सदा त्यागी सदाऽसक्तो जीवन्मुक्त इति स्थितः ॥ ५ ॥

baliḥ pātālapīṭhasthaḥ kurvansadiva saṃsthitim | sadā tyāgī sadā'sakto jīvanmukta iti sthitaḥ || 5 ||

Bali sits on his throne in the underworld, ruling it as if that were all there was. Yet he is always letting go, always without attachment, and so he stands as one who is free while still alive.

बलि पाताल के सिंहासन पर बैठकर वहाँ का राज्य ऐसे चलाते हैं मानो यही सब कुछ हो। फिर भी वे सदा त्यागी और सदा अनासक्त हैं, इसलिए वे जीते-जी मुक्त व्यक्ति के रूप में स्थित हैं।

5.75.6

नमुचिर्दानवाधीशो देवद्वन्द्वपरः सदानानाचारविचारेषु क्वचिन्नान्तरतप्यत ॥ ६ ॥

namucirdānavādhīśo devadvandvaparaḥ sadānānācāravicāreṣu kvacinnāntaratapyata || 6 ||

Namuchi, the lord of the demons, was always locked in conflict with the gods. Amid all his many kinds of actions and thoughts, he never once burned with pain inside.

नमुचि, दानवों का स्वामी, सदा देवताओं से संघर्ष में लगा रहता था। इतने प्रकार के आचरणों और विचारों के बीच भी वह भीतर से कभी नहीं जलता था।

5.75.7

वासवाजौ तनुत्यागी वृत्रो विततमानसःअन्तःशान्तमना मानी चकार सुरसंगरम् ॥ ७ ॥

vāsavājau tanutyāgī vṛtro vitatamānasaḥantaḥśāntamanā mānī cakāra surasaṃgaram || 7 ||

Vritra gave up his body in his battle with Indra. His mind was vast, calm within, and full of pride, even as he fought his war against the gods.

वृत्र ने इंद्र के साथ युद्ध में अपना शरीर त्याग दिया। उसका मन विशाल था, भीतर से शांत था, और अभिमानी होते हुए भी उसने देवताओं से युद्ध किया।

5.75.8

कुर्वन्दानवकार्याणि पातालतलपालकःअनपायं निराक्रोशं प्रह्लादो ह्लादमागतः ॥ ८ ॥

kurvandānavakāryāṇi pātālatalapālakaḥanapāyaṃ nirākrośaṃ prahlādo hlādamāgataḥ || 8 ||

Prahlada carried out the work of the demons and guarded the depths of the underworld. Free from harm and free from complaint, he came to true joy.

प्रह्लाद दानवों का काम करते थे और पाताल की गहराई की रक्षा करते थे। किसी हानि और किसी शिकायत के बिना, वे सच्चे आनंद को प्राप्त हुए।

5.75.9

शम्बरैकपरोऽप्यन्तःशम्बरैकतयोदितःसंसारशम्बरं राम शम्बरस्त्यक्तवानिदम् ॥ ९ ॥

śambaraikaparo'pyantaḥśambaraikatayoditaḥsaṃsāraśambaraṃ rāma śambarastyaktavānidam || 9 ||

Shambara was given over entirely to magic, yet within he had risen up as one with it. Rama, this same Shambara let go of the great trick that is the world.

शम्बर पूरी तरह जादू-टोने में लगा रहता था, फिर भी भीतर से वह उसके साथ एक होकर ऊपर उठ चुका था। हे राम, इसी शम्बर ने संसार रूपी इस बड़े छल को त्याग दिया।

5.75.10

असक्तबुद्धिर्हरिणा कुर्वन्दानवसंगरम्परां संविदमासाद्य कुशलस्त्यक्तवानिदम् ॥ १० ॥

asaktabuddhirhariṇā kurvandānavasaṃgaramparāṃ saṃvidamāsādya kuśalastyaktavānidam || 10 ||

With a mind free of attachment, he fought the demons' war with Hari. Having reached the highest awareness, this skilled one let go of it all.

अनासक्त मन से उसने हरि के साथ दानवों का युद्ध लड़ा। परम ज्ञान को प्राप्त कर, इस कुशल ने यह सब त्याग दिया।

5.75.11

सर्वामरमुखो वह्नि क्रियाजालपरो ह्यपि । यज्ञलक्ष्मीश्चिरं भुंक्ते मुक्त एवेह तिष्ठति ॥ ११ ॥

sarvāmaramukho vahni kriyājālaparo hyapi | yajñalakṣmīściraṃ bhuṅkte mukta eveha tiṣṭhati || 11 ||

Agni, the mouth of all the gods, is caught up in the whole web of ritual acts, and for a long time he enjoys the riches of sacrifice. Yet even here, he remains free.

अग्नि, जो सभी देवताओं का मुख है, यज्ञ की पूरी क्रियाओं में उलझा रहता है, और लंबे समय तक यज्ञ के वैभव को भोगता है। फिर भी वह यहीं मुक्त बना रहता है।

5.75.13

बृहस्पतिर्देवगुरुर्दारार्थं चन्द्रयोध्यपि । आचरन्दिवि चित्रेहां मुक्त एव ह्यवस्थितः ॥ १३ ॥

bṛhaspatirdēvagururdārārthaṃ candrayodhyapi | ācarandivi citrēhāṃ mukta ēva hyavasthitaḥ || 13 ||

Brihaspati, teacher of the gods, even went to war with Chandra for the sake of his wife. Acting out this strange struggle in heaven, he still remained, in truth, free.

देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी के लिए चंद्रमा से युद्ध तक किया। स्वर्ग में यह विचित्र संघर्ष करते हुए भी वे सचमुच मुक्त ही बने रहे।

5.75.14

शुक्रोऽम्बरतलद्योती बुधः सर्वार्थपालकः । निर्विकारमतिः कालं नयत्यसुरदेशिकः ॥ १४ ॥

śukro'mbaratalad yotī budhaḥ sarvārthapālakaḥ | nirvikāramatiḥ kālaṃ nayatyasuradēśikaḥ || 14 ||

Shukra, shining in the vault of the sky, wise, protector of every aim, passes his time as the teacher of the demons, his mind never disturbed.

शुक्र, जो आकाश में चमकते हैं, बुद्धिमान हैं, हर उद्देश्य के रक्षक हैं, दानवों के गुरु के रूप में अपना समय बिताते हैं, और उनका मन कभी विचलित नहीं होता।

5.75.15

जगद्भूतगणाङ्गानि चिरं संचारयन्नपि । सर्वदा सर्वसंचारी मुक्त एव समीरणः ॥ १५ ॥

jagadbhūtagaṇāṅgāni ciraṃ saṃcārayannapi | sarvadā sarvasaṃcārī mukta ēva samīraṇaḥ || 15 ||

The wind moves the limbs of every creature in the world, always, everywhere it goes. Yet it remains, in truth, free.

पवन संसार के हर प्राणी के अंगों को सदा गति देता है, वह हर जगह हमेशा चलता रहता है, फिर भी वह सदा मुक्त ही रहता है।

5.75.16

लोकाजवं जवीभावप्रोद्वेगज्ञोऽप्यखिन्नधीः । ब्रह्मा सममना राम क्षिपयत्यायुराततम् ॥ १६ ॥

lokājavaṃ javībhāvaprodvēgajñō'pyakhinnadhīḥ | brahmā samamanā rāma kṣipayatyāyurātatam || 16 ||

Brahma knows well how the world rushes about, how everyone hurries in distress, yet his mind never tires. Rama, staying even-minded, he spends this very long life of his in just this way.

ब्रह्मा भली-भांति जानते हैं कि संसार कैसे भागदौड़ और बेचैनी में लगा रहता है, फिर भी उनका मन कभी थकता नहीं। हे राम, समान भाव में रहते हुए वे अपना यह बहुत लंबा जीवन इसी तरह बिताते हैं।

5.75.17

पीयमानः सुरैः सर्वैः सोमः समरसाशयः। क्वचिदेति न संसङ्गमाक्रान्तावम्बरं यथा ॥ १७ ॥

pīyamānaḥ suraiḥ sarvaiḥ somaḥ samarasāśayaḥ| kvacideti na saṃsaṅgamākrāntāvambaraṃ yathā|| 17 ||

Soma is drunk by all the gods, yet he stays one in taste throughout, and he never falls into attachment, just as the sky, even when it is overcast, is never touched by it.

सोम को सभी देवता पीते हैं, फिर भी वे भीतर से सदा एक-से बने रहते हैं, और कभी किसी से बंधते नहीं, जैसे आकाश बादलों से घिर जाने पर भी कभी उनसे छूता नहीं।

5.75.18

मुक्तेनापि त्रिनेत्रेण सौन्दर्यतरुमञ्जरी। देहार्धे धार्यते गौरी कामुकेनेव कामिनी ॥ १८ ॥

muktenāpi trinetreṇa saundaryatarumañjarī| dehārdhe dhāryate gaurī kāmukeneva kāminī|| 18 ||

Even though the three-eyed Shiva is free, he holds Gauri, the flowering branch of the tree of beauty, on half of his body, the way a lover holds his beloved.

मुक्त होते हुए भी त्रिनेत्र शिव सौंदर्य के वृक्ष की मंजरी-सी गौरी को अपने आधे शरीर पर धारण करते हैं, जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को धारण करता है।

5.75.19

मुक्तयापि गले बद्धो गौर्या गौरस्त्रिलोचनः। संशुद्ध इव मुक्तानां हारः शशिकलामलः ॥ १९ ॥

muktyāpi gale badhdho gaurī gaurastrilocanaḥ| saṃśuddha iva muktānāṃ hāraḥ śaśikalāmalaḥ|| 19 ||

Though he is free, the fair three-eyed Shiva is bound at the throat by Gauri. Yet he stays pure, like a string of pearls, spotless as a sliver of the moon.

यद्यपि शिव मुक्त हैं, फिर भी त्रिनेत्र और गौरवर्ण शिव गौरी के द्वारा गले से बंधे हैं। फिर भी वे शुद्ध बने रहते हैं, जैसे मोतियों की माला, चाँद की कोर के समान निर्मल।

5.75.20

गुहो गहनधीर्वीरस्तारकादिरणक्रियाम्। मुक्तोऽपि कृतवान्सर्वं ज्ञानरत्नैकसागरः ॥ २० ॥

guho gahanadhīrvīrastārakādiraṇakriyām| mukto'pi kṛtavānsarvaṃ jñānaratnaikasāgaraḥ|| 20 ||

Guha, deep of mind, a hero, fought the whole war against Taraka and the other demons. Though he was free, he did all of this, the one ocean holding the jewel of knowledge.

गुह, जिनकी बुद्धि गहन थी, वीर थे, उन्होंने तारकासुर आदि के विरुद्ध पूरा युद्ध किया। मुक्त होते हुए भी उन्होंने यह सब किया, वे ज्ञान रूपी रत्न के अकेले सागर थे।

5.75.21

भृङ्गीशो रक्तमांसं स्वं स्वमात्रे प्रवितीर्णवान्। मुक्तयैव धिया राम धीरया ध्यानधौतया ॥ २१ ॥

bhṛṅgīśo raktamāṃsaṃ svaṃ svamātre pravitīrṇavān| muktayāiva dhiyā rāma dhīrayā dhyānadhautayā|| 21 ||

Bhringisha gave his own blood and flesh to his own mother. He did this, Rama, with a mind that was free, steady, and washed clean by meditation.

भृंगीश ने अपना रक्त और मांस अपनी ही माता को दे दिया। हे राम, उन्होंने यह एक ऐसे मन से किया जो मुक्त, स्थिर और ध्यान से निर्मल हो चुका था।

5.75.22

मुनिर्मुक्तस्वभावोऽपि जगज्जङ्गलखण्डकम् । नारदो विजहारेमं शीतया कार्यशीलया ॥ २२ ॥

munirmuktasvabhāvo'pi jagajjaṅgalakhaṇḍakam | nārado vijahāremam śītayā kāryaśīlayā || 22 ||

The sage Narada was free by nature. Yet he wandered through this stretch of wild forest that is the world, his mind cool and calm, busy doing his work.

मुनि नारद स्वभाव से ही मुक्त थे। फिर भी वे इस संसार रूपी जंगल के इस टुकड़े में घूमते रहे, उनका मन शीतल और शांत था, पर वे सदा अपने काम में लगे रहते थे।

5.75.23

जीवन्मुक्तमना मान्यो विश्वामित्रोऽप्ययं प्रभुः । वेदोक्तां मखनिर्माणक्रियां समधितिष्ठति ॥ २३ ॥

jīvanmuktamanā mānyo viśvāmitro'pyayaṃ prabhuḥ | vedoktāṃ makhanirmāṇakriyāṃ samadhitiṣṭhati || 23 ||

Vishvamitra, this honored lord, has a mind that is free while he still lives. He carries out the rites of building the sacrifice exactly as the Vedas prescribe.

विश्वामित्र, यह पूजनीय प्रभु, जीते-जी मुक्त मन वाले हैं। वे वेदों में बताई गई यज्ञ-निर्माण की विधियों का पालन करते हैं।

5.75.24

धारयत्यवनीं शेषः करोत्यर्को दिनावलीम् । यमो यमत्वं कुरुते जीवन्मुक्ततयैव हि ॥ २४ ॥

dhārayatyavanīṃ śeṣaḥ karotyarko dināvalīm | yamo yamatvaṃ kurute jīvanmuktatayaiva hi || 24 ||

Shesha holds up the earth. The sun makes the days follow one another. Yama does the work of Yama. They do all this only because they are free while still alive.

शेष पृथ्वी को धारण करते हैं। सूर्य दिनों की श्रृंखला बनाते हैं। यम अपना काम करते हैं। ये सब यह काम केवल इसलिए करते हैं क्योंकि वे जीते-जी मुक्त हैं।

5.75.25

अन्येऽप्यस्मिंस्त्रिभुवने यक्षासुरनराः सुराः । शतशो मुक्ततां याताः सन्तस्तिष्ठन्तिसंसृतौ ॥ २५ ॥

anye'pyasmiṃstribhuvane yakṣāsuranarāḥ surāḥ | śataśo muktatāṃ yātāḥ santastiṣṭhantisaṃsṛtau || 25 ||

There are others too, in these three worlds, spirits, demons, men, and gods. Hundreds of them have reached this same freedom, and still they remain within the round of birth and death.

इन तीनों लोकों में और भी बहुत से हैं—यक्ष, दानव, मनुष्य और देवता। सैकड़ों ने यही मुक्ति पाई है, और फिर भी वे संसार-चक्र में बने रहते हैं।

5.75.26

संस्थिता व्यवहारेषु विचित्राचारधारिषु । अन्तराशीतलाः केचित्केचिन्मूढाः शिलासमाः ॥ २६ ॥

saṃsthitā vyavahāreṣu vicitraācāradhāriṣu | antarāśītalāḥ kecitkecinmūḍhāḥ śilāsamāḥ || 26 ||

They stay engaged in every kind of affair, following all sorts of strange customs. Some of them are cool and calm within. Others are simply deluded, like stones.

वे तरह-तरह के विचित्र आचरण वाले कामों में लगे रहते हैं। इनमें से कुछ भीतर से शीतल और शांत होते हैं, तो कुछ मूर्ख होते हैं, पत्थर के समान।

5.75.27

परमं बोधमासाद्य केचित्काननमागताः । यथा भृगुभरद्वाजविश्वामित्रशुकादयः ॥ २७ ॥

paramaṃ bodhamāsādya kecitkānanamāgatāḥ | yathā bhṛgubharadvājaviśvāmitraśukādayaḥ || 27 ||

Some, once they had reached the highest awakening, went off to live in the forest, like Bhrigu, Bharadvaja, Vishvamitra, Shuka, and others like them.

कुछ लोग परम बोध पाकर वन में चले गए, जैसे भृगु, भरद्वाज, विश्वामित्र, शुक और अन्य ऋषि।

5.75.28

केचिद्राज्येषु तिष्ठन्ति च्छत्रचामरपालिताः । यथा जनकशर्यातिमान्धातृसगरादयः ॥ २८ ॥

kecidrājyeṣu tiṣṭhanti cchatracāmarapālitāḥ | yathā janakaśaryātimāndhātṛsagarādayaḥ || 28 ||

Some stay on in their kingdoms, sheltered under the royal umbrella and fanned with the royal fly-whisk, like Janaka, Sharyati, Mandhata, Sagara, and others like them.

कुछ अपने राज्यों में ही रहते हैं, राजछत्र और चँवर से सुशोभित होकर, जैसे जनक, शर्याति, मान्धाता, सगर और अन्य राजा।

5.75.29

केचिद्व्योमनि तिष्ठन्ति धिष्ण्यचक्रान्तरस्थिताः । यथा बृहस्पत्युशनश्चन्द्रसूर्यमुनीश्वराः ॥ २९ ॥

keciddvyomani tiṣṭhanti dhiṣṇyacakrāntarasthitāḥ | yathā bṛhaspatyuśanaścandrasūryamunīśvarāḥ || 29 ||

Some stay up in the sky, set within the circle of the stars, like Brihaspati, Ushanas, the moon, the sun, and the greatest of sages.

कुछ आकाश में ही रहते हैं, नक्षत्रों के मंडल के बीच स्थित होकर, जैसे बृहस्पति, शुक्र, चंद्रमा, सूर्य और महान ऋषिगण।

5.75.30

केचित्सुरपदे याता विमानावलिमास्थिताः । यथाग्निवायुवरुणयमतुम्बुरुनारदाः ॥ ३० ॥

kecitsurapade yātā vimānāvalimāsthitāḥ | yathāgnivāyuvaruṇayamatumburunāradāḥ || 30 ||

Some have gone to the rank of gods, seated in rows of flying chariots, like Agni, Vayu, Varuna, Yama, Tumburu, and Narada.

कुछ लोग देवताओं के पद को प्राप्त हो गए हैं, विमानों की पंक्तियों में बैठे हुए, जैसे अग्नि, वायु, वरुण, यम, तुम्बुरु और नारद।

5.75.31

केचितपातालकुहरे जीवन्मुक्ता व्यवस्थिताः । यथा बलिसुहोत्रान्धप्रह्लादाह्लादपूर्वकाः ॥ ३१ ॥

kecitapātālakuhere jīvanmuktā vyavasthitāḥ | yathā balisuhotrāndhaprahlādāhlādapūrvakāḥ || 31 ||

Some liberated-while-living have settled in the caves of the underworld, like Bali, Suhotra, Andha, Prahlada, and Ahlada, and others like them.

कुछ जीवनमुक्त पाताल की गुफाओं में बस गए हैं, जैसे बलि, सुहोत्र, अंध, प्रह्लाद, आह्लाद और उन जैसे अन्य लोग।

5.75.32

तिर्यग्योनिष्वपि सदा विद्यन्ते कृतबुद्धयः । देवयोनिष्वपि प्राज्ञा विद्यन्ते मूर्खबुद्धयः ॥ ३२ ॥

tiryagyoniṣvapi sadā vidyante kṛtabuddhayaḥ | devayoniṣvapi prājñā vidyante mūrkhabuddhayaḥ || 32 ||

Among creatures born as animals there are always some of ripe understanding. Among those born as gods too, there are the wise, and there are the foolish.

पशु-योनि में जन्मे प्राणियों में भी सदा कुछ ऐसे होते हैं जिनकी समझ पकी हुई होती है। देवताओं की योनि में भी बुद्धिमान होते हैं, और मूर्ख भी होते हैं।

5.75.33

सर्वं सर्वेण सर्वत्र सर्वथा सर्वदैव हि । संभवत्येव सर्वात्मन्यात्मन्याततरूपिणि ॥ ३३ ॥

sarvaṃ sarveṇa sarvatra sarvathā sarvadaiva hi | saṃbhavatyeva sarvātmanyātmanyātatyarūpiṇi || 33 ||

Everything, in every way, everywhere, at all times, truly comes to be within the one Self of all, the self whose form spreads through everything.

सब कुछ, हर तरह से, हर जगह, हर समय, सचमुच उस एक आत्मा में उत्पन्न होता है जो सबकी आत्मा है और जिसका रूप हर चीज़ में फैला हुआ है।

5.75.34

विधेर्विचित्रा नियतिरनन्तारम्भमन्थरा । संनिवेशांशवैचित्र्यात्सर्वं सर्वत्र दृश्यते ॥ ३४ ॥

vidhervicitrā niyatiranantārambhamantharā | saṃniveśāṃśavaicitryātsarvaṃ sarvatra dṛśyate || 34 ||

The law that the Ordainer sets is strange and wonderful. It moves slowly through endless beginnings. Because its parts are arranged in so many different ways, everything is seen everywhere.

विधाता का बनाया नियम अद्भुत है। वह अनगिनत आरंभों से होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। उसके अंगों की बनावट में इतनी विविधता है कि हर चीज़ हर जगह दिखाई देती है।

5.75.35

विधिर्दैवं विधिर्धाता सर्वेशः शिव ईश्वरः । इति नामभिरात्मा नः प्रत्यक्चेतन उच्यते ॥ ३५ ॥

vidhirdaivaṃ vidhirdhātā sarveśaḥ śiva īśvaraḥ | iti nāmabhirātmā naḥ pratyakcetana ucyate || 35 ||

The Ordainer is Fate. The Ordainer is the Creator, the Lord of all, Shiva, the Supreme Lord. By these names, people speak of our own Self, the awareness that faces inward.

विधाता ही भाग्य है। विधाता ही सृष्टिकर्ता है, सबका स्वामी है, शिव है, परमेश्वर है। इन्हीं नामों से लोग हमारी अपनी आत्मा को, जो भीतर की ओर देखने वाली चेतना है, पुकारते हैं।

5.75.36

अस्त्यवस्तुनि वस्त्वन्तः काञ्चनं सिकतास्विव । अस्ति वस्तुन्यवस्त्वन्तर्मलं हेमकणेष्विव ॥ ३६ ॥

astyavastuni vastvantaḥ kāñcanaṃ sikatāsviva | asti vastunyavastvantarmalaṃ hemakaṇeṣviva || 36 ||

Something real exists within the unreal, the way gold exists within sand. Something unreal exists within the real, the way dirt exists within grains of gold.

जैसे रेत में सोना छिपा होता है, वैसे ही असत् के भीतर भी कुछ सत् होता है। और जैसे सोने के कणों में मैल होता है, वैसे ही सत् के भीतर भी कुछ असत् होता है।

5.75.37

अयुक्ते युक्तता युक्त्या प्रेक्ष्यमाणा प्रदृश्यते । पापस्य हि भयाल्लोको राम धर्मे प्रवर्तते ॥ ३७ ॥

ayukte yuktatā yuktyā prekṣyamāṇā pradṛśyate | pāpasya hi bhayālloko rāma dharme pravartate || 37 ||

When you look closely with reasoning, even what does not fit can seem to fit. Rama, it is only fear of sin that makes people act rightly.

जब तर्क से बारीकी से देखा जाए, तो जो बात ठीक नहीं बैठती, वह भी ठीक बैठती हुई दिखाई देती है। हे राम, लोग केवल पाप के डर से ही धर्म के मार्ग पर चलते हैं।

5.75.38

असत्ये सत्यता साधो शाश्वती परिलक्ष्यते । शून्येन ध्यानयोगेन शाश्वतं पदमाप्यते ॥ ३८ ॥

asatye satyatā sādho śāśvatī parilakṣyate | śūnyena dhyānayogena śāśvataṃ padamāpyate || 38 ||

Good man, even in what is false, something that looks eternally real can be seen. Through meditation on emptiness, the eternal state is reached.

हे साधु, जो असत्य है, उसमें भी एक शाश्वत सत्यता दिखाई देती है। शून्य पर ध्यान लगाने से शाश्वत पद प्राप्त होता है।

5.75.39

यन्नास्ति तदुदेत्याशु देशकालविलासतः । शशकाः श्रृङ्गवन्तो हि दृश्यन्ते शम्बरस्थितौ ॥ ३९ ॥

yannāsti tadudetyāśu deśakālavilāsataḥ | śaśakāḥ śṛṅgavanto hi dṛśyante śambarasthitau || 39 ||

What does not exist can suddenly appear, through the working of place and time, just as horned rabbits are seen in Shambara's magic.

जो चीज़ है ही नहीं, वह भी देश और काल के खेल से अचानक प्रकट हो जाती है, जैसे शम्बर के जादू में सींगवाले खरगोश दिखाई देते हैं।

5.75.40

ये वज्रसाराः सुदृढा दृश्यन्ते ते क्षयं गताः । कल्पस्यान्ते यथेन्दूर्कधराब्धिविबुधादयः ॥ ४० ॥

ye vajrasārāḥ sudṛḍhā dṛśyante te kṣayaṃ gatāḥ | kalpasyaante yathendvarkadharābdhivibudhādayaḥ || 40 ||

Even the things that seem as hard and solid as diamond come to an end, at the close of a cosmic age, like the moon, the sun, the earth, the ocean, and the gods.

जो चीज़ें वज्र जैसी अत्यंत मज़बूत दिखाई देती हैं, वे भी एक कल्प के अंत में नष्ट हो जाती हैं, जैसे चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी, समुद्र और देवता।

5.75.41

इति पश्यन्महाबाहो भावाभावभवक्रमम् । हर्षामर्षविषादेहाः संत्यज्य समतां व्रज ॥ ४१ ॥

iti paśyanmahābāho bhāvābhāvabhavakramam | harṣāmarṣaviṣādehāḥ saṃtyajya samatāṃ vraja || 41 ||

Mighty-armed one, seeing this pattern of things coming into being and passing away, give up joy, anger, despair, and craving, and reach calm evenness.

हे महाबाहु, भाव और अभाव के इस क्रम को इस तरह देखकर, हर्ष, क्रोध, निराशा और लालसा को छोड़कर, मन की समता को प्राप्त हो।

5.75.42

असत्सदेव भातीह सदसच्चापि दृश्यते । आस्थानास्थे परित्यज्य तेनाशु समतां व्रज ॥ ४२ ॥

asatsadeva bhātīha sadasaccāpi dṛśyate | āsthānāsthe parityajya tenāśu samatāṃ vraja || 42 ||

Here, the unreal appears real, and the real too can appear unreal. Give up holding on to either belief or disbelief, and through this quickly reach calm evenness.

यहाँ असत् भी सत् जैसा दिखाई देता है, और सत् भी असत् जैसा दिखता है। इसलिए किसी बात को सच मानने या झूठ मानने की पकड़ छोड़कर, शीघ्र ही मन की समता को प्राप्त हो।

5.75.43

मुक्तौ राघव लोकेऽस्मिन्न प्राप्तिः संभवत्यलम् । अप्रवृत्तौ विवेकस्य मग्ना हि जनकोटयः ॥ ४३ ॥

muktau rāghava loke'sminn prāptiḥ saṃbhavatyalam | apravṛttau vivekasya magnā hi janakoṭayaḥ || 43 ||

Raghava, in this world, freedom simply cannot be reached where discernment is not at work. Without it, millions and millions of people stay drowned.

हे राघव, इस संसार में जहाँ विवेक काम में नहीं लाया जाता, वहाँ मुक्ति पाना बिलकुल संभव नहीं होता। इसी कारण करोड़ों लोग डूबे रहते हैं।

5.75.44

मुक्तौ राघव लोकेऽस्मिन्प्राप्तिरस्ति सदैव हि । प्रवृत्त्या हि विवेकस्य विमुक्ता भूतकोटयः ॥ ४४ ॥

muktau rāghava loke'sminn prāptirasti sadaiva hi | pravṛttyā hi vivekasya vimuktā bhūtakoṭayaḥ || 44 ||

Raghava, in this world, freedom can always be reached where discernment is at work. Through this working of discernment, millions and millions of beings have become free.

हे राघव, इस संसार में जहाँ विवेक काम में लाया जाता है, वहाँ मुक्ति सदा ही संभव होती है। इसी विवेक के प्रयोग से करोड़ों जीव मुक्त हो चुके हैं।

5.75.45

प्रविवेकाविवेकाभ्यां सुलभालभ्यतां गता । मुक्तिर्मनःक्षयप्राप्त्या विवेकं तेन दीपय ॥ ४५ ॥

pravivekāvivekābhyāṃ sulabhālabhyatāṃ gatā | muktirmanaḥkṣayaprāptyā vivekaṃ tena dīpaya || 45 ||

Through discernment and its absence, freedom becomes either easy or hard to reach. Freedom comes when the mind is brought to an end, so kindle discernment.

विवेक के होने या न होने से मुक्ति कभी आसान बन जाती है, कभी कठिन। मुक्ति मन के मिट जाने से मिलती है, इसलिए विवेक को जगाओ।

5.75.46

आत्मावलोकने यत्नः कर्तव्यो भूतिमिच्छता । सर्वदुःखशिरश्छेद आत्मालोकेन जायते ॥ ४६ ॥

ātmāvalokane yatnaḥ kartavyo bhūtimicchatā | sarvaduḥkhaśiraścheda ātmālokena jāyate || 46 ||

Anyone who wants true well-being should make the effort to see the Self. Seeing the Self cuts off the head of every sorrow.

जो कल्याण चाहता है, उसे आत्मा को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा के दर्शन से ही समस्त दुःखों का सिर कट जाता है।

5.75.47

नीरागा निरुपासङ्गा जीवन्मुक्ता महाधियः । संभवन्तीह बहुशः सुहोत्रजनका इव ॥ ४७ ॥

nīrāgā nirupāsaṅgā jīvanmuktā mahādhiyaḥ | saṃbhavantīha bahuśaḥ suhotrajanakā iva || 47 ||

People free of craving and free of clinging, liberated while still alive, with great wisdom, appear in this world again and again, like Suhotra and Janaka.

राग से रहित, आसक्ति से रहित, जीवनमुक्त और महान बुद्धि वाले लोग इस संसार में बार-बार प्रकट होते हैं, जैसे सुहोत्र और जनक।

5.75.48

तस्मात्त्वमपि वैराग्यविवेकोदितधीरधीः । जीवन्मुक्तो विहर भो समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ४८ ॥

tasmāttvamapi vairāgyavivekoditadhīradhiḥ | jīvanmukto vihara bho samaloṣṭāśmakāñcanaḥ || 48 ||

So you too, whose mind has grown calm and steady through dispassion and discernment, should live liberated while still alive, friend, seeing a lump of clay, a stone, and gold as all the same.

इसलिए तुम भी, जिसकी बुद्धि वैराग्य और विवेक से स्थिर और धीर हो गई है, हे मित्र, जीवनमुक्त होकर ऐसे विचरो कि मिट्टी का ढेला, पत्थर और सोना तुम्हारे लिए समान हों।

5.75.49

द्विविधा मुक्तता लोके विद्यते देहधारिणाम् । सदेहैका विदेहान्या विभागोऽयं तयोः श्रृणु ॥ ४९ ॥

dvividhā muktatā loke vidyate dehadhāriṇām | sadehaikā videhānyā vibhāgo'yaṃ tayoḥ śṛṇu || 49 ||

For beings that have a body, there are two kinds of freedom in this world, one while still in the body, the other after leaving the body. Listen to how the two differ.

देहधारी प्राणियों के लिए इस संसार में मुक्ति दो प्रकार की होती है, एक देह के रहते हुए, दूसरी देह छूटने के बाद। सुनो, इन दोनों में क्या भेद है।

5.75.50

असंसङ्गात्पदार्थानां मनःशान्तिर्विमुक्तता । सत्यसत्यपि देहे सा संभवत्यनघाकृते ॥ ५० ॥

asaṃsaṅgātpadārthānāṃ manaḥśāntirvimuktatā | satyasatyapi dehe sā saṃbhavatyanaghākṛte || 50 ||

Freedom is the peace of mind that comes from not clinging to things. For someone of flawless nature, this peace happens whether the body is there or gone.

वस्तुओं से आसक्ति न रहने पर जो मन की शांति मिलती है, वही मुक्ति है। जिसका स्वभाव निर्दोष हो, उसके लिए यह शांति देह के रहते हुए भी होती है और देह के न रहने पर भी।

5.75.51

स्नेहसंक्षयमेवाङ्ग विदुः कैवल्यमुत्तमम् । तत्संभवति देहस्य भावे चाभाव एव च ॥ ५१ ॥

snehasaṃkṣayamevāṅga viduḥ kaivalyamuttamam | tatsaṃbhavati dehasya bhāve cābhāva eva ca || 51 ||

Dear one, the wise call the complete end of attachment the highest freedom. It can happen whether the body is present or gone.

हे प्रिय, ज्ञानी लोग स्नेह के पूरी तरह मिट जाने को ही सबसे बड़ी मुक्ति मानते हैं। यह देह के रहते हुए भी हो सकती है, और देह के न रहने पर भी।

5.75.52

यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते । सस्नेहजीवितो बद्धो मुक्त एव तृतीयकः ॥ ५२ ॥

yo jīvati gatasnehaḥ sa jīvanmukta ucyate | sasneha jīvito baddho mukta eva tṛtīyakaḥ || 52 ||

Whoever lives free of attachment is called liberated while alive. Whoever lives with attachment is bound. The one who is simply free after leaving the body is the third kind.

जो व्यक्ति स्नेह को त्यागकर जीता है, वह जीवनमुक्त कहलाता है। जो स्नेह के साथ जीता है, वह बंधा हुआ है। और देह छूटने के बाद जो पूर्ण रूप से मुक्त है, वह तीसरा प्रकार है।

5.75.53

यत्नो यत्नेन कर्तव्यो मोक्षार्थं युक्तिपूर्वकम् । यत्नयुक्तिविहीनस्य गोष्पदं दुस्तरं भवेत् ॥ ५३ ॥

yatno yatnena kartavyo mokṣārthaṃ yuktipūrvakam | yatnayuktivihīnasya goṣpadaṃ dustaraṃ bhavet || 53 ||

One should strive hard for freedom, and strive with the right method. For someone who lacks both effort and method, even a puddle the size of a cow's hoofprint becomes impossible to cross.

मुक्ति के लिए सही उपाय के साथ बड़ा प्रयत्न करना चाहिए। जिसके पास न प्रयत्न है, न सही उपाय, उसके लिए गाय के खुर जितना छोटा गड्ढा भी पार करना कठिन हो जाता है।

5.75.54

न त्वनध्यवसायस्य दुःखाय विपुलात्मने । आत्मा परवशः कार्यो मोहमाश्रित्य केवलम् ॥ ५४ ॥

na tv anadhyavasāyasya duḥkhāya vipulātmane | ātmā paravaśaḥ kāryo mohamāśritya kevalam || 54 ||

But you of great soul must not let your self fall under another's control just by giving in to delusion. That only brings the sorrow of someone without resolve.

परन्तु हे विशाल हृदय वाले, केवल मोह के सहारे अपने आप को दूसरों के अधीन मत बनने दो। इससे तो बस उस व्यक्ति का दुःख मिलता है जिसमें दृढ़ संकल्प नहीं है।

5.75.55

सुमहद्धैर्यमालम्ब्य मनसा व्यवसायिना । विचारयात्मनात्मानमात्मनश्चिरसिद्धये । विततोध्यवसायस्य जगद्भवतिगोष्पदम् ॥ ५५ ॥

sumahaddhairya mālambya manasā vyavasāyinā | vicārayātmanātmānam ātmanaścirasiddhaye | vitatādhyavasāyasya jagadbhavatigoṣpadam || 55 ||

Hold on to great courage, and with a firm and steady mind, examine the self by means of the self, so as to reach the self's lasting mastery. For someone whose resolve reaches far, the whole world becomes as small as a cow's hoofprint.

बड़े धैर्य का सहारा लेकर, दृढ़ निश्चयी मन से, आत्मा के द्वारा आत्मा को जांचो, ताकि आत्मा की स्थायी सिद्धि प्राप्त हो। जिसका संकल्प बहुत दूर तक फैला है, उसके लिए यह पूरा संसार गाय के खुर जितना छोटा हो जाता है।

5.75.56

यदुपगतः सुगतः पदं प्रधानं यदपगतोऽध्रुवतां नृपश्च कश्चित् । यदुपगताः पदमुत्तमं महान्तः प्रयतनकल्पतरोर्महाफलं तत् ॥ ५६ ॥

yadupagataḥ sugataḥ padaṃ pradhānaṃ yadapagato'dhruvatāṃ nṛpaśca kiñcit | yadupagatāḥ padamuttamaṃ mahāntaḥ prayatanakalpatarormahāphalaṃ tat || 56 ||

The chief state that Sugata reached, the state by which a certain king left all instability behind, the highest state the great ones reached - that is the great fruit of the wish-granting tree of effort.

वह प्रधान पद जिसे सुगत ने पाया, जिसके सहारे कोई राजा हर अस्थिरता से छूट गया, वह सबसे ऊँचा पद जिसे महान लोगों ने पाया - वही प्रयत्न रूपी कल्पवृक्ष का महान फल है।

Chapter 76

5.76.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । ब्रह्मणः समुपायान्ति जगन्तीमानि राघव । स्थैर्यं यान्त्यविवेकेन शाम्यन्त्येव विवेकतः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | brahmaṇaḥ samupāyānti jagantīmāni rāghava | sthairyam yāntyavivekena śāmyantyeva vivekataḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Rama, these worlds come out of Brahman. Without clear seeing they seem fixed and solid; only through clear seeing do they come to rest.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राम, ये सब जगत ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। बिना सही समझ के ये स्थिर और ठोस लगते हैं, सही समझ से ही ये शांत होते हैं।

5.76.2

जगज्जालजलावर्तवृत्तयो ब्रह्मवारिधौ । संख्यातुं केन शक्यन्ते भासां च त्रसरेणवः ॥ २ ॥

jagajjālajalāvartavṛttayo brahmavāridhau | saṃkhyātuṃ kena śakyante bhāsāṃ ca trasareṇavaḥ || 2 ||

In the ocean of Brahman, the many worlds turn like whirlpools in its water. Who could count them, any more than one could count the specks of dust floating in a ray of light?

ब्रह्म रूपी समुद्र में ये सब जगत जल के भंवरों की तरह घूमते हैं। इन्हें कौन गिन सकता है, जैसे धूप की किरण में उड़ते धूल के कणों को कोई नहीं गिन सकता।

5.76.3

असम्यक्प्रेक्षणं विद्धि कारणं जगतः स्थितौ । संसारशान्तये कान्त कारणं सम्यगीक्षणम् ॥ ३ ॥

asamyakprekṣaṇaṃ viddhi kāraṇaṃ jagataḥ sthitau | saṃsāraśāntaye kānta kāraṇaṃ samyagīkṣaṇam || 3 ||

Know that seeing things wrongly is the cause that keeps this world going. Dear one, seeing things rightly is the cause that brings the cycle of birth and death to rest.

जान लो कि चीज़ों को गलत ढंग से देखना ही इस जगत के टिके रहने का कारण है। हे प्रिय, सही ढंग से देखना ही जन्म-मरण के इस चक्र को शांत करने का कारण है।

5.76.4

अयं हि परदुष्पारो घोरः संसारसागरः । विना युक्तिप्रयत्नाभ्यामस्माद्राम न तीर्यते ॥ ४ ॥

ayaṃ hi paraduṣpāro ghoro saṃsārasāgaraḥ | vinā yuktiprayatnābhyāmasmādrāma na tīryate || 4 ||

This ocean of birth and death is truly hard to cross, and terrible. Rama, without both right thinking and effort, no one crosses it.

यह जन्म-मरण का सागर सचमुच पार करना बहुत कठिन है, और भयानक है। हे राम, बिना सही सोच-विचार और प्रयास के कोई भी इसे पार नहीं कर सकता।

5.76.5

यस्यायं सागरः पूर्णो मोहाम्बुभरपूरितः । अगाधमरणावर्तकल्लोलाकुलकोटरः ॥ ५ ॥

yasyāyaṃ sāgaraḥ pūrṇo mohāmbubharapūritaḥ | agādhamarṇāvartakallolākulakoṭaraḥ || 5 ||

This same ocean is full, filled with the floodwater of delusion. It is a bottomless hollow, stirred up by whirlpools and waves of death.

यही सागर मोह के बाढ़ जैसे जल से भरा हुआ है। यह एक अथाह गड्ढा है, जिसमें मृत्यु के भंवर और लहरें उठती रहती हैं।

5.76.6

प्रभ्रमत्पुण्यडिण्डीरो ज्वलन्नरकवाडवः । तृष्णाविलोललहरिर्मनोजलमतङ्गजः ॥ ६ ॥

prabhramatpuṇyaḍiṇḍīro jvalannarakavāḍavaḥ | tṛṣṇāvilolalaharirmanojalamataṅgajaḥ || 6 ||

Wandering merit is its foam. Blazing hell is its fire under the water. The restless tossing of craving is its waves. The elephant that lives in its waters is the mind.

भटकता हुआ पुण्य इसका झाग है। जलती हुई नरक इसके जल के नीचे की आग है। तृष्णा की बेचैन हलचल इसकी लहरें हैं। इसके जल में रहने वाला हाथी मन है।

5.76.7

आलीनजीवितसरिद्भोगरत्नसमुद्गकः । क्षुब्धरोगोरगाकीर्ण इन्द्रियग्राहघर्घरः ॥ ७ ॥

ālīnajīvitasaridbhogaratnasamudgakaḥ | kṣubdharogoragākīrṇa indriyagrāhaghargharaḥ || 7 ||

The rivers of living beings flow into it, carrying the jewels of pleasure that sink and disappear there. It is thick with disease, like restless snakes swarming in it. The senses are the crocodiles in it, growling as they move.

जीवों की नदियाँ इसमें बहकर आती हैं, और भोग के रत्न इसमें डूबकर खो जाते हैं। यह रोग से भरा है, जैसे बेचैन साँप इसमें भरे हों। इंद्रियाँ इसमें मगरमच्छ हैं, जो चलते हुए गुर्राती हैं।

5.76.8

पश्यास्मिन्प्रसृता राम वीचयश्चारुचञ्चलाः । इमा मुग्धाङ्गनानाम्न्यः शिखराकर्षणक्षमाः ॥ ८ ॥

paśyāsmiṃprasṛtā rāma vīcayaścārucañcalāḥ | imā mugdhāṅganānāmnyaḥ śikharākarṣaṇakṣamāḥ || 8 ||

Look, Rama, at the waves spreading out here, beautiful and restless. These waves carry the name lovely women, and they can drag down even the highest peaks.

देखो राम, यहाँ फैली हुई ये लहरें कितनी सुंदर और चंचल हैं। इन लहरों का नाम है मोहक स्त्रियाँ, और ये बड़ी से बड़ी चोटियों को भी नीचे खींच सकती हैं।

5.76.9

छदश्रीपद्मरागाढ्या नेत्रनीलोत्पलाकुलाः । दन्तपुष्पफलाकीर्णाः स्मितफेनोपशोभिताः ॥ ९ ॥

chadaśrīpadmarāgāḍhyā netranīlotpalākulāḥ | dantapuṣpaphalākīrṇāḥ smitaphenopaśobhitāḥ || 9 ||

Their lips are rich and red like rubies. Their eyes are thick with blue lotuses. Their teeth are strewn like flowers and fruit. Their smiles shine like foam.

उनके होंठ माणिक जैसे लाल और सुंदर हैं। उनकी आँखें नीले कमल जैसी घनी हैं। उनके दाँत फूल और फल जैसे बिखरे हैं। उनकी मुस्कान झाग जैसी चमकती है।

5.76.10

केशेन्द्रनीलवलया भ्रूविलासतरङ्गिताः । नितम्बपुलिनस्फीताः कण्ठकम्बुविभूषिताः ॥ १० ॥

keśendranīlavalayā bhrūvilāsataraṅgitāḥ | nitambapulinasphītāḥ kaṇṭhakambuvibhūṣitāḥ || 10 ||

Their hair curls dark as sapphire. Their eyebrows ripple like waves at play. Their hips are full like a wide sandbank. Their throats are adorned like a conch shell.

उनके बाल नीलमणि जैसे घुँघराले हैं। उनकी भौंहें लहरों की तरह अठखेलियाँ करती हैं। उनके कूल्हे रेत के चौड़े किनारे जैसे भरे हुए हैं। उनका गला शंख जैसा सुशोभित है।

5.76.11

ललाटमणिपट्टाढ्या विलासग्राहसंकुलाः । कटाक्षलोलगहना वर्णकाञ्चनवालुकाः ॥ ११ ॥

lalāṭamaṇipaṭṭāḍhyā vilāsagrāhasaṅkulāḥ | kaṭākṣalolagahanā varṇakāñcanavālukāḥ || 11 ||

They are rich with the jewelled band on the forehead, thronging with the crocodiles of their playful charm, deep with the darting thicket of sidelong glances, and their golden skin is like sand.

उनके माथे पर रत्नजड़ित पट्टी की शोभा है। उनकी चंचल अदाएँ मगरमच्छों की तरह भरी हुई हैं। उनकी तिरछी चितवनें घने बीहड़ की तरह गहरी हैं। उनका सुनहरा रंग रेत जैसा है।

5.76.12

एवं विलोललहरीभीमात्संसारसागरात् । उत्तीर्यते चेन्मग्नेन तत्परं पौरुषं भवेत् ॥ १२ ॥

evaṃ vilolalaharībhīmātsaṃsārasāgarāt | uttīryate cenmagnen tatparaṃ pauruṣaṃ bhavet || 12 ||

If someone sunk in this ocean of birth and death, so terrible with its restless waves, crosses over it, that would be the greatest act of manhood.

यदि इस चंचल लहरों वाले भयानक जन्म-मरण के सागर में डूबा हुआ कोई व्यक्ति इसे पार कर जाए, तो यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ होगा।

5.76.13

सत्यां प्रज्ञामहानावि विवेके सति नाविके । संसारसागरादस्माद्यो न तीर्णो धिगस्तु तम् ॥ १३ ॥

satyāṃ prajñāmahānāvi viveke sati nāvike | saṃsārasāgarādasmādyo na tīrṇo dhigastu tam || 13 ||

When the great boat of wisdom is there, and discernment is there as the boatman, whoever still fails to cross this ocean of birth and death, shame on him.

जब बुद्धि की महान नाव मौजूद हो, और विवेक मल्लाह के रूप में मौजूद हो, फिर भी जो इस जन्म-मरण के सागर को पार न करे, उस पर धिक्कार है।

5.76.14

अपारावारमाक्रम्य प्रमेयीकृत्य सर्वतः । संसाराब्धिं गाहते यः स एव पुरुषः स्मृतः ॥ १४ ॥

apārāvāramākramya prameyīkṛtya sarvataḥ | saṃsārābdhiṃ gāhate yaḥ sa eva puruṣaḥ smṛtaḥ || 14 ||

Whoever conquers this ocean of birth and death, which has no shore on either side, and understands it completely from every side, and plunges into it, he alone is called a true man.

जिस जन्म-मरण के सागर का न कोई इस पार है और न कोई उस पार, जो उसे हर तरफ से पूरी तरह जान-समझ लेता है और उसमें उतर जाता है, वही सच्चा पुरुष कहलाता है।

5.76.15

विचार्यार्यैः सहालोक्य धिया संसारसागरम् । एतस्मिंस्तदनु क्रीडा शोभते राम नान्यथा ॥ १५ ॥

vicāryāryaiḥ sahālokya dhiyā saṃsārasāgaram | etasmiṃstadanu krīḍā śobhate rāma nānyathā || 15 ||

Rama, only after one has thought this over together with the wise, and examined this ocean of birth and death with the mind, only then does playing in it become beautiful. Not otherwise.

हे राम, जब विद्वानों के साथ मिलकर बुद्धि से इस जन्म-मरण के सागर की जाँच-परख कर ली जाए, तभी इसमें खेलना शोभा देता है। इसके बिना नहीं।

5.76.16

इह भव्यो भवान्साधो विचारपरया धिया त्वयाधुनैव तेनायं संसारः प्रविचार्यते ॥ १६ ॥

iha bhavyo bhavānsādho vicāraparayā dhiyā tvayādhunaiva tenāyaṃ saṃsāraḥ pravicāryate || 16 ||

In this, you are excellent, good man, your mind is given over to inquiry. So even now, at this very moment, you are closely examining this world.

इस मामले में तुम श्रेष्ठ हो, हे सज्जन, तुम्हारी बुद्धि गहरे चिंतन में लगी है। इसीलिए अभी इसी समय तुम इस संसार की गहराई से जाँच कर रहे हो।

5.76.17

भवानिव विचार्यादौ संसारमतिकान्तया मत्या यो गाहते लोको नेहासौ परिमज्जति ॥ १७ ॥

bhavāniva vicāryādau saṃsāramatikāntayā matyā yo gāhate loko nehāsau parimajjati || 17 ||

Whoever, like you, first examines this world with an exceptionally fine mind, and then plunges into it, does not drown in it.

जो कोई तुम्हारी तरह पहले अत्यंत उत्तम बुद्धि से इस संसार की जाँच करता है, और फिर उसमें उतरता है, वह इसमें डूबता नहीं।

5.76.18

पूर्वं धिया विचार्यैते भोगा भोगिभयप्रदाः भोक्तव्याश्चरमं राम गरुडेनेव पन्नगाः ॥ १८ ॥

pūrvaṃ dhiyā vicāryaite bhogā bhogibhayapradāḥ bhoktavyāścaramaṃ rāma garuḍeneva pannagāḥ || 18 ||

Rama, these pleasures bring the same fear that snakes bring. Examine them with your mind first, and take them up only afterward, the way Garuda seizes serpents.

हे राम, ये भोग सांपों जैसा ही भय देते हैं। पहले इन्हें बुद्धि से जाँच लो, और बाद में ही इन्हें ग्रहण करो, जैसे गरुड़ साँपों को पकड़ता है।

5.76.19

विचार्य तत्त्वमालोक्य सेव्यन्ते या विभूतयः ता उदर्कोदया जन्तोः शेषा दुःखाय केवलम् ॥ १९ ॥

vicārya tattvamālokya sevyante yā vibhūtayaḥ tā udarkodayā jantoḥ śeṣā duḥkhāya kevalam || 19 ||

Whatever riches and powers a person enjoys after first seeing the truth and reflecting on it, these bring good results for that being later. All the rest bring nothing but suffering.

सत्य को जानकर और सोच-समझकर जिन वैभवों और शक्तियों का उपयोग किया जाता है, वे प्राणी के लिए आगे अच्छा फल लाते हैं। बाकी सब केवल दुख ही देते हैं।

5.76.20

बलं बुद्धिश्च तेजश्च दृष्टतत्त्वस्य वर्धते सवसन्तस्य वृक्षस्य सौन्दर्याद्या गुणा इव ॥ २० ॥

balaṃ buddhiśca tejaśca dṛṣṭatattvasya vardhate savasantasya vṛkṣasya saundaryādyā guṇā iva || 20 ||

Strength, intelligence, and vigor grow in one who has seen the truth, just as beauty and other good qualities grow in a tree when spring comes to it.

जिसने सत्य को देख लिया है, उसमें बल, बुद्धि और तेज बढ़ते जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे वसंत आने पर पेड़ में सुंदरता और दूसरे गुण बढ़ जाते हैं।

5.76.21

घनरसायनपूर्णसुशीतया विमलया समया सततं श्रिया । शिशिररश्मिरिवातिविराजसे विदितवेद्य सुखं रघुनन्दन ॥ २१ ॥

ghanarasāyanapūrṇasuśītayā vimalayā samayā satataṃ śriyā | śiśiraraśmirivātivirājase viditavedya sukhaṃ raghunandana || 21 ||

Rama, you shine like the cool-rayed moon, with a glory that is always pure, calm, deeply cool, and full of rich nectar. You have known what there is to know, and so you shine in happiness.

हे राम, तुम सदा शुद्ध, शांत, अत्यंत शीतल और गाढ़े अमृत से भरी हुई शोभा के साथ चंद्रमा की तरह चमकते हो। तुमने जो जानने योग्य था वह जान लिया है, इसलिए तुम आनंद में चमकते हो।

Chapter 77

5.77.1

श्रीराम उवाच । समासेन मुने भूयो दृष्टतत्त्वचमत्कृतेः । कथयोदारवृत्तान्तं कस्ते वचसि तृप्यति ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | samāsena mune bhūyo dṛṣṭatattvacamatkṛteḥ | kathayodāravṛttāntaṃ kaste vacasi tṛpyati || 1 ||

Sri Rama said: O sage, tell me again, in brief, the noble story of one who has seen the wonder of reality, who could ever have enough of your words?

श्रीराम ने कहा: हे मुनि, फिर से, संक्षेप में, उस व्यक्ति की उदार कथा सुनाइए जिसने सत्य के चमत्कार को देखा है, भला आपके वचनों से कौन तृप्त हो सकता है?

5.77.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । जीवन्मुक्तस्य बहुधा कथितं लक्षणं मया । भूयोऽपि त्वं महाबाहो कथ्यमानमिदं शृणु ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | jīvanmuktasya bahudhā kathitaṃ lakṣaṇaṃ mayā | bhūyo'pi tvaṃ mahābāho kathyamānamidaṃ śṛṇu || 2 ||

Sri Vasishtha said: I have already described, in many ways, the marks of one who is freed while still living. Listen once more, O mighty armed one, as I tell it again.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जो जीते जी मुक्त है, उसके लक्षण मैं पहले ही कई तरह से बता चुका हूँ। फिर भी, हे महाबाहु, अब मैं इसे फिर से कह रहा हूँ, सुनो।

5.77.3

सुषुप्तवदिदं नित्यं पश्यत्यपगतैषणः । असद्रूपमिवासक्तं सर्वत्राखिलमात्मवान् ॥ ३ ॥

suṣuptavadidaṃ nityaṃ paśyatyapagataiṣaṇaḥ | asadrūpamivāsaktaṃ sarvatrākhilamātmavān || 3 ||

He who has given up all craving, and has realized the Self, always sees this whole world as unreal, everywhere, like something in deep sleep, even though it seems so absorbing.

जिसने सारी चाह त्याग दी है और आत्मा को पा लिया है, वह हमेशा इस पूरे संसार को, हर जगह, गहरी नींद के दृश्य की तरह असत्य देखता है, चाहे यह कितना भी आकर्षक क्यों न लगे।

5.77.4

कैवल्यमिव संप्राप्तः परिसुप्तमना इव । घूर्णमान इवानन्दी तिष्ठत्यधिगतात्मदृक् ॥ ४ ॥

kaivalyamiva saṃprāptaḥ parisuptamanā iva | ghūrṇamāna ivānandī tiṣṭhatyadhigatātmadṛk || 4 ||

One who has gained sight of the Self remains as if he has reached final freedom, as if his mind were fully asleep, swaying like a drunk man, yet full of bliss.

जिसने आत्मा का दर्शन पा लिया है, वह ऐसे रहता है मानो उसने पूर्ण मुक्ति पा ली हो, मानो उसका मन पूरी तरह सोया हो, और मानो वह किसी मतवाले की तरह डोल रहा हो, फिर भी वह आनंद से भरा रहता है।

5.77.5

नादत्तमप्युपादत्ते गृहीतमपि पाणिना । अन्तर्मुखतयोदात्तरूपया समया धिया ॥ ५ ॥

nādattamapyupādatte gṛhītamapi pāṇinā | antarmukhatayodāttarūpayā samayā dhiyā || 5 ||

With a mind that is turned inward, exalted, and always even, he does not truly hold anything, not even what his own hand is holding.

अंतर्मुखी, उदात्त और सदा समान बुद्धि के कारण, वह वास्तव में कुछ भी ग्रहण नहीं करता, यहाँ तक कि जो उसके हाथ में है, उसे भी नहीं।

5.77.6

यन्त्रपुत्रकसंचार इतीमं जनताक्रमम्। अन्तःसंलीनया दृष्ट्या पश्यन्हसति शान्तधीः ॥ ६ ॥

yantraputrakasaṃcāra itīmaṃ janatākramam | antaḥsaṃlīnayā dṛṣṭyā paśyanhasati śāntadhīḥ || 6 ||

Seeing the whole bustle of people as nothing but puppets moving on strings, watching it with a gaze turned inward and absorbed, the man of peaceful mind smiles.

यह तो बस कठपुतलियों का नाचना है, ऐसा सोचकर, लोगों की इस भागदौड़ को अंतर्मुखी और लीन दृष्टि से देखते हुए, शांतचित्त पुरुष मुस्कराता है।

5.77.7

नापेक्षते भविष्यं च वर्तमाने न तिष्ठति। न संस्मरत्यतीतं च सर्वमेव करोति च ॥ ७ ॥

nāpekṣate bhaviṣyaṃ ca vartamāne na tiṣṭhati | na saṃsmaratyatītaṃ ca sarvameva karoti ca || 7 ||

He does not look forward to the future, does not stay fixed in the present, and does not dwell on the past, yet he does everything that is to be done.

वह न भविष्य की आशा रखता है, न वर्तमान में टिका रहता है, न बीते हुए को याद करता है, फिर भी वह सब कुछ करता है।

5.77.8

सुप्तः प्रबुद्धो भवति प्रबुद्धोऽपि च सुप्तवान्। सर्वं कर्म करोत्यन्तर्न करोति च किंचन ॥ ८ ॥

suptaḥ prabuddho bhavati prabuddho'pi ca suptavān | sarvaṃ karma karotyantarn na karoti ca kiṃcana || 8 ||

Asleep, he is awake, and even awake, he is as if asleep. He performs every action, yet within himself he does nothing at all.

सोते हुए भी वह जागा हुआ है, और जागते हुए भी वह मानो सोया हुआ है। वह हर काम करता है, पर भीतर से वह कुछ भी नहीं करता।

5.77.9

अन्तःसर्वपरित्यागी नित्यमन्तरनेषणः। कुर्वन्नपि बहिः कार्यं सममेवावतिष्ठते ॥ ९ ॥

antaḥsarvaparityāgī nityamantaraneṣaṇaḥ | kurvannapi bahiḥ kāryaṃ samamevāvatiṣṭhate || 9 ||

Within, he has let go of everything, and he is always free of inner craving. Even while performing his outward duties, he remains exactly the same throughout.

भीतर से उसने सब कुछ त्याग दिया है, और वह सदा भीतर की चाह से मुक्त रहता है। बाहरी काम करते हुए भी, वह सदा एक सा बना रहता है।

5.77.10

बहिः प्रकृतसर्वेहो यथाप्राप्तक्रियोन्मुखः। स्वकर्मक्रमसंप्राप्तबन्धुकार्यानुवृत्तिमान् ॥ १० ॥

bahiḥ prakṛtasarveho yathāprāptakriyonmukhaḥ | svakarmakramasaṃprāptabandhukāryānuvṛttimān || 10 ||

Outwardly he carries on all the ordinary activities of life, turning to whatever action comes his way, and he keeps up the duties toward his family that come to him in the natural course of his own work.

बाहर से वह जीवन के सभी सामान्य काम करता है, जो भी काम सामने आए उसकी ओर मुड़ जाता है, और अपने कामकाज के क्रम में जो पारिवारिक कर्तव्य सामने आते हैं, उन्हें निभाता रहता है।

5.77.11

समग्रसुखभोगात्मा सर्वाशास्विव संस्थितःकरोत्यखिलकर्माणि त्यक्तकर्तृत्वविभ्रमः ॥ ११ ॥

samagrasukhabhogātmā sarvāśāsviva saṃsthitaḥkarotyakhilakarmāṇi tyaktakartṛtvavibhramaḥ || 11 ||

His whole being enjoys every kind of happiness, and he seems to live amid every desire. He performs all actions, but the illusion that he is their doer has left him.

उसका पूरा स्वभाव हर तरह के सुख का भोग करने वाला है, और वह मानो सब इच्छाओं के बीच रहता दिखता है। वह सारे काम करता है, पर 'मैं करने वाला हूँ' का भ्रम उससे छूट चुका है।

5.77.12

उदासीनवदासीनः प्रकृतः क्रमकर्मसुनाभिवाञ्छति न द्वेष्टि न शोचति न हृष्यति ॥ १२ ॥

udāsīnavadāsīnaḥ prakṛtaḥ kramakarmasunābhivāñchati na dveṣṭi na śocati na hṛṣyati || 12 ||

He sits like someone unconcerned, going about his usual round of actions, he does not crave, does not hate, does not grieve, and does not rejoice.

वह उदासीन व्यक्ति की तरह बैठा रहता है, अपने रोज़ के कामों में लगा रहता है, न वह कुछ चाहता है, न किसी से द्वेष रखता है, न शोक करता है, न हर्षित होता है।

5.77.13

अनुबन्धपरे जन्तावसंसक्तेन चेतसाभक्ते भक्तसमाचारः शठे शठ इव स्थितः ॥ १३ ॥

anubandhapare jantāvasaṃsaktena cetasābhakte bhaktasamācāraḥ śaṭhe śaṭha iva sthitaḥ || 13 ||

Toward a person caught up in worldly ties, his mind stays free of attachment, with someone devoted, he acts as one devoted himself, and with a cunning person, he behaves as though he too were cunning.

सांसारिक बंधनों में उलझे व्यक्ति के प्रति भी उसका मन अनासक्त रहता है, भक्त के साथ वह भक्त जैसा व्यवहार करता है, और धूर्त के साथ मानो वह स्वयं धूर्त हो, वैसा बर्ताव करता है।

5.77.14

बालो बालेषु वृद्धेषु वृद्धो धीरेषु धैर्यवान्युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेष्वनु दुःखितः ॥ १४ ॥

bālo bāleṣu vṛddheṣu vṛddho dhīreṣu dhairyavānyuvā yauvanavṛtteṣu duḥkhiteṣvanu duḥkhitaḥ || 14 ||

Among children he is a child, among old people he is old, among the composed he is full of composure, among the young behaving as the young do, he is young, and among the sorrowful, he shares their sorrow.

बच्चों के बीच वह बच्चा है, बूढ़ों के बीच वह बूढ़ा है, धीर लोगों के बीच वह धैर्यवान है, जवानी की तरह बर्ताव करने वालों के बीच वह जवान है, और दुखियों के बीच वह उनके साथ दुखी होता है।

5.77.15

प्रवृत्तवाक्पुण्यकथो दैन्याद्व्यपगताशयःधीरधीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः ॥ १५ ॥

pravṛttavākpuṇyakatho dainyādvyapagatāśayaḥdhīradhīruditānandaḥ peśalaḥ puṇyakīrtanaḥ || 15 ||

His words flow into wholesome talk, his mind has let go of all misery, his understanding stays steady while his joy keeps rising, he is gentle, and he speaks in praise of what is good.

उसकी वाणी शुभ बातों में बहती है, उसका मन हर तरह की दीनता से मुक्त हो चुका है, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है जबकि उसका आनंद बढ़ता रहता है, वह सौम्य है और अच्छी बातों की सराहना करता है।

5.77.16

प्राज्ञः प्रसन्नमधुरः पूर्णः स्वप्रतिभोदये । निरस्तखेददौर्गत्यः सर्वस्मिन्स्निग्धबान्धवः ॥ १६ ॥

prajñah prasannamadhurah purṇah svapratibhodaye | nirastakhedadaurgatyaḥ sarvasminsnigdhabandhavah || 16 ||

He is wise, pleasant and gentle in speech, complete in the rising of his own insight, all sorrow and misfortune have left him, and he is as warm as a loving kinsman to everyone.

वह ज्ञानी है, सुखद और मधुर स्वभाव का है, अपनी ही अंतर्दृष्टि के उदय में पूर्ण है, उसका सारा दुख और दुर्भाग्य दूर हो चुका है, और वह सबके प्रति प्रेमी बंधु जैसा स्नेही है।

5.77.17

उदारचरिताकारः समः सौम्यसुखोदधिः । सुस्निग्धः शीतलस्पर्शः पूर्णचन्द्र इवोदितः ॥ १७ ॥

udāracaritākārah samah saumyasukhodadhih | susnigdhah śītalasparśah purṇacandra ivoditah || 17 ||

His whole bearing shows noble conduct, he is even tempered, an ocean of gentle happiness, deeply affectionate, cool to the touch, like a full moon risen in the sky.

उसका पूरा व्यक्तित्व उदार आचरण दिखाता है, वह समभाव रखता है, सौम्य सुख का सागर है, गहरा स्नेही है, स्पर्श में शीतल है, मानो पूर्णिमा का चाँद उग आया हो।

5.77.18

न तस्य सुकृतेनार्थो न भोगैर्न च कर्मभिः । न दुष्कृतैर्न भोगानां संत्यागेन न बन्धुभिः ॥ १८ ॥

na tasya sukṛtenārtho na bhogairna ca karmabhih | na duṣkṛtairna bhogānāṃ samtyāgena na bandhubhih || 18 ||

He has no need of good deeds, nor of pleasures, nor of rituals, and no need of bad deeds, nor of giving up pleasures, nor of relatives.

उसे न पुण्य कर्मों की ज़रूरत है, न सुखों की, न कर्मकांडों की, और न पाप कर्मों की, न सुखों को त्यागने की, न रिश्तेदारों की।

5.77.19

न कार्यकारणारम्भैर्न निष्कृततया तथा । न बन्धेन न मोक्षेण न पातालेन नो दिवा ॥ १९ ॥

na kāryakāraṇārambhairna niṣkṛtatayā tathā | na bandhena na mokṣeṇa na pātālena nodivā || 19 ||

He has no need to begin actions for their effects, nor for any act of atonement, no need for bondage, no need for liberation, no need for the netherworld, no need for heaven.

उसे न किसी काम कारण को शुरू करने की ज़रूरत है, न प्रायश्चित की, न बंधन की ज़रूरत है, न मोक्ष की, न पाताल की, न स्वर्ग की।

5.77.20

यथावस्तु यथादृष्टं जगदेकमयात्मकम् । तदा बन्धविमोक्षाणां न क्वचित्कृपणं मनः ॥ २० ॥

yathāvastu yathādṛṣṭaṃ jagadekamayātmakam | tadā bandhavimokṣāṇāṃ na kvacitkṛpaṇaṃ manah || 20 ||

When the world is seen exactly as it is, as made of one single reality, then the mind is never troubled about bondage or freedom.

जब संसार को ठीक वैसा ही देखा जाता है जैसा वह वास्तव में है, एक ही तत्त्व से बना हुआ, तब मन बंधन और मुक्ति को लेकर कभी व्याकुल नहीं होता।

5.77.21

सम्यग्ज्ञानाग्निना यस्य दग्धाः संदेहजालिकाःनिःशङ्कमलमुड्डीनस्तस्य चित्तविहङ्गमः ॥ २१ ॥

samyagjñānāgninā yasya dagdhāḥ saṃdehajālikāḥniḥśaṅkamalamuḍḍīnastasya cittavihaṅgamaḥ || 21 ||

The one whose net of doubts has been burnt away by the fire of true knowledge, his mind, like a bird, flies up freely, without any fear.

जिसके संदेह के जाल ज्ञान की अग्नि से जल चुके हैं, उसका मन एक पक्षी की तरह निडर होकर स्वतंत्र उड़ान भरता है।

5.77.22

यस्य भ्रान्तिविनिर्मुक्तं मनः समरसं स्थितम्नास्तमेति न चोदेति व्योमवत्सर्वदृष्टिषु ॥ २२ ॥

yasya bhrāntivinirmuktaṃ manaḥ samarasaṃ sthitamnāstameti na codeti vyomavatsarvadṛṣṭiṣu || 22 ||

The one whose mind, free of all delusion, remains everywhere the same, that mind neither sets nor rises, like the sky, however things appear to it.

जिसका मन भ्रम से मुक्त होकर हर जगह एक सा बना रहता है, वह मन न कभी डूबता है न कभी उगता है, आकाश की तरह, चाहे उसके सामने कुछ भी दिखे।

5.77.23

मंजूषायां निषण्णस्य यथा बालस्य चेष्टतेअंगावल्यनुसंधानवर्जितं यस्य वै तथा ॥ २३ ॥

maṃjūṣāyāṃ niṣaṇṇasya yathā bālasya ceṣṭateaṅgāvalyanusaṃdhānavarjitaṃ yasya vai tathā || 23 ||

Just as a baby sitting in a basket moves its arms and legs about with none of them following any plan, so it is with him too.

जैसे टोकरी में बैठा एक बच्चा अपने हाथ-पैर बिना किसी तालमेल के यों ही हिलाता रहता है, वैसे ही उसका भी हाल है।

5.77.24

घूर्णन्क्षीव इवानन्दी मन्दीभूतपुनर्भवःअनुपादेयबुद्ध्या तु न स्मरत्यकृतं कृतम् ॥ २४ ॥

ghūrṇankṣīva ivānandī mandībhūtapunarbhavaḥanupādeyabuddhyā tu na smaratyakṛtaṃ kṛtam || 24 ||

He sways like a drunk man, yet he is full of joy; for him being born again has grown weak and faint. With a mind that holds on to nothing, he does not keep count of what he has done or left undone.

वह एक नशे में झूमते आदमी की तरह डगमगाता है, फिर भी आनंद से भरा रहता है; उसके लिए दोबारा जन्म लेना लगभग खत्म हो चुका है। किसी चीज़ को पकड़े रहने वाला मन न होने के कारण, उसे यह भी याद नहीं रहता कि उसने क्या किया और क्या नहीं किया।

5.77.25

सर्व सर्वप्रकारेण गृह्णाति च जहाति च अनुपादेयसर्वार्थो बालवच्च विचेष्टते ॥ २५ ॥

sarva sarvaprakāreṇa gṛhṇāti ca jahāti caanupādeyasarvārtho bālavacca viceṣṭate || 25 ||

He takes hold of everything in every way, and he lets go of everything too; nothing is worth holding on to for him, and he behaves just like a child.

वह हर चीज़ को हर तरह से पकड़ भी लेता है और छोड़ भी देता है; उसके लिए कुछ भी पकड़े रखने लायक नहीं है, और वह बिल्कुल एक बच्चे की तरह बर्ताव करता है।

5.77.26

स तिष्ठन्नपि कार्येषु देशकालक्रियाक्रमैः । न कार्यसुखदुःखाभ्यां मनागपि हि गृह्यते ॥ २६ ॥

sa tiṣṭhannapi kāryeṣu deśakālakriyākramaḥ | na kāryasukhaduḥkhābhyāṃ manāgapi hi gṛhyate || 26 ||

Even while he stays busy with tasks, moving through their places, times and steps of action, he is not touched even a little by the pleasure or pain those tasks bring.

वह चाहे कामों में लगा रहे, जगह, समय और काम के क्रम से गुज़रता रहे, फिर भी उन कामों से मिलने वाले सुख या दुख से उसे ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता।

5.77.27

बहिः प्रकृतसर्वार्थोऽप्यन्तः पुनरनीहया । न सत्तां योजयत्यर्थे न फलान्यनुधावति ॥ २७ ॥

bahiḥ prakṛtasarvārtho'pyantaḥ punaraniḥayā | na sattāṃ yojayatyarthe na phalānyanudhāvati || 27 ||

Outwardly he is occupied with every kind of object, but inwardly he is free of any striving; he does not attach his being to the object, and he does not run after its results.

बाहर से वह हर तरह की चीज़ों में लगा रहता है, पर भीतर से उसमें कोई चाह या मेहनत नहीं होती; वह अपने होने को उस चीज़ से जोड़ता नहीं, और न ही उसके नतीजों के पीछे भागता है।

5.77.28

नोपेक्षते दुःखदशां न सुखाशामपेक्षते । कार्योदये नैति मुदं कार्यनाशे न खिद्यते ॥ २८ ॥

nopēkṣatē duḥkhadaśāṃ na sukhāśāmapēkṣatē | kāryōdayē naiti mudaṃ kāryanāśē na khidyatē || 28 ||

He does not dwell on a state of suffering, and he does not look for any hope of happiness. When a task succeeds he feels no joy, and when it fails he feels no grief.

वह दुख की हालत में उलझा नहीं रहता, और सुख की कोई उम्मीद भी नहीं रखता। जब कोई काम सफल होता है तो उसे खुशी नहीं होती, और जब वह बिगड़ जाता है तो उसे दुख नहीं होता।

5.77.29

अपि शीतरुचावर्के सुतप्तेऽपीन्दुमण्डले । अप्यधः प्रसरत्यग्नौ विस्मयोऽस्य न जायते ॥ २९ ॥

api śītarucāvarke sutaptē'pīndumaṇḍalē | apyadhaḥ prasaratyagnau vismayo'sya na jāyatē || 29 ||

Even if the sun turned cool and its light lost all heat, even if the moon's disc grew burning hot, even if fire spread downward instead of up, he would feel no surprise.

अगर सूरज ठंडा हो जाए और उसकी रोशनी में गर्मी न रहे, अगर चांद का गोला जलने लगे, अगर आग ऊपर के बजाय नीचे की ओर फैलने लगे, तो भी उसे कोई हैरानी नहीं होगी।

5.77.30

चिदात्मन इमा इत्थं प्रस्फुरन्तीह शक्तयः । इत्यस्याश्चर्यजालेषु नाभ्युदेति कुतूहलम् ॥ ३० ॥

cidātmana imā itthaṃ prasphurantīha śaktayaḥ | ityasyāścaryajāleṣu nābhyudeti kutūhalam || 30 ||

He knows that these are simply the powers of the conscious self flashing out in this way; and so, amid all the wonders of this world, no curiosity rises in him.

वह जानता है कि ये तो बस चेतन आत्मा की शक्तियां हैं जो इस तरह चमक उठती हैं; इसलिए इस दुनिया के सारे अचरज भरे तमाशों के बीच भी उसके मन में कोई उत्सुकता नहीं जागती।

5.77.31

न दयादैन्यमादत्ते न क्रौर्यमनुधावति न लज्जामनुसंधत्ते नालज्जत्वं च गच्छति ॥ ३१ ॥

na dayādainyamādatte na krauryamanudhāvati na lajjāmanusaṃdhatte nālajjatvaṃ ca gacchati || 31 ||

He does not take on the misery that comes with pity, and he does not run after cruelty. He does not hold on to a sense of shame, and he does not fall into shamelessness either.

वह दया के साथ आने वाली बेचारगी को अपने ऊपर नहीं लेता, और क्रूरता के पीछे भी नहीं भागता। वह न तो शर्म को पकड़े रहता है, और न ही बेशर्मी की ओर जाता है।

5.77.32

न कदाचन दीनात्मा नोद्धतात्मा कदाचन न प्रमत्तो न खिन्नात्मा नोद्विग्नो न च हर्षवान् ॥ ३२ ॥

na kadācana dīnātmā noddhatātmā kadācana na pramatto na khinnātmā nodvigno na ca harṣavān || 32 ||

He is never downcast, and he is never proud. He is never careless, never troubled in mind, never anxious, and never overjoyed.

वह कभी उदास नहीं होता, और कभी घमंडी भी नहीं होता। वह कभी लापरवाह नहीं होता, न मन ही मन दुखी होता है, न बेचैन होता है, और न ही बहुत ज़्यादा खुश होता है।

5.77.33

नास्य चेतसि सुस्फारे शरदम्बरनिर्मले कोपादयः प्रजायन्ते नभसीव नवाङ्कुराः ॥ ३३ ॥

nāsya cetasi susphāre śaradambaranirmale kopādayaḥ prajāyante nabhasīva navāṅkurāḥ || 33 ||

In his mind, spread out wide and clear like the autumn sky, anger and its kin do not arise, just as fresh shoots cannot sprout in the sky.

उसके मन में, जो शरद ऋतु के आकाश जैसा खुला और साफ़ है, गुस्सा और उस जैसी चीज़ें पैदा ही नहीं होतीं, ठीक वैसे ही जैसे आकाश में कभी नई कोंपलें नहीं उगतीं।

5.77.34

अनारतपतज्जातभूतायां जगतः स्थितौ क्व कथं किल कासौ स्यात्सुखिताऽसुखिताथवा ॥ ३४ ॥

anāratapatajjātabhūtāyāṃ jagataḥ sthitau kva kathaṃ kila kāsau syātsukhitā'sukhitāthavā || 34 ||

In the world's continual existence, one long, unbroken rising and falling, how and where, indeed, could this existence ever be happy or unhappy?

दुनिया के इस लगातार बने रहने में, जो बिना रुके बनने और मिटने का सिलसिला है, यह भला कहां और कैसे सुखी या दुखी हो सकता है?

5.77.35

फेनाजवं जवीभावे जले भूतक्रमे तथा क्व किलेदं कुतः कोऽतः प्रसङ्गः सुखदुःखयोः ॥ ३५ ॥

phenājavam javībhāve jale bhūtakrame tathā kva kiledam kutaḥ ko'taḥ prasaṅgaḥ sukhaduḥkhayoḥ || 35 ||

It is like foam hurrying along in fast-moving water, and the passing procession of created beings is the same. Where, then, is anything fixed here? From where, and how, could pleasure and pain have any hold on it?

यह वैसा ही है जैसे तेज़ बहते पानी में झाग तेज़ी से बहता जाता है, और बने हुए जीवों का यह आना-जाना भी वैसा ही है। तो फिर यहां कुछ भी स्थिर कहां है? सुख और दुख इस पर पकड़ कहां से और कैसे बना सकते हैं?

5.77.36

भावाभावैरपर्यन्तैरजस्रं जन्तुसंभवैः । न विशीर्यन्ति नोद्यन्ति दृष्टिसृष्टिक्षमा नराः ॥ ३६ ॥

bhāvābhāvairaparyantairajasraṃ jantusaṃbhavaistena viśīryanti nodyanti dṛṣṭisṛṣṭikṣamā narāḥ || 36 ||

Through endless, ceaseless coming into being and going out of it, creature after creature keeps appearing; but the man who has understood that seeing itself is the making of the world is not worn away by this, and does not arise from it either.

बिना रुके, लगातार बनने और मिटने के ज़रिए एक के बाद एक जीव पैदा होते रहते हैं; पर जिस आदमी ने यह समझ लिया है कि देखना ही दुनिया का बनाना है, वह न तो इससे घिसता है और न ही इससे पैदा होता है।

5.77.37

निमेषं प्रति यामिन्यां यथान्याः स्वप्नदृष्टयः । क्षणोत्पत्तिविनाशिन्यस्तथैता लोकदृष्टयः ॥ ३७ ॥

nimeṣaṃ prati yāminyāṃ yathānyāḥ svapnadṛṣṭayaḥ | kṣaṇotpattivināśinyastathaitā lokadṛṣṭayaḥ || 37 ||

Just as, moment by moment through the night, one dream-sight after another rises and vanishes in an instant, so it is with these sights of the world.

जैसे रात भर, हर पल एक सपने का दृश्य दूसरे के बाद पल भर में उठता और मिट जाता है, वैसे ही दुनिया के ये सारे दृश्य भी हैं।

5.77.38

अनारतसमुत्पत्तावनारतविनाशिनि । कः क्रमो दग्धसंसारे कारुण्यानन्दयोरिह ॥ ३८ ॥

anāratasamutpattāvanāratavināśini | kaḥ kramaḥ dagdhasaṃsāre kāruṇyānandayorih || 38 ||

In this world, forever arising and forever perishing, now burnt away to nothing, what room is left here for pity or for joy?

इस दुनिया में, जो हमेशा बनती और हमेशा मिटती रहती है, और अब पूरी तरह जल चुकी है, यहां दया या खुशी के लिए जगह ही कहां बची है?

5.77.39

शुभाभावात्सुखाभावे स्थितिं याते विलक्षणाः । कीदृश्यः कथमायाताः क्व वा ता दुःखसंविदः ॥ ३९ ॥

śubhābhāvātsukhābhāve sthitiṃ yāte vilakṣaṇāḥ | kīdṛśyaḥ kathamāyātāḥ kvā tā duḥkhasaṃvidaḥ || 39 ||

These feelings of suffering take on a life of their own once the good is gone and happiness is absent. But what are they really, how did they come about, and where indeed are they now?

जब भलाई खत्म हो जाती है और सुख नहीं रहता, तो ये दुख की भावनाएं अपने आप में एक अलग हस्ती बन जाती हैं। पर असल में ये हैं क्या, कैसे पैदा हुईं, और अभी हैं कहां?

5.77.40

सुखसंवेदनान्तोत्था स्वबीजं वितनोति या । शान्ता दुःखदशा सेयं कथमन्तर्हिते सुखे ॥ ४० ॥

sukhasaṃvedanāntotthā svabījaṃ vitanoti yā | śāntā duḥkhadaśā seyaṃ kathamantarhite sukhe || 40 ||

This feeling of suffering rises only when a feeling of happiness ends, and then it keeps sowing its own seed further. But this same feeling of suffering has now gone quiet, so once happiness itself has vanished, how could it still be there?

यह दुख की भावना तभी उठती है जब सुख की भावना खत्म होती है, और फिर आगे अपना ही बीज बोती चली जाती है। पर यही दुख की भावना अब शांत हो चुकी है, तो जब सुख खुद ही मिट गया, तो यह अब कैसे बची रह सकती है?

5.77.41

क्षीणाभ्यां सुखदुःखाभ्यां हेयोपादेययोः क्षये । ईप्सितानीप्सिते क्व स्तो गलितेऽथ शुभाशुभे ॥ ४१ ॥

kṣīṇābhyāṃ sukhaduḥkhābhyāṃ heyopādeyayoḥ kṣaye | īpsitānīpsite kva sto galite'tha śubhāśubhe || 41 ||

Once happiness and suffering have both faded away, once the very ideas of what to reject and what to accept have died out, where then are the wanted and the unwanted? And once good and bad themselves have melted away, where are they too?

जब सुख और दुख दोनों मिट जाते हैं, जब त्यागने और अपनाने का खयाल ही खत्म हो जाता है, तो फिर चाही और अनचाही चीज़ें कहां रहती हैं? और जब भला-बुरा भी घुल जाता है, तो वे भी कहां रहते हैं?

5.77.42

रम्यारम्यदृशोर्नाशाद्याते भोगाभिवाञ्छने । नैराश्ये संततं प्रौढे हिमवद्विगलेन्मनः ॥ ४२ ॥

ramyāramyadṛśornāśādyāte bhogābhivāñchane | nairāśye saṃtataṃ prauḍhe himavadvigalenmanaḥ || 42 ||

When the very sight of the pleasant and the unpleasant is destroyed, when the longing for enjoyment is gone, and when this freedom from desire grows steady and full, the mind melts away like snow.

जब सुहावने और नासुहावने को देखना ही खत्म हो जाता है, जब भोग की चाह चली जाती है, और यह चाह का न होना लगातार बना रहकर पूरी तरह पक जाता है, तो मन बर्फ़ की तरह पिघल जाता है।

5.77.43

आमूलान्मनसि क्षीणे संकल्पस्य कथा च का । तिलेष्विवातिदग्धेषु तैलस्य कलना कुतः ॥ ४३ ॥

āmūlānmanasi kṣīṇe saṃkalpasya kathā ca kā | tileṣvivātidagdheṣu tailasya kalanā kutaḥ || 43 ||

When the mind has been destroyed right down to its root, what is there left to say about thought and intention? It is like sesame seeds burnt to nothing. Where, then, would you find any oil in them?

जब मन जड़ से ही नष्ट हो जाता है, तो इरादे और संकल्प की बात ही कहां बचती है? यह वैसा ही है जैसे तिल पूरी तरह जल जाएं। तो फिर उनमें तेल कहां से मिलेगा?

5.77.44

भावेष्वभावघनभावनया महात्मा निर्मुक्तसंकलनमम्बरवत्स्थितेषु । चित्तं प्रति स्वमुदितो विततैकरूपी ज्ञस्तिष्ठति स्वपिति जीवति नित्यतृप्तः ॥ ४४ ॥

bhāveṣvabhāvaghanabhāvanayā mahātmā nirmuktasaṃkalanamambaravatsthiteṣu | cittaṃ prati svamudito vitataikarūpī jñastiṣṭhati svapiti jīvati nityatṛptaḥ || 44 ||

Amid all things that exist, seeing them as thick with non-being, the great soul cuts loose every tie to them; they stand there for him like empty sky. Toward his own mind he is glad in himself, one same being spread through everything; such a knower stays, sleeps, and lives, always content.

सभी मौजूद चीज़ों के बीच, उन्हें मानो न-होने से भरा हुआ देखकर, वह महान आत्मा उनसे हर नाता तोड़ देता है; उसके लिए वे खाली आकाश जैसी खड़ी रहती हैं। अपने ही मन के प्रति वह खुद में मगन रहता है, हर जगह एक ही रूप में फैला हुआ; ऐसा ज्ञानी जागता है, सोता है, जीता है, और हमेशा संतुष्ट रहता है।

Chapter 78

5.78.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । यथालातपरिस्पन्दादग्निचक्रं प्रदृश्यते । असदेव सदाभासं चित्तस्पन्दात्तथा जगत् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yathālātaparispandādagnicakraṃ pradṛśyate | asadeva sadābhāsaṃ cittaspandāttathā jagat || 1 ||

Sri Vasishtha said: Just as whirling a lit torch makes a circle of fire appear, so the world, though unreal, appears real because the mind vibrates.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जैसे जलती हुई लकड़ी को घुमाने से आग का एक घेरा दिखाई देता है, वैसे ही मन के हिलने से यह जगत, जो असली नहीं है, असली जैसा दिखता है।

5.78.2

यथा जलपरिस्पन्दाद्व्यतिरिक्त इवाम्भसः । दृश्यते वर्तुलावर्तश्चित्तस्पन्दात्तथा जगत् ॥ २ ॥

yathā jalaparispandādvyatirikta ivāmbhasaḥ | dṛśyate vartulāvartaścittaspandāttathā jagat || 2 ||

Just as a round whirlpool appears out of the stirring of water, looking like something separate from the water, so the world appears out of the vibration of the mind, looking like something separate from it.

जैसे पानी के हिलने से एक गोल भंवर बनता है, जो पानी से अलग जैसा दिखता है, वैसे ही मन के हिलने से यह जगत बनता है, जो मन से अलग जैसा दिखता है।

5.78.3

यथा व्योम्नीक्षणस्पन्दात्पिच्छमौक्तिकमण्डलम् । दृश्यते सदिवासत्यं चित्तस्पन्दात्तथा जगत् ॥ ३ ॥

yathā vyomnīkṣaṇaspandātpicchamauktikamaṇḍalam | dṛśyate sadivāsatyam cittaspandāttathā jagat || 3 ||

Just as, when the eye trembles, circles like peacock feathers and strings of pearls appear in the sky, unreal though they look real, so the world too, though unreal, looks real, because of the mind's vibration.

जैसे आँख काँपने से आकाश में मोरपंख और मोती जैसे घेरे दिखते हैं, जो झूठे होकर भी सच्चे जैसे लगते हैं, वैसे ही मन के हिलने से यह जगत भी झूठा होकर भी सच्चा जैसा दिखता है।

5.78.4

श्रीराम उवाच । येन प्रस्पन्दते चित्तं येन न स्पन्दते तथा । तद्ब्रह्मन्ब्रूहि मे येन चिकित्सेयं तदेव हि ॥ ४ ॥

śrīrāma uvāca | yena praspandate cittaṃ yena na spandate tathā | tadbrahmanbrūhi me yena cikitseyam tadeva hi || 4 ||

Sri Rama said: Tell me, O Brahmin, what makes the mind vibrate, and what stops it from vibrating. Tell me exactly that, so that I can treat it.

श्रीराम ने कहा: हे ब्राह्मण, मुझे बताइए कि मन किस कारण से हिलता है, और किस कारण से नहीं हिलता। मुझे ठीक वही बताइए, ताकि मैं इसका इलाज कर सकूँ।

5.78.5

श्रीवसिष्ठ उवाच । यथा शौक्ल्यहिमे राम तिलतैललवौ यथा । यथा कुसुमसौगन्ध्ये तथौष्ण्यदहनौ यथा ॥ ५ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yathā śauklyahime rāma tilatailalavau yathā | yathā kusumasaugandhye tathauṣṇyadahanau yathā || 5 ||

Sri Vasishtha said: Rama, just as whiteness and frost, a sesame seed and its drop of oil, a flower and its fragrance, and heat and fire,

श्री वसिष्ठ ने कहा: राम, जैसे सफेदी और बर्फ, तिल और उसकी तेल की बूँद, फूल और उसकी खुशबू, और गर्मी और आग,

5.78.6

तथा राघव संश्लिष्टौ चित्तस्पन्दौ तथैव हि । अभिन्नौ केवलं मिथ्या भेदः कल्पित एतयोः ॥ ६ ॥

tathā rāghava saṃśliṣṭau cittaspandau tathaiva hi | abhinnaau kevalaṃ mithyā bhedaḥ kalpita etayoḥ || 6 ||

in just the same way, Raghava, the mind and its vibration are joined together. Between these two, the mind and the vibration of the mind, they are not separate. The difference between them is only imagined, and false.

वैसे ही, हे राघव, मन और उसका हिलना भी एक साथ जुड़े हुए हैं। ये दोनों अलग नहीं हैं। इनके बीच का भेद केवल कल्पना है, झूठा है।

5.78.7

चित्तचित्तपरिस्पन्दपक्षयोरेकसंक्षये । स्वयं गुणगुणी स्थित्वा नश्यतो द्वौ न संशयः ॥ ७ ॥

cittacittaparispandapakṣayorekasaṃkṣaye | svayaṃ guṇaguṇī sthitvā naśyato dvau na saṃśayaḥ || 7 ||

Between these two, the mind and the vibration of the mind, if just one of the pair comes to an end, both end together, since by their own nature they stand as a quality and the thing that has the quality. There is no doubt about this.

मन और मन के हिलने, इन दोनों में से जब एक भी खत्म होता है, तो दोनों साथ खत्म हो जाते हैं, क्योंकि ये अपने आप में गुण और गुणी की तरह जुड़े हैं। इसमें कोई शक नहीं है।

5.78.8

द्वौ क्रमो चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव । योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥ ८ ॥

dvau kramo cittanāśasya yogo jñānaṃ ca rāghava | yogastadvṛttirodho hi jñānaṃ samyagavekṣaṇam || 8 ||

There are two ways to destroy the mind, Raghava: yoga and knowledge. Yoga is stopping the mind's activity, and knowledge is seeing correctly.

हे राघव, मन को खत्म करने के दो तरीके हैं, योग और ज्ञान। योग है मन की गतिविधियों को रोकना, और ज्ञान है सही तरीके से देखना।

5.78.9

श्रीराम उवाच । कदा कीदृक्क्रया युक्त्या प्राणापाननिबन्धया । योगनाम्न्या मनः शान्तिमेत्यनन्तसुखप्रदाम् ॥ ९ ॥

śrīrāma uvāca | kadā kīdṛkkayā yuktyā prāṇāpānanibandhayā | yoganāmnyā manaḥ śāntimetyanantasukhapradām || 9 ||

Sri Rama said: When, in what manner, and by what method, the one called yoga, which controls prana and apana, does the mind reach that peace which gives endless happiness?

श्रीराम ने कहा: कब, किस तरह से, और किस उपाय से, जिसे योग कहा जाता है और जो प्राण और अपान को नियंत्रित करता है, मन उस शांति को पाता है जो अनंत सुख देती है?

5.78.10

श्रीवसिष्ठ उवाच । देहेऽस्मिन्देहनाडीषु वातः स्फुरति योऽभितः । स्पन्देष्विव भुवो वारि स प्राण इति कीर्तितः ॥ १० ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dehe'smindehanāḍīṣu vātaḥ sphurati yo'bhitaḥ | spandeṣviva bhuvo vāri sa prāṇa iti kīrtitaḥ || 10 ||

Sri Vasishtha said: In this body, the air that pulses everywhere in the body's channels, the way water on the ground trembles in ripples, that is called prana.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस शरीर में, शरीर की नाड़ियों में जो हवा हर तरफ फड़कती है, जैसे धरती पर पानी लहरों में हिलता है, उसे प्राण कहा जाता है।

5.78.11

तस्य स्पन्दवशादन्तः क्रियावैचित्र्यमीयुषः ।अपानादीनि नामानि कल्पितानि कृतात्मभिः ॥११ ॥

tasya spandavaśādantaḥ kriyāvaicitryamīyuṣaḥ|apānādīni nāmāni kalpitāni kṛtātmabhiḥ||11||

Because of its pulsing, it takes on a variety of functions within the body. The names apana and the rest have been given to it by those who have mastered themselves.

अपने फड़कने के कारण, यह शरीर के अंदर कई तरह के काम करता है। इसे अपान आदि नाम उन लोगों ने दिए हैं जिन्होंने अपने आप पर पूरी तरह काबू पा लिया है।

5.78.12

आमोदस्य यथा पुष्पं शौक्ल्यस्य तुहिनं यथा ।तथैष रस आधारश्चित्तस्याभिन्नतां गतः ॥१२ ॥

āmodasya yathā puṣpaṃ śauklyasya tuhinam yathā|tathaiṣa rasa ādhāraścittasyābhinnatāṃ gataḥ||12||

Just as fragrance rests in a flower, and whiteness rests in frost, so prana, which holds the very essence of the mind, is not separate from the mind.

जैसे खुशबू फूल में रहती है, और सफेदी बर्फ में रहती है, वैसे ही प्राण, जो मन का सार अपने में लिए हुए है, मन से अलग नहीं है।

5.78.13

अन्तःप्राणपरिस्पन्दात्संकल्पकलनोन्मुखी ।संवित्संजायते यैषा तच्चित्तं विद्धि राघव ॥१३ ॥

antaḥprāṇapariśpandātsaṃkalpakalanounmukhī|saṃvitsaṃjāyate yaiṣā taccittaṃ viddhi rāghava||13||

From the inner vibration of prana, an awareness arises that turns toward forming intentions and thoughts. Know that, Raghava, to be the mind.

प्राण के अंदरूनी हिलने से जो बोध जागता है और विचार व इरादे बनाने की ओर मुड़ता है, हे राघव, उसी को मन जानो।

5.78.14

प्राणस्पन्दाच्चितः स्पन्दस्तत्स्पन्दादेव संविदः ।चक्रावर्तविधायिन्यो जलस्पन्दादिवोर्मयः ॥१४ ॥

prāṇaspanndācchitaḥ spandastatspandādeva saṃvidaḥ|cakrāvartavidhāyinyo jalaspanndādivormayaḥ||14||

From the vibration of prana comes the vibration of consciousness, and from that very vibration come waves of awareness that swirl into circles and whirlpools, just like waves from the stirring of water.

प्राण के हिलने से चेतना हिलती है, और उसी हिलने से बोध की लहरें उठती हैं जो घूमकर चक्र और भंवर बनाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे पानी के हिलने से लहरें उठती हैं।

5.78.15

चित्तं प्राणपरिस्पन्दमाहुरागमभूषणाः ।तस्मिन्संरोधिते नूनमुपशान्तं भवेन्मनः ॥१५॥

cittaṃ prāṇapariśpandamāhurāgamabhūṣaṇāḥ|tasminsaṃrodhite nūnamupaśāntaṃ bhavenmanaḥ||15||

Those who are masters of the scriptures say that the mind is nothing but the vibration of prana. When that vibration is held in check, the mind surely becomes calm.

शास्त्रों के जानकार बड़े लोग कहते हैं कि मन कुछ और नहीं, प्राण का हिलना ही है। जब उस हिलने को रोक दिया जाता है, तो मन ज़रूर शांत हो जाता है।

5.78.16

मनःस्पन्दोपशान्त्यायं संसारः प्रविलीयते । सूर्यालोकपरिस्पन्दशान्तौ व्यवहृतिर्यथा ॥ १६ ॥

manaḥspandopaśāntyāyaṃ saṃsāraḥ pravilīyate | sūryālokaparispandśāntau vyavahṛtiryathā || 16 ||

When the vibration of the mind is calmed, this whole cycle of worldly existence dissolves, just as, when the movement of sunlight stops, all worldly business comes to a stop.

जब मन का हिलना शांत हो जाता है, तो यह सारा सांसारिक जीवन-चक्र मिट जाता है, ठीक वैसे ही जैसे सूरज की रोशनी का फैलना रुकने पर दुनिया का सारा काम-काज रुक जाता है।

5.78.17

श्रीराम उवाच । अनिशं चरतां देहगेहे गगनगामिनाम् । प्राणादीनां परिस्पन्दो वायूनां रोध्यते कथम् ॥ १७ ॥

śrīrāma uvāca | aniśaṃ caratāṃ dehagehe gaganagāminām | prāṇādīnāṃ parispando vāyūnāṃ rodhyate katham || 17 ||

Sri Rama said: The breaths, prana and the rest, move ceaselessly in the house of the body, roaming through empty space. How can their vibration be stopped?

श्रीराम ने कहा: प्राण आदि हवाएँ शरीर रूपी घर में लगातार चलती रहती हैं और खुले आकाश में घूमती हैं। इनके हिलने को कैसे रोका जा सकता है?

5.78.18

श्रीवसिष्ठ उवाच । शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासयोगतः । अनास्थायां कृतास्थायां पूर्वसंसारवृत्तिषु ॥ १८ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | śāstrasajjanasamparkavairāgyābhyāsayogataḥ | anāsthāyāṃ kṛtāsthāyāṃ pūrvasaṃsāravṛttiṣu || 18 ||

Sri Vasishtha said: Through contact with scripture and good people, and through the practice of dispassion, when disregard has grown for one's former habits of worldly life,

श्री वसिष्ठ ने कहा: शास्त्रों और अच्छे लोगों के साथ के जुड़ाव से, और वैराग्य के अभ्यास से, जब पुराने सांसारिक आदतों के प्रति अनासक्ति पैदा हो जाती है,

5.78.19

यथाभिवाञ्छितध्यानाच्चिरमेकतयोदितात् । एकतत्त्वघनाभ्यासात्प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ १९ ॥

yathābhivāñchitadhyānācchiramekatayoditāt | ekatattvaghanābhyāsātprāṇaspondo niruddhyate || 19 ||

From meditating on one's chosen object until it becomes, over a long time, a single unbroken state, from this intense practice of dwelling on one single reality, the vibration of prana is checked.

अपनी चुनी हुई वस्तु का लंबे समय तक ध्यान करते-करते जब वह लगातार एक ही जैसी बनी रहती है, इस तरह एक ही सच्चाई पर गहरा अभ्यास करने से प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.20

पूरकादिनिजायामादृढाभ्यासादखेदजात्। एकान्तध्यानसंयोगात्प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २० ॥

pūrakādinijāyāmādṛḍhābhyāsādakhedajāt | ekāntadhyānasaṃyogātprāṇaspondo niruddhyate || 20 ||

From the steady, effortless practice of controlling the breath, beginning with inhalation, and from joining this with one-pointed meditation, the vibration of prana is checked.

साँस को अंदर खींचने आदि के अपने ठीक नियंत्रण का दृढ़ता से और बिना थकान के अभ्यास करने से, और इसे एकाग्र ध्यान के साथ जोड़ने से, प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.21

ओंकारोच्चारणप्रान्तशब्दतत्त्वानुभावनात् सुषुप्ते संविदो जाते प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २१ ॥

oṃkāroccāraṇaprāntaśabdatattvānubhāvanāt suṣupte saṃvido jāte prāṇaspando nirudhyate || 21 ||

From dwelling on the true nature of sound at the point where the chanting of Om fades into silence, when an awareness like deep, dreamless sleep arises, the vibration of prana is checked.

ॐ का उच्चारण करते-करते जब वह ध्वनि खत्म होने की कगार पर पहुँचती है, वहाँ ध्वनि की असली प्रकृति में डूब जाने से, और जब गहरी नींद जैसा बोध जाग उठता है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.22

रेचके नूनमभ्यस्ते प्राणे स्फारे खमागते न स्पृशत्यङ्गरन्ध्राणि प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २२ ॥

recake nūnamabhyaste prāṇe sphāre khamāgate na spṛśatyangarandhrāṇi prāṇaspando nirudhyate || 22 ||

When exhalation is well mastered, and prana, spreading wide, passes into space without touching the body's openings again, the vibration of prana is checked.

जब साँस बाहर छोड़ना अच्छी तरह सध जाता है, और फैला हुआ प्राण आकाश में जाकर शरीर के छिद्रों को फिर नहीं छूता, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.23

पूरके नूनमभ्यस्ते पूरादिरिघनस्थिते प्राणे प्रशान्तसंचारे प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २३ ॥

pūrake nūnamabhyaste pūrādgirighanasthe prāṇe praśāntasaṃcāre prāṇaspando nirudhyate || 23 ||

When inhalation is well mastered, and prana, filled in, becomes as steady and solid as a mountain, moving in complete calm, the vibration of prana is checked.

जब साँस को अंदर भरना अच्छी तरह सध जाता है, और भरा हुआ प्राण पहाड़ की तरह स्थिर और ठोस होकर पूरी शांति से चलता है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.24

कुम्भके कुम्भवत्कालमनन्तं परितिष्ठति अभ्यासात्स्तम्भिते प्राणे प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २४ ॥

kumbhake kumbhavatkālamanantaṃ paritiṣṭhati abhyāsātstambhite prāṇe prāṇaspando nirudhyate || 24 ||

In breath retention, remaining still like a sealed pot for what feels like endless time, when, through practice, prana is made completely motionless, the vibration of prana is checked.

साँस को रोकने में, एक बंद घड़े की तरह अनंत समय तक स्थिर रहते हुए, जब अभ्यास से प्राण को पूरी तरह स्थिर कर दिया जाता है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.25

तालुमूलगतां यत्नाज्जिह्वयाक्रम्य घण्टिकाम् ऊर्ध्वरन्ध्रगते प्राणे प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २५ ॥

tālumūlagatāṃ yatnājjihvayākramya ghaṇṭikām ūrdhvarandhragate prāṇe prāṇaspando niruddhyate || 25 ||

By deliberately pressing the tongue against the uvula, the little bell of flesh at the root of the palate, and so directing prana into the upper passage, the vibration of prana is checked.

जीभ से जानबूझकर तालू की जड़ में लटकती छोटी घंटी जैसी बनावट को दबाकर, और इस तरह प्राण को ऊपर के रास्ते में ले जाकर, प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.26

समस्तकलनोन्मुक्ते न किंचिन्नामसूक्ष्मखे । ध्यानात्संविदि लीनायां प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २६ ॥

samastakalanonmukte na kiṃcinnāmasūkṣmakhe | dhyānātsaṃvidi līnāyāṃ prāṇaspando niruddhyate || 26 ||

When, through meditation, awareness dissolves into that subtle emptiness called nothing at all, free of every thought and construct, the vibration of prana is checked.

जब ध्यान के द्वारा बोध उस सूक्ष्म खालीपन में घुल जाता है, जिसे कुछ भी नहीं कहा जाता है, और जो हर विचार और कल्पना से मुक्त है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.27

द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलाम्बरे । संविद्दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २७ ॥

dvādaśāṅgulaparyante nāsāgre vimalāmbare | saṃviddṛśi praśāmyantyāṃ prāṇaspando niruddhyate || 27 ||

When the seeing awareness, fixed on the clear space twelve finger-widths out from the tip of the nose, becomes completely calm, the vibration of prana is checked.

जब बोध की दृष्टि नाक की नोक से बारह अंगुल दूर तक फैले साफ आकाश पर टिककर पूरी तरह शांत हो जाती है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.28

अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेण तालूर्ध्वं द्वादशान्तगे । प्राणे गलितसंवृत्ते प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २८ ॥

abhyāsādūrdhvarandhreṇa tālūrdhvaṃ dvādaśāntage | prāṇe galitasanvṛtte prāṇaspando niruddhyate || 28 ||

Through practice, when prana, moving by the upper passage above the palate to the point twelve finger-widths above the head, dissolves and is drawn fully within, the vibration of prana is checked.

अभ्यास से जब प्राण तालू के ऊपर के मार्ग से होते हुए सिर के ऊपर बारह अंगुल दूर के बिंदु तक पहुँचकर घुल जाता है और पूरी तरह अंदर समा जाता है, तब प्राण का हिलना रुक जाता है।

5.78.29

भ्रूमध्ये तारकालोकशान्तावन्तमुपागते । चेतने केतने बुद्धे प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २९ ॥

bhrūmadhye tārakālokśāntāvantamupāgate | cetane ketane buddhe prāṇaspando niruddhyate || 29 ||

Between the eyebrows, when the inner starlight grows still and fades to its end, and the seat of awareness is fully known, the throb of the breath comes to a stop.

भौंहों के बीच जब भीतर दिखने वाली तारों जैसी रोशनी शांत होकर पूरी तरह मिट जाती है, और चेतना का घर पूरी तरह जान लिया जाता है, तब सांस का स्पंदन थम जाता है।

5.78.30

झटित्येव यदुद्भूतं ज्ञानं तस्मिन्दृढाश्रिते । असंश्लिष्टविकल्पांशे प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ ३० ॥

jhaṭityeva yadudbhūtaṃ jñānaṃ tasmindṛḍhāśrite | asaṃśliṣṭavikalpāṃśe prāṇaspando niruddhyate || 30 ||

The awareness that springs up in an instant — when a person stays firmly fixed in it, in the part that no thought clings to, the throb of the breath comes to a stop.

जो समझ एक ही पल में अचानक उठती है, जब कोई उसी में मजबूती से टिक जाता है, उस हिस्से में जहां कोई विचार नहीं चिपकता, तब सांस का स्पंदन थम जाता है।

5.78.31

चिरं कालं हृते कान्तव्योमसंवेदनान्मुने अवासनान्मनोध्यानात्प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ ३१ ॥

ciram kālam hṛte kāntavyomasanvedanānmunē avāsanānmanodhyānātprāṇaspando nirudhyate || 31 ||

O sage, when for a long time the heart holds the awareness of that lovely emptiness, and the mind, free of all desire, stays absorbed in that meditation, the throb of the breath comes to a stop.

हे मुनि, जब हृदय बहुत देर तक उस सुंदर शून्य की अनुभूति में डूबा रहता है, और मन बिना किसी इच्छा के उसी ध्यान में लगा रहता है, तब सांस का स्पंदन थम जाता है।

5.78.32

श्रीराम उवाच ब्रह्मन् जगति भूतानां हृदयं तत्किमुच्यते इदं सर्वं महादर्शे यस्मिंस्तत्प्रतिबिम्बति ॥ ३२ ॥

śrīrāma uvāca brahman jagati bhūtānām hṛdayam tatkimucyate idam sarvam mahādarśe yasminstapratibimbati || 32 ||

Sri Rama said: Brahmin, in this world, what is it that is called the heart of living beings — the great mirror in which all of this is reflected?

श्रीराम ने कहा: हे ब्राह्मण, इस संसार में जीवों का हृदय किसे कहा जाता है — वह बड़ा दर्पण जिसमें यह सब कुछ झलकता है?

5.78.33

श्रीवसिष्ठ उवाच साधो जगति भूतानां हृदयं द्विविधं स्मृतम् उपादेयं च हेयं च विभागोऽयं तयोः शृणु ॥ ३३ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca sādho jagati bhūtānām hṛdayam dvividham smṛtam upādeyam ca heyaṃ ca vibhāgo'yam tayoḥ śṛṇu || 33 ||

Sri Vasishtha said: Good man, in this world the heart of living beings is said to be of two kinds — one to be kept and one to be given up. Listen now to how the two differ.

श्रीवसिष्ठ ने कहा: हे साधु, इस संसार में जीवों का हृदय दो तरह का बताया गया है — एक जिसे अपनाना है और एक जिसे छोड़ना है। अब सुनो इन दोनों में क्या फर्क है।

5.78.34

इयत्तया परिच्छिन्ने देहे यद्वक्षसोऽन्तरम् हेयं तद्धृदयं विद्धि तनावेकतटे स्थितम् ॥ ३४ ॥

iyattayā paricchinne dehe yadvakṣaso'ntaram heyaṃ taddhṛdayam viddhi tanāvekatate sthitam || 34 ||

In the body, which has a fixed size and shape, the hollow space inside the chest — know this as the heart that is to be given up, sitting at just one place in the body.

जो शरीर एक तय नाप और आकार में बंधा है, उसकी छाती के भीतर का खाली हिस्सा — इसी को वह हृदय समझो जिसे छोड़ना है, जो शरीर में बस एक जगह टिका रहता है।

5.78.35

संविन्मात्रं तु हृदयमुपादेयं स्थितं स्मृतम् तदन्तरे च बाह्ये च न च बाह्ये न चान्तरे ॥ ३५ ॥

saṃvinmātram tu hṛdayamupādeyam sthitam smṛtam tadantare ca bāhye ca na ca bāhye na cāntare || 35 ||

But the heart that is pure awareness alone is the one to be kept. It stands both inside and outside, and yet it is neither outside nor inside.

पर जो हृदय केवल शुद्ध चेतना है, वही अपनाने योग्य है। वह भीतर भी है और बाहर भी, फिर भी न बाहर है, न भीतर।

5.78.36

तत्तु प्रधानं हृदयं तत्रेदं समवस्थितम् । तदादर्शः पदार्थानां तत्कोशः सर्वसंपदाम् ॥ ३६ ॥

tattu pradhānaṃ hṛdayaṃ tatredaṃ samavasthitam | tadādarśaḥ padārthānāṃ tatkośaḥ sarvasaṃpadām || 36 ||

That is the true heart, and everything rests within it. It is the mirror of all things, the treasure-house of every kind of riches.

वही असली हृदय है, और सब कुछ उसी में टिका है। वह हर चीज़ का दर्पण है, हर तरह की संपत्ति का खज़ाना है।

5.78.37

सर्वेषामेव जन्तूनां संविद्धृदयमुच्यते । न देहावयवैकांशो जडजीर्णोपलोपमः ॥ ३७ ॥

sarveṣāmeva jantūnāṃ saṃviddhṛdayamucyate | na dehāvayavaikāṃśo jaḍajīrṇopalopamaḥ || 37 ||

For every living being, it is consciousness that is called the heart — not one part among the body's limbs, no better than an old worn-out stone.

हर जीव के लिए, चेतना को ही हृदय कहा जाता है — यह शरीर के किसी अंग का हिस्सा नहीं है, जो एक बेजान, घिसे-पिटे पत्थर जैसा हो।

5.78.38

तस्मात्संविन्मये शुद्धे हृदये हृतवासनः । बलान्नियोजिते चित्ते प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ३८ ॥

tasmātsaṃvinmaye śuddhe hṛdaye hṛtavāsanaḥ | balānniyojite citte prāṇaspando nirudhyate || 38 ||

So, when a person's inner impressions are stripped away and the mind is firmly fixed in the pure heart that is consciousness itself, the throb of the breath comes to a stop.

इसलिए जब व्यक्ति की भीतरी वासनाएं मिट जाती हैं और मन को ज़बरदस्ती उसी शुद्ध हृदय में, जो चेतना ही है, टिका दिया जाता है, तब सांस का स्पंदन थम जाता है।

5.78.39

एभिः क्रमैस्तथान्यैश्च नानासंकल्पकल्पितैः । नानादेशिकवक्रस्थैः प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ३९ ॥

ebhiḥ kramaistathānyaiśca nānāsaṃkalpakalpitaiḥ | nānādeśikavakrasthaiḥ prāṇaspando nirudhyate || 39 ||

By these ways, and other ones too, shaped by many different intentions and found at the various bends and turns spread through the body, the throb of the breath is stopped.

इन तरीकों से, और इनके अलावा भी कई और तरीकों से, जो अलग-अलग संकल्पों से बने हैं और शरीर में अलग-अलग जगह की घुमावदार नसों में मौजूद हैं, सांस का स्पंदन रुक जाता है।

5.78.40

अभ्यासेन निराबाधमेतास्ता योगयुक्तयः । उपायतामुपायान्ति भव्यस्य भवभेदने ॥ ४० ॥

abhyāsena nirābādhametāstā yogayuktayaḥ | upāyatāmupāyānti bhavyasya bhavabhedane || 40 ||

Through practice, free of any hindrance, all these yogic methods become working means for a worthy person to break through worldly existence.

अभ्यास के ज़रिए, बिना किसी रुकावट के, ये सारी योग-विधियां एक योग्य व्यक्ति के लिए संसार को तोड़ने का असरदार साधन बन जाती हैं।

5.78.41

अभ्यासाद्दृढतां यातो वैराग्यपरिलाञ्छितः । यथावासनमायामः प्राणानां सफलः स्मृतः ॥ ४१ ॥

abhyāsāddṛḍhatāṃ yāto vairāgyaparilāñchitaḥ | yathāvāsanamāyāmaḥ prāṇānāṃ saphalaḥ smṛtaḥ || 41 ||

When it has grown firm through practice and is marked by true dispassion, the control of the breaths, carried out according to one's own inner leanings, is said to bear fruit.

जब अभ्यास से यह मज़बूत हो जाए और सच्चे वैराग्य से जुड़ा हो, तो अपनी भीतरी प्रवृत्ति के अनुसार किया गया प्राणों का नियंत्रण फलदायी माना जाता है।

5.78.42

भ्रूनासातालुसंस्थासु द्वादशाङ्गुलिकोटिषु । अभ्यासाच्छाम्यति प्राणो दूरे गिरिनदी यथा ॥ ४२ ॥

bhrūnāsātālusaṃsthāsu dvādaśāṅgulikoṭiṣu | abhyāsācchāmyati prāṇo dūre girinadī yathā || 42 ||

At the points twelve finger-widths away, resting at the eyebrows, the nose, and the palate — through practice the breath grows calm, the way a mountain river grows quiet far away.

भौंहों, नाक और तालू पर स्थित उन जगहों पर, जो बारह अंगुल दूर हैं — अभ्यास से सांस वैसे ही शांत हो जाती है, जैसे पहाड़ी नदी दूर जाकर शांत हो जाती है।

5.78.43

भूयोभूयश्चिराभ्यासाज्जिह्वाप्रान्तेन तालुनि । घण्टिका स्पृश्यते प्राणो येनोच्चैर्निवहत्यलम् ॥ ४३ ॥

bhūyobhūyaścirābhyāsājjihvāprāntena tāluni | ghaṇṭikā spṛśyate prāṇo yenoccairnivahaty alam || 43 ||

Again and again, through long practice, the tip of the tongue touches the little bell at the back of the palate, and by this the breath is made to flow strongly upward.

बार-बार, लंबे अभ्यास से, जीभ की नोक तालू के पीछे की छोटी घंटी को छूती है, और इससे सांस ज़ोर से ऊपर की ओर बहने लगती है।

5.78.44

विकल्पबहुलास्त्वेते स्वाभ्यासेन समाधयः । परमोपशमायाशु संप्रयान्त्यविकल्पताम् ॥ ४४ ॥

vikalpabahulāstvetesvābhyāsena samādhayaḥ | paramopaśamāyāśu saṃprayāntyavikalpatām || 44 ||

These states of deep absorption, though at first full of many thoughts, quickly become free of all thought through one's own practice, for the sake of the highest peace.

ये गहरी समाधि की अवस्थाएं, भले ही शुरू में कई विचारों से भरी हों, अपने ही अभ्यास से जल्दी ही सब विचारों से मुक्त हो जाती हैं, ताकि सबसे बड़ी शांति मिल सके।

5.78.45

आत्मारामो वीतशोको भवत्यन्तःसुखः पुमान्। अभ्यासादेव नान्यस्मात्तस्मादभ्यासवान्भव ॥ ४५ ॥

ātmārāmo vītaśoko bhavatyantaḥsukhaḥ pumān | abhyāsādeva nānyasmāttasmādabhyāsavānbhava || 45 ||

A person becomes one who rejoices in the self, free of sorrow, happy within — only through practice, and by nothing else. So take up practice.

व्यक्ति आत्मा में आनंद लेने वाला, दुख से मुक्त, भीतर से सुखी — केवल अभ्यास से बनता है, किसी और चीज़ से नहीं। इसलिए अभ्यास करो।

5.78.46

अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते। मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ॥ ४६ ॥

abhyāsena parispande prāṇānāṃ kṣayamāgate | manaḥ praśamamāyāti nirvāṇamavaśiṣyate || 46 ||

Through practice, when the movement of the breaths comes to an end, the mind settles into stillness, and what remains is liberation.

अभ्यास से जब प्राणों की हलचल खत्म हो जाती है, तो मन शांत हो जाता है, और जो बचता है वह मुक्ति है।

5.78.47

वासनावलितं जन्म मोक्षं निर्वासनं मनः। प्राणं च राम गृह्णाति यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४७ ॥

vāsanāvalitaṃ janma mokṣaṃ nirvāsanaṃ manaḥ | prāṇaṃ ca rāma gṛhṇāti yathecchasi tathā kuru || 47 ||

Birth is what is bound up with desire; liberation is a mind free of desire — and Rama, that same freedom takes hold of the breath too. Do as you wish.

जन्म वह है जो इच्छा से बंधा है; मुक्ति वह मन है जो इच्छा से मुक्त है — और हे राम, वही मुक्ति सांस को भी अपने वश में कर लेती है। जैसा चाहो वैसा करो।

5.78.48

प्राणस्पन्दो मनोरूपं तस्मात्संसृतिविभ्रमः। तस्मिन्नेव शमं याते दीयते संसृतिज्वरः ॥ ४८ ॥

prāṇaspando manorūpaṃ tasmātsaṃsṛtivibhramaḥ | tasmineva śamaṃ yāte dīyate saṃsṛtijvaraḥ || 48 ||

The throb of the breath is simply a form the mind takes; from it comes the whirl of worldly life. When that alone comes to rest, the fever of worldly life is ended.

सांस का स्पंदन मन का ही एक रूप है; उसी से संसार का भ्रम पैदा होता है। जब वह अकेला ही शांत हो जाता है, तो संसार का बुखार खत्म हो जाता है।

5.78.49

विकल्पांशक्षयाज्जन्तोः पदं तदवशिष्यते। यतो वाचो निवर्तन्ते समस्तकलनान्विताः ॥ ४९ ॥

vikalpāṃśakṣayājjantoḥ padaṃ tadavaśiṣyate | yato vāco nivartante samastakalanānvitāḥ || 49 ||

When a creature's thought-constructs are worn away, only that one state remains — the state from which words, with all they try to grasp, turn back and cannot reach.

जब जीव के सारे विचार घिसकर मिट जाते हैं, तो बस एक ही अवस्था बचती है — वह अवस्था जहां से शब्द, अपनी पूरी समझ के साथ भी, लौट आते हैं और वहां तक नहीं पहुंच पाते।

5.78.50

यत्र सर्वं यतः सर्वे यत्सर्वं सर्वतश्च यत्। यत्र नेदं यतो नेदं यन्नेदं नेदृशं जगत्॥ ५०॥

yatra sarvaṃ yataḥ sarve yatsarvaṃ sarvataśca yat | yatra nedaṃ yato nedaṃ yannedaṃ nedṛśaṃ jagat || 50 ||

It is the place where everything exists, the source everything comes from, the thing that is everything, and the thing present in everything everywhere. It is also where this world is not, the source this world does not come from, the thing this world is not — this world is nothing like it.

वह वह जगह है जहां सब कुछ है, वह स्रोत है जहां से सब कुछ आता है, वह स्वयं सब कुछ है, और हर जगह मौजूद है। वह वह भी है जहां यह संसार नहीं है, जहां से यह संसार नहीं आता, जो यह संसार नहीं है — यह संसार उसके जैसा बिलकुल नहीं है।

5.78.51

विनाशित्वाद्विकल्पत्वाद्गुणित्वान्निर्गुणात्मनः। यस्य नो सदृशो दृष्टो दृष्टान्तः कश्चिदेव हि॥ ५१॥

vināśitvādvikalpatvādguṇitvān nirguṇātmanaḥ | yasya no sadṛśo dṛṣṭo dṛṣṭāntaḥ kaścideva hi || 51 ||

Because everything else perishes, is caught up in thought, and carries qualities, none of it can match the one whose own nature has no qualities — for this, truly, no fitting comparison has ever been found.

क्योंकि बाकी सब कुछ नाश होने वाला है, विचारों में उलझा है, और गुणों से भरा है, इसलिए उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता जिसका अपना स्वभाव निर्गुण है — इसके लिए सच में आज तक कोई सही उदाहरण नहीं मिला।

5.78.52

स्वादनी सर्वशालीनां दीपिका सर्वतेजसाम्। कलना सर्वकामानामन्तश्चिच्चन्द्रिकोदिता॥ ५२॥

svādanī sarvaśālīnāṃ dīpikā sarvatejasām | kalanā sarvakāmānāmantaścicchandrikoditā || 52 ||

It is the flavor in every grain of rice, the light in every brightness, the fulfillment of every desire — the moonlight of consciousness risen within.

वह हर चावल के दाने का स्वाद है, हर चमक की रोशनी है, हर इच्छा की पूर्ति है — भीतर उगी चेतना की चांदनी।

5.78.53

यस्मात्कल्पतरोर्बह्व्यः संसारफलपङ्क्तयः। अनारतं बहुरसा जायन्ते च पतन्ति च॥ ५३॥

yasmātkalpatarorbahvyaḥ saṃsāraphalapaṅktayaḥ | anāratam bahurasā jāyante ca patanti ca || 53 ||

From this wishing-tree come endless rows of the fruits of worldly life, rich with every flavor, forever rising up and falling away.

इसी कल्पवृक्ष से संसार के फलों की अनगिनत कतारें निकलती हैं, हर तरह के रस से भरी हुई, जो लगातार उगती और गिरती रहती हैं।

5.78.54

तत्पदं सर्वसीमान्तमवलम्ब्य महामतिः। यः स्थितः स्थिरधीस्तज्ज्ञः स जीवन्मुक्तउच्यते॥ ५४॥

tatpadaṃ sarvasīmāntamavalambya mahāmatiḥ | yaḥ sthitaḥ sthiradhīstajjñaḥ sa jīvanmuktaucyate || 54 ||

The wise person who takes hold of this state, the outermost limit of everything, and stands firm in it with a steady mind, truly knowing it — that person is called free while still alive.

जो बुद्धिमान व्यक्ति इस अवस्था को, जो हर चीज़ की आखिरी सीमा है, पकड़कर स्थिर मन से उसी में टिक जाता है और उसे सच में जान लेता है — वही व्यक्ति जीवनमुक्त कहलाता है।

5.78.55

विगतसर्वसमीहितकौतुकः समुपशान्तहिताहितकल्पनः । सकलसंव्यवहारसमाशयो भवति मुक्तमनाः पुरुषोत्तमः ॥ ५५ ॥

vigatasarvasamīhitakautukaḥ samupaśāntahitāhitakalpanaḥ | sakalasaṃvyavahārasamāśayo bhavati muktamanāḥ puruṣottamaḥ || 55 ||

The finest of men, with a mind set free, loses all eagerness for anything he might pursue, lets go completely of every idea of what helps and what harms, and stays even-minded through all his dealings.

सबसे श्रेष्ठ पुरुष, जिसका मन मुक्त हो चुका है, किसी भी चीज़ को पाने की उत्सुकता खो देता है, अच्छे-बुरे के हर खयाल को पूरी तरह छोड़ देता है, और अपने सारे व्यवहार में समान मन बनाए रखता है।

Chapter 79

5.79.1

श्रीराम उवाच । योगयुक्तस्य चित्तस्य शम एव निरूपितः । सम्यग्ज्ञानमिदानीं मे कथयानुग्रहात्प्रभो ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | yogayuktasya cittasya śama eva nirūpitaḥ | samyagjñānamidānīṃ me kathayānugrahātprabho || 1 ||

Sri Rama said: You have told me about the calm of a mind joined to yoga. Now, out of kindness, my lord, tell me true and complete knowledge.

श्रीराम ने कहा: आपने योग से जुड़े मन की शांति के बारे में बताया। अब कृपा करके, हे प्रभु, मुझे सच्चा और पूरा ज्ञान बताइए।

5.79.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । अनाद्यन्तावभासात्मा परमात्मेह विद्यते । इत्येको निश्चयः स्फारः सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | anādyantāvabhāsātmā paramātmeha vidyate | ityeko niścayaḥ sphāraḥ samyagjñānaṃ vidurbudhāḥ || 2 ||

Sri Vasishtha said: Here there exists a supreme self whose shining light has no beginning and no end. The wise call this one vast certainty true knowledge.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यहाँ एक परमात्मा है, जिसका प्रकाश न कभी शुरू हुआ, न कभी खत्म होगा। बुद्धिमान लोग इस एक विशाल निश्चय को ही सच्चा ज्ञान कहते हैं।

5.79.3

इमा घटपटाकाराः पदार्थशतपङ्क्तयः । आत्मैव नान्यदस्तीति निश्चयः सम्यगीक्षणम् ॥ ३ ॥

imā ghaṭapaṭākārāḥ padārthaśatapaṅktayaḥ | ātmaiva nānyadastīti niścayaḥ samyagīkṣaṇam || 3 ||

These shapes like a pot and a cloth, these rows of hundreds of things, are here. The certainty that the self alone exists, and nothing else, is true seeing.

घड़े और कपड़े जैसी ये आकृतियाँ, सैकड़ों चीज़ों की ये पंक्तियाँ, यहाँ हैं। यह निश्चय कि बस आत्मा ही है, और कुछ नहीं, यही सच्ची दृष्टि है।

5.79.4

असम्यग्वेदनाज्जन्म मोक्षः सम्यगवेक्षणात् । असम्यग्वेदनाद्रज्जुः सर्पो नो सम्यगीक्षणात् ॥ ४ ॥

asamyagvedanājjanma mokṣaḥ samyagavekṣaṇāt | asamyagvedanādrajjuḥ sarpo no samyagīkṣaṇāt || 4 ||

Wrong knowing brings birth; right seeing brings freedom. Wrong knowing turns a rope into a snake; right seeing does not.

गलत जानना जन्म लाता है, सही देखना मुक्ति लाता है। गलत जानने से रस्सी साँप बन जाती है, सही देखने से नहीं बनती।

5.79.5

संकल्पांशविनिर्मुक्ता संवित्संवेद्यवर्जिता । संवित्त्याभिसमाख्याता मुक्तावस्तीह नेतरत् ॥ ५ ॥

saṃkalpāṃśavinirmuktā saṃvitsaṃvedyavarjitā | saṃvittyābhisamākhyātā muktāvastīha netarat || 5 ||

That awareness is free of every trace of thought, free of any split between the knower and the known. It is simply called awareness. In freedom, only this exists here; nothing else.

वह चेतना हर तरह की कल्पना से मुक्त है, जानने वाले और जाने जाने वाले के भेद से भी मुक्त है। उसे बस चेतना ही कहा जाता है। मुक्ति में यहाँ बस यही है, और कुछ नहीं।

5.79.6

सा शुद्धरूपा विज्ञाता परमात्मेति कथ्यते । शुद्धा त्वशुद्धरूपान्तरविद्येत्युच्यते बुधैः ॥ ६ ॥

sā śuddharūpā vijñātā paramātmeti kathyate | śuddhā tvaśuddharūpāntaravidyetyucyate budhaiḥ || 6 ||

That same awareness, known in its pure form, is called the supreme self. But the wise call it ignorance when it takes another, impure form.

वही चेतना, जब अपने शुद्ध रूप में जानी जाती है, परमात्मा कहलाती है। पर बुद्धिमान लोग उसी को, जब वह किसी दूसरे अशुद्ध रूप में हो, अज्ञान कहते हैं।

5.79.7

संवित्तिरेव संवेद्यं नानयोर्द्वित्वकल्पना । चिनोत्यात्मानमात्मैव रामैवं नान्यदस्ति हि ॥ ७ ॥

saṃvittireva saṃvedyaṃ nānayordvitvakalpanā | cinotyātmānamātmaiva rāmaivaṃ nānyadasti hi || 7 ||

Awareness alone is the thing known; there is no true difference between the two. The self alone knows the self. Rama, nothing else exists at all.

चेतना ही जानी गई वस्तु है; इन दोनों में कोई सच्चा भेद नहीं है। आत्मा ही आत्मा को जानती है। हे राम, सचमुच और कुछ भी नहीं है।

5.79.8

यथाभूतात्मदर्शित्वमेतावद्भुवनत्रये । यदात्मैव जगत्सर्वमिति निश्चित्य पूर्णता ॥ ८ ॥

yathābhūtātmadarśitvametāvadbhuvanatraye | yadātmaiva jagatsarvamiti niścitya pūrṇatā || 8 ||

In the three worlds, seeing the self as it truly is means only this: knowing for certain that the self alone is the whole world. That is fullness.

तीनों लोकों में आत्मा को जैसा वह सचमुच है वैसा देखने का मतलब बस इतना है: यह निश्चय कर लेना कि आत्मा ही पूरा जगत है। यही पूर्णता है।

5.79.9

सर्वमात्मैव कौ दिष्टौ भावाभावौ क्व च स्थितौ । क्व बन्धमोक्षकलने किमन्यद्राम शोच्यते ॥ ९ ॥

sarvamātmaiva kau diṣṭau bhāvābhāvau kva ca sthitau | kva bandhamokṣakalane kimanyadrāma śocyate || 9 ||

Everything is the self alone. Then where are these two, existence and non-existence? Where do they stand? Where is bondage, where is freedom? Rama, what else is there left to grieve for?

सब कुछ बस आत्मा ही है। फिर होना और न होना, ये दोनों कहाँ हैं? कहाँ टिके हैं? बंधन कहाँ है, मुक्ति कहाँ है? हे राम, फिर और किस बात का शोक करें?

5.79.10

न चेत्यमन्यन्नो चित्तं ब्रह्मैवेदं विजृम्भते । सर्वमेकं परं व्योम को मोक्षः कस्य बन्धता ॥ १० ॥

na cetyamanyanno cittaṃ brahmaivedaṃ vijṛmbhate | sarvamekaṃ paraṃ vyoma ko mokṣaḥ kasya bandhatā || 10 ||

There is nothing else to know, no separate mind at all. This is Brahman alone, spreading out as everything. All is one, the highest space. Then what is freedom, and whose is bondage?

जानने को और कुछ नहीं है, कोई अलग मन भी नहीं है। यह बस ब्रह्म ही है जो सब कुछ बनकर फैल रहा है। सब कुछ एक है, वही परम आकाश है। फिर मुक्ति क्या, और बंधन किसका?

5.79.11

ब्रह्मेदं बृंहिताकारं वृहद्बृहदवस्थितम्। ज्ञानादस्तमितद्वित्वं भवात्मैव त्वमात्मना ॥ ११ ॥

brahmedaṃ bṛṃhitākāraṃ vṛhadbṛhadavasthitam | jñānādastamitadvitvaṃ bhavātmaiva tvamātmanā || 11 ||

This same Brahman is vast in form; it stands ever greater and greater. Through knowledge, the sense of two disappears. You, yourself, become the self alone, by your own self.

यही ब्रह्म विशाल रूप वाला है; यह लगातार और बड़ा, और बड़ा बना रहता है। ज्ञान से दो होने का भाव मिट जाता है। तुम खुद अपने आत्मा के सहारे बस आत्मा ही बन जाओ।

5.79.12

सम्यगालोकिते रूपे काष्ठपाषाणवाससाम्। मनागपि न भेदोऽस्ति क्वासि संकल्पनोन्मुखः ॥ १२ ॥

samyagālokite rūpe kāṣṭhapāṣaṇavāsasām | manāgapi na bhedo'sti kvāsi saṃkalponmukhaḥ || 12 ||

When the shape of wood, stone, and cloth is truly seen, there is not even the slightest difference between them. Then where are you, so eager to imagine things?

जब लकड़ी, पत्थर और कपड़े के रूप को सही तरह से देखा जाए, तो उनमें ज़रा भी फ़र्क़ नहीं है। फिर तुम कल्पना करने पर इतने उतावले क्यों हो?

5.79.13

आदावन्ते च संशान्तं स्वरूपमविनाशि यत्। वस्तु नामात्मनश्चैव तन्मयो भव राघव ॥ १३ ॥

ādāvante ca saṃśāntaṃ svarūpamavināśi yat | vastu nāmātmanaścaiva tanmayo bhava rāghava || 13 ||

That true nature which is at peace at the beginning and at the end, which is never destroyed, that reality belongs to the self alone. Raghava, become that.

जो असली स्वरूप शुरू में भी शांत है और अंत में भी शांत है, जो कभी नष्ट नहीं होता, वह सच्चाई आत्मा की अपनी है। हे राघव, तुम वही बन जाओ।

5.79.14

परं व्योमेदमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्। सुखदुःखक्रमः कुत्र विज्वरो भव राघव ॥ १४ ॥

paraṃ vyomeda makhilaṃ jagatsthāvarajaṅgamam | sukhaduḥkhakramaḥ kutra vijvaro bhava rāghava || 14 ||

This whole world, all that moves and all that does not move, is the highest space itself. Then where is pleasure, where is pain? Raghava, be free of fever.

यह पूरा जगत, जो कुछ चलता है और जो कुछ नहीं चलता, वह सब परम आकाश ही है। फिर सुख कहाँ है, दुख कहाँ है? हे राघव, बेचैनी छोड़ दो।

5.79.15

द्वैताद्वैतसमुद्भूतैर्जरामरणविभ्रमैः। स्फुरत्यात्मभिरात्मैव चित्रैरम्भ्विव वीचिभिः ॥ १५ ॥

dvaitādvaitasamudbhūtairjarāmaraṇavibhramaiḥ | sphuratyātmabhirātmaiva citrairambviva vīcibhiḥ || 15 ||

The self alone appears as countless selves, full of the confusions of old age and death, arising from both duality and oneness, the way water appears through its many different waves.

आत्मा ही अनगिनत आत्माओं के रूप में दिखती है, जो बुढ़ापे और मृत्यु के भ्रम से भरी हैं, और द्वैत तथा अद्वैत दोनों से पैदा हुई हैं, ठीक वैसे ही जैसे पानी अपनी कई अलग-अलग तरंगों के रूप में दिखता है।

5.79.16

शुद्धमात्मानमालिङ्ग्य नित्यमन्तस्थया धियायाः स्थितस्तं क आत्मेहं भोगा बन्धयितुं क्षमाः ॥ १६ ॥

śuddhamātmānamāliṅgya nityamantasthayā dhiyāyaḥ sthitastaṃ ka ātmehaṃ bhogā bandhayituṃ kṣamāḥ || 16 ||

One who always holds on to the pure self with a mind turned inward, what pleasures could ever bind that self?

जो व्यक्ति हमेशा अपने मन को भीतर की ओर रखते हुए शुद्ध आत्मा को थामे रहता है, कोई भी भोग उस आत्मा को कैसे बाँध सकते हैं?

5.79.17

कृतस्फारविचारस्य मनोभोगादयोऽरयःमनागपि न भिन्दन्ति शैलं मन्दानिला इव ॥ १७ ॥

kṛtasphāravicārasya manobhogādayo'rayaḥmanāgapi na bhindanti śailaṃ mandānilā iva || 17 ||

For one who has looked deeply and widely, enemies like the mind and its pleasures cannot pierce him even a little, just as gentle winds cannot break a mountain.

जिसने गहरा और व्यापक चिंतन किया है, उसके लिए मन और उसके भोग जैसे शत्रु उसे ज़रा भी नहीं छेद पाते, ठीक वैसे ही जैसे हल्की हवा किसी पहाड़ को नहीं तोड़ पाती।

5.79.18

अविचारिणमज्ञानं मूढमाशापरायणम्निगिरन्तीह दुःखानि बका मत्स्यमिवाजलम् ॥ १८ ॥

avicāriṇamajñānaṃ mūḍhamāśāparāyaṇamnigirantīha duḥkhāni bakā matsyamivājalam || 18 ||

Sorrows swallow the person who does not reflect, who is ignorant, foolish, and lives on hope alone, just as herons swallow a fish left stranded without water.

जो व्यक्ति कुछ नहीं सोचता, जो अज्ञानी है, मूर्ख है, और बस आशा के सहारे जीता है, उसे दुख यहाँ निगल जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे बगुले पानी के बिना पड़ी मछली को निगल जाते हैं।

5.79.19

जगदात्मैव सकलमविद्या नास्ति कुत्रचिदिति दृष्टिमवष्टभ्य सम्यग्रूपः स्थिरो भव ॥ १९ ॥

jagadātmaiva sakalamavidyā nāsti kutracidiiti dṛṣṭimavaṣṭabhya samyagrūpaḥ sthiro bhava || 19 ||

The whole world, entirely, is the self alone; ignorance exists nowhere. Hold firmly to this view, and stand steady in your true form.

पूरा जगत, पूरी तरह से, बस आत्मा ही है; अज्ञान कहीं भी नहीं है। इस दृष्टि को मज़बूती से थामे रखो, और अपने सच्चे रूप में स्थिर बने रहो।

5.79.20

नानात्वमस्ति कलनासु न वस्तुतोऽन्तर्नानाविधासु सरसीषु जलादि नान्यतित्येकनिश्चयमयः पुरुषो विमुक्त इत्युच्यते समवलोकितसम्यगर्थः ॥ २० ॥

nānātvamasti kalanāsu na vastuto'ntarnānāvidhāsu sarasīṣu jalādi nānyatityekaniścayamayaḥ puruṣo vimukta ityucyate samavalokitasamyagarthaḥ || 20 ||

Difference exists only in how things are perceived, not in reality, at their core, just as in many different lakes the water is nothing but the same water. The person whose mind rests in this one certainty, who has clearly seen the true meaning, is called free.

फ़र्क़ बस देखने-सोचने में है, असल में भीतर से नहीं, जैसे अलग-अलग कई तालाबों का पानी असल में एक ही पानी होता है, अलग नहीं। जिस व्यक्ति का मन बस इसी एक निश्चय में टिका है, जिसने सच्चा अर्थ साफ़-साफ़ देख लिया है, वही मुक्त कहलाता है।

Chapter 80

5.80.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इदमन्तः कलयतो भोगान्प्रति विवेकिनः । पुरःस्थितानपि सदा स्पृहैवाङ्ग न जायते ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | idamantaḥ kalayato bhogānprati vivekinaḥ | puraḥsthitānapi sadā spṛhaivāṅga na jāyate || 1 ||

Sri Vasishtha said: for the wise man who considers this deeply within himself, desire for pleasures never arises at all, dear one, even when those pleasures stand right in front of him.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जो समझदार इंसान अपने अंदर इस बात को अच्छी तरह समझ लेता है, उसके मन में भोगों की चाह कभी नहीं उठती, प्रिय, चाहे वे भोग सामने ही क्यों न खड़े हों।

5.80.2

चक्षुरालोकनायैव जीवस्तु सुखदुःखयोः । भारायैव बलीवर्दो भोक्ता द्रव्यस्य नायकः ॥ २ ॥

cakṣurālokanāyaiva jīvastu sukhaduḥkhayoḥ | bhārāyaiva balīvardo bhoktā dravyasya nāyakaḥ || 2 ||

The eye exists only to see. The living self exists only to feel pleasure and pain. The ox exists only to carry the load. It is the master who enjoys the goods.

आंख सिर्फ देखने के लिए है। जीव सिर्फ सुख और दुख भोगने के लिए है। बैल सिर्फ बोझ ढोने के लिए है। माल का मज़ा तो उसका मालिक ही लेता है।

5.80.3

नयने रूपनिर्मग्ने क्षोभः क इव देहिनः । गर्दभे पल्वले मग्ने कैव सेनापतेः क्षतिः ॥ ३ ॥

nayane rūpanirmagne kṣobhaḥ ka iva dehinaḥ | gardabhe palvale magne kaiva senāpateḥ kṣatiḥ || 3 ||

When the eye sinks itself into a shape, what real disturbance does that bring to the person who owns it? When a donkey sinks into a puddle of mud, what real harm does that do to the army's commander?

जब आंख किसी रूप में डूब जाती है, तो उससे उस इंसान को, जिसकी वह आंख है, सच में क्या तकलीफ होती है? जब गधा किसी दलदल में धंस जाता है, तो उससे सेनापति को सच में क्या नुकसान होता है?

5.80.4

रूपकर्दममेतन्मानयनास्वादयाधम । नश्यत्येतन्निमेषेण भवन्तमपि हिंसति ॥ ४ ॥

rūpakardamametanmānayanāsvādayādham | naśyatyetannimeṣeṇa bhavantamapi hiṃsati || 4 ||

This is nothing but mud made of shapes, so do not relish it, you lowly eye. It disappears in the blink of an eye, and it will hurt even you.

यह तो बस रूपों का कीचड़ है, इसलिए इसका मज़ा मत ले, ओ नीच आंख। यह पलक झपकते ही मिट जाता है, और यह तुझे भी चोट पहुंचाएगा।

5.80.5

येनैव संख्या क्रियते येनैवाऽस्वाऽनुगम्यते । तदीयैः कर्मभिः क्षिप्रं प्राज्ञः क्रूरो निबध्यते ॥ ५ ॥

yenaiva saṃkhyā kriyate yenaivā'svā'nugamyate | tadīyaiḥ karmabhiḥ kṣipraṃ prājñaḥ krūro nibadhyate || 5 ||

By this same power a person counts things, and by this same power he tastes them and runs after them. By his own actions, this clever man is quickly tied down and turned harsh.

जिससे इंसान गिनती करता है, और जिससे वह चीज़ों को चखता और उनके पीछे भागता है, उसी के अपने कामों से वह चतुर आदमी जल्दी ही बंध जाता है और कठोर बन जाता है।

5.80.6

उत्पन्नध्वंसि चापातमात्रहृद्यमसन्मयम् । रूपमाश्रय मा नेत्र विनाशायाविनाशिने ॥ ६ ॥

utpannadhvaṃsi cāpātamātrahṛdyamasanmayam | rūpamāśraya mā netra vināśāyāvināśine || 6 ||

O eye, do not cling to a shape. It arises only to be destroyed, it feels pleasant only for the first instant, and it is made of nothing real. You are undying, so do not walk into your own destruction.

ओ आंख, किसी रूप से मत चिपक। वह बनता ही मिटने के लिए है, वह सिर्फ पहले पल भर अच्छा लगता है, और वह किसी असली चीज़ का बना ही नहीं है। तू अमर है, इसलिए अपनी बरबादी की तरफ मत जा।

5.80.7

साक्षिवत्त्वं स्थितं नेत्र रूपमात्मनि तिष्ठति । आलोकं कालवशतस्त्वमेकं किं प्रतप्यसे ॥ ७ ॥

sākṣivattvaṃ sthitaṃ netra rūpamātmani tiṣṭhati | ālokaṃ kālavashatastvamekaṃ kiṃ pratapyase || 7 ||

O eye, you stand there only as a witness. The shape rests within itself. The seeing of it comes and goes only because of time, so why do you alone burn over it?

ओ आंख, तू तो बस एक गवाह की तरह खड़ी है। रूप अपने आप में ही टिका रहता है। उसे देख पाना सिर्फ समय के चलते होता है, तो फिर तू अकेली उसके लिए क्यों जलती है?

5.80.8

सलिलस्पन्दवद्दृष्टिः पिच्छिकेवाम्बरोत्थिता । सुजातिबन्धा स्फुरति तव चित्त किमागतम् ॥ ८ ॥

salilaspandavaddṛṣṭiḥ picchikevāmbarotthitā | sujātibandhā sphurati tava citta kimāgatam || 8 ||

Seeing is like the trembling of water, like a tuft of feathers risen into the sky. It flickers only according to its own nature. O mind, what has come over you?

देखना तो पानी की थरथराहट जैसा है, आसमान में उठे पंखों के गुच्छे जैसा है। यह अपने ही स्वभाव से चमकता-बुझता रहता है। ओ मन, तुझे क्या हो गया है?

5.80.9

कल्पाम्भसीव शफरी चित्ते स्फुरणधर्मिणि । स्वयं स्फुरत्यहंकारस्त्वमयं प्रोत्थितः कुतः ॥ ९ ॥

kalpāmbhasīva śapharī citte sphuraṇadharmiṇi | svayaṃ sphuratyahaṃkārastvamayaṃ protthitaḥ kutaḥ || 9 ||

Like a little fish darting in the flood waters at the end of an age, the sense of I flickers up all by itself within the mind, since the mind's own nature is to flicker. Where have you, risen up like this, come from?

जैसे प्रलय के पानी में एक छोटी मछली छटपटाती है, वैसे ही मन के अंदर अहंकार अपने आप उठता-गिरता रहता है, क्योंकि मन का स्वभाव ही चमकना-बुझना है। तू ऐसे उठकर कहां से आया है?

5.80.10

आलोकरूपयोर्नित्यं जडयोः स्फुरतोर्मिथः । आधाराधेययोश्चित्तं व्यर्थमाकुलता तव ॥ १० ॥

ālokarūpayor nityaṃ jaḍayoḥ sphurator mithaḥ | ādhārādheyayoś cittaṃ vyarthamākulatā tava || 10 ||

Light and shape are both always lifeless, only flickering against each other, one holding the other the way a container holds what is inside it. O mind, your confusion over them is for nothing.

रोशनी और रूप दोनों हमेशा निर्जीव हैं, बस एक-दूसरे के आगे चमकते-बुझते रहते हैं, एक दूसरे को उसी तरह थामे रहता है जैसे कोई बर्तन अपने अंदर की चीज़ को थामे रहता है। ओ मन, इन पर तेरा उलझना बेकार है।

5.80.11

रूपालोकमनस्काराः परस्परमसङ्गिनः । संपन्ना इव लक्ष्यन्ते वदनादर्शबिम्ववत् ॥ ११ ॥

rūpālokamanaskārāḥ parasparamasaṅginaḥ | sampannā iva lakṣyante vadanādarśabimbavat || 11 ||

Shape, light, and the mind's attention have no bond with each other at all, yet they look as if they have come together, like a face's likeness in a mirror.

रूप, रोशनी, और मन का ध्यान, इनका आपस में कोई नाता नहीं है, फिर भी ये ऐसे दिखते हैं जैसे एक साथ जुड़ गए हों, जैसे शीशे में चेहरे की परछाई दिखती है।

5.80.12

अज्ञानजन्तुना ह्येते श्लिष्टा जाता निरन्तराः । अज्ञाने ज्ञानगिलिते पृथक्तिष्ठन्त्यसन्मयाः ॥ १२ ॥

ajñānajantunā hyete śliṣṭā jātā nirantarāḥ | ajñāne jñānagilite pṛthaktīṣṭhantyasanmayāḥ || 12 ||

It is by the creature of ignorance that these three have become fused, seeming unbroken. But once ignorance is swallowed up by knowledge, they stand apart, shown to be made of nothing real.

यह अज्ञान के जीव के कारण ही है कि ये तीनों आपस में चिपक गए हैं और लगातार जुड़े हुए दिखते हैं। पर जब अज्ञान ज्ञान में निगल लिया जाता है, तो ये अलग-अलग खड़े हो जाते हैं, और असली नहीं बल्कि झूठे साबित होते हैं।

5.80.13

मनःकल्पनया ह्येते सुसंबद्धाः परस्परम् । रूपालोकमनस्कारा दारुणी जतुना यथा ॥ १३ ॥

manaḥkalpanayā hyete susaṃbaddhāḥ parasparam | rūpālokamanaskārā dāruṇī jatunā yathā || 13 ||

It is only by the mind's own imagining that shape, light, and attention are tied so tightly to each other, the way wood is joined by resin.

यह सिर्फ मन की अपनी कल्पना के कारण है कि रूप, रोशनी, और ध्यान इतनी मज़बूती से आपस में बंध जाते हैं, जैसे लकड़ी को लाख से जोड़ दिया जाता है।

5.80.14

स्वमनोमननं तन्तुर्मनोभ्यासेन यत्नतः । विचाराच्छेदमायाति च्छिन्नैवाज्ञानभावना ॥ १४ ॥

svamanomananaṃ tanturmānobhyāsena yatnataḥ | vicārācchēdamāyāti chchinnaivājñānabhāvanā || 14 ||

The thread is nothing but the mind thinking about itself, spun with effort by the mind's own habit. Careful inquiry cuts that thread, and once it is cut, the very feeling of ignorance is cut away with it.

यह धागा और कुछ नहीं, मन का अपने बारे में सोचते रहना है, जो मन की अपनी आदत से मेहनत के साथ बुना जाता है। गहरी छानबीन से यह धागा कट जाता है, और कटते ही अज्ञान का यह एहसास भी कट जाता है।

5.80.15

अज्ञानसंक्षयात्क्षीणे मनसीमे पुनर्मिथः । रूपालोकमनस्काराः संघट्टन्ते न केचन ॥ १५ ॥

ajñānasaṃkṣayātkṣīṇe manasīme punarmithaḥ | rūpālokamanaskārāḥ saṃghaṭṭante na kecana || 15 ||

Once ignorance is destroyed and the mind itself has grown weak, shape, light, and attention never again clash together.

जब अज्ञान नष्ट हो जाता है और मन खुद कमज़ोर पड़ जाता है, तो रूप, रोशनी, और ध्यान फिर कभी आपस में नहीं टकराते।

5.80.16

सर्वेषां चित्तमेवान्तरिन्द्रियाणां प्रबोधकम् । तदेव तस्मादुच्छेद्यं पिशाच इव मन्दिरात् ॥ १६ ॥

sarveṣāṃ cittamevāntarindriyāṇāṃ prabodhakam | tadeva tasmāducchēdyaṃ piśāca iva mandirāt || 16 ||

The mind alone is what wakes up all the senses inside the body. So it alone must be torn out, the way a ghost is driven out of a house.

मन ही वह चीज़ है जो शरीर के अंदर की सारी इंद्रियों को जगाता है। इसलिए इसे ही उखाड़ फेंकना चाहिए, जैसे किसी घर से भूत को भगाया जाता है।

5.80.17

चित्त वल्गसि मिथ्यैव दृष्टोऽन्तो भवतो मया । आद्यन्तयोः सुतुच्छं त्वं वर्तमाने विनश्यसि ॥ १७ ॥

citta valgasimithyaiva dṛṣṭo'nto bhavato mayā | ādyantayoḥ sutucchaṃ tvaṃ vartamāne vinśyasi || 17 ||

O mind, you strut about for nothing. I have already seen through you completely. You are worthless at your start and at your end, and you are dying even now, in this very moment.

ओ मन, तू यूं ही ऐंठ कर चलता है। मैंने तुझे पूरी तरह देख लिया है, तेरा अंत क्या है। तू अपनी शुरुआत में भी बेकार है और अपने अंत में भी, और तू अभी, इसी वक़्त, मिट रहा है।

5.80.18

मुधा पञ्चभिराकारैः किमन्तः परिवल्गसि । यस्त्वां स्वमिति जानाति तस्यैव परिवल्गसि ॥ १८ ॥

mudhā pañcabhirākāraiḥ kimantaḥ parivalgasī | yastvāṃ svamiti jānāti tasyaiva parivalgasī || 18 ||

Why do you leap about inside, for nothing, wearing five different shapes? You can only prance about in front of someone who thinks you are his own self.

तू पांच अलग-अलग रूप धरकर अंदर ही अंदर बेकार में क्यों उछलता-कूदता है? तू सिर्फ उसी के सामने उछल-कूद कर सकता है जो तुझे अपना समझता है।

5.80.19

त्वद्वल्गनं मे कुमनो न मनागपि तुष्टये । मायामनःस्पन्द इव व्यर्थं वृत्तिषु दह्यसे ॥ १९ ॥

tvadvālganaṃ me kumano na manāgapi tuṣṭaye | māyāmanaḥspanda iva vyarthaṃ vṛttiṣu dahyase || 19 ||

O wicked mind, your antics do not please me even a little. Like the trembling of a mind that illusion has made up, you burn yourself up for nothing in your own passing moods.

ओ दुष्ट मन, तेरी हरकतों से मुझे ज़रा भी खुशी नहीं मिलती। जैसे माया के बनाए हुए किसी मन की थरथराहट होती है, वैसे ही तू अपने ही बदलते भावों में बेकार जलता रहता है।

5.80.20

तिष्ठ वा गच्छ वा चित्त नासि मे न च जीवसि । प्रकृत्यासि मृतं नित्यं विचारात्सुमृतं स्मृतम् ॥ २० ॥

tiṣṭha vā gaccha vā citta nāsi me na ca jīvasi | prakṛtyāsi mṛtaṃ nityaṃ vicārātsumṛtaṃ smṛtam || 20 ||

Stay or go, mind. You are not mine, and you are not even alive. By your very nature you are always dead, and careful inquiry shows that you are truly, thoroughly dead.

मन, तू रुक या जा। तू मेरा नहीं है, और तू ज़िंदा भी नहीं है। तू अपने स्वभाव से हमेशा मरा हुआ है, और गहरी छानबीन से पता चलता है कि तू सच में पूरी तरह मरा हुआ है।

5.80.21

निस्तत्त्वं त्वं जडं भ्रान्तं शठं नित्यमृताकृते । मूढ एव त्वयाज्ञेन बाध्यो न प्रविचारवान् ॥ २१ ॥

nistattvaṃ tvaṃ jaḍaṃ bhrāntaṃ śaṭhaṃ nityamṛtākṛte | mūḍha eva tvayājñena bādhyo na pravicāravān || 21 ||

You have no substance in you. You are lifeless, confused, and deceitful, you whose very shape is forever dead. Only a fool without knowledge is troubled by you, never someone of clear discernment.

तुझमें कोई सार नहीं है। तू निर्जीव है, भरमाया हुआ है, और धोखेबाज़ है, तू जिसका रूप ही हमेशा के लिए मरा हुआ है। तुझसे सिर्फ वही मूर्ख परेशान होता है जिसे कुछ पता नहीं, जो साफ समझ रखने वाला है वह कभी परेशान नहीं होता।

5.80.22

वयमज्ञातवन्तस्त्वां मौर्ख्येणाशु मृतं भवत् । मृतमस्माकमद्यासि दीपानां तिमिरं यथा ॥ २२ ॥

vayamajñātavantastvaṃ maurkhyeṇāśu mṛtaṃ bhavat | mṛtamasmākamadyāsi dīpānāṃ timiraṃ yathā || 22 ||

Out of sheer foolishness, we failed to know that you were dead all along. But now, for us, you are dead, the way darkness is dead once the lamps are lit.

सिर्फ मूर्खता के कारण हम यह नहीं जान पाए कि तू पहले से ही मरा हुआ था। पर अब हमारे लिए तू मर चुका है, जैसे दीये जल जाने पर अंधेरा मर जाता है।

5.80.23

शठेन भवता दीर्घकालं देहगृहं मम । उपरुद्धमभूत्सर्व साधुसंसर्गवर्जितम् ॥ २३ ॥

śaṭhena bhavatā dīrghakālaṃ dehagṛhaṃ mama | uparuddhamabhūtsarva sādhusaṃsargavarjitam || 23 ||

For a long time, you, the deceitful one, kept the house of my body shut up completely, closed off from the company of good people.

बहुत लंबे समय तक, तूने, धोखेबाज़ ने, मेरे शरीर के इस घर को पूरी तरह बंद रखा, अच्छे लोगों की संगत से दूर।

5.80.24

जडे प्रेतसमाकारे गते त्वयि मनःशठे । सर्वसज्जनसंसेव्यमिदं देहगृहं मम ॥ २४ ॥

jaḍe preta-samākāre gate tvayi manaḥ-śaṭhe | sarvasajjana-saṃsevyamidaṃ dehagṛhaṃ mama || 24 ||

Now that you, the lifeless, deceitful mind, looking just like a corpse, have gone away, this house of my body can now be visited by every good person.

अब जब तू, यह निर्जीव, धोखेबाज़ मन, बिल्कुल लाश जैसा दिखने वाला, चला गया है, तो मेरे शरीर का यह घर अब हर अच्छे इंसान के आने-जाने के लिए खुला है।

5.80.25

पूर्वमेवासि नासीस्त्वं संप्रत्येव शठं जगत्। न भविष्यसि चेदानीं वेताल किं न लज्जसे॥ २५॥

pūrvamevāsi nāsīstvaṃ saṃpratyeva śaṭhaṃ jagat | na bhaviṣyasi cedānīṃ vetāla kiṃ na lajjase || 25 ||

You did not exist before, and you do not exist now either, you are just a cheat, a false world. You will not exist after this either. Ghost, are you not ashamed?

तू पहले भी नहीं था, और अभी भी नहीं है, तू तो बस एक धोखा है, एक झूठी दुनिया है। आगे भी तू नहीं रहेगा। भूत, क्या तुझे शर्म नहीं आती?

5.80.26

सह तृष्णापिशाचीभिः सह कोपादिगुह्यकैः। निर्गच्छ चित्तवेताल शरीरसदनान्मम॥ २६॥

saha tṛṣṇāpiśācībhiḥ saha kopādiguhyakaiḥ | nirgaccha cittavetāla śarīrasadanānmama || 26 ||

Get out, mind-ghost, from the house of my body, along with the she-demons of craving, along with the goblins of anger and the rest.

मेरे शरीर के घर से बाहर निकल जा, मन-भूत, तृष्णा की उन डायनों के साथ, क्रोध वगैरह के उन भूत-प्रेतों के साथ।

5.80.27

दिष्ट्या विवेकमात्रेण निर्गतो देहमन्दिरात्। प्रमत्तश्चित्तवेतालः कुवृकः कन्दरादिव॥ २७॥

diṣṭyā vivekamātreṇa nirgato dehamandirāt | pramattaścittavetālaḥ kuvṛkaḥ kandarādiva || 27 ||

Luckily, by sheer discernment, the mind-ghost has gone out of the temple of my body, careless as it was, like a wicked wolf driven out of its cave.

अच्छी बात है कि केवल विवेक से यह मन-भूत मेरे शरीर के मंदिर से निकल गया, वह लापरवाह भूत, जैसे कोई दुष्ट भेड़िया किसी गुफा से निकाला जाता है।

5.80.28

अहो नु चित्रं सुमहज्जडेन क्षणभङ्गिना। मनःशठेन सर्वोऽयं नीतो विवशतां जनः॥ २८॥

aho nu citraṃ sumahajjḍena kṣaṇabhaṅginā | manaḥśaṭhena sarvo'yaṃ nīto vivaśatāṃ janaḥ || 28 ||

Oh, how strange, how great a wonder, that this dull mind, changing every moment, this cheat, has brought every single person under its power.

अरे, कितनी अजीब बात है, कितना बड़ा आश्चर्य है, कि यह जड़, हर पल बदलने वाला, धोखेबाज़ मन हर एक इंसान को अपने बस में कर लेता है।

5.80.29

कस्ते पराक्रमः किं ते बलं कस्ते समाश्रयः। यदि वल्गसि मामेकं जनानां बाधसे मृतम्॥ २९॥

kaste parākramaḥ kiṃ te balaṃ kaste samāśrayaḥ | yadi valgasi māmekaṃ janānāṃ bādhase mṛtam || 29 ||

What courage do you have? What strength do you have? What shelter do you have? If you try to strut in front of me, remember, among people you can only torment a dead body.

तेरे पास कौन सा पराक्रम है? कौन सी ताकत है? कौन सा सहारा है? अगर तू मेरे सामने अकड़ कर दिखाए, तो याद रख, लोगों में तू केवल एक मुर्दे को ही सता सकता है।

5.80.30

सर्वथैवासि न मया दीनचित्तक मार्यसे । मृतमित्यवबुद्धं त्वमद्य केवलमज्ञ हे ॥ ३० ॥

sarvathaivāsi na mayā dīnacittaka māryase | mṛtamityavabuddhaṃ tvamadya kevalamajña he || 30 ||

You have always been dead, in every way, wretched-minded one, I am not the one killing you. Today it is simply recognised that you are dead, you fool.

तू तो हर तरह से हमेशा से ही मरा हुआ है, ओ दीन मन वाले, तुझे मारने वाला मैं नहीं हूं। आज बस इतना पता चला है कि तू मरा हुआ है, ओ मूर्ख।

5.80.31

एतावन्तमहं कालं त्वां ज्ञात्वा जीवदास्थिति । श्लिष्टः प्रभूतसङ्गासु चिरं संसृतिरात्रिषु ॥ ३१ ॥

etāvantamahaṃ kālaṃ tvāṃ jñātvā jīvadāsthiti| śliṣṭaḥ prabhūtasaṅgāsu ciraṃ saṃsṛtirātriṣu || 31 ||

For so long a time, taking you to be alive, I clung to countless attachments through the long nights of this world's wandering.

इतने लंबे समय तक मैं तुझे जीवित समझकर, इस संसार की लंबी रातों में तरह-तरह के मोह-बंधनों से चिपका रहा।

5.80.32

चित्तं मृतं हि नास्तीदमित्यद्याधिगतं मया । तेन त्वदाशां संत्यज्य तिष्ठाम्यात्मनि केवलम् ॥ ३२ ॥

cittaṃ mṛtaṃ hi nāstīdamityadyādhigataṃ mayā| tena tvadāśāṃ saṃtyajya tiṣṭhāmyātmani kevalam || 32 ||

Today I have understood: the mind is dead, indeed it does not exist at all. So, giving up all hope in you, I remain in the self alone.

आज मुझे यह समझ आ गया है कि मन मरा हुआ है, असल में यह है ही नहीं। इसलिए तुझसे सारी आशा छोड़कर, मैं अकेला अपने आत्मा में स्थित हूं।

5.80.33

दिष्ट्या चित्तं मृतमिति ज्ञातमद्य मया स्वयम् । न शठेन समं नेयं समग्रं जीवितं निजम् ॥ ३३ ॥

diṣṭyā cittaṃ mṛtamiti jñātamadya mayā svayam| na śaṭhena samaṃ neyaṃ samagraṃ jīvitaṃ nijam || 33 ||

Luckily, today I myself have recognised that the mind is dead. I must not spend the whole of my own life together with this cheat.

अच्छी बात है कि आज मैंने स्वयं जान लिया कि मन मरा हुआ है। अब मुझे अपना पूरा जीवन इस धोखेबाज़ के साथ नहीं बिताना है।

5.80.34

उत्सार्य देहसदनान्मनःशठमहं क्षणात् । अहं स्वस्थः स्थितोऽस्म्यन्तर्वेतालपरिवर्जितः ॥ ३४ ॥

utsārya dehasadanānmanaḥśaṭhamahaṃ kṣaṇāt| ahaṃ svasthaḥ sthito'smyantarvetālaparivarjitaḥ || 34 ||

Driving the cheating mind out of the house of the body in an instant, I now stand at ease, myself, free of the ghost within.

एक ही पल में इस धोखेबाज़ मन को शरीर के घर से निकालकर, अब मैं स्वयं चैन से खड़ा हूं, भीतर के इस भूत से मुक्त।

5.80.35

चित्तवेताललब्धेन चिरं कालं मयात्मना । कृताविकाराविविधाः स्वयं स्मृत्वा हसाम्यहम् ॥ ३५ ॥

cittavetālalabdhena ciraṃ kālaṃ mayātmanā| kṛtāvikārāvividhāḥ svayaṃ smṛtvā hasāmyaham || 35 ||

Recalling, myself, the many different disturbances I made for so long a time while held by the mind-ghost, I laugh.

जब मैं याद करता हूं कि इतने लंबे समय तक इस मन-भूत के वश में रहकर मैंने खुद कैसी-कैसी उथल-पुथल मचाई, तो मुझे हंसी आती है।

5.80.36

चिरान्निपातितो दिष्ट्या विचारासिपरार्दितः। हृद्गेहाच्चित्तवेतालस्तालोत्तालसमुन्नतिः ॥ ३६ ॥

cirānni-pātito diṣṭyā vicārāsi-parārditaḥ| hṛd-gehāc-citta-vetālas-tālottāla-samunnatiḥ || 36 ||

Luckily, after a long time, the mind-ghost, who had risen up huge and wild like a palm tree, has at last been struck down, badly wounded by the sword of reflection, and thrown out of the house of the heart.

अच्छी बात है कि इतने लंबे समय बाद यह मन-भूत, जो ताड़ के पेड़ जैसा ऊंचा और उग्र उठा हुआ था, आखिरकार विचार की तलवार से बुरी तरह घायल होकर गिरा दिया गया, और हृदय के घर से बाहर फेंक दिया गया।

5.80.37

प्रशान्ते चित्तवेताले पवित्रां पदवीं गते। दिष्ट्या शरीरनगरे सुखं तिष्ठामि केवलम् ॥ ३७ ॥

praśānte citta-vetāle pavitrāṃ padavīṃ gate| diṣṭyā śarīra-nagare sukhaṃ tiṣṭhāmi kevalam || 37 ||

Now that the mind-ghost has grown quiet and gone onto a pure path, luckily, I dwell happily and alone in the city of the body.

अब जब यह मन-भूत शांत होकर एक पवित्र राह पर चला गया है, तो अच्छी बात है कि मैं शरीर के इस नगर में अकेला सुख से रहता हूं।

5.80.38

मृतं मनो मृता चिन्ता मृतोऽहंकारराक्षसः। विचारमन्त्रेण समः स्वस्थस्तिष्ठामि केवलम् ॥ ३८ ॥

mṛtaṃ mano mṛtā cintā mṛto'haṃkāra-rākṣasaḥ| vicāra-mantraeṇa samaḥ svasthas-tiṣṭhāmi kevalam || 38 ||

The mind is dead, thought is dead, the demon of ego is dead. By the spell of reflection, I remain calm and at ease, alone.

मन मर चुका है, चिंता मर चुकी है, अहंकार का राक्षस मर चुका है। विचार के इस मंत्र से मैं शांत और चैन से अकेला स्थित हूं।

5.80.39

किं मनो मे ममाशा का को मेऽहंकारको भवेत्। दिष्ट्या व्यर्थं कलत्रं मे नष्टमेतदशेषतः ॥ ३९ ॥

kiṃ mano me mamāśā kā ko me'haṃkārako bhavet| diṣṭyā vyarthaṃ kalatraṃ me naṣṭametad-aśeṣataḥ || 39 ||

What now is my mind? What is my desire? What could be my sense of I-ness? Luckily, this useless wife of mine is now destroyed completely.

अब मेरा मन कहां है? मेरी इच्छा क्या है? मेरा अहंकार कौन हो सकता है? अच्छी बात है कि मेरी यह व्यर्थ पत्नी अब पूरी तरह नष्ट हो चुकी है।

5.80.40

एकस्मै कृतकृत्याय नित्याय विमलात्मने। निर्विकल्पचिदाख्याय मह्यमेव नमो नमः ॥ ४० ॥

ekasmai kṛta-kṛtyāya nityāya vimalātmane| nirvikalpa-cid-ākhyāya mahyam-eva namo namaḥ || 40 ||

To the One who has done all that had to be done, who is eternal, whose self is pure, who is called undivided consciousness, to myself alone, salutation, salutation.

जिसने वह सब कर लिया है जो करना था, जो सदा रहने वाला है, जिसकी आत्मा निर्मल है, जिसे अभेद चेतना कहा जाता है, उस एक को, यानी स्वयं मुझे ही, नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.41

न शोकोऽस्ति न मोहोऽस्ति न चैवाहमहं स्वयम्। नच नाहं नचान्योऽहं मह्यमेव नमो नमः ॥ ४१ ॥

na śoko'sti na moho'sti na caivāhamahaṃ svayaṃ | naca nāhaṃ nacānyo'haṃ mahyameva namo namaḥ || 41 ||

There is no grief, there is no delusion, and I myself am not even I. I am not not-I either, nor am I someone else. To myself alone, salutation, salutation.

न कोई शोक है, न कोई मोह है, और मैं स्वयं भी 'मैं' नहीं हूं। न मैं 'मैं नहीं' हूं, न मैं कोई और हूं। स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.42

न ममाशा न कर्माणि न संसारो न कर्तृता। न भोक्तृता न देहो मे मह्यमेव नमो नमः ॥ ४२ ॥

na mamāśā na karmāṇi na saṃsāro na kartṛtā | na bhoktṛtā na deho me mahyameva namo namaḥ || 42 ||

I have no desire, no actions, no wandering through this world, no doership. I have no experiencership, no body. To myself alone, salutation, salutation.

मेरी न कोई इच्छा है, न कोई कर्म हैं, न यह संसार है, न कर्ता होने का भाव है। न भोक्ता होने का भाव है, न शरीर है। स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.43

नाहमात्मा न वा कोऽन्यो नाहमस्मि न चेतरः। सर्वमेवाहमेतस्मै मह्यमेव नमो नमः ॥ ४३ ॥

nāhamātmā na vā ko'nyo nāhamasmi na cetaraḥ | sarvamevāhamevasmai mahyameva namo namaḥ || 43 ||

I am not a separate self, nor is there anyone else. I am not this, and I am not other than this. I am everything. To this very self, to myself alone, salutation, salutation.

मैं कोई अलग आत्मा नहीं हूं, और न कोई दूसरा है। न मैं यह हूं, न मैं इससे अलग कुछ हूं। मैं ही सब कुछ हूं। इसी को, यानी स्वयं मुझे ही, नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.44

अहमादिरहं धाता चिदहं भुवनान्यहम्। मम नास्ति व्यवच्छेदो मह्यमेव नमो नमः ॥ ४४ ॥

ahamādirahaṃ dhātā cidahaṃ bhuvanānyaham | mama nāsti vyavacchedo mahyameva namo namaḥ || 44 ||

I am the beginning, I am the creator, I am consciousness, I am the worlds. In me there is no division. To myself alone, salutation, salutation.

मैं ही आरंभ हूं, मैं ही रचयिता हूं, मैं ही चेतना हूं, मैं ही सारे लोक हूं। मुझमें कोई बंटवारा नहीं है। स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.45

निर्विकाराय नित्याय निरंशाय महात्मने। सर्वस्मै सर्वकालाय मह्यमेव नमो नमः ॥ ४५ ॥

nirvikārāya nityāya niraṃśāya mahātmane | sarvasmai sarvakālāya mahyameva namo namaḥ || 45 ||

To the changeless, the eternal, the partless, the great self, to the all, to that which spans all time, to myself alone, salutation, salutation.

जो निर्विकार है, सदा रहने वाला है, जिसका कोई हिस्सा नहीं है, जो महान आत्मा है, जो सब कुछ है, जो हर काल में है, उसे यानी स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.46

नीरूपाय निराख्याय प्रकाशाय महात्मने स्वयमात्मैकसंस्थाय मह्यमेव नमो नमः ॥ ४६ ॥

nīrūpāya nirākhyāya prakāśāya mahātmane svayamātmaikasaṃsthāya mahyameva namo namaḥ || 46 ||

To the formless, the nameless, the shining one, the great self, who rests alone in himself alone, to myself alone, salutation, salutation.

जो निराकार है, जिसका कोई नाम नहीं है, जो प्रकाशमान है, जो महान आत्मा है, जो अकेला अपने आप में ही टिका है, उसे यानी स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.47

समां सर्वगतां सूक्ष्मां जगदेकप्रकाशिनीम् सत्तामुपगतोऽस्म्यन्तर्मह्यमेव नमो नमः ॥ ४७ ॥

samāṃ sarvagatāṃ sūkṣmāṃ jagadekaprakāśinīm sattāmupagato'smyantarmahyameva namo namaḥ || 47 ||

I have inwardly come to that being which is equal everywhere, all-pervading, subtle, the one light of the whole world. To myself alone, salutation, salutation.

मैं भीतर से उस सत्ता को प्राप्त हो गया हूं, जो हर जगह एक समान है, सब जगह फैली है, सूक्ष्म है, और पूरी दुनिया का एकमात्र प्रकाश है। स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.48

साद्र्यब्ध्युर्वी नदी सेयं नाहमेवाहमेव वा जगत्सर्वं पदार्थाढ्यं मह्यमेव नमो नमः ॥ ४८ ॥

sādryabdhyurvī nadi seyaṃ nāhamēvāhamēva vā jagatsarvaṃ padārthāḍhyaṃ mahyameva namo namaḥ || 48 ||

This world, with its mountain, its ocean, its earth, its river, whether it is myself or not myself, this whole world, full of countless things, to myself alone, salutation, salutation.

यह दुनिया, अपने पहाड़, अपने समुद्र, अपनी धरती, अपनी नदी के साथ, चाहे वह मैं ही हूं या मैं नहीं हूं, यह पूरी दुनिया जो अनगिनत चीज़ों से भरी है, स्वयं मुझे ही नमस्कार है, नमस्कार है।

5.80.49

व्यपगतमननं समाभिरामं प्रकटितविश्वमविश्वमप्यनन्तम् स्वयमजमजरं गुणादतीतं वपुरहमच्युतमीश्वरं नमामि ॥ ४९ ॥

vyapagatamananaṃ samābhirāmaṃ prakaṭitaviśvamaviśvamapyanantam svayamajamajaraṃ guṇādatītaṃ vapurahamacyutamīśvaraṃ namāmi || 49 ||

I bow to that imperishable Lord, who is my own true form, free of all thought, beautiful in his perfect stillness, who has brought the whole universe into view and yet is not the universe, endless, himself unborn, unaging, beyond the three qualities.

मैं उस अविनाशी ईश्वर को नमन करता हूं, जो मेरा अपना असली रूप है, जो हर विचार से मुक्त है, जो अपनी पूर्ण शांति में सुंदर है, जिसने पूरे विश्व को प्रकट किया है और फिर भी जो विश्व नहीं है, जो अनंत है, जो स्वयं अजन्मा है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता, जो तीनों गुणों से परे है।

Chapter 81

5.81.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवं विचार्य बुद्धान्तः पुनरित्थं विचार्यते । तत्त्वविद्भिर्महाबाहो ज्ञेय आत्मा महात्मभिः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ vicārya buddhvāntaḥ punaritthaṃ vicāryate | tattvavidbhirmahābāho jñeya ātmā mahātmabhiḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having thought this over and understood it within himself, one thinks it over again in this way. O mighty-armed one, the self is what the great souls who know the truth must come to know.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस तरह सोच-विचार करके और मन में समझकर, फिर इसी तरह सोचा जाता है। हे महाबाहु, सच्चाई को जानने वाले महान लोगों को आत्मा को ही जानना होता है।

5.81.2

आत्मैवेदं जगदिति सत्यं चित्तेन मार्जितम् । उत्थितं स्यात्कुतश्चित्तमहो चित्तमवस्तु यत् ॥ २ ॥

ātmaivedaṃ jagaditi satyaṃ cittena mārjitam | utthitaṃ syātkutaścittamaho cittamavastu yat || 2 ||

The truth that this world is nothing but the self is what the mind, in its reflection, arrives at. But then where could this mind itself have come from? Ah, the mind is a thing that does not really exist at all.

यह सच कि यह जगत आत्मा के सिवा कुछ नहीं है, मन ने सोच-विचार करके यही पाया है। पर फिर यह मन खुद कहाँ से आया होगा? अरे, मन तो एक ऐसी चीज़ है जो असल में है ही नहीं।

5.81.3

अविद्यत्वादचित्तत्वान्मायात्वाच्चासदेव हि । ध्रुवं नास्त्येव वा चित्तं भ्रमादन्यत्खवृक्षवत् ॥ ३ ॥

avidyatvādacittatvānmāyātvāccāsadeva hi | dhruvaṃ nāstyeva vā cittaṃ bhramādanyatkhavaṛkṣavat || 3 ||

Because it comes from ignorance, because it is not really a thing of awareness, and because it is only illusion, it is indeed unreal. The mind certainly does not exist as anything other than confusion, like a tree in the sky.

क्योंकि यह अज्ञान से पैदा होता है, क्योंकि यह चेतना की कोई असली चीज़ नहीं है, और क्योंकि यह सिर्फ माया है, इसलिए यह सचमुच झूठा है। मन निश्चित रूप से भ्रम के सिवा कुछ और नहीं है, जैसे आकाश में उगा हुआ कोई पेड़।

5.81.4

सिद्धः स्थाणुपरिस्पन्दो नौगतस्य यथा शिशोः । अबुद्धस्य न बुद्धस्य तथा चित्तमसन्मयम् ॥ ४ ॥

siddhaḥ sthāṇuparispando naugatasya yathā śiśoḥ | abuddhasya na buddhasya tathā cittamasantmayam || 4 ||

A child sitting in a boat sees a fixed post on the bank as if it were moving. This happens for someone unaware, not for someone who understands. In the same way, the mind, which is made of the unreal, seems real only to the one who does not understand, not to the one who does.

नाव में बैठा बच्चा किनारे के खम्भे को हिलता हुआ देखता है। यह उसे होता है जो नहीं समझता, उसे नहीं जो समझता है। उसी तरह मन, जो असत्य से बना है, सिर्फ उसी को सच लगता है जो नहीं समझता, उसे नहीं जो समझता है।

5.81.5

मौर्ख्यमोहभ्रमे शान्ते चित्तं नोपलभामहे । चक्रारोहभ्रमस्यान्ते पर्वतस्पन्दनं यथा ॥ ५ ॥

maurkhyamohabhrame śānte cittaṃ nopalabhāmahe | cakrārohabhramasyaante parvataspandanaṃ yathā || 5 ||

Once the confusion of foolish delusion has settled, we find no mind there at all, just as, when the dizziness from riding on a spinning wheel ends, the feeling that the mountain is shaking also ends.

जब मूर्खता के मोह की उलझन शांत हो जाती है, तो हमें वहाँ मन नाम की कोई चीज़ मिलती ही नहीं, जैसे घूमते हुए पहिये पर चढ़ने से हुई चक्कर की हालत खत्म होने पर पहाड़ के हिलने का एहसास भी खत्म हो जाता है।

5.81.6

एवं हि चित्तं नास्त्येव ब्रह्मैवास्ति तथात्मकम् । पदार्थभावनाश्चित्तात्तेनासत्या मयोज्झिताः ॥ ६ ॥

evaṃ hi cittaṃ nāstyeva brahmaivāsti tathātmakam | padārthabhāvanāścittāttenāsatyā mayojjhitāḥ || 6 ||

So the mind does not exist at all. Only brahman exists, and it has that same nature as the self. The ideas of separate things that come from the mind are unreal for this very reason, and I have thrown them away.

तो मन है ही नहीं, सिर्फ ब्रह्म है, और उसका स्वभाव आत्मा जैसा ही है। मन से पैदा होने वाले अलग-अलग चीज़ों के खयाल इसी वजह से झूठे हैं, और मैंने उन्हें फेंक दिया है।

5.81.7

जातोऽस्मि शान्तसंदेहः स्थितोऽस्मि विगतज्वरः । तथा तिष्ठामि तिष्ठामि तथैव विगतैषणम् ॥ ७ ॥

jāto'smi śāntasaṃdehaḥ sthito'smi vigatajvaraḥ | tathā tiṣṭhāmi tiṣṭhāmi tathaiva vigataiṣaṇam || 7 ||

I have become someone whose doubts are at rest. I now stand free of that inner fever. I remain like this, I remain like this, with every craving gone.

मैं वह बन गया हूँ जिसके सारे संदेह शांत हो गए हैं। अब मैं उस भीतरी बेचैनी से मुक्त होकर खड़ा हूँ। मैं ऐसे ही टिका हूँ, मैं ऐसे ही टिका हूँ, हर इच्छा के मिट जाने के साथ।

5.81.8

चित्ताभावे परिक्षीणा बाल्यतृष्णादयो गुणाः । आलोकोपरमे चित्रा वर्णाख्या इव संविदः ॥ ८ ॥

cittābhāve parikṣīṇā bālyatṛṣṇādayo guṇāḥ | ālokoparame citrā varṇākhyā iva saṃvidaḥ || 8 ||

When the mind is gone, the qualities that begin with a child's craving all wear away completely, just as, when the light goes out, the awareness of a picture's many colors goes with it.

जब मन नहीं रहता, तो बचपन की तृष्णा से शुरू होने वाले सारे गुण पूरी तरह मिट जाते हैं, जैसे रोशनी बुझने पर किसी तस्वीर के अलग-अलग रंगों का एहसास भी मिट जाता है।

5.81.9

मृतं चित्तं गता तृष्णा प्रक्षीणो मोहपञ्जरः । निरहंकारता जाता जाग्रत्यस्मिन्प्रबुद्धवान् ॥ ९ ॥

mṛtaṃ cittaṃ gatā tṛṣṇā prakṣīṇo mohapañjaraḥ | nirahaṃkāratā jātā jāgratyasminprabuddhavān || 9 ||

The mind has died, craving is gone, the cage of delusion has crumbled away, and freedom from ego has come. I have awakened, fully aware, right within this waking state.

मन मर चुका है, तृष्णा जा चुकी है, मोह का पिंजरा टूट चुका है, और अहंकार से मुक्ति आ गई है। मैं इसी जागी हुई अवस्था में, पूरी तरह सचेत होकर जाग गया हूँ।

5.81.10

एकमेव जगच्छान्तं नानात्वं न सदित्यपि । किमन्यद्विमृशाम्यन्तः कथयैवालमेतया ॥ १० ॥

ekameva jagacchāntaṃ nānātvaṃ na sadityapi | kimanyadvimṛśāmyantaḥ kathayaivālametayā || 10 ||

The world is one alone and at peace. There is no multiplicity in it either. What more is left for me to ponder within? Just say it plainly, enough of this endless questioning.

जगत एक ही है और शांत है, उसमें अनेकता भी नहीं है। अब मेरे मन में सोचने के लिए और क्या बचा है? बस साफ-साफ कह दो, इस लंबी सोच-विचार का अब बस।

5.81.11

निराभासमनाद्यन्तं पदं पावनमागतः । सौम्यः सर्वगतः सूक्ष्मः स्थित आत्मास्मि शाश्वतः ॥ ११ ॥

nirābhāsam anādyantaṃ padaṃ pāvanam āgataḥ | saumyaḥ sarvagataḥ sūkṣmaḥ sthita ātmāsmi śāśvataḥ || 11 ||

I have reached the state that has no appearance, no beginning and no end, the pure state. I am the self: gentle, present everywhere, subtle, steady, and everlasting.

मैं उस अवस्था तक पहुँच गया हूँ जिसका कोई रूप नहीं, जिसका न आदि है न अंत, वह पवित्र अवस्था। मैं आत्मा हूँ: सौम्य, हर जगह मौजूद, सूक्ष्म, स्थिर और सदा रहने वाला।

5.81.12

यदस्ति यच्च नास्तीह चित्ताद्यात्माद्यवस्तु च । तत्खादच्छतरं शान्तमनन्ताग्राह्यमाततम् ॥ १२ ॥

yad asti yac ca nāstīha cittādyātmādyavastu ca | tat khādacchataraṃ śāntamanantāgrāhyam ātatam || 12 ||

Whatever exists and whatever does not exist in this world, including notions of mind and notions of self, none of these are real things. That truth is clearer than the sky, is at peace, has no end, cannot be grasped, and stretches through all things.

इस दुनिया में जो कुछ है और जो कुछ नहीं है, मन से जुड़े खयाल हों या आत्मा से जुड़े खयाल हों, इनमें से कोई भी असली चीज़ नहीं है। वह सच्चाई आकाश से भी ज़्यादा साफ है, शांत है, उसका कोई अंत नहीं, वह पकड़ में नहीं आती, और वह हर चीज़ में फैली हुई है।

5.81.13

चित्तं भवतु मा वान्तर्म्रियतां स्थितिमेतु वा । को विचारणयार्थो में चिरं साम्योदितात्मनः ॥ १३ ॥

cittaṃ bhavatu mā vāntarmriyatāṃ sthitimetu vā | ko vicāraṇayārtho meṃ ciraṃ sāmyoditātmanaḥ || 13 ||

Let the mind exist or not exist, let it die within me or let it remain. What use is there for me in reasoning any further, since my very self has long since risen into perfect balance?

मन रहे या न रहे, वह मेरे भीतर मर जाए या बना रहे, अब मुझे और तर्क-वितर्क से क्या मतलब, जब मेरा अपना स्वभाव बहुत पहले ही पूरी समता में स्थिर हो चुका है?

5.81.14

विचाराकारको मौर्ख्यादहमासं मितस्थितिः । विचारेणामिताकारः क्व नामाहं विचारकः ॥ १४ ॥

vicārākārako maurkhyādahamāsaṃ mitasthitiḥ | vicāreṇāmitākāraḥ kva nāmāhaṃ vicārakaḥ || 14 ||

Out of foolishness I became someone shaped by inquiry, a being of limited standing. Through that same inquiry I became boundless in form. So where, then, am I, the one who was inquiring?

मूर्खता के कारण मैं खोज-विचार से बना एक सीमित अस्तित्व वाला जीव बन गया था। उसी खोज-विचार के ज़रिए मैं असीम रूप वाला बन गया। तो अब मैं कहाँ हूँ, वह जो खोज-विचार कर रहा था?

5.81.15

मृतेऽपि मनसीयं में विकल्पश्रीर्निरर्थिका । मनोवेतालवृत्त्यर्थं किमर्थमुपजायते ॥ १५ ॥

mṛte'pi manasīyaṃ meṃ vikalpaśrīrnirarthikā | manovetālavṛttyarthaṃ kimarthamupajāyate || 15 ||

Even though the mind is dead, this pointless wealth of thoughts and doubts still comes to me. Why does it keep appearing, only to keep the mind moving like a corpse stirred by a ghost?

मन के मर जाने पर भी, विचारों और शंकाओं की यह बेकार भरमार मुझमें अब भी उठती है। यह क्यों उठती रहती है, सिर्फ मन को उस मुर्दे की तरह चलाए रखने के लिए जिसे कोई भूत हिला रहा हो?

5.81.16

तामिमां प्रजहाम्यन्तः संकल्पकलनामिति । निर्णीयोमिति शान्तात्मा तिष्ठाम्यात्मनि मौनवत् ॥ १६ ॥

tāmimāṃ prajahāmyantaḥ saṃkalpakalanāmiti | nirṇīyomiti śāntātmā tiṣṭhāmyātmani maunavat || 16 ||

I give up, within myself, this whole business of forming intentions and thoughts. Having settled this with Om, my mind at peace, I remain within myself in silence.

मैं अपने भीतर इरादे और विचार बनाने का यह सारा काम छोड़ रहा हूँ। ओम् कहकर इस बात को तय करके, मन को शांत करके, मैं अपने भीतर चुपचाप टिका रहता हूँ।

5.81.17

अश्नन्गच्छन्स्वपंस्तिष्ठन्निति राघव चेतसा । सर्वत्र प्रज्ञया तज्ज्ञः प्रत्यहं प्रविचारयेत् ॥ १७ ॥

aśnangacchansvapaṃstiṣṭhanniti rāghava cetasā | sarvatra prajñayā tajjñaḥ pratyahaṃ pravicārayet || 17 ||

While eating, while walking, while sleeping, while sitting still, in all these, Rama, a person who knows this truth should reflect on it with wisdom, everywhere, every day, within their mind.

खाते हुए, चलते हुए, सोते हुए, बैठे हुए, इन सब में, हे राम, जो इस सच्चाई को जानता है उसे हर जगह, हर दिन, अपने मन में समझदारी से इस पर विचार करते रहना चाहिए।

5.81.18

प्रविचार्य स्वसंस्थेन स्वस्थेन स्वेन चेतसा । तिष्ठन्ति विगतोद्वेगं सन्तः प्रकृतकर्मसु ॥ १८ ॥

pravicārya svasaṃsthena svasthena svena cetasā | tiṣṭhanti vigatodvegaṃ santaḥ prakṛtakarmasu || 18 ||

Having reflected in this way, with a mind that rests calmly in itself and stands on its own, good people go about their ordinary daily work without any anxiety or disturbance.

इस तरह विचार करके, अपने आप में शांत और स्थिर मन के साथ, अच्छे लोग बिना किसी बेचैनी या घबराहट के अपने रोज़मर्रा के काम करते रहते हैं।

5.81.19

विगतमानमदा मुदिताशयाः शरदुपोढशशांकसमत्विषः । प्रकृतसंव्यवहारविहारिणस्त्विह सुखं विहरन्ति महाधियः ॥ १९ ॥

vigatamānamadā muditāśayāḥ śaradupoḍhaśaśāṃkasamatviṣaḥ | prakṛtasaṃvyavahāravihāriṇastvihi sukhaṃ viharanti mahādhiyaḥ || 19 ||

Free of pride and arrogance, joyful at heart, glowing like the clear autumn moon, taking part in the ordinary business of daily life, these great-minded ones live happily right here in this world.

घमंड और अहंकार से मुक्त, मन में प्रसन्न, शरद ऋतु के चमकते चाँद जैसी चमक लिए, रोज़मर्रा के आम कामकाज में शामिल होकर, ये महान बुद्धि वाले लोग यहीं इस दुनिया में सुख से रहते हैं।

Chapter 82

5.82.1

श्रीवसिष्ठ उवाच विचार एवं विदुषा संवर्तेन कृतः पुरा कथितो मम विन्ध्याद्रौ तेनैव विदितात्मना ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca vicāra evaṃ viduṣā saṃvartena kṛtaḥ purā kathito mama vindhyādro tenaiva viditātmanā || 1 ||

Sri Vasishtha said: Long ago the wise Samvarta made this same inquiry, and that same knower of the self told it to me on the Vindhya mountain.

श्री वसिष्ठ ने कहा: बहुत पहले बुद्धिमान संवर्त ने यही विचार किया था, और आत्मा को जानने वाले उसी संवर्त ने यह बात मुझे विन्ध्य पर्वत पर बताई थी।

5.82.2

एतां दृष्टिमवष्टभ्य विचारपरया धिया संसारसागरादस्मात्तारतम्येन संतर ॥ २ ॥

etāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya vicāraparayā dhiyā saṃsārasāgarādasmatāratamyena saṃtara || 2 ||

Hold on to this way of seeing with a mind set on inquiry, and cross this ocean of the world little by little, step by step.

इस दृष्टि को पकड़कर, विचार में लगे हुए मन से, संसार के इस सागर को धीरे-धीरे, चरण दर चरण पार कर।

5.82.3

अथेमामपरां राम शृणु दृष्टिं पदप्रदाम् मुनिना वीतहव्येन ययाऽऽस्थितमशङ्कितम् ॥ ३ ॥

athemāmaparāṃ rāma śṛṇu dṛṣṭiṃ padapradām muninā vītahavyena yayā''sthitamaśaṅkitam || 3 ||

Now, Rama, listen to this other way of seeing, which gives the way forward, the one by which the sage Vitahavya lived, free of doubt.

अब हे राम, इस दूसरी दृष्टि को सुनो, जो आगे का रास्ता दिखाती है, वही दृष्टि जिसके सहारे ऋषि वीतहव्य निःशंक होकर रहे थे।

5.82.4

वीतहव्यो महातेजा विबभ्राम वने पुरा विन्ध्यशैलदरीर्दीर्घा रविर्मेरुदरीरिव ॥ ४ ॥

vītahavyo mahātejā vibabhrāma vane purā vindhyaśailadarīrdīrghā ravirmerudarīriva || 4 ||

Vitahavya, of great brilliance, once wandered in the forest, through the long caves of the Vindhya mountain, like the sun moving through the caves of Mount Meru.

महातेजस्वी वीतहव्य पहले वन में घूमते थे, विन्ध्य पर्वत की लंबी गुफाओं में, जैसे सूर्य मेरु पर्वत की गुफाओं में घूमता है।

5.82.5

वीतहव्यो महातेजा विबभ्राम वने पुराविन्ध्यशैलदरीर्दीर्घा रविर्मेरुदरीरिव ॥ ५ ॥

vītahavyo mahātejā vibabhrāma vane purāvindhyaśailadarīrdīrghā ravirmerudarīriva || 5 ||

Vitahavya, of great brilliance, once wandered in the forest, through the long caves of the Vindhya mountain, like the sun moving through the caves of Mount Meru.

महातेजस्वी वीतहव्य पहले वन में घूमते थे, विन्ध्य पर्वत की लंबी गुफाओं में, जैसे सूर्य मेरु पर्वत की गुफाओं में घूमता है।

5.82.6

निर्विकल्पसमाध्यंशलभ्योदारपरेच्छया स जहार जगज्जीर्णां स्वव्यापारपरम्पराम् ॥ ६ ॥

nirvikalpasamādhyāṃśalabhyodāraparecchayā sa jahāra jagajjīrṇāṃ svavyāpāraparamparām || 6 ||

Through a great and higher wish, gained from a taste of thought-free absorption, he gave up the world-worn chain of his own daily activities.

निर्विकल्प समाधि की एक झलक से मिली एक बड़ी और श्रेष्ठ इच्छा के कारण, उन्होंने अपने रोज़ के कामों की उस पुरानी और घिसी-पिटी शृंखला को छोड़ दिया।

5.82.7

विवेश रम्भारचितं निजं पर्णोटजान्तर्म्कृतगौरं सुसौगन्ध्यमलिनीलमिवोत्पलम् ॥ ७ ॥

viveśa rambhāracitaṃ nijaṃ parṇoṭajāntaramkṛtagauraṃ susaugandhyamalinīlamivotpalam || 7 ||

He went into his own hut of plantain leaves, made bright within and full of sweet fragrance, like a blue lotus dark as a bee.

वे अपनी ही केले के पत्तों से बनी कुटिया में गए, जो भीतर से उजली और सुगंध से भरी थी, मानो भँवरे जैसा गहरा नीला कमल हो।

5.82.8

तत्रासने समे शुद्धे स्वास्तीर्णहरिणाजिनेविशश्रामाचले शान्ते वीतवर्ष इवाम्बुदः ॥ ८ ॥

tatrāsane same śuddhe svāstīrṇahariṇājineviśaśrāmācale śānte vītavarṣa ivāmbudaḥ || 8 ||

There, on a level and clean seat spread with his own deerskin, he rested, still and calm, like a cloud that has stopped raining.

वहाँ, अपने बिछाए हुए मृगचर्म पर, एक समतल और स्वच्छ आसन पर, वे स्थिर और शांत होकर बैठे, मानो बरसना बंद कर चुका बादल हो।

5.82.9

बद्धपद्मासनस्थौ पार्ष्ण्योरधिकराङ्गुलिःशृङ्गवच्छान्तचलनमतिष्ठत्स्पष्टकन्धरम् ॥ ९ ॥

baddhapadmāsanastasthau pārṣṇyoradhikarāṅguliḥśṛṅgavacchāntacalanamatiṣṭhatspaṣṭakandharam || 9 ||

Sitting cross-legged in the lotus posture, heels drawn in and toes showing beyond them, he stayed as still as a mountain peak, without moving, his neck held straight and clear.

पद्मासन में बैठकर, एड़ियों को भीतर मोड़े और पैर की उँगलियाँ आगे को निकली हुई, वे पर्वत की चोटी जैसे बिना हिले-डुले स्थिर बैठे रहे, गर्दन सीधी और साफ़ रखे हुए।

5.82.10

स जहारालमालोकाद्दिग्विकीर्णं मनः शनैःविशन्मेरुदरीं सायं भानुर्भास इवोत्करम् ॥ १० ॥

sa jahārālamālokāddigvikīrṇaṃ manaḥ śanaiḥviśanmerudarīṃ sāyaṃ bhānurbhāsa ivotkaram || 10 ||

He slowly drew back his mind, which had scattered in every direction through looking around, just as the sun, entering the caves of Mount Meru in the evening, draws in the spread of its rays.

उन्होंने धीरे-धीरे अपने उस मन को समेट लिया जो इधर-उधर देखने से चारों दिशाओं में बिखर गया था, ठीक वैसे ही जैसे शाम को मेरु पर्वत की गुफाओं में जाता हुआ सूरज अपनी फैली हुई किरणों को समेट लेता है।

5.82.11

बाह्यानाभ्यन्तरांश्चैव स्पर्शान्परिजहत्क्रमात्इदमाकलयामास मनसा विगतैनसा ॥ ११ ॥

bāhyānābhyantarāṃścaiva sparśānparijahatkramātidamākalayāmāsa manasā vigatainasā || 11 ||

Giving up, step by step, both the outer and the inner sensations, he considered this with a mind free of fault.

बाहर और भीतर, दोनों तरह के स्पर्शों को क्रम से छोड़ते हुए, उन्होंने निर्दोष मन से इस बात पर विचार किया।

5.82.12

अहो नु चञ्चलमिदं प्रत्याहृतमपि क्षणात् । न मनः स्थैर्यमायाति तरङ्गप्रौढपर्णवत् ॥ १२ ॥

aho nu cañcalamidaṃ pratyāhṛtamapi kṣaṇāt | na manaḥ sthairyamāyāti taraṅgaprauḍhaparṇavat || 12 ||

Ah, how restless this mind is. Even when pulled back in a moment, it does not become steady, like a leaf tossed about on a strong wave.

अरे, यह मन कितना चंचल है। एक क्षण में इसे खींच भी लो, तब भी यह स्थिर नहीं होता, जैसे तेज़ लहर पर उछलता हुआ कोई पत्ता।

5.82.13

चक्षुरादिभिरुद्दामै रूपैराहितसंभ्रमैः । अजस्रमुत्पतत्येव वीटेव तलताडिता ॥ १३ ॥

cakṣurādibhiruddāmai rūpairāhitasaṃbhramaiḥ | ajasramutpatatyeva vīṭeva talatāḍitā || 13 ||

Through the eyes and the other senses, stirred up by unruly sights, it keeps leaping up again and again, like a rolled betel-leaf struck by the palm of a hand.

आँख और बाकी इंद्रियों के द्वारा, बेकाबू दृश्यों से हलचल में आकर, यह बार-बार उछलता रहता है, जैसे हथेली से मारा गया पान का बीड़ा उछल जाता है।

5.82.14

त्यजदेवानुगृह्णाति वृत्तीरिन्द्रियवर्धिताः । यस्मान्निवार्यते तस्मिन्प्रोन्मत्त इव धावति ॥ १४ ॥

tyajadevānugṛhṇāti vṛttīrindriyavardhitāḥ | yasmānnivāryate tasmin pronmatta iva dhāvati || 14 ||

Even while letting go, it still clings to the habits that the senses have built up. The very thing it is held back from is the thing it runs toward, like someone gone mad.

छोड़ते हुए भी यह इंद्रियों से बनी आदतों को पकड़े रहता है। जिस चीज़ से इसे रोका जाता है, उसी की ओर यह पागल आदमी की तरह दौड़ पड़ता है।

5.82.15

घटात्पटमुपायाति पटाच्छकटमुत्कटम् । चित्तमर्थेषु चरति पादपेष्विव मर्कटः ॥ १५ ॥

ghaṭātpaṭamupāyāti paṭācchakaṭamutkaṭam | cittamartheṣu carati pādapeṣviva markaṭaḥ || 15 ||

It moves from a pot to a piece of cloth, and from the cloth to a huge cart. The mind wanders among objects like a monkey among trees.

यह घड़े से कपड़े पर जाता है, और कपड़े से किसी बड़ी गाड़ी पर। मन चीज़ों के बीच वैसे ही घूमता रहता है जैसे बंदर पेड़ों के बीच घूमता है।

5.82.16

पञ्चद्वाराणि मनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम् । दग्धेन्द्रियाभिधानानि तावदालोकयाम्यहम् ॥ १६ ॥

pañcadvārāṇi manasaścakṣurādīnyamūnyalam | dagdhendriyābhidhānāni tāvadālokayāmyaham || 16 ||

These five doors of the mind, the eyes and the rest, enough of them. They truly deserve to be called wretched senses. For now, I am simply watching them.

मन के ये पाँच दरवाज़े, आँख और बाकी इंद्रियाँ, अब बस बहुत हो गया। इन्हें सचमुच अभागी इंद्रियाँ ही कहा जाना चाहिए। अभी तो मैं बस इन्हें देख रहा हूँ।

5.82.17

हे हे हतेन्द्रियगणाः किं मे बोधाय नेह वः । वेला विलुलिताम्बूनामब्धीमिव चञ्चलाः ॥ १७ ॥

he he hatendriyagaṇāḥ kiṃ me bodhāya neha vaḥ | velā vilulitāmbūnāmabdhīmiva cañcalāḥ || 17 ||

Hey, hey, you ruined senses. What use are you to me for gaining understanding? None at all. You are restless, like the tides of an ocean whose waters are churned up.

अरे, अरे, तुम बर्बाद इंद्रियो! मुझे समझ पाने में तुमसे क्या लाभ? कुछ भी नहीं। तुम बेचैन हो, जैसे उस समुद्र की लहरें जिसका पानी उथल-पुथल हो गया हो।

5.82.18

मा कुरुध्वमनर्थाय चापलं चपलाशयाः । स्मरतातीतवृत्तीनि दुःखजालानि भूरिशः ॥ १८ ॥

mā kurudhvamanarthāya cāpalaṃ capalāśayāḥ | smaratātītavṛttīni duḥkhajālāni bhūriśaḥ || 18 ||

You restless ones, do not act so fickle that it brings ruin. Remember the many past events, and the webs of suffering that came with them.

अरे चंचल स्वभाव वालो, ऐसी चपलता मत करो जो नुकसान ही लाए। बीती हुई बातों को याद करो, और उनके साथ आए दुखों के जाल को भी याद करो।

5.82.19

रूपाणि मनसो यूयं जडा एव किलाधमाः । जडे तूत्सिक्तता व्यर्थे मृगतृष्णेव वल्गति ॥ १९ ॥

rūpāṇi manaso yūyaṃ jaḍā eva kilādhamāḥ | jaḍe tūtsiktatā vyarthe mṛgatṛṣṇeva valgati || 19 ||

You are only forms taken by the mind, dull and lowest of all. Yet in something so dull and worthless, this pride jumps about, like a mirage.

तुम केवल मन के बनाए हुए रूप हो, जड़ और सबसे नीचे के हो। फिर भी इस जड़ और बेकार चीज़ में यह घमंड ऐसे उछलता है, जैसे मृगतृष्णा।

5.82.20

असारात्मस्वरूपाणामनालोकवती सदा । अन्धानामुद्धतिर्येयं सा दृश्यायैव जायते ॥ २० ॥

asārātmasvarūpāṇāmanālokavatī sadā | andhānāmuddhatiryeyaṃ sā dṛśyāyaiva jāyate || 20 ||

This pride, which cannot itself see anything, belongs to things whose very nature has no substance, to things that are blind. And it is born only in regard to what is seen.

यह घमंड, जो खुद कुछ भी नहीं देख सकता, उन चीज़ों का है जिनका अपना कोई सार नहीं, जो अंधी हैं। और यह पैदा भी बस उसी चीज़ को लेकर होता है जो दिखाई देती है।

5.82.21

चिदात्मा भगवान्सर्वं साक्षित्वेन करोम्यहम्। हतेन्द्रियगणा यूयं किं निरर्थकमाकुलाः ॥ २१ ॥

cidātmā bhagavānsarvaṃ sākṣitvena karomyaham | hatendriyagaṇā yūyaṃ kiṃ nirarthakamākulāḥ || 21 ||

I am the self made of consciousness, the lord, and I do everything only as a witness. You ruined senses, why are you troubled for no reason at all?

मैं चेतना-रूप आत्मा हूँ, स्वामी हूँ, और मैं सब कुछ केवल साक्षी बनकर करता हूँ। तुम बर्बाद इंद्रियो, बिना किसी वजह के क्यों परेशान हो रही हो?

5.82.22

मिथ्यैव मे विवल्गन्ति नीरूपा नयनादयः। अलातचक्रप्रतिमाः सर्परज्जुभ्रमोपमाः ॥ २२ ॥

mithyaiava me vivalganti nīrūpā nayanādayaḥ | alātacakrapratimāḥ sarparajjubhramopamāḥ || 22 ||

The eyes and the other senses, which have no form of their own, dance about before me falsely, like the circle made by a whirling firebrand, like the illusion of a rope mistaken for a snake.

आँख और बाकी इंद्रियाँ, जिनका अपना कोई रूप नहीं है, मेरे सामने झूठमूठ नाचती रहती हैं, जैसे घुमाई गई मशाल से बना गोला, जैसे रस्सी को साँप समझ लेने का भ्रम।

5.82.23

तेनात्मना बहुज्ञेन निर्ज्ञाताश्चक्षुरादयः। मनागपि न संबन्धो द्युपातालतलाद्रिवत् ॥ २३ ॥

tenātmanā bahujñena nirjñātāścakṣurādayaḥ | manāgapi na saṃbandho dyupātālatalādrvat || 23 ||

By that all-knowing self, the eyes and the other senses have been fully seen for what they are. There is not the slightest connection between them, as distant as the sky, the floor of the underworld, and a mountain are from one another.

उस सब कुछ जानने वाली आत्मा ने आँख और बाकी इंद्रियों को पूरी तरह पहचान लिया है। उनके बीच रत्ती भर भी संबंध नहीं है, उतनी ही दूरी है जितनी आकाश, पाताल के तल और किसी पर्वत के बीच होती है।

5.82.24

भीतः पान्थ इवाहिभ्यः पुक्कसेभ्य इव द्विजः। दूरे तिष्ठति चिन्मात्रमिन्द्रियेभ्यस्त्वनामयम् ॥ २४ ॥

bhītaḥ pāntha ivāhibhyaḥ pukkasebhya iva dvijaḥ | dūre tiṣṭhati cinmātramindriyebhyastvanāmayam || 24 ||

Like a traveler afraid of snakes, like a brahmin keeping away from outcastes, pure consciousness, free of all affliction, keeps its distance from the senses.

जैसे कोई राहगीर साँपों से डरकर दूर रहता है, जैसे कोई ब्राह्मण नीच माने जाने वाले लोगों से दूर रहता है, वैसे ही शुद्ध चेतना, जो हर पीड़ा से मुक्त है, इंद्रियों से दूर रहती है।

5.82.25

चित्सत्तामात्रकेणालं संक्षोभो भवतां मिथः। तिष्ठति स्वैरमादित्ये दिनकार्यवतामिव ॥ २५ ॥

citsattāmātrakeṇālaṃ saṃkṣobho bhavatāṃ mithaḥ | tiṣṭhati svairamāditye dinakāryavatāmiva || 25 ||

Simply because consciousness exists at all, that is enough. And yet your restlessness among yourselves still goes on by itself, just as, under the sun, the day's business goes on by itself.

सिर्फ चेतना के होने भर से ही काम बन जाता है, फिर भी तुम्हारी आपसी बेचैनी अपने आप चलती रहती है, ठीक वैसे ही जैसे सूरज के नीचे दिन भर के काम अपने आप चलते रहते हैं।

5.82.26

चित्त चारण चार्वाक चतुर्दिक्कुक्षिभिक्षुक । श्वेव व्यर्थमनर्थाय मैवं विहर हे जगत् ॥ २६ ॥

citta cāraṇa cārvāka caturdikkukṣibhikṣuka | śveva vyarthamanarthāya maivam vihara he jagat || 26 ||

Mind, you wanderer, you pleasure-chaser, a beggar running to all four directions just to fill your belly, like a dog, do not roam about like this for no reason and only bring harm. You are the whole world.

हे मन, तू घुमक्कड़ है, तू सुख के पीछे भागने वाला है, पेट भरने के लिए चारों दिशाओं में भीख माँगने वाला है, कुत्ते की तरह। ऐसे बेकार में मत भटक, इससे नुकसान ही होगा। तू ही तो सारा जगत है।

5.82.27

अहं चिद्वदिति व्यर्थमसत्या तव वासना । अत्यन्तभिन्नयोरैक्यं नास्ति चिन्मनसोः शठ ॥ २७ ॥

ahaṃ cidvaditi vyarthamasatyā tava vāsanā | atyantabhinnayoraiykaṃ nāsti cinmanasoḥ śaṭha || 27 ||

Your notion 'I am consciousness' is useless and untrue. There is no oneness between consciousness and mind, you cheat. They are completely different.

तेरा यह विचार कि मैं चेतना हूँ, बेकार और झूठा है। हे धूर्त, चेतना और मन में कोई एकता नहीं है, ये दोनों पूरी तरह अलग-अलग हैं।

5.82.28

जीवाम्येवाहमित्येषा तवाहंकारदुर्मतिः । मिथ्यैव जाता दुःखाय न सत्या सत्यवर्जिता ॥ २८ ॥

jīvāmyevāhamityeṣā tavāhaṃkāradurmatiḥ | mithyaiva jātā duḥkhāya na satyā satyavarjitā || 28 ||

This foolish idea of yours, born from ego, that you are alive, that you exist, has arisen only falsely, and brings only suffering. It is not true, it has no truth in it at all.

तेरा यह मूर्खतापूर्ण विचार, जो अहंकार से पैदा हुआ है, कि मैं जीवित हूँ, मैं हूँ, यह सिर्फ झूठा पैदा हुआ है और दुख ही देता है। यह सच नहीं है, इसमें सच्चाई है ही नहीं।

5.82.29

अहंकारोदये सोऽस्मीत्येतां संरब्धतां त्यज । न किंचिदपि मूर्ख त्वं किं व्यर्थं तरलायसे ॥ २९ ॥

ahaṃkārodaye so'smītyetāṃ saṃrabdhatāṃ tyaja | na kiṃcidapi mūrkha tvaṃ kiṃ vyarthaṃ taralāyase || 29 ||

When the ego rises and says I am someone, give up that excitement. You are nothing at all, fool. Why do you shake about for no reason?

जब अहंकार उठता है और कहता है कि मैं कोई हूं, तो यह उत्तेजना छोड़ दो। तुम कुछ भी नहीं हो, मूर्ख। तुम बेवजह क्यों हिलते डुलते रहते हो।

5.82.30

संविच्चित्त्वमनाद्यन्तं संविदोऽन्यन्न विद्यते । देहेस्मिंस्तन्महामूर्ख किं त्वं स्याश्चित्तनामकम् ॥ ३० ॥

saṃvicchittvamanādyantaṃ saṃvido'nyannavidyate | dehesmiṃstanmahāmūrkha kiṃ tvaṃ syāścittanāmakam || 30 ||

You are awareness itself, without beginning or end. Nothing exists besides awareness. That same awareness is in this body too, great fool. How could you be something called mind?

तुम खुद चेतना हो, जिसका न आदि है न अंत। चेतना के अलावा कुछ भी नहीं है। यही चेतना इस शरीर में भी है, महामूर्ख। तुम मन नाम की कोई चीज़ कैसे हो सकते हो।

5.82.31

विषपर्यवसानेयं रसायनवदुत्थिता । भोक्तताकर्तृताशङ्का बत चित्त मुधैव हि ॥ ३१ ॥

viṣaparyavasāneyaṃ rasāyanavadutthitā | bhoktṛtākartṛtāśaṅkā bata citta mudhaiva hi || 31 ||

This idea of being a doer and an enjoyer rises like a tonic but ends in poison. Alas, mind, it is completely useless.

कर्ता और भोक्ता होने का यह खयाल एक टॉनिक की तरह उठता है, पर अंत में ज़हर बन जाता है। हाय मन, यह पूरी तरह बेकार है।

5.82.32

मोपहासपदं गच्छ मूर्खेन्द्रियगणाश्रयम् । न कर्ता त्वं न भोक्ता त्वं जडोऽस्यन्येन बोध्यसे ॥ ३२ ॥

mopahāsapadaṃ gaccha mūrkhendriyagaṇāśrayam | na kartā tvaṃ na bhoktā tvaṃ jaḍo'syanyena bodhyase || 32 ||

Do not become a laughingstock, fool who depends only on the senses. You are not the doer, you are not the enjoyer. You are lifeless matter, made known only through something else.

हंसी का पात्र मत बनो, मूर्ख जो सिर्फ इंद्रियों के सहारे टिका है। तुम कर्ता नहीं हो, तुम भोक्ता नहीं हो। तुम जड़ पदार्थ हो, जिसे किसी और की वजह से ही जाना जाता है।

5.82.33

कस्त्वं भवसि भोगानां के वा भोगा भवन्ति ते । जडस्यात्मैव ते नास्ति बन्धुमित्रादि तत्कुतः ॥ ३३ ॥

kastvaṃ bhavasi bhogānāṃ ke vā bhogā bhavanti te | jaḍasyātmaiva te nāsti bandhumitrādi tatkutaḥ || 33 ||

What are you to these pleasures, and what are these pleasures to you? Since you are lifeless matter, you do not even have a self of your own. So how could you have relatives or friends?

तुम इन सुखों के लिए क्या हो, और ये सुख तुम्हारे लिए क्या हैं। चूंकि तुम जड़ पदार्थ हो, तुम्हारा अपना कोई स्वरूप ही नहीं है। फिर तुम्हारे रिश्तेदार या दोस्त कहां से होंगे।

5.82.34

यज्जडं तद्धि नास्त्वेव सदेवासत्तयान्वितम् । ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वमन्यत्वानामसंभवात् ॥ ३४ ॥

yajjaḍaṃ taddhi nāstveva sadevāsattayānvitam | jñatvakartṛtva bhoktṛtvamanyatvānāmasaṃbhavāt || 34 ||

What is lifeless does not truly exist at all. Though it seems to exist, it is bound up with non-existence. So the lifeless can never really be a knower, a doer, or an enjoyer, because it cannot be a separate real thing at all.

जो जड़ है, वह असल में है ही नहीं। वह दिखने में तो है, पर न होने से जुड़ा हुआ है। इसलिए जड़ पदार्थ कभी सच में जानने वाला, करने वाला या भोगने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि उसका अपना अलग सच्चा अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

5.82.35

प्रत्यक्चेतनरूपश्चेत्त्वं तदात्मैव ते वपुः । भावाभावमयी चित्तसत्ता ते केव दुःखदा ॥ ३५ ॥

pratyakcetanarūpaścetttvaṃ tadātmaiva te vapuḥ | bhāvābhāvamayī cittasattā te keva duḥkhadā || 35 ||

If you are, in truth, the inward conscious self, then that very self is your real form. The mind's existence, which comes and goes, how could that ever cause you suffering?

अगर सच में तुम वह भीतर की चेतन आत्मा हो, तो वही आत्मा तुम्हारा असली रूप है। मन का होना तो आता जाता रहता है, फिर वह तुम्हें दुख कैसे दे सकता है।

5.82.36

यथा कर्तृत्वभोक्तृत्वे मिथ्यैवाधिगते त्वया। मया ते हि प्रमार्ज्येते शृणु युक्त्या कथं शनैः ॥ ३६ ॥

yathā kartṛtva bhoktṛtve mithyaivādhigate tvayā | mayā te hi pramārjyete śṛṇu yuktyā kathaṃ śanaiḥ || 36 ||

Listen to how, step by step and with reasoning, I will clear away your doership and your enjoyership for you, once you have understood them to be completely false.

सुनो, जब तुमने कर्तापन और भोगपन को पूरी तरह झूठा समझ लिया है, तो मैं तर्क के सहारे धीरे धीरे इन्हें तुम्हारे लिए कैसे मिटाऊंगा।

5.82.37

स्वयं तावद्भवानेष जडो नास्त्यत्र संशयः। जडस्य कीदृक्कर्तृत्वं नृत्यन्तीह कथं शिलाः ॥ ३७ ॥

svayaṃ tāvadbhavaṃneṣa jaḍo nāstyatra saṃśayaḥ | jaḍasya kīdṛkkartṛtvaṃ nṛtyantīha kathaṃ śilāḥ || 37 ||

First of all, you yourself are lifeless matter. There is no doubt about this. What kind of doing can lifeless matter do? How do stones dance here?

सबसे पहले तो तुम खुद जड़ पदार्थ हो, इसमें कोई शक नहीं। जड़ पदार्थ भला क्या कर सकता है। पत्थर यहां नाच कैसे सकते हैं।

5.82.38

उपजीव चिरं तस्माच्छुद्धं तद्भागमैश्वरम्। जीवसीच्छसि हंसि त्वं वृथा यासि विवल्गसि ॥ ३८ ॥

upajīva ciraṃ tasmācchuddhaṃ tadbhāgamaiśvaram | jīvasīcchasi haṃsi tvaṃ vṛthā yāsi vivalgasi || 38 ||

You have for a long time survived only by borrowing from that pure, divine part. You live, desire, kill, move, and prance about, and all of it is for nothing.

तुम बहुत लंबे समय से उस शुद्ध, दिव्य हिस्से के सहारे ही जीते आए हो। तुम जीते हो, चाहते हो, मारते हो, चलते हो, उछलते कूदते हो, और यह सब बेकार है।

5.82.39

क्रियते यत्तु यच्छक्त्या तत्तेनैव कृतं भवेत्। लुनाति दात्रं पुंशक्त्या लावकः प्रोच्यते पुमान्॥ ३९ ॥

kriyate yattu yacchaktyā tattenaiva kṛtaṃ bhavet | lunāti dātraṃ puṃśaktyā lāvakaḥ procyate pumān || 39 ||

Whatever is done is done by whoever holds the power to do it. That one alone is the true doer. The sickle cuts by the strength of the man, yet it is the man who is called the reaper.

जो भी काम होता है, वह उसी की ताकत से होता है जिसके पास वह ताकत है। असली करने वाला वही है। हंसिया आदमी की ताकत से काटता है, फिर भी काटने वाला आदमी ही कहलाता है।

5.82.40

हन्यते यस्तु यच्छक्त्या स तेनैव हतो भवेत्। निहन्ति खड्गः पुंशक्त्या हन्तैव प्रोच्यते पुमान्॥ ४० ॥

hanyate yastu yacchaktyā sa tenaiva hato bhavet | nihanti khaḍgaḥ puṃśaktyā hantaiva procyate pumān || 40 ||

Whoever is killed is killed by whoever holds the power to kill. That one alone is the true killer. The sword kills by the strength of the man, yet it is the man who is called the killer.

जो भी मारा जाता है, वह उसी की ताकत से मारा जाता है जिसके पास वह ताकत है। असली मारने वाला वही है। तलवार आदमी की ताकत से मारती है, फिर भी मारने वाला आदमी ही कहलाता है।

5.82.41

पीयते यस्तु यच्छक्त्या पीतं तेनैव तद्भवेत् । पात्रेण पीयते पानं पाता यस्तूच्यते नरः ॥ ४१ ॥

pīyate yastu yacchaktyā pītaṃ tenaiva tadbhavet | pātreṇa pīyate pānaṃ pātā yastūcyate naraḥ || 41 ||

Whatever is drunk is drunk by whoever holds the power to drink it. That one alone truly drinks it. The drink is drunk with a cup, yet it is the man who is called the drinker.

जो भी पिया जाता है, वह उसी की ताकत से पिया जाता है जिसके पास वह ताकत है। असल में पीने वाला वही है। पेय बर्तन से पिया जाता है, फिर भी पीने वाला आदमी ही कहलाता है।

5.82.42

प्रकृत्येवासि सुजडः समस्तज्ञेन बोध्यसे । तेनात्मैवात्मनात्मानं चिनोतीदं हि नो भवत् ॥ ४२ ॥

prakṛtyevāsi sujaḍaḥ samastajñena bodhyase | tenātmaivātmanātmānaṃ cinotīdaṃ hi no bhavat || 42 ||

By your own nature you are completely lifeless. You are made aware only by the all-knowing self. So it is the self alone, through itself, that knows the self. This never truly happens through you.

अपने स्वभाव से तुम पूरी तरह जड़ हो। तुम्हें सिर्फ उस सब कुछ जानने वाली आत्मा के कारण ही जाना जाता है। इसलिए आत्मा खुद ही, अपने आप से, आत्मा को जानती है। यह सच में तुम्हारे ज़रिए कभी नहीं होता।

5.82.43

अनारतं बोधयति त्वामात्मा परमेश्वरः । बोधनीया बुधैर्मूढाः किलावृत्तिशतैरपि ॥ ४३ ॥

anārataṃ bodhayati tvāmātmā parameśvaraḥ | bodhanīyā budhairmūḍhāḥ kilāvṛttiśatairapi || 43 ||

The self, the highest lord, is ceaselessly waking you up. Fools, indeed, must be taught by the wise even through hundreds of repetitions.

आत्मा, जो सबसे बड़ा ईश्वर है, तुम्हें लगातार जगा रही है। मूर्खों को तो बुद्धिमानों को सैकड़ों बार दोहरा दोहरा कर समझाना पड़ता है।

5.82.44

आत्मसत्तैव बोधैकरूपिणी स्फुरतीह हि । तयैव चित्तशब्दार्थावङ्गीकृत्य त्वया स्थितम् ॥ ४४ ॥

ātmasattai va bodhaikarūpiṇī sphuratīha hi | tayaiva cittaśabdārthāvaṅgīkṛtya tvayā sthitam || 44 ||

It is the very being of the self, whose one form is awareness, that shines here. By that same being alone you exist, having taken on the word and meaning mind.

जो यहां चमक रहा है, वह आत्मा का अपना अस्तित्व है, जिसका एक ही रूप है चेतना। तुम उसी अस्तित्व के सहारे टिके हो, और उसी को तुमने मन नाम और अर्थ देकर अपना लिया है।

5.82.45

एवं चित्त त्वमज्ञानादात्मशक्तेरुपागतम् । ज्ञाने त्वया विगलितं तीव्रे हिममिवातपे ॥ ४५ ॥

evaṃ citta tvamajñānādātmaśakterupāgatam | jñāne tvayā vigalitaṃ tīvre himamivātape || 45 ||

So, mind, you have arisen from the self's own power through ignorance. In knowledge you will melt away, like frost in fierce sunlight.

इस तरह, हे मन, तुम अज्ञान के कारण आत्मा की शक्ति से पैदा हुए हो। ज्ञान होने पर तुम पिघल जाओगे, जैसे तेज धूप में ओस पिघल जाती है।

5.82.46

तस्यामृतं त्वं मूढं त्वं नासि त्वं परमार्थतः । तदेवाहमिति व्यर्थमतो मास्त्वसुखाय ते ॥ ४६ ॥

tasyāmṛtaṃ tvam mūḍhaṃ tvam nāsi tvam paramārthataḥ | tadevāhamiti vyarthamato māstvasukhāya te || 46 ||

You are the immortal essence of that self. Foolish one, you do not exist in the ultimate sense. So the thought I am this is useless. Do not let it become a cause of sorrow for you.

तुम उस आत्मा का ही अमर अंश हो। मूर्ख, आखिरी सच में तुम्हारा अपना कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए मैं यही हूं, यह सोच बेकार है। इसे अपने दुख का कारण मत बनने दो।

5.82.47

असत्या चित्तकलना इन्द्रजाललता इव । विज्ञानमात्रमेवेह ब्राह्ममङ्गं विजृम्भितम् ॥ ४७ ॥

asatyā cittakalanā indrajālalatā iva | vijñānamātrameveha brāhmamaṅgaṃ vijṛmbhitam || 47 ||

The mind's imaginings are unreal, like the vines conjured up by a magic show. Here there is only pure consciousness, a part of Brahman unfolding itself.

मन की कल्पनाएं झूठी हैं, जैसे जादू के खेल में दिखाई गई लताएं झूठी होती हैं। यहां तो सिर्फ शुद्ध चेतना है, ब्रह्म का एक हिस्सा खुद को फैला रहा है।

5.82.48

नरामरजगद्रूपैर्ब्राह्मी शक्तिरुदेत्यलम् । सामुद्रकणकल्लोलजालैर्वैलेव वल्गति ॥ ४८ ॥

narāmarajadrūpairbrāhmī śaktirudetyalam | sāmudrakaṇakallolajālairvaileva valgati || 48 ||

The power of Brahman rises up fully as the forms of men, gods, and the world. It plays, like the tide, with countless drops and waves of the ocean.

ब्रह्म की शक्ति मनुष्यों, देवताओं और जगत के रूपों में पूरी तरह उभरती है। यह वैसे ही खेलती है जैसे समुद्र की लहरें और बूंदें ज्वार के साथ खेलती हैं।

5.82.49

चिन्मयश्चेद्भवेर्मूढ तत्तस्मात्परमात्पदात् । नित्यमव्यतिरिक्तं त्वं किमन्यत्परिशोचसि ॥ ४९ ॥

cinmayaścedbhavermūḍha tattasmātparamātpadāt | nityamavyatiriktaṃ tvaṃ kimanyatpariśocasi || 49 ||

If you are made of consciousness, fool, then you are never, ever different from that highest state. Why then do you grieve over anything else?

अगर तुम चेतना से बने हो, मूर्ख, तो तुम उस सबसे ऊंची अवस्था से कभी अलग नहीं हो। फिर तुम किसी और चीज़ का शोक क्यों करते हो।

5.82.50

सर्वगं सर्वभावस्थं सर्वरूपं हि तत्पदम् । तत्प्राप्तौ सर्वमेवाज्ञ प्राप्तं भवति सर्वदा ॥ ५० ॥

sarvagaṃ sarvabhāvasthaṃ sarvarūpaṃ hi tatpadam | tatprāptau sarvamevājña prāptaṃ bhavati sarvadā || 50 ||

That highest state reaches everywhere, stands in every state of being, and has every form. Ignorant one, once that is reached, everything is reached, forever.

वह सबसे ऊंची अवस्था हर जगह पहुंचती है, हर तरह के होने में मौजूद रहती है, और उसका हर रूप है। हे अज्ञानी, एक बार वह मिल जाए तो सब कुछ हमेशा के लिए मिल जाता है।

5.82.51

न त्वमस्ति न देहोस्तिब्रह्मास्तीह महत्स्फुरत् । अहंत्वमिति निःस्पन्दे स्फुरत्यार्तिहि कस्य का ॥ ५१ ॥

na tvamasti na dehostibrāhmāstīha mahatsphurat | ahaṃtvamiti niḥspande sphuratyārtihi kasya kā || 51 ||

You do not exist, the body does not exist. Only Brahman exists here, vast and shining. In that motionless reality, the sense of I and you arises. So whose suffering could there really be, and what suffering?

तुम नहीं हो, शरीर भी नहीं है। यहां सिर्फ ब्रह्म है, विशाल और चमकता हुआ। उस निश्चल सच्चाई में मैं और तुम का भाव उठता है। तो सच में दुख किसका है, और कैसा दुख।

5.82.52

आत्मा चेत्त्वं तदात्मैव सर्वगोऽस्तीह नेतरः । आत्मनोऽन्यज्जडत्वं चेत्तत्त्वं नास्त्यस्ति तद्वपुः ॥ ५२ ॥

ātmā cet tvam tadātmaiva sarvago'stīha netarah | ātmano'nyaj jadatvam cet tattvam nāstyasti tadvapuh || 52 ||

If you are the self, then only that all-pervading self exists here, nothing else. If instead you think you are something lifeless, other than the self, then you do not exist at all. Only that self's own form exists.

अगर तुम आत्मा हो, तो यहां सिर्फ वही सब जगह मौजूद आत्मा है, कुछ और नहीं। और अगर तुम खुद को आत्मा से अलग, जड़ पदार्थ समझते हो, तो तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं है। सिर्फ उस आत्मा का ही रूप है।

5.82.53

आत्मैव सर्वं त्रिजगत्तदन्यत्तु न किंचन । तत्त्वं किंचित्त्वमात्मान्यद्यदि तत्त्वं न किंचन ॥ ५३ ॥

ātmaiva sarvam trijagat tadanyat tu na kimcana | tattvam kimcittvamātmānyad yadi tattvam na kimcana || 53 ||

The self alone is everything, the three worlds. Apart from that there is nothing at all. If you are that self, you are something. If you think you are different from the self, then you are nothing at all.

आत्मा ही सब कुछ है, तीनों लोक। उसके अलावा कुछ भी नहीं है। अगर तुम वह आत्मा हो, तो तुम कुछ हो। अगर तुम खुद को आत्मा से अलग समझते हो, तो तुम कुछ भी नहीं हो।

5.82.54

अहं त्विदमहं तन्म इति व्यर्थं किमीहसे । असद्वपुः किं स्फुरति शशशृङ्गेण को हतः ॥ ५४ ॥

aham tvidamaham tanma iti vyartham kimeehase | asadvapuh kim sphurati shashashringena ko hatah || 54 ||

I am this, I am that, that is mine, why do you strive after such useless talk? Does something unreal ever truly appear? Who has ever been struck by a hare's horn?

मैं यह हूं, मैं वह हूं, वह मेरा है, इस बेकार बात के पीछे तुम क्यों भागते हो। क्या कोई झूठी चीज़ कभी सच में दिखाई देती है। खरगोश के सींग से आज तक किसे चोट लगी है।

5.82.55

तृतीया कलना नास्ति चिज्जडांशेतरा शठ । छायातपनयोर्मध्ये तृतीयेवानुरञ्जना ॥ ५५ ॥

tritiya kalana nasti cijjadaamsetara shatha | chayatapanayor madhye tritiyevaanuranjana || 55 ||

There is no third thing, rogue, apart from the part that is consciousness and the part that is lifeless matter, just as there is no third thing called coloring between shade and sunlight.

धूर्त, चेतना के हिस्से और जड़ पदार्थ के हिस्से के अलावा कोई तीसरी चीज़ नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे छाया और धूप के बीच रंगत नाम की कोई तीसरी चीज़ नहीं होती।

5.82.56

सत्यावलोकनाज्जाते चित्तजाड्यदृशोः क्षये। संपद्यते यत्तु तज्जं स्वसंवेदनमात्रकम्॥ ५६॥

satyavalokanaj jate cittajadyadrisho kshaye | sampadyate yattu tajjam svasamvedanamatrakam || 56 ||

When true seeing is born and the mind's dull sight comes to an end, what arises then, born from that, is nothing but the plain awareness of oneself.

जब सच्चा देखना जन्म लेता है और मन की धुंधली नज़र मिट जाती है, तब जो कुछ पैदा होता है वह सिर्फ अपने आप का सीधा एहसास है।

5.82.57

तेन मूढ न कर्तृत्वं न भोक्तृत्वं तवापि हि। तदेवासि परं ब्रह्म त्यज मौर्ख्यं भवात्मवान्॥ ५७॥

tena mūḍha na kartṛtvaṃ na bhoktṛtvaṃ tavāpi hi | tadevāsi paraṃ brahma tyaja maurkhyam bhavātmavān || 57 ||

So, fool, you have no doership and no enjoyership at all. You are that supreme reality itself. Give up your foolishness and hold on to your true self.

इसलिए, हे मूर्ख, न तू कुछ करने वाला है, न कुछ भोगने वाला। तू खुद वही परम ब्रह्म है। अपनी मूर्खता छोड़ दे और अपने असली स्वरूप में टिक जा।

5.82.58

केवलं ज्ञत्वविषयमुपदेशार्थसिद्धये। त्वया करणभूतेन करोत्यात्मेति कथ्यते॥ ५८॥

kevalaṃ jñatvaviṣayamupadeśārthasiddhaye | tvayā karaṇabhūtena karotyātmeti kathyate || 58 ||

It is only to make this teaching work, only as something for you to understand, that people say the self acts, with you serving merely as its instrument.

यह तो केवल उपदेश को कामयाब बनाने के लिए और समझाने की खातिर कहा जाता है कि आत्मा करती है, जबकि तू तो बस उसका एक साधन भर है।

5.82.59

असत्स्वरूपं करणं जडं निरवलम्बनम्। निःस्पन्दनं न स्यन्देत कर्तृसंबोधनं विना॥ ५९॥

asatsvarūpaṃ karaṇaṃ jaḍaṃ niravalambanam | niḥspandanaṃ na syandeta kartṛsaṃbodhanaṃ vinā || 59 ||

The instrument is unreal by its own nature, lifeless, and without any support of its own. It has no motion in it, and it cannot move unless a doer sets it moving.

यह साधन अपने आप में झूठा, निर्जीव और निराधार है। इसमें अपने आप कोई हलचल नहीं होती, और जब तक कोई करने वाला इसे न चलाए, यह चल ही नहीं सकता।

5.82.60

अकर्तुः करणस्यास्य शक्तिः काचिन्न विद्यते। दात्रस्य लावकाभावे कर्तुं किमिव शक्तता॥ ६०॥

akartuḥ karaṇasyāsya śaktiḥ kācinnavidyate | dātrasya lāvakābhāve kartuṃ kimiva śaktatā || 60 ||

Without a doer, this instrument has no power of its own at all, just as a sickle has no power to cut when no one is there to reap with it.

बिना किसी करने वाले के, इस साधन में अपनी कोई ताकत नहीं होती, जैसे दरांती में, अगर उसे चलाने वाला कोई न हो, तो काटने की कोई ताकत नहीं होती।

5.82.61

खड्गप्रहारविच्छेदक्रियायां पुंसि शक्तता । न खड्गे सुजडे चित्त सर्वाङ्गेष्वपि शक्तता ॥ ६१ ॥

khadgaprahāravicchedakriyāyāṃ puṃsi śaktatā | na khaḍge sujaḍe citta sarvāṅgeṣvapi śaktatā || 61 ||

Mind, the power to strike and cut with a sword belongs to the man who wields it, not to the sword. The sword is completely lifeless, and it has no power in any part of it.

हे मन, तलवार के वार से काटने की ताकत उसे चलाने वाले आदमी में होती है, तलवार में नहीं। तलवार पूरी तरह निर्जीव है, और उसके किसी भी हिस्से में कोई ताकत नहीं होती।

5.82.62

तस्मान्नासि सखे कर्तृ मा व्यर्थं दुःखभाग्भव । परार्थं क्लेशिता मूर्ख प्राकृतेषु न शोभते ॥ ६२ ॥

tasmānnāsi sakhe kartṛ mā vyarthaṃ duḥkhabhāgbhava | parārthaṃ kleśitā mūrkha prākṛteṣu na śobhate || 62 ||

So, friend, you are not the doer. Do not take on sorrow for nothing. Fool, suffering for another's sake does not look right even among ordinary people.

इसलिए, हे मित्र, तू करने वाला नहीं है। बेकार में दुखी मत हो। हे मूर्ख, दूसरे की खातिर दुख उठाना साधारण लोगों में भी ठीक नहीं लगता।

5.82.63

ईश्वरो नेदृशः शोच्यो यस्त्वया सदृशो भवेत् । न च तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥ ६३ ॥

īśvaro nedṛśaḥ śocyo yastvayā sadṛśo bhavet | na ca tasya kṛtenārtho nākṛteneha kaścana || 63 ||

The ruling self is not so pitiful that it would become like you. Acting gains it nothing, and not acting gains it nothing either.

वह परम आत्मा इतना दयनीय नहीं है कि तेरे जैसा बन जाए। उसे न कुछ करने से कोई फायदा है, न कुछ न करने से।

5.82.64

गर्वात्तूपकरोम्येनमिति केवलमल्पधीः । क्लिश्यते वसतां त्वर्थो न किंचिदुपयुज्यते ॥ ६४ ॥

garvāttūpakaromye namiti kevalamalpadhīḥ | kliśyate vasatāṃ tvartho na kiṃcidupayujyate || 64 ||

Only a person of little sense tires himself out with the proud thought that he is helping the other. But this serves no purpose at all for one who is already content in himself.

केवल कम समझ वाला आदमी ही यह घमंड पालकर कि वह दूसरे की मदद कर रहा है, खुद को थका लेता है। पर जो पहले से ही अपने आप में तृप्त है, उसके लिए इससे कोई मतलब नहीं निकलता।

5.82.65

कर्तुर्भोगेश्वरस्यैवमर्थे चेदनुवर्तसे । तदस्य काचिन्नेच्छेह तृप्तत्वात्सर्वदैव हि ॥ ६५ ॥

karturbhogeśvarasyai vamarthe cedanuvartase | tadasya kācinnēcchēha tṛptatvātsarvadaiva hi || 65 ||

And if you keep on acting for the sake of this so-called doer, this lord of enjoyment, know that he wants nothing at all from it, because he is always completely content.

और अगर तू यह सोचकर काम करता रहे कि यह उस भोग के स्वामी करने वाले के लिए है, तो जान ले कि उसे इससे कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि वह हमेशा पूरी तरह तृप्त है।

5.82.66

अकृत्रिमावभासेन सर्वगेन चिदात्मना । एकेनैवेदमापूर्णं कल्पनैवास्ति नेतरा ॥ ६६ ॥

akṛtrimāvabhāsena sarvagena cidātmanā | ekeneivedamāpūrṇaṃ kalpanai vāsti netarā || 66 ||

By this one natural light, the all-pervading self that is pure awareness, all this is filled completely. Anything beyond that is only a made-up idea, nothing more.

इस एक स्वाभाविक प्रकाश से, जो हर जगह फैली हुई चेतना ही है, यह सब कुछ पूरी तरह भरा हुआ है। इसके अलावा जो कुछ भी दिखता है, वह केवल कल्पना है, और कुछ नहीं।

5.82.67

एकानेकावभासेन समस्तेन तदात्मना । आत्मन्येवान्तरात्मान्तः क्रियते किं किमिष्यते ॥ ६७ ॥

ekānekāvabhāsena samastena tadātmanā | ātmanyevāntarātmāntaḥ kriyate kiṃ kimiṣyate || 67 ||

That one complete self shows itself as both one and many, and within that very self stands the inner self. So what is there left to do, and what is there left to want?

वह एक पूर्ण आत्मा ही एक और अनेक रूप में दिखती है, और उसी आत्मा के भीतर भीतरी आत्मा बसी है। तो अब करने को क्या बचा, और चाहने को क्या बचा?

5.82.68

त्वादृशस्य तु दृष्ट्यैव क्षुब्धता जयते मुधा । आलोक्य राजमहिषीं यूनो मदमयीं तथा ॥ ६८ ॥

tvādṛśasya tu dṛṣṭyai'va kṣubdhatā jayate mudhā | ālokya rājamahiṣīṃ yūno madamayīṃ tathā || 68 ||

In someone like you, mere looking stirs up trouble for nothing, the way a young man, catching sight of the king's queen, is filled with a heady desire for no reason.

तेरे जैसे किसी में, सिर्फ देखने भर से बेवजह हलचल पैदा हो जाती है, जैसे कोई जवान आदमी राजा की रानी को देखकर बिना किसी वजह मोह में पड़ जाता है।

5.82.69

आत्मना सह संबद्धे चेतः कर्त्रसि सुन्दर । किंतु नास्यासि संबन्धि कुसुमस्य यथा फलम् ॥ ६९ ॥

ātmanā saha saṃbadhe ceṭh kartṛasi sundara | kiṃtu nāsyāsi saṃbandhi kusumasya yathā phalaṃ || 69 ||

Mind, fair one, in the mind joined with the self you are called the doer. But you do not truly belong to it, the way a fruit does not truly belong to the flower it comes from.

हे मन, हे सुंदर, आत्मा से जुड़े हुए मन में तुझे करने वाला कहा जाता है। पर तू सच में उससे उतना नहीं जुड़ा, जितना फल फूल से नहीं जुड़ा होता जिससे वह निकलता है।

5.82.70

द्वितीयेन समं यैषा तत्तावद्भवनैकता । सा संबन्धगतिः प्रोक्ता प्राग्द्वित्वादधुनैकता ॥ ७० ॥

dvitīyena samaṃ yaiṣā tattāvadbhavenaikatā | sā saṃbandhagatiḥ proktā prāgdvitvādadhunaikatā || 70 ||

When a thing exists along with a second thing, that being together is what is called its oneness with it. This is what relation means: what were two before now count as one.

जब कोई चीज़ किसी दूसरी चीज़ के साथ रहती है, तो यही साथ रहना उसकी उससे एकता कहलाती है। रिश्ते का यही मतलब है, जो पहले दो थे, वे अब एक माने जाते हैं।

5.82.71

नानाप्रकाररचना नानारूपक्रियोन्मुखी । सुखदुःखदशाऽहेतुर्भवान्नैकविधास्मृता ॥ ७१ ॥

nānāprakāraracanā nānārūpakriyonmukhī | sukhaduḥkhadaśā'heturbhavānnaikavidhāsmṛtā || 71 ||

This world, built up in so many different ways and turned toward actions of so many different forms, is not the real cause of pleasure and pain. And you too are known to be of no single kind, but many.

यह जगत, इतने अलग-अलग ढंग से बना और इतने अलग-अलग कामों की ओर मुड़ा हुआ, सुख-दुख की असली वजह नहीं है। और तू भी एक रूप का नहीं बल्कि अनेक रूपों का जाना जाता है।

5.82.72

संबन्धः समयोर्दृष्टस्तथाऽर्धसमयोरपि । न विलक्षणयोश्चान्यस्तस्मिन्सति जगत्त्रये ॥ ७२ ॥

sambandhaḥ samayordṛṣṭastathārdhasamayorapi | na vilakṣaṇayoścānyastasmin sati jagattraye || 72 ||

A relation is seen to hold between two equal things, and even between two things that are only half alike. But between two things that are wholly unlike, there is no relation at all, anywhere in the three worlds.

रिश्ता दो बराबर चीज़ों के बीच देखा जाता है, और थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती चीज़ों के बीच भी। पर जो चीज़ें बिल्कुल अलग हैं, उनके बीच तीनों लोकों में कोई रिश्ता नहीं होता।

5.82.73

द्रव्यान्तरगुणा द्रव्याण्याश्रयन्ति बहून्यलम् । संविदश्च्यवनं दुःखं संविदो मा च्युतो भव ॥ ७३ ॥

dravyāntaraguṇā dravyāṇyāśrayanti bahūnyalam | saṃvidaścyavanaṃ duḥkhaṃ saṃvido mā cyuto bhava || 73 ||

The qualities of one thing can rest on many other things as well. Falling away from awareness is what suffering is, so do not fall away from awareness.

एक चीज़ के गुण कई दूसरी चीज़ों पर भी टिक जाते हैं। चेतना से गिर जाना ही दुख है, इसलिए चेतना से मत गिरो।

5.82.74

एतावतैकध्यानेन नित्यध्यानोऽथवात्मदृक् । अभावे दुःखदस्यान्तर्दृशा दृश्यस्य वस्तुनः ॥ ७४ ॥

etāvataikadhyānena nityadhyāno'thavātmadṛk | abhāve duḥkhadasyāntardṛśā dṛśyasya vastunaḥ || 74 ||

With just this one act of meditation, a person becomes a constant meditator, a seer of the self, once the sorrow-causing thing he used to see is no longer there for his inward sight.

बस इस एक ध्यान से, आदमी हमेशा ध्यान करने वाला बन जाता है, अपनी आत्मा को देखने वाला, जब वह दुख देने वाली वह दिखने वाली चीज़ अब उसकी भीतरी नज़र में नहीं रहती।

5.82.75

संकल्पोन्मुखतां विद्धि दुःखदां संविदश्च्युतिम् । जडेषूपलभूतेषु मनोदेहेन्द्रियादिषु ॥ ७५ ॥

saṅkalponmukhatāṃ viddhi duḥkhadāṃ saṃvidaścyutim | jaḍeṣūpalabhūteṣu manodehendriyādiṣu || 75 ||

Know that turning your intention toward lifeless things that have become objects to perceive, the mind, the body, the senses, and the rest, brings sorrow. It is a falling away from awareness.

यह जान ले कि जड़ चीज़ों की ओर, जो देखने-सुनने में आती हैं, जैसे मन, शरीर, इंद्रियाँ आदि, मन को मोड़ना ही दुख देता है। यही चेतना से गिर जाना है।

5.82.76

कीदृशी कर्तृता चित्त पुष्पं व्योम्नि कथं भवेत् । निरस्तकलना पङ्के मननध्वंसरूपिणि ॥ ७६ ॥

kīdṛśī kartṛtā citta puṣpaṃ vyomni kathaṃ bhavet | nirastakalanā paṅke mananadhvaṃsarūpiṇi || 76 ||

What sort of doership could there be, mind? How could a flower grow in the sky? Once false imagining is thrown away, doership is as absent as that, lost in the mire where all thinking itself has collapsed.

करने का भाव कैसा हो सकता है, हे मन? आकाश में फूल कैसे खिल सकता है? जब झूठी कल्पना छूट जाती है, तो करने का भाव भी वैसे ही नहीं रहता, उस दलदल में खो जाता है जहाँ सोचना ही खत्म हो चुका है।

5.82.77

न चैवात्मनि कर्तृत्वं संभवत्यम्बराङ्गवत् । अयं केवलमात्मैव नानानानातयात्मनि ॥ ७७ ॥

na caivātmani kartṛtvaṃ saṃbhavatyambarāṅgavat| ayaṃ kevalamātmaiva nānānānātayātmani || 77 ||

And doership can no more exist in the self than the empty sky can have arms and legs. All this is simply the self alone, wearing the appearance of many within itself.

और आत्मा में करने का भाव वैसे ही असंभव है जैसे खाली आकाश के हाथ-पैर होना असंभव है। यह सब बस वही एक आत्मा है, जो अपने भीतर अनेक रूप धारण किए हुए दिखती है।

5.82.78

स्फुरत्यब्धिरिवाम्भोभिः फेनबुद्बुदवीचिभिः । आभासमात्रे सर्वस्मिन्स्फुरत्यस्मिंश्चिदात्मनि ॥ ७८ ॥

sphuratyabdhirivāmbhobhiḥ phenabudbudavīcibhiḥ| ābhāsamātre sarvasmin sphuratyasmiṃścidātmani || 78 ||

It shines the way the ocean shines with its waters, its foam, its bubbles, its waves. In all this, which is only appearance, it shines within this one self that is pure awareness.

यह वैसे ही चमकता है जैसे समुद्र अपने पानी, झाग, बुलबुलों और लहरों के साथ चमकता है। यह सब कुछ जो केवल दिखावा है, इस एक चेतना रूपी आत्मा में ही चमक रहा है।

5.82.79

द्वितीया नास्ति कलना तप्ताङ्गार इवाम्बुधौ । कलनारहिते देवे देहे मनसि वा जडे ॥ ७९ ॥

dvitīyā nāsti kalanā taptāṅgāra ivāmbudhau| kalanārahite deve dehe manasi vā jaḍe || 79 ||

In the shining self, free of all imagining, there is no room for any other imagined thing, no more than a burning coal could exist inside the ocean, whether you look for it in the body or in the lifeless mind.

उस चमकते हुए, कल्पना से रहित आत्मा में कोई दूसरी कल्पना नहीं टिक सकती, जैसे जलता हुआ अंगारा समुद्र के भीतर नहीं रह सकता, चाहे उसे शरीर में खोजो या जड़ मन में।

5.82.80

संवित्संवेद्यनिर्मुक्ता सारं सुन्दर नेतरत् । इदमन्यदिदं नान्यच्छुभं वाऽशुभमेव च ॥ ८० ॥

saṃvitsaṃvedyanirmuktā sāraṃ sundara netarat| idamanyadidaṃ nānyacchubhaṃ vā'śubhameva ca || 80 ||

Awareness, free of anything it knows, is the one real essence, fair one, nothing else is. The idea that this is one thing and that is another, or that this is good and that is bad, is not it.

चेतना, जो किसी भी जानी हुई चीज़ से मुक्त है, ही असली सार है, हे सुंदर, और कुछ नहीं। यह विचार कि यह अलग है और वह अलग है, या यह अच्छा है और वह बुरा है, सार नहीं है।

5.82.81

इत्यसत्कल्पना नास्ति यथा नभसि काननम्। संवेद्यरहितं संविन्मात्रमेवेदमाततम्। तत्रायमहमन्योऽयमित्यसत्कलना कथम् ॥ ८१ ॥

ityasatkalpanā nāsti yathā nabhasi kānanam| saṃvedyarahitaṃ saṃvinmātramevedamātatam| tatrāyamahamanyo'yamityasatkalanā katham || 81 ||

So this false idea does not exist at all, no more than a forest exists in the sky. What is here, free of anything to be known, is only awareness, spread through everything. In that, how could the false thought that this is me and that is someone else ever arise?

इसलिए यह झूठी कल्पना है ही नहीं, जैसे आकाश में जंगल नहीं होता। जो यहाँ है, वह किसी जानी हुई चीज़ से मुक्त होकर, बस चेतना है, जो हर जगह फैली हुई है। उसमें यह विचार कि यह मैं हूँ और वह कोई और है, कैसे उठ सकता है?

5.82.82

अनादिमति नीरूपे सर्वगे विततात्मनि। आरोपयेत्कः कलनामृग्वेदं व्योम्नि को लिखेत्॥ ८२ ॥

anādimati nīrūpe sarvage vitatātmani | āropayetkaḥ kalanāmṛgvedaṃ vyomni ko likhet || 82 ||

On the beginningless, the formless, the all-pervading self that stretches through everything, who could place a false idea? Who could write out the Rig Veda on the empty sky?

जो बिना आरंभ का है, रूपरहित है, सब जगह फैला हुआ है, उस सर्वव्यापी आत्मा पर कोई झूठा विचार कैसे थोप सकता है? आकाश पर ऋग्वेद कौन लिख सकता है?

5.82.83

नित्योदिते सकलवस्तुपदार्थसारे संवित्स्थिते भरितनिर्भरभूरिदिक्कम्। आत्मन्यसत्यमिव साधु गतेऽमलत्वात् क्षीणौ सुखासुखलवौ मम वै स मोहः ॥ ८३ ॥

nityodite sakalavastupadārthasāre saṃvitsthite bharitanirbharabhūridikkaṃ | ātmanyasatyamiva sādhu gate'malatvāt kṣīṇau sukhāsukhalavau mama vai sa mohaḥ || 83 ||

In the self, ever shining, the essence of all things, where awareness stands filled completely in every direction, my delusion has gone away entirely, like something that was never real, through its own purity, and the last bits of pleasure and pain have both worn away. That, indeed, was my delusion.

उस आत्मा में, जो सदा चमकती है, जो सब वस्तुओं का सार है, जिसमें चेतना हर दिशा में पूरी तरह भरी हुई है, मेरा मोह अपनी शुद्धता के कारण पूरी तरह मिट गया, मानो वह कभी सच था ही नहीं, और सुख-दुख के आखिरी टुकड़े भी घुल गए। यही तो मेरा मोह था।

Chapter 83

5.83.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । भूयो मुनिवरो धीरो धिया धवलमेधया । स्वमिन्द्रियगणं गुप्तो बोधयामास साध्विदम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | bhūyo munivaro dhīro dhiyā dhavalamedhayā | svamindriyagaṇaṃ gupto bodhayāmāsa sādhvidam || 1 ||

Sri Vasishtha said: Again, the best of sages, steady and protected, with his clear, bright mind, rightly taught this to his own group of senses.

श्री वसिष्ठ ने कहा: फिर श्रेष्ठ मुनि ने, जो धैर्यवान और सुरक्षित था, अपने साफ़ और तेज़ मन से अपनी इंद्रियों के पूरे समूह को यह बात सही तरीके से समझाई।

5.83.2

तच्चेन्द्रियगणस्यार्थे शृणु वक्ष्यामि ते स्फुटम् । श्रुत्वा तद्भावनामेत्य परां निर्दुःखतां व्रज ॥ २ ॥

taccendriyagaṇasyārthe śṛṇu vakṣyāmi te sphuṭam | śrutvā tadbhāvanāmetya parāṃ nirduḥkhatāṃ vraja || 2 ||

Listen, and I will tell you clearly what he said about the group of senses. Hear it, come to that same understanding, and reach the highest freedom from sorrow.

सुनो, मैं तुम्हें साफ़-साफ़ बताऊँगा कि उसने इंद्रियों के इस समूह के बारे में क्या कहा। इसे सुनकर वैसी ही समझ पाओ, और सबसे बड़े दुःख-रहित पद तक पहुँचो।

5.83.3

भवतामात्मसत्तैषा दुःखायैवान्तदायिनी । असत्यामात्मनः सत्तां तद्भवन्तस्त्यजन्त्विति ॥ ३ ॥

bhavatāmātmasattaiṣā duḥkhāyaivāntadāyinī | asatyāmātmanaḥ sattāṃ tadbhavantastyajantviti || 3 ||

This sense that you exist brings you nothing but sorrow, and in the end, death. So give up this false existence of yours.

तुम्हारा यह होने का एहसास तुम्हें सिर्फ़ दुःख देता है, और आख़िर में मौत भी। इसलिए अपने इस झूठे अस्तित्व को छोड़ दो।

5.83.4

मदीयेनोपदेशेन सत्तैषा भवतां क्षयम् । गतैवेति स्फुटं मन्ये यूयं ह्यज्ञानसंभवाः ॥ ४ ॥

madīyenopadeśena sattaiṣā bhavatāṃ kṣayam | gataiveiti sphuṭaṃ manye yūyaṃ hyajñānasambhavāḥ || 4 ||

I am sure that through my teaching, this existence of yours has already come to an end, because you were born from ignorance alone.

मुझे पूरा यक़ीन है कि मेरी इस शिक्षा से तुम्हारा यह अस्तित्व अब ख़त्म हो चुका है, क्योंकि तुम सिर्फ़ अज्ञान से पैदा हुए हो।

5.83.5

स्वसत्ता स्फुटतां याति दुःखाय तव चित्तक । तप्तकाञ्चनरुल्लासो दाहायैव स्वपार्श्वयोः ॥ ५ ॥

svasattā sphuṭatāṃ yāti duḥkhāya tava cittaka | taptakāñcanarullāso dāhāyaiva svapārśvayoḥ || 5 ||

Little mind, your own sense of self becomes clear only to bring you pain, like the glow of heated gold, which only burns whatever lies on either side of it.

हे छोटे मन, तेरा अपना यह होने का एहसास सिर्फ़ तुझे दुःख देने के लिए साफ़ होता है, जैसे तपे हुए सोने की चमक सिर्फ़ अपने दोनों तरफ़ की चीज़ों को जलाती है।

5.83.6

पश्य त्वयि सति भ्रान्तजलकल्लोलसंकुलाः । विशन्ति कालजलधिं संसारसरितां गणाः ॥ ६ ॥

paśya tvayi sati bhrāntajalakallolasankulāḥ | viśanti kālajaladhiṃ saṃsārasaritāṃ gaṇāḥ || 6 ||

Look, as long as you exist, the many rivers of this world, full of confused, tossing waves, keep flowing into the ocean of time.

देखो, जब तक तुम हो, तब तक इस संसार की अनेक नदियाँ, जो उलझी हुई और उछलती लहरों से भरी हैं, समय के सागर में गिरती रहती हैं।

5.83.7

पतन्त्यहमहमिकाविहितान्योन्यचिन्तिताः । कुतोऽपि दुःखावलयो धारा आसारगा इव ॥ ७ ॥

patantyahamahamikāvihitānyonyacintitāḥ | kuto'pi duḥkhāvalayo dhārā āsāragā iva || 7 ||

Streams of sorrow fall one after another, each pushing to be first, pouring from who knows where, like the streams of a heavy downpour.

एक के बाद एक दुःख की धाराएँ गिरती हैं, हर एक पहले आने की होड़ में, न जाने कहाँ से बरसती हुई, जैसे तेज़ बारिश की धाराएँ गिरती हैं।

5.83.8

परिस्फुरत्यपर्यन्ता हृदयोन्मूलनोद्यता । आक्रन्दकारिणी क्रूरा भावाभावविषूचिका ॥ ८ ॥

parisphuratyaparyantā hṛdayonmūlanodyatā | ākrandakāriṇī krūrā bhāvābhāvaviṣūcikā || 8 ||

It quivers without end, bent on tearing up the heart, cruel, making it cry out, the cholera of being and not being.

यह बिना रुके काँपती है, दिल को जड़ से उखाड़ने पर तुली है, क्रूर है, उससे चीख निकलवा देती है, यह होने और न होने की हैज़े जैसी बीमारी है।

5.83.9

कासश्वासरणद्भृङ्गा कलेवरजरद्द्रुमे । विकसत्यमलोद्योता जरामरणमञ्जरी ॥ ९ ॥

kāsaśvāsaraṇadbhṛṅgā kalevarajaraddrume | vikasatyamalodyotā jarāmaraṇamañjarī || 9 ||

On the aging tree of the body, the flowering cluster of old age and death opens up, shining bright and clear, its humming bees the sound of coughing and heavy breath.

शरीर के इस बूढ़े होते पेड़ पर बुढ़ापे और मौत का यह फूलों का गुच्छा खिलता है, साफ़ और चमकीला, और इसके गुनगुनाते भँवरे खाँसी और हाँफती साँस की आवाज़ हैं।

5.83.10

कल्लोलव्यालवलिते शरीरश्वभ्रकोटरे । घननीहारखे स्वान्तश्चिन्ताचपलमर्कटी ॥ १० ॥

kallolavyālavalite śarīraśvabhrakoṭare | ghananīhārakhe svāntaścintācapalamarkaṭī || 10 ||

In the hollow pit of the body, coiled round with snake-like waves, under a sky thick with fog, the heart is a restless monkey of worry.

शरीर के इस गड्ढे जैसे खोखले हिस्से में, जो साँप जैसी लहरों से घिरा है, घने कोहरे वाले आकाश के नीचे, यह मन चिंता का एक बेचैन बंदर है।

5.83.11

लोभनाट्यारटत्पक्षी तीक्ष्णया द्वन्द्वतुण्डया । कायजीर्णद्रुमादस्माद्गुणखण्डं निकृन्तति ॥ ११ ॥

lobhanāṭyāraṭatpakṣī tīkṣṇayā dvandvatuṇḍayā | kāyajīrṇadrumādasmādguṇakhaṇḍaṃ nikṛntati || 11 ||

The bird of greed, screeching through its show, tears off a piece of virtue from this decaying tree of the body with its sharp, two-part beak.

लालच का यह पक्षी अपने तमाशे में चिल्लाता हुआ, अपनी तेज़ दोहरी चोंच से शरीर के इस सड़ते पेड़ से अच्छाई का एक टुकड़ा नोच लेता है।

5.83.12

हृदयावकरं कीर्णमितश्चेतश्च कर्कशः । अपवित्रो दुराचारः कुरुते कामकुक्कुटः ॥ १२ ॥

hṛdayāvakaraṃ kīrṇamitaścetśca karkaśaḥ | apavitro durācāraḥ kurute kāmakukkuṭaḥ || 12 ||

The rooster of desire, rough, dirty, and ill-behaved, turns the heart into a garbage heap, scattering filth here and there.

वासना का यह मुर्गा, जो रूखा, गंदा और बदतमीज़ है, दिल को कूड़े का ढेर बना देता है, और गंदगी को इधर-उधर बिखेर देता है।

5.83.13

महत्यां मोहयामिन्यामुल्बणोऽज्ञानकौशिकः । श्मशान इव वेतालः परिवल्गति हृद्द्रुमे ॥ १३ ॥

mahatyāṃ mohayāminyāmulbaṇo'jñānakauśikaḥ | śmaśāna iva vetālaḥ parivalgati hṛddrume || 13 ||

In the great night of delusion, the fierce owl of ignorance hops about in the tree of the heart, like a ghost haunting a cremation ground.

मोह की इस बड़ी रात में, अज्ञान का यह डरावना उल्लू दिल के पेड़ पर उछल-कूद करता है, जैसे श्मशान में कोई भूत घूमता है।

5.83.14

एताश्चान्याश्च बह्व्योऽपि त्वयीन्द्रियगणे सति । पिशाच्य इव शर्वर्यां प्रवल्गन्त्यशुभश्रियः ॥ १४ ॥

etāścānyāścabahvyo'pi tvayīndriyagaṇe sati | piśācya iva śarvaryāṃ pravalgantyaśubhaśriyaḥ || 14 ||

These, and many others too, leap about like female ghosts in the night, as long as you, the group of senses, exist. All of them are ill-fated glories.

ये, और भी कई ऐसी चीज़ें, रात में औरत-भूतनियों की तरह उछलती-कूदती हैं, जब तक तुम, इंद्रियों का यह समूह, मौजूद हो। ये सब अशुभ शानें हैं।

5.83.15

त्वयि त्वसति हे साधो सर्वा एव शुभश्रियः । प्रभात इव पद्मिन्यः सालोकं विलसन्त्यलम् ॥ १५ ॥

tvayi tv asati he sādho sarvā eva śubhaśriyaḥ | prabhāta iva padminyaḥ sālokaṃ vilasantyalam || 15 ||

But good one, when you do not exist, every fortunate and good thing shines out fully in the light, like lotus flowers at daybreak.

लेकिन हे भले, जब तुम नहीं होते, तब हर अच्छी और शुभ चीज़ रोशनी में पूरी तरह खिल उठती है, जैसे भोर में कमल के फूल खिलते हैं।

5.83.17

अशङ्कितनभःकोशपतिताकुलपूरवत् । नापतन्ति विकल्पौघाश्चिरं वैकल्यकारिणः ॥ १७ ॥

aśaṅkitanabhaḥkośapatitākulapūravat | nāpatanti vikalpaughāściraṃ vaikalyakāriṇaḥ || 17 ||

Floods of doubt and confused imagining, which cause harm for a long time, do not fall the way a sudden, raging flood bursts down from the sky.

शक और उलझे हुए खयालों की धाराएँ, जो लंबे समय तक गड़बड़ी पैदा करती हैं, आकाश से अचानक फूटी हुई तेज़ बाढ़ की तरह नहीं गिरतीं।

5.83.18

सर्वस्याह्लादनी शान्ता मैत्री परमपावनी । अभ्युदेति हृदो हृद्या सुतरोरिव मञ्जरी ॥ १८ ॥

sarvasya ahlādanī śāntā maitrī paramapāvanī | abhyudeti hṛdo hṛdyā sutaroriva mañjarī || 18 ||

Friendliness rises from the heart, calm, warm, delighting everyone, deeply cleansing, like the flowering cluster on a fine tree.

दिल से मैत्री-भाव उठता है, शांत, प्यारा, सबको खुशी देने वाला और गहराई से पवित्र करने वाला, जैसे किसी अच्छे पेड़ पर फूलों का गुच्छा खिलता है।

5.83.19

अन्तश्छिद्रवती जाड्ययुक्तायुक्तगुणा स्वयम्। चिन्ता शोषमुपायाति हिमदग्धेव पद्मिनी ॥ १९ ॥

antaśchidravatī jāḍyayuktāyuktaguṇā svayam | cintā śoṣamupāyāti himadagdhāiva padminī || 19 ||

Worry, hollow inside, dull, its good qualities gone, dries up on its own, like a lotus plant scorched by frost.

चिंता, जो अंदर से खोखली है, सुस्त है, जिसके अच्छे गुण जाते रहे हैं, अपने आप सूख जाती है, जैसे पाले से झुलसा हुआ कमल का पौधा सूख जाता है।

5.83.20

आलोकः स्फुटतामन्तरायात्यज्ञानसंक्षये। प्रशाम्यत्यम्बुदे व्योम्नि शरदीवार्कमण्डलम् ॥ २० ॥

ālokaḥ sphuṭatāmantarāyātyajñānasankṣaye | praśāmyatyambude vyomni śaradīvārkamaṇḍalam || 20 ||

Light becomes clear inside, once ignorance is destroyed, like the sun's disc growing clear in a cloudy sky in autumn.

अज्ञान के खत्म होते ही भीतर रोशनी साफ़ हो जाती है, जैसे शरद ऋतु में बादलों भरे आकाश में सूरज साफ़ दिखने लगता है।

5.83.21

प्रसन्नं स्फारगाम्भीर्यमक्षुब्धमपराहतम्। हृदयं समतामेति शान्तवात इवार्णवः ॥ २१ ॥

prasannaṃ sphāragāmbhīryamakṣubdhamaparāhatam | hṛdayaṃ samatāmeti śāntavāta ivārṇavaḥ || 21 ||

The heart becomes clear, deep, calm, and unshaken, settling into evenness, like the ocean when the wind dies down.

दिल साफ़, गहरा, शांत और अडिग हो जाता है, बराबर और स्थिर हो जाता है, जैसे हवा थमने पर समंदर शांत हो जाता है।

5.83.22

अमृतापूरपूर्णेन नित्यानन्दमयेन च स्थीयते पुरुषेणान्तः शीतेन शशिना यथा ॥ २२ ॥

amṛtāpūrapūrṇena nityānandamayena ca sthīyate puruṣeṇāntaḥ śītena śaśinā yathā || 22 ||

One stays within, filled with a flood of nectar, made of endless joy, like the cool moon.

इंसान अपने भीतर टिका रहता है, अमृत की बाढ़ से भरा हुआ, हमेशा के आनंद से भरपूर, जैसे ठंडा चाँद।

5.83.23

संविदः स्फुटतामन्तरायान्त्यज्ञानसंक्षये संविदंशैकविश्रान्तं समग्रं सचराचरम् ॥ २३ ॥

saṃvidaḥ sphuṭatāmantarāyāntyajñānasankṣaye saṃvidaṃśaikaviśrāntaṃ samagraṃ sacarācaram || 23 ||

When ignorance ends, awareness grows clear within, the awareness in which the whole world, everything that moves and everything that stays still, rests as a single part.

जब अज्ञान खत्म होता है, तब भीतर चेतना साफ़ हो जाती है, वह चेतना जिसमें चलने और न चलने वाली हर चीज़, यानी पूरी दुनिया, एक ही अंश की तरह टिकी रहती है।

5.83.24

भाव्यते भरिताकारं वपुरानन्दमन्थरम् न भवत्यसुसङ्गानामाशापाशविधायिनाम् ॥ २४ ॥

bhāvyate bharitākāraṃ vapurānandamantharam na bhavatyasusaṅgānāmāśāpāśavidhāyināṃ || 24 ||

One comes to feel oneself whole and full, heavy with bliss, but this never happens to people who cling only to life and tie themselves up in the snare of desire.

इंसान खुद को पूरा और भरा हुआ, आनंद से भारी हुआ महसूस करने लगता है, लेकिन यह उन लोगों के साथ कभी नहीं होता जो सिर्फ़ जीने से चिपके रहते हैं और इच्छा के फंदे में खुद को बाँध लेते हैं।

5.83.25

दग्धानामिव पर्णानां रसानां पुनरागतिः पुंसां क्षपितसंसारजराजन्ममहाध्वनाम् ॥ २५ ॥

daggdhānāmiva parṇānāṃ rasānāṃ punarāgatiḥ puṃsāṃ kṣapitasansārajara janmamahādhvanām || 25 ||

For those who have worn away the long road of worldly life, old age, and birth, it is like sap returning to burnt leaves.

जिन लोगों ने संसार, बुढ़ापे और जन्म की इस लंबी राह को खत्म कर दिया है, उनके लिए यह वैसा ही है जैसे जली हुई पत्तियों में फिर से रस लौट आए।

5.83.26

अपुनर्भ्रमणायात्मद्रुमे विश्रम्यते चिरम् एवंप्रायास्तथान्याश्च भवन्ति गुणसंपदः ॥ २६ ॥

apunarbhraṇāyātmadrumeviśramyate ciram evaṃprāyāstathānyāśca bhavanti guṇasaṃpadaḥ || 26 ||

So that he need never wander again, he rests for a long time in the tree of the self. In this way, and in other such ways, these riches of good qualities come about.

ताकि वह फिर कभी न भटके, इसलिए वह अपने आत्म-रूपी पेड़ में लंबे समय तक टिका रहता है। इसी तरह से, और ऐसे ही दूसरे तरीकों से भी, अच्छे गुणों की यह दौलत मिलती है।

5.83.27

असति त्वयि सर्वाशिन्सर्वाशाक्षयसंक्षये पक्षयोरेतयोश्चित्तसत्तासत्तास्वरूपयोः ॥ २७ ॥

asati tvayi sarvāśinsarvāśākṣayasaṃkṣaye pakṣayoretayościttasattāsattāsvarūpayoḥ || 27 ||

Since you do not exist, O mind that craves everything, and every desire has been utterly destroyed, there remain only two sides: that the mind exists, or that the mind does not exist.

हे सब कुछ चाहने वाले मन, चूँकि तू है ही नहीं और हर इच्छा पूरी तरह मिट चुकी है, इसलिए अब बस दो ही पहलू बचते हैं: या तो मन है, या मन नहीं है।

5.83.28

येनैव पश्यसि श्रेयस्तमेवाङ्गीकुरु क्षणम्स्वात्मभावस्तव सुखं मन्ये मानवतां वर ॥ २८ ॥

yenaiva paśyasi śreyastamevāṅgīkuru kṣaṇamsvātmabhāvastava sukhaṃ manye mānavatāṃ vara || 28 ||

Accept, for this moment, whichever of the two you see as good. I think, O best of men, that your own true nature is happiness.

इन दोनों में से जो भी तुझे भला लगे, उसे अभी इसी क्षण मान ले। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, मुझे लगता है कि तेरा अपना असली रूप सुख ही है।

5.83.29

तमेव भावयाभावं सुखत्यागो हि मूढता यदि त्वस्ति भवेत्सत्यमन्तर्भावितचेतनम् ॥ २९ ॥

tameva bhāvayābhāvaṃ sukhatyāgo hi mūḍhatā yadi tvasti bhavetsatyamantarbhāvitacetanam || 29 ||

Meditate only on that non-existence; giving up happiness is indeed foolish. And if you do exist, in truth you are nothing but the awareness felt within.

बस उसी न-होने के भाव को मन में बिठा; सुख को छोड़ देना सचमुच मूर्खता है। और अगर तू है भी, तो सच यही है कि तू भीतर अनुभव होने वाली चेतना मात्र है।

5.83.30

जीवतस्तत्त्वात्यन्तमभावं क इवेच्छति किंतु नास्त्यसि सत्येन वदामि तव सुन्दर ॥ ३० ॥

jīvatastattavātyantamabhāvaṃ ka ivecchatikiṃtu nāstyasi satyena vadāmi tava sundara || 30 ||

Who indeed would wish for the complete destruction of something real and living? But you do not exist at all — I tell you this truly, O beautiful one.

भला कोई किसी जीवित, सच्ची चीज़ का पूरी तरह मिट जाना क्यों चाहेगा? पर तू तो है ही नहीं—हे सुंदर, मैं तुझसे सच कह रहा हूँ।

5.83.31

तेन मिथ्यैव जीवामीत्याशया मा सुखी भवपूर्वमेवासि नास्त्येव यावद्भ्रान्त्या त्वदस्तिता ॥ ३१ ॥

tena mithyaiva jīvāmītyāśayā mā sukhī bhavapūrvamevāsi nāstyeva yāvadbhrāntyā tvadastitā || 31 ||

So do not take comfort in the thought, still, I go on living falsely. You did not exist even before you arose; your existence, such as it was, was only ever a delusion.

इसलिए इस सोच से खुश मत हो कि फिर भी मैं झूठा ही सही, जी तो रहा हूँ। तू तो अपने पैदा होने से पहले भी नहीं था; तेरा जो भी होना था, वह बस एक भ्रम था।

5.83.32

सैवेदानीं विचारेण भृशं क्षयमुपागता । एतावदेव ते रूपं साधो यदविचारणम् ॥ ३२ ॥

saivedānīṃ vicāreṇa bhṛśaṃ kṣayamupāgatā | etāvadeva te rūpaṃ sādho yadavicāraṇam || 32 ||

That delusion has now, through inquiry, been utterly destroyed. Your whole nature, O good sir, was nothing but the absence of inquiry.

वह भ्रम अब खोज-विचार से पूरी तरह मिट चुका है। हे भले मन, तेरा पूरा रूप बस इतना ही था—विचार का न होना।

5.83.33

विचारे विहिते सम्यक्समरूपं समं स्थितम् । अविचारात्प्रजातं त्वमनालोकात्तमो यथा ॥ ३३ ॥

vicāre vihite samyaksamarūpaṃ samaṃ sthitam | avicārātprajātaṃ tvamanālokāttamo yathā || 33 ||

When inquiry is rightly carried out, only the one same, equal reality remains. You were born from the lack of inquiry, just as darkness is born from the absence of light.

जब सही ढंग से विचार किया जाता है, तो बस एक ही, बराबर सच्चाई बचती है। तू विचार के न होने से पैदा हुआ, ठीक वैसे ही जैसे अंधेरा उजाले के न होने से पैदा होता है।

5.83.34

विचारेणोपशान्तं त्वमालोकेन तमो यथा । एतावन्तं सखे कालं बभूवाल्पविवेकिता ॥ ३४ ॥

vicāreṇopaśāntaṃ tvamālokena tamo yathā | etāvantaṃ sakhe kālaṃ babhūvālpavivekitā || 34 ||

By inquiry you have been stilled, just as darkness is stilled by light. For all that time, O friend, there was only a little discernment.

विचार से तू शांत हो गया, ठीक वैसे ही जैसे उजाले से अंधेरा शांत हो जाता है। हे मित्र, इतने लंबे समय तक बस थोड़ी-सी ही समझ थी।

5.83.35

तवानेनाभिपीनत्वमभूद्दुःखैककारणम् । मोहसंकल्पमात्रेण बालवेतालवद्भवेत् ॥ ३५ ॥

tavānenābhipīnatvamabhūdduḥkhaikakāraṇam | mohasaṃkalpamātreṇa bālvetālavadbhavet || 35 ||

Because of this, your becoming so bloated was the one cause of suffering; by a mere deluded thought, you became like the ghost a child imagines.

इसी वजह से तेरा इतना फूल जाना दुख का एक ही कारण बना; बस एक भ्रमित खयाल से तू वैसा ही बन गया जैसे कोई बच्चा अपने मन में भूत गढ़ लेता है।

5.83.36

द्वन्द्वं चाद्यन्तसंकल्पक्षीणं क्षयि भव स्थितम् । इदानीमुदितं नित्यं स्वप्राग्रूपे क्षयं गते ॥ ३६ ॥

dvandvaṃ cādyantasaṃkalpakṣīṇaṃ kṣayi bhava sthitam | idānīmuditaṃ nityaṃ svaprāgrūpe kṣayaṃ gate || 36 ||

And duality, worn thin by the thought of a beginning and an end, has grown perishable and come to rest. Now that your former form has come to an end, the eternal has arisen.

और द्वैत भी, शुरुआत और अंत के खयाल से घिस-घिस कर, नाशवान होकर थम गया। अब जब तेरा पुराना रूप खत्म हो चुका है, तो वह सदा रहने वाला तत्व प्रकट हुआ है।

5.83.37

विवेकस्य प्रसादेन विवेकाय नमो नमः । बहुधापि प्रबुद्धस्त्वं चित्तकाप्यनुबोधितः ॥ ॥ ३७ ॥

vivekasya prasādena vivekāya namo namaḥ | bahudhāpi prabuddhastvaṃ cittakāpyanubodhitaḥ || 37 ||

By the grace of discernment — homage, homage to discernment! Though you, dear mind, were roused many times before, only now have you truly understood.

विवेक की कृपा से—विवेक को बार-बार नमन! तुझे, प्रिय मन, पहले भी कई बार जगाया गया था, पर सच में समझ अब जाकर आई है।

5.83.38

चित्ततायां प्रनष्टायां स्थितस्त्वं परमेश्वरः । प्राक्स्वरूपविलासस्ते श्रेयसे स्थितिमागतः ॥ ॥ ३८ ॥

cittatāyāṃ pranaṣṭāyāṃ sthitastvaṃ parameśvaraḥ | prāk-svarūpavilāsaste śreyase sthitimāgataḥ || 38 ||

Now that your mind-nature has been destroyed, you stand as the supreme lord. The play of your former self has come to rest, for your own highest good.

अब जब तेरा मन-रूप मिट चुका है, तू परम ईश्वर बनकर खड़ा है। तेरे पुराने रूप का यह खेल तेरी ही भलाई के लिए थम गया है।

5.83.39

समस्तवासनोन्मुक्तः संप्रत्यसि महेश्वरः । यस्याविवेकादुत्पत्तिः स विवेकाद्विनश्यति ॥ ॥ ३९ ॥

samastavāsanānmuktaḥ saṃpratyasi maheśvaraḥ | yasyāvivekādutpattiḥ sa vivekādvinasyati || 39 ||

Freed from all your desires and habits, you are now the great lord. Whatever is born from a lack of discernment is destroyed by discernment.

अपनी सारी इच्छाओं और आदतों से मुक्त होकर, तू अब महान ईश्वर है। जो भी समझ की कमी से पैदा होता है, वह समझ से ही मिट जाता है।

5.83.40

प्रकाशेन प्रयात्यन्तमनालोकोऽभवत्तमः । अनिच्छतोऽपि ते साधो विचारे स्थितिमागते ॥ ॥ ४० ॥

prakāśena prayātyantamanāloko'bhavattamaḥ | anicchato'pi te sādho vicāre sthitimāgate || 40 ||

Through light, the darkness that came from an absence of light comes to its end. In the same way, O good sir, even against your will, inquiry has now taken firm hold in you.

उजाले से वह अंधेरा खत्म हो जाता है जो उजाले के न होने से पैदा हुआ था। उसी तरह, हे भले मन, तेरी इच्छा न होते हुए भी, अब विचार तुझमें पक्की तरह टिक गया है।

5.83.41

सर्वतोऽयमुपायातो विनाशः सुखसिद्धये । तस्मान्नास्त्यसि निर्णीतमिति सिद्धान्तयुक्तिभिः ॥ ॥ ४१ ॥

sarvato'yamupāyāto vināśaḥ sukhasiddhaye | tasmānnāstyasi nirṇītamiti siddhāntayuktibhiḥ || 41 ||

This destruction has come from every side, so that happiness might be attained. Therefore it is settled, by right teaching and reasoning, that you do not exist.

यह विनाश हर तरफ से, सुख पाने के लिए ही आया है। इसलिए सही सिद्धांत और तर्क से यह तय हो चुका है कि तू है ही नहीं।

5.83.42

चित्तेन्द्रियेश्वर स्वस्ति भवते त्वन्तमागतः । नित्यं पूर्वमभूताय नास्तिरूपाय संप्रति ॥ ४२ ॥

cittendriyeśvara svasti bhavate tvantamāgataḥ | nityaṃ pūrvamabhūtāya nāstirūpāya saṃprati || 42 ||

O lord of mind and senses, farewell to you. You have reached your end — you who, from the very start, never truly existed, and who now stand confirmed as pure non-existence.

हे मन और इंद्रियों के स्वामी, तुझे विदा! तू अपने अंत तक पहुँच चुका है—तू जो शुरू से ही असल में कभी था नहीं, और अब पूरी तरह न-होने का ही रूप ठहरा है।

5.83.43

भविष्यते च नोदर्कं स्वमनः स्वस्ति तेऽस्त्विति । परिनिर्वामिशान्तोऽस्मि दिष्ट्यास्मि विगतज्वरः ॥ ४३ ॥

bhaviṣyate ca nodarkaṃ svamanaḥ svasti te'stviti | parinirvāmiśānto'smi diṣṭyāsmi vigatajvaraḥ || 43 ||

There will be no future at all for you, O my own mind — may you fare well. I am passing into perfect peace; I am tranquil; and by good fortune, I am free of fever.

हे मेरे अपने मन, अब तेरा कोई भविष्य नहीं बचा—तेरा भला हो। मैं पूरी शांति में जा रहा हूँ; मैं शांत हूँ; और मेरे सौभाग्य से मैं ज्वर से मुक्त हूँ।

5.83.44

स्वात्मन्येवावतिष्ठेऽहं तुर्यरूपपदे स्थितः । अतो नास्त्येव नास्त्येव संसारे चित्तमस्थिति ॥ ४४ ॥

svātmanyevāvatiṣṭhe'haṃ turyarūpapade sthitaḥ | ato nāstyeva nāstyeva saṃsāre cittamastithi || 44 ||

I rest only in my own self, established in the fourth state. So there is no mind at all in this world — none whatsoever.

मैं बस अपने ही आत्मा में टिका हूँ, उस चौथी अवस्था में स्थिर। इसलिए इस संसार में मन नाम की कोई चीज़ है ही नहीं—बिलकुल नहीं।

5.83.45

आत्मा त्वस्त्वेव चास्त्वेव यस्मादन्यत्र विद्यते । अयमात्माहमेवासौ नास्त्यन्यन्मदृते क्वचित् ॥ ४५ ॥

ātmā tvastveva cāstveva yasmādanyatra vidyate | ayamātmāhamevāsau nāstyanyanmadṛte kvacit || 45 ||

But let there be the self, only the self — for nothing exists apart from it. This self is none other than I myself; there is nothing else at all, anywhere, except me.

बस आत्मा हो, केवल आत्मा ही हो—क्योंकि उसके सिवा कुछ भी नहीं है। यह आत्मा मुझसे अलग नहीं, यह मैं ही हूँ; मेरे सिवा कहीं भी कुछ और है ही नहीं।

5.83.46

स्फुरच्चिदेव बोधात्मा सर्वत्राहं स्थितः सदा । अयमात्मेति कलना मन्ये नो निर्मलान्तरे ॥ ४६ ॥

sphuraccideva bodhātmā sarvatrāhaṃ sthitaḥ sadā | ayamātmeti kalanā manye no nirmalāntare || 46 ||

I am the shining awareness itself, the self whose nature is knowing, present everywhere, always. The very thought this is the self, I do not think it belongs within a mind that is truly pure.

मैं वह चमकती हुई चेतना ही हूँ, वह आत्मा जिसका स्वभाव जानना है, जो हर जगह, हमेशा मौजूद है। यह आत्मा है ऐसा खयाल भी, मुझे लगता है, एक सचमुच निर्मल मन में नहीं टिकता।

5.83.47

प्रतियोगिव्यवच्छेदकलनैकस्य वै कुतः । अहं तेनायमात्मेति कलनामनुदाहरन् । मौनी स्वात्मनि तिष्ठामि तरङ्ग इव वारिणि ॥ ४७ ॥

pratiyogivyavacchedakalanaikasya vai kutaḥ| ahaṃ tenāyamātmeti kalanāmanudāharan| maunī svātmani tiṣṭhāmi taraṅga iva vāriṇi || 47 ||

For the one alone, how could there be any notion of excluding a counterpart? So, without even forming the thought this is the self, I remain silent in my own self, like a wave resting in water.

जब सिर्फ एक ही है, तो किसी दूसरे को अलग करने का खयाल कहाँ से आए? इसलिए यह आत्मा है ऐसा खयाल बनाए बिना ही, मैं चुपचाप अपने आत्मा में टिका हूँ, जैसे लहर पानी में टिकी रहती है।

5.83.48

संशान्तवासनमनाश्रितचेतनांशमप्राणसंचरणमस्तमितांशदोषम् । संवेद्यवर्जितमुपेत्य सुसंविदंशं शाम्यामि मौनमहमेव निरीहमन्तः ॥ ४८ ॥

saṃśāntavāsanamanāśritacetanāṃśamaprāṇasaṃcaraṇamastamitāṃśadoṣam| saṃvedyavarjitamupetya susaṃvidaṃśaṃ śāmyāmi maunamahameva nirīhamantaḥ || 48 ||

Having reached that portion of pure awareness, in which every desire is stilled, which rests on no fragment of active consciousness, in which the breath of life no longer moves, whose last faults have set like the sun, and which has nothing left to be known, I myself grow silent and still within, wanting nothing.

उस शुद्ध चेतना के अंश तक पहुँचकर, जिसमें हर इच्छा शांत हो चुकी है, जो चेतना के किसी भी हिस्से पर टिकी नहीं है, जिसमें साँस की कोई हलचल नहीं बची, जिसके बचे-खुचे दोष भी डूबते सूरज की तरह मिट चुके हैं, और जिसमें अब जानने को कुछ बचा ही नहीं, मैं खुद भीतर ही भीतर चुप और शांत हो जाता हूँ, कुछ भी चाहे बिना।

Chapter 84

5.84.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । इति निर्णीय स मुनिर्वीतहव्यो विवासनः । आसीत्समाधावचलो विन्ध्यकन्दरकोटरे ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | iti nirṇīya sa munirvītahavyo vivāsanaḥ | āsītsamādhāvacalo vindhyakandarakoṭare || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having settled this in his mind, that sage Vitahavya, who lived apart from all others, remained still in deep meditation, in a hollow of a Vindhya ravine.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह निश्चय करके वह मुनि वीतहव्य, जो सबसे दूर अकेला रहता था, विन्ध्य की एक घाटी की गुफा में स्थिर होकर गहरी समाधि में बैठ गया।

5.84.2

अपरिस्पन्दिताशेषसंविदानन्दसुन्दरः । बभावस्तंगतमनाः स्तिमिताम्भोधिशोभनः ॥ २ ॥

aparispanditāśeṣasaṃvidānandasundaraḥ | babhāvastagatamanāḥ stimiāmbhodhiśobhanaḥ || 2 ||

He shone with a beauty that came from a whole, unstirring awareness and bliss; his mind had come to rest, and he was lovely like a calm, still ocean.

वह ऐसी अखंड चेतना और आनंद की सुंदरता से चमक रहा था जिसमें रत्ती भर भी हलचल नहीं थी; उसका मन शांत होकर थम गया था, और वह शांत, स्थिर समुद्र जैसा सुंदर लग रहा था।

5.84.3

अन्तरेव शशामास्य क्रमेण प्राणसंततिः । ज्वालाजालपरिस्पन्दो दग्धेन्धन इवानलः ॥ ३ ॥

antareva śaśāmāsya krameṇa prāṇasaṃtatiḥ | jvālājālaparispando dagdhendhana ivānalaḥ || 3 ||

Inside him, little by little, the flow of his breath grew still, the way a fire's flickering flames die down once the fuel has burned away.

उसके भीतर ही धीरे-धीरे उसकी साँस की धारा शांत होती गई, जैसे ईंधन जल जाने पर आग की काँपती लपटें बुझ जाती हैं।

5.84.4

अनन्तर्निष्ठतां याते बाह्यार्थे चाप्यसंस्थिते । शेषेऽन्तर्लब्धसंस्थाने तस्यास्फुरितपक्ष्मणी ॥ ४ ॥

anantarniṣṭhatāṃ yāte bāhyārthe cāpyasaṃsthite | śeṣe'ntarlabdhasaṃsthāne tasyāsphuritapakṣmaṇī || 4 ||

By then the world outside had stopped reaching him and had lost its footing, and what was left had settled inward; his eyelids became still, without a flutter.

तब तक बाहर की दुनिया उस तक पहुँचना बंद कर चुकी थी और उसका कोई ठिकाना नहीं बचा था, और जो कुछ बचा था वह भीतर ही स्थिर हो गया था; उसकी पलकें बिना हिले-डुले स्थिर हो गईं।

5.84.5

घ्राणप्रान्तगताल्पाल्पसमालोके इवेक्षणे । अर्धकुड्मलितैः पद्मैः श्रियमाययतुः समाम् ॥ ५ ॥

ghrāṇaprāntagatālpālpasamāloke ivekṣaṇe | ardhakuḍmalitaiḥ padmaiḥ śriyamāyayatuḥ samām || 5 ||

His two eyes, turned toward the tip of his nose, seemed to hold the very faintest gaze, and, like two half-opened lotuses, they took on a calm, even beauty.

उसकी दोनों आँखें नाक की नोक की ओर झुकी हुई थीं, मानो बहुत ही हल्की सी नज़र से देख रही हों, और आधे खिले कमलों की तरह एक शांत, बराबर सुंदरता लिए हुए थीं।

5.84.6

समकायशिरोग्रीवस्थानकः स महामतिः । आसीच्छैलादिवोत्कीर्णश्चित्रार्पित इवाथवा ॥ ६ ॥

samakāyaśirogrīvasthānakaḥ sa mahāmatiḥ | āsīcchailādivotkīrṇaścitrārpite ivāthavā || 6 ||

That great sage, holding his body, head and neck perfectly level and still, seemed carved out of rock, or like a figure set in a painting.

वह महान बुद्धिमान मुनि अपने शरीर, सिर और गर्दन को बिलकुल सीधा और स्थिर रखे हुए ऐसा लग रहा था मानो पत्थर से तराशी गई मूर्ति हो, या किसी चित्र में बनी आकृति हो।

5.84.7

तथाभितिष्ठतस्तस्य संवत्सरशतत्रयम् । कोटरे विन्ध्यकच्छस्य ययावर्धमुहूर्तवत् ॥ ७ ॥

tathābhitiṣṭhatastasya saṃvatsaraśatatrayam | koṭare vindhyakacchasya yayāvardhamuhūrtavat || 7 ||

As he stayed like that, three hundred years went by in the hollow of that Vindhya woodland, passing like half a moment.

इसी तरह स्थिर बैठे हुए उसके तीन सौ वर्ष विन्ध्य के उस वन-क्षेत्र की कंदरा में ऐसे बीत गए जैसे बस आधा पल बीता हो।

5.84.8

एतावन्तमसौ कालं नाबुद्ध्यत किलात्मवान् । जीवन्मुक्ततया ध्यानी न च तत्याज तां तनुम् ॥ ८ ॥

etāvantamasau kālaṃ nābuddhyata kilātmavān | jīvanmuktatayā dhyānī na ca tatyāja tāṃ tanum || 8 ||

That self-possessed man, it is said, did not even notice that so much time had passed. Being freed while still alive, the meditator did not give up his body.

कहते हैं कि उस आत्मस्थ पुरुष को इतना समय बीत जाने का पता ही नहीं चला। जीते-जी मुक्त हो चुका वह ध्यानी अपना शरीर नहीं छोड़ता था।

5.84.9

तावत्कालं स सुभगो न प्राबुध्यत योगवित् । उदारैरम्बुदारावैरासारभरघर्घरैः ॥ ९ ॥

tāvatkālaṃ sa subhago na prābuddhyata yogavit | udārairambudārāvairāsārabharaghargharaiḥ || 9 ||

That fortunate sage, skilled in yoga, did not wake for all that time, not at the deep rumble of storm clouds, not at the heavy gurgling roar of rain,

वह भाग्यशाली मुनि, जो योग में निपुण था, इतने लंबे समय तक नहीं जागा, न बादलों की गहरी गड़गड़ाहट से, न भारी बारिश की गरजती-गुड़गुड़ाती आवाज़ से,

5.84.10

पर्यन्तमण्डलाधीशमृगयानतबृंहितैः । पक्षिवानरनिर्ह्रादैर्मातङ्गास्फोटनिःस्वनैः ॥ १० ॥

paryantamaṇḍalādhīśamṛgayānatabṛṃhitaiḥ | pakṣivānaranirhrādairmātaṅgāsphoṭanisvanaiḥ || 10 ||

not at the trumpeting of elephants that cowered before a neighboring king's hunt, not at the loud cries of birds and monkeys, not at the crashing trumpet-sounds of elephants,

न पड़ोसी राजा के शिकार से डरकर झुके हाथियों की चिंघाड़ से, न पक्षियों और बंदरों की ऊँची आवाज़ों से, न हाथियों की टकराती चिंघाड़ों से,

5.84.11

सिंहसंरम्भरटितैर्निर्झरारावसीत्कृतैः विषमाशनिसंपातैर्जनकोलाहलैर्घनैः ॥ ११ ॥

siṃhasaṃrambharṭitairnirjharārāvasītkṛtaiḥ viṣamāśanisampātairjanakolāhalairghanaiḥ || 11 ||

not at the furious roars of lions, not at the roaring hiss of waterfalls, not at the fierce crash of thunderbolts, not at the loud clamor of crowds of people,

न शेरों की क्रोध भरी दहाड़ से, न झरनों की गरजती-सरसराती आवाज़ से, न बिजली गिरने की भयानक कड़क से, न भीड़ के लोगों के शोर-शराबे से,

5.84.12

प्रमत्तशरभास्फोटैर्भूकम्पतटघट्टनैः वनदाहधमध्वानैर्जलौघाहतिवल्गनैः ॥ १२ ॥

pramattaśarabhāsphoṭairbhūkampataṭaghaṭṭanaiḥ vanadāhadhamadhvānairjalaughāhativalganaiḥ || 12 ||

not at the crashing of maddened sharabhas, not at the shaking crash of riverbanks in an earthquake, not at the roaring sound of forest fires, not at the surging clash of floodwaters,

न उन्मत्त शरभों की टकराहट से, न भूकंप में किनारों के टूटने-गिरने की आवाज़ से, न जंगल की आग की गरजती लपटों से, न बाढ़ के पानी की टकराती लहरों से,

5.84.13

महोपलतटाघातैर्धरणीतलमृज्जलैः जलौघान्दोलनायातैस्तापैरनलकर्कशैः ॥ १३ ॥

mahopalataṭāghātairdharṇītalamṛjjalaiḥ jalaughāndolanāyātaistāpairanalakarkaśaiḥ || 13 ||

not at the pounding blows of huge boulders on the slopes, not at the waters scouring the face of the earth, not at the rocking sway of the oncoming floods, not at heat as harsh as fire.

न ढलानों पर गिरती बड़ी-बड़ी चट्टानों की चोट से, न धरती की सतह को धोती पानी की धाराओं से, न आती हुई बाढ़ के हिलते-डुलते वेग से, न आग जैसी कड़ी गर्मी से।

5.84.14

केवलं वहति स्वैरं काले गलितकारणम् परियान्तीषु वर्षासु लहरीष्विव वारिणि ॥ १४ ॥

kevalaṃ vahati svairaṃ kāle galitakāraṇam pariyāntīṣu varṣāsu laharīṣviv vāriṇi || 14 ||

Only it went on quietly, by itself, as time passed, its cause now gone, the way waves in water keep moving even as the rain is passing away.

समय बीतता गया, और वह मात्र अपने आप, चुपचाप चलता रहा, जबकि जिस कारण से वह उठा था वह जा चुका था, जैसे पानी में लहरें तब भी चलती रहती हैं जब बारिश थम कर जा रही होती है।

5.84.15

स्वल्पेनैव हि कालेन तस्मिन्पर्वतकन्दरे प्रावृडोघविनुन्नेन पङ्केनोर्वीतले कृतः ॥ १५ ॥

svalpenaiva hi kālena tasminparvatakandare prāvṛḍoghavinunnenapankenorvītale kṛtaḥ || 15 ||

In just a short time, in that mountain cave, mud carried along by the monsoon floods fixed him into the ground.

बहुत ही कम समय में, उस पर्वत की गुफा में, बरसात की बाढ़ से बहकर आई कीचड़ ने उसे ज़मीन में जड़ दिया।

5.84.16

तत्रासावववसद्भूमौकोटरे संकटोदरे । पङ्कसंपीडितस्कन्धः पर्वतेषु शिला यथा ॥ १६ ॥

tatrāsāvavasadbhūmaukoṭare saṃkaṭodare | paṅkasaṃpīḍitaskandhaḥ parvateṣu śilā yathā || 16 ||

There he stayed, in the earth, inside a hollow with a narrow inner space, his shoulders gripped tight by the mud, like a rock lodged among the mountains.

वहाँ वह धरती के भीतर, उस तंग खोखली गुफा में पड़ा रहा, कीचड़ से जकड़े हुए कंधों के साथ, जैसे पहाड़ों के बीच कोई चट्टान पड़ी हो।

5.84.17

शतत्रये स वर्षाणामथ याते स्वयंप्रभुः । व्यबुध्यतात्मरूपात्मा धराकोटरपीडितः ॥ १७ ॥

śatatraye sa varṣāṇāmatha yāte svayaṃprabhuḥ | vyabudhyatātmarūpātmā dharākoṭarapīḍitaḥ || 17 ||

Then, when three hundred years had passed, he awoke as his own master, his very self one with the true Self, still pressed in by the hollow of the earth.

फिर जब तीन सौ वर्ष बीत गए, तो वह जाग उठा, अपने आप का स्वामी, जिसका स्वरूप ही आत्मा था, फिर भी धरती की उस कंदरा में दबा हुआ।

5.84.18

संविदेवास्य तं देहं जग्राहोर्वीनिपीडितम् । तनुः प्राणमयस्पन्दः प्राणसंसरणं विना ॥ १८ ॥

saṃvidevāsya taṃ dehaṃ jagrahōrvīnipīḍitam | tanuḥ prāṇamayaspandaḥ prāṇasaṃsaraṇaṃ vinā || 18 ||

His awareness alone took hold again of that body, pressed down by the earth, a body that pulsed with the mere presence of the life-breath, though the breath itself was not moving through it.

केवल उसकी चेतना ने ही धरती से दबे हुए उस शरीर को फिर से थाम लिया, ऐसा शरीर जिसमें प्राण की हल्की सी धड़कन तो थी, पर प्राण उसमें बह नहीं रहा था।

5.84.19

उत्पत्तिप्रौढिमासाद्य कलना हृदयान्तरे । स्वमनोरूपिणी तस्य हृद्येवानुबभूव सा ॥ १९ ॥

utpattiprauḍhimāsādya kalanā hṛdayāntare | svamanorūpiṇī tasya hṛdyevānubabhūva sā || 19 ||

The stirring of thought, growing to full strength as it rose within his heart, appeared right there in his heart, taking the shape of his own mind.

विचार की वह हलचल उसके हृदय के भीतर पूरी तरह उठकर परिपक्व हुई, और उसी के हृदय में उसके अपने मन के रूप में प्रकट हुई।

5.84.20

कैलासकानने कान्ते कदम्बस्य तरोस्तले । मुनित्वं शतमब्दानां जीवन्मुक्तात्मनिर्मलम् ॥ २० ॥

kailāsakānane kānte kadambasya tarostale | munitvaṃ śatamabdānāṃ jīvanmuktātmanirmalam || 20 ||

In the lovely Kailasa forest, under a kadamba tree, for a hundred years he lived as a sage, pure and free like one who is liberated while still alive.

कैलास के सुंदर वन में, कदंब के पेड़ के नीचे, वह सौ वर्षों तक एक मुनि के रूप में रहा, वैसे ही निर्मल और मुक्त जैसे कोई जीते-जी मुक्त हुआ पुरुष होता है।

5.84.21

विद्याधरत्वं वर्षाणां शतमाधिविवर्जितम्। युगपञ्चकमिन्द्रत्वं प्रणतं सुरचारणैः ॥ २१ ॥

vidyādharatvaṃ varṣāṇāṃ śatamādhivivarjitam | yugapañcakamindratvaṃ praṇataṃ suracāraṇaiḥ || 21 ||

For a hundred years he was a Vidyadhara, free of all inner trouble, and for five ages he was Indra, honored by gods and celestial singers.

सौ वर्षों तक वह एक विद्याधर रहा, बिना किसी मानसिक पीड़ा के, और पाँच युगों तक वह इन्द्र रहा, जिसे देवता और चारण नमन करते थे।

5.84.22

श्रीराम उवाच। शक्रत्वादिषु तेष्वस्य प्रतिभासेषु भो मुने। नियमोऽनियमश्चैव दिक्कालनियतेः कथम्॥ २२ ॥

śrīrāma uvāca | śakratvādiṣu teṣvasyapratibhāseṣu bho mune | niyamo'niyamaścaiva dikkālaniyateḥ katham || 22 ||

Sri Rama said: O sage, in these different forms of his, such as becoming Indra, how is it that the fixed order of place and time is sometimes kept and sometimes not kept?

श्रीराम ने कहा: हे मुनि, इंद्र बनने जैसे उसके इन अलग-अलग रूपों में, स्थान और समय का नियम कभी माना जाता है और कभी नहीं माना जाता, यह कैसे हो सकता है?

5.84.23

श्रीवसिष्ठ उवाच। सर्वात्मिकैषा चिच्छक्तिर्यत्रोदेति यथा यथा। तथा तत्राशु भवति तथात्मैकस्वभावतः ॥ २३ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | sarvātmikaiṣā cicchaktiryatrodeti yathā yathā | tathā tatrāśu bhavati tathātmaikasvabhāvataḥ || 23 ||

Sri Vasishtha said: This power of awareness is present in everything. Wherever it arises, and in whatever way, it quickly becomes that very thing there, because its whole nature is to be one with itself.

श्री वसिष्ठ ने कहा: यह चेतना की शक्ति सब में मौजूद है। यह जहाँ भी और जिस तरह भी उठती है, वहाँ वह उसी रूप में तुरंत बदल जाती है, क्योंकि इसका स्वभाव ही खुद के साथ एक होना है।

5.84.24

यथा यत्र यदा बुद्धौ नियमः स तदा स्थितः। देशकालादिनियमक्रमाणां तन्मयात्मता ॥ २४ ॥

yathā yatra yadā buddhau niyamaḥ sa tadā sthitaḥ | deśakālādiniyamakramāṇāṃ tanmayātmatā || 24 ||

In whatever way, place, and time a rule is fixed in the mind, that rule stands firm there and then. The self takes on exactly the form of these fixed patterns of place, time, and the rest.

मन में जिस तरह, जहाँ और जब कोई नियम तय हो जाता है, वह नियम वहीं और तभी दृढ़ हो जाता है। स्वयं वही रूप ले लेता है जो जगह, समय आदि के इन तय ढांचों का होता है।

5.84.25

तेन नानाविधान्येष जगन्ति परिदृष्टवान्। हृदि संवेदनाकाशे वीतहव्यो विवासनः ॥ २५ ॥

tena nānāvidhānyeṣa jaganti paradṛṣṭavān | hṛdi saṃvedanākāśe vītahavyo vivāsanaḥ || 25 ||

Through that power, Vitahavya, free of desires, has seen these many kinds of worlds in the open space of awareness within his heart.

इसी शक्ति से वीतहव्य ने, जो सब इच्छाओं से मुक्त हैं, अपने हृदय की चेतना के आकाश में इन अनेक तरह के लोकों को देखा है।

5.84.26

सम्यग्बोधवतामेषा वासनैव न वासना । ज्ञानाग्निदग्धाऽदग्धस्य कैव बीजस्य बीजता ॥ २६ ॥

samyagbodhavatāmeṣā vāsanaiava na vāsanā | jñānāgnidagdhā'dagdhasya kaiva bījasya bījatā || 26 ||

For those who have full understanding, this tendency of the mind is not really a tendency at all. A seed burnt by the fire of knowledge, even if it looks unburnt, what power does it still have to grow?

जिन्हें पूरा ज्ञान हो चुका है, उनके लिए मन की यह वासना असल में वासना ही नहीं रहती। ज्ञान की आग से जला हुआ बीज चाहे दिखने में न जला लगे, फिर भी उसमें उगने की ताकत कहाँ बचती है।

5.84.27

कल्पमेकं गणत्वं स चन्द्रमौलेश्चकार ह । समस्तविद्यानिपुणं त्रिकालामलदर्शनम् ॥ २७ ॥

kalpamekaṃ gaṇatvaṃ sa candramauleścakāra ha | samastavidyānipuṇaṃ trikālāmaladarśanam || 27 ||

For one whole cosmic age he became one of Shiva's attendants, skilled in every branch of knowledge, seeing past, present and future without any flaw.

एक पूरे कल्प तक वे शिव के गणों में से एक बन गए, हर विद्या में निपुण, और भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों को बिना किसी दोष के देखने वाले।

5.84.28

यो यादृग्दृढसंस्कारः स तं पश्यति तादृशम् । जीवन्मुक्ततयैवैतद्वीतहव्योऽनुभूतवान् ॥ २८ ॥

yo yādṛgdṛḍhasaṃskāraḥ sa taṃ paśyati tādṛśam | jīvanmuktatayaiavaitadvītahavyo'nubhūtavān || 28 ||

Whatever firm impression a person carries, he sees things exactly according to that. Vitahavya experienced all this precisely as one who is free while still alive.

व्यक्ति के मन में जैसा भी पक्का संस्कार होता है, वह चीज़ों को वैसा ही देखता है। वीतहव्य ने यह सब ठीक उसी तरह अनुभव किया जैसे जीते-जी मुक्त हुआ कोई व्यक्ति करता है।

5.84.29

श्रीराम उवाच । एवं स्थिते मुनिश्रेष्ठ जीवन्मुक्तमतेरपि । बन्धमोक्षदृशः सन्ति वीतहव्यात्मनो यथा ॥ २९ ॥

śrīrāma uvāca | evaṃ sthite muniśreṣṭha jīvanmuktamaterapi | bandhamokṣadṛśaḥ santi vītahavyātmano yathā || 29 ||

Sri Rama said: Since this is so, best of sages, views of bondage and liberation exist even for a mind that is freed while living, just as they existed for Vitahavya's own self.

श्रीराम ने कहा: हे मुनियों में श्रेष्ठ, अगर ऐसा है, तो जीते-जी मुक्त हुए मन के लिए भी बंधन और मुक्ति की दृष्टि बनी रहती है, जैसे वीतहव्य के अपने मन में बनी रही।

5.84.30

श्रीवसिष्ठ उवाच । यथास्थितमिदं विश्वं शान्तमाकाशनिर्मलम् । ब्रह्मैव जीवन्मुक्तानां बन्धमोक्षदृशः कुतः ॥ ३० ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yathāsthitamidaṃ viśvaṃ śāntamākāśanirmalam | brahmaiva jīvanmuktānāṃ bandhamokṣadṛśaḥ kutaḥ || 30 ||

Sri Vasishtha said: This universe, just as it stands, is peaceful and pure as the open sky, it is nothing but Brahman itself. For those who are free while living, how could there be any view of bondage or freedom?

श्रीवसिष्ठ ने कहा: यह जगत जैसा है वैसे ही शांत है, आकाश जैसा निर्मल है, यह ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं है। जो जीते-जी मुक्त हो चुके हैं, उनके लिए बंधन या मुक्ति की दृष्टि कहाँ से आएगी।

5.84.31

एतत्संविन्नभो भाति यत्र यत्र यथा यथा । तत्र तत्र तथा तावत्तावत्तद्विन्दते ततम् ॥ ३१ ॥

etatsaṃvinnabho bhāti yatra yatra yathā yathā | tatra tatra tathā tāvattāvattadvindate tatam || 31 ||

This awareness, like an open sky, shines everywhere. Wherever it shines, and however it shines, there, in that same way and to that same degree, it spreads out and takes that form.

यह चेतना, आकाश की तरह, हर जगह चमकती है। यह जहाँ भी और जिस तरह भी चमकती है, वहाँ ठीक उसी तरह और उतनी ही मात्रा में फैलकर वही रूप ले लेती है।

5.84.32

तेनानुभूतानि बहून्यनुभूयन्त एव च । जगन्ति सर्वात्मतया ब्रह्मरूपेण राघव ॥ ३२ ॥

tenānubhūtāni bahūnyanubhūyanta eva ca | jaganti sarvātmatayā brahmarūpeṇa rāghava || 32 ||

Through that awareness, many worlds have been experienced, and are being experienced right now, all of them, as one single self, in the form of Brahman, O Raghava.

हे राघव, इसी चेतना के द्वारा बहुत से लोक अनुभव किए जा चुके हैं, और अभी भी किए जा रहे हैं, सब एक ही आत्मा के रूप में, ब्रह्म के रूप में।

5.84.33

धराकोटरनिर्मग्नवीतहव्यचिदात्मसु । जगत्सु तेष्वसंख्येषु नीरूपेषु महात्मसु ॥ ३३ ॥

dharākoṭaranirmagnavītahavyacidātmasu | jagatsu teṣvasaṃkhyeṣu nīrūpeṣu mahātmasu || 33 ||

These are countless worlds, without any fixed form, vast in extent. They are the very consciousness of Vitahavya, who lies sunk deep in a hollow of the earth.

ये असंख्य लोक हैं, जिनका कोई तय रूप नहीं, जो बहुत विशाल हैं। ये सब वीतहव्य की उसी चेतना का रूप हैं, जो धरती की एक गुफा में गहरे डूबे बैठे हैं।

5.84.34

यः शक्रोऽनवबुद्धात्मा सोऽद्य दीनेषु पार्थिवः । कर्तुं प्रवृत्तो मृगयां क्षणेऽस्मिन्नपि कानने ॥ ३४ ॥

yaḥ śakro'navabuddhātmā so'dya dīneṣu pārthivaḥ | kartuṃ pravṛtto mṛgayāṃ kṣaṇe'sminnapi kānane || 34 ||

He who was Indra, his true self not awakened, is today a poor king, and at this very moment he has set out to hunt in the forest.

जो कभी इंद्र था, पर जिसका सच्चा स्वरूप जागा नहीं था, वह आज एक दीन राजा है, और अभी इसी क्षण जंगल में शिकार करने निकला है।

5.84.35

यो हंसोऽनवबुद्धात्मा पाद्मे पैतामहेऽभवत् । स्थितः स एव दाशेन्द्रः कैलासवनकुञ्जके ॥ ३५ ॥

yo haṃso'navabuddhātmā pādme paitāmahe'bhavat | sthitaḥ sa eva dāśendraḥ kailāsavanakuñjake || 35 ||

He who was a swan, his true self not awakened, lived in the age of Padma, in the world of Pitamaha, that same one now stands as a chief of fishermen in a grove of the Kailasa forest.

जो कभी एक हंस था, पर जिसका सच्चा स्वरूप जागा नहीं था, वह पद्म-कल्प में पितामह के लोक में रहा, वही अब कैलास वन की एक कुंज में मछुआरों का मुखिया बना खड़ा है।

5.84.36

यो राजानवबुद्धात्मा भूमेः सौराष्ट्रमण्डले । स एषोऽद्य स्थितोऽन्ध्राणां ग्रामे बहुलपादपे ॥ ३६ ॥

yo rājānavabuddhātmā bhūmeḥ saurāṣṭramaṇḍale | sa eṣo'dya sthito'ndhrāṇāṃ grāme bahulapādape || 36 ||

He who was a king, his true self not awakened, in the Saurashtra region of the earth, that same one today stands in a village of the Andhras, thick with trees.

जो कभी धरती के सौराष्ट्र प्रदेश में एक राजा था, पर जिसका सच्चा स्वरूप जागा नहीं था, वही आज अंध्रों के एक गाँव में खड़ा है, जो घने पेड़ों से भरा है।

5.84.37

श्रीराम उवाच । मानसः किल सर्गोऽसौ वीतहव्यस्य तत्र ये । देहिनो भ्रान्तिपात्रं चेत्तद्देहाकारिणः कथम् ॥ ३७ ॥

śrīrāma uvāca | mānasaḥ kila sargo'sau vītahavyasya tatra ye | dehino bhrāntipātraṃ cettaddhehākāriṇaḥ katham || 37 ||

Sri Rama said: That whole creation, they say, is only in Vitahavya's mind. If the embodied beings there are nothing but a case of illusion, then how do they come to have bodies at all?

श्रीराम ने कहा: कहते हैं कि वह पूरी सृष्टि केवल वीतहव्य के मन में है। अगर वहाँ के देहधारी जीव केवल भ्रम मात्र हैं, तो फिर उनके शरीर कैसे बने हैं?

5.84.38

श्रीवसिष्ठ उवाच । यदि भ्रान्त्येकमात्रात्म वीतहव्यस्य तज्जगत् । तदिदं नाम ते राम किं भूयः परिभासते ॥ ३८ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yadi bhrāntyekamātrātma vītahavyasya tajjagat | tadidaṃ nāma te rāma kiṃ bhūyaḥ paribhāsate || 38 ||

Sri Vasishtha said: If that world of Vitahavya's is, in truth, nothing but illusion, then tell me, Rama, does not this world of yours appear in exactly the same way, once again?

श्रीवसिष्ठ ने कहा: अगर वीतहव्य का वह जगत सच में केवल भ्रम ही है, तो बताओ राम, क्या तुम्हारा यह जगत भी बिलकुल वैसे ही नहीं दिखता?

5.84.39

इदमप्यङ्ग चिन्मात्रं मनोमात्रभ्रमोपमम् । तदपि व्योम चिन्मात्रं मनोमात्रं भ्रमोपमम् ॥ ३९ ॥

idamapyanga cinmātraṃ manomātrabhramopamam | tadapi vyoma cinmātraṃ manomātraṃ bhramopamam || 39 ||

This world too, dear one, is nothing but awareness itself, like an illusion made only of mind. And that world of his, like the open sky, is also nothing but awareness, only mind, like an illusion.

यह जगत भी, हे प्रिय, चेतना मात्र ही है, केवल मन से बने भ्रम जैसा। और वह दूसरा जगत भी, आकाश की तरह, चेतना मात्र ही है, केवल मन, भ्रम जैसा।

5.84.40

वस्तुतस्तु न तद्राम जगन्नैवं न चेतरत् । तवापि न जगत्सत्ता ब्रह्मेदं भाति केवलम् ॥ ४० ॥

vastutastu na tadrāma jagannainaṃ na cetarat | tavāpi na jagatsattā brahmedaṃ bhāti kevalam || 40 ||

But in truth, Rama, neither that world nor this one truly exists. Even your own world has no real existence, only this one Brahman shines, alone.

पर सच में, राम, न तो वह जगत है, न यह। तुम्हारे इस जगत का भी कोई सच्चा अस्तित्व नहीं है, बस यही एक ब्रह्म अकेला चमक रहा है।

5.84.41

भावि भूतं भविष्यच्च यथेदं च तथेतरत्। जगत्सर्वमिदं दृश्यं संविन्मात्रमनोमयम्॥ ४१॥

bhāvi bhūtaṃ bhaviṣyacca yathedaṃ ca tathetarat | jagatsarvamidaṃ dṛśyaṃ saṃvinmātramanomayam || 41 ||

What is now, what was, and what will be, as this world is, so is that other one too. This whole visible world is made only of awareness, only of mind.

जो अभी है, जो हो चुका, और जो होगा, जैसा यह जगत है, वैसा ही वह दूसरा भी है। यह पूरा दिखने वाला जगत केवल चेतना से, केवल मन से बना है।

5.84.42

एवंरूपमिदं यावन्न परिज्ञातमीदृशम्। वज्रसारदृढं तावज्ज्ञातं सत्परमाम्बरम्॥ ४२॥

evaṃrūpamidaṃ yāvanna parijñātamīdṛśaṃ | vajrasāradṛḍhaṃ tāvajjñātaṃ satparamāmbaram || 42 ||

This world is, in truth, nothing but the vast pure sky of being. But as long as it is not known to be of that nature, it is known only as something solid, as hard as diamond.

यह जगत सच में तो केवल शुद्ध सत् का विशाल आकाश ही है। पर जब तक इसे इस असली रूप में नहीं जाना जाता, तब तक यह हीरे जितना कठोर और ठोस ही जाना जाता है।

5.84.43

अज्ञानान्मन एवेदमित्थं संप्रविजृम्भते। प्रत्युल्लासविलासाभ्यां जलमम्बुनिधाविव॥ ४३॥

ajñānānmana evedaṃitthaṃ saṃpravijṛmbhate | pratyullāsavilāsābhyāṃ jalamambunidhāviva || 43 ||

Out of ignorance, the mind alone swells up and takes this form, again and again rising and playing, like water rising and playing in the ocean.

अज्ञान के कारण मन अकेला ही इस तरह फूलकर यह रूप ले लेता है, बार-बार उठता और खेलता है, जैसे समुद्र में पानी उठता और खेलता है।

5.84.44

यथास्थितेनैव चिदम्बरेण स्वचित्तमेवैति मनोभिधानम्। स्फारं कृतं तेन जगच्च दृश्यमेवं ततं नैव ततं च किंचित्॥ ४४॥

yathāsthitenaiva cidambareṇa svacittamevaiti manobhidhānam | sphāraṃ kṛtaṃ tena jagacca dṛśyamevaṃ mataṃ naiva mataṃ ca kiṃcit || 44 ||

The sky of pure awareness, remaining just as it is, itself becomes what is called one's own mind. Through that mind, the visible world too has been spread out wide. In this way it seems spread out, yet nothing at all is truly spread out.

चेतना का आकाश, जैसा है वैसा ही रहते हुए, खुद ही अपने मन कहलाने वाले रूप में बदल जाता है। उसी मन से यह दिखने वाला जगत भी फैला दिया गया है। इस तरह यह फैला हुआ लगता है, पर असल में कुछ भी फैला नहीं है।

Chapter 85

5.85.1

श्रीराम उवाच । अथ किं वीतहव्यः स्वं स्थितं तस्मिन्धरोदरे । कथमुद्धृतवान्देहं स संपन्नश्च किं कथम् ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | atha kiṃ vītahavyaḥ svaṃ sthitaṃ tasmin dharodare | kathamuddhṛtavāndehaṃ sa saṃpannaśca kiṃ katham || 1 ||

Sri Rama said: Then what did Vitahavya do about his own body lying there inside the earth? How did he lift that body out, and what did he become, and how?

श्रीराम ने कहा: फिर वीतहव्य ने अपने उस शरीर का क्या किया, जो धरती के भीतर पड़ा था? उसने उस शरीर को कैसे बाहर निकाला, और वह क्या बना, और कैसे बना?

5.85.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । अनन्तरमनन्तात्म वीतहव्याभिधं मनः । स्वमेवात्मचमत्कारमात्रं समवबुद्धवान् ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | anantaramanantātma vītahavyābhidhaṃ manaḥ | svamevātmacamatkāramātraṃ samavabuddhavān || 2 ||

Sri Vasishtha said: Rama, whose self has no limit, after that the mind called Vitahavya understood itself to be nothing but a flash of wonder within its own awareness.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राम, जिनका आत्मा असीम है, इसके बाद वीतहव्य नाम के उस मन ने समझ लिया कि वह स्वयं अपनी ही चेतना में उठी एक चमक के सिवा कुछ नहीं है।

5.85.3

शार्वस्यास्य गणस्याभूत्प्राग्ज्योतिःस्मरणे स्वयम् । इच्छा कदाचित्सकलप्राग्जन्मालोकनोन्मुखी ॥ ३ ॥

śārvasya asya gaṇasyābhūt prāgjyotiḥsmaraṇe svayam | icchā kadācit sakalaprāgjanmālokanonmukhī || 3 ||

This being, one of Shiva's own hosts, one day, on its own, while remembering its earlier life, felt a wish rise up to see all its past births.

यह जीव, जो शिव के गणों में से एक था, एक दिन अपने आप, अपने पिछले जीवन को याद करते हुए, अपने सारे पिछले जन्मों को देखने की इच्छा से भर उठा।

5.85.4

अशेषान्स ददर्शाथ नष्टानष्टान्स्वदेहकान् । अनष्टानां ततो मध्यात्तत्तत्कोटरसंस्थितम् ॥ ४ ॥

aśeṣān sa dadarśātha naṣṭānaṣṭānsvadehakān | anaṣṭānāṃ tato madhyāt tat tat koṭarasaṃsthitam || 4 ||

Then he saw all his own bodies from his past lives, both the ones that had decayed and the ones that had not. And from among the ones that had not decayed, he saw each one lying in its own hollow in the ground.

फिर उसने अपने पिछले जन्मों के सारे शरीर देखे, जो गल चुके थे भी और जो नहीं गले थे भी। और जो नहीं गले थे, उनमें से उसने हर एक को धरती के किसी गड्ढे में पड़ा हुआ देखा।

5.85.5

यदृच्छयैव प्रोद्धर्तुं देहं तस्याभवन्मतिः । अपश्यत्तत्तथा तत्र पङ्के कीटमिव स्थितम् ॥ ५ ॥

yadṛcchayaiva prodhartuṃ dehaṃ tasyābhavanmatiḥ | apaśyat tat tathā tatra paṅke kīṭamiva sthitam || 5 ||

By pure chance, the wish arose in him to pull one body out. And there he saw it, lying in the mud like a worm.

यों ही, अचानक, उसके मन में एक शरीर को बाहर निकालने की इच्छा जाग उठी। और वहाँ उसने उसे कीचड़ में एक कीड़े की तरह पड़ा हुआ देखा।

5.85.6

शरीरं वीतहव्याख्यं धराकोटरपीडितम् । प्रावृडोघोपनीतं तत्पृष्ठस्थपङ्कमण्डलम् ॥ ६ ॥

śarīraṃ vītahavyākhyaṃ dharākoṭarapīḍitam | prāvṛḍoghopanītaṃ tatpṛṣṭhastapaṅkamaṇḍalam || 6 ||

This was the body called Vitahavya, pressed inside a hollow of the earth, with a ring of mud sitting on its back, carried there by the flood of the monsoon.

यह वही शरीर था जिसे वीतहव्य कहते थे, जो धरती के एक गड्ढे में दबा हुआ था, और उसकी पीठ पर कीचड़ का एक घेरा जमा था, जिसे बरसात की बाढ़ बहा लाई थी।

5.85.7

तृणजालावकीर्णत्वग्देहपृष्ठमृदं तथा । एतद्दृष्ट्वा महातेजा धराविवरयन्त्रितम् ॥ ७ ॥

tṛṇajālāvakīrṇatvagdehapṛṣṭhamṛdaṃ tathā | etaddṛṣṭvā mahātejā dharāvivarayantritam || 7 ||

Its skin, on its back, was covered over with a tangle of grass and with soil. Seeing this, the greatly radiant Vitahavya saw his own body held fast in a hollow of the earth.

उसकी पीठ की खाल घास के जाल और मिट्टी से ढकी हुई थी। यह देखकर, उस महातेजस्वी वीतहव्य ने अपने ही शरीर को धरती के गड्ढे में जकड़ा हुआ पाया।

5.85.8

भूयोऽपि चिन्तयामास धिया परमबोधया । सर्वसंपीडिताङ्गत्वात्कायो मे प्राणवायुभिः ॥ ८ ॥

bhūyo'pi cintayāmāsa dhiyā paramabodhayā | sarvasaṃpīḍitāṅgatvātkāyo me prāṇavāyubhiḥ || 8 ||

He thought again, with the deepest understanding: since all my limbs are pressed in on every side, this body of mine,

उसने फिर, अपनी परम बुद्धि से, यह सोचा: चूँकि मेरे सारे अंग चारों ओर से दबे हुए हैं, इसलिए मेरा यह शरीर,

5.85.9

मुक्तश्चलितुमाकर्तुं शक्नोति न मनागपि । तज्ज्ञात्वा प्रविशाम्याशु देहमेवं विवस्वतः ॥ ९ ॥

muktaścalitumākartuṃ śaknoti na manāgapi | tajjñātvā praviśāmyāśu dehamevaṃ vivasvataḥ || 9 ||

even freed to move by its life breaths, cannot stir even a little. Knowing this, I will now quickly enter the body of the sun.

प्राण वायु से गति पाकर भी, थोड़ा भी हिल नहीं सकता। यह जानकर, मैं अब जल्दी ही सूर्य के शरीर में प्रवेश करूँगा।

5.85.10

तदीयः पिङ्गलो देहमुद्धरिष्यति मे ततः । अथवा किं ममैतेन शाम्याम्यहमविघ्नतः ॥ १० ॥

tadīyaḥ piṅgalo dehamuddhariṣyati me tataḥ | athavā kiṃ mamaittena śāmyāmyahamavighnataḥ || 10 ||

Then his attendant Pingala will lift my body out. Or else, what use do I even have for this body? I will simply find peace, with nothing to stop me.

फिर उसका सेवक पिंगल मेरे शरीर को बाहर निकाल देगा। या फिर, मुझे इस शरीर से क्या लेना देना? मैं बिना किसी रुकावट के शांत हो जाऊँगा।

5.85.11

निर्वामि स्वं पदं यामि कोऽर्थो मे देहलीलया । इति संचिन्त्य मनसा वीतहव्यो महामते ॥ ११ ॥

nirvāmi svaṃ padaṃ yāmi ko'rtho me dehalīlayā | iti saṃcintya manasā vītahavyo mahāmate || 11 ||

I will find peace, I will go to my own true place. What do I gain from this game with a body? Thinking this to himself, Vitahavya, Rama, whose understanding is great,

मैं शांत हो जाऊँगा, मैं अपने ही असली ठिकाने पर पहुँच जाऊँगा। इस शरीर के खेल से मुझे क्या मिलेगा? हे महाबुद्धि राम, मन में ऐसा सोचकर वीतहव्य,

5.85.12

तूष्णीं स्थित्वा क्षणं भूयश्चिन्तयामास भूतले । उपादेयो हि देहस्य न मे त्यागो न संश्रयः ॥ १२ ॥

tūṣṇīṃ sthitvā kṣaṇaṃ bhūyaścintayāmāsa bhūtale | upādeyo hi dehasya na me tyāgo na saṃśrayaḥ || 12 ||

stayed silent a moment, then thought again, there on the ground: for me, giving up this body or holding on to it, neither one is something I must choose.

एक पल चुप रहा, फिर धरती पर पड़े पड़े दुबारा सोचने लगा: मेरे लिए न तो इस शरीर को छोड़ना जरूरी है, न इसे थामे रहना जरूरी है।

5.85.13

यादृशो देहसंत्यागस्तादृशो देहसंश्रयः । तद्यावदस्ति देहोऽयं न यावदणुतां गतः ॥ १३ ॥

yādṛśo dehasaṃtyāgastādṛśo dehasaṃśrayaḥ | tadyāvadasti deho'yaṃ na yāvadaṇutāṃ gataḥ || 13 ||

Giving up a body and taking up a body come to the same thing. So, for as long as this body still exists, and has not yet crumbled away into dust,

शरीर को छोड़ना और शरीर को अपनाना, दोनों एक ही बात है। इसलिए, जब तक यह शरीर बचा हुआ है, और अभी धूल नहीं बना है,

5.85.14

तावदेनमुपारुह्य किंचित्प्रविहराम्यहम् । पिङ्गलेन शरीरं स्वमुद्धर्तुं तापनं वपुः ॥ १४ ॥

tāvadenamupāruhya kiṃcitpraviharāmyaham | piṅgalena śarīraṃ svamuddhartuṃ tāpanaṃ vapuḥ || 14 ||

for that long I will mount the sun and move about there a little, so that Pingala can lift out my own body, I will enter the sun's very body,

तब तक मैं सूर्य पर सवार होकर उसमें थोड़ा विचरण करूँगा, ताकि पिंगल मेरे शरीर को बाहर निकाल सके, मैं सूर्य के ही शरीर में प्रवेश करूँगा,

5.85.15

प्रविशामि नभःसंस्थं मुकुरं प्रतिबिम्बवत्। इत्यसौ मुनिरादित्यं विवेशानिलरूपधृक् ॥ १५ ॥

praviśāmi nabhaḥsaṃsthaṃ mukuraṃ pratibimbavat | ityasau munirādityaṃ viveśānilarūpadhṛk || 15 ||

dwelling there in the sky, the way a reflection enters a mirror. Resolving this, the sage entered the sun, taking on a form of wind.

जो आकाश में स्थित है, ठीक वैसे ही जैसे कोई प्रतिबिंब दर्पण में समा जाता है। ऐसा सोचकर, उस मुनि ने वायु का रूप धारण कर सूर्य में प्रवेश किया।

5.85.16

पुर्यष्टकवपुर्भूत्वा भस्त्राखमिव चानलः। भगवान्मुनिरप्येनं हृद्गतं मुनिनायकम् ॥ १६ ॥

puryaṣṭakavapurbhūtvā bhastrākhamiva cānalaḥ | bhagavānmunirapyenaṃ hṛdgataṃ munināyakam || 16 ||

Becoming a body made only of his own subtle self, like fire slipping into the hole of a bellows, he entered the sun. And the illustrious sun, in turn, took this foremost of sages into his own heart.

अपने ही सूक्ष्म शरीर के रूप में बदलकर, जैसे आग धौंकनी के छेद में घुस जाए, वह सूर्य में समा गया। और उस तेजस्वी सूर्य ने भी इस श्रेष्ठ मुनि को अपने हृदय में बसा लिया।

5.85.17

दृष्ट्वासौ चिन्तयन्कार्यं पौर्वापर्यमुदारधीः। विन्ध्यभूधरभूकोशमन्तर्मुनिकलेवरम् ॥ १७ ॥

dṛṣṭvāsau cintayan kāryaṃ paurvāparyamudāradhīḥ | vindhyabhūdhara bhūkośamantarmunikalevaram || 17 ||

Seeing this, and weighing the whole matter from beginning to end with his broad understanding, the sun looked to where the sage's body lay, deep inside an earthen hollow of the Vindhya mountain,

यह देखकर, और अपनी विशाल बुद्धि से पूरी बात के आगे पीछे को तौलते हुए, सूर्य ने देखा कि मुनि का शरीर विन्ध्य पर्वत की धरती के एक गड्ढे में गहरे पड़ा है,

5.85.18

तृणोपलपरिच्छन्नं ददर्श गतसंविदम्। ऋषेश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा भानुर्गगनमध्यगः ॥ १८ ॥

tṛṇopalaparicchannaṃ dadarśa gatasaṃvidam | ṛṣeścikīrṣitaṃ jñātvā bhānurgaganamadhyagaḥ || 18 ||

covered over with grass and stones, without any awareness in it. Knowing what the sage wished to do, the sun, there in the middle of the sky,

घास और पत्थरों से ढका हुआ, बिना किसी चेतना के। मुनि क्या चाहता है यह जानकर, आकाश के बीचोंबीच खड़े सूर्य ने,

5.85.19

धरातो मुनिमुद्धर्तुमादिदेशाग्रगं गणम्। वीतहव्यमुनेः संवित्सा पुर्यष्टकरूपिणी ॥ १९ ॥

dharāto munimuddhartumādidēśāgragaṃ gaṇam | vītahavyamunēḥ saṃvitsā puryaṣṭakarūpiṇī || 19 ||

commanded his foremost attendant to lift the sage out of the earth. And the awareness of the sage Vitahavya, now in the form of the subtle body,

अपने सबसे आगे के सेवक को आदेश दिया कि वह मुनि को धरती से बाहर निकाले। और मुनि वीतहव्य की वह चेतना, जो अब सूक्ष्म शरीर के रूप में थी,

5.85.20

रविं वातमयी पूज्यं प्रणनामाशु चेतसा । भानुनाप्यभ्यनुज्ञातो मानपूर्वकमग्रगम् ॥ २० ॥

raviṃ vātamayī pūjyaṃ praṇanāmāśu cetasā | bhānunāpyabhyanujñāto mānapūrvakamagragam || 20 ||

made of wind, quickly bowed in her mind to the venerable sun. And that attendant, given leave by the sun, with due respect,

वायु जैसी बनकर, उसने मन ही मन जल्दी से पूज्य सूर्य को प्रणाम किया। और सूर्य से आदरपूर्वक आज्ञा पाकर वह सेवक,

5.85.21

विवेश पिङ्गलाकारं विन्ध्यकन्दरगामिनम् । पिङ्गलोऽसौ नभस्त्यक्त्वा कुञ्जकुञ्जरसुन्दरम् ॥ २१ ॥

viveśa piṅgalākāraṃ vindhyakandaragāminam | piṅgalo'sau nabhas tyaktvā kuñjakuñjarasundaram || 21 ||

took on the form of Pingala, and set out for the caves of the Vindhya mountains. This Pingala, leaving the sky, went to the Vindhya forest, lovely with its thickets and elephants.

पिंगल का रूप धारण कर विन्ध्य की गुफाओं की ओर चल पड़ा। यह पिंगल आकाश को छोड़कर उस विन्ध्य वन में गया, जो झुरमुटों और हाथियों से सुंदर था।

5.85.22

प्राप विन्ध्यवनं प्रावृण्मत्ताभ्राम्बरभासुरम् । उद्दधार धराकोशान्नखनिष्कृष्टभूतलः ॥ २२ ॥

prāpa vindhyavanaṃ prāvṛṇmattābhrāmbarabhāsuram | uddadhāra dharākośānnakhaniṣkṛṣṭabhūtalaḥ || 22 ||

He reached the Vindhya forest, radiant with a sky full of wild monsoon clouds. Tearing up the ground with his claws, he lifted the body out of its hollow in the earth.

वह विन्ध्य वन में पहुँचा, जो बरसाती बादलों से भरे आकाश से जगमगा रहा था। अपने पंजों से धरती को फाड़कर, उसने शरीर को उसकी मिट्टी की कब्र से बाहर निकाला।

5.85.23

कलेवरं मुनेः पङ्कान्मृणालमिव सारसः । मौनं पुर्यष्टकमथ स्वं विवेश कलेवरम् ॥ २३ ॥

kalevaraṃ muneḥ paṅkānmṛṇālamiva sārasaḥ | maunaṃ puryaṣṭakamatha svaṃ viveśa kalevaram || 23 ||

He drew the sage's body out of the mud, as a crane draws a lotus stalk out of the mud. Then the silent subtle body entered its own body again.

उसने मुनि के शरीर को कीचड़ से यों निकाला जैसे कोई सारस कमल की डंडी को कीचड़ से खींच निकालता है। फिर वह मौन सूक्ष्म शरीर अपने ही शरीर में फिर से समा गया।

5.85.24

नभस्तलपरिभ्रान्तो विहङ्गम इवालयम् । प्रणेमतुर्मिथो मूर्तवीतहव्यनभश्चरौ ॥ २४ ॥

nabhastalaparibhrānto vihaṅgama ivālayam | praṇematurmitho mūrtavītahavyanabhaścarau || 24 ||

The two of them bowed to each other, Vitahavya now embodied once more, and Pingala the sky wanderer, like a bird that had roamed the whole sky and was now returning to its nest.

दोनों ने एक दूसरे को प्रणाम किया, अब फिर से देहधारी बना वीतहव्य, और आकाश में विचरने वाला पिंगल, जो पूरे आकाश में घूमकर अब उस पक्षी की तरह अपने घोंसले को लौट रहा था।

5.85.25

बभूवतुः स्वकार्यैकतत्परौ तेजसां निधी। जगाम पिङ्गलो व्योम मुनिश्च विमलं सरः ॥ २५ ॥

babhūvatuḥ svakāryaikatatparau tejasāṃ nidhī | jagāma piṅgalo vyoma muniśca vimalaṃ saraḥ || 25 ||

Both of them, storehouses of radiance, turned to their own separate tasks. Pingala went into the sky, and the sage went to a clear lake.

वे दोनों, जो तेज के भंडार थे, अपने अपने काम में जुट गए। पिंगल आकाश में चला गया, और मुनि एक निर्मल सरोवर की ओर गया।

5.85.26

तारकाकारकुमुदं सूर्यांशुकवदाकृति। वीतहव्यो ममज्जाशु सरस्युद्भिन्नपङ्कजे ॥ २६ ॥

tārakākārakumudaṃ sūryāṃśukavadākṛti | vītahavyo mamajjāśu sarasyudbhinnapaṅkaje || 26 ||

Into that lake, where the water lilies were shaped like stars and shone as bright as the sun's rays, and lotuses had opened up out of the mud, Vitahavya quickly dove.

उस सरोवर में, जहाँ के कुमुद तारों जैसे दिखते थे और सूर्य की किरणों जैसे चमकते थे, और जहाँ कीचड़ से कमल खिल उठे थे, वीतहव्य ने तुरंत डुबकी लगा दी।

5.85.27

पङ्कपल्वललीलान्ते वने कलभको यथा। तत्र स्नात्वा जपं कृत्वा पूजयित्वा दिवाकरम्। मनोभूषितया तन्वा पूर्ववत्पुनराबभौ ॥ २७ ॥

paṅkapalvalalīlānte vane kalabhako yathā | tatra snātvā japaṃ kṛtvā pūjayitvā divākaram | manobhūṣitayā tanvā pūrvavatpunarābabhau || 27 ||

Like a young elephant come out from playing in a muddy pool, he bathed there, said his prayers, worshipped the sun, and, his body now as lovely as his own mind, shone again just as he had before.

जैसे कोई हाथी का बच्चा कीचड़ भरे गड्ढे में खेलकर बाहर निकलता है, वैसे ही उसने वहाँ स्नान किया, जप किया, सूर्य की पूजा की, और अपने मन जैसी ही सुंदर देह के साथ पहले की तरह फिर से चमकने लगा।

5.85.28

मैत्र्या तया समतया परया च शान्त्या सत्प्रज्ञया मुदितया कृपया श्रिया च। युक्तो मुनिः सकलसङ्गविमुक्तचेता विन्ध्ये सरित्तटगतो दिनमेव रेमे ॥ २८ ॥

maitryā tayā samatayā parayā ca śāntyā satprajñayā muditayā kṛpayā śriyā ca | yukto muniḥ sakalasaṅgavimuktacetā vindhye sarittatagato dinameva reme || 28 ||

Filled with that same loving kindness, with equanimity, with the deepest peace, with true wisdom, with joy, with compassion, and with grace, the sage, his mind free of every attachment, went to a riverbank in the Vindhya hills and spent the whole day there in delight.

उसी मैत्री से, उसी समता से, उसी परम शांति से, सच्ची समझ से, आनंद से, दया से और शोभा से भरकर, वह मुनि, जिसका मन हर मोह बंधन से मुक्त था, विन्ध्य पर्वत की एक नदी के किनारे गया और वहाँ पूरा दिन आनंद में बिताया।

Chapter 86

5.86.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । दिनान्ते स समाधातुं पुनरेव मनो मुनिः । विवेश कांचिद्विततां विज्ञातां विन्ध्यकन्दराम् ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dināṃte sa samādhātuṃ punareva mano muniḥ | viveśa kāṃcidvitatāṃ vijñātāṃ vindhyakandarām || 1 ||

Sri Vasishtha said: At the end of the day, to settle his mind once again, the sage entered a certain vast, familiar cave of the Vindhya mountains.

श्री वसिष्ठ ने कहा: दिन के अंत में, अपने मन को फिर से शांत करने के लिए, वह मुनि विंध्य पर्वत की एक बड़ी, जानी-पहचानी गुफा में जा पहुँचा।

5.86.2

तदेवात्मानुसंधानमत्यजन्सममिन्द्रियैः । चेतसा कलयामास दृष्टलोकपरावरः ॥ २ ॥

tadevātmānusandhānamatyajansamamindriyaiḥ | cetasā kalayāmāsa dṛṣṭalokaparāvaraḥ || 2 ||

He did not give up that same search for the true self, and kept his senses fixed on it too; with his mind he held on to it, this same sage who had seen the whole world, both near and far.

उसने अपने सच्चे स्वरूप की उसी खोज को नहीं छोड़ा, और अपनी इंद्रियों को भी उसी पर टिकाए रखा; अपने मन से वह उसे थामे रहा, यही वह मुनि था जिसने दुनिया को पास और दूर दोनों तरफ से देखा था।

5.86.3

पूर्वमेवेन्द्रियगणो मया परिहृतः स्फुटम् । इदानीं चिन्तया नार्थः पुनर्विततया मम ॥ ३ ॥

pūrvamevendriyagaṇo mayā parihṛtaḥ sphuṭam | idānīṃ cintayā nārthaḥ punarvitatayā mama || 3 ||

Already before this, I clearly gave up the whole group of senses. Now I have no use for a thought that spreads out again.

इससे पहले ही मैंने इंद्रियों के पूरे समूह को साफ़-साफ़ छोड़ दिया था। अब मुझे फिर से फैलने वाले विचार की कोई ज़रूरत नहीं है।

5.86.4

अस्तिनास्तीतिकलनां भङ्क्त्वा मृद्वीं लतामिव । शेषं तु बद्धसंस्थानस्तिष्ठाम्यचलशृङ्गवत् ॥ ४ ॥

astināstītikalanāṃ bhaṅktvā mṛdvīṃ latāmiva | śeṣaṃ tu baddhasaṃsthānastiṣṭhāmyacalaśṛṅgavat || 4 ||

I have snapped the thought of it is and it is not, the way one snaps a tender creeper. For the rest, I stay fixed in place, like the peak of a mountain that does not move.

यह है और यह नहीं है, इस विचार को मैंने वैसे ही तोड़ दिया है जैसे कोई कोमल बेल को तोड़ देता है। बाकी सब में मैं अपनी जगह पर स्थिर हूँ, जैसे किसी अचल पर्वत की चोटी।

5.86.5

उदितोऽस्तं गत इव स्वस्तं गत इवोदितः । समः समरसाभासस्तिष्ठामि स्वच्छतां गतः ॥ ५ ॥

udito'staṃ gata iva svastaṃ gata ivoditaḥ | samaḥ samarasābhāsastiṣṭhāmi svacchatāṃ gataḥ || 5 ||

I am like a sun that has risen and also set, that has set and also risen in itself. I am the same everywhere, the same in feeling everywhere. I stay clear.

मैं ऐसा हूँ जैसे सूरज उगा भी हो और डूबा भी हो, डूबा भी हो और अपने आप में उगा भी हो। मैं हर जगह एक-सा हूँ, हर जगह एक ही अनुभव जैसा। मैं निर्मल होकर टिका हूँ।

5.86.6

प्रबुद्धोऽपि सुषुप्तस्थः सुषुप्तस्थः प्रबुद्धवत् । तुर्यमालम्ब्य कायान्तस्तिष्ठामि स्तम्भितस्थितिः ॥ ६ ॥

prabuddho'pi suṣuptasthaḥ suṣuptasthaḥ prabuddhavat| turyamālambya kāyāntastiṣṭhāmi stambhitasthitiḥ || 6 ||

Though awake, I am as if in deep sleep; though in deep sleep, I am as if awake. Resting on the fourth state, I remain within the body, my state stilled.

जागते हुए भी मैं ऐसा हूँ जैसे गहरी नींद में हूँ; गहरी नींद में भी ऐसा हूँ जैसे जागा हुआ हूँ। चौथी अवस्था का सहारा लेकर मैं शरीर के भीतर टिका हूँ, मेरी स्थिति स्थिर हो गई है।

5.86.7

स्थितः स्थाणुरिवैकान्ते स्वान्तान्ते सर्वतः स्थिते । सत्त्वसामान्यसाम्ये हि तिष्ठाम्यपगतामयः ॥ ७ ॥

sthitaḥ sthāṇurivaikānte svāntānte sarvataḥ sthite| sattvasāmānyasāmye hi tiṣṭhāmyapagatāmayaḥ || 7 ||

I stand still like a post, alone, yet the end of my own inner self reaches everywhere. In that sameness which is common to all being, I remain free of all affliction.

मैं खंभे की तरह अकेला और स्थिर खड़ा हूँ, फिर भी मेरे अपने भीतरी स्वरूप की सीमा हर जगह फैली हुई है। उस समानता में जो हर किसी में एक-सी है, मैं हर पीड़ा से मुक्त होकर टिका रहता हूँ।

5.86.8

इति संचिन्त्य स ध्याने पुनस्तस्थौ दिनानि षट् । ततः प्रबोधमापन्नः क्षणसुप्त इवाध्वगः ॥ ८ ॥

iti saṃcintya sa dhyāne punastasthau dināni ṣaṭ| tataḥ prabodhamāpannaḥ kṣaṇasupta ivādhvagaḥ || 8 ||

Having thought this, he remained in meditation again for six days. Then he woke up, like a traveler who had slept for just a moment.

यह सोचकर वह फिर से छह दिनों तक ध्यान में स्थिर रहा। फिर वह जाग उठा, जैसे कोई यात्री बस एक पल के लिए सोया हो।

5.86.9

ततः सिद्धः स भगवान्वीतहव्यो महातपाः । विजहार चिरं कालं जीवन्मुक्ततया तदा ॥ ९ ॥

tataḥ siddhaḥ sa bhagavānvītahavyo mahātapāḥ| vijahāra ciraṃ kālaṃ jīvanmuktatayā tadā || 9 ||

Then Vitahavya, the great and blessed sage of fierce austerity, having become accomplished, spent a long time living on as one who is free while still alive.

फिर वीतहव्य, वह महान और पूज्य मुनि जिसने कठोर तप किया था, सिद्ध होकर लंबे समय तक जीते-जी मुक्त होकर जीता रहा।

5.86.10

वस्तु नाभिननन्दासौ निनिन्द न कदाचन । न जगाम तथोद्वेगं न च हर्षमवाप सः ॥ १० ॥

vastu nābhinanandāsau nininda na kadācana| na jagāma tathodvegaṃ na ca harṣamavāpa saḥ || 10 ||

He never delighted in a thing, nor did he ever find fault with one. He never fell into distress, nor did he ever feel elation.

उसने न कभी किसी चीज़ में खुशी पाई, न कभी किसी की निंदा की। वह न कभी बेचैन हुआ, न कभी उल्लास में आया।

5.86.12

गच्छतस्तिष्ठतश्चैव तस्यैवमभवद्धृदि । विनोदाय विचित्तस्य कथा स्वमनसा सह ॥ १२ ॥

gacchatastiṣṭhataścaiva tasyaivamabhavaddhṛdi | vinodāya vicittasya kathā svamanasā saha || 12 ||

Whether walking or standing still, this thought came into his heart: for the amusement of his quiet mind, he began a conversation with his own mind.

चलते हुए भी और खड़े रहते हुए भी, उसके मन में यह विचार उठा: अपने शांत मन के मनोरंजन के लिए, वह अपने ही मन से बातचीत करने लगा।

5.86.13

एषैवाविरतं तस्मान्नीरागैव दशा त्वया । अवलम्ब्या परित्याज्यं चापलं चलतां वर ॥ १३ ॥

eṣaivaaviratanna nīrāgaiva daśā tvayā | avalambyā parityājyaṃ cāpalaṃ calatāṃ vara || 13 ||

This alone, therefore, is the passionless state you must hold on to without a break; give up restlessness, O best of all that wanders.

इसलिए, यही वह विरक्ति की स्थिति है जिसे तुझे बिना रुके थामे रखना है; चंचलता को छोड़ दे, हे भटकने वालों में श्रेष्ठ।

5.86.14

भो भो इन्द्रियचौरा हे हताशा हतनामकाः । युष्माकं नायमात्मास्ति न भवन्तस्तथात्मनः ॥ १४ ॥

bho bho indriyacorā he hatāśā hatanāmakāḥ | yuṣmākaṃ nāyamātmāsti na bhavantastathātmanaḥ || 14 ||

Hey, hey, you thieves of the senses! You with dashed hopes, you with ruined names! This self is not yours, and you are not the self either.

अरे, अरे, इंद्रियों के चोरों! तुम्हारी सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गई हैं, तुम्हारा नाम भी बदनाम हो चुका है! यह आत्मा तुम्हारी नहीं है, और तुम भी आत्मा नहीं हो।

5.86.15

व्रजतां वो विनाशांशमाशा वो विफलीकृताः । न समर्थाः समाक्रान्तौ भवन्तो भङ्गुराश्रयाः ॥ १५ ॥

vrajatāṃ vo vināśāṃśamāśā vo viphalīkṛtāḥ | na samarthāḥ samākrāntau bhavanto bhaṅgurāśrayāḥ || 15 ||

Let your share of ruin come to you; your hopes have all failed. Even together, you have no power to overpower me, you whose refuge itself is fragile.

तुम्हारे हिस्से का विनाश तुम पर आ जाए; तुम्हारी सारी आशाएँ नाकाम हो चुकी हैं। साथ मिलकर भी तुम मुझ पर हावी होने की ताक़त नहीं रखते, तुम्हारा सहारा ही कमज़ोर है।

5.86.16

वयमात्मेति यैषा वो बभूव किल वासना । तत्त्वविस्मृतिजाता हि दृष्टरज्जुभुजङ्गवत् ॥ १६ ॥

vayamātmeti yaiṣā vo babhūva kila vāsanā | tattvavismṛtijātā hi dṛṣṭarajjubhujagavat || 16 ||

This notion of yours, that you are the self, arose only because the truth was forgotten, the way someone mistakes a rope they have seen for a snake.

तुम्हारा यह विचार कि तुम ही आत्मा हो, सच को भूल जाने से ही पैदा हुआ है, ठीक वैसे जैसे कोई रस्सी को देखकर उसे साँप समझ बैठे।

5.86.17

अनात्मन्यात्मता सैषा सैषा वस्तुन्यवस्तुताअविचारेण वै जाता विचारेण क्षयं गता ॥ १७ ॥

anātmanyātmatā saiṣā saiṣā vastunyavastutāavicāreṇa vai jātā vicāreṇa kṣayaṃ gatā || 17 ||

This same feeling of being a self where there is no self, this same feeling of unreality in what is truly real, both were born because no one looked closely, and both come to an end when someone looks closely.

जहाँ आत्मा नहीं है वहाँ आत्मा होने का यह भाव, और जो सचमुच सत्य है उसमें असत्य होने का यह भाव, दोनों बिना गहराई से जांचे पैदा हुए हैं, और गहराई से जांचने पर मिट जाते हैं।

5.86.18

भवन्तोऽन्ये वयं चान्ये ब्रह्मान्यत्कर्तृतापराअन्यो भोक्तान्य आदत्ते को दोषः कस्य कीदृशः ॥ १८ ॥

bhavanto'nye vayaṃ cānye brahmānyatkartṛtāparāanyo bhoktānya ādatte ko doṣaḥ kasya kīdṛśaḥ || 18 ||

You are one thing, we are another, and Brahman is yet another; agency itself is a lesser matter. One is the enjoyer, another is the one who acts, so whose fault is it, and what kind of fault is it?

तुम कुछ और हो, हम कुछ और हैं, और ब्रह्म कुछ और है; कर्तापन तो वैसे भी एक छोटी बात है। भोगने वाला कोई और है, करने वाला कोई और, तो दोष किसका है, और कैसा है?

5.86.19

वनेभ्यो दारु संजातं रज्जवो वेणुचर्मणःवासी चायःफलान्येव तक्षा ग्रासार्थमुद्यतः ॥ १९ ॥

vanebhyo dāru saṃjātaṃ rajjavo veṇucarmaṇaḥvāsī cāyaḥphalānyeva takṣā grāsārthamudyataḥ || 19 ||

Wood grows in the forests. Ropes come from bamboo and hide. There is the adze, and there are iron blades. And the carpenter sets to work only to earn his food.

लकड़ी जंगलों से पैदा होती है। रस्सियाँ बांस और चमड़े से बनती हैं। बसूला है, और लोहे के फाल हैं। और बढ़ई अपने भोजन के लिए ही काम में जुट जाता है।

5.86.20

इत्थं यथेह सामग्र्या स्वशक्तिस्थपदार्थयासंपन्ना काकतालीया दृढा वरगृहाकृतिः ॥ २० ॥

itthaṃ yatheha sāmagryā svaśaktisthapadārthayāsaṃpannā kākatālīyā dṛḍhā varagṛhākṛtiḥ || 20 ||

In just this way, when things come together here, each working by its own power, the firm shape of a fine house appears, like the chance meeting of a crow and a falling palm fruit.

इसी तरह, जब हर चीज़ अपनी-अपनी ताक़त से यहाँ आकर जुड़ती है, तो एक सुंदर घर का पक्का आकार बन जाता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे कौआ और गिरता हुआ ताड़ का फल संयोग से एक साथ मिल जाएं।

5.86.21

संपन्नाः काकतालीयात्स्वशक्तिनियतेन्द्रियाःतथैव कलिका लोलं केव कस्यात्र खण्डना ॥ २१ ॥

saṃpannāḥ kākatālīyātsvaśaktiniyatendriyāḥtathaiva kalikā lolaṃ keva kasyātra khaṇḍanā || 21 ||

In just the same way, the senses too have come about only by chance, each held within its own power. So too is a trembling bud, what then is like what here? Whose breaking is this, and of what kind?

उसी तरह, इंद्रियाँ भी संयोग से ही बनी हैं, हर एक अपनी ही शक्ति में बंधी हुई। और वैसे ही है एक काँपती हुई कली, यहाँ किसकी तुलना किससे है? यहाँ टूटना किसका है, और कैसा है?

5.86.22

विस्मृतिर्विस्मृता दूरं स्मृतिः स्फुटमनुस्मृता । सत्सज्जातमसच्चासत्क्षतं क्षीणं स्थितं स्थितम् ॥ २२ ॥

vismṛtirvismṛtā dūraṃ smṛtiḥ sphuṭamanusmṛtā | satsajjātamasaccāsatkṣataṃ kṣīṇaṃ sthitaṃ sthitam || 22 ||

Forgetting itself has been forgotten and cast far away; remembering has come back clearly. What is real has shown itself as real, and what is unreal stays unreal. What was fading has faded away completely, and what stood firm still stands firm.

भूलना खुद भूल गया है, दूर फेंका जा चुका है; याद आना साफ़-साफ़ लौट आया है। जो सच है वह सच के रूप में सामने आ गया है, और जो झूठ है वह झूठ ही बना हुआ है। जो घिस रहा था वह पूरी तरह घिस गया है, और जो स्थिर था वह अब भी स्थिर है।

5.86.23

एवंविधेन भगवान्विचारेण महातपाः । सोऽतिष्ठन्मुनिशार्दूलो बहून्वर्षगणानिह ॥ २३ ॥

evaṃvidhena bhagavānvicāreṇa mahātapāḥ | so'tiṣṭhanmuniśārdūlo bahūnvarṣagaṇāniha || 23 ||

With this kind of inquiry, the blessed sage of great austerity, that tiger among sages, remained here for many years.

इसी तरह के विचार-मनन से, वह पूज्य महातपस्वी, मुनियों में श्रेष्ठ, यहाँ कई-कई वर्षों तक टिका रहा।

5.86.24

अपुनर्भवनायैव यत्र चिन्तान्तमागता । मूढता च सुदूरस्था तत्रासाववसत्सदा ॥ २४ ॥

apunarbhvanāyaiva yatra cintāntamāgatā | mūḍhatā ca sudūrasthā tatrāsāvavasatsadā || 24 ||

He always lived there, in the place where all thinking had come to an end so that he would never be born again, and where delusion stood far, far away.

वह हमेशा वहीं रहता था, जहाँ हर विचार का अंत हो चुका था ताकि वह फिर कभी जन्म न ले, और जहाँ मोह बहुत दूर था।

5.86.25

यथाभूतपदार्थौघदर्शनोत्थमनर्थकम् । ध्यानाश्वासनमालम्ब्य सोऽवसत्सुखगः सदा ॥ २५ ॥

yathābhūtapadārthaughadarśanotthamanarthakam | dhyānāśvāsanamālambya so'vasatsukhagaḥ sadā || 25 ||

Relying on meditation's support, which had no further purpose for him now, since he saw the whole flood of things as they truly are, he always lived on, happy and at ease.

ध्यान के सहारे को थामे हुए, जो अब उसके लिए बेमतलब था, क्योंकि वह हर चीज़ को जैसी वह सच में है वैसा ही देख चुका था, वह हमेशा सुख से, चैन से रहता था।

5.86.26

हेयादेयसमासङ्गत्यागादानदृशोः क्षये । वीतहव्यमुनेरासीदिच्छानिच्छातिगं मनः ॥ २६ ॥

heyādeyasamāsaṅgatyāgādānadṛśoḥ kṣaye | vītahavyamunerāsīdicchānicchātigaṃ manaḥ || 26 ||

Once his very idea of this is to be rejected, this is to be accepted, and this is to be given up, this is to be taken, had both faded away, the mind of the sage Vitahavya passed beyond all wanting and not wanting.

जब उसका यह भाव कि यह छोड़ने योग्य है, यह अपनाने योग्य है, और यह त्यागने योग्य है, यह ग्रहण करने योग्य है, दोनों मिट गए, तब मुनि वीतहव्य का मन चाहने और न चाहने दोनों से परे चला गया।

5.86.27

विदेहकेवलीभावे सीमन्ते जन्मकर्मणाम्। संसारसङ्गसंत्यागरसासवनवेच्छया ॥ २७ ॥

videhakevalībhāve sīmante janmakarmaṇām | saṃsārasaṅgasaṃtyāgarasāsavanavecchayā || 27 ||

He had reached the state of being free of body, standing alone at the edge of birth and action, and now felt a fresh thirst for the sweetness of giving up every tie to this world of birth and death.

वह शरीर-रहित, अकेली अवस्था में, जन्म और कर्म की सीमा पर पहुँच चुका था, और अब उसे संसार के हर बंधन को त्यागने के आनंद की नई प्यास जागी।

5.86.28

विवेश स तथैवान्ते सह्याद्रौ हेमकन्दरम्। अपुनःसङ्गमायाशु जगज्जालमवेक्ष्य सः ॥ २८ ॥

viveśa sa tathaivānte sahyādrau hemakandaram | apunaḥsaṅgamāyāśu jagajjālamavekṣya saḥ || 28 ||

Then, at last, in that same spirit, he entered a golden cave in the Sahya mountains; he had looked closely at the net of the world, so as never to be caught in it again.

फिर, अंत में, उसी भाव में, वह सह्याद्रि पर्वत की एक सुनहरी गुफा में प्रवेश कर गया; उसने संसार के जाल को अच्छी तरह देख लिया था, ताकि वह फिर कभी उसमें न फँसे।

5.86.29

बद्धपद्मासनः स्थित्वा तत्रोवाचात्मनात्मनि। राग नीरागतां गच्छ द्वेष निर्द्वेषतां व्रज ॥ २९ ॥

baddhapadmāsanaḥ sthitvā tatrovācātmanātmani | rāga nīrāgatāṃ gaccha dveṣa nirdveṣatāṃ vraja || 29 ||

Sitting there in the lotus posture, he spoke to himself, within himself: Passion, go into passionlessness. Hatred, go into the end of hatred.

वहाँ पद्मासन में बैठकर, उसने अपने आप से, अपने भीतर ही कहा: हे राग, तू विरक्ति में बदल जा। हे द्वेष, तू द्वेष-रहित हो जा।

5.86.30

भवद्भ्यां सुचिरं कालमिह प्रक्रीडितं मया। भोगा नमोस्तु युष्मभ्यं जन्म कोटिशतान्यहम् ॥ ३० ॥

bhavadbhyāṃ suciraṃ kālamiha prakrīḍitaṃ mayā | bhogā namostu yuṣmabhyaṃ janma koṭiśatānyaham || 30 ||

With you both, I have spent a very long time playing here in this world. Farewell to you, pleasures, across hundreds of millions of births.

तुम दोनों के साथ मैंने यहाँ इस दुनिया में बहुत लंबे समय तक खेल खेला है। हे सुखभोगों, करोड़ों-करोड़ों जन्मों से जो साथ रहा, अब तुम्हें विदा।

5.86.31

भवद्भिर्लालितो लोके लालकैरिव बालकः। इमामपि परां पुण्यां निर्वाणपदवीमहम् ॥ ३१ ॥

bhavadbhirlālito loke lālakairiva bālakaḥ | imāmapi parāṃ puṇyāṃ nirvāṇapadavīmham || 31 ||

Pampered in this world by you, pleasures, like a child by its nurses, I have now also reached this same supreme and sacred path to nirvana.

इस दुनिया में तुमने मुझे वैसे ही दुलारा जैसे कोई दाई किसी बच्चे को दुलारती है। अब मैं इस परम, पवित्र मोक्ष के मार्ग तक भी पहुँच गया हूँ।

5.86.32

येन विस्मारितस्तस्मै सुखायास्तु नमो नमः । त्वदुत्तप्तेन हे दुःख मयात्मान्विष्ट आदरात् ॥ ३२ ॥

yena vismāritastasmai sukhāyāstu namo namaḥ | tvaduttaptena he duḥkha mayātmānviṣṭa ādarāt || 32 ||

Salutation, again and again, to that which made me forget, for it was for my own good. O sorrow, burning in your heat, I searched for my true self with great care.

जिसने मुझे भुला दिया, उसे बार-बार प्रणाम, क्योंकि यह मेरी भलाई के लिए ही हुआ। हे दुख, तेरी आग में जलकर ही मैंने अपने सच्चे स्वरूप को पूरी श्रद्धा से खोजा।

5.86.33

तस्मात्त्वदुपदिष्टोऽयं मार्गो मम नमोऽस्तु ते । त्वत्प्रसादेन लब्धेयं शीतला पदवी मया ॥ ३३ ॥

tasmāttvadupadiṣṭo'yaṃ mārgo mama namo'stu te | tvatprasādena labdheyaṃ śītalā padavī mayā || 33 ||

Therefore this path that you showed me is now my own path. Salutation to you. By your grace I have won this cool and peaceful state.

इसलिए तूने जो मार्ग मुझे दिखाया, वही अब मेरा मार्ग है। तुझे प्रणाम है। तेरी ही कृपा से मैंने यह शीतल और शांत अवस्था पाई है।

5.86.34

दुःखनाम्ने दुःखतत्त्व सुखदात्मन्नमोस्तु ते । कल्याणमस्तु ते मित्र संसारासारजीवित ॥ ३४ ॥

duḥkhanāmne duḥkhatattva sukhadātmannamo'stu te | kalyāṇamastu te mitra saṃsārāsārajīvita || 34 ||

Salutation to you, whose name is sorrow, whose nature is sorrow, yet who are a self that gives happiness. May you be well, friend, whose whole life is this empty world.

तुझे प्रणाम, जिसका नाम दुख है, जो दुख का ही रूप है, फिर भी जो सुख देने वाला स्वरूप है। हे मित्र, तेरा भला हो, तू जिसका सारा जीवन इस खाली संसार में बीता है।

5.86.35

देह स्थितिरियं यामो वयमात्मीयमास्पदम् । प्रयोजनानां जन्तूनामहो नु विषमा गतिः ॥ ३५ ॥

deha sthitiriyaṃ yāmo vayamātmīyamāspadam | prayojanānāṃ jantūnāmaho nu viṣamā gatiḥ || 35 ||

O body, this has been our time together. Now I go to my own true home. Ah, how strange is the fate of creatures driven by their own needs.

हे देह, यही हमारा साथ था। अब मैं अपने असली घर को जाता हूँ। अरे, अपनी-अपनी ज़रूरतों में बंधे प्राणियों की कैसी विचित्र गति है।

5.86.36

देहेनापि वियुज्येऽहं भूत्वा जन्मशतान्यपि । मित्रकाय मया यत्त्वं त्यज्यसे चिरबान्धवः ॥ ३६ ॥

dehenāpi viyujye'haṃ bhūtvā janmaśatānyapi | mitrakāya mayā yattvaṃ tyajyase cirabāndhavaḥ || 36 ||

I part even from this body, though we lived together through a hundred births. O body, my dear friend, my companion of so long, it is I who now leave you.

मैं इस देह से भी अलग हो रहा हूँ, यद्यपि हम सौ जन्मों तक साथ रहे। हे देह, मेरे प्रिय मित्र, मेरे इतने पुराने साथी, अब मैं ही तुझे छोड़कर जा रहा हूँ।

5.86.37

त्वयैवात्मन्युपानीता सात्मज्ञानवशात्क्षतिः । अधिगम्यात्मविज्ञानमात्मनाशः कृतस्त्वया ॥ ३७ ॥

tvayaivātmanyupānītā sātmajñānavśātkṣatiḥ | adhigamyātmavijñānamātmanāśaḥ kṛtastvayā || 37 ||

It was you alone who, by the strength of true knowledge, brought this wearing away upon me. Having reached knowledge of the self, you brought about the destruction of the self.

सच्चे ज्ञान के बल से यह क्षय मुझमें तूने ही लाया। आत्मज्ञान पाकर तूने ही इस मैं का नाश किया।

5.86.38

देह नान्येन भग्नोऽसि त्वयैवैतदुपासितम् । एकाकिन्यापि शुष्यन्त्या प्रशान्ते मयि दीनया ॥ ३८ ॥

deha nānyena bhagnosi tvayaivaitadupāsitam | ekākinyāpi śuṣyantyā praśānte mayi dīnayā || 38 ||

O body, no one else broke you down. You did this to yourself, wasting away all alone, wretched, even as I grew calm and still.

हे देह, तुझे किसी और ने नहीं तोड़ा। यह तूने स्वयं ही किया, अकेली, दुखी, सूखती हुई, तभी जब मैं शांत हो गया।

5.86.39

त्वया दुःखं न कर्तव्यं मातस्तृष्णे व्रजाम्यहम् । क्षन्तव्याः काम भगवन्विपरीतापराधजाः ॥ ३९ ॥

tvayā duḥkhaṃ na kartavyaṃ mātastṛṣṇe vrajāmyaham | kṣantavyāḥ kāma bhagavanviparītāparādhajāḥ || 39 ||

You must not sorrow, mother Thirst. I am going now. Forgive me, Kama, my lord, for the wrongs that came from my own confusion.

हे माँ तृष्णा, तू दुखी मत हो। अब मैं जा रहा हूँ। हे काम, हे स्वामी, मेरी भ्रमित भूलों से जो अपराध हुए, उन्हें क्षमा करना।

5.86.40

दोषा उपशमैकान्तं व्रजाम्यादिश मङ्गलम् । चिराच्चिराय चेदानीमम्ब तृष्णे किलावयोः ॥ ४० ॥

doṣā upaśamaikāntaṃ vrajāmyādiśa maṅgalam | cirāccirāya cedānīmamba tṛṣṇe kilāvayoḥ || 40 ||

At nightfall I go toward that one abode of perfect peace. Grant me your blessing. After so long, so very long, mother Thirst, if the hour has now come for the two of us to part.

रात होते ही मैं उस एक परम शांति के धाम की ओर जा रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दे। हे माँ तृष्णा, इतने लंबे समय के बाद, यदि अब हम दोनों के बिछड़ने की घड़ी आ गई है।

5.86.41

वियोगो योगदोषेण प्रणामोऽयं स पश्चिमः । नमः सुकृतदेवाय भवतेऽस्तु त्वया पुरा ॥ ४१ ॥

viyogo yogadoṣeṇa praṇāmo'yaṃ sa paścimaḥ | namaḥ sukṛtadevāya bhavate'stu tvayā purā || 41 ||

This parting comes only from the flaw of ever having been joined together. This is my last salutation. Salutation to you, who were like a god of good deeds to me before.

यह वियोग तो जुड़े रहने के इस दोष के कारण ही है। यह मेरा अंतिम प्रणाम है। तुझे प्रणाम, जो पहले मेरे लिए अच्छे कर्मों के देवता समान था।

5.86.42

नरकेभ्यः समुत्तार्य स्वर्गेऽहमभियोजितःकुकार्यक्षेत्ररूढाय नरकस्कन्धवाहिने ॥ ४२ ॥

narakebhyaḥ samuttārya svarge'hamabhiyojitaḥkukāryakṣetrarūḍhāya narakaskandhavāhine || 42 ||

You lifted me out of the hells and yoked me to heaven. Salutation to you, grown from the field of bad deeds, carrier of the very burden of hell.

तूने मुझे नरकों से निकालकर स्वर्ग में जोत दिया। तुझे प्रणाम, जो बुरे कर्मों के खेत में उगा है, और जो नरक का बोझ ढोता है।

5.86.43

शासनापुष्पभाराय नमो दुष्कृतशाखिनेयेन सार्धं चिरं बह्व्यो भुक्ताः प्राकृतयोनयः ॥ ४३ ॥

śāsanāpuṣpabhārāya namo duṣkṛtaśākhineyena sārdhaṃ ciraṃ bahvyo bhuktāḥ prākṛtayonayaḥ || 43 ||

Salutation to you, laden with the flowers of command, tree of bad deeds. With you I lived through so many ordinary births, for so long.

तुझे प्रणाम, जो आज्ञाओं के फूलों से लदा है, दुष्कर्मों का वृक्ष है। तेरे साथ मैंने लंबे समय तक इतने सामान्य जन्म भोगे।

5.86.44

अद्यप्रभृत्यदृश्याय तस्मै मोहात्मने नमःप्रध्वनद्वंशमधुरवचसे पत्रवाससे ॥ ४४ ॥

adyaprabhṛtyadṛśyāya tasmai mohātmane namaḥpradhvanadvaṃśamadhuravacase patravāsase || 44 ||

From today, salutation to you who will be unseen, whose very self is delusion, whose voice is sweet as a resounding bamboo flute, whose garment is leaves.

आज से तुझे प्रणाम, जो अब अदृश्य हो जाएगा, जिसका स्वरूप ही मोह है, जिसकी वाणी बजती बांसुरी-सी मीठी है, जिसका वस्त्र पत्तों का है।

5.86.45

नमो गुहातपस्विन्यै वयस्यायै समाधिषुसंसाराध्वनि खिन्नस्य त्वं ममाश्वासकारणम् ॥ ४५ ॥

namo guhātapasvinyai vayasyāyai samādhiṣusaṃsārādhvani khinnasya tvaṃ mamāśvāsakāraṇam || 45 ||

Salutation to you, ascetic woman of the cave, my companion in meditation. On the long road of this world, when I was tired, you were the cause of my comfort.

तुझे प्रणाम, गुफा में तप करने वाली, समाधि में मेरी सहेली। संसार के इस लंबे मार्ग पर जब मैं थक गया था, तब तू ही मेरी राहत का कारण थी।

5.86.46

आसीर्वयस्या सुस्निग्धा सर्वलोभापहारिणीसर्वसंकटखिन्नेन दोषेभ्यो द्रवता मया ॥ ४६ ॥

āsīrvayasyā susnigdhā sarvalobhāpahāriṇīsarvasaṃkaṭakhinnena doṣebhyo dravatā mayā || 46 ||

You were my companion, full of tenderness, taking away all my greed, a friend to me when every hardship wore me down and I fled from wrongdoing.

तू मेरी सहेली थी, बड़ी स्नेहमयी, जो मेरा सारा लोभ हर लेती थी, जब हर मुसीबत ने मुझे थका दिया और मैं बुराइयों से भाग रहा था, तब तू ही मेरी साथी थी।

5.86.47

त्वमेका शोकनाशार्थमाश्रिता परमा सखी । संकटावटकुञ्जेषु हस्तालम्बनदायिने ॥ ४७ ॥

tvamekā śokanāśārthamāśritā paramā sakhī | saṅkaṭāvaṭakuñjeṣu hastālambanadāyine || 47 ||

You alone were my truest friend, the one I turned to for the ending of grief. Salutation to you, who gave me a hand to hold in the pits and thickets of danger.

तू ही अकेली मेरी सबसे बड़ी सहेली थी, जिसके सहारे मैंने दुख का अंत खोजा। तुझे प्रणाम, जिसने संकट के गड्ढों और झाड़ियों में मुझे हाथ का सहारा दिया।

5.86.48

वार्धकैकान्तसुहृदे दण्डकाष्ठाय ते नमः । अस्थिपञ्जरमात्मीयं तथा रक्तान्त्रतन्तुकम् ॥ ४८ ॥

vārdhakaikāntasuhṛde daṇḍakāṣṭhāya te namaḥ | asthipañjaramātmīyaṃ tathā raktāntratantukam || 48 ||

Salutation to you, wooden staff, the one true friend of my old age, and to this cage of bones that is my own, and these threads of blood and gut.

तुझे प्रणाम, हे लाठी, मेरे बुढ़ापे की एकमात्र सच्ची मित्र, और मेरे इस हड्डियों के पिंजरे को, और इन खून और आंतों के धागों को भी प्रणाम।

5.86.49

एतावन्मात्रसारैकं गृहीत्वा गच्छ देहक । पयःक्षोभप्रकारेभ्यः स्नानेभ्योऽपि नमोस्तु ते ॥ ४९ ॥

etāvanmātrasāraikaṃ gṛhītvā gaccha dehaka | payaḥkṣobhaprakārebhyaḥ snānebhyo'pi namostu te || 49 ||

Take only this much as your whole essence, and go now, little body. Salutation also to you, baths, which are nothing but the stirring of water.

बस इतना ही अपना सार समझकर ले जा, हे छोटी देह, अब जा। तुझे भी प्रणाम, हे स्नान, तू तो बस पानी का हिलना-डुलना ही है।

5.86.50

नमोस्तु व्यवहारेभ्यः संसृतिभ्यो नमोस्तु ते । एते भवन्तः सहजाः प्राक्तनाः सुहृदो मया ॥ ५० ॥

namostu vyavahārebhyaḥ saṃsṛtibhyo namostu te | ete bhavantaḥ sahajāḥ prāktanāḥ suhṛdo mayā || 50 ||

Salutation to all worldly dealings. Salutation to you, endless wandering through birth after birth. All of you have been my natural friends of long ago.

सारे सांसारिक व्यवहारों को प्रणाम। तुझे भी प्रणाम, हे जन्म-जन्म का भटकना। तुम सब मेरे बहुत पुराने, सहज मित्र रहे हो।

5.86.51

क्रमेणाद्योत्कृताः प्राणाः स्वस्ति वोऽस्तु व्रजाम्यहम् । भवद्भिः सह चित्रासु मया बह्वीषु योनिषु ॥ ५१ ॥

krameṇādyotkṛtāḥ prāṇāḥ svasti vo'stu vrajāmyaham | bhavadbhiḥ saha citrāsu mayā bahvīṣu yoniṣu || 51 ||

Today, in due course, my life-breaths are being drawn out. May all be well with you. I am going now, I who lived with you through so many strange and different wombs.

आज, क्रम से, मेरे प्राण निकल रहे हैं। तुम्हारा भला हो। अब मैं जा रहा हूँ, मैं जो तुम्हारे साथ इतनी विचित्र और भाँति-भाँति की योनियों में रहा।

5.86.52

विश्रान्तं गिरिकुञ्जेषु श्रान्तं लोकान्तरेषु च । क्रीडितं पुरपीठान्तरुषितं पर्वतेषु च ॥ ५२ ॥

viśrāntaṃ girikuñjeṣu śrāntaṃ lokāntareṣu ca | krīḍitaṃ purapīṭhāntaruṣitaṃ parvateṣu ca || 52 ||

There was rest in the mountain groves, weariness in other worlds, play in the city squares, and living on the mountains.

पर्वतों की कुंजों में विश्राम हुआ, दूसरे लोकों में थकान हुई, नगरों के चौकों में खेल हुआ, और पहाड़ों पर रहना हुआ।

5.86.53

स्थितं कार्यविलासेषु प्रस्थितं विविधाध्वसु । न तदस्ति जगत्कोशे भवद्भिः सह यन्मया ॥ ५३ ॥

sthitaṃ kāryavilāseṣu prasthitaṃ vividhādhvasu | na tadasti jagatkośe bhavadbhiḥ saha yanmayā || 53 ||

There was staying amid worldly affairs and pleasures, and setting out on many different roads. There is nothing at all in the whole treasury of this world that I have not done together with you.

सांसारिक कामों और सुखों में ठहरना हुआ, और कई अलग-अलग रास्तों पर चलना हुआ। इस संसार के पूरे खजाने में ऐसा कुछ भी नहीं जो मैंने तुम्हारे साथ न किया हो।

5.86.54

न कृतं न हृतं यातं न दत्तं नावलम्बितम्। इदानीं स्वां दिशं यान्तु भवन्तो याम्यहं प्रियाः ॥ ५४ ॥

na kṛtaṃ na hṛtaṃ yātaṃ na dattaṃ nāvalambitam | idānīṃ svāṃ diśaṃ yāntu bhavanto yāmyahaṃ priyāḥ || 54 ||

Nothing is left to do, nothing left to take, all has passed, nothing left to give, nothing left to depend on. Now let each of you go your own way. I too am going, my dear ones.

अब न कुछ करना बाकी है, न कुछ लेना बाकी है, सब बीत चुका, न कुछ देना बाकी है, न किसी का सहारा बाकी है। अब तुम सब अपने-अपने रास्ते जाओ। मैं भी जा रहा हूँ, प्रिय मित्रो।

5.86.55

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ताः सर्वे संसारवर्त्मनि ॥ ५५ ॥

sarve kṣayāntā nicayāḥ patanāntāḥ samucchrayāḥ | saṃyogā viprayogāntāḥ sarve saṃsāravartmani || 55 ||

Everything gathered ends in loss. Every height ends in a fall. Every joining ends in parting. This is true of everything on the path of this world.

हर इकट्ठा किया हुआ अंत में नष्ट हो जाता है। हर ऊँचाई का अंत गिरने में होता है। हर मिलन का अंत बिछड़ने में होता है। संसार के इस मार्ग पर सब कुछ ऐसा ही है।

5.86.56

अयं चाक्षुष आलोको विशत्वादित्यमण्डलम्। विशन्तु वनपुष्पाणि सौगन्ध्यानन्दसंविदः ॥ ५६ ॥

ayaṃ cākṣuṣa āloko viśatvādityamaṇḍalam | viśantu vanapuṣpāṇi saugandhyānandasaṃvidaḥ || 56 ||

Let this light of the eye enter the sun's disc. Let the sense that delights in sweet scents enter the forest flowers.

आँख की यह रोशनी सूर्य के मंडल में समा जाए। मीठी सुगंध का आनंद लेने वाली शक्ति वन के फूलों में समा जाए।

5.86.57

प्राणानिलस्तथा स्पन्दं विशत्वद्य प्रभञ्जनम्। विशन्त्वाकाशकुहरं शब्दश्रवणशक्तयः ॥ ५७ ॥

prāṇānilastathā spandaṃ viśatvadya prabhañjanam | viśantvākāśakuharaṃ śabdaśravaṇaśaktayaḥ || 57 ||

Let the breath of life, together with its movement, enter today into the great wind. Let the powers of hearing sound enter the hollow of the sky.

प्राणवायु अपनी हलचल के साथ आज महावायु में समा जाए। शब्द सुनने की शक्तियाँ आकाश के खोखलेपन में समा जाएँ।

5.86.58

इन्दुमण्डलमायान्तु रसनारसशक्तयः। निर्मन्दर इवाम्भोधिर्गतार्क इव वासरः ॥ ५८ ॥

indumaṇḍalamāyāntu rasanārasaśaktayaḥ | nirmandara ivāmbhodhirgatārka iva vāsaraḥ || 58 ||

Let the powers of taste in the tongue go to the moon's disc, like an ocean with no Mount Mandara left to churn it, like a day gone since its sun has set.

जीभ के स्वाद की शक्तियाँ चंद्रमंडल में चली जाएँ, जैसे बिना मंदराचल के सागर शांत हो जाए, जैसे सूरज के डूबने पर दिन बीत जाए।

5.86.59

शरदीव घनः स्वैरं प्राप्तः कल्पान्तसर्गवत् । ओंकारान्ते स्वमननं प्रशाम्याम्यात्मनात्मनि । दग्धेन्धन इवार्चिष्मान्निःस्नेह इव दीपकः ॥ ५९ ॥

śaradīva ghanaḥ svairaṃ prāptaḥ kalpāntasargavat | oṃkārānte svamananaṃ praśāmyāmyātmanātmani | dagdhendhana ivārciṣmānniḥsneha iva dīpakaḥ || 59 ||

Like a cloud in autumn fading away on its own, like the stillness between the end of one age and the start of the next, I quiet my own mind, by myself, within myself, as the sound of Om dies into silence. I am like a flame still glowing though its fuel is spent, like a lamp going dark for want of oil.

जैसे शरद ऋतु का बादल अपने आप बिखर जाता है, जैसे एक युग के अंत और अगले युग की शुरुआत के बीच की शांति होती है, वैसे ही ॐ की ध्वनि शांत होते होते मैं अपने मन को स्वयं अपने भीतर शांत कर लेता हूँ। मैं ऐसा हूँ जैसे ईंधन चुक जाने पर भी अभी चमक रही लौ, जैसे तेल चुक जाने पर बुझता हुआ दीपक।

5.86.60

व्यपगताखिलकार्यपरम्परः सकलदृश्यदशातिगतस्थितिः । प्रणवशान्त्यनुसंसृतिशान्तधीर्विगतमोहमलोऽयमहं स्थितः ॥ ६० ॥

vyapagatākhilakāryaparamparāḥ sakaladṛśyadaśātigatasthitiḥ | praṇavaśāntyanusansṛtiśāntadhīrvigatamohamalo'yamahaṃ sthitaḥ || 60 ||

All my chain of actions has come to an end. My state has passed beyond every condition of the seen world. As the sound of Om fades into silence, my mind has grown peaceful, at rest from this endless wandering. Free now from the stain of delusion, here I stand.

मेरी सारी कर्म-परंपरा समाप्त हो चुकी है। मेरी स्थिति इस दिखने वाले संसार की हर अवस्था से परे जा चुकी है। ॐ की ध्वनि शांत होते होते मेरा मन शांत हो गया है, इस भटकते संसार से मुक्त होकर। अब मोह के मैल से मुक्त होकर, मैं यहीं स्थित हूँ।

Chapter 87

5.87.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । एवं कलितवानन्तः प्रशान्तमननैषणः । शनैरुच्चारयंस्तारं प्रणवं प्राप्तभूमिकः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | evaṃ kalitavānanthḥ praśāntamananaiṣaṇaḥ | śanairuccārayaṃstāraṃ praṇavaṃ prāptabhūmikaḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having thus come to know all this within himself, his mind's cravings stilled, he reached that stage of practice and slowly uttered the Om that carries one across.

श्री वसिष्ठ ने कहा: इस तरह अपने भीतर यह सब जानकर और मन की हर चाह को शांत करके, वह साधना की उस अवस्था तक पहुँचा और धीरे-धीरे उस ॐ का उच्चारण करने लगा जो पार ले जाता है।

5.87.2

मात्रादिपादभेदेन प्रणवं संस्मरन्यतिः । अध्यारोपापवादेन स्वरूपं शुद्धमव्ययम् ॥ २ ॥

mātrādipādabhedena praṇavaṃ saṃsmaranyatiḥ | adhyāropāpavādena svarūpaṃ śuddhamavyayam || 2 ||

The ascetic called the syllable Om to mind, part by part, starting from its smallest sound-units, and by first picturing a form for it and then setting that picture aside, he came to know his own true nature, pure and unchanging.

वह संन्यासी ॐ को उसके छोटे-छोटे अंशों में, ध्वनि-मात्राओं से शुरू करके, बार-बार स्मरण करता रहा, और पहले उसका एक रूप मन में रखकर फिर उस रूप को हटाकर, उसने अपने शुद्ध और अविनाशी असली स्वरूप को पहचान लिया।

5.87.3

सबाह्याभ्यन्तरान्भागान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि । त्रैलोक्यसंभवांस्त्यक्त्वा संकल्पाकल्पकल्पितान् ॥ ३ ॥

sabāhyābhyantarānbhāgānsthūlānsūkṣmatarānapi | trailokyasaṃbhavāṃstyaktvā saṃkalpākalpakalpitān || 3 ||

He let go of every part, outer and inner, gross and even subtler, that had arisen out of the three worlds and was shaped only by imagination.

उसने हर उस अंश को छोड़ दिया, बाहरी हो या भीतरी, स्थूल हो या उससे भी सूक्ष्म, जो तीनों लोकों से उपजा था और केवल कल्पना से गढ़ा गया था।

5.87.4

तिष्ठन्नक्षुभिताकारश्चिन्तामणिरिवात्मनि । संपूर्ण इव शीतांशुर्विश्रान्त इव मन्दरः ॥ ४ ॥

tiṣṭhannakṣubhitākāraścintāmaṇirivātmani | saṃpūrṇa iva śītāṃśurviśrānta iva mandaraḥ || 4 ||

He stayed with his form unshaken, like a wish-granting jewel resting in itself, complete like the full moon, at rest like Mount Mandara.

वह ऐसे अडिग होकर ठहरा रहा जैसे चिंतामणि मणि अपने ही भीतर शांत पड़ी हो, जैसे पूरा चाँद हो, जैसे थमकर टिका हुआ मंदराचल पर्वत हो।

5.87.5

कुम्भकारगृहे चक्रं संरोधित इव भ्रमात् । अम्भोधिरिव संपूर्णस्तिमितस्फारनिर्मलः ॥ ५ ॥

kumbhakāragṛhe cakraṃ saṃrodhita iva bhramāt | ambhodhiriva saṃpūrṇastimitasphāranirmalaḥ || 5 ||

He was like a potter's wheel brought to a stop from its spinning, like the ocean, full, still, vast, and clear.

वह ऐसा था जैसे कुम्हार के घर का चाक घूमना बंद कर दे, जैसे समुद्र हो, भरा हुआ, शांत, विशाल और निर्मल।

5.87.6

शान्ततेजस्तमःपुञ्जं विगतार्केन्दुतारकम्। अधूमाभ्ररजःस्वच्छमनन्तं शरदीव खम्॥ ६॥

śāntatejastamaḥpuñjaṃ vigatārkendutārakam | adhūmābhrarajaḥsvacchamanantaṃ śaradīva kham || 6 ||

He was like the autumn sky, a mass where light and darkness both lie stilled, without sun, moon, or star, free of smoke, cloud, and dust, clear and endless.

वह शरद ऋतु के आकाश जैसा था, मानो प्रकाश और अंधकार का वह ढेर हो जो शांत पड़ गया हो, जिसमें न सूरज हो, न चाँद, न तारे, जो धुएँ, बादल और धूल से मुक्त, निर्मल और अनंत हो।

5.87.7

सहप्रणवपर्यन्तदीर्घनिःस्वनतन्तुना। जहाविन्द्रियतन्मात्रजालं गन्धमिवानिलः॥ ७॥

sahapraṇavaparyantadīrghanisvanatantunā | jahāvindriyatanmātrajālaṃ gandhamivānilaḥ || 7 ||

With the long, thin thread of sound trailing off to the very end of Om, he let go of the whole web of the senses and their subtle objects, as the wind lets go of a scent.

ॐ के अंत तक फैले उस लंबे, महीन ध्वनि-सूत्र के साथ, उसने इंद्रियों और उनके सूक्ष्म विषयों के पूरे जाल को छोड़ दिया, जैसे हवा किसी गंध को छोड़ देती है।

5.87.8

ततो जहौ तमोमात्रं प्रतिभातमिवाम्बरे। उत्तिष्ठत्प्रस्फुरद्रूपं प्राज्ञः कोपलवं यथा॥ ८॥

tato jahau tamomātraṃ pratibhātamivāmbare | uttiṣṭhatprasphuradrūpaṃ prājñaḥ kopalavaṃ yathā || 8 ||

Then he gave up that faint trace of darkness too, a shape rising and flickering that had gleamed in the sky, as a wise man gives up a trace of anger.

फिर उसने अंधकार के उस हल्के से अंश को भी छोड़ दिया, जो आकाश में उठता-चमकता एक रूप बनकर दिखा था, जैसे कोई समझदार व्यक्ति क्रोध की हल्की सी झलक को छोड़ देता है।

5.87.9

प्रतिभातं ततस्तेजो निमेषार्धं विचार्य सः। जहौ बभूव च तदा न तमो न प्रकाशकम्॥ ९॥

pratibhātaṃ tatastejo nimeṣārdhaṃ vicārya saḥ | jahau babhūva ca tadā na tamo na prakāśakam || 9 ||

Then, after considering for half the blink of an eye a light that had appeared, he gave that up too, and then there was neither darkness nor light.

फिर, आँख के आधे झपकने भर समय तक उस चमकते हुए प्रकाश को परखकर, उसने उसे भी छोड़ दिया, और तब न अंधकार रहा, न प्रकाश।

5.87.10

तामवस्थामथासाद्य मनसा तन्मनस्तृणम्। मनागपि प्रस्फुरितं निमिषार्धादशातयत्॥ १०॥

tāmavasthāmathāsādya manasā tanmanastṛṇam | manāgapi prasphuritaṃ nimeṣārdhādaśātayat || 10 ||

Having then reached that state, in less than half the blink of an eye he used his own mind to break the mind itself, now no more than a straw, along with the faintest flicker still left in it.

फिर उस अवस्था तक पहुँचकर, आँख के आधे झपकने से भी कम समय में, उसने अपने मन से ही उस मन को तोड़ डाला जो अब एक तिनके जैसा रह गया था, और उसमें बची हुई हल्की से हल्की हलचल को भी।

5.87.11

ततोऽङ्ग संविदं स्वस्थां प्रतिभासमुपागताम्। सद्यो जातशिशुज्ञानसमानकलनामलम्॥ ११॥

tato'ṅga saṃvidaṃ svasthāṃ pratibhāsamupāgatām | sadyo jātaśiśujñānasamānakalanāmalam || 11 ||

Then, dear one, there came a consciousness resting in itself, settled into mere appearing, pure, its perceiving equal to the knowing of a newborn child.

फिर, हे प्रिय, एक ऐसी चेतना उभरी जो अपने ही भीतर टिकी थी, जो केवल प्रतीत होने की अवस्था में आ गई थी, शुद्ध, और जिसका जानना नवजात शिशु के जानने के समान था।

5.87.12

निमेषार्धार्धभागेन कालेन कलनां प्रभुः। जहौ चितश्चेत्यदशां स्पन्दशक्तिमिवानिलः॥ १२॥

nimeṣārdhārdhabhāgena kālena kalanāṃ prabhuḥ | jahau citaścetyadaśāṃ spandaśaktimivānilaḥ || 12 ||

In a time no longer than a quarter of the blink of an eye, the master gave up that perceiving, the state where consciousness itself becomes an object of knowledge, as the wind gives up its power to move.

आँख के झपकने के भी चौथाई से भी कम समय में, उस स्वामी ने उस जानने को छोड़ दिया, चेतना के 'जाना जाने' की उस अवस्था को, जैसे हवा अपनी चलने की शक्ति को छोड़ देती है।

5.87.13

पश्यन्तीपदमासाद्य सत्तामात्रात्मके ततः। प्रसुप्तपदमालम्ब्य तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १३॥

paśyantīpadamāsādya sattāmātrātmake tataḥ | prasuptapadamālambya tasthau giririvācalaḥ || 13 ||

Then, having reached the level called Seeing within that state made only of pure being, and resting in the state of deep sleep, he stood still, like an unmoving mountain.

फिर, शुद्ध सत्ता मात्र की उस अवस्था में 'देखने' नाम की उस अवस्था तक पहुँचकर, और गहरी नींद की अवस्था में टिककर, वह एक अचल पर्वत की तरह स्थिर खड़ा रहा।

5.87.14

ततः सुषुप्तसंस्थानं स्थित्वा स्थित्वा विभुर्मनाक्। सुषुप्ते स्थैर्यमासाद्य तुर्यरूपमुपाययौ॥ १४॥

tataḥ suṣuptasaṃsthānaṃ sthitvā sthitvā vibhurmanāk | suṣupte sthairyamāsādya turyarūpamupāyayau || 14 ||

Then the all-pervading one, resting again and again for a moment in the state of deep sleep, and growing steady in that deep sleep, arrived at the fourth state, beyond it.

फिर वह सर्वव्यापी बार-बार क्षण भर के लिए गहरी नींद की अवस्था में ठहरा, और उस गहरी नींद में स्थिरता पाकर, वह चौथी अवस्था तक जा पहुँचा।

5.87.15

निरानन्दोऽपि सानन्दः सच्चासच्चापि तत्र सः। आसीन्न किंचित्किंचित्तत्प्रकाशस्तिमिरं यथा॥ १५॥

nirānando'pi sānandaḥ saccāsaccāpi tatra saḥ | āsīnna kiṃcitkiṃcittatprakāśastimiraṃ yathā || 15 ||

There he was joyless and yet full of joy, both real and unreal, nothing and yet something, like a light that is also darkness.

वहाँ वह न आनंद-रहित था, फिर भी आनंद से भरा था, वह सत् भी था और असत् भी, न कुछ था और फिर भी कुछ था, जैसे प्रकाश ही अंधकार हो।

5.87.16

अचिन्मयं चिन्मयं च नेति नेति यदुच्यते। ततस्तत्संबभूवासौ यद्गिरामप्यगोचरः॥ १६॥

acinmayaṃ cinmayaṃ ca neti neti yaducyate | tatastatsaṃbabhūvāsau yadgirāmapyagocaraḥ || 16 ||

That which is called neither unconscious nor conscious, of which one can only say not this, not this, that he then became, that which even words cannot reach.

जिसे न जड़ कहा जा सकता है, न चेतन, जिसके बारे में बस इतना कहा जाता है कि यह भी नहीं, यह भी नहीं, वही वह तब बन गया, जिस तक शब्द भी नहीं पहुँच पाते।

5.87.17

तदसौ सुसमं स्फारं पदं परमपावनम्। सर्वभावान्तरगतमभूत्सर्वविवर्जितम्॥ १७॥

tadasau susamaṃ sphāraṃ padaṃ paramapāvanam | sarvabhāvāntaragatamabhūtsarvavivarjitam || 17 ||

He became that state, perfectly balanced, vast, utterly pure, present inside every single thing, yet free of everything.

वह उस अवस्था में बदल गया, जो पूरी तरह संतुलित थी, विशाल थी, पूरी तरह शुद्ध थी, हर एक चीज़ के भीतर मौजूद थी, फिर भी हर चीज़ से मुक्त थी।

5.87.18

यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां वरम्। विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलं पदम्॥ १८॥

yacchūnyavādināṃ śūnyaṃ brahma brahmavidāṃ varam | vijñānamātraṃ vijñānavidāṃ yadamalaṃ padam || 18 ||

It is the Void to those who teach voidness, the highest Brahman to the knowers of Brahman, pure awareness alone to the knowers of awareness, that stainless state.

वह शून्यता है उनके लिए जो शून्य की बात करते हैं, वह सबसे ऊँचा ब्रह्म है ब्रह्म को जानने वालों के लिए, वह केवल शुद्ध चेतना है चेतना को जानने वालों के लिए, वह निर्मल अवस्था है।

5.87.19

पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम्। शिवः शशिकलाङ्कानां कालः कालैकवादिनाम्॥ १९॥

puruṣaḥ sāṃkhyadṛṣṭīnāmīśvaro yogavādinām | śivaḥ śaśikalāṅkānāṃ kālaḥ kālaikavādinām || 19 ||

It is Purusha to the followers of Samkhya, the Lord to the teachers of Yoga, Shiva to those who wear the sign of the crescent moon, Time to those who teach that time alone is real.

वह पुरुष है सांख्य को मानने वालों के लिए, ईश्वर है योग सिखाने वालों के लिए, शिव है चाँद की कला धारण करने वालों के लिए, और काल है उनके लिए जो कहते हैं कि केवल काल ही सत्य है।

5.87.20

आत्मात्मनस्तद्विदुषां नैरात्म्यं तादृशात्मनाम्। मध्यं माध्यमिकानां च सर्वं सुसमचेतसाम्॥ २०॥

ātmātmanastadviduṣāṃ nairātmyaṃ tādṛśātmanām | madhyaṃ mādhyamikānāṃ ca sarvaṃ susamacetasām || 20 ||

It is the self of the self to those who teach the self, no-self to those who hold that view, the Middle to the Madhyamikas, and everything to those whose minds see all things as one.

वह आत्मा की आत्मा है उनके लिए जो आत्मा की बात करते हैं, वह अनात्मा है उनके लिए जो यह मानते हैं, वह मध्य है माध्यमिकों के लिए, और सब कुछ है उनके लिए जिनका मन हर चीज़ को एक समान देखता है।

5.87.21

यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तो यत्सर्वहृदयानुगम्। यत्सर्वं सर्वगं सार्वं यत्तत्तत्सदसौ स्थितः ॥ २१ ॥

yatsarvaśāstrasiddhānto yatsarvahṛdayānugam | yatsarvaṃ sarvagaṃ sārvaṃ yattattatsadasau sthitaḥ || 21 ||

He remained established in that reality which is the final teaching of every scripture, which is present in every heart, which is everything, present everywhere, belonging to all.

वह उसी सत्य में स्थिर टिका रहा जो हर शास्त्र का अंतिम निष्कर्ष है, जो हर हृदय में मौजूद है, जो सब कुछ है, हर जगह मौजूद है, और सबका है।

5.87.22

यदनुत्तमनिःस्पन्दं दीप्यते तेजसामपि। स्वानुभूत्यैकमात्रं यद्यत्तत्तत्सदसौ स्थितः ॥ २२ ॥

yadanuttamanispaṇḍaṃ dīpyate tejasāmapi | svānubhūtyaikamātraṃ yadyattatsadasau sthitaḥ || 22 ||

He remained established in that reality, unsurpassed and without motion, which shines even beyond every brightness, which is known only through one's own experience.

वह उसी सत्य में स्थिर टिका रहा, जो सबसे श्रेष्ठ और गतिहीन है, जो हर चमकीली चीज़ से भी बढ़कर चमकता है, जिसे केवल अपने ही अनुभव से जाना जा सकता है।

5.87.23

यदेकं चाप्यनेकं च साञ्जनं च निरञ्जनम्। यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्तत्सदसौ स्थितः ॥ २३ ॥

yadekaṃ cāpyanekaṃ ca sāñjanaṃ ca nirañjanam | yatsarvaṃ cāpyasarvaṃ ca yattatsadasau sthitaḥ || 23 ||

He remained established in that reality, one and yet many, marked and yet without any mark, everything and yet not everything.

वह उसी सत्य में स्थिर टिका रहा, जो एक भी है और अनेक भी, जिस पर दाग भी है और जो दाग-रहित भी है, जो सब कुछ भी है और सब कुछ नहीं भी है।

5.87.24

अजमजरमनाद्यनेकमेकं पदममलं सकलं च निष्कलं च। स्थित इति स तदा नभःस्वरूपादपि विमलस्थितिरीश्वरः क्षणेन ॥ २४ ॥

ajamajaramanādyanekamekaṃ padamamalaṃ sakalaṃ ca niṣkalaṃ ca | sthita iti sa tadā nabhaḥsvarūpādapi vimalasthitirīśvaraḥ kṣaṇena || 24 ||

He remained established, in a single instant, in that state, unborn, undecaying, without beginning, both many and one, stainless, both whole and without parts; so did he then rest, the Lord, in a purity beyond even the very nature of empty space.

वह एक ही क्षण में उस अवस्था में स्थिर हो गया, जो अजन्मी है, जो कभी बूढ़ी नहीं होती, जिसका कोई आरंभ नहीं, जो अनेक भी है और एक भी, निर्मल है, पूरी भी है और अंशरहित भी; इस तरह वह, वह ईश्वर, उस समय आकाश के स्वभाव से भी बढ़कर एक निर्मल स्थिति में ठहर गया।

Chapter 88

5.88.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । प्राप्य संसृतिसीमान्तं दुःखाब्धेः पारमागतः । वीतहव्यः शशामैवमपुनर्मनने मुनिः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | prāpya saṃsṛtisīmāntaṃ duḥkhābdheḥ pāramāgataḥ | vītahavyaḥ śaśāmaivamapunarmanane muniḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: Having reached the far edge of this endless round of birth and death, having crossed to the shore beyond the ocean of suffering, the sage Vitahavya grew still like this, his mind never turning back to thought again.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जन्म-मरण के इस अंतहीन चक्र के आखिरी छोर तक पहुँचकर, दुख के सागर के पार जाकर, मुनि वीतहव्य इस तरह शांत हो गए, और उनका मन फिर कभी सोचने की तरफ नहीं मुड़ा।

5.88.2

तस्मिंस्तथोपशान्ते हि परां निर्वृतिमागते । पयःकण इवाम्भोधौ स्वे पदे परिणामिनि ॥ २ ॥

tasmiṃstathopaśānte hi parāṃ nirvṛtimāgate | payaḥkaṇa ivāmbhodhau sve pade pariṇāmini || 2 ||

When he had grown calm like this and reached the highest peace, he was like a drop of water falling into the ocean, its own true place, and turning into it.

जब वे इस तरह शांत होकर परम सुख को पा गए, तो वे उस बूँद पानी की तरह हो गए जो समुद्र में गिरकर, अपने असली ठिकाने में, उसी में बदल जाती है।

5.88.3

तथैव तिष्ठन्निःस्पन्दः स कायो म्लानिमाययौ । अन्तर्विरसतां प्राप्य मार्गशीर्षान्तपद्मवत् ॥ ३ ॥

tathaiva tiṣṭhanniḥspandaḥ sa kāyo mlānimāyayau | antarvirasatāṃ prāpya mārgaśīrṣāntapadmavat || 3 ||

His body stayed just like that, without any movement, and it withered away, turning dry and lifeless inside, like a lotus at the end of the month of Margashirsha.

उनका शरीर वैसे ही बिना हिले-डुले पड़ा रहा, और वह मुरझा गया, अंदर से सूखा और निर्जीव हो गया, जैसे मार्गशीर्ष महीने के आखिर में कमल मुरझा जाता है।

5.88.4

तस्य देहद्रुमान्तःस्थं त्यक्त्वा हृन्नीडमाययुः । प्रोड्डीय विहगायन्तो युन्त्रोन्मुक्ता इवासवः ॥ ४ ॥

tasya dehadrumāntaḥsthaṃ tyaktvā hṛnnīḍamāyayuḥ | proḍḍīya vihagāyanto yuntronmuktā ivāsavaḥ || 4 ||

His life-breaths, which had lived inside the tree of his body, left the nest of his heart and flew away, acting like birds, as if they had been let loose from a cage.

उनकी प्राण-वायुएँ, जो उनके शरीर रूपी पेड़ के अंदर रहती थीं, उनके हृदय रूपी घोंसले को छोड़कर उड़ गईं, पक्षियों की तरह, जैसे किसी पिंजरे से छोड़ी गई हों।

5.88.5

भूतेष्वेव प्रतिष्ठानि भूतानि सकलान्यलम् । मांसास्थियन्त्रदेहस्तु वनावनितलेऽवसत् ॥ ५ ॥

bhūteṣveva pratiṣṭhāni bhūtāni sakalānyalam | māṃsāsthiyantradehasatu vanāvanitale'vasat || 5 ||

All the elements of his body came fully to rest again among the elements of the world, but his body, a machine of flesh and bone, stayed lying on the ground of the forest.

उनके शरीर के सारे तत्व फिर से जगत के तत्वों में जाकर पूरी तरह टिक गए, पर मांस और हड्डी की उस मशीन जैसे शरीर जंगल की ज़मीन पर पड़ा रहा।

5.88.6

चिदर्णवप्रतिष्ठा चिद्धातवो धातुषु स्थिताः । स्वे स्वरूपे स्थितं सर्वं मुनावुपशमं गते ॥ ६ ॥

cidarṇavapratiṣṭhā ciddhātavo dhātuṣu sthitāḥ | sve svarūpe sthitaṃ sarvaṃ munāvupaśamaṃ gate || 6 ||

When the sage had grown still, everything settled into its own true nature: consciousness came to rest in the ocean of consciousness, and the elements of his body came to rest among the elements.

जब मुनि शांत हो गए, तब हर चीज़ अपने असली स्वरूप में टिक गई: चेतना चेतना के सागर में जा टिकी, और शरीर के तत्व जगत के तत्वों में जा टिके।

5.88.7

एषा ते कथिता राम विचारशतशालिनी । विश्रान्तिर्वीतहव्यस्य प्रज्ञयैनां विवेचय ॥ ७ ॥

eṣā te kathitā rāma vicāraśataśālinī | viśrāntirvītahavyasya prajñayaināṃ vivecaya || 7 ||

This, Rama, is the resting of Vitahavya that I have told you, rich with a hundred kinds of reflection. Now examine it for yourself with your own understanding.

हे राम, यह वीतहव्य की वह विश्रांति है जो मैंने तुम्हें बताई, जो सैकड़ों तरह के विचारों से भरी है। अब इसे अपनी बुद्धि से खुद परख लो।

5.88.8

एवंप्रकारया चार्व्या स्वविचारणयेद्धया । तत्त्वमालोक्य तत्सारमातिष्ठोत्तिष्ठ राघव ॥ ८ ॥

evaṃprakārayā cārvyā svavicāraṇayeddhayā | tattvamālokya tatsāramātiṣṭhottistha rāghava || 8 ||

Look at the truth through this same kind of beautiful, blazing inquiry of your own, hold fast to its essence, and rise up, Raghava.

अपनी इसी तरह की सुंदर, तेज विचार-शक्ति से सच को देखो, उसके सार को थामे रहो, और उठ खड़े हो जाओ, हे राघव।

5.88.9

यदेतदखिलं राम भवते वर्णितं मया । यदिदं वर्णयाम्यद्य वर्णयिष्यामि यच्च वा ॥ ९ ॥

yadetadakhilaṃ rāma bhavate varṇitaṃ mayā | yadidaṃ varṇayāmyadya varṇayiṣyāmi yaccā vā || 9 ||

Rama, all that I have told you until now, all that I am telling you today, and all that I will tell you later,

हे राम, जो कुछ भी मैंने अब तक तुम्हें बताया है, जो आज बता रहा हूँ, और जो आगे बताऊँगा,

5.88.10

त्रिकालदर्शिना नित्यं चिरं च किल जीवता । विचारितं च दृष्टं च मया तदखिलं स्वयम् ॥ १० ॥

trikāladarśinā nityaṃ ciraṃ ca kila jīvatā | vicāritaṃ ca dṛṣṭaṃ ca mayā tadakhilaṃ svayam || 10 ||

all of it I myself have thought through and seen, for I see the past, the present and the future, and I have lived on forever, for a very long time.

वह सब कुछ मैंने खुद सोच-विचार कर देखा है, क्योंकि मैं भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को देखता हूँ, और मैं सदा से, बहुत लंबे समय से जीता आया हूँ।

5.88.11

तदेताममलां दृष्टिमवलम्ब्य महामते । ज्ञानमासादय परं ज्ञानान्मुक्तिर्हि लभ्यते ॥ ११ ॥

tadetāmamalāṃ dṛṣṭimavalambya mahāmate | jñānamāsādaya paraṃ jñānānmmuktirhi labhyate || 11 ||

So, great-minded one, hold on to this pure understanding, and reach the highest knowledge, for freedom is won only through knowledge.

इसलिए, हे महाबुद्धिमान, इस निर्मल समझ को थामे रहो, और परम ज्ञान को पाओ, क्योंकि मुक्ति ज्ञान से ही मिलती है।

5.88.12

ज्ञानान्निर्दुःखतामेति ज्ञानादज्ञानसंक्षयः । ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नान्यस्माद्राम वस्तुतः ॥ १२ ॥

jñānānnirdhuḥkhatāmeti jñānādajñānasankṣayaḥ | jñānādeva parā siddhirnānyasmādrāma vastutaḥ || 12 ||

From knowledge comes freedom from suffering, and from knowledge, ignorance is destroyed. From knowledge alone comes the highest attainment, Rama, and truly from nothing else.

ज्ञान से दुख से मुक्ति मिलती है, और ज्ञान से ही अज्ञान नष्ट होता है। हे राम, परम सिद्धि केवल ज्ञान से मिलती है, सच में और किसी चीज़ से नहीं।

5.88.13

ज्ञानेन सकलामाशां विनिकृत्य समन्ततः । शातिताशेषचित्ताद्रिर्वीतहव्यो मुनीश्वरः ॥ १३ ॥

jñānena sakalāmāśāṃ vinikṛtya samantataḥ | śātitāśeṣacittādrirvītahavyo munīśvaraḥ || 13 ||

Through knowledge, cutting away all his desire on every side, Vitahavya, the lord of sages, brought down the whole mountain of his mind.

ज्ञान के द्वारा अपनी सारी इच्छा को हर तरफ से काटकर, मुनियों के स्वामी वीतहव्य ने अपने मन के पूरे पहाड़ को गिरा दिया।

5.88.14

वीतहव्यात्मिका संवित्संकल्पजगतीति सा । अनुभूतवती दृश्यमिदमेव च तज्जगत् ॥ १४ ॥

vītahavyātmikā saṃvitsaṃkalpajagatīti sā | anubhūtavatī dṛśyamidameva ca tajjagat || 14 ||

The awareness that was Vitahavya's own self came to know that this is a world made only of thought, and this world we see is exactly that same world.

जो चेतना वीतहव्य का अपना स्वरूप थी, उसने यह जान लिया कि यह केवल विचार से बना एक जगत है, और यह दिखने वाला जगत ठीक वही जगत है।

5.88.15

वीतहव्यो मनोमात्रं मनोहंत्वमिवैन्द्रियः । मनो जगदिदं कृत्स्नमन्यतानन्यते तु के ॥ १५ ॥

vītahavyo manomātraṃ manohaṃtvamivaaindriyaḥ | mano jagadidaṃ kṛtsnamanyatānananyate tu ke || 15 ||

Vitahavya is nothing but mind, and the mind's sense of I is just like a thing of the senses. This whole world is mind, so what is there that could truly be different from it?

वीतहव्य केवल मन ही हैं, और मन का मैं भाव इंद्रियों की किसी चीज़ जैसा ही है। यह पूरा जगत मन ही है, तो ऐसा क्या है जो सच में उससे अलग हो?

5.88.16

अधिगतपरमार्थः क्षीणरागादिदोषः सकलमलविकारोपाधिसङ्गाद्यपेतः । चिरमनुसृतमन्तः स्वं स्वभावं विवेकी पदममलमनन्तं प्राप्तवान्शान्तशोकः ॥ १६ ॥

adhigataparamārthaḥ kṣīṇarāgādidoṣaḥ sakalamalavikāropādhisangādyapetaḥ | ciramanusṛtamantaḥ svaṃ svabhāvaṃ vivekī padamamalamanantaṃ prāptavānśāntaśokaḥ || 16 ||

He had reached the highest truth. His faults, beginning with desire, had worn away. He was free from all touch of impurity, change and every limiting condition. This discerning man had long pursued his own true nature within himself, and he reached the stainless, endless state, his sorrow now at rest.

वे परम सत्य को पा चुके थे। उनके इच्छा जैसे सारे दोष घिस चुके थे। वे हर तरह की अशुद्धि, बदलाव और हर तरह की सीमा के स्पर्श से मुक्त थे। इस विवेकी पुरुष ने बहुत समय तक अपने भीतर अपने असली स्वभाव को खोजा था, और वे उस निर्मल, अंतहीन पद को पा गए, उनका दुख अब शांत हो चुका था।

Chapter 89

5.89.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । वीतहव्यवदात्मानं नीत्वा विदितवेद्यताम् । वीतरागभयोद्वेगस्तिष्ठ राघव सर्वदा ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | vītahavyavadātmānaṃ nītvā viditavedyatām | vītarāgabhayodvegastiṣṭha rāghava sarvadā || 1 ||

Sri Vasishtha said: having brought yourself, like Vitahavya, to the state of one who has known all there is to know, remain always free from passion, fear and agitation, Raghava.

श्री वसिष्ठ ने कहा: वीतहव्य की तरह अपने आप को उस स्थिति में लाकर, जहाँ जानने योग्य सब कुछ जान लिया गया हो, हे राघव, तुम हमेशा राग, डर और बेचैनी से मुक्त रहो।

5.89.2

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि विजहार यथासुखम् । वीतहव्यो वीतशोकस्तथा विहर राघव ॥ २ ॥

triṃśadvarṣasahasrāṇi vijahāra yathāsukham | vītahavyo vītaśokastathā vihara rāghava || 2 ||

For thirty thousand years Vitahavya lived happily, free from sorrow. Live the same way, Raghava.

तीस हज़ार साल तक वीतहव्य दुख से मुक्त होकर आराम से जीता रहा। हे राघव, तुम भी वैसे ही जियो।

5.89.3

अन्ये च राजन्मुनयो ज्ञातज्ञेया महाधियः । यथावसन्स्वराष्ट्रे त्वं तथैवास्व महामते ॥ ३ ॥

anye ca rājanmunayo jñātajñeyā mahādhiyaḥ | yathāvasansvarāṣṭre tvaṃ tathaivāsva mahāmate || 3 ||

And other wise sages too, king, of great understanding, who had known all there is to know, went on living in their own kingdoms just as before. You too, wise one, stay just the same way.

और भी बहुत से बुद्धिमान मुनि, हे राजा, जो जानने योग्य सब कुछ जान चुके थे, अपने ही राज्य में पहले जैसे रहते रहे। हे बुद्धिमान, तुम भी वैसे ही रहो।

5.89.4

सुखदुःखक्रमैरात्मा न कदाचन गृह्यते । सर्वगोऽपि महाबाहो किं मुधा परिशोचसि ॥ ४ ॥

sukhaduḥkhakramairātmā na kadācana gṛhyate | sarvago'pi mahābāho kiṃ mudhā pariśocasi || 4 ||

The self is never caught by the coming and going of pleasure and pain, even though it is present everywhere. So why, strong-armed one, do you grieve for nothing?

सुख और दुख के आने-जाने से आत्मा कभी नहीं पकड़ी जाती, चाहे वह हर जगह मौजूद हो। तो हे बलवान भुजाओं वाले, तुम बेकार में क्यों दुखी हो रहे हो?

5.89.5

बहवो विदितात्मानो विहरन्तीह भूतले । न केचन वशं यान्ति दुःखस्याङ्ग भवानिव ॥ ५ ॥

bahavo viditātmāno viharantīha bhūtale | na kecana vaśaṃ yānti duḥkhasyāṅga bhavāniva || 5 ||

Many who have known the self live here on this earth. None of them, dear one, fall under the power of sorrow, the way you do.

बहुत से लोग जो आत्मा को जान चुके हैं, इस धरती पर घूमते-फिरते हैं। उनमें से कोई भी दुख के वश में नहीं आता, प्रिय, जैसे तुम आ गए हो।

5.89.6

स्वस्थो भव भवोदारः समो भव सुखी भव । सर्वगस्त्वं त्वमात्मैव तव नास्ति पुनर्भवः ॥ ६ ॥

svastho bhava bhavodāraḥ samo bhava sukhī bhava | sarvagastvaṃ tvamātmaiva tava nāsti punarbhavaḥ || 6 ||

Be steady, be large-hearted, be even-minded, be happy. You are present everywhere, you are the self itself. For you there is no being born again.

शांत रहो, बड़े दिल वाले बनो, सम रहो, खुश रहो। तुम हर जगह मौजूद हो, तुम खुद आत्मा हो। तुम्हारे लिए फिर से जन्म लेना नहीं है।

5.89.7

हर्षामर्षविकाराणां जीवन्मुक्ता भवादृशाः । न केचन वशं यान्ति मृगेन्द्राः शिखिनामिव ॥ ७ ॥

harṣāmarṣavikārāṇāṃ jīvanmuktā bhavādṛśāḥ | na kecana vaśaṃ yānti mṛgendrāḥ śikhināmiva || 7 ||

Those who are liberated while living, like you, never come under the power of the changes of joy and anger, just as lions never come under the power of peacocks.

तुम्हारी तरह जो लोग जीते-जी मुक्त हो चुके हैं, वे खुशी और गुस्से के बदलावों के वश में कभी नहीं आते, ठीक जैसे शेर मोरों के वश में कभी नहीं आते।

5.89.8

श्रीराम उवाच । अनेनैव प्रसङ्गेण संशयोऽयं ममोदितः । शरत्काल इवाम्भोदं तं मे त्वं तनुतां नय ॥ ८ ॥

śrīrāma uvāca | anenaiva prasaṅgeṇa saṃśayo'yaṃ mamoditaḥ | śaratkāla ivāmbhodaṃ taṃ me tvaṃ tanutāṃ naya || 8 ||

Sri Rama said: On this very occasion a doubt of mine has come up. As autumn thins out a cloud, so thin out this doubt of mine.

श्रीराम ने कहा: इसी बात के सिलसिले में मेरे मन में एक शंका उठी है। जैसे शरद ऋतु बादल को पतला कर देती है, वैसे ही मेरी इस शंका को पतला कर दो।

5.89.9

जीवन्मुक्तशरीराणां कथमात्मविदां वर । शक्तयो नेह दृश्यन्ते आकाशगमनादिकाः ॥ ९ ॥

jīvanmuktasharīrāṇāṃ kathamātmavidāṃ vara | śaktayo neha dṛśyante ākāśagamanādikāḥ || 9 ||

Best among the knowers of the self, why are powers such as moving through the sky not seen in the bodies of those who are liberated while living?

हे आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, आकाश में उड़ने जैसी शक्तियाँ जीते-जी मुक्त हुए लोगों के शरीर में क्यों नहीं दिखतीं?

5.89.10

श्रीवसिष्ठ उवाच । आकाशगमनादीनि यान्येतानि रघूद्वह । प्रमाणिताः पदार्थानां सहजाः खलु शक्तयः ॥ १० ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | ākāśagamanādīni yānyetāni raghūdvaha | pramāṇitāḥ padārthānāṃ sahajāḥ khalu śaktayaḥ || 10 ||

Sri Vasishtha said: Upholder of the Raghu line, these things such as moving through the sky are indeed the natural powers of things, and this is established as true.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे रघुकुल के आधार, आकाश में उड़ना जैसी ये बातें असल में चीज़ों की अपनी स्वाभाविक शक्तियाँ हैं, और यह सच साबित हो चुका है।

5.89.11

यद्विचित्रं क्रियाजालं दृश्यते गम्यते पुनः । राम वस्तुस्वभावोऽसौ न तदात्मविदां मतम् ॥ ११ ॥

yadvicitraṃ kriyājālaṃ dṛśyate gamyate punaḥ | rāma vastusvabhāvo'sau na tadātmavidāṃ matam || 11 ||

This wondrous web of actions that is seen, and then arrived at again, Rama, is simply the nature of things. It is not what the knowers of the self value.

यह अजीब सी क्रियाओं की जाल जो दिखती है, और फिर से हासिल होती है, हे राम, बस चीज़ों का स्वभाव है। आत्मा को जानने वाले इसे कोई महत्व नहीं देते।

5.89.12

अनात्मविदमुक्तोऽपि नभोविहरणादिकम् । द्रव्यकर्मक्रियाकालशक्त्या प्राप्नोति राघव ॥ १२ ॥

anātmavidamukto'pi nabhoviharaṇādikam | dravyakarmakriyākālaśaktyā prāpnoti rāghava || 12 ||

Even someone who does not know the self, and is not liberated, can get things like moving through the sky, Raghava, through the power of substances, past deeds, rites, and time.

जो आत्मा को नहीं जानता और मुक्त भी नहीं हुआ, वह भी हे राघव, आकाश में उड़ने जैसी चीज़ें पा सकता है, कुछ पदार्थों, पुराने कर्मों, विधियों और समय की शक्ति से।

5.89.13

नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो ह्यात्मवान्स्वयम् । आत्मनात्मनि संतृप्तो नाविद्यामनुधावति ॥ १३ ॥

nātmajñasyaiṣa viṣaya ātmajñō hyātmavānsvayam | ātmanātmani saṃtṛptō nāvidyāmanudhāvati || 13 ||

This is not the concern of one who knows the self. The knower of the self is himself established in the self. Content with the self in the self, he does not run after ignorance.

यह उस व्यक्ति की चिंता नहीं है जो आत्मा को जानता है। आत्मा को जानने वाला खुद ही आत्मा में स्थिर होता है। आत्मा में ही आत्मा से संतुष्ट होकर, वह अज्ञान के पीछे नहीं भागता।

5.89.14

ये केचन जगद्भावास्तानविद्यामयान्विदुः । कथं तेषु किलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्यो निमज्जति ॥ १४ ॥

ye kecana jagadbhāvāstānavidyāmayānviduḥ | kathaṃ teṣu kilātmajñastyaktāvidyō nimajjati || 14 ||

All the things that exist in this world are known to be made of ignorance. Then how could a knower of the self, who has given up ignorance, sink into them?

इस दुनिया में जो भी चीज़ें हैं, वे सब अज्ञान से बनी हुई जानी जाती हैं। फिर आत्मा को जानने वाला, जिसने अज्ञान को छोड़ दिया है, उनमें कैसे डूब सकता है?

5.89.15

अविद्यामपि ये युक्त्या साधयन्ति सुखात्मिकाम् । ते ह्यविद्यामया एव नत्वात्मज्ञास्तथाक्रमाः ॥ १५ ॥

avidyāmapi ye yuktyā sādhayanti sukhātmikām | te hyavidyāmayā eva natvātmajñāstathākramāḥ || 15 ||

Those who cleverly manage to make even ignorance pleasant are themselves made of ignorance. They are not knowers of the self acting in that way.

जो लोग किसी तरकीब से अज्ञान को भी सुखद बना लेते हैं, वे खुद अज्ञान से बने हुए हैं। वे आत्मा को जानने वाले नहीं हैं जो ऐसे काम करें।

5.89.16

तत्त्वज्ञोऽवाप्यतत्त्वज्ञो यः कालद्रव्यकर्मभिः । यथाक्रमं प्रयतते तस्योर्ध्वत्वादि सिद्ध्यति ॥ १६ ॥

tattvajño'vāpyatattvajño yaḥ kāladravyakarmabhiḥ | yathākramaṃ prayatate tasyordhvatvādi siddhyati || 16 ||

Whether one knows the truth or does not know the truth, whoever strives in the right order by means of time, substances, and deeds, for him things like rising upward are achieved.

चाहे कोई सच्चाई को जानता हो या न जानता हो, जो भी सही तरीके से समय, पदार्थों और कर्मों के सहारे कोशिश करता है, उसके लिए ऊपर उठने जैसी बातें हासिल हो जाती हैं।

5.89.17

आत्मवानिह सर्वस्मादतीतो विगतैषणः । आत्मन्येव हि संतुष्टो न करोति न चेहते ॥ १७ ॥

ātmavāniha sarvasmādatīto vigataiṣaṇaḥ | ātmanyeva hi saṃtuṣṭo na karoti na cehate || 17 ||

One who possesses the self is here beyond everything, free from craving. Content in the self alone, he neither acts nor strives for anything.

जिसे आत्मा मिल चुकी है, वह यहाँ हर चीज़ से परे है, किसी चाह के बिना। सिर्फ आत्मा से संतुष्ट होकर, वह न कुछ करता है, न किसी चीज़ की कोशिश करता है।

5.89.18

न तस्यार्थो नभोगत्या न सिद्ध्या न च भोगकैः । न प्रभावेण नो मानैर्नाशामरणजीवितैः ॥ १८ ॥

na tasyārtho nabhogatyā na siddhyā na ca bhogakaiḥ | na prabhāveṇa no mānairnāśāmarṇajīvitaiḥ || 18 ||

He has no use for moving through the sky, no use for powers, no use for pleasures, no use for glory, no use for honors, no use for hope, for death, or for life.

उसे आकाश में उड़ने से कोई मतलब नहीं, सिद्धियों से कोई मतलब नहीं, सुखों से कोई मतलब नहीं, बड़प्पन से कोई मतलब नहीं, इज़्ज़त से कोई मतलब नहीं, उम्मीद से, मौत से, या ज़िंदगी से भी कोई मतलब नहीं।

5.89.19

नित्यतृप्तः प्रशान्तात्मा वीतरागो विवासनः । आकाशसदृशाकारस्तज्ज्ञ आत्मनि तिष्ठति ॥ १९ ॥

nityatṛptaḥ praśāntātmā vītarāgo vivāsanaḥ | ākāśasadṛśākārastajjña ātmani tiṣṭhati || 19 ||

Always content, calm in mind, free from passion, free from craving, with a nature like open sky, one who knows this rests in the self.

हमेशा संतुष्ट, मन से शांत, राग से मुक्त, चाह से मुक्त, खुले आकाश जैसे स्वभाव वाला, जो यह जानता है वह आत्मा में टिका रहता है।

5.89.20

अशङ्कितोपयातेन दुःखेन च सुखेन च । तृप्त्यत्यपगतासङ्गो जीवेन मरणेन च ॥ २० ॥

aśaṅkitopayātena duḥkhena ca sukhena ca | tṛpyatyapagatāsaṅgo jīvena maraṇena ca || 20 ||

Free from attachment, he is content alike with the sorrow and the happiness that come unasked, and with life and with death.

किसी लगाव के बिना, वह बिन बुलाए आए दुख और सुख से भी उतना ही संतुष्ट रहता है, और जीवन और मौत से भी।

5.89.21

समुद्रः सरितेवान्तः क्रमसंप्राप्तवस्तुना । समेन विषमेणापि तिष्ठत्यात्मानमर्चयन् ॥ २१ ॥

samudraḥ saritevāntaḥ kramasaṃprāptavastunā | samena viṣameṇāpi tiṣṭhatyātmānamarcayan || 21 ||

Like the ocean taking rivers into itself, he too, with whatever comes to him in due course, agreeable or not, stays as he is, honoring only the self.

जैसे समुद्र नदियों को अपने अंदर ले लेता है, वैसे ही वह भी, जो कुछ उसे समय पर मिलता है, अच्छा हो या बुरा, वैसा ही बना रहता है, और सिर्फ आत्मा का सम्मान करता है।

5.89.22

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ २२ ॥

naiva tasya kṛtenārtho nākṛteneha kaścan | na cāsya sarvabhūteṣu kaścidarthavyapāśrayaḥ || 22 ||

He has no purpose in what is done, and none in what is not done. And he has no purpose depending on any being at all.

उसे कुछ करने से कोई मतलब नहीं, और न करने से भी कोई मतलब नहीं। और किसी भी प्राणी पर टिका कोई मकसद उसका नहीं है।

5.89.23

यस्तु वाऽभावितात्मापि सिद्धिजालानि वाञ्छति । स सिद्धिसाधकैर्द्रव्यैस्तानि साधयति क्रमात् ॥ २३ ॥

yastu vā'bhāvitātmāpi siddhijālāni vāñchati | sa siddhisādhakairdravyaistāni sādhayati kramāt || 23 ||

But if someone, even without having realized the self, wants a whole array of powers, he attains them step by step through the substances that produce such powers.

लेकिन अगर कोई, आत्मा को जाने बिना भी, तरह-तरह की सिद्धियाँ चाहता है, तो वह उन्हें धीरे-धीरे उन पदार्थों से पा लेता है जो ऐसी सिद्धियाँ पैदा करते हैं।

5.89.24

सिद्ध्यतीत्थमिदं युक्त्यैवेत्ययं नियतेः क्रमः । त्र्यक्षादिभिः सुरवरैर्व्यर्थीकर्तुं न शक्यते ॥ २४ ॥

siddhyatītthamidaṃ yuktyaive tyayam niyateḥ kramaḥ | tryakṣādibhiḥ suravarairvyarthīkartuṃ na śakyate || 24 ||

It succeeds only in this way, by this very method alone — this is the fixed order of destiny. Not even the three-eyed god and the other great gods can make it come to nothing.

यह इसी तरह से, इसी उपाय से सिद्ध होता है — यही नियति का तय क्रम है। तीन आंखों वाले देवता और बाकी बड़े देवता भी इसे बेकार नहीं कर सकते।

5.89.25

स्वभाव एष वस्तूनां स्वतःसिद्धिर्हि नान्यतः । नियतिं न जहात्येव शशाङ्क इव शीतताम् ॥ २५ ॥

svabhāva eṣa vastūnāṃ svataḥsiddhirhi nānyataḥ | niyatiṃ na jahātyeva śaśāṅka iva śītatām || 25 ||

This is the very nature of things — each thing is established by itself, not by anything else. A thing never gives up its destiny, just as the moon never gives up its coolness.

यह चीज़ों का सहज स्वभाव है — हर चीज़ खुद से ही सिद्ध होती है, किसी और से नहीं। कोई भी चीज़ अपनी नियति को नहीं छोड़ती, जैसे चांद अपनी ठंडक को कभी नहीं छोड़ता।

5.89.26

सर्वज्ञोऽपि बहुज्ञोऽपि माधवोऽपि हरोऽपि च। अन्यथा नियतिं कर्तुं न शक्तः कश्चिदेव हि॥ २६॥

sarvajño'pi bahujño'pi mādhavo'pi haro'pi ca | anyathā niyatiṃ kartuṃ na śaktaḥ kaścideva hi || 26 ||

Even one who is all-knowing, even one who knows much, even Madhava, even Hara — no one at all can make destiny turn out otherwise.

चाहे कोई सब कुछ जानने वाला हो, चाहे बहुत कुछ जानने वाला हो, चाहे माधव हों, चाहे हर हों — कोई भी नियति को बदल नहीं सकता।

5.89.27

द्रव्यकालक्रियामन्त्रप्रयोगाणां स्वभावजाः। एतास्ताः शक्तयो राम यद्व्योमगमनादिकम्॥ २७॥

dravyakālakriyāmantraprayogāṇāṃ svabhāvajāḥ | etāstāḥ śaktayo rāma yadvyomagamanādikam || 27 ||

Rama, the powers born from substances, from timing, from rituals, and from the use of mantras are exactly these powers — the ones by which things like flying through the sky are achieved.

हे राम, जो शक्तियां द्रव्यों से, समय से, क्रियाओं से और मंत्रों के प्रयोग से पैदा होती हैं, वही शक्तियां हैं — जिनसे आकाश में उड़ने जैसी चीज़ें हो पाती हैं।

5.89.28

यथा विषाणि निघ्नन्ति मदयन्ति मधूनि च। वमयन्ति च शुक्तानि मदनानि फलानि च॥ २८॥

yathā viṣāṇi nighnanti madayanti madhūni ca | vamayanti ca śuktāni madanāni phalāni ca || 28 ||

Just as poisons kill, as wines make one drunk, and as sour things and madana fruits make one vomit —

जैसे ज़हर मार देते हैं, जैसे शराब नशा चढ़ा देती है, और जैसे खट्टी चीज़ें और मदन फल उल्टी करा देते हैं —

5.89.29

तथा स्वभाववशतो द्रव्यकालक्रियाक्रमाः। नियतं साधयन्त्याशु प्रयोगं युक्तियोजिताः॥ २९॥

tathā svabhāvavaśato dravyakālakriyākramāḥ | niyataṃ sādhayantyāśu prayogaṃ yuktiyojitāḥ || 29 ||

In the same way, by the force of their own nature, the combinations of substance, timing, and action — when joined with the right method — quickly bring about their fixed result.

उसी तरह, अपने स्वभाव के बल से, द्रव्य, समय और क्रिया के मेल सही उपाय के साथ जुड़कर जल्दी ही अपना तय नतीजा ला देते हैं।

5.89.30

एतस्मात्समतीतस्य त्यक्ताविद्यस्य राघव। आत्मज्ञानस्य नास्त्यत्र कर्तृताकर्तृतानघ॥ ३०॥

etasmātsamatītasya tyaktāvidyasya rāghava | ātmajñānasya nāstyatra kartṛtākartṛtānagha || 30 ||

For someone who has gone beyond all this, Raghava, who has given up ignorance, for the knowledge of the self there is no such thing here as doing or not doing, O sinless one.

हे राघव, जो इस सबसे आगे निकल चुका है, जिसने अज्ञान छोड़ दिया है, उस आत्मज्ञान में यहां न करना है, न न-करना, हे निष्पाप।

5.89.31

द्रव्यदेशक्रियाकालयुक्तयः साधुसंविदः। परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काश्चन॥ ३१॥

dravyadeśakriyākālayuktayaḥ sādhusaṃvidaḥ | paramātmapadaprāptau nopakurvanti kāścana || 31 ||

For someone of true understanding, methods involving substance, place, action, and time are of no help at all in reaching the state of the supreme self.

सच्चे समझ वाले व्यक्ति के लिए द्रव्य, जगह, क्रिया और समय के उपाय परमात्मा की अवस्था पाने में कुछ भी काम नहीं आते।

5.89.32

यस्येच्छा विद्यते काचित्स सिद्धिं साधयत्यलम्। आत्मज्ञस्य तु पूर्णस्य नेच्छा संभवति क्वचित्॥ ३२॥

yasyecchā vidyate kācit sa siddhiṃ sādhayaty alam | ātmajñasya tu pūrṇasya necchā saṃbhavati kvacit || 32 ||

Whoever still has some desire can indeed achieve that power. But for someone who knows the self and is complete, no desire ever arises.

जिस किसी में भी कोई इच्छा बाकी है, वह उस सिद्धि को पा सकता है। पर जो आत्मा को जानने वाला और पूर्ण है, उसमें कभी कोई इच्छा नहीं उठती।

5.89.33

सर्वेच्छाजालसंशान्तावात्मलाभोदयो हि यः। तद्विरुद्धा कथं कस्मादिच्छा संजायतेऽनघ॥ ३३॥

sarvecchājālasaṃśāntāvātmalābhodayo hi yaḥ | tadviruddhā kathaṃ kasmādicchā saṃjāyate'nagha || 33 ||

The gaining of the self dawns only when the whole web of desires is stilled. So how, and from what cause, could desire — which is the very opposite of that — ever arise, O sinless one?

आत्मा की प्राप्ति तभी होती है जब सारी इच्छाओं का जाल शांत हो जाता है। तो फिर, हे निष्पाप, इच्छा — जो इसके बिल्कुल उलट है — कैसे और किस वजह से उठ सकती है?

5.89.34

यथोदेति च यस्येच्छा स तया यतते तथा। यथाकालं तदाप्नोति ज्ञो वाप्यज्ञतरोऽपि वा॥ ३४॥

yathodeti ca yasyecchā sa tayā yatate tathā | yathākālaṃ tadāpnoti jño vāpyajñataro'pi vā || 34 ||

Whatever desire arises in someone, he strives accordingly with it, and in time he gets what he wanted — whether he is wise or more ignorant.

जिस किसी में जैसी इच्छा उठती है, वह उसी के अनुसार कोशिश करता है, और समय आने पर उसे वह मिल जाता है — चाहे वह ज्ञानी हो या अधिक अज्ञानी।

5.89.35

वीतहव्येन यतितं नो ज्ञानेच्छेन किंचन। ज्ञानेच्छेनाशु यतितं प्रोत्थितोऽसौ यथा वने॥ ३५॥

vītahavyena yatitaṃ no jñānecchena kiṃcana | jñānecchenāśu yatitaṃ protthito'sau yathā vane || 35 ||

Vitahavya made no effort at all out of a desire for knowledge; effort born of a desire for knowledge came only quickly, once he had risen up, there in the forest.

वीतहव्य ने ज्ञान पाने की इच्छा से कभी कोई कोशिश नहीं की; ज्ञान की इच्छा से कोशिश तभी जल्दी हुई, जब वह जंगल में उठ खड़ा हुआ।

5.89.36

एवं कालक्रियाकर्मद्रव्ययुक्तिस्वभावजाः। यथेच्छमेव सिद्ध्यन्ति सिद्धयः स्वाः क्रमार्जिताः॥ ३६॥

evaṃ kālakriyākarmadravyayuktisvabhāvajāḥ | yathecchameva siddhyanti siddhayaḥ svāḥ kramārjitāḥ || 36 ||

In this way, the powers born from timing, action, deed, substance, method, and one's own nature — one's own powers, gained step by step — come about exactly as one desires.

इस तरह समय, क्रिया, कर्म, द्रव्य, उपाय और अपने स्वभाव से पैदा होने वाली शक्तियां — जो धीरे-धीरे कमाई अपनी शक्तियां हैं — ठीक इच्छा के अनुसार ही सिद्ध होती हैं।

5.89.37

याः फलावलयो येन संप्राप्ताः सिद्धिनामिकाः । तास्तेनाधिगता राम निजात्प्रयतनद्रुमात् ॥ ३७ ॥

yāḥ phalāvalayo yena saṃprāptāḥ siddhināmikāḥ | tāstenādhigatā rāma nijātprayatanadrumāt || 37 ||

Whatever fruits, called powers, someone has obtained, Rama, he has gained them from his own tree of effort.

हे राम, जो भी फल, जिन्हें सिद्धियां कहा जाता है, किसी को मिले हैं, उसने वे अपने ही कोशिश के पेड़ से पाए हैं।

5.89.38

महतां नित्यतृप्तानां तज्ज्ञानां भावितात्मनाम् । ईहितं संप्रयातानां नोपकुर्वन्ति सिद्धयः ॥ ३८ ॥

mahatāṃ nityatṛptānāṃ tajjñānāṃ bhāvitātmanām | īhitaṃ saṃprayātānāṃ nopakurvanti siddhayaḥ || 38 ||

For the great ones, who are always content, who know the truth, whose minds are purified, and who have gone beyond all wanting, powers are of no help at all.

जो महान लोग हमेशा संतुष्ट रहते हैं, जो सत्य को जानते हैं, जिनका मन शुद्ध हो चुका है, और जो हर इच्छा से आगे निकल चुके हैं, उनके लिए सिद्धियां किसी काम की नहीं होतीं।

5.89.39

श्रीराम उवाच । अयं मे संशयो ब्रह्मन्वीतहव्यस्य सा तनुः । क्रव्यादैर्न कथं भुक्ता कथं क्लिन्ना न भूतले ॥ ३९ ॥

śrīrāma uvāca | ayaṃ me saṃśayo brahmanvītahavyasya sā tanuḥ | kravyādairna kathaṃ bhuktā kathaṃ klinnā na bhūtale || 39 ||

Sri Rama said: Brahmin, this is my doubt: that body of Vitahavya — why was it not eaten by flesh-eating animals? Why did it not rot on the ground?

श्रीराम ने कहा: हे ब्राह्मण, मेरा यह संदेह है — वीतहव्य का वह शरीर मांस खाने वाले जानवरों ने क्यों नहीं खाया? वह ज़मीन पर सड़ क्यों नहीं गया?

5.89.40

तदैव वीतहव्योऽसौ कथं वनगतः प्रभो । विदेहमुक्ततां शीघ्रं यथावदिति मे वद ॥ ४० ॥

tadaiva vītahavyo'sau kathaṃ vanagataḥ prabho | videhamuktatāṃ śīghraṃ yathāvadiha me vada || 40 ||

At that very time, how did this Vitahavya go into the forest, my lord? Tell me quickly and exactly how his liberation beyond the body came about.

हे प्रभु, ठीक उसी समय यह वीतहव्य जंगल में कैसे गया? मुझे जल्दी और ठीक-ठीक बताइए कि शरीर से परे उसकी मुक्ति कैसे हुई।

5.89.41

श्रीवसिष्ठ उवाच । या संविद्वलिता साधो वासनामलतन्तुना । सुखदुःखदशादाहभागिनी भवतीह सा ॥ ४१ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yā saṃvidvalitā sādho vāsanāmalatantunā | sukhaduḥkhadaśādāhabhāginī bhavatīha sā || 41 ||

Sri Vasishtha said: Good man, the awareness that is bound by the impure thread of desire's imprint becomes here a partner in the burning states of pleasure and pain.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे साधु, जो चेतना इच्छा के मैले धागे में बंधी होती है, वह यहां सुख-दुख की जलन भरी दशाओं में भागीदार बन जाती है।

5.89.42

निर्मुक्तवासना शुद्धसंविन्मात्रमयी तु सा । तनुस्तिष्ठति तच्छेदे शक्ता नेह हि केचन ॥ ४२ ॥

nirmuktavāsanā śuddhasaṃvinmātramayī tu sā | tanustiṣṭhati tacchede śaktā neha hi kecana || 42 ||

But the body that is free of desire's imprint, made only of pure awareness, remains as it is; no one here has the power to destroy it.

पर जो शरीर इच्छा के दाग से मुक्त है, जो सिर्फ शुद्ध चेतना से बना है, वह वैसा ही बना रहता है; यहां कोई भी उसे मिटा नहीं सकता।

5.89.43

श्रृणु युक्त्या कया योगी तनुच्छेदादिविभ्रमैः । नाक्रम्यते महाबाहो बहुवर्षशतैरपि ॥ ४३ ॥

śṛṇu yuktyā kayā yogī tanucchedādivibhramaiḥ | nākramyate mahābāho bahuvarṣaśatairapi || 43 ||

Listen, mighty-armed one, to the reasoning by which a yogi is not touched by disturbances such as the destruction of the body, even after hundreds and hundreds of years.

हे महाबाहु, सुनिए कि किस उपाय से एक योगी शरीर के नाश जैसी गड़बड़ियों से नहीं छुआ जाता, चाहे सैकड़ों वर्ष ही क्यों न बीत जाएं।

5.89.44

चेतः पदार्थे पतति यस्मिन्यस्मिन्यदा यदा । तन्मयं तद्भवत्याशु तस्मिंस्तस्मिंस्तदा तदा ॥ ४४ ॥

cetaḥ padārthe patati yasminyasminyadā yadā | tanmayam tadbhavatyāśu tasmintasmins tadā tadā || 44 ||

Whenever the mind fixes on some object, it at once becomes just like that object, right then and there.

जब भी मन किसी चीज़ पर टिकता है, वह उसी पल, ठीक वहीं, उस चीज़ जैसा बन जाता है।

5.89.45

तथा दृष्टारि हि मनो विकारमुपगच्छति । दृष्टमित्रं सुहृद्यत्वं स्वयमित्यनुभूयते ॥ ४५ ॥

tathā dṛṣṭāri hi mano vikāramupagacchati | dṛṣṭamitram suhṛdyatvam svayamityanubhūyate || 45 ||

In the same way, seeing an enemy, the mind is indeed disturbed; seeing a friend, a feeling of friendliness arises — and this is felt as happening all by itself.

उसी तरह दुश्मन को देखकर मन में हलचल पैदा हो जाती है; दोस्त को देखकर अपनापन जाग उठता है — और यह अपने आप होता हुआ महसूस होता है।

5.89.46

रागद्वेषविहीने तु पथिके पादपे गिरौ । भवत्यरागद्वेषं च स्वयमित्यनुभूयते ॥ ४६ ॥

rāgadveṣavihīne tu pathike pādape girau | bhavatyarāgadveṣaṃ ca svayamityanubhūyate || 46 ||

Toward a traveler, a tree, or a mountain, none of which feel love or hatred, a person feels, on his own, a mind free of love and hatred.

किसी राहगीर, किसी पेड़ या किसी पहाड़ के प्रति, जिनमें न प्रेम है न द्वेष, इंसान को खुद-ब-खुद ऐसा ही मन महसूस होता है जिसमें न प्रेम है न द्वेष।

5.89.47

मृष्टे लौल्यमुपादत्ते दुर्भोज्ये याति निःस्पृहम् । वैरस्यं याति कटुनि स्वयमित्यनुभूयते ॥ ४७ ॥

mṛṣṭe laulyamupādatte durbhojye yāti niḥspṛham | vairasyaṃ yāti kaṭuni svayamityanubhūyate || 47 ||

Toward tasty food the mind turns greedy, toward bad food it grows indifferent, and toward something bitter it feels distaste, all this happening on its own.

स्वादिष्ट खाना देखकर मन लालची हो जाता है, खराब खाने से मन बेपरवाह हो जाता है, और कड़वी चीज़ से मन को घिन आती है, यह सब अपने आप होता है।

5.89.48

समसंविद्विलासाढ्ये यद्यदा यतिदेहके । हिंस्रचेतः पतत्याशु समतामेति तत्तदा ॥ ४८ ॥

samasaṃvidvilāsāḍhye yadyadā yatidehake | hiṃsracetaḥ patatyāśu samatāmeti tattadā || 48 ||

So too, when a harmful mind suddenly falls on the body of a renunciant full of calm, equal awareness, that harmful mind at once turns calm and even as well.

इसी तरह, जब कोई हिंसक मन अचानक किसी संन्यासी के शरीर पर आ पड़ता है, जो बराबर और शांत चेतना से भरा है, तो वह हिंसक मन भी तुरंत शांत और सम हो जाता है।

5.89.49

समसङ्गविमुक्तत्वाच्छेदादौ न प्रवर्तते । पान्थो व्यर्थं पथि ग्रामे यथा ग्रामीणकर्मणि ॥ ४९ ॥

samasaṅgavimuktatvācchhedādau na pravartate | pāntho vyarthaṃ pathi grāme yathā grāmīṇakarmaṇi || 49 ||

Because that sameness frees it from attachment, it does not go on to cut or harm, just as a traveler on the road does not needlessly join in the work of a village he passes through.

इस समानता के कारण वह मन किसी लगाव से मुक्त हो जाता है, इसलिए वह काटने या नुकसान पहुँचाने की ओर नहीं बढ़ता, जैसे रास्ते पर चलने वाला यात्री किसी गाँव से गुज़रते हुए बेवजह उसके कामों में नहीं उलझता।

5.89.50

योगिदेहसमीपात्तु गत्वा प्राप्नोति हिंस्रताम् । यद्यद्भवति तत्राशु तथारूपं न संशयः ॥ ५० ॥

yogidehasamīpāttu gatvā prāpnoti hiṃsratām | yadyadbhavati tatrāśu tathārūpaṃ na saṃśayaḥ || 50 ||

But once it moves away from the yogi's presence, it turns violent again, and wherever it then goes, it at once takes on the nature of that place, without doubt.

पर जैसे ही वह योगी की निकटता से दूर जाता है, वह फिर से हिंसक हो जाता है, और वह जहाँ भी जाता है, वहाँ की प्रकृति को तुरंत अपना लेता है, इसमें कोई शक नहीं।

5.89.51

इति हिंस्रैर्मृगव्याघ्रसिंहकीटसरीसृपैः । न च्छिन्ना वीतहव्यस्य तनुर्भूतलशालिनी ॥ ५१ ॥

iti hiṃsrairmṛgavyāghrasiṃhakīṭasarīsṛpaiḥ | na cchinnā vītahavyasya tanurbhūtalaśālinī || 51 ||

So, by fierce creatures such as wild beasts, tigers, lions, insects, and snakes, Vitahavya's body, lying on the bare ground, was never torn.

इसलिए हिंसक जानवरों, बाघों, शेरों, कीड़ों और साँपों से भी ज़मीन पर पड़े वीतहव्य के शरीर को कभी नुकसान नहीं पहुँचा।

5.89.52

सर्वत्र विद्यते संवित्काष्ठलोष्टोपलादिके । सत्तासामान्यरूपेण संस्थिता मूकबालवत् ॥ ५२ ॥

sarvatra vidyate saṃvitkāṣṭhloṣṭopalādike | sattāsāmānyarūpeṇa saṃsthitā mūkabālavat || 52 ||

Awareness is present everywhere, in wood, in a clod of earth, in a stone, and the like, but there it exists only as bare existence, like a mute child.

चेतना हर जगह मौजूद है, लकड़ी में, मिट्टी के ढेले में, पत्थर में, और ऐसी ही चीज़ों में, पर वहाँ वह सिर्फ एक साधारण अस्तित्व के रूप में है, जैसे कोई गूँगा बच्चा।

5.89.53

पोप्लूयमाना तरला केवलं परिदृश्यते । तन्वी पुर्यष्टकेष्वेव प्रतिबिम्बजलेष्विव ॥ ५३ ॥

poplūyamānā taralā kevalaṃ paridṛśyate | tanvī puryaṣṭakeṣveva pratibimbajaleṣviva || 53 ||

Only within the subtle body does it appear, restless and flickering, faint, like a reflection in water.

केवल सूक्ष्म शरीर में ही वह बेचैन और टिमटिमाती हुई, हल्की सी नज़र आती है, जैसे पानी में पड़ने वाला कोई प्रतिबिंब।

5.89.54

तेन भूजलवाय्वग्निसंवित्त्या समरूपया । निर्विकारं तनुर्नीता वीतहव्यस्य राघव ॥ ५४ ॥

tena bhūjalavāyvagnisaṃvittyā samarūpayā | nirvikāraṃ tanurnītā vītahavyasya rāghava || 54 ||

So, Raghava, through that same awareness present equally in earth, water, air, and fire, Vitahavya's body was brought to a state beyond change.

इसी तरह, हे राघव, धरती, जल, वायु और अग्नि में समान रूप से मौजूद उसी चेतना के कारण वीतहव्य का शरीर बदलाव से परे एक स्थिति में पहुँच गया।

5.89.55

अन्यच्च शृणु मे राम स्पन्दो नाशस्य कारणम् । विकारः स च चित्तोत्थो वातजो वा जगत्स्थितौ ॥ ५५ ॥

anyacca śṛṇu me rāma spando nāśasya kāraṇam | vikāraḥ sa ca cittottho vātajo vā jagatsthitau || 55 ||

Hear one more thing from me, Rama: movement is the cause of decay. As long as this world lasts, that movement comes either from the mind or from the breath.

राम, मुझसे एक और बात सुनो: हलचल ही नाश का कारण है। जब तक यह संसार है, तब तक यह हलचल या तो मन से पैदा होती है या फिर साँस से।

5.89.56

प्राणानां प्राणनं स्पन्दस्तच्छान्तौ ते दृषत्समाः । यतः स्थिता धारणया तेनानष्टास्य सा तनुः ॥ ५६ ॥

prāṇānāṃ prāṇanaṃ spandastacchāntau te dṛṣatsamāḥ | yataḥ sthitā dhāraṇayā tenānaṣṭāsya sā tanuḥ || 56 ||

Movement means the stirring of the life breaths. When that stirring goes still, the body turns as still as stone. Because he stayed fixed in that stillness through concentration, his body was never destroyed.

हलचल का मतलब है प्राण का चलना। जब यह चलना रुक जाता है, तो शरीर पत्थर जैसा स्थिर हो जाता है। चूँकि वह ध्यान के ज़रिए इसी स्थिरता में टिका रहा, इसलिए उसका शरीर कभी नष्ट नहीं हुआ।

5.89.57

सबाह्याभ्यन्तरं स्पन्दश्चित्तजो वातजोऽथवा । न यस्य विद्यते तस्य दूरस्थौ प्रकृतिक्षयौ ॥ ५७ ॥

sabāhyābhyantaraṃ spandaścittajo vātajo'thavā | na yasya vidyate tasya dūrasthau prakṛtikṣayau || 57 ||

For someone with no movement at all, whether outer or inner, whether born of mind or of breath, both kinds of natural decay stay far away.

जिस किसी में कोई हलचल नहीं होती, न बाहरी न भीतरी, न मन से पैदा हुई न साँस से, उससे प्रकृति के दोनों तरह के नाश दूर ही रहते हैं।

5.89.58

सबाह्याभ्यन्तरे शान्ते स्पन्दे तत्त्वविदां वर । धातवः संस्थितिं देहे न त्यजन्ति कदाचन ॥ ५८ ॥

sabāhyābhyantare śānte spande tattvavidāṃ vara | dhātavaḥ saṃsthitiṃ dehe na tyajanti kadācana || 58 ||

O best knower of truth, when movement, outer and inner, is stilled, the body's elements never leave their place in the body.

हे सत्य को जानने वालों में श्रेष्ठ, जब हलचल, बाहरी और भीतरी दोनों, थम जाती है, तो शरीर के तत्व अपनी जगह कभी नहीं छोड़ते।

5.89.59

संशान्ते देहप्रस्पन्दे चित्तवातमये तथा । धातवो मैरवं स्थैर्यं यान्ति संस्तम्भितात्मकाः ॥ ५९ ॥

saṃśānte dehapraspande cittavātamaye tathā | dhātavo mairavaṃ sthairyaṃ yānti saṃstambhitātmakāḥ || 59 ||

When the body's movement, made of mind and breath, is fully stilled, the body's elements become fixed and reach a firmness like a mountain's.

जब शरीर की हलचल, जो मन और साँस से बनती है, पूरी तरह थम जाती है, तो शरीर के तत्व स्थिर हो जाते हैं और पहाड़ जैसी मज़बूती पा लेते हैं।

5.89.60

तथा च दृश्यते लोके स्पन्दशान्तौ दृढा स्थितिः । दारूणामिव धीराणां शवाङ्गानामचोपता ॥ ६० ॥

tathā ca dṛśyate loke spandaśāntau dṛḍhā sthitiḥ | dārūṇāmiva dhīrāṇāṃ śavāṅgānāmacopatā || 60 ||

And this too is seen in the world: when movement stops, the body stays firm and fixed, like steady logs of wood, like the still limbs of a corpse that do not stir.

और यह भी संसार में देखा जाता है: जब हलचल रुक जाती है, तो शरीर मज़बूत और स्थिर बना रहता है, जैसे ठोस लकड़ी के लट्ठे, जैसे किसी लाश के अंग जो हिलते-डुलते नहीं।

5.89.61

इति वर्षसहस्राणि देहा जगति योगिनाम् । न क्लिद्यन्ते न भिद्यन्ते मग्नवज्जलदा इव ॥ ६१ ॥

iti varṣasahasrāṇi dehā jagati yoginām | na kli dyante na bhidyante magnavajjaladā iva || 61 ||

So, for thousands of years, the bodies of yogis in this world do not rot and do not fall apart, like clouds that lie sunk and still.

इस तरह, हज़ारों सालों तक इस संसार में योगियों के शरीर न सड़ते हैं न बिखरते हैं, जैसे बादल जो डूबे हुए, थमे हुए पड़े रहते हैं।

5.89.62

तदैव वीतहव्योऽसौ श्रृणु किं नोपशान्तवान्। देहमुत्सृज्य तत्त्वज्ञो ज्ञातज्ञेयवतां वरः ॥ ६२ ॥

tadaiva vītahavyo'sau śṛṇu kiṃ nopaśāntavān | dehamutsṛjya tattvajño jñātajñeyavatāṃ varaḥ || 62 ||

Then, listen: did that Vitahavya, the knower of truth, the best among those who have known all that is to be known, not become fully at peace once he gave up his body?

फिर सुनो: क्या वह वीतहव्य, जो सत्य के जानकार थे और जानने योग्य सब कुछ जानने वालों में श्रेष्ठ थे, शरीर छोड़ने के बाद पूरी तरह शांत नहीं हो गए?

5.89.63

ये हि विज्ञातविज्ञेया वीतरागा महाधियः। विच्छिन्नग्रन्थयः सर्वे ते स्वतन्त्रास्तनौ स्थिताः ॥ ६३ ॥

ye hi vijñātavijñeyā vītarāgā mahādhiyaḥ | vicchinnagranthayaḥ sarve te svatantrāstanau sthitāḥ || 63 ||

Those who have truly known what is to be known, who are free of craving, who are of great wisdom, whose inner knots are cut, all of them are free and independent even while still remaining in a body.

जिन्होंने जानने योग्य सब कुछ सचमुच जान लिया है, जो लालसा से मुक्त हैं, जो बड़ी बुद्धि वाले हैं, जिनकी भीतरी गाँठें कट चुकी हैं, वे सब शरीर में रहते हुए भी स्वतंत्र और आज़ाद हैं।

5.89.64

दैवं वापि च कर्माणि प्राक्तनान्यैहिकानि च। वासना वा न तेषां तच्चेतो नियमयन्त्यलम् ॥ ६४ ॥

daivaṃ vāpi ca karmāṇi prāktanānyaihikāni ca | vāsanā vā na teṣāṃ tacceto niyamayantyalam || 64 ||

Neither fate, nor deeds, whether from past lives or from this one, nor desire, can any longer hold their minds in check.

न भाग्य, न कर्म, चाहे पिछले जन्मों के हों या इसी जन्म के, और न ही इच्छा, अब उनके मन को क़ाबू में रख सकते हैं।

5.89.65

तेन तत्त्वविदां तात काकतालीयवन्मनः। यद्यद्भावयति क्षिप्रं तत्तदाशु करोत्यलम् ॥ ६५ ॥

tena tattvavidāṃ tāta kākatālīyavatmanaḥ | yadyadbhāvayati kṣipraṃ tattadāśu karotyalam || 65 ||

So, dear one, the mind of those who know the truth works like a crow landing just as the palm fruit falls, whatever it happens to think, it brings about fully, at once.

इसलिए, प्रिय, सत्य को जानने वालों का मन उस कौवे जैसा काम करता है जो ताड़ का फल गिरने के ठीक वक़्त डाल पर बैठता है, वह जो कुछ भी सोचता है, उसे तुरंत और पूरी तरह सच कर देता है।

5.89.66

काकतालीययोगेन वीतहव्यस्य संविदा। सांप्रतं जीवितं बुद्धं तदेवाशु स्थिरीकृतम् ॥ ६६ ॥

kākatālīyayogena vītahavyasya saṃvidā | sāṃprataṃ jīvitaṃ buddhaṃ tadevāśu sthirīkṛtam || 66 ||

By that same kind of chance, through Vitahavya's own awareness, the life he thought of in that moment was at once made real and lasting.

उसी तरह के संयोग से, वीतहव्य की अपनी चेतना के ज़रिए, उस पल जिस जीवन के बारे में उन्होंने सोचा, वही तुरंत सच्चा और स्थायी बन गया।

5.89.67

यदा तु तस्य प्रतिभा विदेहोन्मुक्ततां गता । तदा विदेहमुक्तोऽभूदसौ स्वातन्त्र्यसंस्थितिः ॥ ६७ ॥

yadā tu tasya pratibhā videhonmuktatāṃ gatā | tadā videhamukto'bhūdasau svātantryasaṃsthitiḥ || 67 ||

But when his awareness reached the point of being utterly free of the body, he then became one freed even from the body, fixed forever in that freedom.

पर जब उनकी चेतना शरीर से पूरी तरह मुक्त होने की स्थिति तक पहुँच गई, तो वे शरीर से भी मुक्त हो गए, हमेशा के लिए उसी आज़ादी में स्थिर।

5.89.68

विगतवासनमाशु विपाशतामुपगतं मन आत्मतयोदितम् । यदभिवाञ्छति तद्भवति क्षणात्सकलशक्तिमयो हि महेश्वरः ॥ ६८ ॥

vigatavāsanamāśu vipāśatāmupagataṃ mana ātmatayoditam | yadabhivāñchati tadbhavati kṣaṇātsakalaśaktimayo hi maheśvaraḥ || 68 ||

The mind that has dropped its desires, that has quickly become free of every bond, and has risen to the nature of the very self, whatever it wishes for comes true in an instant, for such a mind is the great lord himself, made of every power.

जिस मन ने अपनी इच्छाएँ छोड़ दी हैं, जो हर बंधन से जल्दी ही मुक्त हो गया है, और जो आत्मा के स्वरूप तक उठ चुका है, वह जो कुछ भी चाहता है, वह पल भर में सच हो जाता है, क्योंकि ऐसा मन खुद परमेश्वर है, जो हर शक्ति से भरा है।

Chapter 90

5.90.1

श्रीवसिष्ठ उवाच । यदा ह्यस्तंगतप्रायं जातं चित्तं विचारतः । तदा हि वीतहव्यस्य जाता मैत्र्यादयो गुणाः ॥ १ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yadā hyastaṃgataprāyaṃ jātaṃ cittaṃ vicārataḥ | tadā hi vītahavyasya jātā maitryādayo guṇāḥ || 1 ||

Sri Vasishtha said: When, through inquiry, the mind had become almost fully set to rest, then in Vitahavya there arose the qualities that begin with friendliness.

श्री वसिष्ठ ने कहा: जब विचार करते-करते मन लगभग शांत हो चुका था, तब वीतहव्य में मित्रता आदि गुण पैदा हुए।

5.90.2

श्रीराम उवाच । विचाराभ्युदयाच्चित्तस्वरूपेऽन्तर्हिते मुने । मैत्र्यादयो गुणा जाता इत्युक्तं किं त्वया प्रभो ॥ २ ॥

śrīrāma uvāca | vicārābhyudayāccittasvarūpe'ntarhite mune | maitryādayo guṇā jātā ityuktaṃ kiṃ tvayā prabho || 2 ||

Sri Rama said: O sage, when the very nature of the mind had vanished through the rise of inquiry, you said that the qualities beginning with friendliness arose. What do you mean by this, lord?

श्रीराम ने कहा: हे मुनि, जब विचार के उदय से मन का असली रूप ही छिप गया था, तब आपने कहा कि मित्रता आदि गुण पैदा हुए। हे प्रभु, आपका यह कहना क्या मतलब रखता है?

5.90.3

ब्रह्मण्यस्तं गते चित्ते कस्य मैत्र्यादयो गुणाः । क्व वा परिस्फुरन्तीति वद मे वदतां वर ॥ ३ ॥

brahmaṇyastaṃ gate citte kasya maitryādayo guṇāḥ | kva vā parisfurantīti vada me vadatāṃ vara || 3 ||

When the mind has set to rest in Brahman, whose are the qualities that begin with friendliness? Or where do they appear? Tell me this, best of speakers.

जब मन ब्रह्म में शांत हो जाता है, तो मित्रता आदि गुण किसके होते हैं? या वे कहाँ दिखाई देते हैं? हे सबसे अच्छे वक्ता, मुझे यह बताइए।

5.90.4

श्रीवसिष्ठ उवाच । द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिजः ॥ ४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | dvividhaścittanāśo'sti sarūpo'rūpa eva ca | jīvanmuktaḥ sarūpaḥ syād arūpo dehamuktijaḥ || 4 ||

Sri Vasishtha said: The destruction of the mind is of two kinds: with form and without form. The one with form is called liberation while still alive; the formless one is born when the body is given up.

श्री वसिष्ठ ने कहा: मन का नाश दो तरह का होता है - सरूप और अरूप। जो सरूप नाश है उसे जीवनमुक्ति कहते हैं, और जो अरूप नाश है वह शरीर छूटने पर होता है।

5.90.5

चित्तसत्तेह दुःखाय चित्तनाशः सुखाय तु । चित्तसत्तां क्षयं नीत्वा चित्तं नाशमुपानयेत् ॥ ५ ॥

cittasatteha duḥkhāya cittanāśaḥ sukhāya tu | cittasattāṃ kṣayaṃ nītvā cittaṃ nāśamupānayet || 5 ||

Here, the mind's existing brings suffering; the mind's destruction brings happiness. Having worn away the mind's existence, one should bring the mind to its destruction.

यहाँ मन का बने रहना दुःख देता है, और मन का नाश सुख देता है। इसलिए मन के बने रहने को क्षीण करके, मन को नाश तक ले जाना चाहिए।

5.90.6

तामसैर्वासनाजालैर्व्याप्तं यज्जन्मकारणम्। विद्यमानं मनो विद्धि तद्दुःखायैव केवलम्॥ ६॥

tāmasairvāsanājālairvyāptaṃ yajjanmakāraṇam | vidyamānaṃ mano viddhi taddduḥkhāyaiva kevalam || 6 ||

Know that the mind which causes birth, covered by dark webs of desire, is - as long as it exists - only for suffering.

जान लो कि जो मन जन्म का कारण है और तामसी वासनाओं के जाल में उलझा है, वह जब तक बना रहता है, तब तक केवल दुःख ही देता है।

5.90.7

प्राक्तनं गुणसंभारं ममेति बहु मन्यते। यत्तु चित्तमतत्त्वज्ञं दुःखितं जीव उच्यते॥ ७॥

prāktanaṃ guṇasaṃbhāraṃ mameti bahu manyate | yattu cittamatattvajñaṃ duḥkhitaṃ jīva ucyate || 7 ||

The mind that does not know the truth thinks again and again, this pile of old tendencies is mine - it is this suffering mind that is called the soul.

जो मन सच्चाई को नहीं जानता, वह बार-बार यही सोचता है कि पुराने गुणों का यह ढेर मेरा है - यही दुःखी मन जीव कहलाता है।

5.90.8

विद्यमानं मनो यावत्तावद्दुःखक्षयः कुतः। मनस्यस्तं गते जन्तोः संसारोऽस्तमुपागतः॥ ८॥

vidyamānaṃ mano yāvattāvadduduḥkhakṣayaḥ kutaḥ | manasyastaṃ gate jantoḥ saṃsāro'stamupāgataḥ || 8 ||

As long as the mind exists, how can suffering end? When a being's mind has set to rest, that being's cycle of rebirth has also come to rest.

जब तक मन बना रहता है, तब तक दुःख का नाश कैसे हो सकता है? जब प्राणी का मन शांत हो जाता है, तब उसका जन्म-मरण का चक्र भी शांत हो जाता है।

5.90.9

दुःखमूलमवष्टब्धमस्मिन्नेव विनिश्चलम्। विद्यमानं मनो विद्धि दुःखवृक्षवनाङ्कुरम्॥ ९॥

duḥkhamūlamavaṣṭabdhamasminneva viniscalam | vidyamānaṃ mano viddhi duḥkhavṛkṣavanāṅkuram || 9 ||

Know that the mind, while it exists, is the root of suffering, held fast and unmoving right here - it is the seed of the whole forest of the tree of suffering.

जान लो कि जब तक मन बना रहता है, वही दुःख की जड़ है, जो यहीं मजबूती से जमी और अटल है - यही दुःख के वृक्षों वाले जंगल का बीज है।

5.90.10

श्रीराम उवाच। नष्टं कस्य मनो ब्रह्मन्नष्टं वा कीदृशं भवेत्। कीदृशश्चास्य नाशः स्यात्सत्ता नाशस्य कीदृशी॥ १०॥

śrīrāma uvāca | naṣṭaṃ kasya mano brahmannaṣṭaṃ vā kīdṛśaṃ bhavet | kīdṛśaścāsya nāśaḥ syātsattā nāśasya kīdṛśī || 10 ||

Sri Rama said: O Brahmin, whose mind is destroyed, and what is that destruction like? What kind of destruction is this, and what is its nature?

श्रीराम ने कहा: हे ब्राह्मण, किसका मन नष्ट होता है, और वह नष्ट होना कैसा होता है? इसका नाश किस तरह का होता है, और उस नाश की असलियत क्या है?

5.90.11

श्रीवसिष्ठ उवाच । चेतसः कथिता सत्ता मया रघुकुलोद्वह । अस्य नाशमिदानीं त्वं शृणु प्रश्नविदां वर ॥ ॥ ११ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | cetasaḥ kathitā sattā mayā raghukulodvaha | asya nāśamidānīṃ tvaṃ śṛṇu praśnavidāṃ vara || 11 ||

Sri Vasishtha said: O best of the Raghu line, I have told you of the mind's existing. Now listen to its destruction, best of those who know how to ask.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे रघुकुल के श्रेष्ठ, मैंने तुम्हें मन के बने रहने के बारे में बता दिया है। अब हे प्रश्न पूछने वालों में श्रेष्ठ, तुम इसके नाश के बारे में सुनो।

5.90.12

सुखदुःखदशा धीरं साम्यान्न प्रोद्धरन्ति यम् । निःश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदुः ॥ ॥ १२ ॥

sukhaduḥkhadaśā dhīraṃ sāmyānna prodharanti yam | niḥśvāsā iva śailendraṃ cittaṃ tasya mṛtaṃ viduḥ || 12 ||

The steady man whom the states of pleasure and pain, through his evenness, cannot shake - as mere breaths cannot move a great mountain - his mind, they say, is dead.

जिस धीर पुरुष को सुख और दुःख की अवस्थाएँ, उसकी समता के कारण, विचलित नहीं कर पातीं - जैसे साँसें किसी बड़े पर्वत को नहीं हिला सकतीं - उसका मन मरा हुआ माना जाता है।

5.90.13

अयं सोहमयं नाहमिति चिन्ता नरोत्तमम् । खर्वीकरोति यं नान्तर्नष्टं तस्य मनो विदुः ॥ ॥ १३ ॥

ayaṃ sohamayaṃ nāhamiti cintā narottamam | kharvīkaroti yaṃ nāntarnnaṣṭaṃ tasya mano viduḥ || 13 ||

The best of men whom the thought I am this, I am not this cannot shrink from within - his mind, they know, is destroyed.

जिस श्रेष्ठ पुरुष को यह मैं हूँ या यह मैं नहीं हूँ, ऐसा विचार भीतर से छोटा नहीं कर पाता, उसका मन नष्ट हुआ माना जाता है।

5.90.14

आपत्कार्पण्यमुत्साहो मदो मान्द्यं महोत्सवः । यं नयन्ति न वैरूप्यं तस्य नष्टं विदुर्मनः ॥ ॥ १४ ॥

āpatkārpaṇyamutsāho madomāndyaṃ mahotsavaḥ | yaṃ nayanti na vairūpyaṃ tasya naṣṭaṃ vidurmnaḥ || 14 ||

He whom calamity, misery, enthusiasm, pride, dullness, or great celebration cannot bend out of shape - his mind, they know, is destroyed.

जिसे विपत्ति, दीनता, उत्साह, मद, सुस्ती या बड़ा उत्सव भी बिगाड़ नहीं पाते, उसका मन नष्ट हुआ माना जाता है।

5.90.15

एष साधो मनोनाशो नष्टं चेह मनो भवेत् । चित्तनाशदशा चैषा जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥ ॥ १५ ॥

eṣa sādho manonāśo naṣṭaṃ ceha mano bhavet | cittanāśadaśā caiṣā jīvanmuktasya vidyate || 15 ||

O good man, this is the destruction of the mind; here the mind is said to be destroyed. This state of the mind's destruction belongs to one who is liberated while still alive.

हे साधु पुरुष, यही मन का नाश है; यहाँ मन को नष्ट हुआ कहा जाता है। मन के नाश की यह अवस्था जीवनमुक्त पुरुष की होती है।

5.90.16

मनस्तां मूढतां विद्धि यदा नश्यति सानघ । चित्तनाशाभिधानं हि तदा सत्त्वमुदेत्यलम् ॥ १६ ॥

manastāṃ mūḍhatāṃ viddhi yadā naśyati sānagha | cittanāśābhidhānaṃ hi tadā sattvamudetyalam || 16 ||

O sinless one, know that when this foolishness of the mind is destroyed, then indeed a pure state, called the destruction of the mind, fully arises.

हे निष्पाप, जान लो कि जब मन की यह मूढ़ता नष्ट हो जाती है, तब मन का नाश कहलाने वाली एक शुद्ध अवस्था पूरी तरह से उदित होती है।

5.90.17

तस्य सत्त्वविलासस्य चित्तनाशस्य राघव । जीवन्मुक्तस्वभावस्य कैश्चिच्चित्ताभिधा कृता ॥ १७ ॥

tasya sattvavilāsasya cittanāśasya rāghava | jīvanmuktasvabhāvasya kaiścicittābhidhā kṛtā || 17 ||

Rama, some people give the name 'mind' to this very thing: the joyful play of true being, the ending of the thinking mind, which is the true nature of one who is freed while still alive.

राम, कुछ लोग इसी चीज़ को 'मन' नाम देते हैं: सच्चे होने का आनंदमय खेल, मन का मिट जाना, जो जीते-जी मुक्त हुए व्यक्ति का असली स्वभाव है।

5.90.18

मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं भवत्युत्तमवासनम् । भूयो जन्मविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तमनोऽनघ ॥ १८ ॥

maitryādibhirguṇairyuktaṃ bhavatyuttamavāsanam | bhūyo janmavinirmuktaṃ jīvanmuktamano'nagha || 18 ||

Sinless one, the mind of the person who is freed while still alive becomes full of the best tendencies, filled with good qualities such as friendliness, and it is set free from ever being born again.

हे निष्पाप, जो व्यक्ति जीते-जी मुक्त हो चुका है, उसका मन सबसे अच्छी प्रवृत्तियों से भर जाता है, मैत्री जैसे अच्छे गुणों से भर जाता है, और वह फिर कभी जन्म न लेने के लिए पूरी तरह मुक्त हो जाता है।

5.90.19

व्याप्तं वासनया यत्स्याद्भूया जननमुक्तया । जीवन्मुक्तमनःसत्ता राम तत्सत्त्वमुच्यते ॥ १९ ॥

vyāptaṃ vāsanayā yatsyādbhūyā jananamuktayā | jīvanmuktamanaḥsattā rāma tatsattvamucyate || 19 ||

Rama, this very being of the mind of one who is freed while still alive, when it is completely filled with a tendency that will never bring another birth, is called true being.

राम, जीते-जी मुक्त हुए व्यक्ति के मन का यह होना ही, जब वह ऐसी प्रवृत्ति से पूरी तरह भर जाता है जो आगे कभी जन्म नहीं देगी, सच्चा होना कहलाता है।

5.90.20

संप्रत्येवानुभूतत्वात्सत्त्वाप्त्या तन्वसंयुतः । सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥ २० ॥

saṃpratyevānubhūtatvātsattvāptyā tanvasaṃyutaḥ | sarūpo'sau manonāśo jīvanmuktasya vidyate || 20 ||

This destruction of the mind, the kind that still has a form, belongs to the person who is freed while still alive. It is felt right here, right now, reached by attaining true being while the body still remains.

मन का यह मिटना, जिसका अब भी कोई रूप है, उस व्यक्ति का है जो जीते-जी मुक्त है। यह अभी, इसी वक़्त महसूस होता है, सच्चे होने को पाकर, जब तक शरीर बना रहता है।

5.90.21

मैत्र्यादयोऽथ मुदिताः शशाङ्क इव दीप्तयः । जीवन्मुक्तमनोनाशे सर्वदा सर्वथा स्थिताः ॥ २१ ॥

maitryādayo'tha muditāḥ śaśāṅka iva dīptayaḥ | jīvanmuktamanonāśe sarvadā sarvathā sthitāḥ || 21 ||

Then, in the destruction of the mind of one who is freed while still alive, joyful qualities such as friendliness shine like moonlight, and stay there always, in every way.

फिर, जीते-जी मुक्त हुए व्यक्ति के मन के मिटने में, मैत्री जैसे आनंदित गुण चाँदनी की तरह चमकते हैं, और वहाँ हमेशा, हर तरह से बने रहते हैं।

5.90.22

जीवन्मुक्तमनोनाशे सत्त्वनाम्नि हिमालये । वसन्त इव मञ्जर्यः स्फुरन्ति गुणसंपदः ॥ २२ ॥

jīvanmuktamanonāśe sattvanāmni himālaye | vasanta iva mañjaryaḥ sphuranti guṇasaṃpadaḥ || 22 ||

In the destruction of the mind that is named true being, in one who is freed while still alive, it is like the Himalaya: riches of good qualities burst out like blossoms in spring.

जीते-जी मुक्त हुए व्यक्ति के मन के उस मिटने में, जिसे सच्चा होना कहते हैं, यह हिमालय जैसा है: अच्छे गुणों का खज़ाना वसंत में खिलने वाली कलियों की तरह फूट पड़ता है।

5.90.23

अरूपस्तु मनोनाशो यो मयोक्तो रघुद्वह । विदेहमुक्त एवासौ विद्यते निष्कलात्मकः ॥ २३ ॥

arūpastu manonāśo yo mayokto raghudvaha | videhamukta evāsau vidyate niṣkalātmakaḥ || 23 ||

But the destruction of the mind that has no form at all, Rama, the one I have already spoken of, exists only in the one who is freed without a body, and it has no parts at all.

पर मन का वह मिटना जिसका कोई रूप ही नहीं है, राम, जिसकी बात मैं पहले कह चुका हूँ, वह केवल उसी में होता है जो बिना शरीर के मुक्त हुआ है, और उसमें कोई हिस्सा भी नहीं होता।

5.90.24

समग्राग्र्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते । विदेहमुक्ते विमले पदे परमपावने ॥ २४ ॥

samagrāgryaguṇādhāramapi sattvaṃ pralīyate | videhamukte vimale pade paramapāvane || 24 ||

Even true being, though it holds within it every fine quality there is, melts away completely in the state of being freed without a body, a state that is spotless and supremely pure.

सच्चा होना भी, हालाँकि उसमें हर अच्छा गुण मौजूद रहता है, बिना शरीर के मुक्त होने की उस अवस्था में पूरी तरह घुल जाता है, वह अवस्था बेदाग़ और सबसे पवित्र है।

5.90.25

विदेहमुक्तविषये तस्मिन्सत्त्वक्षयात्मके । वित्तनाशे विरूपाख्ये न किंचिदपि विद्यते ॥ २५ ॥

videhamuktaviṣaye tasminsattvakṣayātmake | vittanāśe virūpākhye na kiṃcidapi vidyate || 25 ||

In that state of being freed without a body, where true being itself has come to an end, in this destruction of the mind that is called formless, nothing at all exists.

बिना शरीर के मुक्त होने की उस अवस्था में, जहाँ सच्चा होना भी समाप्त हो जाता है, मन के इस मिटने में, जिसे रूपहीन कहा जाता है, कुछ भी नहीं होता।

5.90.26

न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीर्न लोलता । न चोदयो नास्तमयो न हर्षामर्षसंविदः ॥ २६ ॥

na guṇā nāguṇāstatra na śrīrnaśrīrna lolatā | na codayo nāstamayo na harṣāmarṣasaṃvidaḥ || 26 ||

There, there are no good qualities and no bad ones, no glory and no lack of glory, no restlessness. There is no rising and no setting. There is no feeling of joy and no feeling of anger.

वहाँ न कोई अच्छे गुण हैं, न बुरे; न कोई शोभा है, न उसकी कमी; न कोई बेचैनी है। न कोई उदय है, न कोई अस्त। न खुशी का एहसास है, न गुस्से का।

5.90.27

न तेजो न तमः किंचिन्न संध्या दिनरात्रयः । न दिशो न च वाकाशो नाधो नानर्थरूपता ॥ २७ ॥

na tejo na tamaḥ kiñcinna saṃdhyā dinarātrayaḥ | na diśo na ca vākāśo nādho nānartharūpatā || 27 ||

There is no light, no darkness at all, no dusk, no day, no night. There are no directions and no sky. There is no below. There is not even meaninglessness.

वहाँ न कोई उजाला है, न कोई अंधेरा; न संध्या है, न दिन, न रात। न कोई दिशाएँ हैं, न आकाश। न कोई नीचे है। यहाँ तक कि निरर्थकता भी नहीं है।

5.90.28

न वासना न रचना नेहानीहे न रञ्जना । न सत्ता नापि वाऽसत्ता नच साध्यं हि तत्पदम् ॥ २८ ॥

na vāsanā na racanā nehānīhe na rañjanā | na sattā nāpi vā'sattā na ca sādhyaṃ hi tatpadam || 28 ||

There is no old tendency, no making of anything, no striving and no absence of striving, no trace of feeling. There is no existence, and there is no non-existence either. And that state cannot be reached by any effort.

वहाँ न कोई पुरानी आदत है, न कुछ बनाना; न कोई कोशिश है, न कोशिश का न होना; न कोई भाव-रंग है। न वहाँ होना है, न न-होना। और उस अवस्था को किसी भी उपाय से पाया नहीं जा सकता।

5.90.29

अतमस्तेजसा व्योम्ना वितारेन्द्वर्कवायुना । तत्समं शरदच्छेन निःसंध्येनारजस्त्विषा ॥ २९ ॥

atamastejasā vyomnā vitārendvarkavāyunā | tatsamaṃ śaradacchena niḥsaṃdhyenārajastviṣā || 29 ||

That is like a sky whose brightness has no darkness in it, with no stars, no moon, no sun, no wind, just as clear as autumn, with no dusk, and a shine that carries no dust.

वह ऐसे आकाश जैसा है जिसकी चमक में कोई अंधेरा नहीं, जिसमें न तारे हैं, न चाँद, न सूरज, न हवा, बिलकुल शरद ऋतु जैसा साफ़, बिना किसी संध्या के, और ऐसी चमक जिसमें कोई धूल नहीं।

5.90.30

ये हि पारं गता बुद्धेः संसाराचरणस्य च । तेषां तदास्पदं स्फारं पवनानामिवाम्बरम् ॥ ३० ॥

ye hi pāraṃ gatā buddheḥ saṃsārācaraṇasya ca | teṣāṃ tadāspadaṃ sphāraṃ pavanānāmivāmbaram || 30 ||

For those who have gone beyond the intellect and beyond acting in this cycle of birth and death, that vast resting place is like the sky is for the winds.

जो लोग बुद्धि से आगे निकल चुके हैं और जन्म-मरण के इस चक्र में काम करने से भी आगे निकल चुके हैं, उनके लिए वह विशाल ठिकाना वैसा ही है जैसा हवाओं के लिए आकाश है।

5.90.31

संशान्तदुःखमजडात्मकमेव सुप्तमानन्दमन्थरमपेतरजस्तमो यत्। आकाशकोशतनवोऽतनवा महान्तस्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवा वसन्ति ॥ ३१ ॥

saṃśāntaduḥkhamajaḍātmakameva suptamānandamantharamapetarajastamo yat| ākāśakośatanavo'tanavā mahāntastasminpade galitacittalavā vasanti || 31 ||

In that state, where all sorrow has come to rest, which is fully awake and never dull, quiet as sleep and heavy with bliss, free of all passion and darkness, there the great ones live, whose only covering is the sky itself, who have no body at all, and in whom even the last trace of the mind has melted away.

उस अवस्था में, जहाँ सारा दुख शांत हो चुका है, जो पूरी तरह जागी हुई है और कभी सुस्त नहीं, जो नींद जैसी शांत और आनंद से भारी है, जो हर तरह के मोह और अंधेरे से मुक्त है, वहाँ वे महान लोग रहते हैं जिनका एकमात्र आवरण आकाश ही है, जिनका कोई शरीर नहीं, और जिनमें मन का आख़िरी कण भी घुल चुका है।

Chapter 91

5.91.1

श्रीराम उवाच । परमाकाशकोशाद्रिरूढलोकान्तरद्रुमम् । तारकापुष्पशबलं देवासुरविहंगमम् ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | paramākāśakośādrirūḍhalokāntaradrumam | tārakāpuṣpaśabalaṃ devāsuravihangamam || 1 ||

Sri Rama said: There is a tree grown on the mountain that holds the highest sky inside it, standing among all the worlds. Its flowers are the stars, scattered everywhere, and gods and demons are the birds living on it.

श्रीराम ने कहा: एक पेड़ है जो उस पहाड़ पर उगा है जिसमें सबसे ऊँचा आकाश समाया हुआ है, और जो सारे लोकों के बीच खड़ा है। उसके फूल तारे हैं, जो चारों ओर बिखरे हैं, और देवता और असुर उस पर रहने वाले पक्षी हैं।

5.91.2

विद्युन्मञ्जरितोपान्तनीलनीरदपल्लवम् । सर्वर्तुरम्यचन्द्रार्कगणरम्यकदन्तुरम् ॥ २ ॥

vidyunmañjaritopāntanīlanīradapallavam | sarvarturamya candrārkagaṇaramyakadanturam || 2 ||

Dark clouds are its new shoots, blossoming at its edges with flashes of lightning. It is jagged with many moons and suns, delightful through every season.

काली बदलियाँ इसकी नयी कोंपलें हैं, जो इसके किनारों पर बिजली की चमक के साथ खिलती हैं। यह कई चाँद और सूरज से दांतेदार है, जो हर मौसम में सुंदर लगता है।

5.91.3

सप्ताब्धिवापीवलितं सरिच्छतमनोहरम् । चतुर्दशविधानन्तभूतजातोपजीवितम् ॥ ३ ॥

saptābdhivāpīvalitaṃ saricchatamanoharam | caturdaśavidhānantabhūtajātopajīvitam || 3 ||

The seven oceans surround it like ponds, and hundreds of rivers make it beautiful. Endless creatures, born in all fourteen worlds, live on it.

सातों समुद्र इसके चारों ओर तालाबों जैसे हैं, और सैकड़ों नदियाँ इसे सुंदर बनाती हैं। चौदहों लोकों में जन्मे अनगिनत जीव इस पर जीते हैं।

5.91.4

जगत्काननमाक्रम्य स्थितायाः कृतजालकम् । ब्रह्मन्संसृतिमृद्वीकालताया विततात्कृतेः ॥ ४ ॥

jagatkānanamākramya sthitāyāḥ kṛtajālakam | brahmansaṃsṛtimṛdvīkālatāyā vitatākṛteḥ || 4 ||

O Brahmin, a creeper has spread over the whole forest of the world and settled there, catching it in a net. This creeper is the vine of the endless cycle of rebirth, its shape stretching out far and wide.

हे ब्राह्मण, एक बेल ने पूरी दुनिया रूपी जंगल पर फैलकर उसे जाल में जकड़ लिया है। यह बेल जन्म-मरण के अनंत चक्र की बेल है, जिसका फैलाव दूर-दूर तक है।

5.91.5

जरामरणपर्वायाः सुखदुःखफलावलेः । आरूढमूलमालाया मोहसेकजलाञ्जलेः ॥ ५ ॥

jarāmaraṇaparvāyāḥ sukhaduḥkhaphalāvaleḥ | ārūḍhamūlamālāyā mohasekajalāñjaleḥ || 5 ||

Old age and death are its joints. Pleasure and pain are the row of fruits it bears. Its roots have grown up and spread everywhere, and delusion is the water that feeds it.

बुढ़ापा और मौत इसकी गाँठें हैं। सुख और दुख इसके फलों की कतार हैं। इसकी जड़ें उठकर हर जगह फैल चुकी हैं, और मोह वह पानी है जो इसे सींचता है।

5.91.6

किं बीजमथ बीजस्य तस्य किं बीजमुच्यतेअथ तस्यापि किं बीजं बीजं तस्यापि किं भवेत् ॥ ६ ॥

kiṃ bījamatha bījasya tasya kiṃ bījamucyateatha tasyāpi kiṃ bījaṃ bījaṃ tasyāpi kiṃ bhavet || 6 ||

What is the seed of this vine? And what is called the seed of that seed? Then what is the seed of that one too? What, again, would be the seed of that?

इस बेल का बीज क्या है? और उस बीज का बीज किसे कहते हैं? फिर उस बीज का भी बीज क्या है? और उसका भी बीज फिर क्या होगा?

5.91.7

सर्वमेतत्समासेन पुनर्बोधविवृद्धयेसिद्धये ज्ञानसारस्य वद मे वदतांवर ॥ ७ ॥

sarvametatsamāsena punarbodhavivṛddhayesiddhaye jñānasārasya vada me vadatāṃvara || 7 ||

Tell me all this in brief, so that my understanding may grow again, and so that I may grasp the heart of true knowledge, O best of all speakers.

यह सब मुझे संक्षेप में बताइए, ताकि मेरी समझ फिर से बढ़े, और मैं सच्चे ज्ञान का सार पा सकूँ, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ।

5.91.8

श्रीवसिष्ठ उवाचान्तर्लीनघनारम्भशुभाशुभमहाङ्कुरम्संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरं विद्धि राघव ॥ ८ ॥

śrīvasiṣṭha uvācaantarlīnaghanārambhaśubhāśubhamahāṅkuramsaṃsṛtivrataterbījaṃ śarīraṃ viddhi rāghava || 8 ||

Sri Vasishtha said: Know this, Raghava, the body is the seed of the vine of endless rebirth. It is a great sprout, hidden deep within, packed tight at first, that grows out into everything good and bad.

श्री वसिष्ठ ने कहा: हे राघव, जान लो कि शरीर ही उस बेल का बीज है जो जन्म-मरण को जन्म देती है। यह एक बड़ा अंकुर है, जो भीतर गहरे छिपा रहता है, शुरू में कसकर बंद, और जिससे अच्छा-बुरा सब कुछ निकलता है।

5.91.9

शाखाप्रतानगहना फलपल्लवशालिनीतेनेयं भवति स्फीता शरदीव वसुन्धरा ॥ ९ ॥

śākhāpratānagahanā phalapallavaśālinīteneyaṃ bhavati sphītā śaradīva vasundharā || 9 ||

This vine, thick with spreading branches, rich with fruit and shoots, grows abundant because of that seed, the way the earth grows abundant in autumn.

यह बेल, फैली हुई शाखाओं से घनी, फलों और नयी कोंपलों से भरी हुई, उसी बीज के कारण भरपूर हो जाती है, जैसे शरद ऋतु में धरती भरपूर हो जाती है।

5.91.10

भावाभावदशाकोशं दुःखरत्नसमुद्गकम्बीजमस्य शरीरस्य चित्तमाशावशानुगम् ॥ १० ॥

bhāvābhāvadaśākośaṃ duḥkharatnasamudgakambījamasya śarīrasya cittamāśāvaśānugam || 10 ||

The seed of this body is the mind. The mind is a box that holds both being and not being. It is a small casket holding the jewel of suffering, and it follows wherever desire leads.

इस शरीर का बीज मन है। मन एक ऐसा डिब्बा है जिसमें होना और न होना दोनों समाए हैं। यह दुख रूपी रत्न को रखने वाली एक छोटी डिबिया है, और यह वहीं जाता है जहाँ इच्छा ले जाए।

5.91.11

चित्तादिदमुदेत्युच्चैः सदसच्चाङ्गजालकम्तथा चैतत्स्वयं स्वप्नसंभ्रमेष्वनुभूयते ॥ ११ ॥

cittādidamudetyuccaiḥ sadasaccāṅgajālakamtathā caitatsvayaṃ svapnasaṃbhrameṣvanubhūyate || 11 ||

From the mind surges up this whole net of things, both real and unreal. You can see this for yourself in the confusion of a dream.

मन से ही यह सब चीज़ों का जाल ज़ोर से उठ खड़ा होता है, जो सच भी है और झूठ भी। इसे तुम खुद सपने की उलझन में देख सकते हो।

5.91.12

यथा गन्धर्वसंकल्पात्पुरमेवं हि चेतसःसवातायनमाकारभासुरं जायते वपुः ॥ १२ ॥

yathā gandharvasaṃkalpātpuramevaṃ hi cetasaḥsavātāyanamākārabhāsuraṃ jāyate vapuḥ || 12 ||

Just as a city in the sky appears from pure imagination, so a body is born from the mind, complete with windows and bright in shape.

जैसे आकाश में एक नगर केवल कल्पना से प्रकट हो जाता है, वैसे ही मन से एक शरीर जन्म लेता है, खिड़कियों सहित और चमकदार रूप में।

5.91.13

यदिदं किंचिदाभोगि जागतं दृश्यतां गतम्रूपं तच्चेतसः स्फारं घटादित्वं मृदो यथा ॥ १३ ॥

yadidaṃ kiṃcidābhogi jāgataṃ dṛśyatāṃ gatamrūpaṃ taccetasaḥ sphāraṃ ghaṭāditvaṃ mṛdo yathā || 13 ||

Whatever we see in this waking world, in all its variety, is simply the mind stretched out into shape, the way a pot is nothing but clay.

इस जागती हुई दुनिया में जो कुछ भी दिखता है, अपनी पूरी विविधता में, वह मन का ही फैलाव है, जैसे घड़ा मिट्टी के सिवा कुछ नहीं है।

5.91.14

द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणःएकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना ॥ १४ ॥

dve bīje cittavṛkṣasya vṛttivratatidhāriṇaḥekaṃ prāṇaparispando dvitīyaṃ dṛḍhabhāvanā || 14 ||

The tree of the mind carries the vine of all its thoughts and activity, and this tree has two seeds. One seed is the movement of the breath. The other seed is a firm, fixed conviction.

मन का पेड़, जो अपनी सारी हलचल और विचारों की बेल को धारण करता है, उसके दो बीज हैं। एक बीज है श्वास की हलचल, और दूसरा बीज है एक दृढ़, पक्का विश्वास।

5.91.15

यदा प्रस्पन्दते प्राणो नाडीसंस्पर्शनोद्यतःतदा संवेदनमयं चित्तमाशु प्रजायते ॥ १५ ॥

yadā praspandate prāṇo nāḍīsaṃsparśanodyataḥtadā saṃvedanamayaṃ cittamāśu prajāyate || 15 ||

When the breath moves and touches the channels of the body, the mind full of feeling springs up at once.

जब श्वास हिलती है और शरीर की नाड़ियों को छूती है, तब भावों से भरा मन तुरंत जाग उठता है।

5.91.16

यदा न स्पन्दते प्राणः शिरासरणिकोटरे । असंवित्तिवशात्तेन चित्तमन्तर्न जायते ॥ १६ ॥

yadā na spandate prāṇaḥ śirāsaraṇikoṭare | asaṃvittivashātena cittamantarna jāyate || 16 ||

But when the breath stays still inside the body's channels, there is no feeling, and so the mind does not arise at all.

पर जब श्वास शरीर की नाड़ियों के भीतर स्थिर रहती है, तब कोई अनुभूति नहीं होती, इसलिए भीतर मन भी नहीं जन्मता।

5.91.17

प्राणस्पन्दनमेवेदं चित्तद्वारेण दृश्यते । जगन्नामागतं व्योम्नि नीलत्वादिवदीदृशम् ॥ १७ ॥

prāṇaspandanamevedaṃ cittadvāreṇa dṛśyate | jagannāmāgataṃ vyomni nīlatvādivadīdṛśam || 17 ||

This whole thing called the world is seen through the gateway of the mind, and it is nothing but the vibration of the breath, like the blue of the sky, or other such things.

इस सब कुछ को, जिसे संसार कहा जाता है, मन के द्वार से देखा जाता है, और यह श्वास की हलचल के सिवा कुछ नहीं है, जैसे आकाश का नीलापन, या ऐसी ही और चीज़ें।

5.91.18

प्राणस्पन्दनसुप्ता च तच्छान्तिं शान्तिरुच्यते । प्राणसंस्पन्दनात्संविद्याति वीटेव चोदिता ॥ १८ ॥

prāṇaspandanasuptā ca tacchāntiṃ śāntirucyate | prāṇasaṃspandanātsaṃvidyāti vīṭeva coditā || 18 ||

When the breath is still and consciousness rests with it, that stillness is called true peace. But when the breath stirs, consciousness sets off, like a ball that has just been struck.

जब श्वास शांत होती है और चेतना भी उसी के साथ शांत रहती है, तो उस शांति को ही असली शांति कहते हैं। पर जब श्वास हिलती है, तो चेतना भी चल पड़ती है, जैसे मारी हुई गेंद।

5.91.19

संवित्स्फुरति देहेषु प्राणस्पन्दप्रबोधिता । चक्रावर्तैरङ्गणेषु वीटेव करताडिता ॥ १९ ॥

saṃvitsphurati deheṣu prāṇaspandaprabodhitā | cakrāvartairaṅgaṇeṣu vīṭeva karatāḍitā || 19 ||

Consciousness stirs to life in bodies, woken by the movement of the breath. It spins round and round through open ground, like a ball struck by the hand.

चेतना शरीरों में जाग उठती है, श्वास की हलचल से जागकर। वह खुले मैदान में गोल-गोल घूमती है, जैसे हाथ से मारी हुई गेंद।

5.91.20

सती सर्वगता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यते । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराकारा गन्धलेखेव वायुना ॥ २० ॥

satī sarvagatā saṃvitprāṇaspandena bodhyate | sūkṣmātsūkṣmatarākārā gandhalekheva vāyunā || 20 ||

Consciousness is present everywhere, but it becomes known only through the movement of the breath. Its shape is finer than the finest thing there is, like a trace of scent carried on the wind.

चेतना हर जगह मौजूद है, पर वह श्वास की हलचल से ही जानी जाती है। उसका रूप सबसे सूक्ष्म चीज़ से भी सूक्ष्म है, जैसे हवा में बहती हुई खुशबू की लकीर।

5.91.21

संवित्संरोधने श्रेयः परमं विद्धि राघव । कारणाक्रमणं यत्र क्षोभस्तत्र न विद्यते ॥ २१ ॥

saṃvitsaṃrodhane śreyaḥ paramaṃ viddhi rāghava| kāraṇākramanaṃ yatra kṣobhas tatra na vidyate || 21 ||

Know this, Raghava, the greatest good lies in holding consciousness in check. Where the cause never stirs, no disturbance can ever arise.

हे राघव, जान लो कि सबसे बड़ा कल्याण चेतना को रोकने में है। जहाँ उसका मूल कारण कभी नहीं उठता, वहाँ कोई अशांति भी पैदा नहीं होती।

5.91.22

संवित्समुदितैवाशु याति संवेद्यमादरात्। संवेदनादनन्तानि ततो दुःखानि चेतसः ॥ २२ ॥

saṃvitsamuditaivāśu yāti saṃvedyamādarāt| saṃvedanādanantāni tato duḥkhāni cetasaḥ || 22 ||

The instant consciousness arises, it rushes eagerly toward something to sense. And from that sensing come endless sufferings for the mind.

जैसे ही चेतना जागती है, वह किसी चीज़ को महसूस करने के लिए तुरंत दौड़ पड़ती है। और उसी महसूस करने से मन के लिए अनगिनत दुख पैदा होते हैं।

5.91.23

संसुप्तान्तरबोधाय संवित्संतिष्ठते यदा। लब्धं भवति लब्धव्यं तदा तदमलं पदम्॥ २३ ॥

saṃsuptāntarabodhāya saṃvitsaṃtiṣṭhate yadā| labdhaṃ bhavati labdhavyaṃ tadā tadamalaṃ padam || 23 ||

When consciousness stops and turns instead toward the deep, sleeping awareness inside, then what is worth gaining is gained, that pure, stainless state.

जब चेतना रुक जाती है और भीतर सोई हुई गहरी जागरूकता की ओर मुड़ जाती है, तब जो पाने योग्य है वह पा लिया जाता है, वही निर्मल अवस्था है।

5.91.24

तस्मात्प्राणपरिस्पन्दैर्वासनाचोदनैस्तथा। नो चेत्संविदमुच्छूनां करोषि तदजो भवान्॥ २४ ॥

tasmātprāṇaparispandairvāsanācodanais tathā| no cet saṃvidamucchūnāṃ karōṣi tadajo bhavān || 24 ||

So then, if you do not let the vibrations of the breath and the pull of your own impressions swell up your consciousness, you become the one who is never born again.

तो फिर, यदि तुम श्वास की हलचलों और अपनी पुरानी छापों के खिंचाव से अपनी चेतना को फुला हुआ नहीं बनने दोगे, तो तुम वह बन जाओगे जो फिर कभी जन्म नहीं लेता।

5.91.25

संविदुच्छूनतां चित्तं विद्धि तेनेदमाततम्। अनर्थजालमालूनविशीर्णजनजीवकम्॥ २५ ॥

saṃviducchūnatāṃ cittaṃ viddhi tenedamātatam| anarthajālamālūnaviśīrṇajanajīvakam || 25 ||

Know that the mind is nothing but consciousness swollen up. Because of that, this whole world is stretched out, a net of misfortune in which people's lives are mown down and scattered.

जान लो कि मन चेतना की फूली हुई अवस्था के सिवा कुछ नहीं है। उसी के कारण यह सारी दुनिया फैली हुई है, विपत्तियों का एक जाल, जिसमें लोगों की ज़िंदगियाँ कटकर बिखर जाती हैं।

5.91.26

योगिनश्चित्तशान्त्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम्। प्राणायामैस्तथा ध्यानैः प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥ २६ ॥

yoginaścittashāntyarthaṃ kurvanti prāṇarodhanam | prāṇāyāmaistathā dhyānaiḥ prayogairyuktikalpitaiḥ || 26 ||

To calm the mind, yogis hold the breath in check. They do this through breath control, through meditation, and through methods worked out with careful reasoning.

मन को शांत करने के लिए योगी श्वास को रोकते हैं। वे यह प्राणायाम से, ध्यान से, और सोच-समझकर बनाई गई विधियों से करते हैं।

5.91.27

चित्तोपशान्तिफलदं परमं साम्यकारणम्। सुभगं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसरोधनं विदुः ॥ २७ ॥

cittopashāntiphalaṃdaṃ paramaṃ sāmyakāraṇam | subhagaṃ saṃvidaḥ svāsthyaṃ prāṇasarodhanaṃ viduḥ || 27 ||

They know that holding the breath in check gives the mind peace as its fruit. It is the greatest cause of calm balance, and the good health and steadiness of consciousness.

वे जानते हैं कि श्वास को रोकने से मन को शांति का फल मिलता है। यह संतुलन का सबसे बड़ा कारण है, और चेतना का भला स्वास्थ्य और स्थिरता है।

5.91.28

ज्ञानवद्भिः प्रकटितामनुभूतां च राघव। चित्तस्योत्पत्तिमपरां वासनाजीवितां शृणु ॥ २८ ॥

jñānavadbhiḥ prakaṭitāmanubhūtāṃ ca rāghava | cittasya utpattimaparāṃ vāsanājīvitāṃ śṛṇu || 28 ||

Now listen, Raghava, to another account of how the mind arises, one shown and experienced by those who truly know, an origin that lives on nothing but impression.

अब सुनो, राघव, मन के जन्म का एक और वर्णन, जिसे सच्चे ज्ञानियों ने दिखाया और अनुभव किया है, एक ऐसी उत्पत्ति जो केवल छाप पर जीती है।

5.91.29

दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम्। यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ २९ ॥

dṛḍhabhāvanayā tyaktapūrvāparavicāraṇam | yadādānaṃ padārthasya vāsanā sā prakīrtitā || 29 ||

When something is seized upon through a firm, fixed conviction, with no thought given to what came before or what follows, that grasping is called an impression.

जब किसी चीज़ को एक पक्के, दृढ़ विश्वास से पकड़ लिया जाता है, बिना यह सोचे कि उससे पहले क्या था या बाद में क्या होगा, तो उस पकड़ को ही छाप कहा जाता है।

5.91.30

भावितस्तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः। भवत्याशु महाबाहो विगतेतरसंस्मृतिः ॥ ३० ॥

bhāvitastīvrasaṃvegādātmanā yattadeva saḥ | bhavatyāśu mahābāho vigatetarasaṃsmṛtiḥ || 30 ||

Whatever a person fixes his mind on with great intensity, that very thing he quickly becomes, O mighty-armed one, with every other memory gone.

मनुष्य जिस चीज़ पर बड़ी तीव्रता से अपना मन जमा लेता है, वह जल्दी ही वही बन जाता है, हे महाबाहु, और बाकी सब कुछ भूल जाता है।

5.91.32

वासनावेगवैवश्यात्स्वरूपं प्रजहाति तत्। भ्रान्तं पश्यति दुर्दृष्टिः सर्वं मदवशादिव ॥ ३२ ॥

vāsanāvegavaivashyātsvarūpaṃ prajahāti tat | bhrāntaṃ paśyati durdṛṣṭiḥ sarvaṃ madavaśādiva || 32 ||

Overpowered by the force of its own impressions, the mind loses its true nature. A person whose sight has gone bad sees everything wrongly, as if he were drunk.

अपनी ही वासना के वेग से विवश होकर मन अपना असली रूप खो देता है। जिसकी नज़र बिगड़ चुकी है, वह हर चीज़ को गलत देखता है, जैसे कोई नशे में हो।

5.91.33

ताद्दृग्रूपः स पुरुषो वासनाविवशीकृतः । यत्पश्यति तदेतत्तत्सद्वस्त्विति विमुह्यति ॥ ३३ ॥

tādṛgrūpaḥ sa puruṣo vāsanāvivaśīkṛtaḥ | yatpaśyati tadetattatsadvastviti vimuhyati || 33 ||

A person overpowered by his own impressions takes on that same nature; whatever he sees, he falls into the delusion that it is a real thing.

अपनी ही वासना के वश में पड़ा हुआ पुरुष वैसा ही हो जाता है; वह जो कुछ भी देखता है, इसी भ्रम में पड़ जाता है कि यह एक सच्ची चीज़ है।

5.91.34

असम्यग्दर्शनं यस्मादनात्मन्यात्मभावनम् । यदवस्तुनि वस्तुत्वं तच्चित्तं विद्धि राघव ॥ ३४ ॥

asamyagdarśanaṃ yasmādanātmanyātmabhāvanam | yadavastuni vastutvaṃ taccittaṃ viddhi rāghava || 34 ||

O Raghava, know that this wrong seeing is the mind — it imagines the self in what is not the self, and it sees something real in what is not real.

हे राघव, जान लो कि यह गलत देखना ही मन है — यह जो आत्मा नहीं है उसमें आत्मा की कल्पना करता है, और जो असली नहीं है उसमें असलियत देखता है।

5.91.35

दृढाभ्यासपदार्थैकवासनादतिचञ्चलम् । चित्तं संजायते जन्मजरामरणकारणम् ॥ ३५ ॥

dṛḍhābhyāsapadārthaikavāsanādaticañcalam | cittaṃ saṃjāyate janmajarāmaraṇakāraṇam || 35 ||

From a single impression for one thing, held firm by long practice, the extremely restless mind is born — the cause of birth, old age, and death.

लंबे अभ्यास से किसी एक चीज़ के प्रति मज़बूत हुई वासना से ही यह बहुत चंचल मन पैदा होता है — और यही जन्म, बुढ़ापे और मृत्यु का कारण है।

5.91.36

यदा न वास्यते किंचिद्धेयोपादेयरूपि यत् । स्थीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते ॥ ३६ ॥

yadā na vāsyate kiñcid dheyopādeyarūpi yat | sthīyate sakalaṃ tyaktvā tadā cittaṃ na jāyate || 36 ||

When nothing that is to be rejected or taken up leaves any mark, and a person stays still, having let go of everything, then no mind is born.

जब त्यागने या ग्रहण करने योग्य कोई भी चीज़ कोई छाप नहीं छोड़ती, और मनुष्य सब कुछ छोड़कर स्थिर रहता है, तब मन पैदा ही नहीं होता।

5.91.37

अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा ॥ ३७ ॥

avāsanatvātsatataṃ yadā na manute manaḥ| amanastā tadodeti paramopaśamapradā|| 37||

When, being always free of impressions, the mind stops thinking anything at all, then the state of no mind arises, which gives supreme peace.

जब मन सदा वासना-रहित रहने के कारण कुछ भी सोचना बंद कर देता है, तब मन-रहित अवस्था उदय होती है, जो परम शांति देती है।

5.91.38

यदा किंचिन्न संवित्तौ स्फुरत्यभ्रमिवाम्बरे । तदा पद्म इवाकाशे चित्तमन्तर्न जायते ॥ ३८ ॥

yadā kiñcinnna saṃvittau sphuratyabhramivāmbare| tadā padma ivākāśe cittamantarnna jāyate|| 38||

When nothing at all rises up in awareness, as no cloud appears in a clear sky, then, like a lotus growing in the sky, no mind is born within.

जब जागरूकता में कुछ भी नहीं उठता, जैसे साफ आकाश में कोई बादल नहीं उठता, तब भीतर मन पैदा ही नहीं होता — जैसे आकाश में कमल का खिलना असंभव है।

5.91.39

यदा न भाव्यते भावः क्वचिज्जगति वस्तुनि । तदा हृदम्बरे शून्ये कथं चित्तं प्रजायते ॥ ३९ ॥

yadā na bhāvyate bhāvaḥ kvacijjagati vastuni| tadā hṛdambare śūnye kathaṃ cittaṃ prajāyate|| 39||

When no notion is formed about anything at all in the world, then, in the empty sky of the heart, how can any mind be born?

जब संसार की किसी भी चीज़ के बारे में कोई भाव नहीं बनता, तब हृदय के उस खाली आकाश में मन कैसे पैदा हो सकता है?

5.91.40

एतावन्मात्रकं मन्ये रूपं चित्तस्य राघव । यद्भावनं वस्तुनोऽन्तर्वस्तुत्वेन रसेन च ॥ ४० ॥

etāvanmātrakaṃ manye rūpaṃ cittasya rāghava| yadbhāvanaṃ vastuno'ntarvastutvena rasena ca|| 40||

O Raghava, I hold that the nature of the mind is just this much: the inward imagining of a thing as real, done with relish.

हे राघव, मैं मानता हूँ कि मन का स्वरूप बस इतना ही है — किसी चीज़ को भीतर ही भीतर सच मानकर और उसका रस लेकर की गई कल्पना।

5.91.41

न किंचित्कल्पनायोग्यं दृश्यं भावयतस्ततः । आकाशकोशस्वच्छस्य कुतश्चित्तोदयो भवेत् ॥ ४१ ॥

na kiñcitkalpanāyogyaṃ dṛśyaṃ bhāvayatastataḥ| ākāśakośasvacchasya kutaścittodayo bhavet|| 41||

For one who then imagines no visible thing at all worth imagining, whose inner being is as clear as space, from where could a mind ever arise?

जो फिर किसी भी दिखने वाली चीज़ की कल्पना करने लायक कुछ भी नहीं मानता, और जिसका भीतरी आकाश जैसा निर्मल हो गया है, उसमें मन कहाँ से पैदा होगा?

5.91.42

यदभावनमास्थाय यदभावस्य भावनम् । यद्यथावस्तुदर्शित्वं तदचित्तत्वमुच्यते ॥ ४२ ॥

yadabhāvanamāsthāya yadabhāvasya bhāvanam | yadyathāvastudarśitvaṃ tadacittatvamucyate || 42 ||

Resting in the absence of imagining, taking the very absence of things as one's object, and seeing things exactly as they are — this is called the state of no mind.

किसी कल्पना का सहारा न लेना, चीज़ों के न होने को ही जानना, और चीज़ों को जैसी वे हैं वैसा ही देखना — इसी को मन-रहित अवस्था कहा जाता है।

5.91.43

सर्वमन्तः परित्यज्य शीतलाशयवर्ति यत् । वृत्तिस्थमपि तच्चित्तमसद्रूपमुदाहृतम् ॥ ४३ ॥

sarvamantaḥ parityajya śītalāśayavarti yat | vṛttisthamapi taccittamasadrūpamudāhṛtam || 43 ||

The mind that, having given up everything within, rests in a cool, quiet place — even though it still exists as an activity, that mind is declared to have no real existence.

जो मन भीतर से सब कुछ छोड़कर एक शांत, ठंडी जगह में टिका रहता है — भले ही वह एक हलचल के रूप में बना रहे — उस मन को असल में न होने वाला ही कहा गया है।

5.91.44

वासनाया रसाध्यानाद्रागो यस्य न विद्यते । तस्य चित्तमचित्तत्वं गतं सत्त्वं तदुच्यते ॥ ४४ ॥

vāsanāyā rasādhyānādrāgo yasya na vidyate | tasya cittamacittatvaṃ gataṃ sattvaṃ taducyate || 44 ||

One in whom no attachment arises even from dwelling on the pleasure of an impression — his mind, having reached the state of no mind, is called pure being.

जिस व्यक्ति में वासना के रस पर मनन करने से भी कोई राग पैदा नहीं होता — उसका मन, मन-रहित होकर, शुद्ध भाव कहलाता है।

5.91.45

घना न वासना यस्य पुनर्जननकारिणी । जीवन्मुक्तः स सत्त्वस्थश्चक्रभ्रमवदास्थितः ॥ ४५ ॥

ghanā na vāsanā yasya punarjananakāriṇī | jīvanmuktaḥ sa sattvasthaścakrabhramavadāsthitaḥ || 45 ||

He whose impressions that cause rebirth are no longer thick — he is liberated while living, resting in pure being, carrying on like a wheel still turning from its own old momentum.

जिसकी पुनर्जन्म कराने वाली वासनाएँ अब घनी नहीं रहीं — वह जीते-जी मुक्त है, शुद्ध भाव में टिका है, और वैसे ही चलता रहता है जैसे पहिया अपनी पुरानी गति से घूमता रहता है।

5.91.46

भृष्टबीजोपमा येषां पुनर्जननवर्जिता । वासनारसनिर्हीना जीवन्मुक्ता हि ते स्थिताः ॥ ४६ ॥

bhṛṣṭabījopamā yeṣāṃ punarjananavarjitā | vāsanārasanirhīnā jīvanmuktā hi te sthitāḥ || 46 ||

Those whose impressions are like roasted seeds, empty of the power to sprout again into birth, without even the relish of an impression left in them — they indeed stand as liberated while living.

जिनकी वासनाएँ भुने हुए बीज जैसी हो गई हैं, जो फिर से जन्म देने की ताक़त खो चुकी हैं, और जिनमें वासना का रस भी नहीं बचा — वे ही सचमुच जीते-जी मुक्त कहलाते हैं।

5.91.47

सत्त्वरूपपरिप्राप्तचित्तास्ते ज्ञानपारगाः । अचित्ता इति कथ्यन्ते देहान्ते व्योमरूपिणः ॥ ४७ ॥

sattvarūpaparipāptacittāste jñānapāragāḥ | acittā iti kathyante dehānte vyomarūpiṇaḥ || 47 ||

They whose minds have fully reached the nature of pure being, who have gone all the way to the end of knowledge — they are called the mindless ones, and when the body ends, they take on the nature of space.

जिनका मन शुद्ध भाव को पूरी तरह पा चुका है, जो ज्ञान की आख़िरी सीमा तक पहुँच गए हैं — वे ही 'मन-रहित' कहलाते हैं, और शरीर छूटने पर वे आकाश जैसे हो जाते हैं।

5.91.48

द्वे बीजे राम चित्तस्य प्राणस्पन्दनवासने । एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ॥ ४८ ॥

dve bīje rāma cittasya prāṇaspandanavāsane | ekasmiṃśca tayoḥ kṣīṇe kṣipraṃ dve api naśyataḥ || 48 ||

O Rama, the mind has two seeds: the throb of the breath and the impression. When either one of the two fades away, both perish quickly.

हे राम, मन के दो बीज हैं — प्राण का स्पंदन और वासना। इन दोनों में से जब एक भी क्षीण होता है, तो दोनों जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं।

5.91.49

मिथः कारणमेते हि बीजे जन्मनि चेतसः । जलाङ्गीकरणे राम जलाशयघटाविव ॥ ४९ ॥

mithaḥ kāraṇamete hi bīje janmani cetasaḥ | jalāṅgīkaraṇe rāma jalāśayaghaṭāviva || 49 ||

O Rama, these two seeds are indeed the cause of each other in the birth of the mind, like a lake and a pot, in the matter of holding water.

हे राम, ये दोनों बीज मन के जन्म में एक-दूसरे के कारण हैं — जैसे झील और घड़ा जल को धारण करने के मामले में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं।

5.91.50

घना न वासना यस्य पुनर्जननकारिणी । बीजाङ्कुरवदेते हि संस्थिते तिलतैलवत् ॥ ५० ॥

ghanā na vāsanā yasya punarjananakāriṇī | bījāṅkuravadete hi saṃsthite tilatailavat || 50 ||

For one whose impressions that cause rebirth are no longer thick, these two stand joined like seed and sprout, like the sesame seed and its oil.

जिसकी पुनर्जन्म कराने वाली वासना अब घनी नहीं रही, उसमें ये दोनों बीज और अंकुर की तरह, या तिल और तेल की तरह, जुड़े रहते हैं।

5.91.51

अविनाभाविनी नित्यं कालाकाङ्क्षिक्रमे तथा । सर्वमुत्पादयत्येतच्चित्तकः संविदात्मकः ॥ ५१ ॥

avinābhāvinī nityaṃ kālākāṅkṣikrame tathā | sarvamutpādayatyetaccittakaḥ saṃvidātmakaḥ || 51 ||

Ever inseparable from each other, and unfolding gradually in time, this pair produces everything — this is what is called the mind, whose very nature is awareness.

एक-दूसरे से सदा जुड़े रहते हुए, और समय के साथ धीरे-धीरे प्रकट होते हुए, यह जोड़ी ही सब कुछ पैदा करती है — यही वह चीज़ है जिसे मन कहा जाता है, जिसका स्वभाव चेतना है।

5.91.52

यथाप्राणेन्द्रियानन्दमानन्दपवनावुभौ । चित्तस्योत्पादिके सार्धं यदैते वासने तदा ॥ ५२ ॥

yathāprāṇendriyānandamānandapavanāvubhau | cittasyotpādike sārdhaṃ yadaite vāsane tadā || 52 ||

Just as the breath and the pleasure of the senses, and joy together with the breath, are both producers of the mind, so it is when these two turn into impressions.

जैसे प्राण और इंद्रियों का सुख, और आनंद तथा प्राण मिलकर, दोनों ही मन को पैदा करते हैं, वैसे ही जब ये दोनों वासना का रूप ले लेते हैं।

5.91.53

आमोदपुष्पवत्तैलतिलवच्च व्यवस्थिते । वासनावशतः प्राणस्पन्दस्तेन च वासना ॥ ५३ ॥

āmodapuṣpavattailatilavacca vyavasthite | vāsanāvaśataḥ prāṇaspandastena ca vāsanā || 53 ||

The two being set in place like fragrance in a flower, like oil in a sesame seed — from the force of the impression comes the throb of the breath, and from that throb comes the impression in turn.

ये दोनों वैसे ही बसे रहते हैं जैसे फूल में खुशबू, या तिल में तेल — वासना के वेग से प्राण का स्पंदन होता है, और उस स्पंदन से फिर वासना बनती है।

5.91.54

जायते चित्तबीजस्य तेन बीजाङ्कुरक्रमः । वासनोत्प्लवमानत्वात्संवित्प्रक्षोभकर्मणा ॥ ५४ ॥

jāyate cittabījasya tena bījāṅkurakramaḥ | vāsanotplavamānatvātsaṃvitprakṣobhakarmaṇā || 54 ||

In this way the seed-and-sprout process of the mind's seed comes about, because the impression keeps surging up, through the stirring up of awareness.

इस तरह मन के बीज की बीज-अंकुर वाली प्रक्रिया चलती रहती है, क्योंकि वासना बार-बार उभरती रहती है, और यह चेतना को हिला देने से होता है।

5.91.56

एवं हि वासनाप्राणस्पन्दौ द्वौ तस्य कारणम् ॥ ५६ ॥

evaṃ hi vāsanāprāṇaspandau dvau tasya kāraṇam || 56 ||

Thus indeed, the impression and the throb of the breath, these two, are the cause of the mind.

इस तरह वासना और प्राण का स्पंदन — ये दोनों ही मन के कारण हैं।

5.91.57

तयोरेकक्षये नाशो द्वयोश्चित्तस्य राघव । सुखदुःखमनःस्पन्द शारीरकवृहत्फलम् ॥ ५७ ॥

tayorekakṣaye nāśo dvayościttasya rāghava | sukhaduḥkhamanḥspanda śārīrakavṛhatphalam || 57 ||

O Raghava, when one of the two is destroyed, both are destroyed, and with them the mind — its throb as pleasure and pain, and the great result bound up with the body.

हे राघव, जब इन दोनों में से एक भी नष्ट होता है, तो दोनों नष्ट हो जाते हैं, और उसके साथ मन भी — सुख-दुःख के रूप में मन का स्पंदन, और शरीर से जुड़ा वह बड़ा फल भी नष्ट हो जाता है।

5.91.58

कार्यपल्लविताकारं कृतिव्रततिवेष्टितम् । तृष्णाकृष्णाहिवलितं रागरोगबकालयम् ॥ ५८ ॥

kāryapallavitākāraṃ kṛtivratativēṣṭitam | tṛṣṇākṛṣṇāhivalitaṃ rāgarogabakālayam || 58 ||

It is a shape sprung up from action. It is bound round by the creeper of deeds. It is coiled by the black snake of craving. It is the home of the crane that is the disease of attachment.

यह कर्मों से उगा हुआ एक रूप है। यह कर्मों की बेल से बँधा हुआ है। यह तृष्णा रूपी काले साँप से लिपटा हुआ है। यह आसक्ति के रोग रूपी बगुले का घर है।

5.91.59

प्राणस्पन्दं बोधयति तेन चित्तं प्रजायते । प्राणः स्पन्दनधर्मित्वात्स्पन्दते स्पृष्टहृद्गुणः ॥ ५९ ॥

prāṇaspandaṃ bodhayati tena cittaṃ prajāyate | prāṇaḥ spandanadharmitvātspandate spṛṣṭahṛdguṇaḥ || 59 ||

The impression rouses the throb of the breath, and from that the mind is born. Because the breath is vibrating by its very nature, it throbs, touching the heart with its quality.

वासना प्राण के स्पंदन को जगाती है, और उससे मन पैदा होता है। प्राण अपने स्वभाव से ही स्पंदनशील है, इसलिए वह स्पंदित होता है और अपने गुण से हृदय को छू लेता है।

5.91.60

प्रपातयति वातौघः कालपक्वफलं यथा । पाण्डुरीकृतसर्वाशं स्थगिताखिलदर्शनम् ॥ ६० ॥

prapātayati vātaughaḥ kālapakvaphalaṃ yathā | pāṇḍurīkṛtasarvāśaṃ sthagitākhiladarśanam || 60 ||

A gust of wind brings it down, just as it brings down a fruit ripened by time. It has turned every hope pale. It has shut out all sight.

जैसे हवा का तेज़ झोंका समय से पके फल को गिरा देता है, वैसे ही यह उसे भी गिरा देता है। इसने हर आशा को फीका कर दिया है। इसने हर दृष्टि को रोक दिया है।

5.91.61

विलोलजलदाकारमज्ञानावकरोत्थितम् । तृष्णातृणलवव्याप्तं स्तम्भाकृति शरीरकम् ॥ ६१ ॥

vilolajaladākāram ajñānāvakarotthitam | tṛṣṇātṛṇalavavyāptaṃ stambhākṛti śarīrakam || 61 ||

This little body is shaped like a restless, drifting cloud. It has sprung up from the rubbish heap of ignorance. It is covered with the grass of craving. It is shaped like a post.

यह छोटा-सा शरीर एक अस्थिर, बहते हुए बादल जैसा है। यह अज्ञान के कूड़े के ढेर से उगा है। यह तृष्णा की घास से ढका हुआ है। यह एक खंभे जैसी आकृति का है।

5.91.62

स्फुरत्तनु तनुक्षुब्धं सुखमुत्प्लवनं प्रति । अन्तःस्थितमहालोकमपश्यत्प्रविलीयते ॥ ६२ ॥

sphurattanu tanukṣubdhaṃ sukhamutplavanaṃ prati | antaḥsthitamahālokamapaśyatpravilīyate || 62 ||

With a quivering body, faintly stirred by a rush of pleasure, and not seeing the great world within, it melts away.

काँपते हुए शरीर के साथ, सुख की एक हलकी लहर से हिलता हुआ, और भीतर के उस बड़े लोक को न देख पाने के कारण, यह गलकर मिट जाता है।

5.91.63

पवनस्पन्दरोधाच्च राम चित्तरजः क्षणात् । वासनाप्राणपवनस्पन्दयोरनयोर्द्वयोः ॥ ६३ ॥

pavanaspaṃdarodhācca rāma cittarajaḥ kṣaṇāt| vāsanāprāṇapavanaspaṃdayoranayordvayoḥ || 63 ||

And Rama, when the throb of the breath is checked, the dust on the mind disappears in an instant. Of these two, the tendency and the throb of the life breath,

और हे राम, जब सांस की धड़कन रुक जाती है, तो मन की धूल एक पल में मिट जाती है। इन दो चीज़ों की, यानी वासना की और प्राण की धड़कन की,

5.91.64

संवेद्यं बीजमित्युक्तं स्फुरतस्तौ यतस्ततः । हृदि संवेद्यमाप्यैव प्राणस्पन्दोऽथ वासना ॥ ६४ ॥

saṃvedyaṃ bījamityuktam sphuratastau yatastataḥ| hṛdi saṃvedyamāpyaiva prāṇaspaṃdo'tha vāsanā || 64 ||

the thing that is known is said to be their seed, since it is from that alone that the two of them keep springing up, wherever they arise. On reaching the known thing within the heart, the throb of the life breath and the tendency spring up.

जो चीज़ जानी जाती है, उसे इनका बीज कहा गया है, क्योंकि यही दोनों को हर जगह पैदा करती है। हृदय में जानी हुई चीज़ को पाकर ही प्राण की धड़कन और वासना जागती है।

5.91.65

उदेति तस्मात्संवेद्यं कथितं बीजमेतयोः। संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पन्दनवासने ॥ ६५ ॥

udeti tasmātsaṃvedyaṃ kathitaṃ bījametayoḥ| saṃvedyasaṃparityāgātprāṇaspaṃdanavāsane || 65 ||

It rises from that alone. The known thing is declared to be the seed of these two. Once the known thing is completely given up, the throb of the life breath and the tendency,

यह उसी से उठती है। जानी हुई चीज़ को ही इन दोनों का बीज बताया गया है। जानी हुई चीज़ को पूरी तरह छोड़ देने पर, प्राण की धड़कन और वासना,

5.91.66

समूलं नश्यतः क्षिप्रं मूलच्छेदादिव द्रुमः। संविदं विद्धि संवेद्यं बीजं धीरतया विना ॥ ६६ ॥

samūlaṃ naśyataḥ kṣipraṃ mūlacchedādiva drumāḥ| saṃvidaṃ viddhi saṃvedyaṃ bījaṃ dhīratayā vinā || 66 ||

both die out completely and at once, the way a tree dies when its root is cut. Know that awareness itself, when it has no steadiness, becomes the seed called the known thing.

दोनों जड़ से तुरंत मिट जाती हैं, जैसे जड़ कट जाने पर पेड़ मिट जाता है। जान लो कि चेतना खुद, जब उसमें स्थिरता नहीं होती, तो जानी हुई चीज़ नाम का बीज बन जाती है।

5.91.67

न बहिर्नान्तरे किंचित्संवेद्यं विद्यते पृथक्। न संभवति संवेद्यं तैलहीनस्तिलो यथा ॥ ६७ ॥

na bahirnāntare kiṃcit saṃvedyaṃ vidyate pṛthak| na saṃbhavati saṃvedyaṃ tailahīnastilo yathā || 67 ||

Nothing that is known exists apart, neither outside nor inside. The known thing cannot exist on its own, just as sesame cannot exist without its oil.

जो जाना जाता है, वह न बाहर अलग से है, न भीतर अलग से है। जानी हुई चीज़ अपने आप नहीं हो सकती, जैसे तिल बिना तेल के तिल नहीं हो सकता।

5.91.68

संवित्स्फुरन्ती संकल्पात्संवेद्यं पश्यति स्वतः। स्वप्ने यथात्ममरणं तथा देशान्तरस्थितिः ॥ ६८ ॥

saṃvitsphurantī saṃkalpātsaṃvedyaṃ paśyati svataḥ | svapne yathātmamaraṇaṃ tathā deśāntarasthitiḥ || 68 ||

Awareness, stirring through imagination, sees on its own the thing it knows, the way one sees one's own death in a dream, or finds oneself standing in some far off place.

चेतना, कल्पना के सहारे हिलती हुई, खुद ही उस चीज़ को देखती है जिसे वह जानती है, जैसे सपने में आदमी अपनी ही मौत देखता है, या खुद को किसी दूर की जगह में खड़ा पाता है।

5.91.69

स्वचमत्कारयोगेन संवेद्यं संविदस्तथा। स्ववेदनं स्वसंकल्पात्संविदो यत्र वर्तते ॥ ६९ ॥

svacamatkārayogena saṃvedyaṃ saṃvidas tathā | svavedanaṃ svasaṃkalpāt saṃvido yatra vartate || 69 ||

In the same way, through its own wonder, awareness brings about the thing it knows. Awareness experiences itself out of its own imagining, in whatever place it settles.

उसी तरह, अपने ही चमत्कार से, चेतना उस चीज़ को पैदा करती है जिसे वह जानती है। चेतना अपनी ही कल्पना से खुद को महसूस करती है, जहां भी वह टिकती है।

5.91.70

जगज्जालमतो भाति तदिदं रघुनन्दन । यथा बालस्य वेतालः स्वसंकल्पोद्भवाद्भवेत् ॥ ७० ॥

jagajjālamato bhāti tadidaṃ raghunandana | yathā bālasya vetālaḥ svasaṃkalpodbhavādbhavet || 70 ||

So this net of the world shines out from that, Rama, the way a ghost appears to a child, born from the child's own imagining.

इसी से यह संसार का जाल चमक उठता है, हे राम, जैसे किसी बच्चे को भूत दिखाई देता है, जो उसकी अपनी ही कल्पना से पैदा होता है।

5.91.71

पुरुषत्वं यथा स्थाणोः संवेद्यं संविदस्तथा । यथा चन्द्रार्करश्मीनां दण्डता रेणुता तथा ॥ ७१ ॥

puruṣatvaṃ yathā sthāṇoḥ saṃvedyaṃ saṃvidas tathā | yathā candrārkarashmīnāṃ daṇḍatā reṇutā tathā || 71 ||

The way a post seems to be a man, so is the thing known by awareness. The way the light of the sun and moon can look like a straight rod, or like fine dust, so it is.

जैसे खंभा आदमी जैसा दिखने लगता है, वैसे ही चेतना का जाना हुआ विषय है। जैसे सूरज और चांद की किरणें किसी सीधी छड़ी जैसी या महीन धूल जैसी दिखने लगती हैं, वैसे ही यह है।

5.91.72

यथा नौस्थाचलस्पन्दः संवेद्यं संविदस्तथा । एतन्मिथ्या हि दुर्ज्ञानं सम्यग्ज्ञानाद्विलीयते ॥ ७२ ॥

yathā nausthācalaspandaḥ saṃvedyaṃ saṃvidas tathā | etanmithyā hi durjñānaṃ samyagjñānād vilīyate || 72 ||

The way, to someone sitting in a boat, the still bank seems to move, so is the thing known by awareness. This false, wrongly known thing dissolves through right knowledge.

जैसे नाव में बैठे आदमी को स्थिर किनारा हिलता हुआ दिखाई देता है, वैसे ही चेतना का जाना हुआ विषय है। यह झूठी, गलत समझी हुई चीज़ सही ज्ञान से मिट जाती है।

5.91.73

रज्ज्वामिव भुजङ्गत्वं द्वीन्दुत्वं स्वीक्षितादिवशुद्धैव संवित्तिजगत्सवेद्यं नान्यदस्त्यलम् ॥ ७३ ॥

rajjvāmiva bhujaṅgatvaṃ dvīndutvaṃ svīkṣitādivaśuddhaiva saṃvittrijagatsavedyaṃ nānyadastyalam || 73 ||

The way a rope seems to be a snake, the way one's own faulty sight shows two moons, so, only unclear awareness turns the three worlds into something known. There is nothing else at all.

जैसे रस्सी सांप जैसी दिखने लगती है, जैसे अपनी ही खराब नज़र से दो चांद दिखाई देने लगते हैं, वैसे ही केवल अस्पष्ट चेतना तीनों लोकों को जानी हुई चीज़ बना देती है। इसके सिवा और कुछ भी नहीं है।

5.91.74

इत्यन्तर्निश्चयो रूढः सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाःपूर्वं दृष्टमदृष्टं वा यदस्याः प्रतिभासते ॥ ७४ ॥

ityantarniścayo rūḍhaḥ samyagjñānaṃ vidurbudhāḥpūrvaṃ dṛṣṭamadṛṣṭaṃ vā yadasyāḥ pratibhāsate || 74 ||

When this inner certainty becomes firmly settled, the wise call it right knowledge, no matter whether what then appears of this awareness was seen before or never seen.

जब यह भीतरी निश्चय पूरी तरह जम जाता है, तो बुद्धिमान लोग इसे सही ज्ञान कहते हैं, चाहे इस चेतना में जो कुछ भी दिखे वह पहले देखा हुआ हो या कभी न देखा हुआ हो।

5.91.75

संविदस्तत्प्रयत्नेन मार्जनीयं विजानतातदमार्जनमात्रं हि महासंसारसंगतम् ॥ ७५ ॥

saṃvidastatprayatnena mārjanīyaṃ vijānatātadamārjanamātraṃ hi mahāsaṃsārasaṃgatam || 75 ||

One who understands should cleanse awareness of this through effort. Merely failing to cleanse it is exactly what binds one to the great round of rebirth.

जो समझता है उसे मेहनत से चेतना को इस मैल से साफ करना चाहिए। इसे साफ न करना ही महान संसार से बंधे रहने का कारण है।

5.91.76

तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यनुभूयतेसंवेदनमनन्ताय दुःखाय जननात्मने ॥ ७६ ॥

tatpramārjanamātraṃ tu mokṣa ityanubhūyatesaṃvedanamanantāya duḥkhāya jananātmane || 76 ||

But merely cleansing it away is what is felt as liberation itself. Awareness of things leads only to endless suffering, the very nature of being born again.

पर उसे साफ कर देना ही मुक्ति के रूप में महसूस होता है। चीज़ों की जानकारी केवल अंतहीन दुख की ओर ले जाती है, जो बार बार जन्म लेने का ही स्वभाव है।

5.91.77

असंवित्तिरजाड्यस्था सुखायाजननात्मनेअजडो गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदनो भवासंवेद्यप्रबुद्धात्मा यस्तु स त्वं रघूद्वह ॥ ७७ ॥

asaṃvittirajāḍyasthā sukhāyājananātmaneajaḍo galitānandastyaktasaṃvedano
bhavaasaṃvedyaprabuddhātmā yastu sa tvaṃ raghūdvaha || 77 ||

A not knowing that is not dullness brings happiness and freedom from rebirth. Become one who is not dull, whose bliss flows freely, who has let go of the awareness of things. The one whose awakened self is not known through things, that is you, Rama.

जो न जानना जड़ता नहीं है, वह सुख और जन्म से मुक्ति देता है। वैसे बनो जो जड़ नहीं है, जिसका आनंद खुल कर बहता है, जिसने चीज़ों की जानकारी छोड़ दी है। जिसकी जगी हुई आत्मा चीज़ों के जानने से नहीं जानी जाती, वह तुम ही हो, हे राम।

5.91.78

श्रीराम उवाच । अजडश्चाप्यसंवित्तिः कीदृशो भवति प्रभो । असंवित्तौ च जाड्यं तत्कथं वा विनिवर्तते ॥ ७८ ॥

śrīrāma uvāca | ajaḍaścāpyasaṃvittiḥ kīdṛśo bhavati prabho | asaṃvittau ca jāḍyaṃ tatkathaṃ vā vinivartate || 78 ||

Sri Rama said: Lord, how can there be a not knowing that is also not dull? And in that not knowing, how does dullness go away?

श्रीराम ने कहा: हे प्रभु, ऐसा न जानना जो जड़ता भी न हो, कैसे हो सकता है? और उस न जानने में जड़ता आखिर कैसे दूर होती है?

5.91.79

श्रीवसिष्ठ उवाच । यः सर्वत्रानवस्थास्थो विश्रान्तास्थो न कुत्रचित् । जीवो न विन्दते किंचिदसंविदजडो हि सः ॥ ७९ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | yaḥ sarvatrānavasthāstho viśrāntāstho na kutracit | jīvo na vindate kiṃcidasaṃvidajaḍo hi saḥ || 79 ||

Sri Vasishtha said: The person who has no fixed place anywhere and rests nowhere at all grasps nothing. He is the one who is without the awareness of things, yet is not dull.

श्रीवसिष्ठ ने कहा: जिस आदमी की कहीं कोई तय जगह नहीं है और जो कहीं भी टिक कर नहीं रहता, वह कुछ भी नहीं पकड़ता। वही है जो चीज़ों को जानने से मुक्त है, फिर भी जड़ नहीं है।

5.91.80

संविद्वस्तुदृशालम्बः स यस्येह न विद्यते । सोऽसंविदजडः प्रोक्तः कुर्वन्कार्यशतान्यपि ॥ ८० ॥

saṃvidvastudṛśālambo sa yasyeha na vidyate | so'saṃvidajaḍaḥ proktaḥ kurvankāryaśatānyapi || 80 ||

He who here has nothing to hold on to in seeing awareness as a thing, he is called one without the awareness of things yet not dull, even while he does hundreds of tasks.

जिसके पास चेतना को कोई चीज़ मानकर पकड़े रहने का यहां कुछ भी सहारा नहीं है, उसे कहा जाता है कि वह चीज़ों की जानकारी से मुक्त है फिर भी जड़ नहीं है, चाहे वह सैकड़ों काम ही क्यों न करे।

5.91.81

संवेद्येन हृदाकाशो मनागपि न लिप्यते । यस्यासावजडा संविज्जीवन्मुक्तश्च कथ्यते ॥ ८१ ॥

saṃvedyena hṛdākāśo manāgapi na lipyate | yasyāsāvajaḍā saṃvijjīvanmuktaśca kathyate || 81 ||

He whose heart space is not touched even a little by the things he perceives, his awareness, free of dullness, is what we call liberated while still alive.

जिसका हृदय आकाश उसके देखे हुए चीज़ों से ज़रा भी नहीं छूता, जड़ता से मुक्त उसकी वह चेतना ही जीते जी मुक्त कहलाती है।

5.91.82

यदा न भाव्यते किंचिन्निर्वासनतयात्मनि । बालमूकादिविज्ञानमिव च स्थीयते स्थिरम् ॥ ८२ ॥

yadā na bhāvyate kiṃcin nirvāsanatayātmani | bālamūkādivijñānamiva ca sthīyate sthiram || 82 ||

When, being free of the tendency, nothing at all is any longer imagined within the self, and one remains as steady as the bare awareness of a baby or a mute person,

जब वासना से मुक्त होने के कारण मन में कुछ भी नहीं गढ़ा जाता, और आदमी एक बच्चे या गूंगे की सीधी सी समझ जितना स्थिर रहता है,

5.91.83

तदा जाड्यविनिर्मुक्तमच्छवेदनमाततम् । आश्रितं भवति प्राज्ञो यस्माद्भूयो न लिप्यते ॥ ८३ ॥

tadā jāḍyavinirmuktamacchavedanamātatam | āśritaṃ bhavati prājño yasmādbhūyo na lipyate || 83 ||

then the wise person rests in a clear, spread out awareness free of dullness, and from then on he is never tainted again.

तब बुद्धिमान आदमी एक साफ, फैली हुई, जड़ता से मुक्त चेतना में टिक जाता है, और उसके बाद वह फिर कभी दागी नहीं होता।

5.91.84

समस्तवासनात्यागी निर्विकल्पसमाधितः । नीलत्वमिव खात्स्फार आनन्दः संप्रवर्तते ॥ ८४ ॥

samastavāsanātyāgī nirvikalpasamādhitaḥ | nīlatvamiva khātsphāra ānandaḥ saṃpravartate || 84 ||

For one who has given up every tendency, through concentration free of thought, a vast bliss arises on its own, the way blueness seems to spread from the sky.

जिसने हर वासना छोड़ दी है, उसके लिए बिना किसी विचार वाली गहरी एकाग्रता से एक विशाल आनंद अपने आप उठता है, जैसे आकाश से नीलापन फैलता हुआ दिखाई देता है।

5.91.85

योगिनस्तत्र तिष्ठन्ति संवेदनमसंविदः । तन्मयत्वादनाद्यन्तं तदप्यन्तर्विलीयते ॥ ८५ ॥

yoginastatra tiṣṭhanti saṃvedanamasanvidaḥ | tanmayatvādanādyantaṃ tadapyantarvilīyate || 85 ||

Yogis remain fixed there, beyond the awareness that ordinary knowing has of things. Through their oneness with that which has no beginning and no end, even that bliss dissolves within.

योगी वहां टिके रहते हैं, साधारण जानकारी की उस पकड़ से परे जो चीज़ों के बारे में होती है। जिसका न आदि है न अंत, उसके साथ एक हो जाने से, वह आनंद भी भीतर ही घुल जाता है।

5.91.86

गच्छंस्तिष्ठन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपि तेन स उच्यते । अजडो गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदनः सुखी ॥ ८६ ॥

gacchaṃstiṣṭhanspṛśañjighrannapi tena sa ucyate | ajaḍo galitānandastyaktasaṃvedanaḥ sukhī || 86 ||

Even while he walks, stands, touches or smells things, for that very reason he is called: not dull, one whose bliss flows freely, one who has let go of the awareness of things, and happy.

चलते, खड़े होते, छूते या सूंघते हुए भी, इसी वजह से उसे कहा जाता है: न जड़, जिसका आनंद खुल कर बहता है, जिसने चीज़ों की जानकारी छोड़ दी है, और सुखी।

5.91.87

एतां दृष्टिमवष्टभ्य कष्टया यत्नचेष्टया । तर दुःखाम्बुधेः पारमपारगुणसागर ॥ ८७ ॥

etāṃ dṛṣṭimavaṣṭabhya kaṣṭayā yatnaceṣṭayā | tara duḥkhāmbudheḥ pāramapāraguṇasāgara || 87 ||

Hold on to this way of seeing, through hard and steady effort, and cross to the far shore of the ocean of suffering, Rama, boundless ocean of good qualities.

इस देखने के तरीके को कठिन और लगातार मेहनत से थामे रहो, और दुख के सागर के उस पार पहुंच जाओ, हे राम, हे गुणों के अथाह सागर।

5.91.88

यथा बीजाद्बृहद्वृक्षो व्योम व्याप्नोति कालतः । तथैवेदं स्वसंकल्पात्संवेद्यमसदुत्थितम् ॥ ८८ ॥

yathā bījādbṛhadvṛkṣo vyoma vyāpnoti kālataḥ | tathaivedaṃ svasaṃkalpātsaṃvedyamasadutthitam || 88 ||

Just as a huge tree grows from a seed and in time comes to fill the sky, so too this world we perceive, though unreal, has risen out of one's own imagining.

जैसे एक बीज से बड़ा पेड़ उगता है और समय के साथ आकाश तक फैल जाता है, वैसे ही यह दिखने वाला संसार, झूठा होते हुए भी, अपनी ही कल्पना से उठ खड़ा हुआ है।

5.91.89

यदा संकल्प्य संकल्प्य संवित्स्वं विन्दते वपुः । तदास्य जन्मजालस्य सैव गच्छति बीजताम् ॥ ८९ ॥

yadā saṃkalpya saṃkalpya saṃvitsvaṃ vindate vapuḥ | tadāsya janmajālasya saiva gacchati bījatām || 89 ||

When awareness, by imagining again and again, comes to have a body of its own, that same awareness becomes the seed of this whole net of births.

जब चेतना बार बार कल्पना करते करते अपना एक शरीर पा लेती है, तब वही चेतना जन्मों के इस पूरे जाल का बीज बन जाती है।

5.91.90

जनयित्वात्मनात्मानं मोहयित्वा पुनःपुनः । स्वयं मोक्षं नयत्यन्तः संवित्स्वं विद्धि राघव ॥ ९० ॥

janayitvātmanātmānaṃ mohayitvā punaḥpunaḥ | svayaṃ mokṣaṃ nayatyantaḥ saṃvitsvaṃ viddhi rāghava || 90 ||

Know this about awareness, Rama. It gives birth to itself, by itself. It deludes itself again and again. And in the end it leads itself to liberation, all on its own.

चेतना के बारे में यह जान लो, हे राम। वह खुद से खुद को जन्म देती है। वह बार बार खुद को भरमाती है। और आखिर में वह खुद ही खुद को मुक्ति तक ले जाती है।

5.91.91

यदेव भावयत्येषा तदेव भवति क्षणात् । न भवद्भूमिकामुक्ता समायाति चिराद्वपुः ॥ ९१ ॥

yadeva bhāvayatyēṣā tadeva bhavati kṣaṇāt | na bhavadbhūmikāmuktā samāyāti cirādvapuḥ || 91 ||

Whatever this awareness pictures, that very thing comes into being in an instant. It never steps outside the part it is playing, so its shape never takes long to appear.

यह चेतना जो कुछ भी सोचती है, वही चीज़ एक पल में सामने आ जाती है। वह अपनी भूमिका से कभी बाहर नहीं जाती, इसलिए उसका रूप बनने में भी देर नहीं लगती।

5.91.92

देवो नासौ सुरो रक्षो यक्षः किं किन्नरो जनः । आत्मैवाद्यविलासिन्या जगन्नाट्यं प्रनृत्यति ॥ ९२ ॥

devo nāsau suraḥ rakṣo yakṣaḥ kiṃ kinnaro janaḥ | ātmaivaādyavilāsinyā jagannāṭyaṃ pranṛtyati || 92 ||

That being is not a god, not a demigod, not a demon, not a yaksha, not a kinnara, not an ordinary person. It is the self alone that, through its own age old playfulness, dances out the drama of the world.

वह न देवता है, न उपदेवता, न राक्षस, न यक्ष, न किन्नर, न कोई साधारण आदमी। यह आत्मा ही है जो अपनी पुरानी अटखेलियों से संसार का यह नाटक नाचती है।

5.91.93

बद्धात्मानं रुदित्वा च कोशकारकृमिर्यथा । चिरात्केवलतामेति स्वयं संवित्स्वभावतः ॥ ९३ ॥

baddhvātmānaṃ ruditvā ca kośakārakṛmiryathā | cirātkevalatāmeti svayaṃ saṃvitsvabhāvataḥ || 93 ||

It is like the silkworm: it wraps itself up in its own thread and cries there, and after a long time, by its own nature, it comes out alone. In the same way, awareness too, after a long time, returns on its own, by its own nature, to its single, pure state.

यह ठीक रेशम के कीड़े जैसा है: वह अपने ही धागे से खुद को लपेट लेता है और वहाँ रोता है, और बहुत समय बाद अपने आप, अपने स्वभाव से, अकेला होकर बाहर आ जाता है। उसी तरह चेतना भी बहुत समय बाद अपने आप, अपने स्वभाव से, अपनी अकेली और शुद्ध अवस्था में लौट आती है।

5.91.94

जगज्जलधिजालानां संविज्जलमलं गता । एषैवापूर्वदिक्चक्रं स्फुरत्यद्ध्यादितां गता ॥ ९४ ॥

jagajjaladhijālānāṃ saṃvijjalamalaṃ gatā | eṣaivāpūrvadikcakraṃ sphuratyadvyāditāṃ gatā || 94 ||

Awareness itself has become the water that fills the ocean-like worlds. This same awareness shines out freely, as a whole new space, in every direction.

चेतना ने ही जगत के समुद्र जैसे फैलाव के लिए पानी का रूप ले लिया है। यही चेतना बिना किसी रुकावट के, हर दिशा में फैले एक बिल्कुल नए आकाश की तरह चमकती है।

5.91.95

द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वताः सरितो दिशः । इत्यस्या वीचयः प्रोक्ताः संवित्सलिलसंततेः ॥ ९५ ॥

dyauḥ kṣamā vāyurākāśaṃ parvatāḥ sarito diśaḥ | ityasyā vīcayaḥ proktāḥ saṃvitsalilasantateḥ || 95 ||

The sky, the earth, the wind, space, the mountains, the rivers, the directions — all these are called the waves of this endless water that is awareness.

आकाश, धरती, हवा, अंतरिक्ष, पहाड़, नदियाँ और दिशाएँ — ये सब चेतना के इस निरंतर बहते पानी की लहरें कही जाती हैं।

5.91.96

संविन्मात्रं जगत्सर्वं द्वितीया नास्ति कल्पना । इत्येव सम्यग्ज्ञानेन संविद्गच्छति नान्यताम् ॥ ९६ ॥

saṃvinmātraṃ jagatsarvaṃ dvitīyā nāsti kalpanā | ityeva samyagjñānena saṃvidgacchati nānyatām || 96 ||

The whole world is nothing but awareness; there is no second thing at all. Only with this complete understanding does awareness stay itself and never become something other.

यह पूरा जगत केवल चेतना ही है; इसके सिवा कोई दूसरी चीज़ है ही नहीं। इस पूरी समझ के साथ ही चेतना अपने आप में बनी रहती है और कभी कुछ और नहीं बनती।

5.91.97

यदा न विन्दते किंचित्स्पन्दते न न वेपते । स्वात्मन्येव स्थितिं याति संविन्नो लिप्यते तदा ॥ ९७ ॥

yadā na vindate kiṃcits pandate na na vepate | svātmanyeva sthitiṃ yāti saṃvinno lipyate tadā || 97 ||

When awareness knows nothing else, when it neither stirs nor trembles, and rests only in itself, then it is untouched by anything.

जब चेतना कुछ और नहीं जानती, जब वह न हिलती है न कांपती है, और सिर्फ़ अपने में ही टिकी रहती है, तब वह किसी चीज़ से लिप्त नहीं होती।

5.91.98

अथास्याः संविदो राम सन्मात्रं बीजमुच्यते । संविन्मात्रादुदेत्येषा प्राकाश्यमिव तेजसः ॥ ९८ ॥

athāsyāḥ saṃvido rāma sanmātraṃ bījamucyate | saṃvinmātrādudeyteṣā prākāśyamiva tejasaḥ || 98 ||

Now, Rama, the seed of this awareness is said to be pure being alone. This arises out of mere awareness, the way brightness arises out of light.

अब, हे राम, इस चेतना का बीज केवल शुद्ध होना-मात्र ही कहा जाता है। यह उसी शुद्ध चेतना से उठता है, जैसे रोशनी प्रकाश से उठती है।

5.91.99

द्वे रूपे तत्र सत्ताया एकं नानाकृति स्थितम् । द्वितीयमेकरूपं तु विभागोऽयं तयोः श्रृणु ॥ ९९ ॥

dve rūpe tatra sattāyā ekaṃ nānākṛti sthitam | dvitīyamekarūpaṃ tu vibhāgo'yaṃ tayoḥ śṛṇu || 99 ||

Being has two forms. One exists as many different shapes. The other is a single form. Listen now to the difference between the two.

होने के दो रूप हैं। एक रूप कई तरह की आकृतियों में रहता है। दूसरा रूप एक ही है। अब इन दोनों का फ़र्क सुनो।

5.91.100

घटता पटता चैव त्वत्ता मत्तेति कथ्यते। सत्तारूपविभागेन यत्तन्नानाकृति स्थितम्॥ १००॥

ghaṭatā paṭatā caiva tvattā matteti kathyate | sattārūpavibhāgena yattannānākṛti sthitam || 100 ||

Take words like potness, clothness, your-ness, my-ness — these come only from splitting up the one being into forms. This is the being that exists as many different shapes.

जैसे 'घड़ा होना', 'कपड़ा होना', 'तुम होना', 'मैं होना' — ये सब नाम होने के एक ही रूप को बाँट देने से बनते हैं। यही वह होना है जो कई आकृतियों में रहता है।

5.91.101

विभागं तु परित्यज्य सत्तैकात्मतया ततम्। सामान्येनैव सत्ताया रूपमेकमुदाहृतम्॥ १०१॥

vibhāgaṃ tu parityajya sattaikātmatayā tatam | sāmānyenaiva sattāyā rūpamekamudāhṛtam || 101 ||

But set the division aside. Being spreads out as a single self through everything. This, taken only in its general sense, is called the one form of being.

पर इस बंटवारे को छोड़ दो। होना एक ही रूप में सब में फैला हुआ है। इसे केवल इसके सामान्य रूप में लेने पर ही होने का 'एक रूप' कहा जाता है।

5.91.102

विशेषं संपरित्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम्। एकरूपं महारूपं सत्तायास्तत्पदं विदुः॥ १०२॥

viśeṣaṃ saṃparityajya sanmātraṃ yadalepakam | ekarūpaṃ mahārūpaṃ sattāyāstarpadaṃ viduḥ || 102 ||

Leave aside every particular thing. What remains is pure being alone, untouched by anything. The wise call this the single form, the great form, the true state of being.

हर ख़ास चीज़ को छोड़ दो। जो बचता है वह केवल शुद्ध होना है, जिस पर कुछ भी नहीं लगता। ज्ञानी लोग इसे ही एक रूप, महान रूप, होने की असली अवस्था कहते हैं।

5.91.103

रूपं नानाकृतित्वेन सत्ताया न कदाचन। असंवेद्यं संभवति तस्मादेतदवस्तुकम्॥ १०३॥

rūpaṃ nānākṛtitvena sattāyā na kadācana | asaṃvedyaṃ saṃbhavati tasmādetadavastukam || 103 ||

The manifold form of being is never something that cannot be known — it is always just an object that is known. So this manifold form has no reality of its own.

होने का यह अलग-अलग आकृतियों वाला रूप कभी भी अनजाना नहीं रहता — वह हमेशा बस जानी हुई चीज़ ही होता है। इसलिए इस रूप की अपनी कोई हक़ीक़त नहीं है।

5.91.104

एकरूपं तु यद्रूपं सत्ताया विमलात्मकम्। न कदाचन तद्याति नाशं नापि च विस्मृतिम्॥ १०४॥

ekarūpaṃ tu yadrūpaṃ sattāyā vimalātmakam | na kadācana tadyāti nāśaṃ nāpi ca vismṛtim || 104 ||

But the single, pure form of being is never destroyed, and it is never even forgotten.

पर होने का वह एक, निर्मल रूप कभी नष्ट नहीं होता, और वह कभी भुलाया भी नहीं जाता।

5.91.105

कालसत्ता कलासत्ता वस्तुसत्तेयमित्यपि । विभागकलनां त्यक्त्वा सन्मात्रैकपरो भव ॥ १०५ ॥

kālasattā kalāsattā vastusatteyamityapi | vibhāgakalanāṃ tyaktvā sanmātraikaparo bhava || 105 ||

There is the being of time, the being of a part, and the being of a thing — such distinctions exist too, but set aside the making of these divisions, and hold only to pure being alone.

समय का होना, अंश का होना, वस्तु का होना — ऐसे भेद भी होते हैं, पर इन भेदों को बनाना छोड़ दो, और केवल शुद्ध होने को ही पकड़ो।

5.91.106

कालसत्ता स्वसत्ता च प्रोन्मुक्तकलना सती । यद्यप्युत्तमसद्रूपा तथाप्येषा न वास्तवी ॥ १०६ ॥

kālasattā svasattā ca pronmuktakalanā satī | yadyapyuttamasadrūpā tathāpyeṣā na vāstavī || 106 ||

The being of time, and the being of the individual self — even taken as whole, without any division, and even though they seem like the finest kind of being — even so, they are not the ultimate reality.

समय का होना और अपना अलग होना — भले ही इन्हें बिना बांटे, पूरे रूप में लिया जाए, और भले ही ये सबसे बढ़िया लगें — फिर भी ये असली हक़ीक़त नहीं हैं।

5.91.107

विभागकलना यत्र विभिन्नपददायिनी । नानाताकारणं दृष्टा तत्कथं पावनं भवेत् ॥ १०७ ॥

vibhāgakalanā yatra vibhinnapadadāyinī | nānātākāraṇaṃ dṛṣṭā tatkathaṃ pāvanaṃ bhavet || 107 ||

Wherever the making of divisions gives rise to separate positions, and is seen to be the very cause of this multiplicity, how could that ever be something pure?

जहाँ भेद बनाना अलग-अलग स्थितियाँ पैदा करता है, और यही अनेकता का कारण दिखता है, वह चीज़ शुद्ध कैसे हो सकती है?

5.91.108

सत्तासामान्यमेवैकं भावयत्सकलं वपुः । परिपूर्णपरानन्दी तिष्ठाभरितदिग्भरः ॥ १०८ ॥

sattāsāmānyamevaikaṃ bhāvayatsakalaṃ vapuḥ | paripūrṇaparānandī tiṣṭhābharitadigbharaḥ || 108 ||

See that the one shared being alone fills this whole body of the world. Then remain complete, full of the highest bliss, filling every direction.

यह देखो कि केवल एक ही साझा होना इस पूरे जगत-रूपी शरीर में भरा हुआ है। फिर पूर्ण बनो, सबसे बड़े आनंद से भरे रहो, और हर दिशा में भरे हुए टिके रहो।

5.91.109

सत्ता सामान्यमात्रस्य या कोटिः कोविदेश्वर । सैवास्य बीजतां याता तत एव प्रवर्तते ॥ १०९ ॥

sattā sāmānyamātrasya yā koṭiḥ kovideśvara | saivāsya bījatāṃ yātā tata eva pravartate || 109 ||

Best of the wise, the highest point of this one shared being becomes the seed of this world, and everything unfolds from that seed alone.

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, इस एक साझा होने की जो सबसे ऊँची सीमा है, वही इस जगत का बीज बनती है, और सब कुछ उसी बीज से चलता है।

5.91.110

सत्तासामान्यपर्यन्ते यत्तत्कलनयोज्झितम्। पदमाद्यमनाद्यन्तं तस्य बीजं न विद्यते ॥ ११० ॥

sattāsāmānyaparyante yattatkalanayojjhitam | padamādyamanādyantaṃ tasya bījaṃ na vidyate || 110 ||

At the very limit of this shared being, there is a state free of all construction — the first state, without beginning or end. That state itself has no seed; nothing causes it.

इस साझा होने की सबसे आख़िरी सीमा पर, एक ऐसी अवस्था है जो किसी भी बनावट से मुक्त है — यह सबसे पहली अवस्था है, जिसका न आरंभ है न अंत। इस अवस्था का कोई बीज नहीं है, इसे कोई चीज़ पैदा नहीं करती।

5.91.111

सत्ता लयं याति यत्र निर्विकारं च तिष्ठति। भूयो नावर्तते दुःखे तत्र लब्धपदः पुमान्॥ १११ ॥

sattā layaṃ yāti yatra nirvikāraṃ ca tiṣṭhati | bhūyo nāvartate duḥkhe tatra labdhapadaḥ pumān || 111 ||

There is a state where being itself dissolves, and what remains stands unchanging. A person who reaches that state never falls back into suffering again.

एक ऐसी अवस्था है जहाँ होना भी लीन हो जाता है, और जो बचता है वह अडिग रहता है। जो व्यक्ति उस अवस्था को पा लेता है, वह फिर कभी दुख में वापस नहीं आता।

5.91.112

तद्धेतुः सर्वहेतूनां तस्य हेतुर्न विद्यते। संसारः सर्वसाराणां तस्मात्सारं न विद्यते ॥ ११२ ॥

taddhetuḥ sarvahetūnāṃ tasya heturna vidyate | saṃsāraḥ sarvasārāṇāṃ tasmātsāraṃ na vidyate || 112 ||

That state is the cause of every cause, and it has no cause of its own. It is the essence of the whole cycle of the world, and beyond it there is no further essence.

वह अवस्था हर कारण का कारण है, और उसका खुद कोई कारण नहीं है। वह इस पूरे संसार-चक्र का सार है, और उससे आगे कोई और सार नहीं है।

5.91.113

तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः ॥ ११३ ॥

tasmiṃściddarpaṇe sphāre samastā vastudṛṣṭayaḥ| imāstāḥ pratibimbanti sarasīva taṭadrumāḥ || 113 ||

In that vast mirror of consciousness, every view of every object is reflected — the way trees standing on the bank are reflected in a lake.

चेतना के उस विशाल दर्पण में, हर वस्तु का हर दृश्य वैसे ही झलकता है, जैसे किनारे के पेड़ झील में झलकते हैं।

5.91.114

सर्वे भावा इमे तत्र स्वदन्ते साधुवारिधेः। षड्रसा इव जिह्वायाः प्रकटत्वं प्रयान्ति च ॥ ११४ ॥

sarve bhāvā ime tatra svadante sādhuvāridheḥ| ṣaḍrasā iva jihvāyāḥ prakaṭatvaṃ prayānti ca || 114 ||

All these things are savored there, in that fine ocean, and come out into view, just as the six flavors show themselves on a tongue.

ये सब चीज़ें वहाँ, उस सुंदर सागर में, चखी जाती हैं, और वैसे ही सामने आती हैं जैसे जीभ पर छह रस सामने आते हैं।

5.91.115

तस्मादच्छतरस्यापि चिदाकाशस्य वै पदम् सर्वेषां स्वादुजातीनामलमास्वादनं च तत् ॥ ११५ ॥

tasmādacchatarasyāpi cidākāśasya vai padam sarveṣāṃ svādujātīnāmalamāsvādanaṃ ca tat || 115 ||

So the state of that space of consciousness, clearer than anything, is itself the full tasting of every kind of flavor there is.

इसलिए चेतना के उस आकाश की अवस्था, जो हर चीज़ से ज़्यादा साफ़ है, वही हर तरह के स्वाद का पूरा आस्वादन है।

5.91.116

जायते वर्तते चैव वर्धते स्पृश्यतेऽथ वा । तिष्ठन्ति च गलन्तीह तत्राङ्ग जगतां गणाः ॥ ११६ ॥

jāyate vartate caiva vardhate spṛśyate'tha vā| tiṣṭhanti ca galantīha tatrāṅga jagatāṃ gaṇāḥ || 116 ||

My friend, all the multitudes of worlds are born there, exist there, grow there, are touched there, stand there, and melt away there.

हे प्रिय, संसारों के सारे समूह वहीं जन्म लेते हैं, वहीं रहते हैं, वहीं बढ़ते हैं, वहीं छुए जाते हैं, वहीं टिकते हैं और वहीं घुल जाते हैं।

5.91.117

तत्तद्गुरु गरिष्ठानां तत्तल्लघु लघीयसाम् । तत्तत्स्थूलं स्थविष्ठानामणीयस्तदणीयसाम् ॥ ११७ ॥

tattadguru garīṣṭhānāṃ tattallaghu laghīyasām| tattatsthūlaṃ sthaviṣṭhānāmaṇīyastadaṇīyasām || 117 ||

It is the heaviest of the heavy things, the lightest of the light things. It is the biggest of the big things, the smallest of the small things.

वह सबसे भारी चीज़ों में सबसे भारी है, सबसे हल्की चीज़ों में सबसे हल्की है। वह सबसे बड़ी चीज़ों में सबसे बड़ी है, और सबसे छोटी चीज़ों में सबसे छोटी है।

5.91.118

दवीयसां दविष्ठं तदन्तिकानां तदन्तिकम् । कनीयसां कनीयस्तत्तज्ज्येष्ठं ज्यायसामपि ॥ ११८ ॥

davīyasāṃ daviṣṭhaṃ tadantikānāṃ tadantikam | kanīyasāṃ kanīyastattajjyeṣṭhaṃ jyāyasāmapi || 118 ||

It is the farthest of the far things and the nearest of the near things. It is the youngest of the young and the eldest of the great.

वह दूर की चीज़ों में सबसे दूर है, और पास की चीज़ों में सबसे पास है। वह छोटों में सबसे छोटा है, और बड़ों में सबसे बड़ा भी है।

5.91.119

तेजसामपि तत्तेजस्तमसामपि तत्तमः । वस्तूनामपि तद्वस्तु दिशामप्यङ्ग दिक्परा ॥ ११९ ॥

tejasāmapi tattejastamasāmapi tattamaḥ | vastūnāmapi tadvastu diśāmapyanga dikparā || 119 ||

It is the light within all lights, and the darkness within all darkness. It is the thing within all things. My friend, it is the farthest direction within all directions.

वह सारी रोशनियों में रोशनी है, और सारे अंधकार में अंधकार है। वह सारी वस्तुओं में वस्तु है। हे प्रिय, वह सारी दिशाओं में सबसे ऊँची दिशा है।

5.91.120

तन्न किंचिच्च किंचिच्च तत्तदस्तीव नास्ति च । तत्तद्दृश्यमदृश्यं च तत्तदस्मि न चास्मि च ॥ १२० ॥

tanna kiṃcicca kiṃcicca tattadasīva nāsti ca | tattaddṛśyamadṛśyaṃ ca tattadasmi na cāsmi ca || 120 ||

It is nothing, and yet it is something. It seems to exist, and yet it does not exist. It is seen, and it is unseen. It is 'I am,' and it is 'I am not.'

वह कुछ भी नहीं है, फिर भी वह कुछ है। वह मानो है, फिर भी वह नहीं है। वह दिखता भी है और नहीं भी दिखता। वह 'मैं हूँ' भी है और 'मैं नहीं हूँ' भी है।

5.91.121

राम सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्परमपावने । पदे स्थितिमुपायासि यथा कुरु तथानघ ॥ १२१ ॥

rāma sarvaprayatnena tasminparamapāvane | pade sthitimupāyāsi yathā kuru tathānagha || 121 ||

Rama, put your whole effort into reaching a steady place in that supremely pure state. Do whatever is needed to reach it, sinless one.

हे राम, पूरी कोशिश करके उस सबसे शुद्ध अवस्था में स्थिर हो जाओ। हे निष्पाप, जो भी करना पड़े, वह करो।

5.91.122

तदमलमजरं तदात्मतत्त्वं तदवगतावुपशान्तिमेति चेतः । अवगतवितताैकतत्स्वरूपो भवभयमुक्तपदोऽसि तच्चिराय ॥ १२२ ॥

tadamalamajaraṃ tadātmatattvaṃ tadavagatāvupaśāntimeti cetḥ | avagatavitataikatatsvarūpo bhavabhayamuktapado'si taccirāya || 122 ||

That is stainless and never grows old; that is the true nature of the self. The mind finds peace once it understands this. Once you have understood this one nature spread through everything, you will be free from the fear of worldly existence, and you will remain that, forever.

वह निर्मल है, कभी बूढ़ा नहीं होता; वही आत्मा का असली स्वरूप है। इसे समझ लेने पर मन को शांति मिल जाती है। जब तुम इस एक स्वरूप को समझ लोगे, जो हर जगह फैला हुआ है, तो तुम संसार के डर से मुक्त हो जाओगे, और हमेशा के लिए वही बन जाओगे।

Chapter 92

5.92.1

श्रीराम उवाच । एतानि तानि प्रोक्तानि त्वया बीजानि मानद । कतमस्य प्रयोगेण शीघ्रं तत्प्राप्यते पदम् ॥ १ ॥

śrīrāma uvāca | etāni tāni proktāni tvayā bījāni mānada | katamasya prayogeṇa śīghraṃ tatprāpyate padam || 1 ||

Sri Rama said: You have told me all these seeds, you who honor everyone. By practicing which one of them is that state reached quickly?

श्रीराम ने कहा: हे सबका सम्मान करने वाले, आपने मुझे ये सारे बीज बताए हैं। इनमें से किस एक का अभ्यास करने से वह अवस्था जल्दी मिलती है?

5.92.2

श्रीवसिष्ठ उवाच । एतेषां दुःखबीजानां प्रोक्तं यद्यन्मयोत्तरम् । तस्य तस्य प्रयोगेण शीघ्रमासाद्यते पदम् ॥ २ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | eteṣāṃ duḥkhabījānāṃ proktaṃ yadyanmayottaram | tasya tasya prayogeṇa śīghramāsādyate padam || 2 ||

Sri Vasishtha said: For each of these seeds of sorrow, whatever answer I have given, by practicing that same answer, the state is reached quickly.

श्री वसिष्ठ ने कहा: दुख के इन बीजों में से हर एक के लिए मैंने जो उत्तर दिया है, उसी का अभ्यास करने से वह अवस्था जल्दी मिल जाती है।

5.92.3

सत्तासामान्यकोटिस्थे द्रागित्येव पदे यदि । पौरुषेण प्रयत्नेन बलात्संत्यज्य वासनाम् ॥ ३ ॥

sattāsāmānyakoṭisthē drāgityēva padē yadi | pauruṣēṇa prayatnēna balātsaṃtyajya vāsanām || 3 ||

If, through hard effort, forcibly giving up desire, you wish to stand at once in the highest point of existence in general,

यदि तुम मेहनत करके अपनी इच्छा को ज़बरदस्ती छोड़ दो, और उसी पल सामान्य अस्तित्व के सबसे ऊँचे बिंदु पर खड़े होना चाहते हो,

5.92.4

स्थितिं बध्नासि तत्त्वज्ञ क्षणमप्यक्षयात्मिकाम् । क्षणेऽस्मिन्नेव तत्साधु पदमासादयस्यलम् ॥ ४ ॥

sthitiṃ badhnāsi tattvajña kṣaṇamapyakṣayātmikām | kṣaṇe'sminneva tatsādhu padamāsādayasyalam || 4 ||

then, you who know the truth, you hold that state steady even for a moment, since its nature never decays — in that very moment you fully reach that good state.

तो हे सत्य को जानने वाले, तुम उस अवस्था को एक पल के लिए भी स्थिर पकड़ लेते हो, जो कभी नष्ट नहीं होती — उसी पल में तुम उस अच्छी अवस्था को पूरी तरह पा लेते हो।

5.92.5

सत्तासामान्यरूपे वा करोषि स्थितिमङ्ग चेत् । तत्किंचिदधिकेनेह यत्नेनाप्नोषि तत्पदम् ॥ ५ ॥

sattāsāmānyarūpē vā karōṣi sthitimanga cet | tatkiṃcidadhikēnēha yatnēnāpnoṣi tatpadam || 5 ||

Or, dear one, if instead you simply settle your steadiness in the mere form of existence in general, then with a little more effort you reach that same state.

या फिर, हे प्रिय, यदि तुम बस सामान्य अस्तित्व के रूप में ही अपनी स्थिरता बना लो, तो थोड़े और अधिक प्रयत्न से तुम उसी अवस्था को पा लेते हो।

5.92.6

संवित्तत्त्वे कृतध्यानो यदि तिष्ठसि चानघ । तद्यत्नेनाधिकेनोच्चैरासादयसि तत्पदम् ॥ ६ ॥

saṃvittattve kṛtadhyāno yadi tiṣṭhasi cānagha| tadyatnenādhikenaoccairāsādayasi tatpadam|| 6 ||

And if, faultless one, having fixed your meditation on the truth of pure awareness, you remain steady in it, then with even greater effort, more fully, you reach that same state.

और यदि, हे निर्दोष, शुद्ध चेतना के सत्य पर ध्यान लगाकर तुम उसमें टिके रहो, तो और भी अधिक प्रयत्न से, ऊँचे स्तर पर, तुम उसी अवस्था को पा लेते हो।

5.92.7

संवेद्ये केवले ध्यानं न संभवति राघव । सर्वत्र संभवादस्याः संवित्तेरेव सर्वदा ॥ ७ ॥

saṃvedye kevale dhyānaṃ na saṃbhavati rāghava| sarvatra saṃbhavādasyāḥ saṃvittereva sarvadā|| 7 ||

But meditation on a mere object of knowledge, all by itself, is not truly possible, Rama, because this same awareness is present everywhere, always.

पर केवल जानी जाने वाली चीज़ पर ध्यान करना अपने आप में सच में संभव नहीं है, हे राम, क्योंकि यही चेतना हर जगह, हमेशा मौजूद रहती है।

5.92.8

यच्चिन्तयसि यद्यासि यत्तिष्ठसि करोषि च । तत्र तत्र स्थिता संवित्संविदेव तदेव सा ॥ ८ ॥

yacchintayasi yadyāsi yattiṣṭhasi karoṣi ca| tatra tatra sthitā saṃvitsaṃvideva tadeva sā|| 8 ||

Whatever you think about, wherever you go, wherever you stand, whatever you do — in every one of these, awareness alone is present; it is nothing but awareness, and that awareness is itself that state.

तुम जो कुछ भी सोचते हो, जहाँ भी जाते हो, जहाँ भी खड़े होते हो, जो कुछ भी करते हो — इन सबमें केवल चेतना ही मौजूद है; यह चेतना के सिवा कुछ नहीं है, और यही चेतना वह अवस्था है।

5.92.9

वासनासंपरित्यागे यदि यत्नं करोषि च । तत्ते शिथिलतां यान्ति सर्वाधिव्याधयः क्षणात् ॥ ९ ॥

vāsanāsaṃparityāge yadi yatnaṃ karoṣi ca| tatte śithilatāṃ yānti sarvādhi vyādhayaḥ kṣaṇāt|| 9 ||

And if you make the effort to fully give up desire, then all your mental distress and bodily diseases grow weak and loosen at once.

और यदि तुम इच्छा को पूरी तरह छोड़ने का प्रयत्न करते हो, तो तुम्हारे सारे मानसिक कष्ट और शारीरिक रोग तुरंत ढीले पड़ जाते हैं।

5.92.10

पूर्वेभ्यस्तु प्रयत्नेभ्यो विषमोऽयं हि संस्मृतः । दुःसाध्यो वासनात्यागः सुमेरून्मूलनादपि ॥ १० ॥

pūrvebhyaḥstu prayatnebhyaḥ viṣamoayaṃ hi saṃsmṛtaḥ| duḥsādhyo vāsanātyāgaḥ sumerūnmūlanādapi|| 10 ||

This is remembered as harder than the efforts spoken of before; giving up desire is more difficult to achieve than uprooting Mount Sumeru itself.

यह पहले बताए गए प्रयत्नों से भी कठिन माना गया है; इच्छा को छोड़ना सुमेरु पर्वत को जड़ से उखाड़ने से भी ज़्यादा मुश्किल है।

5.92.11

यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः । न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति ॥ ११ ॥

yāvadvilīnaṃ na mano na tāvadvāsanākṣayaḥ | na kṣīṇā vāsanā yāvaccittaṃ tāvanna śāmyati || 11 ||

As long as the mind has not dissolved, desire is not destroyed; and as long as desire has not worn away, the mind does not grow calm.

जब तक मन लीन नहीं होता, तब तक इच्छा नष्ट नहीं होती; और जब तक इच्छा घटती नहीं, तब तक मन शांत नहीं होता।

5.92.12

यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः । यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम् ॥ १२ ॥

yāvanna tattvavijñānaṃ tāvaccittasamaḥ kutaḥ | yāvanna cittopaśamo na tāvattattvavedanam || 12 ||

As long as there is no true knowledge of reality, how can the mind find calm? And as long as the mind has not calmed down, there is no realizing of the truth.

जब तक सत्य का सच्चा ज्ञान नहीं होता, तब तक मन को शांति कैसे मिले? और जब तक मन शांत नहीं होता, तब तक सत्य का अनुभव नहीं होता।

5.92.13

यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः । यावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः ॥ १३ ॥

yāvanna vāsanānāśastāvattattvāgamaḥ kutaḥ | yāvanna tattvasaṃprāptirna tāvadvāsanākṣayaḥ || 13 ||

As long as desire is not destroyed, how can the truth be reached? And as long as the truth is not attained, desire is not destroyed.

जब तक इच्छा नष्ट नहीं होती, तब तक सत्य कैसे मिले? और जब तक सत्य नहीं मिलता, तब तक इच्छा नष्ट नहीं होती।

5.92.15

तस्माद्राघव यत्नेन पौरुषेण विवेकिना । भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेतत्समाश्रयेत् ॥ १५ ॥

tasmādrāghava yatnena pauruṣeṇa vivekinā | bhogecchāṃ dūratastyaktvā trayametatsamāśrayet || 15 ||

Therefore, Rama, with wisdom and hard effort, cast the desire for pleasure far away, and take up these three.

इसलिए, हे राम, समझदारी और मेहनत भरे प्रयत्न से, भोग की इच्छा को दूर फेंककर, इन तीनों का सहारा लो।

5.92.16

सर्वथा ते समं यावन्न स्वभ्यस्ता मुहुर्मुहुः । तावन्न पदसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाशतैः ॥ १६ ॥

sarvathā te samaṃ yāvanna svabhyastā muhurmuhuḥ | tāvanna padasaṃprāptirbhavatyapi samāśataiḥ || 16 ||

As long as all three are not thoroughly practiced together, again and again, the state is not reached — not even in a hundred years.

जब तक ये तीनों बार-बार अच्छी तरह मिलकर अभ्यास में नहीं लाए जाते, तब तक वह अवस्था नहीं मिलती — सौ साल में भी नहीं।

5.92.17

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने ॥ १७ ॥

vāsanākṣayavijñānamanonāśā mahāmate | samakālaṃ cirābhyastā bhavanti phaladā mune || 17 ||

Destruction of desire, true knowledge, and destruction of mind, wise one — when practiced together for a long time, these three bear fruit, sage.

इच्छा का नाश, सच्चा ज्ञान, और मन का नाश — हे बुद्धिमान, जब इन तीनों का साथ-साथ लंबे समय तक अभ्यास किया जाता है, तो हे मुनि, ये फल देते हैं।

5.92.18

तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च । मिथः कारणतां गत्वादुःसाध्यानि स्थितान्यतः ॥ १८ ॥

tattvajñānaṃ manonāśo vāsanākṣaya eva ca | mithaḥ kāraṇatāṃ gatvāduḥsādhyāni sthitānyataḥ || 18 ||

Knowledge of the truth, destruction of the mind, and destruction of desire — since each is the cause of the other two, they stand as things hard to achieve.

सत्य का ज्ञान, मन का नाश, और इच्छा का नाश — चूँकि ये एक-दूसरे का कारण बनते हैं, इसलिए इन्हें पाना मुश्किल है।

5.92.19

चिरकालोपरचिता अप्येते सुधियापि च । एकशः परमभ्येतुं न शक्ताः सैनिका इव ॥ १९ ॥

cirakāloparacitā apyete sudhiyāpi ca | ekaśaḥ paramabhyetuṃ na śaktāḥ sainikā iva || 19 ||

Even when built up over a long time, and even by a wise mind, these three cannot reach the highest goal alone, one at a time — just as soldiers cannot, alone.

लंबे समय तक बनाए गए, और बुद्धिमान मन के द्वारा भी, ये तीनों अकेले-अकेले सबसे बड़े लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते — जैसे सैनिक अकेले नहीं पहुँच पाते।

5.92.20

सममुद्योगमानीताः सन्त एते हि धीमता । संसाराब्धिं निकृन्तन्ति जलान्यद्रितटानिव ॥ २० ॥

samamudyogamānītāḥ santa ete hi dhīmatā | saṃsārābdhiṃ nikṛntanti jalānyadritaṭāniva || 20 ||

When these three are brought together into one combined effort by a wise person, they cut through the ocean of worldly existence, as flowing water cuts through a mountain's slope.

जब बुद्धिमान व्यक्ति इन तीनों को मिलाकर एक साथ प्रयत्न में लगाता है, तो ये संसार के सागर को काट देते हैं, जैसे बहता पानी पहाड़ की ढलान को काट देता है।

5.92.21

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशाः प्रयत्नतः । समं सेव्यास्तव चिरं तेन तात न लिप्यसे ॥ २१ ॥

vāsanākṣayavijñānamanonāśāḥ prayatnataḥ | samaṃ sevyāstava ciraṃ tena tāta na lipyase || 21 ||

Destroy desire, gain true knowledge, and destroy the mind — pursue these three together, with effort, for a long time, dear child; by this you will remain untouched.

इच्छा को नष्ट करो, सच्चा ज्ञान पाओ, और मन को नष्ट करो — हे प्रिय, इन तीनों को लंबे समय तक मेहनत से साथ-साथ करते रहो; इससे तुम अछूते रह जाओगे।

5.92.22

त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढाः । निःशेषमेव त्रुट्यन्ति विसच्छेदाद्गुणा इव ॥ २२ ॥

tribhiretaiścirābhyastairhṛdayagranthayo dṛḍhāḥ | niḥśeṣameva truṭyanti visacchedādguṇā iva || 22 ||

When these three are practiced for a long time, the firm knots of the heart break completely, with nothing left, like the fibers of a lotus stalk breaking all at once when it is cut.

जब इन तीनों का लंबे समय तक अभ्यास किया जाता है, तो हृदय की मज़बूत गाँठें पूरी तरह टूट जाती हैं, बिना कुछ बचे, जैसे कमल की डंडी काटने पर उसके रेशे एक साथ टूट जाते हैं।

5.92.23

जन्मान्तरशताभ्यस्ता राम संसारसंस्थितिः । सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥ २३ ॥

janmāntaraśatābhyastā rāma saṃsārasaṃsthitiḥ | sā cirābhyāsayogena vinā na kṣīyate kvacit || 23 ||

Rama, this state of worldly existence has been strengthened through hundreds of other births; it does not wear away anywhere without long, sustained practice.

हे राम, संसार की यह स्थिति सैकड़ों दूसरे जन्मों से मज़बूत होती आई है; बिना लंबे और लगातार अभ्यास के यह कहीं भी कम नहीं होती।

5.92.24

गच्छन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रंस्तिष्ठञ्जाग्रत्स्वपंस्तथा । श्रेयसे परमायास्य त्रयस्याभ्यासवान्भव ॥ २४ ॥

gacchanśṛṇvan spṛśañjighraṃstiṣṭhañjāgratsvapaṃstathā | śreyase paramāyāsya trayasyābhyāsavānbhava || 24 ||

While walking, listening, touching, smelling, standing, waking, or sleeping — keep practicing these three, for the highest good.

चलते, सुनते, छूते, सूँघते, खड़े होते, जागते या सोते समय — हर समय इन तीनों का अभ्यास करते रहो, सबसे बड़ी भलाई के लिए।

5.92.25

वासनासंपरित्यागसमं प्राणनिरोधनम् । विदुस्तत्त्वविदस्तस्मात्तदाप्येवं समाहरेत् ॥ २५ ॥

vāsanāsaṃparityāgasamaṃ prāṇanirodhanam | vidustattvavidas tasmāttadāpyevaṃ samāharet || 25 ||

Those who know the truth know that holding back the breath is equal to the complete giving up of desire; therefore, one should also take up breath-control in this way.

सत्य को जानने वाले जानते हैं कि साँस को रोकना इच्छा के पूरी तरह त्याग के बराबर है; इसलिए इसी तरह साँस रोकने का अभ्यास भी करना चाहिए।

5.92.26

वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् । प्राणस्पन्दनिरोधाच्च यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २६ ॥

vāsanāsaṃparityāgācchittaṃ gacchatyacittatām | prāṇaspandanirodhācca yathecchasi tathā kuru || 26 ||

When desires are completely given up, the mind stops being a mind. The same happens when the movement of the breath is stopped. Do whichever of the two you wish.

जब वासनाएँ पूरी तरह छूट जाती हैं, तो मन का मन होना खत्म हो जाता है। यही तब भी होता है जब साँस की गति को रोक दिया जाता है। तुम्हें जो अच्छा लगे, वही करो।

5.92.27

प्राणायामचिराभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया । आसनाशनयोगेन प्राणस्पन्दो निरुद्ध्यते ॥ २७ ॥

prāṇāyāmacirābhyāsairyuktyā ca gurudattayā | āsanāśanayogena prāṇaspando niruddhyate || 27 ||

Through long practice of breath control, through the method taught by a guru, and through the right way of sitting and eating, the movement of the breath is stopped.

प्राणायाम के लंबे अभ्यास से, गुरु द्वारा बताए गए तरीके से, और सही ढंग से बैठने और खाने से साँस की गति रुक जाती है।

5.92.28

यथाभूतार्थदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते । आदावन्ते च वस्तूनामविसंवादि यत्स्थितम् ॥ २८ ॥

yathābhūtārthadarśitvādvāsanā na pravartate | ādāvante ca vastūnāmavisamvādi yatsthitam || 28 ||

When a person sees things exactly as they are, desire does not arise. In everything, from its beginning to its end, there is something that stays the same and never deceives.

जब कोई चीज़ों को ठीक वैसा ही देखता है जैसी वे सचमुच हैं, तो वासना पैदा नहीं होती। हर चीज़ में, उसके शुरू से लेकर आखिर तक, कुछ ऐसा रहता है जो कभी नहीं बदलता और कभी धोखा नहीं देता।

5.92.29

रूपं तद्दर्शनं ज्ञानं क्षीयते तेन वासना । निःसङ्गव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् ॥ २९ ॥

rūpaṃ taddarśanaṃ jñānaṃ kṣīyate tena vāsanā | niḥsaṅgavyavahāritvādbhavabhāvanavarjanāt || 29 ||

That is the true form, and seeing it truly is knowledge. Through that knowledge desire wastes away, because a person now deals with the world without any attachment, and because every thought of becoming is given up.

वही असली रूप है, और उसे ठीक से देखना ही ज्ञान है। उस ज्ञान से वासना घटती जाती है, क्योंकि अब इंसान बिना किसी लगाव के दुनिया से व्यवहार करता है, और बनने की हर सोच छोड़ दी जाती है।

5.92.30

शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते । वासनाविभवे नष्टे न चित्तं संप्रवर्तते ॥ ३० ॥

śarīranāśadarśitvādvāsanā na pravartate | vāsanāvibhave naṣṭe na cittaṃ saṃpravartate || 30 ||

When a person sees that the body must perish, desire does not arise. And when this great mass of desires is destroyed, the mind itself stops working.

जब कोई देखता है कि शरीर एक दिन नष्ट हो जाएगा, तो वासना पैदा नहीं होती। और जब वासनाओं का यह बड़ा ढेर खत्म हो जाता है, तो मन खुद भी काम करना बंद कर देता है।

5.92.31

संशान्ते पवनस्पन्दे यथा पांसुर्नभस्तले । यः प्राणपवनस्पन्दश्चित्तस्पन्दः स एव हि ॥ ३१ ॥

saṃśānte pavanaspannde yathā pāṃsurnabhastale | yaḥ prāṇapavanaspanndaścittaspanndaḥ sa eva hi || 31 ||

Just as dust in the sky settles when the movement of the wind is stilled, so the movement of the life-breath is exactly the movement of the mind.

जैसे आकाश में उड़ती धूल हवा का बहना रुकते ही बैठ जाती है, वैसे ही साँस की गति और मन की गति असल में एक ही चीज़ है।

5.92.32

तस्माज्जगति जायन्ते पांसवोऽवकरादिव । प्राणस्पन्दजये यत्नः कर्तव्यो धीमतोच्चकैः ॥ ३२ ॥

tasmājjagati jāyante pāṃsavo'vakarādiva | prāṇaspandajaye yatnaḥ kartavyo dhīmato'ccakaiḥ || 32 ||

That is why dust rises in the world, as if from a rubbish heap. So a wise person should make a great, strong effort to conquer the movement of the breath.

इसी वजह से दुनिया में धूल उठती है, जैसे कूड़े के ढेर से उठती है। इसलिए समझदार इंसान को साँस की गति पर काबू पाने के लिए बड़ी मेहनत करनी चाहिए।

5.92.33

उपविश्योपविश्यैकचित्तकेन मुहुर्मुहुः । अथवैनं क्रमं त्यक्त्वा चित्ताक्रमणमेव चेत् ॥ ३३ ॥

upaviśyopaviśyaikacittakena muhurmuhuḥ | athavainaṃ kramam tyaktvā cittākramaṇameva cet || 33 ||

One way is to sit down again and again, holding the mind on a single point, over and over. Or, instead, giving up this slow, step-by-step way, a person may choose to seize the mind directly.

एक तरीका है बार-बार बैठकर मन को एक ही जगह पर टिकाए रखना। या फिर, इस धीरे-धीरे वाले तरीके को छोड़कर, कोई सीधे मन को पकड़ने का रास्ता चुन सकता है।

5.92.34

रोचते तत्तदाप्नोषि कालेन बहुना पदम् । न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम् ॥ ३४ ॥

rocate tattadāpnoṣi kālena bahunā padam | na śakyate mano jetuṃ vinā yuktimaninditām || 34 ||

Whichever of these you like, follow that, and after a long time you will reach the goal. The mind cannot be conquered without a sound method.

इनमें से जो भी तुम्हें ठीक लगे, वही अपनाओ, और लंबे समय बाद तुम मंज़िल तक पहुँच जाओगे। बिना किसी सही तरीके के मन पर जीत हासिल नहीं की जा सकती।

5.92.35

अङ्कुशेन विना मत्तं यथा दुष्टं मतङ्गजम् । अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसङ्गम एव च ॥ ३५ ॥

aṅkuśena vinā mattam yathā duṣṭam mataṅgajam | adhyātmavidyādhigamaḥ sādhusaṅgama eva ca || 35 ||

A wild, vicious elephant in rut cannot be controlled without a goad. In the same way, the mind is mastered only by gaining true spiritual knowledge and by keeping the company of good people.

मस्त और खतरनाक हाथी को अंकुश के बिना काबू में नहीं किया जा सकता। ठीक उसी तरह, मन पर जीत सच्चे आत्मज्ञान से और अच्छे लोगों के साथ रहने से ही मिलती है।

5.92.36

वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् । एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल ॥ ३६ ॥

vāsanāsamparityāgaḥ prāṇaspandanirodhanam | etāstā yuktayaḥ puṣṭāḥ santi cittajaye kila || 36 ||

Giving up desire completely and stopping the movement of the breath are indeed strong, solid ways to conquer the mind.

वासनाओं को पूरी तरह छोड़ देना और साँस की गति को रोक देना, ये दोनों मन पर जीत पाने के सचमुच मज़बूत और ठोस तरीके हैं।

5.92.37

याभिस्तज्जीयते क्षिप्रं धाराभिरिव भूरजः । सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये ॥ ३७ ॥

yābhistajjīyate kṣipraṃ dhārābhiriva bhūrajaḥ | satīṣu yuktiṣvetāsu haṭhānniyamayanti ye || 37 ||

By these methods the mind is conquered quickly, just as streams of rain quickly settle the dust of the earth. Yet even when such true methods are at hand, there are some who instead try to force the mind under control.

इन तरीकों से मन जल्दी काबू में आ जाता है, ठीक वैसे ही जैसे बारिश की धाराएँ ज़मीन की धूल को झट से बैठा देती हैं। फिर भी, ऐसे सही तरीके होते हुए भी, कुछ लोग मन को ज़बरदस्ती काबू में करने की कोशिश करते हैं।

5.92.38

चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽञ्जनैः । विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाच्चेतसो जयम् ॥ ३८ ॥

cetaste dīpamutsṛjya vinighnanti tamo'ñjanaiḥ | vimūḍhāḥ kartumudyuktā ye haṭhāccetaso jayam || 38 ||

Those foolish people who are bent on conquering the mind by force are like someone who throws away the lamp and tries to beat away the darkness with dark eye-salve.

जो मूर्ख लोग ज़बरदस्ती मन को जीतने पर तुले रहते हैं, वे उस आदमी जैसे हैं जो दीये को फेंककर काले सुरमे से अंधेरे को मिटाने की कोशिश करे।

5.92.39

ते निबध्नन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं बिसतन्तुभिः । चित्तं चित्तस्य वाऽदूरं संस्थितं स्वशरीरकम् ॥ ३९ ॥

te nibadhnanti nāgendramunmattaṃ bisatantubhiḥ | cittaṃ cittasya vā'dūraṃ saṃsthitaṃ svaśarīrakam || 39 ||

They try to tie up a raging elephant with threads of lotus fiber. It is the same as trying to hold the mind, which is not far away at all, it sits right there in its own body.

वे एक उन्मत्त हाथी को कमल के रेशों से बाँधने की कोशिश करते हैं। यह वैसा ही है जैसे मन को पकड़ने की कोशिश करना, जो कहीं दूर नहीं, अपने ही शरीर में मौजूद है।

5.92.40

साधयन्ति समुत्सृज्य युक्तिं ये तान्हठान्विदुः । भयाद्भयमुपायान्ति क्लेशात्क्लेशं व्रजन्ति ते ॥ ४० ॥

sādhayanti samutsṛjya yuktiṃ ye tānhaṭhānviduḥ | bhayādbhayamupāyānti kleśātkleśaṃ vrajanti te || 40 ||

As for those who give up the right method and try to force it instead, know that this is only force. They go from one fear to another, and from one suffering to the next.

जो लोग सही तरीका छोड़कर ज़बरदस्ती से पाने की कोशिश करते हैं, समझ लो कि यह सिर्फ ज़ोर-ज़बरदस्ती है। वे एक डर से दूसरे डर में जाते हैं, और एक दुख से दूसरे दुख में पड़ते हैं।

5.92.41

निर्धृतिं नाधिगच्छन्ति दुर्भगा इव जन्तवः । भ्रमन्ति गिरिकूटेषु फलपल्लवभोजनाः ॥ ४१ ॥

nirdhṛtiṃ nādhigacchanti durbhagā iva jantavaḥ | bhramanti girikūṭeṣu phalapallavabhojanāḥ || 41 ||

They never find peace, like unlucky wild animals. They wander over mountain peaks, eating nothing but fruit and leaves.

उन्हें कभी चैन नहीं मिलता, जैसे बदनसीब जंगली जानवर। वे पहाड़ों की चोटियों पर भटकते रहते हैं, और सिर्फ फल और पत्ते खाकर गुज़ारा करते हैं।

5.92.42

मुग्धमुग्धधियो भीता वराका हरिणा इव । मतिरालूनशीर्णाङ्गी तदीया पेलवाङ्गिका ॥ ४२ ॥

mugdhamugdhadhiyo bhītā varākā hariṇā iva| matirālūnaśīrṇāṅgī tadīyā pelavāṅgikā || 42 ||

Their minds are utterly confused and frightened, like pitiful, timid deer. Their understanding becomes like a delicate woman whose limbs have been cut and left withered.

उनका मन पूरी तरह घबराया और डरा हुआ रहता है, जैसे बेचारे डरपोक हिरण। उनकी समझ एक नाज़ुक स्त्री जैसी हो जाती है जिसके अंग काटकर मुरझा दिए गए हों।

5.92.43

न क्वचिद्याति विश्वासं मृगी ग्रामगता यथा । कल्लोलकलितं चेतस्तेषां जल इवाऽहिते ॥ ४३ ॥

na kvacidyāti viśvāsaṃ mṛgī grāmagatā yathā| kallolakalitaṃ cetasteṣāṃ jala ivā'hite || 43 ||

Their mind never trusts anything, like a doe that has wandered into a village. Their mind, tossed about by waves, is like the water of a dangerous, stormy pond.

उनका मन किसी पर भरोसा नहीं करता, ठीक उस हिरणी की तरह जो गाँव में भटक आई हो। उनका मन लहरों से हिलता रहता है, जैसे किसी खतरनाक, तूफानी तालाब का पानी।

5.92.44

प्रोह्यते प्रपतद्दूरं तृणं गिरिनदीष्विव । कालं यज्ञतपोदानतीर्थदेवार्चनभ्रमैः ॥ ४४ ॥

prohyate prapataddūraṃ tṛṇaṃ girinadīṣviva| kālaṃ yajñatapodānatīrthadevārcanabhramaiḥ || 44 ||

Their mind is swept far away, tumbling helplessly, like a blade of grass in a mountain torrent, spending all its time on the empty round of sacrifices, penances, gifts, pilgrimages, and the worship of gods.

उनका मन दूर तक बहता चला जाता है, बेबस होकर गिरता हुआ, जैसे पहाड़ी नदी में एक तिनका, और अपना सारा समय यज्ञ, तप, दान, तीर्थयात्रा और देवताओं की पूजा के बेकार चक्करों में गँवा देता है।

5.92.45

चिरमाधिशतोपेताः क्षपयन्ति मृगा इव । आत्मतत्त्वं विधिवशात्कदाचित्केचिदेव ते ॥ ४५ ॥

ciramādhiśatopetāḥ kṣapayanti mṛgā iva| ātmatattvaṃ vidhivaśātkadācitkecideva te || 45 ||

Long troubled by hundreds of mental worries, they waste themselves away like animals. Only a rare few among them, by the chance of fate, ever come to know the truth of the self.

सैकड़ों मानसिक चिंताओं से लंबे समय तक परेशान रहकर, वे जानवरों की तरह खुद को गँवा देते हैं। उनमें से बस कोई-कोई ही, किस्मत से, कभी अपने असली स्वरूप को जान पाता है।

5.92.46

दुःखदोषशतादग्धा विदन्ति न विदन्ति वा । आगमापायिनोऽनित्या नरकस्वर्गमानुषैः ॥ ४६ ॥

duḥkhadoṣaśatādagdhā vidanti na vidanti vā| āgamāpāyino'nityā narakasvargamānuṣaiḥ || 46 ||

Burned by hundreds of sufferings and faults, they may know the truth, or they may not. Through births as beings of hell, of heaven, or as humans, everything keeps coming and going, nothing lasts.

सैकड़ों दुखों और दोषों से जले हुए, वे सच को जान भी सकते हैं और नहीं भी। नरक, स्वर्ग या मनुष्य के रूप में जन्म लेते हुए, सब कुछ आता-जाता रहता है, कुछ भी टिकता नहीं।

5.92.47

पातोत्पातकराकाराः क्षीयन्ते कन्दुका इवैतो गच्छन्ति नरकं ततः स्वर्गमिहैव च ॥ ४७ ॥

pātotpātakarākārāḥ kṣīyante kandukā ivaito gacchanti narakaṃ tataḥ svargamihaiva ca || 47 ||

Taking the shape of falling and rising, again and again, they wear themselves out like bouncing balls. These beings go to hell, then to heaven, then back here to this world.

बार-बार गिरते और उठते हुए, वे उछलती हुई गेंद की तरह घिस-घिस कर खत्म होते जाते हैं। ये जीव कभी नरक जाते हैं, कभी स्वर्ग, तो कभी फिर इसी धरती पर वापस आते हैं।

5.92.48

आवृत्तिभिर्निवर्तन्ते सरसीव तरङ्गकाःतस्माच्चैतां परित्यज्य दुर्दृष्टिं रघुनन्दन ॥ ४८ ॥

āvṛttibhirnivartante sarasīva taraṅgakāḥtasmāccaitāṃ parityajya durdṛṣṭiṃ raghunandana || 48 ||

These beings come back again and again, cycling like ripples on a lake. So, Rama, give up this wrong way of seeing.

ये जीव तालाब में उठने वाली लहरों की तरह बार-बार लौट आते हैं। इसलिए, हे राम, यह गलत नज़रिया छोड़ दो।

5.92.49

शुद्धां संविदमाश्रित्य वीतरागः स्थिरो भवज्ञानवानेव सुखवान्ज्ञानवानेव जीवतिज्ञानवानेव बलवांस्तस्माज्ज्ञानमयो भव ॥ ४९ ॥

śuddhāṃ saṃvidamāśritya vītarāgaḥ sthiro bhavajñānavāneva sukhavānjñānavāneva jīvatijñānavāneva balavāṃstasmājjñānamayo bhava || 49 ||

Take refuge in pure awareness. Be free of all attachment, and stay steady. Only the person who has true knowledge is happy; only the person who has knowledge truly lives; only the person who has knowledge is strong. So become full of knowledge.

शुद्ध चेतना का सहारा लो। हर लगाव से मुक्त रहो, और स्थिर बने रहो। जिसे सच्चा ज्ञान है, वही सुखी है; जिसे ज्ञान है, वही सचमुच जीता है; जिसे ज्ञान है, वही ताकतवर है। इसलिए ज्ञान से भरपूर बन जाओ।

5.92.50

संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं संवित्पदं विकलनं कलयन्महात्मन्हृद्येव तिष्ठ कलनारहितः क्रियां तु कुर्वन्नकर्तृपदमेत्य शमोदितश्रीः ॥ ५० ॥

saṃvedyavarjitamanuttamamādyamekaṃ saṃvitpadaṃ vikalanaṃ kalayanmahātmanhṛdyeva tiṣṭha kalanārahitaḥ kriyāṃ tu kurvannakartṛpadametya śamoditaśrīḥ || 50 ||

Great one, see without any division that single, first, highest state of pure awareness, the one that can never become an object to be known. Stay settled in your own heart, free of every thought and mental construct. Keep on acting, but act as one who is not the doer, and shine with the glow that peace brings.

हे महात्मा, शुद्ध चेतना की उस अकेली, सबसे पहली, सबसे ऊँची अवस्था को बिना किसी भेद के देखो, जिसे कभी जानने की कोई चीज़ नहीं बनाया जा सकता। अपने ही दिल में टिके रहो, हर सोच और मन की उलझन से मुक्त होकर। काम करते रहो, मगर ऐसे जैसे तुम करने वाले हो ही नहीं, और शांति से आई चमक के साथ रहो।

Chapter 93

5.93.1

तामसङ्गाभिधां विद्धि यावद्देहं च भाविनी । तया यत्क्रियते कर्म न तद्बन्धाय वै पुनः ॥ १ ॥

tāmasaṅgābhidhāṃ viddhi yāvaddehaṃ ca bhāvinī | tayā yatkriyate karma na tadbandhāya vai punaḥ || 1 ||

For as long as the body lasts, know it by the name non-attachment. It goes on being there, and whatever action is done through it does not bind you again.

जब तक शरीर है, तब तक इसे 'अनासक्ति' के नाम से जानो। यह बनी रहती है, और इसके ज़रिए जो भी काम किया जाता है, वह फिर से बंधन का कारण नहीं बनता।

5.93.2

तामसङ्गाभिधां विद्धि यावद्देहं च भाविनीतया यत्क्रियते कर्म न तद्बन्धाय वै पुनः ॥ २ ॥

tāmasaṅgābhidhāṃ viddhi yāvaddehaṃ ca bhāvinītayā yatkriyate karma na tadbandhāya vai punaḥ || 2 ||

For as long as the body lasts, know it by the name non-attachment. It goes on being there, and whatever action is done through it does not bind you again.

जब तक शरीर है, तब तक इसे 'अनासक्ति' के नाम से जानो। यह बनी रहती है, और इसके ज़रिए जो भी काम किया जाता है, वह फिर से बंधन का कारण नहीं बनता।

5.93.3

किंचित्प्रौढविचारं तु नरं वैराग्यपूर्वकम् । संश्रयन्ति गुणाः शुद्धाः सरः पूर्णमिवाण्डजः ॥ ३ ॥

kiñcitprauḍhavicāraṃ tu naraṃ vairāgyapūrvakam | saṃśrayanti guṇāḥ śuddhāḥ saraḥ pūrṇamivāṇḍajaḥ || 3 ||

A man whose power to think things through has grown a little, along with dispassion, draws good, pure qualities to himself - the way a bird goes to a lake full of water.

जिस आदमी की सोच-समझ थोड़ी पक चुकी हो और साथ में वैराग्य भी हो, उसमें अच्छे और शुद्ध गुण खुद खिंचे चले आते हैं, जैसे कोई पक्षी पानी से भरी झील की ओर जाता है।

5.93.4

सम्यग्विचारिणं प्राज्ञं यथाभूतावलोकिनम् । आसादयन्त्यपि स्फारा नाविद्याविभवा भृशम् ॥ ४ ॥

samyagvicāriṇaṃ prājñaṃ yathābhūtāvalokinam | āsādayantyapi sphārā nāvidyāvibhavā bhṛśam || 4 ||

Even the full strength of ignorance cannot seriously touch a wise man who inquires rightly and sees things exactly as they are.

जो समझदार आदमी सही ढंग से सोचता-विचारता है और चीज़ों को जैसी हैं वैसा ही देखता है, उसे अज्ञान की पूरी ताक़त भी बुरी तरह छू नहीं पाती।

5.93.5

किं कुर्वन्तीह विषया मानस्यो वृत्तयस्तथा । आधयो व्याधयो वापि सम्यग्दर्शनसन्मतेः ॥ ५ ॥

kiṃ kurvantīha viṣayā mānasyo vṛttayastathā | ādhayo vyādhayo vāpi samyagdarśanasanmateḥ || 5 ||

What can the objects of the senses do to a man whose vision is right? What can the workings of the mind do to him, or his worries, or his illnesses?

जिस आदमी की नज़र सीधी और सही है, उसका इंद्रियों के विषय क्या बिगाड़ सकते हैं? उसका मन की उथल-पुथल क्या बिगाड़ सकती है, या उसकी चिंताएँ, या उसकी बीमारियाँ?

5.93.6

क्व भ्रमत्पवनापूरास्तडित्पटलपाटलाः । पुष्करावर्तजलदा गृहीता बालमुष्टिभिः ॥ ६ ॥

kva bhramatpavanāpūrāstḍitpaṭalapāṭalāḥ | puṣkarāvartajaladā gṛhītā bālamuṣṭibhiḥ || 6 ||

Where are the great Pushkaravarta clouds - swirling with wind, glowing pink with sheets of lightning - ever caught in the fist of a child?

कहाँ हैं वे बड़े पुष्करावर्त बादल, हवा के झोंकों से घूमते, बिजली की चमक से गुलाबी, कि वे किसी बच्चे की मुट्ठी में पकड़े जाएँ?

5.93.7

क्व नभोमध्यसंस्थेन्दुर्मुग्धैर्मणिसमुद्गकैः । मुग्धयाऽङ्गनया बद्धो मुग्धेन्दीवरशङ्कया ॥ ७ ॥

kva nabhomadhyasaṃsthendurmugdhairmaṇisamudgakaiḥ | mugdhayā'ṅganayā baddho mugdhendīvaraśaṅkayā || 7 ||

Where is the moon that sits in the middle of the sky - ever shut inside a foolish woman's jewel box, tied up there because she mistook it, in her innocence, for a blue lotus?

कहाँ है वह चाँद, जो आसमान के बीचों-बीच टँगा है, कि कोई भोली-भाली स्त्री उसे नीलकमल समझ बैठे और अपने गहनों के डिब्बे में बंद करके बाँध दे?

5.93.8

क्व कटप्रोच्चलद्भृङ्गमण्डलोत्पलशेखराः । मुग्धस्त्रीश्वासमधुरैर्मशकैर्मथिता गजाः ॥ ८ ॥

kva kaṭaprocchaladbhṛṅgamaṇḍalotpalśekharāḥ | mugdhastrīśvāsamadhurairmaśakairmathitā gajāḥ || 8 ||

Where are the great elephants, crowned with wreaths of lotus flowers, with swarms of bees rising off the musth on their temples - ever troubled by mosquitoes as soft as the breath of an innocent woman?

कहाँ हैं वे बड़े हाथी, जिनके सिर पर कमल के फूलों की माला है और जिनके मद-भरे कनपटी पर भौंरों के झुंड मंडरा रहे हैं, कि वे किसी भोली स्त्री की साँस जैसे कोमल मच्छरों से परेशान हो जाएँ?

5.93.9

क्वेभमुक्ताफलोल्लासलसत्सन्नखपञ्जराः । सिंहाः समरसंरब्धा हरिणैः प्रविमर्दिताः ॥ ९ ॥

kvebhmuktāphalollāsalasatsannakhapañjarāḥ | siṃhāḥ samarasaṃrabdhā hariṇaiḥ pravimarditāḥ || 9 ||

Where are the lions, whose claws truly shine bright as pearls torn from elephants' heads, fierce with the rage of battle - ever crushed by deer?

कहाँ हैं वे शेर, जिनके पंजे सचमुच हाथियों के सिर से निकले मोतियों जैसे चमकते हैं, जो लड़ाई के जोश से भरे हैं, कि वे हिरणों से कुचल दिए जाएँ?

5.93.10

क्व विषोल्लासनिर्यासदग्धोन्नतवनद्रुमाः । क्षुधिताजगराः क्षुब्धैर्निगीर्णा बालदर्दुरैः ॥ १० ॥

kva viṣollāsaniryāsadagdhonnatavanadrumāḥ | kṣudhitājagarāḥ kṣubdhairnigīrṇā bāladarduraiḥ || 10 ||

Where are the hungry pythons, whose oozing venom is strong enough to scorch tall forest trees - ever swallowed by excited young frogs?

कहाँ हैं वे भूखे अजगर, जिनके ज़हर की चुहचुहाहट बड़े-बड़े जंगली पेड़ों तक को जला सकती है, कि वे उछलते हुए छोटे मेंढकों से निगल लिए जाएँ?

5.93.11

क्व प्राप्तभूतिको धीरो ज्ञातज्ञेयो विवेकवान्। आक्रान्तः किल विक्रान्तोविषयेन्द्रियदस्युभिः ॥ ११ ॥

kva prāptabhūtiko dhīro jñātajñeyo vivekavān | ākrāntaḥ kila vikrāntovisayendriyadasyubhiḥ || 11 ||

Where is the steady, wise man, who has attained true greatness, who knows all there is to know, who has discrimination - where is he ever truly overpowered by the thieves that are the senses and their objects?

कहाँ है वह धीर, समझदार आदमी, जिसने सच्ची बड़ाई पा ली हो, जो जानने लायक सब कुछ जानता हो, जिसमें विवेक हो, कहाँ है वह, कि इंद्रियों और उनके विषयों के डाकू सच में उस पर काबू पा लें?

5.93.12

विचारधियमप्रौढां हरन्ति विषयारयः। प्रचण्डपवनामृद्वीं कृत्तवृन्तां लतामिव ॥ १२ ॥

vicāradhiyamaprauḍhāṃ haranti viṣayārayaḥ | pracaṇḍapavanāmṛdvīṃ kṛttavṛntāṃ latāmiva || 12 ||

The objects of the senses are enemies: they carry off the power to reason while it is still young and weak, the way a fierce wind carries off a soft, tender vine whose stem has been cut.

इंद्रियों के विषय दुश्मन की तरह हैं: वे सोच-समझ की ताक़त को, जब तक वह कच्ची और कमज़ोर होती है, उठा ले जाते हैं, जैसे तेज़ हवा किसी नाज़ुक बेल को उठा ले जाती है जिसका डंठल कट चुका हो।

5.93.13

न विवेकलवं प्रौढं भंक्तुं शक्ता दुराशयाः। कल्पक्षोभमहाधीरं शैलं मन्दानिला इव ॥ १३ ॥

na vivekalavaṃ prauḍhaṃ bhaṅktuṃ śaktā durāśayāḥ | kalpakṣobhamahādhīraṃ śailaṃ mandānilā iva || 13 ||

Wicked enemies cannot break even a small piece of discrimination once it has grown mature and strong - just as a gentle breeze cannot shake a mountain so steady that it would stand firm even through the upheaval that ends a whole world age.

बुरे मन वाले दुश्मन विवेक के एक छोटे टुकड़े को भी नहीं तोड़ पाते, जब वह पक चुका हो और मज़बूत हो गया हो, जैसे हल्की हवा किसी ऐसे पहाड़ को नहीं हिला पाती जो पूरे युग के अंत की उथल-पुथल में भी डटा रहे।

5.93.14

अगृहीतमहापीठं विचारकुसुमद्रुमम्। चिन्तावात्याविधुन्वन्ति नास्थिरस्थितिसुस्थितम् ॥ १४ ॥

agṛhītamahāpīṭhaṃ vicārakusumadrumam | cintāvātyāvidhunvanti nāsthirasthitisusthitam || 14 ||

Storms of worry can never shake the flowering tree of discrimination once its great trunk cannot be seized by anything and it stands firmly, never unsteady.

चिंता के तूफ़ान विवेक के फूलों से लदे पेड़ को कभी नहीं हिला पाते, जब उसका बड़ा तना किसी की पकड़ में न आए और वह मज़बूती से, बिना डगमगाए खड़ा रहे।

5.93.15

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा। न विचारमयं चेतो यस्यासौ मृत उच्यते ॥ १५ ॥

gacchatastiṣṭhato vāpi jāgrataḥ svapato'pi vā | na vicāramayaṃ ceto yasyāsau mṛta ucyate || 15 ||

Whether he is walking or standing still, awake or asleep - a man whose mind does not hold discrimination is called a dead man.

चाहे वह चल रहा हो या खड़ा हो, चाहे जाग रहा हो या सो रहा हो, जिस आदमी का मन विवेक से भरा नहीं है, वह मरा हुआ कहलाता है।

5.93.16

किमिदं स्याज्जगत्किं स्याद्देहमित्यनिशं शनैः । विचारयाध्यात्मदृशा स्वयं वा सज्जनैः सह ॥ १६ ॥

kimidaṃ syājjagatkiṃ syāddehamityaniśaṃ śanaiḥ | vicārayādhyātmadṛśā svayaṃ vā sajjanaḥ saha || 16 ||

Ask again and again, quietly: what is this world, what is this body? Look into it with the eye turned within, whether alone or together with good people.

बार-बार, धीरे-धीरे यह पूछो: यह जगत क्या है, यह शरीर क्या है? इसे भीतर की नज़र से देखो, चाहे अकेले या अच्छे लोगों के साथ।

5.93.17

अन्धकारहरेणाशु विचारेण परं पदम् । दृश्यते विमलं वस्तु प्रदीपेनेव भास्वता ॥ १७ ॥

andhakārahareṇāśu vicāreṇa paraṃ padam | dṛśyate vimalaṃ vastu pradīpeneva bhāsvatā || 17 ||

Discrimination quickly clears away darkness. Through it, the highest state - the one pure reality - is seen, the way a bright lamp lets you see a thing clearly.

विवेक अंधेरे को झट से मिटा देता है। इसी से सबसे ऊँची अवस्था, वह एक शुद्ध सच्चाई, दिखाई देती है, जैसे तेज़ जलता दीपक किसी चीज़ को साफ़ दिखा देता है।

5.93.18

ज्ञानेन सर्वदुःखानां विनाश उपजायते । कृतालोकविलासेन तमसामिव भानुना ॥ १८ ॥

jñānena sarvaduḥkhānāṃ vināśa upajāyate | kṛtālokavilāsena tamasāmiva bhānunā || 18 ||

Knowledge destroys every sorrow, the way the sun destroys darkness simply by spreading its light.

ज्ञान हर दुख को मिटा देता है, जैसे सूरज सिर्फ़ अपनी रोशनी फैलाकर अंधेरे को मिटा देता है।

5.93.19

ज्ञाने प्रकटतां याते ज्ञेयं व्ययमुदेत्यलम् । रवावभ्युदिते भूमावालोक इव निर्मलः ॥ १९ ॥

jñāne prakaṭatāṃ yāte jñeyaṃ vyayamudetyalam | ravāvabhyudite bhūmāvāloka iva nirmalaḥ || 19 ||

Once knowledge becomes clear, whatever there still is to know comes to a complete end - the way, when the sun rises over the earth, a clear, pure light appears.

जब ज्ञान साफ़ हो जाता है, तब जो कुछ अभी जानना बाक़ी रहता है, वह पूरी तरह ख़त्म हो जाता है, जैसे सूरज के धरती पर उगते ही चारों तरफ़ साफ़, उजली रोशनी फैल जाती है।

5.93.20

येन शास्त्रविचारेण ब्रह्मतत्त्वं प्रबुद्ध्यते । तद्भानमुच्यते ज्ञेयादभिन्नमिव संस्थितम् ॥ २० ॥

yena śāstravicāreṇa brahmatattvaṃ prabuddhyate | tadbhānamucyate jñeyādabhinnamiva saṃsthitam || 20 ||

The inquiry into scripture that awakens a person to the truth of Brahman - that very light of understanding is said to stand as if it were not different from the thing it knows.

शास्त्रों पर किया गया वह विचार, जिससे ब्रह्म का सच जाग उठता है, उस समझ की रोशनी को ऐसा माना जाता है मानो वह उस चीज़ से अलग ही न हो, जिसे वह जानती है।

5.93.21

विचारोत्थात्मविज्ञानं ज्ञानमंग विदुर्बुधाः। ज्ञेयं तस्यान्तरेवास्ति माधुर्यं पयसो यथा ॥ २१ ॥

vicārothātmavijñānaṃ jñānamanga vidurbudhāḥ| jñeyaṃ tasyāntarevāsti mādhuryaṃ payaso yathā || 21 ||

The wise know, dear one, that true knowledge is the understanding of the self that comes from inquiry. What is to be known lies within that very knowledge - the way sweetness lies within milk.

प्रिय, समझदार लोग जानते हैं कि सच्चा ज्ञान आत्मा की वह समझ है जो विचार से उपजती है। जो जानने लायक है, वह उसी ज्ञान के भीतर ही है, जैसे दूध के भीतर ही उसकी मिठास होती है।

5.93.22

सम्यग्ज्ञानसमालोकः पुमान्ज्ञेयमयः स्वयम्। भवत्यापीतमैरेयः सदा मदमयो यथा ॥ २२ ॥

samyagjñānasamālokaḥ pumānjñeyamayaḥ svayam| bhavatyāpītamaireyaḥ sadā madamayo yathā || 22 ||

A man lit up by right knowledge himself becomes one with what is known - the way a man who has drunk wine always becomes full of its intoxication.

सही ज्ञान से रोशन हुआ आदमी खुद ही उस चीज़ जैसा हो जाता है जिसे वह जानता है, जैसे शराब पीने वाला आदमी हमेशा उसके नशे से भर जाता है।

5.93.23

समं स्वरूपममलं ज्ञेयं ब्रह्म परं विदुः। ज्ञानाभिगममात्रेण तत्स्वयं संप्रसीदति ॥ २३ ॥

samaṃ svarūpamamalaṃ jñeyaṃ brahma paraṃ viduḥ| jñānābhigamamātreṇa tatsvayaṃ saṃprasīdati || 23 ||

The wise know the highest Brahman as the one thing to be known, whose nature is the same everywhere and free of any stain. The moment knowledge reaches it, it becomes clear all by itself.

समझदार लोग सबसे ऊँचे ब्रह्म को ही जानने लायक चीज़ मानते हैं, जिसका स्वभाव हर जगह एक-सा और हर दाग़ से मुक्त है। ज्ञान के पहुँचते ही वह अपने आप साफ़ हो जाता है।

5.93.24

ज्ञानवानुदितानन्दो न क्वचित्परिमज्जति। जीवन्मुक्तो गतासङ्गः सम्राडात्मेव तिष्ठति ॥ २४ ॥

jñānavānuditānando na kvacitparimajjati| jīvanmukto gatāsaṅgaḥ samrāḍātmeve tiṣṭhati || 24 ||

A man of knowledge, in whom joy has dawned, never drowns in trouble anywhere. Set free while still alive, with no attachment left, he stands like a king who rules over himself.

जिस आदमी में ज्ञान है और जिसमें आनंद जाग चुका है, वह कहीं भी मुसीबत में नहीं डूबता। जीते-जी मुक्त, बिना किसी लगाव के, वह ऐसे खड़ा रहता है जैसे कोई राजा जो खुद अपना मालिक हो।

5.93.25

ज्ञानवान्हृद्यशब्देषु वीणावंशरवादिषु। कामिन्याः कान्तगीतेषु संभोगमलिनेषु च ॥ २५ ॥

jñānavānhṛdyaśabdeṣu vīṇāvaṃśaravādiṣu| kāminyāḥ kāntagīteṣu saṃbhogamalineṣu ca || 25 ||

The man of knowledge - amid sounds that please the heart, such as the notes of the lute and the flute, amid the lovely songs of a passionate woman, and amid pleasures soiled by physical union...

समझदार आदमी, मन को भाने वाली आवाज़ों के बीच, जैसे वीणा और बाँसुरी की धुन, किसी कामातुर स्त्री के मीठे गीतों के बीच, और भोग से मैले सुखों के बीच...

5.93.26

वसन्तमदमत्तानां षट्पदानां स्वनेषु च । प्रावृट्प्रसरपुष्पेषु जलदस्तनितेषु च ॥ २६ ॥

vasantamadamattānāṃ ṣaṭpadānāṃ svaneṣu ca | prāvṛṭprasarapuṣpeṣu jaladastaniteṣu ca || 26 ||

And in the humming of bees drunk with the excitement of spring, in the flowers that spread through the rainy season, and in the rumble of the clouds.

और वसंत के नशे में झूमते भौंरों की गुनगुनाहट में, बरसात में खिलने वाले फूलों में, और बादलों की गरज में।

5.93.27

उत्ताण्डवशिखण्डेषु केकाकलरवेषु च । रणिताम्भोदखण्डेषु सारसक्वणितेषु च ॥ २७ ॥

uttāṇḍavaśikhaṇḍeṣu kekākalaraveṣu ca | raṇitāmbhodakhaṇḍeṣu sārasakvaṇiteṣu ca || 27 ||

And in the wild dance of peacocks, in the sweet cries of peacocks, in the rumbling patches of clouds, and in the calls of cranes.

और मोरों के जंगली नाच में, मोरों की मीठी पुकार में, गरजते बादलों के टुकड़ों में, और सारस पक्षियों की बोली में।

5.93.28

कर्तर्यादिकरान्तेषु गम्भीरमुरजेषु च । ततावनद्धसुषिरचित्रवाद्यस्वनेषु च ॥ २८ ॥

kartaryādikarānteṣu gambhīramurajeṣu ca | tatāvanaddhasuṣiracitravādyasvaneṣu ca || 28 ||

And in cymbals and other hand-instruments, in the deep sound of drums, and in the notes of stringed instruments, skin drums, flutes, and other varied instruments.

और करताल और ऐसे ही हाथ से बजाए जाने वाले बाजों में, ढोल की गहरी आवाज़ में, और तार वाले बाजों, ढोल-मृदंग, बांसुरी और दूसरे तरह-तरह के बाजों की धुन में।

5.93.29

केषुचिन्न निबध्नाति रूक्षेषु मधुरेषु चरणितेषु रतिं राम पद्मेष्विव निशाकरः ॥ २९ ॥

keṣucinna nibadhnāti rūkṣeṣu madhureṣu caraṇiteṣu ratiṃ rāma padmeṣviva niśākaraḥ || 29 ||

He fixes his delight in none of these sounds, whether harsh, sweet, or resounding, O Rama, just as the moon does not delight in the lotus.

इनमें से किसी भी आवाज़ में, चाहे वह कर्कश हो, मीठी हो या गूंजती हो, वह मन नहीं लगाता, हे राम, जैसे चाँद कमल में मन नहीं लगाता।

5.93.30

ज्ञानवान्बालकदलीस्तम्भपल्लवपालिषु । सुरगन्धर्वकन्याङ्गलतानन्दनकेलिषु ॥ ३० ॥

jñānavānbālakadalīstambhapallavapāliṣu | suragandharvakanyāṅgalatānandanakeliṣu || 30 ||

The man of knowledge, amid the rows of soft young shoots on banana-tree trunks, and amid the vine-slender limbs of the daughters of gods and gandharvas at play in the garden of Nandana.

ज्ञानी पुरुष, केले के तने पर उगी कोमल कोंपलों की कतारों में, और नंदन वन में खेलती देवताओं और गंधर्वों की बेटियों के बेल जैसे कोमल अंगों में।

5.93.31

केषु क्वचिन्न बध्नाति स्वायत्तेष्वप्यसक्तधीः । राम स्पर्शरतिं धीरो हंसो मरुमहीष्विव ॥ ३१ ॥

keṣu kvacinnna badhnāti svāyatteṣvapyasaktadhīḥ | rāma sparśaratiṃ dhīro haṃso marumahīṣviva || 31 ||

In none of these, even among things within his own reach, does he, his mind unattached, fix delight in touch anywhere, O Rama; resolute, like a swan on the sands of a desert.

इनमें से किसी में भी, चाहे वे उसकी पहुँच में ही क्यों न हों, वह स्पर्श में कहीं भी मन नहीं लगाता, हे राम; वह धीर पुरुष वैसा ही रहता है जैसे हंस रेगिस्तान की रेत पर।

5.93.32

ज्ञानवान्पिण्डखर्जूरकदम्बपनसादिषु । मृद्वीकौर्वारुकाक्षोटबिम्बजम्बीरजातिषु ॥ ३२ ॥

jñānavānpiṇḍakhajūrakadambapanasādiṣu | mṛdvīkaurvārukākṣoṭabimbaṃbīrajātiṣu || 32 ||

The man of knowledge, amid clustered dates, kadamba fruit, jackfruit, and the like, amid the many kinds of grape, cucumber, walnut, bimba fruit, and citron.

ज्ञानी पुरुष, गुच्छों वाली खजूर, कदंब के फल, कटहल और ऐसे ही फलों में, और कई तरह के अंगूर, ककड़ी, अखरोट, बिंबा फल और नींबू जैसे फलों में।

5.93.33

मदिरामधुमैरेयमाध्वीकासवभूमिषु । दधिक्षीरघृतामिक्षानवनीतौदनादिषु ॥ ३३ ॥

madirāmadhumaireyamādhvīkāsavabhūmiṣu | dadhikṣīraghṛtāmikṣānavanītaudanādiṣu || 33 ||

And amid the many kinds of wine, honey-wine, date-liquor, flower-liquor, and spirits, amid curd, milk, ghee, milk-preserve, fresh butter, cooked rice, and the like.

और कई तरह की शराब, मीठी शराब, खजूर की शराब, फूलों से बनी शराब और तेज़ शराबों में, और दही, दूध, घी, खोया, ताज़ा मक्खन, पके चावल और ऐसी ही चीज़ों में।

5.93.34

षड्रसेषु विचित्रेषु लेह्यपेयविलासिषु । फलेष्वन्येषु मूलेषु शाकेष्वप्यामिषेषु च ॥ ३४ ॥

ṣaḍraseṣu vicitreṣu lehyapeyavilāsiṣu | phaleṣvanyeṣu mūleṣu śākeṣvapyāmiṣeṣu ca || 34 ||

And amid the six tastes in their many forms, amid delicacies for licking and drinking, amid other fruits, roots, vegetables, and even meats.

और छह तरह के रसों की विविधता में, चाटने और पीने की तमाम स्वादिष्ट चीज़ों में, और दूसरे फलों, जड़ों, सब्ज़ियों और मांस तक में।

5.93.35

केषुचिन्नानुबध्नाति तृप्तमूर्तिरसक्तधीः । आस्वादनरतिर्विप्रः स्वशरीरलवेष्विव ॥ ३५ ॥

keṣucinnnānubadhnāti tṛptamūrtirasaktadhīḥ | āsvādanaratirvipraḥ svaśarīralaveṣviva || 35 ||

In none of these does he become attached; his body content, his mind unattached, his relish in tasting is like a Brahmin's relish for pieces of his own flesh.

इनमें से किसी में भी वह आसक्त नहीं होता; उसका शरीर तृप्त है, उसका मन अनासक्त है, स्वाद में उसका आनंद वैसा ही है जैसा किसी ब्राह्मण को अपने ही शरीर के टुकड़े चखने में मिलता है।

5.93.36

ज्ञानवान्यमचन्द्रेन्द्ररुद्रार्कानिलसद्मसु । मेरुमन्दरकैलाससह्यदर्दुरसानुषु ॥ ३६ ॥

jñānavānyamacandrendrarudrārkānilasadmasu | merumandarakailāsasahyadardurasānuṣu || 36 ||

The man of knowledge, amid the abodes of Yama, the Moon, Indra, Rudra, the Sun, and the Wind, and amid the peaks of Meru, Mandara, Kailasa, Sahya, and Dardura.

ज्ञानी पुरुष, यम, चंद्रमा, इंद्र, रुद्र, सूर्य और वायु के धामों में, और मेरु, मंदार, कैलास, सह्य और दर्दुर पर्वतों की चोटियों में।

5.93.37

कौशेयदलजालेषु चन्द्रबिम्बकलादिषु । कल्पपादपकुञ्जेषु देहशोभाविलासिषु ॥ ३७ ॥

kauśeyadalajāleṣu candrabimba kalādiṣu | kalpapādapakuñjeṣu dehaśobhāvilāsiṣu || 37 ||

And amid clusters of silk cloth, amid the moon's orb and its phases, amid groves of wish-granting trees, and amid the displays that adorn the body.

और रेशमी वस्त्रों के ढेरों में, चाँद की गोलाई और उसकी कलाओं में, कल्पवृक्ष के बागों में, और शरीर को सजाने वाली शोभा में।

5.93.38

रत्नकाञ्चनकुड्येषु मुक्तामणिमयेषु च । तिलोत्तमोर्वशीरम्भामेनकाङ्गलतासु च ॥ ३८ ॥

ratnakāñcanakuḍyeṣu muktāmaṇimayeṣu ca | tilottamorvaśīrambhāmenakāṅgalatāsu ca || 38 ||

And amid walls of jewels and gold, amid things made of pearls and gems, and amid the vine-slender limbs of Tilottama, Urvashi, Rambha, and Menaka.

और रत्नों और सोने की दीवारों में, मोतियों और मणियों से बनी चीज़ों में, और तिलोत्तमा, उर्वशी, रंभा और मेनका के बेल जैसे कोमल अंगों में।

5.93.39

केषुचिद्दर्शनं श्रीमान्नाभिवाञ्छत्यसक्तधीः । परिपूर्णमना मानी मौनी शत्रुषु चाचलः ॥ ३९ ॥

keśuciddarśanaṃ śrīmānnābhivāñchatyasaktadhīḥ | paripūrṇamanā mānī maunī śatruṣu cācalaḥ || 39 ||

The glorious one, his mind unattached, does not even wish to see some of these; his mind fully content, self-respecting, silent, and unshaken toward enemies.

वह तेजस्वी पुरुष, जिसका मन अनासक्त है, इनमें से कुछ को देखने की इच्छा तक नहीं करता; उसका मन पूरी तरह संतुष्ट है, वह स्वाभिमानी है, चुप रहता है, और दुश्मनों के सामने भी अडिग रहता है।

5.93.40

ज्ञानवान्कुन्दमन्दारकह्लारकमलादिषु । कुमुदोत्पलपुन्नागकेतक्यगुरुजातिषु ॥ ४० ॥

jñānavānkundamandārakahlārakamalādiṣu | kumudotpalapunnāgaketakyagurujātiṣu || 40 ||

The man of knowledge, amid jasmine, coral-tree flowers, red lotus, lotus, and the rest, amid white water-lily, blue lotus, punnaga, ketaki, and agarwood.

ज्ञानी पुरुष, चमेली, मंदार, कह्लार और कमल जैसे फूलों में, और कुमुद, नीलकमल, पुन्नाग, केतकी और अगर जैसी चीज़ों में।

5.93.41

कदम्बचूतजम्ब्वाम्रकिंशुकाशोकशाखिषु । जपातिमुक्तसौवीरबिम्बपाटलजातिषु ॥ ४१ ॥

kadambacūtajambvāmrakiṃśukāśokasākhiṣu | japātimuktasauvīrabimba pāṭalajātiṣu || 41 ||

And amid the branches of kadamba, mango-blossom, rose-apple, mango, kimshuka, and ashoka trees, amid hibiscus, atimukta creeper, sauvira, bimba, and patala flowers.

और कदंब, चूत, जामुन, आम, किंशुक और अशोक के पेड़ों की डालियों में, और जपा, अतिमुक्त लता, सौवीर, बिंबा और पाटल के फूलों में।

5.93.42

चन्दनागुरुकर्पूरलाक्षामृगमदेषु च । काश्मीरजलवङ्गैलाकङ्कोलतगरादिषु ॥ ४२ ॥

candanāgurukarpūralākṣāmṛgamadeṣu ca | kāśmīrajalavaṅga ilākaṅkolatagarādiṣu || 42 ||

And amid sandalwood, agarwood, camphor, lac, and musk, amid saffron, clove, cardamom, cubeb pepper, tagara root, and the rest.

और चंदन, अगर, कपूर, लाख और कस्तूरी में, और केसर, लौंग, इलायची, ककोल मिर्च, तगर की जड़ और ऐसी ही चीज़ों में।

5.93.43

केषुचिन्न निबध्नाति सौगन्ध्यरतिमेकधीः । समबुद्धिरविक्षोभो मद्यामोदेष्विव द्विजः ॥ ४३ ॥

keṣucinn na nibadhnāti saugandhyaratimekadhīḥ | samabuddhiravikṣobho madyāmodeṣviva dvijaḥ || 43 ||

In none of these does he, single-minded, fix delight in fragrance; equal-minded and undisturbed, like a Brahmin amid the smell of liquor.

इनमें से किसी भी खुशबू में वह, एकाग्रचित्त होकर, मन नहीं लगाता; वह समान भाव वाला और अविचलित रहता है, जैसे कोई ब्राह्मण शराब की गंध के बीच रहता है।

5.93.44

अब्धौ गुडगुडारावे प्रतिश्रुत्खस्वने गिरौ । निनादे च मृगेन्द्राणां न क्षुभ्यति मनागपि ॥ ४४ ॥

abdhau guḍaguḍārāve pratiśrutkhasvane girau | ninmāde ca mṛgendrāṇāṃ na kṣubhyati manāgapi || 44 ||

At the ocean's gurgling roar, at the echo of the sky's rumble rolling through the mountains, and at the roar of lions, he is not shaken even a little.

समुद्र की गुड़गुड़ाती गर्जना में, पहाड़ों से टकराकर गूंजते आकाश के शोर में, और शेरों की दहाड़ में, वह ज़रा भी विचलित नहीं होता।

5.93.45

द्विषद्भेरीनिनादेन पटहारणितेन च । कटुकोदण्डघोषेण न विभेति मनागपि ॥ ४५ ॥

dviṣadbherīninādena paṭahāraṇitena ca | kaṭukodaṇḍaghoṣeṇa na vibheti manāgapi || 45 ||

By the sound of the enemy's war-drums, by the noise of battle-drums, and by the harsh twang of the bow, he is not afraid even a little.

दुश्मन के युद्ध-ढोल की आवाज़ से, रणभेरी के शोर से, और धनुष की कर्कश आवाज़ से, वह ज़रा भी नहीं डरता।

5.93.46

मत्तवारणबृंहासु वेतालकलनासु च । पिशाचरक्षःक्ष्वेडासु मनागपि न कम्पते ॥ ४६ ॥

mattavāraṇabṛṃhāsu vetālakalanāsu ca | piśācarakṣaḥkṣveḍāsu manāgapi na kampate || 46 ||

At the trumpeting of mad elephants, at the clamor of vetalas, and at the yells of pishachas and rakshasas, he trembles not even a little.

मतवाले हाथियों की चिंघाड़ में, वेतालों के शोर में, और पिशाचों व राक्षसों की गर्जना में, वह ज़रा भी नहीं काँपता।

5.93.47

अशनिस्वनघोषेण नगस्फोटरवेण च । ऐरावणनिनादेन सम्यग्ध्यानी न कम्पते ॥ ४७ ॥

aśanisvanaghoṣeṇa nagasphoṭaraveṇa ca | airāvaṇaninādena samyagdhyānī na kampate || 47 ||

By the crash of the thunderbolt, by the sound of a mountain splitting apart, and by the trumpeting of Airavata, the truly meditative man does not tremble.

बिजली की कड़क से, पहाड़ के फटने की आवाज़ से, और ऐरावत हाथी की गर्जना से, सच्चा ध्यानी पुरुष नहीं काँपता।

5.93.48

वहत्क्रकचकाषेण सितासिदलनेन च । शराशनिनिपातेन कम्पते न स्वरूपतः ॥ ४८ ॥

vahatkrakacakāṣeṇa sitāsidalanena ca | śarāśaninipātena kampate na svarūpataḥ || 48 ||

By the grinding of a saw cutting into him, by the slash of a bright sword, and by the fall of arrows or a thunderbolt, he does not tremble in his true self.

उसे चीरती हुई आरी की रगड़ से, चमकती तलवार के वार से, और बाणों या वज्र के गिरने से, वह अपने असली स्वरूप में कभी नहीं काँपता।

5.93.49

नानन्दमेत्युपवने न खेदमुपगच्छति । न खेदमेति मरुषु नानन्दमुपगच्छति ॥ ४९ ॥

nānandametyupavane na khedamupagacchati | na khedameti maruṣu nānandamupagacchati || 49 ||

He does not feel joy in a garden, nor does he feel sorrow there; he does not feel sorrow in a desert, nor does he feel joy there.

वह बगीचे में न तो खुशी महसूस करता है, न ही दुख; वह रेगिस्तान में न तो दुख महसूस करता है, न ही खुशी।

5.93.50

पूताङ्गारसमाकल्पसैकतेष्वपि धन्वसु । पुष्पप्रकरसंछन्नमृदुशाद्वलभूमिषु ॥ ५० ॥

pūtāṅgārasamākalpasaiakteṣvapi dhanvasu | puṣpaprakarasaṃchannamṛduśādvalabhūmiṣu || 50 ||

And it is the same for him on desert sand like heaps of glowing embers, and on soft meadow ground covered with masses of flowers.

और यह उसके लिए तब भी वैसा ही है जब रेगिस्तान की रेत दहकते अंगारों के ढेर जैसी हो, और तब भी जब मुलायम घास का मैदान फूलों के ढेर से ढका हो।

5.93.51

क्षुरधारासु तीक्ष्णासु शय्यासु च नवोत्पलैः । उन्नताचलदेशेषु कूपकोशतलेषु च ॥ ५१ ॥

kṣuradhārāsu tīkṣṇāsu śayyāsu ca navotpalaiḥ | unnatācaladeśeṣu kūpakośataleṣu ca || 51 ||

On sharp razor blades, on beds spread with fresh lotus flowers, in high mountain places, and at the bottom of wells.

तेज़ धार वाले छुरों पर, ताज़े कमल के फूलों से बिछी सेज पर, ऊँचे पहाड़ी इलाकों में, और कुओं की तली में।

5.93.52

शिलास्वर्कांशुरूक्षासु मृद्वीषु ललनासु च । संपत्स्वापत्सु चोग्रासु रमणेषूत्सवेषु च ॥ ५२ ॥

śilāsvarkāṃśurūkṣāsu mṛdvīṣu lalanāsu ca | saṃpatsvāpatsu cogrāsu ramaṇeṣūtsaveṣu ca || 52 ||

On rocks made rough by the sun, on the soft bodies of women, in wealth and in fierce misfortune, in pleasures and in festivals.

धूप से खुरदरी हुई चट्टानों पर, स्त्रियों के कोमल शरीर पर, धन-संपत्ति में और भयानक विपत्ति में, सुख-भोग में और उत्सवों में।

5.93.53

विहरन्नपि नोद्वेगी नानन्दमुपगच्छति । अन्तर्मुक्तमना नित्यं कर्मकर्तेव तिष्ठति ॥ ५३ ॥

viharannapi nodvegī nānandamupagacchati | antarmuktamanā nityaṃ karmakarteva tiṣṭhati || 53 ||

Even while he moves about through all this, he is never troubled and never lifted into joy. His mind stays always free inside, and he goes on doing things only as if he were their doer.

यह सब कुछ करते-भोगते हुए भी वह न कभी घबराता है, न खुशी में उछलता है। उसका मन सदा भीतर से मुक्त रहता है, और वह काम करता है तो बस ऐसे जैसे वह उसका कर्ता हो।

5.93.54

अयःसंकुचिताङ्गासु नरकारण्यभूमिषु । परस्परेरितानन्तकुन्ततोमरवृष्टिषु ॥ ५४ ॥

ayaḥsaṃkucitāṅgāsu narakāraṇyabhūmiṣu | parasparēritānantakuntatomaravṛṣṭiṣu || 54 ||

In hellish battlefields where iron pierces every limb, amid endless showers of spears and clubs that men hurl at one another.

उन नरक जैसी युद्ध-भूमियों में जहाँ लोहा हर अंग को बींध देता है, जहाँ लोग एक-दूसरे पर भालों और गदाओं की अंतहीन बौछार करते हैं।

5.93.55

न बिभेति न वादत्ते वैवश्यं न च दीनताम् । समः स्वस्थमना मौनी धीरस्तिष्ठति शैलवत् ॥ ५५ ॥

na bibhēti na vādattē vaivaśyaṃ na ca dīnatām | samaḥ svasthamanā maunī dhīrastiṣṭhati śailavat || 55 ||

He does not fear, and he does not take on helplessness or self-pity. Steady, calm in mind, silent, and firm, he stands like a mountain.

वह न डरता है, न ही असहाय या दीन बनता है। समान भाव रखते हुए, मन में स्थिर, मौन और धैर्यवान होकर, वह पहाड़ की तरह अडिग खड़ा रहता है।

5.93.56

अपवित्रमपथ्यं च विषसिक्तं मलाद्यपि । भुक्त्वा जरयति क्षिप्रं क्लिन्नं नष्टं च मृष्टवत् ॥ ५६ ॥

apavitramapathyaṃ ca viṣasiktaṃ malādyapi | bhuktvā jarayati kṣipraṃ klinnaṃ naṣṭaṃ ca mṛṣṭavat || 56 ||

Even if he eats something unclean and unwholesome, filth soaked in poison and the like, he digests it quickly, whether it is rotten or spoiled, as if it were delicious food.

अगर वह कोई गंदी और हानिकारक चीज़ भी खा ले, जैसे ज़हर में डूबी गंदगी, तो भी वह उसे जल्दी पचा लेता है, चाहे वह सड़ी हो या बिगड़ी हो, मानो वह कोई स्वादिष्ट भोजन हो।

5.93.57

बिम्बप्रतिविषाकल्ककक्षीरेक्षुसलिलान्धसाम् । असक्तबुद्धिस्तत्त्वज्ञो भवत्यास्वादने समः ॥ ५७ ॥

bimbaprativiṣākalkakakṣīrēkṣusalilāndhasām | asaktabuddhistattvajño bhavatyāsvādanē samaḥ || 57 ||

Whether he tastes a bimba fruit, a bitter antidote paste, milk, sugarcane juice, water, or plain grain, the knower of truth keeps his mind unattached and finds them all the same.

चाहे वह बिंब फल चखे, या ज़हर उतारने वाला कड़वा लेप, दूध, गन्ने का रस, पानी या साधारण अनाज, सत्य को जानने वाला मन को अनासक्त रखते हुए इन सबको एक समान पाता है।

5.93.58

मैरेयमदिराक्षीररक्तमेदोरसासवैः । रूक्षास्थितृणकेशान्तैर्न हृष्यति न कुप्यति ॥ ५८ ॥

maireyamadirākṣīraraktamedorasāsavaiḥ | rūkṣāsthitṛṇakeśāntairna hṛṣyati na kupyati || 58 ||

Whether he is given wine, liquor, milk, blood, fat, bodily fluid, or fermented spirits, or dry bones, straw, and hair, he is neither pleased nor angered.

चाहे उसे शराब, मदिरा, दूध, खून, चरबी, शरीर का रस या आसव पिलाया जाए, या सूखी हड्डियाँ, तिनके और बाल खिलाए जाएँ, वह न खुश होता है, न गुस्सा करता है।

5.93.59

जीवितस्यापि हर्तारं दातारं चैकरूपया । दृशा प्रसादमाधुर्यशालिन्या परिपश्यति ॥ ५९ ॥

jīvitasya api hartāraṃ dātāraṃ caikarūpayā | dṛśā prasādamādhuryaśālinyā paripaśyati || 59 ||

Even the one who takes his life away and the one who gives it, he looks at with the very same gaze, a gaze full of calm sweetness.

जो उसका जीवन छीन ले और जो उसे जीवन दे, दोनों को वह एक जैसी नज़र से देखता है, एक ऐसी नज़र जिसमें शांति और मिठास भरी होती है।

5.93.60

स्थिरास्थिरशरीरेषु रम्यारम्येषु वस्तुषु । न हृष्यति ग्लायति वा सदा समतयेद्धया ॥ ६० ॥

sthirāsthirasarīreṣu ramyāramyeṣu vastuṣu | na hṛṣyati glāyati vā sadā samatayeddhayā || 60 ||

Toward things whose form is lasting or short-lived, toward things pleasant or unpleasant, he never feels joy or sorrow, because he always keeps a steady, glowing evenness of mind.

चाहे कोई चीज़ टिकाऊ हो या क्षण भर की, चाहे वह सुहावनी हो या अप्रिय, वह न कभी खुश होता है, न दुखी, क्योंकि उसके मन में हमेशा एक स्थिर, दमकती समता बनी रहती है।

5.93.61

मुक्तास्थत्वादनास्थेयरूपत्वाज्जगतः स्थितौ नूनं विदितवेद्यत्वान्नीरागत्वात्स्वचेतसः ॥ ६१ ॥

muktāsthatvādanāstheyarūpatvājjagataḥ sthitau nūnaṃ viditavedyatvānnīrāgatvātsvacetasaḥ || 61 ||

Because he has let go of all clinging, because the very way the world exists is not something to rely on, because he has truly known everything there is to know, and because his own mind is free of craving.

क्योंकि उसने हर तरह का मोह छोड़ दिया है, क्योंकि संसार के होने का ढंग ही ऐसा है कि उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो कुछ जानने योग्य था वह उसने जान लिया है, और क्योंकि उसका अपना मन हर लालसा से मुक्त हो चुका है।

5.93.62

न कस्यचिन्नो कदाचिदक्षस्य विषयस्थितौ ददाति प्रसरं साधुराधिप्रोज्झितया धिया ॥ ६२ ॥

na kasyacinno kadācidakṣasya viṣayasthitau dadāti prasaraṃ sādhurādhiprojñjhitayā dhiyā || 62 ||

The good man, his mind free of all inner torment, never at any time lets any sense run loose after its objects.

वह भला व्यक्ति, जिसका मन हर भीतरी पीड़ा से मुक्त हो चुका है, कभी भी किसी इंद्रिय को अपने विषयों की ओर खुला नहीं छोड़ता।

5.93.63

अतत्त्वज्ञमविश्रान्तमलब्धात्मानमस्थितम् निगिरन्तीन्द्रियाण्याशु हरिणा इव पल्लवम् ॥ ६३ ॥

atattvajñamaviśrāntamalabdhātmānamasthitam nigirantīndriyāṇyāśu hariṇā iva pallavam || 63 ||

But the senses quickly swallow up a man who does not know the truth, who finds no rest, who has not reached his own self, who has no firm footing, just as a deer swallows down a tender shoot.

पर जो सच को नहीं जानता, जिसे कहीं चैन नहीं मिलता, जिसने अपने असली स्वरूप को नहीं पाया, जो कहीं टिका हुआ नहीं है, उसे इंद्रियाँ झट से निगल जाती हैं, ठीक वैसे ही जैसे हिरण किसी कोमल कोंपल को निगल जाता है।

5.93.64

उह्यमानं भवाम्भोधौ वासनावीचिवेल्लितम् निगिरन्तीन्द्रियग्राहा महाक्रन्दपरायणम् ॥ ६४ ॥

uhyamānaṃ bhavāmbhodhau vāsanāvīcivellitam nigirantīndriyagrāhā mahākrandaparāyaṇam || 64 ||

As he is swept along in the ocean of worldly existence, tossed by the waves of his own desires, crying out in great distress, the sense organs, like sea-monsters, swallow him whole.

संसार-रूपी समुद्र में बहते हुए, अपनी ही वासनाओं की लहरों से हिचकोले खाते हुए, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए, उसकी इंद्रियाँ, जल-जंतुओं की तरह, उसे पूरी तरह निगल जाती हैं।

5.93.65

विचारिणं भव्यपदं विश्रान्तधियमात्मनि न हरन्ति विकल्पौघा जलौघा इव पर्वतम् ॥ ६५ ॥

vicāriṇaṃ bhavyapadaṃ viśrāntadhiyamātmani na haranti vikalpaughā jalaughā iva parvatam || 65 ||

But floods of doubt cannot sweep away a man who keeps inquiring, who has reached the good state, whose mind rests in his own self, just as floods of water cannot sweep away a mountain.

लेकिन जो विचार करता रहता है, जो अच्छी स्थिति को पा चुका है, जिसका मन अपने ही भीतर टिका है, उसे संदेहों की बाढ़ बहा नहीं सकती, ठीक वैसे ही जैसे पानी की बाढ़ किसी पहाड़ को नहीं बहा सकती।

5.93.66

सर्वसंकल्पसीमान्ते विश्रान्ता ये परे पदे। तेषां लब्धस्वरूपाणां मेरुरेव तृणायते ॥ ६६ ॥

sarvasaṃkalpasīmānte viśrāntā ye pare pade| teṣāṃ labdhasvarūpāṇāṃ merureva tṛṇāyate || 66 ||

For those who have come to rest at the far end of all wish and thought, in the highest state, and who have found their own true nature, even Mount Meru feels no bigger than a blade of grass.

जो सारी इच्छाओं और विचारों की सीमा के पार, सबसे ऊँची अवस्था में टिक चुके हैं और जिन्होंने अपना असली रूप पा लिया है, उनके लिए मेरु पर्वत भी एक तिनके जैसा लगता है।

5.93.67

जगज्जरत्तृणलवो विषं चामृतमेव च। क्षणः कल्पसहस्रं च सममाततचेतसाम् ॥ ६७ ॥

jagajjarattṛṇalavo viṣaṃ cāmṛtameva ca| kṣaṇaḥ kalpasahasraṃ ca samamātatacetasām || 67 ||

For those whose minds have opened out wide, the whole world is like a bit of old dry grass; poison and nectar are the same to them; a single moment and a thousand ages are equal.

जिनका मन पूरी तरह खुल चुका है, उनके लिए यह सारा संसार सूखे तिनके के एक टुकड़े जैसा है; ज़हर और अमृत उनके लिए एक समान हैं; एक पल और हज़ारों युग उनके लिए बराबर हैं।

5.93.68

संविन्मात्रं जगदिति मत्वा मुदितबुद्धयः। संविन्मयत्वादन्तस्थजगत्का विहरन्त्यमी ॥ ६८ ॥

saṃvinmātraṃ jagaditi matvā muditabuddhayaḥ| saṃvinmayatvādantasthajagatkā viharantyamī || 68 ||

Knowing that the world is nothing but pure awareness, these people move about with joyful minds, since the world, being made of that very awareness, lies within them.

यह जानकर कि यह संसार केवल शुद्ध चेतना ही है, ऐसे लोग प्रसन्न मन से जीवन जीते हैं, क्योंकि यह संसार, चेतना से बना होने के कारण, उन्हीं के भीतर बसा हुआ है।

5.93.69

संविन्मात्रपरिस्पन्दे जागते वस्तुपञ्जरे । किं हेयं किमुपादेयमिह तत्त्वविदां मतम् ॥ ६९ ॥

saṃvinmātraparispande jāgate vastupañjare| kiṃ heyaṃ kimupādeyamih tattvavidāṃ matam || 69 ||

In this waking cage of objects, which is nothing but a stirring of pure awareness, what is there to reject and what is there to accept? This is what the knowers of truth hold.

यह जागती हुई वस्तुओं की दुनिया, जो शुद्ध चेतना की एक हलचल मात्र है, इसमें छोड़ने लायक क्या है और अपनाने लायक क्या है? सत्य को जानने वालों की यही राय है।

5.93.70

संविदेवेदमखिलं भ्रान्तिमन्यां त्यजानघ । संविन्मयवपुः स्फारं किं जहाति किमीहते ॥ ७० ॥

saṃvidevedamakhilaṃ bhrāntimanyāṃ tyajānagha| saṃvinmayavapuḥ sphāraṃ kiṃ jahāti kimīhate || 70 ||

O sinless one, give up any other confusion, all this is nothing but pure awareness. What can this vast form made of awareness give up, and what can it seek?

हे निष्पाप! कोई और भ्रम मत पालो, यह सब कुछ शुद्ध चेतना ही है। चेतना से बना यह विशाल रूप आख़िर क्या छोड़े और क्या चाहे?

5.93.71

यदेतज्जायते भूमेर्भविष्यत्पल्लवाङ्कुरम् । तत्संविदेव प्रथते तथा तत्त्वाङ्कुरस्थितम् ॥ ७१ ॥

yadetajjāyate bhūmerbhaviṣyatpallavāṅkuram | tatsaṃvideva prathate tathā tattvāṅkurasthitam || 71 ||

This shoot that is yet to spring up from the ground is itself nothing but awareness spreading out; in the same way, it already stands present as the sprout of what is real.

ज़मीन से अभी जो कोंपल आगे फूटने वाली है, वह भी दरअसल चेतना का ही फैलाव है; उसी तरह वह सच्चाई की एक कोंपल के रूप में पहले से ही मौजूद है।

5.93.72

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तस्य च । कंचित्कालंलवं दृष्टा सत्तासौ संविदो भ्रमः ॥ ७२ ॥

ādāvante ca yannāsti vartamāne'pi tasya ca | kaṃcitkālalavaṃ dṛṣṭā sattāsau saṃvido bhramaḥ || 72 ||

What does not exist at the beginning, does not exist at the end, and does not truly exist even now, its being, seen for some brief moment, is nothing but a confusion within awareness.

जो न शुरुआत में था, न अंत में रहेगा, और न अभी सचमुच है, उसका होना, जो कुछ पल के लिए दिखता है, बस चेतना का एक धोखा भर है।

5.93.73

इति मत्वा धियं त्यक्त्वा भावाभावानुपातिनीम् । निःसङ्गसंविद्भारूपो भव भावान्तमागतः ॥ ७३ ॥

iti matvā dhiyaṃ tyaktvā bhāvābhāvānupātinīm | niḥsaṅgasaṃvidbhārūpo bhava bhāvāntamāgataḥ || 73 ||

Knowing this, give up the mind that keeps running after existence and non-existence. Having come to the end of all becoming, be nothing but the light of awareness, free of all attachment.

यह समझकर, होने और न होने के पीछे भागने वाली बुद्धि को छोड़ दो। जब यह सारा होना समाप्त हो जाए, तब तुम बस चेतना के उस उजाले हो जाओ, जो किसी से जुड़ा नहीं है।

5.93.74

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि । कर्म कुर्वन्नकुर्वन्वा निःसङ्गः सन्न लिप्यते ॥ ७४ ॥

kāyena manasā buddhyā kevalairindriyairapi | karma kurvannakurvanvā niḥsaṅgaḥ sann na lipyate || 74 ||

Whether he acts or does not act, with body, with mind, with intellect, or with the senses alone, being free of attachment, he is never stained by it.

चाहे वह शरीर से करे, मन से करे, बुद्धि से करे या सिर्फ़ इंद्रियों से, काम करे या न करे, अनासक्त रहते हुए वह उससे कभी लिप्त नहीं होता।

5.93.75

गतसङ्गेन मनसा कुर्वन्नपि न लिप्यते । सुखदुःखैर्महाबाहो मनोरथदशास्विव ॥ ७५ ॥

gatasaṅgena manasā kurvannapi na lipyate | sukhaduḥkhairmahābāho manorathadaśāsviva || 75 ||

O mighty-armed one, even while he acts with a mind free of all attachment, pleasure and pain do not stick to him, just as they do not stick to someone lost in a daydream.

हे महाबाहु! ऐसा व्यक्ति काम करते हुए भी, मन से हर लगाव छोड़ चुका होने के कारण, सुख-दुख से नहीं चिपकता, ठीक वैसे जैसे खयाली सपनों में देखी बातों का सुख-दुख किसी को नहीं छूता।

5.93.76

गतसङ्गां मतिं कुर्वन्कुर्वन्नप्यङ्गयष्टिभिः । न लिप्यते सुखैर्दुःखैर्मनोरथदशास्विव ॥ ७६ ॥

gatasaṅgāṃ matiṃ kurvannkurvannapyāṅgayaṣṭibhiḥ | na lipyate sukhairduḥkhairmanorathadaśāsviva || 76 ||

One who keeps the mind free of attachment, even while acting with the limbs of the body, is not touched by pleasure or pain, the way a person is not touched by what happens in a daydream.

जो अपने मन को आसक्ति से मुक्त रखता है, वह शरीर के अंगों से काम करते हुए भी सुख-दुख से नहीं लिपटता, जैसे आदमी अपने ख्याली सपने की बातों से नहीं लिपटता।

5.93.77

गतसङ्गमना दृष्ट्या पश्यन्नपि न पश्यति । एतदन्यस्थचित्तत्वाद्बालेनाप्यनुभूयते ॥ ७७ ॥

gatasaṅgamanā dṛṣṭyā paśyannapi na paśyati | etadanyasthacittatvādbālenāpyanubhūyate || 77 ||

One whose mind has let go of attachment does not truly see, even while looking with the eyes. This happens because the mind is fixed somewhere else, and even a child has felt it.

जिसका मन आसक्ति छोड़ चुका है, वह आँखों से देखते हुए भी सचमुच नहीं देखता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मन कहीं और लगा होता है, और यह बात एक बच्चे ने भी महसूस की है।

5.93.78

गतसङ्गमना जन्तुः पश्यन्नेव न पश्यति । न श्रृणोत्यपि श्रृण्वंश्च न स्पृशत्यपि च स्पृशन् ॥ ७८ ॥

gatasaṅgamanā jantuḥ paśyannēva na paśyati | na śr̥ṇotyapi śr̥ṇvaṃśca na spr̥śatyapi ca spr̥śan || 78 ||

A being whose mind has let go of attachment does not see, even while looking; does not hear, even while listening; and does not touch, even while touching.

जिस प्राणी का मन आसक्ति छोड़ चुका है, वह देखते हुए भी नहीं देखता, सुनते हुए भी नहीं सुनता, और छूते हुए भी नहीं छूता।

5.93.79

न जिघ्रत्यपि संजिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि । पदार्थे च पतत्येव बलात्पतति नाप्ययम् ॥ ७९ ॥

na jighrtyapi saṃjighrannunmiṣannimiṣannapi | padārthe ca patatyeva balātpatati nāpyayam || 79 ||

Even while smelling, he does not truly smell. His eyes go on opening and closing as ever, and though his eye falls on some object, it does not fall there by force.

सूंघते हुए भी वह सचमुच नहीं सूंघता। उसकी आँखें पहले की तरह खुलती-बंद होती रहती हैं, और भले ही उसकी नज़र किसी चीज़ पर पड़ जाए, वह ज़बरदस्ती वहाँ नहीं पड़ती।

5.93.80

देशान्तरस्थचेतोभिरेतदात्मगृहस्थितैः । अप्रौढमतिभिः साधु मूर्खैरप्यनुभूयते ॥ ८० ॥

deśāntarasthacetobhiretadātmagṛhasthitaiḥ | aprauḍhamatibhiḥ sādhu mūrkhairapyanubhūyate || 80 ||

Even foolish people with an unripe mind feel this clearly. Sitting right in their own house, their mind is somewhere else.

यहाँ तक कि अधपकी बुद्धि वाले मूर्ख लोग भी इसे साफ महसूस करते हैं। वे अपने ही घर में बैठे रहते हैं, पर उनका मन कहीं और भटक रहा होता है।

5.93.81

सङ्गः कारणमर्थानां सङ्गः संसारकारणम् । सङ्गः कारणमाशानां सङ्गः कारणमापदाम् ॥ ८१ ॥

saṅgaḥ kāraṇamarthānāṃ saṅgaḥ saṃsārakāraṇam | saṅgaḥ kāraṇamāśānāṃ saṅgaḥ kāraṇamāpadām || 81 ||

Attachment is the cause of wealth. Attachment is the cause of the cycle of the world. Attachment is the cause of hope. Attachment is the cause of misfortune.

आसक्ति ही धन का कारण है। आसक्ति ही संसार के चक्र का कारण है। आसक्ति ही आशा का कारण है। आसक्ति ही विपत्ति का कारण है।

5.93.82

सङ्गत्यागं विदुर्मोक्षं सङ्गत्यागादजन्मता । सङ्गं त्यज त्वं भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ ॥ ८२ ॥

saṅgatyāgaṃ vidurmokṣaṃ saṅgatyāgādajanmatā | saṅgaṃ tyaja tvaṃ bhāvānāṃ jīvanmukto bhavānagh || 82 ||

The wise call the giving up of attachment liberation. Giving up attachment ends rebirth. Give up your attachment to things, sinless one, and become free while you are still alive.

आसक्ति का त्याग ही मोक्ष कहलाता है। आसक्ति छोड़ने से फिर जन्म नहीं होता। हे निष्पाप, तुम चीज़ों के प्रति अपनी आसक्ति छोड़ दो और जीते-जी मुक्त हो जाओ।

5.93.83

श्रीराम उवाच । सर्वसंशयनीहारशरन्मारुत हे मुने । सङ्गः किमुच्यते ब्रूहि समासेन मम प्रभो ॥ ८३ ॥

śrīrāma uvāca | sarvasaṃśayanīhāraśaraṇmāruta he mune | saṅgaḥ kimucyate brūhi samāsena mama prabho || 83 ||

Sri Rama said: Sage, you are the autumn wind that clears away the fog of every doubt. Tell me briefly, lord, what is called attachment.

श्रीराम ने कहा: हे मुनि, आप शरद ऋतु की उस हवा के समान हैं जो हर शंका के कुहासे को उड़ा देती है। हे प्रभु, मुझे संक्षेप में बताइए कि आसक्ति किसे कहते हैं।

5.93.84

श्रीवसिष्ठ उवाच । भावाभावे पदार्थानां हर्षामर्षविकारदा । मलिना वासना यैषा सा सङ्ग इति कथ्यते ॥ ८४ ॥

śrīvasiṣṭha uvāca | bhāvābhāve padārthānāṃ harṣāmarṣavikāradā | malinā vāsanā yaiṣā sā saṅga iti kathyate || 84 ||

Sri Vasishtha said: When things are present or absent, the tainted impression in the mind that stirs up joy and anger is what is called attachment.

श्री वसिष्ठ ने कहा: वस्तुएँ मिलें या न मिलें, मन में जो मैला संस्कार उठता है और खुशी या गुस्सा जगाता है, उसी को आसक्ति कहा जाता है।

5.93.85

जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी । मुक्ता हर्षविषादाभ्यां शुद्धा भवति वासना ॥ ८५ ॥

jīvanmuktasharīrāṇāmapunarjanmakāriṇī | muktā harṣaviṣādābhyāṃ śuddhā bhavati vāsanā || 85 ||

For those who are liberated while still in the body, the impression in the mind does not cause rebirth. Free of joy and sorrow, it stays pure.

जो लोग जीते-जी शरीर में रहते हुए भी मुक्त हैं, उनके मन का संस्कार फिर जन्म नहीं देता। वह खुशी और दुख दोनों से मुक्त रहकर शुद्ध बना रहता है।

5.93.87

अजीवन्मुक्तरूपाणां दीनानां मूढचेतसाम् । युक्ता हर्षविषादाभ्यां बन्धनी वासना भवेत् ॥ ८७ ॥

ajīvanmuktarūpāṇāṃ dīnānāṃ mūḍhacetasām | yuktā harṣaviṣādābhyāṃ bandhanī vāsanā bhavet || 87 ||

But for those who are not liberated while alive, the wretched and the deluded, the impression in the mind stays joined to joy and sorrow, and it becomes a bond.

पर जो जीते-जी मुक्त नहीं हैं, वे दीन और मूढ़ लोग, उनके मन का संस्कार खुशी-दुख से जुड़ा रहता है और बंधन बन जाता है।

5.93.88

सैवोक्ता सङ्गशब्देन पुनर्जननकारिणी । तया यत्क्रियते कर्म तद्बन्धायैव केवलम् ॥ ८८ ॥

saivoktā saṅgaśabdena punarjananakāriṇī | tayā yatkriyate karma tadbandhāyaiva kevalam || 88 ||

That very impression, the one that causes rebirth, is what is called by the word attachment. Whatever action is done through it leads only to bondage.

वही संस्कार, जो फिर जन्म देता है, आसक्ति शब्द से कहा जाता है। उसके सहारे जो भी काम किया जाए, वह केवल बंधन में ही डालता है।

5.93.89

एवं रूपं परित्यज्य सङ्गं स्वात्मविकारदम् । यदि तिष्ठसि निर्व्यग्रः कुर्वन्नपि न लिप्यसे ॥ ८९ ॥

evaṃ rūpaṃ parityajya saṅgaṃ svātmavikāradam | yadi tiṣṭhasi nirvyagraḥ kurvannapi na lipyase || 89 ||

So, if you give up this kind of attachment, the one that disturbs your own self, and stay undisturbed, then even while acting, you will not be stained.

इसलिए अपने ही मन को बिगाड़ने वाली इस आसक्ति को छोड़कर, अगर तुम बेचैन हुए बिना शांत रहो, तो काम करते हुए भी तुम लिप्त नहीं होगे।

5.93.90

हर्षामर्षविषादाभ्यां यदि गच्छसि नान्यताम्। वीतरागभयक्रोधस्तदसङ्गोऽसि राघव ॥ ९० ॥

harṣāmarṣaviṣādābhyāṃ yadi gacchasi nānyatām | vītarāgabhayakrodhastadasaṅgo'si rāghava || 90 ||

If joy, anger, and sorrow do not turn you into someone else, and you are free of craving, fear, and anger, then, Raghava, you are truly unattached.

अगर खुशी, गुस्सा और दुख तुम्हें बदल न सकें, और तुम लालच, डर और क्रोध से मुक्त रहो, तो हे राघव, तभी तुम सचमुच निरासक्त हो।

5.93.91

दुःखैर्न ग्लानिमायासि यदि हृष्यसि नो सुखैः। आशावैवश्यमुत्सृज्य तदसङ्गोऽसि राघव ॥ ९१ ॥

duḥkhairna glānimāyāsi yadi hṛṣyasi no sukhaiḥ | āśāvaivashyamutsṛjya tadasaṅgo'si rāghava || 91 ||

If sorrows do not wear you down, and pleasures do not thrill you, and you stop being a slave to hope, then, Raghava, you are truly unattached.

अगर दुख तुम्हें थका न सकें, और सुख तुम्हें फुला न सकें, और तुम आशा के गुलाम बनने से बच जाओ, तो हे राघव, तभी तुम सचमुच निरासक्त हो।

5.93.92

विहरन्व्यवहारेषु सुखदुःखदशासु च। न विमुञ्चसि सत्साम्यं तदसङ्गोऽसि राघव ॥ ९२ ॥

viharanvyavahāreṣu sukhaduḥkhadaśāsu ca | na vimuñcasi satsāmyaṃ tadasaṅgo'si rāghava || 92 ||

While you go about your daily dealings, and through states of pleasure and pain, if you never let go of true even-mindedness, then, Raghava, you are truly unattached.

रोज़ के काम-काज में और सुख-दुख की हालत में रहते हुए भी अगर तुम सच्ची समता को न छोड़ो, तो हे राघव, तभी तुम सचमुच निरासक्त हो।

5.93.93

संवेद्यो यदि चैवात्मा वेदिते लक्ष्यते समः। यथाप्राप्तानुवर्ती च तदसङ्गोऽसि राघव ॥ ९३ ॥

saṃvedyo yadi caivātmā veditelakṣyate samaḥ | yathāprāptānuvartī ca tadasaṅgo'si rāghava || 93 ||

And if the self you experience is seen to stay the same in every experience, and you simply accept whatever comes to you, then, Raghava, you are truly unattached.

और अगर अनुभव में आने वाला तुम्हारा आत्मा हर अनुभव में एक-सा ही दिखे, और तुम जो भी मिले उसी में संतुष्ट रहो, तो हे राघव, तभी तुम सचमुच निरासक्त हो।

5.93.94

असङ्गतामनायासाज्जीवन्मुक्तस्थितिं स्थिराम्। अवलम्ब्य समः स्वस्थो वीतरागो भवानघ ॥ ९४ ॥

asaṅgatāmanāyāsājjīvanmuktasthitiṃ sthirām | avalambya samaḥ svastho vītarāgo bhavānagh || 94 ||

By staying effortless, resting on this state of being unattached and on the steady state of freedom while alive, stay even-minded and at ease within yourself, and become free of craving, sinless one.

बिना किसी मेहनत के, इस निरासक्ति और जीते-जी मुक्ति की स्थिर अवस्था पर टिके रहकर, समभाव में और अपने भीतर सहज बने रहो, और हे निष्पाप, लालच से मुक्त हो जाओ।

5.93.95

जीवन्मुक्तमतिर्मौनी निगृहीतेन्द्रियग्रहः । अमानमदमात्सर्यमार्यस्तिष्ठति विज्वरम् ॥ ९५ ॥

jīvanmuktamatirmauṇī nigṛhītendriyagrahaḥ | amānamadamātsaryamāryastiṣṭhati vijvaram || 95 ||

One whose mind rests in freedom while still alive, who stays silent, who has reined in the grip of the senses, and who is free of pride, conceit, and envy, that noble person remains free of all inner turmoil.

जिसका मन जीते-जी मुक्ति में टिका है, जो मौन रहता है, जिसने इंद्रियों की पकड़ को वश में कर लिया है, और जो घमंड, नशे और ईर्ष्या से मुक्त है, वह श्रेष्ठ व्यक्ति हर तरह की बेचैनी से मुक्त रहता है।

5.93.96

सदा समग्रेऽपि हि वस्तुजाले समाशयोऽप्यन्तरदीनसत्त्वः । व्यापारमात्रात्सहजात्क्रमस्थान्न किंचिदप्यन्यदसौ करोति ॥ ९६ ॥

sadā samagre'pi hi vastujāle samāśayo'pyantaradīnasattvaḥ | vyāpāramātrātsahajātkramasthānna kiṃcidapyanyadasau karoti || 96 ||

Always, even in the midst of the whole web of things, he stays even-minded, and inwardly his being is never crushed. Beyond the plain, natural action that comes in its own order, he does nothing else at all.

वह सदा, चीज़ों के पूरे जाल के बीच रहते हुए भी, समान भाव रखता है, और भीतर से उसका मन कभी दबता नहीं। जो सहज और अपने क्रम से आने वाला काम है, उससे आगे वह कुछ और नहीं करता।

5.93.97

यदेव किंचित्प्रकृतं क्रमस्थं कर्तव्यमात्मीयमसौ तदेव । संसर्गसंबन्धविहीनयैव कुर्वन्न खेदं रमते धियान्तः ॥ ९७ ॥

yadeva kiṃcitprakṛtaṃ kramasthaṃ kartavyamātmīyamasau tadeva | saṃsargasaṃbandhavihīnayaiva kurvanna khedaṃ ramate dhiyāntaḥ || 97 ||

Whatever task comes to hand in its own time, he treats that alone as his own to do. He does it only with a mind free of any attachment, without weariness, and stays content within, in his own understanding.

जो भी काम अपने समय पर सामने आए, वह उसे ही अपना काम मानकर करता है, वह भी बिना किसी लगाव के और बिना थके-हारे। वह भीतर से अपने ही मन में संतुष्ट और आनंदित रहता है।

5.93.98

अथापदं प्राप्य सुसंपदं वा महामतिः स्वप्रकृतं स्वभावम् । जहाति नो मन्दरवेल्लितोऽपि शौक्ल्यं यथा क्षीरमयाम्बुराशिः ॥ ९८ ॥

athāpadaṃ prāpya susaṃpadaṃ vā mahāmatiḥ svaprakṛtaṃ svabhāvam | jahāti no mandaravellito'pi śauklyaṃ yathā kṣīramayāmburāśiḥ || 98 ||

So too, whether he meets misfortune or great prosperity, the wise, great-minded person never gives up his own true nature, just as the ocean of milk, even when churned by Mount Mandara, never gives up its whiteness.

इसी तरह चाहे उसे विपत्ति मिले या बड़ी संपत्ति, महान बुद्धि वाला व्यक्ति अपना असली स्वभाव नहीं छोड़ता, ठीक वैसे ही जैसे मंदराचल पर्वत से मथे जाने पर भी दूध का सागर अपनी सफेदी नहीं छोड़ता।

5.93.99

संप्राप्य साम्राज्यमथापदं वा सरीसृपत्वं सुरनाथतां वा । तिष्ठत्यखेदोदयमस्तहर्षं क्षयोदयेष्विन्दुरिवैकरूपः ॥ ९९ ॥

saṃprāpya sāmrājyamathāpadaṃ vā sarīsṛpatvaṃ suranāthatāṃ vā | tiṣṭhatyakhedodayamastaharṣaṃ kṣayodayeṣvindurivaikarūpaḥ || 99 ||

Whether he gains an empire or misfortune, the state of a crawling reptile or the lordship of the gods, he stays free of dejection and free of elation, unchanged, like the moon, which keeps the same form through its waning and its waxing.

चाहे उसे राज-पाट मिले या विपत्ति, चाहे वह रेंगने वाला जीव बने या देवताओं का राजा, वह न तो दुखी होता है न ही खुश, बल्कि हमेशा एक जैसा रहता है, ठीक वैसे ही जैसे चाँद घटने और बढ़ने पर भी अपना रूप एक-सा रखता है।

5.93.100

निरस्तसंरम्भमपास्तभेदं प्रशान्तनानाफलवल्गुवेषम् । विचारयात्मानमदीनसत्त्वो यथा भवस्युत्तमकार्यनिष्ठः ॥ १०० ॥

nirastasaṃrambhamapāstabhedaṃ praśāntanānāphalavalguveṣam | vicārayātmānamadīnasattvo yathā bhavasyuttamakāryaniṣṭaḥ || 100 ||

Inquire into the self, the self that is free of all agitation, free of every division, in which the many alluring shapes of results have grown quiet. Inquire with a mind that does not give way, so that you become one set upon the highest task.

अपने उस आत्मा का विचार करो, जो हर उथल-पुथल से मुक्त है, जिसमें कोई भेद नहीं बचा, और जिसमें फल के अनेक लुभावने रूप शांत हो चुके हैं। यह विचार बिना हिम्मत हारे करो, ताकि तुम सबसे ऊँचे काम में लगे रह सको।

5.93.101

तयोदितप्रसरविलासशुद्धया गतज्वरं पदमवलम्बयामलम् । धियेद्धया पुनरिह जन्मबन्धनैर्न बध्यसे समधिगतात्मदृश्यया ॥ १०१ ॥

tayoditaprasaravilāsaśuddhayā gatajvaraṃ padamavalambyāmalam | dhiyeddhayā punariha janmabandhanairna badhyase samadhigatātmadṛśyayā || 101 ||

With the understanding that has become pure through this unfolding, that is kindled, and that has fully grasped the self as the seen, rest firmly on that stainless, untroubled state, and here in this world you will never again be bound by the chains of birth.

इस समझ के फैलाव से जो बुद्धि निखर आई है, जो जाग उठी है, और जिसने आत्मा को ही दृश्य के रूप में पूरी तरह जान लिया है, उस बुद्धि के सहारे उस निर्मल, बेचैनी-रहित अवस्था पर टिक जाओ, फिर तुम इस संसार में जन्म के बंधनों में कभी नहीं बंधोगे।